हिंदी विश्वकोश

सूरदास
(पृ० सं० १६१-१६३)
(नागरीप्रचारिणी सभा के सौजन्य से)

हिंदी विश्वकोश

खंड १२

'सवर्गीय यौगिक' से 'ह्वाइटहेड, एलफ्रेड नार्थ' तक
तथा
परिशिष्ट

नागरीप्रचारिणी सभा
वाराणसी

परामर्शमंडल के सदस्य

संपादक समिति

सहायक तथा सहकारी संपादक

तत्वों की संकेतसूची

संकेत		तत्व का नाम
अ	Am	अमरीशियम
आ$_{इ}$	En	आइंस्टियम
ऑ	O	ऑक्सीजन
आ	I	आयोडीन
आ$_{र}$	A	आर्गन
आ$_{स}$	As	आर्सेनिक
ऑ$_{स}$	Os	ऑस्मियम
इं$_{ड}$	In	इंडियम
इ$_{ट}$	Yb	इटर्बियम
इ$_{ट्र}$	Y	इट्रियम
इ	Ir	इरीडियम
ए$_{र}$	Eb	एर्बियम
ऐं$_{ट}$	Sb	ऐंटिमनी
ऐ$_{क}$	Ac	ऐक्टिनियम
ऐ	Al	ऐलुमिनियम
ऐ$_{स}$	At	ऐस्टैटीन
का	C	कार्बन
कै$_{ड}$	Cd	कैडमियम
कै$_{ल}$	Cf	कैलिफोर्नियम
कै	Ca	कैल्शियम
को	Co	कोबाल्ट
क्यू	Cm	क्यूरियम
क्रि	Kr	क्रिप्टॉन
क्रो	Cr	क्रोमियम
क्लो	Cl	क्लोरीन
गं	S	गंधक
गै$_{ड}$	Gd	गैडोलिनियम
गै	Ga	गैलियम
ज$_{र}$	Zr	ज़र्कोनियम
ज$_{र}$	Ge	जर्मेनियम
ज़ी	Xe	ज़ीनान
टं	W	टंग्स्टन
ट$_{र}$	Tb	टर्बियम
टा$_{इ}$	Ti	टाइटेनियम
टे$_{क}$	Tc	टेक्नीशियम
टे$_{ल}$	Te	टेल्यूरियम
टै	Ta	टैंटेलम
डि	Dy	डिस्प्रोसियम
ता	Cu	ताम्र
थू	Tm	थूलियम
थै	Tl	थैलियम
थो	Th	थोरियम
ना	N	नाइट्रोजन
नि$_{ओ}$	Nb	नियोबियम
नि	Ni	निकल
नी	Ne	नीऑन
ने$_{प}$	Np	नेप्चूनियम
न्यो	Nd	न्योडिमियम
पा	Hg	पारद
पै	Pd	पैलेडियम
पो	K	पोटैसियम
पो$_{ल}$	Po	पोलोनियम
प्रे	Pr	प्रेज़िओडिमियम
प्रो$_{ट}$	Pa	प्रोटोऐक्टिनियम
प्रो$_{म}$	Pm	प्रोमीथियम
प्लू	Pu	प्लूटोनियम
प्लै	Pt	प्लैटिनम
फा	P	फॉस्फोरस
फ्रा	Fr	फ्रांसियम
फ्लो	F	फ्लोरीन
ब	Bk	बर्केलियम
बि	Bi	बिस्मथ
बे	Ba	बेरियम
बे$_{र}$	Be	बेरीलियम
बो	B	बोरन
ब्रो	Br	ब्रोमीन
मू	R	मूलक (रैडिकल)
मैं	Mn	मैंगनीज
मै$_{ग}$	Mg	मैग्नीशियम
मो	Mo	मोलिब्डेनम
य	Zn	यशद
यू	U	यूरेनियम
यू$_{र}$	Eu	यूरोपियम
र	Ag	रजत
रु	Ru	रुथेनियम
रु$_{ब}$	Rb	रुबिडियम
रे$_{ड}$	Rn	रेडॉन
रे	Ra	रेडियम
रे$_{न}$	Re	रेनियम
रो	Rh	रोडियम
लि	Li	लिथियम
लै	La	लैंथेनम
लो	Fe	लोह
ल्यू	Lu	ल्यूटीशियम
वं	Sn	वंग
वै	V	वैनेडियम
स	Sm	समेरियम
सि	Si	सिलिकन
सि$_{ल}$	Se	सिलीनियम
सी$_{ज}$	Cs	सीज़ियम
सी$_{र}$	Ce	सीरियम
सी	Pb	सीस
सें	Ct	सेंटियम
सो	Na	सोडियम
स्कै	Sc	स्कैंडियम
स्ट्रौ	Sr	स्ट्रौंशियम
स्व	Au	स्वर्ण
हा	H	हाइड्रोजन
ही	He	हीलियम
है	Hf	हैफ्नियम
हो	Ho	होल्मियम

फलक सूची

द्वादश खंड के लेखक

अ० दे० वि०	(स्व०) अत्रिदेव विद्यालंकार, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
अ० ना० अ०	डा० अमरनारायण अग्रवाल, ५, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद।
अ० ना० मे०	अजितनारायण मेहरोत्रा, एम० ए०, बी० एस-सी०, बी० एड०, साहित्य संपादक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
अ० वि० मि०	अवधविहारी मिश्र, भूतपूर्व प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
अ० शा० फ०	(स्व०) अनंत शास्त्री फड़के, २६।४१, कपिलेश्वर गली, दुर्गाघाट, वाराणसी।
अ० सि०	अभय सिन्हा, एम० एस-सी०, पी० एच-डी०, आर० आई० सी० लंदन, टेक्नॉलोजिस्ट प्लैनिंग, ऐंड डेवलपमेंट डिविजन, फर्टिलाइजर कारपोरेशन ऑव इंडिया, सिंदरी, धनबाद।
आ० कौ० या भ० आ० कौ०	भदंत आनंद कौसल्यायन, विद्यालंकार परिवेण, विश्वविद्यालय केलानिया श्रीलंका।
आ० भू०	आर्यभूषण, ऐडिशनल कमिश्नर ऑव रेलवे सेफ्टी वेस्टर्न सर्किल, गवर्नमेंट ऑव इंडिया आफिस, क्वींस रोड, बंबई।
आ० बे०	(फादर) आस्कर वेरे कुइसे, प्रोफेसर ऑव होली स्क्रिप्चर्स, सेंट अल्बर्ट्स सेमिनरी, राँची।
आर० एन० दां०	आर० एन० दांडेकर, भांडारकर शोधसंस्थान, पूना।
इं० दे०	इंद्रदेव, एम० ए०, पी० एच डी०, रीडर, समाजशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
इ० हु० सि०	इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी, द्वारा डा० खलीक अहमद निजामी, ३, इंग्लिश हाउस, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।
उ० ना० पां	उदयनारायण पांडेय, एम० ए०, रजिस्ट्रार, लद्दाखी बौद्ध विहार, बेला रोड, दिल्ली।
उ० सि०	उजागर सिंह, एम० ए०, पी० एच-डी० (लंदन), रीडर, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।
ओं० ना० श०	ओंकार नाथ शर्मा, भूतपूर्व वरिष्ठ लोको फोरमैन, बी० बी० एंड सी० आई० रेलवे, निवृत्त प्रधानाध्यापक, यंत्रशास्त्र, प्राविधिक प्रशिक्षण केंद्र, पूर्वोत्तर रेलवे, लक्ष्मी निवास, गुलाबबाड़ी, अजमेर।
ओ० प्र०	ओम प्रकाश, १३।५, शक्ति नगर, दिल्ली—७।
का० बु०	कामिल बुल्के, एस० जे०, एम० ए०, डी० फिल०; अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सेंट जेवियर्स कालेज, राँची।
क० प० त्रि०	करुणापति त्रिपाठी, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
का० ना० सिं	काशीनाथ सिंह, एम० ए०, पी० एच-डी०, प्राध्यापक, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।
कृ० प्र० श्री०	कृष्ण प्रसाद श्रीवास्तव, पी० एच-डी०, प्राध्यापक, जंतु शास्त्र विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।
के० ना० त्रि०	केशरीनारायण त्रिपाठी, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
के० ना० ला०	केदारनाथ लाभ, हिंदी विभाग, राजेंद्र कालेज, छपरा (बिहार)।
कै० ना० सिं०	कैलासनाथ सिंह, बी० एस० सी०, एम० ए०, प्राध्यापक, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।
कै० ना० सिं०	कैलासनाथ सिंह, एम० ए०, एम० एस-सी०, एल० एल० बी०, एल० टी०, साहित्यरत्न, अध्यक्ष, भौतिक शास्त्र विभाग, डी० ए० वी० कालेज, वाराणसी।
गि० कि० ग०	गिरिराज किशोर गहराना, प्राध्यापक, धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़।
गि० चं० त्रि०	गिरीशचंद्र त्रिपाठी, एम० ए०, पी० एच-डी० जानकी निकुंज, पुराना किला, लखनऊ।
गु० ना० दु०	गुरुनारायण दुबे, एम० एस-सी०, सर्वेक्षण अधीक्षक, भारत सर्वेक्षण विभाग, हैदराबाद (आं० प्र०)।
चं० प्र० शु०	चंद्रिका प्रसाद शुक्ल, एम० ए०, पी० एच-डी०, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
चं० प्र० गो० या च० प्र० गो०	चंद्रप्रकाश गोयल, एम० ए०, एम० ए० एस०, पी० एच-डी०, काशी विद्यापीठ, वाराणसी।
चं० भा० पा०	चंद्रभान पांडेय, एम० ए०, पी० एच-डी०, भू० पू० लेक्चरर, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
चं० भू० त्रि०	चंद्रभूषण त्रिपाठी, एम० ए०, एल० एल० बी०, डी० फिल०, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
चं० मो०	चंद्रमोहन, पी० एच-डी० (लंदन), एफ० एस०

या० च० मो०　एम०, रीडर गणित विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

चं० शे० मि०　चंद्रशेखर मिश्र, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

ज० कृ०　डा० जयकृष्ण, बी० एस सी०, बी० ई० (ग्रानर्स), पी० एच डी०,(लंदन) एम० ग्राई० ई० (इंडिया), मेंबर साईज्योलॉजिक सोसायटी (संयुक्त राज्य ग्रमरीका), फेलो ग्रमरीकन सोसायटी ग्रॉव सिविल इंजीनियर्स, प्रोफेसर, रुड़की विश्वविद्यालय, रुड़की।

ज० च०　जवाहरलाल चतुर्वेदी, प्रधान संपादक, 'पुष्टिमार्गीय ग्रथरत्न कोश', कूवावाली गली, सूरसागर कार्यालय, मथुरा।

ज० दे० सिं०　जयदेव सिंह, भूतपूर्व म्यूजिक प्रोडयूसर, ग्राकाशवाणी, नई दिल्ली, डी० ६१।२६ एफ०, विश्रामकुटी, सिद्धिगिरिबाग, वाराणसी।

ज० ना० म०　जगदीशनारायण मल्लिक, एम० ए०, ग्रध्यक्ष, दर्शन विभाग, राजेंद्र कालेज, छपरा।

ज० वि० मि०　जगदीशविहारी मिश्र, ग्रंग्रेजी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

ज० यू०　जन यून-हुग्रा, एम० ए०, पी० एच डी०, शांतिनिकेतन, प० ब०।

ज० स० ग०　डा० जगदीशसरन गर्ग, बी० एस सी० (ए० जी०), एम० एस सी० (ए० जी०), एम० ए० (ग्रर्थशास्त्र), पी० एच-डी०, प्रॉडक्शन इकानोमिस्टकम, प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, कानपुर।

ज० सिं०　जगीर सिंह, एम० ए०, एल० टी०, (ग्रवकाशप्राप्त ग्रध्यापक, प्रशिक्षण महाविद्यालय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय) डी० ६०।३६, छोटी गैवी, वाराणसी।

ता० पां०　तारकेश्वर पांडेय, बलिया।

तु० ना० सिं०　तुलसीनारायण सिंह, ग्रंग्रेजी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

त्रि० प०　त्रिलोचन पंत, एम० ए०, इतिहास विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

द० दु० या　दयाशंकर दुबे, एम० ए०, ए० एल० बी०, भूतपूर्व
द० श० दु०　प्राध्यापक, ग्रर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, दुबे निवास, ८७३, दारागंज इलाहाबाद।

द० श०　दशरथ शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०, ग्रध्यक्ष, इतिहास विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।

द० सिं०　दलजीत सिंह, ग्रायुर्वेद वृहस्पति, हकीम, श्री चुनार ग्रायुर्वेदीय यूनानी ग्रौषधालय, चुनार।

दी० चं०　दीवान चंद, एम० ए०, डी० लिट्०, भूतपूर्व वाइस चांसलर ग्रागरा विश्वविद्यालय, ६३, छावनी मार्ग, कानपुर।

दु० शं० ना०　दुर्गाशंकर नागर, बी० एस सी० (कृषि), उपनिदेशक (प्रशिक्षण), कृषि निदेशालय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

दे० रा० क०　देवराज कपूरिया, लेफ्टिनेंट कर्नल, बी० ई० (सिविल) ए० एम० ग्राई० ई० (भारत), स्टॉफ ग्राफिसर ग्रेड—१ प्लैनिंग, चीफ इंजीनियर्स ग्राफिस, १५ कोर, ५६ ए० पी० ग्रो०, इंजीनियर्स ब्रांच।

धी० च० गां०　धीरेंद्रचंद्र गांगुली, एम० ए०, पी० एच डी० (लंदन), भूतपूर्व प्रोफेसर ढाका विश्वविद्यालय, सेक्रेटरी ग्रौर क्यूरेटर, विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता—१६।

न० क०　नवरत्न कपूर, एम० ए०, पी० एच डी०, हिंदी विभाग, महेंद्र डिग्री कालेज, पटियाला (पंजाब)।

न० कु०　नगेंद्रकुमार, बार-ऐट लॉ, राजेंद्रनगर, पटना—४।

नं० कु० रा०　नंदकुमार राय, एम० एस-सी०, संपादक सहायक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

न० प्र०　नर्मदेश्वर प्रसाद, एम० ए०, लेक्चरर, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

नि० नं० गु०　नित्यानंद गुप्त, एम० डी० (मेडिसिन), तथा फिजीशियन, मेडिकल कालेज, लखनऊ।

नि० शा०　निखिलेश शास्त्री, एम० ए०, एम० लिट्०, बौद्ध ग्रध्ययन विभाग, दिल्ली—७।

पु० वा०　पुरुषोत्तम वाजपेयी, एम० ए० ग्रध्यक्ष, उत्तर प्रदेश बैंक इम्प्लाइज यूनियन, वाराणसी।

प्र० ग्रो०　प्रभा ग्रोवर, एम० एस-सी०, डी० फिल, १४, पार्क रोड, इलाहाबाद।

प्र० मा०　प्रभाकर माचवे, एम० ए०, पी० एच-डी, सहायक मंत्री, साहित्य ग्रकादमी, नई दिल्ली।

प्र० ना० मे०　प्रकाशनाथ मेहरोत्रा, एम० एस-सी, पी० एच० डी०, एफ० ई० एस० ग्राई०, एफ० ग्रार० ई० एस०, रीडर एवं ग्रध्यक्ष, प्राणिविज्ञान विभाग, राँची कालेज राँची, बिहार।

प्रा० ना०　प्राणनाथ, एम० एस-सी०, पी० एच-डी०, प्रोफेसर, गणित विभाग, इंजीनियरिंग कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

प्रि० कु० चौ०　प्रियकुमार चौबे, बी० ए०, ए० बी० एम० एस०, डी० सी० पी०, मेडिकल एवं हेल्थ ग्राफिसर, काशीविद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी।

फ्रां० भ०　(श्रीमती) फ्रांस भट्टाचार्य, फ्रेंच भाषा लेक्चरर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

फू० स० व०　फूलदेव सहाय वर्मा, एम० एस-सी०, ए० ग्राई० ग्राई० एस० सी; भूतपूर्व प्रोफेसर, ग्रौद्योगिक रसायन

एवं प्रधानाचार्य, कालेज ऑव टेक्नोलोजी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, संप्रति संपादक हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

बं० श्री० — बंशीधर श्रीवास्तव, संपादक, नई तालीम, सर्वसेवा-संघ प्रकाशन, वाराणसी।

ब० उ० — बलदेव उपाध्याय, एम० ए०, साहित्याचार्य, निदेशक, अनुसंधान, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ब० ना० सि० — वशिष्ठ नारायण सिंह, शोधछात्र, जैनाश्रम, हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

ब० प्र० मि० — बलभद्र प्रसाद मिश्र, ४७।१२, कबीर मार्ग, लखनऊ।

ब० ला० जै० — बसंत लाल जैन, प्राध्यापक, डिग्री कॉलेज, भरतपुर।

बा० ना० — बालेश्वर नाथ, बी० एस-सी, सी० ई० (आनर्स), एम० आई० आई०, मेंबर इरिगेशन टीम (कोप) कमिटी आन प्लान प्रोजेक्टस, प्लानिंग कमीशन—३, मथुरा रोड, नई दिल्ली।

ब्र० चौ० — ब्रजराज चौहान, रीडर, इन्स्टीट्यूट ऑव सोशल साइंसेज, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

ब्र० र० दा० — (स्व०) ब्रजरत्न दास, बी० ए०, एल० एल० बी०, भूतपूर्व प्रधानमंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, एवं वकील, सुड़िया, वाराणसी।

बै० पु० — बैजनाथ पुरी, एम० ए०, डी० लिट्० (आक्सफोर्ड), प्रोफेसर इतिहास, नेशनल एकेडेमी ऑव ऐडमिनिस्ट्रेशन, चार्ल विल, मंसूरी।

बै० ना० प्र० — बैजनाथ प्रसाद, पी० एच-डी०, प्राध्यापक, रसायन विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भ० प्र० श्री० — भगवती प्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०, एल० एल० बी०, एसोशियेट प्रोफेसर, धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़।

भ० मि० — भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी० एच-डी०, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)।

भ० दा० व० — भगवान दास वर्मा, बी० एस-सी०, एल० टी०, भूतपूर्व अध्यापक डेली (चीफ्स) कालेज, इंदौर, भूतपूर्व सहायक संपादक, इंडियन क्रॉनिकल, संप्रति विज्ञान सहायक संपादक, हिंदी विश्वकोश, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

भ० दी० मि० — भगवानदीन मिश्र, एम० ए०, पी० एच-डी०, हिंदी विभाग, एम० बी० डिग्री कालेज, हलद्वानी, (नैनीताल)।

भ० शं० या० — (स्व०) भवानीशंकर याज्ञिक, डाक्टर, ८, शाहनजफ रोड, हजरतगंज, लखनऊ।

भ० श० उ० — भगवत शरण उपाध्याय, एम० ए०, [illegible] (लागेव), भूतपूर्व संपादक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

भ० स्व० च० — भगवत स्वरूप चतुर्वेदी, आई० ई० एस०, कमांडेंट, प्रांतीय रक्षक दल, साउथ एवेन्यू, लखनऊ।

भा० प्र० त्रि० — भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी, अनुसंधान संस्थान, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भा० शं० मे० — भानुशंकर मेहता, एम० बी० बी० एस०, पैथालाजिस्ट, बुलानाला, वाराणसी।

भा० स० — भाऊ समर्थ, जे० जी० स्कूल ऑव आर्ट्स (बंबई), चित्रकार, गोयनका उद्यान, सोनेगाँव, नागपुर—५।

भा० सि० गौ० — भारत सिंह गौतम, एम० ए०, हरिश्चंद्र डिग्री कालेज, वाराणसी।

भी० गो० दे० — भीमराव गोपाल देशपांडे, एम० ए०, बी० टी०, प्रवक्ता, मराठी विभाग, (काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी); ५, डी०, २१।२४, कमच्छा, वाराणसी।

भू० कां० रा० — भूपेंद्रकांत राय, एम० ए०, रिसर्च आफिसर, नेशनल ऐटलस आर्गनाइजेशन, १, लोअर सर्कुलर रोड, कलकत्ता—२०।

भृ० ना० प्र० या भृ० प्र० — भृगुनाथ प्रसाद, अध्यक्ष, जीवविज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

मं० चं० जै० का० — मंगलचंद्र जैन कागजी, विधि विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

म० गु० — मन्मथनाथ गुप्त, संपादक 'आजकल', पब्लिकेशंस डिवीजन, भारत सरकार, पुराना सचिवालय, दिल्ली।

म० ना० मे० — महाराज नारायण मेहरोत्रा, एम० एस-सी०, एफ० जी० एम० एस०, प्राध्यापक, भूविज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

म० ला० द्वि० — मनोहर लाल द्विवेदी, साहित्याचार्य, एम० ए०, पी० एच-डी०, सरस्वती भवन पुस्तकालय, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

म० रा० जै० — महेंद्र राजा जैन, एम० ए०, डिप्लोमा इन लाइब्रेरी साइंस एंड इन माँटेसोरी ट्रेनिंग, साहित्यरत्न, फेलो ऑव लाइब्रेरी साइंस (लंदन), लाइब्रेरियन, दारुस्सलाम, (पूर्वी अफ्रीका)

म० ला० श० — डा० मथुरा लाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

मा० — माधवाचार्य, भूतपूर्व संपादक सहायक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

मि० चं० पा० — मिथिलेशचंद्र पांड्या, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अमरोहा, (मुरादाबाद)।

मि॰ च॰ — मिल्टन चरण, बी॰ ए॰, भारतीय मसीही सुधार समाज, एस, १७।३८, राजाबाजार, वाराणसी।

मु॰ या मु॰ श्री॰ — मुकुंदी लाल श्रीवास्तव, साहित्यादि संपादक, हिंदी विश्वकोश, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

मु॰ या॰ या मा॰ या॰ — मुहम्मद यासीन, प्राध्यापक, इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

मु॰ रा॰ — मुद्राराक्षस, दुगावाँ, लखनऊ।

र॰ उ॰ — रत्नाकर उपाध्याय, एम॰ ए॰, प्राध्यापक, इतिहास विभाग, गवर्नमेंट इंटर कालेज, श्रीनगर, गढवाल।

र॰ च॰ क॰ — रमेशचद्र कपूर, डो॰ एस-सी॰, डी॰ फिल॰, प्रोफेसर, रसायन विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।

र॰ च॰ ति॰ — रमेशचद्र तिवारी, एम॰ ए॰, काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

र॰ ज॰ — रजिया सज्जाद जहीर, एम॰ ए॰, भूतपूर्व लेक्चरर, उर्दू विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, वजीर मजिल, वजीरहसन रोड, लखनऊ।

र॰ श॰ द्वि॰ — रमाशकर द्विवेदी, प्राध्यापक, वनस्पति विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

रा॰ अ॰ — राजेंद्र अवस्थी, राजनीति विभाग, पजाब विश्वविद्यालय, चडीगढ़।

रा॰ कु॰ सि — राजेंद्र कुमार सिंह, डी ए वी. कालेज, काशी।

रा॰ अ॰ द्वि॰ — रामअवध द्विवेदी, एम॰ ए॰ डी॰ लिट॰, भूतपूर्व प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, यू॰ जी॰ सी॰ प्रोफेसर, काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

रा॰ कु॰ — रामकुमार, एम॰ एस सी॰, पी॰ एच डी॰, प्रोफेसर गणित तथा अध्यक्ष, अनुप्रयुक्त गणित विभाग, मोतीलाल नेहरू इजीनियरिंग कालेज, इलाहाबाद।

रा॰ चं॰ पा॰ — रामचद्र पाडेय, एम॰ ए॰, पी॰ एच-डी॰, व्याकरणाचार्य, बौद्ध दर्शन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

रा॰ च॰ सि॰ — रामचंद्र सिन्हा, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, जिआलोजी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

रा॰ दा॰ ति॰ — रामदास तिवारी, एम॰ एस सी॰, डी॰ फिल॰, असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

रा॰ द्वि॰ — (स्व॰) रामाज्ञा द्विवेदी, लेवर कालोनी, ऐशबाग, लखनऊ।

रा॰ ना॰ — राजेंद्र नागर, एम॰ ए॰, पी॰ एच-डी॰, रीडर, इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

रा॰ पा॰ या, रा॰ ब॰ पा॰ — रामबली पाडेय, एम॰ ए॰, डी॰ ए॰ वी॰ कालेज, वाराणसी।

रा॰ प्र॰ त्रि॰ — रामप्रताप त्रिपाठी, सहायक मत्री, हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद।

रा॰ प्र॰ सिं॰ — राजेंद्र प्रसाद सिंह, एम॰ ए॰, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

रा॰ फे॰ त्रि॰ — रामफेर त्रिपाठी, एम॰ ए॰, रिसर्च स्कालर (यू॰ जी॰ सी॰), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

रा॰ कु॰ मि॰ — राजेंद्र कुमार मिश्र, मनोविज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

रा॰ मि॰ — राम प्रताप मिश्र, ३।१००६, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली—२२।

रा॰ श्या॰ अ॰ — राधेश्याम अवष्ट, एम॰ एस सी॰, पी॰ एच डी॰, एफ॰ बी॰ एस॰, प्राध्यापक वनस्पति विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,—५।

रा॰ स॰ ख॰ — रामसहाय खरे, एम॰ ए॰, अध्यापक, रामकृष्ण मदिर हाई स्कूल, सिद्धिगिरिबाग, वाराणसी।

रा॰स॰ना॰ श्री॰ — राय सत्येंद्रनाथ श्रीवास्तव, मनोविज्ञान विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

रा॰ स्व॰ या रा॰ — रामस्वरूप, एम॰ ए॰, बी॰ टी॰, सी॰ के॰ ६५।३६२ व॰, बडी पियरी, वाराणसी।

ल॰ वि॰ गु॰ या ल॰ श॰ वि॰ गु॰ — लक्ष्मीशकर विश्वनाथ गुरु, एम॰ ए॰, ए॰ एम॰ एस, रीडर, पी॰ जी॰ आई॰ एम॰ कालेज ऑव मेडिकल सायसेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

ल॰ श॰ व्या॰ — लक्ष्मी शंकर व्यास, एम॰ ए॰, सहायक संपादक, 'आज' दैनिक, वाराणसी।

ल॰ श॰ शु॰ — लक्ष्मीशकर शुक्ल, एम॰ ए॰, प्राध्यापक, काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ल॰ सा॰ वा॰ — लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम॰ ए॰, डी॰ फिल॰, डी॰ लिट्॰, रीडर, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

ला॰ त्रि॰ प्र॰ — लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी', नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

ला॰ ब॰ पा॰ या ला॰ ब॰ पां॰ — लालबहादुर पाडेय, शास्त्री, एम॰ ए॰ एस॰, भूतपूर्व परसनल आफिसर, इंडस्ट्रियल इस्टेट मैन्यु॰ असोसियेशन, वाराणसी एव भूतपूर्व जनरल मैनेजर, हेम इलेक्ट्रिक कं॰, सराय गोवर्धन, वाराणसी।

ला॰ रा॰ शु॰ — लालजी राम शुक्ल, एम॰ ए॰, डी॰ ६१।२१, डी. सिद्धगिरिबाग, वाराणसी।

ले॰ रा॰ सिं॰ — लेखराज, सिंह, एम॰ ए॰, डी॰ फिल॰, सहायक प्रोफेसर, भूगोल विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।

वाई॰आर॰ मे या य॰ रा॰ मे॰ — यशवंत राय मेहता, एम॰ एस-सी॰, पी॰ एच-डी॰ (यू॰ एस॰ ए॰), ऐसोशियेट आई॰ ए॰ आर॰ आई॰, इकैनेमिक बोटेनिस्ट, कानपुर, उत्तर प्रदेश।

द्वादश खंड के लेखक

वा० उ० — वासुदेव उपाध्याय, एम० ए०, डी० फिल०, प्राचीन इतिहास तथा पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

वि० ना० पा० — विश्वम्भरनाथ, पांडेय, १४२, साउथ मलाका इलाहाबाद।

वि० त्रि० या
वि० ना० त्रि० — विश्वनाथ त्रिपाठी, साहित्याचार्य, सहायक संपादक, शब्दकोश विभाग, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

वि० पा० सिं० — विजयपाल सिंह, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

वि० प्र० गु० — विश्वंभर प्रसाद गुप्ता, ए० एम० आई० ई०, कार्यपालक इंजीनियर, सी० पी० डब्ल्यू०, डी, ७६, लूकरगंज, इलाहाबाद।

वि० भा० शु० — विद्याभास्कर शुक्ल, पी० एच-डी०, प्रिंसिपल, गवर्नमेंट पोस्ट ग्रेजुएट कालेज ऑव सायंस, रायपुर।

वि० मो० श० — विनयमोहन शर्मा, एम० ए०, पी० एच डी०, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

वि० शु० पा०
सा० वि० पा० — विशुद्धानंद पाठक, एम० ए०, पी० एच-डी०, प्राध्यापक, इतिहास विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

वि० श० झा० — विनोदशंकर झा, एम० एस-सी०, प्राध्यापक जंतु विज्ञान विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, बिहार।

वि० श्री० न० — डा० वि० एस० नरवणे, एम० ए०, डी० लिट०, सहायक प्रोफेसर, दर्शन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।

वि० सा० दु० — विद्यासागर दुबे, एम० एस-सी०, पी० एच डी० (लंदन), भूतपूर्व प्रोफेसर, जिओलॉजी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, कंसल्टिंग, जिओलॉजिस्ट ऐंड माइंस ओनर, वसुधरा, रवींद्रपुरी, वाराणसी।

वि० ह० — वियोगी हरि, अध्यक्ष, अ० भा० हरिजन सेवक संघ, एफ १३।२, माडल टाउन, नई दिल्ली।

श० गु० या०
श० रा० गु० — शची रानी गुर्टू, एम० ए०, फैज बाजार, दरियागंज, दिल्ली।

शां० ला० का० — शांतिलाल कायस्थ, रीडर, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

शा० प्रि० द्वि० — शांतिप्रिय द्विवेदी, लोलार्क कुंड, वाराणसी।

शि० गो० मि० — शिवगोपाल मिश्र, एम० एस-सी०, पी० एच-डी०, प्राध्यापक रसायन विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

शि० ना० ख० — शिवनाथ खन्ना, एम० बी० बी० एस०, डी० पी-एच०, आयुर्वेदरत्न, लेक्चरर, सोशल एंड प्रिवेंटिव मेडिसिन विभाग, कालेज काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

शि० प्र० — शिवनाथ प्रसाद, डी० ए० वी० कालेज, वाराणसी।

शि० मो० व० — शिवमोहन वर्मा, एम० एस सी०, पी० एच डी०, प्राध्यापक, रसायन विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

शि० श० — शिवानंद शर्मा, अध्यक्ष, दर्शन विभाग, सेंट एंड्रूज कालेज, गोरखपुर।

शी० प्र० सिं० — शीतला प्रसाद सिंह, एम० एस सी०, पी० एच-डी०, प्राध्यापक प्राणिविज्ञान, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

शु० ते० — शुभदा तेलंग, एम० ए०, प्रिंसिपल वसंत कालेज फार वीमेन, राजघाट, वाराणसी।

शु० प्र० मि० — शुद्धोदन प्रसाद मिश्र, एम० एस-सी०, प्राध्यापक, रसायन विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

श्र० कु० ति० — श्रवण कुमार तिवारी, स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

श्री० चं० पां० — श्रीशचंद्र पांडेय, अहरौरा, मिर्जापुर।

श्री० ना० सिं० — श्रीनारायण सिंह, एम० ए०, शोधछात्र, भूगोल विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

स० — सलामतुल्ला, प्रिंसिपल, कामर्स कालेज, जामिया मिलिया इस्लामिया, जामियानगर, नई दिल्ली।

स० प्र० या०,
सत्य० प्र० — सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०, एफ० ए०, एस० सी०, रीडर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

स० व० — सत्येंद्र वर्मा, पी० एच-डी०, (लंदन), डिपुटी सुपरिंटेंडेंट, डिपार्टमेंट ऑव प्लैनिंग ऐंड डेवलपमेंट फर्टिलाइजर कारपोरेशन ऑव इंडिया, सिंदरी, धनबाद।

स० वि० — (स्व०) सत्यदेव विद्यालंकार, लेखक व पत्रकार, नई दिल्ली।

सा० जा० — सावित्री जायसवाल, एम० एस-सी०, प्राध्यापक, विज्ञान वनस्पति विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५।

सी० गु० या
सी० रा० गु० — सीयाराम गुप्त, बी० एस-सी०, डिपुटी सुपरिंटेंडेंट ऑव पुलिस, अंगुलि चिह्न तथा वैज्ञानिक शाखा, सी० आई० डी०, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

सु० सिं० — सुरेश सिंह कुँअर, एम० एल० सी०, कालाकांकर प्रतापगढ़, उ० प्र०।

सु० चं० श० — सुरेश चंद्र शर्मा, एम० ए०, एल० एल० बी०, पी० एच-डी० अध्यक्ष, भूगोल विभाग, एम० एल० के० डिग्री कालेज, बलरामपुर (गोंडा) उ० प्र०।

सै० अ० अ० रि० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी एम० ए०, पी० एच डी०, छत्तेवाली कोठी, ५, टैलानगर, अलीगढ़।

स्व० मो० शा० स्वरूप चंद्र मोहनलाल शाह, एम० ए०, पी० एच-डी०, डी० लिट० (लंदन), एफ० एन० आई०, एफ० ए० एस० सी० प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, गणित विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

स्व० भ० भू० (श्रीमती) स्वर्णलता भूषण, इनवरन-२, शिमला।

ह० च० गु० हरिश्चंद्र गुप्त, एम० एस सी०, पी० एच डी०, (आगरा, मैनचेस्टर) रीडर, गणितीय सांख्यिकी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

ह० बा० हरदेव बाहरी, एम० ए०, एम० ओ० एल०, शास्त्री, पी० एच-डी०, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

ह० बा० मा० हरिबाबू माहेश्वरी, एम० बी० बी० एस०, प्राध्यापक, पैथालोजी विभाग, लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज, नई दिल्ली।

ह० शं० श्री० डा० हरिशंकर श्रीवास्तव, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

ही० ला० गु० हीरा लाल गुप्त, एम० ए०, डी० फिल०, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)।

हृ० ना० मि० हृदयनारायण मिश्र, दर्शन विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

संकेताक्षर

अं०	अंग्रेजी
अ०	अक्षांश; अथर्ववेद; अध्याय
अ० कां०	अरण्यकांड (रामायण)
अथर्व०	अथर्ववेद
अधि०	अधिकरण
अनु०	अनुवादक, अनुशासनपर्व,
अयो०	अयोध्याकांड (रामायण)
आं० प्र०	आंध्र प्रदेश
आ० घ०, या आपे० घ०	आपेक्षिक घनत्व
आ० श्रौ० सू०	आपस्तंब श्रौतसूत्र
आई० ए० एस०	इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस
आई० सी० एस०	इंडियन सिविल सर्विस
आदि०; आ० प०	आदिपर्व (महाभारत)
आय०	आयतन
आर्क० स० रि०	रिपोर्ट ऑव दि आर्कयालॉजिकल सर्वे ऑव इंडिया
आश्व०	आश्वलायन
इंट्रो०	इंट्रोडक्शन
ई०	ईसवी
ई० पू०	ईसा पूर्व
उ०	उत्तर
उ० प्र०	उत्तर प्रदेश
उत्तर०	उत्तरकांड
उदा०	उदाहरण
उद्यो०; उद्योग०	उद्योगपर्व (महाभारत)
ऋ०	ऋग्वेद
ए० आई० आर०	ऑल इंडिया रिपोर्टर
ए० इं०; एपि० इं०	एपिग्राफिया इंडिका
एक०	एकवचन
ऐं०	ऐंग्स्ट्रॉम
ऐ० ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण
क० प०; कर्ण०	कर्णपर्व (महाभारत)
का०	कारिका
काम०	कामंदकीय नीतिसार; कामशास्त्र
काव्या०	काव्यालंकार
कि० ग्राम, या किग्रा०	किलोग्राम
कि० मी०, या किमी०	किलोमीटर
कु० सं०	कुमारसंभव
क्र० सं०	क्रमसंख्या
कथ०	कथानक
गा०	गाथा
ग्रा०	ग्राम
छांदो०	छांदोग्य उपनिषद्
ज०; ज० सं०	जन्म; जन्म संवत्
जि०	जिला, जिल्द
जे० पी० टी० एस०	जर्नल ऑव दि पालि टेक्स्ट सोसायटी
डॉ०	डॉक्टर
तांड्य ब्रा०	तांड्य ब्राह्मण
तै० आ०	तैत्तिरीय आरण्यक
तै० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तैत्ति०	तैत्तिरीय
द०	दक्षिण
दी०	दीपवंश
दी० नि०	दीघनिकाय
दे०	देखिए; देशांतर
द्रो० प०, द्रोण०	द्रोणपर्व
ध०	धम्मपद
ना० प्र० प०	नागरीप्रचारिणी पत्रिका
ना० प्र० स०	नागरीप्रचारिणी सभा
नि०	निरुक्त
पं०	पंजाबी; पंडित
प०	पट्टण; पर्व; पश्चिम; पश्चिमी
पद्म०	पद्मपुराण
पु०	पुराण
पू०	पूर्व
पृ०	पृष्ठ
प्र०	प्रकाशक
प्रक०	प्रकरण
प्रो०	प्रोफेसर
फा०	फारेनहाइट
बा०	बालकांड (रामायण)
वाज० सं०	वाजसनेयी संहिता
ब्र० सू०	ब्रह्मसूत्र
ब्रह्म० पु०	ब्रह्मपुराण
ब्रा०	ब्राह्मण
भा० ज्यो०	भारतीय ज्योतिष
भाग०	श्रीमद्भागवत
भी० प०	भीष्मपर्व
म० भा०; महा०	महाभारत; महावंश
म० म०	महामहोपाध्याय
म० मी०	महाभारत मीमांसा
मत्स्य०	मत्स्य पुराण
मनु०	मनुस्मृति
महा० प्रा०	महाराष्ट्री प्राकृत
मिता० टी०	मिताक्षरा टीका

मिग्रा०	मिलिग्राम	शांति०	शांतिपर्व
मिमी०	मिलीमीटर	शौ० प्रा०	शौरसेनी प्राकृत
मी०	मील, मीटर	श्रीमद्भा०	श्रीमद्भागवत
मे० सा०	मेगासाइकिल	श्लो०	श्लोक
म्यू०	माइक्रॉन	सं०,	संख्या, संपादक, संवत्, संस्करण, संस्कृत, संहिता
याज्ञ०; याज्ञ० स्मृ०	याज्ञवल्क्य स्मृति		
र० का० सं०	रचनाकाल संवत्	सं० ग्रं०	संदर्भ ग्रंथ
रघु०	रघुवंश	संस्क०	संस्करण
राज०, रा० त०	राजतरंगिणी	सं० ग्रा० से०	सेंटीग्रेड, ग्राम, सेकंड पद्धति
ल०, लग०	लगभग	स० प०; सभा०	सभापर्व (महाभारत)
ला०	लाला	साइकॉ०	साइकॉलोजी
ली०	लीटर	सुंदर०	सुंदरकांड
वन०; व० प०	वनपर्व (महाभारत)	सें०	सेंटीग्रेड
वा० रा०	वाल्मीकीय रामायण	सेंमी०	सेंटीमीटर
वायु०	वायुपुराण	से०	सेकंड
वि०, वि० सं०	विक्रमी संवत्	स्कंद	स्कंदपुराण
वि० पु०	विष्णु पुराण	स्व०	स्वर्गीय
विनय०	विनयपत्रिका	ह०	हनुमानबाहुक, हरिवंशपुराण
वै० इं०	वैदिक इंडेक्स	हिं०	हिंदी
श०, शत०, श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण	हिं० वि० को०	हिंदी विश्वकोश
श०	शती	हि०	हिजरी, हिमाक
शल्य०	शल्यपर्व	हिस्टॉ०	हिस्टॉरिकल

प्राक्कथन

हिंदी विश्वकोश का बारहवाँ खंड, जिसे समापन खड भी कहा जा सकता है, प्रस्तुत करते हुए हमे हर्ष और गौरव का अनुभव हो रहा है। हर्ष इसलिये कि भारत सरकार के शिक्षा मत्रालय के सहयोग से हम लगभग नौ वर्षो की अल्प अवधि मे (सन् १९६० ई० मे प्रथम खड प्रकाशित हुआ था) इतना बडा कार्य संभव कर सके तथा गौरव इसलिये कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा स्यात् सर्वप्रथम हिंदी वाङ्मय के ज्ञानभांडार की इस रूप मे श्रीवृद्धि करने मे माध्यम बनी। यद्यपि विशिष्ट देशी-विदेशी लेखकों ने हमे कृपापूर्वक सहयोग दिया और संपादन कर्म मे भी अनुभवी व्यक्तियो ने योगदान दिया तो भी, संभव है, साधनो की कमी तथा कार्य की विशालता देखते हुए कुछ अभाव रह गया हो। इसके लिये सभा अपना उत्तरदायित्व स्वीकार करती है और पुनर्मुद्रण की स्थिति मे यथासभव यह कमी दूर कर दी जायगी।

इस खंड के साथ सपूर्ण बारह खंडों की विषयसूची भी दी जा रही हैं और एक परिशिष्ट भाग जोड़ दिया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत खड मे ५४३ (भूमिका भाग के अतिरिक्त) पृष्ठ हैं जिसमें ५८० लेखो के अंतर्गत २०० से अधिक विशिष्ट लेखकों की रचनाएँ दी जा रही हैं। रंगीन चित्रो के अतिरिक्त अनेक रेखाचित्र, मानचित्र तथा चित्र फलक भी दिए जा रहे हैं।

सपादन और प्रकाशन कार्य से सबद्ध व्यक्तियों के तथा विश्वकोश कार्यालय के अधिकारियो और कार्यकर्ताओं के हम आभारी हैं। नागरीप्रचारिणी सभा और केंद्रीय शिक्षा मत्रालय के अधिकारियों के हम विशेष रूप से कृतज्ञ है जिनके उत्साह और सहयोग से इतना बड़ा काम समापन की स्थिति तक पहुँच सका।

—सुधाकर पांडेय
मंत्री तथा सयोजक
हिंदी विश्वकोश
प्रधान मंत्री, काशी नागरीप्रचारिणी सभा

यह ज्ञानयज्ञ

सुधाकर पांडेय
मंत्री एवं संयोजक
हिंदी विश्वकोश परामर्शदात्री एवं संपादन समिति

, हिंदी का प्रथम विश्वकोश सभा द्वारा प्रस्तुत है। आधुनिक रूप मे विश्वकोश रचना की प्रथा विदेश से इस देश मे आई है और यह शब्द इनसाइक्लोपीडिया, का पर्याय है। वास्तव म इनसाइक्लोपीडिया ग्रीक के इनसाइक्लआस (एन = ए सर्किल तथा पीडिया = एजूकेशन) से बना है। इसका उद्देश्य होता है विश्व मे कला और विज्ञान तथा समस्त अन्यान्य ज्ञानो का वर्णानुक्रम से सहज, सुगठित और व्यवस्थित रूप से प्रस्तुतीकरण। एक विषय, एक कवि, लखक या दार्शनिक को लेकर भी विश्वकोश के निर्माण की ही पद्धति इधर प्रचलित हुई है। प्रारभ मे विश्वकोश की रचना एक या कुछ लेखक मिलकर करते थे किंतु अब अपने अपने विषय के विशेषज्ञ एक ही विश्वकोश मे अपन ज्ञान का लाभ पाठक को उठाने का अवसर देते हे।

विश्वकोशीय रचना पाँचवी शताब्दी से आरंभ होती है और इसके प्रारभकर्ता का श्रेय अफ्रीका निवासी मार्सिअनस मिनस फेलिक्स कॉपेला को है। गद्य, पद्य मे उसने 'सटीराअ सटीरिक' नामक कृति का प्रणयन किया। उसी युग मे और भी कृतियो का निर्माण हुआ। तेरहवी शताब्दी का इसी प्रकार का ग्रथ 'बोब्लियोथेकामडी' या 'स्पेकुलस मेजस', जो व्यूविअस के विंसेंट की कृति थी, ज्ञान के महान् सग्रह के रूप मे समादृत हुई। प्राचीन ग्रीस के इतिहास मे भी ऐसे ग्रथो की रचना हुई थी। स्प्यूपिपस ने वनस्पतियो एव पशुओ का विश्वकोशी वर्गीकरण था। अरस्तू ने अपने शिष्यो के लिये अपने सारे ज्ञान को अनेक ग्रथो मे संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया। उस प्राचीन युग मे प्रणीत मध्ययुग का उच्च आकर ग्रंथ 'नेचुरल हिस्ट्री' रोमनिवासी प्लिनी कृत है। २४९३ अध्यायो मे विभक्त ३७ (सैंतीस) खडो मे प्रस्तुत इस ग्रथ मे १०० लेखको के २००० ग्रथो से सग्रहीत २०,००० शीर्षको का समावेश है। यह इतना अधिक लोकप्रिय था कि सन् १५३६ के पूर्व ही इसके ४३ संस्करण प्रकाशित हो चुके थे।

सन् १३६० ई० मे फ्रांसीसी भाषा मे १९ खंडो मे "डि प्रॉप्रिएटैटीवस रेरम" का प्रकाशन हुआ। १४९५ ई० मे इसका अंग्रेजी अनुवाद हुआ और सन् १५०० तक इसके १५ संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। इसके प्रणेता थे—बार्थोलोव मिव द ग्लैविल। प्राचीन समय मे रची गई इन कृतियो को विश्वकोश की सज्ञा नही प्राप्त हुई। विश्वकोश की सज्ञा का प्रारंभ सन् १५४१ और सन् १५९९ अर्थात् १६ वी शताब्दी के मध्य से होता है। सन् १५४१ ई० मे जाकिअस फाटिअस रिजल वर्जिअस एव हगरी के काउट पाल स्कैलिसस द लिका (१५९९) की ऐसी कृतियाँ है। इनसाइक्लोपीडिया सेप्टेम टॉमिस डिस्टिक्टा जोहान हेनरिच आस्टेड की कृति सन् १६३० मे प्रकाशित हुई। यह अपने सही अर्थो मे

विश्वकोश का प्रारंभिक रूप प्रस्तुत करती है। 'ला साइस यूनिवर्से' दस खडों म कार्जिन डी मंगनन, जो फ्रास के शाही इतिहासकार थे, की कृति है। यह ईश्वरीय प्रकृति से लेकर मनुष्य के पर्यवसान तक का आख्यान प्रस्तुत करती है। सन् १६७४ मे लुइस मोररी ने एक विश्वकोश की रचना की जो मूलत इतिहास वशानुक्रमण तथा जीवनचरित्रा से सवलित है। इसके सन् १७५९ तक २० सस्करण प्रकाशित हो चुके थे। सन् १७१३ की इटीन चाविन की कृति कार्टेजिनयन प्रस्तुत हुई जो दर्शन का कोश है। फ्रेंच एकेडमी द्वारा प्रस्तुत फ्रेंच भाषा का महान् शब्दकोश सन् १६९४ मे प्रस्तुत हुआ। इसके बाद कोशा, विश्वकोशो आदि की एक प्रवल शृखला का पश्चिम म सूत्रपात हुआ।

१७ वी शताब्दी की यह उपलब्धि विश्व की भाषा और साहित्य मे महान् गौरवशाली है। १८वी शती के प्रारभ मे सन् १७०१ मे वर्णानुक्रम के अनुसार ४५ खडा म इटली की भाषा म 'बिब्लिओटेका यूनिवर्सल सैक्रोप्रोफाना' क प्रकाशन का निश्चय किया गया जिसक केवल ७ ही खड प्रकाशित हो सक। १८वी शती मे अग्रेजी भाषा मे प्रथम विश्वकोश का प्रणयन जॉन हैरिस द्वारा सन् १७०४ मे 'ऐन यूनिवर्सल इग्लिश डिक्शनरी ग्राफ आर्ट्‌स एड साइस' के नाम से छपा और १७१० ई० मे इसका दूसरा खड प्रकाशित हुआ जो केवल गणित तथा ज्योतिप स सबधित था। इन्हो वर्षो मे (१७०४ और १७१० ई०) रूवटर जोहान हुब्नर के नाम पर दो शब्दकोश प्रकाशित हुए जिसक अनेक सस्करण हुए। सन् १७२८ मे इफ्रेम चैवर्स की इनसाइक्लोपीडिया दो खडा म ससदर्भ प्रकाशित हुई। सन् १७४८-४९ मे इसका इतालवी मे अनुवाद भी हुआ। चैवर्स द्वारा सकलित सामग्री का सपादन कर एक पूरक ग्रथ डॉ० जॉन हिल ने १७५३ ई० म प्रकाशित किया। अब्राहम रीज ने सन् १७७८-८८ ई० म इसका सशोधित और परिवर्धित सस्करण प्रकाशित किया। विश्वकोश के क्षेत्र मे इसके उपरात कार्य लाइपजिग से हुआ। जोहान हेनरिच जडलर न सात सुयोग्य सपादको की सहायता स सन् १७५० तक इसक ६४ खड, 'जडलर्स यूनिवर्सल लेक्सिकन' नाम से प्रकाशित किए। सन् १७५१ से १७५४ के मध्य इसके और ४ पूरक खड मुद्रित हुए।

अग्रेज विद्वान् जॉन मिल्स ने मॉटफिनेलस के सहयोग से १७४५ मे चेंवर्स साइक्लोपीडिया के फ्रेंच अनुवाद का कार्य शुरू किया किंतु वह उसे प्रकाशित न करा सके और अनेक विद्वानो द्वारा एक एक कर इसका सपादन हुआ तथा अनेक विकट सघर्षो के उपरात इसका प्रकाशन हुआ। राजनीतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से इसकी क्रातदर्शी चर्चा हुई किंतु ज्ञान की दृष्टि से यह विसगतियो और त्रुटियों से पूर्ण था। इसे 'फ्रेंच इनसाइक्लोपीडिया' की सज्ञा दी गई। विश्वविख्यात 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' सन् १७७१ मे ३ खडों मे एडिनवर्ग से प्रकाशित हुई और दिनोत्तर इसका विस्तार और प्रस्तार होता गया। अब यह २४ खडों मे उपलब्ध है और यह संसार का महान विश्वकोश माना जाता है तथा दिनोत्तर इसके विस्तार और प्रस्तार का आयोजन होता जा रहा है और अपने क्षेत्र मे इसका मान अक्षुण्ण है। अमेरिका मे भी इसका सर्वाधिक मान है। सन् १८५८ से ६३ के बीच जार्ज रिप्ले एव चार्ल्स ऐंडरसन डाना ने न्यू अमेरिकन साइक्लोपीडिया १६ खडो मे प्रकाशित की जिसका दूसरा सस्करण सन् १८७३ से १८७६ के बीच हुआ। 'जान्सस न्यू यूनिवर्सल साइक्लोपीडिया' सन् १८७५-७७ के बीच ४ खडो मे प्रकाशित हुआ। एलविन जे० जोन्सन की इस कृति का १८९३-९५ के बीच आठ खंडो मे प्रकाशन हुआ। इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना का प्रकाशन फासिस लिवर ने १८२९ ई० मे प्रारभ किया। १८३३ तक १३ और १८३५ मे इसका १४वाँ खड प्रकाशित हुआ। सन् १८५८ मे इसका पुनः प्रकाशन हुआ। सन् १९०३-०४ मे १६ खडा मे, इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, के नाम से एक नया विश्वकोश प्रकाशित हुआ। यह पूर्ववर्ती इनसाइक्लोपिडिया अमेरिकाना से भिन्न है। बाद मे इसके अनेक परिवर्धित एव सशोधित सस्करण निकले। इसकी ख्याति विश्वव्यापी है। ससार के अनेक देशो मे इधर विश्वकोश का प्रणयन हुआ है, जैसे रूस, जापान आदि तथा प्राय: सभी स्वतत्र एव समुन्नत देश विश्वकोश की रचना मे लगे हैं।

भारत मे विश्वकोशीय रचना होती रही है। पुराण, शब्द कल्पद्रुम जैसे ग्रथ इसके प्रमाण है आधुनिक ढग से इस युग मे विश्वकोश की परपरा का शुभारभ नगेंद्रनाथ वसु ने बँगला मे १९११ मे किया। यह बँगला मे २२ खडा मे प्रकाशित हुआ था। अनेक हिंदी विद्वानो के सहयोग से श्री वसु ने सन् १९१६-३२ के मध्य इसका २५ खडो मे प्रकाशन किया। श्रीधर वेंकटेश केतकर ने २३ खडों मे मराठी विश्वकोश की रचना महाराष्ट्रीय ज्ञानकोशमडल द्वारा किया जिसका अनुवाद भी श्री केतकर के निर्देशन मे गुजराती मे हुआ। सन् १९४७ मे भारतीय स्वतत्रता के बाद प्राय सभी भारतीय भाषाओ मे विश्वकोश की रचना का सकल्प किया गया और तेलगू और तमिल मे भी अन्य भाषाओ के साथ विश्वकोशो की रचना आरभ हुई जिसमे से कुछ के कार्य प्राय: पूरे हो चुके हैं और कुछ प्रगति के पथ पर हैं।

नगेंद्रनाथ वसु का हिंदी विश्वकोश सभा द्वारा प्रकाशित हिंदी शब्दसागर की सामग्री, साथ ही भारतीय इतिहास और दर्शन से परिपूर्ण है किंतु ज्ञान की आधुनिक शाखाओ और विज्ञान के लिये उसमे स्थान का संकोच है, साथ ही उसमे मूल बँगला से अनुवाद का प्राधान्य है, यद्यपि नगेंद्रनाथ वसु ने जो कार्य उस समय किया था उसकी भूरिभूरि प्रशसा होनी चाहिए। हिंदी का यह विश्वकोश, जो दस वर्षो मे प्रकाशित हुआ है, अपनी मौलिकता रखता है।

लगभग एक हजार विश्व भर के विख्यात विद्वानो ने ८००० विषयो पर हजारो रेखाचित्रो, रगीन चित्रो के साथ सभी विषयो पर अपनी सीमा के भीतर सामग्री प्रस्तुत की है। लेखको का इतना बडा सामूहिक अनुष्ठान इस देश मे इसके पूर्व नही हुआ था। विज्ञान के लगभग ६० प्रतिशत लेख इसमे हैं। यह जनप्रिय हुआ है। ३००० के बदले इसे ५,००० छापना पड़ा और इसके अनेक

खंडो के संस्करण समाप्त हो गए। फिर भी यह भारतवर्ष मे सही अर्थो मे विश्वकोश के आरंभ को ही सूचित करता है। दिनोत्तर यदि सहयोग और सहकार मिलता गया तो कुछ वर्षो मे ही यह अपने गुणधर्मो के कारण विश्व मे इस क्षेत्र मे भारत का गौरव स्थापित करने म सहायक होगा। अब हम संक्षेप मे हिंदी विश्वकोश की कहानी प्रस्तुत करेंगे।

हिंदी विश्वकोश के समस्त बारह खंड प्रकाशित हो गए। इनसे उन सभी लोगो को प्रसन्नता होगी जो ज्ञान के पिपासु और भारतीय भाषा के प्रेमी है। हिंदी विश्वकोश हमारे राष्ट्र का गौरव-ग्रंथ है, जिसमे सहस्राधिक अधिकारी विद्वानो ने योगदान कर इस अनुष्ठान को पूरा कराया है। नागरीप्रचारिणी सभा अपनी स्थापना के समय से ही सर्जनात्मक रूप से हिंदी और देवनागरी की सेवा कर रही है। स्वतंत्रता के उपरात अपनी हीरक जयंती के अवसर पर राष्ट्ररत्न डॉ० राजेंद्रप्रसाद के नेतृत्व मे उसने कुछ महान् सकल्प किए। उन संकल्पो मे हिंदी शब्दसागर के अद्यतन संस्करण का प्रकाशन, हिंदी साहित्य का सोलह भागो मे बृहत् इतिहास और सौ ग्रथावलियो के प्रकाशन का आयोजन था। उसी अवसर पर नागरीप्रचारिणी सभा के परम शुभेच्छु स्वर्गीय पं० गोविंद-वल्लभ पत ने हिंदी मे विश्वकोश की, नागरीप्रचारिणी सभा के माध्यम से प्रस्तुत कराने की, परिकल्पना की और इसे मूर्तित करने मे योगदान देने का आश्वासन भी दिया। डॉ० अमरनाथ झा, डॉ० संपूर्णानंद, आचार्य नरेंद्रदेव आदि मनीषियो तथा पं० कमलापति त्रिपाठी जैसे कर्मठ हिंदीप्रेमियो ने इस स्वप्न को साकार करने का अनुष्ठान आरंभ किया। इस संदर्भ मे नागरीप्रचारिणी सभा ने निम्नांकित उद्देश्य स्थिर किए :—

"कला और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो मे ज्ञान और वाङ्मय की सीमाएँ अब अत्यत विस्तृत हो गई हैं। नए अनुसधानो एव वैज्ञानिक चितनो ने मानव ज्ञान के क्षेत्र का विस्तार बहुत बढा दिया है। जीवन के विविध अंगो मे व्यावहारिक एव साहसपूर्ण आविष्कारो तथा दूरगामी प्रयोगो द्वारा विचारो और मान्यताओ मे असाधारण परिवर्तन हुए है। इस महती और वर्धनशील ज्ञान-राशि को देश की शिक्षित तथा जिज्ञासु जनता के सामने राष्ट्रभाषा के माध्यय से सक्षिप्त एव सुबोध रूप मे रखना हमारा पुराना विचार है।"

प्रस्तावित विश्वकोश का यह ध्येय भारत सरकार के संमुख नागरीप्रचारिणी सभा ने प्रस्तुत किया। साथ ही इस विश्वकोश को तीस खडो मे, प्रति खड एक एक हजार पृष्ठ के, बाईस लाख रुपये के व्यय से दस वर्ष मे प्रकाशित करने की योजना भी सरकार के संमुख सभा ने प्रस्तुत की। सभा के इस प्रस्ताव पर केंद्रीय सरकार ने विशेषज्ञो की एक समिति श्री डॉ० हुमायूँ कबीर की अध्यक्षता मे गठित की जो उस समय केंद्रीय शिक्षा सचिव तथा भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार थे। उसके अन्य सदस्य थे श्री एम० पी० पीरियास्वामी थूरेन, इंद्र विद्यावाचस्पति, डॉ० डी० एस० कोठारी, प्रो० नीलकंठ शास्त्री, डॉ० संपूर्णानंद, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० राजबली पाडेय और डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा। शिक्षामंत्रालय के अनुसचिव इसके सचिव थे। इस समिति ने ११ फरवरी, सन् १९५५ को अपनी बैठक मे विचार विनिमय के उपरात यह निश्चय किया कि प्रारभ मे लगभग ५०० पृष्ठो के १० खंडो मे हिंदी विश्वकोश का ३००० प्रतियो मे प्रकाशन किया जाय और यह योजना ५ से ७ वर्षो मे पूरी कर ली जाय। साथ ही उसने एक सलाहकार समिति की स्थापना की बात भी की, जिसके निम्नाकित सदस्य हो—

प० गोविंदवल्लभ पत (अध्यक्ष, नागरीप्रचारिणी सभा।) अध्यक्ष तथा सभा के मंत्री इसके मत्री हो एवं प्रधान सपादक सयुक्त मंत्री। इस प्रकार प्रथम सलाहकार समिति मे इनके अतिरिक्त निम्नांकित सदस्य थे—

श्री डा० कालूलाल श्रीमाली, प्रो० हुमायूँ कबीर, श्री एम० पी० पीरियास्वामी थूरेन, इद्र विद्यावाचस्पति, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० डी० एस० कोठारी, प्रो० नीलकठ शास्त्री, डॉ० बाबूराम सक्सेना, डॉ० जी० वी० सीतापति, डा० सिद्धेश्वर वर्मा, श्री काजी अब्दुल वदूद, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, प्रो० सत्येन बोस, डॉ० सी० पी० रामस्वामी अय्यर, डॉ० निहालकरण सेठी, श्री काका साहेब कालेलकर, श्री मो० सत्यनारायण, श्री लक्ष्मण शास्त्री जोशी, श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु, डॉ० गोपाल त्रिपाठी, श्री यशवंत राव दाते, श्री आर० पी० नायक एव डॉ० धीरेंद्र वर्मा। इसके लिये ६॥ लाख रुपये के अनुदान की बात भी निश्चित की गई। ११ फरवरी, १९५५ को सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया और नई दिल्ली मे सभा के अध्यक्ष प० गोविदवल्लभ पंत के निवासस्थान पर, पं० जवाहरलाल नेहरू की वर्षगाँठ के दिन, इसकी पहली बैठक हुई और लगभग तभी से इसका कार्य आरभ कर दिया गया। इसमे जिन विषयो के समावेश करने का निश्चय किया गया वे निम्नांकित ग्रंथो के आधार पर सचयित किए गए :—इनसाक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, इनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलिजन ऐंड एथिक्स, दी बुक ऑव नालेज, लैंड्स ऐंड पीपुल्स, हिंदी शब्दसागर, हिंदी विश्वकोश (श्री नगेंद्रनाथ वसु)। मराठी ज्ञानकोश, कोलियर्स इंसाइक्लोपीडिया, चेबर्स इसाइक्लोपीडिय, इंसाइक्लोपीडिया ऑव सोशल साइसेज, रिचर्ड्स ट्रॉपिकल इसाइक्लोपीडिया, दी बुक ऑव पापुलर नालेज, दी वर्ल्ड बुक, दी स्टैंडर्ड डिक्शनरी ऑव फोकलोर, डिक्शनरी ऑव फिलासफी, डिक्शनरी ऑव साइकॉलॉजी, डिक्शनरी आव वर्ल्ड लिटरेचर, इसाइक्लोपीडिया ऑव यूरोपियन हिस्ट्री, इसाइक्लोपीडिया ऑव लिटरेचर तथा इसाइक्लोपीडिया ऑव पेंटिंग इंसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम।

इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया कि भारत और एशिया से सबंध रखनेवाले विषयो का विशेष रूप से समावेश किया जाय और इस प्रकार उन अन्यान्य विषयो का भी समावेश इसमे किया गया जो अग्रेजी इसाइक्लोपीडिया मे नही है। भारत के

भौगोलिक स्थानो के वृत्तात, भारत के प्राचीन, अर्वाचीन, महापुरुष, साहित्यकार, कवि और वैज्ञानिकों की जीवनियाँ इसमे विशेष रूप से समिलित की गई हैं। भारत कृषिप्रधान देश है, इसलिये कृषि सबधी विषयो तथा भारत की फसलो आदि का विशेष रूप से वर्णन इस विश्वकोश मे करने का निश्चय किया गया। निम्नाकित विषयो पर इसमे लेख रखने का निश्चय किया गया :

विज्ञान अनुभाग मे कृषि, प्रायोगिक रसायन और टेक्नोलॉजी, इजीनियरी उद्योग, चिकित्सा विज्ञान, प्रयुक्त गणित और नक्षत्र-विज्ञान, प्राणिविज्ञान, भौतिकी, भूगोल, ऋतुविज्ञान, फोटोग्राफी, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, शुद्ध गणित, सैनिक शास्त्र और खेलकूद। भाषा और साहित्य मे अक्कादी, अरबी, असीरी, असमिया, ऑस्ट्रिक, बँगला, बर्मी, चीनी, क्रीट, चेक, मिस्री, अंग्रेजी ग्रीक, गुजराती, हिंदी, ईरानी, इडोनेशियाई, इटॉलियन, जापानी, कन्नड, खत्ती, कोरियन, लैटिन, मंगोलियन, मराठी, मत्तनी, शेष यूरोपीय भाषाये, उडिया, पजाबी, पश्तो, फारसी, पोलिश, रशियन, सस्कृत, सर्वियन, सिंधी, स्पैनिश, तामिल, तेलुगु, तिब्बती, तुर्की और उर्दू भाषा तथा साहित्य का समावेश किया गया। मानवतादि मे सौंदर्यशास्त्र, पुरातत्वशास्त्र, स्थापत्य, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, शिक्षा, ललितकला, इतिहास, सस्कृति, विधि, नृतत्वशास्त्र, सगीत, राजनीति, मनोविज्ञान, धर्म, दर्शन, भाषा-विज्ञान और समाजशास्त्र के विषयो का चयन किया गया।

सवत २०१३ विक्रमी मे सभा ने सभा से बाहर इस कार्य को राजदेवी कटरा, बुलानाला, मे प० गोविंदवल्लभ पत के नेतृत्व मे २८ जनवरी, सन् १९५६ से आरभ किया। यह कार्य शब्दसूची के निर्माण से प्रारभ हुआ तथा साकेतिक सूची के साथ ही साथ ७० हजार शब्दो का चयन किया गया जिसमे से वास्तविक शब्द ३० हजार निकले और इनके हिंदी-करण का कार्य आरभ हुआ। साथ ही ४ हजार शब्दों का हिंदीकरण किया गया और ६०० लेखकों के नाम परामर्श मडल ने स्वीकृत किए। सवत् २०१५ मे शब्दो के हिंदीकरण की सख्या १० हजार पहुँची। इसी बीच केंद्रीय सरकार का यह निर्देश प्राप्त हुआ कि यह कार्य जल्दी किया जाय और एक खड का प्रकाशन कर दिया जाय। इस दृष्टि से काम करने पर उस वर्ष ८५० लेख सभा को विविध विद्वानो द्वारा प्राप्त हुए। मार्च, १९५९ मे डा० धीरेंद्र वर्मा ने प्रधान सपादक का कार्यभार सँभाला। सरकार की ओर से तकाजा बढता गया। डॉ० धीरेंद्र वर्मा के पूर्व डा० भगवतशरण उपाध्याय मानवतादि के सपादक के रूप मे और डॉ० गोरखप्रसाद विज्ञान के सपादक के रूप मे कार्य कर रहे थे। सवत् २०१६ विक्रमी मे त्वरा मे प्रारभ होनेवाले १४०० लेख सभा को प्राप्त हुए और इनका सपादन भी हुआ। प्रथम खड की छपाई का भी कार्य आरभ हुआ और ऐसी सभावना प्रकट की गई कि कार्य के पूरा होने मे चार वर्ष का समय और लगेगा। इस वर्ष सफेद कागज तथा मोनोटाइप आदि की छपाई प्रस्तावित व्यय से अधिक होने के कारण यह योजना ६॥ लाख से बढाकर ७ लाख करना सरकार ने स्वीकार कर लिया। सवत् २०१७ मे हिंदी विश्वकोश का प्रथम खड प्रकाशित हुआ और १६ अक्टूबर, १९६० को राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली मे राष्ट्रपति डॉ० राजेंद्रप्रसाद जी को इसे सभा के सभापति प० गोविंदवल्लभ पत ने एक विशेष समारोह मे समर्पित किया और दूसरे खड के प्रकाशन का कार्य आरभ हुआ। इसी बीच पं० गोविंदवल्लभ पत का सहसा निधन हो गया और डॉ० राजबली पाडेय के स्थान पर डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा सभा के प्रधान मत्री चुने गए। यह अनुभव भी किया जाने लगा कि इस योजना के समाप्त होने मे आठ वर्ष का और समय लगेगा और कुल व्यय ११ लाख ३५ हजार रुपया आएगा। सवत् २०१८ मे विश्वकोश के द्वितीय खड का प्रकाशन सपन्न हुआ। नागरी-प्रचारिणी सभा और केंद्रीय शिक्षा मत्रालय के बीच इसी बीच यह स्थिर हुआ कि केवल वैज्ञानिक तथा टेक्निकल लेखों मे देवनागरी लिपि तथा अको के साथ रोमन लिपि तथा अको को भी स्थान दिया जाय। ५ मई, सन् १९६१ को विज्ञान विभाग के सपादक डॉ० गोरखप्रसाद का आकस्मिक निधन हुआ और १९ जुलाई, १९५९ को उनके स्थान पर प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा विज्ञान विभाग के सपादक नियुक्त हुए। डॉ० धीरेंद्र वर्मा भी यहाँ से १३ नवबर, ६१ को अन्यत्र चले गए। नए परामर्शमडल और सपादक समिति का गठन हुआ जिसमे सदस्या को सख्या क्रमश ११ और ७ कर दी गई। व्यावहारिक कठिनाइयो के कारण छोटी समिति का गठन किया गया ताकि कार्य तेजी से हो सके। परामर्शमडल और सपादक समिति के सदस्य निम्नाकित लोग हुए—

१—परामर्शमडल

१—महा० डॉ० सपूर्णानद, सभापति, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी (अध्यक्ष, पदेन)

२—श्री कृष्णदयाल भार्गव, उपशिक्षासलाहकार, शिक्षामत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली (सदस्य)

३—श्री के० सच्चिदानदम्, उपवित्तसलाहकार, शिक्षामत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली (सदस्य)

४—श्री प० कमलापति त्रिपाठी, वाराणसी (सदस्य)

५—डॉ० विश्वनाथप्रसाद, निदेशक, हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, दरियागज, दिल्ली (सदस्य)

६—डॉ० निहालकरण सेठी, सिविल लाइस, आगरा (सदस्य)

७—डा० दीनदयालु गुप्त, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्व-विद्यालय, लखनऊ (सदस्य)

८—श्री शिवपूजन सहाय, साहित्य समेलन भवन, कदमकुआँ, पटना (सदस्य)

९—श्री देवकीनंदन केडिया, अर्थमंत्री, काशी नागरीप्रचारिणी सभा (सदस्य, पदेन)

१०—डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, प्रधान मंत्री, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, (मंत्री और संयोजक, पदेन)

११—प्रधान संपादक, हिंदी विश्वकोश, (संयुक्त मंत्री, पदेन)

—संपादक समिति

१—महा० डॉ० संपूर्णानंद, सभापति, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, अध्यक्ष, हिंदी विश्वकोश परामर्शमंडल, (पदेन, अध्यक्ष)

२—श्री कृष्णदयाल भार्गव, उपशिक्षासलाहकार, शिक्षामंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली (सदस्य)

३. श्री के० सच्चिदानंदम्, उपवित्तसलाहकार, शिक्षामंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली (सदस्य)

४—अर्थमंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी (सदस्य, पदेन)

५—प्रधान संपादक, हिंदी विश्वकोश (सदस्य)

६—संपादक, मानवतादि (सदस्य)

७—संपादक, विज्ञान (सदस्य)

८—डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, प्रधान मंत्री, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, मंत्री और संयोजक, हिंदी विश्वकोश (संयोजक, पदेन)

हिंदी विश्वकोश का द्वितीय खंड इस वर्ष प्रकाशित हुआ और २५ अक्टूबर, सन् १९६२ को डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी प्रधान संपादक नियुक्त हुए। कुछ पुराने अनावश्यक शब्द छाँट दिए गए और नए आवश्यक छूटे हुए शब्दों का संयोजन किया गया। इसका मुद्रण नागरी मुद्रण में आरंभ किया गया और लगभग इसी समय बाहर से विश्वकोश का कार्यालय भी सभाभवन में आ गया। इसी बीच ४ अप्रैल, ६१ को हिंदी विश्वकोश के विषय में केंद्रीय सरकार और सभा के बीच एक नया समझौता हुआ और ११ व्यक्तियों की परामर्शदात्री समिति बनाने का निश्चय किया गया। ऐसा कार्य की प्रगति को और गति देने को ध्यान में रखकर किया गया। संवत् २०२० में चतुर्थ खंड प्रकाशित हुआ। और तब तक विश्वकोश के प्रथम खंड की प्रतियाँ समाप्त हो गईं। संपादन और संयोजन का कार्य पूर्ववत् चलता रहा। संवत् २०२१ में पंचम खंड प्रकाशित हुआ और डा० रामप्रसाद त्रिपाठी २० सितंबर, १९६४ से छुट्टी पर चले गए तथा मानवतादि के संपादक का भी पद खाली रहा। डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा के स्थान पर पं० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' विश्वकोश के मंत्री और संयोजक हुए। संवत् २०२२ में हिंदी विश्वकोश के दो और खंड प्रकाशित हुए तथा ३ हजार निबंध प्राप्त किए गए। विश्वकोश का कार्यकाल ३१ दिसंबर, सन् १९६७ तक बढ़ा दिया गया और प्रधान संपादक २६ अगस्त, ६५ को अवकाश से आ गए। इसी वर्ष श्री मुकुंदीलाल जी को मानवतादि का संपादक नियुक्त किया गया। संवत् २०२३ तक विश्वकोश के आठवें खंड तक का प्रकाशन हुआ।

संवत् २०२४ में मैं इसका प्रधान मंत्री चुना गया। इसके पूर्व मैं श्री शिवप्रसाद मिश्र के कार्यकाल में परामर्शदात्री तथा संपादन समिति का सदस्य था। इस वर्ष नवाँ खंड प्रकाशित हुआ। और इस योजना को बारह खंडों में विस्तार देने की बात हुई। वर्षांत तक दसवाँ खंड भी तैयार हो गया। संवत् २०२५ में दसवें खंड का विधिवत् उद्घाटन हुआ और ग्यारहवें खंड की छपाई का कार्य पूरा हो गया एवं अनुक्रमणिका का कार्य आरंभ कर दिया गया। दसवें खंड के पूर्व ही प्रधान संपादक अवकाश पर चले गए। ग्यारहवें खंड का उद्घाटन दिल्ली में उपप्रधान मंत्री श्री मोरार जी देसाई ने २१ जून, सन् १९६९ को किया और इसी आर्थिक वर्ष में बारहवाँ खंड भी प्रस्तुत कर दिया गया। ग्यारहवें खंड के प्रकाशन के उपरांत प्रायः सभी संपादक विश्वकोश के कार्य से विलग हो गए क्योंकि स्वीकृत धनराशि में ही सारा कार्य करना था। विश्वकोश के चौथे खंड से इसकी ५ हजार प्रतियों का प्रकाशन आरंभ हुआ। विश्वकोश की पूरी योजना अब १५,६५,४८१ रुपए की स्वीकार की जा चुकी है और सभा इसकी बिक्री के धन से रु० २,१९,५४२-१३, सरकारी खजाने में जमा कर चुकी है। यद्यपि उपप्रधान मंत्री भारत सरकार ने सार्वजनिक रूप से ११ वें खंड के उद्घाटन के समय यह घोषित किया था कि सभा को बिक्री का धन विश्वकोश के आगामी संस्करण के प्रकाशन के लिये दे दिया जायगा, तथापि अभी तक यह कार्य नहीं हो पाया है। विश्वकोश में चित्रकार के रूप में श्री बैजनाथ वर्मा ने और संपादक सहायक के रूप में निम्नांकित लोगों ने योगदान किया है : श्री भगवानदास वर्मा, श्री अजित नारायण मेहरोत्रा, श्री माधवाचार्य, श्री रमेशचंद्र दुबे, श्री प्रभाकर द्विवेदी, श्री चंद्रचूड़मणि त्रिपाठी, डा० श्याम तिवारी, श्री चारुचंद्र त्रिपाठी, श्री जगीर सिंह। प्रबंध व्यवस्था श्री बलभद्रप्रसाद मिश्र और श्री सर्वदानंद जी ने तथा अर्थव्यवस्था श्री मंगलाप्रसाद शर्मा एवं प्रूफशोधन की व्यवस्था श्री विभूतिभूषण पांडेय ने देखी।

हिंदी विश्वकोश आरंभ होने के समय से ही सभा के पदाधिकारी होने और उसकी सलाहकार समिति के सदस्य होने के नाते मेरा इससे निकट संबंध रहा है और वस्तुस्थिति यह है कि डॉ० राजबली पांडेय के उपरांत विश्वकोश के कार्य को प्रभावशाली ढंग से मैं देखता रहा हूँ और इसके सभी कार्यकर्ता मित्रों से मेरा प्रगाढ़ स्नेह संबंध है। यह कार्य, जिसकी गति कभी कभी ऐसी भी हो जाती थी कि कार्य पूरा नहीं हो पाएगा, ऐसी संभावना की जाने लगती थी पर इन सबके संबल से यह पूरा हुआ। दस वर्ष की इस लंबी यात्रा में कभी कभी कार्य की शिथिलता को गति देने के लिये मुझे कटु भी होना पड़ा है, पर वह कटुता कार्य के लिये थी, इसलिये यदि इतनी लंबी अवधि में कुछ ऐसा हो गया हो जो किसी को प्रिय न लगा हो, तो उसके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ और साथ ही विश्वकोश की त्रुटियों के लिये भी।

इसमें जो कुछ भी गौरवशाली है या उपयोगी है, वह स्वर्गीय पं० गोविंदवल्लभ पंत, श्रद्धेय डॉ० संपूर्णानंद और आदरणीय पं० कमलापति त्रिपाठी के प्रभाव का परिणाम तथा इसके संपादकों, लेखकों और कार्यकर्ताओं के श्रम का सुफल है। हम और हिंदी जगत् उसके लिये सदा उनके ऋणी रहेंगे। इस अवसर पर हम उन सबका अभिनंदन करते हैं।

भारत सरकार के शिक्षामंत्री डा० के० एल० श्रीमाली, श्री भक्तदर्शन, प्रो० शेरसिंह, प्रो० हुमायूँ कबीर ने हमें इस कार्य में निरंतर अपना सहयोग प्रदान किया। शिक्षा तथा वित्त मंत्रालय के सभी अधिकारियों ने भी इस कार्य में हमें अपना हार्दिक सहयोग प्रदान किया, अतः हम इनके प्रति हृदय से ऋणी हैं।

हम इस अवसर पर हिंदी जगत् को विश्वास दिलाते हैं कि हमारा संकल्प यह है कि दिनोत्तर यह विश्वकोश अपने में गुणधर्म का ऐसा विकास करे कि धीरे धीरे हिंदी का यह ज्ञानभांडार विश्व में इस क्षेत्र में अपना अनन्य गौरव स्थापित करे और ज्ञान की गंगा का प्रवाह इसके माध्यम से निरंतर होता रहे। इसके लिये उपलब्ध समस्त साधनों का दिनोत्तर वर्धमान अनुभव के साथ सत्प्रयोग करने का हमारा संकल्प है। भगवान् विश्वनाथ हमारे संकल्प की पूर्ति करें और इसका अनंत काल तक नित नूतन संस्करण होता रहे।

हिंदी विश्वकोश

खंड १२

सवर्गीय यौगिक इन्हे उपसहसयोजकता-यौगिक (Coordination Compounds) भी कहते हैं। ऐल्फ्रेड वेर्नर ने धातुओ की सामान्य वंधुता को 'प्राथमिक' बंधुता कहा। कुछ धातुओ में प्राथमिक वंधुता के अतिरिक्त एक और बधुता होती है, जिसे 'द्वितीयक' वंधुता कहते हैं। इस द्वितीयक वंधुता को ही 'उपसहसंयोजकता' का और ऐसे बने यौगिको को 'उपसहसंयोजकता-यौगिक' का नाम दिया। ऐसे यौगिको को वेर्नर ने उच्च वर्ग यौगिक कहा है।

धनात्मक आयन, विशेषत जब वे छोटे और उच्च आवेशित होते हैं, पार्श्ववर्ती ऋणात्मक आयनो अथवा उदासीन अणुओ से, जिनमें 'असाझी' (unshared) इलेक्ट्रॉन रहते हैं, इलेक्ट्रॉन आकर्षित करते हैं। यदि आकर्षण अधिक है, तो धात्विक आयन और अन्य समूहो के बीच इलेक्ट्रॉन साझी हो जाता है। धात्विक आयन को यहाँ 'ग्राही' (acceptor) और अन्य समूह को 'दाता' (donor) कहते हैं। जब प्लैटिनिक क्लोराइड को अमोनिया के साथ उपचारित किया जाता है तब ऐसा ही यौगिक, हेक्सामिनिक प्लैटिनिक हेक्सा-क्लोराइड, बनता है, जिसको निम्न प्रकार का सूत्र दिया गया है :

$$PtCl_4 + 6\ H{:}\ddot{N}{:}H \longrightarrow \left[Pt\left({:}\ddot{N}.H\right)_6\right]Cl_4$$
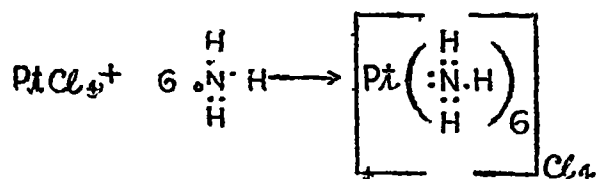
प्लैटिनम का उपसहसंयोजकता-यौगिक

रासायनिक सयोग का बनना ऐसे बने यौगिको के रंग, विलेयता, और अन्य गुणों की विभिन्नता से जाना जाता है। ऐसे बने प्लैटिनम के यौगिक में न प्लैटिनम के और न क्लोरीन के ही परीक्षक लक्षण पाए जाते हैं। जिन समूहो में असाझी इलेक्ट्रॉन रहते हैं, वे हैं अमोनिया (NH_3), जल (H_2O), कार्बन मोनोऑक्साइड (CO), नाइट्रिक ऑक्साइड (NO), ऐल्किल ऐमिन (RNH_2), डाइऐल्किल ऐमिन (R_2NH), ट्राइऐल्किल ऐमिन (R_3N), ऐल्किल सल्फाइड (RSR), साइआनाइड (CN), थायोसाइआनाइड (SCN) आदि।

उपसहसंयोजकता-यौगिको मे दो, या दो से अधिक, किस्म के दाता रह सकते हैं। केंद्र स्थित धात्विक आयनो में दाता समूहो की सख्या प्रत्येक धात्विक आयन के लिये निश्चित रहती है। ऐसी संख्या को उपसहसयोजकता सख्या (Coordination Number) कहते हैं। सिजविक (Sidgwick) के अनुसार यह सख्या तत्वों की परमाणुसंख्या पर निर्भर करती है। यह दो से आठ तक हो सकती है। हाइड्रोजन की उपसहसंयोजकता संख्या दो है और भारी धातुओं की आठ। यदि दाता समूह या परमाणु में एक जोड़े से अधिक असाझी इलेक्ट्रॉन विद्यमान हो, तो ऐसे समूह या परमाणु दो धात्विक आयनो से सयुक्त हो सकते हैं। इस रीति से द्विनाभिक संमिश्र (dinuclear complex) बनते हैं। ऐसा ही एक द्विनाभिक सामिश्र डाइओल ऑक्टेमिन डाइकोबाल्टिक सल्फेट (di-ol octamin dicobaltic sulphate) है

$$\left[(NH_3)_4Co \begin{matrix} \overset{H}{O} \\ \underset{H}{O} \end{matrix} Co(NH_3)_4\right](SO_4)_2$$
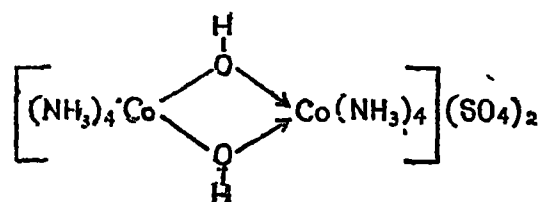
यदि दाता परमाणु एक ही अणु में विद्यमान हैं पर कम से कम एक दूसरे परमाणु से उनमें अलगाव है, तो इस प्रकार के बने वलय को 'कीलेट वलय' (Chelate ring) कहते हैं। कीलेटी करण से यौगिको का स्थायित्व बहुत वढ जाता है। पाँच सदस्य वाले कीलेट वलय सबसे अधिक स्थायी होते हैं। चार या छ सदस्य वाले कीलेट वलय भी सरलता से बन जाते हैं। यह प्रभाव कार्बनिक ऐमिनो-यौगिको मे स्पष्ट रूप से देखा जाता है। मोनोमेथिल ऐमिन कदाचित् ही उपसहसयोकता-यौगिक बनता है, पर एथिलीन डाइऐमिन बड़ी सरलता से उपसहसयोजकता-यौगिक बनता है, जो बहुत स्थायी होता है।

सामान्य द्वितीयक ऐमिन कदाचित् ही उपसहसयोजकता-यौगिक बनता है, पर

डाइएथिलीन ट्राइऐमिन($H_2N\ CH_2\ CH_2\ NH\ CH_2\ CH_2\ NH_2$) बडी सरलता से भारी धात्विक आयनो के साथ तीनों नाइट्रोजनो से सयुक्त हो, बहुत स्थायी द्विक् कीलेट वलय बनाता है।

$$M\begin{cases} :NH_2 \\ :NH \\ :NH_2 \end{cases} \begin{matrix} >C_2H_4 \\ >C_2H_4 \end{matrix}$$
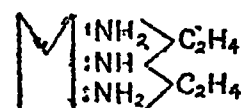
ऐल्फा-ऐमिनो अम्ल अनेक धातुओ के हाइड्रॉक्साइडो से अधिक क्रिया कर बहुत स्थायी यौगिक बनाता है। इनमे अम्ल और ऐमिनो दोनो समूह धातु से सयुक्त होकर, कीलेट वलय बनाते हैं। यदि उपसहसयोजकता-सख्या बधुता से दुगुनी है, तो ऐसे यौगिक अनायनित

६ त्रिविम समावयवता (Stereo isomerism) — उपसहसंयोजकता बंध सदिश (directional) होते हैं। इस कारण उपसहसंयोजकता समूह केंद्रस्थित धात्विक आयनों के चारों ओर एक निश्चित स्थिति में स्थित होते हैं। प्लैटिनम आयन की चारों सहसंयोजकताएँ (covalences) एक तल पर होती हैं। अत इसके यौगिक प्लैटिनम डाइऐमिन डाइक्लोराइड दो रूप में, सिस रूप और ट्रैंस रूप में, प्राप्त हुए हैं :

$$\mathrm{Cl_2Pt(NH_3)_2}\ (\text{cis: } Cl, Cl \text{ एक ओर}, NH_3, NH_3 \text{ दूसरी ओर}) \qquad \mathrm{Cl(NH_3)Pt(H_3N)Cl}\ (\text{trans})$$

सिस रूप ट्रैंस रूप
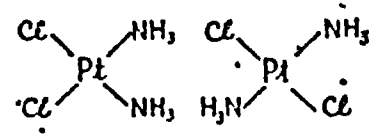
इन दोनों के रंग, विलेयता और रासायनिक व्यवहार में भिन्नता होती है। ऐसा केवल प्लैटिनम के साथ ही नहीं होता, अन्य धातुओं, जैसे पैलेडियम, निकल, कैडमियम, पारद आदि के साथ भी ऐसा देखा जाता है। यदि उपसहसंयोजकता समूह छह हैं और उनमें दो अन्य चार समूहों से भिन्न हैं तो उनके भी दो रूप, सिस और ट्रैंस हो जाते हैं। डाइक्लोरो डाइऐमिन कोबाल्टिक क्लोराइड दो रूपों में पाया गया है। एक का रंग बैंगनी और दूसरे का हरा होता है।

प्रकाशिक (optical) समावयवता — जब केंद्रित धात्विक आयन पर उपसहसंयोजक समूह चार, छह या अधिक असममित रूप से व्यवस्थित रहें, तो ऐसी संरचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं जिनमें एक दूसरे का दर्पण प्रतिबिंब हो। यदि धात्विक आयन कीलेट वलय बनाता है, तो ऐसा सरलता से संपन्न होता है। ऐसे यौगिकों में प्रकाशिक समावयवता हो सकती है। कुछ यौगिकों में ऐसी प्रकाशिक सक्रियता निश्चित रूप से पाई गई है।

उपसहसंयोजकता-यौगिक अनेक प्रकार के होते हैं। इनमें से कुछ बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनका उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। भारी धातुओं के ऐसे ही संमिश्र साइऐनाइड विद्युत् लेपन में काम आते हैं। अनेक ऐसे यौगिक महत्व के वर्णक हैं। प्रशीयन ब्लू, हीमोग्लोबिन, क्लोरोफिल आदि ऐसे ही वर्णक हैं। कुछ यौगिक, विशेषत अंतराल लवण, धातुओं को पहचानने, पृथक् करने तथा उनकी मात्रा निर्धारित करने आदि में काम आते हैं। [वा० फ०]

सवाई माधोपुर १. जिला, भारत के राजस्थान राज्य का जिला है, जिसका क्षेत्रफल ४,०३० वर्ग मील एवं जनसंख्या ९,८३,५७८ (१९६१) है। जिले के पूर्व-उत्तर में भरतपुर जिला, पूर्व दक्षिण में मध्य प्रदेश, दक्षिण में कोटा, दक्षिण पश्चिम में बूँदी, पश्चिम में टोंक तथा पश्चिम उत्तर में जयपुर जिला है।

२ नगर, स्थिति २६° ०' उ० अ० तथा ७६° २३' पू० दे०। यह उपर्युक्त जिले का प्रशासनिक नगर है, जो जयपुर नगर से दक्षिण पूर्व में ७६ मील दूर पर स्थित है। नगर में टीन और पीतल के बरतन बनाने का उद्योग है और यहाँ से दक्षिण की ओर भेजे जाते हैं। [illegible] बनाने का उद्योग भी यहाँ का प्रमुख उद्योग है। नगर की जनसंख्या २०,९५२ (१९६१) है। [अ० ना० मे०]

ससेक्स (Sussex) स्थिति . ५०° ५५' उ० अ०, ०° २०' प० दे० । यह दक्षिण पूर्वी इग्लैंड की एक समुद्रतटीय काउटी है। इसका क्षेत्रफल १,४५७ वर्ग मील है। इसके उत्तर मे सरे (Surrey) तथा उत्तर पूर्व में केंट (Kent) काउटियाँ, पश्चिम में हैंपशिर और पूर्व एवं दक्षिण में इग्लिश चैनल है। ससेक्स दो प्रशासनिक काउटियों में बँटा हुआ है . पूर्वी ससेक्स तथा पश्चिमी ससेक्स । पूर्वी ससेक्स के लिये ल्युइस (Lewes) में तथा पश्चिमी ससेक्स के लिये चिसेस्टर (Chichester) मे काउंटी परिषदें हैं। समुद्रतट के पास की भूमि सबसे अधिक उपजाऊ है। यहाँ पर गेहूँ की खेती होती है। साउथ डाउन मे भेडें पाली जाती हैं। इसी नाम की यहाँ पर भेड़ो की एक जाति भी होती है। चरागाह अधिक होने के कारण पशुपालन यहाँ का प्रमुख उद्योग है। लोहपत्थर प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। यहाँ पर ऊन, कागज, बारूद तथा ईंटो का उत्पादन होता है। ब्राइटन (Brighton) इग्लैंड का सबसे बड़ा समुद्रतटवास है। [न० कु० रा०]

सस्यकर्तित्र (अर्थात् फसल काटने के औजार) देश के विभिन्न भागो मे फसलो की कटाई विभिन्न समय मे विभिन्न यत्रों द्वारा की जाती है। फसल की कटाई, पकने के बाद, जितनी जल्दी की जा सके उतना ही अच्छा समझा जाता है, क्योंकि मुख्यतः फसल खेत में खडी रहने पर फसल के शत्रुओ से, तथा कभी कभी अधिक पकने पर बालियो से दाने गिर जाने से, बहुत हानि होती है। उत्तर प्रदेश मे खरीफ की फसल की कटाई लगभग मध्य अगस्त से लेकर नवबर के महीने तक चलती रहती है और कही कही पछेती के धानो की कटाई दिसबर में भी होती है। इसी प्रकार रबी की फसलो की कटाई प्रदेश के पूर्वी जिलो में मार्च से लेकर पश्चिमी जिलो में अप्रैल के अंत तक चलती रहती है। यह ऐसा समय होता है जब खेत मे चूहे भी लग जाते हैं और आँधी के समय ओले गिरने का भी डर रहता है। इसलिये हर किसान यह चाहता है कि जितनी जल्दी उसकी फसल कटकर खलिहान में पहुँच जाय उतना ही अच्छा है।

जैसा ऊपर बताया गया है, विभिन्न फसलो के काटने के लिये विभिन्न यत्रो का प्रयोग किया जाता है, परतु यह निश्चित है कि यत्र की बनावट तथा कटाई का ढग स्थानीय सुविधा पर अधिकतर निर्भर करता है। यत्र की बनावट भी फसल के तने की मोटाई अथवा मजबूती पर बहुत सीमा तक निर्भर करती है।

इससे पहले कि यत्रों का विवरण दिया जाय, यह कह देना आवश्यक होगा कि उत्तर प्रदेश में ऐसी बहुत सी फसलें हैं जिनकी कटाई के लिये कोई यत्र प्रयुक्त नही किया जाता, बल्कि उन्हे हाथ से ही पौधे से चुन लिया जाता है, जैसे मक्का, ज्वार-बाजरा, कपास, मूँग न० १ तथा बहुत सी सब्जियो इत्यादि में।

फसलो की कटाई में प्रयुक्त होनेवाले साधारण यंत्रो का विवरण निम्नलिखित प्रकार है .

गँडासा — उत्तर प्रदेश मे गन्ना, अरहर, तंबाकू, ज्वार, बाजरा तथा मक्का, जिनके तने मोटे और मजबूत होते हैं, गँडासे से काटे जाते हैं। गँडासे में १½ फुट लंबा, शीशम या बबूल की लकड़ी का बना हुआ बेंट रहता है, जिसमें काटने के लिये इस्पात का बना हुआ १ फुट लंबा और ४ इंच चौड़ा, कटाई की ओर से तेज धारवाला, फलका लगा रहता है। गँडासे से कटाई करने की विशेषता यह है कि कटाई करनेवाला जमीन से लगभग १½ इंच या २ इंच ऊपर तने पर, गँडासे को जोर से मारता है, जिसके प्रभाव से तना कटकर गिर जाता है। यह यत्र बहुत पुराना है और मजबूत तनेवाली फसलो को काटने के लिये अभीतक किसी नए यंत्र ने इसका स्थान नही लिया है। इस यत्र की कीमत लगभग पाँच रुपए है और कार्यक्षमता खेत में उगे हुए पेड़ों के घनत्व और उनके तने की मोटाई एवं मजबूती पर निर्भर है।

२. हँसिया — हँसिया का प्रयोग, पतले तनेवाली फसलो, जैसे गेहूँ, जौ, चना, धान इत्यादि, की कटाई के लिये किया जाता है। इस यत्र से कटाई करने में, फसल के तनों को बाएँ हाथ से मुट्ठी मे पकड लेते हैं और दाएँ हाथ से तने के ऊपर हँसिया को रगड़कर अपनी ओर खीचते हैं, जिससे फसल कट जाती है। हँसिया की आकृति अर्धचद्राकार होती है। कुछ ऐसी हँसियाँ होती हैं जिनमें दाँते बने रहते हैं और कुछ बिना दाँतो की बनी होती हैं। दाँतेदार हँसियो की कार्यक्षमता बिना दाँतो की हँसियो से अधिक होती है। हँसिया इस्पात की बनी होती है, जिसमे लकड़ी की मुठिया लगी होती है। एक हँसिया की कीमत लगभग एक रुपए होती है। यद्यपि इसकी कार्यक्षमता खेत में खड़े हुए पौधो को घनत्व पर निर्भर करती है, परतु साधारणतया खेतो में एक एकड गेहूँ, जौ या धान आदि की कटाई के लिये चार पांच आदमी पर्याप्त होते हैं।

३. रीपर — गेहूँ, जौ और जई की कटाई के लिये, पश्चिमी देशो मे रीपर का प्रयोग किया जाता है। हमारे देश मे भी कुछ बड़े आकारवाले फार्मों पर बैलो से चलनेवाले रीपर का प्रयोग होता है। रीपर मे लगभग ४ फुट लबी कटाई की पट्टी (cutter bar) लगी रहती है, जिसमें लगभग २५ से ३० तक काटनेवाले चाकुओ (knife and ledger) का सेट लगा रहता है। जब रीपर आगे को चलता है, तब पहिए घूमते हैं, जिनके प्रभाव से कटाई की पट्टी में गति आ जाती है। इस यंत्र की कीमत लगभग १,५०० से २,००० रु० तक होती है और यह अनुमान लगाया गया है कि यह एक दिन में चार से पाँच एकड़ तक गेहूँ की कटाई आसानी से कर सकता है। इस यत्र से कटाई और बँधाई का खर्चा ५ रु० प्रति एकड़ आता है, जबकि एक एकड़ गेहूँ की कटाई हँसिया से करने मे लगभग १५ रु० खर्च आता है। इस प्रकार यह यंत्र उन फार्मों के लिये तो बहुत ही सुविधाजनक है जहाँ कटाई के मौसम में मजदूरो की बहुत ही कमी अनुभव होती है; परंतु इस यंत्र का लाभ वे छोटे किसान, जिनकी जोत भी कम है और जिनके खेतो का आकार भी छोटा है, नही उठा सकते।

इस यत्र का प्रयोग करने में एक दूसरी असुविधा यह भी है कि खेत की अतिम सिंचाई के बाद, खेत की मेड़ नम अवस्था में ही तोड़नी पड़ती है। दूसरे यह चार पांच इंच ऊँचे से फसल की कटाई करता है, इसलिये भूसे की काफी मात्रा खेत में ही रह जाती है। इस भूसे

की कीमत उन देशों के किसानों के लिये जहाँ खेती मशीनों या घोड़ों से की जाती है नहीं के बराबर है; परंतु हमारे देश में, जहाँ बैलों के चारे का साधन भूसा है, इसका काफी मूल्य है। इन उपर्युक्त असुविधाओं के कारण ही, अच्छा कार्यक्षम होते हुए भी, यह यंत्र जनप्रिय नहीं हो सका है।

४ कंबाइन — गेहूँ और जौ की फसल की कटाई करने के लिये अन्य विकसित देशों में तथा भारत में, बड़े विस्तार के फार्मों पर कंबाइन मशीन का प्रयोग किया जाता है। इस मशीन को चलाने के लिये या तो ट्रैक्टर से शक्ति ली जाती है या मशीन में ही इजन लगा रहता है, जिसकी सहायता से मशीन चलती है। इस मशीन
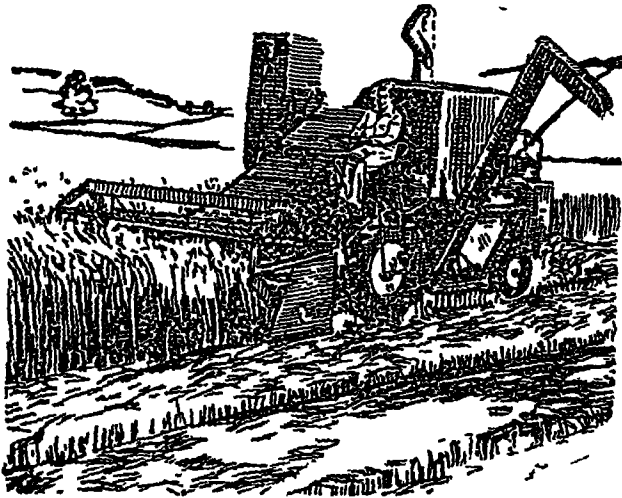
गाहने और फसल काटने की संयुक्त मशीन

यह खेत में घूमकर फसल काटती, गाहती तथा अनाज को साफ करती है। डंठल खेत में खड़ा छूट जाता है।

के चलने से, खेत की फसल कटकर सीधे मशीन में चली जाती है। और अदर ही अदर मँडाई, ओसाई और छनाई होकर साफ अनाज एक तरफ बोरों में भरता चला जाता है तथा भूसा एक तरफ गिरता चला जाता है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि मँडाई केवल अनाज की बालियों की ही होती है, शेष लाक की नहीं। इस प्रकार शेप फसल की लबी लबी लाक एक तरफ इकट्ठी हो जाती है। इस मशीन की कीमत लगभग २०,००० रु० से ३०,००० रु० होती है, जिसे मामूली किसान तो क्या बड़े बड़े किसान भी नहीं खरीद सकते। इसकी कार्यक्षमता उच्च कोटि की होते हुए भी भारत के किसानों के लिये, इसकी संस्तुति नहीं की जाती, क्योंकि इसमें भी काफी मात्रा में भूसे की हानि होती है। हमारे देश में उन फसलों की, जैसे आलू, घुंइया, प्याज, मूँगफली, शकरकंद आदि, जिनका आर्थिक दृष्टि से उपयोगी भाग भूमि के नीचे रहता है, कटाई के लिये खुरपा एवं कुदाल का प्रयोग किया जाता है। इन्हें खोदने के लिये इस प्रदेश में अभी तक कोई विशेष यत्र नही बना है। अन्य देशों में ऐसी फसलों की खुदाई, पोटेटो डिगर या ग्राउड-नट डिगर से की जाती है। अमरीका में, जहाँ मक्का और कपास हजारों एकड़ बोई जाती है, मक्का के भुट्टे तथा कपास की कटाई के लिये भी विशेष प्रकार की मशीनों का प्रयोग किया जाता है। हवाई द्वीप में, जहाँ गन्ना मुख्य आर्थिक फसल है, गन्ने की कटाई भी एक विशेष मशीन से की जाती है।

इसमें सदेह नहीं है कि ससार का प्रत्येक किसान यह चाहता है कि फसल पकने के बाद कटाई जितनी जल्दी हो सके, की जाए, परंतु इसको कार्यान्वित करने के लिये ऐसे कटाई यत्रों की आवश्यकता है जिनसे कटाई के श्रम तथा समय की बचत हो सके। ऐसे यत्रों की सिफारिश करने से पहले, किसान की भौतिक एव आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक है और सिफारिश इनकी अनुकूलता के अनुसार होनी चाहिए। यही कारण है कि रीपर, कंबाइन, तथा अन्य कटाई यत्रो के अति श्रम तथा समय बचानेवाले यंत्र होने के बावजूद, अपने देश के किसानों के लिये, जिनकी जोतों और खेतों के आकार छोटे हैं, जिन्हें आर्थिक तंगी है तथा जिनके पास श्रम का अभाव नही है, अधिक कीमतवाले होने के कारण सिफारिश नहीं की जा सकती। आवश्यकता इस बात की है कि कृषियंत्रों के अनुसधान के आधार पर ऐसे कटाई यत्र, जो हमारे देश के किसानों की भौतिक एवं आर्थिक परिस्थिति के अनुकूल हों, बनाए जाएँ, जिससे श्रम एव समय की बचत भी हो। [ज० स० ग०]

सस्यचक्र विभिन्न फसलों को किसी निश्चित क्षेत्र पर, एक निश्चित क्रम से, किसी निश्चित समय में बोने को सस्यचक्र कहते हैं। इसका उद्देश्य पौधों के भोज्य तत्वों का सदुपयोग तथा भूमि की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशाओं में संतुलन स्थापित करना है।

सस्यचक्र से निम्नलिखित लाभ होते हैं :

१. पोषक तत्वों का समान व्यय — फसलों की जड़ें गहराई तथा फैलाव में विभिन्न प्रकार की होती हैं, अत गहरी तथा उथली जड़वाली फसलों के क्रमश. बोने से पोषक तत्वों का व्यय विभिन्न गहराइयों पर समान होता है, जैसे गेहूँ, कपास।

२. पोषक तत्वों का संतुलन — विभिन्न पौधे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश तथा अन्य पोषक तत्व भिन्न भिन्न मात्राओं में लेते हैं। सस्यचक्र द्वारा इनका पारस्परिक संतुलन बना रहता है। एक ही फसल निरंतर बोने से अधिक प्रयुक्त होनेवाले पोषक तत्वों की भूमि में न्यूनता हो जाती है।

३. हानिकारक कीटाणु रोग तथा घासपात की रोकथाम — एक फसल, अथवा उसी जाति की अन्य फसलें, लगातार बोने से उनके हानिकारक कीड़े, रोग तथा साथ उगनेवाली घासपात उस खेत में बनी रहती है।

४. श्रम, आय तथा व्यय का संतुलन — एक बार किसी फसल के लिये अच्छी तैयारी करने पर, दूसरी फसल बिना विशेष तैयारी के ली जा सकती है और अधिक खाद चाहनेवाली फसल को पर्याप्त मात्रा में खाद देकर, शेष खाद पर अन्य फसलें लाभ के साथ ली जा सकती हैं, जैसे आलू के पश्चात् तंबाकू, प्याज या कद्दू आदि।

५. भूमि में कार्बनिक पदार्थों की पूर्ति — निराई, गुड़ाई

चाहनेवाली फसलें, जैसे आलू, प्याज इत्यादि बोने से, भूमि में जैव पदार्थों की कमी हो जाती है। इनकी पूर्ति दलहन वर्ग की फसलो तथा हरी खाद के प्रयोग से हो जाती है।

६. अल्पकालीन फसलें बोना — मुख्य फसलो के बीच अल्पकालीन फसलें बोई जा सकती हैं, जैसे मूली, पालक, चीना, मूँग नवर १.।

७. भूमि में नाइट्रोजन की पूर्ति — दलहन वर्ग की फसलो को, जैसे सनई, ढैंचा, मूँग इत्यादि, भूमि में तीन या चार वर्ष में एक बार जोत देने से, न केवल कार्बनिक पदार्थ ही मिलते हैं अपितु नाइट्रोजन भी मिलता है, क्योंकि इनकी जड़ की छोटी छोटी गाँठो में नाइट्रोजन स्थापित करनेवाले जीवाणु होते हैं।

८. भूमि की अच्छी भौतिक दशा — झकडा जडवाली तथा अधिक गुडाई चाहनेवाली फसलो को सस्यचक्र मे समिलित करने से भूमि की भौतिक दशा अच्छी रहती है।

९. घास पात की सफाई — निराई, गुडाई चाहनेवाली फसलो के बोने से घासपात की सफाई स्वय हो जाती है।

१०. कटाव से बचत — उचित सस्यचक्र से वर्षा के जल से भूमि का कटाव रुक जाता है तथा खाद्य पदार्थ वहने से बच जाते हैं।

११ समय का सदुपयोग — इससे कृषि कार्य उत्तम ढग से होता है। खेत एव किसान व्यर्थ खाली नही रहते।

१२. भूमि के विषैले पदार्थों से बचाव — फसलें जडो से कुछ विषैला पदार्थ भूमि में छोडती हैं। एक ही फसल बोने से, भूमि मे विषैले पदार्थ अधिक मात्रा मे एकत्रित होने के कारण हानि पहुँचाते हैं।

१३. उर्वरा शक्ति की रक्षा — भूमि की उर्वरा शक्ति मितव्ययिता से ठीक रखी जा सकती है।

१४. शेषांश से लाभ — पूर्व फसलो के शेषाश से लाभ उठाया जा सकता है।

१५ अधिक उपज — उपर्युक्त कारणो से फसल की उपज प्राय: अधिक हो जाती है। [दु० श० ना०]

सहजीवन (Symbiosis) को सहोपकारिता (Mutualism) भी कहते हैं। यह दो प्राणियो में पारस्परिक, लाभजनक, आतरिक साझेदारी है। यह सहभागिता (partnership) दो पौधो या दो जतुओ के बीच, या पौधे और जतु के पारस्परिक सबध मे हो सकती है। यह सभव है कि कुछ सहजीवियों (symbionts) ने अपना जीवन परजीवी (parasite) के रूप मे शुरू किया हो और कुछ प्राणी जो अभी परजीवी हैं, वे पहले सहजीवी रहे हो।

सहजीवन का एक अच्छा उदाहरण लाइकेन (lichen) है, जिसमें शैवाल (algae) और कवक (fungus) के बीच पारस्परिक कल्याणकारक सहजीविता होती है। वहुत से कवक वाज (oaks), चीड इत्यादि पेड़ो की जडो के साथ सहजीवी होकर रहते हैं।

बैसिलस रैडिसिकोला (Bacillus radicicola) और शिंवी (leguminous) पौधो की जडो के बीच का अतरंग सबंध भी सहजीविता का उदाहरण है। ये जीवाणु शिंबी पौधों की जड़ों में पाए जाते हैं, जहाँ वे गुलिकाएँ (tubercles) बनाते हैं और वायुमडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं।

सहजीविता का दूसरा रूप हाइड्रा विरिडिस (Hydra viridis) और एक हरे शैवाल का पारस्परिक संबध है। हाइड्रा (Hydra) जूक्लोरेली (Zoochlorellae) शैवाल को आश्रय देता है। हाइड्रा की श्वसनक्रिया मे जो कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकलता है, वह जूक्लोरेली के प्रकाश सश्लेषण में प्रयुक्त होता है और जूक्लोरेली द्वारा उच्छ्वसित ऑक्सीजन हाइड्रा की श्वसन क्रिया में काम आती है। जूक्लोरेली द्वारा बनाए गए कार्बनिक यौगिक का भी उपयोग हाइड्रा करता है। कुछ हाइड्रा तो बहुत समय तक, बिना बाहर का भोजन किए, केवल जूक्लोरेली द्वारा बनाए गए कार्बनिक यौगिक के सहारे ही, जीवन व्यतीत कर सकते है।

सहजीविता का एक और अत्यत रोचक उदाहरण कवोल्यूटा रोजिओफेंसिस (Convoluta roseoffensis) नामक एक टर्वेलेरिया क्रिमि (Turbellaria) और क्लैमिडोमॉनाडेसिई (Chlamydomonadaceae) वर्ग के शैवाल के बीच का पारस्परिक सयोग है। कवोल्यूटा के जीवनचक्र में चार अध्याय होते हैं। अपने जीवन के प्राथमिक भाग में कवोल्यूटा स्वतत्र रूप से बाहर का भोजन करता है। कुछ दिनो बाद शैवाल से संयोग होता है और फिर इस कृमि का पोषण, इसके शरीर मे रहनेवाले शैवाल द्वारा बनाए गए कार्बनिक यौगिक और बाहर के भोजन दोनो से होता है। तीसरी अवस्था में कवोल्यूटा बाहर का भोजन ग्रहण करना वद कर देता है और अपने पोषण के लिये केवल शैवाल के प्रकाशसंश्लेषण द्वारा बनाए गए कार्बनिक यौगिक पर ही निर्भर रहता है। अत मे कृमि अपने सहजीवी शैवाल को ही पचा लेता है और स्वयं मर जाता है।

वहुत से सहजीवी जीवाणु और अंतरकोशिक यीस्ट (yeast) आहार नली की कोशिकाओ में रहते हैं और पाचनक्रिया में सहायता करते हैं। दीमक की आहारनली में बहुत से इन्फ्यूसोरिया (Infusoria) होते हैं, जिनका काम काष्ठ का पाचन करना होता है और इनके विना दीमक जीवित नही रह सकती। [प्रे० ना० मे०]

सहदेव पाडवो में सबसे छोटे, माद्री के पुत्र जो ज्योतिष के पडित थे। यह विद्या इन्होने द्रोणाचार्य से सीखी थी। पशुपालनशास्त्र मे भी ये परम दक्ष थे और अज्ञातवास के समय विराट के यहाँ इन्होने राज्य के पशुओ की देखरेख का काम किया था। इनकी स्त्री विजया थी जिससे इन्हे सुहोत्र नामक एक पुत्र हुआ था। [रा० द्वि०]

सहरसा बिहार का सबसे नया जिला है, जिसका क्षेत्रफल २,०९३ वर्ग मील तथा जनसंख्या १७,२३,५९९ है। यह जिला भागलपुर के गगा से उत्तरी भाग तथा अन्य समीपवर्ती जिलो के कुछ भागों को मिलाकर बना है। इसके अतर्गत सहरसा सदर, सुपौल, माधेपुरा, उपडिवीजन है। निर्मली और बीरपुर अन्य प्रमुख स्थान हैं। सपूर्ण जिला कोसी नदी की अनगिनत शाखाओ से, जो उत्तर से दक्षिण, फिर एक साथ कमला नदी मे मिलकर पूरब की ओर

कहाँ से, घिरा हुआ है इस प्रकार कोसी की बाढ़ से यह जिला धारावाहिक ग्रस्त रहा है। यहाँ की प्रमुख उपज धान तथा जूट है, पर बाढ़ की विभीषिका के कारण यहाँ प्राय: दुर्भिक्ष की स्थिति रहती है। कोसी बाँध के बनने तथा इससे निकली नहरों की सुविधा प्राप्त होने के पश्चात् ही, यह जिला संपन्न हो सकेगा। बाढ़ के ही कारण यहाँ यातायात के साधनों की बड़ी कमी है। इस जिले में उत्तर पूर्व रेलवे की दो तीन अलग अलग शाखाएँ ही कुछ सुविधा प्रदान करती हैं। सुपौल तथा निर्मली रेल शाखाएँ उल्लेखनीय हैं। पक्की सड़कों का नितांत अभाव है।

[ज० सि०]

सहसराम बिहार राज्य के शाहाबाद जिले का एक उपडिवीजन है। इसके अंतर्गत दो प्रकार के स्थान हैं: (१) कैमूर पहाड़ी तथा (२) मैदानी भाग। पहाड़ी भाग दक्षिण में है तथा जंगली पशुओं एवं शिकार करने के लिये विख्यात है। मैदानी भाग में प्रधानत: धान की उपज होती है, पर गेहूँ, चना आदि रबी की फसलें भी महत्वपूर्ण हैं। इसी उपडिवीजन में डालमियानगर पड़ता है, जहाँ सीमेंट, कागज तथा चीनी के कारखाने हैं। सीमेंट का कारखाना बनजारी में भी है। उपडिवीजन के उत्तरी भाग में सोन-नहर-प्रणाली द्वारा सिंचाई की अच्छी व्यवस्था है। इससे होकर पूर्वी रेलवे की ग्रैंड कॉर्ड लाइन गया होकर जाती है। इसके अलावा आरा सहसराम तथा डेहरी रोहतास छोटी रेलवे लाइनें भी हैं। सड़कों में ग्रैंड ट्रंक रोड प्रमुख है, जो सहसराम-डिहरी होती हुई जाती है। सहसराम, डिहरी, डालमियानगर, विक्रमगंज तथा नासरीगंज प्रमुख नगर हैं। सहसराम नगर की जनसंख्या ३७,७८२ (१९६१) तथा डिहरी की जनसंख्या ३८,०९२ (१९६१) है। सहसराम शेरशाह की जन्मभूमि है, जहाँ उसका मकबरा बना हुआ है।

[ज० सि०]

सहस्रपाद या मिलीपीड (Millipede, or thousand legged) जंतु आर्थ्रोपोडा (Arthropoda) संघ के मीरियापोडा (Myriapoda) वर्ग के डिप्लोपोडा (Diplopoda) उपवर्ग के सदस्य होते हैं। इनका शरीर बेलनाकार और स्पष्ट रूप से खंडित (segmented) होता है, परंतु अन्य संधिपाद प्राणियों (arthropods) की तरह इनका शरीर विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित नहीं रहता। इनकी विशिष्ट पहचान यह होती है कि प्रथम चार खंडों को छोड़कर प्रत्येक खंड में दो जोड़ी पैर होते हैं। इसलिये मिलीपीड (millipedes) को डिप्लोपोडा (Diplopoda, or double legged) भी कहते हैं। एक विभिन्न स्पष्ट शीर्ष पर एक जोड़ी शृंगिकाएँ (antennae) और एक जोड़ी चिबुकास्थियाँ (mandibles) होती हैं। शीर्ष पर एक जोड़ा उपांग (appendages) भी होता है, जो एकत्र होकर (fused) एक पट्ट (plate) के समान निचले ओठ की रचना करते हैं, जिसे नैथोकिलेरियम (Gnathochilarium) कहते हैं अधिकतर मिलीपीड के शीर्ष के दोनों तरफ ज्ञानेंद्रियाँ होती हैं, जिनका कार्य विदित नहीं है। इनके जीवाश्म (fossil) डिवोनी कल्प (Devonian period) और सिलूरियन कल्प (Silurian period) में मिलते हैं। कार्बनी कल्प (Carboniferous period) में ये अच्छी तरह स्थापित थे।

मिलीपीड का रंग सामान्यत गहरा भूरा, या गहरा लाल, होता है। क्षुब्ध होने पर ये अपने शरीर को चौरस गेंडुरी (flattened coil) के रूप में मोड़ लेते हैं। इनका वितरण विश्वव्यापी है। ये आलसी और सुस्त प्राणी होते हैं और अधिकतर नम या अंधकारपूर्ण जगहों में, या सड़े गले लट्ठों, पेड़ों के वल्कल (bark) और चट्टानों के अंदर या नीचे छिपे रहते हैं। ये जमीन के अंदर भी पाए जाते हैं। कुछ विशेष कारणों से, जिनकी पूरी जानकारी नहीं है, मिलीपीड बहुधा दिन में भी बड़ी संख्या में एक साथ चलते हैं। इनका भोजन सामान्यत सड़ा गला वानस्पतिक पदार्थ होता है। कुछ मिलीपीड कृषि की उपज को भी नुकसान पहुँचाते हैं। चूँकि इनके जबड़े कमजोर होते हैं, इसलिये ये केवल सुकुमार ऊतकों, मूलिकाओं (rootlets), या मूलरोमों (root hairs) को ही हानि पहुँचा पाते हैं।

मिलीपीड में लिंग पृथक् होते हैं और निषेचन आतरिक होता है। इनकी निलय संबंधी आदतें (nesting habits) भी अत्यंत रोचक होती हैं। पॉलिडेस्मस (Polydesmus) वंश में मादा अंडा देने के लिये लकड़ी के टुकड़े, या ऐसी ही किसी नम जगह, को चुनती है और अपने विसर्जित मल को गुदा कपाटिका (anal valves) द्वारा डालकर गोल आकृति की दीवार बनाती है। यह प्रक्रिया कुछ दिनों तक चलती रहती है और इस तरह मधुमक्खी के छत्ते (bee-hive) की शक्ल का निलय (nest) बन जाता है और तब मादा इन छत्तों में अंडा रख देती है। अंडा देने के कुछ समय बाद तक भी पालिडेस्मस मादा निलय के चारों तरफ लिपटी रहती है। अंडजउत्पत्ति (hatching) के बाद शावक के शरीर में ६ खंड और ३ जोड़े पैर होते हैं। प्रत्येक निर्मोक (moult) पर गुदाखंड (anal somite) के अग्रभाग में खंड जुड़ते हैं। प्रौढ़ मिलीपीड में कम से कम ९ खंड होते हैं, परंतु बहुत सी जातियों में १०० से भी अधिक खंड होते हैं।

निर्मोचन (moulting) के समय मिलीपीड का जीवन विशेष रूप से भयपूर्ण रहता है, क्योंकि इस समय ये असामान्य रूप से रक्षाहीन रहते हैं। इसलिये जब निर्मोचन की प्रक्रिया आरंभ होती है, तब मिलीपीड एकात स्थान पर गुप्त रूप से रहते हैं और कुछ जातियाँ एक विशेष निर्मोचन गृह का निर्माण करती हैं जहाँ वे सुरक्षित रह सकें।

[प्रे० ना० मे०]

सहस्रबाहु नाम विष्णु, कार्तवीर्यार्जुन तथा बाणासुर का है। इन्हें कभी कभी सहस्रभुज भी कहते हैं। इसी नाम का बलिपुत्र बाणराज भी हुआ है जिसका उल्लेख श्रीमद्भागवत में यों आया है—

'बाण: पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मन: ।

सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवे ह्तोषयन्मृडम्'—स्कंध १०, अध्याय ६२।

[रा० द्वि०]

सहारनपुर १. जिला, यह भारत के उत्तर प्रदेश राज्य का जिला है, जिसका क्षेत्रफल २,१३२ वर्ग मील तथा जनसंख्या १६,१५,४७८

(१९६१) है। इस जिले के उत्तर में शिवालिक पहाड़ियाँ, पूर्व में गंगा नदी, दक्षिण में मुजफ्फरनगर जिला तथा पश्चिम मे यमुना नदी है। यह जिला दोआब का सुदूर उत्तरवर्ती जिला है। यमुना एवं गंगा नदी के अतिरिक्त हिंदान एवं सोलानी जिले की अन्य प्रमुख नदियाँ हैं। जिले की प्रमुख फसलें हैं गेहूँ, जौ तथा गन्ना। भारत के स्वतत्र होने के पश्चात् जिले का औद्योगिक उत्थान हुआ है। ऋषिकेश में ऐंटिबाओटिक कारखाने की स्थापना हाल में ही हुई है। कपास ओटना, सूती वस्त्र बनाना तथा लकड़ी पर नक्काशी करना, जिले के अन्य उद्योग हैं। रुडकी, सहारनपुर एवं हरिद्वार जिले के प्रमुख नगर हैं। जिले में रुड़की तथा गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय हैं।

२ नगर, स्थिति : २९° ५७' उ० अ० तथा ७७° ३३' पू० दे०। दिल्ली से लगभग १०० मील उत्तर पूर्व में सहारनपुर जिले का यह प्रशासनिक केंद्र धमोला नदी के दोनो किनारे पर स्थित है। पधोइ नदी भी नगर से होकर गुजरती है। यहाँ उत्तरी रेलवे का वर्कशॉप है तथा प्रसिद्ध रेलवे जंकशन भी हैं। यह गेहूँ की प्रमुख मडी है। यहाँ एक महाविद्यालय है। नगर की जनसख्या १,८५,२१३ (१९६१) है। [अ० ना० मे०]

सांख्य भारतीय दर्शन के अनेक प्रकारो में से साख्य भी एक है जो प्रचीन काल में अत्यत लोकप्रिय तथा प्रथित हुआ था। भारतीय सस्कृति मे किसी समय साख्य दर्शन का अत्यत ऊँचा स्थान था। देश के उदात्त मस्तिष्क साख्य की विचारपद्धति से सोचते थे। महाभारतकार ने यहाँ तक कहा है कि 'ज्ञान च लोके यदिहास्ति किञ्चित् साख्यागतं तच्च महन्महात्मन् (शाति पर्व ३०१। १०९)। वस्तुत महाभारत में दार्शनिक विचारो की जो पृष्ठभूमि है, उसमे साख्यशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। शाति पर्व के कई स्थलो पर साख्य दर्शन के विचारो का वडे काव्यमय और रोचक ढग से उल्लेख किया गया है। साख्य दर्शन का प्रभाव गीता में प्रतिपादित दार्शनिक पृष्ठभूमि पर पर्याप्त रूप से विद्यमान है। वस्तुत. साख्य दर्शन किसी समय अत्यत लोकप्रिय हो गया था।" (उदयवीर शास्त्री कृत साख्यदर्शन का इतिहास, भूमिका)।

इसकी इस लोकप्रियता के और चाहे जो भी कारण रहे हो पर एक तो यह अवश्य रहा प्रतीत होता है कि इस दर्शन ने जीवन में दिखाई पड़नेवाले वैषम्य का समाधान त्रिगुणात्मक प्रकृति की सर्वकारण रूप में प्रतिष्ठा करके वडे सुंदर ढग से किया। साख्याचार्यों के इस प्रकृति-कारण-वाद का महान् गुण यह है कि पृथक् पृथक् धर्मवाले सत्वो, रजस् तथा तमस् तत्वो के आधार पर जगत् के वैषम्य का किया गया समाधान बडा न्याय्य, युक्त तथा बुद्धिगम्य प्रतीत होता है।

'साख्य' नाम की मीमांसा — 'साख्य' शब्द की निष्पत्ति 'सख्या' शब्द के आगे अण् प्रत्यय जोडने से होती है और सख्या शब्द की व्युत्पत्ति सम + चक्षिङ धातु ख्यान् दर्शन + अङ् प्रत्यय + टाप है जिसके अनुसार इसका अर्थ सम्यक् ख्याति, साधु दर्शन अथवा सत्य ज्ञान है। साख्याचार्यों की यह सम्यक् ख्याति, उनका यह सत्य ज्ञान व्यक्ताव्यक्त रूप द्विविध अचित् तत्व से पुरुष रूप चित् तत्व को पृथक् जान लेने में निहित है। ऊपर ऊपर से प्रपंच में सना हुआ दिखाई पड़ने पर भी पुरुष वस्तुत. उससे अछूता रहता है। उसमे आसक्त या लिप्त दिखाई पडने पर भी वस्तुत अनासक्त या निर्लिप्त रहता है — साख्याचार्यों की यह सबसे बडी दार्शनिक खोज उन्ही के शब्दो मे सत्वपुरुषान्यताख्याति, विवेक ख्याति, व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञान, आदि नामो से व्यवहृत होती है। इसी विवेक ज्ञान से वे मानव जीवन के परम पुरुषार्थ या लक्ष्य की सिद्धि मानते हैं। इस प्रकार 'संख्या', शब्द साख्याचार्यों की सबसे वडी दार्शनिक खोज का वास्तविक स्वरूप प्रकट करनेवाला संक्षिप्त नाम है जिसके सर्वप्रथम व्याख्याता होने के कारण उनकी विचारधारा अत्यंत प्राचीन काल में 'साख्य' नाम से अभिहित हुई। गणनार्थक 'संख्या' शब्द से भी 'साख्य' शब्द की निष्पत्ति मानी जाती है। महाभारत मे सांख्य के विषय में आए हुए एक श्लोक मे ये दोनो ही प्रकार के भाव प्रकट किए गए हैं। वह इस प्रकार है — 'संख्या प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते। तत्वानि च चतुर्विंशद् तेन साख्या. प्रकीर्तिता (महाभा० १२।३११।४२)। इसका शब्दार्थ यह है कि जो सख्या अर्थात् प्रकृति और पुरुष के विवेक ज्ञान का उपदेश करते है, जो प्रकृति का प्रभाव प्रतिपादन करते हैं तथा जो तत्वो की सख्या चौबीस निर्धारित करते हैं, वे साख्य कहे जाते हैं। कुछ लोगो की ऐसी धारणा है कि ज्ञानार्थक 'सख्या' शब्द से की जानेवाली साख्य की व्युत्पत्ति ही मुख्य है, गणनार्थक सख्या शब्द से की जानेवाली गौण। साख्य मे प्रकृति एवं पुरुष के विवेक ज्ञान से ही जीवन के परम लक्ष्य कैवल्य या मोक्ष की सिद्धि मानी गई है, अत उस ज्ञान की प्राप्ति ही मुख्य है और इस कारण से उसी पर साख्य का सारा बल है। सांख्य (पुरुष के अतिरिक्त) चौबीस तत्व मानता है, यह तो एक सामान्य तथ्य का कथन मात्र है, अत गौण है।

उदयवीर शास्त्री ने अपने 'साख्य दर्शन का इतिहास' नामक ग्रंथ में (पृष्ठ ६) साख्यशास्त्र के कपिल द्वारा प्रणीत होने में भागवत ३-२५-१ पर श्रीधर स्वामी की व्याख्या को उद्धृत करते हुए इस प्रकार लिखा है — अंतिम श्लोक की व्याख्या करते हुए व्याख्याकार ने स्पष्ट लिखा है — तत्वाना संख्याता गणकः साख्यप्रवर्तक इत्यर्थः। इससे निश्चित हो जाता है कि यही कपिल साख्य का प्रवर्तक या प्रणेता है। श्रीधर स्वामी के गणक शब्द पर शास्त्री जी ने नीचे दिए गए फुटनोट मे इस प्रकार लिखा है — मध्य काल के कुछ व्याख्याकारो ने 'साख्य' पद मे 'संख्य' शब्द को गणनापरक समझकर इस प्रकार के व्याख्यान किए है। वस्तुत. इसका अर्थ तत्वज्ञान है। परतु गहराई से विचार करने पर यह बात उतनी सामान्य या गौण नही है जितनी आपातत प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत प्राचीन काल में दार्शनिक विकास की प्रारंभिक अवस्था में जब तत्वो की संख्या निश्चित नही हो पाई थी, तब साख्य ने सर्वप्रथम इस दृश्यमान भौतिक जगत् की सूक्ष्म मीमासा का प्रयास किया था जिसके फलस्वरूप उसके मूल मे वर्तमान तत्वो की सख्या सामान्यत. चौबीस निर्धारित की थी। इनमे भी प्रथम तत्व जिसे उन्होने 'प्रकृति' या 'प्रधान' नाम दिया, शेष तेईस का मूल सिद्ध किया गया। चित् पुरुष के

सांख्य ने इसी एक तत्त्व 'प्रकृति' को क्रमश: तेईस अवांतर तत्त्वों में परिणत होकर समस्त जड जगत् को उत्पन्न करती हुई माना था। इस प्रकार तत्त्व संख्या के निर्धारण के पीछे सांख्यों की बहुत बडी बौद्धिक साधना छिपी हुई प्रतीत होता है। आखिर सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा दीर्घ काल तक बिना चिंतन और विश्लेषण किए तत्त्वों की संख्या का निर्धारण कैसे संभव हुआ होगा?

उपर्युक्त विवेचन से ऐसा निश्चय होता है कि सांख्य दर्शन का 'सांख्य' नाम दोनों ही प्रकारों से उसके बुद्धिवादी तर्कप्रधान होने का सूचक है। सांख्यों का अचित् प्रकृति तथा चित् पुरुष, दोनों ही मूलभूत तत्त्वों को आगम या श्रुतिप्रमाण से सिद्ध मानते हुए भी मुख्यत: अनुमान प्रमाण के आधार पर सिद्ध करना भी इसी बात का परिचायक है। आज कल उपलब्ध सांख्य प्रवचन सूत्र एवं सांख्यकारिका, इन दोनों ही मौलिक सांख्य ग्रंथों को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इनमें सांख्य के दोनों ही मौलिक तत्त्वों — प्रकृति एवं पुरुष की सत्ता हेतुओं के आधार पर अनुमान द्वारा ही सिद्ध की गई है (सां० सू० १।१३०-१३७, १४०-१४४, एवं सांख्यकारिका १५ तथा १७)। पुरुष की अनेकता में भी युक्तियाँ ही दी गई हैं (सां० सू० १।१४९, तथा सांख्यकारिका १८)। सत्कार्यवाद की स्थापना भी तर्कों के ही आधार पर की गई है। (सां० सू० १।११४-१२१, ६।५३, तथा सांख्यकारिका ९)। इस प्रकार सांख्यशास्त्र का श्रवण, जो विवेक ज्ञान का मूलाधार है, तर्कप्रधान है। मनन, अनुकूल तर्कों द्वारा शास्त्रोक्त तथ्यों तथा सिद्धांतों का चिंतन है ही। इस प्रकार जिस संख्या या विवेक ज्ञान के कारण सांख्य दर्शन का 'सांख्य' नाम पडा, उसका विशेष संबंध तर्क और बुद्धिवादिता से है। इस बुद्धिवाद के कारण अवांतर काल में सांख्य दर्शन के कुछ सिद्धांत वैदिक संप्रदाय से बहुत कुछ स्वतंत्र रूप से विकसित हुए जिनके कारण बादरायण व्यास तथा शंकराचार्य आदि आचार्यों ने इसका खंडन करते हुए अवैदिक संप्रदाय तक कह डाला। यह संप्रदाय अपने मूल में तो अवैदिक नहीं प्रतीत होता, और अपने परवर्ती (Classical) रूप में भी सर्वथा अवैदिक नही है।

प्रसिद्ध भाष्यकार विज्ञानभिक्षु ने भी सांख्य को आगम या श्रुति का सत् तर्कों द्वारा किया जानेवाला मनन ही माना है। उन्होंने अपने सांख्यप्रवचन-सूत्र-भाष्य की अवतरणिका मे यही बात इस प्रकार कही है — जो एकोऽद्वितीय' इत्यादि पुरुष विषयक वेदवचन जीव का सारा अभिमान दूर करके उसे मुक्त कराने के लिये उस पुरुष को सर्व प्रकार के वैधर्म्य — रूपभेद से रहित बताते हैं उन्हीं वेदवचनों के अर्थ के मनन के लिये अपेक्षित सद् युक्तियों का उपदेश करने के लिये सांख्यकर्ता नारायणावतार भगवान् कपिल आविर्भूत हुए थे।

सांख्य दर्शन की वेदमूलकता — विज्ञानभिक्षु के पूर्व वचनो से स्पष्ट है कि वे सांख्यशास्त्र को वेदानुसारी मानते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि 'एकोऽद्वितीय' इत्यादि वेदवचनो के अर्थ का ही वह सद् युक्तियों एवं तर्कों द्वारा समर्थन करता है, उसका प्रतिपादन और विवेचन करके उसे बोधगम्य बनाता है। विज्ञानभिक्षु ने वस्तुत. लोक में प्रचलित पूर्व परपरा का ही अनुसरण करते हुए अपना पूर्वोक्त मत प्रकट किया है। अत्यंत प्राचीन काल से ही महाभारत-गीता, रामायण, स्मृतियो तथा पुराणो में सर्वत्र सांख्य का न केवल उच्च ज्ञान के रूप में उल्लेख भर हुआ है, अपितु उसके सिद्धांतों का यत्र तत्र विस्तृत विवरण भी हुआ है। गीता मे भी सांख्य दर्शन के त्रिगुणात्मक सिद्धांत को बडी सुंदर रीति से अपनाया गया है। 'त्रिगुणात्मिका प्रकृति नित्य परिणामिनी है। उसके तीनो गुण ही सदा कुछ न कुछ परिणाम उत्पन्न करते रहते हैं, पुरुष अकर्ता है' — सांख्य का यह सिद्धांत गीता के निष्काम कर्मयोग का आवश्यक अंग बन गया है (गीता १३/२७, २९ आदि)। इसी प्रकार अन्यत्र भी सांख्य दर्शन के अनेक सिद्धांत अन्य दर्शनो के सिद्धांतो के पूरक रूप से प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में दृष्टिगोचर होते हैं। इन सब बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि यह दर्शन अपने मूल में वैदिक ही रहा है, अवैदिक नही, क्योंकि यदि सत्य इससे विपरीत होता तो वेदप्राण इस देश में सांख्य के इतने अधिक प्रचार प्रसार के लिये उपयुक्त क्षेत्र न मिलता। इस अनीश्वरवाद, प्रकृति पुरुष द्वैतवाद, (प्रकृति) परिणामवाद आदि तथाकथित वेदविरुद्ध सिद्धांतो के कारण वेदबाह्य कहकर इसका खडन करनेवाले वेदांत भाष्यकार शंकराचार्य को भी ब्रह्मसूत्र २।१।३ के भाष्य में लिखना ही पडा कि 'अध्यात्मविषयक अनेक स्मृतियों के होने पर भी सांख्य योग स्मृतियो के ही निराकरण में प्रयत्न किया गया। क्योंकि ये दोनो लोक में परम पुरुषार्थ के साधन रूप में प्रसिद्ध हैं, शिष्ट महापुरुषो द्वारा गृहीत हैं तथा 'तत्कारणं सांख्य योगाभिपन्नं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशै: या (श्वेता० ६।१३) इत्यादि श्रौत लिंगो से युक्त है।' स्वयं भाष्यकार के अपने साक्ष्य से भी स्पष्ट है कि उनके पूर्ववर्ती सूत्रकार के समय में भी अनेक शिष्ट पुरुष सांख्य दर्शन को वैदिक दर्शन मानते थे तथा परम पुरुषार्थ का साधन मानकर उसका अनुसरण करते थे। इन सब तथ्यों के आधार पर सांख्य दर्शन को मूलत वैदिक ही मानना समीचीन है। हाँ, अपने परवर्ती विकास में यह अवश्य ही कुछ मूलभूत सिद्धांतो मे वेदविरुद्ध हो गया है जैसे उत्तरवर्ती सांख्य वैदिक परंपरा के विरुद्ध निरीश्वर है, उसकी प्रकृति स्वतंत्र रूप से स्वत समस्त विश्व की सृष्टि करती है। परंतु इस दर्शन का मूल प्राचीनतम छांदोग्य एवं बृहदारण्यक उपनिषदो मे प्राप्त होता है। इसी से इसकी प्राचीनता सुस्पष्ट है।

सांख्य संप्रदाय — इस दर्शन के दो ही मौलिक ग्रंथ आज उपलब्ध हैं — पहला छह अध्यायो वाला 'सांख्य-प्रवचन सूत्र' और दूसरा सत्तर कारिकाओंवाला 'सांख्यकारिका'। इन दो के अतिरिक्त एक अत्यंत लघुकाय सूत्रग्रंथ भी है जो 'तत्त्वसमास' के नाम से प्रसिद्ध है। शेष समस्त सांख्य वाङ्मय इन्हीं तीनो की टीका और उपटीका मात्र हैं। इनमे सांख्यसूत्रों के उपदेष्टा परंपरा से कपिल मुनि माने जाते हैं। कई कारणो से उपलब्ध सांख्य-प्रवचन-सूत्रों को विद्वान् लोग कपिलकृत नही मानते। इतनी बात अवश्य ही निश्चित है कि इन सूत्रों को कपिलोपदिष्ट मानने पर भी इनके अनेक स्थलो को स्वयं सूत्रों के ही अंत:साक्ष्य के बल पर प्रक्षिप्त मानना पडेगा। सांख्यकारिकाएँ ईश्वरकृष्ण

द्वारा रचित हैं, जिनका समय बहुमत से ई० तृतीय शताब्दी का मध्य माना जाता है। वस्तुत. इनका समय इससे पर्याप्त पूर्व का प्रतीत होता है। कपिल के शिष्य आसुरि का कोई ग्रंथ नही बताया जाता, परतु इनके प्रथित शिष्य आचार्य पचशिख के नाम से अनेक सूत्रो के व्यासकृत योगभाष्य आदि प्राचीन ग्रथो मे उद्धृत होने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनके द्वारा रचित कोई सूत्रग्रथ अति प्राचीन काल में प्रसिद्ध था। अनेक विद्वानों के मत से यह प्रसिद्ध ग्रथ षष्ठितंत्र ही था। उदयवीर शास्त्री के मत से वर्तमान काल मे उपलब्ध षडध्यायी सांख्य-प्रवचन-सूत्र ही षष्ठि (साठ) पदार्थों का निरूपण करने के कारण 'षष्ठितत्र' के नाम से भी ज्ञात था। उनके मत से संभवत कपिल मुनि के प्रशिष्य पचशिखाचार्य ने उसपर व्याख्या लिखी थी और वह भी मूलग्रथ के ही नाम पर षष्ठितंत्र कही जाती थी। कुछ विद्वानो के मत से 'षष्ठितत्र' प्रसिद्ध सांख्याचार्य वार्षगण्य का लिखा हुआ है। जैगीषव्य, देवल, असित इत्यादि अन्य अनेक प्राचीन सांख्याचार्यो के विषय मे आज कुछ विशेष ज्ञान नही है।

सांख्य के प्रमुख सिद्धांत — सांख्य दृश्यमान विश्व को प्रकृति-पुरुष मूलक मानता है। उसकी दृष्टि से केवल चेतन या केवल अचेतन पदार्थ के आधार पर इस चिदचिदात्मक जगत् की सतोषप्रद व्याख्या नही की जा सकती। इसीलिये लोकायतिक आदि जडवादी दर्शनो की भाँति सांख्य न केवल जड पदार्थ ही मानता है और न अनेक वेदात संप्रदायो की भाँति वह केवल चिन्मात्र ब्रह्म या आत्मा को ही जगत् का मूल मानता है। अपितु जीवन या जगत् में प्राप्त होनेवाले जड एवं चेतन, दोनो ही रूपो के मूल रूप से जड प्रकृति, एव चिन्मात्र पुरुष इन दो तत्वो की सत्ता मानता है। जड प्रकृति सत्व, रजस् एव तमस्, इन तीनो गुणो की साम्यावस्था का नाम है। ये गुण 'चल च गुणवृत्तम्' न्याय के अनुसार प्रतिक्षण परिणामी हैं। इस प्रकार सांख्य के अनुसार सारा विश्व त्रिगुणात्मक प्रकृति का वास्तविक परिणाम है, शांकर वेदात की भाँति भगवन्माया का विवर्त, अर्थात् असत् कार्य अथवा मिथ्याविलास नही है। इस प्रकार प्रकृति को पुरुष की ही भाँति अज और नित्य मानने, तथा विश्व को प्रकृति का वास्तविक परिणाम सत् कार्य मानने के कारण सांख्य सच्चे अर्थों मे वाह्यार्थवादी या वस्तुवादी दर्शन हैं। किंतु जड वाह्यार्थवाद भोग्य होने के कारण किसी चेतन भोक्ता के अभाव मे अपार्थक या अर्थशून्य अथवा निष्प्रयोजन है, अत. उसकी सार्थकता के लिये सांख्य चेतन पुरुष या आत्मा को भी मानने के कारण अध्यात्मवादी दर्शन है। मूलत. दो तत्व मानने पर भी सांख्य परिणामिनी प्रकृति के परिणाम स्वरूप तेईस अवातर तत्व भी मानता है। इसके अनुसार प्रकृति से महत् या बुद्धि, उससे अहकार, तामस, अहकार से पंचतन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गध) एवं सात्विक अहकार से ग्यारह इद्रिय (पच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेद्रिय तथा उभयात्मक मन) और अत में पचतन्मात्रो से क्रमश. आकाश, वायु, तेजस्, जल तथा पृथ्वी नामक पच महाभूत, इस प्रकार तेईस तत्व क्रमश उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार मुख्यामुख्य भेद से सांख्य दर्शन २५ तत्व मानता है। जैसा पहले सकेत कर चुके हैं, प्राचीनतम सांख्य ईश्वर को २६वाँ

तत्व मानता रहा होगा। इसके साक्ष्य महाभारत, भागवत इत्यादि प्राचीन साहित्य मे प्राप्त होते हैं। यदि यह अनुमान यथार्थ हो तो सांख्य को मूलत ईश्वरवादी दर्शन मानना होगा। परंतु परवर्ती सांख्य ईश्वर को कोई स्थान नहीं देता। इसी से परवर्ती साहित्य मे वह निरीश्वरवादी दर्शन के रूप में ही उल्लिखित मिलता है।

[आ० प्र० मि०]

सांख्यिकी (Statistics) सभ्यता की गति में अंको का योगदान बडा ही महत्त्वपूर्ण रहा है और अंकपद्धति के विकास का बहुत बडा श्रेय भारत को प्राप्त है। मनुष्य के ज्ञान की प्रत्येक शाखा अंको की ऋणी है।

सांख्यिकी का विज्ञान भी बहुत कुछ काम अंको से लेता है, जिन्हे 'आँकड़े' कहते हैं, परतु इन अको के कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं।

स्टैटिस्टिक्स शब्द की व्युत्पत्ति का पता लगाते समय इसके नाम मे आज तक हुए अनेक क्रांतिकारी परिवर्तनो को जानकर आश्चर्य होता है। प्राचीन काल में राज्यो के तुलनात्मक वर्णन के लिये स्टैटिस्टिक्स शब्द का प्रयोग होता था, जिसमे अंको या आँकडो का कोई स्थान ही नही होता था। स्टैटिस्टिक्स शब्द का मूल लैटिन शब्द स्टेटस (इतालवी भाषा 'स्टेटो', जर्मन 'स्टैटिस्टिक') है, जिसका अर्थ है राजनीतिक राज्य। १८ वी शती तक इस शब्द का अर्थ किसी राज्य की विशेषताओ का विवरण था। अतएव कुछ प्राचीन लेखको ने स्टैटिस्टिक्स को राज्यविज्ञान के नाम से निरूपित किया है।

क्रमश इस शब्द को मात्रात्मक सार्थकता प्राप्त हुई, और दो विभिन्न अर्थों मे इसका प्रयोग चलता रहा। एक ओर यह अको से निरूपित 'जन्म और मृत्यु आँकडे' जैसे तथ्यो से और दूसरी ओर अकात्मक आँकडो से उपयोगी निष्कर्ष निकालने के विधिनिकाय, अर्थात् विज्ञान से सबधित था। १९ वी शती के अतिम काल से हमे 'उज्वल, सामान्य, मद' आदि शीर्षको मे बच्चो की सांख्यिकी जैसे विवरण मिलते हैं, जिनसे इस ज्ञानशाखा की परिमाणोन्मुखता (quantitative direction) स्पष्ट होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति की विशिष्ट शाखा के रूप में सांख्यिकी का सिद्धात अपेक्षाकृत अभिनव उपज है। इसका मूल रूप लाप्लास और गाउस की कृतियो में ढूँढा जा सकता है, लेकिन इसका अध्ययन १९ वी शती के चौथे चरण मे जाकर समृद्ध हुआ। गाल्टन और कार्ल पियर्सन के प्रभाव से इस विज्ञान मे विलक्षण प्रगति हुई और आगामी तीन दशको मे इस विज्ञान की आधारशिलाएँ सुदृढ हो गईं। यह कह देना उचित है कि दिन दिन नए नए क्षेत्रों में प्रयुक्त होनेवाले इस विषय की इमारत अभी तेजी से बनने की स्थिति मे है। शोधकार्य, वह भी विशेषत. सांख्यिकी के गणितीय सिद्धात में, ऐसी तेजी से हो रहा है और नए तथ्य ऐसी तीव्र गति से सामने आ रहे हैं कि उन सबकी जानकारी रखना भी कठिन हो रहा है। मानव ज्ञान और क्रिया के विविध क्षेत्रो में इस विषय की प्रयुक्ति दिन दिन बढ रही है और बड़ी उपयोगी सिद्ध हो रही है।

बाह्य विश्व की उलझी हुई जटिलताओ से नियमो के परिपालन

का ज्ञान प्राप्त करना विज्ञान के प्रमुख उद्देश्यों में से है, जिससे कुछ मौलिक सिद्धांतों के आधार पर विविध प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या की जा सके। इन नियमों के परिचालन के ज्ञान से हमें 'कारण' और 'प्रभाव' के संबंध में जानकारी होती है। किसी सुनियोजित प्रयोग में हम प्राय. कारणों की जटिल पद्धति के स्थान पर सरल पद्धति की स्थापना कर सकते हैं, जिसमें एक बार में एक ही कारण से परिस्थिति का विचरण कराया जाता है। यह संभवत आदर्श स्थिति है और बहुत से क्षेत्रों में इस प्रकार का प्रयोग संभव नहीं है। उदाहरण के लिये, प्रेक्षक सामाजिक तथ्यों का प्रयोग नहीं कर सकता और उसे उन परिस्थितियों को, जो उसके वश में नहीं हैं, ज्यों का त्यों लेकर चलना पड़ता है।

सांख्यिकी अनेक कारणों से प्रभावित आँकड़ों से संबंधित है। कारणों के जंजाल से एक के अतिरिक्त बाकी सभी कारणों को छाँटकर सुलझाना प्रयोगों का उद्देश्य है। यह सभी स्थितियों में संभव न होने के कारण विश्लेषण के लिये सांख्यिकी में कारणसमूह के प्रभावाधीन आँकड़ों को स्वीकार किया जाता है और आँकड़ों से ही यह भी जानने की कोशिश की जाती है कि कौन कौन से कारण महत्व के हैं और इनमें से प्रत्येक कारण के परिचालन से प्रेक्षित प्रभाव पर किसका कितना असर पड़ा है। इसी में हमारे ज्ञान की इस शाखा की विलक्षण और विशिष्ट शक्ति है, जिससे इसकी समृद्धि हुई है और यह प्राय: सर्वव्यापक हो गई है।

उदाहरणार्थ, मान लें कि गेहूँ की उपज पर विभिन्न खादों का प्रभाव हमें ज्ञात करना है। इसके लिये यह पर्याप्त नहीं है कि खादों की संख्या के बराबर भूखंड चुनकर, प्रत्येक भूखंड में एक एक खाद के उपचार से फसल उगाई जाय और उपज में जो अंतर हो, उसे खाद के प्रभाव का मापक मान लिया जाय, क्योंकि यह सिद्ध किया जा सकता है कि एक ही खाद के प्रभाव से भिन्न भिन्न भूखंडों में उपज भिन्न होती है। भूखंडों में उपज की भिन्नता के कारण अनेक होते हैं। विभिन्न मात्रा में खाद के प्रभाव का अध्ययन किया जाय, अर्थात् विभिन्न तलों, विभिन्न ग्रामों और विभिन्न वर्षों में प्रयोग किए जाएँ, तो अध्ययन और भी जटिल हो जाता है। लेकिन 'विचरण का विश्लेषण' (Analysis of Variance) नामक विशिष्ट सांख्यिक विधि के द्वारा, जिसका मुख्य श्रेय आर० ए० फिशर (R. A Fisher) को है, हम समग्र विचरण को खंडित करके, भिन्न भिन्न कारणों से विचरण निकालकर, वैध निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं। आजकल कृषि के अतिरिक्त कई दूसरे क्षेत्रों में भी इस प्रविधि का प्रयोग हो रहा है।

व्यष्टि का अध्ययन न करके, समष्टि नाम से अभिहित समूह या समुदाय का अध्ययन करना सांख्यिकी विज्ञान की मौलिक धारणा है। इसकी परिभाषा हम वैज्ञानिक पद्धति की उस शाखा के रूप में कर सकते हैं जो गिनकर या मापकर प्राप्त समष्टिगत गुणों का, जैसे किसी मनुष्यवर्ग की ऊँचाई या भार से, किसी खास थान में निर्मित धागों की तनाव सामर्थ्य जैसी प्राकृतिक घटनाओं के आँकड़ों से, या अंत में आवृत्ति क्रिया (repetitive operation) से प्राप्त किसी भी प्रयोगात्मक आँकड़े का अध्ययन करती है।

अत सांख्यिकीविद् का पहला कर्तव्य आँकड़ों का संग्रह करना है। यह वह स्वयं कर सकता है, या अन्य उद्देश्य से एकत्रित दूसरे के आँकड़ों का प्रयोग कर सकता है। पहले प्रकार के आँकड़ों को प्रधान और दूसरे प्रकार के आँकड़ों को गौण कहते हैं। आँकड़ों का प्रयोग कर किसी परिणाम पर पहुँचने के पूर्व, उनकी विश्वसनीयता की जाँच कर लेनी चाहिए।

सांख्यिकीय अध्ययन का दूसरा कदम एकत्रित आँकड़ों का वर्गीकरण और सारणीकरण है। यदि प्रेक्षणों की संख्या अधिक है, तो आँकड़ों का वर्गीकरण अभीष्ट ही नहीं, आवश्यक भी है। संघनन करते समय कुछ मात्रा में सूचनाओं का त्याग करना पड़ता है। किंतु मस्तिष्क बृहद् अंकराशि का अर्थ समझने में असमर्थ होता है, अत आँकड़ों से निरूपित तथ्य का अधिमूल्यन करने के लिये संघनन आवश्यक है। संघनन के बाद आँकड़ों को *बारंबारता-बंटन-सारणी* के रूप में निरूपित करते हैं।

इस सारणी से निरूपक संख्याओं को, जो एकल संख्याएँ होती हैं, पहचानना सरल है और माध्य (mean), माध्यमिक (median), बहुलक (mode) आदि से आँकड़ों की केंद्रीय प्रवृत्ति तथा मानक विचलन (standard deviation) द्वारा आँकड़ों के अपकिरण और विचरण आदि गुणों को निरूपित करते हैं।

आँकड़ों को वक्र रेखाचित्रों, चित्रलेखों (pictograms) आदि द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है और इस प्रकार के प्रस्तुतीकरण से प्राय मस्तिष्क को आँकड़ों की सार्थकता ग्रहण करने में सुविधा होती है।

सांख्यिकीविद् का इसके बाद का काम है आँकड़ों का विश्लेषण करना और अन्य ज्ञात श्रेणियों से उसका संबंध स्थापित करना। इसके बाद आया है आँकड़ों की व्याख्या, भविष्यवाणी, अनुमान और अंत में पूर्वानुमान (forecasting)। कुछ सांख्यिकीविद् पूर्वानुमान को सांख्यिकीविद् का कर्तव्य नहीं मानते, लेकिन अधिकांश मानते हैं।

किसी जनसंख्या की समष्टि के अध्ययन में, प्रत्येक सदस्य का अलग अलग अध्ययन, संख्या की विपुलता और श्रम तथा लागत के अपव्यय के कारण व्यावहारिक नहीं ठहरता। अत जनसमुदाय के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने के लिये, हम सदस्यों के चयन का, जिन्हें प्रतिदर्श कहते हैं, अध्ययन करते हैं। प्रतिदर्श मूल समष्टि की जानकारी प्रदान करता है। सूचना निरपेक्ष निश्चितता के रूप में हो, ऐसी आशा नहीं की जा सकती। इसे *प्रायः संभाविता* के रूप में ही प्रकट करते हैं। सांख्यिकी के इस भाग को *आगणन* (estimation) कहते हैं।

सांख्यिकीविद् को कुछ प्राथमिक कार्यों के लिये, जैसे संचयन, वर्गीकरण, सारणीकरण, लेखाचित्रीय उपस्थापन (presentation) आदि के लिये विशिष्ट प्रशिक्षण के साथ ही प्रारंभिक गणित की भी आवश्यकता होती है और बाद में आगणन, अनुमान और पूर्वानुमान के लिये उच्च गणित और संभाविता के सिद्धांत की सहायता लेनी पड़ती है।

साँची (देखें पृष्ठ ११)

स्तूप
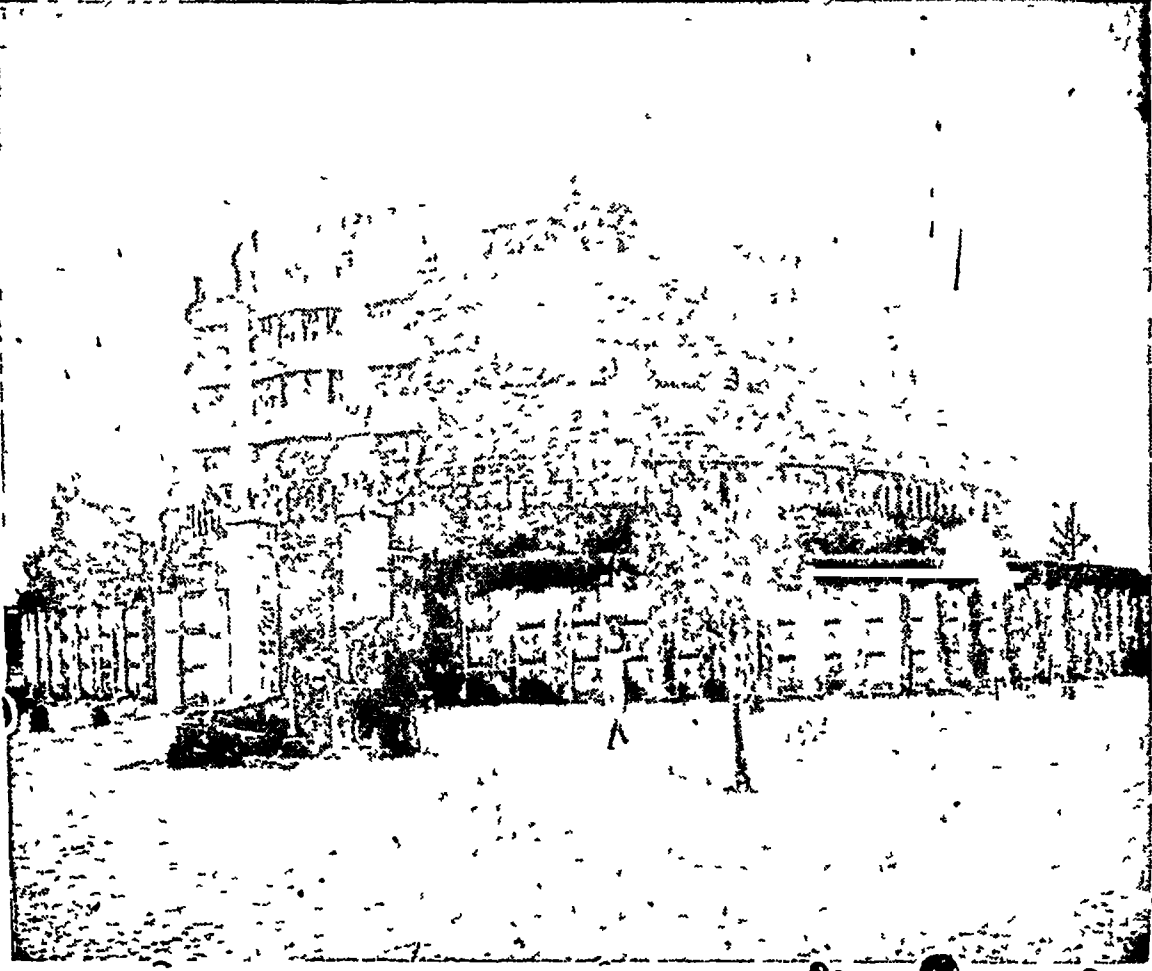
प्रवेशद्वार

अर्थशास्त्र, समाजविज्ञान और वाणिज्य के क्षेत्रों में, बेरोजगारी बढ़ रही है या घट रही है, भवनों की कमी है, और यदि है, तो किस सीमा तक, कुपोषण हो रहा है या नहीं, मद्यपान से अपराधों मे कमी हुई है या नहीं, आदि प्रश्नों का समाधान सांख्यिकी के द्वारा होता है।

जननविज्ञान, जीवविज्ञान और कृषि मे सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग अब अनिवार्य हो चला है। जीवविज्ञान में एक नई शाखा जीव सांख्यिकी निकला है, जिसके अंतर्गत जीवविज्ञानीय विचरणों का सांख्यिक अध्ययन किया जाता है।

कुछ प्रागैतिहासिक नरखोपड़ियाँ किसी एक मानवविज्ञान के जाति की हैं या दो विभिन्न जातियों की, मानवविज्ञान के इस दु साध्य प्रश्न का हल निकालने मे कार्ल पियर्सन ने सर्वप्रथम सांख्यिकी का प्रयोग किया था।

मनोविज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिये, मानव मस्तिष्क का अध्ययन करते समय, बुद्धि, विशेष योग्यता और अभिरुचि आदि के संदर्भ में सांख्यिकीय तकनीकी की सहायता ली जाती है।

चिकित्सा के क्षेत्र में सांख्यिकीय आँकड़े और विधियाँ दोनों ही परम उपयोगी हैं। महामारीविज्ञान (epidemiology) और जनस्वास्थ्य में आँकड़ों की आवश्यकता पड़ती है और किसी नई ओषधि या टीके (inoculation) की दक्षता का पता लगाने के लिये आयुर्वैज्ञानिक अनुसंधान मे सांख्यिकीय विधियों के ज्ञान की आवश्यकता होती है।

ज्योतिष, बीमा और मौसमविज्ञान, सांख्यिकी की लाभप्रद युक्तियों के अन्य क्षेत्र हैं। सांख्यिकी का प्रयोग यदाकदा साहित्य में भी हुआ है। कुछ समय पूर्व तक ऐसी धारणा थी कि भौतिकी, रसायन और इंजीनियरी में सांख्यिकी की कोई आवश्यकता नहीं है। इन यथार्थ विज्ञानों में सांख्यिकीय सिद्धांतों के प्रयोग से सचमुच बहुत बड़ी क्रांति हुई है। सांख्यिकीय गुण नियंत्रण, जो उत्पादन इंजीनियरी के अंतर्गत सांख्यिकीय विधियों का अनुकूलन है, इसी क्रांति की देन है। बाढ नियंत्रण, सड़क सुरक्षा, टेलीफोन, यातायात आदि की समस्याओं में सांख्यिकीय प्रणालियों का प्रयोग सफल रहा है।

भविष्य में सांख्यिकी का और भी व्यापक प्रसार संभव है। कुछ विषयों के लिये यह मौलिक महत्व के विचार, और कुछ के लिये अनुसंधान की शक्तिशाली विधियाँ, प्रदान करती है। बिना खंडन की आशंका के कहा जा सकता है कि सांख्यिकी सर्वव्यापी विषय बनता जा रहा है। [प्रा० ना०]

सांगली १. जिला, भारत के महाराष्ट्र राज्य का जिला है। इसके पूर्व एवं दक्षिण में मैसूर राज्य और पूर्व-उत्तर में शोलापुर, उत्तर-पश्चिम में सतारा, पश्चिम में रत्नागिरी तथा पश्चिम-दक्षिण मे कोल्हापुर जिले स्थित हैं। इस जिले का क्षेत्रफल ३,२९९ वर्ग मील तथा जनसंख्या १२,३०,७१६ (१९६१) है। सांगली नामक देशी राज्य अब इस जिले में ही विलीन हो गया है। यहाँ की जलवायु दक्कन के समान है और पूर्वी हवाओं के चलने पर वायु बहुत शुष्क हो जाती है। यहाँ की मिट्टी उपजाऊ एवं काली है। जिले मे गेहूँ, चना, ज्वार, बाजरा, धान तथा कपास की खेती की जाती है। जिले में सूती मोटे वस्त्रों की बुनाई की जाती है। जिले के एक भाग की सिंचाई कृष्णा नदी द्वारा होती है। सांगली एवं मिराज जिले के प्रमुख नगर हैं।

२. नगर, स्थिति : १६° ५२' उ० अ० तथा ७४° ३६' पू० दे०। यह उपर्युक्त जिले का प्रशासनिक नगर है और पहले यह सांगली राज्य की राजधानी था। कृष्णा नदी के किनारे वार्न (Varna) के संगम से थोड़ा उत्तर में यह नगर स्थित है। यहाँ की सड़कें चौड़ी हैं और यह व्यापारिक नगर है। नगर की जनसंख्या ७३,८३८ (१९६१) है। [अ० ना० मे०]

साँची स्थिति : २३° २९' उ० अ० तथा ७७° ४५' पू० दे०। यह गाँव भारत के मध्य प्रदेश राज्य के सिहोर जिले में स्थित है। यहाँ प्राचीन स्तूप तथा अन्य भग्नावशेष हैं, जिनके कारण यह स्थान प्रसिद्ध है। सन् १८१८ में जनरल टेलर को पहले पहल इन स्तूपों एवं भग्नावशेषों का पता चला और सन् १८१९ मे कैप्टन फेल न इनका विवरण दिया।

साँची ग्राम बलुआ पत्थर की ३०० फुट ऊँची, समतल चोटीवाली पहाड़ी पर स्थित है। समतल चोटी के मध्य में और पहाड़ी की पश्चिमी ढलान की ओर जानेवाली संकीर्ण पट्टी पर मुख्य अवशेष हैं, जिनमे वृहत् स्तूप, चैत्य तथा कुछ समाधियाँ सम्मिलित हैं। वृहत् स्तूप पहाड़ी के मध्य में स्थित है। यह स्तूप ठोस, गोलीय खड है और लाल बलुआ पत्थरों का बना हुआ है। आधार पर स्तूप का व्यास ११० फुट है। आधार से बाहर की ओर ढलानवाली, १५ फुट ऊँची पटरी (berm) है, जो स्तूप के चारों ओर ५½ फुट चौड़ा प्रदक्षिणा-पथ बनाती है और इस पटरी के कारण आधार का व्यास १२१ फुट, ६ इंच हो जाता है। स्तूप का शीर्ष समतल है और मूलत. इस समतल पर पत्थर की वेष्टनी तथा प्रचलित कलश था। यह वेष्टनी सन् १८१९ तक थी। जब स्तूप पूर्ण था, तब उसकी ऊँचाई अवश्य ही ७७½ फुट रही होगी। स्तूप के चारों ओर पत्थर की वेष्टनी लगी है, जिसमें चार प्रवेशद्वार हैं और इनपर सजावटी एवं चित्रमय खुदाई है। उत्तर और दक्षिण की ओर एक पत्थर वाले दो स्तंभ थे जिनपर सम्राट् अशोक की राजाज्ञाएँ खुदी हुई थी। इनमे से एक पूर्वी द्वार पर सन् १८६२ तक था और उसकी लंबाई १५ फुट २ इंच थी। प्रत्येक द्वार के अंदर ध्यानी बुद्ध की लगभग मानवाकार मूर्तियाँ हैं, पर ये अपने मूल स्थान से हट गई हैं।

संपूर्ण स्मारक के प्रमुख आकर्षण, चारों दिशाओं में स्थित, चार प्रवेश द्वार हैं। स्तंभ के तीसरे शहतीर तक इनमें से प्रत्येक की ऊँचाई २८ फुट ५ इंच तथा ऊपर के अलंकरण तक कुल ऊँचाई ३२ फुट ११ इंच है। ये द्वार सफेद बलुआ पत्थर के बने हैं और इन पर बुद्ध संबंधी लोककथाओं एवं जातक कथाओं के दृश्य अंकित हैं। इन दृश्यों में भगवान् बुद्ध को प्रतीकों (चरण चिह्न या बोधि वृक्ष) द्वारा व्यक्त किया गया है। कालांतर के बौद्ध शिल्प में ध्यानावस्थित या उपदेश देते हुए बुद्ध की मूर्तियों का

जल में पड़ी तिरछी दिखाई देनेवाली लकडी के लिये संदेह नही किया जा सकता है, संदेह यह हो सकता है कि प्रतीति का संबंध किसी सत्तात्मक लकडी से है या नही। यदि दिखाई देनेवाली वस्तु की सत्ता से विश्वास हटा लिया जाय और प्रतीत होनेवाले सार से ही संतोष करें और उसका कोई अर्थ लगाने का प्रयत्न न करें तो त्रुटि और भ्रांति से बचा जा सकता है। किंतु पाशविक प्रवृत्ति, जो जीवन के लिये आवश्यक है, ऐसा नही करने देती।

इस प्रकार मन का सीधा संबंध संवेद्य विषयो (सेंस डेटा) से है जिनसे ज्ञान संपादित होता है। भौतिक वस्तु की सत्ता मन से स्वतंत्र है। वे सवेद्य विषयो के माध्यम से जाने जाते हैं। भौतिक वस्तुओ की गणना सवेद्य विषयो से भिन्न है।

'स्केप्टीसिज्म ऐंड ऐनिमल फेथ' मे सातयाना ने 'प्रतिनिधि वस्तुवाद' (रिप्रेजेंटेटिव रियलिज्म) का प्रतिपादन किया है। उसमे सातयाना ने स्पष्ट किया है कि सवेद्य विषय कोई सत्तात्मक वस्तु नही है। प्रत्यक्ष और असंदिग्ध ज्ञान के विषय केवल सार हैं। इनकी स्थिति प्लेटो के प्रत्ययो की भाँति है। गणना मे वे अनत हैं और उनका मूल्य तटस्थ है। इनके बिना वस्तु का ज्ञान नही हो सकता। सातयाना की दृष्टि मे वस्तुओ को अतर्ज्ञान से जानना निरर्थक है। उनका वस्तुवाद प्रतिनिधिवादी होने पर भी ज्ञान में उनकी आस्था कम नही है क्योकि वह ज्ञेय वस्तुओ की सत्ता पहले से ही आवश्यक मानते हैं। वस्तु की सत्ता का ज्ञान सातयाना को सवेद्य विषयो के द्वारा अनुमान से नही होता बल्कि प्राणिविश्वास (ऐनिमल फेथ) से होता है। इस प्रकार ज्ञान एक विश्वास है जो सब प्राणियो में स्वभावत. है।

सातायाना के दर्शन में मौखिक सिद्धांत ही नही वरन् कल्याणकारी जीवन के स्वरूप और कला तथा नैतिकता के मूल्यनिर्धारण की प्रधानता है। वे दार्शनिक होने के साथ कवि और साहित्यालोचक भी हैं। 'इंटरप्रिटेशन ऑव पोयटरी ऐंड रिलीजन' (१९००) ग्रंथ में उन्होने काव्यालोचन के सिद्धांत निरूपित किए है कविता में चार तत्व—शब्दसौंदर्य, मृदु उक्तिचयन, गहन अनुभूति और बौद्धिक परिकल्पना आवश्यक है। उच्च कोटि का काव्य दार्शनिक या धार्मिक भावनाओ से प्लावित होता है। कवि की उदात्त मनोदशा मे काव्य और धर्म पर्याय बन जाते हैं। सातयाना ने स्वय कई सोनेट लिखे और प्रबंधरचनाएँ की हैं। 'ए हरमिट ऑव कारमेल ऐंड अदर पोएम्स' मे उनकी काव्यरचनाएँ संगृहीत हैं।

सातयाना ने अपने आलोचको की भी आलोचना की है। उनको सब प्रकार से प्रभावहीन करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि उनकी प्रवृत्ति रचनात्मक से अधिक आलोचनात्मक रही है। [हृ० ना० मि०]

सांदीपनि ऋषि जिनके आश्रम मे कृष्ण और सुदामा दोनो पढते थे। ऋषि के पुत्र को पचजन नामक एक राक्षस ने चुरा लिया। यह राक्षस पाताल मे रहता था और जब श्रीकृष्ण ने इसे मारकर ऋषिपुत्र की रक्षा की तो राक्षस की हड्डी से पाचजन्य नामक शख बनवाया जिसका उल्लेख श्रीमद्भगवद्गीता मे हुआ है। इन ऋषि का आश्रम उज्जयिनी के पास था। [रा० द्वि०]

सांभर झील स्थिति : २६° ५०' उ० अ० तथा ७५° ३' पू० दे०। भारत के राजस्थान राज्य में जयपुर नगर के समीप स्थित यह लवण जल की झील है। यह झील समुद्रतल से १,२०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। जब यह भरी रहती है तब इसका क्षेत्रफल ९० वर्ग मील रहता है। इसमे तीन नदियाँ आकर गिरती हैं। इस झील से बड़े पैमाने पर नमक का उत्पादन किया जाता है। अनुमान है कि अरावली के शिष्ट और नाइस के गर्तों में भरा हुआ गाद (silt) ही नमक का स्रोत है। गाद मे स्थित विलयशील सोडियम यौगिक वर्षा के जल मे घुलकर नदियो द्वारा झील मे पहुँचता है और जल के वाष्पन के पश्चात् झील में नमक के रूप में रह जाता है। [अ० ना० मे०]

सांसोविनो, आंद्रिया कोंतुच्ची देल मोंते (१४६०-१५२९) फ्लोरेंटाइन मूर्तिकार और भवनशिल्पी। अरेज्जो के समीप मोंटे सासोविनो में वह पैदा हुआ, इसलिये उसका यही नाम प्रसिद्ध हो गया। कलागुरु पोलाइउला एंटोनियो का वह शिष्य था। पद्रहवी शताब्दी की फ्लोरेंस शैली पर सर्वप्रथम उसने टेराकोटा तथा संगमरमर पर मोंटे सासोविनो और फ्लोरेंस के गिरजाघरो में अनेक धार्मिक और प्राचीन आख्यानो तथा बाइबिल के कथा-प्रसंगो का चित्रण किया। 'वर्जिन का राज्यारोहण', 'पियता' और 'अतिम भोजन' जैसे चित्राकनो के अतिरिक्त उसने अनेक प्रस्तरमूर्तियो का भी निर्माण किया। १४४० ई० मे सम्राट् जान द्वितीय द्वारा उसे पुर्तगाल आने का आमत्रण मिला। कोयंब्रा के विशाल चर्च मे अब भी उसकी बनाई कुछ मूर्तियाँ मिलती हैं।

इन प्रारंभिक चित्राकनो और मूर्तिशिल्प में दोनातेल्लो का विशेष प्रभाव द्रष्टव्य है, किंतु फ्लोरेंटाइन बैपटिस्ट्री के उत्तरी द्वार पर सेंट जॉन और ईसा की कतिपय प्रतिमाओ में रुढिवादी प्राचीन पद्धति भी अपनाई गई है। एक वर्ष तक वह वोल्टेरा मे सगमरमर पर कार्य करता रहा और जेनोआ चर्च में वर्जिन और जॉन दि बैप्टिस्ट की मूर्तियो का निर्माण किया। उसने कुछ गिरजाघरो मे समाधियाँ और स्मारक भी बनाए जिनमे एस मेरिया हेल पोपोलो चर्च की समाधि उसकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। १५१२ ई० मे सेंट एनी के साथ मेडोना और बालक क्राइस्ट की ग्रूप मूर्तियाँ उसने अकित की। १५१३ से १५२८ तक लोरेटो में रहा जहाँ साताकासा के बहिर्भाग और कक्षस्तंभो पर उभरा हुआ चित्राकन और प्रस्तर प्रतिमाएँ गढ़ी। अनेक सहायको से उसे मदद मिली, फिर भी उसकी अपनी कार्यप्रणाली और कलाटेक्नीक निराली है। सुप्रसिद्ध समकालीन इटालियन मूर्तिकार और भवनशिल्पी जोकोपॉसासोविनो इसी का शिष्य था। [श० गु०]

सांस्कृतिक मानवशास्त्र मानवशास्त्र अथवा नृतत्व विज्ञान मानव और उसके कार्यों का अध्ययन है। इसके दो प्रमुख अंग हैं। मनुष्य का प्राणिशास्त्रीय अध्ययन, उसका उद्भव एवं विकास, मानव-शरीर-रचना, प्रजननशास्त्र एव प्रजाति इत्यादि शारीरिक मानवशास्त्र के अंतर्गत हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समूहो मे रहता है। विश्व के समस्त जीवधारियो में

केवल वही संस्कृति का निर्माता है। इस विशेषता का मूल कारण है भाषा। भाषा के ही माध्यम से एक पीढ़ी की संचित अनुभूति भविष्य की पीढ़ियों को मिलती है। प्रत्येक पीढ़ी की संस्कृति का विकास होता है। संस्कृति परिसर का वह भाग है जिसका निर्माण मानव स्वयं करता है। ई० बी० टाइलर के अनुसार संस्कृति उस समुच्चय का नाम है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नीति विधि, रीतिरिवाज तथा अन्य ऐसी क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में जानता है।

सांस्कृतिक मानवशास्त्री उन तरीकों का अध्ययन करता है जिनसे मानव अपनी प्राकृतिक एवं सामाजिक स्थिति का सामना करता है, रस्म रिवाजों को सीखता और उन्हें एक पुश्त से अगली पुश्त को प्रदान करता है। भिन्न भिन्न संस्कृतियों में एक ही साध्य के कई साधन हैं। पारिवारिक संबंधों का संगठन, मछली पकड़ने के फंदे तथा जगत् के निर्माण के सिद्धांत प्रत्येक समाज में अलग अलग हैं। फिर भी प्रत्येक समाज में जीवनकार्य-कलाप सुनियोजित है। आंतरिक विकास या बाह्य संपर्क के कारण परंपरा के स्थिर रूप भी बदलते हैं। व्यक्ति एक विशेष समाज में जन्म लेकर उन रस्मरिवाजों को ग्रहण करता है, व्यवहार करता है, और प्रभावित करता है जो उसकी सांस्कृतिक विरासत हैं। सांस्कृतिक मानवशास्त्र के अंतर्गत ऐसे सारे विषय आते हैं।

सांस्कृतिक मानवशास्त्र का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। अन्य विषय मानव कार्यकलाप के एक भाग का अध्ययन करते हैं। सामान्यत: मानवशास्त्री ऐसी जातियों का अध्ययन करते हैं जो पाश्चात्य सांस्कृतिक धारा से परे हैं। वे प्रत्येक जाति के रस्मरिवाजों के समूह को एक समष्टि के रूप में अध्ययन करने का प्रयास करते हैं। यदि वे संस्कृति के एक ही पक्ष पर अपने अध्ययन को केंद्रित रखते हैं तो उनका खास उद्देश्य उस पक्ष में और संस्कृति के दूसरे पक्षों में संबंधों का विश्लेषण होता है। पूरी संस्कृति पर विचार करने के लिये वे उस समाज के लोगों का तकनीकी ज्ञान, आर्थिक जीवन, सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएँ, धर्म, भाषा, लोकवार्ता एवं कला का अध्ययन करते हैं। वे इन पक्षों का अलग अलग विवेचन करते हैं पर साथ साथ यह भी देखते हैं कि ये विभिन्न पक्ष समग्र रूप में किस प्रकार काम करते हैं जिससे उस समाज के सदस्य अपने परिसर से समवस्थित होते हैं। इस रूप में सांस्कृतिक मानवशास्त्री अर्थशास्त्री, राजनीति-विज्ञान-शास्त्री, समाजशास्त्री धर्मों के तुलनात्मक अध्येता, कला या साहित्य के मर्मज्ञों से भिन्न हैं।

संस्कृति शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है। मानवशास्त्र में इसका प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ में होता है। यह उसका आधारभूत सिद्धांत है। संस्कृति के गुण निम्नलिखित हैं —

(१) मानव संस्कृति के साथ जन्म नहीं लेता, पर उसमें संस्कृति ग्रहण करने की क्षमता होती है। वह उसे सीखता है। इस प्रक्रिया को संस्कृतीकरण कहते हैं।

(२) संस्कृति का उद्भव मानव जीवन के प्राणिशास्त्रीय, परिसरीय मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक अंगों से होता है। उनके निरूपण और विकास में इन तत्वों का बहुमूल्य योग होता है।

(३) संस्कृति की संरचना के विशिष्ट भाग हैं। उसके छोटे भाग को सांस्कृतिक तत्व (Culture Trait) कहते हैं। कई तत्वों को मिलाकर एक तत्वसमूह (Complex) होता है। एक संस्कृति में अनेक सांस्कृतिक तत्वसमूह होते हैं। इसके अतिरिक्त कई संस्कृतियों में एक या अधिक प्रेरक सिद्धांत होते हैं जो उन्हें विशिष्टता प्रदान करते हैं।

(४) संस्कृति अनेक विभागों में विभक्त होती है, जैसे भौतिक संस्कृति (तकनीकी ज्ञान और अर्थव्यवस्था), सामाजिक संस्थाएँ (सामाजिक संगठन, शिक्षा, राजनीतिक संगठन) धर्म और विश्वास, कला एवं लोकवार्ता, भाषा इत्यादि।

(५) संस्कृति परिवर्तनशील है। संस्कृति के प्रत्येक अंग में परिवर्तन होता रहता है, किसी में तीव्रता से, किसी में मंद गति से। बाह्य प्रभाव भी बिना सोचे समझे ग्रहण नहीं किए जाते। किसी में विरोध कम होता है, किसी में अधिक।

(६) संस्कृति में विभिन्नताएँ होती हैं जो कभी कभी एक ही समाज के व्यक्तियों के व्यवहार में प्रदर्शित होती हैं। जितनी छोटी इकाई होगी उतना ही कम अंतर उसके सदस्यों के आचार विचार में होगा।

(७) संस्कृति के स्वरूप, प्रक्रियाओं और गठन में एक नियमबद्धता होती है जिससे उसका वैज्ञानिक विश्लेषण संभव होता है।

(८) संस्कृति के माध्यम से मानव अपने संपूर्ण परिसर से समवस्थित होता है और उसे रचनात्मक अभिव्यक्ति का साधन मिलता है।

सांस्कृतिक मानवशास्त्र वर्तमान काल की संस्कृतियों का ही केवल अध्ययन नहीं करता। मानव विकास के कितने ही गूढ़ रहस्य प्रागितिहास के गर्भ में पड़े हैं। प्रागैतिहासिक पुरातत्ववेत्ता पृथ्वी के नीचे से खुदाई करके प्राचीन संस्कृतियों की छानबीन करते हैं। उसके आधार पर वे मानव विकास का क्रमबद्ध स्वरूप निश्चित करते हैं। खुदाई से भौतिक संस्कृति की बहुत सी चीजें उपलब्ध होती हैं। अनुमान एवं कल्पना की सहायता से उस संस्कृति के सदस्यों के रहनसहन, आचारविचार, सामाजिक संगठन, धार्मिक विश्वास इत्यादि की रूपरेखा तैयार करते हैं। अतएव प्रागितिहास सांस्कृतिक मानवशास्त्र का अभिन्न अंग है।

भाषा के ही माध्यम से संस्कृति का निर्माण हुआ है। सृष्टि के आरंभ से ही मनुष्य ने अनेक तरह से अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को व्यक्त करने का प्रयास किया। पहले तो हावभाव तथा संकेतचिह्नों से काम चला। बाद में उसी ने भाषा का रूप ग्रहण कर लिया। प्रत्येक भाषा में उसके बोलनेवालों की सारी मान्यताएँ, स्पष्ट तथा अस्पष्ट विचार, बौद्धिक और भावनात्मक क्रियाएँ निहित रहती हैं। आदिम समाज के सभी सांस्कृतिक तत्व उसकी भाषा के भंडार में सुरक्षित रहते हैं।

कहावतें, पहेलियाँ, लोककथाएँ, लोकगीत, प्रार्थनाएँ, इत्यादि में समाज का संस्कार प्रदर्शित होता है। समाज की अंतर्मुखी

वृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिये भाषा का ज्ञान अत्यावश्यक है। संबंधसूचक शब्दावली से समाज में पारिवारिक और दूसरे संबंधो का पता चलता है। संस्कृति पर बाह्य प्रभावो के कारण जो परिवर्तन होता है वह भी भाषा मे प्रतिबिंबित होता है। नए विचार और नई वस्तुएँ जब व्यवहार में आने लगती हैं तो उनके साथ नए शब्द भी आते हैं। इस प्रकार सस्कृति और भाषा दोनो का समान रूप से विकास होता है। आदि संस्कृतियो में भाषाओ की विविधता तथा उनके स्वरूप की जटिलता मे अनुसंधान की असीम सामग्री है। जिस तरह भाषा के स्वरूप का विश्लेषण करने से हम सांस्कृतिक रहस्यों को सुलझा सकते हैं उसी प्रकार सस्कृतियों के संरचनात्मक तत्वो और प्रक्रियाओ के ज्ञान से हमें भाषाशास्त्र की कुछ समस्याओ पर व्यापक प्रकाश मिल सकता है।

सांस्कृतिक मानवशास्त्र के अंतर्गत सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन, धर्म, भाषा, कला इत्यादि का अध्ययन आता है। टाइलर ने सस्कृति के संबोध के सहारे अध्ययन किया पर उनके समकालीन मोरगन ने समाज के प्रसंग मे अपना काम किया। डुर्कहीम ने समाजशास्त्रीय परंपरा को पुष्ट किया। इस प्रकार नृतत्व मे दोनो परंपराएँ समानांतर धाराओ की तरह चलती आ रही हैं। अमरीकी मानवशास्त्री सस्कृतिपरक विचारधारा से आविर्भूत हैं। अंग्रेज विद्वान् डुर्कहीम की परंपरा के पोषक हैं। अमरीकी विद्वानो के विचार में सस्कृति का सबोध समाज के सबोध से कही अधिक व्यापक है। इस प्रकार सामाजिक मानवशास्त्र उनकी दृष्टि से सांस्कृतिक नृतत्व का एक अंग है। कुछ विद्वान् इस धारणा से सहमत नही होंगे। उनके अनुसार सांस्कृतिक और सामाजिक मानवशास्त्र के दृष्टिकोण, विचारधारा और तरीके भिन्न भिन्न हैं।

सामाजिक मानवशास्त्र का क्षेत्र मानव संस्कृति और समाज है। यह संस्थाबद्ध सामाजिक व्यवहारो का अध्ययन करता है, जैसे परिवार, नातेदारी, व्यवस्था, राजनीतिक संगठन, विधि, धार्मिक मत इत्यादि। इस संस्था में परस्पर सबधो का भी अध्ययन किया जाता है। ऐसा अध्ययन समकालीन समाजो में या ऐतिहासिक समाजो में किया जा सकता है। सामान्यत. सामाजिक मानवशास्त्री आदिम संस्कृतियो मे काम करते हैं। इसका यह अर्थ नही कि आदिम समाज दूसरो से हेय है। आदिम समाज वे हैं जो जनसख्या, क्षेत्र, बाह्य सपर्क इत्यादि की दृष्टि से छोटे और सरल हो तथा तकनीकी दृष्टि से पिछड़े हुए हो। आदिम जातियो पर विशेष ध्यान देने के कई कारण हैं। कुछ मानवशास्त्री संस्कृति के विकास का पता लगाने के क्रम में आदिम जातियो का अध्ययन करते थे। ऐसा समझा जाता था कि उन समाजो में ऐसी ही सस्थाएँ पाई जाती हैं जो दूसरे समाजो में प्राचीन काल में पाई जाती थी। कार्यवादी (Functional) विचारधारा के प्रचलन के बाद समग्र रूप में समाज के अध्ययन की आवश्यकता मालूम हुई। इसके लिये आदिम समाज अत्यंत उपयुक्त थे क्योकि उनमें एकरूपता थी और पूर्ण समष्टि के रूप में इन्हे देखा जा सकता था। फिर अपने से भिन्न संस्कृतियों का अध्ययन आसान था। उनके विवेचन में निरपेक्षता आसानी से बरती जा सकती थी। आदिम समाजो में सामाजिक बहुरूपता के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। उनपर आधारित जो संबोध बनेंगे वे अधिक दृढ और व्यापक होगे। आदिम समाज शीघ्रता से बदलते जा रहे हैं। लुप्त होने के पूर्व उनका अध्ययन आवश्यक है।

सामाजिक मानवशास्त्र का सबसे प्रधान अंग सामाजिक संगठन है जिसमे उन संस्थाओ का विवेचन होता है जो समाज में पुरुष और स्त्री का स्थान निर्धारित करते हैं और उनके व्यक्तिगत संबंधो को दिशा देते हैं। मोटे तौर पर ऐसी सस्थाएँ दो प्रकार की होती हैं जो रिश्ते से उत्पन्न होती हैं और जो व्यक्तियो के स्वतंत्र सपर्क से उत्पन्न होती हैं। रिश्तेदारी की सस्थाओ मे परिवार और गोत्र आते हैं। दूसरे प्रकार की सस्थाओ में सस्थाबद्ध मैत्री, गुप्त समितियाँ, आयुसमूह आते हैं। सामाजिक स्थिति पर आधारित समूह भी इसी के अंतर्गत आते हैं। सामाजिक सगठन कुछ आधारभूत कारको पर बना होता है, जैसे आयु, यौन भेद, रिश्तेदारी, स्थान, सामाजिक स्थिति, राजनीतिक स्थिति, व्यवसाय, ऐच्छिक समितियाँ, जादूधर्म की प्रक्रियाएँ और टोटमवाद (Totemism)।

न्यूनतम परिश्रम से दैनिक जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये जिन मानव संबंधो और प्रयास का संगठन किया जाता है उसे *आर्थिक मानवशास्त्र* की संज्ञा दी गई है। भोजन प्राप्त करने और उत्पन्न करने के अनेक तरीके विभिन्न जातियो में प्रचलित हैं। उनके आधार पर चार मुख्य स्तर पाए जाते हैं—संकलन-आखेटक-स्तर, पशुपालन स्तर, कृषि स्तर और शिल्प-उद्योग-स्तर। आदिम समाजो में आर्थिक सबध सामाजिक परंपराओ मे बँधे रहते हैं। उत्पादन के कारको में भी भेद करना कठिन होता है। आदिम जगत् की अर्थ व्यवस्था में उपहार और व्यापार विनिमय का विशेष महत्व है। उपहारो से व्यक्तिगत तथा सामूहिक संबंध सुदृढ बनाए जाते है। व्यापार और विनिमय मे उत्पादन के वितरण का महत्व अधिक होता है। बहुत से आदिम समाज मुद्राविहीन हैं। अर्थशास्त्रीय माने मे बाजार का भी अभाव है। फिर भी उनका आर्थिक सगठन सुचारु रूप से चालू है।

अर्थव्यवस्था भौतिक सस्कृति एवं लोगो की तकनीकी क्षमता पर निर्भर होती है। शिकार, मछली मारने के तरीको, खेती के तरीको तथा उद्योग धधो का अध्ययन भी इसी के प्रसगत आता है। पहले के मानवशास्त्री इस प्रकार के अध्ययन में अधिक रुचि रखते थे और उनके प्रयासो के फलस्वरूप विदेशो के सग्रहालय आदिम भौतिक सस्कृति की वस्तुओ से भरे पड़े हैं।

अदृश्य एवं अज्ञात शक्तियो को जानने की अभिलाषा मनुष्य को सदा से ही रही है। उनके विषय में भिन्न भिन्न कल्पनाएँ और विश्वास प्रचलित हैं। जब किसी घटना का कोई भी कारण समझ में नही आता तो हम उसे दैवी घटना मानकर

संतोष कर लेते हैं। धर्म और जादू इन्हीं अदृश्य और अज्ञात शक्तियों को अपने पक्ष में प्रभावित करने के लिये बनाए गए हैं। किसी भी समाज के संगठन, उपलब्धियों तथा प्रगति के अध्ययन करते समय धार्मिक पृष्ठभूमि से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। धर्म हममें सुरक्षा की भावना जगाता है। एक धर्म के अनुयायी एकता के दृढ सूत्र में बँधे रहते हैं। धर्म की छाप हमें किसी भी समाज के समस्त क्रियाकलापों पर मिलती है। कला, साहित्य, संगीत, नृत्य इत्यादि प्रारंभ में धार्मिक भावना से ही अनुप्राणित थे। उनका अध्ययन भी सांस्कृतिक मानवशास्त्र के अंतर्गत आता है।

संस्कृति के उद्गम एवं विकास के संबंध में मानव शास्त्रियों में घोर मतभेद है। उन्नीसवीं शताब्दी में डार्विन के उद्विकास (Evolution) के सिद्धांत से अनेक अध्येता प्रभावित हुए। सांस्कृतिक क्षेत्र में भी टाइलर, मोरगन इत्यादि विद्वानों ने इसे मान्यता दी। इस सिद्धांत के सहारे मानव संस्कृति के विकास को अच्छी तरह समझा जा सकता था। इसके अनुसार विकास के तीन स्तर निर्धारित किए गए। निम्नतम स्तर जंगलीपन (Savagery), मध्यस्तर को बर्बरता (Barbarism) और उच्चतम स्तर को सभ्यता की संज्ञा दी गई। संसार के विभिन्न भागों में सांस्कृतिक समानताओं का कारण एक प्रकार से सोचने की प्रवृत्ति तथा समान वातावरण में समान संस्थाओं का निर्माण बताया गया। प्रसारवाद (Diffusionism) के सिद्धांत ने इस मान्यता को ठुकरा दिया। इसके अनुसार संस्कृति का उद्गम कुछ स्थानों पर हुआ और वहीं से वह फैली। प्रसारवाद के कुछ पंडित मिस्र को संस्कृति का उद्गम स्थल मानते थे। प्रसारवादी समझते हैं कि मनुष्य की आविष्कार शक्ति अत्यंत सीमित होती है और ग्रहण शक्ति अपरिमित है। वियना के नृतत्ववेत्ताओं ने इसी आधार पर संसार के प्रमुख संस्कृति वृत्तों (Kultur Kreis) संबंधी मान्यताएँ स्थापित की हैं।

इसमें संदेह नहीं कि आविष्कार और प्रसार द्वारा संस्कृतियों का रूप बदलता है। अन्य संस्कृतियों के तत्व कई कारणों से ग्रहण किए जाते हैं। कुछ तो दबाव के कारण अपनाए जाते हैं, कुछ नवीनता के लिये, कुछ सुविधा के लिये और कुछ लाभ के लिये। कुछ नवीन तत्व प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये अपनाए जाते हैं। बार्नेट ने संस्कृतिपरिवर्तन का नया विवेचन प्रस्तुत किया है। वे उत्प्रेक्षण (Innovation) को संस्कृतिपरिवर्तन का आधार मानते हैं। उत्प्रेक्षण मानव की इच्छाओं से उत्पन्न होते हैं। यद्यपि वे संस्कृतिपरिवर्तन के कारण होते हैं, फिर भी वे स्वयं सांस्कृतिक परिस्थितियों और कारकों से अछूते नहीं रहते। उत्प्रेक्षण की सफलता के लिये असंतोष की स्थिति आवश्यक है। [स०]

साइक्लोट्रॉन १९३२ ई० में प्रोफेसर ई० ओ० लारेंस (Prof E O Lawrence) ने बर्कले इंस्टिट्यूट, कैलिफोर्निया, में सर्वप्रथम साइक्लोट्रॉन (Cyclotron) का अविष्कार किया। वर्तमान समय में तत्वांतरण (transmutation) तकनीक के लिये यह सबसे प्रबल उपकरण है। साइक्लोट्रॉन के अविष्कार के लिये प्रोफेसर लारेंस को १९३९ ई० में 'नोबेल पुरस्कार' प्रदान किया गया।

साइक्लोट्रॉन के आविष्कार के पूर्व, आवेशित कणों के त्वरण (acceleration) के लिये काकक्रॉफ्ट वाल्टन की विभवगुणक मशीन, वान डे ग्राफ स्थिरविद्युत् जनित्र, अनुरेख त्वरक आदि उपकरण प्रयुक्त होते थे। परंतु इन सभी उपकरणों के उपयोग में कुछ न कुछ प्रायोगिक कठिनाइयाँ विद्यमान थीं। उदाहरणस्वरूप, अनुरेख त्वरक के उपयोग में निम्न दो असुविधाएँ थीं. (१) असुविधाजनक लंबाई (जितना ही छोटा कण होगा एवं जितने ही अधिक ऊर्जा के कण प्राप्त करना चाहेंगे, उतनी ही अधिक लंबाई की आवश्यकता होगी) तथा (२) आवनित धारा की अल्प तीव्रता। इस तरह की असुविधाओं को प्रोफेसर लारेंस ने साइक्लोट्रॉन के आविष्कार से दूर कर दिया।

रचना एवं तकनीकी विस्तार — साइक्लोट्रॉन की एक साधारण रचना चित्र १. में दिखाई गई है। इसमें एक चपटी, बेलनाकार, निर्वातित कक्षिका C होती है, जिसके अंदर दो खोखले अर्धवृत्ताकार धातु के बक्स D_1 तथा D_2 रहते हैं। D_1 और D_2 को 'डीज़' (Dees) कहा जाता है, क्योंकि इनका आकार अंग्रेजी के शब्द डी (D) की तरह होता है। D_1 और D_2 के बीच १०,००० वोल्ट एवं उच्च आवृत्ति ($१०^७$ आवृत्ति) के क्रम का प्रत्यावर्ती विभव दिया जाता है। कक्षिका C एक विशाल विद्युच्चुंबक N S के बीच रहती है। विद्युच्चुंबक से प्राप्त लगभग १५,००० गाउस का क्षेत्र 'डीज़' के चपटे फलकों पर लंबवत कार्य करता है। S, जो 'डीज़' के केंद्र में होता है, आयनों का स्रोत है, जहाँ से त्वरण के लिये धनावेशित आयन प्राप्त होते हैं।
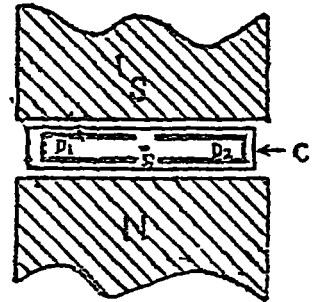
चित्र १

सिद्धांतत साइक्लोट्रॉन, सरल होते हुए भी, एक जटिल एवं मँहगा उपकरण है, जिसमें बहुत से नाजुक तकनीकी विस्तारों की आवश्यकता होती है :

(१) साधारणतया एक चपटे बेलनाकार कुछ इंच लंबे एवं ३० इंच या इससे अधिक व्यास के ताम्रतलु बक्स, को दो भागों में काटकर, 'डीज़' का निर्माण किया जाता है।

(२) कक्षिका C पीतल की बनी होती है। इसके ऊपरी एवं निचले फलक, जो चुंबकीय क्षेत्र को कक्षिका के अंदर अधिक प्रबल करने में सहायक होते हैं, भारी इस्पात के बने होते हैं। कक्षिका के अंदर उच्च निर्वात स्थापित किया जाता है, जिससे आयनों की आपसी टक्कर कम से कम हो और मशीन की क्षमता कम न हो।

(३) शक्तिशाली विद्युच्चुंबक का भार कुछ सौ टन या इससे अधिक ही होता है। इस अधिक भार का कारण लोहे के ध्रुवखंड,

लपेट के लिये प्रयुक्त ताम्र तार आदि हैं। इस तरह साइक्लोट्रॉन भारी होने के साथ साथ महँगा भी हो जाता है।

(४) प्रक्षिप्त (आयन) के त्वरण के लिये उपयुक्त प्रत्यावर्ती विभव (~१०,००० वोल्ट्, १०^{७} आवृत्ति) दोनो 'डीज' के मध्य स्थापित किया जाता है। यह विभव रेडियो तकनीक द्वारा प्राप्त किया जाता है।

(५) त्वरण के लिये धनावेशित आयन, गैस के आयनीकरण द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। कक्षिका को निर्वातित करने के उपरात उसमें आयनित गैस को लगभग १०$^{-४}$ सेंमी० दाब पर भर दिया जाता है जिसके धनावेशित आयन (हाइड्रोजन, ड्यूटीरियम, हीलियम) उपयोग में लाए जाते हैं। अब 'डीज' के ठीक ऊपर रखे हुए गरम फिलामेंट (F) से इलेक्ट्रॉनो की धारा 'डीज' के केंद्र में फेंकी जाती है जिससे गैस का आयनीकरण हो जाता है और धनावेशित आयन ऋणावेशित डी (D) की ओर आकृष्ट हो जाते हैं। तदुपरांत त्वरणक्रिया प्रारभ हो जाती है।

(६) प्रक्षिप्तो को उनके सामान्य प्रक्षेपपथ से हटाकर टार्गेट पर फेकने के लिये विक्षेपक इलेक्ट्रोड (deflector electrod) की आवश्यकता होती है। विक्षेप के लिये उच्च वोल्टता (~६०,००० वोल्ट्) इलेक्ट्रोड पर दी जाती है।

क्रिया सिद्धांत — उपकरण का क्रिया सिद्धात चित्र २. मे दिखाया गया है। S पर उत्पन्न धनावेशित आयन उस 'डी' की ओर आकृष्ट होगा जो उस क्षण ऋणावेशित होगा। अब आयन अर्धवृत्ताकार पथ पर चलकर उस डी' को पार कर दोनो 'डीज' के मध्य के रिक्त भाग तक पहुँचेगा। अब यदि
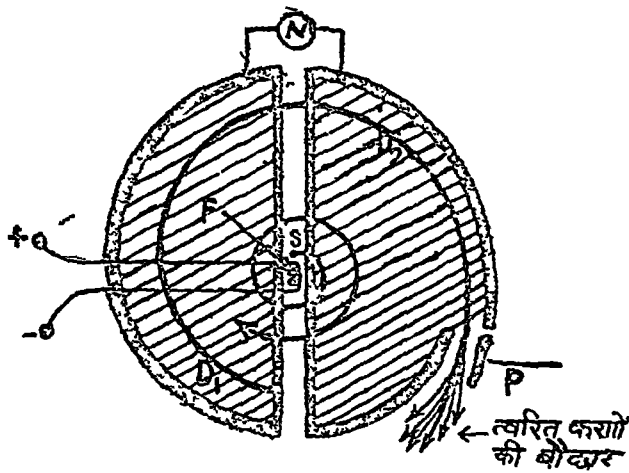
चित्र २

प्रयुक्त प्रत्यावर्ती विभव की आवृत्ति एवं चुबकीय क्षेत्र का मान इस तरह चुना जाय कि जब आयन दोनो 'डीज' के बीच रिक्त भाग में पहुँचे, तब दूसरा डी (जो पहले धनावेशित था) ऋणावेशित हो जाय, अब आयन और अधिक वेग से उस 'डी' की ओर आकृष्ट हो जाएगा। चूंकि आयन का वेग अब और अधिक होगा, अत. वह और भी अधिक व्यास का अर्धवृत्ताकार

पथ अपनाएगा। इस तरह जब भी आयन एक 'डी' को पार कर 'डीज' के मध्य के रिक्त भाग में पहुँचेगा, तब उसके सामने का 'डी' उसके लिये सदैव ही ऋणावेशित होगा। इस तरह आयन का वेग और उसकी ऊर्जा भी बढती ही जाएगी। 'डीज' की परिमा पर ऋणावेशित विक्षेपक इलेक्ट्रोड P होता है, जो त्वरित आयनो को तत्वातरण के लिये रखे गए टार्गेट पर फेंकता है।

संसार के कुछ प्रसिद्ध साइक्लोट्रॉन — यद्यपि बहुत सी तकनीकी कठिनाइयो के कारण साइक्लोट्रॉन का निर्माण आसान नहीं है, फिर भी बहुत से साइक्लोट्रॉन इन दिनो अनेक देशो में प्रयुक्त हो रहे हैं। इनमें से अधिकाश अमरीका में ही हैं। इग्लैंड में कैंब्रिज, बर्मिंघम तथा लिवरपूल की प्रयोगशालाओं मे साइक्लोट्रॉन हैं। लगभग एक एक साइक्लोट्रॉन पैरिस, कोपेनहेगेन, स्टॉकहोम, लेनिनग्राड एवं टोकियो मे हैं। एक साइक्लोट्रॉन कलकत्ता (भारत) मे भी है।

कैलिफॉर्निया में बहुत से साइक्लोट्रॉनो के निर्माण की देखभाल प्रोफेसर लारेंस ने की है। लारेंस का पहला साइक्लोट्रॉन (१९३२ ई०) ५,००० वोल्ट्स प्रत्यावर्ती विभव एव १४,००० गाउस चुबकीय क्षेत्र द्वारा कार्यान्वित हुआ और १ २ मेव (Mev अर्थात् Million Electron Volts) के प्रोटॉन दे सका था। लारेंस ने पुनः सन् १९३४-३६ मे एक दूसरे साइक्लोट्रॉन का निर्माण किया, जो लगभग १०० टन से भी अधिक भारी था। इस मशीन से ८ मेव के ड्यूट्रॉन तथा १६ मेव के ऐल्फाकण उत्पन्न किए जा सकते थे। दुनियाँ के तमाम साइक्लोट्रॉन लारेंस के इस दूसरे साइक्लोट्रॉन (सन् १९३४-३६) के ही नमूने पर बने हुए हैं।

१९३९ ई० मे प्रोफेसर लारेंस एवं उनके सहयोगियो ने और भी बडे आकार एव भारवाले साइक्लोट्रॉन का निर्माण किया। इस उपकरण मे विद्युत् चुबक का ही भार लगभग २०० टन था। इस उपकरण से लारेंस ८ मेव के प्रोटॉन, १६ मेव के ड्यूट्रॉन एव ३८ मेव के ऐल्फा कण प्राप्त करने मे सफल हुए।

अन्य प्रबल आयन त्वरक मशीनें — विगत कुछ वर्षों मे साइक्लोट्रॉन से भी प्रबल त्वरक मशीनों का निर्माण हुआ है और हो भी रहा है। इन मशीनो से १००-१००० मेव ऊर्जा के कण प्राप्त किए जा सकते हैं। यद्यपि ये मशीनें भी साइक्लोट्रॉन की ही तरह तुल्यकालत्व (synchronism) अथवा अनुनाद (resonance) के मूलभूत सिद्धात पर ही आधारित हैं, फिर भी इनमें नवीन तकनीक का समावेश है। ये मशीनें भी अंतरिक्ष किरणों द्वारा उत्पन्न काफी शक्तिशाली प्रक्षिप्तों के ही समान ऊर्जा कणो को उत्पन्न कर सकती हैं। इन मशीनो के नाम हैं: सिंक्रोसाइक्लोट्रॉन, बीटाट्रॉन एवं प्रोटॉनसिंक्रोट्रॉन।

सिंक्रो साइक्लोट्रान — १९४६ ई० मे प्रोफेसर लारेंस ने इस मशीन का निर्माण किया। इस मशीन द्वारा २०० मेव के ड्यूट्रॉन एव ४०० मेव के ऐल्फा कण प्राप्त किए जा सकते हैं। मेशाँनों

(mesons) को प्रयोगशाला में उत्पन्न करने के लिये इस मशीन का उपयोग किया गया है।

बीटाट्रॉन — १९४१ ई० में इस मशीन का निर्माण कर्स्ट (Kerst) ने सर्वप्रथम न्यूयार्क में किया। इस मशीन से १०० मेव के इलेक्ट्रॉन प्राप्त किए जा चुके हैं और ५०० मेव तक के इलेक्ट्रॉन प्राप्त किए जा सकते हैं।

प्रोटॉनसिन्क्रोट्रॉन — १९४५ ई० में कैलिफॉर्निया के प्रोफेसर मैकमिलन ने सर्वप्रथम इस मशीन के निर्माण के लिये विचार रखा था। ब्रुकहैवन राष्ट्रीय प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा प्रोट्रॉन सिंक्रोट्रॉन (cosmotron) का निर्माण किया है जिससे ३ बेव (Bev अर्थात् Billion Electron Volts) के प्रोट्रॉन प्राप्त किए जा सकते हैं। कैलिफॉर्निया विश्वविद्यालय में और भी बड़ी मशीन (बीवेट्रॉन) का निर्माण हुआ है जिससे लगभग ७ बेव के प्रोट्रॉन प्राप्त किए जा सकते हैं।

साइक्लोट्रॉन की उपयोगिता — साइक्लोट्रॉन की उपयोगिताएँ इतनी अधिक हैं कि उन सबको यहाँ उद्धृत करना संभव नहीं। फिर भी मुख्य उपयोगिताएँ यहाँ पर दी जा रही हैं। उच्च ऊर्जा के ड्यूट्रॉन, प्रोटॉन, ऐल्फा कण एवं न्यूट्रॉन की प्राप्ति के लिये यह एक प्रबल साधन है। ये ही उच्च ऊर्जा कण नाभिकीय तत्वांतरण क्रिया के लिये उपयोग में लाए जाते हैं। उदाहरण स्वरूप साइक्लोट्रॉन से प्राप्त उच्च ऊर्जा के ड्यूट्रॉन बेरिलियम ($_{4}Be^{9}$) टार्गेट की ओर फेंके जाते हैं जिससे बोरॉन ($_{5}B^{10}$) नाभिकों एवं न्यूट्रॉनों का निर्माण होता है और साथ ही ऊर्जा (Q) भी प्राप्त होती है। संपूर्ण प्रक्रिया को निम्न रूप से प्रदर्शित कर सकते हैं :

$$_{4}Be^{9} + {}_{1}H^{2} \longrightarrow {}_{5}B^{10} + {}_{0}n^{1} + Q$$
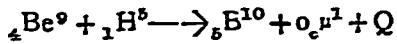
यह प्रक्रिया न्यूट्रॉन स्रोत का भी कार्य कर सकती है। बर्कले का साइक्लोट्रॉन यदि उपयोग में लाया जाय, तो क्रमवर्धक ड्यूट्रॉनों की ऊर्जा १९ मेव होगी। अत पूरी प्राप्त ऊर्जा २३ मेव (१ मेव रिकॉयल बोरॉन नाभिक एव लगभग २२ मेव न्यूट्रॉन) हो जाती है।

नाभिकीय तत्वांतरण के अध्ययन के शैक्षिक महत्व के अतिरिक्त यह रेडियो सोडियम, रेडियो फॉस्फोरस, रेडियो आयरन एवं अन्य रेडियोऐक्टिव तत्वों के व्यापारिक निर्माण के लिये उपयोग में लाया गया है। रेडियोऐक्टिव तत्वों की प्राप्ति ने शोधकार्य में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। हर रेडियोऐक्टिव तत्व चिकित्सा, विज्ञान, इंजीनियरी, टेक्नॉलोजी आदि क्षेत्रों में नए नए अनुसंधानों को जन्म दे रहा है। ये अनुसंधान निश्चय ही 'परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग' के ही अग हैं। [मु० प्र० मि०]

साइक्लोस्टोमाटा (Cyclostomata) जलीय जंतुओं का एक समूह है जिसमें अधिकांश समुद्री जतु हैं, पर कुछ नदी और झीलों में भी पाए जाते हैं। इस समूह में निम्न स्तर के जबड़ेहीन मत्स्यरूपी कशेरुकी चक्रमुखी (Cyclostomes) पाए जाते हैं, जिनके साथी सिल्यूरियन या डिवोनी कल्प में लुप्त हो चुके हैं। इनके मुख्य लक्षण ये हैं : शरीर लंबा, पतला और सर्पमीन आकार का होता है, केवल मध्यवर्ती पक्ष (fin) होते हैं और युग्म पक्ष तथा जबड़ा नहीं होता, चर्म पर शल्क भी नहीं होता, मुँह गोलाकार, चूषक और दाँत युक्त होता है, कपाल (खोपड़ी), कशेरुदंड तथा पक्ष के कंकाल उपास्थि (cartilage) के बने होते हैं, ६ से १४ गिल, फलक ग्रसनी (pharynx) के दोनों ओर पाए जाते हैं, केवल दो ही अर्धगोलाकार नलियाँ अत कर्ण में पाई जाती हैं तथा इनके जीवन में बहुधा एक लार्वा होता है जिसको एमोसीटीज (Ammocoetes) कहते हैं।

चक्रमुखी (cyclostomes) यद्यपि मत्स्यरूपी होने के कारण मत्स्य जाति ही में गिने जाते थे, तथापि ये अब कशेरुकी के निम्न वर्ग में रखे जाते हैं और इनका वर्ग, मत्स्य जलस्थलचर, सरीसृप, पक्षिवर्ग, और स्तनी वर्ग के समान एक विशेष वर्ग है।

चक्रमुखी को कशेरुकी में रखने के निम्नलिखित कई कारण हैं (क) मेरुरज्जु (spinal chord), जिसका अगला भाग मस्तिष्क बनाता है, खोखली और पृष्ठस्थ होती है, (ख) युग्म नेत्र और अत कर्ण होते हैं, (ग) कशेरु दंड बनना आरंभ होता है, जिसका अगला भाग कपाल बन जाता है, (घ) युग्म गिल फलक और खडीय पेशीदेह होते हैं, (ङ) लाल और श्वेत रुधिर कोशिकाएँ मिलती हैं। परंतु चक्रमुखी अन्य कशेरुकी प्राणियों से निम्नलिखित कारणों से भिन्न हैं : (क) इनके सिर का कोई निर्णय नहीं किया जा सकता, (ख) युग्म पक्ष या पक्ष वलय नहीं होते, (ग) जबड़े नहीं होते और कशेरुदंड भी पूरा नहीं बनता है तथा (घ) जनन नली नहीं होती है।

रूसी वैज्ञानिक बर्ग ने १९४० ई० में मत्स्यों का जो नया वर्गीकरण किया है उसे प्राय सभी मत्स्यविज्ञानी (Ichthyologist) मानते हैं। उन्होंने साइक्लोस्टोमाटा को दो वर्गों में विभाजित किया है : पेट्रोमाइज़ॉनिज़ (Petromyzones) और मिक्सिनाइ (Myxini)। पेट्रोमाइज़ॉनिज़ वर्ग में एक गण पेट्रोमाइज़ॉनि फ़ॉर्मीज़ (Petromyzoni formes) और एक ही कुल पेट्रोमाइज़ॉनटाइडी (Petromyzontidea) है। इसमें दो वश हैं : (१) पेट्रोमाइज़ॉन (Petromyzon) और (२) मॉरडेसिया (Mordacia)। पहला वश उत्तरी गोलार्ध में तथा दूसरा वश दक्षिणी गोलार्ध में मिलता है। समुद्री पेट्रोमाइज़ॉन को पेट्रोमाइज़ॉन मेराइनस (P. marinus) और नदी नाले वाले को पेट्रोमाइज़ॉन फ्लूवियाटिलिस (P fluviatilis) कहते हैं। मिक्सिनाइ वर्ग में भी एक ही गण मिक्सिनि फ़ार्मीज़ (Myxini formes) है परंतु इसके तीन कुल (families) हैं : (१) डेलोस्टोमाटाइडी (Bdellostomatidae), जिसमें डेलोस्टोमा (Bdellostoma) वंश है, (२) पैरामिक्सिनाइडी (Paramyxinidae), जिसका उदाहरण पैरामिक्साइन (Paramyxine) वश है और (३) मिक्सीनाइडी (Myxinidae) जिसका मिक्साइनी (Myxine) वश विख्यात है। मिक्सिनाइ के कुछ मुख्य गुण ये हैं : (क) शरीर बामी के आकार का, चर्म शल्कहीन और कंकाल अस्थिहीन होता है, (ख) गिलकंकाल अपूर्ण और कशेरु नहीं होते, मुखगुहा छोटी और एक दाँत वाली होती है, (ग) इनकी आँखें चर्मावृत होती हैं, जिनमें न तो चक्षु

पेशी और न चक्षुनाडी होती है तथा (घ) दोनों अर्धगोलाकार नलियाँ सम्मिलित हो जाने से एक ही अंत:कर्ण नली दिखाई देती है।

चक्रमुखी वामी के आकार के और एक से लेकर तीन फुट तक लंबे होते हैं। इनका चर्म बहुधा श्लेष्मायुक्त होता है, और मिक्साइनी में अधिक श्लेष्मा के कारण ये बहुत ही रपटीले होते हैं। गोलाकार चूषक मुँह के चारों ओर शृंगी दाँत (hornyteeth) होते हैं और बीचोबीच पिस्टन (piston) सदृश आगे पीछे चलनेवाली जिह्वा होती है। इनमें आमाशय नहीं होता और ग्रसिका (oesaphagus) के दो भाग होते हैं: (१) पृष्ठस्थ आहारनाल और (२) उदरस्थ श्वसननाल। यकृत के साथ पित्त नली नहीं बनती और क्लोम का निर्णय नहीं हुआ है।

श्वसन ७ से लेकर १४ गिलों द्वारा होता है जिनमें गिल दरारों से ही पानी गिल थैली के भीतर भी जाता है और बाहर भी (ऐसा किसी मछली में नहीं होता)।

करोटी (खोपडी) की रचना बहुत सी उपास्थियों (cartilages) से होती है, ऐसा अन्यान्य कशेरुकियों में नहीं पाया जाता। गिल समूह को सँभालने के लिये गिलतोरणों द्वारा एक क्लोम कंडी (branchial basket) बन जाता है, जिसके पश्च देश में एक प्याले जैसी हृदयावरणी नामक उपास्थि हृदय को स्थित रखती है। रुधिर नलिकाओं में यकृत केशिकांतक संस्थान तो होता है, परतु वृक्कीय केशिकांतक संस्थान नहीं होता।

चक्रमुखी को सामान्य युग्म नेत्रों के अतिरिक्त शिवनेत्र जैसा मध्यवर्ती पिनियल नेत्र (pineal eye) भी होता है जो लेंस और दृष्टिपटल (retina) सहित पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इनमे पीयूष काय (Pituitary body) भी होता है, जो कशेरुकी प्राणियों के पीयूष काय के सदृश होता है। इनके एमोसीटीज में एडोस्टाइल (Endostyle) पाया जाता है, जो ऐंफिऑक्सस (Amphioxus) और ऐसिडियन (Ascidian) के एडोस्टाइल के सदृश होता है। पेट्रोमाइज़ॉनिज की सुषुम्ना नाडी में पृष्ठस्थ और उदरस्थ मूल अलग ही रह जाते हैं और अंत:कर्ण मे दो ही अर्धगोलाकार नलियाँ होती हैं (जबकि और कशेरुकियों में तीन नलियाँ होती हैं), क्योंकि क्षैतिज (पट्ट) नलिका नहीं होती।

चक्रमुखी समुद्र में ६०० फुट की गहराई तक पाए जाते हैं, जैसे पेट्रोमाइज़ॉन मेराइनस परंतु कुछ अपना जीवन नदी नालों के मीठे जल में ही बिताते हैं, जैसे पेट्रोमाइज़ॉन फ्लूवियाटिलिस। यह उत्तरी और दक्षिणी अमरीका तथा यूरोप और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। भारत के नदी, नालों या समुद्रों मे चक्रमुखी नहीं पाए जाते। ये अपने चूषक मुँह से बड़ी मछलियों के शरीर पर चिपक जाते हैं और उनके रुधिर एवं मांस का आहार करते रहते हैं। इनकी छीलने वाली जिह्वा से एक छिद्र बन जाता है जिसमे चक्रमुखी अपना प्रतिस्कंद (anticoagulent) रस डाल देता है। यह रस बड़ी मछली का रुधिर जमने नहीं देता, फलत. रुधिर गिरना बंद नहीं होता और चक्रमुखी के मुँह मे सदा जाता रहता है। इसके आक्रमण से बड़ी बड़ी मछलियाँ तक मर जाती हैं। जब चक्रमुखी मछलियों पर स्थापित नहीं होते, तब अपनी शक्ति से समुद्र या नदियों में तैरते रहते हैं और प्राय: जल में डूबे पत्थरों या चट्टानों पर चिपके रहते हैं

मिक्साइन में ऐसी भी जातियाँ हैं, जो भिन्न भिन्न मछलियों के शरीर के भीतर प्रवेश कर रुधिर और मांस सब खा लेती हैं, केवल अस्थि और चर्म बाकी रह जाता है। ऐसा पूर्ण परजीवी किसी भी कशेरुकी में नहीं पाया जाता। परंतु हाल ही मे गहरे समुद्र की एक वामी मछली का पता चला है जिसका नाम साइमेनकेलिज (Simenchelys) रखा गया है। यह मिक्साइन के सदृश बड़ी मछलियों के शरीर में छिद्र बनाकर उनके भीतर परजीवी बन जाती है।

पेट्रोमाइज़ॉन के लिंग पृथक् पृथक् होते हैं। नर और मादा जनन के समय बड़ी मछलियों को वाहिनी बनाकर नदियों में बहुत दूर तक चले जाते हैं। यहाँ नदी नालों के तल पर छोटे छोटे कंकडों का घोसला बनाकर उसमें मादा अंडे देती है। नर तब अपना शुक्र अंडों पर निष्कासित करता है और निषेचन होता है। अंडों से एमोसीटीज लार्वा निकलता है, जो अंग्रेजी अक्षर U की आकृति जैसे केंद्रीय नल में रहता है। यह रुधिर एवं मांस का आहार नहीं कर सकता पर अपनी ग्रसनी (pharynx) से छोटे छोटे जलप्राणियों को ऐंफिऑक्सस या ऐसिडियन की तरह खाता है। समुद्री पेट्रोमाइज़ॉन इन्हीं एमोसीटीज लार्वा से बनता है, क्योंकि जितने भी वयस्क पेट्रोमाइज़ॉन समुद्र से नदी में जनन क्रिया के लिये जाते हैं वे सब वहीं मर जाते हैं, और समुद्र में लौटकर नहीं आते (यह ऐंग्विला ऐंग्विला- ईल मछली के बिलकुल विपरीत है, क्योंकि ईल नदी से समुद्र में जनन के लिये जाती है, और लौटकर नदियों में नहीं आती, वे वहीं मर जाती हैं)। [प्रं० मो० दा०]

साइगॉन स्थिति : ११° ०' उ० अ० और १०७° ०' पू० दे०। यह नगर एशिया के दक्षिण पूर्वी भाग में साइगॉन नदी पर स्थित है तथा दक्षिण वियतनाम की राजधानी है। मानसूनी जलवायु के अंतर्गत होने से यहाँ की जलवायु गरम है और वर्षा मानसूनी हवाओं से होती है। साइगॉन मेकांग नदी के उपजाऊ डेल्टा के निकट समुद्र से ४० मील भीतर साइगॉन नदी पर स्थित होने के कारण औद्योगिक एवं व्यापारिक नगर बन गया है। यहाँ ऑक्सीजन, कारबोलिक अम्ल, शराब, सिगरेट, दियासलाई, साबुन, साइकिल, चीनी, आदि का निर्माण होता है। यहाँ से चावल, मछली, कपास, रबर, चमडा, गोलमिर्च, खोपरा, गोंद, इमारती लकड़ी आदि का निर्यात होता है। यह रेल द्वारा टोनले सेप और मेकांग नदियों के संगम के ठीक नीचे स्थित नोम पेन्ह नामक प्रसिद्ध नगर से मिला हुआ है। उपर्युक्त सुविधाओं के कारण साइगॉन की जनसंख्या अधिक घनी हो गई है। साइगॉन सुंदर नगर है। सड़कों पर वृक्ष बड़े सुंदर ढंग से लगे हुए हैं। यहाँ की इमारतें, उद्यान, काफे और होटल बड़े आकर्षक है। इन कारणों से इसे पूर्वी देशों का पैरिस कहा जाता है। [रा० स० ख०]

साइनस को कोटर, नाल या विवर कहते हैं। शरीर की रचना के अनुसार शरीर का यह वह भाग है, जो वायु या रुधिर से भरा रहता है। वायुकोटर नासागुहा में खुलते हैं। विभिन्न अस्थियो के नाम पर इनके नाम दिए हुए हैं। रक्त से भरे कोटर को नाल या शिरानाल कहते हैं। ये तानिक नाल (sinus of durameter), हृदयस्थित नाल (sinus of heart) इत्यादि हैं, जो स्थानो के अनुसार विभिन्न नामो से अभिहित किए गए हैं। विवर अनेक स्थलों गुदा, महाधमनी, अधिवृषण, वृक्क आदि पर पाए जाते हैं और स्थलों के अनुसार इनके विभिन्न नाम हैं।

साइनस उस रोग को भी कहते हैं जिसे हम नाडीव्रण या नासूर कहते हैं। इस रोग में प्रस्राव या पीप निकलता है, जो जल्दी अच्छा नही होता। अनेक दशाओ मे विवर के मध्य में बाह्य पदार्थो या मृत अस्थियो के कारण ऐसा होता है। इस रोग के बडे बडे विवर गाल या कपाल की अस्थियो मे पाए जाते है। छोटे छोटे विवर नाक में होते हैं। इस रोग के कारण, मुख, कपाल या आँखो के पीछे एक निश्चित काल पर प्रति दिन पीडा होती है। कभी कभी नाक से प्रस्राव भी गिरते हैं। ऐसे प्रस्रावो के इकट्ठा होने और श्लेष्मिक कला के सूज जाने और प्रस्राव के न निकल सकने के कारण पीडा होती है।

दाँत के रोगो के कारण भी कोटर (antrum) आक्रांत हो सकता है। कभी कभी प्रस्राव मे दुर्गंध रहती है, विशेषत उस दशा मे जब प्रस्राव आक्रात कोटर से होकर निकलता है। ऐसे कोटर को बारबार धोने से रोग से मुक्ति मिल सकती है। रोगमुक्ति के लिये साधारणतया शल्यकर्म की आवश्यकता नही पडती। अधिक से अधिक कोटर के छेद को बडा किया जा सकता है, ताकि उससे वह पूरा धोया जा सके। सर्दी जुकाम को रोकने और नाक की बाधाओं को हटाने, श्लेष्म या दाँत के रोगो का तत्काल उपचार करने से नाडीव्रण का आक्रमण रोका जा सकता है। उष्ण और हवा तथा प्रकाश रहित कमरे मे रहने से और श्लेष्मा के कारण, नाड़ीव्रण के आक्रमण की सवेदनशीलता बढ सकती है।

[फू० स० व०]

साइनाइ प्रायद्वीप (Sinai Peninsula) स्थिति २९° ०' उ० अ० तथा ३४° ०' पू० दे०। यह मिस्र का एक त्रिभुजाकार प्रायद्वीप है, जो स्वेज और अकाबा की खाडियो के मध्य स्थित है। इसके पूर्व में ट्रासजार्डन, अरब तथा पैलेस्टाइन स्थित हैं। साइनाइ के भूमध्यसागरीय तट के किनारे किनारे रेत की पट्टी है, जो राफा के निकट सब से कम चौडी है। जैसे जैसे यह पश्चिम में स्वेज की ओर बढती है इसकी चौडाई बढती गई है। इस पट्टी के दक्षिण मे चूना पत्थर की उच्च समभूमि है जिसे जिबेल एल तिह (Jebel el Tih) कहते हैं। इसका तल दक्षिण में ऊँचा होता जाता है और अतिम ऊँचाई ४,००० फुट तक पहुँच गई है। जिबेल एल तिह शुष्क और गर्म है। इस भाग मे वादी एल आरिश (Wadi el Arish) नामक नदी बहती है, जो वर्ष के अधिकाश दिनो में सूखी रहती है। जिबेल एल तिह के दक्षिण में रेत और ककडयुक्त क्षेत्र है जिसे डिबेट अर रैमलेह (Dibbet er Ramleh) कहते हैं। यह क्षेत्र उत्तर की उच्च समभूमि को दक्षिण के टार पर्वतों से अलग करता है। टार पर्वत ९,००० फुट ऊँचा है।

बाइबिल के प्राचीन भाग के अनुसार मूसा पर्वत (७,४९०) फुट, शोमर पर्वत (८,४४९ फुट) तथा सेरबेल पर्वत (६,७१२ फुट) में से कोई एक साइनाइ या होरेब पर्वत है। साइनाइ प्रायद्वीप का आधुनिक महत्व इसकी युद्व सबधी स्थिति तथा मैंगनीज के निक्षेपो के कारण है।

[नं० कु० रा०]

साइपरेसी (Cyperaceae) घास सदृश शाक का कुल है जिसके पौधे एकबीजपत्री तथा दलदली भूमि में उगते हैं। इस कुल के पौधे मुख्यत बहुवर्षी होते हैं। साइपरेसी कुल के ८५ वश और लगभग ३,२०० स्पीशीज ज्ञात हैं। ताड़कुल (Palmae) तथा लिलिएसी (Liliaceae) कुल के बीजो के अकुरण की तरह साइपरेसी कुल के बीजों का अकुरण होता है। प्रति वर्ष की नवीन शाखा पिछली पर्वसधि से सलग्न रहती है। प्राय तना वायव तथा त्रिभुजी होता है और पत्तियाँ तीन पक्तियो में रहती हैं। सूक्ष्म पुष्प स्पाइकिका (spikelet) में व्यवस्थित रहते हैं। साइपीरस (Cyperus) वश तथा कैरेक्स या नरइवश (Carex) के फूल नग्न होते हैं। विरल दशा में ही फूल में छह शल्कवाला परिदलपुज (perianth) रहता है। परिदलपुज का प्रतिनिधित्व रोएँ या शूक से होता है। फल मे सामान्यत तीन और कभी कभी दो पुकेसर (stamen) होते हैं। स्त्री केसर (pistil) में दो या तीन अडप होते हैं, जो मिलकर अडाशय बनाते हैं जिसमें कई वर्तिकाएँ (style) एव एक बीजाड (ovule) होता है। पुष्प प्राय एकलिंगी (unisexual) होते हैं और वायु द्वारा परागण होता है। फल में एक बीज होता है तथा इसका छिलका कठोर एव चर्म सदृश होता है। सपस (Scirpus), रिंगकॉस्पोरा (Rynchospora), साइपीरस तथा कैरेक्स इस कुल के प्रमुख वश हैं। कैरेक्स वश के पौधे चटाई बनाने के काम मे आते हैं।

[वि० भा० शु०]

साइप्रस (Cyprus) स्थिति ३४° ३३' से ३५° ४१' उ० अ० तथा ३२° २०' से ३४° ३५' पू० दे०। भूमध्यसागर में स्थित बडे द्वीपो में साइप्रस का तीसरा स्थान है। इसका क्षेत्रफल ३,५७२ वर्ग मील है तथा इसकी अधिकतम लबाई १४१ मील और अधिकतम चौडाई ६० मील है।

इस द्वीप का अधिक भाग पहाडी है जिसकी ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है। यहाँ का ओलपस पर्वत प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है। इस पहाड का सबसे ऊँचा भाग ६,४०६ फुट ऊँचा है, जो माउट ट्रोडोस के नाम से विख्यात है। यहाँ की नदियाँ अत्यत छोटी हैं तथा प्रमुख नदियाँ पेडियास एवं यालिस हैं। ये दोनो नदियाँ समातर बहती हैं। पश्चिमी ढाल पर अत्यधिक वर्षा होने के कारण कभी कभी इन नदियो में पानी का अभाव हो जाता है, क्योंकि ये नदियाँ पूर्वी ढाल से निकलती हैं, जो वर्षाछाया क्षेत्र है। इन नदियो के मैदान में दलदली भाग अधिक हैं जिससे वहाँ मलेरिया का प्रकोप रहता है।

यहाँ का अधिकतम ताप २५·५ सें० और न्यूनतम ताप १५° सें० है। अक्टूबर से मार्च तक में २० इंच वर्षा होती है। यहाँ की आबादी में तुर्क एवं यूनानियों की सख्या अधिक है। यहाँ की जनसख्या ६१,००० (१९६२) है। गेहूँ, जौ, जई, (oat) के अतिरिक्त फलो की खेती यहाँ व्यवस्थित रूप से की जाती है। नारगी, अगूर, अनार, तथा जैतून मुख्य फल हैं जिनकी खेती यहाँ होती है।

यहाँ से लोहा, ताँबा, ऐस्बेस्टॉस और जिप्सम का निर्यात होता है। यहाँ कुल १,१०० मील लबे पक्के राजमार्ग तथा २,६०० मील लबी कच्ची सडकें हैं। देश में यातायात का कोई समुचित प्रबध नही है। साइप्रस के तीन प्रमुख बदरगाह तथा नगर फामागुस्टा, लिनासॉल और लारनाका हैं। निकोसिया का हवाई अड्डा बहुत महत्वपूर्ण है। निकोसिया यहाँ की राजधानी है।

[भू० का० रा]

साइफोज़ोआ (Scyphozoa) प्राणिजगत् के सीलेंटरेटा (Coelenterata) संघ का एक वर्ग है जिसके अतर्गत वास्तविक जेलीफिश (Jellyfish) आते हैं। ये केवल समुद्र ही में पाए जानेवाले प्राणी है। इस वर्ग के जेलीफिश तथा अन्य वर्गों के जेलीफिशो के शारीरीय लक्षणो मे अतर होता है। साधारणतया ये बड़े तथा हाइड्रोज़ोआ (Hydrozoa) के मेडुसी (medusae) से भारी होते हैं।

इस वर्ग के जेलीफिश का जीवनवृत्त जटिल होता है। किसी किसी जेलीफिश के अडे सीधे ही मेडुसा मे परिवर्धित हो जाते हैं, परतु ओरीलिया (Aurelia) नामक जेलीफिश का जीवनवृत्त जटिल होता है। यह विशेष जेलीफिश ब्रिटेन के समुद्रतटीय जल में पाया जाता है। यह एक पारदर्शी मेडुसा है। यह शरीर के घटाकृति भाग के प्रवाहपूर्ण सकुचन से तैरता है। ओरीलिया का निषेचित अडा मेडुसा (medusa) मे परिवर्धित न होकर एक स्पष्ट रचनावाले पॉलिप (polyp) मे, जिसे साइफिस्टोमा (Scyphistoma) कहते हैं, परिवर्धित होता है। यह तुरही के आकार का एक छोटा जीव है जिसमे सीमात स्पर्शक (marginal tentacles) लगे रहते हैं। बाद मे यह अपने अपमुख सिरे (aboral end) से किसी अन्य आधार से जुड जाता है।

साइफिस्टोमा मूलिकाओ (rootlets) या देहाकुरो को उत्पन्न करता है जिनसे नए पॉलिप मुकुलित (budded) होते हैं। साइफिस्टोमा बहुवर्षीय जीव है। इसमें एक निश्चित अवधि के बाद असाधारण परिवर्तन शुरू होता है। यह परिवर्तन भोजन की कमी अथवा अधिकता के कारण हो सकता है। पहली दशा मे साइफिस्टोमा के ऊपरी हिस्से के ऊतक एक चक्रिका सदृश (disc like) रचना में बदल जाते हैं। बाद में यह संरचना पॉलिप से अलग होकर जल मे तैरने लगती है। खाद्य पदार्थ की अधिकता के कारण चक्रिकाओ की संयुक्त श्रेणी बन जाती है। संपूर्ण पॉलिप का स्वरूप अब बदल जाता है। ये चक्रिकाएँ परिवर्धित होने के बाद पॉलिप से अलग होकर पानी मे तैरने लगती हैं। वस्तुतः ये मेड्सा होते हैं जिनमे आठ भुजाएँ होती हैं। इन मेडुसाओ को एफिर (Ephyra) कहते हैं। ये प्रौढ ओरीलिया से रचना तथा आकार मे सर्वथा भिन्न होते हैं। अपवाद स्वरूप ही कोई कोई चक्रिका मेडुसा के स्थान पर पॉलिप मे परिवर्धित होती है।

इस प्रकार का जीवनवृत्त बहुरूपता (polymorphism) का, जिसमें पीढी एकातरण (alternation of generation) पाया जाता है, एक अच्छा उदाहरण है। स्थायी पॉलिप पीढ़ी का अस्थायी मेडुसा पीढ़ी से नियमित एकातरण होता है। केवल मेडुसी ही लैंगिक होता है और अडाणु (ova) तथा शुक्राणु (spermatozoa) उत्पन्न करता है। पॉलिप से मेडुसा बनने का यह तरीका, जो हाइड्रोज़ोआ के मेडुसा परिवर्धन से सर्वथा भिन्न है, साइफोज़ोआ की एक विशिष्टिता है।

साइफोज़ोआ तथा हाइड्रोज़ोआ के मेडुसी मे मुख्य अतर यह है कि साइफोज़ोआ के मेडुसी मे, वीलम (velam) अनुपस्थित रहता है, आमाशय मे आमाशयी ततु (gastric filaments) उपस्थित रहते हैं तथा आमाशय के भीतरी कोष्ठो से बने आतरिक जनन अग पाए जाते हैं जबकि हाइड्रोज़ोआ में ऐसा नही होता।

अधिकाश साइफोज़ोआ के स्पीशीज समुद्र के ऊपरी स्तर पर पाए जाते हैं। ये जलधारा के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहते हैं। ये शिकार को दशकोशिकाओ (nematocysts) की सहायता से शक्तिहीन करके पकड़ लेते हैं। दशकोशिकाएँ स्पर्शको (tentacles) के बाहरी हिस्से में पाई जाती है। इस प्रकार शक्तिहीन किए गए शिकार को स्पर्शक मुँह के पास ले आते हैं, जहाँ वे चूसकर निगल लिए जाते हैं। [न० कु० रा०]

साइबीरिया स्थिति : ६०° ०' उ० अ० तथा १००° ०' पू० दे०। यह आर्कटिक महासागर, बेरिंग तथा ओकॉट्स्क सागर, मगोलिया, सोवियत मध्य एशिया और यूरेल पर्वत से घिरा उत्तरी एशिया मे स्थित है। इसका क्षेत्रफल लगभग ५८,५०,००० वर्ग मील है। अधिकतम लबाई (पूर्व से पश्चिम) लगभग ४,००० मील और अधिकतम चौड़ाई (उत्तर से दक्षिण) लगभग २,००० मील है। समुद्रतल से इस क्षेत्र की अधिकतम ऊँचाई १५,६१२ फुट है। यहाँ की जलवायु ठढी एव शुष्क महाद्वीपीय है तथा वर्षा का औसत १० इच से १५ इच है। भौगोलिक दृष्टि से साइबीरिया के तीन विभाग किए गए है :

(क) यूरैल पर्वत से येनिसे नदी तक पश्चिमी साइबीरिया की निम्न भूमि, (ख) येनिसे नदी से लीना तक मध्य साइबीरिया की पहाडी भूमि, और (ग) लीना नदी से बेरिंग तथा ओकॉट्स्क सागर तक पूर्वी साइबीरिया की उच्च भूमि।

टुड्रा, टैगा, मिले जुले वन, स्टेप्स के वन तथा स्टेप्स वाली घासें यहाँ की प्रमुख वनस्पतियाँ हैं। यूरैल, चर्स्की, वर्कोयैस्क एव सायान प्रमुख पर्वतश्रेणियाँ और ओब, येनिसे, लीना एवं आमुर प्रमुख नदियाँ हैं। बाइकाल प्रमुख झील है। ओब, अनदिर तथा प्येजिन प्रमुख खाड़ियाँ और नॉवय ज्यइमलिया, स्येव्यइरनय ज्यइमलिया, न्यू साइबीरियन द्वीप तथा सैकलीन प्रमुख द्वीप हैं।

नोवोसिबिर्स्क, क्रास्नोयार्स्क, इरकुटस्क, स्वेर्द्लोव्स्क, मैग्नीटोगॉर्स्क, ओम्स्क आदि प्रमुख नगर हैं।

स्थान स्थान पर गेहूँ, जई, राई, आलू, सनई, सोयाबीन, चुकंदर आदि उपजाने के अतिरिक्त पशुपालन, तथा दूध का कारोबार होता है। सोना, लोहा, तांबा, सीसा, जस्ता, चाँदी, मैंगनीज, टंग्स्टन, यूरेनियम, प्लैटिनम, कोयला, तेल और जलशक्ति की प्राप्ति के अतिरिक्त यहाँ आटा, चमड़ा, मशीनों, गाड़ियों, हथियारों, रासायनिक पदार्थों, वस्त्र, लोहा, इस्पात, लकड़ी काटने आदि के उद्योग हैं। यहाँ बाइकाल झील के निकट जलशक्ति का केंद्र भी है।

यहाँ आवश्यकतानुसार यातायात के साधनों का खूब विकास हुआ है। सन् १९१७ में साइबीरिया को मास्को सरकार से अलग रखने के असफल कम्युनिस्ट आंदोलन के बाद सन् १९२२ में संपूर्ण साइबीरिया आर० एस० एफ० एस० आर० का भाग हो गया। आजकल यहाँ की जनसंख्या लगभग २,४०,००,००० है। [रा० कु० स०]

साउथ कैरोलाइना (South Carolina) संयुक्त राज्य अमरीका के पूर्वी राज्यों में से एक है। इसके उत्तर में उत्तरी कैरोलाइना, पश्चिम दक्षिण में जॉर्जिया तथा पूर्व में ऐटलैंटिक महासागर स्थित है। राज्य का क्षेत्रफल ३१,०५५ वर्ग मील तथा जनसंख्या २३,८२,५९४ (१९६१) है। यहाँ के संपूर्ण क्षेत्रफल में से लगभग ७८३ वर्ग मील जलीय है। १९५० ई० से १९६० ई० की अवधि में यहाँ की जनसंख्या में १२.५% की वृद्धि हुई है। यहाँ प्रति वर्ग मील जनसंख्या का घनत्व ७८.७ है। यहाँ की जनसंख्या में १५,५१,०२२ (गोरे), ८,२९,२९१ (नीग्रो), १,०९८ (भारतीय) तथा ९४६ एशिया की अन्य जातियाँ सम्मिलित हैं।

इस राज्य को मुख्यत तीन प्राकृतिक विभागों में विभक्त किया जा सकता है (१) उत्तरी पहाड़ी पठारी प्रदेश, (२) मैदानी भाग तथा (३) दलदली एवं जलीय भाग।

साउथ कैरोलाइना कृषि एव निर्माण उद्योगों के लिये प्रसिद्ध है। उत्तरी पहाड़ी प्रदेश जंगलों से ढँका होने के कारण लकड़ी उत्पादन के लिये महत्वपूर्ण है। यहाँ के मुख्य खनिज केओलिन मिट्टी तथा ग्रैनाइट हैं। सन् १९५९ मे यहाँ कृषि फार्मों की संख्या ७८,१७२ थी जिनका क्षेत्रफल ९१,४८,७४२ एकड था। औसत फार्म लगभग ११७ एकड के हैं। यहाँ की प्रमुख फसल कपास, धान, तंबाकू तथा मक्का है। जलविद्युत् का विकास सैंटी (Santee) नदी पर बाँध बनाकर किया गया है, जहाँ इस राज्य की संपूर्ण जलविद्युत् का ८५ प्रति शत उत्पन्न किया जाता है।

कोलंबिया (जनसंख्या ९७,४३३) यहाँ की राजधानी है। अन्य प्रमुख नगर ग्रीनविल (जनसंख्या ६६,१८८), चार्ल्सटन (जनसंख्या ६५,९२५), स्पार्टनबर्ग (जनसंख्या ४१,३१६) हैं। [कृ० प्र० रा०]

साउथ डकोटा (South Dakota) यह संयुक्त राज्य अमरीका का एक राज्य है। इसके उत्तर में उत्तरी डकोटा, पूर्व मे मिनिसोटा, तथा आइओवा, दक्षिण में निब्रैस्का और पश्चिम मे वाइओमिंग (Wyoming) तथा मॉनटैना राज्य स्थित हैं। राज्य का क्षेत्रफल ७७,०४७ वर्ग मील तथा जनसंख्या ६,८०,५१४ (१९६० ई०) है। पीयर (Pierre) यहाँ की राजधानी है।

भौगोलिक दृष्टि से इस राज्य को निम्नलिखित ऊँचाईवाले भागो में बाँटा जा सकता है : (१) १,०००–२,००० मीटर ऊँचाई का क्षेत्र, (२) ५००–१,००० मीटर ऊँचाई का क्षेत्र, (३) २००–२५० मीटर ऊँचाई का क्षेत्र। यहाँ की मुख्य नदियाँ मिसिसिपी और जेम्स हैं। मिसिसिपी की सहायक नदी जेम्स है, जो यैंगटन स्थान पर इससे मिलती है। पश्चिम दिशा से आकर मिसिसिपी में मिलनेवाली नदियों में ह्वाईट प्रमुख है।

कृषि एव पशुपालन के अतिरिक्त यहाँ खनिज पदार्थ भी अधिक पाए जाते हैं। इस भाग में फार्म का औसत क्षेत्रफल ८,०४८ एकड है तथा १९५९ में प्रत्येक प्रकार के फार्मों की संख्या ५५,७२७ थी जिनका संपूर्ण क्षेत्रफल ४,४८,५१,००० एकड था। यहाँ दूध देनेवाली गायो, भेड़ों, तथा सूअरो की संख्या लाखो में है। पहाड़ी एवं पठारी प्रदेश होने के कारण यहाँ मास और मक्खन का उद्योग विकसित हुआ है।

सर्वप्रथम यहाँ १८७४ ई० में सोने की खान का अन्वेषण हुआ था। संपूर्ण संयुक्त राज्य का ३७% सोना यहाँ के होम्सटेक की खानों से प्राप्त किया जाता है। अन्य खनिज पदार्थों में चाँदी, लोहा, यूरेनियम, फेल्सपार, तथा जिप्सम हैं।

मुख्य नगरों में सूफाल्स (Sioux Falls ६५,४६६), ऐबरडीन (२३,०७३) ह्यूरन (१४,१८०) आदि हैं। [भू० का० रा०]

साउथ वेस्ट अफ्रीका (South West Africa) इसके उत्तर में अंगोला और जैंबिया, पश्चिम में ऐटलैंटिक महासागर, पूर्व में बेचुआनालैंड तथा दक्षिण में दक्षिणी अफ्रीका स्थित हैं। क्षेत्रफल ३,१७,७२५ वर्ग मील है। न्यूनतम वर्षा के कारण यह प्रदेश शुष्क है और कृषि का विकास नहीं हो पाया है। रेगिस्तान का विस्तार आरेंज नदी के दक्षिण से कूनेन (Kunene) नदी के उत्तर तक है। पूर्वी भाग में चरागाही होती है। मुख्य नदियो मे कूनेन, ओकावागो, जाबसी तथा आरेंज है। इनके अतिरिक्त ऐसी नदियाँ भी हैं जो प्राय सूखी रहती हैं जिनमें से कवीसेब, स्वाकोप, उगेल, फीश, नासोब, एलोब तथा एलिफैंट नदियाँ प्रसिद्ध हैं।

१९६० ई० की जनगणना के अनुसार यहाँ ७३,४६ श्वेत, ४,२८,५७५, बांटू (Bantu) जाति तथा अन्य लोग २३,९६३ हैं। इस भाग की आदिम जातियों मे ओवाबोस, हेरेरोस, वर्ग डामास, नामास तथा बुशमेन हैं। ओवाबोस मुख्यत कृषि करते हैं तथा पशु पालते हैं। वर्ग डामास की भाषा नामा है। बुशमेन रेगिस्तानी प्रदेश में निवास करते हैं। यहाँ शिक्षा का विकास नहीं हुआ है। यहाँ केवल ६० सरकारी स्कूल हैं जिनमें विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है। आदिम जातियों की शिक्षा मिशन द्वारा होती है।

शुष्क प्रदेश होने के कारण पशुपालन लोगो का मुख्य उद्यम है। (१९६१ ई० में) यहाँ गायो की संख्या २१,१७,१३२, भेड एव बकरी ४०,६७,६३३, घोडे ३३,४९१ तथा सूअर १६,७६५ हैं। मक्खन तथा पनीर बहुतायत से होता है। खनिज पदार्थों में हीरा आरेंज नदी के उत्तरी भाग के जलोढ उच्चल वेदिकाओ (alluvial terraces) मे पाया जाता है। अन्य खनिजो मे टीन, चाँदी, तथा मैंगनीज मुख्य हैं। यहाँ कुल १,४८६ मील रेल मार्ग है। सड़को का भी विकास नही हो पाया है। साप्ताहिक बसें करासबर्ग (Karasburg) से केपटाउन तक चलती है। वालिस की खाड़ी से जहाजो द्वारा आयात-निर्यात किया जाता है। इसकी राजधानी विंडहुक (Windhock) है। [भू० का० रा०]

साउथ सी आइलैंड प्रशात महासागर को साउथ सी भी कहते है। अत. प्रशात महासागर के द्वीपसमूहो को साउथ सी आइलैंड भी कहते हैं (देखे प्रशांत महासागरीय द्वीपपुंज)।

साउथैंपटन इग्लैंड के दक्षिणी भाग, हैंपशिर काउटी में लदन से ७६ मील दक्षिण-पश्चिम में टेस्ट और ईचिन नदियो के मुहाने पर बसा हुआ है। यह नगर पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु के प्रदेश में पडता है। प्राचीन समय से यह एक प्रसिद्ध बंदरगाह रहा है। आज भी दक्षिण अमरीका, पूर्वी अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और सुदूरपूर्व के देशो को जहाज यहाँ से ही जाते हैं। इग्लैंड के बंदरगाहो मे इसका तीसरा स्थान है और मुसाफिरो के यातायात की दृष्टि से पहला स्थान है। यहाँ का प्रमुख उद्योग जहाज निर्माण, जहाज मरम्मत, गोदी का निर्माण आदि है। छोटे छोटे उद्योग भी अनेक हैं जिनमे तेल के परिष्कार का कारखाना नया और महत्व का है। प्राचीन किलेबंदी के अनेक ऐतिहासिक महत्व के खडहर यहाँ विद्यमान हैं। यहाँ प्रति दिन दो ज्वार भाटे आते हैं। यहाँ की शुष्क गोदी ससार की सर्वाधिक बडी गोदी है। निकट में सैनिक शिक्षा शिविर होने से यह अच्छा सामरिक बंदरगाह भी बन गया है। [रा० स० ख०]

साऊदी अरब स्थिति २६° ०' उ० अ० तथा ४४° ०' पू० दे०। यह दक्षिण-पश्चिम एशिया में स्थित अरब प्रायद्वीप का सबसे बडा राष्ट्र है। इसके उत्तर में जॉर्डन तथा इराक, उत्तर-पूर्व में कुवैत, पूव मे फारस की खाड़ी, कॉतॉर (Qatar) एव ओमन तथा दक्षिण मे येमन, अदन एवं मस्कैत आदि है। फारस की खाडी इसकी पूर्वी सीमा पर ३०० मील की लबाई में फैली है, जबकि पश्चिमी समुद्री तट जॉर्डन के एल-अकाबा से यमन तक १,१०० मील तक लबा है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग ६,००,००० वर्ग मील है। लालसागर के किनारे किनारे समुद्री मैदान फैला है तथा उत्तर मे हिजाज पर्वत एवं दक्षिण मे ऐसीर पहाडी फैली हुई है। मध्य या नज्द भाग पठारी है, जो पश्चिम मे लगभग ५,००० तथा पूर्व में लगभग २,००० फुट ऊँचा है। लगभग १,५०० फुट ऊँचा एव ३५ मील चौडा देहाना रेगिस्तान नज्द को पूर्वी निम्न प्रदेश से अलग करता है। यहाँ का लगभग एक तिहाई भाग रेगिस्तानी है। रुब-ऐल-खाली सबसे बड़ा मरुस्थल है, जो दक्षिणी भाग मे स्थित है तथा लगभग २,५०,००० वर्ग मील में फैला है। यहाँ पर दो झीलें भी हैं। पूर्वी भाग में पातालफोड कुएँ बहुत बड़ी सख्या मे है। पश्चिमी भाग के वर्षा के जल के पृथ्वी के नीचे नीचे बहकर पूर्वी भाग में सतह के ऊपर आ जाने से इन कुओ की उत्पत्ति हुई है।

यहाँ की जलवायु गर्म तथा शुष्क है और धूल तथा बालू के तूफान चला करते हैं। रात एव दिन के ताप में बहुत अतर रहता है। देश के मध्य भाग मे वर्ष के सबसे गर्म समय, मई से सितबर तक, का ताप ५४° सें० तक पहुँच जाता है। समुद्री तटो मुख्यतया पूर्वी तट पर ताप कुछ कम रहता है, किंतु नमी की मात्रा बढ जाती है जिसके कारण बहुत अधिक कोहरा पड़ता है। अक्टूबर से मई तक शाम का ताप १५° से २१° सें० के मध्य रहता है। डारान मे औसत वर्षा ४ इच से ६ इच तक है, जो मुख्यतया नवबर से मई के बीच होती है। ऐसीर क्षेत्र मे २० इंच तक वर्षा हो जाती है।

मिट्टी मे खारापन होने तथा जलवायु के शुष्क होने के कारण यहाँ वनस्पति का अभाव है। इमली, जुनिपर, टैमरिस्क (एक गुल्म विशेष), बबूल तथा खजूर यहाँ के प्रमुख वृक्ष है। चौपायो मे सबसे प्रमुख ऊँट है, जो यहाँ का सब कुछ है। अन्य जगली जानवरो में हरिण (Gazzelle), ओरिक्स (Oryx), जरबोआ (एक प्रकार का रेगिस्तानी खरगोश), भेड़िए, लोमडी, जगली बिल्ली, तेंदुए, बदर, गीदड़ आदि मिलते हैं।

यहाँ के घुमक्कड़ बद्दू लोगो के कारण सही जनसख्या प्राप्त नही हो पाती है। यहाँ की जनसख्या मे ५०% बद्दू लोग हैं। २५% जनसख्या नगरो मे निवास करती है। यहाँ की सरकार द्वारा, अभी कुछ वर्षो पहले, कराई गई जनगणना के अनुसार यहाँ के नगरो की जनसख्या इस प्रकार है : रियाद (३,००,०००), मक्का (२,००,०००) जेद्दा (१,५०,०००), मदीना (५०,०००), तैफ (३०,०००), एल दमाम (२०,०००) थी। यहाँ १०,००० से अधिक जनसख्यावाले २० नगर हैं। यहाँ की प्रमुख भाषा अरबी है। यहाँ का प्रमुख धर्म इस्लाम (सुन्नी) है। इस्लाम धम का यह केंद्र है।

कृषि की दृष्टि से तीन स्थान प्रमुख हैं. १. ऐसीर का उच्च प्रदेश तथा इससे सबद्ध हिजाज का उच्च प्रदेश, २ ऐसीर का समुद्रतटीय भाग तथा हेजाज का उत्तरी भाग और ३. नखलिस्तान। खजूर, ज्वार, बाजरा तथा गेहूँ यहाँ की प्रमुख उपज है। शहरी लोगो को छोड़कर अधिकाश लोगो का मुख्य भोजन खजूर है। पूर्वी क्षेत्र मे हासा मरूद्यान मे धान उगाया जाता है। यहाँ तरबूज और कॉफी भी उगाई जाती है।

पेट्रोलियम यहाँ का सबसे प्रमुख खनिज पदार्थ है। इसके अतिरिक्त चाँदी एव सोने का भी खनन किया जाता है। लोहे एव जिप्सम के भडार का भी पता चला है।

पेट्रोलियम शोधन सबसे प्रमुख उद्योग है। सरकार की आय का सबसे बडा साधन खनिज तेल ही है। अन्य हलके उद्योग बहुत थोडी मात्रा में हैं।

की खाड़ी आदि। इंग्लैंड में टेम्स तथा सेवर्न के नदीमुख भी रोचक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इनमें जैसे ही नदियाँ प्रविष्ट होती है, ज्वारतरगो तथा सागरीय जल के खारेपन के कारण अपने मलवे को त्याग देती है। शक्तिशाली भाटातरगें मलबे का पुन: सर्जन करती हैं। ऊपरी ब्रिस्टल चैनेल के मटमैले जल मे इस क्रिया का स्पष्ट दर्शन होता है। [ले० रा० सि०]

सागूदाना (साबूदाना) कुछ हिंदू विशिष्ट अवसरो पर व्रत रखते हैं। उस दिन या तो वे बिल्कुल आहार नही करते या केवल फलाहार करते हैं। फलो में अनेक कदमूल और नाना प्रकार के फल आते हैं। सागूदाना की गणना भी फलाहारो मे होती है। सागूदाना यद्यपि स्टार्च का बना होता है, जो अधिकाश अनाजो में पाया जाता है पर इसकी गणना फलाहारो में कैसे हुई, इसका कारण ठीक ठीक समझ में नही आता। पडितो का कहना है कि प्राचीन काल मे जब ऋषि मुनि जंगलो मे रहते थे, तब जगल मे उगे ताल वृक्षो की मज्जा (pith) से प्राप्त साबूदाना को फलाहार में गिनने लगे।

आज अनेक पेडो की मज्जा से साबूदाना तैयार होता है। ये पेड़ सागू ताल कहे जाते हैं। ये अनेक स्थानों पर उपजते हैं। भारत के मद्रास राज्य क सेलम जिले और केरल राज्य मे भी ये पेड उपजते हैं। ये पेड मेट्रोजाइलन सागू और मेट्रोज़ाइलन रमफिआइ (Metroxylon sagu and M. rumphii) हैं। ये दलदली भूमि में उपजते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कई ताल वृक्ष हैं जिनकी मज्जा से साबूदाना प्राप्त हो सकता है। ये पेड ३० फुट तक लबे होते हैं। १५ वर्ष पुराने होने पर उनके स्तंभ की मज्जा मे पर्याप्त स्टार्च रहता है। यदि पेड को फूलने तथा फलने के लिये छोड दिया जाय, तो मज्जे का स्टार्च फल में चला जाता है और स्तंभ खोखला हो जाता है। फल के पकने पर पेड सूख जाता है। साबूदाना की प्राप्ति के लिये पुष्पक्रम बनते ही पेड को काटकर छोटे छोटे टुकडो मे काटते हैं और उसके स्तंभ की मज्जा का निष्कर्षण कर लेते हैं। इससे चूर्ण प्राप्त होता है। चूर्ण को पानी से गूँधकर छनने मे छान लेते हैं, जिससे स्टार्च के दाने निकल जाते और काष्ठ के रेशे छनने में रह जाते हैं। स्टार्च पात्र के पेंदे में बैठ जाता और एक या दो बार पानी से धोकर उसको खाने मे प्रयुक्त करते हैं। स्टार्च को पानी के साथ लेई बनाकर चलनी में दबाकर सरसो के बराबर छोटे छोटे दाने बना लेते हैं। भारत मे जो साबूदाना प्राप्त होता है उसे केसावा (Cassava) या टैपिओका के पेड की जड से प्राप्त करते हैं। इसके परिपक्व कंदो को बडे बडे नाँदो में पानी में डुबाकर दो या तीन दिन रखते हैं। उसे फिर छीलकर घानी (hopper) में रखकर काटने की मशीन में महीन काट लेते हैं। फिर उसे पानी के जोर के फुहारे से प्रक्षुब्ध करते हैं जिससे स्टार्च से रेशे अलग हो जाते हैं। फिर उन्हे नाँदो में रखने से स्टार्च नीचे बैठ जाता है और रेशे ऊपर से निकाल

लिए जाते हैं। स्टार्च अब गाढा जेल बनता है जिससे सागूदाने के छोटे छोटे गोलाकार दाने प्राप्त होते है। सागूदाना खाने के काम

केसावा या टैपिओका (Manihoputillisma)
शाखा, पत्तियाँ तथा ज ज जडो से प्राप्त मंड या स्टार्च से सागूदाना तैयार किया जाता है।

मे आता है। यह जल्द पच जाता है, अत: रोगियो के पथ्य के रूप में इसका व्यापक व्यवहार होता है। [सा० जा०]

सागौन या टीकवुड का वानस्पतिक नाम टेक्टोना ग्रैडिस (Tectona grandis)। यह बहुमूल्य इमारती लकड़ी है। संस्कृत में इसे 'शाक' कहते है। लगभग दो सहस्र वर्षो से भारत मे यह ज्ञात है और अधिकता से व्यवहृत होती आ रही है। वर्बीनैसी (Verbenaceae) कुल का यह वृहत्, पर्णपाती वृक्ष है। यह शाखा और शिखर पर ताज ऐसा चारो तरफ फैला हुआ होता है। भारत, बरमा और थाइलैंड का यह देशज है, पर फिलिपाइन द्वीप, जावा और मलाया प्रायद्वीप मे भी पाया जाता है। भारत में अरावली पहाड मे पश्चिम मे २४° ५०′ से २५° ३०′ पूर्वी देशातर अर्थात् झाँसी तक मे पाया जाता है। असम और पंजाब में यह सफलता से उगाया गया है। साल मे ५० इंच से अधिक वर्षावाले और २५° से २७° सें० तापवाले स्थानो मे यह अच्छा उपजता है। इसके लिये ३००० फुट की ऊचाई के जंगल अधिक उपयुक्त हैं। सब प्रकार की मिट्टी मे यह उपज सकता है पर पानी का निकास रहना अथवा अधोभूमि का सूखा रहना आवश्यक है। गरमी में इसकी पत्तियाँ झड जाती है। गरम स्थानो मे जनवरी मे ही पत्तियाँ गिरने लगती है पर अधिकाश स्थानो मे मार्च तक पत्तियाँ हरी रहती है। पत्तियाँ एक से दो फुट लबी और ६ से

१२ इंच चौडी होती हैं। इसका लच्छेदार फून सफेद या कुछ नीलापन लिए सफेद होता है। बीज गोलाकार होते हैं और पक जाने पर गिर पडते हैं। बीज में तेल रहता है। बीज बहुत धीरे धीरे अँकुरते हैं। पेड साधारणतया १०० से १५० फुट ऊँचे और धड ३ से ८ फुट व्यास के होते हैं।

धड की छाल आधा इंच मोटी, धूमर या भूरे धूसर रंग की होती है। इनका रसकाष्ठ सफेद और अत काष्ठ हरे रंग का होता है। अंत.काष्ठ की गध सुहावनी और प्रबल सौरभवाली होती है। गंध बहुत दिनो तक कायम रहती है।

सागौन की लकडी बहुत अल्प सिकुडती और बहुत मजबूत होती है। इसपर पॉलिश जल्द चढ जाती है जिससे यह बहुत आकर्षक हो जाती है। कई सौ वर्ष पुरानी इमारतो में यह ज्यो की त्यो पाई गई है। दो सहस्र वर्षों के पश्चात् भी सागौन की लकडी अच्छी अवस्था में पाई गई है। सागौन के अंत काष्ठ को दीमक आक्रात नहीं करती यद्यपि रसकाष्ठ को खा जाती हैं।

सागौन उत्कृष्ट कोटि के जहाजो, नावो, डोंगियो इत्यादि भवनों की खिडकियो और चौखटो, रेल के डिब्बो और उत्कृष्ट कोटि के फर्नीचर के निर्माण में प्रधानतया प्रयुक्त होता है।

अच्छी भूमि पर दो वर्ष पुराने पौद (sudling), जो ५ से १० फुट ऊँचे होते हैं, लगाए जाते हैं और लगभग ६० वर्षो में यह औसत ६० फुट का हो जाता है और इसके धड़ का व्यास डेढ से दो फुट का हो सकता है। बरमा में ८० वर्ष की उम्र के पेड का घेरा २ फुट व्यास का हो जाता है, यद्यपि भारत में इतना मोटा होने में २०० वर्ष लग सकते हैं। भारत के ट्रावनकोर, कोचीन, मद्रास, कुर्ग, मैसूर, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के जगलों के सागौन की उत्कृष्ट लकडियाँ अधिकाश बाहर चली जाती हैं। बरमा का सागौन पहले पर्याप्त मात्रा में भारत आता था पर अब वह वहाँ से ही बाहर चला जाता है। थाईलैंड की लकडी भी पाश्चात्य देशों को चली जाती है।

साझेदारी (Partnership) व्यापार संगठन की साझेदारी पद्धति का जन्म एकाकी व्यापारी की सीमाओ के कारण हुआ। एकाकी व्यापार पद्धति यद्यपि कार्यकुशलता तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त हुए लाभ के पारस्परिक संबंध के दृष्टिकोण से अन्य व्यापार पद्धतियो से श्रेष्ठ मानी जाती है किंतु आजकल के श्रमविभाजन तथा बडे पैमाने के व्यापार के युग में उसके गुण छोटे पैमाने के व्यापार अथवा उन एकाकी व्यापारियो तक सीमित हैं जिनमें उत्पत्ति के विभिन्न साधनो (जैसे धन, उद्यम तथा कार्यकुशलता आदि) का समावेश उचित भाग में हो। भारतीय साझेदारी विधान के अनुसार साझेदारी उन व्यक्तियो का पारस्परिक सबंध है जो सब अथवा सबके लिये कुछ स्थानापन्न के रूप में मिलकर व्यापार करने तथा उसके लाभ को आपस में विभाजित करने के लिये सहमत हो जाते हैं। इस परिभाषा के अनुसार साझेदारी के निम्नलिखित लक्षण हैं . (१) साझेदारी के लिये एक से अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है किंतु साझियो की सख्या २० तथा बैंकिंग व्यवसाय में १० से अधिक नहीं होनी चाहिए। (२) सबधित व्यक्तियो का व्यापार करने के लिये सहमत होना आवश्यक है। दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियो का किसी संपत्ति से प्राप्त आय का आपस में विभाजन करना साझेदारी नही कहलाता, (३) उनमें व्यापारिक लाभ हानि को आपस मे बाँटने की सहमति भी आवश्यक है, (४) यह भी आवश्यक है कि व्यापार करने में या तो सब अथवा सबके लिये कुछ भाग लें।

साझेदारी अनुबंध से सबधित व्यक्तियो को साझेदार तथा साझेदारों को सामूहिक रूप से 'फर्म' कहा जाता है। वैधानिक दृष्टि से साझेदार तथा फर्म एक दूसरे से अलग नहीं माने जाते। इस प्रावधान के कारण प्रत्येक साझी फर्म की ओर से प्रसविद कर सकता है, फर्म के ऋणो के लिये व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनो रूप में अपरिमित उत्तरदायित्व का भागी होता है, तथा उसकी मृत्यु अथवा अन्य किसी वैधानिक अयोग्यता के फलस्वरूप साझा टूट जाता है।

साझेदारी व्यवसाय का मुख्य लाभ अनेक व्यक्तियो के संयुक्तीकरण से होनेवाले विभिन्न लाभो में है। साझेदारी पद्धति के आधार पर वे व्यक्ति भी जो केवल धनी हैं तथा कार्यकुशल नही, अथवा कार्यकुशल हैं पर धनी नहीं, व्यापार में भाग ले सकते हैं क्योकि ऐसी अवस्था में एक साझी दूसरे साझी की कमी को पूरा कर सकता है। अनेक साझियो के साधनों का परस्पर एकीकरण हो जाने के फलस्वरूप व्यापार को बडे पैमाने पर भी चलाया जाना सभव है।

फर्म के व्यापार में समस्त साझेदारो की सहमति होना आवश्यक है। अत किसी विषय पर मतभेद होने की अवस्था मे प्रबध कार्यो में बाधा एवं विलब होने की संभावना बनी रहती है। साझेदार का उत्तरदायित्व एकाकी व्यापारी की भाँति अपरिमित होता है। इस कारण यदि किसी एक साझी के कारण फर्म को हानि होती है, तो वह उसको वहन करनी पड़ती है। कार्यकुशलता तथा लाभप्राप्ति मे पारस्परिक सबध का दूर होना साझेदारी की लोकप्रियता को सीमित रखता है। इसके अतिरिक्त साझेदारी का अस्तित्व भी अनिश्चित रहता है। किसी एक साझेदार की मृत्यु पर अथवा अन्य किसी प्रकार से वैधानिक रूप से अयोग्य हो जाने पर साझेदारी टूट जाती है जो अन्य साझेदारो के लिये असुविधाजनक होता है।

यद्यपि साधनो के दृष्टिकोण से साझेदारी-व्यापार-पद्धति के अनेक लाभ हैं तथापि वर्तमान युग में इसकी लोकप्रियता क्रमश कम होती जा रही है। इस पद्धति की त्रुटियो के कारण आधुनिक बडे पैमाने के उद्योगो की स्थापना परिमित दायित्ववाली सयुक्त पूँजीवाली कपनियो का प्रादुर्भाव तथा विश्वसनीय साझियो के मिलने में कठिनाई है। [अ० ना० अ०]

सॉडि, फ्रेडरिक (Soddy, Frederick, सन् १८७७), अंग्रेज रसायनज्ञ, का जन्म ससेक्स काउटी के ईस्टबोर्न नामक नगर में हुआ था। इन्होने इसी नगर मे, वेल्स के युनिवर्सिटी कॉलेज मे तथा ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय के मर्टन कॉलेज में अध्ययन किया और क्रमश. ग्लासगो, ऐबर्डीन तथा ऑक्सफर्ड में प्रोफेसर के पद पर रहे।

आरंभ मे आपने लॉर्ड रदर्फर्ड के साथ विघटनाभिकता (radioactivity) पर अनुसंधान किए। रेडियोऐक्टिव तत्वों सबधी रासायनिक प्रयोगो से प्रेरित होकर इन्होंने अपना परमाणु विघटन

सिद्धांत तथा रेडियोऐक्टिव परिवर्तनो के लिये आवर्त सारणी में "विस्थापन नियम" प्रतिपादित किया। इन्होने ही सर्वप्रथम पता लगाया कि ऐसे तत्व भी होते हैं जिनके नाभिकीय द्रव्यमानो में तो अंतर होता है, पर प्रायः सभी रासायनिक गुण एक सदृश होते हैं। इन तत्वो का नाम इन्होने आइसोटोप (समस्थानिक) रखा।

सन् १९१० में ये रॉयल सोसायटी के सदस्य चुने गए तथा सन् १९२१ मे इन्हें नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। इन्होने कई महत्वपूर्ण वैज्ञानिक ग्रंथ भी लिखे हैं। [भ० दा० व०]

सातपुड़ा पहाड़ियाँ स्थिति : २१° ४०' उ० अ० तथा ७५° ०' पू० दे०। ये भारत के मध्य में लगभग ६०० मील तक फैली हुई पहाडियो की श्रृखला हैं, जो अमरकटक से प्रारंभ होकर पश्चिम की ओर पश्चिमी समुद्री किनारे तक जाती हैं। अमरकंटक से दक्षिण पश्चिम में १०० मील तक श्रृखला का वाह्य कटक (ridge) जाता है। पश्चिम की ओर बढ़ती हुई यह श्रृंखला दो समातर श्रेणियो में विभक्त होकर, ताप्ती की घाटी को घेरती हुई, असीरगढ़ के प्रसिद्ध पहाड़ी किले तक जाती है। इसके आगे नर्मदा घाटी को ताप्ती घाटी से पृथक् करनेवाली खानदेश की पहाड़ियाँ पश्चिमी घाट तक श्रृखला को पूरा करती हैं। सातपुड़ा पहाड़ियो की औसत ऊँचाई २,५०० फुट है, पर अमरकटक तथा चौरादादर की ऊँचाई ३,५०० फुट है। असीरगढ के पूर्व में श्रृखला भंग हो जाती है। यहाँ पर दर्रा है और दर्रे से जबलपुर से बवई जानेवाला रेलमार्ग गुजरता है। ये पहाड़ियाँ साधारणतया दक्कन की उत्तरी सीमा समझी जाती हैं। [अ० ना० मे०]

सातमाला श्रेणियाँ महाराष्ट्र और आंध्र राज्यो मे फैली हुई हैं। इन्हें अजंता, चांदोर तथा इध्याद्रि पहाड़ियाँ और सह्याद्रि पर्वत भी कहते हैं।

सात्यकि शिनि का पुत्र जिसको दारुक, युयुधान तथा शैनेय भी कहते हैं। यह कृष्ण का सारथी और नातेदार था। पाडवो की ओर से लड़ा और द्वारका के कृतवर्म को मार डाला जिसके कारण कृतवर्म के मित्रो ने इसकी हत्या कर डाली। [रा० द्वि०]

सात्वत यह नाम विष्णु, श्रीकृष्ण, बलराम तथा यादवमात्र के लिये प्रयुक्त होता है। कूर्म पुराण मे यदुवश के सत्वत नामक एक राजा का उल्लेख है जो अंशु के पुत्र और सात्वत के पिता थे। सात्वत ने नारद से वैष्णव धर्म का उपदेश ग्रहण किया जिसे सात्वत धर्म भी कहते हैं। यह धर्म वैष्णव संप्रदाय में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। पद्मपुराण के उत्तरखंड में लिखा है कि जो सभी कर्मो को त्यागकर अनन्य चित्त से श्रीकृष्ण, केशव अथवा हरि की उपासना करता है वही सात्वत भक्त है। इस नाम का एक प्राचीन देश भी था। [रा० द्वि०]

सात्विक (गुण) प्रकृति (दे०) के तीन गुणों में एक गुण। यह गुण हल्का या लघु और प्रकाश करनेवाला है। प्रकृति से पुरुष का संबंध इसी गुण से होता है। बुद्धिगत सत्व मे पुरुष अपना बिंब देखकर अपने को कर्ता मानने लगता है। सत्वगत मलिनता आदि का अपने मे आरोप करने लगता है। सत्व की मलिनता या शुद्धता के अनुसार व्यक्ति की बुद्धि मलिन या शुद्ध होती है। अतः योग और सांख्य दर्शनों में सत्व शुद्धि पर जोर दिया गया है। जिन वस्तुओं से बुद्धि निर्मल होती है उन्हें सात्विक कहते हैं — आहार, व्यवहार, विचार आदि पवित्र हो तो सत्व गुण की अभिवृद्धि होती है जिससे बुद्धि निर्मल होती है। अत्यंत निर्मल बुद्धि में पड़े प्रतिबिंब से पुरुष को अपने असली केवल, निरंजन रूप का ज्ञान हो जाता है और वह मुक्त हो जाता है। [रा० चं० पां०]

साध्यवाद (Teleology) इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक कार्य या रचना में कोई उद्देश्य, प्रयोजन या अंतिम कारण निहित रहता है जो उसके संपादनार्थ प्रेरणा प्रदान किया करता है। इसके विपरीत यंत्रवाद का सिद्धांत है। इसके अनुसार संसार की प्रत्येक घटना कार्य-कारण-सिद्धांत से घटती है। हर कार्य के पूर्व एक कारण होता है। वह कारण ही कार्य के होने का उत्तरदायी है। इसमे प्रयोजन के लिये कोई स्थान नहीं है। ससार के जड़ पदार्थ ही नहीं चेतन प्राणी भी, यंत्रवाद के अनुसार, कार्य-कारण-नियम से ही हर व्यवहार करते हैं। साध्यवाद के सिद्धांतानुसार संसार में सर्वत्र एक सप्रयोजन व्यवस्था है। विश्व की प्रत्येक घटना किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये संपादित होती है। चेतन प्राणी तो हर कार्य किसी उद्देश्य से करता ही है, जड़ पदार्थों का संघटन और विघटन भी सप्रयोजन होता है। यंत्रवादी यदि भूत के माध्यम से वर्तमान और भविष्य की व्याख्या करते हैं, तो साध्यवादी भविष्य के माध्यम से भूत और वर्तमान की व्याख्या करते हैं। यंत्रवाद के अनुसार कोई न कोई कारण हर कार्य को ढकेलकर आगे बढ़ा रहा है। साध्यवाद के अनुसार कोई न कोई प्रयोजन हर कार्य को खीचकर आगे बढ़ा रहा है।

साध्यवाद दो प्रकार का हो सकता है — वाह्य साध्यवाद और अंतर साध्यवाद। वाह्य साध्यवाद के अनुसार कार्य में स्वयं कोई प्रयोजन न होकर उससे वाहर अन्यत्र प्रयोजन रहता है। घड़ी की रचना मे प्रयोजन घड़ी में नही, वरन् घड़ीसाज मे निहित रहता है। इसी प्रकार संसार का रचयिता संसार की रचना अपने प्रयोजन के लिये करता है। संसार और उसके रचयिता में वाह्य सबंध है। ईश्वरवादी इस सिद्धात के समर्थक हैं। आंतरिक साध्यवाद के अनुसार संसार की सब क्रियाओं का प्रयोजन ससार मे ही निहित है। विश्व जिस चेतन सत्ता की अभिव्यक्ति है वह संसार में ही व्याप्त है। ससार में व्याप्त चेतना संसार के द्वारा अपना प्रयोजन सिद्ध करती है। हीगेल, ब्रेडले, लोत्जे आदि अंतर साध्यवाद के ही समर्थक हैं।

साध्यवाद के समर्थन मे अनेक प्रमाण दिए जाते हैं। प्रकृति में सर्वत्र साधन और साध्य का सामंजस्य दिखाई देता है। पृथ्वी के घूमने से दिन, रात और ऋतुपरिवर्तन होते हैं। गर्मी, सर्दी और वर्षा के अनुपात से वनस्पति उत्पन्न होती है। वृक्षो के मोटे तने से आँधी से वृक्ष की रक्षा होती है। पत्तियाँ साँस लेने का काम करती हैं। पशुओ के शरीर उनकी आवश्यकता के अनुसार हैं। इस प्रकार

ससार में सर्वत्र प्रयोजन दिखाई देता है। विश्व में जो क्रमिक विकास होता दिखाई देता है वह किसी प्रयोजन की सूचना देता है। ससार की यन्त्रवादी व्याख्या इस प्रश्न का उत्तर नही दे सकती कि ससार यन्त्र के समान क्यो चल रहा है। इसलिये ससार की रचना का प्रयोजन मानना पडता है।

साध्यवाद बहुत प्राचीन सिद्धात है। सभवत' मनुष्य ने जब से दार्शनिक चिंतन करना शुरू किया, इसी सिद्धात से संसारसृष्टि की व्याख्या करता रहा है। मानवीय व्यवहार सदा सप्रयोजन देखकर संसार की रचना को भी वह सप्रयोजन समझता रहा है। अरस्तू के चार कारणो में 'अतिम' कारण साध्यवाद को स्वीकार करता है। मध्य काल के अत में देकार्त आदि ने यन्त्रवाद की ओर झुकाव दिखाया किंतु आधुनिक युग मे साध्यवादी सिद्धात का पुन समर्थन होने लगा। आधुनिक साध्यवाद नवसाध्यवाद के नाम से प्रसिद्ध है। इसके प्रमुख समर्थक हीगेल, गीन, ब्रेडले, बोसाके और रायस आदि हैं। हीगेल के विचार से ससार एक निरपेक्ष चेतन सत्ता की अभिव्यक्ति है। संसार अपने विकासक्रम के द्वारा निरपेक्ष चेतन सत्ता की अनूभूति प्राप्त कर स्वचेतन बनना चाहता है। इसी प्रयोजन से ससार की सब घटनाएँ घट रही हैं।

भारतीय दर्शन में प्राय सर्वत्र साध्यवाद का समर्थन मिलता है। साख्य दर्शन में प्रकृति इस उद्देश्य से सृष्टिरचना करती है कि पुरुष उसमें सुख दु.ख का अनुभव करे और अत में मुक्ति प्राप्त कर ले। जड प्रकृति मे अध प्रयोजन निहित होने के कारण डा० दासगुप्त ने इसे अतर्निहित साध्यवाद (इनहेरेंट टिलियोलाजी) कहा है। योग दर्शन में अंध प्रयोजन असभावित मानकर ईश्वर की सत्ता स्वीकार की गई है। ईश्वर प्रकृति को सृष्टिरचना में नियोजित करता है। इस प्रकार साख्य अतर साध्यवाद और योग वाह्य साध्यवाद का समर्थन करता है। न्याय जैसे ईश्वरवादी दर्शन वाह्य साध्यवाद के ही समर्थक हैं।

नीतिशास्त्र में साध्यवाद के अनुसार मूल्य या शुभ ही मानव-जीवन का मानक (स्टैंडर्ड) स्वीकार किया जाता है। नैतिक आचरण का उद्देश्य उच्च मूल्यो को प्राप्त करना है। सत्यं, शिवं, सुंदर हमे उसी प्रकार आकृष्ट करते हैं जैसे कोई सुदर चित्र अपनी ओर आकृष्ट करता है। कर्तव्य या कानून मनुष्य को ढकेलकर नैतिक आचरण कराते हैं, यह साध्यवाद सिद्धात के विपरीत है।

ज्ञानमीमासा के साध्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार सत्य की खोज मे बुद्धि उद्देश्यों, मूल्यो, रुचियो, प्रवृत्तियो और तात्विक या तार्किक प्रमाणो से सचालित या निर्देशित होती है।

मनोविज्ञान में प्रो० मैकडूगल का हार्मिक स्कूल साध्यवाद का ही परिणाम है। इसके अनुसार मनुष्य के कार्यव्यापार किसी न किसी प्रयोजन से होते हैं, यन्त्रवत् नही।

प्राणिशास्त्र में वाईटलिज्म का सिद्धात भी साध्यवादी प्रकृति का है। [हृ० ना० मि०]

सान्याल, शचींद्रनाथ जन्म १८९३, वाराणसी में मृत्यु १९४२, गोरखपुर मे। क्वीस कालेज (वनारस) में अपने अध्ययनकाल में उन्होने काशी के प्रथम क्रातिकारी दल का गठन १९०८ में किया। १९१३ में फ्रेंच वस्ती चद्रनगर में सुविख्यात क्रातिकारी रासविहारी से उनकी मुलाकात हुई। कुछ ही दिनो में काशी केंद्र का चद्रनगर दल में विलय हो गया और रासविहारी काशी आकर रहने लगे।

क्रमश काशी उत्तर भारत में क्राति का केंद्र बन गई। १९१४ में प्रथम महायुद्ध छिडने पर सिक्खो के दल ब्रिटिश शासन समाप्त करने के लिये अमरीका और कनाडा से स्वदेश प्रत्यावर्तन करने लगे। रासविहारी को वे पजाब ले जाना चाहते थे। उन्होने शचीद्र को सिक्खो से सपर्क करने, स्थिति से परिचित होने और प्रारभिक सगठन करने के लिये लुधियाना भेजा। कई वार लाहौर, लुधियाना आदि होकर शचीद्र काशी लौटे और रासविहारी लाहौर गए। लाहौर के सिक्ख रेजिमेंटो ने २१ फरवरी, १९१५ को विद्रोह शुरू करने का निश्चय कर लिया। काशी के एक सिक्ख रेजिमेंट ने भी विद्रोह शुरू होने पर साथ देने का वादा किया।

योजना विफल हुई, बहुतों को फाँसी पर चढना पड़ा और चारो ओर घर पकड शुरू हो गई। रासविहारी काशी लौटे। नई योजना वनने लगी। तत्कालीन होम मेंबर सर रेजिनाल्ड क्रेडक की हत्या के आयोजन के लिये शचीद्र को दिल्ली भेजा गया। यह कार्य भी असफल रहा। रासविहारी को जापान भेजना तय हुआ। १२ मई, १९१५ को गिरजा वावू और शचीद्र ने उन्हें कलकत्ते के बदरगाह पर छोडा। दो तीन महीने वाद काशी लौटने पर शचींद्र गिरफ्तार कर लिए गए। लाहौर षड्यन्त्र मामले की शाखा के रूप में वनारस पूरक षड्यन्त्र केस चला और शचीद्र को आजन्म काले-पानी की सजा मिली।

युद्धोपरात शाही घोषणा के परिणामस्वरूप फरवरी, १९२० में वारीद्र, उपेंद्र आदि के साथ शचीद्र रिहा हुए। १९२१ में नागपुर काग्रेस में राजवदियो के प्रति सहानुभूति का एक सदेश भेजा गया। विषय-निर्वाचन-समिति के सदस्य के रूप में शचीद्र ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए एक भाषण किया।

क्रातिकारियो ने गाधी जी को सत्याग्रह आदोलन के समय एक वर्ष तक अपना कार्य स्थगित रखने का वचन दिया था। चौरी चौरा काड के वाद सत्याग्रह वापस लिए जाने पर, उन्होंने पुनः क्रातिकारी सगठन का कार्य शुरू कर दिया। १९२३ के प्रारभ मे रावलपिंडी से लेकर दानापुर तक लगभग २५ केंद्रो की उन्होंने स्थापना कर ली थी। इस दौरान लाहौर में तिलक स्कूल ऑव पॉलिटिक्स के कुछ छात्रो से उनका सपर्क हुआ। इन छात्रों में सरदार भगतसिंह भी थे। भगतसिंह को उन्होने दल में शामिल कर लिया और उन्हें कानपुर भेजा। इसी समय उन्होंने कलकत्ते में यतींद्र दास को चुन लिया। यह वही यतींद्र हैं, जिन्होने लाहौर षड्यन्त्र केस मे भूख हडताल से अपने जीवन का वलिदान किया। १९२३ मे ही कौंसिल प्रवेश के प्रश्न पर दिल्ली में काग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। इस अवसर पर शचीद्र ने देशवासियो के नाम एक अपील निकाली, जिसपर काग्रेस महासमिति के अनेक सदस्यो ने हस्ताक्षर किए। काग्रेस से अपना ध्येय वदलकर पूर्ण स्वतंत्रता लिए जाने का प्रस्ताव था। इसमें एशियाई राष्ट्रो के सघ के निर्माण का सुझाव

भी दिया गया। अमेरिकन पत्र 'न्यू रिपब्लिक' ने अपील ज्यो की त्यो छाप दी, जिसकी एक प्रति रासविहारी ने जापान से शचींद्र को भेजी। इस अधिवेशन के अवसर पर ही कुतुबुद्दीन अहमद उनके पास मानवेंद्र राय का एक संदेश ले आए, जिसमें उन्हे कम्युनिस्ट अंतरराष्ट्रीय सघ की तीसरी बैठक में शामिल होने को आमंत्रित किया गया था।

इसके कुछ ही दिनो बाद उन्होंने अपने दल का नामकरण किया 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन'। उन्होने इसका जो सविधान तैयार किया, उसका लक्ष्य था सुसगठित और सशस्त्र क्राति द्वारा भारतीय लोकतंत्र सघ की स्थापना। कार्यक्रम मे खुले तौर पर काम और गुप्त सगठन दोनो शामिल थे। क्रातिकारी साहित्य के सृजन पर विशेष बल दिया गया था। समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के बारे में भी इसमें प्रचुर इंगित था। सविधान के शब्दो मे 'इस प्रजातंत्र सघ मे उन सब व्यवस्थाओ का अत कर दिया जायगा जिनसे किसी एक मनुष्य द्वारा दूसरे का शोषण हो सकने का अवसर मिल सकता है।' विदेशो मे भारतीय क्रातिकारियो के साथ घनिष्ठ सबध रखना भी कार्यक्रम का एक अग था। बेलगाँव काग्रेस के अधिवेशन में गाधी जी ने क्रातिकारियो की जो आलोचना की थी, उसके प्रत्युत्तर में शचीद्र ने महात्मा जी को एक पत्र लिखा। गाधी जी ने यग इडिया के १२ फरवरी, १६२५ के अंक में इस पत्र को ज्यो का त्यो प्रकाशित कर दिया और साथ ही अपना उत्तर भी।

लगभग इसी समय सूर्यकात सेन के नेतृत्व में चटगाँव दल का, शचीद्र के प्रयत्न से, हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन से संबध हो गया। शचीद्र बंगाल आर्डिनेंस के अधीन गिरफ्तार कर लिए गए। उनकी गिरफ्तारी के पहले 'दि रिव्होलूशनरी' नाम का पर्चा पजाब से लेकर बर्मा तक बँटा। इस पर्चे के लेखक और प्रकाशक के रूप मे बाँकुडा में शचीद्र पर मुकदमा चला और राजद्रोह के अपराध मे उन्हें दो वर्ष के कारावास का दड मिला। कैद की हालत में ही वे काकोरी षड्यत्र केस मे शामिल किए गए और सगठन के प्रमुख नेता के रूप मे उन्हें पुन अप्रैल, १६२७ मे आजन्म कारावास की सजा दी गई।

१६३७ में सयुक्त प्रदेश में काग्रेस मत्रिमडल की स्थापना के बाद अन्य क्रातिकारियो के साथ वे रिहा किए गए। रिहा होने पर कुछ दिनो वे काग्रेस के प्रतिनिधि थे, परतु बाद को वे फारवर्ड ब्लाक मे शामिल हुए। इसी समय काशी मे उन्होने 'अग्रगामी' नाम से एक दैनिक पत्र निकाला। वह स्वयं इस पत्र के सपादक थे। द्वितीय महायुद्ध छिड़ने के कोई साल भर बाद १६४० में उन्हे पुन नजरबद कर राजस्थान के देवली शिविर में भेज दिया गया। वहाँ यक्ष्मा रोग से आक्रात होने पर इलाज के लिये उन्हें रिहा कर दिया गया। परतु बीमारी बढ गई और १६४२ मे उनकी मृत्यु हो गई।

क्रातिकारी आदोलन को बौद्धिक नेतृत्व प्रदान करना उनका विशेष कृतित्व था। उनका दृढ मत था कि विशिष्ट दार्शनिक सिद्धांत के बिना कोई आदोलन सफल नही हो सकता। 'विचारविनिमय' नामक अपनी पुस्तक में उन्होने अपना दार्शनिक दृष्टिकोण किसी अंश तक प्रस्तुत किया है। 'साहित्य, समाज और धर्म' में भी उनके अपने विशेष दार्शनिक दृष्टिकोण का और प्रबल धर्मानुराग का भी परिचय मिलता है। [भू० सा०]

साप्पोरो (Sapporo) स्थिति ४३° ३५' उ० अ० तथा १४१° २१' पू० दे०। जापान के इस नगर की जनसख्या ५,२३,८३७ (१६६० ई०) है। १८६८ ई० मे इस नगर की स्थापना की गई थी। यह ईशीकारी (Ishikari) अमेरा तथा यूबारी (Yubari) कोयला क्षेत्र के रेलमार्ग पर स्थित होने के साथ ही ओटारी (Otari) बदरगाह से भी मिला है। इस नगर के समीप इबीतसू (Ebitsu) नामक स्थान पर जापान का एक प्रमुख कागज का कारखाना भी है। १६१८ ई० में यहाँ राजकीय विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। शीतप्रधान जलवायु के कारण यहाँ ऐसा वनस्पति उद्यान स्थापित किया गया है जिसमें अल्पीय पेड़ पौधो को विशेष स्थान प्रदान किया गया है। यहाँ से ११ मील दक्षिण जोसाकी (Josankei) नामक गरम पानी का सोता है। इस कारण यह पर्यटक स्थल बन गया है। [भू० का० रा०]

साबरकाँठा जिला भारत के गुजरात राज्य मे स्थित है। इस जिले के पूर्व और पूर्व-उत्तर में राजस्थान राज्य है तथा उत्तर में बनासकाँठा, पश्चिम में महेसाणा, पश्चिम-दक्षिण मे अहमदाबाद और दक्षिणपूर्व में पंचमहल जिले हैं। इस जिले का क्षेत्रफल २,८४३ वर्ग मील तथा जनसंख्या ६,१८,५८७ (१६६१) है। ब्रिटिश शासनकाल में साबरकाँठा नामक राजनीतिक एजेंसी थी, जिसके अतर्गत ४६ राज्य ऐसे थे जिन्हे न्याय करने के बहुत कम। अधिकार प्राप्त थे और १३ तालुके ऐसे थे जिन्हे न्याय करने का कोई अधिकार प्राप्त नही था। इस जिले का प्रशासनिक केंद्र हिम्मतनगर है, जिसकी जनसंख्या १५,२८७ (१६६१) है। जिले के अधिकांश निवासी भील एवं अन्य आदिवासी हैं। भारत के स्वतत्र होने के बाद इस जिले में हरना नदी तथा हथमाटी नदी पर बाँध बनाए गए हैं, जिनसे क्रमश. लगभग १०,००० एव ८२,००० एकड़ भूभाग की सिंचाई की जा रही है।

[अ० ना० मे०]

साबरमती आश्रम भारत के गुजरात राज्य के अहमदाबाद जिले के प्रशासनिक केंद्र अहमदाबाद के समीम साबरमती नदी के किनारे स्थित है। सन् १६१६ में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना अहमदाबाद के कोचरब नामक स्थान मे महात्मा गाधी द्वारा हुई थी। सन् १६१७ में यह आश्रम साबरमती नदी के किनारे वर्तमान स्थान पर स्थानातरित हुआ और तब से साबरमती आश्रम कहलाने लगा। आश्रम के वर्तमान स्थान के संबध मे इतिहासकारो का मत है कि पौराणिक दधीचि ऋषि का आश्रम भी यही पर था।

आश्रम वृक्षो की शीतल छाया में स्थित है। यहाँ की सादगी एवं शांति देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। आश्रम की एक ओर सेंट्रल जेल और दूसरी ओर दुधेश्वर श्मशान है। आश्रम के प्रारभ मे निवास के लिये कैनवास के खेमे और टीन से छाया हुआ रसोईघर था। सन् १६१७ के अंत में यहाँ के निवासियों की कुल संख्या ४० थी। आश्रम का जीवन गाधी जी के सत्य, अहिंसा आत्मसंयम, विराग एव समानता के सिद्धातो पर आधारित महान् प्रयोग

था और यह जीवन उस सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक क्राति का, जो महात्मा जी के मस्तिष्क में थी, प्रतीक था।

साबरमती आश्रम सामुदायिक जीवन को, जो भारतीय जनता के जीवन से सादृश्य रखता है, विकसित करने की प्रयोगशाला कहा जा सकता था। इस आश्रम में विभिन्न धर्मावलबियो में एकता स्थापित करने, चर्खा, खादी एव ग्रामोद्योग द्वारा जनता की आर्थिक स्थिति सुधारने और अहिंसात्मक असहयोग या सत्याग्रह के द्वारा जनता मे स्वतत्रता की भावना जाग्रत करने के प्रयोग किए गए। आश्रम भारतीय जनता एव भारतीय नेताओ के लिये प्रेरणास्रोत तथा भारत के स्वतत्रता सघर्ष से सबधित कार्यों का केंद्रविंदु रहा है। कताई एव बुनाई के साथ साथ चर्खे के भागो का निर्माणकार्य भी धीरे धीरे इस आश्रम मे होने लगा।

आश्रम मे रहते हुए ही गाधी जी ने अहमदाबाद की मिलो में हुई हड़ताल का सफल सचालन किया। मिल मालिक एव कर्मचारियो के विवाद को सुलझाने के लिये गाधी जी ने अनशन आरभ कर दिया था, जिसके प्रभाव से २१ दिनो से चल रही हड़ताल तीन दिनो के अनशन से ही समाप्त हो गई। इस सफलता के पश्चात् गाधी जी ने आश्रम मे रहते हुए खेडा सत्याग्रह का सूत्रपात किया। रालेट समिति की सिफारिशों का विरोध करने के लिये गाधी जी ने यहाँ तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं का एक समेलन आयोजित किया और सभी उपस्थित लोगो ने सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर किए।

साबरमती आश्रम में रहते हुए महात्मा गाधी ने २ मार्च, १९३० ई० को भारत के वाइसराय को एक पत्र लिखकर सूचित किया कि वह नौ दिनो का सविनय अवज्ञा आदोलन आरभ करने जा रहे हैं। १२ मार्च, १९३० ई० को महात्मा गाधी ने आश्रम के अन्य ७८ व्यक्तियो के साथ नमक कानून भग करने के लिये ऐतिहासिक दंडी यात्रा की। इसके बाद गाधी जी भारत के स्वतत्र होने तक यहाँ लौटकर नही आए। उपर्युक्त आदोलन का दमन करने के लिये सरकार ने आदोलनकारियो की सपत्ति जब्त कर ली। आदोलनकारियो के प्रति सहानुभूति से प्रेरित होकर, गाधी जी ने सरकार से साबरमती आश्रम ले लेने के लिये कहा पर सरकार ने ऐसा नही किया, फिर भी गाधी जी ने आश्रमवासियो को आश्रम छोड़कर गुजरात के खेड़ा जिले के बोरसद के निकट रासग्राम मे पैदल जाकर बसने का परामर्श दिया, लेकिन आश्रमवासियो के आश्रम छोड देने के पूर्व १ अगस्त, १९३३ ई० को सब गिरफ्तार कर लिए गए। महात्मा गाधी ने इस आश्रम को भग कर दिया। आश्रम कुछ काल तक जनशून्य पडा रहा। बाद में यह निर्णय किया गया कि हरिजनो तथा पिछडे वर्गों के कल्याण के लिये शिक्षा एव शिक्षा सबधी सस्थाओ को चलाया जाए और इस कार्य के लिये आश्रम को एक न्यास के अधीन कर दिया जाए।

गाधी जी की मृत्यु के पश्चात् उनकी स्मृति को निरतर सुरक्षित रखने के उद्देश्य से एक राष्ट्रीय स्मारक कोष की स्थापना की गई। साबरमती आश्रम गाधी जी के नेतृत्व के आरभ काल से ही सबधित है, अत. गाधी-स्मारक-निधि नामक सगठन ने यह निर्णय किया कि आश्रम के उन भवनो को, जो गाधी जी से सबंधित थे, सुरक्षित रखा जाए। इसलिये १९५१ ई० में साबरमती आश्रम सुरक्षा एव स्मृति न्यास अस्तित्व में आया। उसी समय से यह न्यास महात्मा गाधी के निवास, हृदयकुज, उपासनाभूमि नामक प्रार्थनास्थल और मगननिवास की सुरक्षा के लिये कार्य कर रहा है।

हृदयकुज में गाधी जी एव कस्तूरबा ने लगभग १२ वर्षो तक निवास किया था। १९ मई, १९६३ ई० को श्री जवाहरलाल ने हृदयकुज के समीप गाधी स्मृति सग्रहालय का उद्घाटन किया। इस सग्रहालय में गाधी जी के पत्र, फोटोग्राफ और अन्य दस्तावेज रखे गए हैं। यंग इडिया, नवजीवन तथा हरिजन में प्रकाशित गाधी जी के ४०० लेखो की मूल प्रतियाँ, बचपन से लेकर मृत्यु तक के फोटोग्राफो का वृहत् सग्रह और भारत तथा विदेशो में भ्रमण के समय दिए गए भाषणो के १०० सग्रह यहाँ प्रदर्शित किए गए हैं। सग्रहालय में पुस्तकालय भी है, जिसमे साबरमती आश्रम की ४,००० तथा महादेव देसाई की ३,००० पुस्तको का सग्रह है। इस संग्रहालय में महात्मा गाधी द्वारा और उनको लिखे गए ३०,००० पत्रो की अनुक्रमणिका है। इन पत्रो में कुछ तो मूल रूप में ही हैं और कुछ के माइक्रोफिल्म सुरक्षित रखे गए हैं।

जब तक साबरमती आश्रम का दर्शन न किया जाए तब तक गुजरात या अहमदाबाद नगर की यात्रा अपूर्ण ही रहती है। अब तक विश्व के अनेक देशो के प्रधानो, राजनीतिज्ञो एव विशिष्ट व्यक्तियो ने इस आश्रम के दर्शन किए हैं। [अ० ना० मे०]

साबरमती नदी यह पश्चिमी भारत की नदी है, जो मेवाड की पहाडियो से निकलकर २०० मील बहने के उपरात दक्षिण पश्चिम की ओर खंबात की खाडी में गिरती है। इसके द्वारा लगभग ९,५०० वर्ग मील क्षेत्र का जलनिकास होता है। इस नदी का नाम साबर और हाथमती नामक नदियों की धाराओं के मिलने के कारण साबरमती पडा। अहमदाबाद नगर और इसके आसपास नदी के किनारे कई तीर्थस्थल हैं। इसके द्वारा निक्षेपित गाद में फसलें अच्छी होती हैं। [अ० ना० मे०]

साबुन वसा अम्लो के जलविलेय लवण हैं। ऐसे वसा अम्लो में ६ से २२ कार्बन परमाणु रह सकते हैं। साधारणतया वसा अम्लो से साबुन नही तैयार होता। वसा अम्लो के ग्लिसराइड प्रकृति मे तेल और वसा के रूप मे पाए जाते हैं। इन ग्लिसराइडो से ही दाहक सोडा के साथ द्विक् अपघटन से ससार का अधिकाश साबुन तैयार होता है। साबुन के निर्माण में उपजात के रूप में ग्लिसरीन प्राप्त होता है जो बडा उपयोगी पदार्थ है (देखें ग्लिसरीन)।

उत्कृष्ट कोटि के शुद्ध साबुन बनाने के दो क्रम हैं. एक क्रम में तेल और वसा का जल अपघटन होता है जिससे ग्लिसरीन और वसा अम्ल प्राप्त होते हैं। आसवन से वसा अम्लो का शोधन हो सकता है। दूसरे क्रम में वसा अम्लो को क्षारो से उदासीन करते हैं। कठोर साबुन के लिये सोडा क्षार और मुलायम साबुन के लिये पोटैश क्षार इस्तेमाल करते हैं।

साबुन के कच्चे माल — बड़ी मात्रा में साबुन बनाने में तेल और वसा इस्तेमाल होते हैं। तेलों में महुआ, गरी, मूँगफली, ताड़, ताड़ गुद्दी, विनौले, तीसी, जैतून तथा सोयाबीन के तेल, और जांतव तैलों तथा वसा में मछली एवं ह्वेल की चरबी और हड्डी के ग्रीज (grease) अधिक महत्व के हैं। इन तेलों और वसा के अतिरिक्त रोजिन भी इस्तेमाल होता है।

अधिकांश साबुन एक तेल से नहीं बनते, यद्यपि कुछ तेल ऐसे हैं जिनसे साबुन बन सकता है। अच्छे साबुन के लिये कई तेलों अथवा तेलों और चरबी को मिलाकर इस्तेमाल करते हैं। भिन्न भिन्न कामों के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के साबुन बनते हैं। धुलाई के लिये साबुन सस्ता होना चाहिए। नहानेवाला साबुन महँगा भी रह सकता है। तेलो के वसा अम्लों के 'टाइटर', तेलो के 'आयोडीन मान', साबुनीकरण मान और रंग महत्व के हैं (देखें तल, वसा और मोम)। टाइटर से साबुन की विलेयता का, आयोडीन मान से तेलो की असंतृप्ति का और साबुनीकरण मान से वसा अम्लों के अणुभार का पता लगता है। कुछ काम के लिये न्यून टाइटर वाला साबुन अच्छा होता है और कुछ के लिये ऊँचे टाइटर वाला। असंतृप्त वसा अम्लो वाला साबुन रखने से साबुन में से पूतिगंध आती है। कम अणुभारवाले अम्लों के साबुन चमड़े पर मुलायम नही होते। कुछ प्रमुख तेलो और वसाओं के आँकड़े इस प्रकार हैं :

तेल	टाइटर सें० में	साबुनीकरण मान	आयोडीन मान
नारियल	२२-२५	२५८-२६६	९
ताडगुद्दी	२०-२५	२५२-२६४	१२
ताड	३५-४५	२०५-६	४३-३
जैतून	१७-२६	२००	८६-९०
मूँगफली	२६-२	२०१-६	९६-१०३
विनौला	३२-३५	२०२-२०८	१११-११५
तीसी	२६-६	१९७	१७९-२०९
हड्डी ग्रीज	३९-४१	२००	५६-५७
गो-चर्बी	३८-४८	१९८	४१-३

तेल के रंग पर ही साबुन का रंग निर्भर करता है। सफेद साबुन के लिये तेल और रंग की सफाई नितांत आवश्यक है। तेल की सफाई तेल में थोड़ा सोडियम हाइड्रॉक्साइड का विलयन डालकर गरम करने से होती है। तेल के रंग की सफाई तेल को वायु के बुलबुले और भाप पारित कर गरम करने से अथवा सक्रियित सरन्ध्र फुलर मिट्टी के साथ गरम कर छानने से होती है। साबुन में रोजिन भी डाला जाता है। रोजिन के साथ दाहक सोडा के मिलने से रोजिन के अम्ल का सोडियम लवण बनता है। यह साबुन सा ही काम करता है। रोजिन की मात्रा २५ प्रति शत से अधिक नहीं रहनी चाहिए। सामान्य साबुन में यह मात्रा प्राय. ५ प्रति शत रहती है। साबुन के चूर्ण मे रोजिन नही रहता। रोजिन से साबुन में पूतिगंध नही आती। साबुन को मुलायम अथवा जल्द घुलनेवाला और चिपकनेवाला बनाने के लिये उसमें थोड़ा अमोनिया या ट्राइ-इथेनोलैमिन मिला देते हैं। हजामत बनाने में प्रयुक्त होनेवाले साबुन मे उपर्युक्त रासायनिक द्रव्यों को अवश्य डालते हैं।

साबुन का निर्माण — साबुन बनाने के लिये तेल या वसा को दाहक सोडा के विलयन के साथ मिलाकर बड़े बड़े कड़ाहों या केतली मे उबालते हैं। कड़ाहे भिन्न भिन्न आकार के हो सकते हैं। साधारणतया १० से १५० टन जलधारिता के ऊर्ध्वाधार सिलिंडर मृदु इस्पात के बने होते हैं। ये भाप्कुंडली से गरम किए जाते हैं। धारिता का केवल तृतीयांश ही तेल या वसा से भरा जाता है।

कड़ाहे में तेल और क्षार विलयन के मिलाने और गरम करने के तरीके भिन्न भिन्न कारखानो में भिन्न भिन्न हो सकते हैं। कहीं कहीं कड़ाहे में तेल रखकर गरम कर उसमे सोडा द्राव डालते हैं। कही कही एक ओर से तेल ले आते और दूसरी ओर सोडा विलयन ले आकर गरम करते हैं। प्राय: ८ घंटे तक दोनो को जोरों से उबालते हैं। अधिकांश तेल साबुन बन जाता है और ग्लिसरीन उन्मुक्त होता है। अब कड़ाहे में नमक डालकर साबुन का लवणन (salting) कर नियरने को छोड़ देते हैं। साबुन ऊपरी तल पर और जलीय द्राव निचले तल पर अलग अलग हो जाता है। निचले तल के द्राव में ग्लिसरीन रहता है। साबुन के स्तर को पानी से धोकर नमक और ग्लिसरीन को निकाल लेते हैं। साबुन में क्षार का सांद्र विलयन (८ से १२ प्रति शत) डालकर तीन घंटे फिर गरम करते हैं। इससे साबुनीकरण परिपूर्ण हो जाता है। साबुन को फिर पानी से धोकर २ से ३ घंटे उबालकर थिराने के लिये छोड देते हैं। ३६ से ७२ घटे रखकर ऊपर के स्वच्छ चिकने साबुन को निकाल लेते हैं। ऐसे साबुन मे प्राय. ३३ प्रति शत पानी रहता है। यदि साबुन का रंग कुछ हल्का करना हो, तो थोड़ा सोडियम हाइड्रोसल्फाइट डाल देते हैं।

इस प्रकार साबुन तैयार करने में ५ से १० दिन लग सकते हैं। २४ घंटे में साबुन तैयार हो जाय ऐसी विधि भी अब मालूम है। इसमे तेल या वसा को ऊँचे ताप पर जल अपघटित कर वसा अम्ल प्राप्त करते और उनको फिर सोडियम हाइड्रॉक्साइड से उपचारित कर साबुन बनाते हैं। साबुन को जलीय विलयन से पृथक् करने में अपकेंद्रित्र का भी उपयोग हुआ है। आज ठंडी विधि से भी थोड़ा गरम कर सोडा विलयन के साथ उपचारित कर साबुन तैयार होता है। ऐसे तेल में कुछ असाबुनीकृत तेल रह जाता है। तेल का ग्लिसरीन भी साबुन में ही रह जाता है। यह साबुन निकृष्ट कोटि का होता है पर अपेक्षया सस्ता होता है। अर्ध-क्वथन विधि से भी प्राय: ८०° सें० तक गरम करके साबुन तैयार हो सकता है। मुलायम साबुन, विशेषत: हजामत बनाने के साबुन, के लिये यह विधि अच्छी समझी जाती है।

यदि कपड़ा धोनेवाला साबुन बनाना है, तो उसमें थोड़ा सोडियम सिलिकेट डालकर, ठंडा कर, टिकियों में काटकर उसपर मुद्रांकण करते हैं। ऐसे साबुन में ३० प्रति शत पानी रहता है। नहाने के साबुन में १० प्रति शत के लगभग पानी रहता है। पानी कम करने के लिये साबुन को पट्टवाही पर सुरंग किस्म के शोषक में सुखाते हैं।

यदि नहाने का साबुन बनाना है, तो सूखे साबुन को काटकर आवश्यक रंग और सुगंधित द्रव्य मिलाकर पीसते हैं, फिर उसे प्रेस में दबाकर छड़ बनाते और छोटा छोटा काटकर उसको मुद्रांकित करते हैं। पारदर्शक साबुन बनाने में साबुन को ऐल्कोहॉल में घुलाकर तब टिकिया बनाते हैं।

धोने के साबुन मे कभी कभी कुछ ऐसे द्रव्य भी डालते हैं जिनसे धोने की क्षमता बढ जाती है। इन्हें निर्माणद्रव्य कहते हैं। ऐसे द्रव्य सोडा ऐश, ट्राइ-सोडियम फ़ास्फ़ेट, सोडियम मेटा सिलिकेट, सोडियम परबोरेट, सोडियम परकार्बोनेट, टेट्रा-सोडियम पाइरो-फास्फेट और सोडियम हेक्सा-मेटाफ़ॉस्फ़ेट हैं। कभी कभी ऐसे साबुन में नीला रग भी डालते हैं जिससे कपडा अधिक सफेद हो जाता है। भिन्न भिन्न वस्त्रो, रुई, रेशम और ऊन के तथा धातुओ के लिये अलग अलग किस्म के साबुन बने हैं। निकृष्ट कोटि के नहाने के साबुन में पूरक भी डाले जाते हैं। पूरको के रूप मे केसीन, मैदा, चीनी और डेक्सट्रिन आदि पदार्थ प्रयुक्त होते हैं।

धुलाई की प्रक्रिया — साबुन से वस्त्रो के धोने पर मैल कैसे निकलती है इसपर अनेक निबंध समय समय पर प्रकाशित हुए हैं। अधिकाश मैल तेल किस्म की होती है। ऐसे तेलवाले वस्त्र को जब साबुन के विलयन में डुबाया जाता है, तब मैल का तेल साबुन के साथ मिलकर छोटी छोटी गुलिकाएँ बन जाता है जो कचारने से वस्त्र से अलग हो जाती हैं। ऐसा यांत्रिक विधि से हो सकता है अथवा साबुन के विलयन में उपस्थित वायु के छोटे छोटे बुलबुलो के कारण हो सकता है। गुलिकाएँ वस्त्र से अलग हो तल पर तैरने लगती हैं।

साबुन के पानी में घुलाने से तेल और पानी के बीच का अत सीमीय तनाव बहुत कम हो जाता है। इससे वस्त्र के रेशे विलयन के घनिष्ट सस्पर्श मे आ जाते हैं और मैल के निकलने में सहायता मिलती है। मैले कपडे को साबुन के विलयन में डुबाने से यह भी संभव है कि रेशे की अभ्यतर नालियो में विलयन प्रविष्ट कर जाता है जिससे रेशे की कोशिओ से वायु निकलती और तेलकणो से बुलबुला बनाती है जिससे तेल के निकलने में सहायता मिलती है।

ठीक ठीक धुलाई के लिये यह आवश्यक है कि वस्त्रो से निकली मैल रेशे पर फिर जम न जाय। साबुन का इमलशन ऐसा होने से रोकता है। अत इमलशन बनने का गुण बड़े महत्व का है। साबुन में जलविलेय और तेलविलेय दोनो समूह रहते हैं। ये समूह तेल बूँद को चारो ओर घेरे रहते हैं। इनका एक समूह तेल मे और दूसरा जल में घुला रहता है। तेलबूँद मे चारो ओर साबुन की दशा में केवल ऋणात्मक वैद्युत आवेश रहते हैं जिससे उनका समिलित होना संभव नही होता। [फू० स० व०]

सामंतवाद यह मध्यकालीन युग मे इग्लैंड और यूरोप की प्रथा थी। इन सामतो की कई श्रेणियाँ थीं जिनके शीर्षस्थान मे राजा होता था। उसके नीचे विभिन्न कोटि के सामंत होते थे और सबसे निम्न स्तर में किसान या दास होते थे। यह रक्षक और अधीनस्थ लोगो का संगठन था। राजा समस्त भूमि का स्वामी माना जाता था। सामंतगण राजा के प्रति स्वामिभक्ति बरतते थे, उसकी रक्षा के लिये सेना सुसज्जित करते थे और बदले में राजा से भूमि पाते थे। सामंतगण भूमि के क्रयविक्रय के अधिकारी नही थे। प्रारंभिक काल में सामंतवाद ने स्थानीय सुरक्षा, कृषि और न्याय की समुचित व्यवस्था करके समाज की प्रशसनीय सेवा की। कालातर में व्यक्तिगत युद्ध एवं व्यक्तिगत स्वार्थ ही सामतो का उद्देश्य बन गया। साधन-संपन्न नए नगरो के उत्थान, बारूद के आविष्कार, तथा स्थानीय राजभक्ति के स्थान पर राष्ट्रभक्ति के उदय के कारण सामंतशाही का लोप हो गया। [शु० ते०]

साम (Psalm) दे० 'भजनसंहिता' तथा 'बाइबिल।'

सामरिक पर्यवेक्षण या रिकॉनिसेंस (Reconnaissance) युद्ध से पूर्व शत्रु की स्थिति या गति की टोह लगाने को कहते हैं। स्थानाकृति पर्यवेक्षण में छोटी सैनिक टुकडी या अन्य सहायता को लेकर कोई अफसर सबधित क्षेत्र की भूमि या मार्ग की बनावट, प्राकृतिक तथा अन्य बाधाओ इत्यादि की जाँच करता है। युद्धनीतिक (strategical) टोह पहले घुडसवारो द्वारा कराई जाती थी, पर अब यह कार्य वायुयानो से लिया जाता है।

सामरिक पर्यवेक्षण सभी प्रकार की सेनाओ के लिये आवश्यक होता है, चाहे वह स्वरक्षा के निमित्त पहले ही हो अथवा शत्रु से सपर्क होने पर हो। आजकल घुडसवारो का मुख्य उपयोग इसी कार्य के लिये होता है। पैदल सेना के साथ इसीलिये घुडसवारो का भी एक दल रहता है। कभी कभी सब प्रकार की, अर्थात् पैदल, घुडसवार, तोपखाना आदि समिलित, एक बड़ी सेना द्वारा पर्यवेक्षण इस विचार से कराया जाता है कि शत्रु की युद्धनीति या चाल का पता लग जाए, चाहे इस कार्य में एक खासी झड़प ही हो जाए। [भ० दा० व०]

सामाजिक अनुसंधान बहुत दिनो तक मनुष्य ने सामाजिक घटनाओ की व्याख्या, पारलौकिक शक्तियो, कोरी कल्पनाओ और तर्कवाक्यो के आत्मगत सत्यो के आधार पर की है। सामाजिक अनुसधान का बीजारोपण वही से होता है जहाँ वह अपनी 'व्याख्या' के संबंध मे सदेह प्रकट करना प्रारंभ करता है। अनुसधान की जो विधियाँ प्राकृतिक विज्ञानो में सफल हुई हैं, उन्हीं के प्रयोग द्वारा सामाजिक घटनाओ की 'समझ' उत्पन्न करना, घटनाओ में कारणता स्थापित करना, और वैज्ञानिक तटस्थता बनाए रखना, सामाजिक अनुसंधान के मुख्य लक्षण हैं। ऐसी व्याख्या नही प्रस्तुत करनी है जो केवल अनुसंधानकर्ता को सतुष्ट करे, बल्कि ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करनी होती है जो आलोचनात्मक दृष्टिवालो या विरोधियों का सदेह दूर कर सके। इसके लिये निरीक्षण को व्यवस्थित करना, तथ्यसकलन, और तथ्य-निर्वचन के लिये विशिष्ट उपकरणो का प्रयोग करना, और प्रयोग मे आनेवाले प्रत्ययो (Variables) को स्पष्ट करना आवश्यक है। सामाजिक अनुसंधान एक शृंखलाबद्ध प्रक्रिया है जिसके मुख्य चरण हैं —

(१) समस्या के क्षेत्र का चुनाव।

(२) प्रचलित सिद्धांतों और ज्ञान से परिचय।

(३) अनुसंधानों की समस्या को परिभाषित करना और आवश्यकतानुसार प्रकल्पना का निर्माण करना।

(४) आँकड़ा संकलन की उपयुक्त विधियों का चुनाव, आँकड़ों का निर्वचन (अर्थ लगाना) और प्रदर्शन करना।

(५) सामान्यीकरण और निष्कर्ष निकालना।

अनुसंधानप्रक्रिया की पूर्वयोजना शोध प्रारूप (research design) में तैयार कर ली जाती है।

आँकड़ा सकलन की विधियाँ (Techniques of Data Collection) — अनुसंधान की समस्या के अनुसार आँकड़ा संकलन की विधियों का प्रयोग किया जाता है।

निरीक्षण के अंतर्गत वह सारा ज्ञान आता है जो इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होता है। प्रशिक्षित निरीक्षक, पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर, तटस्थ द्रष्टा होता है। वह सहभागी और असहभागी (Participant and Nonparticipant) दोनों ही प्रकार के निरीक्षण कर सकता है। नियंत्रित परिस्थिति में निरीक्षण करना परीक्षण होता है। परंतु नियंत्रण की शर्तें भौतिकी के परीक्षण के समान कठोर नहीं होतीं। प्राकृतिक घटनाएँ, जैसे बाढ़, सूखा, भूकंप, राजकीय कानून आदि भी प्रयोगात्मक परिवर्त्य (Experimental Variable) के समान सामाजिक घटनाओं को प्रभावित करते हैं।

व्यक्ति के विचारों, इरादों, विश्वासों, इच्छाओं, आदर्शों, योजनाओं और अतीत के प्रभावों को जानने के लिये प्रश्नावली और साक्षात्कार विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रश्नावली विधि में उत्तरदाता के समक्ष अनुसंधानकर्ता उपस्थित नहीं होता। साक्षात्कार में वह उत्तरदाता के समक्ष रहता है और नियंत्रित (Structured) या अनियंत्रित (Unstructured) रीति से, उत्तरों द्वारा, आँकड़े प्राप्त करता है। व्यक्ति के प्रातीतिक पक्ष का अन्वेषण करने के लिये अभिवृत्ति प्रमापन प्रत्यक्षेपण विधि और समाजमिति (Sociometry) का प्रयोग किया जाता है। व्यक्तिविषय अध्ययनप्रणाली (Case Study Method) आँकड़ा सकलन की वह विधि है जिसके द्वारा किसी भी इकाई (व्यक्ति, समूह, क्षेत्र आदि) का गहन अन्वेषण किया जाता है। सामाजिक अनुसंधान में प्रतिनिधि इकाइयों की प्राप्ति के लिये निदर्शन (Sampling) की विधियाँ, जो रैंडम विधि का ही विभिन्न रूप है, लगाई जाती हैं।

मानव व्यवहारों के गुणात्मक पक्ष (Qualitative Aspect) के प्रमापन के प्रति अब आशाजनक दृष्टिकोण अपनाया जाता है।

गुणात्मक आँकड़ों का मापन (Measurement of Qualitative Data)। गुणात्मक पक्ष को नापने की मुख्य रीतियों, व्यवस्थित शृखला सबध प्रमापन और सकेतकों (Indicators) के आधार पर वर्गीकरण करने से संभव होता है। बोगार्डस (Bogardus) का सामाजिक दूरी नापने में सात बंदुओं का पैमाना, अपनी कुछ त्रुटियों के बावजूद, महत्वपूर्ण पैमाना है। मोरेनो (Moreno) और जेनिंग्ज ने समाजमिति द्वारा किसी समूह में पाए जानेवाले सामाजिक अंतःसंबंधों की सज्जाकारी (Configuration) को नापने की विधि बताई है। चैपिन (Chapin) ने सामाजिक स्तर नापने का पैमाना प्रस्तुत किया है। अभिवृत्तियों को नापने के अनेक पैमानों में से थर्स्टन (Thurston) तथा लिकर्ट (Likert) के पैमाने प्रसिद्ध हैं।

गणित का प्रयोग (Mathematical Models in Social Research) — 'मानव व्यवहार गणित के सूत्रों में नहीं बाँधा जा सकता' इस मत के अनुसार, प्राकृतिक विज्ञानों के विकास में इतना महत्वपूर्ण योगदान देनेवाला गणित, सामाजिक अनुसंधान में आवश्यक भूमिका नहीं रखता। गणित के पक्ष में मत रखनेवालों का दावा है कि कोई भी गुणात्मक तथ्य ऐसा नहीं है जिसका मात्रात्मक अध्ययन संभव न हो। प्रत्येक व्यक्ति के लिये समान रूप से विश्वसनीय माप का गणित के पदों में व्यक्त करना आवश्यक है। वास्तव में गणित भाषा के समान है जिसके प्रतीकों द्वारा तर्कवाक्यों (Propositions) का निर्माण हो सकता है। समाजशास्त्रीय सिद्धांत के विकास में गणित प्रारूपों (Mathematical Models) का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

सामाजिक अनुसंधानों में, सामग्री के संग्रहण में स्पष्टीकरण के लिये, सांख्यकीय विधियों (Statistical Method) का प्रयोग प्रतिनिधित्व या माध्यम वृत्तियों (Average Tendency) को प्रकट करने के लिये किया जाता है। माध्यमिक, माध्य, बहुलांक, सहसंबंध प्रमाण, मापक विचलन, अंतरंग परीक्षा आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है। सामग्री का संकेतन (Codification) और वर्गीकरण (क्लासिफिकेशन) करके सारिणीयन (Tabulation) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। सारणीयन के आँकड़ों को स्पष्ट करने के लिये तथा परिवर्त्यों (Variables) का सहसंबंध स्थापित करने के लिये, विभिन्न शीर्षकों, स्तंभों एवं रेखाचित्रों का प्रयोग किया जाता है।

प्रकार (Types of Social Research) — अनुसंधान का वर्गीकरण, उसकी प्रेरणा और उद्देश्य के आधार पर, किया जा सकता है। उपयोगिता और नीतिनिर्माण से रहित, वैज्ञानिक तटस्थता के साथ, किसी प्राक्कल्पना का समर्थन करना बुनियादी अनुसंधान (Fundamental Research) है परन्तु उसका व्यावहारिक उपयोग दो तरह से किया जाता है —

(अ) परिचालन अनुसंधान (Operational Research) — प्रशासनिक समस्याओं के संबंध में होनेवाला अनुसंधान है। इसमें गणित और सांख्यकीय विधियों का प्रयोग संभावनासिद्धांत, (Probability Theory) के आधार पर किया जाता है। आँकड़ों का चयन, विश्लेषण, आमूर्तीकरण, भविष्यवाणी, सिद्धांत, निर्माण आदि इस अनुसंधान की प्रक्रिया होते हैं।

(ब) क्रियात्मक अनुसंधान (Action Research) — किसी समुदाय की विशेषताओं को ध्यान में रखकर, नियोजित प्रयास, जो सामुदायिक जीवन के अनेक पहलुओं को प्रभावित करते हैं और सामाजिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिये किए जाते हैं, इस

अनुसधान के अतर्गत आते हैं, जैसे आवास, खेती, सफाई, मनोरजन से सबधित कार्यक्रम। समुदाय के सदस्यो का सहयोग, आर्थिक स्थिति सगठित विरोध आदि विशेषताओ का मूल्याकन (Factor Analysis) करके कार्यक्रम को सफल बनाने का प्रयत्न किया जाता है। यह अनुसंधान भारत में चलनेवाले नियोजन का एक मुख्य उपकरण है।

पद्धतियाँ (Methodology of Social Research) — सामाजिक अनुसंधान की पद्धति का विकास विभिन्न परस्पर विरोधी धाराओ में हुआ है। मुख्य धारा रही है उन सिद्धातो की जो सामाजिक विज्ञान या सास्कृतिक विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान से भिन्न मानते है। प्राकृतिक घटनाओं में सबध यात्रिक और बाह्य होते है, जब कि सामाजिक घटनाओ में सबंध 'मूल्य' और 'उद्देश्य' पर आधारित होते हैं। 'विज्ञान पद्धति की एकता' के समर्थक 'प्राकृतिक तथ्य' और 'सामाजिक तथ्य' में समानता मानते हैं। प्रकृति और समाज पर लागू होनेवाले नियम भी समान होते हैं। इनके अनुसार, मनुष्य के प्रातीतिक पथ का अध्ययन केवल बाह्य व्यवहारो के आधार पर ही किया जा सकता है। कारणता की खोज में धार्मिक रहस्यवाद का पुट पाया जाता है। ये केवल 'क्रियाओ'(Operations) को ही महत्व देते हैं। प्रकार्यवादी (Functionalism) पद्धति विकासावयव के विपरीत है। समाज के अवयवों में क्रम और अंत-संबध पाया जाता है। शारीरिक संगठन के सादृश्य पर सामाजिक तथ्य, सस्था, समूह, मूल्य आदि की क्रिया से उत्पन्न सस्कृति का अन्वेषण किया जाता है। ऐतिहासिक सामूच्य (Historicism) में घटनाओ को समझने के विपरीत, व्यक्तिवादी पद्धति है (Individualistic Positivism) है जो तत्काल को ही श्रेय देती है, क्योकि तत्काल मे सामूच्य के अश विद्यमान होते ही हैं। इस प्रवृत्ति को लेकर साकेतिक अध्ययन (Ideographic Studies) होने लगे हैं। इनके अतिरिक्त परिचालन और क्रियात्मक अनुसधानो (Operational and Action Researches) की पद्धतियाँ प्रचलित हैं।

[ह० चं० श्री०]

सामाजिक कीट कीटो की सख्या सभी प्राणियो से अधिक है। कीट वर्ग, आर्थ्रोपोडा (Arthropoda) सघ में आता है। अब तक ज्ञात स्पीशीज (Species) की सख्या आठ लाख से भी अधिक है और आधिकारिक अनुमानों के अनुसार अगर इनकी सभी जातियो की खोज की जाय, तो उनकी सख्या ६० लाख से भी अधिक होगी। इनमें बहुत सी ऐसी जातियाँ हैं जिनके प्राणियों की सख्या अरबो में है। इससे कीट वर्ग की बृहद् राशि की कल्पना की जा सकती है।

कीटो के अनेक वर्गों में सामाजिक संगठन का विकास स्वतत्र रूप से हुआ है। ऐसे कीटो के उदाहरण हैं, सामाजिक ततैया, सामाजिक मधुमक्खियाँ एवं चीटियाँ। ये सभी हाइमेनॉप्टेरा (Hymenoptera) गण में आते हैं। दीमक आइसॉप्टेरा (Isoptera) गण में आती हैं। इन कीटो में सामुदायिक सगठन का विकास सर्वोच्च हुआ है। इन सगठनो में विभिन्न सदस्यो के कार्यों का वर्गीकरण पूरे समुदाय के हित के लिये किया जाता है। सभी सामाजिक कीट बहुरूपी होते हैं, अर्थात् एक स्पीशीज में कई स्पष्ट समूह होते है।

प्रत्येक समूह में जनन जातियाँ, (नर, मादा, राजा, रानी, इमैगो आदि) रचना तथा कार्य की दृष्टि से, बाँझ जातियो (सेवककर्मी, सैनिक आदि) से भिन्न होती है। बाँझ जातियो में केवल जनन अंग के अवशेष ही पाए जाते हैं। दीमकों में दोनो प्रकार के लिंगी पाए जाते हैं, परंतु सामाजिक हाइमेनॉप्टेरा की बाँझ जातियो के असेचित अडो से केवल मादाएँ उत्पन्न होती हैं, जो बाँझ होती हैं। असेचित अडे के अनिषेकजनन (parthenogenesis) से क्रियात्मक नर विकसित होते हैं।

उपसामाजिक कीट — वास्तविक सामाजिक कीडो की उत्पत्ति उपसामाजिक कीटो से हुई। इनमे लैंगिक एव पारिवारिक समंजन के साथ साथ प्रौढ एव युवको के बीच कार्यों का वर्गीकरण भी हुआ। पर एक ही लिंग के प्रौढो के बीच श्रम का विभाजन नही हुआ है। इस प्रकार सामाजिक ततैयो की उत्पत्ति सभवत एकमात्र परभक्षी ततैये से हुई होगी, जो यूमिनीज (Eumenes) एव वेसिपडी कुल के ऑडीनीरस (Odynerus) से सबधित है। ये दोनों ही गड्ढों या अपने बनाए गए छत्रों मे अपने लार्वों के लिये भोजन या तो रखते हैं, अथवा उन्हे शक्तिहीन इल्लियाँ खिलाते हैं। सामाजिक मधुमक्खियों का विकास एकल मधुमक्खियों के स्पीसिडी (Specidae) कुल की एकल ततैयो से हुआ। फॉरमिसिडी (Formicidea) कुल में चीटियाँ आती हैं। इस कुल के सभी सदस्य सामाजिक होते हैं।

वास्तविक सामाजिक कीट

चींटियाँ — हाइमेनॉप्टेरा की सभी जातियों में चीटियो का सामाजिक सगठन सर्वोच्च होता है। सभी चीटियाँ विभिन्न अशो तक सामाजिक होती हैं। (देखें चींटी)।

मधुमक्खियाँ — इनकी दस हजार से अधिक जातियाँ आज जीवित हैं, जिनमें लगभग १०० जातियाँ ठीक ठीक सामाजिक हैं। मक्खियों में सर्वोच्च सामाजिक जीवन का विकास मधुमक्खियों या घरेलू छत्तेवाली मक्खियों में हुआ है। ये मधुमक्खियाँ एपिस (Apis) वश की हैं। इनकी केवल चार स्पीशीज हैं यूरोप की एपिस मेलिफिका (Apis mellifica), उष्ण कटिबधी पूर्व देश की एपिस डॉरसेटा (Apis dorsata), एपिस इडिका (A indica) और एपिस फ्लोरिया (A florea)।

मधुमक्खियाँ भी त्रिरूपी होती हैं और इनके तीनो रूप अधिक स्पष्ट होते हैं। इनको सरलता से विभेदित किया जा सकता है। पुमधुप (Drone) अपने भुथरे उदर तथा बडी बडी आँखों के कारण मादा से विभेदित होता है। रानी अपने बडे उदर से जो बद पखो के पीछे तक फैला होता है तथा पैरो पर पराग की छोटी टोकरी से पहचानी जाती है। वह एक दिन में ३,००० अडे दे सकती है। श्रमिक बाँझ मादाएँ होती हैं, जिनमें प्रारंभिक अंग और पैरो पर पराग ले जानेवाली रचनाएँ (पराग की टोकरी) पाई जाती है। श्रमिक मधुमक्खियाँ कभी कभी अडे देती हैं, पर वे निषेचित नही होती और उनमे केवल पुमधुप ही उत्पन्न होते हैं।

मधुमक्खियो के निवह चिरस्थायी होते हैं और इनमें रानी के साथ साथ श्रमिको का समूह रहता है। एक जीवित निवह में

श्रमिको की संख्या ५०,००० से ८०,००० तक रह सकती हैं। छत्ता श्रमिको की उदरग्रंथि के स्राव से उत्पन्न मोम का बना होता है। प्रत्येक छत्ता बडी संख्या में षट्कोणीय कोष्ठिकाओ का बना होता है। ये कोष्ठिकाएँ आगे पीछे दो श्रेणियो मे बनी होती हैं। अनेक छत्ते ऊर्ध्वाधर, समातर लटके होते हैं ताकि उनके बीच मे श्रमिकों के आने जाने के लिये पर्याप्त स्थान रहे। मधुपूर कोष्ठिका से अलग वह स्थान होता है जहाँ मधु संचित होता है। मधुपूर कोष्ठिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं—(१) छोटी कोष्ठिका श्रमिकों के लिये, (२) पहले से कुछ बडी कोष्ठिका पुमधुपो के लिये और (३) बहुत प्रशस्त कोष्ठिका रानी के लिये। पुंमधुप वाली कोष्ठिकाएँ कम संख्या मे और रानी वाली कोष्ठिकाएँ बहुत ही कम संख्या में होती हैं।

मकरंद (nectar) और पराग के अतिरिक्त मधुमक्खियाँ मोम (propolis) नामक एक चिपचिपा पदार्थ भी एकत्र करती हैं, जो जोडने के काम आता है। रानी मधुपूर कोष्ठिकाओ (brood cells) में अंडे देती है। निषेचित अंडे श्रमिको और रानी कोष्ठिकाओं में तथा अनिषेचित अंडे पुंमधुप कोष्ठिकाओ मे दिए जाते हैं। अंडे लगभग तीन दिनो में फूटते हैं, श्रमिक लगभग तीन सप्ताह मे, पुंमधुप इससे कुछ अधिक दिनो मे तथा मादाएँ १६ दिनो में विकसित होती हैं। सभी नए लार्वा प्रारभ में श्रमिको के लार ग्रंथि को खाते हैं। इसे 'रॉयल जेली' (Royal jelly) कहते है, परतु तीसरे या चौथे दिन के बाद इसे रानी के लार्वों को प्यूपीकरण (pupation) तक खिलाया जाता है, जब कि अन्य सभी को मधु एव पराग का घना मिश्रण, जिसे 'बी ब्रेड' (Bee bread) कहते हैं, खिलाया जाता है।

मधुमक्खियो में मादा का निर्धारण अन्य सामाजिक कीटो से उनके आहार द्वारा अधिक स्पष्ट होता है। पोआ छोडने (swarming) के अत में जब रानी निषेचित हो जाती है, तब श्रमिक मधुमक्खियाँ पुमधुप को भोजन न देकर, उन्हे छत्ते से निकाल देती हैं और कभी कभी सीधे मार डालती हैं।

सामाजिक मधुमक्खियो में सबसे अधिक आदिम (primitive) बंबिडी (Bombidae) कुल की मधुमक्खी है। दशरहित मधुमक्खियो के दो वंशो मे मेलिपोना (Melipona) अमरीका मे ही सीमित हैं, जब कि बड़ा वंश ट्राइगोना (Trygona) ससार के सभी उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रो में पाया जाता है। मधुमक्खियो मे एक असाधारण सचारतत्र का आविष्कार के० वान फिश ने सन् १९५० ई० में किया। एक मैदानी स्काउट (scout) श्रमिक भोजन के परावैंगनी (ultraviolet) रग के क्षेत्र पहचानना सीख सकता है, लेकिन सिंदूरी लाल (scarlet red) रंग के क्षेत्र को नही।

सामाजिक ततैया (Social Wasp) — सामाजिक ततैयो की एक हजार जातियाँ हैं। ये सभी वेस्पिडी (Vespidae) कुल मे आती हैं। इनका विकास विभिन्न आदिम तथा एकल ततैयो से हुआ है। प्रारंभ मे ततैया परभक्षी होती हैं, यद्यपि वे मकरद, फलो तथा अन्य मीठे पदार्थों को भी खा सकती हैं। छत्ते साधारणतया कागज के, जो चर्वित लकडी को लार के साथ मिलाकर बना होता है, बने होते हैं। प्रमुख सामाजिक ततैयो का निवह एक जनन योग्य मादा (रानी) से, जो जाडा शीतनिष्क्रियता (hibernation) मे व्यतीत कर चुकी होती है, प्रारंभ होता है। वसत में वह कुछ कोष्ठिकाओ का छोटा छत्ता बनाना प्रारभ करती हैं।

छत्ते मिट्टी में बने गड्ढो या खोखले पेडो पर बनाए जाते हैं, या शाखाओ से लटके रहते हैं। जब श्रमिक अंडो से निकलते हैं, तब छत्ते के विस्तार में सहायता करते हैं, ताकि उसमे अंडे रखे जा सकें। ये छत्ते एक या एक से अधिक छत्रको (Coombs) के बने होते हैं। साधारणतया कोष्ठिका षट्कोणीय होती है। मधुपूर कोष्ठिकाएँ (brood cells) नीचे की ओर खुलती हैं, जो सामाजिक ततैयो की विशिष्टता है। ग्रीष्म में नर तथा मादा एक दूसरे के ससर्ग में आते हैं। सामान्यत वर्ष के अंत मे सगम होने के बाद पूरा निवह नष्ट हो जाता है। केवल कुछ गर्भवती मादाएँ शीतनिष्क्रियता मे चली जाती हैं।

पूर्वीय वश के स्टेनोगैस्टर (Stenogaster) की कुछ आदिम सामाजिक जातियाँ क्षैतिज स्थित कोष्ठिकाओ द्वारा छोटे छत्तो का निर्माण करती हैं। मादा लार्वो को, जो अत्यत बद कोष्ठिका मे ही प्यूपा (pupa) बन जाते हैं, उत्तरोत्तर खिलाती पिलाती है। संतति ततैया (daughter wasp) निर्गमन के बाद भी माँ के साथ रहती है।

सुपरिचित सामाजिक ततैयो की शीतोष्ण जातियाँ पोलिस्टीज (Polistes), वेस्पा (Vespa), वेस्पुला (Vespula) और डोलिको वेस्पुला (Dolicoh vespula) हैं।

दीमक — ये अपने सामाजिक जीवन मे चीटियो की ओर असाधारण समाभिरूपता प्रदर्शित करती हैं, अत इन्हे गलती से 'सफेद चीटियाँ', कहते हैं। दीमक की २,००० से अधिक जातियाँ ज्ञात हैं, जो आदिम जाति के कीटों के आइसोप्टेरा (Isoptera) वर्ग की हैं। सभी दीमक सामाजिक होती हैं, यद्यपि उनका सामाजिक संगठन विभिन्न क्रम का, साधारण से जटिल प्रकार तक का, होता है (देखें दीमक)।

अधिकाश सामाजिक कीटो में एक अत्यधिक आकर्षक घटना प्रौढो और युवको में पोषण के पारस्परिक विनियोग की है, जो सामाजिक पारस्परिक लेन देन को सरल कर देती है। युवा ततैये, चीटियाँ तथा दीमक स्राव उत्पन्न करती हैं, जो उनकी उपचारिकाओ द्वारा उत्सुकता से चाट लिया जाता है और ये उपचारिकाएँ ऐसे एकत्रित भोजन, स्राव तथा कभी कभी उत्सर्ग को बच्चो को खिलाती हैं। भोज्य पदार्थों के विनियोग, स्पर्श, या रासायनिक उद्दीपन द्वारा सामाजिक सरलीकरण को 'ट्रोफोलैक्सिस' (Tropholaxis) कहते हैं और यह समस्त सामाजिक कीटो की विशेषता है। परिचारिकाओं को आकर्षित करने के लिये मधुमक्खियो के लार्वे स्राव उत्पन्न नही करते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कीटो में सामाजिक जीवन अपने उच्च शिखर पर होता है, जो अन्यत्र केवल मनुष्यों को छोड़कर कहीं

नहीं पाया जाता है। कीटों ने संसार में सर्वप्रथम पूर्ण विकसित सामाजिक जीवन का उदाहरण प्रस्तुत किया है। [शी० प्र० सि०]

सामाजिक नियंत्रण (Social control) के अतर्गत व्यापक अर्थ में वे सभी सामाजिक प्रक्रियाएँ और शक्तियाँ आती हैं जिनके द्वारा सामाजिक सरचना को स्थायित्व मिलता है और वह अस्त-व्यस्त होने से बचती है। समाजशास्त्र (sociology) में सामाजिक नियत्रण के अध्ययन का अभिप्राय यह ज्ञात करने का प्रयत्न करना है कि सामाजिक ढाँचा किस प्रकार बना रहता है और सामाजिक अत क्रियाएँ किस प्रकार सुव्यवस्थित रूप में चलती रहती हैं।

सामाजिक नियत्रण का अध्ययन तात्विक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, सामाजिक समस्याओ तथा विघटन को भली भाँति समझने तथा उनका निराकरण करने के लिये भी उपयोगी है, क्योकि तलाक, अपराध आदि अनेक सामाजिक समस्याओ का प्रमुख कारण सामाजिक नियत्रण की प्रणालियो एव शक्तियो की असफलता है। वास्तव में सामाजिक नियमों के उल्लघन (deviation) को रोकने की प्रक्रिया को ही सामाजिक नियत्रण कहते हैं अत. सामाजिक व्यवस्था मे सतुलन बनाए रखनेवाली शक्तियो और प्रणालियो के अध्ययन का व्यावहारिक महत्व स्पष्ट है। तात्विक दृष्टि से सामाजिक नियत्रण, सामाजिक सरचना एव सामाजिक परिवर्तन के साथ, समाजशास्त्र का प्रमुख अग है।

सामाजिक नियत्रण की परिभाषा विभिन्न समाजशास्त्रियों ने भिन्न भिन्न प्रकार से की है। इसकी परिधि में कौन कौन सी प्रक्रियाएँ आती है, इस सबध में कई दृष्टिकोण हैं। एक दृष्टिकोण आत्मनियमन (self regulation) को सामाजिक नियत्रण से संबद्ध, किंतु उसकी परिधि से बाहर मानता है और दूसरा सामाजिक नियत्रण के अतर्गत आत्मनियमन की प्रक्रियाओं को रखने के पक्ष में है। विभिन्न समाजशास्त्रियों की रचनाओ मे इन दो दृष्टिकोणों के प्रति झुकाव भिन्न भिन्न मात्रा में पाया जाता है। यद्यपि सामाजिक नियत्रण के क्षेत्र के सबध में दृष्टिकोण के इस अतर की चर्चा स्पष्ट रूप से कम ही हुई है, तथापि यह अतर महत्वपूर्ण है, और यह बहुत हद तक मानवस्वभाव तथा समाज की प्रकृति के सबध में विभिन्न दृष्टिकोणो पर आधारित है।

सामाजिक नियत्रण के सबध में एक और प्रश्न यह उठाया गया है कि इसकी प्रणालियो को किस हद तक सपूर्ण समुदाय का हित-साधक माना जा सकता है। कुछ विद्वान्, जिनमें मार्क्सवादी विद्वान् भी समिलित हैं, यह मानते हैं कि सामाजिक नियत्रण सदा समग्र समुदाय तथा इस समुदाय के सभी व्यक्तियो के हित में हो, यह आवश्यक नहीं है। उनका कहना है कि अनेक व्यवस्थाओ में सामाजिक नियत्रण की प्रणालियो का प्रमुख कार्य सत्तारूढ वर्ग की स्थिति को दृढ बनाए रहना होता है। यह आवश्यक नही कि इस वर्ग के हित मे और पूरे समुदाय के हितो में सामजस्य हो।

सभी समाजो में सामाजिक नियत्रण, समाजीकरण (socializa-tion) की प्रक्रियाओ से सबद्ध रहता है। बहुत हद तक सामाजिक नियत्रण की सफलता समाजीकरण की सफलता पर निर्भर रहती है। समाजीकरण से तात्पर्य उन प्रक्रियाओ से होता है जिनके द्वारा मानव शिशु सामाजिक प्राणी बनता है। नवजात मानव शिशु बहुत ही असहाय होता है। जन्म से न उसे भाषा पर अधिकार मिलता और न सस्कृति पर। उसका व्यक्तित्व भी अत्यत अविकसित अवस्था में होता है। शैशव काल में समुदाय के अन्य सदस्यो के सपर्क द्वारा ही धीरे धीरे मानव शिशु के व्यक्तित्व का विस्तार एव परिपाक होता है। स्पष्ट है कि इसमें मुख्य हाथ माता, पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यो के सपर्क का रहता है। समाजीकरण के द्वारा ही व्यक्ति अपने समुदाय की सस्कृति तथा उनकी मान्यताओ, मूल्यो और आदर्शो को आत्मसात् करता है, अर्थात् समुदाय में प्रचलित अच्छे बुरे के मानदड उसके व्यक्तित्व के भाग बन जाते हैं। यही कारण है कि बडे होने पर वह अपने समुदाय में प्रचलित आदर्शों एव व्यवहार प्रणालियों का बिना किसी बाहरी दबाव अथवा भय के भी स्वभावत पालन करता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री टेलकट पार्संन्स ने इस प्रक्रिया-मूल्यो के आतरीकरण (internatiation of values), को अपने सिद्धातों में बहुत महत्व दिया है। वस्तुत मानव व्यक्तित्व के विकास के सबध में यह दृष्टि फ्रायड तथा अन्य मनोविश्लेषणवादियों की खोजों की देन है। फ्रायड के अनुसार मन के अच्छाई बुराई का निर्णय करनेवाले पक्ष (super ego) का अस्तित्व जन्म के समय नही होता। उसका विकास शैशवकालीन अनुभवो द्वारा जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही होता है।

सामाजिक व्यवस्था के स्थायित्व का एक बडा कारण यही है कि प्रत्येक समुदाय अपने सदस्यों के व्यक्तित्व को अनुकूल रूप देता है। उस समुदाय के अच्छे बुरे के मानदड उनके व्यक्तित्व के अचेतन स्तर के भाग बन जाते हैं। अत. बडे होने पर तर्कों आदि के प्रहार से भी इन आस्थाओं को भग नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि किसी भी समुदाय के अधिकतर सदस्य उसके अधिकतर नियमों का पालन स्वाभाविक रूप से करते हैं।

इस प्रकार सामाजिक नियत्रण की सफलता का आधार बहुत हद तक सामाजीकरण की प्रक्रियाएँ हैं। समाज एवं सस्कृति अपने सदस्यो के व्यक्तित्व को ही ऐसे गढते हैं कि वह उनके स्थायित्व में बाधक न बने। इसका एक अच्छा प्रमाण हाल ही में किए गए कार्डिनर, लिंटन आदि के शोधकार्य द्वारा मिलता है। इनके दृष्टिकोण को 'व्यक्तित्व सस्कृति' दृष्टिकोण, (personality culture approach) कहते हैं। यह दृष्टिकोण नृतत्वशास्त्र और मनोविज्ञान की सामग्री के समन्वय का परिणाम है। इस क्षेत्र मे किए गए अध्ययनो से पता चलता है कि प्रत्येक सस्कृति मे एक विशेष प्रकार के व्यक्तित्व का प्राधान्य होता है। व्यक्तित्व के एक ही प्रकार के आधारभूत गठन (basic prsonality structure) के प्राधान्य के कारण सास्कृतिक परंपरा की अविरलता बनी रहती है और सामाजिक व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहती है। कार्डिनर और लिंटन के अनुसार प्रत्येक समुदाय में एक ही प्रकार के व्यक्तित्व के आधारभूत गठन पाए जाने का कारण शैशव मे लालन पालन के समान ढग हैं।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि सामाजिक नियत्रण में परिवार का महत्व सर्वाधिक है। यद्यपि सामान्यत परिवार, राज्य की भाँति सामाजिक नियमो को भग करनेवालो को दड देता हुआ दृष्टिगोचर

नही होता, तथापि यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि सामाजिक नियत्रण का सबसे महत्वपूर्ण आधार परिवार ही है। पहली बात तो यही है कि शैशव काल में व्यक्ति का सपर्क मुख्यत. परिवार के सदस्यों से ही होता है। इस प्रकार व्यक्तित्व के निर्माण में तथा उसमें सामाजिक मूल्यो को प्रविष्ट कराने मे परिवार का प्रमुख हाथ रहता है। बड़े हो जाने पर भी व्यक्ति का जितना लगाव परिवार से रहता है, उतना किसी अन्य सस्था अथवा समूह से नही। सच बात तो यह है कि आज भी विश्व के अधिकतर मनुष्यों का व्यवहार व्यक्तिगत अहम् की अपेक्षा पारिवारिक अहम् (family ego) से अधिक परिचालित होता है। व्यक्ति, सामाजिक नियमों को तोडने से स्वय अपने लिये ही नही वल्कि अपने परिवार के अहित के डर से भी विरत होता है। यही कारण है कि जिन वडे वड़े औद्योगिक नगरो में ऐसे लोगो की सख्या अधिक हो जाती है जो अपने परिवारो से अलग रहते हैं, उनमें सभी प्रकार का सामाजिक विघटन वड़ी मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। साथ ही यह सर्वमान्य है कि परिवारो के टूटने अथवा उनके गठन के शिथिल होने के साथ किशोरापराध आदि अनेक समस्याओ का प्रकोप वढ़ जाता है।

सामाजिक नियत्रण के अनौपचारिक साधनो में पड़ोस, स्थानीय समुदाय आदि का भी वहुत महत्व है। यह सर्वविदित है कि सामाजिक नियमो का उल्लघन न करने का कारण वहुत वार पड़ोसियों का भय भी होता है। भारत तथा अन्य कृषक सभ्यताओ मे ग्रामीण समुदाय औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनो प्रकार से सामाजिक व्यवस्था वनाए रखने मे वहुत ही महत्वपूर्ण योग देते थे, किंतु आधुनिक सामाजिक शक्तियो के फलस्वरूप सामाजिक नियत्रण में पड़ोस आदि स्थानीय सामाजिक सवधो का महत्व कम होता जा रहा है। आधुनिक नगरो में वहुधा पड़ोसी एक दूसरे को पहचानते भी नही, उनमे एकता की भावना का अभाव रहता है तथा एक दूसरे के 'व्यक्तिगत' मामलो मे हस्तक्षेप को वुरा समझा जाता है। अत. सामाजिक नियत्रण के साधन के रूप में आधुनिकता के साथ साथ पड़ोस का महत्व कम होता प्रतीत होता है।

शिक्षा संस्थाओ का सामाजिक नियत्रण में वडा महत्व है। शिक्षा सस्थाओ द्वारा विद्यार्थियो के विचारो, भावनाओ एव व्यवहारो को समाजस्वीकृत साँचो मे ढालने का प्रयत्न किया जाता है। यो तो इस सवध मे सभी प्रकार की शैक्षणिक सस्थाओ का अपना महत्व है किंतु प्राथमिक पाठशालाओ का प्रभाव सभवत. सर्वाधिक होता है।

राज्य स्पष्टतः सामाजिक नियत्रण का अत्यत महत्वपूर्ण साधन है। अन्य सस्थाओ की अपेक्षा राज्य की विशेषता यह है कि इसे वल-प्रयोग अथवा हिंसा का अधिकार है। यदि कोई व्यक्ति सामाजिक नियमो के उल्लंघन की ओर इस प्रकार प्रवृत्त होता है कि परिवार तथा सामाजिक नियत्रण के अन्य अनौपचारिक साधन उसे रोक नहीं सकते, तो राज्य उसे दडित करके सामाजिक व्यवस्था वनाए रखने मे योग देता है। वास्तविक दड द्वारा राज्य सामाजिक नियमों को भग होने से जितना वचाता है उससे कही अधिक दड का भय वचाता है। सामाजिक सुव्यवस्था वनाए रखने में राज्य जिन साधनो का प्रयोग करता है वे इतने प्रत्यक्ष होते हैं कि वहुधा राज्य को सामाजिक नियत्रण के आधार के रूप में आवश्यकता से अधिक महत्व दे दिया जाता है। फिर भी इसमें सदेह नही कि आधुनिक काल में सामाजिक नियत्रण मे राज्य का कार्यक्षेत्र एव महत्व वढता जा रहा है। पहले जिस प्रकार के नियत्रण के लिये परिवार, पड़ोस, जाति आदि पर्याप्त थे, उसके लिये भी अव राज्य की सहायता आवश्यक हो गई है। वीसवी शताब्दी मे राज्य का कार्यक्षेत्र भी वढता जा रहा है। अट्ठारहवी–उन्नीसवी शताब्दी मे अधिकतर पाश्चात्य विद्वान् यह मानते थे कि आर्थिक मामलो मे राज्य को हस्तक्षेप नही करना चाहिए तथा कोई राज्य उतना ही अच्छा है जितना कम वह शासन करता है। किंतु आज विश्व के अधिकतर देशों में राज्य को जनता के कल्याण तथा सुरक्षा के लिये उत्तरदायी माना जाने लगा है। स्वभावतः इस प्रकार कार्यक्षेत्र वढने के साथ सामाजिक नियत्रण के साधन के रूप में भी राज्य का महत्व वढ़ता जा रहा है।

सामाजिक ढाँचा तभी वना रह सकता है और सामाजिक व्यवस्था तभी सुचारु रूप से चल सकती है, जब मानव व्यवहार का स्वरूप सुनिश्चित वना रहे। यदि सभी लोग मनमाना व्यवहार करने लगें तो किसी प्रकार की सामाजिक सुव्यवस्था असभव है। अतः प्रत्येक समाज में विभिन्न प्रकार के सामाजिक नियम अथवा सहिताएँ (social codes) पाई जाती हैं। यह अपेक्षा की जाती है कि सभी व्यक्तियो के व्यवहार इन्ही प्रणालियो मे प्रचलित होंगे। सामाजिक सहिताएँ अनेक प्रकार की होती हैं। इनमें कानून, रीति रिवाज, (customs), शिष्टाचार के नियम, फैशन आदि प्रमुख है। इन सामाजिक सहिताओ पर आधारित होने के कारण व्यवहार सुनिश्चित रहते हैं तथा एक दूसरे के व्यवहारो अथवा हितो का अवरोध नही करते। विभिन्न प्रकार की सहिताओ के पीछे भिन्न भिन्न प्रकार की अनुशास्ति (sanction) रहती है। अर्थात् सहिताओ द्वारा व्यवहार को सीमावद्ध करने के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के दंड एव पुरस्कार होते हैं। कानून भग करने पर शारीरिक अथवा आर्थिक दड का भय रहता है। रीति रिवाज के उल्लघन से समुदाय द्वारा निंदा का भय रहता है तथा उनके पालन से सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती है। धार्मिक सहिताओ के पीछे यह विश्वास रहता है कि वुरा काम करने पर दैव के दड का भाजन वनना पडेगा और अच्छा कार्य करने से सुख समृद्धि की वृद्धि होगी। अर्थात् धार्मिक नियमो के पालन से पुण्य तथा स्वर्ग आदि की प्राप्ति की आशा की जाती है और उनके उल्लंघन से पाप तथा नरक मे जाने की आशका की जाती है। शिष्टाचार के नियमो को भग करने से उपहास तथा निरादर का भय रहता है। इस प्रकार विभिन्न सामाजिक सहिताएँ अनेक प्रकार के मानव व्यवहारो को सुनिश्चित दिशाओ मे प्रेरित कर सामाजिक व्यवस्था वनाए रखने में सहायक होती हैं।

सामाजिक नियत्रण न केवल शारीरिक दड के भय से होता है और न केवल प्रत्यक्ष उपदेशो द्वारा। सामाजिक सुव्यवस्था वनाए रखने मे प्रतीकात्मक कृतियो का भी वहुत वड़ा हाथ है। प्रतीको की सबसे महत्वपूर्ण व्यवस्था मानवीय भाषा है। शायद भाषा ही मनुष्यो को पशुओ से अलग करनेवाला सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है। भाषा मे केवल अभिधा की ही शक्ति नही रहती, उसमें लक्षणा और व्यजना आदि भी पाई जाती है। अतः अपने समुदाय की भाषा सीखने के साथ

साथ मानव शिशु मानवीय आदर्श एव मूल्य भी अनजाने ही आत्मसात् कर लेता है। भाषा के विभिन्न प्रयोग, उदाहरणतः व्यंग आदि, सामाजिक नियमो के उल्लघन को रोकने मे बहुत सहायक होते हैं। कहावतें सामाजिक नियमो के सूक्ष्म व्यतिरेक को भी पकडने और सामने लाने की क्षमता रखती हैं। साथ ही वह उल्लघन करनेवाले पर चोट कर तुरंत दंड भी देती हैं। इस प्रकार कहावतें भी सामाजिक नियत्रण का महत्वपूर्ण साधन हैं। साहित्य के अन्य रूप भी सामाजिक नियत्रण में सहायक होते हैं। नायक खलनायक और मूर्ख के चरित्रचित्रणो द्वारा ऐसे प्रतिमान उपस्थित होते हैं जो कुछ प्रकार के व्यवहार को प्रश्रय देते हैं तथा कुछ अन्य प्रकार के व्यवहारो से विरत करते हैं। पौराणिक कथाओ (myths) और अनुष्ठानों (rituals) का भी सामाजिक नियत्रण में महत्वपूर्ण स्थान होता है। पौराणिक कथा अपने शुद्ध रूप में उपदेश नही देती। वह ऐसे प्रतीकात्मक प्रतिमान उपस्थित करती है जो व्यक्ति के विचारों एवं व्यवहार को गहराई से प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिये भारत में राम की कथा, इस समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सस्था, परिवार को शक्ति प्रदान करती है। भारत तथा अन्य कृषक सभ्यताओं में पितृसत्ताक परिवार सामाजिक जीवन की धुरी होता है। इस प्रकार के परिवार के स्थायित्व के लिये पिता की आज्ञा का पालन अत्यत आवश्यक है। राम के चरित्र में सबसे बडी बात यही है कि उन्होने पिता की आज्ञा का पालन किया, भले ही वह आज्ञा न्यायोचित नही थी और उसके कारण उन्हें राज्य छोडकर वन में जाना पडा। इस प्रकार यह कथा परपरागत भारतीय समाज के आधारभूत नियम को बल प्रदान कर व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करने में सहायक होती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि पौराणिक कथाओ के दैवी पात्रों और लौकिक व्यक्तियों के नाम (analogical correspondence) में विश्वास के आधार पर प्रत्येक सामाजिक स्तर (status) और कार्यभाग (role) के लिए निश्चित रूढ़ प्रकार (stereotypes) उपस्थित कर दिए जाते हैं।

अनुष्ठान प्रतीकात्मक कृत्य हैं और पौराणिक कथाओं की भाँति यह भी गहराई से मानव विचारों, भावनाओ और व्यवहारों को सुनिश्चित स्वरूप प्रदान कर सामाजिक नियत्रण में सहायक होते हैं। जीवन के प्रमुख मोडो पर होनेवाले सस्कार व्यक्ति के कर्तव्यो और स्थितियो को उसके सामने तथा समुदाय के अन्य सदस्यो के सामने लाकर सामाजिक सुव्यवस्था में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिये यज्ञोपवीत होने पर द्विज बालक को समुदाय मे निश्चित स्थान दिया जाता है तथा उसे विशेष प्रकार के व्यवहार के लिये प्रेरित किया जाता है। इस प्रकार के सस्कार (rites de passage) अन्य जनजातीय तथा अजनजातीय समाजों में भी पाए जाते हैं। दुर्खीम ने आस्ट्रेलिया निवासी जनजातीय लोगो के अनुष्ठानों का गहन अध्ययन कर सामाजिक नियत्रण में अनुष्ठानों के महत्व पर अच्छा प्रकाश डाला है। नृतत्वशास्त्री रेडक्लिफ ब्राउन का कहना है कि अनुष्ठान विभिन्न व्यक्तियो और समूहो के पारस्परिक संबध तथा कार्यभाग को प्रत्यक्ष लाकर सामाजिक दृढ़ता बनाए रखने के सहायक होते हैं। उदाहरणार्थ पुत्रजन्म सबधी अनुष्ठानो में परिवार के सदस्यों तथा समुदाय के अन्य लोगो (भारत में नाई, धोबी आदि) के विशेष प्रकार से समिलित होने से यह स्पष्ट होता है कि नवजात शिशु का सबध केवल अपने माँ बाप से ही नही है, वल्कि पूरे समुदाय में उसका सुनिश्चित स्थान है।

सामाजिक नियत्रण, सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने से सबधित है, किंतु सामाजिक परिवर्तन से इसका कोई मौलिक विरोध स्वीकार करना आवश्यक नही। इसमें सदेह नही कि किसी पुरानी सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक नियंत्रण करनेवाली जो विविध सस्थाएँ, समूह, सहिताएँ, प्रतीकात्मक कृतियाँ आदि होती हैं वे बहुधा नई व्यवस्था आने के मार्ग में बाधक होती दिखाई देती है। किंतु सुव्यवस्थित सामाजिक परिवर्तन के लिये इन सभी में सतुलन और साथ साथ परिवर्तन होना आवश्यक है। अत. सामाजिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में भी सामाजिक नियत्रण पर ध्यान देना आवश्यक है।

सं० ग्र० — पाल एच० लैंडिस : सोशल कट्रोल (१९५६), रिचार्ड टी० लपेर . ए थियरी ऑव सोशल कट्रोल (१९५४), ई० ए० रॉस : सोशल कट्रोल (१९०१), फ्रेडरिक ई० लूमले मीस ऑव सोशल कट्रोल (१९२५), क्लूसान पर्सनैलिटी इन नेचर, सोसायटी ऐंड कल्चर (१९३३); हैंस गर्थ और सी० राइट मिल्स, कैरेक्टर ऐंड सोशल स्ट्रक्चर (१९५३), टैलकट पार्सन्स : सोशल सिस्टम (१९५१), राबट के० मर्टन . सोशल थियरी ऐंड सोशल स्ट्रक्चर (१९५०)। [इद्रदेव]

सामाजिक नियोजन सामाजिक विज्ञानो में सामाजिक नियोजन की अवधारणा (या प्रत्यय concept) बहुत कुछ अस्पष्ट है। सामाजिक नियोजन अवधारणा का प्रयोग सुविधानुसार विभिन्न अर्थों तथा सदर्भों में किया जाता है। सामान्यतया दो सदर्भों में यह प्रयोग किया जाता है (१) समाजकल्याण और सामाजिक सुरक्षा के कार्यों से सबधित नियोजन, तथा (२) आर्थिक, औद्योगिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रो के अतिरिक्त समाज के अवशिष्ट क्षेत्रो से सबधित नियोजन। इनमें भी प्रथम अर्थ में "सामाजिक नियोजन" की अवधारणा का प्रयोग अधिक प्रचलित है। आम तौर पर ऐसी धारणा है कि इस प्रकार के सामाजिक नियोजन तथा अन्य नियोजनो, यथा आर्थिक नियोजन, का कोई विशेष पारस्परिक सबध नही है। उपर्युक्त सीमित अर्थों मे सामाजिक नियोजन के प्रत्यय का प्रयोग अनर्कसंगत तथा सर्वथा अनुपयुक्त है। सामाजिक नियोजन का प्रत्यय या अवधारणा कही अधिक व्यापक तथा महत्वपूर्ण है।

सामाजिक तथा 'नियोजन' दोनो ही शब्दो की प्रकृति का एक सामान्य विवेचन करने से सामाजिक नियोजन की अवधारणा सबधी अनिश्चितता या अस्पष्टता कुछ हद तक दूर की जा सकती है। 'सामाजिक' का सामान्य अर्थ समाज से सबधित स्थितियो से है तथा समाज का सामान्य अर्थ मनुष्यों के विभिन्न पारस्परिक सबधों की व्यवस्था के रूप मे लिया जाता है। समाज की इस व्यवस्था के अतर्गत समाविष्ट पारस्परिक सबध विविध प्रकार के होते हैं, यथा, पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सस्तरणीय आदि और इनमें से प्रत्येक प्रकार के सबधो का क्षेत्र इस भाँति काम करता है कि वह बडी समाजव्यवस्था के अतर्गत स्वत एक व्यवस्था

या उपव्यवस्था निर्मित कर लेता है। इस प्रकार समाज एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अतर्गत विभिन्न कोटि के सामाजिक सबंधो द्वारा निर्मित अत सबधित उपव्यवस्थाएँ सघटित हैं। इस दृष्टि से सामाजिक शब्द का सामान्य प्रयोग सामाजिक विज्ञानों में समाजव्यवस्था से सबंध रखनेवाली स्थितियों के अर्थ में किया जाता है। राजनीतिक, आर्थिक या किसी अन्य प्रकार के मानवीय संबंध को "सामाजिक" की परिधि के बाहर रखना अतर्कसगत है। अतः समाज व्यवस्था अथवा उसकी विविध उपव्यवस्थाओ सबधी सभी स्थितियाँ सामान्यतया सामाजिक हैं।

'नियोजन' शब्द का भी विशिष्ट अर्थ है। नियोजन का स्वरूप कालक्रम की दृष्टि से भविष्योन्मुख तथा मूल्यात्मक दृष्टि से आदर्शोन्मुख होता है। नियोजन के अतर्गत विद्यमान स्थितियो तथा सभावित परिवर्तनो की प्रकृति, उपयोगिता एव औचित्य को ध्यान मे रखते हुए एक ऐसी सुगठित रूपरेखा निर्मित की जाती है जिसके आधार पर भविष्य के परिवर्तनो को अपेक्षित लक्ष्यों के अनुरूप नियन्त्रित, निर्देशित तथा सशोधित किया जा सके। नियोजन की धारणा में अनेक तत्व निहित हैं जिनमें कुछ मुख्य तत्व ये है—(१) अपेक्षित तथा इच्छित स्थितियो या लक्ष्यो के सबध में स्पष्टता। यह निश्चित होना चाहिए कि किन स्थितियो की प्राप्ति अभीष्ट है। यह चुनाव का प्रश्न है। चूँकि अपेक्षित स्थितियों के अनेक विकल्प हो सकते हैं, इस कारण विभिन्न विकल्पो में से निश्चित विकल्प के निर्धारणार्थ चुनाव अनिवार्य हो जाता है। यह चुनाव केवल मूल्यो के आधार पर ही संभव है। (२) विद्यमान स्थितियो तथा अपेक्षित स्थितियो या लक्ष्यों के बीच की दूरी का ज्ञान भी नियोजन का एक प्रमुख तत्व है। इस समय जो स्थितियाँ विद्यमान हैं वे कब और किस सीमा तक इच्छित उद्देश्य तक पहुँचा सकती हैं और कहाँ तक उससे हटाकर दूर ले जा सकती हैं, इसका अधिकतम सही अनुमान लगाना आवश्यक है। सामान्यतया नियोजन की आवश्यकता विद्यमान स्थितियों के रूप और दिशा के प्रति असतोष से उत्पन्न होती है और यह असतोष स्वभावतया देश, काल तथा पात्र सापेक्ष है। (३) अपेक्षित स्थितियो या लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये आवश्यक साधन कहाँ तक उपलब्ध हो सकते हैं, इसका ज्ञान भी आवश्यक तत्व है। यदि लक्ष्यो का निर्धारण उपलब्ध साधनो के सदर्भ मे नही होता तो वे केवल कल्पना के स्तर पर ही रह जाएँगे। अपेक्षित स्थितियो की प्राप्ति कामना मात्र पर निर्भर नही है, उनकी प्राप्ति के लिये साधनो का ज्ञान होना आवश्यक है। (४) अपेक्षित स्थितियो या लक्ष्यो की प्राप्ति की दिशा मे विद्यमान स्थितियो, उपलब्ध साधनों तथा संभावित घटनाओ के सदर्भ में एक कालस्तरित स्पष्ट रूपरेखा तैयार करना नियोजन का महत्वपूर्ण तत्व है। इस रूपरेखा के अनुरूप ही व्यवस्थित तथा निश्चित प्रकार से क्रियाकलापो एव विचारो को इस तरह सगठित किया जा सकता है कि इच्छित लक्ष्यो की सिद्धि संभव हो।

'सामाजिक' तथा 'नियोजन' इन दोनो शब्दो की सामान्य विवेचना के आधार पर सामाजिक नियोजन के प्रत्यय का अर्थ समझने में सुविधा हो जाती है। कोई भी ऐसा नियोजन जो पूर्ण या आशिक रूप से समाजव्यवस्था या उसकी उपव्यवस्थाओ में अपेक्षित परिवर्तन लाने के लिये किया जाता है सामाजिक नियोजन है। सामाजिक स्तर पर अपेक्षित सस्थात्मक तथा संबंधात्मक स्थितियों के स्थापनार्थ अथवा उनमें परिवर्तन या सशोधन के लिये विवेकपूर्ण तथा सतर्क, संगत दृष्टि से सगठित क्रियाकलापों की सुनिश्चित रूपरेखा सामाजिक नियोजन है। समाज के विभिन्न अत संबधित क्षेत्रो के परिवर्तनों को व्यवस्थित एव संतुलित प्रकार से निश्चित दिशा की ओर ढालना सामाजिक नियोजन का विकसित तथा व्यापक रूप है। इस व्यापक सामाजिक नियोजन का कार्यविभाजन आदि सबधी सुविधाओं की दृष्टि से अनेक विशिष्ट क्षेत्रो मे बाँटा जा सकता है, यथा आर्थिक उपव्यवस्था मे इच्छित परिवर्तन लाने के लिये ऐसी विशिष्ट रूपरेखा बनाई जा सकती है जो मुख्यतया आर्थिक होगी और ऐसी योजना को आर्थिक नियोजन की सज्ञा देना उचित होगा। यही बात समाजव्यवस्था की अन्य उपव्यवस्थाओ, यथा राजनीतिक, सास्कृतिक, धार्मिक आदि के संबध में भी लागू होती है। सभी प्रकार के ऐसे नियोजन जो समाजव्यवस्था के किसी भी भाग से संबधित हैं सामाजिक नियोजन की अवधारणा के व्यापक क्षेत्र के अंतर्गत समाहित हो जाते हैं। चूँकि समाज की आर्थिक उपव्यवस्था का नियोजन आधुनिक युग में अधिक प्रचलित है—सभवत जिसका कारण आर्थिक उपव्यवस्था का अन्य उपव्यवस्थाओ की अपेक्षा जीवन की भौतिक आवश्यकताओ की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण होना तथा अधिक नियंत्रणीय होना है—इस कारण एक ऐसी सामान्य धारणा व्याप्त है कि आर्थिक नियोजन कोई ऐसा नियोजन है जो व्यापक सामाजिक नियोजन से पूर्णतया स्वतंत्र है। नि.संदेह प्रत्येक सामाजिक उपव्यवस्था की अपनी विशेषता होती है, उसका अपना विशिष्ट स्थान होता है और इस दृष्टि से अन्य उपव्यवस्थाओं की भाँति आर्थिक उपव्यवस्था भी समाज व्यवस्था के एक विशिष्ट क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य संपन्न करती है, किंतु इससे यह निष्कर्ष निकालना तर्कसगत न होगा कि उसका अस्तित्व पूर्णतया स्वतत्र है और आर्थिक नियोजन का सामाजिक नियोजन से कोई सबंध नही है। जिस प्रकार समाजव्यवस्था से आर्थिक उपव्यवस्था जैसी उपव्यवस्थाएँ संबधित हैं उसी प्रकार सामाजिक नियोजन से आर्थिक नियोजन जैसे नियोजन भी सबधित हैं।

नियोजन का सबध नियंत्रण तथा निर्देशन से है। समाज के सभी क्षेत्रो में नियत्रण तथा निर्देशन का अनुशासन समान रूप से लागू नही होता। अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रो की तुलना में अधिक नियत्रण योग्य तथा कुछ कम नियत्रणीय होते हैं। सामान्यतया प्राविधिक तथा आर्थिक स्तर से सबंधित विषय धार्मिक तथा विचारात्मक स्तर से सबंधित विषयों की अपेक्षा अधिक नियंत्रणीय होते हैं। जो स्तर भौतिक उपयोगिता तथा सभ्यता के उपयोगितावादी तत्वो के जितना निकट होगा और सास्कृतिक एवं मूल्यात्मक तत्वो के प्रभाव से जितना दूर होगा वह उतना ही नियत्रण तथा निर्देशन के अनुशासन मे आबद्ध हो सकता है। इसी कारण समाजव्यवस्था के कुछ क्षेत्रो में नियोजन अपेक्षाकृत अधिक सरल हो जाता है। संभवत. शुद्ध प्राविधिक या प्रौद्योगिक क्षेत्र को छोड़कर अन्य किसी क्षेत्र में पूर्णतया नियत्रित तथा निर्देशित नियोजन करना कठिन है। नियोजक को अनेक सीमाओ के अंदर योजना बनानी होती है और ये सीमाएँ सबंधित समाजव्यवस्था के ऐतिहासिक,

सांस्कृतिक संदर्भ द्वारा निर्मित होती हैं। इसी कारण समाज-व्यवस्था या उसकी किसी उपव्यवस्था का नियोजन नवनिर्माण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि नवनिर्माण तो किसी चीज का एकदम नए सिरे से, बिना किसी बाधा या सीमा के, इच्छित आधारों पर निर्माण करना है। वास्तव में नियोजन नवनिर्माण की अपेक्षा परिष्करण या पुनर्गठन अधिक है क्योंकि विद्यमान स्थितियों के दायरे में ही नियोजक को अभिलषित परिवर्तनों की रूपरेखा बनानी पड़ती है। वह अपनी कल्पनाशक्ति को मुक्त विचरण के लिये नहीं छोड़ सकता। प्रत्येक समाजव्यवस्था अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों के अनुरूप नियोजन के लिये प्रेरणा भी प्रदान करती है और सीमाएँ भी निर्धारित करती है।

समाजव्यवस्था की विभिन्न उपव्यवस्थाओं के परस्पर संबंधित होने के कारण किसी भी एक उपव्यवस्था का नियोजन दूसरी उपव्यवस्थाओं से प्रभावित होता है और स्वत भी उनको प्रभावित करता है। प्राय विभिन्न उपव्यवस्थाओं की सीमारेखाएँ स्पष्ट नहीं होतीं और किसी एक उपव्यवस्था के क्षेत्र में नियोजन करनेवाला व्यक्ति अपने को दूसरी उपव्यवस्था के क्षेत्र का अतिक्रमण करता हुआ सा पाता है। उदाहरणार्थ, आर्थिक व्यवस्था के नियोजन के सिलसिले में कभी ऐसे भी प्रश्न उठते जिनका संबंध राजनीतिक वैधानिक उपव्यवस्था से होता है। ऐसी स्थिति में आर्थिक नियोजन के हित में यह अनिवार्य हो जाता है कि अपेक्षित दिशा में प्रगति के लिये राजनीतिक वैधानिक उपव्यवस्था के उन तत्वों को भी नियोजन के अनुरूप ढाला जाय जो आर्थिक उपव्यवस्था से संबंधित हैं। अत किसी भी उपव्यवस्था का नियोजन केवल संबंधित क्षेत्र के अंदर ही परिसीमित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक क्षेत्र में नियोजन जितना ही व्यापक और गहन होता जाता है उतना ही जटिलतर भी होता जाता है। इस जटिलता या समाज के विभिन्न क्षेत्रों की परस्पर संबद्धता को ध्यान मे रखने से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक नियोजनका प्रवधारणा मूलत समाजशास्त्रीय है। [र० च० ति०]

सामाजिक प्रक्रम प्रक्रम गति का सूचक है। किसी भी वस्तु की आंतरिक बनावट में भिन्नता आना परिवर्तन है। जब एक अवस्था दूसरी अवस्था की ओर सुनिश्चित रूप से अग्रसर होती है तो उस गति को प्रक्रम कहा जाता है। इस अर्थ में जीव की अमीबा से मानव तक आनेवाली गति, भूप्रस्तरण (stratification) की क्रियाएँ तथा तरल पदार्थ का वाष्प में आना प्रक्रम के सूचक हैं। प्रक्रम से ऐसी गति का बोध होता है जो कुछ समय तक निरंतरता लिए रहे। सामान्य जगत् में जड़ और चेतन, पदार्थ और जीव में आनेवाले ऐसे परिवर्तन प्रक्रम के द्योतक हैं। इस प्रकार प्रक्रम शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता है।

प्रक्रम के इस मूल अर्थ का उपयोग सामाजिक जीवन के समझने के लिये किया गया है। सामाजिक शब्द से उस व्यवहार का बोध होता है जो एक से अधिक जीवित प्राणियों के पारस्परिक संबंध को व्यक्त करे, जिसका अर्थ निजी न होकर सामूहिक हो, जिसे किसी समूह द्वारा मान्यता प्राप्त हो और इस रूप में उसकी सार्थकता भी सामूहिक हो। एक समाज में कई प्रकार के समूह हो सकते हैं जो एक या अनेक दिशाओं में मानव व्यवहार को प्रभावित करें। इस अर्थ में सामाजिक प्रक्रम वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था अथवा सामाजिक क्रिया की कोई भी इकाई या समूह अपनी एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर निश्चित रूप से कुछ समय तक अग्रसर होने की गति में हो।

एक दृष्टि से विशिष्ट दिशा में होनेवाले परिवर्तन सामाजिक व्यवस्था के एक भाग के अंतर्गत देखे जा सकते हैं तथा दूसरी से सामाजिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से। प्रथम प्रकार के परिवर्तन के तीन रूप हैं —

(१) आकार के आधार पर संख्यात्मक रूप से परिभाषित — जनसंख्या की वृद्धि, एक स्थान पर कुछ वस्तुओं का पहले से अधिक संख्या में एकत्र होना, जैसे अनाज की मंडी में बैलगाड़ियों या ग्राहकों का दिन चढ़ने के साथ बढ़ना, इसके उदाहरण हैं। मैकाईवर ने इसके विपरीत दिशा में उदाहरण नहीं दिए हैं, किंतु बाजार का शाम को समाप्त होना, बड़े नगर में दिन के ८ से १० बजे के बीच बसों या रेलों द्वारा बाहरी भाग से भीतरी भागों में कई व्यक्तियों का एकत्र होना तथा सायंकाल में विसर्जित होना ऐसे ही उदाहरण हैं। अकाल तथा महामारी के फैलने से जनहानि भी इसी प्रकार के प्रक्रम के द्योतक हैं।

(२) संरचनात्मक तथा क्रियात्मक दृष्टि से गुण में होनेवाले परिवर्तन — किसी भी सामाजिक इकाई में आंतरिक लक्षणों का प्रादुर्भाव होना या उनका लुप्त होना इस प्रकार के प्रक्रम के द्योतक हैं। जनतंत्र के लक्षणों का लघु रूप से पूर्णता की ओर बढ़ना ऐसा ही प्रक्रम है। एक छोटे कस्बे का नगर के रूप में बढ़ना, प्राथमिक पाठशाला का माध्यमिक तथा उच्च शिक्षणालय के रूप में सम्मुख आना, छोटे से पूजास्थल का मंदिर या देवालय की अवस्था प्राप्त करना विकास के उदाहरण हैं। विकास की क्रिया से आशय उन गुणों की अभिवृद्धि से है जो एक अवस्था में लघु रूप से दूसरी अवस्था में वृहत् तथा अधिक गुणसंपन्न स्थिति को प्राप्त हुए हैं। यह वृद्धि केवल संख्या या आकार की नहीं, वरन् आंतरिक गुणों की है। इस भाँति की वृद्धि संरचना में होती है और क्रियाओं में भी। इग्लैंड में प्रधान मंत्री और संसद् के गुण रूपी वृद्धि (प्रभाव या शक्ति की वृद्धि) में निरंतरता देखी गई है। इस विकास की दो दिशाएँ थीं। राजा की शक्ति का ह्रास तथा संसद् की शक्ति की अभिवृद्धि। इन्हे किसी भी दिशा से देखा जा सकता है। भारत में कांग्रेस का उदय और स्वतंत्रता की प्राप्ति एक ओर तथा ब्रिटिश सरकार का निरंतर शक्तिहीन होना दूसरी ओर इसी रूप से देखा जा सकता है। जब तक सामाजिक विकास में नई आनेवाली गुण संबंधी अवस्था को पहले आनेवाली अवस्था से हेय या श्रेय बताने का प्रयास नहीं किया जाता, तब तक सामाजिक प्रक्रम विकास वा ह्रास की स्थिति स्पष्ट करते हैं।

(३) निश्चित मर्यादाओं के आधार पर लक्ष्यों का परिवर्तन — जब एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर जाना सामाजिक रूप से स्वीकृत वा श्रेय माना जाय तो उस प्रकार का प्रक्रम उन्नति या प्रगति का रूप लिए होता है और जब सामाजिक मान्यताएँ परिवर्तन द्वारा लाई जानेवाली दिशा को हीन दृष्टि से देखें तो उसे पतन या विलोम होने की प्रक्रिया कहा जायगा।

रूस में साम्यवाद की ओर वढानेवाले कदम प्रगतिशील माने जायँगे, अमरीका मे राजकीय सत्ता वढानेवाले कदम पतन की परिभाषा तक पहुँच जायगे, शूद्र वर्ण के व्यक्तियो का ब्राह्मण वर्ण मे खानपान होना समाजवादी कार्यक्रम की मान्यताओं में प्रगति का द्योतक है, और परपरागत व्यवस्थाओ के अनुसार अध.पतन का लक्षण। कुछ व्यवस्थाएँ एक समय की मान्यताओं के अनुसार श्रेयस्कर हो सकती हैं और दूसरे समय में उन्हे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जा सकता है। रोम मे ग्लेडिएटर की व्यवस्था, या प्राचीन काल मे दास प्रथा की अवस्था में होनेवाले परिवर्तनो के आधार पर यही भावनाएँ निहित थीं। समाज में विभिन्न वर्ग या समूह होते हैं, उनसे मान्यताएँ निर्धारित होती हैं। एक समूह की मान्यताएँ कई बार संपूर्ण समाज के अनुरूप होती हैं। कभी कभी वे विपरीत दिशाओ में भी जाती हैं और उन्ही के अनुसार विभिन्न सामाजिक परिवर्तनो का मूल्याकन श्रेय वा हेय दिशाओ में किया जा सकता है। जब तक सामाजिक मान्यताएँ स्वयं न वदल जाएँ, वे परिवर्तनो को प्रगति या पतन की परिभाषा लवे समय तक देती रहती हैं।

दूसरे प्रकार के सामाजिक प्रक्रम अपने से बाहर किंतु किसी सामान्य व्यवस्था के अग के रूप में सतुलन करने या वढने की दृष्टि से देखे जा सकते हैं। सामाजिक परिवर्तन जब एक संस्था के लक्षणो में आते हैं तो कई वार उस सस्था की सपूर्ण सामाजिक व्यवस्था या अन्य विभागो से वना हुआ सवंध वदल जाता है। पहले के संतुलन घट बढ़ जाते हैं और किसी भी दिशा मे प्रक्रम चालू हो जाते हैं। परिवारो के छोटे होने के साथ सयुक्त परिवार के ह्रास के फलस्वरूप वृद्ध व्यक्तियो का परिवार वा ग्राम से सवंध बदलता सा दिखाई पड़ रहा है। सामतशाही के सुदृढ सवध एकाएक उस युग के प्रमुख व्यक्तियो के लिये एक नई समस्या लेकर आए हैं। इस भाँति के परिवर्तनो को समझने का आधारभूत तत्व समाज के एक अंग की पूर्वावस्था के सतुलन को नई अवस्था की समस्याओ से तुलना करने मे है। इस प्रकार के परिवर्तन सतुलन वढाने या घटानेवाले हो सकते हैं। सतुलन एक अग का अन्य अगो से देखा जा सकता है।

दो व्यक्ति या समूह जब एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिये स्वीकृत साधनो के उपयोग द्वारा प्रयत्न करते हैं तो यह क्रिया प्रतियोगिता कहलाती है। इसमें लक्ष्यप्राप्ति के साधन समान्य होते हैं। कभी कभी उनकी नियमावली तक प्रकाशित हो जाती है। ओलपिक खेल तथा खेल की विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ इसकी सूचक हैं। परीक्षा के नियमो के अतर्गत प्रथम स्थान प्राप्त करना दूसरा उदाहरण है। जब नियमो को भंग कर, या उनकी अवहेलना कर लक्ष्यप्राप्ति के लिये विपक्षी को नियमो से परे हानि पहुँचाकर प्रयास किए जायँ तो वे सघर्ष कहलाएँगे। राजनीतिक दलो मे प्रतियोगिता मूल नियमो को सुदृढ वनाती है; उनमें होनेवाले संघर्ष नियमो को ही क्षीण वनाते हैं और इस प्रकार अव्यवस्था फैलाते हैं। कभी कभी छोटे सघर्ष वडी एकता का सर्जन करते हैं। वाहरी आक्रमण के समय भीतरी सगठन कई वार एक हो जाते हैं, कभी कभी ऐसी कुव्यवस्था जड पकड लेती है कि उसे साधारण से परे ढंग से भी नहीं हटाया जा सकता। यह आवश्यक नही कि सघर्ष का फल सदा समाज के अहित में हो, किंतु उस प्रक्रम में नियमो के अतिरिक्त होनेवाले प्रभावात्मक कदम अवश्य उठ जाते हैं।

एक समाज या संस्कृति का दूसरे समाज या संस्कृति से जब मुकावला होता है तो कई वार एक के तत्व दूसरे मे तथा दूसरे के पहले मे आने लगते हैं। संस्कृति के तत्वो का इस भाँति का ग्रहण अधिकतर सीमित एवं चुने हुए स्थलो पर ही होता है। नाश्ते में अंग्रेजो से चाय ग्रहण कर ली गई पर मक्खन नही, घड़ियो का उपयोग वढ़ा पर समय पर काम करने की आदत उतनी व्यापक नहीं हुई; कुर्सियों पर पलथी मार कर वैठना तथा नौकरी दिलाने में जाति को याद करना इसी प्रकार के परिवर्तन हैं। हर समाज में वस्तुओ के उपयोग के साथ कुछ नियम और प्रतिबध हैं, कुछ मान्यताएँ तथा विधियाँ हैं, और उनकी कुछ उपादेयता है। एक वस्तु का जो स्थान एक समाज में है, उसका वही स्थान इन सभी विंदुओ पर दूसरे समाज मे हो जाय यह आवश्यक नही। भारत में मोटर और टेलीफोन का उपयोग समानवृद्धि के मापक के रूप में है, जबकि अमरीका में वह केवल सुविधामात्र का; कुछ देशो में परमाणु बम रक्षा का आधार है, कुछ मे प्रतिष्ठा का। इस भाँति संस्कृति का प्रसार समाज की आवश्यकताओ, मान्यताओं तथा सामाजिक सरचना द्वारा प्रभावित हो जाता है। इस प्रक्रिया में नई व्यवस्थाओं एवं वस्तुओ के कुछ ही लक्षण ग्रहण किए जाते हैं। इसे अंग्रेजी में एकल्च-रेशन कहा गया है। कल्चर (सस्कृति) में जब किसी नई वस्तु का आंशिक समावेश किया जाता है तो उस अंशग्रहण को इस शब्द से व्यक्त किया गया है।

जब किसी संस्कृति के तत्व को पूर्णरूपेण नई सस्कृति में समाविष्ट कर लिया जाय तब उस प्रक्रिया को ऐसिमिलेशन (आत्मीकरण) कहा जाता है। इस शब्द का वोध है कि ग्रहण किए गए लक्षण या वस्तु को इस रूप मे सस्कृति का भाग वना लिया है, मानो उसका उद्गम कभी विदेशी रहा ही न हो। आज के रूप में वह संस्कृति का इतना अभिन्न अंग वन गया हे कि उसके आगमन का स्रोत देखने की आवश्यकता का भान तक नही हो सकता। हिंदी का खड़ी वोली का स्वरूप हिंदी भाषी प्रदेश में आज उतना ही स्वाभाविक है जितना उनके लिये आलू का उपयोग या तंवाकू का प्रचलन। भारत मे शक, हूण और सीथियन तत्वो का इतना समावेश हो चुका है कि उनका पृथक् अस्तित्व देखना ही मानो निरर्थक हो गया है। एक भाषा मे अन्य भाषाओ के शब्द इसी रूप मे अपना स्थान वना लेते है, जैसे 'पडित' का अंग्रेजी में या 'रेल' 'मोटर' का हिंदी मे समावेश हो गया है। वाहरी व्यवस्था से प्राप्त तत्व जब अभिन्न रूप से आतरिक व्यवस्था का भाग वन जाता है तव उस प्रक्रम को आत्मीकरण कहा जाता है।

एक ही समाज के विभिन्न भाग जब एक दूसरे का समर्थन करते हुए सामाजिक व्यवस्था को अखड बनाए रखने में योगदान करते रहते हैं तो उस प्रक्रम को इंटेग्रेशन (एकीकरण) कहा जाता

है। इस प्रकार के समाज की ठोस रचना कई बार समाज को बलवान् बनाते हुए नए विचारो से विहीन बना देती है। नित्य नए परिवर्तनो के बीच एकमात्र ठोस व्यवस्था स्वय में संतुलन खो बैठती है। अत अपेक्षित है कि जीवित सामाजिक व्यवस्था अपने अदर उन प्रक्रियाओ को भी प्रोत्साहन दे, जिनसे नई अवस्थाओ के लिये नए सतुलन बन सकें; इस दृष्टि से पूर्ण सगठित समाज स्वय में कमजोरी लिए होता है। गतिशील समाज में कुछ असतुलन आवश्यक है किंतु मुख्य बात देखने की यह है कि उसमे नित्य नए संतुलन तथा समस्यासमाधान के प्रक्रम किस स्वास्थ्यप्रद ढंग से चलते हैं। प्रत्येक समाज मे सहयोग एवं संघर्ष की प्रक्रियाएँ सदा चलती रहती हैं और उनके बीच व्यवस्था बनाए रखना हर समाज के बने रहने के लिये ऐसी समस्या है जिसके समाधान का प्रयत्न करते रहना आवश्यक है।
[व्र० चौ०]

सामाजिक विघटन सामाजिक सगठन का विलोम है। इसलिये 'सामाजिक संघटन क्या है' इसे स्पष्ट करने पर ही सामाजिक विघटन का अर्थ स्पष्ट होगा।

समाज सामाजिक सघर्षो का तानावाना है। सदस्यो के पारस्परिक सबधो की अभिव्यक्ति सामाजिक समितियो तथा संस्थाओ के माध्यम से होती है और जब सामाजिक समितियाँ तथा संस्थाएँ अपने मान्य उद्देश्यो के अनुरूप कार्य करती हैं तो हम कहते हैं कि समाज सघटित है। सामाजिक संघटन का आधार है समाज के सदस्यों द्वारा सामाजिक उद्देश्यो की समान परिभाषा और उनकी पूर्ति के लिये समान कार्यक्रम पर एकमत होना। किसी समाज में यदि सामाजिक उद्देश्यो और कार्यक्रमों में मतैक्य है तो हम कह सकते हैं कि उक्त समाज पूर्णतः गठित है।

समाज परिवर्तनशील और प्रगतिशील है। परिवर्तन का वेग विभिन्न कालो में विभिन्न रहा है और यदि परिवर्तन न होता तो समाज का वह रूप न होता जो आज हम देखते हैं। मानव व्यवहार, सामाजिक मान्यताएँ, सामाजिक मूल्य और सामाजिक कार्यक्रम, सभी बदल रहे हैं। इसलिये किसी एक समय हम यह नही कह सकते कि सामाजिक मूल्यों एवं कार्यक्रमों पर समाज में मतैक्य है। पूर्ण गठित समाज अमूर्त अवधारणा (कासेप्ट) है जिसे साकार नही किया जा सकता। प्रत्येक समाज बदलता रहता है और बदलने से विचारो में भेद होना स्वाभाविक ही है। इसलिये कुछ अंश तक विघटन की प्रवृत्ति बनी ही रहती है। सामाजिक परिवर्तन से सामाजिक सतुलन की स्थिति बिगडती है। इस प्रकार सामाजिक विघटन परिवर्तनशील समाज का सामान्य गुण है।

समाज समूहो से बनता है और समूह सदस्यों के मध्य सामाजिक संबंध को कहते हैं। जब सामाजिक सबध छिन्न भिन्न होते हैं तो समूह टूट जाता है और समूह के टूटने को ही सामाजिक विघटन कहेंगे, वह समूह परिवार हो अथवा पडोस, समुदाय हो या राष्ट्र।

प्रत्येक व्यक्ति बहुत से समूहो से संबधित होता है और किसी एक समय वह सभी समूहों से संघर्षरत हो जाय, यह सभव नहीं है। किसी एक समूह के संदर्भ में कोई व्यक्ति विघटित हो सकता है जबकि अन्य समूहो से उसके व्यावहारिक सबध बने रह सकते हैं।

समाज को प्रभावित करनेवाले बहुत से तत्व हैं। किसी एक तत्व को सामाजिक विघटन का मूल आधार मान लेना तर्कसगत नही है। सामाजिक विघटन को कई संदर्भों में समझा जा सकता है जैसे परिवार, समुदाय, राष्ट्र, अथवा विश्व। किसी एक तथ्य के आधार पर किसी भी क्षेत्र में सामाजिक विघटन की पूर्ण व्याख्या सभव नही। सामाजिक संरचना, सामाजिक मूल्य, सामाजिक अभिवृत्तियाँ, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक निर्णय और सामाजिक सकट सभी सामाजिक विघटन को जन्म देते हैं।

समाज की व्याख्या सामाजिक सरचना और सामाजिक कार्यों (सोशल फकशन) के सदर्भ में की जाती है। सामाजिक समूह एव सस्थाएँ सामाजिक व्यवहार का स्वरूप बनाते हैं और प्रगतिशील समाज में सामाजिक सरचना में निरतर परिवर्तन होते रहते हैं। परिवार, विद्यालय, धर्म, विवाह, राज्य, व्यावसायिक प्रतिष्ठान इत्यादि सामाजिक सरचना के अग हैं। यद्यपि इन संगठनो अथवा सस्थाओ का उदय बहुत समय पहले हुआ, तथापि इनके स्वरूप में सदा परिवर्तन होता रहा है। भारतवर्ष में परिवार जैसी प्राचीन संस्था में विगत २५ वर्षों में मूलभूत परिवर्तन हुए हैं। अंतर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, बाल-विवाह-निषेध, स्त्रियो का परिवार में उच्च स्थान, ये सभी इसी शताब्दी की देन हैं। परिवर्तनो के कारण समितियो एवं संस्थाओ के सदस्यो की प्रस्थिति और भूमिका में परिवर्तन होते रहते हैं और सदस्यो के पारस्परिक संबंध इतने परिवर्तनशील हैं कि उनके चिरस्थायी रूप निर्धारित नहीं किए जा सकते। परिणामस्वरूप व्यक्तिगत विचलन उत्पन्न होता है। परिस्थितियों अथवा अज्ञान के वश व्यक्तियों को नई भूमिकाएँ ग्रहण करनी पडती हैं। कई बार तो नई भूमिकाएँ समाज को प्रगति की ओर ले जाती हैं, परतु अधिकाशत इनसे सामाजिक विघटन की प्रवृत्ति बढ़ती है। इस प्रकार समाज की प्रगति के कारक ही सामाजिक विघटन के कारण बन जाते हैं।

'इलिएट और मेरिल' ने सामाजिक विघटन की व्याख्या में 'सामाजिक परिवर्तन' पर ही अपने विचार आधारित किए हैं। समाज के विभिन्न तत्वो में परिवर्तन की समान गति न होने के कारण समाज में विघटन उत्पन्न होता है। भौतिक संस्कृति की प्रगतिशीलता तथा अभौतिक सस्कृति की आपेक्षिक स्थिरता के कारण पुरानी पीढ़ियो द्वारा निर्मित सामाजिक मापदडो और निर्धारित आचार व्यवहार को बदलना अति कठिन है। परिणामस्वरूप ऐसी सामाजिक सस्थाएँ जो समाज में स्थिरता लाती हैं, बदलती हुई परिस्थितियो में प्रगति मे अवरोध उत्पन्न कर सामाजिक विघटन को जन्म देती हैं। भौतिक सस्कृति में परिवर्तन होने के कारण विचारधाराओ, अभिवृत्तियो और सामूहिक मूल्यों में परिवर्तन होते हैं। कुछ लोग पुराने विचारो और पुराने व्यवहारो को पकडे रहते हैं और नई भौतिक परिस्थितियो से उत्पन्न आदर्श आगे बढ़ जाते हैं तो ऐसी परिस्थिति के कारण समाज में विघटन उत्पन्न होता है। इसको 'इलिएट और मेरिल' ने 'सास्कृतिक विलबन' (कल्चरल लैग) कहा है।

समाज में व्यवहार को नियंत्रित करने के लिये सामाजिक रूढ़ियाँ,

प्रथाएँ और कानून हैं। धर्म की नैतिक अथवा अनैतिक धारणाएँ भी व्यवहार को नियंत्रित करने में साधन हैं। सामाजिक संस्थाओ और सामाजिक मूल्यो में परिवर्तन होने के साथ ही पुराने व्यवहार प्रतिमान, असामयिक तथा असगत हो जाते है और नए व्यवहार को नियंत्रित करने के लिये नई रूढियो अथवा परंपराओ का निर्माण उसी गति से नही होता। पुराने नियन्त्रण तो समाप्त हो जाते हैं परंतु नए नियन्त्रण वा नई मर्यादाएँ उतनी तेजी से नही बन पाती। इस शून्यता के कारण विचलित व्यवहार को प्रोत्साहन मिलता है और सामाजिक विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है।

प्रत्येक समाज में सामूहिक और व्यक्तिगत सामाजिक उद्देश्य होते हैं जिनकी पूर्ति के लिये व्यक्ति व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से प्रयास करते हैं। व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार के पीछे कोई उद्देश्य रहता है। वह उद्देश्य कोई वस्तु, आदर्श या व्यक्ति हो सकता है। परिणामस्वरूप उस उद्देश्य का एक सामाजिक अर्थ होता है। व्यक्तिगत और सामूहिक व्यवहार की प्रेरणा इन उद्देश्यो से उत्पन्न होती है। सामाजिक उद्देश्यो से एक विशिष्ट प्रकार की अभिवृत्ति का जन्म होता है जो जीने के ढग और विभिन्न वस्तुओ से एव विभिन्न परिस्थितियो में अनुभवो के योग से निर्मित होती है। सामाजिक अभिवृत्तियो का उदय अनुभव से होता है। भारतीय बच्चो में जाति और धर्म सबधी अभिवृत्तियो का विकास भारतीय समाज में उनके जन्म लेने के कारण होता है। व्यक्ति अपने उपसमूह की मान्यताओ और व्यवहार प्रतिमानो को ग्रहण करता है और कई बार उप समूह के आदर्श एवं प्रतिमान वृहत् समाज के विपरीत होते हैं। परिणामत. सामाजिक विचलन ऐसी परिस्थितियो में बढता है और इस प्रकार समाजविरोधी अभिवृत्तियाँ व्यक्ति में समूह के संदर्भ से उत्पन्न होती हैं और इनसे विघटित समाज की अभिव्यक्ति होती है।

यद्यपि सामाजिक विघटन एक निरंतर प्रक्रम है, तथापि सामाजिक संकटो के कारण भी विघटन की अभिव्यक्ति व्यापक रूप में होती है। जब किसी समूह की सामान्य क्रियाओ मे विक्षोभ या उग्र अवरोध उत्पन्न होता है जिससे विचार वा व्यवहार के प्रचलित प्रतिमानो में परिवर्तन करना आवश्यक होता है और यदि अपेक्षित परिवर्तन के लिये कोई पूर्व आदर्श नही होता है तो हम ऐसी स्थिति को सकट की स्थिति कहेगे। सामान्य व्यक्ति के लिये परिवर्तित परिस्थिति में नए व्यवहार प्रतिमान स्थापित करना और सामजस्य स्थापित करना कठिन होता है। सामाजिक ढाँचे मे इस प्रकार के उग्र अवरोध अधिकाशत व्यक्तियो के लिये नई स्थिति और नई भूमिकाएँ उत्पन्न करते हैं जो उनके लिये कष्टदायक होती हैं। युद्ध भी एक सामाजिक सकट है और उसके कारण भी सामाजिक विघटन उत्पन्न होता है।

सामाजिक विघटन समाज का रूप नही वरन् मूल रूप से एक प्रक्रम है जिसमे सघर्ष, अत्यधिक स्पर्धा, विग्रह और सामाजिक विभेदीकरण जैसे अन्य प्रक्रम हैं और उसमें नाश, रूढियो और संस्थाओ मे सघर्ष, समूहो द्वारा एक दूसरे के कार्यो मे हस्तक्षेप तथा उनका हस्तातरण प्रकट होता है।

सामाजिक विघटन की व्याख्या विभिन्न समाजशास्त्रियों ने विभिन्न दृष्टिकोणो से की है। धर्मशास्त्रीय सिद्धात अति प्राचीन है। बीमारी, अपराध, मृत्यु, अकाल, गरीबी, युद्ध सभी अवाछनीय घटनाएँ ईश्वर की इच्छा पर निर्भर हैं और ईश्वरेच्छा से यह विघटनकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। यद्यपि यह सिद्धांत आदिम समाज मे उत्पन्न हुआ और आज भी आदिम जातियाँ आपत्तिकाल मे जादू, टोना और देवपूजन द्वारा ही इन आपत्तियो को दूर करने का प्रयास करती है तथापि सभ्य समाज भी पूर्णरूपेण इस मनोवृत्ति से मुक्त नही है। आज भी देवता की उपासना, पूजा पाठ द्वारा धनवृद्धि की कामना करना, सतानलाभ हेतु स्त्री पुरुषों द्वारा ओझाओ के पास जाना आदि इसी मनोवृत्ति के प्रतीक है।

दूसरे विचारक सामाजिक विघटन को 'नैसर्गिक' मानते है। उनके अनुसार मानव इस प्रकार से व्यवहार करता है कि दुःख और यातनाएँ उत्पन्न होती हैं। मनुष्य के स्वभाव में ही अच्छी बुरी दोनो अभिवृत्तियाँ हैं और जिस मनुष्य मे जो अभिवृत्ति प्रबल होगी वह वैसा ही व्यवहार करेगा।

तीसरे वर्ग के विचारक सामाजिक विघटन की व्याख्या 'मनोजैवकीय आधार' पर करते हैं। उनसे एक कदम आगे विघटन की 'भौगोलिक व्याख्या' करनेवाले विचारक हैं जो जलवायु, मिट्टी, तापक्रम, वर्षा आदि भौगोलिक कारको को मनुष्य के व्यावहारिक निर्धारक मानते हैं और अपराध, आत्महत्या, पागलपन इत्यादि को कतिपय विशेष भौगोलिक परिस्थितियो से उत्पन्न मानते है।

'सामाजिक समस्या सिद्धात' समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण सिद्धात है। इस सप्रदाय के विचारकों के अनुसार सामाजिक समस्याएँ सामाजिक विघटन को जन्म देती है और समस्याओ का समाधान करने पर ही सामाजिक प्रगति संभव है। ये विचारक 'सुधारवादी' है जिनके अनुसार बेकारी, अपराध, बुढ़ापा सभी सामाजिक समस्याएँ हैं जिनके समाधान के बिना समाज मे विशृखलता और असामंजस्य उत्पन्न हो जायगा।

'सास्कृतिक सिद्धात' सैद्धातिक दृष्टिकोण से सभी अन्य सिद्धातो से आगे है। विभिन्न सामाजिक सस्थाओ के असमायोजित होने और अपेक्षित रूप मे कार्य न करने से सामाजिक विघटन उत्पन्न होता है, जैसे परिवार या स्कूल यदि अपने निश्चित कार्य करने मे असमर्थ हैं तो उनके कार्य न करने से बाल-अपराध, बाल-दुर्व्यवहार की समस्या उत्पन्न होती हैं।

सामाजिक समस्या को विघटन का परिणाम माना जाय अथवा कारण, यह कहना कठिन है परंतु इतना स्पष्ट है कि दोनो का एक दूसरे से घनिष्ठ संबध है। यदि सामाजिक घटना 'वैयक्तिक विघटन' की कोई परिस्थिति है और हम देखते है कि इससे कुछ नए मूल्यो का जन्म होता है और अनुभव करते हैं कि इस परिस्थिति में सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता है और इसके परिवर्तमान पक्षो का मापना संभव है तो हम कहेंगे कि उक्त परिस्थिति 'समस्यात्मक' है। दूसरे शब्दों में 'सामाजिक समस्या' वैयक्तिक अथवा सामूहिक विघटन की वह परिस्थिति है जिसमें स्वीकृत मूल्यो और व्यवहार प्रतिमानो का विरोध नए मूल्यों और व्यवहार प्रतिमानो द्वारा उत्पन्न होता है और उस विरोध के निवारण के लिये समूह अथवा व्यक्ति सजग एवं सचेष्ट है और साथ ही मान्य मूल्यो और प्रतिमानो से विचलन का

मापन हो सकता है तथा समस्याओं को जन्म देनेवाले कारको का नियंत्रण और सुधार भी संभव है। यदि ये दोनो संभावनाएँ नही हैं तो परिस्थिति समस्यात्मक नही कही जा सकती।

सामाजिक समस्याएँ जीवन के प्रत्येक पक्ष से संबंधित हैं। ग्रामीण जीवन की समस्याएँ, नागरीकरण की समस्याएँ, जनसंख्या के वितरण की समस्याएँ; वैयक्तिक समस्याएँ, जैसे शारीरिक तथा मानसिक रोग; व्यवहार संबंधी समस्याएँ, जैसे अपराध, वेश्यावृत्ति, मदात्यय, पारिवारिक समस्याएँ, जैसे पारिवारिक कलह, संबंधविच्छेद, विधवा विवाह, बाल विवाह, निवास की समस्याएँ, रोजगार संबंधी समस्याएँ; और निम्न जीवनस्तर, गरीबी, सामाजिक ह्रास तथा द्वंद्व इत्यादि। इनके निवारण और उन्मूलन के लिये सामाजिक आयोजन और नियंत्रण की आवश्यकता होती है।

भारत में सामाजिक विघटन — १९वीं और २०वीं शताब्दी में समस्त संसार मे तेजी से परिवर्तन हुए हैं, परंतु २०वीं शताब्दी की मध्यावधि मे भारतवर्ष में जो परिवर्तन हुए हैं संभवत उसका दूसरा उदाहरण संसार में नही है। स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद सामाजिक भिन्नताएँ, विलक्षणताएँ, धर्म तथा जातिभेद, रीतिरिवाज का पिछड़ापन इतना सामने आया है कि अनुभव होता है, देश में एक भाषा नहीं, एक विचारपद्धति नही, एक उद्देश्य नही, एक संस्कृति नही। धर्म, जाति, वेशभूषा, भाषा, लोकसंस्कृति इतनी भिन्न हैं कि एक दूसरे के प्रति सहयोग और एकता की भावना अति दुर्लभ है। देश मे धर्म, जाति, भाषा, निवासक्षेत्र तथा वेशभूषा के आधार पर एक दूसरे के प्रति घृणा एवं अविश्वास व्यापक हैं। अशिक्षा, अंधविश्वास, बौद्धिक पिछड़ापन और भी द्वेष तथा अविश्वास को बढ़ाते हैं। सामाजिक समस्याएँ जैसे जन्म मृत्यु की उच्च दर, पौष्टिक भोजन का अभाव, अपराध, वेश्यावृत्ति, बीमारी, सामाजिक असुरक्षा इस विघटन को और भी बढ़ाते हैं।

सामाजिक विघटन में सबसे मुख्य कारक जातिव्यवस्था है। जातिव्यवस्था परंपरागत स्थायी समाज में उपयोगी संस्था थी, परंतु आज मनुष्य के विकास मे सबसे बडी बाधा है। एक जाति का दूसरी जाति के प्रति अविश्वास, एक का दूसरे के प्रति विरोध, घृणा, सभी जातिप्रथा की देन हैं। देश की एक चौथाई जनसंख्या मानवेतर जीवन व्यतीत करती है। समाज मे पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो का निम्न स्थान है। वह पुरुष की संगिनी नही वरन् दासी है। परिणामस्वरूप देश की आधी जनसंख्या तिरस्कृत, निस्सहाय और परावलंबी जीवन व्यतीत करती है।

नए समाज में नए अवसरो की प्राप्ति के लिये योग्यता का अधिकतम विकास करने के लिये शिक्षा संस्थाएँ ही एकमात्र साधन हैं। यदि यह कहा जाय कि नए समाज का आधार और हमारे नए आदर्शों की पूर्ति स्कूलो और कालेजो से होगी तो अनुचित नही है; परंतु इसमें कोई मूल परिवर्तन समय के अनुसार नही हो सका है। बढती हुई जनसंख्या ने विकास के सभी कार्यक्रमो को तथा आयोजन के सभी उपक्रमो को विफल बना दिया है। जिस गति से जनसंख्या बढ रही है उस गति से अन्न और अन्य जीविकोपयोगी साधनो का निर्माण नही हो सका है।

अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, वर्तमान जीवन के प्रति उदासीनता इत्यादि ने परिवार नियोजन के सभी प्रयासो को विफल बना दिया है। बीमारी और पौष्टिक आहार की कमी के कारण जनसंख्या की कार्यक्षमता अत्यल्प है। समाजविरोधी शक्तियाँ, तस्कर व्यापारी, अपराधी, जुआरी, शराबी भी बड़ी संख्या में क्रियाशील हैं। देश मे पुरानी प्रथाओं जैसे बाल विवाह, दहेज प्रथा, सजातीय विवाह, जेवर का शौक आदि के सिवा अन्य सामाजिक प्रथाएँ हैं जो प्रगति मे बाधक हैं।

प्राचीन सामाजिक संस्थाओं में भी परिवर्तन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। संयुक्त परिवार का नया रूप बन रहा है और संयुक्त परिवार के भग्न होने से बच्चो की देखभाल, अनाथ बच्चों और निःसहाय स्त्रियो की समस्या तथा बूढ़े लोगो की समस्याएँ बढ रही हैं। विवाह की प्राचीन मान्यताओं और दहेज जैसी प्रथाओं से भी विघटन उत्पन्न हो रहा है। भूतपूर्व अपराधी जातियो, आदिम जातियों तथा हरिजनो के समाज में असमायोजन होने से वर्गों और जातियो में संघर्ष दिखाई देता है और इससे प्राचीन जातिप्रथा संबंधी मान्यताएँ छिन्न भिन्न हो रही हैं। समाज के वर्गीकरण तथा सामाजिक स्तर के पुराने आधार तो टूट रहे हैं परंतु नई मान्यताएँ और नए आधार उनका स्थान ग्रहण नही कर रहे हैं। पिछड़े वर्गों के उद्धार और सुधार के लिये किए जा रहे प्रयास अपर्याप्त सिद्ध हो रहे हैं।

भारतीय समाज की समस्याओं का विश्लेषण सामाजिक संस्थाओं और समूहो की संरचना तथा कार्य के संबंध मे किया जा सकता है। प्राचीन समाज मे संरचना और कार्य में पारस्परिक अनुरूपता थी परंतु तीव्र सामाजिक परिवर्तन के आक्रमण से पुरानी संरचना और कार्य का तारतम्य भंग हो गया है जिसके लिये सामाजिक आयोजन, सामाजिक सुधार तथा समाजसेवा के कार्यक्रम चलाए गए हैं।

सं० ग्रं० — न्यू मेयर, एच० मार्टिन सोशल प्राब्लेम्स ऐंड चेंजिंग सोसाइटी, एलिएट, मबेल ए०, एंड सोशल डिसआर्गनाइज़ेशन, रोजेन क्विस्ट, कार्ल एम० सोशल प्राब्लेम्स, लेमावर्ट, इडविन एम० . सोशल पैथालोजी। [च० प्र० गो०]

सामाजिक संविदा (Social Contract, The) सामाजिक संविदा कहने से प्राय. दो अर्थों का बोध होता है। प्रथमत सामाजिक संविदा-विशेष, जिसके अनुसार प्राकृतिक अवस्था मे रहनेवाले कुछ व्यक्तियो ने संगठित समाज मे प्रविष्ट होने के लिये आपस मे संविदा या ठहराव किया, अत यह राज्य की उत्पत्ति का सिद्धांत है। दूसरे को सरकारी संविदा कह सकते हैं। इस संविदा या ठहराव का राज्य की उत्पत्ति से कोई संबंध नही वरन् राज्य के अस्तित्व की पूर्वकल्पना कर यह उन मान्यताओं का विवेचन करता है जिनपर उस राज्य का शासन प्रबंध चले। ऐतिहासिक विकास मे संविदा के इन दोनो रूपो का तार्किक क्रम उलट गया है। पहले सरकारी संविदा का ही उल्लेख मिलता है सामाजिक संविदा की चर्चा बाद मे ही शुरू हुई। परंतु जब संविदा के आधार पर ही समस्त राजनीतिशास्त्र का विवेचन प्रारंभ हुआ तब इन दोनो प्रकार की संविदाओं का प्रयोग किया जाने लगा — सामाजिक

संविदा का राज्य की उत्पत्ति के लिये तथा सरकारी संविदा का उसकी सरकार को नियमित करने के लिये।

यद्यपि सामाजिक संविदा का सिद्धांत अपने अंकुर रूप में सुकरात के विचारों, सोफिस्ट राजनीतिक दर्शन एवं रोमन विधान मे मिलता है तथा मैनेगोल्ड ने इसे जनता के अधिकारों के सिद्धांत से जोड़ा, तथापि इसका प्रथम विस्तृत विवेचन मध्ययुगीन राजनीतिक दर्शन मे सरकारी संविदा के रूप में प्राप्त होता है। सरकार के आधार के रूप मे संविदा का यह सिद्धांत बन गया। यह विचार न केवल मध्ययुगीन सामंती समाज के स्वभावानुकूल वरन् मध्ययुगीन ईसाई मठाधीशों के पक्ष मे भी था क्योंकि यह राजकीय सत्ता की सीमाएँ निर्धारित करने मे सहायक था। १६वीं शताब्दी के धार्मिक संघर्ष के युग में भी यह सिद्धांत बहुसंख्यकों के धर्म को आरोपित करनेवाली सरकार के प्रति अल्पसंख्यकों के विरोध के औचित्य का आधार बना। इस रूप में इसने काल्विनवाद तथा रोमनवाद दोनों अल्पसंख्यकों के उद्देश्यों की पूर्ति की। परंतु कालांतर में सरकारी संविदा के स्थान पर सामाजिक संविदा को ही हॉब्स, लॉक और रूसो द्वारा प्रश्रय प्राप्त हुआ। स्पष्टत सामाजिक संविदा मे विश्वास किए बिना सरकारी संविदा की विवेचना नहीं की जा सकती, परंतु सरकारी संविदा पर विश्वास किए बिना सामाजिक संविदा का विवेचन अवश्य संभव है। सामाजिक संविदा द्वारा निर्मित समाज शासक और शासित के बीच अंतर किए बिना, और इसीलिये उनके बीच एक अन्य संविदा की संभावना के बिना भी, स्वायत्तशासित हो सकता है। यह रूसो का सिद्धांत था। दूसरे, सामाजिक संविदा पर निर्मित समाज संरक्षक के रूप मे किसी सरकार की नियुक्ति कर सकता है जिससे यद्यपि वह कोई संविदा नहीं करता तथापि संरक्षक के नियमों के उल्लंघन पर उसे च्युत कर सकता है। यह था लॉक का सिद्धांत। अंत मे एक बार सामाजिक संविदा पर निर्मित हो जाने पर समाज अपने सभी अधिकार और शक्तियाँ किसी सर्वसत्ताधारी संप्रभु को सौंप सकता है जो समाज से कोई संविदा नहीं करता और इसीलिये किसी सरकारी संविदा की सीमाओं के अंतर्गत नहीं है। यह हॉब्स का सिद्धांत था।

सामाजिक संविदा के सिद्धांत पर आघात यद्यपि हेगेल के समय से ही प्रारंभ हो गया था तथापि डेविड ह्यूम द्वारा इसे सर्वप्रथम सर्वाधिक क्षति पहुँची। ह्यूम के अनुसार सरकार की स्थापना संमति पर नहीं, अभ्यास पर होती है, और इस प्रकार राजनीतिक कृतज्ञता का सिद्धांत संविदा के सिद्धांत के बिना भी स्पष्ट किया जा सकता है। बेन्थम ने संविदा के स्थान पर उपयोगिता को राजनीतिक कृतज्ञता का आधार बताया तथा बर्क ने विकासवादी सिद्धांत के आधार पर संविदा की आलोचना की।

सामाजिक संविदा का सिद्धांत न केवल ऐतिहासिकता की दृष्टि से अप्रमाणित है वरन् वैधानिक तथा दार्शनिक दृष्टि से भी दोषपूर्ण है। किसी संविदा के वैध होने के लिये उसे राज्य का संरक्षण एवं अवलंबन प्राप्त होना चाहिए; सामाजिक संविदा के पीछे ऐसी किसी शक्ति का उल्लेख नहीं। इसलिये यह अवैधानिक है। दूसरे, संविदा के नियम संविदा करनेवालों पर ही आरोपित होते है, उनकी संतति पर नहीं। सामाजिक संविदा के सिद्धांत का दार्शनिक आधार भी त्रुटिपूर्ण है। यह धारणा कि व्यक्ति और राज्य का संबंध व्यक्ति के आधारित स्वतंत्र संकल्प पर है, सत्य नहीं है। राज्य न तो कृत्रिम सृष्टि है और न इसकी सदस्यता ऐच्छिक है, क्योंकि व्यक्ति इच्छानुसार इसकी सदस्यता न तो प्राप्त कर सकता है और न तो त्याग ही सकता है। दूसरे, यह मानव इतिहास को प्राकृतिक तथा सामाजिक दो अवस्थाओं मे विभाजित करता है; ऐसे विभाजन का कोई तार्किक आधार नहीं है; आज की सभ्यता उतनी ही प्राकृतिक समझी जाती है जितनी प्रारंभिक काल की थी। तीसरे, यह सिद्धांत इस बात की पूर्वकल्पना करता है कि प्राकृतिक अवस्था मे रहनेवाला मनुष्य संविदा के विचार से अवगत था परंतु सामाजिक अवस्था मे न रहनेवाले के लिये सामाजिक उत्तरदायित्व की कल्पना करना संभव नहीं। यदि प्राकृतिक विधान द्वारा शासित कोई प्राकृतिक अवस्था स्वीकार कर ली जाय तो ऐसी स्थिति मे राज्य की स्थापना प्रगति की नहीं वरन् परावृत्ति की द्योतक होगी, क्योंकि प्राकृतिक विधान के स्थान पर बल पर आधारित राज्यसत्ता अपनाना प्रतिगमन ही होगा। यदि प्राकृतिक अवस्था ऐसी थी कि वह संविदा का विचार प्रदान कर सके तो यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य तब भी सामान्य हित के प्रति सचेत था; इस दृष्टि से उसे सामाजिक सत्ता तथा वैयक्तिक अधिकार के प्रति भी सचेत होना चाहिए। और तब प्राकृतिक और सामाजिक अवस्थाओं मे कोई अंतर नहीं रह जाता। अंत मे, जैसा ग्रीन ने कहा, इस सिद्धांत की प्रमुख त्रुटि इसका अनैतिहासिक होना नहीं वरन् यह है कि इसमे आधार की कल्पना उन्हें समाज से असंबद्ध करके की गई है। तार्किक ढंग पर अधिकारों का आधार समाज की संमति है; अधिकार उन्हीं लोगों के बीच संभव है जिनकी प्रवृत्तियाँ एवं अभिलाषाएँ बौद्धिक है। अतएव प्राकृतिक अधिकार अधिकार न होकर मात्र शक्तियाँ हैं।

परंतु इन सभी त्रुटियों के होते हुए भी सामाजिक संविदा का सिद्धांत सरकार को स्थायित्व प्रदान करने का एक प्रबल आधार है। यह सिद्धांत इस विचार को प्रतिष्ठापित करता है कि राज्य का आधार बल नहीं संकल्प है क्योंकि सरकार जनसंमति पर आधारित है। इस दृष्टि से यह सिद्धांत जनतंत्र की आधारशिलाओं में से एक है।

सं० ग्रं० — गफ, जे० डब्ल्यू० : दि सोशल कंट्रैक्ट, आक्सफोर्ड, १९५७; गार्यके, ओ० (अनु० — ई० बार्कर): नेचुरल ला ऐंड थियरी ऑव सोसाइटी, कैंब्रिज, १९३७; बार्कर, ई० : दि सोशल कंट्रैक्ट, आक्सफोर्ड, १९५८; लॉक, जे० : सेकेंड ट्रिटीज ऑव सिविल गवर्नमेंट, आक्सफोर्ड १९५७; रूसो, जे० जे० (अनु० — टोजर) : दि सोशल कंट्रैक्ट, लंदन, १९४८; ली०, आर० डब्ल्यू० : दि सोशल कंट्रैक्ट, आक्सफोर्ड, १८९८; : हॉब्स, टी० लेवायथन, आक्सफोर्ड, १९५७. [रा० अ०]

सामाजिक सुरक्षा (सामान्य) 'सामाजिक सुरक्षा' वाक्यांश का प्रयोग व्यापक अर्थ मे किया जाता है। अमरीकन विश्वकोश मे

इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—'सक्षेप मे सामाजिक सुरक्षा कुछ उन विशेष सरकारी योजनाओ की ओर सकेत करती है जिनका प्रारभिक लक्ष्य सभी परिवारो को कम से कम जीवननिर्वाह के साधन और शिक्षा तथा चिकित्सा की व्यवस्था करके दरिद्रता से मुक्ति दिलाना होता है।' इसका सबध आर्थिक योजनाओ से होता है। मानव जीवन मे आर्थिक सकट की घड़ियाँ प्राय आती हैं। (१) बीमारी के समय आदमी काम करके जीविका उपार्जन में असमर्थ हो जाता है। (२) बेकारी, जब किसी आकस्मिक दुर्घटना या कारण से आदमी स्थायी या अस्थायी रूप से जीविकोपार्जन से वचित हो जाता है। (३) परिवार मे रोटी कमानेवाले की मृत्यु के कारण आर्थिक सकट उत्पन्न हो जाता है। (४) बुढापे की असमर्थता भी जीविका के साधन से वचित कर देती है। इन्हीं विपत्तियो के समय आर्थिक सहायता पहुँचाना सामाजिक सुरक्षा का प्रधान लक्ष्य होता है। साधारणत समाज के अधिकाश व्यक्तियो के लिये सभव नही कि वे इन विपत्तियों से अपनी सुरक्षा की व्यवस्था स्वय कर सकें। इसलिये आवश्यक है कि इन विपत्तियो से समाज के प्रत्येक सदस्य की सुरक्षा राष्ट्रीय स्तर पर समाज द्वारा की जाय।

प्राचीन काल मे आर्थिक जीवन सरल था। जीवन में सकट भी अपेक्षाकृत कम थे। सुव्यवस्थित रूप से सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था के पूर्व भी दरिद्र और निस्सहाय लोगो को किसी न किसी प्रकार की सहायता मिलती रही। परतु उस समय इस प्रकार की सहायता दानी लोगो तथा लोकहितैषी सस्थाओ द्वारा ही दी जाती थी।

यह अपर्याप्त सिद्ध हुई और यह प्रणाली दोषपूर्ण भी थी तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी श्रेयस्कर नहीं थी। आर्थिक जीवन की सरलता समाप्त हो गई। औद्योगिक क्राति तथा बडे पैमाने पर उत्पत्ति ने पूँजीवाद को जन्म दिया जिससे आर्थिक विषमता बढ गई। काल और परिस्थिति ने पूँजीवाद के दोषो को स्पष्ट कर दिया। उत्पादन बढा, राष्ट्रीय लाभाश बढा परतु वितरण प्रणाली के दोषपूर्ण होने के कारण सभी लाभान्वित न हो सके। जन जागृति तथा असतोष की भावना ने, जिसने अपने आपको श्रम अशाति और आदोलनो मे व्यक्त किया, सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया। परिणामस्वरूप आज प्राय. सभी औद्योगिक दृष्टि से प्रगतिशील देशो मे सामाजिक सुरक्षा की योजना कार्यान्वित की जा रही है। पिछड़े और अविकसित देशों ने भी पूर्ण या आशिक रूप से इस योजना को अपनी वित्तीय नीति मे महत्वपूर्ण स्थान दिया है। सामाजिक सुरक्षा के विस्तृत क्षेत्र तथा उसके लिये आवश्यक धन की अधिकता से सभी घबडाए। परंतु फिर प्रश्न यह था कि क्या इस आवश्यक योजना को टाला जा सकता है। सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था 'सामाजिक बीमा, या सामाजिक सहायता' के रूप मे की जाती है। सामाजिक बीमा का क्षेत्र सामाजिक सहायता के क्षेत्र से अधिक व्यापक है। पूर्ण या आशिक, स्थायी या अस्थायी, शारीरिक वा मानसिक अयोग्यता, बेकारी, वैधव्य, रोटी कमानेवाले की मृत्यु, बुढापा तथा बीमारी आदि सकटो के लिये सुरक्षा सामाजिक बीमा के अतर्गत की जाती है। अस्पताल, पागलखाने, चिकित्सालय साधारण तौर पर सामाजिक सहायता के अतर्गत आते हैं।

सामाजिक सुरक्षा के सुव्यवस्थित रूप का प्रारभ जर्मनी मे हुआ। १८८१ ई० मे जर्मनी के बादशाह विलियम प्रथम ने सामाजिक बीमा की योजना तैयार करने का आदेश दिया। सन् १८८३ में कानून पास हुआ जिसके अनुसार अनिवार्य बीमारी बीमा की व्यवस्था की गई। इस योजना को बिसमार्क का भी समर्थन प्राप्त हुआ। १८८६ मे बीमारी बीमा के क्षेत्र को और व्यापक बनाकर अस्थायी अयोग्यता के लिये भी बीमा की व्यवस्था की गई। आस्ट्रिया और हगरी ने भी इसका अनुकरण किया।

बीसवी शताब्दी का प्रारभ 'सामाजिक सुरक्षा' के इतिहास मे विशेष महत्व रखता है। इस काल मे ससार के विभिन्न देशों ने बृहत् योजनाओ को कार्यान्वित किया। 'निक्षेपवादी नीति' के दोष स्पष्ट होने लगे थे। सरकार की इस नीति के कारण औद्योगिक श्रमिको को काफी यातना सहनी पडी थी। एतदर्थ इस नीति को त्यागना और श्रमिको के लिये, आवश्यक सुरक्षा की व्यवस्था सरकारो का लक्ष्य बन गई। 'अतरराष्ट्रीय श्रम सगठन, (इटरनेशनल लेबर आर्गनाइजेशन) ने भी सामाजिक सुरक्षा के प्रसार मे योगदान किया। १९१९ से इस सस्था के अधिवेशनो मे इस सबध मे प्रस्ताव पास होते रहे, जिनका समावेश विभिन्न राष्ट्रो ने अपनी नीति मे किया। श्रमिको को क्षतिपूर्ति, बुढ़ापे की पेंशन, बेकारी, चिकित्सा, तथा मेटरनिटी लाभ के लिये बीमा की व्यवस्था करने की नीति सदस्य देशो ने अपनाई। द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न वातावरण ने इस आदोलन को बढावा दिया। सभी प्रगतिशील देशो ने 'सामाजिक सुरक्षा' प्रदान करने की आवश्यकता का अनुभव किया। आस्ट्रेलिया, कैनाडा, न्यूजीलैंड, अमरीका, आदि ने बृहत् योजनाओ को कार्य रूप दिया।

सामाजिक सुरक्षा के इतिहास मे सर विलियम बेवेरिज का नाम चिरस्मरणीय रहेगा 'सामाजिक सुरक्षा एव अन्य सामाजिक सेवाओ' के लिये स्थापित अतर्विभाग समिति के अध्यक्ष के रूप मे बेवेरिज ने १९४२ ई० मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इन्होने सभी ब्रिटिश नागरिको के लिये "जन्म से मृत्यु तक" सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था की सिफारिश की। पार्लिमेंट ने इन सिफारिशो को कार्यान्वित करने के लिये कई अधिनियम पास किए। बेवरिज योजना इगलैंड ही नही बल्कि अन्य देशो मे भी "सामाजिक सुरक्षा" की योजना का आधार बनी रहेगी।

बेवरिज योजना का प्रभाव भारत पर भी पडा। जबकि अन्य प्रगतिशील देशों ने इस दिशा में काफी प्रगति कर ली थी, भारत में 'सुरक्षा' का प्रश्न केवल चिंतन का ही विषय बना रहा। श्रम संबंधी शाही आयोग ने भी इसकी उपेक्षा की। औद्योगिक समाज के दोष भारत में स्पष्ट हुए और इन्होने अपने आपको श्रम अशाति और श्रम आदोलनों में व्यक्त किया। साम्यवाद के बढते प्रभाव और प्रति दिन होनेवाले श्रम सघर्षों की उपेक्षा राष्ट्रीय सरकार न कर सकी। भारत के सामने एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का लक्ष्य था। श्रमिक वर्ग के हित की दृष्टि से ही नही बल्कि सामाजिक

दृष्टिकोण से भी 'सामाजिक सुरक्षा' की व्यवस्था आवश्यक समझी जाने लगी। भारत सरकार ने इस दिशा में कई ठोस और सही कदम उठाए।

इगलैड एक जाग्रत देश है और १५४७ मे वहाँ पर सबसे पहला कानून दरिद्रसहायता के सबध मे पास हुआ। उस समय से लेकर १६२६ तक कितने ही कानून इस संबंध में बने। अनिवार्य राज्य बेकारी बीमा का प्रारभ अशवादी सिद्धातो के आधार पर १६११ में हुआ। १६२० में इस योजना के क्षेत्र को व्यापक बनाकर २५० पौ० प्रति वर्ष से कम आय वाले सभी श्रमिकों को इससे लाभ पहुँचाने की व्यवस्था की गई। १६३६ में कृषि उद्योग मे लगे हुए श्रमिको को भी इसके अंतर्गत लाया गया। स्वास्थ्य बीमा योजना भी १६११ में लागू की गई। १६०८ के ऐक्ट के अनुसार बुढापे में पेशन की व्यवस्था की गई। आश्रितो के लिये पेंशन की व्यवस्था की योजना १६२५ से लागू है। इगलैड के १६०६ के श्रमिक क्षतिपूर्ति ऐक्ट के अनुसार क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की गई। सामाजिक सुरक्षा की वृहत् योजना का प्रारभ बेवरिज से होता है। बेवरिज ने पूरी जनसंख्या को छह श्रेणियो मे बाँट दिया और इन श्रेणियो को इतना व्यापक रूप दिया कि सभी नागरिक बेवरिज् योजना के क्षेत्र के अंतर्गत आगए। त्रिदलीय अनुदान द्वारा कोषनिर्माण की व्यवस्था की गई। बेवरिज्-योजना के ही आधार पर ब्रिटिश पार्लिमेंट ने पाँच महत्वपूर्ण ऐक्ट पास किए है। इन कानूनो के द्वारा सभी नागरिक जीवन के प्रमुख सकटो से सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक संस्थाओं द्वारा सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था की जाती है। ऐसी सस्थाएँ इंगलैड में हजारो की सख्या मे हैं, वास्तव में रूस को छोडकर इंगलैड ही ऐसा देश है जहाँ की सरकार और सामाजिक संस्थाएँ अपने उत्तर-दायित्व के प्रति पूर्ण जागरूक हैं। अमरीका में सबसे पहले सामाजिक सुरक्षा ऐक्ट अमरीकन काग्रेस ने १६३५ में पास किया, जिसके अनुसार अशदायी कोष द्वारा सामाजिक बीमा की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त सामाजिक सहायता की भी व्यवस्था है।

[उ० ना० पां०]

सामाजिक सुरक्षा (भारत मे) एक सीमित अर्थ मे भारत में सामाजिक सुरक्षा का आरभ श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम (१६२३) तथा विभिन्न मातृत्व हितकारी अधिनियमो से माना जा सकता है जो पहले के प्रातो में तथा रियासतो में पारित हुए थे। किंतु इन वैधानिक नियमो का विकास मालिको की देयता (employer's liability) के आधार पर हुआ था, और इस प्रकार वे सामाजिक सुरक्षा के सिद्धातो से असगत थे। श्रमिको को व्यापक सुरक्षा प्रदान करने मे वे विफल रहे। मजदूर की क्षतिपूर्ति का तरीका सिद्धाततः गलत था और वह उन लोगो के लिये हानिकारक था जिनके हितसाधन के लिये उसका निर्माण हुआ था। इस प्रणाली में औद्योगिक और पुन स्थापन की सेवाओ की कही गुंजायश नही थी, न है, जबकि क्षतिपूर्ति की किसी योजना का यह एक महत्वपूर्ण अश होना चाहिए। जो हो, भारत में 'स्वास्थ्य बीमा' को हम सामाजिक सुरक्षा योजना का प्रथम रूप मान सकते हैं।

देश मे बीमा योजना का प्रश्न पहले पहल १६२७ मे उन अनुबधों (convention) के संबंध में उठाया गया था जिन्हें अंतरराष्ट्रीय श्रम कार्फ्रेंस ने अपने १०वें अधिवेशन मे उद्योग, वाणिज्य, और कृषि मे मजदूरो के स्वास्थ्य बीमा के लिये स्वीकार किया था। भारत सरकार जिस परिणाम पर पहुँची थी वह यह था कि यह परंपरा भारतीय मजदूर के एक जगह से दूसरी जगह जानेवाले स्वभाव के कारण साध्य नही है। बाद में श्रम के सबध मे स्थापित शाही आयोग (१६३१) ने भी इस बात की पुन समीक्षा की और बीमारी के बीमे की किसी योजना के लागू करने मे कठिनाइयों का अनुभव किया। फिर भी आयोग ने एक संस्था के आधार पर परीक्षा के लिये अंतरिम योजना को तब तक लागू करने की सिफारिश की, जब तक अंतिम और व्यापक योजना की रूपरेखा न बन जाए। इस योजना का मुख्य उद्देश्य नकद लाभ से चिकित्सा को अलग करना था।

यह प्रश्न श्रममंत्रियो की पहली, दूसरी और तीसरी कांफ्रेंसों मे क्रमश १६४०,१६४१ तथा १६४२ मे फिर उठाया गया। श्रममंत्रियो की तीसरी कार्फ्रेंस मे सरकार ने परीक्षण के लिये एक योजना का आरंभ किया। यह योजना कार्फ्रेंस मे विचार विमर्श के लिये रखी गई थी। अत. यह निश्चय हुआ कि एक विशेषाधिकारी नियुक्त किया जाय और वह प्रातीय सरकारो से तथा मालिक और मजदूरों का प्रतिनिधित्व करनेवाले सलाहकारो के एक मंडल से सलाह ले। इस प्रकार मार्च, १६४३ मे 'भारत में औद्योगिक कर्मचारियो के स्वास्थ्य बीमा' की संपूर्ण योजना के विवरण का कार्यान्वियन करने के लिये प्रो० अडारकर नियुक्त हुए। तदनुसार अडारकर ने उद्योगो के तीन प्रमुख वर्गो, अर्थात् कपड़ा, इजीनियरिंग और खनिज उद्योगो मे काम करनेवाले मजदूरो के रोगबीमा के विभिन्न पहलुओ के विषय मे गंभीर अन्वेषण किए।

प्रो० अडारकर की रोगबीमा योजना का क्षेत्र यद्यपि सीमित था, फिर भी उसने कर्मचारी राज्य बीमा ऐक्ट, १६४८ के लिये मार्ग प्रशस्त किया। इस अधिनियम (ऐक्ट) मे अडारकर योजना मे उल्लिखित मुख्य सिद्धात समन्वित हैं यथा, अनिवार्य अंशदान जो बीमाक के हिसाब से संतुलित और व्यवहार में नमनशील हो; तथापि कर्मचारी राज्य बीमा ऐक्ट १६४८ अडारकर योजना द्वारा स्वीकृत दो बुनियादी दृष्टिकोणों से अपर्याप्त है; अर्थात् एक ओर तो ऐक्ट ऐसे किसी न्यायतत्र की व्यवस्था नही करता जो नकद और चिकित्सालाभ संबंधी झगडो का निपटारा करे, और दूसरी ओर ऐक्ट औद्योगिक कर्मचारियो की रुग्णशीलता के आयाम का ध्यान नही रखता। परिणामत उसमे वित्तीय दृष्टि से कमी रह जाती है जिससे ऐक्ट के अंतर्गत बीमा किए हुए कुछ कर्मचारियो को ही लाभ मिल पाता है और जो मिलता है, वह भी अपर्याप्त होता है।

हमे अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन से और ब्रिटिश संयुक्त राज्य (U. K.) तथा अमरीका (U S. A.) मे सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र मे हुए विकास से बहुत अधिक लाभ पहुँचा है, विशेषतः ब्रिटिश संयुक्त राज्य मे सामाजिक बीमा तथा संबधित सेवाओं में (Social Insu-

rance and Allied Services in the U K) संबंधी बेवरिज रिपोर्ट के प्रकाशन से तथा उन प्रस्तावो से जो अंतर अमरीकी सामाजिक बीमा सहिता (Inter American Social Insurance) के आधार पर स्वीकार किए गए थे ।

बेवरिज योजना की परिकल्पना सयुक्त राज्य मे दूसरे विश्वयुद्ध के बाद सामाजिक बीमा के वर्तमान नियमो को समाविष्ट कर उन्हें पुनर्गठित करने की थी । इस परिकल्पना की प्रमुख विशिष्टता सामाजिक सुरक्षा की समस्या को समग्र रूप से मान्य ठहराने मे है, न कि अशो मे। परिकल्पना समाज के सामने एक आदश रखती है जिससे मनुष्य अभाव और पारिवारिक विपत्ति के भय से मुक्त होकर जीवन यापन कर सके ।

वर्तमान शताब्दी के आरभ से औद्योगीकरण मे अग्रसर होते हुए भी भारत श्रमिको की सामाजिक सुरक्षा के स्तर मे पिछडा हुआ है । समर्थ श्रमिको को सबसे अधिक जिस महत्वपूर्ण सुरक्षा की आवश्यकता है वह आय के कम हो जाने और बेरोजगारी से बचाव की है ।

आजकल औद्योगिक विवाद (संशोधन) ऐक्ट १९५६ को छोडकर कोई ऐसा विधान नही है जो रोजगार बद हो जाने के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता हो। औद्योगिक विवाद ऐक्ट (सशोधन) की धारा २५, उपधारा FFF भी मालिको को किसी व्यवसाय को अल्पकालीन या नियमित और स्थायी निर्धारित करने के मनमाने अधिकार दे देती है ।

१९६१ की श्रम कान्फ्रेंस में इस असगति को दूर करने का प्रयत्न किया गया । जनकल्याण की राज्य के सदर्भ मे, जिसे स्थापित करने का राष्ट्र का लक्ष्य है और बेरोजगारी के विरुद्ध सुरक्षा के सबध मे जिसके लिये सवैधानिक नियम हैं, जो प्रगति हुई है वह चिंतनीय है । भारतीय सविधान के अनुच्छेद ४१ में उल्लिखित है . "काम करने के अधिकार, वृद्धावस्था, रोग, अगहानि, तथा अभाव की अन्य अनुपयुक्त स्थितियो मे राज्य अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओ के अंतर्गत प्रभावपूर्ण व्यवस्था करेगा ।" पूर्वोल्लिखित निदेशक सिद्धात मे घोषित आदर्श की प्राप्ति में भारत की आर्थिक उन्नति औद्योगिक रूप से विकसित पश्चिम के देशो द्वारा उपलब्ध अवस्थाओ तक सन्निहित है । परिणामत , वर्तमान अवस्था मे, सामाजिक सुरक्षा की बहुत कुछ सरल तथा ऐसी योजना की आशा करना युक्तिसगत होगा जो जीवनाकलीय और वित्तीय दृष्टि से उन देशो के बराबर हो जो आर्थिक विकास की उन अवस्थाओ से ही गुजर रहे हो जिनके लिये भारत प्रयत्नशील है ।

अतरराष्ट्रीय श्रम सगठन के तत्वावधान में सामाजिक सुरक्षा के व्यय के हाल (१९४९-१९५७) के अध्ययन में सामाजिक सुरक्षा की विभिन्न योजनाओ के कुल आय व्यय को सदस्य राज्यो की राष्ट्रीय आय से परस्पर सबधित किया गया । हमारे समक्ष जो मौजूदा उद्देश्य है उसके लिये हमे चीन से तुलना करनी चाहिए, क्योकि भारत और कम्युनिस्ट चीन दोनो की अर्थव्यवस्थाएँ उन्नति की ओर प्रयत्नशील हैं और दोनो राष्ट्रीय योजनाओ के अधीन कार्य कर रहे हैं। १९५६-५७ में भारत मे सामाजिक सुरक्षा के कुल आय व्यय राष्ट्रीय आय के १ २ और १ ० प्रति शत हैं, विवेचित वर्ष में चीन की राष्ट्रीय आय के क्रमिक अंक ० ९ और ० ८ हैं। भारत और चीन के बीच सामाजिक सुरक्षा का तुलनात्मक वित्तीय मूल्याकन एक शुभ लक्षण है, किंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि भारत की तुलना में चीन की अर्थव्यवस्था विभिन्न सास्थागत परिस्थिति में कार्य कर रही है और उस निधि से जो लोकसहायता की योजनाओं के अतर्गत लोककार्य के लिये निर्धारित हैं—जो कि अर्थव्यवस्था में मुख्यत रोजगारी शक्ति उत्पन्न करने में लगाई जाती है। सभवत वे सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र मे नहीं आते ।

भारत में प्रवर्तित सामाजिक सुरक्षा के कार्यों के स्तर और सीमा से सतोष की कम ही गुजायश है, क्योकि इस क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करने को है, विशेष रूप से रोजगार बीमा की प्रभावशाली योजनाओ को प्रचलित करने के लिये ।

इस प्रकार भारत में योजना बनानेवालो के आगे बेरोजगारी एक स्थायी चुनौती है, क्योकि कर्मचारियो और समाज के दृष्टिकोण से बेरोजगारी की लागत पर विचार करने से सही हालत प्रकट नही होती । निस्सदेह हानि के रूप मे बेरोजगारी मालिको के लिये उतना चिंता का विषय नही है जितना मजदूरो और सारे समाज के लिये है। जनशक्ति की बर्बादी के रूप में बेरोजगारी और अर्थव्यवस्था का शिथिल विकास साथ साथ चलते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि देश में पचवर्षीय योजनाओ के लागू होने के समय से चिंतनीय रूप से बढ़ती हुई बेरोजगारी की बुराई को दूर करने के लिये उपयुक्त उपाय किए जायँ ।

दूसरी पचवर्षीय योजना के आरभ में बेरोजगार लोगो की सख्या ५३ लाख कूती गई थी, दूसरी योजना के अत तक यह ९० लाख स्थिर की गई । कहा जाता है, तीसरी योजना में इस भार मे कोई महत्वपूर्ण वृद्धि नही होगी, किंतु तीसरी योजना मे सभावित रोजगार के साधनो के अनुसार १ करोड ४० लाख अतिरिक्त लोगो को रोजगार दिया जायगा, जबकि नमूने के तौर पर किए गए सर्वेक्षण (National sample survey) के अनुमान के अनुसार रोजगार चाहनेवालो में नए लोगो की संख्या एक करोड सत्तर लाख होगी । इस प्रकार तीस लाख बेरोजगार रह ही जाएँगे। परिणामत तीसरी योजना के अत में बेरोजगारी का कुल भार एक करोड बीस लाख तक होने की सभावना है। भारत में सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र मे क्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम (Workmen's compensation Act) तथा मातृत्व सबधी विभिन्न अधिनियम (maternity Act) अशत किए गए विधान थे । इस दिशा मे पहला ठोस कदम सन् १९४८ में कर्मचारी राज्य बीमा ऐक्ट बनाकर उठाया गया, जिसके अनुसार बीमारी, प्रसव और काम करते हुए चोट लगना, इन तीन जोखिमो से औद्योगिक कर्मचारियो की रक्षा की व्यवस्था की गई। किंतु जैसा कि ऐक्ट आजकल है वह व्यापकता में सीमित है और उसे विभिन्न दिशाओ मे बहुत विस्तृत करने की आवश्यकता है, जैसे प्रशासन का विकेंद्रीकरण, ऐक्ट से सलग्न सामाजिक सुरक्षा से सबधित विभिन्न कार्यकारी योजनाओ का एकीकरण और कर्मचारियो को दिए जानेवाले

ंद और चिकित्सकीय लाभ की अपर्याप्तता। जो हो, कर्मचारियो ा राज्य बीमा ऐक्ट भारत मे आरंभ किया एक साहसिक कार्य माना ाता है। यह ऐक्ट कर्मचारियो को, सामान्य जोखिम से बचाव कर, ाभ पहुँचाता है, जो अभी तक दक्षिण पूर्वी एशिया के अन्य देशों मे स स्तर पर नही हुआ है। अलग अलग देशो मे राष्ट्रीय आय के तर के संबंध मे निर्देशित विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाओ, औद्योगी-रण की अवस्था, प्रशासकीय कर्मचारियो की सुलभता आदि के ारण सामाजिक सुरक्षा के प्रतिरूप मे समानता, विस्तार और स्तर ो बनाए रखना कठिन है। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशो मे सामा-जिक ढांचो मे, अर्थव्यवस्थाओ में और राजनीतिक संस्थाओ मे भिन्न होने के कारण आवश्यक सामाजिक सुरक्षा की प्रकृति तथा ात्रा मे अंतर हो जाता है। परिणामतः सामाजिक सुरक्षा की विशिष्ट योजनाओ को जो तत्संबंधी महत्व दिया जाता है वह देश श मे अलग अलग होता है। किंतु अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा निर्धारित सामाजिक सुरक्षा के प्रतिमान सामाजिक बीमा के मानदंड ी व्यवस्था करते हैं, जिन्हे सदस्य देश पूरा करने का प्रयत्न करते हैं।

इस समय राज्य कर्मचारी बीमा ऐक्ट प्राय देश भर में लागू है। इस योजना के अंतर्गत राज्य कर्मचारी बीमा कार्पोरेशन के द्वारा १९५९-६० मे लगभग १७ लाख औद्योगिक कार्यकर्ताओ और लगभग ५ लाख परिवारिक इकाइयो ने लाभ उठाया। यह अनुमान किया जाता है कि तीसरी योजना के अंत तक इस ऐक्ट के अंतर्गत ३० लाख कर्मचारियो को लाभ सुलभ होगा और यह उन केंद्रो मे लागू कर दिया जायगा जहाँ पांच सौ या उससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं। इसके अतिरिक्त, राज्य कर्मचारी बीमा योजना के अंतर्गत भी कर्मचारी क्षतिपूर्ति ऐक्ट के अधीन लगा दिए जाते हैं। फिर भी, इसके उन औद्योगिक कर्मचारियो पर ही लागू होने के कारण जो स्थायी कारखानो में काम करते हैं, यह ऐक्ट बहुत सीमित है, और उन सब कर्मचारियो पर लागू होता है जो ४०० रु० प्रति मास से अधिक पारिश्रमिक नही पाते। स्पष्टतः इस ऐक्ट का क्षेत्र सारे देश की श्रमिक जनसंख्या के एक अंश का ही प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी बात, यद्यपि बीमा किए कर्मचारी के परिवार को चिकित्सा के लाभ के विस्तार के विषय मे विचार किया जा रहा है और सर-कार उस ओर पूरा ध्यान दे रही है, तथापि, उसकी प्राप्ति के ढंग और अवधि में सुधार होने में समय लग सकता है। तीसरी बात, सामाजिक सुरक्षा से संबंधित अन्य विधानो के एकीकरण और समरूप करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। ये विधान हैं, मातृत्व हितकारी विभिन्न ऐक्ट, कर्मचारियो का प्रावीडेंट फंड ऐक्ट १९५२, औद्योगिक कर्मचारी (स्थायी आदेश) ऐक्ट १९४६ और विवाद (संशोधन) ऐक्ट १९५३, (धारा २५), साथ मे कर्मचारी राज्य बीमा ऐक्ट। यह इसलिये आवश्यक है कि एक सरल सर्वोप-योगी सामाजिक सुरक्षा योजना की व्यवस्था हो सके, जिससे वर्तमान प्रशासकीय व्यय कम होने की और कर्मचारियो के लिये एक सुसंगत संस्थागत व्यवस्था सुलभ होने की संभावना है।

यह कहने की आवश्यकता नही है कि एकरूप सामाजिक सुरक्षा योजना की संभाव्यता बुनियादी तौर पर सुलभ साधनो की सीमा पर निर्भर करती है; किंतु उसके कार्यान्वियन के लिये साधन खोजना ही चाहिए। पिछली एक दशाब्दी मे औद्योगिक उत्पादन में अच्छी खासी वृद्धि हुई है। इसलिये उन मजदूरों को, जो अधिक उत्पादन के स्तर के लिये उत्तरदायी हैं, जोखिम से रक्षा के उपयुक्त साधनो के रूप में न्याय्य भाग मिलना चाहिए। ये जोखिम हैं: अपाहिज हो जाना, रोजगार छूट जाना, बीमारी और बुढ़ापा। कर्मचारी राज्य बीमा ऐक्ट १९४८ के अंतर्गत चिकित्सा संबंधी व्यवस्था का विस्तार होना चाहिए विशेषतः उन बीमार कर्मचारियो की चिकित्सा के संबंध मे परिवर्तन होना चाहिए जो चिकित्सालयो से घर दवा ले जाते हैं। 'तालिका' (Panel) प्रणाली में कर्मचारियो को बड़ी असुविधा होती है, क्योंकि यह प्राय देखा गया है कि समय पर सहायता नहीं मिलती। हर प्रकार से विचार करने पर यह आवश्यक है कि 'सेवा प्रणाली' (Service System) को प्रोत्साहन दिया जाय और जहाँ संभव हो 'तालिका प्रणाली' समाप्त कर दी जाय।

यहाँ वृद्धावस्था के लिये व्यवस्था के संबंध में कुछ कहना आवश्यक है। कर्मचारी के लिये वृद्धावस्था निरंतर चिंता का विषय बनी रहती है, जब तक वह अपने को इस बात के लिये सुरक्षित न समझ ले कि वह काम में लगे रहने पर जिस प्रकार रहता था उसी स्थिति में अपना जीवन कायम रख सकेगा। सेवानिवृत्त कर देने की योजना मे मुख्यतः पेंशन, प्राविडेंट फंड तथा सेवापारितोषिक (gratuity) या अनुग्रहधन की व्यवस्था है। सेवानिवृत्ति अनुदानो का स्वरूप और उनका मान (Scale) कर्मचारी की सेवा अवधि और सेवानिवृत्ति होने के समय के पारिश्रमिक स्तर के अनुसार होता है।

आजकल भारत मे औद्योगिक कर्मचारियो के लिये कर्मचारी प्राविडेंट फंड ऐक्ट १९५२ के अंतर्गत प्राविडेंट फंड स्वीकार किया जाता है। अपनी प्रारंभिक अवस्था मे यह अधिनियम इन छह प्रमुख उद्योगो पर लागू किया गया था बशर्ते इनमे ५० या अधिक कार्यकर्ता हो—कपड़ा, लोहा और इस्पात, सीमेंट, इंजीनियरिंग, कागज और सिगरेट। १९६१ मे ऐक्ट का विस्तार ५८ उद्योगो तक हो गया योजना के अंतर्गत कर्मचारियो की संख्या की सीमा भी कम करके ५० से २० कर दी गई। अनेक उद्योगो मे अनुग्रहधन की विभिन्न योजनाएँ विद्यमान हैं—इसी से सेवापारितोषिक की राशि मे समानता लाने के लिये एक विधेयक बनाया गया है। यह विभिन्न उद्योगो में संलग्न, समान ढंग के काम करनेवाले कर्मचारियों को ग्रेचुइटी निश्चित करने की रीति में वर्तमान असमानता दूर कर देगा।

सामान्यतः श्रम संघटनो द्वारा प्राविडेंट फंड ऐक्ट १९५२ के अंतर्गत प्राविडेंट फंड के अनुदान की वर्तमान दर ६¼ प्रतिशत का इस बिना पर विरोध किया जाता है कि निर्वाह खर्च के लगातार बढते रहने के कारण वह अपर्याप्त है। प्राविडेंट फंड ऐक्ट १९५२ के अंतर्गत अंशदान बढाने के अतिरिक्त केंद्रीय श्रम संगठन ने यह माँग भी की है कि तीनो लाभ अर्थात् रोग, प्राविडेंट फंड और

अनुग्रह घन की व्यवस्था के लिये एक विस्तृत योजना बनाई जाय। १९५७ में सामाजिक सुरक्षा के लिये एक अध्ययन मंडल स्थापित हुआ था और उसने सामाजिक सुरक्षा के वर्तमान नियमो मे पुन संशोधन करने तथा सामाजिक सुरक्षा की व्यापक योजना के लिये सिफारिशें पेश की। मडल ने प्राविडेंट फंड की मालिक और कर्मचारी दोनो की रकम ६¼ प्रतिशत से ८⅓ पतिशत बढाने की संस्तुति भी की है। इडियन नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस ने इस मत का समर्थन किया है, किंतु मालिक लोग उद्योगो की सीमित क्षमता के आधार पर इस वृद्धि का विरोध कर रहे हैं। सरकार ने सिद्धात रूप से इस दर को बढाना स्वीकार कर लिया है। किंतु सरकार ने मालिको द्वारा उठाई आपत्ति की उपयुक्तता की परीक्षा और मूल्याकन करने के लिये एक टेक्निकल कमेटी स्थापित कर दी है'। अध्ययन मडल ने मौजूदा प्राविडेंट फड को पेंशन-सह-ग्रेचुइटी योजना में परिवर्तित करने का परामर्श दिया है जिससे कर्मचारी राज्य बीमा योजना और प्राविडेंट फड योजना के अंतर्गत देय अश की दर बढ जायगी। श्रम सगठन इस बात पर अधिक जोर दे रहे हैं कि इस प्रकार की समिलित योजना चालू करने के पूर्व यह अधिक उपयुक्त होगा कि कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अ तर्गत चिकित्सा के लाभ बीमा किए कर्मचारियो के परिवारो को भी दिए जायें।

इस प्रकार भारत में सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्थाओ का आरंभ आशाजनक कहा जा सकता है, किंतु भावी प्रगति निश्चय ही इस बात पर निर्भर करती है कि सामाजिक न्याय की उपलब्धि के प्रति अभिमुख सामाजिक नीति को सामाजिक सुरक्षा का सजीव तत्व मान कर उसे प्राथमिकता दी जाय। किंतु, यदि आर्थिक विकास की वर्तमान प्रवृत्ति तथा सामाजिक निदेशन भावी आर्थिक व्यवस्था के किसी प्रकार पूर्वसूचक हैं तो इसकी न्यायत प्रत्याशा की जा सकती है कि रोग अथवा वृद्धावस्था के विरुद्ध सभी उद्योगो के कर्मचारियो को चौथी योजना के अ त, अर्थात् १९७१ तक, सुरक्षा प्रशासित कर दी जायगी, चाहे वह मौसमी या नियमित किसी भी प्रकार का उद्योग क्यो न हो। खेती में लगे मजदूरो के लिये रोग बीमा का लागू किया जाना निकट भविष्य में सदेहात्मक लगता है, विशेषत' उन श्रमिको के लिये जिनके पास कोई भूमि नहीं है। आय की सुरक्षा की व्यवस्था का देश के सामाजिक और आर्थिक विकास की किसी भी योजना मे प्रमुख स्थान है। किसी भी विस्तृत सामाजिक बीमा योजना के लागू करने मे प्रतिबधक तत्व सामान्यत 'उद्योग की क्षमता' माना जाता है। प्रथमत सामाजिक सुरक्षा योजना के लेखकीय और हिसाबी पक्षो की त्रिदलीय स्थायी बोर्ड द्वारा समीक्षा होनी चाहिए। यह बोर्ड मजदूरो, मालिको और सरकार के हितो का प्रतिनिधित्व करेंगे, विशेषत राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर बनी उत्पादन परिषदो के सहयोग से।

विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजनाओ की वित्तीय क्षमता के मामलो मे कुशल परामर्श राष्ट्रीय उत्पादन काउसिल, नई दिल्ली से लेना चाहिए। सामाजिक सुरक्षा के मामलो में वित्तीय तथा लेखकीय विवरणो की जाँच राष्ट्रीय उत्पादन काउसिल के पाँच निदेशालयो द्वारा होनी चाहिए। यह निदेशालय महत्वपूर्ण केंद्रो, बबई, मद्रास, कलकत्ता, बंगलौर और कानपुर मे स्थापित किए गए हैं, राष्ट्रीय उत्पादन काउसिल द्वारा अनुमोदित तथा क्षेत्रीय निदेशालय द्वारा परीक्षित और मूल्याकित जो प्रस्तावित योजनाएँ हों उनका सपादन और कार्यान्वयन मौजूदा तैंतालीस स्थानीय उत्पादक काउसिलों के माध्यम से होना चाहिए जो देश मे उद्योग के स्थान और विभाजन के अनुरूप स्थापित की गई हैं।

गठित बोर्डों को चाहिए कि वे समय समय पर व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना के विभिन्न कार्यक्षेत्रो मे हुई प्रगति की जाँच करे। यह जाँच सामाजिक सुरक्षा अध्ययन मडल (१९५८) की सिफारिशो के अनुसार उन परिस्थितियो को दृष्टिगत रखते हुए होगी जो किसी उपयोग या सस्थान विशेष में विद्यमान हो। जब तक सामाजिक सुरक्षा की व्यापक योजना तैयार नही हो जाती तब तक सामाजिक सुरक्षा करनेवाले परपरागत साधनो, अर्थात् संमिलित या विस्तृत परिवार, ग्राम पचायतो (समितियो) और हाल के सहकारी सगठनो और सामुदायिक खडो को उन शारीरिक रूप से अक्षम, वृद्ध लोगो और बच्चों की सहायता का मुख्य स्रोत बना रहना चाहिए जो आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त हो। इसके अतिरिक्त स्थानीय निकायों को सामाजिक सहायता करनेवाली योजनाओ को, किसी न किसी रूप में, सक्रिय सहयोग देना चाहिए और समाज के उस अंग को आर्थिक सहायता देने की दृष्टि से सहायता कोष की स्थापना में समिलित प्रयत्न करना चाहिए जो पारस्परिक सहायता के बिना व्यक्तिगत रूप से आर्थिक अडचनो का सामना करने में असमर्थ हैं।

[डो० पी० गु० तथा जे० एस० स०]

सामार द्वीप (Samar Island) सामार द्वीप फिलीपाइन समुद्र में स्थित है। क्षेत्रफल ५३०९ वर्गमील तथा जनसख्या ५,४६,३०६ है। इसका समुद्री तट असमान एवं कटा है। यहाँ की नदियाँ छोटी तथा तीव्रगामिनी हैं। यहाँ का जलवायु स्वास्थ्यप्रद है किंतु प्रशात महासागर के तूफानो के समुख पडने के कारण जलवायु भिन्न हो जाता है। प्रत्येक भाग में कृषि नही होती। चरागाही एवं लकडी का व्यवसाय किया जाता है। चावल, नारियल एव अबाका (abaca) उत्पन्न होता है। हरमानी (Hermani) नामक स्थान पर लोहे की खानें पाई जाती हैं। यहाँ के मुख्य निवासी विसायस (Visayans), बीकोज (Bikoes) तथा टागालोस (Tagalos) हैं। मुख्य नगर काटाबालोगन, बासेय, काटबायोग, ग्वीनान, तथा बोरोन्गान हैं।

सर्वप्रथम सन् १५२१ मे स्पेन निवासियो ने इसकी खोज की। सन् १९२० में यहाँ स्वशासन स्थापित हुआ। सन् १९४२ मे यह जापान के अधीन था तथा सन् १९४४ मे पुन अमरीका के अधीन हो गया। [भू० का० रा०]

सामीप्य सिद्धांत (Cypress doctrine) धार्मिक न्यास (trust) की एक विशेषता यह है कि यदि वसीयत (will) करनेवाले ने अपने विल में दान के निमित्त पूर्ण एव निश्चित इच्छा प्रकट की है, अथवा विल मे कथित विवरणो से न्यायालय इस

निष्कर्ष पर पहुँचता है कि विल करनेवाले (testator) ने दानार्थ अपनी सपत्ति दी है, तो न्यायालय दान को व्यर्थ नही होने देगा। देखिए, मिल्स बनाम फार्मर (१८१५), १ मर, ५५, ९५ अर्थात् विल में दानार्थ दी गई सपत्ति को न्यायालय दान के निमित्त ही यथासंभव खर्च होने का आदेश देगा। यदि विल मे कथित दान के लक्ष्य का अस्तित्व भी कभी नही रहा हो, तथापि न्यायालय एक दातव्य योजना तैयार कराकर विल करनेवाले की इच्छा की पूर्ति होने देगा। देखिए, रि नॉक्स (१९३७) ७, चांसरी १०९।

किंतु सामीप्य सिद्धांत के लागू होने के लिये दान का लक्ष्य निर्विवाद होना आवश्यक है। धन की कोई राशि दान या देशभक्ति के लक्ष्य में लगाने पर, दान व्यर्थ हो जायगा क्योकि इससे दान के निमित्त दाता की एकात भावना प्रगट नही होती। देशभक्ति दान की परिभाषा से बाहर है। ऐसी स्थिति में दान के निमित्त निर्दिष्ट राशि संपदा (estate) के अवशेष में आ जायगी एवं विल के अनुसार 'अवशेष' (residue) के उत्तराधिकारी इस राशि के भोक्ता होंगे। किंतु यदि कोई राशि दान या परोपकार के लिये दी गई हो, तो दान व्यर्थ नही होगा, क्योंकि दान और परोपकार के लक्ष्य मे विषमता नही मानी जाती है। यदि विल करनेवाला (testator) दातव्य तथा अदातव्य (uncharitable) लक्ष्यो के बीच संपत्ति का विभाजन न कर सका हो तो न्यायालय उक्त रकम को दोनो लक्ष्यो के बीच समान भाग में बाँट देगा।

'सामीप्य सिद्धात' की उत्पत्ति कब और किस तरह हुई, अनिश्चित है। किंतु न्यायाधीश लार्ड एल्डन ने मागरिज बनाम थैकवेल (१८०२) ७० वेज, ६९ मे कहा था कि एक समय था, जब इंग्लैंड में प्रत्येक व्यक्ति के इस्टेट के अवशेष का एक अंश दानार्थ व्यय होता था एवं संपत्ति का उत्तराधिकारी व्यक्ति नैतिक दृष्टि से ऐसा करना अपना कर्तव्य समझता था, क्योकि ऐसा समझा जाता था कि विल करनेवालो मे दान की भावना रहती है। जब कानून द्वारा सपत्ति का विभाजन अनिवार्य हो गया तो ऐसा सोचना असभव नहीं कि दानार्थ संपत्ति मे भी वही सिद्धात लागू हुआ हो।

'सामीप्य सिद्धात' को लागू करने में दो प्रतिबंध उल्लेखनीय हैं—(१) दाता की इच्छा का उल्लघन उसी स्थिति मे हो जब विल करनेवाले की इच्छा का अक्षरशः पालन करना असंभव हो जाय। किंतु 'असंभव' शब्द की विवृति (interpretation) उदार भाव से की जाती है तथा (२) जब इस सिद्धांत के लागू करने से अवाछनीय फल निकले, तभी इसपर अंकुश लगाया जाय। देखिए, रि डोमीनियन स्टूडेंट्स हाल ट्रस्ट (१९५७) चासरी १८३. जिसमे किसी विल करनेवाले ने अपनी संपत्ति का एक अंश इस उद्देश्य से दान में दिया कि इग्लैंड के किसी छात्रावास में, जहाँ ब्रिटिश उपनिवेश के विद्यार्थी आकर रहते थे, वर्णविभेद न रहे। दाता की इच्छा का अक्षरशः पालन करने से छात्रो में पारस्परिक तनाव ही बढ़ता अतः न्यायालय ने कहा कि दाता का मुख्य उद्देश्य भिन्न भिन्न वर्णों के विद्यार्थियो में सद्भावना बढ़ाना है और इसी के निमित्त दातव्य राशि का व्यय हुआ।

यदि विल करनेवाले ने दान के लक्ष्य का संकेत किया है तथापि लक्ष्य का कार्यान्वियन होना असंभव या अव्यावहारिक है, या भविष्य में ऐसी योजना चालू नही रखी जा सकती तो न्यायालय विल के लक्ष्य से यथासंभव मिलते जुलते किसी अन्य लक्ष्य के निमित्त उक्त राशि व्यय करने का आदेश देगा। देखिए, एटॉर्नी जनरल बनाम दी आयरन मागर्स कं० (१८४०) १०, सी–एल० ऐंड एफ०, ९०८।

विल में दी हुई राशि लक्ष्य के निमित्त पूर्व से ही अधिक है या पीछे आवश्यकता से अधिक हो जाती है तो आवश्यकता से अधिक राशि के प्रयोग में 'सामीप्य सिद्धांत' लागू होगा। देखिए, रि राबर्ट्सन (१९३०) २ चांसरी. ७१।

दान का उद्देश्य दिखलाने के लिये क्या आवश्यक है, इस प्रसंग मे कोई नियम रखना असंभव है। न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों से उदार एवं अनुदार दोनो विवृतियाँ (interpretation) परिलक्षित होती हैं। निर्दिष्ट दान यदि अन्यान्य दान के साथ मिश्रित हो, जो स्वत पूर्ण एवं असंदिग्ध हो, तो दान की भावना स्पष्ट हो जाती है। देखिए, री नॉक्स (१९३७) चांसरी १०९। किंतु यदि विल करनेवाले के मन में कोई विशेष दातव्य लक्ष्य रहा हो और उस लक्ष्य की पूर्ति संभव न हो तो दान व्यर्थ हो जायगा तथा दान की राशि दाता के पास लौट जायगी और यदि विल के द्वारा दान दिया गया हो तो वह राशि संपत्ति के अवशेष मे आ मिलेगी। देखिए, रि ह्वाइट्स ट्रस्ट (१८८६), ३३ चांसरी ४४९।

यदि विल करनेवाले ने किसी विशेष लक्ष्य के निमित्त दान दिया है एवं उसकी मृत्यु के पूर्व ही वह लक्ष्य लुप्त हो चुका है, तो न्यायालय के लिये उक्त लक्ष्य के निमित्त दातव्य भावना की विवृति करना कठिन हो जायगा। न्यायालय ने यदि दातव्य भावना नही पाई तो दान के लिये लक्षित संपत्ति अवशेष में मिल जाएगी। इसी प्रकार यदि दान किसी व्यक्ति विशेष के लिये दिया गया हो एवं वह व्यक्ति विल करनेवाले से पहले ही मर चुका हो तो उक्त दान समाप्त हो जाएगा। दातव्य लक्ष्य यदि कोई संस्था हो और वह विल करनेवाले की मृत्यु के समय वर्तमान हो, किंतु पीछे लुप्त हो जाय, तो संपत्ति सरकार की हो जाएगी और सरकार इसके निमित्त 'सामीप्य सिद्धांत' लागू करेगी। देखिए, रि स्लेविन (१८९१) २ चासरी, २३६।

सं० ग्रं०—स्नेल : प्रिंसिपुल्स ऑव एक्विटी, २३वाँ संस्करण, १९४७; जॉर्ज डब्ल्यू०, कीटन : दि लॉ ऑव ट्रस्ट्स चतुर्थ संस्करण १९४७; मेटलैंड : एक्विटी, १९३६।

[न० कु०]

सामुएल बाइबिल के दो सामुएल नामक ऐतिहासिक ग्रंथों का प्रधान पात्र। वह एलकाना और अन्ना का पुत्र था। लगभग ११०० ई० पू० यहूदियो के इतिहास में न्यायाधीशो का शासन समाप्त हो रहा था। और फिर राजाओ का काल प्रारंभ हुआ। उस संधिकाल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति सामुएल ही था। नबी, न्यायाधीश, पुरोहित एवं आध्यात्मिक नेता के रूप में सामुएल का वर्णन किया गया है।

सं० ग्रं०—एनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी ऑव दि बाइबिल, न्यूयार्क, १९६३।

[आ० वे०]

सामूहिक चर्चवाद (कांग्रिगेशनैलिज्म)। ईसाई समुदायों के संगठन की यह प्रणाली इंग्लैंड में बनी। ऐंग्लिकन राजधर्म के विरोध में रॉबर्ट ब्राउन के नेतृत्व में इसका प्रवर्तन १६वीं शती में हुआ था। इस प्रणाली के अनुसार स्थानीय चर्च (कांग्रिगेशन) सरकार से, बिशप से तथा किसी भी सामान्य संगठन से पूर्णरूपेण स्वतंत्र हैं, वे ईसा को ही अपना अध्यक्ष मानते हैं और पादरियों तथा साधारण विश्वासियों में कोई अंतर स्वीकार नहीं करते। इंग्लैंड में इनका पर्याप्त विकास हुआ किंतु मेथोडिज्म के कारण उनकी सदस्यता बहुत घट गई है। आजकल वहाँ लगभग चार लाख सामूहिक चर्चवादी हैं। अमरीका में इस संप्रदाय का प्रारंभ पिलग्रिम फादर्स (pilgrim fathers) द्वारा हुआ, वे कुछ समय तक हॉलैंड में रहकर बाद में न्यू इंग्लैंड में बस गए थे। इंग्लैंड की अपेक्षा सामूहिक चर्चवाद को अमरीका में अधिक सफलता मिली। यहाँ उसकी सदस्यता लगभग १३ लाख है। सन् १९५७ ई० में कांग्रिगेशनैलिस्ट चर्च एक अन्य ईसाई चर्च (एवैंजेलिकल ऐंड रिफार्म्‌ड चर्च) के साथ एक हो गए और उस नए संगठन का नाम 'युनाइटेड चर्च ऑव क्राइस्ट' रखा गया जिसकी सदस्यता लगभग बीस लाख है। [का० बु०]

साम्यवाद दे० 'समाजवाद'।

साम्यवादी (तृतीय) इंटरनेशनल (दे० समाजवादी इंटरनेशनल) यह मुख्यत. कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के नाम से विख्यात है। इसकी स्थापना सन् १९१९ में हुई थी। यह विश्व की समस्त साम्यवादी पार्टियों का संगठन था। पहले दो इंटरनेशनल सम्मेलनों से यह अंतरराष्ट्रीय सांगठनिक ढाँचे और कार्यक्रम का अंतर लेकर स्थापित हुआ था। तृतीय इंटरनेशनल का मुख्य उद्देश्य विश्व पैमाने पर घटनेवाली घटनाओं को विश्वक्रांति के विकास में सहायक बनाना था। इसमें संसदीय पद्धति मात्र से ही राजनीतिक विकास को स्वीकार नहीं किया गया था। इसके अतिरिक्त विशेष परिस्थितियों में समाजवादी तत्वों से सहयोग का भी निश्चय किया गया।

साम्यवादी इंटरनेशनल सोवियत संघ और विभिन्न देशों की साम्यवादी पार्टियों के बीच समन्वय का कार्य करता आ रहा है। इसका मुख्य लक्ष्य सर्वहारा क्रांति के लिये प्रथम रक्षापंक्ति का निर्माण करना रहा है।

१९६० में मास्को में विश्व की ८१ साम्यवादी पार्टियों का सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में युद्ध और शांति, नव स्वतंत्र देशों की सहायता के प्रश्नों तथा विश्व की विभिन्न साम्यवादी पार्टियों के बीच उत्पन्न विवादों के समाधान हेतु निर्णय किए गए थे।

[पु० वा०]

साम्राजकीय वरीयता उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब यूरोपीय देशों में औद्योगिक प्रगति हुई तब उन देशों का बना हुआ सामान एशिया और अफ्रीका के महाद्वीपों में जाने लगा। इससे इंग्लैंड के विदेशी व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और अब कई देशों में उसे कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में इंग्लैंड को अपने विदेशी व्यापार की रक्षा के लिये कई ढंग अपनाने पड़े। जो देश उसके अधीन थे उनमें प्रतिस्पर्धा रोकने के लिये जो नीति अपनाई गई उसे साम्राजकीय वरीयता कहते हैं। इस नीति के द्वारा इंग्लैंड ने अपने अधीन देशों के आयात निर्यात व्यापार के लिये एक संगठन बनाया जिसमे प्रत्येक सदस्य देश अन्य सदस्य देशों से उनके आयात किए हुए माल पर असदस्य देशों की अपेक्षा या तो आयात कर की मात्रा कम लगाएगा या आयात कर से छूट देगा। यथासंभव सभी सदस्य देश आसपास में ही आयात निर्यात करेंगे।

इंग्लैंड के अधीन सभी देश साम्राजकीय वरीयता के सदस्य बना दिए गए और इस प्रकार इंग्लैंड ने यूरोप के अन्य देशों के बने माल की इन देशों में प्रतिस्पर्धा समाप्त सी कर दी। परंतु इन अधीन देशों के व्यापार पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा क्योंकि उनके कच्चे माल के निर्यात का क्षेत्र बहुत सीमित हो गया और अब पहले की अपेक्षा सस्ते दाम में उन्हें कच्चा माल निर्यात करना पड़ता था। इंग्लैंड को इस नीति से बहुत लाभ हुआ, क्योंकि अब उसे अपने तैयार किए हुए सामान को बेचने के लिये बाजार ढूँढने की आवश्यकता नहीं थी और साथ ही सदस्य देशों से इसमें प्रतिस्पर्धा की संभावना भी नहीं थी।

भारत के १९२१ के वित्त कमीशन की रिपोर्ट ने भारत का इस संगठन का सदस्य होना हानिकारक बतलाया था। किंतु फिर भी साम्राज्य के प्रति स्वामिभक्ति रखने के लिये उसे सदस्य बने रहने का सुझाव दिया था। इस कमीशन ने यह आवश्यक बतलाया कि साम्राज्य की वरीयता से संरक्षणप्राप्त उद्योगों को हानि न हो और आयात निर्यात का लेखाजोखा देश के अनुकूल होना चाहिए। इन सुझावों का भारतीय औद्योगिक नीति पर बहुत प्रभाव पड़ा और १९३२ ई० में ओटावा पैक्ट के नाम से आयात निर्यात संबंधी एक महत्वपूर्ण समझौता हुआ। फिर भी देश की आर्थिक अवस्था न सुधर पाई।

भारतवासियों ने साम्राजकीय वरीयता का बहुत विरोध किया था क्योंकि यहाँ के कच्चे माल की सभी यूरोपीय देशों में माँग थी और यदि वह स्वतंत्र रूप से बेचा जाता तो उसे अधिक लाभ होता। साथ ही यूरोपीय देशों के तैयार किए हुए सामान इंग्लैंड की अपेक्षा अधिक अच्छे और सस्ते पड़ते। इस प्रकार साम्राजकीय वरीयता से भारत को बहुत हानि उठानी पड़ी और औद्योगिक प्रगति उचित मात्रा में न हो सकी। धीरे धीरे इस वरीयता का अधिक विरोध होने पर भारत सरकार ने इसकी कई शर्तें रद कर दीं और भारत का व्यापार अन्य देशों से भी होने लगा। [श्र० वि० मि०]

सायण वेदों के सर्वमान्य भाष्यकर्ता थे। सायण ने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया है, परंतु इनकी कीर्ति का मेरुदंड वेदभाष्य ही है। इन्होंने अपनी रचनाओं में अपने चरित् के विषय में आवश्यक तथ्यों का निर्देश किया है। ये दक्षिण भारत के निवासी थे। इनके पिता का नाम था मायण और माता का श्रीमती। इनका गोत्र भारद्वाज था। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी श्रोत्रिय थे। इनके अग्रज विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक महाराज हरिहर के मुख्य मंत्री तथा आध्यात्मिक गुरु थे। उनका नाम था—माधवाचार्य जो अपने जीवन के अंतिम समय में शृंगेरीपीठ के विद्यारण्य स्वामी के नाम से अभिषिक्त हुए थे। सायण के अनुज का नाम था भोगनाथ जो संगमनरेश के नर्मसचिव तथा कमनीय कवि थे। सायण ने अपने

'अलंकार सुधानिधि' नामक ग्रंथ में अपने तीन पुत्रों का नामोल्लेख किया है जिनमे कंपण संगीतशास्त्र में प्रवीण थे, मायण गद्यपद्य-रचना में विचक्षण कवि थे तथा शिगण वेद की क्रमजटा आदि पाठो के मर्मज्ञ वैदिक थे।

माधवाचार्य — सायण का जीवन अग्रज माधव के द्वारा इतना प्रभावित था तथा उनके साथ घुलमिल गया था कि पडितो को भी इन दोनो के पृथक् व्यक्तित्व मे पर्याप्त सदेह है। इसका निराकरण प्रथमत आवश्यक है। माधवाचार्य १४वी शती में भारतीय विद्वज्जनो के शिखामणि थे। वे वेद, धर्मशास्त्र तथा मीमासा के प्रकाड पडित ही न थे, प्रत्युत वेदो के उद्धारक तथा वैदिक धर्म के प्रचारक के रूप में उनकी ख्याति आज भी धूमिल नही हुई है। उन्ही के आध्यात्मिक उपदेश तथा राजनीतिक प्रेरणा का सुपरिणाम है कि महाराज हरिहर राय ने अपने भ्राता बुक्कराय के साथ दक्षिण भारत मे आदर्श हिंदू राज्य के रूप से 'विजयनगर साम्राज्य' की स्थापना की। माधवाचार्य का इस प्रकार इस साम्राज्य की स्थापना में पूर्ण सहयोग था अत. वे राज्यकार्य के सुचारु संचालन के लिये प्रधान मत्री के पद पर भी प्रतिष्ठित हुए। यह उन्ही की प्रेरणा-शक्ति थी कि इन दोनो सहोदर भूपालों ने वैदिक सस्कृति के पुनरुत्थान को अपने साम्राज्यस्थापन का चरम लक्ष्य बनाया और इस शुभ कार्य मे वे सर्वथा सफल हुए। फलत. हम माधवाचार्य को १४वी शती मे दक्षिण भारत में जायमान वैदिक पुनर्जाग्रति का अग्रदूत मान सकते हैं। मीमासा तथा धर्मशास्त्र के प्रचुर प्रसार के निमित्त माधव ने अनेक मौलिक ग्रंथो का प्रणयन किया — (१) पराशरमाधव (पराशर स्मृति की व्याख्या), (२) व्यवहार-माधव, (३) कालमाधव (तीनो ही धर्मशास्त्र से संवद्ध), (४) जीवन्मुक्तिविवेक (वेदात), (५) पंचदशी (वेदात) (६) जैमिनीय न्यायमाला विस्तर (पूर्वमीमासा), (७) शकर दिग्विजय (आदि शकराचार्य का लोकप्रख्यात जीवनचरित्)। अतिम ग्रंथ की रचना के विषय में आलोचक सदेहशील भले हो, परतु पूर्वनिबद्ध छहो ग्रंथ माधवाचार्य की असंदिग्ध रचनाएँ हैं। अनेक वर्षों तक मत्री का अधिकार सपन्न कर और साम्राज्य को अभीष्टसिद्धि की ओर अग्रसर कर माधवाचार्य ने संन्यास ले लिया और शृगेरी के माननीय पीठ पर आसीन हुए। इनका इस आश्रम का नाम था — विद्यारण्य। इस समय भी इन्होने पीठ को गतिशील बनाया तथा 'पचदशी' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया जो अद्वैत वेदात के तत्वो के परिज्ञान के लिये नितात लोकप्रिय ग्रंथ है। विजयनगर सम्राट् की सभा मे अमात्य माधव माधवाचार्य से नितात पृथक् व्यक्ति थे जिन्होने 'सूतसहिता' के ऊपर 'तात्पर्यदीपिका' नामक व्याख्या लिखी है। सायण को वेदो के भाष्य लिखने का आदेश तथा प्रेरणा देने का श्रेय इन्ही माधवाचार्य को है।

सायण के गुरु — सायण के तीन गुरुओ का परिचय उनके ग्रंथों में मिलता है — (१) विद्यातीर्थ 'रुद्रप्रश्नभाष्य' के रचयिता तथा परमात्मतीर्थ के शिष्य थे जिनका निर्देश सायण के ग्रथो में महेश्वर के अवतार रूप में किया गया है। (२) भारतीतीर्थ शृगेरी पीठ के शकराचार्य थे। (३) श्रीकठ जिनके गुरु होने का उल्लेख सायण ने अपने कांची के शासनपत्र में तथा भोगनाथ ने अपने 'महागणपतिस्तव' में स्पष्ट रूप से किया है।

सायण के आश्रयदाता — वेदभाष्यो तथा इतर ग्रंथो के अनुशीलन से सायण के आश्रयदाताओ के नाम का स्पष्ट परिचय प्राप्त होता है। सायण शासनकार्य में भी दक्ष थे तथा सग्राम के मैदान मे सेनानायक के काय में भी वे कम निपुण न थे। विजयनगर के इन चार राजन्यो के साथ सायण का सबध था—कपण, संगम (द्वितीय), बुक्क (प्रथम) तथा हरिहर (द्वितीय)। इनमे से कपण सगम प्रथम के द्वितीय पुत्र थे। और हरिहर प्रथम के अनुज थे जिन्होंने विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की थी। कंपण विजयनगर के पूर्वी प्रदेश पर राज्य करते थे। सगम द्वितीय कपण के आत्मज थे तथा सायण के प्रधान शिष्य थे। बाल्यकाल से ही वे सायण के शिक्षण तथा देखरेख में थे। सायण ने उनके अधीनस्थ प्रात का बड़ी योग्यता से शासन किया। तदनतर वे महाराज बुक्कराय (१३५० ई०—१३७९ ई०) के मन्त्रिपद पर आसीन हुए और उनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी हरिहर द्वितीय (१३७९ ई०—१३९९ ई०) के शासनकाल मे भी उसी अमात्यपद पर प्रतिष्ठित रहे। सायण की मृत्यु सं० १४४४ (१३८७ ई०) मे मानी जाती है। इस प्रकार ये वि० स० १४२१—१४३७ (१३६४ ई०—१३७८ ई०) तक लगभग १६ वर्षों तक बुक्क महाराज के प्रधान मत्री थे और वि० स० १४३८—१४४४ वि० (१३७९ ई०—१३८७ ई०) तक लगभग आठ वर्षों तक हरिहर द्वितीय के प्रधान अमात्य थे। प्रतीत होता है कि लगभग पच्चीस वर्षों में सायणाचार्य ने वेदो के भाष्य प्रणीत किए (वि० सं० १४२०—वि० स० १४४४)। इस प्रकार सायण का आविर्भाव १५वी शती विक्रमी के प्रथमार्ध में संपन्न हुआ।

सायण के ग्रंथ — सायणाचार्य वेदभाष्यकार की ख्याति से मडित हैं। परंतु वेदभाष्यो के अतिरिक्त भी उनके प्रणीत ग्रथो की सत्ता है जिनमें अनेक अभी तक अप्रकाशित ही पड़े हुए हैं। इन ग्रथो के नाम हैं —

(१) सुभाषित सुधानिधि — नीतिवाक्यो का सरस संकलन। कपण भूपाल के समय की रचना होने से यह उनका आद्य ग्रंथ प्रतीत होता है।

(२) प्रायश्चित्त सुधानिधि — 'कर्मविपाक' नाम से भी प्रख्यात यह ग्रंथ धर्मशास्त्र के प्रायश्चित्त विषय का विवरण प्रस्तुत करता है।

(३) अलंकार सुधानिधि — अलंकार का प्रतिपादक यह ग्रंथ दस उन्मेषो में विभक्त था। इस ग्रंथ के प्रायः समग्र उदाहरण सायण के जीवनचरित् से संबध रखते है। अभी तक केवल तीन उन्मेष प्राप्त हैं।

(४) पुरुषार्थ सुधानिधि — धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूपी चारो पुरुषार्थों के प्रतिपादक पौराणिक श्लोको का यह विशद संकलन बुक्क महाराज के निदेश से लिखा गया था।

(५) आयुर्वेद सुधानिधि — आयुर्वेद विषयक इस ग्रंथ का निर्देश ऊपर निर्दिष्ट स० ३ वाले ग्रथ में किया गया है।

(६) यज्ञतंत्र सुधानिधि — यज्ञानुष्ठान विषय पर यह ग्रंथ हरिहर द्वितीय के शासनकाल की रचना है।

(७) धातुवृत्ति — पाणिनीय धातुओं की यह विशद तथा विस्तृत वृत्ति अपनी विद्वत्ता तथा प्रामाणिकता के कारण वैयाकरणों में विशेष रूप से प्रख्यात है। यह 'माधवीया धातुवृत्ति' के नाम से प्रसिद्ध होने पर भी सायण की ही नि:संदिग्ध रचना है—इसका परिचय ग्रंथ के उपोद्घात से ही स्पष्टत: मिलता है।

(८) वेदभाष्य—यह एक ग्रंथ न होकर अनेक ग्रंथों का द्योतक है। सायण ने वेद की चारो संहिताओं, कतिपय ब्राह्मणों तथा कतिपय आरण्यकों के ऊपर अपने युगांतरकारी भाष्य का प्रणयन किया। इन्होंने पाँच संहिताओं तथा १३ ब्राह्मण आरण्यकों के ऊपर अपने भाष्यों का निर्माण किया जिनके नाम इस प्रकार हैं—

(क) संहिता पंचक का भाष्य

(१) तैत्तिरीय संहिता (कृष्णयजुर्वेद की) (२) ऋक्, (३) साम, (४) काण्व (शुक्लयजुर्वेदीय) तथा (५) अथर्व—इन वैदिक संहिताओं का भाष्य सायण की महत्वपूर्ण रचना है।

(ख) ब्राह्मणों का भाष्य

(१) तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा (२) तैत्तिरीय आरण्यक, (३) ऐतरेय ब्राह्मण तथा (४) ऐतरेय आरण्यक। सामवेदीय आठो ब्राह्मणों का भाष्य—(५) ताड्य, (६) षड्विंश, (७) सामविधान, (८) आर्षेय, (९) देवताध्याय, (१०) उपनिषद् ब्राह्मण, (११) संहितोपनिषद् (१२) वंश ब्राह्मण, (१३) शतपथ ब्राह्मण (शुक्लयजुर्वेदीय)। सायणाचार्य स्वयं कृष्णयजुर्वेद के अंतर्गत तैत्तिरीय शाखा के अध्येता ब्राह्मण थे। फलत प्रथमत: उन्होंने अपनी तैत्तिरीय संहिता और तत्संबद्ध ब्राह्मण आरण्यक का भाष्य लिखा, अनंतर उन्होंने ऋग्वेद का भाष्य बनाया। संहिताभाष्यों में अथर्ववेद का भाष्य अंतिम है, जिस प्रकार ब्राह्मणभाष्यों में शतपथभाष्य सबसे अंतिम है। इन दोनो भाष्यों का प्रणयन सायण ने अपने जीवन के सांध्याकाल में हरिहर द्वितीय के शासनकाल में संपन्न किया।

सायण ने अपने भाष्यों को 'माधवीय वेदार्थप्रकाश' के नाम से अभिहित किया है। इन भाष्यों के नाम के साथ 'माधवीय' विशेषण को देखकर अनेक आलोचक इन्हें सायण की निःसंदिग्ध रचना मानने से पराङ्मुख होते हैं, परंतु इस संदेह के लिये कोई स्थान नहीं है। सायण के अग्रज माधव विजयनगर के राजाओं के प्रेरणादायक उपदेष्टा थे। उन्हीं के उपदेश से महाराज हरिहर तथा बुक्कराय वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के महनीय कार्य को अग्रसर करने में तत्पर हुए। इन महीपतियों ने माधव को ही वेदों के भाष्य लिखने का भार सौंपा था, परंतु शासन के विषम कार्य में संलग्न होने के कारण उन्होंने इस महनीय भार को अपने अनुज सायण के ही कंधों पर रखा। सायण ने ऋग्वेद भाष्य के उपोद्घात में इस बात का उल्लेख किया है। फलत इन भाष्यों के निर्माण में माधव के ही प्रेरक तथा आदेशक होने के कारण इनका उन्हीं के नाम से संबद्ध होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह तो सायण की ओर से अपने अग्रज के प्रति भूयसी श्रद्धा की द्योतक घटना है। इसीलिये धातुवृत्ति भी, 'माधवीया' कहलाने पर भी, सायण की ही नि:संदिग्ध रचना है जिसका उल्लेख उन्होंने ग्रंथ के उपोद्घात में स्पष्टत: किया है—

तेन मायणपुत्रेण सायणेन मनीषिणा।
आख्यया माधवीयेयं धातुवृत्तिर्विरच्यते॥

वेदभाष्यों के एककर्तृत्व होने में कतिपय आलोचक संदेह करते हैं। संवत् १४४३ वि० (सन् १३८६ ई०) के मैसूर शिलालेख से पता चलता है कि वैदिक मार्ग प्रतिष्ठापक महाराजाधिराज हरिहर ने विद्यारण्य श्रीपाद स्वामी के समक्ष चतुर्वेद-भाष्य-प्रवर्तक नारायण वाजपेययाजी, नरहरि सोमयाजी तथा पंढरि दीक्षित नामक तीन ब्राह्मणों को अग्रहार देकर संमानित किया। इस शिलालेख का समय तथा विषय दोनों महत्वपूर्ण हैं। इसमें उपलब्ध 'चतुर्वेद-भाष्य-प्रवर्तक' शब्द इस तथ्य का द्योतक है कि इन तीन ब्राह्मणों ने वेदभाष्यों के निर्माण में विशेष कार्य किया था। प्रतीत होता है, इन पंडितों ने सायण को वेदभाष्यों के प्रणयन में साहाय्य दिया था और इसीलिये विद्यारण्य स्वामी (अर्थात् सायण के अग्रज माधवाचार्य) के समक्ष उनका सत्कार करना उक्त अनुमान की पुष्टि करता है। इतने विपुलकाय भाष्यों का प्रणयन एक व्यक्ति के द्वारा संभव नहीं है। फलतः सायण इस विद्वन्मंडली के नेता रूप में प्रतिष्ठित थे और उस काल के महनीय विद्वानों के सहयोग से ही यह कार्य संपन्न हुआ था।

वेदभाष्यों का महत्व — सायण से पहले भी वेद की व्याख्याएँ की गई थीं। कुछ उपलब्ध भी हैं। परंतु समस्त वेद की ग्रंथराशि का इतना सुचिंतित भाष्य इत पूर्व प्रणीत नहीं हुआ था। सायण का यह वेदभाष्य अवश्य ही याज्ञिक विधिविधानों को दृष्टि में रखकर लिखा गया है, परंतु इसका यह मतलब नहीं कि उन्होंने वेद के आध्यात्मिक अर्थ की ओर संकेत न किया हो। वैदिक मंत्रों का अर्थ तो सर्वप्रथम ब्राह्मण ग्रंथों में किया गया था और इसी के आधार पर निघंटु में शब्दों के अर्थ का और निरुक्त में उन अर्थों के विशदीकरण का कार्य संपन्न हुआ था। निरुक्त में इने गिने मंत्रों का ही तात्पर्य उन्मीलित है। इतने विशाल वैदिक वाङ्मय के अर्थ तथा तात्पर्य के प्रकटीकरण के निमित्त सायण को ही श्रेय है। वेद के विषम दुर्ग के रहस्य खोलने के लिये सायण भाष्य सचमुच चाभी का काम करता है। आज वेदार्थमीमांसा की नई पद्धतियों का जन्म भले हो गया हो, परंतु वेद की अर्थमीमांसा में पंडितों का प्रवेश सायण के ही प्रयत्नों का फल है। आज का वेदार्थ परिशीली आलोचक आचार्य सायण का विशेष रूप से ऋणी है। वेदार्थमीमांसा के इतिहास में सायण का नाम सुवर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। [ब० उ०]

सायनाइड विधि का आविष्कार १८८७ ई० में हुआ था। इससे कम सोनेवाले खनिजों से सोना निकालने में बड़ी सहायता मिली है। इससे पहले पारदन (amalgamation) विधि से खनिजों से केवल ६० प्रतिशत के लगभग सोना निकाला जा सकता था। पारदन विधि से सोना के अधिकांश सूक्ष्म कण निकल नहीं पाते थे। सायनाइड विधि के आविष्कारक मैक्‌आर्थर (J. S Mac Arthur) और फॉरेस्ट (R. W & W Forrest) थे। आविष्कार के समय इस विधि का उपहास किया जाता था क्योंकि इसका अभिकर्मक सायनाइड घातक विष और तब सरलता से प्राप्य

नही था। पर शीघ्र ही इस विधि का उपयोग १८८९ ई० में न्यूजीलैंड में, १८९० ई० में दक्षिण अफ्रीका में हुआ और १९२५ ई० तक तो यह विधि सामान्य रूप से व्यवहार मे आने लगी।

इस विधि में सोने के चूर्णित खनिज को पोटैशियम या सोडियम सायनाइड के तनु विलयन से उपचारित करते हैं, जिससे सोना और चाँदी तो घुलकर खनिज से पृथक् हो जाते हैं और स्वच्छ विलयन को जस्ते के छीलन (shavings) या चूर्ण के साथ उपचार से सोने और चाँदी जस्ते के छीलन या चूर्ण के तल पर काले अवपंक (slime) के रूप मे अवक्षिप्त हो जाते हैं। इनमे कुछ जस्ता भी घुला रहता है। काले अवपंक को पिघलाकर सोने और चाँदी को छड के रूप में प्राप्त करते हैं। यहाँ जो रासायनिक अभिक्रिआएँ होती हैं वे जटिल हैं। यहाँ सोना पोटैशियम सायनाइड में घुलकर स्वर्ण और पोटैशियम का युग्म सायनाइड बनता है। इस क्रिया मे वायु के ऑक्सीजन का भी हाथ रहता है, जैसा निम्नलिखित समीकरण से स्पष्ट हो जाता है। वायु के अभाव मे अभिक्रिया रुक जाती है। $4Au + 8KCN + O_2 + 2H_2O = 4KAu(CN)_2 + 4KOH$। आधुनिक काल में सोने के खनिज को जल के स्थान मे पोटैशियम सायनाइड के तनु विलयन के साथ ही दलते हैं। दलने के लिये स्टैंप बैटरियों का उपयोग होता है। बैटरियो मे खनिज आधे इंच व्यास के टुकडों मे तोडकर तब पेषणी मे पीसे जाते हैं। पीसे जाने के बाद कोन क्लैसिफायर (cone classifier)
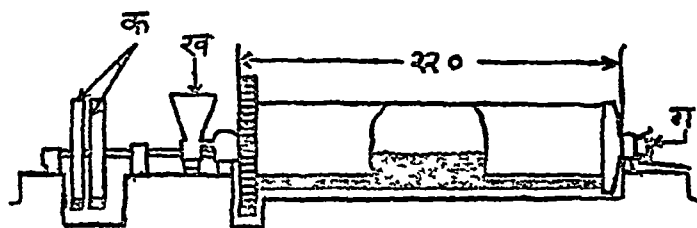
में वर्गीकृत कर अवपंक के रूप मे प्राप्त करते हैं। अवपंक को अब प्रक्षोभक पचुक (pachuka) टंकी में ले जाते हैं जिसमें पेंदे से वायु दबाव से प्रविष्ट कराया जाता है और वह अवपक को उठाकर ऊपर ले जाता है। इस प्रकार वातन और मिश्रण साथ साथ चलता है और सोना घुल जाता है। अब विलयन को छलनी मे छानकर अलग कर लेते हैं। पुरानी विधि मे सोने के सायनाइड के विलयन को निथारकर पृथक् करते थे। निथार मे शीघ्रता लाने के लिये टंकी मे चूना डालते थे। इस विधि की विशेषता यह है कि सायनाइड के बहुत तनु विलयन का केवल ०·२७ प्रतिशत (एक टन खनिज के लिये लगभग ०·२७ पाउंड) पोटैशियम सायनाइड का उपयोग होता है। इससे प्रति टन खनिज के उपचार में पचीस से तीस पैसा खर्च होता है। इससे समस्त खनिज का ८०% सोना निकल आता है। कुछ स्थानो मे पारदन और सायनाइड दोनो विधियाँ काम में आती हैं। इस प्रकार चाँदी के खनिजो से भी चाँदी पृथक् की जाती है। पर इस दशा मे विलयन कुछ अधिक प्रबल (सायनाइड का ०·१% से ०·५%) उपयुक्त होता है। सायनाइड विधि से ससार के सोने और चादी के उत्पादन मे बहुत वृद्धि हुई है।

[वै० ना० प्र०]

सायनिक अम्ल तथा सायनेट (Cyanic acid and cyanate) [OHCN] सायनिक अम्ल को वोलर (Wohler) ने सन् १८२४ मे ज्ञात किया था। इसके निर्माण की सबसे सरल विधि इसके बहुलकीकृत रूप सायन्यूरिक अम्ल (cyanuric acid) को कार्बन डाईऑक्साइड की उपस्थिति में आसवन करके तथा इससे प्राप्त वाष्पों को हिमकारी मिश्रण (freezing mixture) में संघनित करके इकट्ठा करने की है। यह बहुत ही तीव्र वाष्पशील द्रव पदार्थ है जो ०° सें० से नीचे ही स्थायी रहता है तथा इसकी अम्लीय अभिक्रिया काफी तीव्र होती है। इसमें ऐसीटिक अम्ल की सी गंध होती है। ०° सें० पर यह बहुलकीकृत होकर सायन्यूरिक अम्ल $(CNOH)_3$ तथा सायनीलाइड (cyanelide) $(CNOH)_n$ बनाता है। हाइड्रोसायनिक अम्ल या मरक्यूरिक सायनाइड पर क्लोरीन की अभिक्रिया से सायनोजन क्लोराइड (CN Cl) बनता है जो वाष्पशील विषैला द्रव है और जहरीली गैस के रूप में प्रयुक्त होता है।

सायनिक अम्ल के लवणों को सायनेट कहते हैं। इनमें पोटैशियम तथा अमोनियम सायनेट (KCNO and NH_4CNO) प्रमुख हैं।

सायनिक अम्ल के दो चलावयवीय (tautomeric) रूप होते हैं।

$$H.O - C \equiv N \rightleftharpoons O = C = NH$$
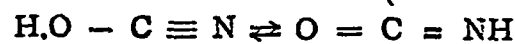
(सामान्य सायनेट) (आइसोसायनेट)

सामान्य रूप का ऐस्टर नही मिलता परंतु आइसोसायनेट के ऐस्टर ऐल्किल हैलाइड पर सिलवर सायनेट की अभिक्रिया से प्राप्त होते हैं।

$$R-X + Ag\,N = C = O \rightarrow R - N = C = O$$

ऐल्किल आइसोसायनेट

इनमें एथिल आइसोसायनेट (C_2H_5NCO) प्रमुख है और बड़े काम का है।

[रा० दा० ति०]

सायनेमाइड (H_2NCN) एक रंगहीन, क्रिस्टलीय, प्रस्वेद्य ठोस है। इसका गलनांक ४३° – ४४° सें० है। इसकी विलेयता जल, ऐल्कोहॉल या ईथर में अधिक किंतु कार्बन डाइसल्फ़ाइड, बेंजीन या क्लोरोफार्म में नाममात्र की है। सांद्र अम्ल के साथ यह लवण बनाता है जिनका जल-अपघटन होता है; हाइड्रोजन सल्फाइड के साथ थायोयूरिया तथा अमोनिया के साथ ग्वानिडीन (guanidine) बनाता है। अमोनिया, सायनोजन (cyanogen) क्लोराइड या ब्रोमाइड की अभिक्रिया से सायनेमाइड की प्राप्ति सरलता से होती है। $Cl\,CN + 2NH_3 = H_2NCN + NH_4Cl$ मरक्यूरिक ऑक्साइड (mercuric oxide) द्वारा थायोयूरिया का अगंधीकरण (desulphurisation) करके भी इसको तैयार करते हैं। सायनेमाइड को व्यावसायिक मात्रा में तैयार करने के लिये कैल्सियम सायनेमाइड को जल के साथ भली भाँति हिलाकर तथा सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा उदासीन बनाकर छान लेते हैं; फिर इस छने हुए विलयन का शून्य में वाष्पीकरण करते हैं। क्षारीय यौगिको की उपस्थिति में सायनेमाइड का जलीय विलयन बहुलकीकरण द्वारा एक द्वितय (dimer, dicyanamide) डाइसायनेमाइड, NC. C.NH (: NH). NH_2

बनाता है। डाइसायनेमाइड या सायनेमाइड को निष्क्रिय वायुमडल मे १२०°-१२५° सें० तक गरम करने से त्रितय, मेलामाइन (melamine), $H_2N.C=N.C(NH_2)=N.C(NH_2)=N$ मिलता है, अमोनिया के साथ गरम करने से इसकी प्राप्ति अधिक होती है तथा यह अधिक शुद्ध भी होता है।

सायनेमाइड का हाइड्रोजन परमाणु धातु से विस्थापित होता है। जलीय अथवा ऐल्कोहॉलीय विलयन में क्षारीय धातु हाइड्रोक्साइड या कैलसियम हाइड्रोक्साइड सायनेमाइड के हाइड्रोजन का एक परमाणु विस्थापित करता है $NaOH + H_2NCN = NaNHCN + H_2O$। हाइड्रोजन का दूसरा परमाणु क्षारीय धातु या कैलसियम से सीधे विस्थापित नही होता. सोडियम सायनाइड को कैस्नर (Kastner) विधि से तैयार करने में डाइसोडियम सायनेमाइड एक माध्यमिक यौगिक के रूप में मिलता है। कैलसियम कार्बाइड (CaC_2) को नाइट्रोजन के साथ १०००° सें० के लगभग गरम करने से कैलसियम सायनेमाइड मिलता है, दूसरी धातुओं के कार्बाइड भी ऊँचे ताप पर नाइट्रोजन के साथ गरम करने से तत्सबधी सायनेमाइड बनाते हैं। कुछ धातुओ के सायनाइड गरम करने से तत्सबधी सायनेमाइड तथा कार्बन में विघटित होते हैं। कैलसियम, मैग्नीसियम, सीस तथा लोहे के सायनाइड में इस प्रकार का विघटन केवल गरम करने से होता है। किंतु जिक, कैडमियम, कोबाल्ट, निकल तथा लिथियम के सायनाइड में ताप के अतिरिक्त उत्प्रेरक की भी आवश्यकता पडती है।

कैलसियम सायनेमाइड अधिक मात्रा मे कैल्सियम कार्बाइड और नाइट्रोजन की अभिक्रिया से तैयार की जाती है। ऐडोल्फ फ्रैंक (Adolf Frank) तथा निकोडम कैरो (Nikodem Caro) ने सन् १८९५ के लगभग ज्ञात किया कि व्यावसायिक कैल्सियम कार्बाइड (शत प्रतिशत शुद्ध नही) ८०० सें० से अधिक ताप पर नाइट्रोजन के साथ बडी सुगमता से अभिक्रिया करता है $CaC_2 + N_2 = CaNCN + C + 69{,}200$ कैलोरी। कैलसियम कार्बाइड को अभीष्ट ताप पर गरम करके उसके ऊपर नाइट्रोजन को प्रवाहित करते हैं, नाइट्रोजन कैलसियम कार्बाइड के साथ अभिक्रिया करता है, इस अभिक्रिया में अधिक ऊष्मा उत्पन्न होती है जिससे कैलसियम कार्बाइड का ताप और अधिक हो जाता है। अत नाइट्रोजन तब तक क्रिया करता रहता है जब तक सबका सब कैलसियम कार्बाइड समाप्त नही हो जाता। प्रयोगो द्वारा ज्ञात किया गया कि ताप बढाने से इस क्रिया की गति बढती है किंतु १२००° सें० से अधिक ताप पर कैलसियम सायनेमाइड का विघटन होने लगता है। अत इस क्रिया के लिये उपयुक्त ताप ११००°—११३०° सें० है। कैलसियम क्लोराइड या कैलसियम क्लोराइड तथा कैलसियम फ्लोराइड का मिश्रण इस क्रिया के लिये उत्प्रेरक हैं, नाइट्रोजन कम से कम ९९.७% शुद्ध होना चाहिए तथा कैलसियम कार्बाइड का चूर्ण निष्क्रिय वायुमडल में बनाना चाहिए।

कैल्सियम सायनेमाइड को व्यावसायिक मात्रा में तैयार करने की विधि को असतत विधि (Discontinuous process) कहते हैं। आजकल इस विधि में ४ से १० टन की धारितावाली भट्ठियाँ उपयोग में लाई जाती हैं। भट्ठियाँ ढलवे लोहे की होती हैं, इनका भीतरी भाग अगलनीय मिट्टी तथा तापसह ईंटों से अग्नि के प्रभाव से मुक्त रहता है। एक वृहद् कागज बेलन भट्ठी की खोह मे कैलसियम कार्बाइड के लिये रखा रहता है। फ्लोरस्पार (fluorspar) की अल्प मात्रा कैलसियम कार्बाइड के साथ मिलाई रहती है। फ्लोरस्पार उत्प्रेरक तथा अभिक्रिया को नियन्त्रित करने का कार्य करता है। भट्ठी का मुँह एक ताप अवरोधक ढक्कन से ढक दिया जाता है। गरम करने का विद्युत् का एक 'इलक्ट्रोड' ढक्कन के मध्य छिद्र द्वारा कैलसियम कार्बाइड तक रहता है तथा दूसरा भट्ठी के तल मे। भट्ठी के तल और पार्श्व के छिद्रो द्वारा नाइट्रोजन प्रवाहित करते हैं। रासायनिक क्रिया का प्रारभ भट्ठी के भीतरी भाग को १०००°—११००° सें० तक गरम करके करते हैं, तत्पश्चात् जब तक सबका सब कैलसियम कार्बाइड नाइट्रोजन से क्रिया नही कर लेता, यह क्रिया स्वय होती रहती है। इनमे लगभग २४ से ४० घटे का समय लगता है। क्रिया समाप्त हो जाने पर कैलसियम सायनेमाइड को भट्ठी से निकालकर निष्क्रिय वायुमडल में इकट्ठा करते हैं।

कैलसियम सायनेमाइड को व्यावसायिक मात्रा में तैयार करने की दूसरी विधि को सतत विधि (continuous Process) कहते हैं। इस विधि में कैलसियम कार्बाइड को १० प्रतिशत कैलसियम क्लोराइड के साथ मिलाकर लोहे के छिद्रयुक्त बड़े बडे बर्तनो में भरते हैं, फिर इन बर्तनो को एक नाइट्रोजन गैस से भरी हुई सुरग में घुमाते हैं। सुरग का एक भाग बाहर से गरम किया जाता है, यही पर क्रिया होती है। इससे अगले भाग मे नियन्त्रित वायुशीतक का प्रबध रहता है, यह क्रिया के लिये उपयुक्त ताप बनाए रखता है। सुरग का अतिम भाग शीत कक्ष का कार्य करता है।

ऊपर की विधियो से प्राप्त किया हुआ कैलसियम सायनेमाइड गहरा भूरे रग का चूर्ण होता है। इसका यह रग कार्बन के कारण होता है। चीनी मिट्टी की नली में ७५०°—८५०° सें० पर २ घटे तक तप्त किए हुए कैलसियम कार्बोनेट के ऊपर हाइड्रोसायनाइड वाष्प प्रवाहित करने से ९९% शुद्ध कैलसियम सायनेमाइड मिलता है, तप्त कैलसियम कार्बोनेट के ऊपर आयतन के अनुसार १० भाग अमोनिया और २ भाग कार्बन मोनोक्साइड प्रवाहित करने से ९२% शुद्ध कैलसियम सायनेमाइड मिलता है। ११०°—११५° सें० और ६ वायुमडल दबाव पर कैलसियम साइनेमाइड जलवाष्प द्वारा अमोनिया और कैलसियम कार्बोनेट में विघटित होता है। $CaNCN + 3H_2O = CaCO_3 + 2NH_3 + 18000$ कैलोरी।

साधारणत कैलसियम सायनेमाइड का उपयोग उत्तम उर्वरक के रूप में होता है। इसका नाइट्रोजन मिट्टी में अमोनिया बनाता है और इस रूप मे यह निक्षालन (leaching) के लिये अवरोधक का कार्य करता है। इससे विलेय कैलसियम मिलता है जो पौधो के लिये पुष्टिकारक होता है तथा मिट्टी की अम्लता को ठीक रखता है। मिट्टी की नमी से इसका जल अपघटन होता है। इससे सायनेमाइड बनता है जो पौधों के लिये हानिकारक है किंतु यह शीघ्र ही अमोनिया में बदल जाता है। बीज या पौधों को इससे हानि न हो, अत इसको बीज बोने के पहले मिट्टी में काफी नीचे रखते हैं जिसमे अकुर के जड

के स्पर्श में आने के पहले ही इसकी सब रासायनिक क्रियाएँ पूर्ण हो जाती हैं। घास पात आदि को नष्ट करने के लिये १०० पाउंड प्रति एकड़ के हिसाब से कैल्सियम साइनेमाइड का चूर्ण छिड़कते हैं। इसमें कम लागत लगती है।

उद्योग में भी कच्चे माल के रूप में इसका विशेष महत्व है। इससे कैल्सियम सायनाइड पर्याप्त मात्रा मे तैयार की जाती है। डाइ-साइनोडायमाइड (dicyanodiamide), मेलामाइन (melamine) तथा ग्वानिडीन (guanidine) यौगिक भी इससे तैयार किए जाते हैं। मेलामाइन से मेलामाइन प्लास्टिक तैयार किया जाता है जो कई अर्थों मे दूसरे प्लास्टिको से अच्छा होता है। [वि० ना० प्र०]

सार प्रदेश (Saar Region) जर्मनी का एक भाग है। १९वीं शताब्दी तक यह लोरेन का एक भाग था। १९१९ ई० मे जर्मनी के विभाजन के समय इसको १५ वर्षों के लिये फ्रास को उसके उत्तरी खदानो की क्षतिपूर्ति स्वरूप दिया गया। सन् १९३५ की १३ जनवरी के जनमत के अनुसार यह क्षेत्र जर्मनी के अधिकार में पुनः आ गया। द्वितीय महायुद्ध काल मे इस प्रदेश को अत्यधिक क्षति पहुँची। तत्पश्चात् यह फिर फ्रास के अधीन हो गया। २७ अक्टूबर, १९५६ ई० की फ्रास—जर्मनी-संधि के अनुसार १ जनवरी, १९५७ ई० को सार पुनः जर्मनी के अधीन चला गया।

इस प्रदेश का क्षेत्रफल २,५६७ वर्ग किमी० है। जनसंख्या १०,८३,००० (१९६१) थी। यहाँ की जातियो में ७३·४% कैथोलिक तथा २५ ३% प्रोटेस्टेंट हैं। सारब्रुकेन यहाँ की राजधानी है। जनसंख्या का घनत्व ४,५५१ प्रति वर्ग किमी० है।

संपूर्ण क्षेत्रफल के लगभग ५०% भाग में कृषि की जाती है तथा ३२% भाग जंगलों से ढका है। मुख्य फसलों मे जई, जौ, गेहूँ, राई तथा चुकंदर हैं।

कृषि के अतिरिक्त यहाँ खनिज एवं उद्योगों का भी विकास हुआ है। खानो से पर्याप्त कोयला निकलता तथा लोहा और इस्पात का निर्माण होता है। यहाँ के मुख्य नगरो मे सारब्रुकेन, न्यू किरचन (New Kirchen), डडवाइलर (Dudweiler) तथा सूल्जबाच (Sulzbach) हैं। [भू० का० रा०]

सारडिनिआ (Sardinia) द्वीप (क्षेत्रफल २५०८८ वर्ग किमी०) भूमध्य सागर मे कोर्सिका से साढे सात मील दक्षिण स्थित है। राजनीतिक स्तर पर यह इटली से संबंधित है। इसका भूगर्भिक निर्माण प्राचीन चट्टानो से हुआ है। यह पहाडी तथा पठारी द्वीप है। साधारणतः यहाँ के पहाड़ो की ऊँचाई १,३०० फुट है। पूर्वी भाग में ग्रेनाइट चट्टानें पाई जाती हैं। उत्तर पूर्वी भाग की मुख्य चोटी माट लिंबारा (४,३१२ फुट) है तथा उत्तर पश्चिम भाग में नुरा ज्वालामुखी है, जिसकी सबसे ऊँची चोटी माट फेरू (३,४४८ फुट) है। कापिडानो का मैदान दक्षिण में काग्लियारी से पश्चिम में ओरिस्टानो तक ९६ किमी० तक फैला हुआ है।

मुख्य नदियो में तिर्सो १५२ किमी० लंबी है जो मध्य द्वीपीय भाग से होकर ओरिस्टानो की खाडी में गिरती है। कोगीनास ६५ मील लंबी है और सँकरी घाटी में बहती हुई असीनारा की खाडी मे गिरती है। कभी कभी वर्षा की कमी के कारण ये नदियाँ सूख भी जाती हैं।

यहाँ की जलवायु भूमध्यसागरीय है। ग्रीष्म ऋतु में वर्षा नही होती। यहाँ उत्तरी पश्चिमी मैस्ट्राल तथा गर्म और नम सिरोको हवाएँ चला करती हैं। जनवरी एवं जुलाई का औसत ताप २४° सें० और ८०° सें० होता है। पहाड़ो पर लगभग १०१ सेंमी० किंतु इगलेशियास के उत्तर में केवल २५ ६३·५ सेंमी० वार्षिक वर्षा होती है। जंगल तथा झाडियाँ पतझड प्रकार के हैं।

यहाँ की जनसंख्या १२,७६,०२३ (१९६१) थी जो १९३६ की जनगणना से लगभग २३% अधिक है। जनसंख्या का घनत्व ३५२ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है। निर्धनता के कारण यहाँ बच्चो की मृत्यु तथा क्षय रोग की अधिकता है।

कृषि अविकसित है। १९५२ ई० के प्राप्त आँकडो के अनुसार ४८% भूमि पर जंगल एव चरागाह, २७% कृषि एवं ३ ५% पर बाग इत्यादि थे। मुख्य फसलो में गेहूँ, जौ, जई, अंगूर, मक्का, सेम, जैतून आदि हैं। १९५० ई० में इटली द्वारा सारडिनिआ के आर्थिक विकास के लिये बहुत बड़ी रकम प्रदान की गई थी जिसका उपयोग जलनिकास, कृषि तथा भूमिसुधार, चरागाह, सडक निर्माण और पर्यटन विकास में हुआ।

यहाँ खनिज उद्योग का विकास नही हो पाया है। जस्ता का अधिक उत्पादन होता है। अन्य खनिजो में ताँबा, सीसा, लोहा, मैंगनीज, निकल, कोबाल्ट, वंग (Tin), ऐंटीमनी प्रमुख हैं। कोयला का उत्पादन कम होता है। [भू० का० रा०]

सारणिक (Determinant) एक विशिष्ट प्रकार का बीजीय व्यंजक (वस्तुतः बहुपद) जिसमें प्रयुक्त की गई राशियो अथवा अवयवो की संख्या (पूर्ण) वर्ग रहती है। इन राशियो को प्रायः एक वर्गाकार विन्यास में लिखकर उसके अगल बगल दो ऊर्ध्वाधर सीधी रेखाएँ खीच दी जाती है, उदाहरणातः

$$\begin{vmatrix} \text{क} & \text{ख} \\ \text{ग} & \text{घ} \end{vmatrix} = \text{क घ} - \text{ख ग}, \quad \begin{vmatrix} \text{क}_1 & \text{क}_2 & \text{क}_3 \\ \text{ख}_1 & \text{ख}_2 & \text{ख}_3 \\ \text{ग}_1 & \text{ग}_2 & \text{ग}_3 \end{vmatrix} = \text{क}_1 \text{ख}_2 \text{ग}_3 - \text{क}_1 \text{ख}_3 \text{ग}_2 + \text{क}_2 \text{ख}_3 \text{ग}_1 - \text{क}_2 \text{ख}_1 \text{ग}_3 + \text{क}_3 \text{ख}_1 \text{ग}_2 - \text{क}_3 \text{ख}_2 \text{ग}_1$$

मे अवयवोवाले सारणिक को नवें क्रम का सारणिक कहते हैं। [प्रथम क्रम के सारणिक का प्रयोग कदाचित् ही होता हो, वस्तुतः |क| का अर्थ 'राशि क का मापाक' होता है।] नवें क्रम के सारणिक का विस्तार, अर्थात् उससे निरूपित बहुपद, म अवयवो के उन सब गुणनफलो को आगे लिखे नियम के अनुसार +१ या–१ से गुणा करके जोड़ने से प्राप्त होता है जो प्रत्येक पंक्ति से और प्रत्येक स्तंभ से एक एक अवयव लेने से बनते हैं। सारणिक के विस्तार के उस पद को मुख्य पद कहते हैं जिसके सभी अवयव सारणिक के उस विकर्ण पर स्थित हैं जो पहली पंक्ति और पहले स्तंभ के उभयनिष्ठ अवयव से होकर जाता है। मुख्य पद को दो ऊर्ध्वाधर रेखाओ के बीच में

लिखकर भी सारणिक को व्यक्त करने की प्रथा है, इस प्रकार उपर्युक्त क्रम ३ का सारणिक । $क_1$ $ख_2$ $ग_3$ । से व्यक्त किया जा सकता है।

चिह्न का नियम — माना, विचारस्थ, गुणनफल में $अ_प$ उस स्तभ की सख्या है जिससे पवी पक्ति का अवयव लिया गया है। अब अनुक्रम $अ_1$, $अ_2$, , $अ_न$ मे प्रत्येक पद $अ_प$ के लिये उन पदों की सख्या $स_प$ लिखो जो $अ_प$ की बाईं ओर हैं और $अ_प$ से बडी हैं। यदि $स_1+स_2+\cdots+स_न-म$ सम है तो गुणनफल के पूर्व ऋण चिह्न लेना होगा अन्यथा धन।

सारणिक के रूपांतरण — विस्तार करके अथवा थोडे से विचार से निम्न नियमो की सत्यता प्रमाणित की जा सकती है :

(१) **स्तंभ-पंक्ति परिवर्तन** — सभी स्तभों को पंक्तियो मे इस प्रकार परिवर्तित करने से कि मवाँ स्तभ बदलकर मवी पंक्ति बन जाय, सारणिक का मान नही बदलता। विलोमत. पक्तियो को स्तभों मे पूर्वोक्त नियम के अनुसार बदलने से भी सारणिक के मान में कोई परिवर्तन नही होता। इस नियम से स्पष्ट है कि जो नियम पक्तियो के लिये लागू है वैसा ही नियम स्तभो के लिये भी लागू होगा, इसलिये आगे के नियम केवल पक्तियों के लिये ही दिए जाएँगे।

(२) **सारणिक का किसी राशि से गुणा करना** — सारणिक के किसी एक स्तभ के सभी अवयवो को राशि क से गुणा करने का परिणाम सारणिक के मान को क से गुणा करना है।

(३) **किसी स्तभ का दो स्तभों में खडन** — शब्दो की अपेक्षा इस नियम को तीसरे क्रम के सारणिक से उद्धृत करना अधिक सुगम है :

$$\begin{vmatrix} प_1+च_1 & क_2 & क_3 \\ फ_1+छ_1 & ख_2 & ख_3 \\ ब_1+ज_1 & ग_2 & ग_3 \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} प_1 & क_2 & क_3 \\ फ_1 & ख_2 & ख_3 \\ ब_1 & ग_2 & ग_3 \end{vmatrix} + \begin{vmatrix} च_1 & क_2 & क_3 \\ छ_1 & ख_2 & ख_3 \\ ज_1 & ग_2 & ग_3 \end{vmatrix}$$

(४) **दो स्तभों का (परस्पर) विनिमय** — सारणिक के किन्ही दो स्तभो को आपस में बदलने से सारणिक का मान पूर्व मान का —१ गुना हो जाता है।

(५) **सारणिक का शून्यमान** — यदि किसी सारणिक के एक स्तंभ के अवयव किसी अन्य स्तभ के अवयवो से क्रमानुसार एक ही अनुपात में हो तो सारणिक का मान शून्य होता है।

दो सारणिकों का गुणनफल — एक ही क्रम के दो सारणिकों का गुणनफल उसी क्रम का सारणिक होता है जिसकी प वी पक्ति और स वें स्तभ का उभयनिष्ठ अवयव उन सब गुणनफलो का योग है जो दिए हुए सारणिको में से प्रथम की प वी पक्ति के अवयवो को क्रमानुसार दूसरे सारणिक के स वें स्तभ के अवयवो को गुणा करने से प्राप्त होते हैं।

सारणिक के किन्ही प पक्तियो और प स्तंभो में दो उभयनिष्ठ अवयवो से क्रम प का जो सारणिक बनता है उसे मूल सारणिक का प वें क्रम का उपसारणिक (जो वस्तुत क्रम म प का एक सारणिक है) कहते हैं, और शेष म-प पंक्तियों और म-प स्तभो के उभयनिष्ठ अवयवो से बने सारणिक को इस उपसारणिक का पूरक उपसारणिक। सारणिक सिद्धात में उपसारणिको की बड़ी महत्ता है।

प्रथम घात के समीकरणों का हल — मान लो कि तीन प्रथम घात के समीकरण

$$क_1य+क_2र+क_3ल=क_4$$
$$ख_1य+ख_2र+ख_3ल=ख_4$$
$$ग_1य+ग_2र+ग_3ल=ग_4$$

दिए हुए हैं जिनमें पादाकित राशियाँ $क_1$, $ख_2$, $ग_4$ ज्ञात हैं और य, र, ल, अज्ञात हैं जिनके मान ज्ञात करना अभीष्ट है; तो यह सिद्ध किया जा सकता है कि

$$य=\Delta_1/\Delta,\ र=\Delta_2/\Delta,\ ल=\Delta_3/\Delta$$

जहाँ Δ क्रम ३ का पूर्वोक्त सारणिक है और $\Delta_1, \Delta_2, \Delta_3$ क्रमानुसार Δ मे पहले, दूसरे, तीसरे स्तभों के उस स्तभ के विनिमय से बनते हैं जिसके अवयव ज्ञात राशियाँ $क_4$, $ख_4$, $ग_4$ हैं।

सारणिक व्यूह सिद्धात की आत्मा है, इसके प्रयोग से समीकरण समूहो का वर्गीकरण किया जा सकता है कि अमुक समूह का हल सभव होगा या नही और हल यदि सभव है तो कितने हल हो सकते हैं। उच्च बीजगणित का एक प्रमुख और मौलिक महत्ता का अग सारणिक है, और प्रायः गणित की प्रत्येक शाखा मे इसका प्रयोग होता है।

ऐतिहासिक — सारणिको का आविष्कारक जी० डबल्यू० लाइबनिजको माना जाता है, उसने १६९३ में दिला ओपिता को लिखे एक पत्र मे इसकी रचना के नियम का उल्लेख किया था। अधिक पूर्व नही तो १६८३ मे जापानी गणितज्ञ सेकी कोवा ने लगभग ऐसा ही नियम खोज लिया था। लाइबनिज की इस खोज का अधिक प्रभाव नही हुआ; जी० क्रेमर ने १७५० में सारणिकों की पुन खोज की और अपनी गवेषणा को प्रकाशित भी किया। सारणिकों की वर्तमान् सकेतनपद्धति का आविष्कार ए० केली ने १८४१ ई० में किया था। अनतक्रम के सारणिको का प्रयोग जी० डब्ल्यू० हिल ने किया है (एका मेथ० खड ८)।

सं० ग्रं० — (ऐतिहासिक) टी० म्योर दि थ्योरी ऑव डिटरमिनेंट्स इन दि हिस्टॉरिकल ऑर्डर ऑव डेवलपमेंट, खड १ – ४ (१९०६-२०), डी० ई० स्मिथ और वाई० मिकामी : ए हिस्ट्री ऑव जापानीज मैथेमेटिक्स (१९१४)।

(विषयप्रतिपादन) एम० बोकेर इट्रोडक्शन टु हायर एलजबरा (१९०७), सी०ई० कुलिस मेट्रिसेज ऍंड डिटरमिनोइड्स (१९२५), ए० ड्रेसडेन सॉलिड ऐनेलिटिकल ज्यामेट्री ऍंड डिटरमिनेंट्स (१९२१), एल० जी० वेल्ड थ्योरी ऑव डिटरमिनेंट्स, ए० सी० एरकिन डिटरमिनेंट्स ऍंड मेट्रिसेज्। [ह० च० गु०]

सारन बिहार राज्य का एक जिला है। इसका क्षेत्रफल ६९०० किमी० है। जनसख्या ३५, ८४, ९१८ (१९६१) है। सारन जिला गंगा, घाघरा तथा गडक नदियो के बीच त्रिभुजाकार फैला है। यह समतल मैदान है जो दक्षिण-पूरब दिशा में बहनेवाली नदियो द्वारा कई भागो में बँटा है। दाह, गडकी, धनाई, घागरी आदि

छोटी छोटी नदियाँ हैं जो गडक की पुरानी शाखाएँ हैं। खनुआ झराही, तथा खतसा भी ऐसी ही नदियाँ हैं। धान के अलावा रबी की फसलें भी यहाँ उपजती हैं। यहाँ सूखे का प्रभाव अधिक पड़ता है अत इस जिले में खाद्यान्न पर्याप्त मात्रा मे नही पैदा होता। छपरा, रेवेलगंज, सिवान, महाराजगंज, मीरगज, दीघवारा, सोनपुर तथा भैरव मुख्य नगर तथा बाजार हैं। जिले का मुख्यालय छपरा में है (देखें छपरा)। [ज० सि०]

सार्जेंट, जान सिंगर (१४४५ १४६१) ऐंग्लो अमरीकी चित्रकार। फ्लोरेंस में उत्पन्न हुआ, किंतु उसकी बाल्यावस्था के खेलने खाने के दिन अधिकतर कलानगरी रोम में बीते। उसकी माँ स्वय जलरगों की अच्छी कलाकार थी, उसने अपने पुत्र की कलात्मक अभिरुचियो को पहचाना और अन्य शिक्षा के साथ कला की ओर भी प्रेरित किया। बचपन से ही चित्रकौशल की सूक्ष्मताओं, हर मुद्रा, भावभंगिमा, मोड़तोड़, अनुपात और सयोजन को ज्यो का त्यो उतारने का उसका गंभीर प्रयास दीख पड़ा, बल्कि १८७३ मे उसकी इसी मौलिक प्रतिभा के कारण फ्लोरेंस की कला एकैडेमी द्वारा उसके एक चित्र पर पुरस्कार भी प्रदान किया गया। अठारह वर्ष की आयु में उसे पेरिस में दाखिला मिल गया। न सिर्फ अपने आकर्षक व्यक्तित्व, गभीर एव शात स्वभाव, वरन् इस अपरिपक्वावस्था में भी ऐसी सच्ची लगन, कार्यतत्परता और अनवरत कलासाधना में जुटे रहने की उसकी श्रमशील गुणग्राहक प्रवृत्तियो ने सबको मुग्ध कर लिया। वेलाजकेज और फ्राज हाल्स के तमाम वैज्ञानिक मतो एवं टेकनीकों को उसने प्रयत्न से आत्मसात् कर लिया। एक स्थल पर उसने स्वयं स्वीकार किया है—'मैं उतना प्रतिभावान् नही हूँ जितना परिश्रमी। परिश्रम से ही अपनी कला को साध पाया हूँ।'

उसने केंसिंगटन में अपना स्टूडियो स्थापित किया, किंतु १८८५ में वह ३३, टाइट स्ट्रीट, चेल्सिया जा बसा। दोनो स्टूडिओ को अंत में अपना एक निजी मकान खरीदकर उसने सयुक्त कर दिया जहाँ वह मृत्युपर्यंत कलासाधना मे जुटा रहा। मैडेम गाल्रिओ के पोर्ट्रेट चित्र पर अचानक बडा हंगामा मचा, पर पोर्ट्रेट पेंटर के रूप मे इसके बाद उसकी अधिकाधिक माँग हुई। कितने ही राजकुमार राजकुमारियो, कवि कलाकारो, अभिनेता अभिनेत्रियो, नृत्यकार संगीतज्ञो, राजनीतिज्ञो कूटनीतिज्ञो, ड्यूक डचेस, काउट काउंटेस, लार्ड लेडीज, अमीर उमरावो, सभ्रात एवं अभिजात वर्ग के व्यक्तियो के पोर्ट्रेट चित्र उसने बनाए जिससे उसकी ख्याति चरम सीमा पर पहुँच गई। जलरगो मे उसके ८० चित्र मिलते हैं जिनमे विस्मयकारी सधा सौंदर्य और हल्के ढग की रंगयोजना है।

जीवन के अंतिम २० वर्षों तक वह ऐतिहासिक धर्मप्रसगो के चित्रण में व्यस्त रहा। बोस्टन पब्लिक लाइब्रेरी के बड़े हाल मे, जो 'सार्जेंट हाल' के नाम से मशहूर है, उसकी इस रगमयी सज्जा की कौतूहलभरी झाँकी प्रस्तुत है।

सार्वजनिक संस्थान (पब्लिक कार्पोरेशन्स) सार्वजनिक संस्थान विधायक निर्मित संस्था है जो सामाजिक, वाणिज्यीय, आर्थिक या विकास संबंधी कार्यों को राज्य के लिये अथवा उसकी ओर से चलाती है। इसका अपना कोष है और व्यवस्था के आतरिक मामलो में यह अंशत. स्वायत्त होती है।

इस प्रकार के संस्थान के लिये विभिन्न नाम प्रयुक्त हुए हैं, यथा—गवर्नमेंट कारपोरेशन, स्टेच्युटरी कारपोरेशन, क्वासी गवर्नमेंटल बाडीज् इत्यादि। किंतु सार्वजनिक संस्थान ही अब सामान्यत. प्रयुक्त होता है।

इंग्लैंड में राज्य द्वारा टकसाल और डाक व्यवस्था पर नियंत्रण हो जाने पर भी काफी समय तक सार्वजनिक संस्थान का विचार न पनप सका। बाद में सीमित शक्तियो के साथ स्थापित राज्य के स्वायत्तशासन विभागो द्वारा पुलिस, शिक्षा, प्रकाशव्यवस्था इत्यादि के कार्यों ने उस विचार को विकसित किया। निर्धन लोगो की सहायता के लिये पुअर लाज् पारित हुए। इसके लिये नियुक्त आयुक्तो को स्थानीय प्रशासन में राजकीय नियंत्रण से स्वतंत्र रहकर कार्य करने के अधिकार मिले। किंतु राष्ट्रीयकृत उद्योगो और उपयोगिता सेवाओ के लिये सार्वजनिक नियंत्रण १९४५ से ही संभव हो सका।

स्थानीय संस्थाओं के अतिरिक्त भारत में स्वायत्त संस्थानो का उदय १८७९ में स्थापित 'द ट्रस्टीज ऑव द पोर्ट ऑव बांबे' से हुआ। बाद मे ऐसी ही सविधिक सस्थाएँ कलकत्ता और मद्रास के बंदरगाहों पर बनी।

सन् १९३५ मे भारत-सरकार-अधिनियम द्वारा रेलवे नियंत्रण सार्वजनिक संस्थान को सौंपने की योजना बनी। इस संस्थान को 'फेडरल रेलवे अथारिटी' कहा गया, किंतु अधिनियम के पूर्णत. लागू न होने से यह योजना क्रियान्वित न हुई।

संभव है, भारत में सार्वजनिक संस्थानो की स्थापना ब्रिटेन ने स्वायत्त सत्ता की माँग को पूरा करने और केंद्रीयकृत सरकार चलाने के दोषारोपण को दूर करने के लिये की हो।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद कई ऐसे सस्थानो की स्थापना कहवा, कपास, लाख, नारियल आदि के कृषिविकास, वस्तुनिर्माण और विक्रय के उद्देश्य से केंद्रीय अधिनियम के अंतर्गत हुई।

कार्यो और उद्देश्यो की भिन्नता के कारण सार्वजनिक सस्थानो का विधिवत् वर्गीकरण नही हो सका है। फ्राडमेन के वर्गीकरण को उग्रेसिंह ने संवर्धित करने की चेष्टा की, किंतु सुविधा की दृष्टि से निम्नांकित वर्गीकरण दिया जा रहा है :

१—बैंकिंग सस्थान (यथा—रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक)
२—वाणिज्य संस्थान (यथा—एल० आई० सी०, एअर इंडिया इंटरनेशनल)
३—वस्तुविकास संस्थान (यथा—टी बोर्ड, सिल्क बोर्ड)
४—बहूद्देशीय विकास संस्थान (यथा — दामोदर वैली कोरपोरेशन, फरीदाबाद डेवलपमेंट कारपोरेशन)
५—समाजसेवा सस्थान (यथा—एंप्लाइज् स्टेट इंश्योरेंस कारपोरेशन, हज कमेटी)
६—वित्तीय सहायता सस्थान (यथा—इंडस्ट्रियल फाइनेंशियल कारपोरेशन, यू० जी० सी०)

राष्ट्रीकरण से उत्पन्न व्यवस्था और शासन की समस्याओ को

सार्वजनिक सस्थानों द्वारा सुविधापूर्वक हल किया जा सकता है। ये सार्वजनिक सेवाओ को राजनीतिक ऊहापोहो से मुक्त रखते हैं। सामाजिक और वाणिज्य सबंधी सेवाओ के वाछित कार्य और साहस को अवरुद्ध करनेवाली नौकरशाही परपरा भी इसके लचीले और स्वायत्त होने के कारण नही पनप पाती। मुख्यत इसके निम्न लाभ हैं—

१—राजकीय विभागो के कार्याधिक्य को कम करते हैं, नए विभागो की स्थापना भी आवश्यक नही रहती।

२—इनमे एक ही कार्य करने के लिये समस्त शक्ति केंद्रित रहती है।

३—संस्थान द्वारा एक ही कार्य के सभी पक्षो का समान शासन होता है जो वैसे विभिन्न मंत्रणालयो के क्षेत्र में आते हैं।

४—दैनदिन शासन मे स्वतत्र होने के कारण विशेषज्ञो के ज्ञान का उपयोग आसानी से किया जा सकता है। प्रत्येक निर्णय के लिये सरकार की आज्ञा की आवश्यकता नही होती, इससे कार्य शीघ्र हो जाते हैं।

सार्वजनिक संस्थानो का चेयरमैन या अध्यक्ष राज्य द्वारा निर्वाचित होता है। सिल्क बोर्ड तथा एम्प्लाइज् स्टेट इश्योरेंस कारपोरेशन में केंद्रीय सरकार के मत्री ही अध्यक्ष हैं। इस संदर्भ में काग्रेस के संसदीय दल द्वारा नियुक्त एक उपसमिति ने यह सुझाव दिया कि सस्थानो में मत्री अथवा संसद का सदस्य अध्यक्ष न बनाया जाय। इसी प्रकार सचिवों या अन्य अधिकारियो को भी ये पद न दिए जायें। सस्थान के अध्यक्ष पद के लिये ऐसे व्यक्ति नियुक्त किए जायें जो पूरा समय उसी को दे सकें। उस समिति ने यह भी सुझाया कि संस्थानसेवा का निर्माण किया जाय जिसके सदस्य राष्ट्रपति के इच्छानुकूल ही पदासीन रहें।

सस्थानो की पूँजी या तो सरकार द्वारा, या शेयर बेचने से, या एक्साइज कर, शुल्क इत्यादि से प्राप्त होती है। ये संस्थान ऋण भी ले सकते हैं। वाणिज्य संस्थान वाणिज्य सिद्धातो पर चलते है। वे अपने लाभाश घोषित करते हैं अथवा आरक्षित कोष सचित करते हैं।

सस्थानो और मंत्री के बीच के सबध भी महत्वपूर्ण होते हैं। यद्यपि दैनदिन कार्यो में मत्री का कोई उत्तरदायित्व नही होता, फिर भी मूँदड़ा के मामले से लगता है कि गभीर स्थिति में मंत्री वैधानिक रूप से दैनदिन कार्यो के लिये भी उत्तरदायी होता है। वेड का सुझाव तो यह है कि सस्थानो को कार्यकारिणी का ही एक अंग मान लेना चाहिए। मत्री ही सस्थान के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है। वह उन्हें कार्यमुक्त भी कर सकता है। संस्थान को विघटित करने की शक्तियाँ भी मत्री में निहित रहती हैं। सस्थान की नीति और राज्य की नीति में समवस्था स्थापित करने के लिये मत्री आवश्यक निर्देश देता है।

संसद मे संस्थानो के सबध में प्रश्न उठाए जा सकते हैं। उनके वार्षिक विवरण, प्रतिवेदन पर बहस हो सकती है। कुछ सस्थानो को अपना बजट भी ससद में प्रस्तुत करना पड़ता है। ससद की एस्टिमेट्स और पब्लिक एकाउट्स कमेटियाँ भी सस्थानो पर नियंत्रण रखती हैं, किंतु उनकी अपनी सीमाओं के कारण आजकल संस्थान कार्यों के लिये एक भिन्न ससदीय समिति बनाने का प्रस्ताव भी विचाराधीन है।

स० ग्र० — फ्रीडमेन, डब्ल्यू० डब्ल्यू० १९५४, द पब्लिक कारपोरेशन, स्टीवेन्स ऐंड सन्स लदन; सिंह, राम उग्रे १९५७. पब्लिक कारपोरेशन इन इडिया, द इडियन लॉ जनरल मे; वो० १, नं० १, लखनऊ। [रा० कु०]

साल या साखू (Sal) एक दृढवृत्ति एवं अर्धपर्णपाती वृक्ष है जो हिमालय की तलहटी से लेकर ३,०००—४,००० फुट की ऊँचाई तक और उत्तर प्रदेश, बगाल, बिहार तथा असम के जगलों में उगता है। इस वृक्ष का मुख्य लक्षण है अपने आपको विभिन्न प्राकृतिक वासकारकों के अनुकूल बना लेना, जैसे ९ सेंमी० से लेकर ५०८ सेंमी० वार्षिक वर्षावाले स्थानो से लेकर अत्यत उष्ण तथा ठंढे स्थानों तक में यह आसानी से उगता है। भारत, बर्मा तथा श्रीलका देश में इसकी कुल मिलाकर ९ जातियाँ हैं जिनमें शोरिया रोबस्टा (Shorea robusta Gaertn. f) मुख्य हैं।

इस वृक्ष से निकाला हुआ रेज़िन कुछ अम्लीय होता है और धूप तथा औषधि के रूप में प्रयोग होता है। तरुण वृक्षो की छाल से प्राप्त लाल और काले रंग का पदार्थ रजक के काम आता है। बीज, जो वर्षा के आरंभ काल के पकते हैं, विशेषकर अकाल के समय अनेक जगहों पर भोजन में काम आते हैं।

इस वृक्ष की उपयोगिता मुख्यत इसकी लकड़ी में है जो अपनी मजबूती तथा प्रत्यास्थता के लिये प्रख्यात है। सभी जातियो की लकडी लगभग एक ही भाँति की होती है। इसका प्रयोग धरन, दरवाजे, खिडकी के पल्ले, गाडी और छोटी छोटी नाव बनाने में होता है। केवल रेलवे लाइन के स्लीपर बनाने में ही कई लाख घन फुट लकड़ी काम में आती है। लकड़ी भारी होने के कारण नदियो द्वारा बहाई नहीं जा सकती। मलाया मे इस लकडी से जहाज बनाए जाते हैं। [वृ० बि० श०]

सॉलोमन द्वीप इस द्वीपसमूह में १० बड़े एवं ४ छोटे द्वीप सम्मिलित हैं जिनका विस्तार ५° से १२° ३' द० अ० और १५५° ३०' से १६९° ४५' पू० दे० तक है। इनका कुल क्षेत्रफल २९४४० वर्गकिमी० तथा जनसख्या १,९४,६१६ (१९६०) है। इन द्वीपो मे नारियल, शकरकद, अनन्नास, केला और कुछ कोको उत्पन्न होता है। लेकिन नारियल का गोला या गरी ही केवल आर्थिक उत्पाद है। अब प्रयोगात्मक रूप में धान की खेती हो रही है। आयात की मुख्य वस्तुएँ धान, बिस्कुट, मास, आटा, चीनी, चाय, दूध, खनिज तेल, तंबाकू, साबुन एवं सूती वस्त्र हैं। यहाँ से गरी, लकडी, सुपारी और ट्रोकस घोंघे (Trochus shell) का निर्यात मुख्यत. इग्लैंड और आस्ट्रेलिया को होता है।

इस द्वीपसमूह में ग्वाडल कैनाल, मलैटा, सानक्रिस्तावल, न्यू जार्जिया, साबेन, पायसेउल, शार्टलैंड, मोनो या ट्रिजरी, वेला लैवेला, गैनोगगा, गिजो, रैंडोवा, रसेल, फ्लोरिडा एवं रेनील मुख्य द्वीप हैं। इनमें से अधिकाश पहाडी तथा जंगलो से ढके हुए हैं।

ग्वाडल कैनाल सबसे बड़ा द्वीप (६४०० वर्ग किमी० है तथा मलैटा सबसे अधिक जनसंख्यावाला (४६,०००) द्वीप है। होनियारा मे पश्चिम प्रशांत महासागरीय द्वीपो के उच्चायुक्त का प्रधान कार्यालय है। होनियारा की वार्षिक वर्षा ९०" है लेकिन कही कही ३००" तक वर्षा होती है। मलेरिया, विषम ज्वर यहाँ का प्रधान रोग है। शिक्षा गिरजाघरो द्वारा दी जाती है। सोलमन द्वीप मे केवल एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय (बालको के लिये) तथा अध्यापको के लिये एक प्रशिक्षण महाविद्यालय (कुकुम में) है। [रा० प्र० सिं०]

सावरकर, विनायक दामोदर (१८८३-१९६६) क्रांतिकारी सेनानी के रूप में स्वातंत्र्यवीर सावरकर का आधुनिक भारतीय इतिहास में विशेष स्थान है। नासिक के समीप भगूर ग्राम में एक संपन्न परिवार में जन्म होने पर भी बालक सावरकर का जीवन माता पिता की असामयिक मृत्यु से, असीम कष्टो की छाया में आरंभ हुआ। पूना मे हुए चाफेकर बंधुओ के बलिदान से प्रेरित होकर उन्होने १४-१५ वर्ष की उम्र मे कुलदेवी के समुख देश की स्वतंत्रता के लिये आमरण सघर्परत रहने की भीषण प्रतिज्ञा की। मौजी और घुमक्कड़ तरुणो को सघटित करके विद्यार्थी जीवन में ही 'राष्ट्रभक्त समूह' और मित्र-मेला, नामक गुप्त और प्रगट संस्थाओ की नासिक में क्रम से स्थापना करनेवाले वे ही थे। पूना के विद्यार्थी जीवन में विदेशी वस्त्रो की भव्य होली जलाकर लोकमान्य तिलक के स्वदेशी आदोलन को उग्रता प्रदान करनेवाले और औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग का पर्दाफाश करके देश को संपूर्ण स्वतंत्रता का मंत्र देनेवाले वे ही प्रथम देशभक्त थे। अत्यल्प काल में महाराष्ट्रीय तरुणो मे स्वतंत्रता की अग्नि को प्रज्वलित करके सावरकर जी ने १९०४ में सहस्रो की उपस्थिति मे 'मित्र मेला' नामक संस्था को 'अभिनव भारत' की सज्ञा प्रदान की। तरुणो को तलवार और संगीनो से युक्त होने का आदेश देकर उन्होने शत्रु के प्राणो की आहुतियो से स्वातंत्र्य यज्ञ को भड़काए रखने का आवाहन किया। उनके सशस्त्र क्रांति के सदेश और मंत्र ने मद्रास और बंगाल तक क्रांति की ज्वाला भड़का दी। क्रांति संघटनो की धूम मच गई। दिव्य ध्येय और प्रतिज्ञा का प्रथम चरण पूर्ण हुआ। तरुण सावरकर ने क्रांतियुद्ध का विस्तार करने के लिये इग्लैंड गमन का ऐतिहासिक निर्णय किया।

बी० ए० पास होते ही १९०६ में पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा की शिवाजी विद्यार्थी वृत्ति प्राप्त कर वे बैरिस्टरी पढ़ने के लिये इग्लैड गए। पं० वर्मा के लंदन स्थित भारत भवन' में उनका निवास था। अपने ध्येय की सिद्धि के लिये उन्होने सावधानी से कार्य आरंभ किया। अल्पकाल में ही 'भारत भवन' भारतीय क्रांति का केंद्र बन गया। लदन में 'अभिनव भारत' की एक शाखा की स्थापना करके उन्होने भारतीय क्रांतियुद्ध को अंतरराष्ट्रीयता प्रदान की। उनकी प्रेरणा से हेमचद्र दास और सेनापति बापट ने रूसी क्रांतिकारियों की सहायता से बम विद्या सीखकर भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध में बम युग का तेजस्वी अध्याय जोड़ा। अत्यत युक्ति से लंदन से पिस्तौलो के पार्सल भेजकर उन्होने भारतीय क्रांतिवीरो को शस्त्रों की आपूर्ति की। क्रांति की आग फैलाने के लिये 'सत्तावन का स्वातंत्र्य समर' और 'मैजिनी' नामक दो ग्रथो की उन्होंने रचना की। प्रकाशन के पूर्व ही दो देशो द्वारा जब्त होने पर भी उसका प्रकाशन कराकर उन्होने अंग्रेज शासन को मात दी। इस ग्रंथ से उनकी तेजस्वी अलौकिक बुद्धि, तीक्ष्ण सशोधक वृत्ति, विद्वत्ता एवं काव्यप्रतिभा का परिचय मिलता है। काव्यमय वर्णनो, अलौकिक बलिदानो की उत्तेजक कथाओ, श्रेष्ठतम ध्येयवाद के स्वातत्र्य सूक्तो से अलकृत यह ग्रंथ भारतीय क्रांति के वेद या गीता की प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ। राष्ट्र की अस्मिता को जागृत करके असंख्य भारतीयो को राष्ट्रभक्ति की दिव्य प्रेरणा देनेवाले इस ग्रथ का स्व० भगत सिंह नित्य पाठ करते थे। नेताजी सुभाष बोस ने तो इसे आजाद हिंद सेना मे पाठ्यग्रंथ के रूप में ही स्वीकार किया था।

विद्यार्थी सावरकर के क्रांतिकारी कार्यो से अंग्रेजी साम्राज्य दहल गया। लदन मे कर्जन वायली को मदनलाल धीगरा ने और नासिक मे कान्हेरे ने जैक्सन को, गोलियो का निशाना बनाया। दमनचक्र में सैकड़ो क्रांतिकारी वीर पिस गए। ज्येष्ठ बधु बाबाराव सावरकर को अंदमान भेजा गया। लंदन में साम्राज्य की छाती पर बैठकर अंतरराष्ट्रीय राजनीति के सूत्रो को हिलानेवाले तरुण सावरकर को फँसाने के लिये भी प्रबंध पूरा कर लिया गया। अस्वस्थ होने पर भी वे पेरिस से लौटते ही लदन स्टेशन पर पकड़े गए। मुकदमा चलाने के लिये उन्हे भारत भेजा गया। मार्ग में मार्सेलिस के निकट अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण होते ही वे विकल हो गए। स्वातंत्र्य लक्ष्मी का स्मरण कर जहाज के पोर्ट होल से फ्रास के अथाह सागर में छलांग लगाकर, गोलियो की बौछार मे तैरकर उन्होने फ्रास की भूमि पर पदन्यास किया। पर लोभी फ्रेंच पुलिस ने उन्हें अंग्रेज अधिकारियो को सौंप दिया। भारतीय न्यायालय ने उन्हें दो भिन्न आरोपो के अंतर्गत दो आजन्म कारावासो का अपूर्व दड दिया।

पचास वर्षों का कारावास भोगने के लिये उन्हें १९११ में अंदमान भेजा गया। बंदी पाल के मुख से कारावास की भीषणता का क्रूर वर्णन सुनकर वे पूछ बैठे 'अंग्रेजो का शासन भी रहेगा पचास वर्षों तक ?' सावरकर जी की अचूक भविष्यवाणी सत्य साबित हुई। बंदियो को सघटित करके अधिकारियो के अन्याय को, तथा अधिकारियो के प्रोत्साहन से होनेवाले धर्मपरिवर्तन को उन्होने रोका। काल कोठरी में भी उनकी प्रतिभा फूली फली। टूटी कील या नाखून से कोठरी की दीवार पर उन्होने सहस्रो पक्तियो की सुदर काव्य-रचना की। उन्हे स्वय कंठस्थ करके, एक मुक्त होनेवाले सहबंदी को कठस्थ कराकर उन्होने कारागार के बाहर भेजा। सरस्वती की ऐसी अनुपम आराधना किसी अन्य व्यक्ति ने स्यात् ही की हो। १९२४ में उन्हे कुछ शर्तों के साथ मुक्त करके रत्नागिरी मे स्थानबद्ध किया गया। १९३७ में वे पूर्णतया मुक्त हुए।

अखिल भारतीय हिंदू महासभा के वे लगातार छह बार अध्यक्ष चुने गए। उनके काल मे हिंदू सभा एक महत्वपूर्ण अखिल भारतीय संस्था के रूप में अवतीर्ण हुई। २२ जून, १९४० के दिन नेताजी बोस ने उनसे ऐतिहासिक भेंट की। उनसे प्रेरणा लेकर विदेश में नेताजी ने हिंद सेना का सघटन किया। सावरकर जी के सैनिकीकरण आंदोलन के कारण ही हिंद सेना को प्रशिक्षित सैनिको की पूर्ति होती थी। स्वयं नेताजी ने अपने एक आकाशवाणी से दिए भाषण में उनके प्रति धन्यवाद और आभार प्रगट करते हुए इसे स्वीकार किया।

स्वतंत्रता के उद्गाता और क्रांतिकारी सेनानी के रूप में वीर सावरकर का ऐतिहासिक महत्व है। साथ ही राष्ट्र के मंत्रद्रष्टा के रूप में भी उनका महत्व उससे कम नहीं। 'हिंदू को राष्ट्र मानकर हिंदुत्व ही राष्ट्रीयता है' इस सिद्धांत को उन्होंने प्रस्थापित किया। राष्ट्रवाद की नींव पर उन्होंने समाजसुधार का अमूल्य कार्य किया। स्वतंत्र राष्ट्र के लिये भाषा के महत्व को समझकर सर्वप्रथम सावरकर जी ने ही भाषा और लिपिशुद्धि के आंदोलन का श्रीगणेश किया। समय समय पर राष्ट्र को भावी संकटों से आगाह करके उन्होंने पहले ही उन संकटों को टालने के लिये उपयोगी संदेश दिए।

देशभक्ति सावरकर जी के जीवन का स्थायी भाव था। देशभक्ति नामक दसवें रस के जनक वीर सावरकर ही थे। उनका जीवन शौर्य, साहस, धैर्य और सहनशीलता का प्रतीक है। अपने महान् ध्येय की सिद्धि के लिये मानव दुःख, कष्ट, यातनाओं, उपेक्षाओं और अपमान का हलाहल कहाँ तक पचा सकता है, इसका उदाहरण सावरकर जी का पवित्र जीवन है। समर्थ गुरु रामदास ने शारदा को वीर पुरुषों की भार्या कहा है। इसका प्रमाण सावरकर जी हैं जिन्होंने आजीवन कष्ट और यातनाएँ झेलते हुए भी लगभग ८-१० हजार पृष्ठों के अमर साहित्य का सर्जन किया। साहित्य के सभी क्षेत्रों में उनकी प्रतिभा ने चमत्कार दिखाया। उसमें प्रगल्भता, अलौकिकता और विद्युत् सी चपलता है। सावरकर वक्ता भी बेजोड थे, लाखों श्रोताओं के जनसमूह को अपने पीछे खींच ले आने की अद्भुत शक्ति उनमें थी।

आजन्म शौर्य और साहस से मृत्यु को दूर रखनेवाले सावरकर ने अंत में मृत्यु को भी मात कर दिया। ८० दिनों तक उपवास करके उन्होंने मृत्यु का आलिंगन किया। [म० गो० प०]

सावित्री और सत्यवान की कथाएँ पुराणों और महाभारत में मिलती हैं। वह मद्रदेश के राजा अश्वपति की पुत्री थी तथा शाल्व देश के भूतपूर्व राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान से स्वयंवर ढंग से ब्याही थी। अपने पति के अल्पायुष्य और सास ससुर की अंधावस्था को जानते हुए भी उसने उनकी खूब सेवाएँ कीं। सत्यवान के दीर्घायुष्य के लिये प्रार्थना करना उसने अपना नित्यकर्म बना लिया। एक दिन सत्यवान वन में लकड़ी काटने गया। वहाँ उसे सिरदर्द हुआ और सावित्री की गोद में ही उसकी मृत्यु हो गई। यमराज ने आकर उसका प्राण ले जाने का उपक्रम किया पर सावित्री उसका साथ छोड़ने को तैयार न हुई और पीछे पीछे चली। उस पतिव्रता को लौट जाने के लिये बार बार समझाते हुए यमराज ने अनेक वर दिए, जिनसे अंधे सास ससुर को दृष्टियाँ मिल गईं, उनका राज्य उन्हें मिल गया, उसके सौ सहोदर भाई हुए तथा उसे सौ औरस पुत्रों को पैदा करने का वचन मिला। अंतिम वर देने और सावित्री की मधुर, पातिव्रतपूर्ण तथा बुद्धिमत्तापूर्ण प्रार्थनाओं को सुनकर सत्यवान का प्राण छोड देने को यमराज विवश हो गए। सत्यवान जी उठा और सावित्री भारत की पतिव्रता स्त्रियों में सर्वप्रथम गिनी जाने लगी।

सावित्री शंकर की स्त्री उमा अथवा पार्वती का भी नाम है। कश्यप की स्त्री का भी नाम सावित्री था।

सं० ग्रं०—मत्स्यपुराण, अध्याय २०७ से २१३; ब्रह्मवैवर्त पुराण, अध्याय २३ और आगे; महाभारत का सत्यवान सावित्री उपाख्यान, वनपर्व, अध्याय २९२ और आगे। [वि० शु० पा०]

साहारा मरुस्थल संसार का सबसे बडा मरुस्थल है जो अफ्रीका महाद्वीप के उत्तरी भाग में स्थित है। इस प्रदेश में वर्षा बहुत कम होती है। यहाँ कई सूखी नदियाँ हैं जिन्हें 'वाडिया' कहते हैं। इनमें पानी केवल वर्षा के समय ही कुछ दिनों तक रहता है अन्यथा ये सूखी रहती हैं। यहाँ की जलवायु बहुत विषम है। दिन में अत्यधिक गरमी होती है और रात में काफी जाडा पडता है।

इस प्रदेश का अधिकतर भाग रेतीला है। यहाँ वर्षा न होने के कारण वनस्पतियों का प्रायः अभाव है। कहीं कहीं कुछ बबूल, कीकर तथा कँटीली झाडियाँ मिल जाती हैं। इनकी जडें काफी लंबी और गहराई तक होती हैं तथा पत्तियाँ काँटेदार और छाल मोटी होती है ताकि नमी का अभाव न हो। जहाँ पानी की थोडी सुविधा होती है वहाँ मरूद्यान पाए जाते हैं जिनके निकट खजूर होते हैं और गेहूँ, जौ, बाजरा तथा मक्के की खेती होती है। इन्हीं मरूद्यानों के निकट कुछ लोग रहते हैं जो भेड, बकरी तथा ऊँट पालते हैं। घास समाप्त होने पर ये अपने जानवरों के साथ अन्य चरागाहों की खोज में घूमते फिरते हैं ये यायावर या बद्दू बंजारे कहलाते हैं। ये झगडालू भी होते हैं।

साहारा मरुस्थल में यातायात की बडी कठिनाई है। यहाँ के मरूद्यान तथा ऊँटों ने यात्रा को बहुत कुछ संभव और सुलभ बनाया है। मरूद्यानों से होते हुए कारवाँ मार्ग जाते हैं। आजकल पश्चिमी एवं उत्तरी साहारा के कई स्थानों में खनिजों के प्राप्त हो जाने से उनके केंद्रों तक मोटर लारियाँ, ऊँट और रेलें तीनों ही जाती हैं। यहाँ के रहनेवाले कारवाँ के व्यापारियों को खजूर, चटाइयाँ, कंबल तथा चमडे के थैले, पेटी आदि देकर बदले में चीनी, कपडा आदि कई लाभदायक वस्तुएँ प्राप्त करते हैं। [रा० स० ख०]

साहित्य अकादेमी अथवा 'नेशनल अकादेमी ऑव लेटर्स' का विधिवत् उद्घाटन भारत सरकार द्वारा १२ मार्च, १९५४ को हुआ था। भारत सरकार के जिस प्रस्ताव में अकादेमी का विधान निरूपित किया गया था, उसमें अकादेमी की परिभाषा यह दी गई थी — 'भारतीय साहित्य के विकास के लिये कार्य करनेवाली एक राष्ट्रीय संस्था, जिसका उद्देश्य होगा ऊँचे साहित्यिक प्रतिमान कायम करना, विविध भारतीय भाषाओं में होनेवाले साहित्यिक कार्यों को अग्रसर करना और उनमें मेल पैदा करना तथा उनके माध्यम से देश की सांस्कृतिक एकता का उन्नयन करना।' यद्यपि यह संस्था सरकार द्वारा स्थापित की गई है, फिर भी इसका कार्य स्वायत्त रूप से चलता है।

अकादेमी की परम सत्ता ७० सदस्यों की एक परिषद् (जनरल काउंसिल) में न्यस्त है, जिसका गठन इस प्रकार से होता है : अध्यक्ष, वित्तीय सलाहकार, भारत सरकार द्वारा मनोनीत पाँच व्यक्ति, पंद्रह राज्यों के पंद्रह प्रतिनिधि, साहित्य अकादेमी द्वारा मान्यताप्राप्त सोलह भाषाओं के सोलह प्रतिनिधि, भारत के विश्व-

हिमालय—प्रकृति का क्रीडास्थल
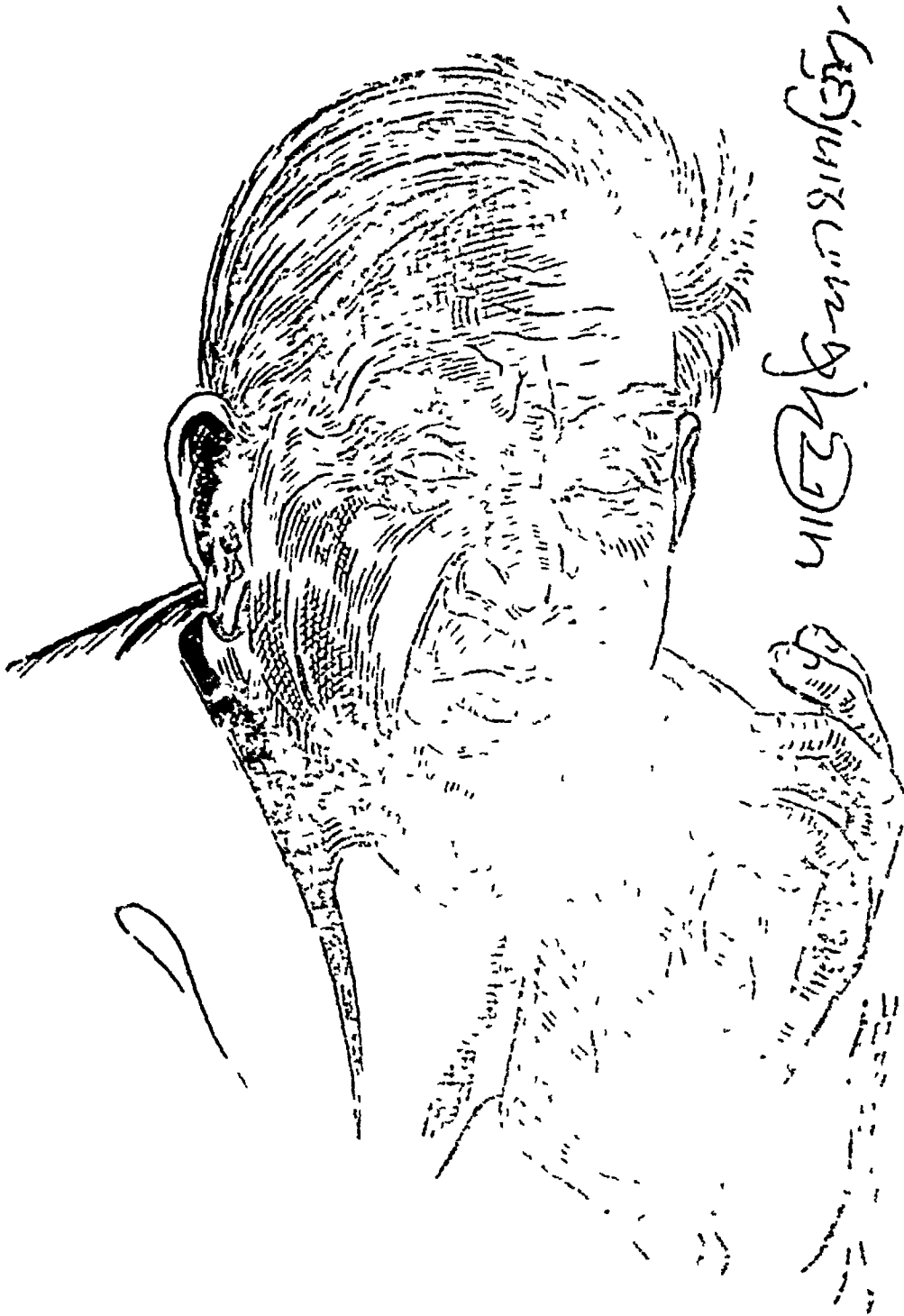
(देखें पृष्ठ ३७१)

विद्यालयों के बीस प्रतिनिधि, परिषद् द्वारा चुने हुए साहित्य क्षेत्र में विख्यात आठ व्यक्ति एवं संगीत नाटक अकादेमी और ललित कला अकादेमी के दो दो प्रतिनिधि। इसके प्रथम अध्यक्ष थे जवाहरलाल नेहरू और उपाध्यक्ष डा० जाकिर हुसेन।

साहित्य अकादेमी की सामान्य नीति और उसके कार्यक्रम के मूलभूत सिद्धांत परिषद् द्वारा निर्धारित होते हैं और उन्हें कार्यकारी मंडल के प्रत्यक्ष निरीक्षण में क्रियान्वित किया जाता है। प्रत्येक भाषा के लिये एक परामर्शमंडल है, जिसमें प्रसिद्ध लेखक और विद्वान् होते हैं, जिसके परामर्श पर तत्संबंधी भाषा का विशिष्ट कार्यक्रम नियोजित और कार्यान्वित होता है। इनके अतिरिक्त कतिपय विशिष्ट योजनाओं के लिये विशेष संपादकमंडल और परामर्शमंडल भी हैं।

परिषद् का कार्यक्रम ५ वर्ष का होता है। वर्तमान परिषद् का निर्वाचन १९६३ में हुआ था और उसका प्रथम अधिवेशन मार्च, १९६३ में। अकादेमी के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कार्यकारीमंडल के सदस्यों एवं अधीनस्थ समितियों का निर्वाचन परिषद् द्वारा होता है।

भारत के संविधान में परिगणित चौदह प्रमुख भाषाओं के अतिरिक्त साहित्य अकादेमी ने अंग्रेजी और सिंधी भाषाओं को भी न्यूनाधिक रूप में अपना कार्यक्रम क्रियान्वित करने के लिये मान्यता दी है। इन भाषाओं के लिये पृथक् परामर्शमंडल भी गठित किए गए हैं।

साहित्य अकादेमी का मुख्य कार्यक्रम अनेक भाषाओं के देश भारत की विशिष्ट परिस्थिति से उत्पन्न चुनौती का सामना करने की दिशा में है, कि यद्यपि विभिन्न भाषाओं में रचा जाने पर भी भारतीय साहित्य एक है, फिर भी एक ही देश में एक भाषा के लेखक और पाठक अपने ही देश की पड़ोसी भाषा की गतिविधि के संबंध में प्राय अनजान रहते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि भाषा और लिपि की दीवारों को लाँघकर भारतीय लेखक एक दूसरे से अधिकाधिक परिचित हो, और इस देश की साहित्यिक विरासत की विविधता और अनेकरूपता का रस अधिकाधिक ग्रहण कर सकें।

अकादेमी के कार्यक्रम में इस चुनौती का उत्तर दो तरह से दिया गया है। एक तो सभी भारतीय भाषाओं में जो साहित्यिक कार्य चल रहा है उनके विषय में जानकारी देनेवाली सामग्री प्रकाशित की जा रही है, उदाहरणार्थ 'भारतीय साहित्य की राष्ट्रीय ग्रंथसूची,' 'भारतीय साहित्यकार परिचय', 'विभिन्न भाषाओं के साहित्य के इतिहास', अकादेमी की पत्रिका 'इंडियन लिटरेचर' इत्यादि, और दूसरे प्रत्येक भाषा से चुने हुए प्राचीन और नवीन श्रेष्ठ ग्रंथों का अनुवाद अन्य भाषाओं में कराया जाता है, जिससे हिंदी, बँगला, तमिल आदि प्रमुख भारतीय भाषाओं के उत्तम लेखकों को देश की सभी प्रमुख भाषाओं में पाठक प्राप्त हो।

साथ ही प्रमुख विदेशी श्रेष्ठ ग्रंथों का सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने का भी कार्यक्रम है, जिससे विश्व के महान् साहित्यिक ग्रंथ अंग्रेजी जाननेवाली अल्पसंख्यक जनता को ही नहीं, परन्तु सभी भारतीय पाठकों को सुलभ हो। साहित्य अकादेमी यूनस्को के 'ईस्ट वेस्ट मेजर प्रोजेक्ट' नामक कार्यक्रम की पूर्ति में भी सहयोग देती है और विदेशों की साहित्य एवं सांस्कृतिक संस्थाओं से साहित्यिक सूचनाओं और साहित्यिक सामग्री का आदान प्रदान भी करती है।

अकादेमी के महत्वपूर्ण प्रकाशनों में 'भारतीय साहित्य ग्रंथसूची' (बीसवीं शती), भारतीय साहित्यकार परिचय', 'आज का भारतीय साहित्य', समसामयिक भारतीय कहानियों के प्रतिनिधि संकलन, भारतीय कविता, कालिदास की कृतियों का प्रामाणिक संस्करण, संस्कृत साहित्य के संकलन, बँगला, उड़िया, मलयलम, असमिया, तेलुगु आदि भाषाओं के साहित्येतिहास; असमिया, काश्मीरी, मलयलम, पंजाबी, तमिल, तेलुगु, उर्दू के काव्यसंग्रह, असमिया, पंजाबी आदि लोकगीतों के संग्रह, भक्तिकाव्य के संकलन इत्यादि हैं। अप्रैल, १९६४ तक अकादेमी के ३१५ प्रकाशन सब भाषाओं में हो चुके थे जिनमें से ४३ हिंदी में हैं।

हिंदी संबंधी कार्य के लिये परामर्शदात्री समिति के सदस्य हैं (१९६४ में): सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त (अब स्व०) सुमित्रानंदन पंत, डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', डा० रामकुमार वर्मा, रामधारीसिंह 'दिनकर', बालकृष्ण राव, डा० हरिवंश राय बच्चन, डॉ० नगेंद्र, डा० शिवमंगलसिंह 'सुमन' तथा डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (संयोजक)। [प्रा०]

साहित्यदर्पण (संस्कृत साहित्य) मंमट के काव्यप्रकाश के अनंतर अपनी प्रमुखता से यह प्रथित है। काव्य के श्रव्य एवं दृश्य दोनों प्रभेदों के संबंध में सुपुष्ट विचारों की विस्तृत अभिव्यक्ति इस ग्रंथ की विशेषता है। काव्यप्रकाश की तरह इसका विभाजन १० परिच्छेदों में है और प्रायः उसी क्रम से विषयविवेचन भी है। इसकी अपनी विशेषता है छठे परिच्छेद में जिसमें नाट्यशास्त्र से संबद्ध सभी विषयों का क्रमबद्ध रूप से समावेश कर दिया गया है। साहित्यदर्पण का यह सबसे सरल एवं विस्तृत परिच्छेद है। काव्यप्रकाश तथा संस्कृत साहित्य के प्रमुख लक्षण ग्रंथों में नाट्य संबंधी अंश नहीं मिलते। साथ ही नायक-नायिका-भेद आदि के संबंध में भी उनमें विचार नहीं मिलते। साहित्यदर्पण के तीसरे परिच्छेद में रसनिरूपण के साथ साथ नायक-नायिका-भेद पर भी विचार किया गया है। यह भी इस ग्रंथ की अपनी विशेषता है। ग्रंथ की लेखनशैली अतीव सरल एवं सुबोध है। पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का युक्तिपूर्ण खंडनादि होते हुए भी काव्यप्रकाश की तरह जटिलता इसमें नहीं मिलती।

दृश्यकाव्य का विवेचन इसमें नाट्यशास्त्र और धनिक के दशरूपक के आधार पर है। रस, ध्वनि और गुणीभूत व्यंग्य का विवेचन अधिकांशत. ध्वन्यालोक और काव्यप्रकाश के आधार पर किया गया है तथा अलंकार प्रकरण विशेषत रुय्यक के 'अलंकारसर्वस्व' पर आधृत है। संभवत इसीलिये इन आचार्यों का मतखंडन करते हुए भी ग्रंथकार उन्हें अपना उपजीव्य मानता है तथा उनके प्रति आदर व्यक्त करता है — 'इत्यलमुपजीव्यमानानां मान्यानां व्याख्यातेषु कटाक्षनिक्षेपेण' और 'महतां संस्तव एवगौरवाय' आदि।

साहित्यदर्पण में काव्य का लक्षण भी अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से स्वतंत्र रूप में किया गया मिलता है। साहित्यदर्पण से पूर्ववर्ती ग्रंथों में

कथित काव्यलक्षण क्रमश विस्तृत होते गए हैं और चद्रालोक तक आते आते उनका विस्तार अत्यधिक हो गया है, जो इस क्रम से द्रष्टव्य हैं — 'सक्षेपात् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना, पदावली काव्यम्' (अग्निपुराण); 'शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' (दडी) 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्' (रुद्रट), 'काव्य शब्दोऽय, गुणालंकार संस्कृतयो शब्दार्थयोर्वर्तते' (वामन), 'शब्दार्थशरीरम् तावत् काव्यम्' (आनदवर्धन), 'निर्दोष गुणवत् काव्य अलकारैरलकृतम् रसान्वितम्' (भोजराज), 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुन क्वापि' (ममट) 'गुणालंकाररीतिरससहितौ दोषरहितौ शब्दार्थौ काव्यम्' (वाग्भट), और 'निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुण-भूषिता, सालकाररसानेकवृत्तिर्भाक् काव्यशब्दभाक्' (जयदेव)। इस प्रकार क्रमश विस्तृत होते काव्यलक्षण के रूप को साहित्यदर्पणकार ने 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्' जैसे छोटे रूप में बाँध दिया है। केशव मिश्र के अलकारशेखर से व्यक्त होता है कि साहित्यदर्पण का यह काव्यलक्षण आचार्य शौद्धोदनि के 'काव्यं रसादिमद् वाक्यम् श्रुतं सुखविशेषकृत्' का परिमार्जित एवं सक्षिप्त रूप है।

ग्रंथदर्शन — साहित्यदर्पण १० परिच्छेदो मे विभक्त है प्रथम परिच्छेद में काव्यप्रयोजन, लक्षण आदि प्रस्तुत करते हुए ग्रथकार ने ममट के काव्यलक्षण 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलकृती पुन क्वापि' का बडे सरभ के साथ खडन किया है और स्वरचित लक्षण 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्' को ही शुद्धतम काव्यलक्षण प्रतिपादित किया है। पूर्वमतखडन एव स्वमतस्थापन की यह पुरानी परपरा है। द्वितीय परिच्छेद मे वाच्य और पद का लक्षण कहने के बाद अभिधा, लक्षणा, व्यजना आदि शब्दशक्तियो का विवेचन किया गया है। तृतीय परिच्छेद में रसनिष्पत्ति का बडा ही सुदर विवेचन है और रसनिरूपण के साथ साथ इसी परिच्छेद मे नायक-नायिका-भेद पर भी विचार किया गया है। चतुर्थ परिच्छेद में काव्य के भेद ध्वनिकाव्य और गुणीभूतव्यंग्यकाव्य आदि का विवेचन है। पचम परिच्छेद में ध्वनिसिद्धात के विरोधी सभी मतो का तर्कपूर्ण खडन और ध्वनिसिद्धात का समर्थन प्रौढता के साथ निरूपित है। छठे परिच्छेद मे नाटचशास्त्र से सबद्ध विषयो का प्रतिपादन है। यह परिच्छेद सबसे बडा है और इसमें लगभग ३०० कारिकाएँ हैं, जबकि सपूर्ण ग्रथ की कारिकासंख्या ७६० है। इससे नाट्यसबधी विवेचन का अनुमान किया जा सकता है। सप्तम परिच्छेद में दोषनिरूपण, अष्टम परिच्छेद मे तीन गुणों का विवेचन और नवम परिच्छेद में वैदर्भी, गौडी, पाचाली आदि रीतियो पर विचार किया गया है। दशम परिच्छेद मे अलंकारो का सोदाहरण निरूपण है जिनमें १२ शब्दालकार, ७० अर्थालंकार और ७ रसवत् आदि कुल ८९ अलकार परिगणित हैं।

साहित्यदर्पण के रचयिता विश्वनाथ ने अपने सबंध में ग्रथ की पुष्पिका में जो विवरण दिया है उसके आधार पर इनके पिता का नाम चद्रशेखर और पितामह का नाम नारायणदास था। विश्वनाथ की उपाधि महापात्र थी। इन्होने काव्यप्रकाश की टीका की है जिसका नाम 'काव्यप्रकाशदर्पण' है। ये कलिंग के रहनेवाले थे। साहित्यदर्पण के प्रथम परिच्छेद की पुष्पिका मे इन्होंने अपने को 'साधिविग्रहिक', 'अष्टादशभाषावारविलासिनीभुजंग' कहा है पर किसी राजा या राज्य का नामोल्लेख नही किया है। साहित्यदर्पण के चतुर्थ परिच्छेद में अलाउद्दीन खिलजी का उल्लेख पाए जाने से ग्रथकार का समय अलाउद्दीन के बाद या समान सभावित है। जंबू की हस्तलिखित पुस्तकों की सूची [स्टीन] में साहित्यदर्पण की एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख मिलता है, जिसका लेखनकाल १३८४ ई० है, अत साहित्यदर्पण के रचयिता का समय १४वी शताब्दी ठहरता है।

साहित्यदर्पण के अतिरिक्त विश्वनाथ द्वारा काव्यप्रकाश की टीका का उल्लेख पहले आ चुका है। इनके अतिकाव्य विश्वनाथ ने अनेक काव्यो की भी रचना की है जिनका पता साहित्यदर्पण और काव्यप्रकाशदर्पण से लगता है। 'राघव विलास' सस्कृत महाकाव्य, 'कुवलयाश्वचरित्' प्राकृत भाषाबद्ध काव्य, 'नरसिंहविजय' सस्कृत काव्य, 'प्रभावतीपरिणय' और 'चद्रकला' नाटिका तथा 'प्रशस्ति-रत्नावली' जो सोलह भाषाओ में रचित करभक है, का उल्लेख इन्होने स्वयं किया है और उनके उदाहरण भी आवश्यकतानुसार दिए हैं जिनसे साहित्यदर्पणकार की बहुभाषाविज्ञता और प्रगल्भ पाडित्य की अभिव्यक्ति होती है। [वि० ना० त्रि०]

साहूकारी का सरल अर्थ वे कार्य हैं जो साहूकार करते हैं। साहूकार का प्रधान कार्य ऐसे व्यक्तियो को रुपया उधार देना है जिनको उत्पादक या अनुत्पादक कार्यों के लिये रुपयो की बड़ी आवश्यकता रहती है। यद्यपि साहूकारो का प्रधान कार्य रुपए उधार देना है तथापि कुछ साहूकार इस कार्य के साथ हुडी भुनाना, दूसरो का रुपया सूद पर जमा करना, निज का व्यवसाय करना आदि कार्य भी करते हैं।

साहूकारी की प्रथा बहुत प्राचीन है और संसार के सभी देशों में फैली हुई है। भारत में साहूकारी के अस्तित्व के प्रमाण हजारो वर्ष पूर्व से ही मिलते हैं किंतु यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि यह प्रथा कब से उत्पन्न हुई। वेद, पुराण एव बौद्ध साहित्य के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भारत मे साहूकारी ईसा से २००० वर्ष पूर्व विद्यमान थी। ऋग्वेद में कर्ज के लिये ऋण शब्द मिलता है। कर्ज अदा करनेवाले को ऋणी कहा जाता था।

जातक ग्रथो से हमें यह ज्ञात होता है कि ईसा के पूर्व पाँचवीं एव छठी शताब्दी मे 'सेठ' लोग रुपया उधार देते थे। सूद की दर कर्जदार की जाति या वर्ण के अनुसार निश्चित होती थी। शूद्रों से व्याज अधिक लिया जाता था किंतु ब्राह्मणो से कम। साहूकारी को उस समय श्रेष्ठ व्यापार समझा जाता था। बाद में वैश्य लोग साहूकारी का कार्य करने लगे। आज भी अधिकाश बनिए या व्यापारी अपने व्यापार के साथ ही साहूकारी का कार्य भी करते हैं।

प्रचीन काल में साहूकारो की बडी प्रतिष्ठा थी। वे गरीबो को ही नही अपितु राजा महाराजाओ तक को भी आवश्यकता पडने पर उधार दिया करते थे। वे समाज में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। उन्हें श्रेष्ठपुरुष अथवा महाजन के नाम से सबोधित किया जाता था। साहूकारो ने ग्रामों के आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण कार्य

देखिए—सिंचाई, पृ० सं० ६५

देखिए—सिंधु घाटी की संस्कृति, पृ० सं० ७१
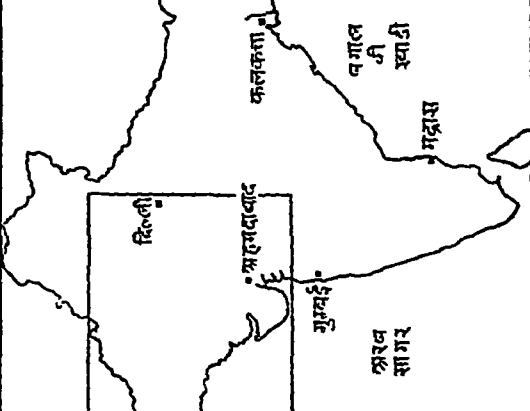
किया है। कृषि की उन्नति में उन्होने काफी योग दिया है। वे किसान की सुखवृद्धि में ही अपना हित समझते थे। आज भी साहूकार छोटे छोटे व्यापारियो, श्रमिको, शिल्पकारों, कृषको तथा अन्य व्यवसायियो को उत्पादन कार्य के लिये रुपया उधार देते हैं। आवश्यकता पडने पर लेनदार को सोने चाँदी के जेवर गिरवी रखकर भी रुपया उधार लेना पड जाता है। कृषकों को भी कभी कभी अपनी भावी फसल जमानत के तौर पर गिरवी रखनी पडती है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, साहूकार हुंडी भुनाने का कार्य भी करते हैं। हुंडियों से देश को आंतरिक व्यापार मे बडी सहायता मिलती है।

कृषि के अतिरिक्त साहूकार कुटीर उद्योग धंधो को भी सहायता पहुँचाते हैं। वे कारीगरो की कच्चे माल से सहायता करते हैं और माल तैयार होने पर उनसे खरीद भी लेते हैं। इससे कारीगरो को अपना माल वेचने मे कठिनाई नही होती। इस प्रकार हम देखते हैं कि साहूकारी से ग्रामीण आर्थिक आवश्यकताओ की ही पूर्ति नही होती वल्कि छोटे छोटे व्यापार को भी बडी मदद मिलती है।

उपर्युक्त गुणो के अतिरिक्त साहूकारी प्रथा में कुछ दोष भी हैं। साहूकार किसानो को रुपया तो बडी आसानी से दे देते हैं किंतु व्याज की दर आर्थिक दृष्टि से बडी ऊँची वसूल करते हैं। गरीब किसानों का इससे बडा शोषण होता है। इसके अतिरिक्त साहूकार कर्जदारों से बेईमानी करने मे भी नही चूकते। बहुधा अशिक्षित व्यक्तियो से साहूकार खाली कागज पर अँगूठे का निशान लगवा लेते हैं और बाद में उसमें मनचाही रकम भरकर मनचाहा सूद वसूल करते हैं। वे लोगो को अत्यधिक कर्ज के भार से लादकर उन्हे अपना गुलाम बना लेते है और उनसे अनेक प्रकार की वेगार भी लेते हैं। अपने स्वार्थ के लिये साहूकार, विशेष कर पठान साहूकार, बडी ज्यादती करते हैं। उनके शिकार अधिकतर शहरो के मजदूर तथा हरिजन होते हैं। वे उन्हे एक आने, दो आने फी रुपया प्रति माह सूद पर ऋण देते हैं। उनका लोगों पर इतना आतक रहता है कि जैसे भी बने वे उनका रुपया चुकाते रहते हैं।

साहूकारी के दुर्गुणो को दूर करने के लिये निम्न उपाय प्रयोग में लाना आवश्यक है। सर्वप्रथम साहूकारो के कार्यो पर सरकार द्वारा नियंत्रण रखना आवश्यक है। साहूकारो को उनके कार्य के लिये प्रमाणपत्र लेना अनिवार्य कर देना चाहिए। कुछ राज्यो की सरकारो ने इस प्रकार के नियम बनाए भी हैं। इसके अतिरिक्त सूद की उचित दर सरकार द्वारा निश्चित कर देनी चाहिए। साथ ही साहूकारो का आधुनिक बैंक से सबध स्थापित कर देना चाहिए जिससे साहूकार बैंक से आर्थिक सहायता ले सकें।

कुछ व्यक्तियो का विचार है कि साहूकारी प्रथा खत्म कर देनी चाहिए, किंतु यह अनुचित है। ग्रामीणो की उन्नति में साहूकारों का बडा महत्व है और बैंको से भी अधिक साहूकारो से किसानो को सरलता से सहायता मिल जाती है। साहूकारी प्रथा का भारत में आज भी बहुत महत्व है।

सं॰ ग्रं॰ — डॉक्टर लक्ष्मीचद्र : इंडिजिनस बैंकिंग इन इंडिया; गिलबर्ट : द हिस्ट्री, प्रिंसिपल्स ऐंड प्रैक्टिस ऑव बैंकिंग; शिराज : इंडियन फिनेन्स ऐंड बैंकिंग। [द॰ दु॰]

सिंक्लेयर, सर जान (Sinclair, Sir john (Bart) (सन् १७५४-१८३५) स्कॉटलैंड के लेखक, जिन्होने वित्त तथा कृषि पर पुस्तकें लिखी। जन्म थसरो केसेल (Thusro Castle) में हुआ था। एडिनबरा, ग्लासगो तथा आक्सफोर्ड में शिक्षा ग्रहण की। सन् १७८० से १८११ तक पार्लियामेट के सदस्य रहे।

इन्होंने एडिनबरा मे अँगरेजी ऊन को सुधारने के लिये एक समिति स्थापित की। ये बोर्ड ऑव ऐग्रिकल्चर (कृषिपरिषद्) के निर्माण में सहायक हुए और उसके प्रथम सभापति भी बने। इन्होंने वित्तविशेषज्ञ एवं अर्थशास्त्री के रूप में प्रचुर ख्याति अर्जित की। वैज्ञानिक कृषि के लिये इनकी सेवाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन्होने कृषि परिषद् द्वारा संग्रह की जानेवाली रिपोर्टों के २१ भागो तथा "स्कॉटलैंड की व्यापक रिपोर्ट" का निरीक्षण किया। सन् १८१९ ई॰ मे इन संगृहीत रिपोर्टों के आधार पर इन्होने "कृषि विधान," (Code of Agriculture) तैयार किया। ये यूरोप की अधिकाश कृषिसमितियो के सदस्य तथा रॉयल सोसायटी ऑव लंदन एव एडिनबरा के समानित सदस्य (फेलो) थे। [शि॰ गो॰ मि॰]

सिंचाई शब्द प्राय भूसिंचन के लिये प्रयोग मे आता है। कृषि के लिये जहाँ भूमि, बीज और परिश्रम की अनिवार्यता रहती है, वहाँ पौधो के विकास में जल अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य करता है। बीज से अंकुर फूटने से लेकर उससे फल फूल निकलने तक की समस्त क्रिया में जल व्यापक रूप मे चाहिए; यदि जल पर्याप्त मात्रा मे न हो तो उपज कम होती है।

सामान्यत: कृषि योग्य भूमि पर गिरा हुआ जल भूमि द्वारा सोख लिया जाता है और उसमें वह कुछ समय तक समाया रहता है। पौधा अपनी जडो के द्वारा इस जल का भूमि से तरल तत्व प्राप्त करने के लिये उपयोग करता है। इस प्रकार सिंचाई का उद्देश्य पौधो के जड क्षेत्र में जल तथा नमी बनाए रखना है।

मुख्यत सिंचाई के तीन साधन हैं। प्रथम वे जिनमें नदी के बहते पानी में रोक लगाकर, वहाँ से नहरो द्वारा जल भूसिंचन के लिये लाया जाता है। दूसरे वे जहाँ जल को बाँधकर जलाशयो में एकत्र किया जाता है और फिर उन जलाशयों से नहरें निकालकर भूमि को सींचा जाता है। तीसरे ढग मे जल को पंपो अथवा अन्य साधनों द्वारा नदी या नालो से उठाकर उसे नहरो के माध्यम से खेतो तक पहुँचाया जाता है।

इनके अतिरिक्त भूगर्भ में संचित जल को भी, कूपों मे लाया जाता है। यह तरीका अन्य सभी ढंगो से अधिक विस्तृत क्षेत्रो मे फैला हुआ है क्योकि इसमें सिंचाई क्षेत्र के आसपास ही कूप या नलकूप लगाकर जल प्राप्त करने की सुविधा रहती है।

भारत जैसे कृषिप्रधान देशों में सिंचाई का प्रचलन बहुत पुराना है। इसमें छोटी और बडी दोनो प्रकार की सिंचाई योजनाएँ भूसिंचन के लिये लागू की जाती रही हैं। इनमें से कई तो कई शताब्दियो पूर्व बनाई गई थी। इनमें कावेरी का 'बड़ा एनीकट' उल्लेखनीय है।

यह लगभग एक हजार वर्ष पूर्व बनाया गया था। किंतु सिंचाई के क्षेत्र में भारत ने वास्तविक प्रगति तो गत शताब्दी में ही की। तभी उत्तर प्रदेश में गगा की बडी नहरों, पजाब में सरहिंद और व्यास की विशाल नहरों के साथ अन्य प्रदेश में भी बहुत सी अच्छी नहरों का निर्माण किया गया। बड़े बड़े तालाबों का निर्माण तो सहस्रो वर्षों से हमारे देश में विशेषकर दक्षिण भारत में होता रहा है। ऐसे छोटे बडे बांधो और सरोवरो की बडी संख्या पठारी क्षेत्रों में विशेष रूप से विद्यमान है।

सन् १९४७ से स्वतंत्रता के पश्चात् तो सिंचाई पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। पचवर्षीय योजनाओ में सिंचाई कार्यों को उच्च प्राथमिकता दी गई है। पचवर्षीय योजनाएं शुरू होने से पूर्व समस्त साधनों से केवल ५ १४ करोड एकड भूमि पर सिंचाई होती थी जिसमें २ ९१ करोड़ एकड लघु सिंचाई कार्यों से और २ २३ करोड एकड भूमि को बडे सिंचाई कार्यों द्वारा सींचा जाता था। पचवर्षीय योजनाओ में लगातार सिंचनक्षेत्र बढता ही गया। अनुमान है, पांचवी पंचवर्षीय योजना के अंत तक अर्थात् १९७५-७६ ई० के अंत में बडे तथा मध्यवर्गीय सिंचाई कार्यों द्वारा ११ १ करोड एकड एव छोटे सिंचाई कार्यों द्वारा ७ ५ करोड एकड भूमि के लिये सिंचाई की व्यवस्था हो जाएगी।

क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत सिंचाई के मामले में संसार के राष्ट्रो में अग्रणी है। चीन को छोडकर संसार के बहुत से देशों में सिंचित क्षेत्र भारत की तुलना में बहुत कम हैं।

सिंचाई (Irrigation) तथा निकास (Drainage) के अंतरराष्ट्रीय आयोग द्वारा १९६३ ई० प्रकाशित आँकड़ों से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

देश	सिंचित क्षेत्रफल (करोड एकड)
भारत	६ ३४
सयुक्त राज्य अमरीका	३ ७७
सोवियत यूनियन	३·०४
पाकिस्तान	२·६६
ईराक	० ९१
इडोनेशिया	० ९०
जापान	० ७८
सयुक्त अरब गणराज्य	० ६७
मेक्सिको	० ६७
इटली	० ६६
सूडान	० ६२
फ्रास	० ६१
स्पेन	० ४५
चिली	०·३४
पीरू	०·३०
अर्जेंटीना	० २७
थाइलैंड	० २६

बाकी अन्य देशो में दो लाख एकड से भी कम भूमि पर सिंचाई की व्यवस्था है।

बडे सिंचाई कार्य अधिक विस्तृत क्षेत्रो में सिंचाई की व्यवस्था करने की क्षमता रखते हैं और उनसे जल की काफी मात्रा भी प्राप्त हो जाती है, लेकिन उन्हे हर जगह लागू नही किया जा सकता। ऐसे कार्यों के लिये बहुधा प्राकृतिक साधन भी छोटे पड जाते हैं। कई बार आर्थिक साधनो की अनुपलब्धता के कारण भी उन्हे अपनाया नहीं जा पाता, ऐसी अवस्था में छोटे सिंचाई कार्यों से काम चलाया जाता है। अतएव ऐसे क्षेत्रो में जहाँ किन्ही भी कारणो से बडी सिंचाई योजनाएँ हाथ में लेना संभव न हो, वहाँ छोटी योजनाएँ बनाना अनिवार्य हो जाता है।

छोटे सिंचाई कार्यों के अतर्गत कच्चे या पक्के कूप, नलकूप, छोटे पप और छोटे छोटे जलाशय आते हैं। इन कार्यों को सपन्न करने में समय कम लगता है। इनकी एक विशेषता यह भी है कि इनके द्वारा जहाँ भी जल उपलब्ध हो वहीं सिंचाई की जा सकती है। हमारे देश मे कूपो पर ढेकुली लगाकर काफी पुराने समय से सिंचाई की जाती रही है, लेकिन इस तरह बहुत ही छोटे खेतो को ही सींचा जा सकता है। बीच के दर्जे के किसान आम तौर पर रहट, मोट या चरस लगाकर सिंचाई करते हैं। जिन स्थानो में काफी हवा चलती है, वहाँ हवाई चक्कियो से भी सिंचाई की जाती है। इस तरह की हवाई चक्कियाँ खास तौर पर बबई, सौराष्ट्र और धारवाड़ के क्षेत्रो में लगाई जाती हैं।

इसके अतिरिक्त छोटे जलाशयो में वर्षा का पानी जमा करके उसे साल भर सिंचाई के काम में लाने का भी प्रचलन है। लेकिन जब कभी वर्षा कम हो जाती है, तब उनका लाभ भी घट जाता है। नलकूप इस बात में विशेषता रखते हैं। वे वर्षा की मात्रा पर सर्वथा निर्भर नहीं होते और उनसे जल भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाता है। सिंचाई कार्य चाहे बड़े हो अथवा छोटे, उनका आर्थिक समीक्षण करना अति आवश्यक रहता है। कोई भी सिंचाई कार्य तभी सफल हो सकता है, जब उसपर लगाई गई पूंजी पर राज्यकोष को यथानुकूल आय हो सके। अतएव किसी भी सिंचाई कार्य से प्राप्य जल द्वारा इतनी उपज बढाई जानी चाहिए कि सिंचाई पर लगी पूंजी मे यथा-मात्रा आय हो सके और राज्यकोष को घाटा न उठाना पडे।

इस दृष्टि से जल के समुचित उपयोग पर ध्यान देने की बडी आवश्यकता है। जल के दुरुपयोग को रोकने के लिये कृषि विभाग तथा सिंचाई विभाग आपस में सहयोग करके ऋतु और फसल के आवश्यकतानुसार जल प्रयोग करने की आदत का विकास करा सकते हैं।

आवश्यकता से अधिक मात्रा में पानी देने से कई बार लाभ के स्थान पर हानि हो जाती है। कभी कभी तो ऐसी भूमि इतनी जल-मग्न हो जाती है कि वह कृषि के योग्य नही रह जाती। खेत को दिए गए जल का काफी बडा भाग रिसकर भूगर्भ में चला जाता है। अधिक जल के भूगर्भ में समाते रहने से भूगर्भ में सचित जल का तल ऊपर उठ जाता है जिसके कारण सींची हुई भूमि में खारापन बढ़ जाता है और उसकी उर्वरक शक्ति घट जाती है।

भूगर्भ के जल तल के ऊपर उठने से भूमि की उर्वरक शक्ति कम होने को 'सेम' लगना कहते हैं। इस रोग के लक्षण प्रकट होने पर खेतो में पानी की मात्रा तुरंत कम कर देनी चाहिए। इसके साथ ही ऐसे प्रबंध किए जाने चाहिए जिनसे भूगर्भ के जल का स्तर फिर से नीचे गिर जाय। इसके लिये नलकूप बहुत लाभकारी रहते हैं। नलकूप भूगर्भ के जल को खींचकर भूमि पर सिंचाई के काम मे तो लाते ही हैं, उनकी मदद से भूगर्भ का जलस्तर भी उचित स्थान पर स्थिर किया जा सकता है। सेम से बचाव के लिये सिंचाई के साथ साथ जलनिकासो की ओर भी पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। जलनिकास नालियों की गहराई और चौड़ाई इतनी रखी जाए कि उनमें होकर उस क्षेत्र का समस्त वर्षा का जल बह सके। इन नालियो की ढाल भी ठीक रहनी चाहिए ताकि उनमें जल रुके नही और बिना किसी रुकावट के किसी बड़ी नदी अथवा नाले आदि मे जा गिरे।

सिंचाई के लिये जल जुटाने में काफी धन एवं शक्ति लगती है। अत: जल की प्रत्येक बूँद कीमती होती है और उसकी हर प्रकार से रक्षा करना आवश्यक होता है।

जल की हानि के कारणो में पहला तो जल का सूर्य की गर्मी से भाप बनकर उड़ जाना है। इस हानि को कम किया जा सकता है। यदि सिंचाई के लिये जल ले जानेवाली नहरो की चौड़ाई घटा दी जाए और उनकी गहराई को कुछ अधिक कर दिया जाए, तो जल की यह हानि काफी कम हो जाती है क्योंकि उस अवस्था में सूर्य की किरणें जल के अपेक्षाकृत कम क्षेत्रफल पर पडती हैं।

जल की हानि का एक बड़ा दूसरा कारण जल का भूमि में रिस जाना है। यह हानि विशेष रूप से रेतीली और पथरीली भूमियो में अधिक होती है। इसकी रोकथाम के लिये नहरें पक्की बनाई जाती हैं। खेतो तक जानेवाली गूलो मे भी जल के रिसाव को कम करने के उद्देश्य से उनपर पलस्तर करने का चलन हो गया है।

उपलब्ध जलराशि के किफायती उपयोग के लिये कुछ नए तरीके भी ढूँढे गए हैं। इनमें फुहार रीति (sprinkle method) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस रीति में जल पाइपो मे बहता हुआ घूमनेवाली सँकरे मुँह की टोटियो से फुहार के रूप मे बाहर निकलता है। फुहार रीति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें पौधो का विकास अच्छी तरह होता है। इसके अतिरिक्त इस रीति मे जल की बरबादी बिलकुल नही होती। न तो पानी के भाप बनकर उड़ जाने का डर रहता है और न ही नहरो आदि के द्वारा उसके भूमि में रिस जाने की सभावना रहती है। इस रीति का एक अन्य लाभ यह भी है कि इसमें द्रव रूप मे कीटाणुनाशक ओषधियो को जल में मिलाकर फसलो को कीटाणुओ आदि से भी बचाया जा सकता है।

पश्चिमी देशो में तो यह रीति बहुत सफल हुई है। भारत में यह रीति कुछ अधिक खर्चीली होने के कारण अधिक प्रचलित नही हो पाई है। फिर भी कुछ स्थानो पर इसे सफलतापूर्वक अजमाया गया है। देहरादून के कुछ पहाड़ी क्षेत्रो मे यह रीति ऊँचे पहाड़ी क्षेत्रो और गहरी घाटियो मे अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

देश की अर्थव्यवस्था में 'सिंचित कृषि' का महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में हमारे देश की अर्थव्यवस्था का आधार ही कृषि है। अत सिंचित भूखंडो का इस प्रकार संचालन होना चाहिए कि उनके द्वारा उत्पादन अधिकतम हो सके। उत्पादन बढाने के लिये वैज्ञानिक, आर्थिक, शासकीय, परिवहनीय एवं सामाजिक आदि जितने भी पहलू सामने आएँ, उनके ऊपर पूरा पूरा ध्यान दिया जाना आवश्यक हो जाता है।

इन तमाम बातो की समुचित व्यवस्था 'विस्तार सेवा' द्वारा हो सकती है और इस सेवा का संबंध प्रशासन एवं विश्वविद्यालयो से होना आवश्यक है। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये सिंचाई का सुचारु रूप से प्रबंध तथा प्रयोग आवश्यक है। सिंचाई के द्वारा कृषि उत्पादन को स्थिरता प्रदान की जा सकती है और उसके ऊपर आधारित उत्पादन पर समुचित रूप से कृषि योजनाओं को कार्यान्वित किया जा सकता है। अतएव सिंचाई का विषय हमारे जैसे कृषिप्रधान देशो के लिये बड़ा महत्वपूर्ण है। [बा० ना०]

सिंद (Sind) मध्यप्रदेश की नदी। इसकी लंबाई २५० मील है। मध्यप्रदेश में यह उत्तर पूर्व दिशा में बहती है और जगमानपुर के पास उत्तर प्रदेश में प्रविष्ट होती है और यहाँ से १० मील उत्तर में यह यमुना नदी से मिल जाती है। यह विदिशा जिले के नैनवास ग्राम में स्थित ताल से निकलती है जो समुद्रतल से १,७८० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। पार्वती, नन एव माहुर इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं। इस नदी में वर्षपर्यंत जल रहता है। वर्षा ऋतु में इसमे भयंकर बाढ आती है। चट्टानी किनारो के कारण यह नदी सिंचाई के उपयुक्त नहीं है। [अ० ना० मे०]

सिंदरी बिहार राज्य के धनबाद जिले में, धनबाद से १५ मील दक्षिण दामोदर नदी के तटपर झरिया कोयला क्षेत्र के निकट स्थित एक नगर है। इस नगर की प्रसिद्धि उर्वरक कारखाने के कारण है जिसमें अमोनियम सल्फेट और यूरिया का प्रतिदिन हजारो टन उर्वरक का निर्माण होता है। इस कारखाने मे १९५१ ई० से उर्वरक का उत्पादन हो रहा है। जिसमें ८ हजार से अधिक व्यक्ति, प्राविधिक और अप्राविधिक, प्रतिदिन काम करते हैं। इनके निवास के लिये भिन्न भिन्न किस्म के लगभग पाँच हजार क्वार्टर बने हुए हैं जिनके निर्माण में पाँच करोड़ से अधिक रुपया लगा है। कारखाने के लिये आवश्यक कोयला निकटवर्ती कोयला खानों से, पानी दामोदर नदी से और जिप्सम प्रदेश के बाहर से आता है। कच्चा माल लाने और तैयार माल बाहर भेजने के लिये मालगाड़ियाँ चलती हैं पर मुसाफिरो के लिये कोई मुसाफिर गाड़ी नही चलती। श्रमिको के लिये १०० शय्याओं का एक सुसज्जित अस्पताल बना है, उनकी देखभाल के लिये 'कल्याण केंद्र' खुला है। बालको की शिक्षा के लिये अनेक पाठशालाएँ और विद्यालय खुले हुए हैं। कारखाने के पास एक सुंदर आधुनिक नगर बस गया है। नगर का प्राकृतिक दृश्य बडा मनोरम है। चारो ओर बड़े बड़े पेड़ लगाए गए हैं। संध्या को चारों तरफ बड़ी चहल पहल दिखलाई देती है।

सिंदरी में बिहार सरकार द्वारा स्थापित एक इंजीनियरिंग और टेक्नोलोजी कालेज बिहार इंस्टिट्यूट ऑव टेक्नोलॉजी

है जिसमें उच्चतम स्तर की इंजीनियरी, टेक्नोलॉजी, खनन और धातुकर्म की शिक्षा प्रदान की जाती है। यहाँ बिहार सरकार द्वारा स्थापित फास्फेट का एक कारखाना भी है। राष्ट्रीय कोयला-विकास निगम ने कोयले के अनुसंधान के लिये अनुसंधानशाला भी खोल रखी है, जिसमें कोयले का परीक्षण और कोयले पर अनुसंधान होता है। नगर की जनसंख्या ४१,३४९ (१९६१ ई०) है।

सिंध स्थिति २८° २९' से २३°३५' उ० अ० तथा ६५° ३० से ७१° १०' पू० दे०। यह क्षेत्र पश्चिमी पाकिस्तान में सिंध नदी की घाटी में स्थित है जो शुष्क तथा वर्षाहीन है। यहाँ की उपज तथा जनसंख्या सिंध नदी के कारण है। इस नदी में सक्खर स्थान पर एक बाँध बनाया गया है, जहाँ से दोनो किनारों पर सिंचाई के लिये नहरें निकाली गई हैं। अत यहाँ गेहूँ, जो, कपास, दलहन, धान, तिलहन और ईख की अच्छी फसलें होती हैं। शेष भाग में कही कही बाजरा और ज्वार होता है, नही तो सर्वत्र निम्न कोटि की घास या कँटीली झाड़ियाँ ही होती हैं, जहाँ लोग ऊँट तथा भेंड बकरियाँ चराते हैं। करांची, हैदराबाद, लरकाना, सक्खर, दादू और नवाबशाह मुख्य नगर हैं। जलवायु यहाँ विषम है। कराची उत्कृष्ट कोटि का बदरगाह और अतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है कुछ काल तक यह पाकिस्तान की राजधानी था। [रा० स० ख०]

सिंध (Indus) नदी या नद उत्तरी भारत की तीन बडी नदियो में से एक है। इसका उद्गम बृहद् हिमालय में मानसरोवर से ६२ ५ मील उत्तर में सेंगेखबब (Senggekhabab) के स्रोतों में है। अपने उद्गम से निकलकर तिब्बती पठार की चौडी घाटी में से होकर, कश्मीर की सीमा को पारकर, दक्षिण पश्चिम में पाकिस्तान के रेगिस्तान और सिंचित भूभाग में बहती हुई, करांची के दक्षिण मे अरब सागर में गिरती है। इसकी पूरी लबाई लगभग २,००० मील है। बलतिस्तान (Baltistan) मे खाइतासो (Khaitassho) ग्राम के समीप यह जास्कार श्रेणी को पार करती हुई १०,००० फुट से अधिक गहरे महाखड्ड में, जो ससार के बडे खड्डो में से एक है, बहती है। जहाँ यह गिलगिट नदी से मिलती है, वहाँ पर यह वक्र बनाती हुई दक्षिण पश्चिम की ओर झुक जाती है। अटक में यह मैदान में पहुँचकर काबुल नदी से मिलता है। सिंध नदी पहले अपने वर्तमान मुहाने से ७० मील पूर्व में स्थित कच्छ के रन में विलीन हो जाती थी, पर रन के भर जाने से नदी का मुहाना अब पश्चिम की ओर खिसक गया है।

झेलम, चिनाब, रावी, व्यास एवं सतलुज सिंध नदी की प्रमुख सहायक नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त गिलगिट, काबुल, स्वात, कुर्रम, टोची, गोमल, सगर आदि अन्य सहायक नदियाँ हैं। मार्च में हिम के पिघलने के कारण इसमे अचानक भयकर बाढ आ जाती है। बरसात में मानसून के कारण जल का स्तर ऊँचा रहता है। पर सितंबर में जलस्तर नीचा हो जाता है और जाड़े भर नीचा ही रहता है। सतलुज एव सिंध के सगम के पास सिंध का जल बडे पैमाने पर सिंचाई के लिये प्रयुक्त होता है। सन् १९३२ मे सक्खर में सिंध नदी पर लॉयड बाँध बना है जिसके द्वारा ५० लाख एकड भूमि की सिंचाई की जाती है। जहाँ भी सिंध नदी का जल सिंचाई के लिये उपलब्ध है, वहाँ गेहूँ की खेती का स्थान प्रमुख है और इसके अतिरिक्त कपास एव अन्य अनाजो की भी खेती होती है तथा ढोरो के लिये चरागाह हैं। हैदराबाद (सिंध) के आगे नदी ३,००० वर्ग मील का डेल्टा बनाती है। गाद और नदी के मार्ग परिवर्तन करने के कारण नदी मे नौपरिचालन खतरनाक है। [अ० ना० मे०]

सिंधी भाषा सिंध प्रदेश की आधुनिक भारतीय आर्यभाषा जिसका सबंध पैशाची [दे०] नाम की प्राकृत और व्राचड [दे०] नाम की अपभ्र श से जोडा जाता है। इन दोनो नामो से विदित होता है कि सिंधी के मूल में अनार्य तत्व पहले से विद्यमान थे, भले ही वे आर्य प्रभावो के कारण गौण हो गए हो। सिंधी के पश्चिम में बलोची, उत्तर मे लहँदी, पूर्व में मारवाडी, और दक्षिण में गुजराती का क्षेत्र है। यह बात उल्लेखनीय है कि इस्लामी शासनकाल मे सिंध और मुलतान (लहँदीभाषी) एक प्रात रहा है, और १८४३ से १९३६ ई० तक सिंध बबई प्रात का एक भाग होने के नाते गुजराती के विशेष सपर्क में रहा है।

सिंध के तीन भौगोलिक भाग माने जाते हैं—१. सिरो (शिरोभाग), २ विचोलो (बीच का) और ३. लाड (स० लाट प्रदेश, नीचे का)। सिरो की बोली सिराइकी कहलाती है जो उत्तरी सिंध में खैरपुर, दादू, लाडकाणा और जेकबाबाद के जिलो में बोली जाती है। यहाँ बलोच और जाट जातियो की अधिकता है, इसलिये इसको बरोचिकी और जतिकी भी कहा जाता है। दक्षिण मे हैदराबाद और कराची जिलो की बोली लाडी है और इन दोनो के बीच में विचोली का क्षेत्र है जो मीरपुर खास और उसके आसपास फैला हुआ है। विचोली सिंध की सामान्य और साहित्यिक भाषा है। सिंध के बाहर पूर्वी सीमा के आसपास थडेली, दक्षिणी सीमा पर कच्छी, और पश्चिमी सीमा पर लासी नाम की समिश्रित बोलियाँ हैं। थडेली (थर = थल = मरुभूमि) जिला नवाबशाह और जोधपुर की सीमा तक व्याप्त है जिसमें मारवाडी और सिंधी का समिश्रण है। कच्छी (कच्छ, काठियवाड में) गुजराती और सिंधी का एव लासी (लासबेला, बलोचिस्तान के दक्षिण में) बलोची और सिंधी का समिश्रित रूप है। इन तीनो सीमावर्ती बोलियों मे प्रधान तत्व सिंधी ही का है। भारत के विभाजन के बाद इन बोलियों के क्षेत्रो में सिंधियो के बस जाने के कारण सिंधी का प्राधान्य और बढ गया है। सिंधी भाषा का क्षेत्र ६५ हजार वर्ग मील और बोलनेवालो की सख्या ६५ लाख से कुछ ऊपर है।

सिंधी के सब शब्द स्वरात होते हैं। इसकी ध्वनियो में ग, ज, ड, द और ब अतिरिक्त और विशिष्ट ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में सवर्ण ध्वनियों के साथ ही स्वरतंत्र को नीचा करके काकल को बंद कर देना होता है जिससे द्वित्व का सा प्रभाव मिलता है। ये भेदक स्वनग्राम हैं। संस्कृत के त वर्ग+र के साथ मूर्धन्य ध्वनि आ गई है, जैसे पुट्र या पुटु (√पुत्र), मट्र (√मत्र), निंड (√निद्रा), डोह (√द्रोह)। सस्कृत का सयुक्त व्यंजन और प्राकृत का द्वित्व रूप सिंधी मे समान हो गया है किंतु उससे पहले का ह्रस्व स्वर दीर्घ नही होता जैसे भतु

(हिं० भात), जिभ (जिह्वा), खट (खट्वा, हिं० खाट), सुठो (√सुष्ठु)। प्राय: ऐसी स्थिति में दीर्घ स्वर भी ह्रस्व हो जाता है, जैसे डिघो (√दीर्घ), सिसी (√शीर्ष), तिको (√तीक्ष्ण)। जैसे सं० दत्त- और सुप्त से दतो, सुतो बनते हैं, ऐसे ही सादृश्य के नियम के अनुसार कृत से कीतो, पीत. से पीतो आदि रूप बन गए हैं यद्यपि मध्यग — त — का लोप हो चुका था। पश्चिमी भारतीय आर्यभाषाओं की तरह सिंधी ने भी महाप्राणत्व को सयत करने की प्रवृत्ति है जैसे साडा (√सार्ध, हिं० साढे), कानो (हिं० खाना), कुलगु (हिं० खुलना), पुचा (सं० पृच्छा)।

सज्ञाओ का वितरण इस प्रकार से पाया जाता है — अकारात संज्ञाएँ सदा स्त्रीलिंग होती हैं, जैसे खट (खाट), तार, जिभ (जीभ), वाँह, सूंह (शोभा); ओकारात सज्ञाएँ सदा पुल्लिग होती हैं, जैसे घोड़ो, कुतो, महिनो (महीना), हफ्तो, दूंहो (धूम); –आ,– इ और –ई में अत होनेवाली सज्ञाएँ बहुधा स्त्रीलिंग हैं, जैसे हवा, गरोला (खोज), मखि, राति, दिलि (दिल), दरी (खिडकी), घोडी, विल्ली —अपवाद रूप से सेठि (सेठ), मिसिरि (मिसर), पखी, हाथी, साँढ और संस्कृत के शब्द राजा, दाता आदि पुल्लिग हैं; –उ,–ऊ मे अंत होनेवाले संज्ञापद प्राय पुंल्लिग हैं, जैसे किताबु, घरु, मुंहु, माण्हू (मनुष्य), रहाकू (रहनेवाला) — अपवाद हैं विजु (√विद्युत्), खड्डु (खाड), आवरू, गऊ। पुंल्लिग से स्त्रीलिंग बनाने के लिये –इ,–ई, –णि और –आणी प्रत्यय लगाते हैं — कुकुरि (मुर्गी), छोकरि, झिर्की (चिड़िया), वकिरी, कुत्ती; धोविणि, शीहणि, नोकिर्याणी, हाथ्याणी। लिंग दो ही हैं—स्त्रीलिंग और पुंल्लिग। वचन भी दो ही हैं—एकवचन और बहुवचन। स्त्रीलिंग शब्दो का बहुवचन ऊंकारात होता है, जैसे जालूं (स्त्रियाँ), खटूं (चारपाइयाँ), दवाऊं (दवाएँ) अख्यूं (आँखें); पुंल्लिग के बहुरूप में वैविध्य हैं। ओकारात शब्द आकारांत हो जाते हैं—घोडो से घोडा, कपडों से कपडा आदि; उकारात शब्द अकारात हो जाते हैं — घरु से घर, वणु (वृक्ष) से वण, इकारात शब्दों में — ऊं बढाया जाता है, जैसे सेठ्यूं। ईकारात और ऊकारात शब्द वैसे ही बने रहते हैं।

संज्ञाओ के कारकीय रूप परसर्गों के योग से बनते हैं—कर्ता— ०; कर्म—के, खे, करण—सां; संप्रदान—के, खे, लाइ, अपादान— कां, खां, तां (पर से), मां (मे से), संबंध—पु० एकव० जो, बहुव० जा, स्त्रीलिंग एकव० जी. बहुव० जूं, अधिकरण—में, ते (पर)। कुछ पद अपादान और अधिकरण कारक मे विभक्त्यंत मिलते हैं—गोठूं (गाँव से), घरूं (घर से), घरि (घर मे), पटि (जमीन पर), वेलि (समय पर)। बहुव० में सज्ञा के तिर्यक् रूप –उनि प्रत्यय (तुलना कीजिए हिंदी–ओं) से बनता है—छोकर्युंनि, दवाउनि, राजाउनि, इत्यादि।

सर्वनामो की सूची मात्र से इनकी प्रकृति को जाना जा सकेगा— १. मां, आऊं (मैं), असी (हम), तिर्यक् क्रमशः मूं तथा असां; २ तूं, तव्हीं, अव्हीं (तुम); तिर्यक् रूप तो, तव्हां; ३ पुं० हू अथवा ऊ (वह, वे), तिर्यक् रूप हुन, हुननि, स्त्री० हूअ, हू, तिर्यक् रूप उहो, उहे; पुं० ही अथवा हीअ (यह, ये), तिर्यक् रूप हिन, हिननि; स्त्री० इहो, इहे, तिर्यक् रूप इन्हे। इम्हो (यही), उम्हो (वही), बहुव० इम्हे, उम्हे; जो, जे (हिं० जो); छा, कुजाड़ो (क्या); केरु, कहिड़ो (कौन); को (कोई); की, कुझु (कुछ); पाण (आप, खुद)। विशेषणो में ओकारात शब्द विशेष्य के लिंग, कारक के तिर्यक् रूप, और वचन के अनुरूप बदलते हैं, जैसे सुठो छोकरो, सुठा छोकरा, सुठी छोकरी, सुठ्युनि छोकर्युंनि खे। शेष विशेषण अविकारी रहते हैं। सख्यावाची विशेषणो मे अधिकतर को हिंदीभाषी सहज मे पहचान सकते हैं। ब (दो), टे (तीन), दाह (दस), अरिदह (१८), वीह (२०), टीह (३०), पंजाह (५०), साढा दाह (१०॥), वीणो (दूना), टीणो (तिगुना), सजो (सारा), समूरो (समूचा) आदि कुछ शब्द निराले जान पड़ते हैं।

सज्ञार्थक क्रिया — णुकारात होती है—हलणु (चलना), बधणु (बांधना), टपणु (फाँदना) घुमणु, खाइणु, करणु, अचणु (आना,) वञणु (जाना), विहणु (बैठना) इत्यादि। कर्मवाच्य प्रायः धातु में-इज- या -ईज (प्राकृत √अज्ज) जोडकर बनता है, जैसे मारिजे (मारा जाता है), पिटिजणु (पीटा जाना); अथवा हिंदी की तरह वञणु (जाना) के साथ सयुक्त क्रिया बनाकर प्रयुक्त होता है, जैसे मारयो वञे थो (मारा जाता है)। प्रेरणार्थक क्रिया की दो स्थितियाँ हैं—लिखाइणु (लिखना), लिखराइणु (लिखवाना); कमाइणु (कमाना), कमाराइणु (कमवाना), कृदतो में वर्तमानकालिक— हलदो (हिलता), भजदो (टूटता)—और भूतकालिक— वच्यलु (बचा), मार्यलु (मारा)—लिंग और वचन के अनुसार विकारी होते हैं। वर्तमानकालिक कृदत भविष्यत् काल के अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है। हिंदी की तरह कृदतो में सहायक क्रिया (वर्तमान आहे, था; भूत हो, भविष्यत् हूंदो आदि) के योग से अनेक क्रियारूप सिद्ध होते हैं। पूर्वकालिक कृदत धातु मे-इ या -ई लगाकर बनाया जाता है, जैसे खाई (खाकर), लिखी (लिखकर), विधिलिङ् और आज्ञार्थक क्रिया के रूप सस्कृत प्राकृत से विकसित हुए हैं—मां हलां (मैं चलूं), असी हलूं (हम चलें), तूं हली (तू चले), तूं हल (तू चल), तव्हो हलो (तुम चलो); हू हले, हू हलीन। इनमे भी सहायक क्रिया जोडकर रूप बनते हैं। हिंदी की तरह सिंधी में भी संयुक्त क्रिआएँ पवणु (पडना), रहणु (रहना), वठणु (लेना), विझणु (डालना), छदणु (छोडना), सघणु (सकना) आदि के योग से बनती हैं।

सिंधी की एक बहुत बड़ी विशेषता है उसके सार्वनामिक प्रत्यय जो सज्ञा और क्रिया के साथ सयुक्त किए जाते हैं, जैसे पुट्ऊं (हमारा लड़का), भासि (उसका भाई), भाउरनि (उनके भाई); चयुमि (मैंने कहा), हुजेई (तुझे हो), मारियाई (उसने उसको मारा), मारियाईमि (उसने मुझको मारा)। सिंधी अव्यय सख्या में बहुत अधिक हैं। सिंधी के शब्दभंडार में अरबी-फारसी-तत्व अन्य भारतीय भाषाओ की अपेक्षा अधिक हैं। सिंधी और हिंदी की वाक्यरचना, पदक्रम और अन्वय में कोई विशेष अंतर नहीं है।

सिंधीलिपि — एक शताब्दी से कुछ पूर्व तक सिंधी मे चार लिपियाँ प्रचलित थी। हिंदू पुरुष देवनागरी का, हिंदू स्त्रियाँ प्राय: गुरुमुखी का, व्यापारी लोग (हिंदू मुसलमान दोनो) 'हटवाणिकों' का (जिसे सिंधी लिपि भी कहते हैं), और मुसलमान तथा सरकारी कर्मचारी अरबी फारसी लिपि का प्रयोग करते थे। सन् १८५३ ई० में

ईस्ट इंडिया कपनी के निर्णयानुसार लिपि का स्थिरीकरण करने के लिये सिंध के कमिश्नर मिस्टर एलिस की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने अरबी फारसी-उर्दू लिपियो के आधार पर 'अरबी सिंधी' लिपि की स्थापना की। सिंधी ध्वनियों के लिये सवर्ण अक्षरों में अतिरिक्त बिंदु लगाकर नए अक्षर जोड़ लिए गए। अब यह लिपि सभी वर्गों द्वारा व्यवहृत होती है। इधर भारत के सिंधी लोग नागरी लिपि को सफलतापूर्वक अपना रहे हैं; किंतु यहाँ भी व्यापक रूप से 'अरबी-सिंधी' ही चलती है। इसके ५१ अक्षर हैं जिनमें अधिकतर का रूप आदि, मध्य और अंत में भिन्न भिन्न होता है। स्वरो की मात्राएँ अनिवार्य न होने के कारण एक ही शब्द के कई उच्चारण हो जाते हैं।

सिंधी साहित्य — सिंधी साहित्य का आरभ काव्य से होता है। अंग्रेजी राज्यकाल से पहले यही उस साहित्य का एकमात्र रूप रहा है और आज भी इसकी सत्ता का प्राधान्य है। सिंधी कविता मुख्यत. सूफी फकीरों की कविता है जिसका सबसे बडा गुण यह है कि वह साप्रदायिकता से मुक्त है—किसी प्रकार का कट्टरपन उसमें नही है। कोई कोई कवि तो अपने को 'गोपी' और परमात्मा को 'कृष्ण' कहकर अपनी भावाभिव्यक्ति करते हैं। वे ईश्वर को पिता और मनुष्यमात्र को अपना भाई मानते हैं। उनका ध्येय है परमात्मा में लीनता, किरण की सूर्य की ओर वापस यात्रा अथवा बिंदु और सिंधु की एकाकारिता जिससे मैं, तू और वह का भेद नही रहता। पहले दोहे और सलोक लिखे जाते रहे, ब्रिटिश राज्य से कसीदो, गजलों, मसनवियो और रुबाइयो की प्रधानता होने लगी। इससे पहले थोडी सी लौकिक कविताएँ कसीदे और मर्सिए के रूप में प्राप्त थी। पिछले सौ वर्षों से काव्य में साप्रदायिकता और सकीर्णता बढ़ती गई—हिंदू मुसलिम विचारधाराओ को समन्वित करने की बात नही रही। साहित्यिक भाईचारा नही रहा। अब तो सिंध पाकिस्तान का एक भाग हो गया है।

सिंधी के कुछ पुराने दोहे अरबी फारसी इतिहासग्रथो में मिल जाते हैं, किंतु सिंधी की प्रथम कृति 'दोदे चनेसर' (रचनाकाल १३१२ ई०) मानी जाती है। उपलब्ध वीर प्रबध काव्य खडित और अपूर्ण अवस्था में है। दोदा और चनेसर दो भाई थे जिनमें भूनगर के सिंहासन के लिये युद्ध हो गया। इस युद्ध में सिंध के सब कबीले और सरदार सम्मिलित हुए। तत्कालीन सिंधियों के रीति-रिवाज, कबायली सगठन और अन्य आर्थिक तथा सामाजिक स्थितियो का इस किस्से से परिचय मिल जाता है। छद दोहा है। १४वीं शती के अंत में शेख हमाद बिन रशीदुद्दीन जमाली और शेख इसहाक आहनगर नाम के दो सूफी कवियो के कुछ फुटकर पद्य मिलते हैं। १५वीं शती के अंत में मामुई (ठठ के निकट एक सस्थान) के सूफी दरवेशो के सात पद्य उपलब्ध होते हैं जिनमें सिंध पर आनेवाली विपत्ति की भविष्यवाणी की गई है। १६वी शती के दोहाकारों में मखदूम अहमद भट्टी, काजी काजन (मृत्यु १५५१ ई०), मखदूम नूह हालाकंडी और शाह अब्दुल करीम (१५३८-१६२३ ई०) के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सब सूफी फकीर थे अहमद के मुक्तको में लौकिक प्रेम की तीव्रता है। काजन प्रेमोन्मत्त कवि थे। इनका कहना है कि प्रिय के दर्शन के विना गुणगण (पवित्रता, सौंदर्य और विद्वत्ता आदि) सब व्यर्थ हैं। बाह्य गुण हमें नरक में खीच ले जा सकते हैं, किंतु प्रेम में एक दिव्य शक्ति है। इनके दोहों की भाषा अधिक परिष्कृत और प्राजल है। नूह के दोहो में विरह की गहराई और कल्पना की ऊँचाई है। शाह करीम के ९४ दोहे प्राप्त हैं। इनमें प्रेमसाधना, तपश्चर्या और आत्मसमर्पण पर बल दिया गया है—'मात्र इच्छा और कामना से प्रेम की प्राप्ति नही हो जाती और न ही प्रार्थनाएँ काम देती हैं जब तक कि काली रातों को जाग जागकर आँखो से खून की नदियाँ न बहाई जाएँ।' १७वी शताब्दी के एक सूफी कवि उस्मान एहसानी का 'वतननामा' (१६४६ ई०) उपलब्ध है। आप इस जगत् को अपना देश नही मानते — यह तो रैन बसेरा है। अपना देश वही है जहाँ से हम आए हैं और जहाँ चले जाना है। इस जगत् के अस्थायी घरौंदे से जी न लगा। उठ, यात्रा की तैयारी कर, तुझे इस पडाव में नही पडे रहना है।

१८वी शताब्दी का पूर्वार्ध सिंधी साहित्य का स्वर्णयुग कहलाता है। इस समय शाह इनायत, शाह लतीफ, मखदूम मुहम्मद जमान, मखदूम अबदुल हसन, पीर मुहम्मद बका आदि बडे बडे कवि हुए हैं। ये सब के सब सूफी थे। इन लोगो ने सिंधी काव्य में नए छदों, नई विधाओ और गभीर दार्शनिक विचारो का प्रवर्तन किया। सिंधी मसनवियों और काफियो के रूप में तसव्वुफ का भारतीकरण यही से आरभ होता है। शाह इनायत ने 'उम्र मारुई', 'मोमल मेंधर', 'लीला चनेसर' तथा 'जाम तमाची और नूरी' नाम के किस्सो के अतिरिक्त मुक्तक दोहे और 'सुर' लिखे। इनका प्रकृतिवर्णन विशद और कलापूर्ण है और इनके उपमान मौलिक और अनूठे हैं। शाह लतीफ (१६८९-१७५२ ई०) सिंधी के सबसे बडे और लोकप्रिय कवि माने गए हैं। इन्होने नए विचार, नए विषय, नई कल्पनाएँ और नई शैलियाँ देकर सिंधी भाषा और साहित्य को समुन्नत किया। इनका 'रिसालो' सिंधी की मूल्यवान् निधि है। इसमे प्रबधात्मक कथाएँ भी हैं, मुक्तक कविताएँ भी, इतिवृत्तात्मक और वर्णनात्मक छद भी हैं और भावपूर्ण गीत भी, प्रेम की कोमलकात अभिव्यक्ति भी है और युद्ध का यथातथ्य चित्रण भी, हिंदू वेदात भी है, इस्लामी तसव्वुफ भी। इसमें प्रभुभक्ति के साथ देशभक्ति भी है। कवि को प्रकृति के सुंदर असुंदर सभी पक्षो से प्यार हैं, साथ ही वे मानव से गहरी सहानुभूति रखते हैं। कहानियो का रूप लौकिक है, किंतु अर्थ मे आध्यात्मिक अभिव्यजना है। वे प्रमुखत रहस्यवादी कवि हैं। खाजा मुहम्मद जमान बडे विद्वान् कवि थे। उनके ८४ दोहे प्राप्त हैं जिनमें अपने 'सज्जन' के प्रति अनन्य भक्ति और आत्मविस्मृति के भाव प्रगट हुए हैं। मियाँ अबुल हसन के काव्य में इस्लामी सिद्धातों की व्याख्या हुई है। बका के विरहगीत प्रभावपूर्ण, काव्यात्मक और रससिक्त हैं। उत्तरार्ध के कवियो में शाह इनायत के शिष्य रोहल फकीर (मृत्यु सन् १७८२) प्रसिद्ध हैं। इनके चार बेटे भी कवि थे।

टालपुरी शीया नवाबो के राज्यकाल (सन् १७८३ से १८४३) में सिंधी साहित्य ने एक नया मोड लिया। पिछले युग में प्रेमकथाओ का खड रूप प्रस्तुत हुआ था, अब पूरी दास्तानें लिखी जाने लगीं।
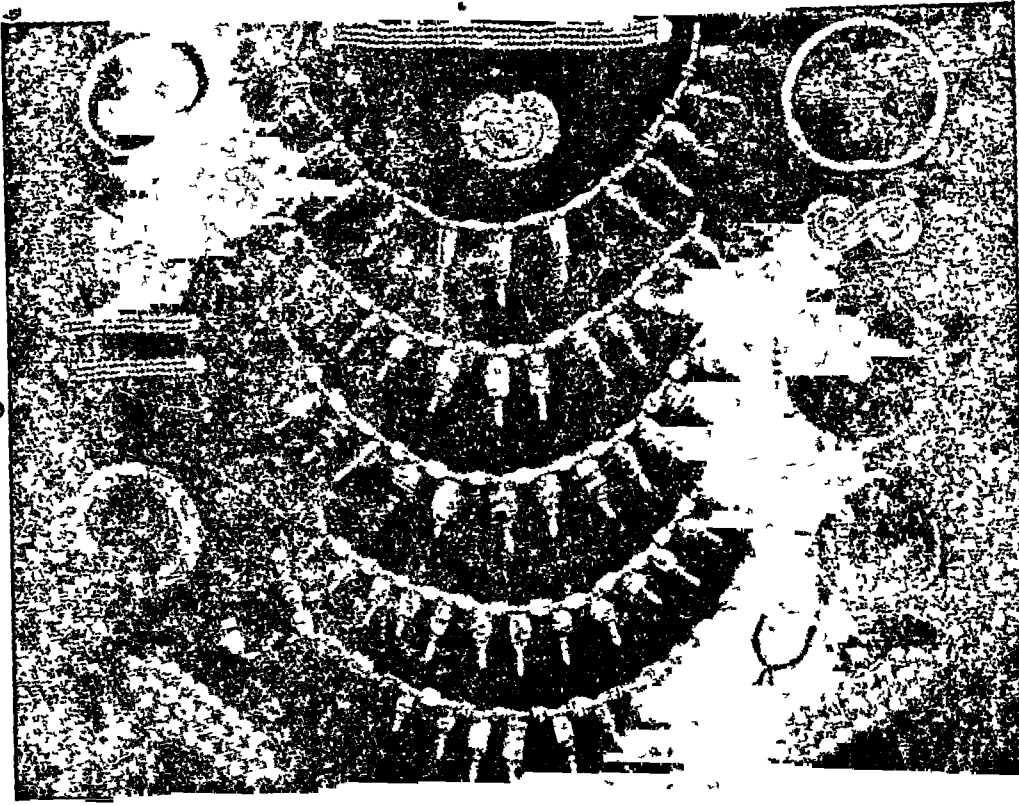
सिंधुघाटी की संस्कृति (देखें पृष्ठ ७१)

आभूषण

नर्तकी

आभूषण

नग्न पुरुषप्रतिमा

सिंधुघाटी की संस्कृति (देखें पृष्ठ ७१)

मुद्राएँ

मुहरें
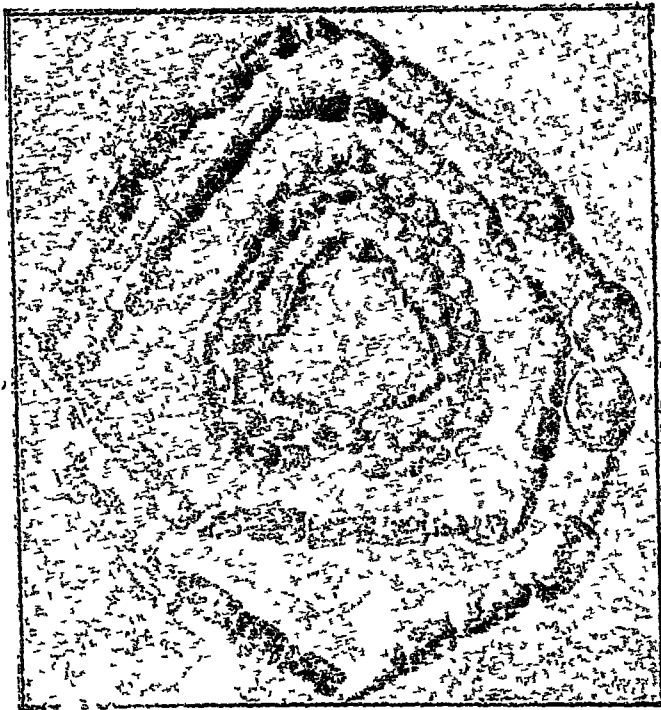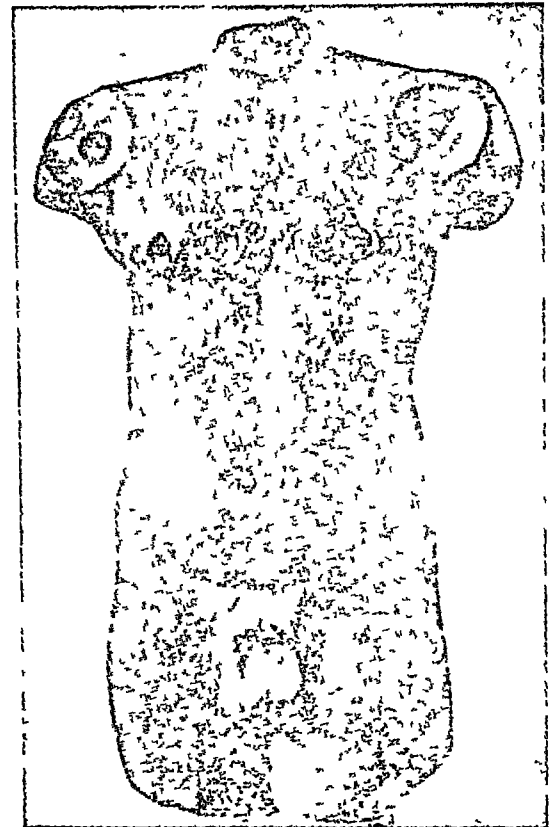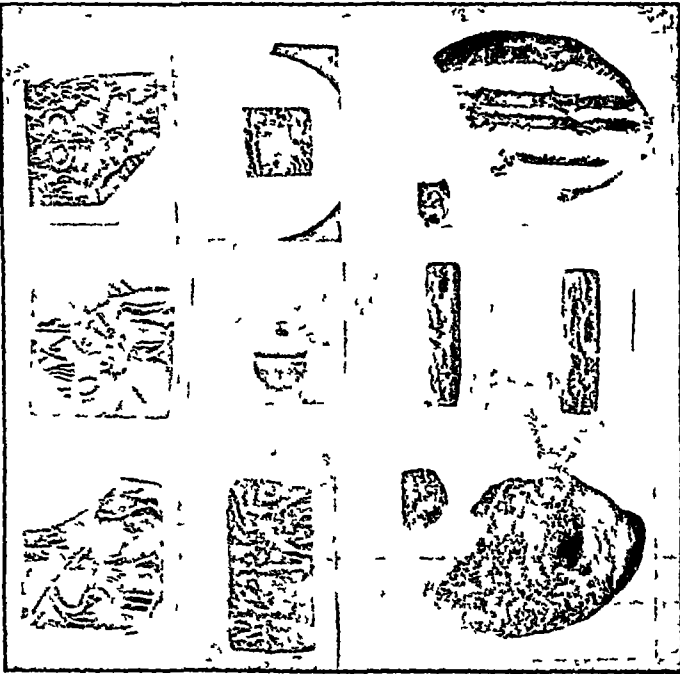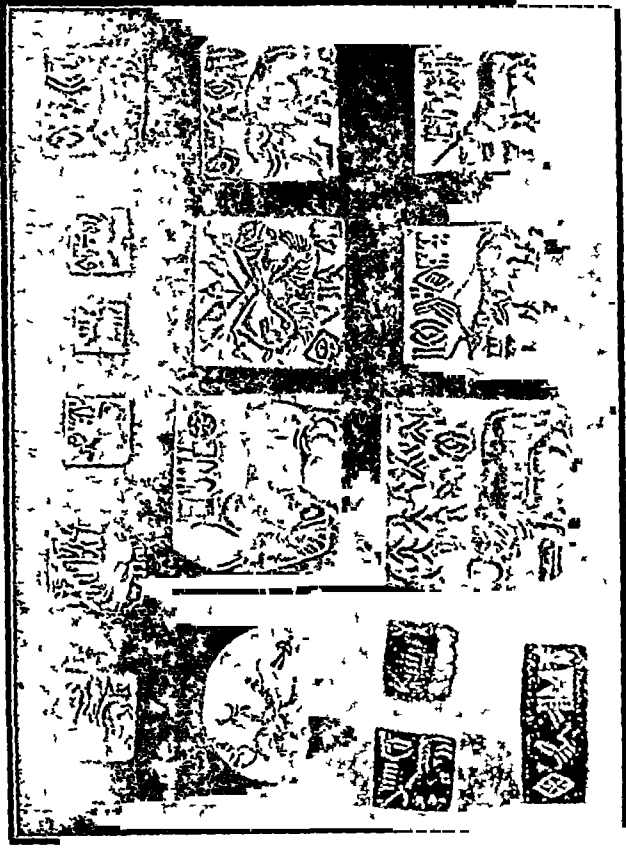
मातृदेवी की मृण्मूर्तियाँ

शवागार

(देखें पृष्ठ ७१)

सड़क
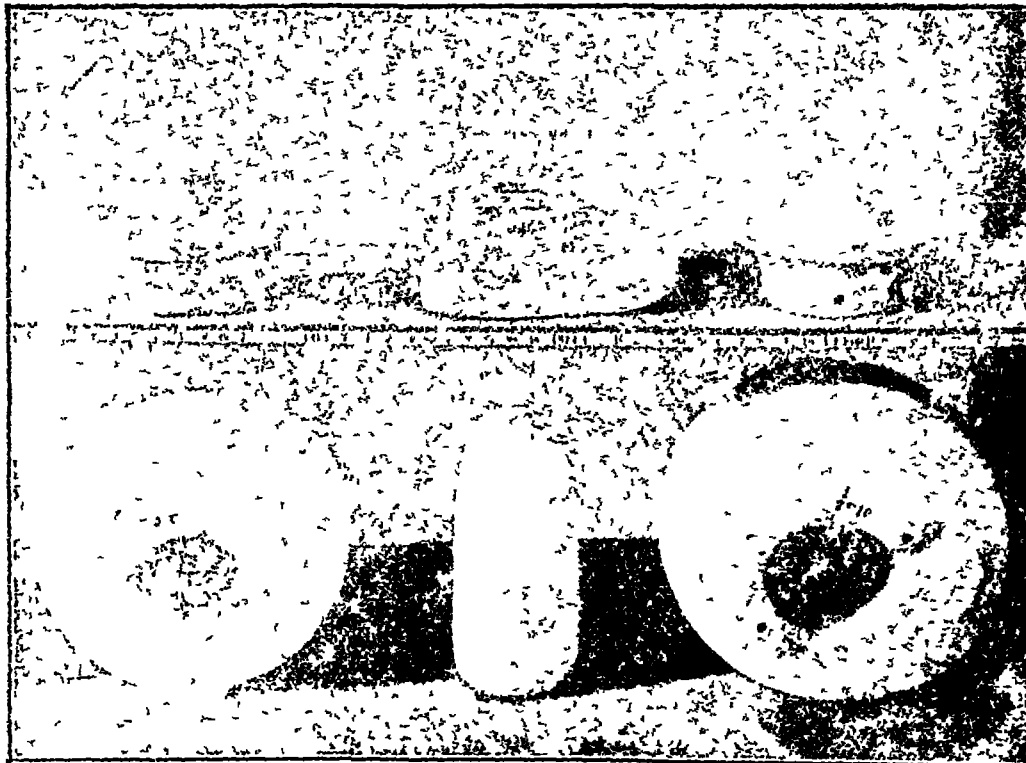
शिव पार्वती के प्रतीक लिंग और योनि

सिंधुघाटी की संस्कृति (देखें पृष्ठ ७१)

शिरोवस्त्र तथा आभूषणयुक्त

नग्न पुरुष मृत्मूर्तियाँ
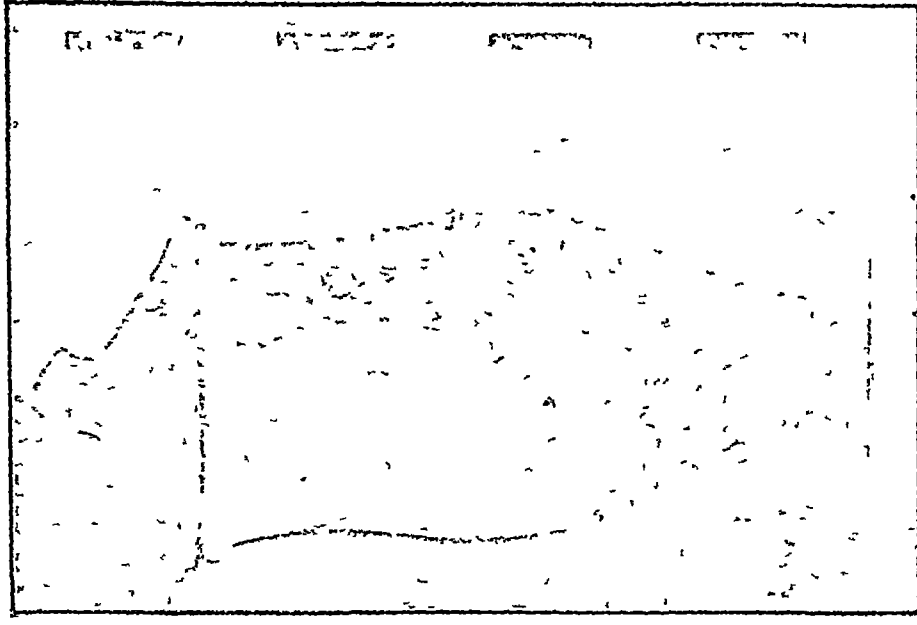
चाँदी का कलश
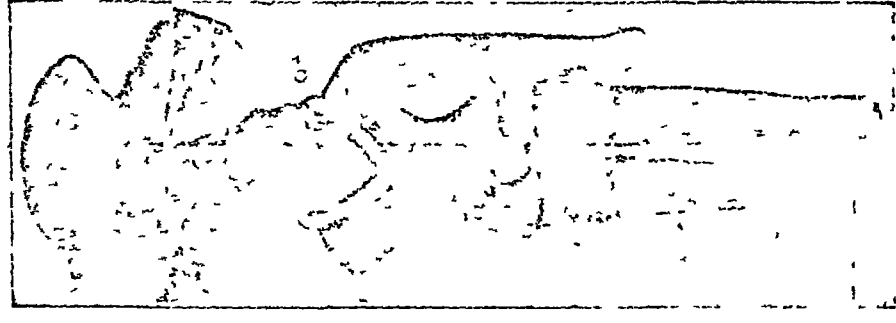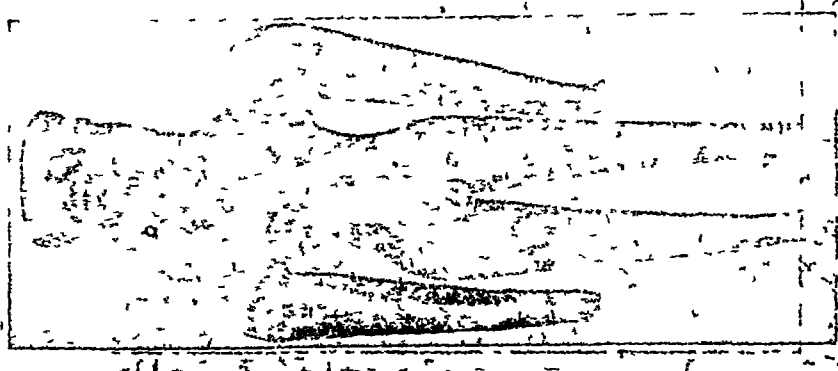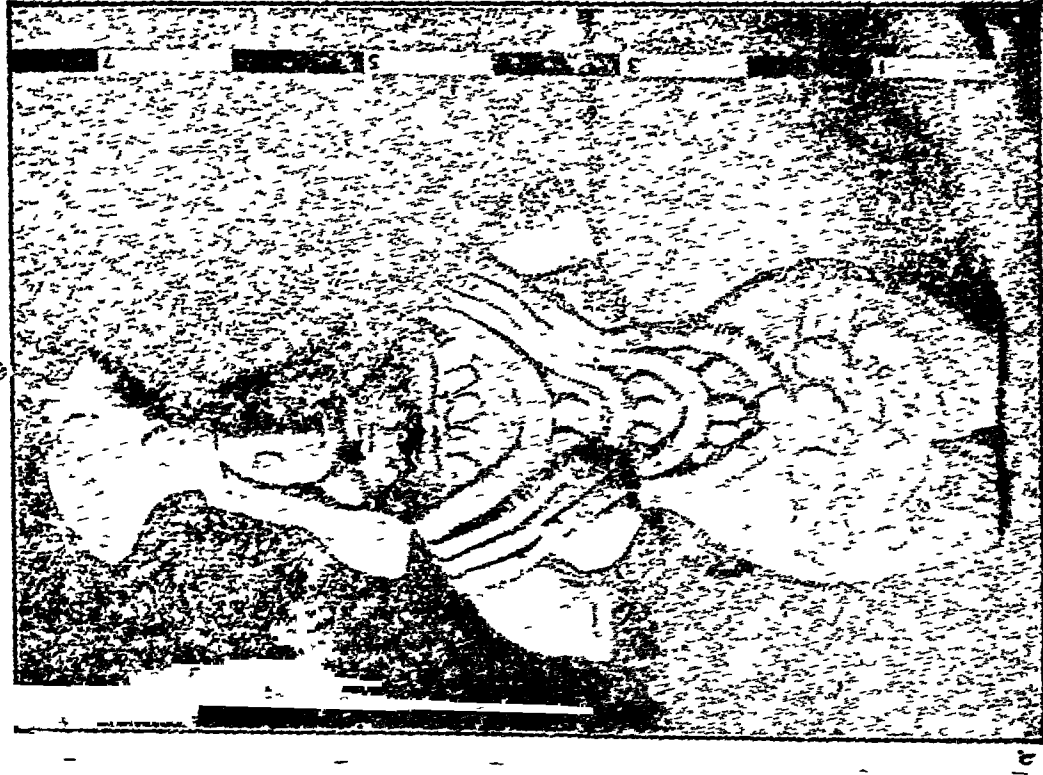
सिंधुघाटी की संस्कृति (देखें पृष्ठ ७१)

मातृदेवी की प्रतिमा
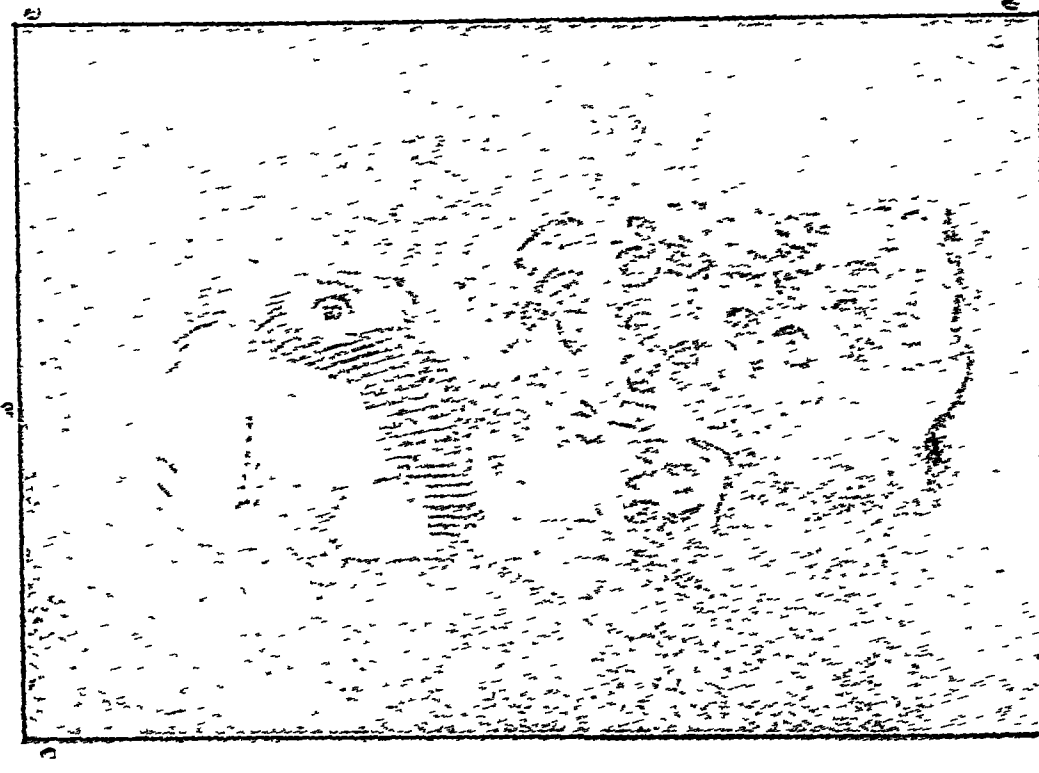
पुरोहित

शिवाजी भोंसले (देखें पृष्ठ ४३६)

महाराज रणजीत सिंह (देखें पृष्ठ ४२५)

शाहंशाह हुमायूँ (देखें पृष्ठ ३८१)

शेरशाह सूरी (देखें पृष्ठ १६३)

वारेन हेस्टिंग्ज़ (देखें पृष्ठ ३६५)
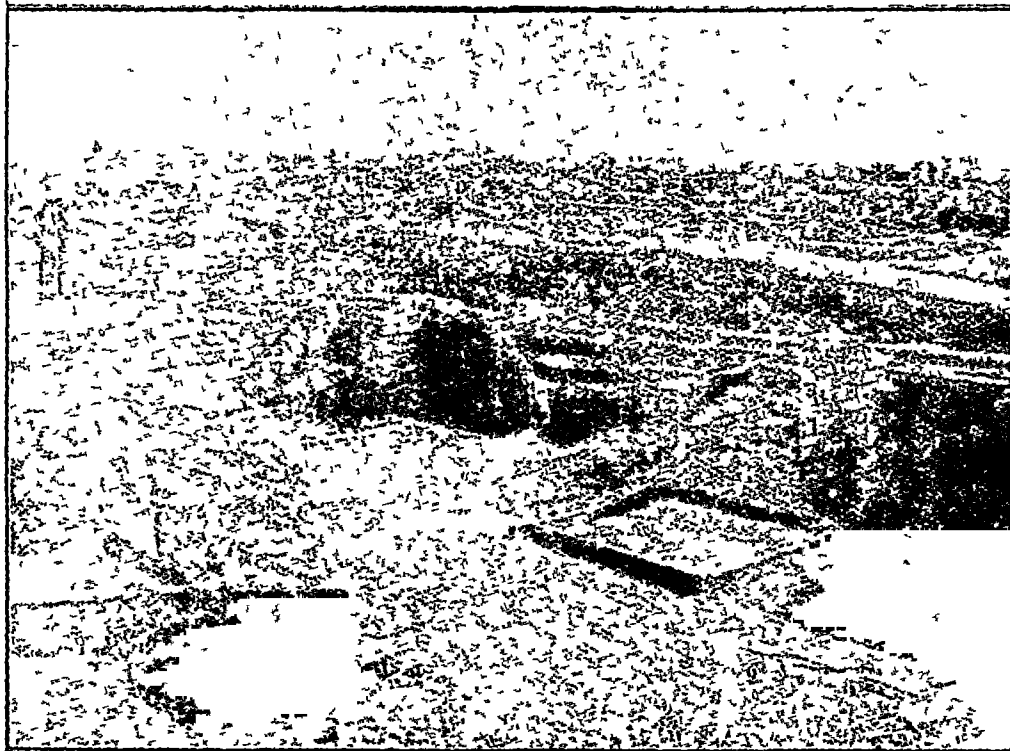
शौचालय

भवन के अंदर कूप

अवशेषों की उपलब्धि हुई, जिसे सिंधु घाटी की सस्कृति के नाम से जाना जाता है। इस सस्कृति के विशद स्थल सिंधु के लरकाना जिला स्थित मोहेंजोदडो तथा पजाब के मोंटगुमरी जिला स्थित हडप्पा में पाए गए। इनके अतिरिक्त, माकरान में, अरब सागर के तट पर सुतकेनजेनडोर और सोक्ताखोह, बलूचिस्तान में डाबरकोट, नोकजो-शाहदिनजाय तथा समस्त सिंधु की घाटी में इस सस्कृति के अनेकानेक स्थल मिले हैं, जिनमें चन्हूदडो, लाहुम्जोदडो आमरी, पडीवाही, अलीमुराद, गाजीशाह आदि उल्लेखनीय हैं, तत्कालीन अनुसधान की दृष्टि से यह सस्कृति सिंधु घाटी ही मे सीमित थी। परंतु जब सन् १९४७ में देश का विभाजन हुआ तो उस समय इस सस्कृति के सभी स्थल पाकिस्तान के अतर्गत आ गए, तत्पश्चात् भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं के सतत प्रयास, अन्वेषण और उत्खनन के परिणाम-स्वरूप यह सिद्ध हो गया कि इस सस्कृति का क्षेत्र न केवल सिंधु-घाटी तक ही सीमित था वरन् पूर्व में उत्तर प्रदेश की गंगा यमुना-घाटी में जिला मेरठ स्थित आलमगीरपुर तक, उत्तर में शिवालिक पहाडियों के नीचे जिला अबाला में स्थित रूपड तथा दक्षिण में नर्मदा ताप्ती के बीच के क्षेत्र मे बहनेवाली किम नदी के किनारे स्थित भगतराव पर्यंत था। इसके विस्तारक्षेत्र में उत्तर पश्चिमी राजस्थान मे घग्गर (प्राचीन सरस्वती) का क्षेत्र तथा समस्त कच्छ और सौराष्ट्र शामिलित थे। इस सस्कृति का क्षेत्र अब २,१७,५५७ वर्ग किलोमीटर ज्ञात होता है, कतिपय विद्वानो का मत है कि इतना विस्तृत क्षेत्र हो जाने के नाते इसको सकुचित रूप से सिंधु सस्कृति न कहकर 'हडप्पा सस्कृति' 'कहना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इस सस्कृति के सभी सास्कृतिक उपकरण हडप्पा में ही सर्वप्रथम उपलब्ध हुए। कदाचित् हडप्पा सस्कृति को प्राग्-इतिहास-युग की एक महान् सभ्यता कहना अनुपयुक्त न होगा क्योंकि भारत पाक उप-महाद्वीप में इसका विस्तार मिस्र की नील घाटी की सभ्यता अथवा ईराक की दजला-फरात घाटी की समकालीन सभ्यता के क्षेत्र से कही अधिक विशाल था।

ईसा पूर्व तृतीय सहस्राब्द मे हडप्पा सस्कृति सिंधु घाटी में सपूर्ण रूप से परिपक्व एव विकसित उपलब्ध होती है। परतु इसकी उत्पत्ति एव शैशव का ज्ञान अभी तक पूर्ण रूप से नहीं हो पाया है। पुरातत्ववेत्ता इस जटिल समस्या को सुलझाने के लिये अनवरत प्रयत्नशील हैं। कुल्ली तथा नाल सभ्यता के कुछ उपकरण, मोहेंजोदडो के उत्खनन में कुछ गहरी परतो से मिले, क्वेटा आई मृत्पात्र (क्वेटा वेट वेअर), हडप्पा में कोट प्रकार पूर्व के कुछ मृत्पात्र जिनमें लाल रग के ऊपर चौडी काली पट्टी बनी है जिनका साम्य पेरियानो घुंडाई के मृत्पात्रों से होता है, कोटडीजी (सिंध) से प्राक् हडप्पा युग की परतो के मिट्टी के पात्र तथा राजस्थान में गंगानगर में कालीबगन के हडप्पा पूर्व के अवशेषों से प्राप्त मिट्टी के पात्र तथा तत्साम्य के सोठी से प्राप्त मृत्पात्र, इस सस्कृति के कतिपय सास्कृतिक उपकरणों के उद्गम एव उत्पत्ति की ओर अवश्य सकेत करते हैं परतु निश्चित रूप से सर्वांगरूपेण इस महान् सस्कृति की उत्पत्ति के विषय में अभी अधिक अन्वेषण और उत्खनन की आवश्यकता है।

हडप्पा सभ्यता की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। जहाँ कहीं भी इस सस्कृति के अवशेष मिले हैं वहाँ कुछ आधारभूत सास्कृतिक उपकरणों का अधिक या कम मात्रा में सामजस्य है जिससे इस सभ्यता की सार्वभौम प्रकृति का पता चलता है परंतु कतिपय क्षेत्र-रूपातर भी पाया गया है जिससे ज्ञात होता है कि सिंधु सस्कृति रूढिगत होते हुए भी जब अन्य प्रदेशों में फैली तो इसमें उन क्षेत्रों के सास्कृतिक उपकरणों का समावेश हो गया जिससे इसके गतिशील होने का परिचय मिलता है, हडप्पा सस्कृति के आधारभूत सास्कृतिक उपकरण निम्न हैं —

१ मुद्राएँ और मुद्राछापें, जिनमे पशुओं की आकृति और चित्र-सकेत-लिपि है,
२. बिलौर (चर्ट) के लबे फाल (ब्लेड), पत्थर के तौल।
३ मिट्टी के लाल रग के पात्र जिनमें काले रग से नैसर्गिक एव ज्यामितिक चित्र बने हैं। इनके मुख्य मिट्टी के बर्तनों के प्रकार में डिश-ऑन-स्टैंड, गोबलेट, बीकर, परफोरेटेड जार हैं।
४ ताम्र और काँसे का प्रयोग।
५. विशद नगर नियोजन, कोट प्रकार तथा प्रमाप परिमाण की ईंटें।
६. पकी मिट्टी के खिलौने, मृच्छकटिको के चोरवटें तथा मातृ-देवी का प्रतिमाएँ।
७. पकी मिट्टी के तिकोने केक।
८. इद्रगोप (कारनेलियन) के लबे मनके, फेंस, स्टीरोटाइप के मनके।
९ धान्यागार।
१० गेहूँ और कपास का प्रयोग।
११ मृतकों को गाडने की विशेष प्रथा तथा श्मशान भूमियाँ।

अब प्रश्न उठता है कि इस सभ्यता का विशद विस्तार क्यो हुआ ? यह सस्कृति सिंधु घाटी मे ही सीमित न रहकर पूर्व में और दक्षिण पश्चिम की ओर क्यो फैली ? कदाचित् इसका कारण आर्थिक, प्राकृतिक एवं आक्रमण हो सकते हैं परतु अभी स्थिति स्पष्ट नही है। किंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस सस्कृति का विस्तार मुख्यत दो दिशाओ में हुआ, एक तो हडप्पा की ओर से उत्तर, पूर्व, दक्षिण मे स्थल और नदियो के मार्ग से और दूसरा मोहेंजोदडो की तरफ से समुद्री मार्ग द्वारा कच्छ और सौराष्ट्र की ओर। हाल में उत्तरी कच्छ मे हडप्पा संस्कृति के अनेक अवशेषों के उपलब्ध हो जाने से इस सस्कृति के लोगो के सिंध से कच्छ की ओर स्थल देशातर-गमन की सभावना पर महत्वपूर्ण प्रकाश पडा है।

इस सस्कृति के कुछ मुख्य केंद्र ये हैं — सिंध में मोहेंजोदडो, पजाब में हडप्पा और रूपड, कच्छ में देसलपुर और सूरकोटडा, सौराष्ट्र में लोथल, रोजडी तथा प्रभासपट्टन, राजस्थान में कालीबगन और उत्तर प्रदेश मे आलमगीरपुर। इनमें भी मोहेंजोदडो, हडप्पा, कालीबगन और लोथल विशेष वर्णनीय हैं। प्रथम तीन तो प्रादेशिक राजधानियाँ सी लगती हैं और लोथल एक बहुत बडा व्यापारकेंद्र लगता है।

दोहा का प्राधान्य कम हुआ, काफियाँ, कसीदे और मर्सिए अधिक संख्या में लिखे जाने लगे। गजलों का प्रारंभ हुआ। गद्य का रूप भी स्पष्ट होने लगा। इस युग के सबसे प्रसिद्ध कवि सचल उपनाम 'सरमस्त' (१७३९–१८२६) थे जिन्हें सूफी संतों में बड़े आदर के साथ स्मरण किया जाता है। उनकी सी मधुर गीतियाँ और रसीली काफियाँ बहुत कम कवियों ने लिखी हैं। वे प्रेमी भक्त के लिये बाह्याचार और लोकाचार ही को नहीं, ज्ञान और कर्मकांड को भी व्यर्थ समझते हैं। हफीज का 'मोमल राना' और हाजी अब्दुल्लाह का 'लैला मजनूँ' उल्लेखनीय किस्से हैं। साबित अली शाह के मर्सिए आज भी मुहर्रम के दिनों में गाए जाते हैं। हिंदू कवियों में दीवान दलपत राय (मृत्यु सन् १८४१), और सामी (१७४३–१८५०) जिनका पूरा नाम भाई चैन राय था, वेदांती कवि थे। इस युग के अन्य कवियों में साहबडना, अली गौहर, आरिफ, करम उल्लाह, फतह मुहम्मद और नबी बख्श के नाम उल्लेखनीय हैं।

अंग्रेजी राज्यकाल (१८४३ से १९४७ ई०) में सिंधी में काव्य तो बहुत लिखा गया है, किंतु उसका स्तर ऊँचा नहीं है। सिंधी जनता से उसका संबंध विच्छिन्न सा हो गया है और वह उर्दू फारसी कल्पनाओं, आख्यानों, भावों, विधाओं, रूपों और उपमानों को सिंधी वेश में लाने में प्रवृत्त हो गया। काव्य में स्वच्छंदता तो है और विषयों की विविधता भी, किंतु मौलिकता बहुत कम है। इसपर पश्चिमी प्रभाव भी पड़ा है। इधर जो सिंधी में काव्यरचना देश के बँटवारे के बाद भारत में हुई है उसपर हिंदी और बंगला का प्रभाव भी स्पष्ट है। पुराने ढंग की कविता करनेवालों में सूफी कवि कादर बख्श बेदिल (१८१४-१८७३ ई०) ने किस्से और काफी, वाई, बैंत और सुर आदि मुक्तक लिखे, और हमल फकीर लगारी (१८१५-१८७९ ई०) ने सिराइकी और विचोली में प्रेममार्गी काव्य की रचना की। लगारी का हीर राँझे का किस्सा बहुत प्रसिद्ध है। ये पंजाब के रहनेवाले थे, खैरपुर में आकर बस गए थे। इन्होंने दोहे भी लिखे। शाह लतीफ के बाद इनका स्थान निश्चित किया जाता है। सैयद महमूद शाह की काफियाँ भी पुरानी शैली की हैं। उर्दू-फारसी-ढंग पर लिखनेवालों में अनेक नाम मिलते हैं। खलीफा गुल मोहम्मद (मृत्यु १८५६) ने फारसी छंदों और आदर्शों को अपनाया और सिंधी में लैला मजनूँ, यूसुफ जुलेखा, शीरीं फरहाद की कथाएँ लिखीं। मूर मोहम्मद और मोहम्मद हाशिम ने 'हिजो' (निंदात्मक कविताएँ) लिखीं और कलीच बेग और अबदुल हुसैन ने कसीदे (प्रशस्तियाँ) लिखे। कलीच बेग (मृत्यु १९२९) ने उमरखय्याम का अनुवाद सिंधी पद्य में किया। नवाब मीर हसन अली खाँ (१८२४–१९०९) ने फिरदौसी के 'शाहनामा' की नकल पर 'शाहनामा सिंध' की रचना की। उन्होंने गजलें, सलाम और कसीदे भी लिखे। इनके अतिरिक्त सागी, खाकी (लीलाराम सिंह), बेकस (बेदिल के पुत्र), जीवत सिंह और मुराद के नाम उल्लेखनीय हैं। पश्चिमी साहित्य से प्रभावित होकर लिखनेवालों में डेवनदास, दयाराम, गिडूमल, नारायण श्याम, मघाराम मलकाणी तथा टी० एल० वसवाणी उल्लेखनीय हैं। मौलिक ढंग से कविता करनेवालों में कुछ नाम गिनाए जा सकते हैं। शम्सुद्दीन बुलबुल का सिंधी काव्य में वही स्थान है जो उर्दू में अकबर इलाहाबादी का। नई सभ्यता पर इनके व्यंग्य भी सुधारात्मक वृत्ति से लिखे गए हैं। इन्होंने गजलें भी लिखीं। करुण रस गुलाम शाह की कविता में भरा पड़ा है। इन्हें 'आँसुओं का बादशाह' कहा जाता है। हैदरबख्श जतोई की कविता में देशभक्ति ओतप्रोत है। सिंधु नदी के प्रति उनकी कविता बहुत प्रसिद्ध हुई है। लेखराज अजीज प्रकृति के चित्रकार हैं। मास्टर किशनचंद बेवस (मृत्यु १९४७) अत्यंत स्वाभाविक भाषा में लिखते रहे हैं। उनके दो कवितासंग्रह—शीरीं शेर और गंगाजूँ लहरूँ—प्रकाशित हैं। इनके शिष्यों में हरि दिलगीर ('कोड' के लेखक), हूँदराज दुखायल ('संगीत फूल' के कवि), राम पंजवाणी तथा गोविंद भटिया आज प्रगतिशील कवियों में गिने जाते हैं। जीवित कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध शेख अयाज हैं जिनके गीत 'बागी' नाम के संग्रह में प्रकाशित हुए हैं।

सन् १९०२ के पहले का कोई नाटक उपलब्ध नहीं है। तब से शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद अथवा रामायण और महाभारत की किन्हीं घटनाओं के आधार पर लिखे गए नाटक मिलने लगते हैं। शाह (लतीफ) की कविता के आधार पर लालचंद अमरडिनूमल का लिखा हुआ 'उमर मारुई' सबसे पहला सफल नाटक माना जाता है। कवि कलीच बेग का 'खुरशीद' नाटक (१८७०) पठनीय है। उसाणी का 'बदनसीब थरी' एक प्रहसन है। लीलराम सिंह के नाटक अपनी भाषा और शिल्पशैली की दृष्टि से बहुत सुंदर हैं। दयाराम गिडूमल का 'सत्त सहेल्यूँ' और राम पंजवाणी का 'मूमल राणो' अभिनेय नाटक हैं। वर्तमान समय में सबसे प्रसिद्ध नाटककार मंघाराम मलकाणी हैं जिन्होंने कई सामाजिक नाटक और एकांकी लिखे हैं। आप निबंधकार और कवि भी हैं।

अधिकतर गद्य साहित्य अनुवाद रूप में प्राप्त है। मौलिक लेखकों में मिर्जा कलीच बेग और कौडोमल चंदनमल (मृत्यु १९१६) गद्य के प्रवर्तकों में गिने जाते हैं। मिर्जा ने लगभग २०० पुस्तकें लिखी हैं। उनका 'ज़ीनत' (१८९०) सिंधी का पहला मौलिक उपन्यास है जिसमें सिंधी जीवन का यथातथ्य चित्रण मिलता है। प्रीतमदास कृत 'अजीब भेंट', आसानंद कृत 'शायर', भोजराजकृत 'दादा श्याम' (आत्मकथा की शैली में), और नारायण भंभाणी का 'विधवा' उल्लेखनीय हैं। परमानंद मेवाराम अपनी रसीली और यथार्थवादी कहानियों, निर्मलदास फतहचंद और जेठमल परसराम प्रगतिवादी कहानियों तथा भेरूमल मेहरचंद जासूसी कहानियों के कारण विख्यात हैं। वर्तमान समय में सुंदरी उत्तमचंदानी और आनंद गोलवाणी अच्छे कहानीलेखक माने जाते हैं। परमानंद मेवाराम निबंधकार भी हैं। लुत्फउल्लाह कुरैशी, लालचंद अमरडिनूमल, नारायणदास मलकाणी, केवलराम सलामतराय अडवाणी और परसराम की गिनती सिंधी के आधुनिक शैलीकारों में की जाती है।

सं० ग्रं० — सीमूर, एल० डब्ल्यू० : ए ग्रामर आव सिंधी लैंग्वेज, कराची, १८८४; ट्रंप, डा० अर्नेस्ट : ग्रामर आव सिंधी लैंग्वेज, लंदन ऐंड लाइपजिग, १८७२। [ह० बा०]

सिंधु घाटी की संस्कृति भारतीय अनुसंधान में सन् १९२०-२२ का एक विशेष महत्व है। इसी समय भारत पाकिस्तान उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिमी भाग में 'कांस्ययुग' की एक महान् संस्कृति के

इस शातिप्रिय एव व्यापारिक सस्कृति का अत एकाएक कैसे हुआ ? कैसे इतनी बडी जनसख्या का लोप हो गया ? क्या यह अनायास ही अवरुद्ध हो गई ? इसका उत्तरदायित्व या तो नदियो की बाढों का हो सकता है या आक्रमणकारियो के दुर्दांत आक्रमणो का । डेल्स ने बतलाया है कि सहसा ई०पू० द्वितीय सहस्राब्द के लगभग मध्य मे इस भाग में अरब सागर का तट ऊँचा हो गया । इसके अतिरिक्त अधिकाधिक बाढो से लाई गई मिट्टी से सिंधु का मुहाना अवरुद्ध हो गया । नदी का जलस्तर भी बढ़ गया और धरती की क्षारता भी अधिक हो गई जिसके कारण इस सस्कृति का सिंध में अत हो गया । हड़प्पा में श्मशान 'ह' की खुदाई से जिस शवोत्सर्ग प्रथा और कुभकला का ज्ञान हुआ है उससे पता चलता है कि ये एक नई सभ्यता के लोग अवश्य थे जो हड़प्पा में आए परतु लाल के मतानुसार यह श्मशान हड़प्पा संस्कृति के अवशेषो के ऊपर १ ५२ मी०—१ ८२ मीटर मलबे के एकत्रित होने के पश्चात् बना हुआ पाया गया । अत श्मशान 'ह' की सभ्यता का हड़प्पा सस्कृति के काफी बाद में उस स्थान मे आगमन मानना चाहिए, श्मशान 'ह' की कुभकला और उसमे चित्रित परलोकवाद को लेकर या इन्हें आर्यों से सबधित करके 'पुरदर' को पूजनेवाले आर्यों द्वारा हड़प्पा सस्कृति का अत मानना युक्तिसगत नहीं लगता है ।

पूर्वी पजाब में सतलज की सहायक सिरसा तथा अन्य नदियों के किनारो में हड़प्पा सस्कृति के अवशेष बिचकुम या ढेर माजरा, बाढ़ा, कोटलतालापुर, चमकौर, डागमरहनवाला, राजा सीकाक, ढागरी और माधोपुर, कोटला निहग नामक स्थानों में प्राप्त हुए । शर्मा को रूपड नामक स्थान पर हड़प्पा सस्कृति के विशद उल्लेखनीय अवशेष उपलब्ध हुए हैं । यहाँ हड़प्पा सस्कृति के लगभग सभी सास्कृतिक उपकरण उपलब्ध होते हैं और एक तत्कालीन श्मशान भी मिला है । रूपड में हड़प्पा सस्कृति की ऊपर की परतों में कुछ सास्कृतिक उपकरण, जैसे पकाई मिट्टी के केक तथा सैंधव गोवलेट कम मात्रा मे मिलते हैं जिससे कुछ ह्रास का आभास अवश्य होता है । बाढा की स्थिति कुछ भिन्न ज्ञात होती है । हाल में देशपाडे को मुदयाला कालान और काट्टू पालन में हड़प्पा सस्कृति के अवशेष मिले हैं । इनका बाढा और रूपड से सबध रोचक हो सकता है ।

उत्तर प्रदेश के मेरठ जिला स्थित हिंडन के किनारे आलमगीरपुर नामक स्थान पर शर्मा को जो हड़प्पा सस्कृति के अल्प अवशेष प्राप्त हुए हैं उनसे पता चलता है कि हड़प्पा सस्कृति के लोग इस भाग तक अवश्य पहुँचे, परतु यहाँ नगर निर्माण एवं श्मशान का कोई अवशेष प्राप्त नही हुआ है । केवल हड़प्पा सस्कृति के मृत्पात्र तथा चित्र सकेत-लिपि के कुछ उदाहरण पात्रों में तथा पक्की मिट्टी के तिकोने केक, मनके आदि मिलते हैं । हो सकता है, यहाँ पहुँचते पहुँचते हड़प्पा सभ्यता के कतिपय सास्कृतिक उपकरण ही रह गए हों । जो कुछ भी हो, आलमगीरपुर इस सस्कृति की नि सदेह पूर्वी सीमा अवश्य बतलाता है । देशपाडे को सहारनपुर की नकुर तहसील स्थित पिलखानी और बडगाँव मे हड़प्पा सस्कृति के अवनतिकाल के अवशेष मिले हैं तथा उसी जिले में अंबाखेडी में इस संस्कृति के कुछ ह्रासोन्मुख अवशेष भी प्राप्त हुए हैं । इन अवशेषो से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि गंगा-यमुना-घाटी तक हड़प्पा सस्कृति का विस्तार था, कालक्रम मे भले ही यह अतिम चरण में हो ।

३ कालीबंगन — १९५२–५३ में घोष को राजस्थान में भारत पाक सीमा से लेकर हनुमानगढ पर्यंत प्राचीन सरस्वती और दृशद्वती नदियों के किनारे हड़प्पा सस्कृति के २५ स्थल प्राप्त हुए जिनमें गगानगर स्थित कालीबगन के दो टीले उल्लेखनीय हैं । इन टीलो का उत्खनन लाल और थापड ने सन् १९६१ से सतत रूप से प्रारभ किया और उत्खनन कार्य अभी भी चल रहा है ।

इन दोनो टीलों में पूर्व का टीला पश्चिमी टीले की अपेक्षा अधिक बडा है । इन पाँच वर्षों की खुदाई के परिणामस्वरूप पश्चिमी टीले में प्राकारावेष्ठित दुर्ग मिला है जिसके प्राकार को कच्ची ईंटों से बनाया गया । इसका विशद भाग दक्षिण की तरफ उपलब्ध होता है । इस दुर्ग के अदर मिट्टी और कच्ची मिट्टी की ईंटों के कई चबूतरे हैं और अलग अलग समय की पक्की ईंटो की नालियाँ बनी हैं । प्राकार के उत्तर पश्चिम में एक बुर्ज के अवशेष का आभास होता है । दक्षिण की तरफ इस प्राकार में एक द्वार (२·६५ मीटर चौडाई) के भग्नावशेष भी दृष्टिगत हुए हैं । यद्यपि यह पक्की ईंटो का बना था, तथापि ईंट के चोरो ने इसे काफी क्षति पहुँचाई है । इसमे दुर्ग के ऊपर चढ़ने के हेतु सीढ़ियाँ बनी रही होंगी जैसा अवशेषो से आभास होता है । एक स्थान पर एक लकीर में राख से भरी कुछ अग्निवेदियाँ मिली हैं । कदाचित् इनका कुछ धार्मिक अर्थ हो ऐसा सभव हो सकता है । प्राकार, दुर्ग और चबूतरों की स्थिति का ठीक ज्ञान अधिक उत्खनन होने के पश्चात् ही होगा ।

दूसरे पूर्वी टीले की खुदाई के फलस्वरूप आदर्श सिंधु सभ्यता की शतरज की बिसात के नमूने का नगर मिला है जो प्राकारवेष्ठित है और जिसमें सडकें और गलियाँ एक दूसरे से समकोण में मिलती हैं, जिनके दोनों तरफ मकान बने है । यहाँ पर सडकें पहले सादी मिट्टी की होती थीं परतु कालातर मे उनके ऊपर पकाई मिट्टी के केक डालकर पाट दिया जाता था । सडको में नालियाँ अभी तक प्राप्त नही हुई हैं । एक मकान मे से अलग अलग समय की दो तीन नालियाँ निकलती हुई सडक की तरफ डाली गई हैं । मकानो के सामने कच्ची मिट्टी का फर्श बना हुआ दिखाई देता है । सडकों में मकानो के सामने आयताकार स्थान है । हो सकता है, यह बिकाऊ सामान रखने के लिये हो या पशुओ को चारा खिलाने या पानी पिलाने के लिये हो । मकानो की छतें बेंत मे मिट्टी का गारा लगाकर बनाई जाती थी ।

यहाँ पर एक हड़प्पाकालीन श्मशान भी उपलब्ध हुआ है जिसकी अभी तक १४ समाधियाँ खोली गई, जिनमें से ५ कब्रो में अस्थियुक्त ककाल मृत्पात्रों समेत पाए गए । इनमें से एक में हड़प्पा शवोत्सर्ग प्रथा के बिल्कुल विपरीत ककाल झुका, हाथ पावें मोडे पेट के बल, अधोमुख, दक्षिण शीर्ष पाया गया और जो कब्र के उत्तरी भाग में सात मृत्पात्रो के साथ समाविष्ट था और दक्षिण भाग करीब करीब खाली था । एक दूसरी जो आयताकार कब्र निकली है (५ × २ मी)

१ मोहंजोदड़ो — सिंध के लरकाना जिले में स्थित मोहजोदड़ो का अर्थ 'मृतकों का स्थान' होता है। इस विशाल टीले की उपलब्धि और उत्खनन का कार्य आर. डी. बनर्जी ने १६२१-२२ मे करवाया। इसके बाद मार्शल के निर्देशन में दीक्षित, वत्स, हारग्रीव्ज तथा मैके आदि ने किया। उत्खनन के फलस्वरूप मोहंजोदडो में कृत्रिम पहाडी के ऊपर लगभग १५·२४ मीटर की ऊँचाई पर एक प्राकार-वेष्ठित दुर्ग मिला है जिसके दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम में पक्की ईंटों और लकड़ी के बने बुर्जों के ध्वसावशेष हैं। इस दुर्ग के भीतर सबसे महत्वपूर्ण वास्तु चतुर्दिक् बरामदो से घिरा हुआ एक स्नानकुड मिला है जिसकी माप ११·८८×६·०१×२·४३ मीटर है। इस कुड की बाहरी दीवार पर गिरिपुष्पक की एक इच मोटी पलस्तर लगी मिली। इसके पश्चिम में एक धान्यागार या भांडागार मिला है जिसके निर्माण में सुदृढ लकडी के लट्ठो का प्रयोग किया गया है और वायु प्रवेश करने के हेतु मार्ग बने है। इसके दक्षिण में माल उतारने चढाने के लिये एक पक्की ई ट का चबूतरा भी मिला है।

इसके अतिरिक्त व्हीलर के मतानुसार एक सभामडप, विद्यालय तथा लबे भवन (७०·१०×२३·७७ मीटर) के भी अवशेष प्राप्त हुए हैं जो कदाचित् धर्माध्यक्ष या उच्च अधिकारी का हो। दुर्ग के नीचे सिंधु नदी की ओर, जो अब इस स्थान से दो मील दूर पूर्व हटकर बहती है, मोहंजोदड़ो का विशाल नगर बसा हुआ था जिसके ध्वसावशेष बताते हैं कि यह विभिन्न खंडो में विभाजित था जिसमें से ६ खडो का पता चला है। सडकें सीधी, उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम दिशाओं को जाती हुई एक दूसरे को समकोण पर काटती थी। कही कही सड़कें १०·०५८ मीटर चौडी भी मिली हैं।

मकानों से नालियाँ आकर सडक के किनारे बहनेवाली बंद नाली में मिल जाती थीं और नालियो के बीच में सोक पिट की व्यवस्था थी। मकान बड़े और छोटे मिले हैं। छोटे मकानो में आँगन के चारो ओर ४ या ६ कमरे होते थे। ऊपर दुमंजिले या छत पर जाने के लिये सीढी होती थी और प्रत्येक मकान में स्नानगृह (बाथ रूम) होता था जिसका पानी जाने के लिये ढँकी हुई नाली का प्रबंध था। किसी भी मंदिर के अवशेष नहीं मिले हैं तथापि एक चपटे भवन को कुछ लोगो ने मंदिर समझा है। इतनी सुव्यवस्थित नगर-निर्माण-कला की तुलना उस समय के सभ्य ससार के अन्य भागो से नही की जा सकती।

मोहंजोदडो के उत्खनन में जो अनर्घ कोष मिला है उसमें मुद्रा, मुद्रा छापें, पत्थर के तौल, बिल्लौर के फाल, तांबे और कांसे के शास्त्रोपकरण और बर्तन, मनुष्यों एवं जानवरों की मिट्टी की मूर्तियाँ, मातृदेवी की प्रतिमाएँ, सोने, चांदी के मनके, कंगन, गलहार, अनेक चित्रित मृतभाड, हाथीदांत, फेयस और शंख की वस्तुएँ हैं। इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट शिल्प में 'कास्य की नर्तकी' और 'दाढ़ीवाला मनुष्य' महत्वपूर्ण हैं। अनेकानेक पत्थर के लिंग और योनियाँ मिली हैं, जो प्रकृति और पुरुष की पूजा के द्योतक हो सकते हैं। मोहंजोदडो से प्राप्त 'शिव पशुपति' मुद्रा मार्शल के मतानुसार शिव की उपासना का द्योतक है। ये लोग कपास से रूई बनाकर सूती कपड़ा पहनते थे और गेहूँ इनका खाद्यान्न था।

२ हड़प्पा — इस सभ्यता का दूसरा बड़ा स्थल पंजाब के मोंट-गुमरी जिला स्थित हड़प्पा था जो किसी समय रावी नदी के किनारे पर था। इस स्थान को मेसन और बर्न्स ने १६वीं सदी के पहले चरण में पहली बार देखा था। बाद को कनिंघम ने खुदाई भी कराई थी। १६२० से ४६ तक भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने यहाँ पर उत्खनन कराया। हडप्पा को रेल के ठेकेदारो ने बड़ी क्षति पहुँचाई है और यहाँ की ईंटें ले जाकर १६० किलो मीटर लंबी पटरी पर डाला गया जिससे यहाँ के अवशेषो को बहुत क्षति पहुँची है और कुछ ही वास्तुखंड मिल पाए हैं। परंतु जो कुछ भी प्राप्त हुआ है वह अत्यत महत्वपूर्ण है।

मोहजोदड़ो की तरह हडप्पा मे भी एक प्राकारवेष्ठित दुर्ग और उसके सामने नगर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस दुर्ग का आकार लगभग समानातर चतुर्भुज का है। इस दुर्ग का प्राकार जिसकी ऊँचाई लगभग १५.२४ मीटर निकली, तीन भिन्न भिन्न समयो में बनाया गया दृष्टिगत होता है। दुर्गप्राकार के बाहर कच्ची मिट्टी की ईंटो के बाह्य भाग में पक्की ईंटें भी लगा दी गई हैं। प्राकार में स्थान स्थान पर बुर्ज और वृत्ताकार प्रवेश-द्वार थे हड़प्पा में एक धान्यागार भी मिला है। प्राकार-वेष्ठित दुर्ग से नदी तक के बीच श्रमजीवियो के निवास-स्थान और अनाज कूटने के लिये वृत्ताकार चबूतरे बने मिले हैं, जिनके समीप ही ६–६ की दो पक्तियो में निर्मित धान्यागार के अवशेष मिले हैं जिसके बीच में ७·०१ मीटर चौड़ा रास्ता था। इस धान्यागार का क्षेत्र ८३६·१३ वर्ग मीटर है। नदी द्वारा अनाज लाकर इस भंडार में सुरक्षित रखा जाता होगा।

१६४६ की खुदाई में व्हीलर को हडप्पा मे एक बड़ा श्मशान मिला जिससे शवोत्सर्ग के बारे में ज्ञान होता है। शवों को कब्र बनाकर उत्तर पश्चिम दिशा में रखकर गाड़ा जाता था। कभी ईंटो से पक्की कब्र बनाई जाती थी। मृतक के उपयोग के लिये आभूषण, पात्रादि भी रख दिए जाते थे। एक शव को लकड़ी के संदूक में रखकर गाड़ने का साक्ष्य भी है। कदाचित् यह किसी विदेशी का शव हो।

यहाँ की खुदाई में जो अनर्घ वस्तुकोष मिला है, उसमें डेढ़ हजार के लगभग पत्थर, मिट्टी, फेयस इत्यादि की मुद्राएँ, मिट्टी के खिलौने, चाँदी, पत्थर आदि के मनके, नाना प्रकार के मिट्टी के बरतन, (जिनमे बहुत से चित्रित भी हैं.) हाथीदाँत और शंख की वस्तुएँ हैं। सांस्कृतिक उपकरणो में हड़प्पा और मोहंजोदड़ो का भारी साम्य है।

सुमेर में पाई गई अनेकानेक सैंधव मुद्राओ से इस संस्कृति का तत्कालीन पश्चिमी एशिया की संस्कृतियो से व्यापारिक संबंध ज्ञात होता है। क्रेमर के मतानुसार सुमेरिया के साहित्य में 'बाढ़ कथा' मे जो दिलमन का वर्णन आता है उससे सिंधु घाटी का अधिक साम्य प्रतीत होता है।

प्राकारवेष्ठित अवशेष हैं परंतु 'एक 'व' में कुछ परिवर्तन आ जाता है और छोटे फालो तथा पीलापन लिए सफेद मिट्टी के वर्तन आ जाते हैं। देसलपुर 'दो' में एक नई सभ्यता का उद्गम होता है। देसलपुर के अतिरिक्त उत्तरी कक्ष में अभी हाल मे जे० पी० जोशी को सूरकोटडा, पावू मठ, कोटडा, कोटडा भडली, लाखापर, परिवाडा खेतर, खारी का खाडा और कैरासी नामक स्थानों में हडप्पा सस्कृति के अवशेष मिले हैं। इन सब टीलों में खदिर क्षेत्र में स्थित कोटडी का टीला बहुत बडा है। यहाँ पर प्राकारवेष्ठित दुर्ग और नगर दोनों का होना सभव है। लाखापार, कोटडा और पावू मठ काफी बड़े टीले हैं। सिंध के पास होने के कारण हडप्पा सस्कृति के अवशेषों का उत्तरी कच्छ में प्राप्त होना इस सस्कृति की विस्तारयोजना में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन टीलों का उत्खनन इस क्षेत्र की तत्कालीन स्थिति पर अधिक प्रकाश डालेगा।

इस महान् सस्कृति के लोग किस प्रजाति के थे ? मोहजोदडो, हडप्पा तथा लोथल से प्राप्त ककालो की कापालिक देशना के आधार पर नृतत्ववेत्ताओ ने सिंध, पजाब और गुजरात के आधुनिक लोगों से ही इनका साम्य बताया है। फिर भी स्थिति स्पष्ट नही है। इस दिशा में अधिक अनुसधान की आवश्यकता है।

अब यह देखना है कि इस सस्कृति का जीवनकाल क्या रहा होगा ? ह्वीलर ने पश्चिमी ऐशिया में प्राप्त सैंधव मुद्राओ के आधार पर इसका काल २५०० ई० पू० से १५०० ई० पू० तक निर्धारित किया है। परतु अग्रवाल के मतानुसार कार्बन १४ की तिथियों के आधार पर इस सस्कृति का जीवनकाल २३०० ई० पू० से १७५० ई० पू० तक ही निर्दिष्ट होता है।

जैसा पहले लिखा जा चुका है, इस संस्कृति का अत कुछ क्षेत्रों में बाढो से और अन्य मे सक्रमण एव परिवर्तन से हुआ। जो कुछ भी हो, भारतीय सस्कृति के निर्माण में इस सस्कृति का योगदान रहा तथा इसकी छाप बहुत ही महत्वपूर्ण दृष्टिगत होती है। नियोजित नगर निर्माणकला, प्राकारवेष्ठित दुर्ग, नाप तौल तथा ज्यामिति के उपकरण, नावघाटो का निर्माण, कपास और गेहूँ का उत्पादन, अतिरिक्त अर्थव्यवस्था, श्रमिक कल्याण, शिवशक्ति की उपासना, नृत्य और उत्कृष्ट शिल्प की देन, शाति तथा वाणिज्य का अमर सदेश सर्वदा के लिये भारतीय सस्कृति के अंग बन गए। [ज० जो०]

सं० ग्रं० — अग्रवाल, डी० पी० . हडप्पन क्रोनोलोजी : ए रीएग्जामिनेशन ऑफ दी एवीडेंस, स्टडीज इन प्रीहिस्ट्री रोबर्ट ब्रूस फुट मेमोरियल वोल्यूम (कलकत्ता, १९६४), घोष, ए० . द इडस सिविलिजेशन, इट्स ओरिजिंस, ऑथर्स इक्सटेंट ऐंड क्रोनोलोजी, इंडियन प्रीहिस्ट्री (पूना, १९६४), घोष : इ डियन आर्कियोलाजी ए रीव्यू, सन् १९५३ से १९६५ तक, मार्शल, सर जे० मोहजोदड़ो ऐंड इंडस सिविलिजेशन, भाग १,२ (१९३७), मैके, ई० जे० एच० फरदर एक्सकेवेशन ऐट मोहजोदडो, भाग १,२ (१९३७-३८);

लाल, बी० बी० : स्वाधीनता के बाद खोज और खुदाई, पुरातत्व विशेषाक, 'संस्कृति', पृ० १४ से १७, वत्स, एम० एस० : एक्सकेवेशन ऐट हडप्पा भाग १, २ (दिल्ली १९४०), ह्वीलर, आर० ई० एम० अर्ली इ डिया ऐंड पाकिस्तान (लदन, १९५९)।

सिंपसन, जेम्स यंग, सर (Simpson, Games Young, Sir, सन् १८११-१८७०) का जन्म लिनलिथगो प्रदेश (स्काटलैंड) के वाथगेट नामक ग्राम में हुआ था। इनका परिवार गरीब था, फिर भी चेष्टा कर इन्हे एडिनबरा विश्वविद्यालय मे भरती कराया गया। यहाँ इन्होने आयुर्विज्ञान का अध्ययन किया और २१ वर्ष की आयु में डाक्टरी की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। 'शोथ से मृत्यु' शीर्षक इनके शोधप्रबध से प्रसन्न होकर रोगविज्ञान के प्रोफेसर, डाक्टर जान टामसन ने इनको अपना सहायक नियुक्त किया।

सन् १८३७ में डाक्टर टामसन के स्थान पर एक वर्ष के लिये इन्होंने काम किया। इस प्रकार प्राप्त रोगविज्ञान के अनुभव से इनके विशेष विषय, प्रसुतिविद्या, के अध्ययन में इन्हे बहुत सहायता मिली। सन् १८३९ में विवाह होने के पश्चात्, ये एडिनबरा विश्वविद्यालय में प्रसुतिविद्या के प्रोफेसर नियुक्त हुए। दूसरो की पीडा और क्लेश से डाक्टर सिंपसन बचपन में ही मर्माहत हुए थे। डाक्टर हो जाने पर अपने रोगियो, विशेषकर प्रसूता स्त्रियो को वेदना से बचाने के उपायों की खोज में वे लगे। सन् १८४६ में यह ज्ञात हुआ कि मॉर्टन नामक अमरीकन दंतचिकित्सक ने दाँत निकालते समय वेदना से बचाने के लिये सवेदनाहारी, ईथर, का प्रयोग सफलता से किया।

डा० सिंपसन ने भी प्रसुति के समय ईथर के प्रयोग का निश्चय किया, किंतु इसमें उन्हे अनेक डाक्टरो और विशेषकर पादरियों के विरोध का सामना करना पड़ा। पादरी प्रसूति में सवेदनाहरी के प्रयोग को ईश्वरीय क्रिया में हस्तक्षेप मानते थे। जब डाक्टर सिंपसन ने दिखाया कि बाइबिल के अनुसार ईश्वर ने भी आदम की पसली की हड्डी निकालते समय सवेदनाहरी का प्रयोग किया था, तब, यह विरोध शात हो गया।

अनुभव से सिंपसन ने पाया कि ईथर का प्रयोग सतोपदायक नही था। उसके स्थान पर वे अन्य उपयुक्त द्रव्य की खोज में लगे। अपने दो डाक्टर मित्रों के साथ प्रत्येक सध्या को वे अनेक पदार्थो के वाष्पो में साँस लेकर उनकी जाँच करने लगे। दीर्घ काल तक उन्हें सफलता नही मिली। एक दिन डाक्टर सिंपसन को क्लोरोफॉर्म नामक पदार्थ की जाँच करने की बात सूझी। तीनो मित्रों ने गिलासो में इस द्रव को उलटकर सुँघना आरभ किया। थोडी ही देर में तीनो मूर्छित हो गिर पडे। इस प्रयोग से निश्चित हो गया कि सज्ञाहरण के लिये क्लोरोफार्म उपयुक्त द्रव्य है। डाक्टर सिंपसन ने इसे प्रसूति के समय काम में लाना प्रारंभ किया। महारानी विक्टोरिया ने भी अपने बच्चों को जन्म देते समय इसके प्रयोग की स्वीकृति दी। शीघ्र ही सब प्रकार की शल्य चिकित्साओ में क्लोरोफॉर्म का प्रयोग किया जाने लगा। अनेक देशों ने डाक्टर सिंपसन को मनुष्य जाति की उपकारी इस खोज के लिये संमानित किया। पेरिस की आयुर्विज्ञान अकादमी ने अपने नियमों की अवहेलना कर इन्हें अपना सहकारी सदस्य मनोनीत किया तथा सन् १८५६ में मनुष्य जाति को महान् लाभ पहुँचाने के लिये मार्थ्यो (Monthyon) पुरस्कार दिया। यूरोप और अमरीका की प्राय. प्रत्येक आयुर्वैज्ञानिक सोसायटी ने इन्हें अपना सदस्य चुना।

डा० सिंपसन ने स्त्री-रोग-विज्ञान (Gynaecology) में भी

जिसमें चारो तरफ कच्ची मिट्टी की ईंटें लगाई गई थी और अंदर की तरफ मिट्टी का पलस्तर लगा था, उसमे ७० मृत्भांड मिले, जिनमें ३७ उत्तर की तरफ थे और बाकी मध्य मे थे। मृतक का शरीर इनके ऊपर पड़ा था। इसके अतिरिक्त इसमे तीन और भी कंकाल मिले हैं जो कालक्रम से बाद को डाले गए हैं। सभी का सिर उत्तर की ओर रखा गया था। चार पाँच और समाधियाँ मिली हैं, जिनमें सिर्फ मृत्पात्र मिले हैं और अस्थियाँ प्राप्त नही हुई हैं। एक और प्रकार की कब्र मिली है, जो चपटी या आयताकार है और उत्तर-दक्षिणवर्ती है, जिसमें केवल मृत्पात्र रखे गए हैं। कालीबंगन की हड़प्पा शवोत्सर्ग क्रिया में कुछ अंतर आ गया, सामाजिक दृष्टिकोण से इसका क्या अर्थ था, अभी कहना कठिन है।

अनर्घ वस्तुकोष में मुद्राएँ, मुद्राछापें, मनके और मिट्टी के खिलौने, बैल की प्रतिमाएँ, मृच्छकटिको के चौखटे, तिकोने केक, बिल्लोर के फाल, ताँबे के हथियार, मछली मारने के काँटे तथा हड़प्पा शैली के चित्रित मृत्पात्र मिले हैं। यहाँ पर हड़प्पा संस्कृति की आदर्शभूत कोई भी 'मातृदेवी' की प्रतिमा अभी तक नही प्राप्त हुई है। लाल के मतानुसार कालीबंगन में हड़प्पा चित्र-संकेत-लिपि जो एक मृत्पात्र खंड में लिखित उपलब्ध है, इसकी साक्षी है। यह लिपि दाहिने से बाएँ को लिखी जाती थी। हड़प्पा संकेत-चित्र-लिपि के अनुसंधान में यह एक महत्वपूर्ण चरण है। लाल ने लिखा है कि कदाचित् यह संस्कृति की तीसरी प्रादेशिक राजधानी हो।

४. लोथल — राव को अहमदाबाद के धोलका तालुका में, सरगवाला ग्राम में, लोथल नामक टीले की उपलब्धि हुई जिसके उत्खनन के परिणामस्वरूप पता चला है कि हड़प्पा संस्कृति के लोगो ने यहाँ पर आकर भोगाऊ और साबरमती की बाढ से बचने के हेतु बड़ी बड़ी कच्ची मिट्टी की ईंटो के चबूतरे बनाए जिनके ऊपर फिर मकान बने मिले हैं। इस मिट्टी की कच्ची ईंट के चबूतरे (जो ३.६५८ से ४.५७२ मीटर ऊँचा था) के ऊपर ऊँचे स्थान पर पक्की ईंट के मकान बनाए गए जो कदाचित् धनिकों या वहाँ के प्रमुख के हेतु थे। निचले भाग में सामान्य नागरिक मकानो में रहते थे जो १३.७१६ मीटर ऊँचे चबूतरे के ऊपर बने हैं। सारा नगर कई खंडो में विभक्त था। चार मुख्य मार्ग मिले हैं जिनमें से दो एक दूसरे को समकोण में काटते हैं। मकान सीधी लकीर में सड़को के दोनो ओर बनाए गए हैं। प्रत्येक मकान में एक स्नानगृह मिला है जिसकी नाली बड़ी नाली से मिलती थी। ऊपर के भाग में एक पक्की ईंट का कुआँ भी मिलता है।

नगर के निचले भाग में ताम्रकार, मनके बनानेवालो और शंख की चूड़ियाँ बनानेवालों की दुकानें थी। मनके बनाने को भट्ठी, तथा मनके बनाने के स्थान आदि मिले हैं। यहाँ पर एक नावघाट भी मिला है जिससे यहाँ काफी चहल पहल रहती होगी, यह नावघाट २१८ मीटर लंबा और ३७ मीटर चौड़ा था और ७ मीटर लंबी एक नहर से निकटवर्ती बहनेवाली भोगाव नदी से जुड़ा था, जो खंभात की खाड़ी में गिरती है और जिसमें ज्वार भाटे के समय नावें आ जा सकती थी। लोथल से प्राप्त 'बेहराइन प्रकार की मुद्रा' से ज्ञात होता है कि नि.संदेह ३०००-२००० ईसा पूर्व पश्चिमी एशिया से व्यापारिक संबंध था और छोटी नावो में कपास और अन्य वस्तुएँ फारस की खाडी से होते हुए पश्चिमी एशिया मे जाती थी। पश्चिमी एशिया में भी सिंधु संस्कृति की अनेक मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। लोथल से उपलब्ध मिस्र की ममी के सदृश एक पकाई मिट्टी का खिलौना तथा एक दाढ़ीवाले की आकृति के मनुष्य के खिलौने का सिर, पश्चिमी एशिया से व्यापारिक संबंधो की ओर अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं।

लोथल में एक धान्यागार भी मिला है जिसमे बारह घनाकार इष्टकाएँ (ब्लाक) हैं और जो एक चबूतरे के ऊपर बनी हैं जिसका क्षेत्र ४१.१४८ × ४४.१९६ मीटर है। उसके बाहर एक और चबूतरा भी है। यहाँ पर ७० मुद्राएँ और मुद्राछापें राख के साथ मिली हैं। इन मुद्राओ में बेत और कपड़े आदि के निशान मिले हैं। इस वास्तु को विद्वानो ने धान्यागार या भट्ठा कहा है।

लोथल की खुदाई से पता चलता है कि यहाँ पर मृतको को उत्तर दक्षिण में रखकर गाड़ा जाता था। एक कब्र मे चारो तरफ ईंट लगाई हुई पाई गई। इसके अतिरिक्त कुछ कब्रो में दो कंकाल भी मिले हैं जैसा अन्यत्र हड़प्पा संस्कृति में नही पाया गया है। यह एक क्षेत्र रूपांतर प्रतीत होता है।

यहाँ मातृदेवी की प्रतिमा नही मिली है, तथापि कुछ नारी-मूर्तियाँ मिली हैं। खिलौने, मृच्छकटिकों के चौखटे, मनके, मुद्राएँ, मुद्राछापें, ताँबे के खिलौने और हथियार, बिल्लौर के फाल, सोने के गहने तथा छोटे छोटे मनके मिले हैं। हाथीदाँत के बने ज्यामिति के उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। यहाँ पर हड़प्पा संस्कृति के मिट्टी के पात्र बहुतायत से मिले हैं। परंतु लाल और काले रंग के पात्र जिनमें सफेद चित्र बने हैं, उपलब्ध होते हैं। यह कुंभकला भी क्षेत्ररूपांतर की प्रतीक है। लोथल में भी ऐसा लगता है कि १९०० ई० पू० मे बाढ़ आ गई और इस हड़प्पा संस्कृति के वाणिज्यकेंद्र को काफी क्षति पहुँची, फिर भी लोग रहते रहे परंतु इसकी अवनति होती गई, जैसा लोथल 'ब' से प्राप्त अवशेषो से ज्ञात होता है।

वर्तमान गुजरात में हड़प्पा संस्कृति का क्रमिक संक्रमण या परिवर्तन रंगपुर की खुदाई के अवशेषों से प्राप्त होता है। हड़प्पा संस्कृति प्रकार के मिट्टी के बर्तन धीरे धीरे नए मिट्टी के बर्तनो को स्थान देने लगते हैं। रंगपुर दो 'अ' में हड़प्पा के अवशेष मिलते हैं। इसके पश्चात् संक्रमण का युग दो 'ब' में मिलता है। यह लोथल 'ब' के समकक्ष है। रंगपुर दो 'स' में छोटे फाल, चमकीली लाल मिट्टी के बर्तन आ जाते हैं और हड़प्पा के बर्तनो का लोप हो जाता है तथा रंगपुर तीन मे सभ्यता बिल्कुल बदल जाती है। बीच में दो मध्यवर्ती काल होने से रंगपुर तीन के निवासी हड़प्पा के ही अवशिष्ट ज्ञात होते हैं। रोजड़ी और प्रभासपट्टन में भी इस प्रकार का क्रम मिलता है। गुजरात में हड़प्पा संस्कृति मे धीरे धीरे परिवर्तन और अवनति होती गई।

सुंदरराजन के द्वारा करवाए गए कच्छ में देसलपुर के उत्खनन से ज्ञात होता है कि देसलपुर एक 'अ' मे हड़प्पा संस्कृति के पत्थर के

ही त... ...र भागों में विभक्त किया जाता है—नामय, आख्यात, उपसर्ग ... निपात ।

सिंहल में हिंदी की ही तरह दो वचन होते हैं—'एकवचन' तथा 'बहुवचन'। संस्कृत की तरह एक अतिरिक्त 'द्विवचन' नहीं होता। इस 'एकवचन' तथा 'बहुवचन' के भेद को सख्याभेद कहते हैं।

जिस प्रकार 'वचन' को लेकर 'हिंदी' और 'सिंहल' का साम्य है उसी प्रकार हम कह सकते हैं कि 'लिंग' के विषय मे भी हिंदी और शुद्ध सिंहल समानधर्मा हैं। पुरुष तीन ही हैं—प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष। तीनो पुरुषो में व्यवहृत होनेवाले सर्वनामों के आठ कारक हैं, जिनकी अपनी अपनी विभक्तियाँ हैं। 'कर्म' के बाद प्राय. 'करण' कारक की गिनती होती है, किंतु सिंहल के आठ कारकों में 'कर्म' तथा 'करण' के बीच मे 'कर्तृ' कारक की गिनती की जाती है। 'सबोधन' कारक न होने से 'कर्तृ' कारक के बावजूद कारकों की गिनती आठ ही रहती है।

वाक्य का मुख्याश 'क्रिया' को ही मानते हैं, क्योंकि 'क्रिया' के अभाव में कोई भी कथन बनता ही नहीं। यों सिंहल व्याकरण अधिकाश बातों में संस्कृत की अनुकृति मात्र है। तो भी उसमें न तो संस्कृत की तरह 'परस्मैपद' तथा 'आत्मनेपद' होते हैं और न लट् लोट् आदि दस लकार। सिंहल में क्रियाओं के ये आठ प्रकार माने गए हैं—(१) कर्ता कारक क्रिया (२) कर्म कारक क्रिया, (३) प्रयोज्य क्रिया, (४) विधि क्रिया (५) आशीर्वाद क्रिया, (६) असभाव्य क्रिया, (७) पूर्व क्रिया, तथा (८) मिश्र क्रिया।

सिंहल भाषा बोलने चालने के समय हमारी भोजपुरी आदि बोलियों की तरह प्रत्ययो की दृष्टि से बहुत ही आसान है, किंतु लिखने पढ़ने में उतनी ही दुरुह। बोलने चालने में यनवा (या गमने) क्रियापद से ही जाता हूँ, जाते हैं, जाता है, जाते हो, (वह) जाता है, जाते हैं इत्यादि ही नही, जायगा, जायँगे आदि सभी क्रिया-स्वरूपों का काम चल जाता है।

लिंगभेद हिंदी के विद्यार्थियो के लिये टेढी खीर माना जाता है। सिंहल भाषा इस दृष्टि से बडी सरल है। वहाँ 'अच्छा' शब्द के समानार्थी 'होद' शब्द का प्रयोग आप 'लडका' तथा 'लडकी' दोनो के लिये कर सकते हैं।

प्रत्येक भाषा के मुहावरे उसके अपने होते हैं। दूसरी भाषाओं में उनके ठीक ठीक पर्याय खोजना बेकार है। तो भी अनुभव साम्य के कारण दो भिन्न जातियों द्वारा बोली जानेवाली दो भिन्न भाषाओं में एक जैसी मिलती जुलती कहावतें उपलब्ध हो जाती हैं। सिंहल तथा हिंदी के कुछ मुहावरो तथा कहावतो में पर्याप्त एकरूपता है।

प्राय ऐसा नही होता कि किसी देश का जो नाम हो, वही उस देश मे बसनेवाली जाति का भी हो, और वही नाम उस जाति द्वारा व्यवहृत होनेवाली भाषा का भी हो। सिंहल द्वीप की यह विशेषता है कि उसमें बसनेवाली जाति भी 'सिंहल' कहलाती चली आई है और उस जाति द्वारा व्यवहृत होनेवाली भाषा भी 'सिंहल'।

उत्तर भारत की एक से अधिक भाषाओं से मिलती जुलती सिंहल भाषा का विकास उन शिलालेखों की भाषा से हुआ है जो ई० पू० दूसरी तीसरी शताब्दी के बाद से लगातार उपलब्ध हैं।

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के दो सौ वर्ष बाद जब अशोकपुत्र महेंद्र सिंहल द्वीप पहुँचे, तो 'महावश' के अनुसार उन्होंने सिंहल द्वीप के लोगो को द्वीप भाषा' में ही उपदेश दिया था। महामति महेंद्र अपने साथ 'बुद्धवचन' की जो परपरा लाए थे, वह मौखिक ही थी। वह परपरा या तो बुद्ध के समय की 'मागधी' रही होगी, या उनके दो सौ वर्ष बाद की कोई ऐसी 'प्राकृत' जिसे महेंद्र स्थविर स्वय बोलते रहे होंगे। सिंहल इतिहास की मान्यता है कि महेंद्र स्थविर अपने साथ न केवल त्रिपिटक की परपरा लाए थे, वल्कि उनके साथ उसके भाष्यो अथवा उसकी अट्ठकथाओं की परंपरा भी। उन अट्ठकथाओं का बाद में सिंहल अनुवाद हुआ। वर्तमान पालि अट्ठकथाएँ मूल पालि अट्ठकथाओ के सिंहल अनुवादों के पुन पालि में किए गए अनुवाद हैं।

जहाँ तक संस्कृत वाङ्मय की बात है, उसके मूल पुरुषो के रूप में भारतीय वैदिक ऋषि मुनियों का उल्लेख किया जा सकता है। सिंहल साहित्य का मूल पुरुष किसे माना जाय ? या तो भारत के 'लाट' प्रदेश (गुजरात) से ही सिंहल मे पदार्पण करनेवाले विजय-कुमार और उनके साथियो को या फिर महेंद्र महास्थविर और उनके साथियो को।

सिंहल के इतिहास का ही नही सिंहल साहित्य का भी स्वर्णयुग माना जाता है 'अनुराधपुर काल'। सातवी शती से लेकर ग्यारहवी शती तक के इस दीर्घ काल' की कोई भी साहित्यिक रचना अब हमें प्राप्य नही। इसलिये उस समय की भाषा के स्वरूप को समझने के लिये या तो कुछ शिलालेख सहायक हैं या परवर्ती ग्रथो में उद्धृत कुछ वाक्यखड, जो पुरानी अट्ठकथाओ के उद्धरण माने जाते हैं।

सिंहल द्वीप का शिलालेखो का इतिहास देवानाप्रिय तिष्य (तृतीय शताब्दी ई० पू०) के समय से ही आरभ होता है। लेकिन अभी तक जितने भी शिलालेख मिले हैं, उनमें से प्राचीनतम शिलालेख राजा वट्टगामणी (ई० प्रथम शताब्दी) के समय के ही हैं। आठवी शताब्दी से लेकर दसवी शताब्दी के बीच के समय के जो शिलालेख सिंहल में मिले हैं, वे ही सिंहल गद्य साहित्य के प्राचीनतम नमूने हैं।

अनुराधपुर काल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण साहित्यिक रचना तो है सी गिरि के गीत। सिंहल शिलालिपियो के बाद यदि किसी दूसरे साहित्य को सिंहल का प्राचीनतम साहित्य माना जा सकता है तो वे ये सी गिरि के गीत ही हैं।

सी गिरि के गीतो के बाद जिस प्राचीनतम काव्य को वास्तव में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, वह है सिंहल का 'सिय बस लकर' नाम का साहित्यालोचक काव्य। यह दडी के काव्यादर्श का अनुवाद या छाया-नुवाद होने पर भी वैसा प्रतीत नही होता।

पाँचवें काश्यप नरेश का राज्यकाल ई० ९०८ से ९१८ तक रहा। उन्होने पालि धम्मपद अट्ठकथा का आश्रय लेकर 'धम्मपिय अटुवा जैट पदय' की रचना की। यह धम्मपद अट्ठकथा का शब्दार्थ, भावार्थ, विस्तरार्थ सब कुछ है।

महत्व की खोज और उन्नति की। इनकी चेष्टाओं से स्त्रियों की परिचर्या के लिये अनेक अस्पताल खोले गए। धात्रीविद्या में भी इन्होंने यथार्थता और सुव्यवस्था स्थापित की। दोनों विद्याओं से सबधित इनके लेख महत्व के हैं। इन्होंने शल्य चिकित्सा में धमनियों को बाँधने की एक नई विधि का सूत्रपात किया। सन् १८६६ में इन्हें 'सर' की उपाधि मिली, किंतु इसी वर्ष पुत्र और पुत्री की असामयिक मृत्यु से इन्हें ऐसा धक्का लगा कि इनका स्वास्थ्य नष्ट हो गया और ये अधिक दिन जीवित न रह सके। [भ० दा० व०]

सिंफनी (यूरोपीय वृ दगान की विशिष्ट शैली) यह शब्द यूनानी भाषा का है जिसका अर्थ है 'सहवादन'। १६वीं शती में गेय नाटक (ऑपरा) के बीच में जो वृंदवादन के भाग होते थे उन्हें सिंफनी कहते थे। इसका विकसित रूप इतना सुंदर हो गया कि वह गेय नाटक (आपरा) के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त होने लगा। अत यह अब वृ दगान (आरकेस्ट्रा) की एक स्वतत्र शैली है।

इसम प्राय: चार गतियाँ होती हैं। पहली गति द्रुत लय में होती है जिसमें एक या दो से लेकर चार वाद्यो तक का प्रयोग होता है।

दूसरी गति की लय पहले की अपेक्षा विलबित होती है। तीसरी गति की लय नृत्य के ढग की होती है जिसे पहले मिन्यूट (minuet) कहते थे और जिसने अंत में स्करत्सो (Scherzo) का रूप धारण कर लिया। इसकी लय तीन तीन मात्रा की होती है। चौथी गति की लय पहली के समान द्रुत होती है किंतु पहली की अपेक्षा कुछ अधिक हलकी होती है। चारो गतियाँ मिलकर एक समग्र या समष्टि संगीत का आनंद देती हैं जिससे श्रोता आत्मविभोर हो उठता है। हेडव, मोत्सार्ट, बीटोवन, शुबर्ट, ब्राह्मस इत्यादि सिफनी शैली के प्रसिद्ध कलाकार हुए हैं।

सं० ग्रं० — 'ग्रोव' डिक्शनरी ऑव म्यूजिक'। [ब० दे० सिं०]

सिंह (Lion) पैथरा लिओ (Panthera Leo) फैलिडी कुल (Fam Felidae) का प्रसिद्ध मासभक्षी स्तनपोषी जीव। जंगल का वास्तविक राजा। बाघ के समान खुंखार और पराक्रमी जीव। चेहरा कुत्ते की तरह लंबोतरा। नर के कधे पर बड़े बड़े बाल जिसके सिरे काले। दुम के सिरे पर काले बालो का गुच्छा। औसत लबाई दस फुट। मादा कुछ छोटी। रग पिलछौह, भूरा या बादामी। बहुत बलवान और फुर्तीले। दहाड़ या गरज तेज।

ये हमारे देश में केवल काठियावाड़ में थोड़ी संख्या में लेकिन अफ्रीका के जंगलो मे काफी हैं। पश्चिमी एशिया, ग्रीस और मेसोपटामिया में भी पाए जाते हैं। घने जंगलों की अपेक्षा खुले पहाड़ी स्थान और ऊँची घास तथा नरकुल के जंगल ये अधिक पसंद करते हैं।

इनका मुख्य भोजन गाय, बैल, हिरण और सुअर आदि हैं। कुछ नरभक्षी भी होते हैं। मादा कुछ छोटी और केसर से रहित होती है। यह प्राय: दो तीन बच्चे जनती है जिन्हें शिकार खेलना सिखाती है। यह अपने बच्चो को बहुत प्यार करती है और बहुत दबाव पड़ने पर ही छोडती है। [सु० सिं०]

सिंहभूम जिला स्थिति : २१° ५८' से २२° ५४' उ० अ० तथा ८५° ०' से ८६° ५४' पू० दे०। बिहार के दक्षिण पूर्व मे एक जिला है, जो बंगाल तथा उड़ीसा की सीमा से लगा हुआ है। इसका क्षेत्रफल ५,१९१ वर्ग मील तथा जनसंख्या २०,४९,९११ (१९६१) है। यह जिला छोटा नागपुर के पठार के दक्षिणपूर्वी छोर पर है। इसका पश्चिमी भाग बहुत पहाड़ी है जिसकी ऊँचाई सारदापीर में ३,५०० फुट है। पूर्वी तथा मध्यभाग अपेक्षाकृत समतल तथा खुले हुए है। स्वर्णरेखा, खरकई तथा सजई मुख्य नदियाँ हैं। इस जिले मे धान की खेती होती है। वस्तुत: यह जिला खनिज के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है। प्रमुख खनिज लोहा तथा ताँबा है पर इनके अतिरिक्त यहाँ और अनेक खनिज जैसे क्रोमाइट, मैंगनीज, ऐपाटाइट और सोना भी मिलते हैं। जमशेदपुर में लोहा इस्पात तथा तत्सबधित कारखाने हैं और मऊभाडर मे ताँबे का कारखाना है। इसके अतिरिक्त काड्रा मे काँच की चादर बनाने का कारखाना तथा चक्रधरपुर मे रेलवे वर्कशाप है। जमशेदपुर, चक्रधरपुर एवं चाईबासा प्रमुख नगर हैं। चाईबासा जिले का प्रशासनिक नगर है। जिले की जनसख्या मे अधिकाश आदिवासी हैं जिनमें होस और सथाली अधिक हैं। [ज० सिं०]

सिंहल भाषा और साहित्य अनेक भारतीय भाषाओं की लिपियो की तरह सिहल भाषा की लिपि भी ब्राह्मी लिपि का ही परिवर्तित विकसित रूप है, और जिस प्रकार उर्दू की वर्णमाला के अतिरिक्त देवनागरी सभी भारतीय भाषाओं की वर्णमाला है, उसी प्रकार देवनागरी ही सिंहल भाषा की भी वर्णमाला है।

सिंहल भाषा को दो रूप मान्य हैं—(१) शुद्ध सिंहल तथा (२) मिश्रित सिंहल।

शुद्ध सिंहल को केवल बत्तीस अक्षर मान्य रहे हैं—

अ, आ, अय, अैय, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ क ग ज ट ड ण त द न प ब म य र ल व स ह ळ अं।

सिंहल के प्राचीनतम व्याकरण सिदत् सग्रा' का मत है कि अय, तथा अैय (D ८ तथा D ६) अ, तथा आ की ही मात्रावृद्धि वाली मात्राएँ हैं।

वर्तमान मिश्रित सिंहल ने अपनी वर्णमाला को न केवल पाली वर्णमाला के अक्षरो से समृद्ध कर लिया है, बल्कि संस्कृत वर्णमाला में भी जो और जितने अक्षर अधिक थे, उन सब को भी अपना लिया है। इस प्रकार वर्तमान मिश्रित सिंहल मे अक्षरो की सख्या चौवन है। अट्ठारह अक्षर 'स्वर' तथा शेष छत्तीस अक्षर व्यंजन माने जाते हैं।

दो अक्षर — पूर्व तथा पर—जब मिलकर एकरूप होते हैं, तो यह प्रक्रिया 'संधि' कहलाती है। शुद्ध सिंहल मे सधियो के केवल दस प्रकार माने गए हैं। किंतु आधुनिक सिंहल में संस्कृत शब्दो की सधि अथवा सधिच्छेद सस्कृत व्याकरणो के नियमो के ही अनुसार किया जाता है।

'एकाक्षर' अथवा 'अनेकाक्षरो' के समूह पदो को भी संस्कृत की

ऊँच नीच भावना भी उनके साथ चली आई होगी। कलिंग, मगध, बंगाल आदि के आर्यों से संपर्क रहने के कारण उन्हीं के समानांतर सिंहली संस्कृति के भी विकास का मार्ग प्रशस्त हो गया। इस संस्कृति का मूलाधार जातिभेद था जो समय बीतने पर अत्यंत जटिल हो गया था। बौद्ध भिक्षुओं में जाति संबंधी नियमों तथा बंधनों का प्रचलन नहीं रह गया था। जातिभेद के आधार पर बौद्ध संघ का विभाजन अपेक्षाकृत हाल की घटना है। पिता ही परिवार का अधिपति और स्वामी होता था और माता के प्रति सर्वाधिक सम्मान प्रदर्शित किया जाता था। महावंश में राजा अग्गबोधि अष्टम (८०१-८१२ ई०) की अनन्य मातृभक्ति का उल्लेख है। प्राचीन सिंहलियों में आज की ही तरह एक-स्त्री-विवाह की प्रथा थी। हाँ, राजाओं के अवश्य अनेक रानियाँ तथा रखेलियाँ होती थीं किंतु उनमें से केवल दो को ही राजमहिषी का पद प्राप्त होता था। नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध आदि संस्कार उस समय भी प्रचलित थे जैसे आज हैं। सिंहलियों में प्राय बौद्ध भिक्षुओं तथा ऊँचे वर्ग के लोगों के मृत शरीरों को जलाने की प्रथा थी किंतु अन्य मृतकों के शव जमीन में गाड़ दिए जाते थे।

विशिष्ट समारोहों के समय कुछ नरेश कीमती पोशाक के अतिरिक्त ६४ अलंकार धारण करते थे। रानियाँ तथा राजा की अन्य पत्नियाँ सोने के कीमती आभूषण पहनती थीं जिनमें हीरा, मोती आदि जड़े होते थे। गरीब स्त्रियाँ काँच की चूड़ियाँ तथा अँगूठियाँ पहनती थीं। आधुनिक समय में बहुत से सिंहलियों ने यूरोपीय वेशभूषा ग्रहण कर ली है। वहाँ के राजाओं तथा प्रजावर्गों को जलक्रीडा, नृत्य, गायन, शिकार आदि विविध खेलों तथा कलाओं में अच्छा, आनंद आता था। युद्ध में संगीत का महत्व बना रहता था। पाँच तरह के वाद्य यंत्रों, ढोलों, भेरियों, शंखों, वीणों, बाँसुरियों आदि का उनमें प्राचीन काल से प्रचलन था। स्त्रियाँ एक तरह की ढोलक बजाती थीं जिसे 'रबान' कहते थे। सिंहलियों में कठपुतलियों का नाच और नाट्यों का अभिनय होता था जिनके लिये मंच बनाए जाते थे। इनमें से कुछ आज भी विद्यमान हैं। 'असाढी' पर्व के समय बहुत लंबा जुलूस निकलता था जिसमें बड़ी संख्या में हाथी भी सजाए जाते थे। आज भी ऐसा होता है। ग्रहों तथा भूत प्रेतों की बाधा दूर करने के लिये 'बलिपूजा' तथा अन्य कृत्य किए जाते थे, जैसा इस समय भी होता है।

सिंहली कला भारतीय कला से विशेष रूप से प्रभावित थी। वहाँ चित्रकार, मिस्त्री, राज, बढ़ई, लोहार, कुंभकार, दरजी, जुलाहे, हाथीदाँत का काम करनेवाले तथा अन्य कलाविद् होते थे। अभ्रक आदि की परतदार चट्टानों से लंबे, सुडौल टुकड़े तराश लेने की कला में प्राचीन सिंहली बड़े दक्ष होते थे। लोह प्रासाद के अवशेष जो १६०० प्रस्तर स्तंभों पर बना था, इस तथ्य का उज्वल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। विजय और उसके अनुयायियों को पढ़ने और लिखने की कला का ज्ञान न था। महावंश में उस पत्र की चर्चा है जो विजय ने पांडुनरेश को भेजा था और उसकी भी जो उसने अपने (उसके ?) भाई सुमित्त को प्रेषित किया था। ब्राह्मी लिपि में लिखे गए बहुत से शिलालेख सिंहल द्वीप में प्राप्त हुए थे जिनमें सबसे प्राचीन ई० पू० तीसरी शती के थे। इससे स्पष्ट है कि जनता की एक बड़ी संख्या उन्हें पढ और समझ सकती थी। शिष्य को गुरु के पास ले जाने की (उपनयन की) प्रथा भी उस समय प्रचलित थी। बारहवीं शती ई० में देहातों में श्रमण-शील अध्यापक रहते थे जो बालकों को लिखना पढ़ना सिखलाते थे। लड़कियों को शिक्षा वृद्ध जनों द्वारा दी जाती थी। राजकुमारों की शिक्षा में विशेष सावधानी बरती जाती थी, इस शिक्षा में खेलकूद की तथा शस्त्रास्त्रों की भी शिक्षा शामिल थी। आम तौर से ये विषय पढ़ाए जाते थे — सिंहली, पाली, संस्कृत, तमिल, तथा अन्य भाषाएँ, चिकित्सा विज्ञान, ज्योतिष, पशु-चिकित्सा इत्यादि। लिखने पढ़ने की क्रिया का आरंभ 'त्रिपिटक' की और सिंहली में प्राप्त उसकी टीकाओं की प्रतिलिपि करने से होता था। सिंहल के दो ऐतिहासिक ग्रंथों — दीपवंश तथा महावंश — का निर्माण चौथी तथा पाँचवीं शती ईसवी में हुआ था। बाद में त्रिपिटक की पालि टीकाओं तथा विविध विषयों की अन्य पुस्तकों को लिपिबद्ध किया गया। कुछ बहुमूल्य ग्रंथ अनधिकारिक शासक माघ द्वारा १३वीं शताब्दी में, कुछ नरेश राजसिंघे प्रथम द्वारा १६वीं शती में तथा अन्य कई डचों द्वारा १८वीं शती में नष्ट कर दिए गए।

महावंश में बहुसंख्यक चिकित्सालयों का उल्लेख होने से साबित होता है कि प्राचीन काल में सिंहल में उच्च संस्कृति विद्यमान थी। ईसा के पूर्व की चौथी शताब्दी में भी गर्भिणी स्त्रियों के लिये प्रसव-शालाएँ तथा रोगियों की चिकित्सा के लिये अस्पताल मौजूद थे। राजा बुद्धदास ने (४थी शती ई०) सिंहलवासियों के लिये प्रत्येक गाँव में चिकित्साभवन स्थापित किए थे और उनमें चिकित्सकों की नियुक्ति की थी। वह स्वयं कुशल चिकित्सक था और उसने चिकित्सा-संबंधी एक पुस्तक भी लिखी थी। अपंगों तथा नेत्रहीनों के लिये उसने आश्रय स्थान बनवाए थे। पुरातन काल में तथा उसके बाद भी सिंहली चिकित्सा विज्ञान का भारतीय चिकित्सा विज्ञान से निकट संबंध रहा है।

सिंहली राजाओं के समय भारत की तरह वहाँ भी अनियंत्रित राजतंत्र प्रचलित था। राजा ही राज्य का सर्वोच्च सत्ताधारी था। आध्यात्मिक विषयों में वह बौद्ध भिक्षुओं से सलाह लिया करता था। राजपरिवार से संबंधित मामलों पर विचार होते समय ब्राह्मणों को भी मत प्रकट करने का अवसर दिया जाता था। युद्ध के समय चतुरंगिणी सेना (हाथी, घोड़े, रथ तथा पदाति) का प्रयोग किया जाता था। लड़ाई में धनुष बाण, तलवार, भाला, गदा, त्रिशूल, बरछी, तोमर, गुलेल आदि अस्त्रशस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। कभी कभी जासूसों से भी काम लिया जाता था। कराधान द्वारा जो आमदनी होती थी, उसी से राजा का निजी खर्च, दरबार का खर्च और शासन का खर्च चलता था। अपराधियों को अपराध की गुरुता के अनुसार दंड दिया जाता था।

जो सिंहलवासी पहले पहल श्रीलंका में आकर बसे थे, वे अपने पूर्व निवास उत्तरपश्चिमी भारत से हिंदू धर्म का लोकप्रिय प्रकार लेते आए थे। बाद में कलिंग तथा बंगाल से आनेवाले ब्राह्मणों ने

पोलन्नरुव काल के आरंभ में सस्कृत साहित्य की जानकारी बड़े गौरव की बात समझी जाती थी। राजाओं के अमात्यों के पुत्र यदि इतनी संस्कृत सीख लेते थे कि वे श्लोकों की रचना कर सकें, तो कभी कभी राजा प्रसन्न होकर बस इतनी सी बात पर ही उन्हे बहुत सा धन दे डालते थे।

सिंहल भाषा सस्कृत भाषा से कितनी अधिक प्रभावित हो रही थी, इसका स्पष्ट उदाहरण है—महाबोधि वंश ग्रंथिपाद · सारा का सारा नामकरण शुद्ध सस्कृत है। पोलन्नरुव काल के अतिम भाग में अथवा दवदेणि काल के आरंभ मे 'कर्मविभाग' नाम के एक गद्यग्रथ की रचना हुई। क्या तो साहित्यक दृष्टि से और क्या धार्मिक दृष्टि से जो तीन चार अत्यंत जनप्रिय ग्रथ रचे गए, उनमें एक है 'बुतसरण' अथवा 'बुद्धशरण'।

'दबदेणि कालय' की एक विशिष्ट रचना है सिदत् संगरा। यह सिंहल भाषा का प्राचीनतम प्राप्य व्याकरण है। जिस प्रकार अभावलुर, बुतसरण तथा रत्नावलि ने सिंहल गद्य साहित्य को समृद्ध किया है, उसी प्रकार सिंहल उम्मग जातक ने भी सिंहल गद्य साहित्य को बहुत ऊँचे उठाया है। लेकिन सिंहल गद्यसाहित्य का विशालतम ग्रंथ तो सिंहल 'जातक पोत' को ही माना जायगा। यह पालि जातक अट्ठकथा का ही सिंहल भावानुवाद है।

लभगग पचास वर्षों का 'कुरुण-गल-काल एक प्रकार से 'दवदेणि कालय' का ही विस्तार मात्र है। किंतु कुछ विशिष्ट रचनाओं के कारण उसका भी स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करना पड़ता है। कुरुणॅ-गल-कालय के बाद आता है 'गमपोल कालय'। इस काल मे कुरुणॅ-गल-कालय की अपेक्षा कुछ अधिक ही साहित्य सेवा हुई। 'निकाय-सग्रह' जैसी महत्वपूर्ण कृति की रचना इसी काल में हुई।

'गमपोल कालय' के बाद है 'कोट्टे कालय'। आज सिंहल कविता की जो विशिष्ट स्थिति है, वह बहुत करके 'कोट्टे कालय' में ही हुए विकास का परिणाम है।

जिसने भी कभी सिंहल भाषा के साहित्य का कुछ भी परिचय प्राप्त किया वह लो वैड सग्रा (लोकार्थ सग्रह) से अपरिचित न रहा होगा। अत्यत छोटी कृति होने पर भी इसका घर घर प्रचार है। न जाने कितने लोगो को यह कृति कठाग्र है।

श्री० राहुल महास्थविर द्वारा रचित काव्य शेखर तथा उन्ही के शिष्य वैत्तेवे द्वारा रचित गुत्तिल काव्य 'कोट्टे कालय' की दो विशिष्ट रचनाएँ हैं।

'कोट्टे कालय' के बाद आता है 'सीतावक कालय' तथा सीतावक कालय के बाद आता है 'सेनकड कालय'। इस अतिम काल की विशेषता है तमिल ग्रथो के सिंहल अनुवाद होना।

यदि हम 'महनुवर कालय' के पूर्व भाग अर्थात् 'सेनकड कालय' की साहित्यिक प्रवृत्ति का अनुशीलन करें तो हम देखेंगे कि इससे पहले इतने भिन्न भिन्न तरह के विषय कभी काव्यगत नही हुए।

अट्ठारहवी शताब्दी के पूर्व भाग से आरंभ होनेवाला समय ही श्री लंका के इतिहास का वर्तमान युग है। इस नूतन युग के सरलता से दो हिस्से किए जा सकते हैं—पहला हिस्सा ई० १७०६ से ई० १८१५ तक, दूसरा हिस्सा ई० १८१५ से आगे।

'महनुवर कालय' में धर्मशास्त्र सबधी साहित्य ने जितनी भी उन्नति की उसका सारा श्रेय एक ही महान् विभूति को दिया जा सकता है। उस विभूति का नाम था संघराज सरणंकार। उन्होने इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये चतुर्मुख प्रयास किए।

'कोलवु कालय' में जिन साहित्यिक प्रवृत्तियो की प्रधानता रही, उनमें से कुछ हैं पुरानी पुस्तको के नए संस्करण, सिंहल टीकाएँ, अंग्रेजी तथा अन्य भाषा की पुस्तकों के अनुवाद और आलोचना-प्रत्यालोचना-संबधी साहित्य। नई विधाओं में नाट्य ग्रंथों तथा उपन्यासो की प्रधानता है।

जबसे इधर सिंहल भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, तब से शास्त्रीय पुस्तको के लिये उपयोगी होने की दृष्टि से कई पारिभाषिक शब्दकोश' तैयार किए गए हैं।

इधर सिंहल साहित्य मे हिंदी से अनूदित कुछ ग्रथ भी आए है, वैसे ही जैसे हिंदी मे भी सिंहल साहित्य के कुछ ग्रंथ। [आ० कौ०]

सिंहली संस्कृति ऐसा विश्वास किया जाता है कि राजकुमार विजय और उसके ७०० अनुयायी ई० पू० ५४३ में श्रीलंका मे जहाज से उतरे थे। ये लोग 'सिंहल' कहलाते थे, क्योंकि पहले पहल 'सिंहल' की उपाधि धारण करनेवाले राजा सिंहबाहु से इनका निकट सबंध था। (सिंह को मारने के कारण यह राजा 'सिंहल' कहलाया)। विजय ही श्रीलका का पहला राजा था और उसने जिस राज्य की स्थापना की वह करीब २३५८ वर्ष तक कायम रहा। बीच मे एकाध बार चोल या पाड्य के राजा ने इसपर अधिकार कर लिया किंतु देर सवेर सिंहलियो ने उन्हें देश से निकाल बाहर किया।

सिंहलियो को धान की खेती और सिंचाई, दोनो का ज्ञान था। उनका मुख्य भोजन चावल था, जिसका उत्पादन ही वहाँ के आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचे का निश्चयकारी सिद्धात था। इसके सिवा कुछ अन्य अनाज तथा दालो की भी खेती की जाती थी। इन अनाजो से बना भोजन उनका मुख्य आहार था। राजाओं तथा रईसो का भोजन, उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार, अधिक मूल्य का और उत्तम किस्म का होता था। समय बीतने पर, विशेषकर यूरोपीयो के आने के बाद, भोजन के संबध में भारी परिवर्तन हो गया। अलसी, सरसो तथा गरी इत्यादि से तेल निकाला जाने लगा तथा ईख, रुई, हल्दी, अदरक, काली मिर्च, मसाले तथा फलो के वृक्ष भी बडी सख्या में उगाए जाने लगे। खेती के साथ साथ पशुपालन भी किया जाने लगा और पाँच दीग्ध पदार्थों का नियमित प्रयोग किया जाने लगा। तालाब बनाने में सिंहली दक्ष थे और उनके बनाए कितने ही तालाब आज भी विद्यमान हैं। वे नहरें भी बनाते थे और उन्होने एक बड़े भूभाग पर सिंचाई की व्यवस्था कर रखी थी।

अपने पूर्वजो के दाय के रूप में सिंहली लोग अनेक भारतीय रीति रिवाजो और संस्थाओं की स्मृति अपने साथ लेते आए होंगे और उनके सिवा समाज सबंधी भारतीय विचारधारा तथा वर्गों की

किया जो इंग्लैंड में अत्यंत लोकप्रिय हुआ। उसके चित्रो में अनेक स्थलो पर हास्य व्यग का भी पुट है।

१८८५ से १९०५ के बीच वह अनेक फ्रेंच लेखको एव कलाकारो से मिला। उसके सहयोग से नए चित्रकारो का एक वर्ग नव्य वादो के साथ आगे आया। कला की साधना के साथ साथ उसने अपने लेखो द्वारा कला के सिद्धातो का भी प्रतिपादन किया। [शा० रा० गु०]

सिक्किम स्थिति २७° ३' से २८° ६' उ० अ० और ८८° ५३' पू० दे०। अधिकतम लबाई ७३ मील और अधिकतम चौडाई ५५ मील, क्षेत्रफल २,७४५ वर्ग मील। इसके उत्तर में तिब्बत, पूर्व मे भूटान पश्चिम में नेपाल और दक्षिण में भारत गणतत्र है। इसकी राजधानी गगटोक है। सिक्किम का ३० प्रतिशत से अधिक भाग जगलो से घिरा है। यहाँ शाल के जगल हैं। लगभग ४००० किस्म के फलने फूलनेवाले पौधे तथा छोटी झाडियाँ हैं। यहां की मुख्य उपज धान, ज्वार, बाजरा और मक्का है। संतरा और सेब बहुत होते हैं। बडी इलायची भी होती है। पशुओ मे बर्फीला चीता, भालू, कस्तूरी मृग और बारहसिंगे पाए जाते हैं।

१९५० ई० की सधि के अनुसार सिक्किम भारत द्वारा सरक्षित है। इसकी सुरक्षा, विदेशी मामले, डाकतार, सीमा की सडको तथा अन्य महत्वपूर्ण सडको आदि के विकास का पूर्ण उत्तरदायित्व भारत सरकार का है। सिक्किम के अदरूनी मामले मे भारत दखल नही देता। सिक्किम की आबादी १,६५,००० है जिसमें नेपाली ६५ प्रतिशत, लेप्चा ३३ प्रतिशत और तिब्बती या अन्य लोग २ प्रतिशत हैं। यहाँ की स्त्रियों को बडी स्वतत्रता है। अधिकाश स्त्रियाँ, विशेषतः लेप्चा वा तिब्बती एक लबा सा लबादा, जिसे 'बक्कू' कहते हैं, पहनती हैं। यह कमर से कसकर बँधी रहती है। स्त्रियाँ सिर पर टोपी भी पहनती हैं। अब कोट, पतलून, सलवार, कमीज और साडी का भी प्रचलन हो गया है। यहाँ के निवासी बौद्ध धर्मावलबी हैं पर अधिकाश नेपाली हनुमान जी की पूजा भी करते हैं। शिक्षा में सिक्किम पिछडा हुआ है। इसके आर्थिक विकास के लिये भारत ने पर्याप्त धन दिया है। शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग धधे, पशुपालन, खेती बारी आदि का पर्याप्त विकास हो रहा है। अनेक लोअर प्राइमरी, अपर प्राइमरी, मिडिल और हाई स्कूल खुल गए हैं। स्कूलो में नेपाली और तिब्बती भाषाएँ अनिवार्य रूप से पढाई जाती हैं। हिंदी पढाने का भी प्रबध हुआ है।

तिब्बत के लिये दो दर्रे नायु ला (१५,५१२ फुट) और जेलेप ला (१३,२५४ फुट) हैं। इन्ही दर्रों द्वारा पहले तिब्बत से लाखो का व्यापार होता था। यहाँ कई पर्वतशिखर हैं जिनमें कंचनचघा (ऊँचाई २८,१४० फुट), सिनियोल्चु (२२,६२० फुट), किनचिन झाऊ (२२,६०० फुट), चोमियोमो (२२,३८५ फुट) प्रमुख हैं। कंचनचंघा उनका पवित्र शिखर है जिसका वे लोग पूजोत्सव मनाते हैं। यहाँ वर्षा अधिक (औसत १३७ इच) होती है। यहाँ कई छोटी छोटी नदियाँ लाचिन, लाचुग और जिस्ता हैं जो उत्तर से बहती हुई दक्षिण में सँकरी हो गई हैं।

इतिहास — १३वीं शती में लेप्चा लोग बरमा और असम से आकर सिक्किम मे बस गए। कुछ दिनो के बाद वे लोग वहाँ के राजा बन बैठे। तिब्बत से आए कुछ लोग लेप्चाओं को हराकर वहाँ के शासक १६४१ ई० मे बन बैठे और इन्होंने बौद्ध लामा धर्म को स्थापित किया। १८ वीं शती तक सिक्किम तिब्बत के अधीन था। १७८० ई० मे भूटान ने सिक्किम पर आक्रमण किया था। १८१६ ई० में अंग्रेजो ने सिक्किम के साथ सबध स्थापित किया। १८४६ ई० में आर्किबॉल्ड कैंपेल, दार्जिलिंग के सुपरिटेंडेंट और सर जोसेफ हूकर को कैद कर लिया। इसके फलस्वरूप अंग्रेजो ने १८६१ ई० में एक सधि सिक्किम पर बलात् थोपकर उसे ब्रिटिश सत्ता का सरक्षित राज्य बना लिया। १८९० ई० मे एक दूसरी सधि हुई जिसके द्वारा सिक्किम ने अंग्रेजो का सरक्षण स्वीकार कर लिया। भारत को स्वतत्रता मिलने पर १९४७ ई० में भारत के अधीन सिक्किम आ गया और १९५० ई० के दिसबर में सधि हुई जिसका उल्लेख ऊपर हुआ है। १९५३ ई० में शासन के लिये एक परिषद् (काउंसिल) बनी जिसके ५ सदस्य चुने हुए तथा ३ सदस्य नामजद होते हैं। नामजद सदस्यो मे से दो की सहायता से महाराजा राज्य का शासन चलाते हैं। राज्य में शांति बनाए रखने और कानून पालन के लिये न्यायालय है।

सिक्ख युद्ध वास्तव में, अपरोक्ष रूप से, आंग्ल सिक्ख सघर्ष का बीजारोपण तभी हो गया जब सतलज पर अंगरेजी सीमात रेखा के निर्धारण के साथ पूर्वी सिक्ख रियासतो पर अगरेजी अभिभावकत्व की स्थापना हुई। सिक्ख राजधानी, लाहौर, के निकट फिरोजपुर का अंगरेजी छावनी मे परिवर्तित होना (१८३८) भी सिक्खो के लिये भावी आशका का कारण बना। गवर्नर जनरल एलनबरा और उसके उत्तराधिकारी हार्डिज अनुगामी नीति के समर्थक थे। २३ अक्टूबर, १८४५ को हार्डिज ने एलेनबरा को लिखा था कि पजाब या तो सिक्खो का होगा, या अगरेजो का, तथा, विलब केवल इसलिये था कि अभी तक युद्ध का कारण अप्राप्त था। वह कारण भी उपलब्ध हो गया जब प्रबल किंतु अनियंत्रित सिक्ख सेना, अंगरेजो के उत्तेजनात्मक कार्यो से उद्वेलित हो, तथा पारस्परिक वैमनस्य और षड्यंत्रो से अव्यवस्थित लाहौर दरबार के स्वार्थलोलुप प्रमुख अधिकारियो द्वारा भडकाए जाने पर, सघर्ष के लिये उद्यत हो गई। सिक्ख सेना के सतलज पार करते ही (१३ दिसबर, १८४५) हार्डिज ने युद्ध की घोषणा कर दी।

प्रथम सिक्ख युद्ध का प्रथम रण (१८ दिसबर, १८४५) मुदकी में हुआ। प्रधान मत्री लालसिंह के रणक्षेत्र से पलायन के कारण सिक्ख सेना की पराजय निश्चित हो गई। दूसरा मोर्चा (२१ दिसबर) फिरोजशहर में हुआ। अगरेजी सेना की भारी क्षति के बावजूद, रात में लालसिंह, तथा प्रात प्रधान सेनापति तेजासिंह के पलायन के कारण सिक्ख सेना पुन पराजित हुई। तीसरा मोर्चा (२१ जनवरी, १८४६) बद्दोवाल में हुआ। रणजोधसिंह तथा अजीतसिंह के नायकत्व मे सिक्ख सेना ने हेरी स्मिथ को पराजित किया, यद्यपि ब्रिगेडियर क्योरेटन द्वारा सामयिक सहायता पहुँचने के कारण अंगरेजी सेना की परिस्थिति कुछ सँभल गई। चौथा मोर्चा (२८

वहाँ वैष्णव तथा शैव धर्मों का प्रचार किया। बौद्ध धर्म का प्रचार तीसरी सदी में थेरा महेंद्र ने किया। राजा द्वारा राजधर्म के रूप में स्वीकृत हो जाने पर वह वहाँ का मुख्य धर्म बन गया। बुद्ध का भिक्षापात्र तथा कुछ अन्य अवशेष उसी शताब्दी मे भारत से लाए गए और कुछ स्तूपो का निर्माण किया गया। बुद्ध गया में स्थित महान् बोधिवृक्ष की एक शाखा भी उसी वर्ष थेरी सघमित्त द्वारा लाई गई जो आज भी अच्छी दशा में है। कहते हैं, यह ससार का सबसे पुराना ऐतिहासिक वृक्ष है। बुद्ध का दाँत तथा बाल का अवशेष क्रमशः चौथी तथा पाँचवी शताब्दी में सिंहल लाए गए। सिंहलियो में इनका बड़ा आदर और समान है। बौद्ध धर्म ने, जो समूचे राष्ट्र में व्याप्त है, वहाँ वालो पर अथाह मानवतापूर्ण प्रभाव डाला है। पुर्तगालियो, डचो तथा अंग्रेजो के आगमन ने सिंहली रीति रिवाजो, धर्म, शिक्षा तथा पोशाक में बहुत परिवर्तन कर दिया है। [आर० से०]

सिउड़ी (Suri) स्थिति : २३° ५४′ उ० अ० तथा ८७° ३२′ पू० दे०। यह पश्चिम बंगाल मे बीरभूम जिले का प्रशासनिक केंद्र तथा प्रमुख नगर है और मोर नदी से ३ मील दक्षिण एक कंकड की पहाडी पर स्थित है। इसकी जनसंख्या २२,८४१ (१९६१) है। यहाँ तेल पेरने, दरी बुनने तथा निवार बनाने के उद्योग हैं। हर वर्ष जनवरी-फरवरी में यहाँ पशुप्रदर्शनी होती है जिसमें पुरस्कार दिए जाते हैं। पालकी तथा फर्नीचर भी यहाँ बनते हैं और निकटवर्ती गाँवो में सूती एवं रेशमी वस्त्र बुनने का काम होता है। [ज० सिं०]

सिएटल स्थिति : ४७° ३६′ उ० अ० तथा १२२° २०′ प० दे०। यह संयुक्त राज्य अमरीका के वाशिंगटन राज्य का प्रसिद्ध नगर, प्रमुख औद्योगिक एवं व्यापारिक केंद्र तथा प्रशांत महासागर तट का (तट से १२५ मील दूर) सबसे बड़ा बंदरगाह है। यह सैनफ्रांसिस्को से ६०० मील उत्तर में सात पहाड़ियो पर बसा हुआ नगर है। इन पहाड़ियो की ऊँचाई समुद्रतल से ५१४ फुट है। सिएटल के पश्चिम में ओलिंपिक पर्वत है। सिएटल के पूर्व मे २६ मील लंबी अलवण जल की वाशिंगटन झील है। झील तथा एलाइट खाड़ी एक दूसरे से यूनियन झील (Lake Union), बैलार्ड लाक्स (Ballord Locks) तथा एक जहाजी नहर द्वारा जुड़ी हुई हैं।

सिएटल का क्षेत्रफल लगभग ७१ वर्ग मील है। यहाँ पर वाशिंगटन तथा सिएटल विश्वविद्यालय हैं। यहाँ एक केंद्रीय पुस्तकालय भी है जिसकी दस शाखाएँ हैं। यहाँ की जलवायु साधारण है तथा स्वास्थ्य एवं उद्योग धंधे के उपयुक्त है। यहाँ पर प्रति वर्ष औसत वर्षा ३३ ४४ इंच होती है। यहाँ साल भर वर्षा होती है पर अक्टूबर से मार्च तक अधिक होती है। परिवहन व्यवस्था निजी कंपनियो के अधीन है।

संयुक्त राज्य अमरीका का यह बंदरगाह पूर्वी देशों के लिये सबसे निकट होने के कारण आयात निर्यात का प्रमुख केंद्र है। यहाँ के प्रमुख उद्योग पोत, कागज, लोहा तथा इस्पा..., ... उर्वरक, विस्फोटक एवं दवा आदि के निर्माण हैं। [नं० कु० रा०]

सिएरा लियॉन स्थिति : ९° ०′ उ० अ० तथा १२° ०′ प० दे०। यह देश पश्चिमी अफ्रीका में स्थित है। यहाँ का दक्षिणी और पश्चिमी भाग चपटा तथा नीचा है और उत्तरी तथा पूर्वी भाग ऊँचा तथा टूटा-फूटा है। यहाँ कही कही की जलवायु अस्वास्थ्यकर है। समुद्री किनारे के भाग रहने लायक हैं। यहाँ धान की उपज अधिक होती है जो यहाँ के निवासियो का मुख्य भोजन है। अन्य भोज्य सामग्री में मक्का, बाजरा, मूँगफली तथा नारियल हैं। नारियल का तेल और उसकी बनी वस्तुएँ, कोला, अदरख, कोको, कहवा तथा मिर्चे यहाँ से निर्यात किए जाते हैं। यहाँ पर लोहा, हीरा, सोना, प्लैटिनम आदि खनिज पदार्थ मिलते हैं पर अभी इनका व्यापारिक लाभ बहुत कम उठाया गया है। कपड़ा बुनना और चटाई बनाना आदि यहाँ के कुटीर उद्योग हैं। [रा० स० ख०]

सिकंदर शाह लोदी दिल्ली राज्य के एक भाग पर शासन करनेवाले बहलोल लोदी का द्वितीय पुत्र था। इसका वास्तविक नाम निजाम खाँ था। बहलोल की मृत्यु पर १७ जुलाई, १४८९ को यह 'सुल्तान सिकदर शाह' की उपाधि धारण करके सिंहासनारूढ़ हुआ। यह लोदी वश का सबसे योग्य शासक था। विद्वानो का आदर करने के साथ साथ निर्धनो के प्रति सहानुभूति रखता था। स्वयं बड़ा पराक्रमी, कर्तव्यनिष्ठ तथा साहसी व्यक्ति था। उसने फारसी में कुछ कविताएँ लिखी हैं। इसके शासन में बड़े निष्पक्ष रूप से न्याय किया जाता था। प्रजा की शिकायतो को सिकंदर शाह स्वयं सुनता था। साधारण आवश्यकता की वस्तुएँ बड़ी सस्ती थी और राज्य भर मे शांति तथा समृद्धि विराजती थी।

शाह ने अपने राज्य को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया। उद्दंड प्रांतीय नवाबो को दंडित करके उसने अशांति दूर की तथा जागीरदारो के आय व्यय का निरीक्षण किया। उसने बिहार तथा तिरहुत को अपने अधीन कर लिया तथा बंगाल तक जा पहुँचा। ग्वालियर, इटावा, धोलपुर तथा बयाना पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिये उसने एक नया नगर बसाया जो वर्तमान आगरा है। आगरा में ही २१ नवंबर, १५१७ को उसकी मृत्यु हो गई। [मि० चं० पां०]

सिकर्ट, वाल्टर रिचर्ड (१८६०-१९४२) ब्रिटिश चित्रकार। म्यूनिख में पैदा हुआ। कला की ओर परंपरागत रुचि, क्योंकि पिता और प्रपितामह दोनो ही नक्शानवीस थे। जे० एम० ह्विसलर का वह शिष्य था, उसी की भाँति उसने भी छायाभास पद्धति अख्तियार की। धूमिल, सौम्य और सहज रंगो से उसने विभिन्न आकृतियो के सूक्ष्म हावभाव और अनुभूतियो का चित्रण किया। जब वह पेरिस गया तब एदगर देगाज से मिला था। फलतः उसकी कला से वह अत्यधिक प्रभावित हुआ। उस कलापद्धति का अनुसरण कर उसने दृश्यांकन का एक नवीन ढंग विकसित

यता के विद्युत् द्वारा सकेतक अगले खड की दशा के अनुसार अनुकूल 'सतर्कता' अथवा 'सकट' अवस्था में पहुँच जाते हैं।

ट्रैक सरकिट तथा रिले की सहायता से यातायात नियत्रण के लिये सकेतक व्यवस्था की प्रगति आशातीत हुई है। अब तो एक दूरवर्ती केंद्रीय स्थान से यातायात का सुगमतापूर्वक सचालन किया जा सकता है। ऐसे सचालन को केंद्रीकृत यातायात नियत्रण (centralised traffic control) कहते हैं।

भारत की संकेतक प्रणाली, आरभ के सकेतक — भारत में जिस समय रेल परिवहन प्रारभ हुआ उस समय घूमनेवाले तश्तरीनुमा या अलग अलग रग के शीशो की हाथ-रोशनीवाले सकेतक प्रयोग में लाए गए। तश्तरीनुमा गोल सकेतक यदि लाइन से समकोण बनाता तो आगे 'सकट' का सूचक होता और यदि लाइन के समातर होता, तो इस बात का द्योतक होता कि आगे रास्ता 'अनुकूल' है और गाडी जा सकती है।

उसके बाद स्टेशनो पर एक ही खभे पर दोनो दिशा के लिये सकेतक लगाए गए। इनमें हर दिशा के लिये एक अलग ऊपर नीचे गिरनेवाला भुजा सकेतक होता था और स्टेशन मास्टर जिस ओर की गाडी को आने की आज्ञा देना चाहता था उसी ओर के सकेतक को गिरा देता था। ऐसे सकेतको का तो २५ साल पहले तक भी कुछ भागों में व्यवहार होता रहा है।

लिस्ट और मोर्स प्रणाली — सन् १८९२ तक भारत में कोई व्यवस्थित सिगनल प्रणाली नही थी। इस साल नार्थ-वेस्टर्न रेलवे पर श्री जी० एच० लिस्टन ने क्रासिग स्टेशनों पर एक विशेष यत्र लगाकर सिगनलो का तथा काटे क्रासिग के अत पाशन की व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण कार्य किया। इस यत्र की सहायता से इस बात का आश्वासन हो जाता था कि यदि सकेतक 'अनुकूल' है तो काटे क्रासिग अवश्य ही अनुकूल होगे और इसलिये गाडी की गति धीमी करने की आवश्यकता नही है जो विना इस प्रणाली के अत्यावश्यक थी। सन् १८९४ में श्री ए० मोर्स के सहयोग से अपने यत्र मे आवश्यक सशोधन करके लिस्ट और मोर्स प्रणाली को प्रचलित किया। यद्यपि ये यत्र और अच्छी प्रणालियों के प्रचलन में आ जाने के कारण असामयिक हो गए हैं, फिर भी ये अभी अनेक भारतीय रेलो पर चालू हैं। इस प्रणाली के कारण ही लिस्ट और मोर्स को भारत की सिगनल प्रणाली का 'जनक' कहा जाता है।

हेपर ट्रासमिटर — सन् १९०४ तक सिगनल तथा काँटे क्रासिग के अत पाशन की चाभी स्टेशन मास्टर के पास वाहक द्वारा भेजी जाती थी जिसे देखकर वह सकेतक को 'अनुकूल' कर देता था, पर इससे चाभी ले जाने और लाने में व्यर्थ समय नष्ट होता था और यातायात की गति मे रुकावट पडती थी। इसको दूर करने के लिये मेजर लालेस हेपर ने (जिनको बाद में 'सर' की उपाधि भी मिली), जो नार्थ वेस्टर्न रेलवे के सिगनल इंजीनियर थे और आगे चलकर जी० आई० पी० रेलवे के जनरल मैनेजर भी बने, बिजली द्वारा इस चाभी को स्टेशन मास्टर के पास पहुँचाने का प्रबध किया। ऐसी चाभियो को 'हेपर की ट्रांसमिटर' (Heppers key transmitter) कहते हैं और इस अविष्कार से यातायात की गति को बडी सहायता मिली।

केबिन अत पाशन (Cabin Interlocking) — केबिन अंत-पाशन का आविष्कार जान सेक्सबी ने किया था और आरंभ में इसका प्रयोग ब्रिटिश रेलों में हुआ था। बीसवीं शताब्दी के शुरू में भारतीय रेलो में भी इसका प्रचलन शुरू हुआ। इसकी कुछ योजनाएँ तो मेसर्स सेक्सबी और फार्मर (इंडिया) फर्म ने सन् १८९३ में ही तैयार कर ली थी पर इसको गाडियो की चाल तथा यातायात बढ़ने पर, उसे सुरक्षित रखने के लिये अत पाशन की आवश्यकता प्रतीत होने पर ही अपनाया गया। सबसे पहले जी० आई० पी० रेलवे पर बबई और देहली के मार्ग में ही केबिन अत पाशन का बहुत बडे पैमाने पर प्रयोग हुआ। यह अवस्था सन् १९१२ में पूरी होकर चालू की गई। इसी प्रकार बाद में अन्य रेलों के मुख्य मार्गों पर भी इन्हें चालू किया गया।

दोहरे तार की संकेतक प्रणाली

यात्रिक सकेत प्रणाली में दोहरे तार के सकेतको का प्रमुख स्थान हो गया है। इसमें केबिन से काँटे, पाशदडों (Lock-Bars) परिचायको (Detectors) तथा सकेतकों के परिचालन के लिये दो तारो का प्रयोग किया जाता है।

यह प्रणाली अब भारतीय रेलों पर विस्तृत रूप से प्रचलित हो गई है तथा दूसरी यांत्रिक सकेत प्रणालियो से (जिनमें सामान्य रूप से प्रचलित प्रणाली में इकहरे तार द्वारा सकेत का प्रचालन, तथा छडों द्वारा पारपथो का सचालन करके दोनो का एक ढाँचे में अंतपाशन किया जाता है) अधिक उत्तम मानी जाती है।

दोहरे तार की सकेतक प्रणाली में सबसे बडा लाभ यह होता है कि इसके द्वारा अधिक लबी नपी हुई चाल प्राप्त की जा सकती है और इस कारण अधिक दूरी तक बिना कठिनाई के सकेतको पर नियत्रण किया जा सकता है। छडों द्वारा ५०० गज की जगह इस प्रणाली द्वारा काँटे क्रासिगो का ८०० गज तक दक्षता से संचालन किया जा सकता है तथा सकेतक तो १५०० गज की दूरी तक कार्य कर सकता है। इस प्रणाली मे संकेतको के 'सकट' स्थिति मे वापस लाने के लिये प्रतिभार (Counter-weight) जैसे अविश्वसनीय तरीके को अपनाने की भी आवश्यकता नही रहती है और सकेतक को पूर्व दशा में लाने के लिये लिवर को सक्रिय रूप में खींचना होता है। इस कारण दोहरे तार की सकेतक प्रणाली में अनधिकृत सचालन असभव हो जाता है। साथ ही स्वचालित प्रतिपूरको (automatic compensators) के प्रयोग द्वारा सकेतको की चाल में ताप परिवर्तन का भी कोई प्रभाव नही पडता।

इस प्रणाली का उपयोग आर्थिक दृष्टि से भी लाभदायक है क्योकि इसमें आसानी से १००० गज लबी या इससे अधिक तक की लूप लाइन के स्टेशनों का केंद्रीय केबिन से ही संचालन किया जा सकता है जिसके कारण एक केबिन तथा उसके संचालन के व्यय की बचत हो जाती है।

लिवर ढाँचा (Lever Frame) — दोहरी तार प्रणाली के

जनवरी) अलीवाल में हुआ, जहाँ अंग्रेजो का सिक्खो से अव्यवस्थित संघर्ष (Skirmish) हुआ। अंतिम रण (१० फरवरी) सोब्राओ में हुआ। तीन घंटे की गोलाबारी के बाद, प्रधान अंगरेजी सेनापति लार्ड गफ ने सतलज के बाएँ तट पर स्थित सुदृढ सिक्ख मोर्चे पर आक्रमण कर दिया। प्रथमत. गुलाबसिंह ने सिक्ख सेना को रसद पहुँचाने में जानें बूझकर ढील दी। दूसरे, लालसिंह ने युद्ध में सामयिक सहायता प्रदान नहीं की। तीसरे, प्रधान सेनापति तेजासिंह ने युद्ध के चरम बिंदु पर पहुँचने के समय मैदान ही नही छोडा, बल्कि सिक्ख सेना की पीठ की ओर स्थित नाव के पुल को भी तोड दिया। चतुर्दिक् घिरकर भी सिक्ख सिपाहियो ने अंतिम मोर्चे तक युद्ध किया, किंतु, अंततः, उन्हे आत्मसमर्पण करना पडा।

२० फरवरी, १८४६, को विजयी अंगरेज सेना लाहौर पहुँची। लाहौर (९ मार्च) तथा भैरोवाल (१६, दिसबर) की संधियो के अनुसार पंजाब पर अंगरेजी प्रभुत्व की स्थापना हो गई। लारेंस को ब्रिटिश रेजिडेंट नियुक्त कर विस्तृत प्रशासकीय अधिकार सौंप दिए गए। अल्पवयस्क महाराजा दिलीपसिंह की माता तथा अभिभावक रानी जिंदाँ को पेंशन बाँध दी गई। अब पंजाब का अधिकृत होना शेष रहा जो डलहौजी द्वारा संपन्न हुआ।

मुल्तान के गवर्नर मूलराज ने, उत्तराधिकार दंड माँगे जाने पर त्यागपत्र दे दिया। परिस्थिति सँभालने, लाहौर दरबार द्वारा खानसिंह के साथ दो अंगरेज अधिकारी भेजे गए, जिनकी हत्या हो गई। तदनतर मूलराज ने विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह द्वितीय सिक्ख युद्ध का एक आधार बना। राजमाता रानी जिंदाँ को सिक्खो को उत्तेजित करने के संदेह पर शेखूपुरा में बंदी बना दिया था। अब, विद्रोह में सहयोग देने के अभियोग पर उसे पजाब से निष्कासित कर दिया गया। इससे सिक्खों मे तीव्र असंतोष फैलना अनिवार्य था। अततः, कैप्टन ऐबट की साजिशो के फलस्वरूप, महाराजा के भावी श्वसुर, वयोवृद्ध छत्तरसिंह अटारीवाला ने भी बगावत कर दी। शेरसिंह ने भी अपने विद्रोही पिता का साथ दिया। यही विद्रोह सिक्ख युद्ध में परिवर्तित हो गया।

प्रथम सग्राम (१३ जनवरी, १८४९) चिलियाँवाला में हुआ। इस युद्ध में अ गरेजो की सर्वाधिक क्षति हुई। सघर्ष इतना तीव्र था कि दोनो पक्षों ने अपने विजयी होने का दावा किया। द्वितीय मोर्चा (२१ फरवरी) गुजरात में हुआ। सिक्ख पूर्णतया पराजित हुए, तथा १२ मार्च को यह कहकर कि आज रणजीतसिंह मर गए, सिक्ख सिपाहियो ने आत्मसमर्पण कर दिया। २९ मार्च को पंजाब अगरेजी साम्राज्य का अग घोषित हो गया।

सं० ग्रं०—कनिंघम : हिस्ट्री ऑव द सिक्ख्स, एडिटेड बाई गैरेट, मेक्ग्रेगर : हिस्ट्री ऑव सिक्ख्स, गफ ऐंड इन्स : सिक्ख्स ऐंड द सिक्ख वार्स, डा० गंडासिंह . ब्रिटिश ऑक्यूपेशन ऑव द पंजाब; डा० हरीराम गुप्त . हिस्ट्री ऑव द सिक्ख्स, अनिलचंद्र बनर्जी . ऐंग्लो सिक्ख रिलेशंस, कैंब्रिज हिस्ट्री ऑव इंडिया, खंड ५।

पंजाबी में — डा० गंडासिंह : सिक्ख इतिहास, अंग्रेजाँ तें सिंघाँ दी लड़ाई (संपादित), पंजाब उत्ते अंग्रेजाँ दा कब्जा। [रा० ना०]

सिगनल, (संकेतक) (Signals) रेलवे संकेतक प्रणाली का व्यवहार रेलगाड़ी के चालको को रेलपथ की आगे की दशा की सूचना देने के लिये किया जाता है। सिगनल प्रणाली ही आज गाड़ियो के सुरक्षित तथा तीव्र गतिसंचालन की कुंजी है। रेलवे सिगनल साधारणतः रेलपथ पर लगे हुए उन स्थावर सकेतकों को कहते हैं जिनसे रेल चालक को रेलपथ के अगले खंड की दशा का ज्ञान हो सके।

ऐतिहासिक प्रगति — प्रारंभ मे ऐसे सिगनलो की व्यवस्था नही थी तथा डारलिंगटन से स्टाकटन जानेवाली पहली रेलगाड़ी के आगे कुछ घुड़सवार संत्री रास्ता साफ करने के लिये चले थे। उसके बाद इस काम को निश्चित दूरियो पर सन्त्रियो को खड़ा करके किया जाने लगा। समय की प्रगति के साथ इन सन्त्रियो के स्थान पर स्थावर सिगनल लगाए जाने लगे। संसार का पहला सिगनल इंग्लैंड के हार्टलपूल स्टेशन के स्टेशन मास्टर की मेज पर मोमबत्ती लगाकर बनाया गया था। इसके बाद ही तश्तरी जैसे गोल सिगनल चालू हुए। अमेरिका में सन् १८३२ में जब वाष्पचालित इंजनो द्वारा गाड़ियो का परिवहन प्रचलित किया गया, तब न्यूकैसिल तथा फ्रेंच टाउन के बीच १७ मील की दूरी से गेंदनुमा सिगनलों की प्रणाली प्रयोग में लाई गई। इस प्रणाली में तीन तीन मील पर लगभग ३० फुट ऊँचे खंभे लगाए गए। जैसे ही एक गाडी एक ओर से चलाई जाती, वहाँ का झंडी वाला एक सफेद गेंद खंभे की पूरी ऊँचाई पर चढा देता। अगले खंभे के पास का झंडीवाला इस गेंद को अपनी दूरबीन द्वारा देखकर इसी प्रकार की एक सफेद गेंद अपने खंभे पर चोटी से कुछ नीचे तक चढा देता। हर अगले खंभेवाला इसी प्रकार पिछले खंभे को देखकर अपनी अपनी गेंद चढ़ा देता। इस प्रकार कुछ ही मिनटो मे दूसरी ओर के स्टेशन को गाडी के चलने का पता चल जाता और वे सतर्क हो जाते। यदि गाडी अपने समय पर नही चल पाती, तो सफेद गेंद के स्थान पर काली गेंद चढ़ा दी जाती। इस प्रकार तार द्वारा सूचना देने का आविष्कार होने से पहले यह प्रणाली गाड़ी चलाने में बडी सहायक सिद्ध हुई।

पर उस समय सिगनल का काँटे और पारपथ में कोई अंतःपाशन (Interlocking) नही होता था और काँटे पारपथ की प्रतिकूल दशा में होते हुए भी संकेतक 'अनुकूल' अवस्था मे किया जा सकता था। इस कारण पूरी सुरक्षा नही होती थी तथा किसी भी मानवीय त्रुटि के कारण दुर्घटना की संभावना हो जाती थी। इसको दूर करने के लिये संकेतक तथा काँटे पारपथ (क्रासिंग) का अंतःपाशन किया गया जिससे यदि काँटे क्रासिंग प्रतिकूल हो तो संकेतक को 'अनुकूल' नही किया जा सकता था। आरंभ में यह अंतःपाशन यांत्रिक होता था। पर विज्ञान की प्रगति तथा रिले (Relay) के आविष्कार से अब विद्युत् अंत.पाशन होता है।

यांत्रिक अंत.पाशन का प्रयोग इग्लैंड में सर्वप्रथम ब्रिकेलयरआर्म जंक्शन पर सन् १८४३ में हुआ था। अमेरिका में इसका प्रयोग सन् १८७४ में पारंभ हुआ तथा भारत मे सन् १९१२ में।

सन् १८७१ मे ट्रैक सरकिट का आविष्कार हो जाने से स्वचालित सिगनल प्रणाली का प्रयोग भी संभव हो गया। इसकी सहायता से गाड़ियो के आने जाने के साथ ही अपने आप बिना किसी बाह्य सहा-

(३) प्रकाश स्थिति सकेतक (Position light Signal) :— इस प्रकार के सकेतक बहुत कम स्थानो में प्रयुक्त होते हैं। इनमे दो या अधिक प्रकाशो की स्थिति द्वारा सकेत दिया जाता है तथा पीले रग की बत्ती काम में लाई जाती है।

(४) रगीन प्रकाश स्थिति — अमरीका मे एक रेल प्रशासन पर इसका प्रयोग होता है। लाल बत्तियाँ अनुप्रस्थ दशा मे सकट की सूचना देती हैं। ४५° कोण पर पीली बत्तियाँ सतर्कता सूचक होती है तथा सीधी खडी अवस्था में हरी बत्ती 'अनुकूल' की द्योतक होती है।

(५) कोष्ठ सकेतक — चालक के सामने कोष्ठ मे स्थित सकेतक को कोष्ठ सकेतक कहते हैं और अगले खड की अवस्था के अनुसार कोष्ठ में लगातार सकेत मिलता रहता है। यह कोष्ठ सकेत ट्रैक सरकिट के अविष्कार द्वारा ही सभव हो पाया है तथा इसकी सहायता से चालक को बराबर यह पता रहता है कि कितनी दूर तक आगे लाइन साफ है और इस प्रकार वह उसी के अनुसार अपनी गाडी की गति पर नियत्रण रख सकता है।

अत पाशन — रेलवे परिभाषा में अत पाशन का अर्थ सिगनल तथा काँटे और पारपथो की चाल पर इस प्रकार नियत्रण करना होता है कि वे एक दूसरे के प्रतिकूल कार्य न कर सकें। ऐतिहासिक प्रगति का वर्णन करते हुए बताया जा चुका है कि प्रारंभ में अत-पाशन यात्रिक होता था पर विज्ञान की प्रगति के साथ अत.पाशन में भी विद्युत् तथा रिले द्वारा अत्यधिक प्रगति हुई तथा अब कही कही अत:पाशन की ऐसी व्यवस्था हो गई है कि एक राह स्थापित करके उसके सकेतक अनुकूल होते ही अन्य संकेतक तथा काँटे पारपथ अपने आप इस प्रकार फँस जाते हैं कि काँटेवाले की गलती से भी किसी विरोधाभासी सचालन की सभावना नही रह जाती।

मुख्यत दो प्रकार के अत पाशन होते हैं — (१) यात्रिक अत-पाशन तथा (२) विद्युत् अत पाशन। यात्रिक अत पाशन में लिवर की चाल से ही अन्य लिवरो के खाँचों मे इस प्रकार यात्रिक फँसाव कर दिया जाता है कि विरोधाभासी लिवरो की चाल रुक जाती है। विद्युत् अत पाशन में लिवरो की चाल से विद्युतप्रवाह मे इस प्रकार की रुकावट पैदा कर दी जाती है कि विरोधाभासी लिवर न चल सके। विद्युत् अतःपाशन की प्रगति मे निम्नलिखित प्रणालियाँ उल्लेखनीय हैं तथा विभिन्न स्थानो पर कार्य में लाई जा रही हैं।

(१) अत पाशन तथा ब्लाक प्रणाली (Lock and block System) —

इस प्रणाली में संकेतक इस प्रकार ब्लाक यत्र से अंत पाशित रहता है कि जब तक गाडी ब्लाक खड को पार करके उसके बाहर नही हो जाती, दूसरी गाडी के लिये लाइन क्लीयर नही दिया जा सकता तथा सबधित सकेतक भी 'अनुकूल' नही किया जा सकता।
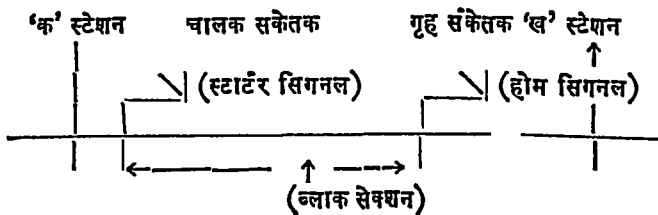
जब 'क' स्टेशन से 'ख' स्टेशन को गाडी भेजनी होती है तो 'क' स्टेशन 'ख' स्टेशन से ब्लाक यत्र पर आज्ञा माँगता है और उसकी सहायता से लाइन क्लीयर प्राप्त करता है। ब्लाक तथा ब्लाक प्रणाली में लाईन क्लीयर प्राप्त करने के बाद ही 'क' स्टेशन अपना चालक सकेतक 'अनुकूल' कर सकता है और गाडी के ब्लाक खड में पदार्पण करते ही सकेतक 'सकट' दशा में आ जाता है और नया लाइन क्लीयर तब तक नही दिया जा सकता जब तक गाडी ब्लाक खड को पार न कर ले और होम सिगनल 'सकट' दशा में न आ जाय। इससे एक ही ब्लाक खड में एक ही समय में दो गाडियो की सभावना तब तक नही रहती जब तक गाडी का चालक सकेतक को अमान्य करके गलती से ही अपनी गाडी न ले जाए।

(२) विद्युद्यांत्रिक अत:पाशन (Elactre-mechanical Interlocking) विद्युत्शक्ति संचालित सकेतको के प्रयोग के बाद ही विद्युद्यांत्रिक अत पाशन का उपयोग प्रारभ हुआ। इसका यत्र यात्रिक अत पाशन के यत्र की ही भाँति होता है जिसके ऊपर विद्युत् नियत्रक अथवा लिवर लगे होते है जो कि एक लिवर की चाल के बाद दूसरे विरोधाभासी यत्रो की चाल रोक देते हैं। काँटे पारपथो तथा पाशो का यात्रिक लिवरो द्वारा पाइप तथा लोहदड की सहायता से परिचालन किया जाता है। विद्युत् सकेतको का नियत्रण बिजली के लिवर की सहायता से करते हैं।

(३) विद्युत् वायुद्रावी अत पाशन (Electrio pneumatic Interlocking) इस प्रकार के अत पाशन के काँटों के सचालन का कार्य दाबित वायु द्वारा किया जाता है तथा दाबित वायु के सिलिंडरो के वाल्व इ० का नियत्रण विद्युत् द्वारा होता है। इसके लिये १२ वोल्ट की बिजली इस्तेमाल होती है। काँटो के सचालन के लिये ७५ पाउड प्रति वर्ग इच के दबाव की वायु प्रयोग में लाई जाती है। इस प्रकार के यत्र का प्रयोग ऐसे स्थानो मे होता है जहाँ काँटो का सचालन शीघ्रता से करना होता है।

(४) विद्युत् अत पाशन (Electric Interlocking) इस प्रकार के अत पाशन मे काँटो की चाल तथा सकेतको का सब कार्य विद्युत् से किया जाता है। काँटो के सचालन के लिये बिजली के मोटर लगाए जाते हैं। इस यत्र का सचालन अधिकतर ११० वोल्ट दिष्ट धारा द्वारा होता है पर कही कही ११६ वोल्ट प्रत्यावर्ती धारा भी काम मे लाते हैं।

इस अत पाशन मे काँटा जब तक अपनी पूरी चाल प्राप्त नही कर लेता, तब तक सकेतक अनुकूल दशा नही दिखा सकता और इस तरह काँटे की चाल के बीच मे अटकने पर भी गाडी के लाईन से उतर जाने की दुर्घटना असभव हो जाती है। विद्युत् सघनित अत:पाशता मे भी यह व्यवस्था रहती है।

इस प्रकार के अत.पाशन का प्रयोग दिल्ली के पास सब्जीमडी स्टेशन पर किया गया है।

विद्युत् अंत पाशन का व्यवहार ऐसे स्थानो पर नही किया जा सकता जहाँ बरसात मे बाढ़ आकर विद्युत् मोटरो के डूबने का खतरा रहता हो।

(५) रिले अंत.पाशन — यात्रिक अत.पाशन के स्थान पर अब

लिये लिवर ढांचा दो १०" × ३" की चैनलो को जोडकर उसके बीच में लिवर लगाकर बनाया जाता है। ये चैनलें केबिन की शहतीरों में बोल्ट द्वारा जुडी रहती हैं। लिवर एक ढोल के आकार का होता है जिसमें उपयुक्त माप का एक हैंडिल लगा रहता है जिसके द्वारा ढोल को १८०° तक घुमाया जा सकता है और इस प्रकार इच्छित निर्दिष्ट मात्रा में घुमाने से संकेतक की दशा बदली जा सकती है। हर लिवर अलग अलग जुडा होने के कारण उनमें से किसी को भी आसानी से बदला जा सकता है।

संकेत चालक यंत्र (Signal Mechanism) — सकेत यत्र का प्रयोग सकेतक के सचालन के लिये किया जाता है। इसके द्वारा सकेतक को ०°, ४५° या ९०° कोण पर किसी भी दशा मे लाया जा सकता है। इनका परिकल्पन इस प्रकार होता है कि इसमें सकेतक के किसी और कोण या दशा में रह सकने की सभावना नही रहती तथा तार टूटने की दशा में संकेतक फौरन 'संकट' सूचक दशा में पहुंच जाता है।

काँटा चालक यंत्र (Point Mechanism) — काँटे की चाल के लिये एक दाँतेदार छड़ यत्रचक्र के साथ फँसा रहता है। यह छड़ काँटे को चाल देता है तथा पाशन छड़ को भी चलाता है जिसके कारण काँटा अपने स्थान पर पहुँचने के साथ ही पाशित हो जाता है। साथ ही ऐसा प्रबंध भी होता है कि तार के टूट जाने पर काँटा अपने स्थान पर ही स्थित रहता है और उसमे कोई गति नही की जा सकती।

परिचायक (Detector) — दोहरे तार की संकेत प्रणाली में एक और अत्यंत उपयोगी साधन जो काम में लाया जाता है 'परिचायक' है। इसका कार्य पारपथ के काँटे के ठीक जगह पर पहुंचने की जाँच करना है। परिवहन सुरक्षा में इस जाँच का महत्वपूर्ण स्थान है। इस जाँच के साथ ही परिचायक तार टूट जाने पर काँटे को अपने स्थान पर जकड भी देता है। परिचायक काँटे के पास ही लगाया हुआ एक चक्र होता है जो सकेत प्रणाली के तारो के साथ जुडा रहता है और उनकी चाल के साथ ही घूमता है। इस पहिए के बाहरी हिस्से में खाँचे कटे हुए होते हैं जो काँटो की चाल के साथ चलनेवाली लोहे की रोको में अटक जाते हैं। इस प्रकार यदि काँटा 'प्रतिकूल' दशा में है, तो संकेतक का 'अनुकूल' दिशा में किया जा सकना असभव हो जाता है।

स्वचालित सिगनल प्रणाली (Automatic Slock Bignalling) — बीसवी शताब्दी के आरंभ में रेल लाइन को बिजली द्वारा सिगनल से संबंधित करने की प्रथा ट्रैक सरकिटिंग, (Track circuiting) निकली और क्रमश. भारत के बडे बड़े स्टेशनो पर चालू की गई। ट्रैक सरकिटिंग से बिजली द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि आगे की राह पर कोई गाड़ी या किसी और किस्म की कोई रुकावट तो नही है।

ट्रैक सरकिटिंग के द्वारा स्वचालित सिगनल प्रणाली भी संभव हो सकी है। इससे दोहरी लाइनो पर एक के पीछे एक गाडियो को कुछ मिनटो के अंतर पर चलाना सभव हो गया है। जैसे ही गाड़ी किसी खड में पदार्पण करती है, उस खंड के प्रारंभवाला सकेतक 'सकट' दशा का प्रदर्शन करने लगता है तथा उससे पहले खंड के प्रारंभ का संकेतक 'सतर्कता' सूचना देता है। जैसे ही गाडी खंड से बाहर निकल जाती है, संकेतक फिर अपने आप 'अनुकूल' दशा मे आ जाता है। इस प्रकार गाडी के चालक को पता रहता है कि अगले खडो में कोई गाड़ी या रुकावट तो नही है। यदि होती है तो वह सतर्कता से काम लेता है और गाडी रोक देता है।

कलकत्ता, बबई तथा मद्रास के पास जहाँ यातायात बहुत बढ़ गया है, स्वचालित सकेतक प्रणाली कार्य मे लाई जा रही है।

संकेतकों के प्रकार

यातायात के लिये प्रयोग किए जानेवाले सकेतक मुख्यत' चार प्रकार के होते हैं :

(१) सीमाफोर (Semaphore) भुजा सकेतक
(२) रगीन प्रकाश (Colour light) संकेतक
(३) प्रकाश स्थिति (Position light) सकेतक
(४) रगीन प्रकाश (Colour position light) सकेतक
(५) चालक कोष्ठ सकेतक (Cab signal)

सीमाफोर — खंभे पर भुजा की दशा से विभिन्न सकेत देनेवाले सकेतक को सीमाफोर संकेतक कहते हैं।

भुजा की चाल नीचे की ओर निचले वृत्त पाद (lower quadrant) या ऊपर की ओर ऊपरी वृत्त पाद (Upper quadrant) हो सकती है। नीचे की ओर चालवाले सकेतक दो ही दशाओ के द्योतक होते हैं। भुजा की अनुप्रस्थ दशा 'संकट' सूचक होती है तथा ४५° का कोण बनाती हुई दशा 'सुरक्षा' सूचक होती है।

इसके विपरीत ऊपरी चालवाले सकेतक तीन दशाओ के द्योतक होते हैं। इनमे भी भुजा की अनुप्रस्थ दशा सकट सूचक होती है। दूसरी दशा मे भुजा ऊपर की ओर ४५° का कोण बनाती है। यह 'सतर्कता' सूचक होती है। तीसरी दशा मे भुजा एकदम ऊपर को सीधी हो जाती है और 'अनुकूल' होती है जिससे यह पता चलता है कि रास्ता एकदम साफ है तथा चालक पूरे वेग से जा सकता है। ऊपरी चाल मे तीन दशाओ की सूचना हो सकने के कारण चालक को 'संकट' से पहले रोक सकने के लिये पर्याप्त समय मिल जाता है और इसलिये यदि सकेतक की भुजा सुरक्षा दशा में है, तो वह बिना हिचक पूरी गति पर चल सकता है।

भुजा सकेतक रात्रि के समय कार्य में नही लाए जा सकते। इस कारण रात्रि में उनके स्थान पर रगीन रोशनी द्वारा सकेत किया जाता है। 'संकट' की सूचना के लिये लाल रोशनी का संकेत होता है। 'सतर्कता के लिये पीली तथा अनुकूल पथ के लिये हरी रोशनी का प्रयोग करते हैं।

(२) रंगीन रोशनी संकेतक — विद्युत् तथा लेंसो (Lens) की सहायता से सकेतक की रोशनी इतनी तेज कर दी जाती है कि रोशनी द्वारा दिन में भी रंगीन प्रकाश द्वारा संकेत दिए जा सकें। इस प्रकार आधुनिक सकेतक दिन रात में एक ही तरह का संकेत देते हैं तथा बहुत दूर से दिखाई दे सकते हैं।

वाला तवाकू अभिसाधित होता है। ऐसे तवाकू को वर्जीनिया तवाकू कहते हैं। तवाकू को अभिसाधित करने के लिये पत्ते को पहले पानी में भिगोते हैं। इससे वह नम्य हो जाता है तथा डंठल और मध्य शिरे से सरलता से अलग किया जा सकता है। अब उसे घूर्णक ड्रम मे रखकर महीन काटते हैं। ऐसे कटे तवाकू को गरम करते हैं जिससे कुछ नमी निकल जाती है। कटे तवाकू को कागज में लपेटकर कागज के सिरे को भिगोकर बद कर देते हैं। कुछ लोग अपना सिगरेट स्वय तैयार करते हैं पर आज सिगरेट वनाने की मशीनें बन गई हैं। आधुनिक मशीनों में प्रति मिनट १००० से १५०० तक सिगरेट बन सकते हैं। सिगरेट वनाने में जिस कागज का उपयोग होता है वह विशिष्ट प्रकार का कागज इसी काम के लिय बना होता है। सिगरेट बन जाने पर डिब्बो में भरा जाता है। डिब्बो में १० से २० सिगरेट रहते हैं। सिगरेट बनाने का समस्त कार्य आज मशीनो से होता है। सिगरेट का व्यवहार दिन दिन बढ़ रहा है। इसका प्रचार केवल पुरुषो मे ही नहीं वरन् महिलाओ में भी बढ़ रहा है। इससे सिगरेट का व्यापार आज वडा उन्नत है। अनेक देशों — भारत, इग्लैंड, अमरीका आदि — मे इसके अनेक कारखाने हैं। भारत मे सिगरेट पर उत्पादन शुल्क लगता है। बाहर से आए सिगरेट पर आयातकर लगता है। भारत को इससे पर्याप्त धनराशि प्राप्त होती है। सिगरेट के वढे हुए उपयोग को देखकर शरीर पर इसके प्रभाव के अध्ययन के लिये डाक्टरो ने अनेक समितियाँ बनाईं और उसके फलस्वरूप सिगरेट के व्यवहार के सबध में निम्नलिखित बातें मालूम हुईं —

१. सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।

२. सिगरेट के धुएं से वायु दूषित हो जाती है। कुछ लोगों का मत है कि ऐसी दूषित वायु के सेवन से कैंसर हो सकता है।

३. सिगरेट पीने से पुरुष और महिलाओं दोनो में फेफड़े का कैंसर हो सकता है।

४. जीर्ण श्वासनली शोथ (Chronic Bronchitis) के होन का एक महत्वपूर्ण कारण सिगरेट पीना है।

५. सिगरेट पीने से फेफड़े का कार्य सुचारु रूप से नहीं होता, कार्यशीलता मे ह्रास हो सकता है। सिगरेट पीनेवालो में साँस फूलने की शिकायत हो सकती है।

६. सिगरेट पीनेवाली महिलाओ के बच्चे जन्म के समय कम भार के होते हैं।

७ पुरुषो में कठ के कैंसर होने का एक प्रमुख कारण सिगरेट-पीना है।

८ सिगरेट पीनेवाले व्यक्तियो की हृदय रोग से मृत्यु ७० प्रतिशत से अधिक होती है।

९ हृद्वाहिक रोग, जिनमे अतिरुधिर तनाव, हृदयरोग और सामान्य धमनीकाठिन्य रोग भी समिलित हैं, में सिगरेट पीने का विशेष योग पाया गया है। [फू० स० व०]

सिगार (Cigar) क्यूबा के सिकाडा (Cicada) शब्द से बना समझा जाता है। क्यूबा के आदिवासी तवाकू के चूरे को तवाकू के पत्ते से ही ढँककर उसको जलाकर धूमपान करते थे। लगभग १७६२ ई० मे क्यूबा से अमरीका के अन्य राज्यो में इसका प्रचलन फैला और वहाँ से १९ वीं शताब्दी (लगभग १८१० ई०) में यूरोप आया। सिगार मे तवाकू का चूरा तवाकू के पत्ते में ही लपेटा रहता है जब कि सिगरेट में तवाकू का चूरा कागज में लपेटा रहता है। क्यूबा में सिगार हाथो से बनता था। आज भी उत्कृष्ट कोटि का क्यूबा सिगार हाथो से ही बनता है। अमरीका के अन्य राज्यों में भी सिगार हाथो से बनता है। सस्ते होने की दृष्टि से सिगार मशीनों में बनने लगे हैं। पहली मशीन १९१९ ई० मे बनी थी। इस मशीन मे अब बहुत अधिक सुधार हुआ है। ऐसी मशीनो में प्रति घटा हजारो की सख्या में सिगार बन सकते हैं। कुछ मशीनें ऐसी हैं जिनमें चार श्रमिको की आवश्यकता पड़ती है। साधारणतया ये महिलाएँ होती हैं। एक तवाकू के चूरे को हॉपर (Hopper) मे डालती है। दूसरी लपेटन (Wrapper) काटती है। तीसरी लपेटन में चूरा भरती, लपेटती और काटती है और चौथी सिगार पर छाप लगाती या सेलोफेन कागज में लपेटकर उसपर छाप लगाती है। सिगार कई रग के होते हैं। कुछ 'क्लैरो' (हल्के पीले), कुछ कोलोरैडो (भूरे), कुछ कोलोरैडो मैदूरो (गाढ़े भूरे) कुछ मैदूरो (गाढ़े भूरे) और कुछ ओसक्यूरो (प्राय कृष्ण) रग के होते हैं। पहले गाढ़े रंगवाले सिगार पसद किए जाते थे। पर अब हल्के रगवाले पसंद किए जाते हैं। आजकल क्लैरो सिगार अधिक पसंद किए जाते हैं। सिगार के धुएं मे सौरभ होना पसंद किया जाता है। सौरभ उत्पन्न करने के अनेक प्रयास हुए हैं। कुछ सिगार एक से आकार के लबे होते हैं। कुछ बीच में मोटे और दोनो किनारे पर पतले होते हैं। कई आकार और विस्तार के सिगार बने हैं और बाजारो में बिकते हैं। तवाकू का प्रत्येक भाग सिगार के कारखाने में किसी न किसी काम मे आ जाता है। तवाकू की धूल भी कृमिनाशक ओषधियो के निर्माण मे प्रयुक्त होती है। भारत में सिगार का प्रचलन अधिक नहीं है। पाश्चात्य देशो मे भी उसके उत्पादन के आँकड़ो से पता लगता है कि उसका प्रचलन कम हो रहा है।

[फू० स० व०]

सिजविक, हेनरी (१८३८-१९००) प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक। ३१ मई को यार्कशायर में जन्म। प्रथम महत्वपूर्ण पद के रूप में उन्हें ट्रिनिटी विश्वविद्यालय की फेलोशिप मिली। बाद मे उन्हें वही क्लासिकी साहित्य का प्राध्यापक नियुक्त किया गया। १८७४ मे उनकी पहली महत्वपूर्ण कृति 'नैतिकता की पद्धति' शीर्षक प्रकाशित हुई। १८८३ मे दुबारा उन्हे नीतिदर्शन विषय का नाइटब्रिज प्राध्यापक नियुक्त किया गया इसके उपरात अपनी विशिष्ट दार्शनिक मान्यताओ की प्रस्थापना के लिये उन्होने 'सोसाइटी फार साइकिकल रिसर्च' की स्थापना की। मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओ के अध्ययन में उन्हें गहरी रुचि थी। ईसाइयत को मानवकल्याण का साधन मानते हुए भी धार्मिक दृष्टि से उन्होने उसका समर्थन नही किया। समाजशास्त्रीय विचारो मे वे स्टुअर्ट मिल और बेंथम की तरह उपयोगितावादी थे। [मु० रा०]

सिजिस्मंड (१३६८–१४३७) पवित्र रोमन सम्राट् और हगरी तथा बोहेमिया का बादशाह सिजिस्म ड चार्ल्स चतुर्थ का पुत्र था।

रिले अंत पाशन का पर्याप्त प्रयोग होने लगा है। रिले द्वारा विद्युत् सरकिट इस प्रकार नियंत्रित किए जाते हैं कि यदि एक सरकिट कार्य कर रहा है तो दूसरा सरकिट जिसमे विरोधी सकेतक या कांटो की चाल होती है कार्य न कर पाए। रिले के आविष्कार से अंत.पाशन का कार्य काफी सुविधा से होने लगा है और बड़े बडे स्टेशनो का कार्य थोड़े से स्थान मे अल्प जनसख्या से किया जा सकता है।

(६) पथ रिले अंत:पाशन — रिले अंत पाशन के बाद नवीनतम प्रगति पथ अत.पाशन की हुई है। इसके द्वारा संचालक यदि एक पथ किसी गाडी के लिये निर्धारित करके स्थापित कर देता है, तो सारे विरोधी पथ, जिनसे किसी और गाडी के उस पथ पर आने की संभावना हो, अतःपाशित हो जाते हैं और स्थापित नही किए जा सकते। इस प्रकार के पथ, स्थापित करने मे विविध सकेतको तथा कांटो की चालों के बटनो को दबाना पडता है। इसके स्थान पर अब ऐसी व्यवस्था भी होने लगी है कि विविध बटनो के स्थान पर एक पथ के स्थापन के लिये केवल एक बटन दबाते ही सारा पथ स्थापित हो जाता है और उसके संकेत अनुकूल दशा में आ जाते हैं। साथ ही सब विरोधी पथ अंत:पाशित हो जाते हैं जिससे वे स्थापित न हो सकें। किसी भी स्थापित पथ को रद्द भी किया जा सकता है, यदि किसी समय उस पथ के स्थान पर दूसरे पथ को स्थापित करने की आवश्यकता हो। इसके लिये हर पथ के लिये रद्द करनेवाले बटन लगे रहते हैं। एक बटन से पथ स्थापन की व्यवस्था को एकनियंत्रण-स्विच-व्यवस्था कहते हैं तथा इसके द्वारा यातायात बहुत घना होने पर भी अति सुगमता से हो सकता है।

पथ रिले अंत पाशन तथा एकनियंत्रण-स्विच-व्यवस्थाओ में सचालक के सामने सारे यार्ड का नक्शा रहता है जिसकी लाइनो में बल्बो द्वारा रोशनी हो सकती है। एक पथ के स्थापित होते ही उसमें रोशनी हो जाती है तथा जैसे ही उस पथ पर गाड़ी आ जाती है वहाँ सफेद के स्थान पर लाल रोशनी हो जाती है। गाडी के पथ खाली कर देते ही रोशनी बुझ जाती है और दूसरा पथ स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार सचालक तेजी से एक के बाद दूसरा पथ भिन्न दिशाओ से आनेवाली गाड़ियो के लिये स्थापित करता चला जाता है।

भारत में रिले अंत.पाशन तो बहुत से स्थानो पर प्रयोग मे लाया जाता रहा है पर मद्रास, बबई, दिल्ली के कई स्टेशनो पर पथ अंत.पाशन भी प्रयुक्त हो रहा है। बंबई के पास कुर्ला स्टेशन पर जहाँ यातायात का घनत्व बहुत अधिक है, नियंत्रण स्विच व्यवस्था प्रयोग में लाई गई है। इस व्यवस्था के द्वारा कुर्ला मे एक ही केबिन से १२५ भिन्न पथ स्थापित किए जा सकते हैं, तथा ५० संकेतको और ६४ कांटो का संचालन विद्युतीय दाबित वायु अतःपाशन प्रणाली से होता है। यह सब कार्य जुलाई, १९५९ (जब वह व्यवस्था शुरू की गई) से पहले ६ केबिनो मे २७२ लिवरो द्वारा किया जाता था।

(७) केंद्रीकृत परिवहन नियंत्रण प्रणाली (Centralised Traffic Control System)—इस प्रणाली में हर स्टेशन पर मास्टर के रखने की आवश्यकता नहीं होती बल्कि एक केंद्रीय स्थान से ही गाड़ियो का नियत्रण किया जाता है। सुदूर यत्रो द्वारा वही से बटन दबाकर पारपथो तथा सकेतकों का संचालन किया जाता है। इस प्रणाली को उत्तर पूर्व सीमातर लाइन के एक भाग पर प्रयोग में लाने की योजना बनाई गई है तथा उसपर कार्य आरभ हो गया है।

स्वचालित गाड़ी नियंत्रण (automatic train Control)— ऐसी व्यवस्था की जाती है कि यदि चालक किसी गलती के कारण सकेतक को 'सकट' दशा मे पार कर जाए तो पहले तो ड्राइवर को सावधान करने के लिये एक घंटी या हूटर बजता है, पर यदि गाडी फिर भी न रोकी जाए तो अपने आप ही ब्रेक लगकर गाडी रुक जाती है। इस प्रकार ड्राइवर की गफलत, बेहोशी, कोहरे के कारण सिगनल न देख पाने या किसी अन्य कारण 'सकट' सिगनल पर गाड़ी न रोकी जाने पर भी सुरक्षा हो जाती है।

इस व्यवस्था को स्वचालित गाडी रोक या स्वचालित गाड़ी सतर्कता व्यवस्था भी कहते हैं। इसका यंत्र दो भागो में होता है। एक भाग तो रेलपथ में लगा होता है तथा संकेतक के साथ जुडा रहता है तथा दूसरा भाग इंजन मे लगा होता है और सकेतक यदि 'अनुकूल' दशा मे है तब रेलपथ का भाग भी अनुकूल ही रहता है और इंजनवाले भाग पर कोई असर नहीं पड़ता। पर यदि सकेतक 'सकट' अथवा प्रतिकूल अवस्था में है, तो रेलपथवाला भाग क्रियात्मक रहता है और इंजनवाले भाग को भी क्रियात्मक कर देता है।

इस व्यवस्था के यंत्र या तो यांत्रिक युक्ति के होते हैं या विद्युत्-चुंबकीय युक्ति के। यांत्रिक युक्ति में इंजनवाला भाग रेल पथ के भाग से टकरा कर अपने स्थान से हट जाता है जिसके घंटी बजने तथा ब्रेक लगने की क्रिया आरंभ हो जाती है। विद्युत्चुंबकीय यंत्रों में इन दोनो भागो के टकराने की आवश्यकता नही रहती तथा एक भाग के दूसरे भाग के ऊपर से चले जाते समय ही चुंबकीय प्रभाव से क्रिया शुरू हो जाती है। यांत्रिक युक्ति में आपसी टकराव के कारण इन भागो में टूटने फूटने का काफी खतरा रहता है। अन्य प्रगतिशील देशो में तो यह व्यवस्था काफी काम में लाई जा रही है। पर भारत में अभी तक इस प्रकार की व्यवस्था नही बनी है।

सन् १९४४ में एक स्वचालित गाडी नियंत्रण समिति बनी थी जिसने जी० आई० पी० रेलवे तथा बी० बी० सी० आई० रेलवे पर इस संबंध में प्रयोग किए तथा इस निष्कर्ष पर पहुँची कि रेलपथ पर लगाए हुए सामानो की पूरी सुरक्षा नही हो सकती है और उसके चोरी हो जाने से यह व्यवस्था असफल हो जाती है। इसकी सफलता के लिये यह आवश्यक है कि किसी समय भी धोखा न हो। अभी उपयुक्त समय नही आया है कि भारत मे इसका प्रयोग हो सके। जब या तो इस बात की समुचित व्यवस्था हो जाएगी कि रेलपथ पर लगे हुए यत्रों के साथ कोई छेड़छाड़ न करे या फिर ऐसे यंत्र बनने लगें कि उनके साथ छेड़छाड हो ही न सके, तभी इस व्यवस्था का प्रयोग भारत मे किया जा सकेगा। [आ० भू०]

सिगरेट सिगार का छोटा रूप है। इसमे महीन कटा हुआ तंबाकू महीन कागज में लपेटा हुआ रहता है। सिगरेट मे प्रयुक्त होने-

जो बहुधा नदियो मे पहुँच जाते हैं। परतु कुछ, जैसे डोल्फिन, सर्वथा खारे पानी में ही रहते हैं।

बाह्य आकृति (External features) — तिमिगणो की आकृति बेलनाकार, बीच में चौडी तथा छोरो (ends) की ओर क्रमश पतली होती जाती है। ऐसे आकार द्वारा तैरते समय पानी के प्रतिरोध में कमी होती है। तिमिगण के शरीर को सिर, धड तथा पूँछ में विभक्त किया जा सकता है। सिर अपेक्षाकृत बडा होता है। अन्य स्तनियो (Mammals) की भाँति भोजन को चबानेवाले भाग मुँह मे अनुपस्थित होते हैं जिससे भोजन चबाकर नही वरन् निगलकर करते हैं। नासारध्र (Nostrils) सिर के ऊपरी भाग पर पीछे हटकर स्थिर होते हैं। इनकी सख्या दो (बैलीन ह्वेल) या एक (सूँस और स्पर्म तिमि में) हो सकती है। आतरिक कपाटो द्वारा ये खुलते या बद होते हैं। इन रंध्रों से एक फुहार (Spout) निकलती है जो इन जतुओ की एक विशेषता है।

धड शरीर का सबसे बडा और चौडा भाग होता है। धड के पृष्ठ पर पंख (Fin) तथा प्रतिपृष्ठ पर आगे, दाहिनी और बाईं ओर डाँड मे परिवर्तित अग्रपाद होते हैं। पख मछलियों के विपरीत अस्थिरहित होता है तथा मुख्यत वसा (Fat) या संयोजी ऊतक (Connective tissue) का बना होता है। धड और पूँछ के सधिस्थान (जकशन) पर मलद्वार (anus) होता है और उसके पीछे ही जननेंद्रिय छिद्र। मादा में इस छिद्र के दोनो ओर एक खाँच (groove) मे स्तन होते हैं। नर में जननेंद्रियाँ पूर्णतया आकुचनशील (retractile) होती हैं जिसके फलस्वरूप तैरते समय वे पानी में कोई प्रतिरोध नही करतीं।

धड के पतले होने और छोर पर एकाएक चौडे होकर दो पर्णाभ (Flukes) में विभक्त होने से पूँछ बनती है। ये पर्णाभ क्षैतिज (Horizontal) तथा अस्थिरहित होते हैं जिसके विपरीत मछलियों में ये उर्ध्वाधर (Vertical) तथा अस्थिसहित होते हैं।

त्वचा — त्वचा चिकनी, चमकदार और बालरहित होती है। बाल अवशेष रुप में कुछ विशेष स्थानो पर जैसे निचले होठ तथा नासारंध्र के आस पास होते हैं। तिमिगण नियततापी (warm-blooded) जतु हैं। शरीर के ताप को उच्च बनाए रखने के लिये उनके त्वचा के ठीक नीचे तिमिवसा (Blubber) नामक एक विशिष्ट ततु पाया जाता है। त्वचा का रंग साधारणतया ऊपर स्याह (Dark) और नीचे की ओर सफेद होता है परंतु बहुतो के रग विभिन्न रह सकते हैं।

श्रृंगास्थि (Baleen) — यह दतरहित तिमिगणों में पाया जानेवाला एक विशेष अग है जो मुखगुहा में तालू के दोनों किनारों पर अस्तरीय त्वचा के बढने तथा श्रृगीय होने से बनता है। इसकी उपस्थिति के कारण इन तिमिगणो को श्रृंगास्थि तिमि कहते हैं। प्रत्येक श्रृंगास्थि लगभग त्रिभुजाकार होती है और अपने आधार द्वारा तालू से जुडी रहती है। इसकी स्वतत्र भुजाएँ लगभग ३००-४०० पतले तथा श्रृगीय पट्टियों में विभक्त हो जाती हैं। ये पट्टियाँ भुजा के मध्य भाग मे लबी और दोनों छोरो की ओर क्रमशः छोटी होती जाती हैं। यह छननी का कार्य करती है। प्लवक (Plankton) के समुदाय को देखकर श्रृगास्थि मुँह फाड देता है और पानी के साथ असख्य प्लवकों को अपने मुखगुहा में भर लेता है। पानी को तो फिर बाहर निकाल देता पर प्लवक श्रृगास्थि से छनकर मुखगुहा मे ही रह जाते हैं जिन्हें वह निगल जाता है। लगभग २ टन तक भोजन श्रृगास्थि तिमि के पेट में पाया गया है।

तिमिवसा (Blubber) — तिमि की त्वचा के नीचे एक पुष्ट ततुमय सयोजी ऊतक की मोटी तह होती है जिसमें तेल की मात्रा अत्यधिक होती है। यह तह शरीर के प्रत्येक भाग में फैली रहती है। स्पर्म ह्वेल मे यह पर्त १४ इच तक तथा ग्रीन लैंड ह्वेल में २० इच तक मोटी हो सकती है। एक ७० टन के ह्वेल के शरीर में ३० टन तक तिमिवसा रह सकती है जिससे २२ टन तक तेल प्राप्त हो सकता है। डॉलफिन में तिमिवसा की परत पतली होती है। तिमिवसा का प्रमुख कार्य शरीर का ताप बनाए रखना है। तिमिगण स्थलीय स्तनी के वशज हैं। तिमिवसा का दूसरा कार्य तिमिगणों का गरम समुद्रों मे अत्यधिक गरमी से बचाव करना भी है।

श्वसन (Respiration) — तिमिगणो को समय समय पर पानी के ऊपर आकर साँस लेना पडता है। पानी के भीतर डूबे रहने की अवधि उनकी आयु तथा माप पर निर्भर करती है। यह ५ मिनट से ४५ मिनट या इससे अधिक भी हो सकती है। पानी के भीतर नासारध्र कपाट द्वारा बंद रहता है परतु पानी के ऊपर आते ही वह खुल जाता है और एक विशेष ध्वनि के साथ तिमि अपने फेफडो की अशुद्ध वायु को उच्छ्वसित (expire) कर देता है। ऐसा करने पर रध्र (या रध्रो) से एक मोटी फुहार (Spout) ऊपर उठती दिखाई पडती है जो उच्छ्वास मे मिश्रित नमी के कणों के सघनित (condense) होने से बनती है। उच्छ्वसन के तुरत बाद ही निःश्वसन की क्रिया होती है जिसमें बहुत ही कम समय लगता है। तिमिगण के श्वसन सस्थान की विशेषता यह है कि उनकी श्वास नली (wind pipe) अन्य सभी स्तनियो की भाँति मुखगुहा में न खुलकर नासारध्र से जा मिलती है जिसके कारण हवा सीधे फेफडो मे पहुँचती है। अन्य स्तनी नाक तथा मुखगुहा दोनो से ही श्वसन की क्रिया कर सकते हैं परतु तिमिगण में केवल नाक द्वारा ही यह क्रिया हो पाती है। यह गुण (adaptability) जलीय अनुकूलनशीलता है। दूसरी अनुकूलनशीलता उनकी वक्षीय गुहा (thoracic cavity) की फैलाव शक्ति है। इस शक्ति के द्वारा फेफडो को छाती की गुहा के भीतर अधिक से अधिक फूलने और फैलने के लिये स्थान प्राप्त होता है तथा वे अधिक से अधिक भाग मे हवा को अपने भीतर रख सकते हैं। अन्य स्तनियों के प्रतिकूल उनके फेफडे साधारण थैलीनुमा होते हैं जिससे अधिक हवा रख सकने में सहायता मिलती है। इन अनुकूलनशीलताओ के अतिरिक्त तिमिगणों मे कुछ और भी विशेष गुण हैं जो जलीय जीवन के लिये उन्हें पूर्णत उपयुक्त बनाते हैं।

ज्ञानेंद्रियाँ — तिमिगण में घ्राणेंद्रियाँ बहुत ही अल्प विकसित होती है। सभवतः उनमें सूँघने की शक्ति होती ही नही। फिर भी नासापथ (nasal passage) महत्वपूर्ण होता है। तिमिगण की आँखें शरीर की माप के अनुपात मे छोटी होती हैं, फिर भी बडे तिमि की आँखें बैल की आँखो की चौगुनी होती हैं। हवा के मुकाबले पानी में

उसका जन्म १५ फरवरी, १३६८ को हुआ। सन् १३७८ में अपने पिता की मृत्यु के बाद वह ब्रैडेनबर्ग का मारग्रेव बना। गृहयुद्ध के उपरांत १३८७ में सिजिस्मंड हंगरी का राजा बन गया। बादशाह बनने के बाद उसने तुर्कों के विरुद्ध ख्रिष्टीय सेनाओं का नेतृत्व किया लेकिन १३९६ में निकोपोलिस नामक स्थान पर पराजित हुआ। १४१० में रूपर्ट तृतीय के उत्तराधिकारी के रूप में वह जर्मनी का बादशाह चुना गया। १४१९ में वेन्सेस्लास (Wenceslaus) की मृत्यु के बाद वह बोहेमिया का राजा बना। पवित्र रोमन सम्राट् के रूप में उसका राज्याभिषेक ३१ मई, १४३३ को रोम में हुआ। ९ दिसंबर, १४३७ को उसकी मृत्यु हुई। [स० वि०]

सिजिस्मंड तृतीय (१५६६-१६३२) सिजिस्मंड तृतीय जॉन तृतीय का पुत्र और पोलैंड तथा स्वीडन का बादशाह था। २७ दिसंबर, १५८७ को वह राजगद्दी पर बैठा। उसे अपनी जनता की सहानुभूति और समर्थन प्राप्त करने में सफलता मिली। उसकी अंतरराष्ट्रीय नीति बहुत निश्चित और सुलझी हुई थी। उसके शासन के प्रथम २३ वर्ष प्रधान मंत्री जमोय्स्की (Yamoyski) के साथ प्रतिद्वंद्विता में ही व्यतीत हुए। १५९२ में उसकी शादी ऑस्ट्रिया की आर्कडचेस ऐन (Archduchess Anne) से हुई। वह ३० सितंबर, १५९३ को स्टॉकहोम पहुँचा और १९ फरवरी, १५९४ को वहाँ उसका राज्याभिषेक हुआ। १४ जुलाई, १५९४ को वह स्वीडन का शासन चार्ल्स और वहाँ की सीनेट के हाथ में छोड़कर पोलैंड लौट आया। चार वर्ष बाद जुलाई, १५९८ में अपने चाचा से उसे अपने राज्याधिकार की सुरक्षा के लिये लड़ना पड़ा और २५ सितंबर को उसकी पराजय हुई। इसके बाद उसे स्वीडन देखने का कभी अवसर नहीं मिला, फिर भी अपने राज्याधिकार को छोड़ने से उसने इनकार कर दिया। उसकी इस जिद के कारण बहुत दिनों तक पोलैंड और स्वीडन में युद्ध होता रहा। ६६ वर्ष की आयु में अचानक ही उसकी मृत्यु हो गई। [स० वि०]

सिटेसिया (Cetacea, तिमिगण) स्तनपायी समुदाय का एक जलीय गण है, जिसके अंतर्गत ह्वेल (Whales), सूँस (Porpoises) और डॉलफिन (Dolphins) आदि जंतु आते हैं। वैसे ह्वेल एक सामान्य शब्द है जो इस गण के किसी भी सदस्य के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है। सामान्य व्यक्ति इन जंतुओं को मछली समझते हैं। परंतु इनके बाह्याकार को छोड़कर, जो इन्हें जलीय जीवन के कारण प्राप्त है, इनमें कोई भी गुण मछलियों से न केवल नहीं मिलते वरन् पूर्णतया भिन्न होते हैं। ये जंतु स्थल पर रहनेवाले पूर्वजों के वंशज हैं तथा सच्चे स्तनपायी के सभी गुणों से युक्त हैं, उदाहरणार्थ नियततापी (Warm blooded), बालों की उपस्थिति यद्यपि अवशेष रूप में, हृदय तथा रक्तसंचारण स्तनी समान, बच्चों को स्तनपान कराना, जरायुजता (Viviparity) आदि।

तिमिगण के गुणों को ३ वर्गों में विभक्त किया जा सकता है: (१) नवीन गुण (२) परिवर्तित गुण तथा (३) लुप्त गुण।

१. नवीन गुण — ये गुण जो जलीय जीवन के लिये इन्हें नवीन रूप में प्राप्त हुए हैं तथा अन्य किसी स्तनी में नहीं पाए जाते। ऐसे गुणों के उदाहरण हैं : त्वचा के नीचे पाए जानेवाले वसा की मोटी तह, ब्लबर (Blubber), केशिकाओं का केशिकाजाल (Rete mirabile), नासिकापथ का घाटीढापन (Epiglottis) से मिल जाना, शृंगीय (Horny) पंख बेलीन (Baleen, तिमिअस्थि) अधिकांगुलिपर्वता (Hyperphalangy) आदि।

२ परिवर्तित गुण — उपस्थित गुण जो नए वातावरण के अनुरूप होने के हेतु अब पूर्वदशा से कुछ परिवर्तित हो गए हैं, जैसे अग्रपाद (Fore limb) का प्लावी (Swimming) पक्ष या 'डाँड़' में परिवर्तित तथा बाहु के कलाई अस्थियों से ऊपरी भाग का शरीर के भीतर हो जाना, पश्चपाद (Hind limbs) का अत्यंत छोटा या लुप्त हो जाना, मध्यपट (Diaphragm) का अत्यंत तिरछा (Oblique) हो जाना, अंस मेखला (Shoulder girdle) में स्कंधफलक (Scapula) नामक अस्थि का (पंखा समान) विचित्र रूप धारण कर लेना, यकृत (Liver) तथा फेफड़ों (Lungs) का पालिकाहीन (Non lobulated) रहना और आमाशय का कोष्ठकों में विभक्त होना आदि।

३. लुप्त गुण — वे गुण जिनका पहले (पूर्वजों में) उपयोग था परंतु अब अनावश्यक होने के कारण या तो छोटे हो गए या लुप्त हो गए हैं, जैसे बाल जो अब केवल अवशेष रूप में ही रह गए हैं, नाखून तथा बाह्य कान (Pinna), घ्राणेंद्रिय, पृष्ठपाद, पसलियों में गुलिका (Tubercle) का भाग, कशेरुकाओं (Vertebrae) के संधियोजक (Articulatory) भाग आदि।

माप (Size) — तिमिगण लंबाई में २½ फुट (सूँस-Porpoise) से लेकर ११० फु० (ब्लू ह्वेल-Blue whale) तक तथा भार में १५० टन तक हो सकते हैं। इतने बड़े जंतु विकास के इतिहास में इस पृथ्वी पर कभी भी नहीं हुए थे।

प्रकृति (Habit) — सभी तिमिगण मांसाहारी होते हैं। जिनमें हंता ह्वेल (Killer whale) तथा अल्पहंता ह्वेल (Lesser killer whale, Pseudorca) नियततापी जंतुओं जैसे सील (Seal), पेंगुइन (Penguin) तथा अन्य तिमिगणों तक का शिकार करते हैं। दंतरहित तिमि, मछलियों, वल्कमय जलचर (Crustacea) तथा कपालपाद मोलस्क (Cephalopod molluscs) पर निर्भर करते हैं, बेलीन ह्वेल (whales) जो दंतरहित होते हैं, तालू से लटकती एक शृंगीय (Horny) तिमि, छननी अथवा बेलीन (Baleen) द्वारा सूक्ष्म जीवों, जैसे प्लवक (Plankton), टेरोपॉड मोलस्क (Pteropod molluscs) को वल्कमय जलचरों आदि से एकत्रित करते हैं।

कुछ तिमिगण हजारों की संख्या में जलवायु उत्पान (Shoals) पर रहते हैं तथा कुछ अकेले या दुकेले रहना पसंद करते हैं। साधारणतया वे डरपोक होते हैं, परंतु खतरा पड़ने पर वे भयंकर आक्रमणकारी भी बन जाते हैं। १८१९ ई० में एसेक्स (Essex) नामक जहाज एक ह्वेल से टकरा जाने से चूने (Leak) लगा था।

आवास (Habitance) — तिमिगण सभी परिचित समुद्रों में पाए जाते हैं। कुछ सार्वभौमी (Cosmopolitan) हैं तथा कुछ एक निश्चित दायरे के बाहर नहीं जाते। अधिकांश में ये समुद्री होते हैं
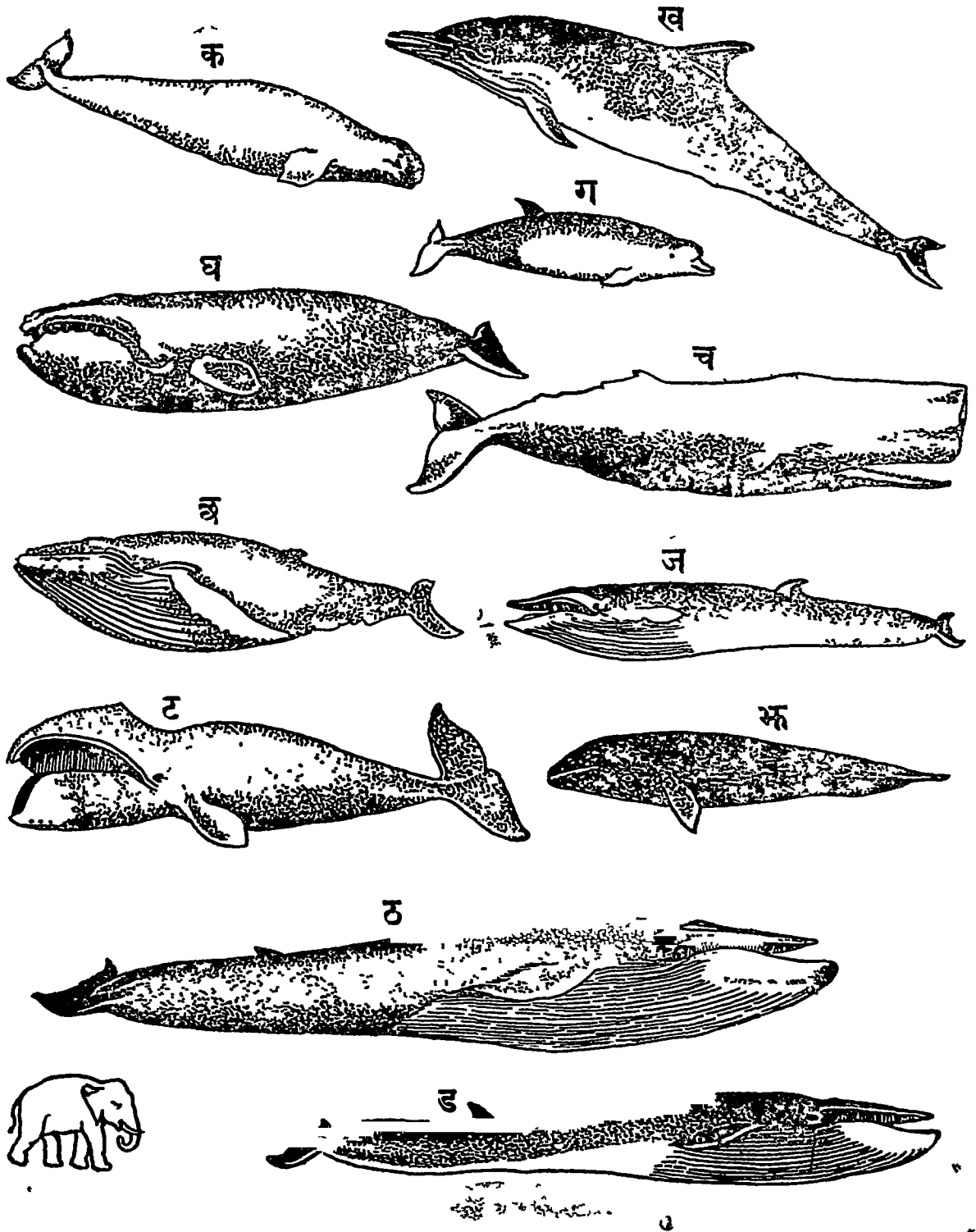
विविध जातियों के ह्वल — क. श्वेत (White) ह्वेल, ख, डॉलफिन, ग. फूली हुई नाकवाली (Bottle-nosed) ह्वेल, घ. ऐटलैंटिकीय राइट (Right) ह्वेल, च. स्पर्म (Sperm) ह्वेल, छ. कुबडी (Humpbacked) ह्वेल, ज से (Sei) ह्वेल, झ प्रशात महासागरीय धूसर (Grey) ह्वेल, ट ग्रीनलैंड ह्वेल, ठ नील (Blue) ह्वेल, तथा ड फिन (Fin) ह्वेल। ह्वेलो के आकार के सही ज्ञान के लिये ११ फुट ऊँचे हाथी का चित्र उसी अनुपात में दिया गया है जिसमें ह्वेलों के चित्र।

देखने के लिये उनकी आँखें अधिक उपयुक्त होती हैं तथा जल दवाव और पानी के थपेडो को सहन करने की उनमें अद्भुत क्षमता होती है। तिमिगण में कर्णपल्लव (pinna) नही होते तथा कर्णछिद्र बहुत ही सकुचित होते हैं। बैलीन शृगास्थियो मे कर्णपथ मोम के एक लवे टुकड़े से वद रहता है पर पानी मे तनिक भी शातिभग होने अथवा ध्वनि होने को वे तुरत सुन लेते हैं। पानी मे उत्पन्न स्वरलहरियाँ अस्थियो द्वारा ही सीधे मस्तिष्क को पहुँचती हैं।

तिमिगण की अस्थियों की विशेषताएँ — तिमिगण का सारा शरीर जलीय जीवन के अनुकूल होता है अतएव उनकी अस्थियो में कुछ परिवर्तन और कुछ नवीन गुण उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

खोपड़ी (Skull) — अन्य समुद्री जंतुओ की भाँति खोपडी में कपाल (cranurin) का भाग छोटा एवं उच्चतर तथा कुछ में गोलाकार होता है। जवड़े लवे होकर तुतु या चोच (rostrum or beak) वनते हैं। कपाल के छोटे होने का एक कारण यह भी है कि तिमिगण के पूर्वजो की खोपड़ी की हड्डियाँ एक दूसरे से सटी न होकर कुछ एक के ऊपर एक (telescoping or overlapping) चढी हुई थी, यही दशा आधुनिक तिमिगण में आशिक रूप में थी फलस्वरुप जब पानी ने पीछे और मेरुदंड ने आगे की ओर अस्थियो पर दवाव डाला, तो उनका एक दूसरे पर कुछ अश तक चढ़ जाना स्वाभाविक हो गया।

कशेरुक दड (Vertebral Column) — कशेरुक दंड की कशेरुकाओ मे संधि (articulation) केवल कशेरुक काय (Centrum) द्वारा ही होती है जब कि अन्य स्तनियो मे यह संधि कुछ अन्य प्रवर्धों (Processes) द्वारा भी होती है। ये प्रवर्ध तिमिगण मे छोटे होने के कारण आपसी संपर्क नही स्थापित कर पाते। तिमिगण की गर्दन अत्यंत छोटी तथा अस्पष्ट हाती है। ऐसा उसकी कशेरुकाओं के बहुत छोटी होने के कारण होता है। फिर भी सभी स्तनियो की भाँति गर्दन के कशेरुको की सख्या ७ ही होती है। कुछ तिमिगण में ये सातो हड्डियाँ अस्थिभूत (ossify) होकर एक हो जाती हैं।

पाद अस्थियाँ (Limb bones) — तिमिगण में पृष्ठपाद पूर्णतया अनुपस्थित होते हैं जिसके कारण उनसे संवधित मेखला (girdle) या तो अनुपस्थित होती है या इतनी छोटी कि मास में दबी, कशेरुकदड से अलग छोटी हड्डी ही रह जाती है। अन्य स्तनियो मे पृष्ठपाद पर पड़नेवाले शरीर के वोझ को सँभालने के लिये मेखला से सवधित कशेरुक अस्थिभूत होकर एक सयुक्त हड्डी त्रिकास्थि (Sacrum) वनाते हैं परतु यह त्रिकास्थि तिमिगण मे मेखला के छोटी होने के कारण नही वनता क्योंकि उनमे शरीर का वोझ पादो (Limbs) पर न पड़कर पानी पर पड़ता है। इस सत्य के कारण अग्रपाद भी तैरने का कार्य गौण रूप से (Secondarily) करने में सफल हो जाते हैं। तैरने के लिये उनका रूप डाँड़ (Paddle) जैसा हो जाता तथा उनकी अस्थियो में कुछ विशेष परिवर्तन हो जाते हैं, जैसे स्कधास्थि में स्कैपुला पखे के समान फैल जाता है, अस्थिसधियाँ अचल हो जाती हैं, कलाई के पीछे की अस्थि शरीर के भीतर हो जाती है, अग्रपाद (fore arms) की ह्यूमरस (Humerus) नामक हड्डी छोटी और पुष्ट हो जाती है, कलाई तथा हाथ की सभी अस्थियाँ चपटी हो जाती हैं जिससे 'डाँड' के चौड़े होने में सहायता मिलती है, कुछ उँगलियो की अगुलास्थि (Phalanges) की सख्या सामान्य से अधिक हो जाती है आदि।

दाँत—तिमिगण के दाँत विभिन्न जातियो में विभिन्न अंश और ढंग से विकसित होते हैं। सूँस में वे दोनो जवडो पर उपस्थित तथा क्रियात्मक (functional) होते हैं। स्पर्म तिमि में केवल निचले जवड़े मे ही पूरे दाँत होते हैं ऊपरी जवड़े में वे अवशेष रूप मे ही रह जाते हैं। नर नखह्वेल (Monodon) के दाँत केवल एक रदन (शूकदत या Tusk) द्वारा ही स्थानापन्न होते हैं तथा शृगास्थि तिमि में क्रियात्मक दाँत कदाचित् अनुपस्थित होते हैं यद्यपि भ्रूण मे थोड़े समय के लिये छोटे रूप में दिखाई पड़ते हैं। दाँतो के स्थान पर उनमें शृगास्थि उपस्थित होती है।

तिमि के वाणिज्य उत्पाद — तिमिगण से निम्नलिखित उपयोगी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं — (१) शृंगास्थि . तिमि के शरीर में बहुमूल्य अंग शृंगस्थि है। ग्रीनलंड के तिमि के शृगास्थि का मूल्य विशेष रूप से अधिक होता है। किसी समय एक टन शृगास्थि लगभग दो हजार पाउंड मे विकता था।

(२) तेल — तिमि के शरीर से बड़ी मात्रा मे तेल प्राप्त होता है। यह मालिश, शक्तिवर्धक औषध (Tonic) और अन्य अनेक कामों में आता है।

(३) मांस — किसी समय सूँस का मास एक विशिष्ट वस्तु समझा जाता था। रोमन कैथोलिक देशो मे केवल तिमि मास ही उपवास के दिन भी वर्जित नहीं था।

(४) दाँत — नखह्वेल तिमि (narwhale) का रदन तथा स्पर्म तिमि के दाँतों से दाँत प्राप्त किया जाता है जिसका गजदत जैसा प्रयोग हो सकता है।

(५) चमड़ा — तिमि के त्वचा से चमड़ा प्राप्त होता है जिससे अनेक सामान वन सकते हैं।

शिकार किए जानेवाले तिमि — निम्नलिखित ६ प्रकार के तिमियो का शिकार किया जाता है :

(१) यूवलीना ग्लेशियालिस (Eubalaena glacialis) — अटलांटिक महासागर मे पाए जानेवाले इस तिमि का उद्योग १२ वी—१३ वी शताब्दी में शिखर पर था।

(२) वलीना मिसटिसिटस (Balaena mysticetus) — ग्रीनलैंड में पाए जानेवाले इस तिमि द्वारा ध्रुवीय मत्स्य व्यवसाय (Arctic fishery) का प्रारभ हुआ।

(३) फाइसेटर कैटोडॉन (Physeter Catodon)— यह स्पर्म तिमि है। इसका उद्योग १६ वी शताब्दी में शुरू हुआ।

(४) यूवलीना ऑस्ट्रेलिस (Eubalaena australis) फाइसेटर के शिकारी इसे भी भारी संख्या में पकड़ते थे।

(५) रैकियानेक्टिज़ ग्लॉकस (Rhachianectes glaucus) — यह प्रशात महासागर के पैसिफिक ग्रे ह्वेल के नाम से प्रसिद्ध है तथा १६ वी शताब्दी में कैलीफोर्निया के समुद्री तट पर वड़ी संख्या मे पकड़ा जाता था।

(३) मिस्टैकोसेटी—यह सबसे विकसित तथा विशाल तिमियो का समूह है। माप में अन्य तिमियों मे केवल स्पर्म तिमि फाइसेटर (Physeter) ही इनका मुकावला कर सकते हैं। इनके विकसित गुण इस प्रकार हैं—दाँतो की अनुपस्थिति तथा उनके स्थान पर शृंगास्थि होना, खोपडी का सममित तथा पसलियो का एकभुजी होना। इस उपगण को दो वंशो में विभक्त कर सकते हैं—

(क) बलीनॉप्टराइडो (Balaenopteridae)—इस वंश के उदाहरण हैं विशाल रोरकुअल (Rorquol) या ब्लू ह्वेल (Balaenoptera) जो ६७ फुट और उससे भी अधिक लंबे होते हैं तथा कभी अकेले और बहुधा ५० तक के झुंड में रहते हैं। हंप बैक या कूबड तिमि (Megaptera) जिसके पृष्ठ मीन पक्ष (fin) के स्थान पर कूबड सा निकला होता है।

इसकी लंबाई ५०—६० फुट तक होती है। ग्रेह्वेल (Rhachianectes) मुख्यत प्रशांत महासागर मे पाया जाता है इनमे पृष्ठ पक्ष अनुपस्थित होता है तथा ये लडाकू प्रकृति के होते हैं।

(ख) बलीनाइडी (Balaenidae) —इन्हें वास्तविक तिमि (Right whales) के नाम से संबोधित करते हैं क्योकि ये अपनी शृंगास्थि की लंबाई तथा तेल की मात्रा और गुण के कारण शिकार के लिये उचित माने जाते थे। इसके अंतर्गत ग्रीनलैंड में पाई जानेवाली बलीना (Balaena) तथा न्यूजीलैंड, दक्षिणी आस्ट्रेलिया तथा अन्यत्र पाई जानेवाली नियोबलीना (Neobelaena) आते हैं।

सं० ग्रं० —टी० जे० पार्कर ऐंड डब्ल्यू० ए० हास्वेल ' ए टेक्स्टबुक ऑव जुऑलोजी, एफ० बेड्डार्ड कैंब्रिज नेचुरल हिस्टरी, खंड १० ममेलिया, आर० एस० लल ऑर्गेनिक इवोल्युशन।

[कृ० प्र० श्री०]

सिट्रिक अम्ल नीबू, संतरे और अनेक खट्टे फलो में सिट्रिक अम्ल और इसके लवण पाए जाते हैं। जांतव पदार्थों में भी बडी अल्प मात्रा मे यह पाया जाता है। नीबू के रस से यह तैयार होता है। नीबू के रस में ६ से ७ प्रतिशत तक सिट्रिक अम्ल रहता है। नीबू के रस को चूने के दूध से उपचारित करने से कैल्सियम सिट्रेट का अवक्षेप प्राप्त होता है। अवक्षेप को हल्के सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ उपचारित करने से सिट्रिक अम्ल उन्मुक्त होता है। विलयन के उद्वाष्पन से अम्ल के क्रिस्टल प्राप्त होते हैं जिनमे जल का एक अणु रहता है। शर्करा के किण्वन से भी सिट्रिक अम्ल प्राप्त होता है। रसायनशाला में सिट्रिक अम्ल का संश्लेषण भी हुआ है।

सिट्रिक अम्ल बडे बडे समचतुर्भुजीय प्रिज्म का क्रिस्टल बनाता है। यह जल और ऐल्कोहॉल में घुल जाता है पर ईथर में बहुत कम घुलता है। क्रिस्टल में क्रिस्टलन जल रहता है। गरम करने से १३०° सें० पर यह अजल हो जाता है और तब १५३° सें० पर पिघलता है। इससे ऊँचे ताप पर यह विघटित होना शुरू करता है। सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल से सावधानी से तपाने पर भी विघटित होता है। यह त्रिक्षारक अम्ल है और तीन श्रेणियो का लवण बनाता हैं। कुछ लवण जल मे विलेय, कुछ अल्पविलेय और कुछ अविलेय होते हैं। सिट्रिक अम्ल का उपयोग रंगबंधक के रूप में, रंगसाजी में, लेमोनेड सदृश पेयो के बनाने मे और खाद्यो में होता है। इसका अणुसूत्र $C_6H_8O_7$ और संरचना सूत्र यह है .

$$HOOC—CH_2C\,(O—H)\;CH_2—COO\,H$$
$$|$$
$$COOH$$
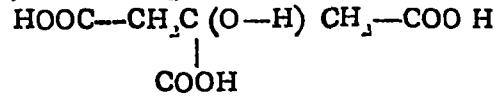
यह वस्तुत. २—हाइड्रोक्सि—प्रोपेन १.२ ३—ट्राइकार्बोक्सिलिक अम्ल है।

[स० व०]

सिडनी १ स्थिति ३३° ५२' द० अं० और १५१° १२' पू० दे०, ऑस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स प्रांत की राजधानी, उसका सबसे प्राचीन और सबसे आधुनिक बडा नगर है तथा उसके दक्षिणी पूर्वी तट पर बसा हुआ संसार के सर्वश्रेष्ठ सुरक्षित बंदरगाहो मे एक है। बंदरगाह २२ वर्ग मील मे फैला हुआ है। इसकी तटरेखा १८० मील लंबी है। बडा से बडा जहाज इस बंदरगाह मे ठहर सकता है। सब देशों से हजारो की संख्या मे जहाज प्रति वर्ष यहाँ आते जाते रहते हैं। गर्मी का औसत ताप २१° सें० और जाडे का औसत ताप १३° सें० रहता है। औसत वर्षा ४७ इंच होती है।

व्यापार का यह बडे महत्व का केंद्र है। इसी बंदरगाह द्वारा देश का आयात निर्यात होता है। यहाँ अनेक उद्योग धंधे भी स्थापित हैं। लोहे और इस्पात के कारखाने हैं जिनमे रेल की पटरियाँ, गर्डर, तार, चादरें आदि अनेक आवश्यक वस्तुएँ बनाई जाती हैं। यहाँ की व्यापार की वस्तुओ मे वस्त्र, ऊन, रसायनक, गेहूँ, धातु के बने सामान, खाद्य सामग्री, दूध, पनीर, काँच और पोर्सलेन तथा चमडे के सामान आदि हैं। १८५० ई० में सिडनी विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। यहाँ अनेक तकनीकी विद्यालय, जनता ग्रंथागार और अनेक कला गैलरियाँ हैं।

२ कैनाडा के नोवा स्कोशिआ (Nova Scotia) का नगर है। कैनाडा के नगरों में इसका दूसरा स्थान है। केप ब्रेटन (Cape Breton) द्वीप के उत्तर तट पर यह स्थित है। अनेक रेल लाइनो का यहाँ अंत होता है। यहाँ इस्पात के सामान बडी मात्रा मे बनते हैं। जहाजो से इसका संबंध अनेक महत्व के ऐटलांटिक बंदरगाहो से है।

[रा० स० ख०]

सिद्धांत सिद्धि का अंत है। यह वह धारणा है जिसे सिद्ध करने के लिये, जो कुछ हमें करना था वह हो चुका है, और अब स्थिर मत अपनाने का समय आ गया है। धर्म, विज्ञान, दर्शन, नीति, राजनीति सभी सिद्धांत की अपेक्षा करते हैं।

धर्म के संबंध में हम समझते हैं कि बुद्धि अब आगे जा नही सकती, शंका का स्थान विश्वास को लेना चाहिए। विज्ञान में समझते हैं कि जो खोज हो चुकी है, वह वर्तमान स्थिति में पर्याप्त है। इसे आगे चलाने की आवश्यकता नही। प्रतिज्ञा की अवस्था को हम पीछे छोड आए हैं, और सिद्ध नियम के आविष्कार की संभावना दिखाई नही देती। दर्शन का काम समस्त अनुभव को गठित करना है, दार्शनिक सिद्धांत समग्र का समाधान है। अनुभव से परे, इसका आधार कोई सत्ता है या नही ? यदि है, तो वह चेतन है या अचेतन, एक है या अनेक ? ऐसे प्रश्न दार्शनिक विवेचन के विषय हैं।

(६) सिबैल्डस मसक्यूलस (Sibbaldus musculus) — ग्रेट ब्लू ह्वेल।

(७) बलीनॉप्टेरा फाइसेटस (Balaenoptera physatus) — फिन ह्वेल,

(८) बलीनॉप्टेरा बोरियैलिस (Balaenoptera borealis)

(९) मिगैपटेरा नोड्यूसा (Megaptera nodusa)

किसी समय अंतिम चार जातियो द्वारा ही आधुनिक तिमि उद्योग का प्रारंभ हुआ था।

जाति इतिहास (Phylogeny) — तिमिगण का पूर्वजी इतिहास अनिश्चित सा है। अतएव यह बताना कठिन है कि किन स्तनी समुदाय (mammalian group) से उनका प्रादुर्भाव हुआ। अलब्रेक (Albrecht) के अनुसार एक आद्य (Primitive) स्तनी समूह, जिसे वे 'प्रोममेलिया' (Promammalia) कहते हैं, के गुण निम्नलिखित हैं :— (१) उनके निचले जबड़े की दोनो भुजाओ (rami) के बीच की अपूर्ण संधि, (२) लंबे साधारण थैलीनुमा फेफड़े, (३) शुक्रग्रंथियो (testes) का शरीर के भीतर होना, (४) कुछ (जैसे वेलीनॉप्टेरा Balaenoptera) मे उपरिकोणीय (Sapra angular) अस्थि की भिन्न (Separate) उपस्थिति आदि फिर भी केवल इन्ही गुणो द्वारा ही तिमिगण को आधुनिक स्तनी यूथीरिया (Eutheria) से भिन्न नही किया जा सकता। क्योकि इनकी संख्या कम है और वे बहुत अधिक महत्व के नही हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो तिमिगण को 'यूथीरिया' के 'अंगुलेटा' (ungulata) अर्थात् खुरदार जतुओ से और कुछ येडेंटेटा (Edentata) अर्थात् चीटेखोर जतुओ से सबंधित करते हैं। येडेंटेटा तथा तिमिगण कुछ विशेष गुणो में समान हैं जैसे (१) दोनो में कठोर वहिष्ककाल (Exoskeleton) की उपस्थिति, यद्यपि तिमिगण में यह केवल सूँस मे और वह भी अवशेष रूप में ही पाया जाता है। (२) कुछ तिमिगण (वेलीनॉप्टेरा) की पसली (rib) और उरोस्थि (Sternum) की दोहरी संधि, (३) दोनो में गर्दन का कुछ कशेरुको में सयोजन (union), (४) दोनो मे खोपडी की पक्षाभ (Pterygoid) नामक अस्थि का तालू बनाने में भाग लेना (५) सूँस मे कई येडेंटेटा की भाँति महाशिराना (Vena cava) के यकृत के समीप पहुँचने पर बजाय बडे होने के छोटा हो जाना आदि।

वर्गीकरण — तिमिगण तीन उपगणो मे विभक्त किए जा सकते हैं — (१) आर्कियोसेटी (Archaeoceti), (२) ओडोंटोसेटी (Odontoceti) तथा (३) मिस्टैकोसेटी (Mystacoceti)।

(१) आर्कियोसेटी—ये अब केवल फॉसिल रूप मे ही पाए जाते हैं। इसके अंतर्गत केवल एक जाति ज्यूग्लोडॉन (Zeuglodon) आती है जो अत्यत आद्य गुणोवाले जतु थे। उनमे दाँत उपस्थित थे, खोपडी असममित थी, अग्र पसलियाँ द्विभुजी थी, ग्रैविक कशेरुक पूर्ण विकसित तथा असयुक्त और वाहरी नासारध्र कपाटरहित थे।

(२) ओडोंटोसेटी — ये दंतयुक्त वर्तमान तिमि है जिनमें बाहरी नासारंध्र एक होता है। इनमें भी कुछ आद्य गुण उपस्थित हैं जो निम्न हैं — मुक्त और बडे ग्रैविक कशेरुको को अग्र पसलियो का द्विभुजी होना, अपेक्षाकृत अपरिवर्तित अग्रपाद जिनकी उँगलियो या अंगुलास्थियो की संख्या में वृद्धि न होना आदि। यह उपगण ३ वर्गों में विभक्त किया जाता है.

(क) फाइसेटराइडी (Physeteridae)—इसके अंतर्गत उष्ण कटिबधीय स्पर्मतिमि (Physeter) आते हैं जो लबाई में ८२ फु० तक हो सकते हैं। इनका विशाल सिर शरीर के लबाई का लगभग एक तिहाई होता है परंतु खोपडी अपेक्षाकृत छोटी होने के कारण उसके (खोपडी के) और सिर की दीवाल के बीच एक स्थान उत्पन्न हो जाता है। यह स्थान 'स्पर्मासेटी' (Spermaceti) नामक एक द्रववसा (Liquid fat) से भरा होता है। इस वसा का प्रथम उल्लेख सलर्नो (Salerno) ने सन् ११०० में अपने 'फार्मेकोपिया' (Pharmacopia) मे किया था जिसे बाद मे अलवर्टस मैगनस (Albertus Magnus) तथा अन्य वैज्ञानिको ने तिमि के शुक्रकीट अथवा 'स्पर्म' (Sperm) से परिभ्रमित किया। इसीलिये इन तिमिगणों का स्पर्म ह्वेल नाम पडा। बाद मे हटर (Hunter) और कैंपर (Camper) नामक व्यक्तियो ने बताया कि स्पर्मासेटी तेल की तरह का ही एक द्रव वसा पदार्थ है जो इन तिमिगणो के सिर में पाया जाता है। स्पर्म तिमि मे पाई जानेवाली दूसरी बहुमूल्य वस्तु ऐंबरग्रिस (Ambergris) है जो उनके पाचन नलिका (alimentary canal) से प्राप्त होती है। यह पदार्थ ग्रीज़ (Grease) की भाँति चिकना और मुलायम होता है परंतु बाहर आने पर कुछ समय बाद सख्त हो जाता है। ऐंबरग्रिस का मुख्य उपयोग इत्रकशी (Perfumery) में किया जाता है। प्राचीन काल मे इसका प्रयोग औषधियो में भी किया जाता था। पिग्मी स्पर्म तिमि (Cogia) उपर्युक्त उपगण का दूसरा उदाहरण है।

(ख) ज़िफ़िआइडी (Ziphiidae) — इसके अंतर्गत आनेवाले तिमियो के तुड आगे बढे हुए होते हैं अतएव उन्हे चोचवाले (Beaked) तिमि भी कहते हैं। इनकी लबाई ३० फु० से अधिक नही होती तथा सामान्य रूप से ये नही मिलते। ये दक्षिणी समुद्रो मे पाए जाते हैं। उदाहरण—जीफिअस (Ziphius) हाइपरूडॉन (Hyperoodon), मीज़ोप्लोडॉन (mesoplodon) आदि।

(ग) डेलफिनाइडी (Delphinidae) — ये बहुधरूपक तिमि छोटे तथा औसत लबाई के होते हैं। दाँत दोनो ही जबड़ो पर अधिक सख्या में होते हैं। इस उपगण के मुख्य उदाहरण सूँस डालफिन तथा नार ह्वेल हैं। सूँस हिंद महासागर, बगाल की खाडी, इरावदी नदी तथा ससार के अन्य भागो मे पाए जाते है। डॉलफिन भी अन्य देशो के अतिरिक्त भारत की गंगा, सिंध, ब्रह्मपुत्र आदि नदियो में पाए जाते हैं। ये ७-८ फुट लंबे तथा जल के सभी जतुओ में सबसे अधिक समझदार जंतु होते हैं। सिखाने पर कुछ भी सरलता से सीख लेते हैं और बहुधा प्राणि उद्यानो (Zoos) में तरह तरह के खेल दिखाकर दर्शकों को प्रसन्न करते हैं। नार ह्वेल तिमि १५ फुट तक लबे होते हैं। इनके सभी दाँत छोटे होते हैं परतु नर में एक दाँत लबा होकर रदन (Tusk) बनाता है। रदन के अनुमानित प्रयोग निम्न हैं — अपनी मादा को प्राप्त करने के लिये अन्य नरो पर इसके द्वारा आक्रमण करना, बर्फ तोडकर भोजन प्राप्त करना, शिकार का भेदन करना आदि।

पर स्थित है। अधिकांश आवासीय मकान इन्ही पहाड़ियो पर स्थित हैं। नगर में २० प्राथमिक तथा आठ उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हैं। सिनसिनैटी विश्वविद्यालय संयुक्त राज्य अमरीका का नगर द्वारा संचालित प्रथम विश्वविद्यालय है। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा के लिये अनेक संस्थाएँ हैं।

नगर में एक सार्वजनिक पुस्तकालय तथा अनेक संग्रहालय हैं जिनमें से टैफ्ट संग्रहालय (Taft museum) उल्लेखनीय है। यहाँ की दर्शनीय इमारतें एवं स्थल कैरयू (Carew) टावर, सिनसिनैटी विश्वविद्यालय की वेधशाला तथा फाउंटेन स्क्वायर हैं। नगर मे ३०० से भी अधिक औद्योगिक कारखाने हैं जिनमें साबुन, मशीनों के पुर्जे, धुलाई मशीनें, छपाई के लिये स्याही, जूते, रेडियो तथा काँच के विभिन्न सामान बनते हैं। [न० कु० रा०]

सिनिक एक यूनानी दर्शन संप्रदाय, जो समाज के प्रति उपेक्षा तथा व्यक्तिगत जीवन के प्रति निषेधात्मक दृष्टि के लिये प्रसिद्ध है। इस संप्रदाय का संस्थापक एंतिस्थिनीज (४४५–३६५ ई० पू०) था। पहले वह सोफिस्त था। बाद में सुकरात के स्वतंत्र विचारो, परहितचिंतन तथा आत्मत्याग से प्रभावित होकर, वह उसे अपना गुरु मानने लगा। यूनान के जनतंत्र ने सुकरात को जब प्राणदंड (३९९ ई० पू०) दे दिया, तो एंतिस्थिनीज को व्यक्ति पर समाज की प्रभुता के औचित्य पर, फिर से विचार करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। समाज को वह इतना अधिकार देने के लिये तैयार न था कि सुकरात के समान आत्मत्यागी व्यक्ति को प्राणदंड दे सके।

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये, उसने 'प्रकृति की ओर चलो' का नारा लगाया। उस प्राकृतिक जीवन की ओर संकेत किया, जिसमें प्रत्येक मनुष्य अपने आप का स्वामी था। कोई किसी का दास न था। उस जीवन को अपनाने के लिये, धन, दौलत, समान आदि से विरक्त होने की आवश्यकता थी। एंतिस्थिनीज ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। किंतु, इस प्रकार के जीवन का समर्थन करने में वह शिक्षा, संस्कार, अभिवृद्धि आदि के अर्थों को लुप्त नहीं होने देना चाहता था। इसलिये, उसने मानवीय जीवन की अभिवृद्धि की नैतिक व्याख्या की।

वह सुकरात से प्रभावित था। सुकरात ने ज्ञान और नैतिक आचरण में कारण-कार्य-संबंध स्थापित किया था। इस सुकरातीय आदर्श को दुहराते हुए, एंतिस्थिनीज ने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि शुभों के पुनर्मूल्यांकन में बुद्धि की अभिव्यक्ति होती है, आँख मूँदकर बँधी हुई लकीरो पर चलते रहने में नही। बुद्धिमान व्यक्ति समाज के अधिकांश व्यक्तियो द्वारा स्वीकृत अयुक्त मूल्यांकन को समय समय पर ठीक करता रहता है।

अपने विचारो के समर्थन के निमित्त एंतिस्थिनीज ने सैद्धांतिक पीठिका भी तैयार की थी। अफलातून ने 'सामान्य' की निरपेक्ष सत्ता का समर्थन किया था और व्यक्ति के सत्य को 'सामान्य' का भाग बताया था। एंतिस्थिनीज ने अफलातून की इस तत्वविद्या का विरोध किया। उसने यह दिखाया कि 'सामान्य' की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं। अनेक व्यक्तियो मे व्याप्त होने से किसी तत्व को 'सामान्य' माना जाता है। व्यक्तियो से पृथक् उसका कोई अस्तित्व नहीं। इस प्रकार, अफलातून के सामान्यतावाद (यूनीवर्सलिज्म) के विरुद्ध एंतिस्थिनीज ने 'नामवाद' (नामिनलिज्म) की स्थापना की। यहाँ तक कि उसने 'गुणकथन पर निर्भर परिभाषा' का खंडन किया। वह प्रत्येक वस्तु को विशिष्ट वस्तु अथवा व्यक्ति मानता था। व्यक्ति ही निर्णयवाक्यो के उद्देश्य बनते हैं। परिभाषा भी एक प्रकार का निर्णयवाक्य है। किंतु, सामान्य गुण किसी विशिष्ट वस्तु का विधेय नही हो सकता। इस सैद्धांतिक पीठिका पर, एंतिस्थिनीज ने एक व्यक्तिवादी दर्शन का प्रारंभ किया जिसके अनुसार बुद्धिमान (= नैतिक) व्यक्ति समाज का सदस्य नही, आलोचक हो सकता है।

एंतिस्थिनीज के विचारों को आगे बढाने का श्रेय उसके शिष्य दिओजिनिस को दिया जाता है। वह कहता था, 'मैं समाज की कुरीतियो पर भौंकनेवाला कुत्ता हूँ, मेरा काम प्रचलित मूल्यों के उचित मान निर्धारित करना है।' इन्ही दोनों के साथ सिनिक संप्रदाय का अंत नही हुआ। उनकी परंपरा यूनानी दर्शन के अंत तक चलती रही।

सिनिक समाजविरोधी न थे। उनके विचार से समाज को उचित मार्ग पर चलाने के लिये कुछ सचेत तथा निष्पक्ष समीक्षकों की आवश्यकता थी, जो स्वीकृत मूल्यों में समय समय पर संशोधन करते रहें। किंतु, ऐसे समीक्षकों के लिये, वे बौद्धिक विकास एवं नैतिक आचरण के साथ, निस्पृहता तथा समाज से अलगाव की आवश्यकता समझते थे। अपना कार्य उचित रूप से कर सकने के लिये, सिनिक दार्शनिको ने विशेष प्रकार का रहन सहन अपनाया था।

वे अच्छे घरों की, स्वादिष्ट भोजन और सुखद वस्त्रों की आवश्यकता नहीं समझते थे। कहा जाता है, दिओजिनिस ने किसी पुरानी नाँद में अपना जीवन व्यतीत किया। वही उसका घर था। सुकरात के लिये कहा जाता है कि उसने कभी जूते नही पहने, सर्दी, गर्मी आदि के अनुसार अपने वस्त्रों मे परिवर्तन नही किया। किंतु वह एथेंस नगर मे घूम घूमकर, गलत काम करनेवालों की आलोचना किया करता था। इस काम में व्यस्त रहने से वह कभी अपने पैत्रिक व्यवसाय में रुचि न ले सका। सिनिकों ने सुकरात के जीवन से शिक्षा प्राप्त की थी। वे समझते थे कि अपनी समस्याओं का निराकरण करके ही समाज की चौकसी की जा सकती है।

सिनिको का उद्देश्य समाज का हित करना था, किंतु, जिस रूप मे वे अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते थे, उससे वे घोर व्यक्तिवादी तथा समाज के निंदक प्रतीत होते थे।

सिनिक आदर्शों का संप्रदाय के रूप में समुचित निर्वाह अधिक समय तक संभव न था। अंतिम सिनिक परिस्थितियो के अनुसार जीवनयापन में सिनिक आदर्शों की पूर्ति मानने लगे थे। उत्तराधिकारियो के लिये प्रारंभिक उपदेष्टाओं की भाँति विरक्त एवं आत्मत्यागी होना संभव न था। इसीलिये, कालांतर में सिनिक का सामान्य अर्थ समाज की उपेक्षा करनेवाला व्यक्ति रह गया। किंतु मानवीय चिंतन से सिनिक तत्व का सर्वथा अभाव न हो सका। समय समय पर, ऐसे समाज के हितचिंतक होते रहे हैं, जो समाज की भ्रांतियो से क्षुब्ध होकर, एक अलगाव का भाव व्यक्त करते रहे हैं और ऐसी टीका टिप्पणियाँ करते रहे हैं, जिनसे उचित मार्ग का संकेत प्राप्त हो। स्वर्गीय बर्नार्ड शा को बीसवी सदी का बहुत बड़ा

विज्ञान और दर्शन में ज्ञान प्रधान है, इनका प्रयोजन सत्ता के स्वरूप का जानना है। नीति और राजनीति में कर्म प्रधान है। इनका लक्ष्य शुभ या भद्र का उत्पन्न करना है। इन दोनो में सिद्धात ऐसी मान्यता है जिसे व्यवहार का आधार बनाना चाहिए।

धर्म के संबंध में तीन प्रमुख मान्यताएँ हैं —

ईश्वर का अस्तित्व, स्वाधीनता, अमरत्व। काट के अनुसार बुद्धि का काम प्रकटनो की दुनियाँ में सीमित है, यह इन मान्यताओ को सिद्ध नहीं कर सकती, न ही इनका खंडन कर सकती है। कृत्य-बुद्धि इनकी माँग करती है, इन्हे नीति मे निहित समझकर स्वीकार करना चाहिए।

विज्ञान का काम 'क्या', 'कैसे', 'क्यों' — इन तीन प्रश्नो का उत्तर देना है। तीसरे प्रश्न का उत्तर तथ्यो का अनुसधान है और यह बदलता रहता है। दर्शन अनुभव का समाधान है। अनुभव का स्रोत क्या है? अनुभववाद के अनुसार सारा ज्ञान बाहर से प्राप्त होता है, बुद्धिवाद के अनुसार यह अंदर से निकलता है, आलोचन-वाद के अनुसार ज्ञानसामग्री प्राप्त होती है, इसकी आकृति मन की देन है।

नीति में प्रमुख प्रश्न निःश्रेयस का स्वरूप है। नैतिक विवाद बहुत कुछ भोग के संबंध में है। भोगवादी सुख की अनुभूति को जीवन का लक्ष्य समझते हैं; दूसरी ओर कठ उपनिषद् के अनुसार श्रेय और प्रेय दो सर्वथा भिन्न वस्तुएँ हैं।

राजनीति राष्ट्र की सामूहिक नीति है। नीति और राजनीति दोनो का लक्ष्य मानव का कल्याण है, नीति बताती है कि इसके लिये सामूहिक यत्न को क्या रूप धारण करना चाहिए। एक विचार के अनुसार मानव जाति का इतिहास स्वाधीनता सग्राम की कथा है, और राष्ट्र का लक्ष्य यही होना चाहिए कि व्यक्ति को जितनी स्वाधीनता दी जा सके, दी जाय। यह प्रजातत्र का मत है। इसके विपरीत एक दूसरे विचार के अनुसार सामाजिक जीवन की सबसे बडी खराबी व्यक्तियो मे स्थिति का अतर है, इस भेद को समाप्त करना राष्ट्र का लक्ष्य है। कठिनाई यह है कि स्वाधीनता और बराबरी दोनो एक साथ नही चलती। ससार का वर्तमान खिचाव इन दोनो का सग्राम ही है। [दी० च०]

सिद्धांत और सैद्धांतिक धर्ममीमांसा सिद्धात विश्वास पर आधारित धारणा है। किसी धार्मिक संप्रदाय के द्वारा स्वीकृत विश्वासो का क्रमबद्ध सग्रह उस संप्रदाय की धर्ममीमासा है। धर्म-मीमासा में विज्ञान और दर्शन के दृष्टिकोण की सार्वभौमता नही होती, इसकी पद्धति भी उनकी पद्धति से भिन्न होती है। विज्ञान प्रत्यक्ष पर आधारित है, दर्शन मे बुद्धि की प्रमुखता है, और धर्म-मीमासा मे, आप्त वचन की प्रधानता स्वीकृत होती है। जब तक विश्वास का अधिकार प्रश्नरहित था, धर्ममीमासको को इस बात की चिंता न थी कि उनके मतव्य विज्ञान के आविष्कारो और दर्शन के निष्कर्षों के अनुकूल हैं या नहीं। परतु अब स्थिति बदल गई है, और धर्ममीमासा को विज्ञान तथा दर्शन के मेल मे रहना होता है।

धर्ममीमासा किसी धार्मिक संप्रदाय के स्वीकृत सिद्धातों का संग्रह है। इस प्रकार की सामग्री का स्रोत कहाँ है? इन सिद्धातों का सर्वोपरि स्रोत तो ऐसी पुस्तक है, जिसे उस संप्रदाय मे ईश्वरीय ज्ञान समझा जाता है। इससे उतरकर उन विशेष पुरुषो का स्थान है जिन्हे ईश्वर की ओर से धर्म के सबध में निर्भ्रांत ज्ञान प्राप्त हुआ है। रोमन कैथोलिक चर्च मे पोप को ऐसा पद प्राप्त है। विवाद के विषयो पर आचार्यों की परिषदो के निश्चय भी प्रामाणिक सिद्धात समझे जाते हैं।

धर्ममीमासा के विचारविषयो मे ईश्वर की सत्ता और स्वरूप प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त जगत् और जीवात्मा के स्वरूप पर भी विचार होता है। ईश्वर के सबंध में प्रमुख प्रश्न यह है कि वह जगत् मे अतरात्मा के रूप मे विद्यमान है, या इससे परे, ऊपर भी है। जगत् के विषय मे पूछा जाता है कि यह ईश्वर का उत्पादन है, उसका उद्गार है, या निर्माण मात्र है। उत्पादनवाद, उद्गारवाद और निर्माणवाद की जाँच की जाती है। जीवात्मा के संबध में, स्वाधीनता और मोक्षसाधन चिरकाल से विवाद के विषय बने रहे हैं। सत आगस्तिन ने पूर्वनिर्धारणवाद का समर्थन किया और कहा कि कोई मनुष्य अपने कर्मो मे दोषमुक्त नही हो सकता, दोषमुक्ति ईश्वरीय करुणा पर निर्भर है। इसके विपरीत भारत की विचारधारा मे जीवात्मा स्वतंत्र है, और मनुष्य का भाग्य उसके कर्मों से निर्णीत होता है। [दी० चं०]

सिनकोना झाडी अथवा ऊँचे वृक्ष के रूप मे उपजता है। यह रुबियेसी (Rubiaceae) कुल की वनस्पति है। इसकी कुल ३८ जातियाँ हैं। मुख्यत दक्षिणी अमरीका में ऐंडीज़पर्वत, पेरू तथा वोलीविया के ५,००० फुट अथवा इससे भी ऊँचे स्थानो में इनके जंगल पाए जाते हैं। पेरू के वाइसराय काउंट सिकन की पत्नी द्वारा यह पौधा सन् १६३९ ई० में प्रथम बार यूरोप लाया गया और उन्ही के नाम पर इसका नाम पडा। सिनकोना भारत में पहले पहल १८६० ई० में सर क्लीमेंट मारखन द्वारा बाहर से लाकर नीलगिरि पर्वत पर लगाया गया। सन् १८६४ में इसे उत्तरी बगाल के पहाडो पर बोया गया। आजकल इसकी तीन जातियाँ सिनकोना आफीसिनेलिज् (C. Officinalis), सिनकोना कैलसाया (C. Calsaya) और सिनकोना सक्सीरूब्रा (C Succirubra) पर्याप्त मात्रा में उपजाई जाती हैं। इनकी छाल से कुनैन नामक ओषधि प्राप्त की जाती है जो मलेरिया ज्वर की अचूक दवा है। [रा० श्या० अ०]

सिनसिनैटी (Cincinnati) स्थिति . ३९° ८' उ० अ० तथा ८४° ३०' प० दे०। यह सयुक्त राज्य अमरीका के ओहायो (Ohio) राज्य का एक प्रमुख व्यापारिक नगर है जो ओहायो नदी के उत्तरी किनारे पर, कोलबस नगर से ११६ मील दक्षिण पश्चिम में स्थित है। इसका क्षेत्रफल ७३ वर्ग मील है। यहाँ की जनसख्या ९,९३,५३८ (१९६०) है।

सिनसिनैटी नगर ओहायो नदी से क्रमश ६५ फुट तथा १५० फुट ऊँचे दो पठारो और ४०० से ५०० फुट तक ऊँची पहाडियों

समय बहुत सी अंग्रेजी पल्टनें तथा पुराने योग्य अफसर क्रीमिया, फारस या चीन भेज दिए गए। नए अफसरों में सहानुभूति का अभाव था। ऐसे उपयुक्त अवसर पर अनेक असंतुष्ट असैनिक नेताओं तथा उनके अनुयाइयों ने अपने ब्रिटिश विरोधी गुप्त प्रचार द्वारा सिपाहियों को उनकी सैनिक शक्ति का आभास कराकर उनके असतोष को उभाड दिया। उनके मस्तिष्क में यह बात जम गई कि कपनी का साम्राज्य हमारे सहयोग से ही बना और टिका है। फिर भी सेना में हमारा स्थान निम्न है। गाय और सूअर की चर्बी लगे कारतूसों को दाँत से काटकर राइफल में लगाने तथा हड्डी मिले आटे के प्रयोग से हमारा धर्म नष्ट हो जायगा। कपनी का राज्य केवल सौ वर्ष चलेगा। भारत में ब्रिटिश सेना कम है। कपनी की अधीनता दूर करने का अब उत्तम अवसर है। इस प्रचार ने बगाल की देशी सेना के असतोष में चिनगारी लगा दी। फलत १८५७ का विद्रोह बगाल की देशी सेना द्वारा प्रारभ किया गया। महाराष्ट्र में उच्च वर्ग के मराठा सिपाहियों में इसी प्रकार का प्रचार हुआ। मद्रास की सेना में भाषा की कठिनाइयों के कारण कोई प्रचार न हो सका।

विद्रोह के कारण केवल सेना संबधी ही न थे, और न यह केवल सैनिक विद्रोह ही था। इसके प्रारभ होने के पूर्व अंग्रेजो की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक नीतियो से सारे देश में असतोष फैल चुका था। १७५७ से अग्रेजो की साम्राज्य-विस्तार-नीति, डलहौजी के साम्राज्य-सयोजन-कार्य, अनुचित तरीकों से देशी राज्यो की स्वतत्रता का अपहरण, अधिकारच्युत राजकुलों, उनके अनुचरों एव आश्रितो में बढ़ती हुई बेकारी, सहानुभूतिशून्य शासनव्यवस्था, असंतोषजनक न्यायव्यवस्था, उच्च पद भारतीयों को न मिलने तथा जमीदारियो, ताल्लुकेदारियो, नाममात्र के राजाओं की पेंशनो तथा पदवियो के छिनने से देश में राजनीतिक असंतोष था। उद्योग धधो के ह्रास, दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था, कृषि की अवनति, बड़े व्यापार पर अग्रेजो के एकाधिकार, बढती हुई गरीबी और बेकारी तथा अकालो के कारण देश की आर्थिक स्थिति दुसह बन गई थी। सभी सभव साधनो द्वारा ईसाई धर्मप्रचार तथा भारतीय धर्मों की आलोचना, भारतीय शिक्षण सस्थाओ के पतन तथा नई संस्थाओ द्वारा पाश्चात्य शिक्षा एव सस्कृति के प्रसार, रिलिजस डिसेबिलिटीज ऐक्ट तथा हिंदू विधवा पुनर्विवाह, कानून द्वारा सामाजिक मामलो मे सरकारी हस्तक्षेप, जेलो मे सार्वजनिक रसोई व्यवस्था, अग्रेजी स्कूलों, अस्पतालों, जेलो तथा रेलगाडियो में छुआछूत का विचार न होने से तथा दत्तक पुत्रों के अधिकारो की अवहेलना से सरकार के उद्देश्यो के प्रति सदेह उत्पन्न हो गया। वर्षों से चले आए इस असतोष का आभास अग्रेजो के विरुद्ध हुए बुदेला, मोपला, संताल आदि अनेक विद्रोहो से होता है। पर इनका क्षेत्र सीमित था। १८५७ का विद्रोह व्यापक था।

विद्रोह का नेतृत्व 'असंतुष्ट असैनिक सामतो ने किया। उन्होने अपनी खोई हुई सत्ता को वापस लेने के लिये असंतुष्ट सिपाहियो का प्रयोग किया। इसलिये यह विद्रोह अंग्रेजो के विरुद्ध सशस्त्र आदोलन था जिसके प्रति प्रारभ में सभी असंतुष्ट लोग सहानुभूति रखते थे पर बाद में लुटेरो द्वारा शांतिभग होने के कारण उन्हें अश्रद्धा पैदा हो गई। अवध में यह विद्रोह राष्ट्रीय प्रतीत हुआ।

विद्रोह के कुछ समय पूर्व अनेक लोगो की गतिविधियाँ सदेहजनक दिखाई पड़ी। अजीमुल्ला खाँ, मौलवी अहमदउल्ला तथा नाना साहब ने कुछ महत्वपूर्ण स्थानो का भ्रमण किया तथा चपातियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजी गईं। तत्कालीन परिस्थितियों से अनुमान होता है कि विद्रोह के पूर्व अग्रेजो के विरुद्ध गुप्त रीति से षड्यत्र चल रहे थे।

सैनिक विद्रोह के प्रथम लक्षण बरहामपुर और बैरकपुर की छावनियो मे फरवरी-मार्च, १८५७ मे दिखाई पड़े। वहाँ सिपाहियों ने नए कारतूसों का प्रयोग करने से इनकार कर दिया। बैरकपुर में मगल पाडे ने अपने अग्रेज अफसर की हत्या कर दी। इसके लिये उसे फाँसी दी गई। विद्रोह का वास्तविक प्रारभ १० मई को मेरठ की छावनी मे हुआ। वहाँ विद्रोही सिपाहियो ने अपने अफसरों का वध कर डाला, जेल से बदियों को मुक्त किया और दूसरे दिन दिल्ली मे अग्रेजों को मारकर नाममात्र के शासक बहादुरशाह को वास्तविक सम्राट् घोषित किया। सम्राट् ने हिंदुओ का सहयोग पाने के लिये गाय की कुर्बानी बद करा दी और देश को स्वतत्र बनाने के उद्देश्य से राजपूतो को आमत्रित किया तथा उनके परामर्श से शासन करने का वचन दिया। पर वे तटस्थ रहे। यहीं से विद्रोह का असली रूप दिखाई पडता है। जून के अत तक विद्रोह उन सभी छावनियो में फैल गया जहाँ ब्रिटिश सेना न थी।

विद्रोह का मुख्य क्षेत्र नर्मदा नदी से नेपाल की तराई तक तथा पश्चिमी बिहार से दिल्ली तक था। इस क्षेत्र मे बड़े छोटे सैकडों केंद्र थे जिनमें स्थानीय नेता थे, जैसे दिल्ली मे सम्राट् बहादुरशाह, रुहेलखड में बरेली के खान बहादुर खाँ, कानपुर मे नाना साहब और उनके सहयोगी, झाँसी में रानी लक्ष्मी, लखनऊ में बेगम हजरत महल और उसका पुत्र बिरजिसकद्र, फैजाबाद मे मौलवी अहमदउल्ला, फर्रुखाबाद मे नवाब तफज्जुल हुसेन, मैनपुरी के राजा तेजसिंह, रामनगर के राजा गुरुबख्श, अवध के अनेक भागो के ताल्लुकेदार, बिहार तथा पूर्वी उत्तर-पश्चिम प्रात मे कुँवरसिंह, इलाहाबाद में लियाकतअली, मदसोर मे शाहजादा फिरोजशाह, कालपी और ग्वालियर में ताँत्या तोपे और रावसाहब, सागर और नर्मदा के प्रदेश मे शाहगढ के बखतवली, बानपुर के मर्दनसिंह, गोड राजा शकरशाह, कोटा मे मेहराब खाँ, इदौर मे सम्रादत खाँ, राहतगढ मे अमापानी के नवाब और अन्य स्थानो मे सैकडो अन्य हिंदू तथा मुसलमान नेता। सैकड़ो स्थानो से अल्प काल के लिये ब्रिटिश सत्ता हटा दी गई। नाना साहब कानपुर मे पेशवा घोषित किए गए। बिरजिसकद्र अवध का नवाब घोषित हुआ और फीरोजशाह मदसोर में बादशाह बन बैठा। सिपाहियो का विद्रोह और भी अधिक व्यापक था। यह ढाका से पेशावर तक और बरेली से सतारा तक फैला था।

विद्रोह को फैलने से रोकने के लिये सैनिक कानून लागू किया गया तथा प्रेस पर प्रतिबध लगा दिए गए। खजानो और शस्त्रागारो की रक्षा का भार देशी सिपाहियो से ले लिया गया और उनकी गतिविधियो पर नजर रखी गई। फिर भी केवल मद्रास को छोड़कर सभी प्रेसिडेंसियो में सैनिक विद्रोह हुए। पजाब मे अनेक स्थानो पर देशी पल्टनो ने विद्रोही भावना दिखाई, पर सिक्खो और अफगानो के सहयोग से अंग्रेजो ने उन्हे निःशस्त्र कर दिया। बबई प्रेसिडेंसी में

सिनिक कहा जा सकता है। उनके साहित्य में व्याप्त सामाजिक आलोचना, प्राय. उपेक्षा की सतह तक पहुँच जाती है किंतु, उस उपेक्षावृत्ति में अंतर्हित सामाजिक हितकामना बिना खोजे हुए हम 'सिनिक' के अर्थ तक नही पहुँच सकते।

स० ग्रं० — एडवर्ड केग्रर्ड : द एवोल्यूशन ऑव थियॉलॉजी इन द ग्रीक फिलॉसॉफर्स, भाग २, भाषण १७; एडुअर्ड ज़ेलर : आउटलाइन हिस्ट्री ऑव ग्रीक फिलॉसॉफी। [शि० श०]

सिनिक पंथ यूनान में एंटिस्थिनीज द्वारा प्रस्थापित एक दार्शनिक पथ। एंटिस्थिनीज् का जन्म ई० पू० ४४४ मे हुआ और मृत्यु ई० पू० ३६८ में। वह एथेंस का निवासी था तथा सुकरात के प्रमुख साथियो में उसकी गणना की जाती थी। 'सिनिक' पथियो ने आगे चलकर यह दावा किया कि सुकरात के जीवनदर्शन का यथार्थ प्रतिबिंब एंटिस्थिनीज् के आचारशास्त्र में ही मिलता है न कि प्लेटोवाद मे। 'सिनिक' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय मे विद्वानो में मतभेद है। कदाचित् इस शब्द का सबंध 'सिनोसार्गेस' नामक स्थान से है जहाँ एंटिस्थिनीज् ने अपना आश्रम बनाया था।

सिनिकवाद का दृष्टिकोण सुखवादविरोधी है। उसके अनुसार वास्तविक संतोष 'सुख' से पूर्णतया भिन्न है। संतोष का आधार सदाचार है जो सात्विक जीवन से ही संभव है। सात्विकता लाभ करने के लिये यह आवश्यक है कि बाह्य परिस्थितियो तथा घटनाओ के दबाव से व्यक्तिमात्र को मुक्ति मिले। इस प्रकार की मुक्ति के साधन हैं संयम और आत्मनियंत्रण।

इच्छाओ और शारीरिक आवश्यकताओं को न्यूनतम सीमा तक घटा देना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। चूँकि सभ्यता का विकास इस आदर्श के विपरीत जाता है, इसलिये 'सिनिक' पंथ ने भौतिक साधनों की उन्नति का, और अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक विज्ञानो का विरोध किया।

इस विचारधारा का विकृत रूप डायोजिनीस के अतिव्यक्तिवाद में मिलता है। नगर में रहकर नागरिक बंधनों से पूर्णतया मुक्त रहने की कल्पना अंतत समाजविरोधी बन जाती है। 'संयम' की परिणति 'दमन' मे होकर 'सिनिकवाद' का जीवनदर्शन आगे चलकर बिल्कुल ही एकागी हो गया।

फिर भी 'सिनिक' पथियो के उपदेशो मे विशुद्ध आदर्शवाद के बीज अवश्य थे। एंटिस्थिनीज ने कहा, 'सिक्कों' से 'शुभ' को नही खरीदा जा सकता। परंतु गरीब आदमी भी आध्यात्मिक दृष्टि से धनी हो सकता है। 'स्टोइक्' दार्शनिकों ने एंटिस्थिनीज् के प्रति आदर व्यक्त किया है और चूँकि 'स्टोइकवाद' का मध्ययुगीन नैतिक मूल्यो पर गहरा प्रभाव पडा इसलिये 'सिनिक' पथ ने भी अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण कार्य किया। इस पंथ की बडी सफलता यह थी कि एक ऐसे युग में जब सुखवाद की स्वार्थपरता से सामाजिक और सास्कृतिक मूल्यो को आघात पहुँच रहा था, उसने आतरिक संतोष की महत्ता पर जोर दिया।

सं० ग्रं० — डेविडसन : द स्टोइक् क्रीड। [वि० श्री० न०]

सिन्या पाल (१८६३-१९३५) फ्रेंच चित्रकार। पहले भवनशिल्प की ओर रुचि, किंतु बाद मे चित्रकला की प्रवृत्ति जगी। सुप्रसिद्ध फ्रेंच कलाकार विंसेंट वैंगाफ, पाल सेजाँ, पाल गागें और क्लादे मोने की कलाप्रणालियों का अनुसरण करने के कारण उसके दृश्यचित्रणो पर प्रभाववाद हावी हो गया, किंतु परवर्ती जीवन मे जार्ज सुरेत से जब उसकी भेंट हुई तो वह प्रभाववाद से नव्य प्रभाववाद की ओर आकृष्ट हुआ। कतिपय आलोचको ने उसकी कला को ज्यामितिक और ऊबभरी शिथिल एकस्वरता लिए माना, किंतु उसके कुछ प्रशंसको ने बिंदुमयी शुद्ध श्वेतिमा को रंगो से सर्वथा पृथक् दीखनेवाली एक नए ढग की चमक और स्फूर्त ताजगी बतलाया। उसके जलरंगो के चित्रण में अपेक्षाकृत सहजता और उन्मुक्त गरिमा है। खेत खलिहानो के दृश्य, समुद्री दृश्य और फ्रास प्रदेश के दृश्यो तथा अपने कतिपय सज्जापूर्ण पैनल के कारण सामयिक प्रदर्शनियो मे उसको ख्याति मिली। सुरेन जैसे कलाकार के साथ समूचे यूरोप का भ्रमण कर उसने कला का व्यापक ज्ञान अर्जित किया। [श० रा० गु०]

सिन्हा, लॉर्ड सत्येंद्रप्रसन्न सिन्हा बंगाल के ऐडवोकेट जनरल थे। वह पहले भारतीय थे जिन्होने वाइसरॉय की काउंसिल मे कानून सदस्य के रूप में प्रवेश करने का समान प्राप्त किया। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् श्री सिन्हा को 'लॉर्ड' की उपधि दी गई तथा वह 'अडर सेक्रेटरी ऑव स्टेट फॉर इंडिया' के पद पर नियुक्त कर दिए गए। सन् १९२० में लॉर्ड सिन्हा बिहार तथा उडीसा के गवर्नर नियुक्त हुए। [मि० चं० पा०]

सिपाही विद्रोह (१८५७) आधुनिक भारत के इतिहास में सन् १८५७ का सिपाही विद्रोह सबसे बड़ा विप्लव था। वेलोर और बैरकपुर के सिपाही विद्रोहों से इसके आधार और क्षेत्र अधिक व्यापक थे। इसमे बंगाल की सेना के देशी सिपाहियो ने महत्वपूर्ण भाग लिया था। उनमे अधिकांश अवध तथा उत्तर पश्चिम प्रात के निवासी थे। वे प्राय. उच्च जाति के सनातनी थे। उत्तर भारत मे जहाँ कही उनकी पल्टनें थी सभी जगह विद्रोह हुए अथवा उसके लक्षण दिखाई पड़े। बबई प्रेसिडेंसी मे मराठा सेना ने केवल छुटपुट विद्रोह किए जिनका विस्तार अधिक न था। मद्रास की सेना शात रही।

सिपाही विद्रोह के प्रमुख कारण थे देशी सेना में असतोष तथा देश में ब्रिटिश नीति तथा शासन के प्रति अविश्वास। ब्रिटिश और भारतीय सैनिको के वेतन, भत्ते, अवकाश, उन्नति के अवसर, रहने की व्यवस्था और सुविधाओ मे बहुत विषमता थी। समुद्र पार करने तथा विदेशो में जाने से उन्हे धर्म तथा जाति से बहिष्कृत होने का भय था। इन बातो से उत्पन्न असंतोष का प्रदर्शन बर्मा के प्रथम युद्ध के समय से प्राय. होता रहा। लार्ड हार्डिज और डलहौजी के शासन काल मे ही चार बार सिपाहियों ने विद्रोह किया। देशी सेना में अनुशासन दिनोदिन बिगड़ता गया। प्रबध की स्वतंत्रता के अपहरण से सिपाहियो में क्षोभ बढ़ा। जनरल सर्विस एनलिस्टमेंट ऐक्ट, एनफील्ड राइफल्स में चर्बी लगे कारतूसों के प्रयोग, सेना के पश्चिमीकरण तथा ईसाई धर्मप्रचार को उन्होने संदेह की दृष्टि से देखा। उसी

अनुसंधान परिषद के सदस्य तथा सन् १९४७ में एफ० ए० ओ० की विशेषज्ञ कमिटी में यूनाइटेड किंगडम के प्रतिनिधि निर्वाचित हुए।

टर्पीनो पर आपने अन्य लोगो के सहयोग से पांच खंडो में एक विशाल ग्रंथ लिखा है, जो इस विषय का प्रामाणिक ग्रंथ समझा जाता है। लंदन की केमिकल सोसायटी के आप अवैतनिक मंत्री सन् १९४५ से १९४६ तक, और सन् १९४२ से १९४४ तक रॉयल सोसायटी की परिषद् में सेवारत रहे। सन् १९३२ में आप रॉयल सोसायटी के फेलो निर्वाचित हुए थे तथा सन् १९५० में सोसायटी ने आपको डेवी पदक प्रदान किया। बर्मिघम और मलाया के विश्वविद्यालयो ने डी० एस-सी० की तथा सेंट ऐंड्रयूज विश्वविद्यालय ने एल-एल० डी० की सम्मानसूचक उपाधियाँ आपको प्रदान कीं। सन् १९२१ में आपको कैसर-ए-हिंद का रजत पदक मिला था। आप सन् १९२८ की इडियन सायस काग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। [भ० दा० व०]

सियारामशरण गुप्त राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुज थे। चिरगाँव (झाँसी) में बाल्यावस्था बीतने के कारण बुंदेलखड की वीरता और प्रकृतिसुषमा के प्रति आपका प्रेम स्वभावगत था। घर के वैष्णव सस्कारों और गाधीवाद से गुप्त जी का व्यक्तित्व विकसित हुआ। गुप्त जी स्वयशिक्षित कवि थे। मैथिलीशरण गुप्त की काव्य कला और उनका युगबोध सियारामशरण ने यथावत् अपनाया था अतः उनके सभी काव्य द्विवेदीयुगीन अभिधावादी कलारूप पर ही आधारित हैं। दोनों गुप्तबधुओं ने हिंदी के नवीन आदोलन छायावाद से प्रभावित होकर भी अपना इतिवृत्तात्मक अभिधावादी काव्यरूप सुरक्षित रखा है। विचार की दृष्टि से भी सियारामशरण जी ज्येष्ठबधु के सदृश गाधीवाद की परदुखकातरता, राष्ट्रप्रेम, विश्वप्रेम, विश्वशाति, हृदयपरिवर्तनवाद, सत्य और अहिंसा से आजीवन प्रभावित रहे। उनके काव्य वस्तुत गाधीवादी निष्ठा के साक्षात्कारक पद्यबद्ध प्रयत्न हैं।

गुप्त जी के मौर्यविजय (१९१४ ई०), अनाथ (१९१७), दूर्वादल (१९१५-२४), विषाद (१९२५), आर्द्रा (१९२७), आत्मोत्सर्ग (1931), मृण्मयी (१९३६) बापू (१९३७), उन्मुक्त (१९४०), दैनिकी (१९४२), नकुल (१९४६), नोआखाली (१९४६), गीतासवाद (१९४८) आदि काव्यों में मौर्यविजय और नकुल आख्यानात्मक हैं। शेष मे भी कथा का सूत्र किसी न किसी रूप मे दिखाई पडता है। मानवप्रेम के कारण कवि का निजी दुख सामाजिक दुख के साथ एकाकार होता हुआ वर्णित हुआ है। विषाद मे कवि ने अपने विधुर जीवन और आर्द्रा में अपनी पुत्री रमा की मृत्यु से उत्पन्न वेदना के वर्णन में जो भावोद्गार प्रकट किए हैं, वे बच्चन के प्रियावियोग और निराला जी की 'सरोजस्मृति' के समान कलापूर्ण न होकर भी कम मार्मिक नही हैं। इसी प्रकार अपने हृदय की सचाई के कारण गुप्त जी द्वारा वर्णित जनता की दरिद्रता, कुरीतियो के विरुद्ध आक्रोश, विश्वशाति जैसे विषयो पर उनकी रचनाएँ किसी भी प्रगतिवादी कवि को पाठ पढा सकती हैं। हिंदी में शुद्ध सात्विक भावोद्गारो के लिये गुप्त जी की रचनाएँ स्मरणीय रहेंगी। उनमें जीवन के शृगार और उग्र पक्षो का चित्रण नही हो सका किंतु जीवन के प्रति करुणा का भाव जिस सहज और प्रत्यक्ष विधि पर गुप्त जी में व्यक्त हुआ है उससे उनका हिंदी काव्य मे एक विशिष्ट स्थान बन गया है। हिंदी की गांधीवादी राष्ट्रीय धारा के वह प्रतिनिधि कवि हैं।

काव्यरूपो की दृष्टि से उन्मुक्त नृत्यनाट्य के अतिरिक्त उन्होंने पुण्यपर्व नाटक (१९३२), झूठा सच निबंधसग्रह (१९३७), गोद, आकाक्षा और नारी उपन्यास तथा लघुकथाओं (मानुषी) की भी रचना की थी। उनके गद्यसाहित्य में भी उनका मानवप्रेम ही व्यक्त हुआ है। कथा साहित्य की शिल्पविधि मे नवीनता न होने पर भी नारी और दलित वर्ग के प्रति उनका दयाभाव देखते ही बनता है। समाज की समस्त असगतियो के प्रति इस वैष्णव कवि ने कही समझौता नहीं किया किंतु उनका समाधान सर्वत्र गाधी जी की तरह उन्होंने वर्गसघर्ष के आधार पर न करके हृदयपरिवर्तन द्वारा ही किया है, अत 'गोद' में शोभाराम मिथ्या-कलक की चिंता न कर उपेक्षित किशोरी को अपना लेता है; 'अतिम आकाक्षा' में रामलाल अपने मालिक के लिये सवस्व त्याग करता है और 'नारी' में जमुना अकेले ही विपत्तिपथ पर अडिग भाव से चलती रहती है। गुप्त जी की मानुषी, कष्ट का प्रतिदान, चुक्खू प्रेत का पलायन, रामलीला आदि कथाओं मे पीडित के प्रति सवेदना जगाने का प्रयत्न ही अधिक मिलता है। जाति वर्ण, दल वर्ग से परे शुद्ध मानवतावाद ही उनका कथ्य है। वस्तुतः अनेक काव्य भी पद्यबद्ध कथाएँ ही हैं और गद्य और पद्य में एक ही उक्त मंतव्य व्यक्त हुआ है। गुप्त जी के पद्य मे नाटकीयता तथा कौशल का अभाव होने पर भी सतो जैसी निश्छलता और सकुलता का अप्रयोग उनके साहित्य को आधुनिक साहित्य के तुमुल कोलाहल मे शात, स्थिर, सात्विक घृतदीप का गौरव देता है जो हृदय की पशुता के अधकार को दूर करने के लिये अपनी ज्योति मे आत्ममग्न एवं निष्कंप भाव से स्थित है।

सियालकोट १ जिला, पाकिस्तान के लाहौर डिवीजन में रावी और चिनाव के दोआब के अध पर्वतीय भाग में आयताकार रूप मे स्थित है। इसका क्षेत्रफल १,५७६ वर्ग मील है। जिले का उत्तरी भाग अत्यधिक उपजाऊ और दक्षिणी भाग उत्तरी भाग की अपेक्षा कम उपजाऊ है। दक्षिणी भाग की सिंचाई अब ऊपरी चिनाव नहर से की जाती है। जिले की औसत उर्वरता संपूर्ण पजाव की औसत उर्वरता की अपेक्षा अधिक है। जिले की जलवायु स्वास्थ्यकर है। पंजाब के सामान्य ताप की अपेक्षा इस जिले का ताप कम रहता है। जिले मे पहाडियो के समीप वार्षिक वर्षा ३५ इंच तथा इन पहाडियो से दूर के भागों में वार्षिक वर्षा २२ इच होती है। गेहूँ, जौ, मक्का, मोटे अनाज (ज्वार, बाजरा, मड़ुवा आदि) तथा गन्ना यहाँ की प्रमुख फसलें हैं।

२. नगर, स्थिति - ३२° ३०' उ० अ० तथा ७४° ३२' पू० दे०। यह नगर सैनिक छावनी एवं उपर्युक्त जिले का प्राशासनिक केंद्र है। नगर उत्तरी पश्चिमी रेलमार्ग पर लाहौर से ६७ मील उत्तर पूर्व मे स्थित है। यह नगर अनेक व्यवसायो एवं उद्योगो का केंद्र है। यहाँ औजार, जूते, कागज, कपास एवं वस्त्र बनाने के उद्योग हैं। नगर मे १०वीं शताब्दी के एक किले के भग्नावशेष हैं जो एक टीले पर खड़े हैं।

सतारा, कोल्हापुर, नरगुंड तथा सावंतवाडी में सिपाही विद्रोह हुए। वे तुरत दवा दिए गए। बंगाल और विहार में अनेक छावनियो मे सिपाहियों ने विद्रोह किया, पर प्रभावशाली जमींदारो की वफादारी के कारण उन्हे जन सहयोग न मिल सका।

विद्रोहों को दवाने के लिये साधन जुटाए गए। स्वामिभक्त रजवाडो से सैनिक सहायता मांगी गई। विदेशो को भेजी गई सेना लौटा ली गई। इग्लैंड से चुने हुए सैनिक बुलाए गए। मद्रास और ववई से सेनाएँ माँगी गईं। कूटनीति द्वारा हिंदू तथा मुसलमानो को पृथक् करने के प्रयत्न किए गए। युद्ध प्रिय गोरखा, सिक्ख और डोगरा जातियो को मित्र वना लिया गया। दिल्ली पर आक्रमण करने तथा ब्रिटिश प्रतिष्ठा के पुन स्थापन के लिये पजाव में सेना तैयार की गई। अत मे कई घमासान युद्धो के पश्चात् निकल्सन, विल्सन, वेयर्ड स्मिथ, चेंवरलेन आदि ने २० सितवर को दिल्ली पर फिर से अधिकार कर लिया। नगर मे भयकर लूटमार हुई। हजारो निर्दोष व्यक्ति संगीनो से मार डाले गए। मुगल शाहजादो को हॉडसन ने निर्दयतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया। वहादुरशाह को वदी वनाकर रगून भेज दिया गया। इस सफलता से अग्रेजो में आत्म-विश्वास वढ़ा तथा विद्रोहियो के हौसले कुंठित हुए।

विलियम टेलर और विंसेंट आयर ने विहार के विद्रोहो को दवा दिया। नील के नेतृत्व में मद्रास की सेना ने वनारस तथा इलाहावाद के विद्रोहियो को निर्दयतापूर्वक दवाया। इसका वदला विद्रोहियो ने कानपुर के हत्याकाड से लिया। जार्ज लारेंस ने वडी सतर्कता से राजपूताने में शांति स्थापित की। सर ह्यू रोज के नेतृत्व में सेंट्रल इंडिया फील्ड फोर्स ने मध्य भारत, मध्य प्रदेश तथा बुंदेलखंड के विद्रोहो को दवाया। कानपुर में नील और कालिन कैंपवेल ने भीषण नरसंहार द्वारा विद्रोह समाप्त किया। गोरखो की सहायता से अवध और रुहेलखड पर ब्रिटिश सत्ता की पुन' स्थापना हुई। तांत्या तोपे, रावसाहव तथा रानी लक्ष्मी वाई ने ग्वालियर मे डटकर अग्रेजो से मोर्चा लिया जिसमें रानी मारी गईं। तांत्या तोपे, रावसाहव तथा फीरोजशाह लगभग एक वर्ष तक भारत की आधी अग्रेजी सेना को परेशानी मे डाले रहे। अत मे तांत्या तोपे और रावसाहव आतिथ्य-कारियो के विश्वासघात द्वारा पकड़े गए और उन्हे फांसी दी गई। फीरोजशाह भारत छोड़कर पश्चिमी एशिया के देशो में घूमता फिरा। मक्का मे उसकी मृत्यु हो गई। बहुत से मुस्लिम विद्रोहियो ने भागकर तुर्की मे शरण ली। कई हजार विद्रोही नेपाल के जगलो में चले गए। लगभग २००० को पकडकर नेपाल की सरकार ने अग्रेजो को दे दिया। उनमे से खानवहादुर खाँ तथा ज्वालाप्रसाद को फांसी दी गई। नाना साहव, वेगम हजरत महल, विरजिसकद्र तथा कुछ अन्य विद्रोही नेता नेपाल में ही रहे पर उनका पता न चला। बूढे कुवँरसिंह ने अद्भुत वीरता दिखाई, पर उनका देहात हो गया। महमदउल्ला धोखा देकर मार डाले गए। अजीमुल्ला खां, वालाशाह तथा हजारों विद्रोहियो की मृत्यु तराई के जगलो मे हो गई। वहुत से छोटे मोटे विद्रोही राजाओ और जमादारो ने सुरक्षा की घोषणा सुनकर आत्मसमर्पण कर दिया। उन्हे वदी वना लिया गया। जेल कैदियो से भर गए। हजारो को पेडों से लटकाकर फांसी दे दी गई।

विद्रोह की असफलता के अनेक कारण थे, यथा सिपाहियो में राष्ट्रीय चेतना, उद्देश्य की एकता तथा सगठित योजना का अभाव; उनके सीमित सैनिक एव आर्थिक साधन, उनमे योग्य नेतृत्वहीनता, उनकी भूलें, असावधानियाँ, अदूरदर्शिता तथा अराजकता दूर करने की असमर्थता; तथा विद्रोह का देशव्यापी क्षेत्र न होना। अग्रेजो के असीमित साधन, कुशल नेतृत्व, सफल कूटनीति, चरित्र, तार, डाक और प्रेस पर नियत्रण तथा देशी राज्यो और प्रभावशाली लोगो के सहयोग आदि विद्रोह के दवाने में उनके सहायक वने।

विद्रोह के परिणामस्वरूप ईस्ट इंडिया कपनी का अत कर दिया गया। भारत का शासन इग्लैंड की महारानी के नाम से होने लगा। उसने भारतीयो का हृदय जीतने के लिये नई नीति की घोषणा की। विद्रोह से भारत में जन और धन की भीषण हानि हुई। परिणामत प्रजा पर करो का बोझ वढ़ गया। भविष्य मे विद्रोहों की सभावना को नष्ट करने के लिये शासन में आवश्यक परिवर्तन किए गए जिससे भारतीयो और अग्रेजो के बीच सदा के लिये खाई वन गई और कुछ समय वाद ही विद्रोह की राख से भारत मे राष्ट्रीय भावना जाग्रत हुई। [ही० ला० गु०]

सिमडेगा विहार राज्य के रांची जिले का सबसे दक्षिणी उपमडल है। इसकी जनसख्या ३,१४,४३७ (१९६१) है तथा इस उपमडल का धरातल अत्यत ही ऊबड खावड पठार है। इससे होकर सांख नदी वहती है। इसके पूर्वी छोर पर दक्षिणी कोयल नदी वहती है। यहाँ जंगलो की प्रधानता है। खेती के लायक भूमि कम है। जहाँ खेती सभव है वहाँ धान की फसल होती है। यह वडा ही पिछडा इलाका है। यहाँ आवागमन के साधनो का नितात अभाव है। केवल एक पक्की सडक उत्तर में लोहरदगा तथा रांची और दक्षिण में खरकेला तक जाती है। हाल ही में रांची वोडामुंडा रेलमार्ग का निर्माण हुआ है। सिमडेगा प्रमुख नगर तथा केंद्र है जिसकी जनसख्या १० ३९६ है। [ज० सिं०]

सिमॉन्सेन, जॉन लायनेल (Simonsen, John Lionel, सन् १८८४-१९५७) का जन्म मैंचेस्टर के लेवेनशुल्म नामक कस्वे में हुआ था। सन् १९०१ से आपने मैंचेस्टर विश्वविद्यालय मे अध्ययन प्रारभ किया तथा सन् १९०९ में डॉक्टर ऑव सायस की उपाधि प्राप्त की। इस विश्वविद्यालय के आप रसायन शास्त्र में प्रथम शूंक (Schunck) रिसर्च फेलो थे।

सन् १९१० में आप मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए। यहाँ आपने अपना वहुत समय अनुसंधान कार्य मे लगाया। प्रथम विश्वयुद्ध के समय ये इडियन म्युनिशस वोर्ड के रासायनिक सलाहकार थे तथा सन् १९१९ से १९२५ तक देहरादून के फॉरेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट तथा कॉलेज के प्रधान रसायनज्ञ रहे। सन् १९२५ मे आप वैंगलुरु के इडियन इन्स्टिट्यूट ऑव सायस मे जैव रसायन के प्रोफेसर नियुक्त हुए। देहरादून में भारतीय वाष्पशील तेलो का जो अध्ययन आपने आरभ किया था, उसे जारी रखा। सन १९२८ में ये इंग्लैंड वापस गए और सन् १९३० मे वेल्स विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर का पद सँभाला। कई अन्य महत्वपूर्ण पदों पर रहने के पश्चात् आप सन् १९४५ में कृषि

इतिहासकारों का अनुमान है कि यह टीला किले से अधिक प्राचीन है। कुछ इतिहासकारों ने नगर की पहचान प्राचीन शाकल नगर से की है। नगर की जनसंख्या १, ६४, ३४६ (१९६०) है।

[श्र० ना० मे०]

सिरका या चुक्र (Vinegar, विनिगर) किसी भी शर्करायुक्त विलयन के मदिराकरण के अनंतर ऐसीटिक किएवन (acetic fermentation) से सिरका प्राप्त होता है। इसका मूल भाग ऐसीटिक अम्ल का तनु विलयन है पर साथ ही यह जिन पदार्थों से बनाया जाता है उनके लवण तथा अन्य तत्व भी उसमे रहते हैं। विशेष प्रकार का सिरका उसके नाम से जाना जाता है, जैसे मदिरा सिरका (Wine Vinegar), मॉल्ट सिरका (Malt Vinegar) अंगूर का सिरका, सेब का सिरका (Cider Vinegar), जामुन का सिरका और कृत्रिम सिरका इत्यादि।

इसकी उत्पत्ति बहुत प्राचीन है। आयुर्वेद के ग्रंथो में सिरके का उल्लेख ओषधि के रूप में है। बाइबिल में भी इसका उल्लेख मिलता है। १६वीं शताब्दी में फ्रास में मदिरा सिरका अपने देश के उपभोग के अतिरिक्त निर्यात करने के लिये बनाया जाता था।

सिरके के बनने में शर्करा ही आधार है क्योंकि शर्करा ही पहले ऐंजाइमो से किण्वित होकर मदिरा बनती है और बाद में उपयुक्त जीवाणुओ से ऐसीटिक अम्ल मे किण्वित होती है। अंगूर, सेब, सतरे, अनन्नास, जामुन तथा अन्य फलो के रस, जिनमें शर्करा पर्याप्त है, सिरका बनाने के लिये बहुत उपयुक्त हैं क्योंकि उनमे जीवाणुओ के लिये पोषण पदार्थ पर्याप्त मात्रा में होते हैं। फलशर्करा और द्राक्षशर्करा का ऐसीटिक अम्ल में रासायनिक परिवर्तन निम्नलिखित सूत्रो से अंकित किया जा सकता है :

यीस्ट (Yeast)

१ — $C_6H_{12}O_6 \longrightarrow 2\,C_2H_5OH + CO_2$
(फलशर्करा या द्राक्षशर्करा) (ऐल्कोहॉल)

ऐसीटोबैकर

२. — $CH_3CH_2OH + O_2 \longrightarrow CH_3COOH + H_2O$
(ऐल्कोहॉल) (ऐसीटिक अम्ल)
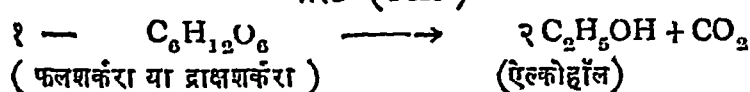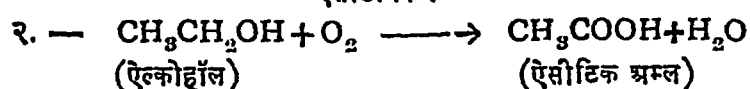
ये दोनो ही क्रियाएँ जीवाणुओ (Bacteria) के द्वारा होती हैं। यीस्ट किएवन में ऐल्कोहॉल की उत्पत्ति किण्वित शर्करा की प्रतिशत की आधी होती है और सिद्धांतत. ऐसीटिक अम्ल की प्राप्ति ऐल्कोहॉल से ज्यादा होनी चाहिए, क्योंकि दूसरी क्रिया में ऑक्सीजन का संयोग होता है, लेकिन प्रयोग में इसकी प्राप्ति उतनी ही होती है क्योंकि कुछ ऐल्कोहॉल जीवाणुओ के द्वारा तथा कुछ वाष्पन द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

बनाने की विधि — सिरका बनाने की विधियो मे दो विधियाँ काफी प्रचलित हैं :

(१) मंद गति विधि — इस विधि के अनुसार किण्वनशील पदार्थ को जिसमे ५ से १० प्रतिशत ऐल्कोहॉल होता है, पीपों या कडाहों में रख दिया जाता है। ये बर्तन तीन चौथाई तक भरे जाते हैं ताकि हवा के संपर्क के लिये काफी स्थान रहे। इसमे थोडा सा सिरका जिसमे ऐसीटिक अम्लीय जीवाणु होते हैं डाल दिया जाता है और किएवन क्रिया धीरे धीरे आरंभ हो जाती है। इस विधि के अनुसार किएवन धीरे धीरे होता है और इसके पूरा होने मे ३ से ६ माह तक लग जाते हैं। ताप ३०° से ३५° इसके लिये उपयुक्त है।

(२) तीव्र गति विधि — यह औद्योगिक विधि है और इसका प्रयोग अधिक मात्रा मे सिरका बनाने के लिये किया जाता है। बड़े बडे लकडी के पीपो को लकडी के बुरादे, झामक (Pumice), कोक (Coke) या अन्य उपयुक्त पदार्थो से भर देते हैं ताकि जीवाणुओ को आलंबन और हवा के संपर्क की सुविधा प्राप्त रहे। इनके ऊपर ऐसीटिक और ऐल्कोहॅलीय जीवाणुओ को धीरे धीरे टपकाते हैं और फिर जिस रस से सिरका बनाना है उसे ऊपर से गिराते हैं। रस के धीरे धीरे टपकने पर हवा पीपे मे ऊपर की ओर उठती है और अम्ल तेजी से बनने लगता है। क्रिया तब तक कार्यान्वित की जाती है जब तक निश्चित अम्ल का सिरका नहीं प्राप्त हो जाता।

माल्ट सिरका (Malt Vinegar) — माल्टीकृत अनाज (malted grains, प्रायः जौ) से मद्यशाला (Distillery) की भाँति वाश (Wash) प्राप्त किया जाता है। फिर ऐसीटिक बैक्टीरिया के किएवन से सिरका प्राप्त होता है। मदिरा सिरका (Wine Vinegar) उपर्युक्त दोनो विधियो से सुगमता से प्राप्त होता है।

सेब का सिरका (Cider Vinegar) — साधारण प्रयोग के लिये तीखा सिरका सेब या नासपाती के छिलके से बनाया जाता है। इन छिलको को पानी के साथ किसी भी पत्थर के मर्तबान में रख देते हैं और उसमे कुछ सिरका या खट्टी मदिरा डालकर गर्म स्थान मे रख देते हैं और दो तीन हफ्ते मे सिरका तैयार हो जाता है।

काष्ठ सिरका (Wood Vinegar) — काष्ठ के भंजन आसवन से ऐसीटिक अम्ल की प्राप्ति होती है। यह तनु ऐसीटिक अम्ल (३ से ५%) है और इसको कैरेमेल (Caramel) से रंजित कर देते हैं। कभी कभी एथिल ऐसीटेट से सुगंधित भी किया जाता है।

कृत्रिम सिरका (Synthetic Vinegar) — सिरके की विशेष आवश्यकता पर कृत्रिम ऐसीटिक अम्ल के तनु विलयन को कैरेमेल से रंजित करके प्रयोग मे लाया जाता है।

मानक तथा विश्लेषण (Standard and Analysis) — अधिकाश सिरको का मानक यह है कि न्यूनतम ऐसीटिक अम्ल ४% होना चाहिए।

कुछ सिरको का विश्लेषण भी निम्नलिखित है —

	सेब का सिरका	मदिरा सिरका	माल्ट सिरका
विशिष्ट गुरुत्व	१·०१३ से १·०१४	१·०१३ से १·०२१	१·०१५ से १·०२५
ऐसीटिक अम्ल%	४·८४	६·५५	४·२३
कुल ठोस %	२·४६	१·६३	२·७०
राख%	०·३४	०·३२	०·३४
शर्करा%	०·२५	०·४६	—

सं० ग्रं० — सी० ए० मिचेल : विनिगर, इट्स मैनुफैक्चर ऐंड एक्जामिनेशन (१९२७), सि० ग्रिफिन ऐंड को० लंदन; सी० एच० कैवेल : केवेल्स बुक, पृष्ठ ५९२–६४१।

[शि० मो० व०]

जातें, छेदोंनी नोक तथा दुहरा धागा, वर्तमान थी। कुछ समय पश्चात् विलियम थामस ने २५० पाउंड में उसने पेटेंट खरीद उसे अपने यहाँ नियुक्त कर लिया, पर वह अपने कार्य में सर्वथा असफल रहा और अत्यंत निर्धन अवस्था में अमरीका लौट आया। इधर अमरीका में सिलाई मशीन बहुत प्रचलित हो गई थी और इज़ाक मेरिट सिंगर ने सन् १८५१ ई० में होवे की मशीन का पेटेंट ले लिया था।

सन् १८४९ ई० में एलान वी० विलसन ने स्वतंत्र रूप से दूसरा आविष्कार किया। उसने एक घूमनेवाले हुक तथा घूमनेवाली बाबिन का आविष्कार किया जो ह्वीलर और विलसन मशीन का मुख्य आधार है। सन् १८५० ई० में विल्सन ने इसे पेटेंट कराया। इसमें कपड़ा सरकानेवाला चार गति का यंत्र, जो प्रत्येक सीवन के बाद कपड़ा सरका देता था, मुख्य था। उसी समय ग्रोवर ने दुहरे शृंखला सीवन (Chain strip) की मशीन का आविष्कार किया जो 'ग्रोवर ऐंड बेकर' मशीन का मुख्य सिद्धांत है। १८५६ ई० में एक किसान गिब्स ने शृंखला सीवन की मशीन बनाई जिसका बाद में विलकाक्स ने सुधार किया और जो 'गिब्स विलकाक्स' के नाम से प्रख्यात हुई। अब तो इसका बहुत कुछ सुधार हो चुका है।

भारत में भी पिछली शताब्दी के अंत तक मशीन आ गई थी। इसमें दो मुख्य थीं, अमरीका की सिंगर तथा इंग्लैंड की 'पफ'। स्वतंत्रता के बाद भारत में भी मशीनें बनने लगी जिनमें उषा प्रमुख तथा बहुत उन्नत है। सिंगर के आधार पर मेरिट भी भारत में ही बनती है।

मशीन की सिलाई में तीन प्रकार के सीवन प्रयोग में आते हैं — (१) इकहरा शृंखलासीवन, (२) दुहरा शृंखलासीवन, (३) दुहरी बखिया। प्रथम में एक धागे का प्रयोग होता है और अन्य में दो धागे ऊपर और नीचे साथ साथ चलते हैं।

दो हजार से अधिक प्रकार की मशीनें भिन्न भिन्न कार्यों के लिये प्रयुक्त होती हैं जैसे कपड़ा, चमड़ा, हैट इत्यादि सीने की। अब तो बटन टाँकने, काज बनाने, कसीदा करने, सब प्रकार की मशीनें अलग अलग बनने लगी हैं। अब मशीन बिजली द्वारा भी चलाई जाती है। [स्व० ल० मू०]

सिलिकन (Silicon) आवर्त सारणी के चतुर्थ समूह का दूसरा अधातु तत्व है। इसके तीन स्थायी समस्थानिक, जिनके परमाणुभार क्रमश २८,२९ और ३० हैं प्राप्त हैं। यह स्वतंत्र अवस्था में नही मिलता।

सिलिकन डाईआक्साइड अथवा सिलिका को वैज्ञानिक प्राचीन काल से तत्व मानते आए हैं। सर्वप्रथम फ्रांसीसी वैज्ञानिक लेवाजिये ने यह बताया कि यह तत्व न होकर आक्साइड यौगिक है। १८२३ ई० में स्वीडन के रसायनज्ञ बर्जीलियस ने इस तत्व के पोटैशियम सिलिको फ्लोराइड ($K_2 Si F_6$) का पोटैशियम धातु द्वारा अपचयन कर प्राप्त किया। १८५४ में फ्रांसीसी वैज्ञानिक सांत क्लेर देविल (Sainte Claire Deville) ने इसे विशुद्ध अवस्था में तैयार किया।

उपस्थिति — भूपर्पटी का चौथाई भाग सिलिकन है। यह ऑक्सीजन के बाद सबसे अधिक मात्रा में पाया जानेवाला तत्व है और संयुक्त अवस्था मे प्राय सभी स्थानो में पाया जाता है। ऑक्सीजन से संयुक्त केवल सिलिकन डाईआक्साइड ($Si O_2$) है। रेत अथवा सिलिकेट्स के रूप में पत्थरो, मिट्टी तथा खनिज पदार्थों में सिलिकन सर्वदा उपस्थित है। अनेक पौधो तथा पशुशरीर में भी यह मिलता है।

निर्माण — विद्युत् भट्ठी में कार्बन द्वारा सिलिकन के डाईआक्साइड को अपचयन कराकर सिलिकन प्राप्त किया जाता है। ऐल्यूमिनियम, पोटैशियम या जिंक की सिलिकन क्लोराइड ($Si Cl_4$) पर क्रिया द्वारा भी सिलिकन तत्व बनाया गया है। रक्त तप्त टैंटेलम पर सिलिकन क्लोराइड के विघटन द्वारा विशुद्ध अवस्था में सिलिकन प्राप्त होता है।

गुणधर्म — विशुद्ध सिलिकन मिलना कठिन है। अन्य तत्वों की सूक्ष्म मात्रा द्वारा इसके गुणो में बहुत अंतर आ जाता है, जिस कारण विभिन्न विधियों से प्राप्त सिलिकन के गुण भिन्न भिन्न ही मिलते हैं। विशुद्ध सिलिकन के कुछ स्थिरांक जैसे संकेत (Si) परमाणु संख्या १४, परमाणुभार २८.०८६, गलनांक १४१०° सें०, क्वथनांक २६८०° सें०, घनत्व २.३३ ग्राम प्रति घ० सेंमी० परमाणु व्यास १.३२ एंगस्ट्राम, विशिष्ट ताप ०.१६२ कैलोरी और वर्तनांक ४.२४ हैं। सिलिकन क्रिस्टलीय और अक्रिस्टलीय दोनो अवस्थाओ मे मिलता है। क्रिस्टल सिलिकन में धातु की सी चमक और विद्युत् चालकता होती है। यह काँच से भी कठोर है।

सिलिकन जल या साधारण अम्लों से प्रभावित नही होता। केवल हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल की क्रिया द्वारा फ्लोरोसिलिसिक अम्ल ($H_2 Si F_6$) बनाता है। उबलते क्षार के विलयन की अभिक्रिया द्वारा सिलिकेट बनता है। फ्लोरीन तथा क्लोरीन गैस सिलिकन से शीघ्र क्रिया कर क्रमशः सिलिकन फ्लोराइड ($Si F_4$) और सिलिकन क्लोराइड ($Si Cl_4$) बनाते हैं। उच्च ताप पर ऑक्सीजन, जलवाष्प तथा अनेक धातुएँ सिलिकन से अभिक्रिया करती हैं।

सिलिकन चतुर्थ समूह का तत्व होने के कारण कार्बन से अनेक गुणो में मिलता जुलता है। सिलिकन परमाणु के बाहरी कक्ष में चार इलेक्ट्रॉन हैं। ये इलेक्ट्रान अन्य तत्वो के इलेक्ट्रानो से मिलकर चार सहसंयोजक बंध बनाते हैं। इन बंधो में कार्बन से अधिक आयनिक गुण वर्तमान हैं। फिर भी इसके सहसंयोजक गुण प्रधान होते हैं। कभी कभी चार संयोजकता से अधिक के यौगिक भी मिलते हैं।

यौगिक — सिलिकन के यौगिको में बहुलकीकरण (polymerization) की विशेष प्रवृत्ति रहती है। यह जल के साथ शीघ्र जल अपघटित हो सिलिकन डाई ऑक्साइड ($Si O_2$) या अन्य सिलिकेट में परिणत हो जाते हैं। रेत अथवा सिलिका अत्यंत सामान्य यौगिक है। यह क्रिस्टलीय तथा अक्रिस्टलीय दोनो दशाओं में मिलता है। क्रिस्टलीय सिलिका को क्वारट्ज कहते हैं जो रंगहीन पारदर्शी गुण का है। सूक्ष्म मात्रा मे अशुद्धियों की उपस्थिति से यह विभिन्न रत्न बनाता है जैसे नीलमणि, सूर्यकांतमणि, सुलेमानी पत्थर आदि।

पूर्व में मिस्र, पश्चिम मे ट्रिपोलीटैनिया एवं दक्षिण में चाड गणतंत्र हैं। इसमें कूफा मरुद्यान भी समिलित है। तटीय भाग की जलवायु भूमध्यसागरीय है। गर्मी की ऋतु उष्ण एवं शुष्क होती है। भीतरी भागो में वर्षा की मात्रा कम होती है तथा तट से ८० मील की दूरी पर मरुस्थलीय दशाएँ पाई जाती हैं। तटीय क्षेत्र में बेनगाजी और डेरना के बीच में तथा गेबल-एल-अखदार (Gebel-el Akhdar) पठार में जनसख्या केंद्रित है जहाँ वार्षिक वर्षा १६" के आसपास हो जाती है। जौ, गेहूँ, जैतून, एवं अगूर मुख्य कृषि उपज हैं। कूफा एवं जिग्रालो नामक मरुद्यानो से खजूर की प्रचुर मात्रा में प्राप्ति होती है। खानाबदोश पशुचारियो ने भेड़, बकरे और ऊँट पर्याप्त मात्रा में पाल रखे हैं। यहाँ से भेड, बकरा, पशु, ऊन, चमडा, मछली तथा स्पंज का निर्यात मुख्यतः ग्रीस और मिस्र को होता है।

उपजाऊ भूमि का अधिकाश भाग चरागाह के लिये ही उपयुक्त है। विकसित सिंचाई के साधनो द्वारा तरकारी की उपज की जा सकती है। फिर भी पशुपालन एव बागवानी खेती प्रधान उद्योग रहेगे। यहाँ २,७२,००० एकड मे प्राकृतिक वन हैं। खनिज तेल भी पाया जाता है। सन् १९५७ में इस प्रदेश में २,३६,४३,७६८ किलोवाट घंटा विद्युत उत्पन्न की गई। मुख्य नगर तोब्रक, डेरना, सिरएन, वार्स और बेनगाजी है जो तटीय सडकमार्ग द्वारा एक दूसरे से सबद्ध हैं। १०० मील लबा रेलमार्ग है। वायुमार्ग द्वारा ट्रिपोली, काहिरा, रोम, माल्टा, ट्यूनिस, नैरोबी, एथेंस और लदन यहाँ की राजधानी बेनगाजी से सबद्ध हैं। [रा० प्र० सिं०]

सिरोही १ जिला, यह भारत के राजस्थान राज्य का जिला है जिसका क्षेत्रफल १,९७९ वर्गमील एवं जनसंख्या ३,५२,३०३ (१९६१) है। पहले यह देशी राज्य था, पर अब जिला है। पहाड़ियों एवं चट्टानी श्रेणियों द्वारा यह जिला खडित कर दिया गया है। उत्तर पूर्व से दक्षिण पूर्व की ओर अरावली श्रेणी जिले में फैली हुई है। दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी भाग पहाडी है। पश्चिम मे बनास जिले की एकमात्र नदी है। जिले का बृहत् भाग जगलो से ढँका हुआ है। बाघ, भालू, चीता एवं वन्य पशु इन जगलो में पर्याप्त सख्या में हैं। जिले में अनेक प्राचीन भग्नावशेष हैं। आबू पर औसत वार्षिक वर्षा ६४ इच होती है जब कि एरिनपुरा मे १२-१३ इच होती है। यहाँ की प्रमुख फसलें मक्का, बाजरा, मूँग, तिल, जौ, गेहूँ, चना और सरसो हैं। यहाँ के जगलो में शिरीष, आम, बाँस, बड, पीपल, गूलर, कचनार, फालूदा, सेमल और ढाक हैं। जिले का प्रमुख उद्योग तलवार, भाला, छुरा एवं चाकुओ के फल बनाना है। सिरोही की तलवार राजपूतो में उतनी ही लोकप्रिय थी जितनी पारसियो एव तुर्कियो मे दमिश्क की तलवार।

२. नगर, स्थिति : २४° ५३' उ० अ० तथा ७२° ५३' पू० दे०। यह नगर आबू रोड स्टेशन से २८ मील उत्तर में स्थित है। नगर की जनसख्या १४,४५१ (१९६१) है। [अ० ना० मे०]

सिलहट १. जिला, पूर्वी पाकिस्तान का जिला है जिसका क्षेत्रफल ४,६२१ वर्ग मील है। यह जिला सुर्मा नदी की निचली घाटी में स्थित है। जिले का अधिकाश भाग समतल है। नदियों और अपवाह तंत्र का जाल संपूर्ण जिले में फैला हुआ है। यह सघन कृषिक्षेत्र है। यहाँ औसत वार्षिक वर्षा १५९ इच है जिसमें से १०० इंच वर्षा जून और अक्टूबर में होती है। धान, अलसी, सरसो एवं गन्ना प्रमुख फसलें हैं। नाव निर्माण, अलवण जलवाले घोंघें से बटन बनाने, चटाई एवं सुगंध बनाने के उद्योग यहाँ है। जिले की जनसख्या ३०,५९,३६७ (१९५१) है।

२. नगर, स्थिति : २४° ५३' उ० अ० एव ९१° ५२' पू० दे०। यह उपर्युक्त जिले का प्रशासनिक केंद्र है जो सुर्मा नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। शिलांग से कछार जानेवाली सडक इस नगर से होकर गुजरती है। यहाँ की मुख्य संस्थाएँ मुरारीचद महाविद्यालय, सस्कृत महाविद्यालय तथा कुष्ठ आश्रम हैं। [अ० ना० मे०]

सिलाई मशीन सिलाई की प्रथम मशीन ए० वाईसेन्थाल ने १७५५ ई० मे बनाई थी। इसकी सुई के मध्य मे एक छेद था तथा दोनो सिरे नुकीले थे। १७९० ई० में थामस सेंट ने दूसरी मशीन का आविष्कार किया। इसमें मोची के सूए की भाँति एक सुआ कपड़े मे छेद करता, धागा भरी चरखी धागे को छेद के ऊपर ले आती और एक काँटेदार सूई इस धागे का फदा बना नीचे ले जाती जो नीचे एक हुक में फँस जाता था। कपड़ा आगे सरकता और इसी भाँति का दूसरा फदा नीचे जाकर पहले में फँस जाता। हुक पहिले फदे को छोड़ दूसरे फदे को पकड़ लेता है। इस प्रकार चेन की तरह की सिलाई नीचे होती जाती है। यदि सेंट को उस समय नोक में छेद का विचार आ जाता तो कदाचित् उसी समय आधुनिक मशीन का अविष्कार हो गया होता।

सिलाई मशीन का वास्तविक आविष्कार एक निर्धन दर्जी सेंट एंटनी निवासी बार्थेलेमी थिमानियर ने किया जिसका पेटेंट सन् १८३० ई० में फ्रांस में हुआ। पहले यह मशीन लकडी से बनाई गई। कुछ दिन पश्चात् ही कुछ लोगो ने इस सस्थान को तोड फोड़ डाला जहाँ यह मशीन बनती थी और आविष्कारक कठिनाई से जान बचा सका। सन् १८४५ ई० में उसने उससे बढिया मशीन का दूसरा पेटेंट करा लिया और सन् १८४८ में इग्लैंड और संयुक्त राज्य अमरीका से भी पेटेंट ले लिया। अब मशीन लोहे की हो चुकी थी।

वस्तुत छेदवाली नोक, दुहरा धागा और दुहरी बखिया का विचार प्रथम बार १८३२-३४ ई० में एक अमरीकी वाल्टर हंट (Walter Hunt) को आया था। उसने एक घुमनेवाले हैंडिल के साथ एक गोल, छेदीली नोक की सूई लगाई थी जो कपड़े में छेद कर नीचे जाती और उस फदे मे से एक छोटी सी धागा भरी चर्खी निकल जाती, वह फदा नीचे फँस जाता और सूई ऊपर आ जाती। इस प्रकार दुहरे धागे की दुहरी बखिया का आविष्कार हुआ। जब हट को अपनी सफलता मे पूरा विश्वास हो गया तो १८५३ ई० में पेटेंट के लिये उन्होने आवेदनपत्र दिया परतु उनको पेटेंट न मिल सका क्योकि यह छेदीली नोकवाला पेटेंट इग्लैंड मे 'न्यूटन ऐंड आर्चीबाल्ड' ने सन् १८४१ मे दस्ताने सीने के लिये पहले ही करा लिया था। उसी समय ऐलायस होव ने भी सन् १८४६ तक अपनी मशीन बनाकर पेटेंट करा लिया। उसकी मशीन में १२ वर्ष पहले आविष्कृत हंट की दोनो

सिलिका वर्ग के अन्य खनिजों के गुण भी क्वार्ट्ज से मिलते जुलते हैं। पर नीचे दिए हुए गुणों की सहायता से इन खनिजों को सरलता से पहचाना जा सकता है। चाल्सीडानी को छूने पर मोम का सा अनुभव होता है, ऐगेट में भिन्न भिन्न रंगों की धारियाँ पड़ी रहती हैं, फ्लिंट खनिज को तोड़ने पर बहुत पैने किनारे उपलब्ध होते हैं। श्रोपल की कठोरता अपेक्षाकृत कम होती है—५.५ से ६.५ तक, तथा आपेक्षिक घनत्व भी १.६ से २.३ तक होता है। श्रोपल के गुणों की यह भिन्नता इस खनिज के योग में विद्यमान जल के कारण है। इस खनिज में जल की मात्रा अधिक से अधिक १० प्रतिशत तक हो सकती है।

सिलिका का उपयोग भिन्न भिन्न रूपों में होता है। बालू में विद्यमान छोटे छोटे कण कांच तथा धात्विक उद्योगों, विशेषत भट्ठियों के निर्माण में काम आते हैं। सिरेमिक सामानों के निर्माण में सिलिका काम आता है। तापरोधी ईंटें इससे बनती हैं। तापपरिवर्तन को यह सरलता से पूर्ण रूप से सहन कर लेता है। यह खनिज, रंग तथा कागज उद्योग में काम आता है। शुद्ध, रंगहीन क्वार्ट्ज क्रिस्टल से प्रकाशयन्त्र तथा रासायनिक उपकरण बनाए जाते हैं। सिलिका से बनी बालू शिलाएँ मकान बनाने के पत्थरों के रूप में प्रयोग की जाती हैं।

इसके खनिज आग्नेय, जलज तथा रूपांतरित तीनों प्रकार की शिलाओं में मिलते हैं पर इनके आर्थिक निक्षेप पेगमेटाइट शिलाओं में, नसों तथा धारियों में और बालू में मिलते हैं।

मध्यप्रदेश के जबलपुर में शुद्ध बालू मिलता है। गया के राजगिरि पहाड़ियों, मुंगेर की खड़गपुर पहाड़ियों, पटना के बिहारशरीफ, उड़ीसा के नवलपुर तथा बागरा के कुछ भाग में तापरोधी कार्यों के लिये उत्कृष्ट कोटि का स्फटिकाश्म (Quartzetes) प्राप्त होता है।

[म० ना० मे०]

सिलिकोन (Silicone) नॉटिघम निवासी एफ० एस० किपिंग (F S Kipping) ने सिलिकन से बने कुछ संश्लिष्ट यौगिकों का नाम 'सिलिकोन' दिया था। यह नाम कीटोन के आधार पर दिया गया था। कीटोन की भांति सिलिकन एक ओर ऑक्सीजन से और दूसरी ओर कार्बनिक समूहों से संबद्ध था पर कीटोन के साथ साथ समानता केवल रचनात्मक सूत्र तक ही सीमित थी। वास्तविक संरचना में कीटोन और सिलिकोन एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। सिलिकोन बहुत भारी अणुभारवाले यौगिक हैं। कार्बनिक समूहों के कारण इनमें नम्यता, प्रत्यास्थता या तरलता आदि गुण भी आ जाते हैं और विभिन्न नमूनों के इन गुणों में बहुत अंतर पाया जाता है।

इनके तैयार करने में ग्रिनयार्ड अभिक्रिया द्वारा सिलिकन क्लोराइड से कार्बोसिलिकन क्लोराइड प्राप्त होता है। आसवन से इन्हें पृथक् करते हैं। सिलिका तत्व के कार्बनिक क्लोराइड के उपचार से भी कार्बोसिलिकन क्लोराइड प्राप्त हो सकते हैं। इन्हीं यौगिकों से सिलिकोन प्राप्त होता है। सिलिकोन तेल रूप में प्राप्त हो सकता है। इनकी भौतिक अवस्था उनके रासायनिक संघटन और अणु के औसत विस्तार पर निर्भर करती है।

सिलिकोन रासायनिक दृष्टि से निष्क्रिय होते हैं। तनु अम्ल और अधिकांश अभिकर्मकों का इनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इनके बहुलक प्रबल क्षार और हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल से ही आक्रांत होते हैं और उनकी संरचना नष्ट हो जाती है। सिलिकोन तेलों पर ताप के परिवर्तन से बहुत कम प्रभाव पड़ता है। अतः ये अति शीत और अति ऊष्मा में भी प्रयुक्त हो सकते हैं। ये ऑक्सीकृत नहीं होते। इनसे विद्युत् क्षति अत्यल्प होती है। अत परावैद्युत् माध्यम (dielectric medium) के लिये अधिक उपयुक्त हैं। संघनन पर नियन्त्रण रखने से तेल, रेजिन या रबर प्राप्त हो सकते हैं। रैखिक बहुलक के संघनन से अभीष्ट श्यानता के तेल प्राप्त हो सकते हैं। एकप्रतिस्थापित या द्विप्रतिस्थापित सिलिकन क्लोराइड के विलायक में घुलाकर जल अपघटन से रेजिन प्राप्त हो सकता है। यहाँ जल से सिलिकन क्लोराइड का क्लोरीन हाइड्राक्सिल से विस्थापित होकर अंतसंघनन होता है जिससे रेजिन बहुलक बनता है। विलायक में घुला रहने पर यह वार्निश के काम आ सकता है। किसी तल पर इसका लेप चढ़ाने से विलायक उड़ जाता और आवरण रह जाता है। आवरण का अभिसाधन उत्प्रेरण या अभिसाधकों से गरम किया जाता है। अभिसाधन से प्राप्त उत्पाद अपेक्षाकृत अविलेय और अगलनीय होता है। इसका लेप संरक्षक और पृथग्न्यसक होने के साथ साथ २००° सें० तक ताप सहन कर सकता है।

सिलिकोन रबर बनाने में ऊँचे अणुभारवाले पोलिडाइमेथिल सिलोक्सेन को कार्बनिक पेरॉक्साइड के साथ गरम करते हैं। ऐसा उत्पाद प्रत्यास्थ एवं लचीला होता है। इसे पीसा जा सकता और साँचे में ढाला तथा दबाया जा सकता है। इसका रबर के ऐसा अभिसाधन और वल्कनीकरण भी हो सकता है। इसके ऊष्मा प्रतिरोधक गास्केट (gasket) और नम्य पृथग्न्यस्त सामान बन सकते हैं।

[स० व०]

सिलीनियम संकेत S_e, परमाणुभार ७८.९६, परमाणुसंख्या ३४, इसके ६ स्थायी समस्थानिक और दो रेडियो ऐक्टिव समस्थानिक ज्ञात हैं। इसका आविष्कार बरज़ीलियस ने १८१७ ई० में किया था। भूमंडल पर व्यापक रूप से यह पाया जाता है पर बड़ी ही अल्प मात्रा में। यह स्वतंत्र नहीं मिलता। सामान्यत. गंधक, विशेषत जापानी गंधक के साथ यह असंयुक्त अवस्था में और अनेक खनिजों में भारी धातुओं के सिलीनाइड के रूप में पाया जाता है। सिलीनियमयुक्त खनिजों से सिलीनियम उपोत्पाद के रूप में प्राप्त होता है।

सिलीनियम के कई अपरूप होते हैं। यह कांच रूप में, एकनत (monoclinic) क्रिस्टलीय रूप में और षट्कोणीय (hexagonal) क्रिस्टलीय रूप में स्थायी होता है। कांचरूपीय सिलीनियम से रक्त अक्रिस्टली सिलीनियम, एकनत सिलीनियम से नारंगी से रक्त वर्ण तक का सिलीनियम तथा धूसर वर्ण का धात्विक सिलीनियम प्राप्त हुआ है। इन विभिन्न रूपों की विलेयता कार्बन डाइसल्फाइड में भिन्न भिन्न होती है। अक्रिस्टली सिलीनियम (आ० घ० ४.८), गलनांक २२०° सें०, एकनत सिलीनियम (आ० घ० ४.४७) गलनांक २००° सें० पर पिघलते हैं, सिलीनियम ६९०° सें० पर वाष्पीभूत होता है।

सिलिकन के हैलोजनो से प्राप्त सिलिकन फ्लोराइड (SiF_4) गैस है, सिलिकन क्लोराइड ($SiCl_4$, क्वथनांक ५७° सें०) तथा ब्रोमाइड ($SiBr_4$, क्वथनांक १५३° सें०) द्रव है और सिलिकन आयोडाइड (SiI_4) ठोस है जिसका गलनांक १२१° सें०, तथा क्वथनांक २९०° सें० है ।

सिलिकन डाईआक्साइड तथा कार्बन के मिश्रण को विद्युत् भट्ठी में गर्म करने से सिलिकन कार्बाइड (SiC) बनता है जो अत्यन्त कठोर पदार्थ है (सं०-सिलिकन कार्बाइड) ।

कार्बनिक यौगिकों मे सिलिकन परमाणु प्रविष्ट करने पर बने पदार्थों को सिलिकोन कहते हैं ।

इनके असाधारण गुणो के फलस्वरूप अनेक उपयोग हैं । सिलिकोन की ग्रीज न सूखनेवाली होती है और उच्च निर्वात (Vacuum) में काम आती है । कुछ ऐसे तैल पदार्थ भी बने हैं जिनकी किसी सतह पर परत चढाने पर उसकी रक्षा हो सकती है । आजकल अनेक ऐतिहासिक इमारतो के बचाव के लिये उनकी सफाई करने के पश्चात् सिलिकोन का लेप लगाया जाता है ।

पृथ्वी की चट्टानें सिलिकेट पदार्थों से बनी हैं । अनेक स्थानो पर विशुद्ध क्वार्ट्ज भी मिलता है परंतु अन्य धातुओं के सिलिकेट ही प्रायः मिलते हैं । कुछ सिलिकेट कृत्रिम विधियो द्वारा भी बनाए गए हैं ।

सोडियम या पोटैशियम के जल विलयन को सांद्र करने से कांच सा पदार्थ मिलता है जिसे जलकांच (water glass) कहते हैं । वास्तव में साधारण कांच को भी मिश्रित सिलिकेटो का सांद्र विलयन समझना चाहिए । सिलिकेटो की संरचना पर बहुत अनुसंधान हुआ है और इसी के आधार पर सिलिकेट समूहो का विभाजन भी हुआ है । कुछ सिलिकेटो की बनावट तीनो आयामो (dimensions) के जाल की सी होती है । कुछ की बनावट मुख्य तथा दो आयामो की होती है । यह चादर की सी बनावट के सिलिकेट हैं, जैसे अभ्रक (mica) आदि । कुछ लंबी शृंखला के या गोलाकार बनावट के सिलिकेट भी होते हैं । कुछ सिलिकेट छोटे परमाणु के भी होते हैं जिनकी बनावट चतुष्फलकीय (tetrahedral) रूप की होती है ।

उपयोग — सिलिकन का उपयोग मिश्रधातु बनाने में होता है । सिलिकन मिश्रित लोह रासायनिक रूप से प्रतिरोधी होता है । विद्युत् उद्योग मे भी ऐसी मिश्रधातु का उपयोग हुआ है । सिलिकोन पदार्थों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है । सिलिकेट पदार्थ चीनी मिट्टी के उद्योग, भट्ठियाँ बनाने में और कांच उद्योग में काम आते हैं । इनके अतिरिक्त धातुकर्म मे सिलिका का उपयोग अशुद्धियो को हटाने के लिये किया जाता है । [र० च० क०]

सिलिकन कार्बाइड (Silicon Carbide, SiC) अथवा कार्बोरंडम (Carborundum) सिलिकन तथा कार्बन का यौगिक है । इसकी खोज सन् १८९१ में एडवर्ड ऐचेसन (Edward Acheson) ने की थी । चीनी मिट्टी तथा कोयले के मिश्रण को कार्बन इलैक्ट्रोड की भट्ठी मे गरम करने पर कुछ चमकीले षट्कोण क्रिस्टल मिले । ऐचेसन ने इसे कार्बन तथा ऐलूमिनियम का नया यौगिक समझा और इसका नाम कार्बोरंडम प्रस्तावित किया । उसी काल में फ्रांसीसी वैज्ञानिक हेनरी मोयसाँ (Henri Moisson) ने क्वार्ट्ज तथा कार्बन की अभिक्रिया द्वारा इसे तैयार किया था । कठोरता के कारण इसकी अपघर्षक (Abrasive) उपयोगिता शीघ्र ही बढ गई । आजकल इसका उत्पादन बडी मात्रा में हो रहा है ।

सिलिकन कार्बाइड के क्रिस्टल षड्भुजीय प्रणाली (Hexagonal system) के अंतर्गत आते हैं । ये १ सेमी बडे और ½ सेमी की मोटाई तक के बनाए गए हैं । विशुद्ध सिलिकन कार्बाइड के क्रिस्टल चमकदार तथा हल्का हरा रंग लिए रहते हैं जिनका अपवर्तनांक (refractive index) २.६५ है । सूक्ष्म मात्रा की अशुद्धियो से इनका रंग नीला या काला हो जाता है । १०० सेमी के लगभग इनपर हल्की सिलिका (SiO_2) की परत जम जाती है ।

सिलिकन कार्बाइड का उत्पादन विशुद्ध रेत (SiO_2) तथा उत्तम कोयले के संमिश्रण द्वारा विद्युत् भट्ठी में होता है । संयुक्त राष्ट्र अमरीका तथा कनाडा में नियागरा जलप्रपात के समीप इसके उत्पादन केंद्र हैं क्योंकि यहाँ पर विद्युत् प्रचुर मात्रा मे तथा सस्ती मिलती है । नार्वे तथा चेकोस्लोवाकिया में भी यह औद्योगिक पैमानो में बनाया जाता है । इसकी भट्ठी लगभग ३० से ५० फुट लंबी, १० से २० फुट चौडी तथा १० फुट गहरी होती है जिसमें १० और ६ के अनुपात में रेत और कोयले का मिश्रण रखते हैं । साथ में लकडी का बुरादा मिला देने से रन्ध्रता आ जाती है । इस मिश्रण के बीच में कोयले के मोटे चूरे की नाली बनाते हैं जिसके दोनो सिरो पर कार्बन इलैक्ट्रोड रहते हैं । आरंभ में ५०० वोल्ट का विद्युत् विभव प्रयुक्त करने पर लगभग २५००° सें० का उच्च ताप उत्पन्न होता है । क्रिया के आरंभ होने पर, धीरे धीरे विभव को कम करते जाते हैं जिससे ताप सामान्य रहे । इस काल में नियंत्रण अति आवश्यक है । भट्ठी के मध्य में सिलिकन कार्बाइड समुचित मात्रा में बन जाने पर क्रिया रोक दी जाती है । इस क्रिया में विशाल मात्रा में कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) का उत्पादन होता है ।

सिलिकन कार्बाइड की कठोरता, विद्युत् चालकता तथा उच्च ताप पर स्थिरता के कारण इसका प्रयोग रेगमाल पेषण चक्की (grinding wheel) और उच्च ताप में प्रयुक्त ईंटो आदि के बनाने मे हुआ है ।

सिलिकन कार्बाइड की विद्युत् चालकता उच्च ताप पर बढती है जिससे उच्च ताप पर यह उत्तम चालक है । [र० च० क०]

सिलिका (Silica, SiO_2), खनिज सिलिकन और ऑक्सीजन के योग से बना है । यह निम्नलिखित खनिजों के रूप में मिलता है .

१ क्रिस्टलीय : जैसे क्वार्ट्ज २. गुप्त क्रिस्टलीय : जैसे चाल्सीडानी, ऐगेट और फ्लिंट ३. अक्रिस्टली, जैसे ओपल। क्वार्ट्ज षड्भुजीय प्रणाली का क्रिस्टल बनता है । साधारणत यह रंगहीन होता है पर अपद्रव्यो के विद्यमान होने पर यह भिन्न भिन्न रंगो में मिलता है । इसकी चमक कांचाभ तथा टूट शंखाभ होती है । यह कांच को खुरच सकता है, इसकी कठोरता ७ है । इसका आपेक्षिक घनत्व २ ६५ है ।

डेवोनियम (Devoniam) काल के बीच में रखा। शनैः शनै संसार के अन्य भागो में भी ऐसे स्तर मिले और इस प्रकार सिल्यूरियन प्रणाली पुराजीवकल्प के एक युग के रूप में स्तर-शैल-विद्या मे आ गई।

विस्तार — इन युग के शैल इंग्लैंड के अतिरिक्त यूरोप के अन्य देशों में जैसे स्कैंडेनेविया, वाल्टिक प्रदेश, फिनलैंड, पोलैंड, बोहेमिया, जर्मनी, फ्रास, पुर्तगाल, स्पेन, सारडिनिया आदि में भी मिलते हैं। अफ्रीका के मोरक्को, एटलस पर्वत और सहारा प्रदेशों में भी सिल्यूरियन शैलसमूह मिलते हैं। एशिया में इन युग के चूना-पत्थर के शैल साइबेरिया, चीन, यूनान, टार्गकिंग और हिमालय प्रदेश में मिलते हैं। इस प्रणाली के स्तर दक्षिण पूर्वी आस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स, टसमानिया, और विक्टोरिया प्रदेशों मे पाए जाते हैं। उत्तरी अमरीका मे इस युग के शैलसमूह नियाग्रा, अपलेचियन, वरजिनिया और टेनेसी घाटी में मिलते हैं। सिल्यूरियन शैलसमूह न्यूयार्क और पेन्सिलवेनिया में भी सिल्यूरियन शैल पाए जाते हैं।

भारतवर्ष में इस प्रणाली के शैलस्तर हिमालय प्रदेश के स्पिटी, कुमायूँ एव कश्मीर प्रदेश में मिलते हैं। स्पिटी में इस काल के स्तरो में प्रवालयुक्त चूनाशिला, जवशिला और रेतयुक्त चूनाशिला हैं जिनमें ट्राइलोवाइट (Trilobite), ब्रेकियोपोड् (Brachiopoda) और ग्रैप्टोलाइट (Graptolite) वर्ग के जीवाश्म (Fossils) बहुतायत से मिलते हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह विदित होता है कि इस युग में जल का अनुपात स्थल से कम था। जल के दो भाग थे एक तो उत्तर में विपुवत् रेखा से उत्तरी ध्रुव तक और दूसरा दक्षिण में ४०° अक्षांश से दक्षिणी ध्रुव तक।

सिल्यूरियन युग के शैल समूहों का वर्गीकरण और काल प्रकरण समतुल्यता (Classification and correlation of Silurian Rocks)

इग्लैंड	अमरीका (U. S A)	भारत (स्पिटी)
लडलो सिरीज् (Ludlow Series)	———	वलुआ चूना शिला
वेनलाक सिरीज (Wenlock Series)	लाकपोर्ट वर्ग क्लिटन वर्ग	प्रवालयुक्त चूना शिला
वेलेंसियन सिरीज (Valentian Series)	मेडिना वर्ग	चूना शिला
लैंडोवरी (Llandovery)		

सिल्यूरियन युग के जीवजंतु और वनस्पति — इस युग के फासिलों में क्राईनायड्स तथा ग्रैप्टोलाइट वर्ग के जीवो का बाहुल्य था। अपृष्ठवंशी अन्य जीवों में ब्रेकियोपोड्स ट्राइलोवाइट्स एवं कोरल मुख्य थे। स्तनी वर्ग के जंतुओं में मत्स्य वर्ग के जीव प्रमुख थे। इस युग की वनस्पति मे ऐसे पौधो के जीवाश्म मिलते हैं जो उस समय की स्थल वनस्पति पर प्रकाश डालते हैं। [रा० च० सि०]

सिल्वेस्टर, जेम्स जोसेफ (Sylvester, James, Joseph, १८१४ ई०—१८९७ ई०) अंग्रेज गणितज्ञ का जन्म ३ सितंबर, १८१४ ई० को लंदन के एक यहूदी परिवार में हुआ। १८३१ ई० मे इन्होंने सेंट जॉन्स कालेज, कैंब्रिज मे प्रवेश किया और १८३७ ई० में वहाँ के द्वितीय रैंगलर हुए, परतु यहूदी होने के कारण इन्हे यह उपाधि प्रदान नहीं की गई। सन् १८३८ ई० से १८४० ई० तक वर्तमान यूनिवर्सिटी कालेज, लदन में ये प्राकृतिक दर्शन के प्रोफेसर रहे और १८४१ ई० में वर्जीनिया विश्वविद्यालय में गणित के प्रोफेसर हो गए। तदुपरात ये रॉयल मिलिटरी ऐकेडमी, वूलविच (१८५५ ई०-१८७० ई०) तथा जॉन्स हॉपकिंस यूनिवर्सिटी (१८७६ ई०—१८८३ ई०) में गणित के प्रोफेसर रहे। १८७८ ई० में ये अमरीकन जर्नल ऑव मैथेमैटिक्स के प्रथम सपादक हुए और १८८४ ई० में ऑक्सफोर्ड मे ज्यामिति के सेवीलियन प्रोफेसर। इन्होंने निश्चरों, अपवर्त्य बीजगणित, संभाव्यता और समीकरणों एव संख्याओ के सिद्धात पर अनेक महत्वपूर्ण अनुसंधान किए। ऑक्सफोर्ड आने के पश्चात् इन्होने उन व्युत्क्रमत्व (reciprocants) अथवा अवकल गुणकों के फलनों, जिनके रूप चलराशि के कुछ एक घातीय रूपातरों से अपरिवर्तित रहते हैं एवं समयोगों (concomitants) के सिद्धातो पर अन्वेपण किए। कभी कभी मनोविनोद के लिये, ये काव्यरचना भी किया करते थे और साहित्य क्षेत्र मे लॉज ऑव वर्स (Laws of verse) इनकी एक अद्भुत पुस्तिका है। १५ माच, १८९७ ई० को पक्षाघात के कारण लंदन में इनकी मृत्यु हो गई। [रा० कु०]

सिवनी (Seoni) १. जिला, यह मध्य प्रदेश का एक जनपद है। इसका क्षेत्रफल ५१६० वर्ग किमी० एवं जनसख्या ५,२३, ७४१ (१९६१) है। उत्तर में जवलपुर एवं नरसिंहपुर, पश्चिम में छिंदवाड़ा, पूर्व में बालाघाट एव मंडला और दक्षिण में महाराष्ट्र राज्य के नागपुर एव भडारा जिले हैं। उत्तर एवं उत्तर पश्चिमी सीमा पर सतपुड़ा पर्वतश्रेणी है जिसपर घने जगल हैं। ये पहाड़ियाँ जिले को जवलपुर एवं नरसिंहपुर से पृथक् करती हैं। उत्तरी दर्रो के दक्षिण में लखनादोन पठार है, जो दूसरी पहाडी एव जंगल की पट्टी में समाप्त होता है। पूर्व और पश्चिम के अतिरिक्त लखनादोन पठार जगलो से घिरा हुआ है। इस पठार के मध्य में पूर्व से पश्चिम की ओर शेर नदी बहती है जो नरसिंहपुर में नर्मदा से मिल जाती है। दक्षिण पश्चिम में उपजाऊ काली मिट्टी का क्षेत्र है जिसे थेल और बानगगा नदियाँ लखनादोन पठार से पृथक् करती हैं। जिले में बहनेवाली प्रमुख नदियाँ बानगंगा, शेर एवं वेंच हैं। सिवनी और लखनादोन पठारो की ऊँचाई लगभग २००० फुट है। जिले की पश्चिमी सीमा पर स्थित मनोरी चोटी की ऊँचाई समुद्रतल से २,७४९ फुट और सिवनी नगर के समीप स्थित करिआ पहाड की ऊँचाई समुद्रतल से २,३७९ फुट है। जगलो मे बाँस की बहुतायत है, इसके अतिरिक्त टीक, आम, इमली तेंदू और महुआ के वृक्ष भी पर्याप्त हैं। यहाँ के जगलों में हिरन एव थल, जल पक्षी भी पर्याप्त सख्या में मिलते हैं। यहाँ की औसत वार्षिक वर्षा १३५ सेमी० है। धान, कोदो और गेहूँ जिले की प्रमुख फसलें हैं। अलसी, तिल, चना, मसूर, ज्वार एवं कपास अन्य फसलें हैं। लौह खनिज, कोयला, खड़िया मिट्टी और पोखराज एवं जमुनिया रत्न यहाँ मिलते हैं।

२. नगर, स्थिति २२° ५०' उ० अ० तथा ७९°३३' पू० दे०।

उत्पादन — तांबे के परिष्कार में जो अवपंक (Slime) प्राप्त होता है अथवा धातुओं के सल्फाइडों के भर्जन से जो चिमनी धूल प्राप्त होती है उसी मे सिलीनियम रहता है और उसी से प्राप्त होता है। अवपंक को बालू और सोडियम नाइट्रेट के साथ गलाने से या नाइट्रिक अम्ल से आक्सीकृत करने, चिमनी धूल को भी नाइट्रिक अम्ल से आक्सीकृत करने, जल से निष्कर्ष निकालने और निष्कर्ष को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और सल्फर डाइ ऑक्साइड से उपचारित करने से सिलीनियम उन्मुक्त होकर प्राप्त होता है, सिलीनियम वाष्पशील होता है। वायु में गरम करने से नीली ज्वाला के साथ जलकर सिलीनियम डाइ ऑक्साइड बनता है।

सिलीनियम की सबसे अधिक मात्रा कांच के निर्माण में प्रयुक्त होती है। कांच के रंग को दूर करने में यह मैंगनीज का स्थान लेता है। लोहे की उपस्थिति से कांच का हरा रंग इससे दूर हो जाता है। सिलीनियम की अधिक मात्रा से कांच का रंग स्वच्छ रक्तवर्ण का होता है जिसका प्रयोग सिगनल लैंपों मे बडा उपयोगी सिद्ध हुआ है। विशेष प्रकार के रबरों के निर्माण में गंधक के स्थान पर सिलीनियम का उपयोग लाभकारी सिद्ध हुआ है।

प्रकाश के प्रभाव से सिलीनियम का वैद्युत् प्रतिरोध बदल जाता है। बाद मे देखा गया कि सामान्य विद्युत्परिपथ मे सिलीनियम धातु के रहने और उसे प्रकाश में रखने से विद्युद्धारा उत्पन्न होती है। इस गुण के कारण इसका उपयोग प्रकाशविद्युत् सेल मे हुआ है। सेल मे पीछे तांबा, ऐल्यूमिनियम और पीतल आदि रहते हैं, उसके ऊपर सिलीनियम धातु का एक पतला आवरण चढा होता है और वह फिर सोने के पारभासक स्तर से ढँका रहता है, सोने का तल पारदर्शक फिल्टर से सुरक्षित रहता है। ऐसा प्रकाशविद्युत् सेल मीटरों, प्रकाशविद्युत् वर्णमापियों और अन्य उपकरणों में, जिनसे प्रकाश मापा जाता है, प्रयुक्त होता है।

सिलीनियम से इनेमल कांचिका (glazes) और वर्णक बने हैं। कैडमियम सल्फो-सिलीनाइड सुंदर लाल रंग का वर्णक है और कांचिका के रूप में प्रयुक्त होता है। अल्प मात्रा में सिलीनियम से अनेक मिश्र धातुएँ बनी हैं। स्टेनलेस स्टील और तांबे की मिश्र धातुओं मे अल्प सिलिनियम डालने से उसकी मशीन पर अच्छा काम होता है। उत्प्रेरक के रूप में भी सिलीनियम और उसके यौगिकों का व्यवहार होता है। फेरस सिलीनाइट पेट्रोलियम के भंजन मे काम आता है। सिलीनियम कवक और कीटनाशक भी होता है। यह मनुष्यों और जंतुओं पर विषैला प्रभाव डालता है। सिलीनियम वाली मिट्टी में उगे पौधे विषाक्त सिद्ध हुए हैं। ऐसे चारे के खाने से घोड़ों की पूँछ और सिर के बाल झड जाते हैं और उनके खुर की अस्वाभाविक वृद्धि हो जाती है। मनुष्य के फेफडे, यकृत, वृक्क या प्लीहा मे यह जमा होता है। इससे त्वचाशोथ भी हो सकता है तथा घातक परिणाम भी हो सकते है। इसके विषैले प्रभाव का आर्सेनिक से दमन होता है।

यौगिक बनने में सिलीनियम गंधक और टेल्यूरियम से समानता रखता है। यह ऑक्साइड, फ्लोराइड, क्लोराइड, ब्रोमाइड, ऑक्सीक्लोराइड, सिलीनिक अम्ल और उनके लवण तथा अनेक ऐलिफैटिक और ऐरोमैटिक कार्बनिक यौगिक बनाते है।

[फू० स० व०]

सिलीमैनाइट (Sillimanite) खनिज संसार में अनेक स्थानों पर मिलता है किंतु कुछ ही स्थानों पर आर्थिक दृष्टि से इसका खनन लाभदायक है। आर्थिक दृष्टि से उपयोगी सिलीमैनाइट के निक्षेप केवल भारत मे ही विद्यमान हैं। भारत में सिलीमैनाइट सोना पहाड, जो असम की खासी पहाड़ियों मे है, तथा सीधी जिले में पिपरा नामक स्थान पर प्राप्त होता है। कुछ निक्षेप केरल प्रदेश मे बालूतट रेत के रूप में भी मिलते हैं। अभी तक सोना पहाड और पिपरा के निक्षेपों पर ही खनन कार्य किया गया है।

सोना पहाड — असम की खासी पहाड़ियों मे, सोना पहाड के निक्षेप स्थित हैं। सिलीमैनाइट अधिकांशत: कोरंडम (Corundum) के साहचर्य में प्राप्त होता है। यह सिलीमैनाइट उत्तम प्रकार का है एवं इसमें रुटाइल (Reutile), बायोटाइट (Biotite) तथा लौह अयस्क अत्यंत अल्प मात्रा में मिले होते हैं। यह मुख्यत: विशाल गंडाश्मों (Boulders), जिनका व्यास दस फुट तक तथा भार ४० टन तक हो सकता है, के रूप मे मिलता है।

पिपरा — मध्य प्रदेश के सीधी जिले में पिपरा नामक स्थान पर सिलीमैनाइट निक्षेप प्राप्त हुए हैं। इसके साहचर्य में भी कोरंडम प्राप्त होता है। यह निक्षेप पिपरा ग्राम से आधा मील की दूरी पर स्थित हैं। पिपरा सिलीमैनाइट का वर्ण भूरा होता है तथा यह असम के सिलीमैनाइट की अपेक्षा अधिक कठोर है। यहाँ पर बड़े बड़े गंडाश्म, जो अनेक आकार में मिलते हैं, साधारण मिट्टी में खचित पृथ्वी तल पर पड़े रहते हैं। अभी तक खनन केवल इन्हीं विशाल गंडाश्मों के संकलन तक ही सीमित है।

भंडार — डाक्टर डून (Dr. Dunn) के अनुसार पिपरा मे सिलीमैनाइट की अनुमानित मात्रा लगभग एक लाख टन है किंतु निक्षेपों के अनियमित होने के कारण ठीक ठीक अनुमान लगाना कठिन है एवं संभावना है कि वास्तविक मात्रा इससे कहीं अधिक है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसा सिलीमैनाइट भी उपलब्ध है जिसमें कुछ अपद्रव्य हैं तथा इन अपद्रव्यों को उपयुक्त साधनों से दूर कर उपयोग में लाया जा सकता है। इसी प्रकार खासी पहाडियों में सिलीमैनाइट की अनुमानित मात्रा ढाई लाख टन के लगभग है।

उपयोग — तापरोधक सामग्री (Refractory) के अतिरिक्त इसका उपयोग अन्य कार्यों में भी होता है। अधिकांशत सिलीमैनाइट विदेशों को निर्यात किया जाता है एवं केवल कुछ ही अंश मे भारत के स्थानीय उद्योगों में इसकी खपत होती है।

सन् १९५७ में सिलीमैनाइट का उत्पादन लगभग साढे सात हजार टन हुआ था जिसका मूल्य ४,४४,००० रुपए के लगभग था।

[वि० सा० दू०]

सिल्यूरियन प्रणाली (Silurian System) सिल्यूरियन प्रणाली का नामकरण मरचीसन (Murchison) ने सन् १८३५ मे इंग्लैंड के वेल्स प्रांत के आदिवासियों के नाम के आधार पर किया और इसका स्थान पुराजीव कल्प आर्डोविसियन (Ordovician)

परिणामस्वरूप सीज़र देशनिष्कासन से बाल बाल बच गया। इसके पश्चात् कई वर्षों तक वह अधिकांशत विदेशों में ही रहा और पश्चिमी एशिया माइनर में उत्तम सैनिक सेवाओं द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त की। ७४ ई० पू० में वह इटली वापस आ गया ताकि सेनेट सदस्यों के अल्पतंत्र (Senatorial oligarchy) के विरुद्ध आंदोलन में भाग ले सके। उसको विभिन्न पदों पर कार्य करना पड़ा। जनत्योहारों के आयुक्त के रूप में प्रचुर धन व्यय करके उसने नगर के जनसाधारण में लोकप्रियता प्राप्त कर ली। ६१ ई० पू० में दक्षिणी स्पेन के गवर्नर के रूप में सीज़र ने प्रथम सैनिक पद सुशोभित किया परंतु उसने शीघ्र ही इससे त्यागपत्र दे दिया ताकि पांपे (Pompey) के अपनी विजयी सेना सहित लौटने पर रोम में उत्पन्न राजनीतिक स्थिति में भाग ले सके। सीज़र ने क्रेसस (Crassus) तथा पांपे में राजनीतिक गठबंधन करा दिया और उनसे मिलकर प्रथम शासक वर्ग (first triumvirate) तैयार किया। इन तीनों ने मुख्य प्रशासकीय समस्याओं का समाधान अपने हाथ में लिया जिनको नियमित 'सीनेटोरियल' शासन सुलझाने में असमर्थ था। इस प्रकार सीज़र कौंसल निर्वाचित हुआ और अपने पदाधिकारों का उपयोग करते हुए अपनी संयुक्त योजनाओं को कार्यान्वित करने लगा। स्वयं अपने लिये उसने सेना संचालन का उच्च पद प्राप्त कर लिया जो रोमन राजनीति में भीषण शक्ति का कार्य कर सकता था। वह सिसएलपाइन गॉल (Cisalpine gaul) का गवर्नर नियुक्त किया गया। बाद में ट्रांसएलपाइन गाल (Transalpine gaul) भी उसकी कमान में दे दिया गया। गॉल में सीज़र के अभियानों (५८-५० ई० म० पू०) का परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण फ्रांस तथा राइन (Rhine) नदी तक के निचले प्रदेश, जो धन तथा संस्कृति के स्रोत की विचार से इटली से कम महत्वपूर्ण नहीं थे, रोमन साम्राज्य के आधिपत्य में आ गए। जर्मनी तथा बेलजियम के बहुत से कबीलों पर उसने कई विजय प्राप्त की और 'गॉल के रक्षक' का कार्यभार ग्रहण किया। अपने प्रांत की सीमा के पार के दूरस्थ स्थान भी उसकी कमान में आ गए। ५५ ई० पू० में उसने इंग्लैंड के दक्षिण पूर्व में पर्यवेक्षण के लिये अभियान किया। दूसरे वर्ष उसने यह अभियान और भी बड़े स्तर पर संचालित किया जिसके फलस्वरूप वह टेम्स नदी के बहाव की ओर के प्रदेशों तक में घुस गया और अधिकांश कबीलों के सरदारों ने औपचारिक रूप में उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। यद्यपि वह भली प्रकार समझ गया था कि रोमन गॉल की सुरक्षा के लिये ब्रिटेन पर स्थायी अधिकार प्राप्त करना आवश्यक है, तथापि गॉल में विषम स्थिति उत्पन्न हो जाने के कारण वह ऐसा करने में असमर्थ रहा। गॉल के लोगों ने अपने विजेता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था किंतु ५० ई० पू० में ही सीज़र गॉल में पूर्ण रूप से शांति स्थापित कर सका।

स्वयं सीज़र के लिये गॉल के अभियानों में विगत वर्षों में दोहरा लाभ हुआ—उसने अपनी सेना भी तैयार कर ली और अपनी शक्ति का भी अनुमान लगा लिया। इसी बीच में रोम की राजनीतिक स्थिति विषमतर हो गई थी। रोमन उपनिवेशों को तीन बड़े भागों में विभाजित किया जाना था जिनके अधिकारी नाममात्र को केंद्रीय सत्ता

यह नगर जिले का प्रशासनिक केंद्र है और जबलपुर से ८६ मील दूर है। यहाँ हथकरघा उद्योग है। नगर में दर्शनीय अलंकृत दलसागर ताल है, जो नगर से २½ मील दूर स्थित बुवेरिआ ताल से नलो द्वारा भरा रखा जाता है। नगर की जनसख्या ३०,२७३ (१९६१) है।

[अ० ना० मे०]

सिसिली (Sicily) भूमध्यसागर का सबसे बड़ा द्वीप है जो इटली प्रायद्वीप से मेसीना जलडमरूमध्य, जिसकी चौडाई कही कही दो मील से भी कम है, के द्वारा अलग होता है। ट्यूनीसिया से ९० मील चौड़े सिसली जलडमरूमध्य द्वारा अलग है तथा सार्डीनिया से इसकी दूरी २७२ किमी० है। इसकी आकृति त्रिभुजाकार है, उत्तर में कुमारी बोओ (Boeo) से कुमारी पेलोरो तक लबाई २८० किमी०, पूर्वी किनारा १९२ किमी० और दक्षिणी पश्चिमी किनारा २७२ किमी० लबा है। तट की कुल लबाई १०८८ किमी० है और क्षेत्रफल ९८३० वर्ग मील है परंतु आस पास के अन्य द्वीपो को मिलाकर क्षेत्रफल ९९२५ वर्गमील है।

धरातल — धरातल पठारी है जिसकी ऊँचाई उत्तर में ३००० फुट से ६००० फुट है। उत्तर में समुद्र के किनारे ऊँचाई एकदम कम हो जाती है परंतु दक्षिण तथा दक्षिण पश्चिम में ढाल क्रमिक है।

एटना ज्वालामुखी (१०,९५८ फुट) यहाँ के धरातल का एक मुख्य अंग है। इसमें लावा और राख की परतें पाई जाती हैं। ४००० फुट की ऊँचाई तक का भूभाग अत्यंत उपजाऊ तथा घना बसा है। ढालो पर अगूर की वेलें और सिटरम, उत्तर व पश्चिम ढालो पर जैतून और अन्नादि पैदा होते हैं। ४००० फुट — ६००० फुट के बीच मध्य जगल है जिसमें ओक, चेस्टनस, वर्च आदि के वृक्ष, ६००० फुट — ९००० फुट के मध्य कँटीली झाड़ियाँ और ९००० फुट के उपर केवल लावा और राख पाए जाते हैं। एटना के उत्तर में पेलोरिटनी (Peloritani), नेव्रोड़ी तथा मदोनी पर्वतो की शृंखला है। निम्न मोंटी इरी पहाड़ी, जो गगी से दक्षिण पूर्व दिशा मे फैली है, सिसली जलडमरूमध्य और आयोनियन सागर के मध्य जलविभाजक रेखा का कार्य करती है। पश्चिम में समुद्रतट तक फैली हुई पहाड़ियो के मध्य तटीय मैदान हैं।

जलवायु — भूमध्यसागरीय है, तापमान ऊँचे रहते हैं। जाड़ो में तट का तापक्रम १०° सें० और अंदर के क्षेत्रो का ४·५ सें० से अधिक रहता है। गर्मियो में तटवर्ती भागो का औसत ताप २४° से २९° सें० तथा अधिकतम ३८° सें० तक पहुँच जाता है। वर्षा जाड़ो मे, जिसकी मात्रा उत्तर, दक्षिण तथा मध्य मे ७२·५ सेमी० से कम और सूदूर दक्षिण में ४३ सेंमी से भी कम है। सिरोको वायु का अस्वास्थ्यप्रद एवं हानिकारक प्रभाव भी पड़ता है।

प्राकृतिक वनस्पति — प्राकृतिक वनस्पति अब अधिकाशत: नष्ट हो चुकी है। केवल पहाड़ो की ढालो पर द्वीप के ३½ प्रतिशत भाग में जंगल हैं जिसमे बीच, वर्च, ओक और चेस्टनेट के वृक्ष पाए जाते हैं।

कृषि तथा मत्स्य व्यवसाय — सिसली में लगभग ७७% क्षेत्र में खेती होती है परंतु अपर्याप्त जलपूर्ति, कृषि के प्राचीन ढंग आदि के कारण प्रति एकड़ पैदावार कम है। खेती गहरी और विस्तृत दोनो ढंग से होती है। तटवर्ती क्षेत्रो में गहरी खेती होती है जिसमे फलो के वृक्षो के बाग, अगूर की वेलो, तरकारियो तथा अनाज के खेत पाए जाते हैं। यहाँ की मुख्य उपज नीवू, नासपाती, खट्टे रस के फल, अखरोट, अंगूर, बीन, जैतून के आदि फल, टमाटर और आलू आदि तरकारियाँ उत्पन्न होती हैं। खेत छोटे छोटे हैं।

अंतर्देशीय भाग मे विस्तृत खेती होती है जहाँ की मुख्य उपज गेहूँ है, इसके अतिरिक्त सेम, कपास आदि का भी उत्पादन होता है।

यहाँ गाय, बैल, गधा, भेड़, बकरियाँ होती हैं। चरागाह कम हैं और चारे की कमी रहती है जिसका अधिकाशत. निर्यात होता है।

उद्योग — मछली, फल और तरकारियो को डिब्बो मे बद करने के उद्योग का विकास सन् १९४५ के पश्चात् हुआ। इस समय कृषि उद्योग अधिक विकसित है। फलों का रस तथा उनका तत्व निकालने, खट्टे फलो से अम्ल बनाने, शराब बनाने, जैतून का तेल निकालने और आटा पीसने का कार्य होता है। नमक समुद्र तथा पर्वतो से निकाला जाता है। इसके अतिरिक्त जहाज और सीमेंट बनाने का भी कार्य होता है।

यातायात के साधन — पालेरेमो (Palermo) मसीना और कटनिया (Catania) सिसली के मुख्य बंदरगाह हैं जो रेलमार्ग द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। एक रेलमार्ग उत्तरी तट पर पलेरमो से मसीना तक, दूसरा पूर्वी तट पर मसीना से कटनिया और सिराक्यूज (Syracuse) तथा तीसरा अंदर की तथा कटनिया से एना (Enna) होता हुआ पलेरमो को जाता है। इसके अतिरिक्त सड़कें भी इन नगरो को संबद्ध करती हैं। इन नगरो का इटली से संबंध स्टीमर और पुलो के द्वारा है।

जनसंख्या और नगर — जनसख्या ४४,६२,२२० (१९५१)। जनसख्या का वितरण असमान है। तटीय भाग और एटना के आसपास घनत्व ४०० से २,६०० व्यक्ति प्रति वर्ग मील तथा अंदर के भागो में विशेष कम है। पलेरमो, कटनिया, मसीना और ट्रेपनी (Trapni) आदि बड़े नगर यही हैं। अधिकतर लोग इन्ही नगरो में रहते हैं। आतरिक और दक्षिणी भाग में अधिकाशत: लोग ५,००० से लेकर ५०,००० तक की जनसख्यावाले नगरो में रहते हैं।

सिसली के निवासियों की औसत ऊँचाई ५' २" है। उनकी आँखे और बाल काले होते हैं। इनकी भाषा इटली से भिन्न है। लोग अंधविश्वासी तथा गरीब हैं, अतिथि का स्वागत एव आदर करते हैं।

पलेरमो, कटनिया और मसीना मे विश्वविद्यालय हैं। चर्च कई नगरो में हैं। द्वीप में ९ प्रांत हैं। पलेरमो इसकी राजधानी है।

[सु० च० श०]

सिहोर (Sehore) १. जिला, यह मध्यप्रदेश मे स्थित है जिसका क्षेत्रफल ३,६०० वर्गमील एवं जनसंख्या ७,५४,६८४ (१९६१) है। इसके उत्तर पूर्व में विदिशा, उत्तर में गुना, उत्तर पश्चिम मे राजगढ, पश्चिम में शाजापुर, पश्चिम दक्षिण में देवास, दक्षिण पूर्व में होशंगाबाद एवं पूर्व में रायसेन जिले हैं।

होती है। नीली रेखाओं के अतिरिक्त तीन हरी, दो पीली और दो नारंगी रंग की रेखाएँ भी पाई जाती हैं। रेडियो नली या वाल्व एवं प्रकाशविद्युत् सेलों के निर्माण में इसका महत्वपूर्ण उपयोग है। [स०व०]

सीटो (साउथ ईस्ट एशिया ट्रीटी आर्गेनाइजेशन) फिलिपीन की राजधानी मनीला में सितंबर, १९५४ ई० में ८ देशों ने एक सैनिक समझौता किया जिसे सीटो (दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन) की संज्ञा दी गई। प्रारंभिक वर्षों मे समाचारपत्रों की भाषा में इसे '*मनीला समझौता*' भी कहा गया, किंतु बाद मे सीटो ने अधिक प्रचलन पाया और अब यह उसी नाम से जाना जाता है। इस समझौते में जो देश शामिल हुए उनके नाम हैं—फ्रांस, न्यूजीलैंड, पाकिस्तान, फिलिपीन, थाईलैंड (स्याम), ब्रिटेन और अमरीका। इस समझौते की पृष्ठभूमि में इससे पूर्व जेनेवा में हुआ ९ राष्ट्रों का वह समेलन था जिसके फलस्वरूप औपचारिक रूप से हिंदचीन-युद्ध का अंत हुआ था। जेनेवा समझौता, दिया विर्यां फू में हुई फ्रांस की पराजय के कारण पश्चिमी राष्ट्रों पर लादा गया समझौता था इसलिये उन देशों के युद्धविशेषज्ञों ने यह नया समझौता कम्युनिस्टों का मुकाबला करने के लिये किया। इस समझौते के मुख्य समर्थक तत्कालीन अमरीकी परराष्ट्र सचिव जान फास्टर डलेस थे। उनका कहना था कि 'यदि संपूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया को बचाया जा सके तो उसे बचाया जाय और ऐसा संभव न हो तो उसके कुछ महत्वपूर्ण भागों की रक्षा अवश्य की जाय।' श्री डलेस को आस्ट्रेलिया के प्रतिनिधि श्री रिचर्ड केसी का समर्थन प्राप्त हुआ। ब्रिटेन की ओर से *विंस्टन चर्चिल साम्यवाद के खिलाफ एक एशियाई समझौते के विचार* को पहले ही स्वीकार कर चुके थे। परिणामस्वरूप वाशिंगटन में मनीला समझौते का मसौदा तैयार करने के लिये एक दल नियुक्त किया गया। उस दल ने समझौते की जो रूपरेखा तैयार की, आमतौर से उसी की पुष्टि की गई। इसका प्रधान कार्यालय बैंकाक में है। कार्यालय सदस्य देशों की सहायता से चलता है। यद्यपि सीटो का अस्तित्व आज तक कायम है तथापि सदस्यों में मतभेद के कारण आज तक यह अपने लक्ष्य की न तो पूर्ति कर सका है और न परीक्षा की घड़ियों मे खरा उतरा है। [च० शे० मि०]

सीढ़ी या सोपान किसी भवन के भिन्न भिन्न ऊपरी तलों पर पहुँचने के लिये श्रेणीबद्ध पैड़ियाँ होती हैं। लकड़ी, बाँस आदि की *सुवाह्य सीढ़ियाँ आवश्यकतानुसार* कहीं भी लगाई जा सकती हैं। इनमें प्रायः ढाल में रखी हुई दो बल्लियाँ या बाँस होते हैं, जो सुविधाजनक अंतर पर डंडों द्वारा जुड़े रहते हैं। डंडों पर ही पैर रखकर ऊपर चढ़ते हैं। सहारे के लिये हाथ से भी डंडा ही पकड़ा जाता है किंतु यदि ये स्थायी होती हैं तो कभी कभी इनमें एक ओर या दोनों ओर हाथ पट्टी भी लगा दी जाती है।

आवास गृह में यदि ऊपरी तल में कुछ कमरे नितांत एकांतिक हो तो सोपान कक्ष मुख्य प्रवेश के निकट, किंतु गोपनीयता के लिये कुछ ओट में, होना चाहिए। सार्वजनिक भवन में इनकी स्थिति प्रवेश द्वार से दिखाई देनी चाहिए। सोपान कक्ष यथासंभव भवन के बीच में रखने से प्रत्येक तलपर मुख्य कक्षों के द्वार इसके समीप रहते हैं। स्थान की बचत के लिये, संवातन और निर्माण की सरलता के लिये सोपान प्रायः किसी दीवार के साथ लगा दिए जाते हैं। सोपान कक्ष भली भाँति प्रकाशित और सुसंवातित होना चाहिए।

सोपानों के प्रकार — सोपान लकड़ी, पत्थर, कंक्रीट (सादी अथवा प्रबलित), सामान्य इस्पात, अथवा ढले लोहे के घुमावदार या सीधे बने होते हैं। स्थानीय आवश्यकता, निर्माण सामग्री तथा कारीगरी की कुशलता के अनुसार ये भिन्न होते हैं। सबसे सरल सीधी सीढ़ी में सभी पैड़ियाँ एक ही दिशा में जाती हैं। इसमें केवल एक ही पंक्ति या विशेष स्थितियों मे दो पंक्तियाँ होती हैं। यह लंबे सँकरे सोपान कक्ष के लिये उपयुक्त होती हैं। यदि अगली पंक्ति पिछली पंक्ति की उलटी दिशा में उठती हो, और ऊपरी पंक्ति की पैड़ियों के बाहरी सिरे निचली पंक्ति की पैड़ियों के बाहरी सिरों के ठीक ऊपर हो तो वह लहरिया सोपान होगा। कूपक सीढ़ी वह है जिसमे पीछेवाली तथा आगेवाली सोपान पंक्तियों के बीच एक चौकोर कूप या खुला स्थान होता है। इस सोपान कक्ष की चौड़ाई सोपान की चौड़ाई के दूने तथा कूप की चौड़ाई के योग के बराबर होगी। यह सोपान का अत्यंत सुविधाजनक रूप है। निरंतर सोपान वह है जिसमे पिछली और अगली पंक्तियों के बीच कूप में मोड़ दे दिया जाता है, और मोड़ में घुमावदार पैड़ियाँ होती हैं जो वक्रता के केंद्र से अपसृत होती हैं। गोल सोपान प्रायः पत्थर, प्रबलित सीमेंट कंक्रीट, अथवा लोहे के होते हैं और वृत्ताकार सोपानकक्ष में बनाए जाते हैं। सभी पैड़ियाँ घुमावदार होती हैं, जो केंद्र में स्थित किसी खंभे पर आलंबित हो सकती हैं, या बीच मे एक गोल कूप हो सकता है। यदि सभी पैड़ियाँ केंद्रीय खंभे से अपसृत होती हैं तो वह कुंडल सोपान या सर्किल सोपान कहलाता है। लोहे के और कभी कभी प्र० सी० कं० के भी कुंडल सोपान आवश्यकतानुसार कक्ष के भीतर नहीं भी घिरे हो सकते। ये बहुत कम स्थान घेरते हैं, अतः पिछले प्रवेशद्वार के लिये बहुत उपयुक्त होते हैं।

सोपानों की आयोजना एवं अभिकल्पन — उपलब्ध स्थान और तलों के बीच की ऊँचाई मालूम करने के बाद यह निश्चित करना चाहिए कि सोपान का प्रकार क्या होगा और द्वारों, मोखों गलियारों तथा खिड़कियों की स्थिति का ध्यान रखते हुए प्रथम तथा अंतिम अड्डे किन स्थानों के आस पास रखे जा सकते हैं। अड्डे की सुविधाजनक ऊँचाई ५" से ८" तक समझी जाती है। तलों के बीच की ऊँचाई में अड्डे की ऊँचाई का भाग देने से अड्डों की संख्या निकलेगी। पदतल गिनती में अड्डों से एक कम होंगे। ये चौड़ाई में ९" से १३" तक होने चाहिए। चाल प्रायः निम्नलिखित किसी नियम के अनुसार निश्चित की जाती है :

१ — चाल × अड्डा (दोनों इंचों मे) = ६६

२ — २ × अड्डा + चाल (दोनों इंचों मे) = २४

३ — १२" चाल और ५" उठान को मानक मानकर चाल में प्रति इंच कमी के लिये उठान मे ½" जोड़ दें।

आवास गृहों में १०" × ६½" और सार्वजनिक भवनों में ११" × ६" अथवा १२" × ५½" प्रचलित माप है। वास्तविक माप परिस्थितियों

के वास्तविक नियन्त्रण से परे थे। पांपे को स्पेन के दो प्रांतों का गवर्नर नियुक्त किया गया, क्रेसस को पूर्वी सीमांत प्रांत सीरिया का गवर्नर बनाया गया। गॉल सीजर की ही कमान मे रखा गया। पांपे ने अपने प्रांत स्पेन की कमान का संचालन अपने प्रतिनिधियो द्वारा किया और स्वयं रोम के निकट रहा ताकि केंद्र की राजनीतिक स्थितियो पर दृष्टि रखे। क्रैसस पारथिया के राज्य पर आक्रमण करते समय युद्ध में मारा गया। पांपे तथा सीजर में एकच्छत्र सत्ता हथियाने के लिये तनाव तथा स्पर्धा के कारण युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई। पांपे सीज़र से खिचने लगा और 'सिनेटोरियल अल्पतन्त्र दल' से समझौता करने की सोचने लगा। सिनेट ने आदेश दिया कि सीज़र द्वितीय कौंसल के रूप मे निर्वाचित होने से पूर्व, जिसका उसको पहले आश्वासन दिया जा चुका था, अपनी गॉल की कमान से त्यागपत्र दे। किंतु पांपे, जिसे ५२ ई० पूर्व में अवैधानिक रूप से तृतीय कौंसल का पद प्रदान कर दिया गया था, अपने स्पेन के प्रांतो तथा सेनाओं को अपने अधिकार मे ही रखे रहा। फलतः सीज़र ने खिन्न होकर गृहयुद्ध छेड़ दिया और यह दावा किया कि वह यह कदम अपने अधिकारो, सम्मान और रोमन लोगो की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये उठा रहा है। उसके विरोधियो का नेतृत्व पांपे कर रहा था।

पांपे तथा रोमन सरकार के पास इटली में बहुत थोडे से ही अनुभवी सैनिक थे इसलिये उन्होने रोम खाली कर दिया और सीज़र ने राजधानी पर बिना किसी विरोध के अधिकार जमा लिया। सीज़र ने शासनसत्ता पूर्ण रूप से अपने हाथ में ले ली परतु पांपे से उसे अब भी खतरा था। सीज़र ने पर्वतो को पार करके थेसाली (Thessaly) में प्रवेश किया और ४८ ई० पू० की ग्रीष्म ऋतु में फारसेलीस (Pharsalees) के निकट पांपे को बुरी तरह परास्त किया। पांपे मिस्र भाग गया जहाँ पहुँचते ही उसका वध कर दिया गया।

सीज़र जब एक छोटी सी सेना लेकर उसका पीछा कर रहा था उसी समय एक नई समस्या मे उलझ गया। मिस्र के सम्राट् टॉलेमी दसवें की मृत्यु के बाद उसकी संतानो मे राज्य के लिये झगडा चल रहा था। सीज़र ने उसकी सबसे ज्येष्ठ संतान क्लिओपैट्रा (Cleopatra) का उसके भाई के विरुद्ध पक्ष लेने का निर्णय किया। परंतु मिस्र की सेना ने उसपर आक्रमण किया और ४८-४७ ई० पू० के शीत काल मे सिकंदरिया के राजप्रासाद मे उसे (सीज़र को) घेर लिया। एशिया तथा सीरिया में भरती किए गए सैनिको की सहायता से सीज़र वहाँ से निकल भागा और फिर क्लिओपैट्रा को राज्यासीन किया (क्लिओपैट्रा ने उससे एक पुत्र को भी थोडे समय बाद जन्म दिया)। सीज़र ने तत्पश्चात् ट्यूनीशिया में पांपे की सेनाओ को पराजित किया। ४५ ई० पू० के शरदकाल में वह रोम लौट आया ताकि अपनी विजयो पर खुशियाँ मनाए और गणतन्त्र के भावी प्रशासन के लिये योजनाएँ पूरी करे।

यद्यपि सिनेट की बैठक रोम में होती रही होगी तथापि राजसत्ता का वास्तविक केंद्र सीज़र के मुख्यावास पर ही था। कई बार उसे तानाशाह की उपाधि भी दी जा चुकी थी, जो एक अस्थायी सत्ता होती थी और किसी विषम परिस्थिति का सामना करने के लिये होती थी। अब उसने इस उपाधि को आजीवन धारण करने का निश्चय किया, जिसका अर्थ वास्तव में यही था कि वह राज्य के समस्त अधिकारियों तथा संस्थाओं पर सर्वाधिकार रखे और उनका राजा कहलाए।

तानाशाह का रूप धारण करना ही सीज़र की मृत्यु का कारण हुआ। एकच्छत्र राज्य की घोषणा का अर्थ गणतन्त्र का अंत था और गणतन्त्र के अंत होने का अर्थ था रिपब्लिकन संभ्रांत समुदाय के आधिपत्य का अंत। इसीलिये उन लोगों ने षड्यन्त्र रचना आरंभ कर दिया। षड्यन्त्रकारियो का नेता मार्कस ब्रूटस बना जो अपनी निःस्वार्थ देशभक्ति के लिये प्रसिद्ध था। परंतु इसके अनुयायी अधिकांशतः व्यक्तिगत ईर्ष्या तथा द्वेष से प्रेरित थे। १५ मार्च, ४४ ई० पू० को जब सीनेट की बैठक चल रही थी तब ये लोग सीज़र पर टूट पड़े और उसका वध कर दिया। इस मास का यह दिन उसके लिये अशुभ होगा, इसकी चेतावनी उसे दे दी गई थी।

सं० ग्रं० — फाउलर, डब्ल्यू० वार्ड : जूलियस सीज़र, होम्स, टी० राइस : सीज़र्स कान्क्वेस्ट ऑव गाल्स, दि रोमन रिपब्लिक ऐंड फाउंडर ऑव दि एंपायर; बूखन, जे. : जूलियस सीज़र, कैंब्रिज एंशेंट हिस्ट्री। [सं० अ० अ० रि०]

सीज़ियम (Caesium) अल्कली समूह का धातु है। इसका संकेत, सी॰ C_s, परमाणुसंख्या ५५, परमाणुभार १३२ ८१ है। इसका आविष्कार बुनसेन द्वारा १८३० ई० मे हुआ था। इसके वर्णपट में उन्होने दो चमकीली नीली रेखाएँ देखी थी। ग्रीक शब्द सीज़ियम का अर्थ है आस्मानी नीला, इसी से इसका नाम सीज़ियम रखा गया। इसका प्रमुख खनिज पोलूसाइट (Pollucite) है। यह ऐल्यूमिनियम और सीज़ियम का सिलिकेट है। इसमे सीजियम आक्साइड ३१ से ३७ प्रतिशत रहता है। पोलूसाइट पर हाइड्रोक्लोरिक या नाइट्रिक अम्ल की क्रिया से सीज़ियम घुल जाता है। विलयन मे ऐंटीमनी क्लोराइड के डालने से अविलेय युग्म क्लोराइड के अवक्षेप प्राप्त होते हैं। अन्य अनेक खनिजो जैसे लेपिडोलाइट (Lepidolite), ल्यूसाइट (Leucite), पैटाटाइट (Petatite), ट्राइफिलिन (Triphylline) और कार्नेलाइट (Carnellite) मे भी सीज़ियम पाया गया है। खनिजो से सीज़ियम का पृथक्करण कठिन और व्ययसाध्य है। लेपिडोलाइट से लिथियम निकाल लेने पर रुबीडियम और सीज़ियम बच जाते हैं। उनको युग्म प्लाटिनिक क्लोराइड बनाकर उसके प्रभाजक क्रिस्टलन से ये पृथक् किए जाते हैं। सीज़ियम क्लोराइड को कैलसियम धातु के साथ आसवन से सीज़ियम धातु प्राप्त होती है। धातु चाँदी सी सफेद होती है, वायु मे जलती है और पानी से जल्द आक्रांत होती है। धातु २६°—२७° सें० पर पिघलती और ६९०° सें० पर उबलती है। इसका विशिष्ट गुरुत्व १५° सें० पर १ ८८ है। इसके हाइड्राक्साइड, क्लोराइड, ब्रोमाइड, आयोडाइड और पोटैशियम लवणो के सदृश होते हैं। इसके सल्फेट, नाइट्रेट, कार्बोनेट और ऐलम भी प्राप्त हुए हैं। यह एकसंयोजक लवण बनाता है। इसके संकीर्ण लवण ($C_s\,J_3$, $C_s\,Cl_2\,I$ आदि) भी बनते हैं। इसके वर्णपट मे दो चमकीली नीली रेखाओ से इसकी पहचान सरलता से

लिया और हटाकर दूसरे स्थान पर रख दिया। जनक को इसपर बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने घोषणा की कि जो राजा इस धनुष को तोड देगा उसी के साथ सीता का विवाह कर दिया जायगा। स्वयंवर में बड़े बड़े प्रतापी और बली राजा उपस्थित हुए किंतु कोई भी धनुष को उठा तक न सका। इस सभा मे उपस्थित होकर राम ने शिव धनुष को भंग कर दिया और 'त्रिभुवन जय समेत' सीता का वरण किया।

वनवास — पिता की आज्ञा से राम जब वनवास के लिये जाने लगे तब उन्होंने सीता को अयोध्या में ही रहने के लिये बहुत समझाया पर वे न मानीं। उनका तर्क था 'जिय बिन देह, नदी बिन वारी। तैसिय नाथ पुरुष बिन नारी', 'चंद्र को त्याग कर चद्रिका कैसे रह सकती है, इसलिये मुझे यहाँ न छोडिए, साथ में ले चलिए।' सीता ने यह भी कहा कि 'जब दिन भर की यात्रा के बाद आप थक जाएँगे, तब मैं सम धरती पर पेड के कोमल पत्ते बिछाकर रात्रि भर आप के चरण दाबकर सारी थकावट दूर कर दूँगी। सुकुमारता के तर्क को उलटे राम पर ही डालते हुए उन्होंने कहा 'मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहँ भोगू।' इन व्यग्योक्ति का उत्तर राम न दे सके और उन्होंने सीता को साथ में चलने की अनुमति दे दी।

अयोध्या और मिथिला का सारा वैभव तथा सुख सुविधाएँ छोड-कर वे पति के साथ जगल जंगल भटकती रहीं और उन्होंने अपनी सेवापरायणता से राम को वन्य जीवन के कष्टों की अनुभूति न होने दी। पचवटी में निवास करते समय रावण द्वारा प्रेषित कपट-मृग का पीछा करते हुए राम जब दूर निकल गए और सीता के आग्रह करने पर लक्ष्मण भी जब उनकी सहायता के लिये चल पडे, तब मौका पाकर रावण ने सीता का अपहरण किया और उन्हे लका ले जाकर अशोक वाटिका में राक्षसियो के पहरे में रख दिया। सीता के वियोग से राम अत्यत व्याकुल हो उठे और उन्हे ढूंढते हुए किष्किंधा जा पहुँचे, जहाँ सुग्रीव की सहायता से उन्होंने वानरों की एक बडी सेना इकट्ठी की और दैत्यराज रावण पर चढाई कर दी।

रावण के मारे जाने पर सीता जब राम के पास लौट आई तो लोकापवाद के भय से उन्होंने सीता की अग्निपरीक्षा लेनी चाही। सीता इसके लिये तुरत तैयार हो गई और वे इस परीक्षा में पूर्णतः उत्तीर्ण हुई। राम का राज्याभिषेक होने के बाद कुछ वर्ष ही वे सुखपूर्वक बिता पाई थीं कि लोकचर्चा से राजकुल के कलकित होने की आशका देखकर राम ने उनके परित्याग का निश्चय किया। राम के आदेश से लक्ष्मण उन्हें वाल्मीकि-आश्रम के निकट छोड आए। ऋषि ने उन्हें संरक्षण प्रदान किया और यहीं लव और कुश नाम के दो उज्वल पुत्रों को सीता ने जन्म दिया।

राम ने छाती पर वज्र रखकर राजा के कठोर कर्तव्य का पालन तो किया किंतु इस घटना ने उनके जीवन को अत्यंत दु खपूर्ण तथा नीरस बना दिया। निदान लव और कुश के बडे होने पर जब वाल्मीकि ऋषि ने सीता की पवित्रता और निर्दोषता की दुहाई देते हुए राम से उन्हें पुन अंगीकार करने का आग्रह किया तो लोक-लाछन के परिमार्जन का विश्वास हो जाने पर राम ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया किंतु सीता अपमान और मिथ्यापवाद के इस दूसरे प्रसग से इतनी मर्माहत हो चुकी थीं कि उन्होने लव और कुश को पिता का सामीप्य प्राप्त होने पर इस नश्वर शरीर को त्याग देने का निश्चय किया। उन्होंने पृथ्वी माता से प्रार्थना की :

मनसा कर्मणा वाचा यदि रामं समचये।
तदा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥

'यदि मन से, कर्म से और वाणी से मैंने राम के सिवा अन्य किसी पुरुष का चिंतन न किया हो तो पृथ्वी माता तुम फटकर मुझे स्थान दो।' सीता के जीवन का यह अत देखकर सहसा यही कहना पडता है — अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी। [मु॰]

सीतापुर १. जिला, यह भारत के उत्तरप्रदेश राज्य का जिला है जिसका क्षेत्रफल ५,७५० वर्ग किमी एवं जनसंख्या १६,०८,०५७ (१९६१) है। उत्तर में खीरी, पश्चिम एव पश्चिम दक्षिण में हरदोई, दक्षिण में लखनऊ, दक्षिण पूर्व में बाराबंकी और पूर्व एवं उत्तर पूर्व में बहराइच जिले हैं। जिले का पूर्वी भाग नीचा एव आर्द्र क्षेत्र है जिसका अधिकाश भाग वर्षाकाल में पानी मे डूबा रहता है पर जिले का शेष भाग ऊँचा है। निचले क्षेत्र की नदियो का मार्ग परिवर्तनशील है पर ऊँचे क्षेत्र की नदियो का मार्ग अधिक स्थायी है। गोमती और घाघरा या कौड़िया नदियाँ, जो क्रमश. पश्चिमी एव पूर्वी सीमाएँ बनाती हैं, नौगम्य हैं। ऊँचे क्षेत्र का जल-निकास मुख्यत कथना एवं सरायान नदियो द्वारा होता है जो गोमती की सहायक नदियाँ हैं। निचले भूभाग के मध्य से शारदा नदी की एक शाखा चौका बहती है। शारदा की दूसरी शाखा दहावर जिले के उत्तरी पूर्वी कोनों को खीरी जिले से अलग करती है। शीशम, तुन, आम, कटहल और एक प्रकार की झरबेरी यहाँ की प्रमुख वनस्पतियाँ हैं तथा शीशम एव तुन इमारती लकडी के प्रमुख वृक्ष हैं। अजीर, अकेशा, एवं बाँस की कई जातियाँ यहाँ होती हैं। यहाँ की नदियो में मगर, सूँस तथा पर्याप्त परिमाण में मछलियाँ मिलती हैं भेडिया, बनबिलाव, गीदड, लोमडी, नीलगाय एव बारहसिंगा यहाँ के वन्य प्राणी हैं। यहाँ की वार्षिक वर्षा ९९५ मिमी॰ है। जिले की बलुआ मिट्टी में बाजरा और जौ तथा उपजाऊ चिकनी मिट्टी में गन्ना, गेहूँ और मक्का उगाए जाते हैं। चौका नदी के पश्चिमी भूभाग मे धान की खेती की जाती है। ककड या कैल्सियमी चूना पत्थर एकमात्र खनिज है जो खड के रूप में मिलता है।

२. नगर, स्थिति . २७°३४' उ॰ अ॰ तथा ८०°४०' पू॰ दे॰। यह नगर उपर्युक्त जिले का प्रशासनिक केंद्र है जो लखनऊ एवं शाहजहाँपुर मार्ग के मध्य में सरायान नदी के किनारे पर स्थित है। नगर में भारतप्रसिद्ध नेत्र अस्पताल है, यहाँ की जनसख्या ५३,८८४ (१९६१) है। नगर में प्लाइवुड निर्माण का एक कारखाना भी है। [अ॰ ना॰ मे॰]

इतिहास — सीतापुर के विषय मे अनुश्रुति यह है कि राम और सीता ने अपनी वनयात्रा के समय यहाँ प्रवास किया था। आगे चलकर राजा विक्रमादित्य ने इस स्थान पर एक नगर बसाया जो सीता के नाम पर बसा (इंपीरियल गजेटियर ऑव इ डिया)।

पर निर्भर है, किंतु यह महत्वपूर्ण है कि एक बार जो उठान एवं चाल नियत हो जाय, वह सारे सोपान मे नही तो कम से कम एक सोपान पंक्ति मे अपरिवर्तित रखी जाय ।

सोपान की चौडाई २' ६" से कम न होनी चाहिए और ऊपर कम से कम ७' का सिर बचाव देना चाहिए । एक पंक्ति में १२ पैडियो से अधिक न होनी चाहिए । १५ से अधिक होने पर चढने में थकान आती है और उतरने मे कुछ कठिनाई होती है । किसी पंक्ति में तीन से कम पैडियाँ भी नही होनी चाहिए । घुमावदार पैडियाँ सोपानपंक्ति कही जाती है। पदतल की बाहर निकली हुई कोर, जो प्राय . गोल होती है, 'नोक' कहलाती है और नोकों को मिलानेवाली सोपान की ढाल के समातर कल्पित रेखा 'ढाल रेखा' होती है। सोपानपंक्ति और चौकी के अथवा एक सोपानपंक्ति और दूसरी के संगम पर बना हुआ खभा 'थंबा' कहलाता है। पैडियो के बाहरी सिरे पर गिरने से बचने के लिये ढाई तीन फुट ऊँची ठोस या झिझरदार रोक 'रेलिंग' कहलाती है और उसके ऊपर हाथ रखने के लिये लकडी, लोहे, पत्थर या रेलिंग के पदार्थ की ही
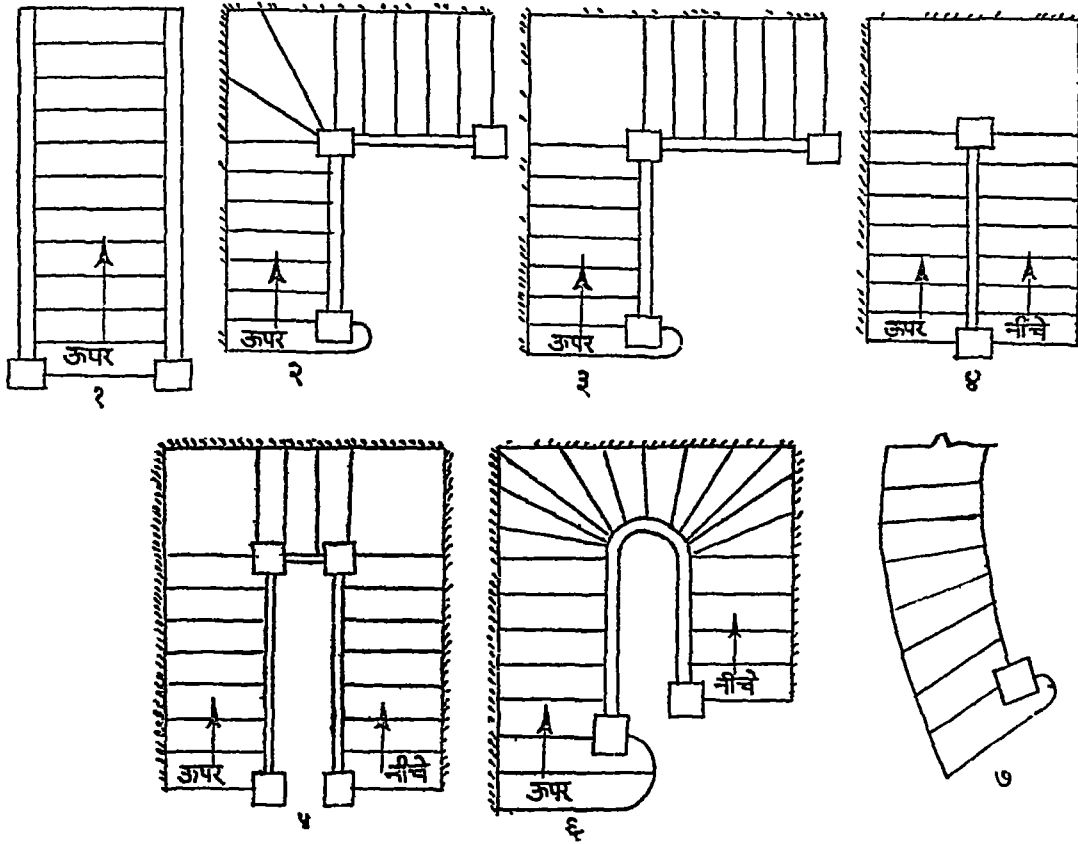
विविध प्रकार की सीढ़ियाँ

न हो तो अच्छा किंतु यदि अनिवार्य ही हो तो पंक्ति मे नीचे की ओर रखनी चाहिए । चौकियो की चौडाई सोपान की चौडाई से कम नहीं होनी चाहिए ।

तकनीकी पद — 'पदतल' पैडी का क्षैतिज भाग है और 'अड्डा' उसका उदग्र भाग । 'उठान' दो क्रमिक पैडियो के ऊपरी पृष्ठो के बीच का उदग्र अंतर है और चाल दो क्रमिक अड्डो के मुखो के बीच का क्षैतिज अंतर । 'सादा पैडी' तलचित्र में आयताकार होती है, और 'घुमावदार पैडी' सोपान की दिशा बदलने के लिये बनाई जाती है, तथा तलचित्र में प्रायः तिकोनी होती है । कई घुमावदार पैडियो के बीच-वाली पैडी जिसकी आकृति पतंग जैसी होती है, 'पतंगी पैड़ी' कहलाती है । किसी पंक्ति की निम्नतम पैडी कभी कभी बाहरी सिरे पर कुडल कर दी जाती है, यह 'कुडल पैडी' कहलाती है । 'चौकी' पैडियो की किसी श्रेणी के ऊपर का चपटा मंच है । यदि यह सोपानकक्ष के आर पार हो तो 'पूरी चौकी' और यदि आधे में ही हो तो 'आधी चौकी' कहलाती है । दो चौकियो के मध्य पैड़ियो की एक श्रेणी

बनी हुई चिकनी पट्टी 'हाथपट्टी' कहलाती है । आज कल ऊँचे गगन-चुंबी भवनो में सीढी के स्थान पर लिफ्ट लगा रहता है ।

[वि० प्र० गु०]

सीता प्राचीन मिथिला के राजा जनक (सीरध्वज) की कन्या जो दाशरथि श्रीराम की सहधर्मिणी थी । 'सीता' का शाब्दिक अर्थ 'हल के फाल से खीची हुई रेखा' है । कहते हैं , मिथिला या विदेह राज्य मे एक बार घोर अकाल पडा और ज्योतिविदो ने यह मत प्रकट किया कि यदि राजा स्वय हल चलाना स्वीकार करें तो प्रभूत वर्षा होने की संभावना है । वाल्मीकि के मतानुसार यज्ञभूमि तैयार करने के लिये राजा जब हल चला रहे थे तब पृथ्वी के विदीर्ण होने पर एक छोटी सी कन्या उसमें से निकली जिसे जनक ने पुत्री रूप में ग्रहण किया । हल चलाने से बनी हुई रेखा से उत्पन्न होने के कारण कन्या का नाम सीता रखा गया ।

जनक के पास परशुराम का दिया हुआ एक शिव धनुष था जो वजन मे बहुत भारी था । सीता ने एक दिन उसे अनायास ही उठा

यह है कि प्रत्येक प्रविहित लघु $\epsilon > 0$ के लिये एक ऐसा पूर्णांक $n_0(\epsilon)$ अस्तित्वमय होगा कि समस्त $n \geqslant n_0(\epsilon)$ के लिये $|a_{r+p} - a_n| < \epsilon$ हो जिसमें $p = 1, 2, 3,$ है। यदि $\lim_{n\to\infty} a_n = a$, $\lim_{n\to\infty} b_n = b$ हो तो $\lim_{n\to\infty} (a_n \pm b_n) = a \pm b$, $\lim_{n\to\infty} a_n b_n = ab$ और $b \neq 0$ के लिये $\lim_{n\to\infty} a_n/b_n = a/b$ होगा।

यदि $f(x)$ x का एक फलन हो तो x के a की ओर अग्रसर होने पर $f(x)$ सीमा l की ओर अग्रसर होता कहा जाता है जब कि प्रविहित लघु $\epsilon > 0$ के लिये एक ऐसा $\delta = \delta(\epsilon)$ अस्तित्वमय हो कि $|x - a| \leqslant \delta$ होने पर ही $|f(x) - l| < \Sigma$ हो।

सीमा या सीमाबिंदु की उपरिलिखित परिभाषाएँ दूरी की धारणा पर निर्भर हैं। हम किसी बिंदु α के Σ – पडोस की व्याख्या $|x - \alpha| < \epsilon$ जैसे सबध की तुष्टि करनेवाले बिंदुओं x से करते हैं। बिंदु α किसी कुलक E का सीमाबिंदु तभी होता है जब कि α के प्रत्येक ϵ – पडोस में α के अतिरिक्त E का एक अन्य बिंदु भी हो। अब दूरी की धारणा से मुक्त सीमाबिंदु की व्याख्या की जायगी। माना कि A कोई कुलक है, $\{U\}$ A के उपकुलकों की ऐसी व्यवस्था है कि A का प्रत्येक बिंदु उस व्यवस्था के कम से कम एक उपकुलक में अवस्थित है और निम्नलिखित अनुबधों की तुष्टि होती है (१) मोघकुलक और स्वय A $\{U\}$ में हो (२) $\{U\}$ के दो सदस्यों का छेदन $\{U\}$ में स्थित हो, और (३) $\{U\}$ के सदस्यो की कितनी भी सख्या $\{U\}$ में हो। उपकुलकों की ऐसी कोई व्यवस्था $\{U\}$ A का स्थानत्व (Topology) और स्थानत्व $\{U\}$ सयुक्त कुलक A का स्थानावकाश (Topological space) T कहा जाता है। A के तत्व T के बिंदु, व्यवस्था $[U]$ के सदस्य T के खुले कुलक और A के उपकुलक T के उपकुलक कहलाते हैं। बिंदु $x \in T$ किसी उपकुलक $E \subset T$ का सीमाबिंदु कहा जाएगा यदि प्रत्येक खुले कुलक में जो x को धारण करता है x के अतिरिक्त E का एक अन्य बिंदु भी हो। यदि हम समस्त वास्तविक सख्याओं के कुलक को A द्वारा और खुले अतरालों को $\{U\}$ द्वारा निरूपित करें तो A एक स्थानावकाश हो जाएगा और हमें कुलक के सीमाबिंदु की पूर्वव्याख्या प्राप्त हो जायगी।

सं० ग्र० — बर्ट्रेंड रसल इंट्रोडक्शन टु मैथमैटिकल फिलोसफी (१९१९), जी० एच० हार्डी, प्योर मैथमैटिक्स (१९३५); ई० डब्ल्यू० हॉबसन : दि थ्योरी ऑव फंक्शंस ऑव ए रियल वैरिएबिल (प्रथम खड, १९२७); हॉल एवं स्पेंसर, ऐलीमेंटरी टॉपोलोजी (१९५५)। [स्व० मो० शा०]

सीमुक अथवा सीमुख पुराणों के अनुसार आंध्र सीमुख सुशर्मन् के अन्य भृत्यो की सहायता से काण्वायनों का नाश कर पृथ्वी पर राज्य करेगा। पुराणो द्वारा दी गई आंध्र वशावली के शासकों तथा उनके राज्यकाल को जोडने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सीमुक काण्वों के अंत (ई० पू० ४५) से लगभग दो शताब्दी पहले हुआ होगा और इसका मौर्य साम्राज्य के अंत में हाथ रहा होगा। पुराणों के अनुसार इसने २३ वर्ष राज्य किया। जैन स्रोतो के अनुसार उसने जैन तथा बौद्ध मंदिरो का निर्माण किया, किंतु अपने राज्यकाल के अंतिम समय अपनी निर्दयता के कारण उसका वध कर दिया गया।

सं० ग्र० — पार्जीटर : डाइनेस्टीज ऑव दी कलि एज, शास्त्री, के० ए० . दी काम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑव इंडिया, मजूमदार, आर० सी० . दी एज ऑव इंपीरियल यूनिटी। [बै० पु०]

सीमेंट, पोर्टलैंड (Portland Cement) के आविष्कार से पहले तक जोडने के काम में लाए जानेवाले पदार्थ साधारण चूना और बुझा चूना थे। पोर्टलैंड सीमेंट का आविष्कार एक अंग्रेज राज जोसेफ एस्पडिन (Joseph Aspdin) ने १८२४ ई० में किया। कठोर हो जाने के गुण तथा इंग्लैंड के पोर्टलैंड स्थान में पाई जानेवाली एक शिला के नाम पर इसका नाम 'पोर्टलैंड' सीमेंट पडा।

सीमेंट की विभिन्न किस्मे उपलब्ध हैं। साधारण निर्माण कार्य मे आम तौर पर पोर्टलैंड सीमेंट ही प्रयुक्त होता है।

पोर्टलैंड सीमेंट का निर्माण चूनापत्थर और जिप्सम के मिश्रण को एक निश्चित अनुपात में मिलाकर १४००° सें० ताप पर, जिस ताप पर प्रारंभिक गलन होता है, गरम करने से होता है। ऐसे प्राप्त अवशिष्ट राख (Clinker) को ठंढा कर, फिर पीसकर महीन चूर्ण बनाया जाता है जिसका ९०% भाग चलनी सख्या १७० (एक इंच में १७० छिद्र होते हैं) से छन जाता है। इन तीन कच्चे घटकों के अनुपात को समायोजित करने और अल्प मात्रा में अन्य रसायनको के मिला देने से सीमेंट की विभिन्न किस्में प्राप्त की जा सकती हैं।

पोर्टलैंड सीमेंट के बडे पैमाने पर निर्माण में जिन खनिजों का प्रयोग होता है उनमें सिलिका (SiO_2, २०—२५%), ऐल्युमिना (Al_2O_3, ४—८%), आइरन ऑक्साइड (Fe_2O_3, २—४%) चूना (६०—६५%), मैग्नीशिया (MgO, १—३%) हैं। इन्हें जलाने पर उनके बीच रासायनिक सयोजन होता है। सीमेंट के मुख्य घटक हैं, ट्राई कैलसियम सिलिकेट ($3CaO.SiO_2$), डाइ कैलसियम सिलिकेट ($2CaO_2.SiO_2$) तथा ट्राई कैलसियम ऐल्युमिनेट ($3CaO\,Al_2O_3$), इसके अतिरिक्त पीसने के पूर्व इसमें लगभग ३% जिप्सम ($CaSO_4\ 2H_2O$) मिलाने से सीमेंट की उत्कृष्टता बढ जाती है। इससे सीमेंट के जमने के समय पर नियत्रण रखा जा सकता है।

सीमेंट में पानी मिलाने से सीमेंट जमता और कठोर होता है। इसका कारण उसके उपर्युक्त घटकों का जलयोजन और जल अपघटन है। प्रारंभिक जमाव ऐल्युमिनेट के कारण तथा इसके बाद की प्रारंभिक मजबूती प्रधानतया ट्राइ सिलिकेट के कारण होती है। डाइसिलिकेट की क्रिया सबसे मद होती है। इसे मजबूती प्रदान करने में १४ से २८ दिन या इससे अधिक लग जाते हैं।

सीमेंट की किस्में

१. जल्द कठोर होनेवाला सीमेंट — बडा जल्द मजबूत हो जाता है यद्यपि इसका प्रारंभिक और अंतिम जमाव का समय सामान्य सीमेंट से कुछ अधिक होता है। इसमें ट्राइकैलसियम सिलिकेट अधिक होता है और यह अधिक महीन पीसा जाता है। ऊष्मा का

कुषण काल की संख्या में प्रायः संपूर्ण जिला भारशिव वान की इमारतों ग्रौर गुप्त तथा गुप्तप्रभावित मूर्तियों तथा इमारतों से भरा हुआ था। मनवां, हरगांव, बड़ा गांव, नसीराबाद ग्रादि पुरातात्विक महत्व के स्थान हैं। नैमिष ग्रौर मिसरिख पवित्र तीर्थस्थल हैं।

प्रारंभिक मुस्लिम काल के लक्षण केवल भग्न हिंदू मंदिरों ग्रौर मूर्तियों के रूप में ही उपलब्ध हैं। इस युग के ऐतिहासिक प्रमाण शेरशाह द्वारा निर्मित कुग्रों ग्रौर सड़कों के रूप मे दिखाई देते हैं। उस युग की मुख्य घटनाग्रों में से एक तो खैराबाद के निकट हुमायूँ ग्रौर शेरशाह के बीच ग्रौर दूसरी सुहेलदेव ग्रौर सैयद सालार के बीच बिसवाँ ग्रौर तंबौर के युद्ध हैं। सीतापुर के निकट स्थित खैराबाद मूलत प्राचीन हिंदू तीर्थ मानसछत्र था। मुस्लिम काल मे खैराबाद बाड़ी, बिसवाँ इत्यादि इस जिले के प्रमुख नगर थे। ब्रिटिश काल (१८५६) मे खैराबाद छोडकर जिले का केंद्र सीतापुर नगर में बनाया गया। सीतापुर का तरीनपुर मोहल्ला प्राचीन स्थान है।

सीतापुर का प्रथम उल्लेख राजा टोडरमल के बदोबस्त में छितियापुर के नाम से आता है। बहुत दिन तक इसे छीतापुर कहा जाता रहा, जो गाँवों में अब भी प्रचलित है। १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता सग्राम में सीतापुर का प्रमुख हाथ था। बाडी के निकट सर होपग्राट तथा फैजाबाद के मौलवी के बीच निर्णयात्मक युद्ध हुआ था।

सीतापुर गुड, गल्ला, दरी की बड़ी मडी है। यहाँ एक बहुत बडा आँख का अस्पताल, सैनिक छावनी तथा उत्तर एवं पूर्वोत्तर रेलवे के जंकशन हैं, प्लाईवुड ग्रौर तीन बड़े शक्कर के मिल हैं।

यहाँ के साहित्यकारों में 'सुदामाचरित्र' के रचयिता नरोत्तमदास (बाडी), लेखराज, द्विजराज, ब्रजराज, कृष्णबिहारी मिश्र, व्रजकिशोर मिश्र (गधौली), अनूप शर्मा (नवीनगर), तथा द्विज बलदेव (बलदेवनगर) उल्लेखनीय हैं। हिंदी सभा यहाँ की प्रमुख साहित्यिक संस्था है। [रा० पा०]

सीतामढ़ी बिहार के मुजफ्फरपुर जिले का सबसे उत्तरी प्रखंड है जो नेपाल से सटा हुआ है। इसकी जनसंख्या १३,८७,१८६ (१९६१) है। यहाँ बागमती तथा कमला नदियों की कई सहायक नदियों का जाल बिछा है। धान तथा ईख यहाँ की मुख्य उपज है। नदियों का बाहुल्य होने से यहाँ यातायात के साधन पूर्णत: विकसित नहीं है। उत्तरी पूर्वी रेलवे की सबसे उत्तरी लाइन इससे होकर जाती है जो दरभंगा तथा रक्सौल से संबंध स्थापित करती है। मुजफ्फरपुर —सीतामढ़ी प्रमुख सडक है। सीतामढी प्रमुख नगर तथा व्यावसायिक केंद्र है। नगर की जनसख्या १७,४४१ है। चैत की रामनवमी के अवसर पर एक बडा मेला यहाँ लगता है जिसे डुमरसढ का मेला कहते हैं। इस मेले में बहुत बडी सख्या में गाय ग्रौर बैल बिकते हैं। [ज० सिं०]

सीधी जिला, यह भारत के मध्यप्रदेश में स्थित है जिसका क्षेत्रफल ८,४०० वर्ग किमी एवं जनसख्या ५,८०,१२९ (१९६१) है। इसके उत्तर में रीवाँ, पश्चिम एवं पश्चिम दक्षिण में शहडोल, दक्षिण एवं दक्षिण पूर्व में सरगुजा जिले एव पूर्व तथा पूर्व उत्तर में उत्तर प्रदेश राज्य का मिर्जापुर जिला है। यहाँ का प्रशासनिक केंद्र सीधी नामक नगर में है जिसकी जनसख्या ५,०२१ (१९६१) है। [प्र० ना० मे०]

सीमा (limit) यह एक महत्वपूर्ण गणितीय विचारधारा है जिसका अभ्युदय अनेक ऐतिहासिक अवस्थाओं को पार करके हो सका। प्राचीन काल मे निःशेषण प्रणाली का वही स्थान था जो आजकल सीमा प्रणाली ने ग्रहण कर लिया है। उक्त प्रणाली इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है: यदि किसी परिमाण मे से आधी से अधिक मात्रा निकाल ली जाए तो अंत में अवशिष्ट परिमाण किसी पूर्वनिर्दिष्ट राशि से कम हो जायगा। इस सिद्धांत को यूक्लिड ने अपनी 'एलीमेंट्स' नामक रचना में बहुधा क्षेत्रफल ग्रौर आयतन ज्ञात करने के लिये प्रयुक्त किया है।

'सीमा' की धारणा चलन कलन ग्रौर चलराशि कलन मे अत्यंत महत्वपूर्ण है, वास्तव में यह उच्चतर गणितशास्त्र का आधार सीमा ही है। जॉन वालिस (१६१६-१७०३), ऑगस्टिन कोशी (१७८९-१८५७) आदि गणितज्ञों ने इस विचारधारा को विकसित किया है।

यदि कोई निश्चित वास्तविक संख्या x_n (सं० 'संख्या') प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक 1, 2, 3, से संबद्ध हो तो संख्याएँ एक अनुक्रम बनाती हैं। यदि $n \geqslant १$ के लिये $x_n \leqslant x_{n+1}$ हो तो यह अनुक्रम एकस्वन वृद्धिमय कहा जाता है ग्रौर यदि $x_n > x_{n+1}$ हो तो वह एकस्वन ह्रासमय कहा जाता है। n के अनत की ग्रोर अग्रसर होने पर अनुक्रम $\{x_n\}$ एक सीमा l की ग्रोर अग्रसर होता हुआ कहा जाएगा यदि किसी अविहित लघु राशि $\in$ के लिये ऐसी सख्या $n_o(\in)$ का अस्तित्व हो कि $n > n_o(\in)$ होने पर। $x_n - l| < \in$ हो, अर्थात् समस्त $n > n_0(\in)$ के लिये $l - e < x_n < l + \in$ हो। इसी प्रकार एक कुलक के सीमाबिंदु की व्याख्या की जा सकती है। वास्तविक सख्याग्रों अथवा किसी सरल रेखा पर अवस्थित किसी भी भाँति व्यक्त तत्सवर्ती बिंदुग्रों की व्यवस्था उन सख्याग्रों अथवा बिंदुग्रों का पुंज अथवा कुलक कहा जाता है। अनुक्रम एक अगणनशील कुलक होता है, अर्थात् एक ऐसा कुलक जिसके सदस्य धनात्मक पूर्णांकों के साथ एकैकी सवादिता रखते हैं। यदि एक कुलक E अनंत संख्यक बिंदुग्रों (जो E के तत्व कहे जाते हैं) से बना हो तो बिंदु α E का सीमाबिंदु कहा जाएगा यदि, $\in > 0$ चाहे कितना भी लघु हो, कुलक E का α के अतिरिक्त एक ऐसा बिंदु अस्तित्वमय हो जिसकी α से दूरी $\in$ कम हो। एक कुलक या अनुक्रम मे एक या अधिक सीमाबिंदु हो सकते हैं। यदि एक अनुक्रम $\{x_n\}$ में केवल एक सीमाबिंदु l हो तो n के अनत की ग्रोर अग्रसर होने पर $\{x_n\}$ सीमा l की ग्रोर अग्रसर होगा, अर्थात् वह अनुक्रम सीमा l की ग्रोर संसृत होगा ग्रौर हम $\lim_{n \to \infty} x_n = l$ लिखेंगे। वीयर्स्ट्रास ने सिद्ध किया है कि प्रत्येक परिमित अनंत कुलक मे कम से कम एक सीमाबिंदु होता है।

एकरूप वृद्धिमय अनुक्रम, जो उपरिबद्ध हो, संसृत होता है। इसी प्रकार एकरूप ह्रासमय अनुक्रम, जो अधोबद्ध हो, संसृत होता है। किसी अनुक्रम $\{s_n\}$ की संसृति के लिये आवश्यक एवं पर्याप्त अनुबंध

सीरियम पर गरम जल के प्रभाव से हाइड्रोजन निकलता है। शुद्ध धातु पर २६०° सें० ताप पर हाइड्रोजन प्रवाहित करने से सीरियम ट्राइहाइड्राइड और सीरियम डाईहाइड्राइड ($Ce H_3 + Ce H_2$) का मिश्रण प्राप्त होता है। २१०° सें० पर क्लोरीन बडी तीव्रता से क्रिया कर अजल सीरियम ट्राइक्लोराइड ($C_e Cl_3$) बनता है। तनु अथवा सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से जलीय सीरियम क्लोराइड आसानी से बनता है। यह सल्फर, सिलीनियम तथा टेल्यूरियम से मिलकर धातु के सल्फाइड, सेलीनाइड तथा टेल्यूराइड बनाता है। तनु सल्फ्यूरिक अम्ल का इसपर प्रभाव पडता है, परतु सान्द्र का कोई प्रभाव नही पडता। नाइट्रिक अम्ल सीरियम आक्साइड ($Ce O_2$) को अवक्षिप्त कर देता है। यह धातु नाइट्रोजन, फास्फोरस आर्सेनिक ऐंटीमनी और कार्बन के साथ अति तप्त करने पर क्रमश नाइट्राइड फॉसफाइड, आर्सीनाइड तथा कार्बाइड बनती है।

यह कई धातुओ के साथ मिलकर मिश्रधातुएँ बनाती है। मैग्नीशियम, जस्ता और ऐलुमिनियम के साथ अनेक मिश्र धातुएँ बनी हैं।

सीरीयम की दो सयोजकताएँ ३ तथा ४ हैं। इसके दो आक्साइड ($Ce O_3$ और $Ce O_2$), दो हाइड्राक्साइड $Ce (OH)_3$ और $Ce (OH)_4$ फ्लोराइड Ca f_3 क्लोराइड ($Ce Cl_4$) सल्फाइड ($C_3 S_3$) सल्फेट, कार्बोनेट, नाइट्रेट, फास्फेट आदि लवण बनते हैं।

यह धातु कई द्विलवण बनाती है, जैसे $M(NO_3)_2$, $Ce(No_3)_4$ $8H_2O$ (जहाँ M = Mg, Zn, Ni, Co या Mn)।

उपयोग — (१) गैस मेंटलो में थोरियम के साथ इसकी भी अल्प मात्रा काम में आती है। (२) सीरियम की मिश्रधातुएँ गैस लाइटर और सिगरेट लाइटर इत्यादि बनाने के काम आती हैं। (३) मैगनीशियम तथा सीरियम की मिश्रधातुएँ, फ्लेशलाइट पाउडर बनाने के उपयोग मे आती हैं। (४) कुछ मिश्रधातुएँ विद्युत् इलेक्ट्रोड बनाने के काम आती हैं। (५) चश्मे के काँच बनाने मे। (६) कपडा रँगने, चर्मकारी तथा फोटोग्राफी में यह काम आता है। [स० प्र०]

सीरिया स्थिति लगभग ३२°३०′ से ३७°१५′ उ० अ० तथा ३५° १०′ से ४२° ३०′ पू० दे० के मध्य दक्षिणी पश्चिमी एशिया में एक स्वतंत्र अरब देश है जिसके उत्तर में टर्की, पश्चिम में लेबनान तथा भूमध्य सागर, दक्षिण में जॉर्डन तथा इज़राइल के भाग और पूर्व मे इराक है। फरात यहाँ की मुख्य नदी है जो यहाँ मैदानों तथा मरुस्थल से होकर दक्षिण और दक्षिण पूर्व की ओर बहती है। ऑरान्टे, जॉर्डन तथा यारमुक यहाँ की अन्य नदियाँ हैं।

सीरिया के मुख्य भौगोलिक विभागो मे (क) उत्तरी सीरिया के ढालू मैदान जिसे फरात के पूर्व फ़ज़ीरा कहते हैं, (ख) फरात के दक्षिण तथा पश्चिम सीरिया का मरुस्थल, (ग) हॉरन का मैदान जिसमें ड्रूज का पर्वत समिलित है तथा (घ) ऐंटी लेबनान पर्वत जो सीरिया और लेबनान के मध्य सीमा का एक भाग है, समिलित हैं।

भूमध्यसागरीय प्रदेश के अंतर्गत सीरिया के आतरिक मैदानो और मरुस्थली भागो में जलवायु विषम तथा समुद्रतटीय प्रदेश में सम है। वर्षा जाडो में होती है। जिसमे मरुस्थली भाग का औसत १० सेमी से कम और तटीय मैदानों में १०१ सेमी से अधिक है। जाडों में पर्वतो पर बर्फ गिरती है। गरमियो में गरम मरुस्थली वायु चलती है जो कभी कभी सीरिया के मरुस्थलो को पार कर तटीय भागो मे पहुँच जाती है।

यहाँ के स्थायी निवासी विभिन्न भाषाएँ बोलते हैं। अधिकाश निवासी अरब हैं। कुर्द, आरमीनियाई और थोड़े यहूदी जैसे लोग अन्य वर्गों के हैं। यहाँ की जनसंख्या लगभग ३७,२२,००० तथा घनत्व लगभग ३१ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है।

सीरिया कृषिप्रधान देश है जहाँ दो तिहाई से अधिक लोग किसान या भेड़िहारे हैं। कुछ बडे जमीदार कृषि के आधुनिक यत्रों का प्रयोग करने लगे हैं किंतु अधिकतर पुरानी विधियाँ ही प्रचलित हैं।

यहाँ पशुपालन के अतिरिक्त गेहूँ, जौ, चुकदर, दलहन, तंबाकू जैतून, कपास, फल, ऊन और साग भाजियाँ पैदा की जाती हैं। भेडो से ऊन तथा मलबरी के वृक्षों पर रेशम प्राप्त किए जाते हैं। यहाँ नमक, लिगनाइट, भवननिर्माणवाले पत्थर, ऐस्फाल्ट, खडिया मिट्टी और कुछ लोह खनिज मिलते हैं।

प्रचलित उद्योगो मे वस्त्र, साबुन, सीमेंट, खाद्य तेल तथा परिरक्षित फलो के अतिरिक्त घरेलु धधों मे चमड़े के सामान, किमखाब और जरदोजी, धातु तथा लकडियों की पच्चीकारी के कार्य किए जाते है। खुले बाजारों में चाँदी, पीतल, ताँबे, चमड़े आदि के काम होते हैं।

यहाँ का व्यापार लेबनान के बंदरगाह बेरूत से होता है। यहाँ से कपास, वस्त्र, पशु तथा भोजन सामग्री का निर्यात और लकडी, खजूर, रसीले फल, किरोसीन, चावल, चीनी, कपडे, मशीनें, छोटी कारें, खनिज एव धातुओ का आयात होता है। सीरिया का अधिकाश व्यापार अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रास, लेबनान और निकटवर्ती पूर्वी देशों से होता है।

यहाँ ६४०० किमी से अधिक लबी सडको के विकास के अतिरिक्त लेबनान, टर्की और जॉर्डन तक रेलें व मरुस्थलो मे कारवाँ मार्ग जाते हैं। दमिश्क के निकट प्रमुख अतरराष्ट्रीय एव स्थानीय हवाई अड्डा है। मरुस्थल से होकर तेल की तीन पाइप लाइनें गई हैं।

प्रमुख नगरों में यहाँ की राजधानी और खजूर के वृक्षो तथा प्राचीन मरुस्थलीय कारवाँ का केंद्र दमिश्क, अलेप्पो, दायर-इ़ज़ार, हामा, होम्ज और लकाकिया आदि हैं। [रा० स० ख०]

सील जल में रहनेवाले स्तनीवर्ग के फोसिडी (Phocidae) कुल के नियततापी प्राणी हैं। इनके पूर्वज जमीन पर पाए जाते थे। समुद्र में सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये इनके पैर झिल्लीयुक्त हो गए हैं। पानी हवा की अपेक्षा अधिक ऊष्मा अवशोषित करता है इसलिये सील की बाह्य त्वचा के नीचे तेलयुक्त वसा से भरा स्पजी ऊतक (spongy tissue) पाया जाता है। यह ऊतक देहऊष्मा (body heat) को बाहर जाने से रोकता है।

सील को अपने गोलाकार और धारा रेखांकित (streamlined) शरीर के कारण पानी मे तैरने मे सुविधा होती है। कुछ सील थोडी

उत्पादन तथा जमने और कठोरीकरण के समय में अधिक संकुचन के कारण इसका उपयोग बड़े पैमाने पर ककरीट में नही होता है।

२. निम्न ऊष्मा सीमेंट (Low heat Cement) — ट्राइ कैल्सियम ऐल्युमिनेट ऊष्मा विकास का प्रमुख कारण है। अत सीमेंट में इसकी मात्रा न्यूतम, केवल ५% ही, रखी जाती है। इस प्रकार का सीमेंट प्रारंभिक अवस्थाओ में कम मजबूत होता है। पर इसकी अंतिम मजबूती मे कोई अंतर नही होता है।

३. उच्च ऐल्युमिना सीमेंट (High Alumina Cement) — जल्द मजबूत होने तथा रासायनिक प्रभावो के विरुद्ध दृढ रहने के लिये इसका उपयोग होता है, जैसे बहते हुए पानी अथवा समुद्री जल में। इसका बडे पैमाने पर निर्माण ऐल्युमिनी (Aluminous) तथा कैल्सियमी पदार्थों के उपयुक्त अनुपात में मिश्रण को गलाने तथा बाद में उत्पाद को महीन पीसकर किया जाता है।

४ प्रसारी सीमेंट (Expanding Cement) — ऐसा सीमेंट जमाव के समय फैलता है। इसकी थोडी मात्रा का प्रयोग अन्य किस्म के सीमेंट में मिलाकर द्रवधारक संरचनाओ के निर्माण में किया जाता है ताकि संकुचन और ऊष्मा के कारण कंकरीट मे उत्पन्न होनेवाली दरारो को रोका जा सके।

५. सफेद और रंगीन सीमेंट — सीमेट का धूसर रंग अपद्रव्य रूप मे आइरन आक्साइड (Fe_2O_3) के कारण होता है। यदि पोर्टलैंड सीमेट मे आइरन आक्साइड न हो तो सीमेट का रग सफेद होगा। आइरन आक्साइड के निकालने की लागत, जो प्राकृतिक पदार्थों का सामान्यतः अग होता है, सफेद सीमेट की कीमत को बढ़ा देती है।

सफेद सीमेंट को पीसते समय लगभग दस प्रतिशत वर्णक मिला देने से रगीन सीमेंट तैयार होता है। धूसर सीमेट में भूरा तथा लाल रग सफलता से डाला जा सकता है।

सीमेंट की अन्य मुख्य किस्मे हैं, वायुमिश्रित या वायु चढ़ित सीमेट (air entrained cement), सल्फेट निरोधक सीमेट तथा जलाभेद्य सीमेंट।

सामान्य सीमेंट के गुण — सीमेट का घन संपीडन मे बनाया जाता है। उस घन को परीक्षण मशीन में रखकर तब तक दबाया या सपीडित किया जाता है जब तक वह टूट न जाय। इससे सीमेंट की मजबूती का पता चलता है। तनन सामर्थ्य के निर्धारण के लिये मानक ईंट, जिसके कम से कम एक वर्ग इंच, को तोड़ा जाता है। पोर्टलैंड सीमेंट के तनन तथा सपीडन सामर्थ्य निम्नलिखित प्रकार है।

दिन	साधारण पोर्टलैंड सीमेंट का सामर्थ्य	
	संपीडन सामर्थ्य	तनन सामर्थ्य
३ दिनो के बाद	१,६००	३००
७ दिनो के बाद	२,५००	३७५

भारत में चूना पत्थर की अधिकता के कारण सीमेंट उद्योग का भविष्य बहुत उज्वल है। [ज० कृ०]

सीयक हर्ष मालवे मे परमार राज्य की स्थापना उपेंद्र ने की थी। इसी के वश मे वैरिसिंह द्वितीय नाम का राजा हुआ जिसने प्रतिहारो से स्वतत्र होकर धारा में अपने राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया। सफल न होने पर संभवत उसने राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय की अधीनता स्वीकार की। सीयक हर्ष वैरिसिह का पुत्र था। सन् ९४९ के हरसोले के शिलालेख से प्रतीत होता है कि सीयक ने भी अपने राज्य के आरंभ मे राष्ट्रकूटो का प्रभुत्व स्वीकार किया था। किंतु उसकी पदवी केवल महामाडलिक चूडामणि ही नही महाराजाधिराजपति भी थी, जिससे अनुमान किया जा सकता है कि उस समय भी सीयक हर्ष पर्याप्त प्रभावशाली था। उसने योगराज को परास्त किया। यह योगराज संभवत महेंद्रपाल प्रतिहार के सामंत अवंतिवर्मा द्वितीय (योग) का पौत्र था। योग की तरह योगराज भी यदि प्रतिहारों का सामंत रहा हो तो इसकी पराजय से राष्ट्रकूट और परमार दोनों ही प्रसन्न हुए होगे। इसके कुछ बाद सीयक ने हूणों को भी बुरी तरह से हराया। सभवतः इन्ही हूणो से सीयक के पुत्रो को भी युद्ध करना पडा हो। नवसाहसाकचरित मे सीयक की रुद्रपाटी के राजा पर किसी विजय का भी उल्लेख है, किंतु रुद्रपाटी की भौगोलिक स्थिति अनिश्चित है। शायद कृष्ण तृतीय ने सीयक हर्ष की इस बढती हुई शक्ति को रोकने का प्रयत्न किया हो। किंतु इस प्रयत्न की सफलता संदिग्ध है। उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति ही कुछ ऐसी थी कि कोई भी साहसी और मेधावी व्यक्ति इस समय सफल हो सकता था। प्रतिहारो मे अब वह शक्ति नही थी कि वे अपने विरोधियो और सामंतो की बढती हुई शक्ति को रोक सकें। शायद कृष्ण तृतीय के उत्तरी भारत के मामलो मे हस्तक्षेप करने से प्रतिहारों की कमजोरी और बढी हो और इससे सीयक हर्ष को लाभ ही हुआ हो।

सन् ९६७ मे राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई खोट्टिग गद्दी पर बैठा। उचित अवसर देखकर सीयक ने राष्ट्रकूटो पर आक्रमण कर दिया, और उन्हे खलिघट्ट की लडाई मे हराकर राष्ट्रकूट राजधानी मान्यखेट को बुरी तरह लूटा। सन् ९७४ के लगभग सीयक की मृत्यु होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र मुंज गद्दी पर बैठा। राजा भोज इसका पौत्र था।

सं० ग्रं० — नवसाहसांकचरित; उदयपुर प्रशस्ति, गागुली, डी० सी० परमार राज आँव मालवा; गौ० ही० ओझा : राजपूताने का इतिहास, जिल्द पहली। [द० श०]

सीरियम (Cerium), संकेत—सी॰ (Ce) परमाणुसंख्या ५८, परमाणुभार, १४०·१३। यह विरल मृदा (Rare Earths) तत्वों का एक प्रमुख सदस्य है, तथा इसके क्लोराइड को सोडियम अथवा मैगनीशियम के साथ गरम करने अथवा शुद्ध क्लोराइड को पोटैशियम और सोडियम क्लोराइड के साथ मिलाकर विद्युत् अपघटन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

सीरियम लोहे जैसा दीख पड़ता है। यह विद्युत् का कुचालक है। यह विशेष कठोर धातु नही है और सरलता से इसके पत्तर बनाए जा सकते हैं।

ऑव इंडिया लि० को दिया। इस कंपनी ने तभी से मोचिया मोगरा पहाड़ियो में विस्तृत खनन कार्य प्रारभ कर दिया है। समीप के अन्य क्षेत्रो मे भी पूर्वेक्षण किया जा रहा है। सन् १९५५-५६ तक यह कपनी एक करोड से अधिक रुपए खनन एव धातु शोधन कार्यों में लगा चुकी है। पूंजीगत माल (Capital goods), यातायात तथा अन्य साधना की उपलब्धि में अनेक कठिनाइयाँ होते हुए भी इन खानों तथा प्रगलन सयत्रों (Smelting Plants) का पर्याप्त विकास हुआ है। भारत में इस समय सीसा, जस्ता तथा चाँदी के पूर्वेक्षण, खनन, तथा प्रसाधन (Dressing) आदि के कार्य राजस्थान के झावर क्षेत्र में ही केंद्रित हैं।

सीसा और जस्ता — खनिज प्राय साथ साथ ही पाए जाते हैं। और बहुधा इनके साथ अल्प मात्रा में चाँदी भी प्राप्त होती है।

झावर खानें — ये खानें अरावली पर्वतमाला के अतर्गत २२° २३' उ० अ० तथा ७२° ४३' पू० दे० पर स्थित हैं। मोचिया मोगरा पहाडी खनन कार्य का मुख्य भाग है जो उदयपुर नगर के ठीक दक्षिण मे २७ मील की दूरी पर स्थित है। पहाड़ियो की ऊँचाई घाटी तल से लगभग ४००'—५००' तक है। पेषण (Milling) कार्य के लिये जलवितरण का प्रश्न अभी तक मुख्य समस्या थी किंतु अब अवमृदा बाँध (Subsoil dam) तथा अंत स्रावी कूपो Percolating wells) ने, जिनका निर्माण तीरी नदी नितल (Bed) पर किया गया है, इस समस्या का भी सफल समाधान कर दिया है।

झावर क्षेत्र की भूतात्विक समीक्षा — विशाल क्षेत्रो मे खनिजायन (Mineralization) प्राप्य है जिसमें मुख्यत दो खनिज, जिंक ब्लेंड (Zinc Blende) तथा गैलेना, मिलते हैं। यह खनिज रेतमय (Siliceous) डोलोमाइट (Dolomite) में प्राप्त होते हैं। निक्षेप मुख्यत विदर पूरण (Fissure Filling) प्रकार के हैं तथा शिलाओ के साहचर्य में फायलाइट्स (Phyllites) पाए जाते हैं। मोचिया मोगरा पहाडी दो मील से भी अधिक लबाई में पूर्व पश्चिम दिशा में फैली हुई है। इसकी चौडाई पूर्वी किनारे पर १½ मील से कुछ कम तथा पश्चिम में एक मील के लगभग है। मुख्य अयस्क काय (Ore body), जहाँ खनन कार्य हो रहा है, सरचना में एक कर्तन कटिबंध (Shear Zone) द्वारा प्रतिबंधित है तथा इसका विस्तार पूर्णत पूर्व पश्चिम में है। कर्तन कटिबध की चौडाई अनेक स्थानो पर भिन्न भिन्न है। प्रधान अयस्क काय सघन (Compact) है तथा ऊपरी कटिबध में अधिक समृद्ध किंतु नीचे की ओर चौडी तथा कम सकेंद्रित है। अधिक पूर्व की ओर अयस्क मुख्यत समृद्ध गोहो (Pockets) में प्राप्त होतो है। अयस्क कार्यो का उद्भव मध्यतापीय (Mesothermal) है। अयस्क खनिज, प्रतिस्थापित पट्टिकाओ, स्तरित कटिबधो (Sheeted Zones) तथा बिखरे हुए (Disseminated) एवं व्यासृत (dispersed) सिम्मो के रूप में पाए जाते हैं। स्थूल दानावाला (Coarse Grained) गैलेना की विशाल गोहे सीसा समृद्ध क्षेत्र में प्राप्त होती हैं। मुख्य अयस्क खनिजों, गैलेना और स्फेलेराइट (Sphalerite) के साहचर्य में पायराइट भी अनेक स्थानो में मिलता है। स्फेलेराइट यद्यपि कुछ स्थानो पर अत्यत सकेंद्रित है तथापि अधिकतर नियमित रूप से वितरित है। गैलेना बड़ी या छोटी गोहो मे ही प्राप्त होता है। चाँदी मुख्यत गैलेना के साथ ही ठोस विलयनो में मिलती है तथा उच्च सस्तरो (Horizons) मे यह कभी कभी प्राकृत रूप (Native form) मे पाट (Crack) तथा विदरों (Fissures) में पूरण (Filling) के रूप मे पाई जाती है। अयस्क भडारो, जिनकी गणना सन् १९५४ में की गई है तथा जिनमे सीसा और जस्ता दोनो ही समिलित हैं, का अनुमान २५ लाख टन के लगभग है। मिश्रण मे जस्ता ४·५% तथा सीसा २·३% है।

भावी योजनाएँ — ५०० टन प्रति दिन का खनन कार्यक्रम जून, १९५७ ई० से प्रारभ हो चुका है। पेषण क्षमता (Milling Capacity) भी १९५६ ई० के प्रारभ में ही ५०० टन प्रति दिन पहुँच चुकी है। सभी कार्यों में गति लाने के लिये आधुनिक यत्रो का प्रयोग किया जा रहा है। विद्युत् द्वारा उत्स्फोटन (Blasting) भी अभी प्रायोगिक अवस्था में ही है। एडिट्स (Adits) के चलन (driving) द्वारा पूर्वेक्षण भी झावरमाला पहाडी पर प्रारभ हो चुका है। ८००—१००० फुट तक अयस्क के खनन के लिये गभीर हीरक-व्यधन कार्य भी सन् १९५६ के नववर मास से मोचिया मोगरा तथा अन्य समीप के स्थानो में विकास पर है।

सीसे का शोधन झरिया के कोयला क्षेत्र स्थित टुडू नामक स्थान पर किया जाता है जिससे लगभग २५,०० टन सीसा धातु प्राप्त होती है। यह देश की आवश्यकता से बहुत कम है और प्रति वर्ष लगभग ८,००० टन सीसा आयात करना पडता है। [वि० सा० दु०]

सीसा (Lead) धातु, सकेत, सी, Pb (लैटिन शब्द प्लबम, Plumbum से) परमाणुसंख्या ८२, परमाणुभार २०७·२१, घनत्व ११ ३६, गलनाक ३,२७ ४° सें०, क्वथनाक १६२०° सें०। इसके चार स्थायी समस्थानिक, द्रव्यमान २०४, २०६, २०७ और २०८ और चार रेडियो ऐक्टिव समस्थानिक, द्रव्यमान २०९, २१०, २११ और २१४ ज्ञात हैं। आवर्तसारणी के चतुर्थ समूह के 'ख' वर्ग का यह अतिम सदस्य है। इस समूह के तत्वो में यह सबसे अधिक भारी और धात्विक गुणवाला है इसकी संरचना में पुच्छद (shell) और एक बाह्य छद (shell) है। बाह्य छद में इलेक्ट्रान होते हैं जिनमें दो को यह बडी सरलता से छोड देता है। इस कारण इसके द्विसयोजक लवण अधिक स्थायी होते हैं। चतुस्सयोजक लवण कम स्थायी होते हैं और उनकी सख्या भी कम है।

इतिहास उपस्थिति — सीसा बहुत प्राचीन काल से ज्ञात है। इसका उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रथो में मिलता है। इसका उपयोग भी ईसा के पूर्व से होता आ रहा है। मिस्रवासी इसे जानते थे और लुक फेरने में प्रयुक्त करते थे। स्पेन का सीसा निक्षेप २००० ई० पू० से ज्ञात था। यूनान में भी ५०० ई० पू० से इसका उत्पादन होता था। जर्मनी के राइन नदी और हार्ट्‌स पर्वत के आसपास ७०० से १००० ई० के बीच यह खानो से निकाला जाता था। आज सीसा का सर्वाधिक उत्पादन सयुक्त राज्य अमरीका के मिसिसिपी में होता है। अमरीका के बाद आस्ट्रेलिया (ब्रोकेन हिल जिला), मेक्सिको, कैनाडा,

दूरी अत्यंत शीघ्रता से पार कर लेते हैं। ये पानी के अंदर आठ या दस मिनट तक रह सकते हैं। इनके पिछले झिल्लीयुक्त पैर पीछे की ओर मुडे रहते हैं, जिससे उनको पानी के अंदर तैरने मे सहायता मिलती है। ये पैर आगे की ओर न मुड़ सकने के कारण पानी के बाहर चलने मे भी सहायक होते हैं।

सील की किस्में — सील की दो स्पष्ट किस्मे होती हैं, वास्तविक सील (true seal) तथा कर्ण सील (eared seal)। वास्तविक सील के वाह्य कर्ण नही होते है। इनके कान के स्थान पर केवल छिद्र होते हैं। इनके झिल्लीयुक्त पैर मछलियो की पूँछ की तरह प्रयुक्त होते हैं। पानी के बाहर सील अपनी तुंद पेशियो (belly muscles) की सहायता से चलता है।

कर्ण सील में, जैसे जलसिंह (sea lion) तथा समूर सील (fur seal), स्पष्ट किंतु छोटे वाह्य कान होते हैं। इनके पिछले झिल्ली युक्त पैर अपेक्षाकृत लंबे होते हैं। कर्ण सील जमीन पर तेजी से चल सकते हैं। पानी में ये अपने शक्तिशाली अगले पैरो की सहायता से तैरते है।

वास्तविक सील, कर्ण सील की तुलना मे समुद्री जीवन के लिये विशेष रूप से अनुकूलित होते हैं। वास्तविक सील अनिश्चित काल तक पानी के अंदर रह सकते हैं। इनके बच्चे, जिन्हें पिल्ला (pup) कहते हैं, कभी कभी पानी ही में पैदा होते हैं।

कर्ण सील के बच्चे अनिवार्य रूप से भूमि पर ही पैदा होते हैं, क्योकि इनके पिल्ले पैदा होने के तुरंत बाद तैर नही सकते। वास्तविक सील शात प्रकृति के होते है। इसके विपरीत कर्ण सील जब चट्टानी तटो पर अत्यधिक संख्या में एकत्रित होते हैं तब अत्यधिक शोर करते हैं। नर भूँकते तथा चीखते हैं। मादा तथा बच्चे गुर्राते तथा मिमियाते हैं।

सभी सीलो का सामान्य वाह्य रूप एक ही तरह का होता है परतु उनका विस्तार भिन्न भिन्न होता है, जैसे हारबर सील (harbour seal) छह फुट लंबा और १०० पाउंड तथा एलिफेंट सील (elephant seal) १६ फुट लंबा तथा २·५ टन भारी होता है। सीलो का सामान्य रंग धूसर तथा भूरा होता है। केवल एक या दो प्रकार के ही सील गरम उपोष्ण (subtropical) सागरो में पाए जाते हैं। अधिकाश सील शीतोष्ण तथा ध्रुवी सागर (polar sea) मे ही पाए जाते हैं।

समूर सील (Fur seal) — यह जलसिंह से छोटा होता है। इन दोनो मे मुख्य अंतर यह है कि फर सील के बड़े रोमो के नीचे समूर (fur) पाया जाता है। इनके कीमती समूर के कारण इनका अध्ययन तथा शिकार इनकी खोज के बाद से ही होने लगा था। ये चट्टानी तटों पर मारे जाते हैं जहाँ ये गरमियों में बच्चे देने आते हैं।

वसंत ऋतु के अंत मे नर सील चट्टानी तटो पर समूह मे एकत्रित होकर अपने अपने पसंद का स्थान चुन लेते हैं। मादाएँ नरो के बाद आती हैं। कुछ सक्रिय नरो के निवासस्थान मे ६० से ७० मादाएँ रहती हैं। नर पूरी प्रजनन ऋतु तक चट्टानी तटो पर रहता है और कई महीनो तक कुछ नही खाता। नर तथा मादा सील बराबर-बराबर संख्या मे पैदा होते हैं। एक नर कई मादाओ के साथ मैथुन करता है। आठ वर्ष के पहले नर तथा तीन वर्ष के पहले मादा प्रजनन योग्य नही होती।

सील के उपयोग — आज भी एस्किमो अपने भोजन तथा अन्य उपयोगी वस्तुओ के लिये सील का शिकार करते हैं। सील से वे मास तथा भोजन पकाने और प्रकाश आदि के लिये तेल प्राप्त करते हैं। सील के चर्म से कपडे तथा तंबू (tent) बनाए जाते हैं।

आर्थिक दृष्टि से सील का शिकार उनसे चमडे तथा तेल प्राप्त करने के लिये किया जाता है। एलिफेंट सील का शिकार केवल तेल प्राप्त करने के लिये किया जाता है। अधिकाश सील मे एक बार में केवल कुछ रोम ही झड़ते हैं परतु एलिफेंट सील की पूरी बाह्य त्वचा एक बार में ही झड जाती है। ऐसे समय सील समुद्र के लवणित जल में प्रवेश नही करता है, क्योकि उसके त्वचा में लवणित जल से जलन पैदा होती है। जलसिंह कर्ण सील में सबसे बडे होते हैं। इसके चर्म से जूते, कपडे तथा दैनिक उपयोग की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। इनकी आँत की बाहरी त्वचा से बरसाती कोट बनाया जाता है। [न० कु० रा०]

सीवान यह बिहार राज्य के सारन जिले का एक प्रमंडल है। इसकी जनसंख्या १२,११,५९२ (१९६१) है। इसका धरातल समतल मैदानी है। झरनी, दाहा तथा गंडकी, ये तीन नदियाँ इस प्रमडल से होकर बहती हैं यह उपजाऊ क्षेत्र है। जहाँ भदई, अगहनी तथा रबी की फसलें प्रमुख हैं। ईख की भी पर्याप्त खेती होती है। आबादी बडी घनी है। यातायात के साधन पर्याप्त हैं। पूर्वोत्तर रेलवे की मुख्य शाखा यहाँ से गुजरती है। इसके अतिरिक्त यहाँ सडको का जाल बिछा है। सीवान तथा महाराजगज दो प्रमुख नगर हैं जिनकी जनसंख्या क्रमश २७,४०१ तथा १०,८०५ है। सीवान नगर दाहा नदी के किनारे बसा है। यहाँ सभी ओर से सडकें तथा रेलमार्ग आकर मिलते हैं। यह छपरा, गोरखपुर तथा गोपालगज से रेलमार्ग द्वारा संबद्ध है। [ज० सिं०]

सीसा अयस्क (Lead) राजपूताना गजेटियर के अनुसार राजस्थान के झावर क्षेत्र में सन् १३८२-९७ में ही सीसा तथा चाँदी की खानो का अन्वेषण हो चुका था किंतु प्रथम बार राज्य द्वारा इस क्षेत्र का विधिवत् पूर्वेक्षण सन् १८७२ में किया गया। कुछ सूत्रो से यह भी ज्ञात हुआ है कि अजमेर के समीप तारागढ पहाडियो मे सीसे के निक्षेपों में अनेक वर्षो तक कार्य होता रहा है और सन् १८५७ के पूर्व जब इन खानो से उत्पादन बद हुआ, यहाँ का उत्पादन १४,००० मन प्रति वर्ष तक पहुँच गया था। भारतीय भूतात्विक समीक्षा के अभिलेखो के अनुसार भारत मे गैलेना (PbS) की प्राप्ति अनेक भागो जैसे बिहार, उडीसा, हिमाचल प्रदेश एवं तमिलनाडु आदि से भी हो सकती है किंतु अभी तक विस्तृत पूर्वेक्षण कार्य पूर्ण नही हुआ है जिससे सीसा आदि के अयस्को के गुप्त भडारो का पता लग सके। अक्टूबर, १९४५ में झावर क्षेत्र के लिये पूर्वेक्षण प्रपत्र, राजस्थान सरकार ने मेसर्स मेटल कॉर्पोरेशन

और अभी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नही है। सफेदा का उपयोग पेंट के अतिरिक्त पुट्टी (Putty) सीमेंट और लेड कार्बोनेट कागज के निर्माण में भी होता है।

लेड सल्फेट — सीसा के किसी विलेय लवण के विलयन में सल-फ्यूरिक अम्ल अथवा विलेय सल्फेट का विलयन डालने से अविलेय सीसा सल्फेट का अवक्षेप प्राप्त होता है। सीसा के क्षारक सल्फेट भी होते हैं। सल्फेट का निर्माण बडी मात्रा में भ्राष्ट्र के ऑक्सीकारक वायुमडल में गलनाक तक गरम करने से होता है। यह सफेद चूर्ण होता है। वर्णक के अतिरिक्त इसका उपयोग सचय बैटरियो, लिथो छपाई और वस्त्रो का भार बढाने में होता है।

लेड सल्फाइड — यह काला अविलेय चूर्ण होता है। इसी का प्राकृतिक रूप गैलिना है। मिट्टी के बरतनों या पोर्सिलेन पर लुक फेरने में यह काम आता है। इसके काले अवक्षेप से विलयन में सीसालवण की उपस्थिति जानी जाती है।

लेड क्रोमेट — सीसा के विलेय लवणों पर पोटैशियम या सोडि-यम बाइक्रोमेट के विलयन की क्रिया से लेड क्रोमेट (क्रोमपीत) और क्षारक सीसा क्रोमेट (क्रोम नारगी) का अवक्षेप प्राप्त होता है। इनके उपयोग पेंट मे होते हैं। लेड क्रोमेट को प्रशियन ब्लू के साथ मिलाने से क्रोम हरा वर्णक प्राप्त होता है। लेड सल्फेट के मिलने से लेड क्रोमेट का रग हल्का पीला हो जाता है।

लेड नाइट्रेट — सीसा को तनु नाइट्रिक अम्ल में घुलाने से सीसा नाइट्रेट प्राप्त होता है। यह सफेद क्रिस्टलीय होता है और जल में जल्द घुल जाता है। यह स्तभक होता है पर विषैला होने के कारण वाह्य रूप में ही व्यवहृत होता है। दियासलाई बनाने, कपडे की रँगाई, छींट की छपाई और नक्काशी बनाने मे यह काम आता है।

लेड आर्सेनाइट—सीसा अनेक आर्सेनाइट बनाता है जिनमें सीसा डाइआर्सेनाइट ($PbHAsO_4$) सबसे अधिक महत्व का है। कृमिनाशक ओषधियो मे यह काम आता है, विशेष रूप से पेड में लगे कीडे इसी से मारे जाते हैं। लिथार्ज पर आर्सेनिक अम्ल और अल्प नाइट्रिक अम्ल की क्रिया से यह बनता है। क्रिया सपन्न हो जाने पर उत्पाद को छानते, धोते और सुखाते हैं।

सीसा के अन्य लवणो में लेड बोरेट [$Pb(BO_2)_2H_2O$] पेंट और वार्निश में शोपक के रूप में और कांच, ग्लेज़, चीनी बर्तन पोर्सिलेन इत्यादि पर लेप चढ़ाने मे काम आता है। सीसा क्लोराइड ($PbCl_2$) मरहम बनाने और क्रीमपीत बनाने में काम आता है। सीसा टेट्राएथिल $Pb(C_2H_5)_4$ बहुत विषैला पदार्थ है पर इसका उपयोग आजकल बहुत बडी मात्रा में पेट्रोल या गैसोलिन में प्रत्याघाती (anti knock) के रूप मे होता है। विषैला होने के कारण इसके व्यवहार मे सावधानी बरतने की आवश्यकता पडती है।

सीसा के उपयोग—सीसा बहुत बडी मात्रा मे खपता है। यह धातु मिश्रधातु के रूप में और यौगिको के रूप मे व्यवहृत होता है। सीसा की चादरें, सिंक, कुड, सल्फ्यूरिक अम्ल निर्माण के सीसकक्ष और कैल्सियम फास्फेट उर्वरक निर्माण के पात्रो आदि में अस्तर देने में काम आती हैं। संक्षारक द्रवो और अवशिष्ट पदार्थों के परिवहन में इसके नल इस्तेमाल होते हैं। टेलीफोन केबल के ढकने में, भू-गर्भस्थित वाहक नलियो के निर्माण में, गोलो (shots), गुलिकाओं, गोलियो (bullets), सचायक बैटरियो, बैटरी के पट्टों और पत्रियों के निर्माण मे यह काम आता है। एक्स-रे और रेडियो ऐक्टिव किरणो से बचाव के लिये इसकी चादरें काम आती हैं क्योंकि इन किरणो को सीसा अवशोषित कर लेता है। इसकी अनेक महत्व की मिश्र धातुएँ बनती हैं। अल्प तांबे की उपस्थिति से सक्षारण प्रतिरोध, कडापन और तनाव सामर्थ्य बढ जाता है। ऐंटीमनी की उपस्थिति से भी कठोरता, कडापन, और तनाव सामर्थ्य बढ जाता है। अल्प टेलूरियम के रहने से सक्षारण प्रतिरोध, विशेषत ऊँचे ताप पर, बहुत बढ जाता है। इसकी मिश्र धातुएँ सोल्डर (टाँके का मसाला), बेयरिंग धातुएँ, टाइप, लिनोटाइप धातुएँ, प्यूटर (Pewter), ब्रिटानिया धातु, द्रावक धातु, ऐंटीमनी सीसा और निम्न ताप द्रवणाक धातुएँ अधिक महत्व की हैं। इसकी मिश्रधातु पाईप बनाने में काम आती है।

इसके लवणो में सबसे अधिक मात्रा में सफेदा प्रयुक्त होता है। लिथार्ज, सीस पेराक्साइड, सीस ऐसीटेट, सीस आर्सेनाइट, सीस क्रोमेट, सीस सल्फेट, सीस नाइट्रेट, सीस टेट्राएथिल इत्यादि इसके अन्य लवण हैं जो विभिन्न कामो में पर्याप्त मात्रा मे प्रयुक्त होते हैं।

[स० व०]

सुंदरगढ़ जिला, भारत के उडीसा राज्य में स्थित है। इसके उत्तर में बिहार राज्य, पश्चिम में मध्यप्रदेश राज्य, दक्षिण में सबलपुर, पूर्व मे क्योंझरगढ़ तथा पूर्वोत्तर में मयूरभज जिले हैं। इसका क्षेत्रफल लगभग ९,६०० वर्ग किमी एव जनसख्या ७,५८,६१७ (१९६१) है। सुदरगढ एव राउरकेला जिले के प्रमुख नगर हैं। सुदरगढ जिले का प्रशासनिक नगर है। [अ० ना० मे०]

सुंदरदास ये निर्गुण भक्त कवियों में सबसे अधिक शास्त्रनिष्णात और सुशिक्षित सत कवि थे जिनका जन्म जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी द्यौसा में रहनेवाले खडेलवाल वैश्य परिवार में चैत्र शुक्ल ९, सं० १६५३ वि० को हुआ था। माता का नाम सती और पिता का नाम परमानंद था। ६ वर्ष की अवस्था में ये प्रसिद्ध सत दादू के शिष्य बने और उन्ही के साथ रहने भी लगे। दादू इनके अद्भुत रूप को देखकर इन्हे 'सुदर' कहने लगे थे। चूँकि सुदर नाम के इनके एक और गुरुभाई थे इसलिये ये छोटे सुदर नाम से प्रख्यात थे। जब स० १६६० में दादू की मृत्यु हो गई तब ये नराना से जगजीवन के साथ अपने जन्मस्थान द्यौसा चले आए। फिर स० १६६३ वि० में रज्जब और जगजीवन के साथ काशी गए जहाँ वेदात, साहित्य और व्याकरण आदि विषयो का १८ वर्षों तक गभीर अनुशीलन परिशीलन करते रहे। तदनतर इन्होंने फतेहपुर (शेखावटी) में १२ वर्ष योगाभ्यास मे बिताया। इसी बीच यहाँ के स्थानीय नवाब अलिफ खाँ से, जो सुकवि भी थे, इनका मैत्रीभाव स्थापित हुआ। ये पर्यटनशील भी खूब थे। राजस्थान, पजाब, बिहार, बगाल, उडीसा, गुजरात, मालवा और बदरीनाथ आदि नाना स्थानों

जर्मनी, स्पेन, बेलजियम, वर्मा, इटली और फ्रास आदि देशो में यह पाया जाता है। साधारणतया यह सोना, चाँदी, ताँबे और जस्ते आदि के साथ मिला रहता है।

खनिज — स्वंतत्र अवस्था में यह नही पाया जाता। भूपटल पर इसकी मात्रा १ प्रतिशत से कम ही पाई गई है। इसका प्रमुख खनिज गैलिना (PbS) है जिसमें सीसा अधिकतम ८६.६% रहता है। इसके अन्य खनिजो में सेरुसाइट (Cerussite, लेडकार्बोनेट) ऐंग्लीसाइट (Anglesite, लेड सल्फेट), क्रोकाइसाइट (Crocoisite, लेडक्रोमेट), मैसीकॉट (Massicot, लेड आक्साइड) कोटुनाइट (Cotunnite, लेड क्लोराइड), वुल्फेनाइट (Wulfenite, लेड मोलिवडेट), पाइरोमारफाइट (Pyromorphite, लेड फास्फो क्लोराइड), वेरिसिलाइट (Barysilite, लेड सिलिकेट) और स्टोलजाइट (Stolzite, लेड टंगस्टेट) है।

सीसा धातु की प्राप्ति — सीसा खनिजो मे कुछ कचरे और कुछ धातुएँ जैसे ताँवा, जस्ता, चाँदी और सोना आदि प्राय सदा ही मिले रहते हैं। कुछ अपद्रव्य तो उत्प्लावन विधि से और कुछ पीसने से निकल जाते हैं। ऐसे अंशत शुद्ध खनिजों को प्रद्रावण भ्राष्ट्र में भर्जित करते हैं। जो भ्राष्ट प्रयुक्त होते हैं वे साधारणतया तीन प्रकार की चुल्ली या स्कॉच तलभ्राष्ट्र (Hearth furnace), वात भ्राष्ट्र (Blast furnace) अथवा परावर्तन भ्राष्ट्र (Reverberatory furnace) होते हैं। भ्राष्ट्र का चुनाव खनिज की प्रकृति पर निर्भर करता है। उच्च कोटि के खनिज के लिये, जिसकी पिसाई महीन हुई है और जिसमे अन्य धातुएँ प्रायः नही हैं, स्कॉच भ्राष्ट्र तथा निम्न कोटि के खनिजो के लिये वातभ्राष्ट्र उपयुक्त होता है। रद्दी माल और अन्य उपोत्पाद के लिये ही परावर्तक भ्राष्ट्र काम में आता है। भ्राष्ट्र में मार्जन के बाद ऐसी धातु प्राप्त होती है जिसमें अन्य धातुएँ जैसे ऐंटिमनी, आर्सेनिक, ताँबा, चाँदी और सोना आदि मिली रहती हैं। परिष्कार उपचार से अन्य धातुएं निकाली जाती हैं। अब सिल में ढालकर धातु बाजारो में विकती है।

रासायनिक गुण — शुद्ध सीसा चाँदी सा सफेद होता है पर वायु में खुला रहने से मलिन हो जाता है। सीसा कोमल, भारी और द्रुत गलनीय होता है। ३००° से० से ऊपर यह नम्य हो जाता है और तब विभिन्न आकारो मे परिणत किया जा सकता है। यह घातवर्ध्य है पर इसमें तनाव क्षमता का अभाव होता है। यह तन्य नहीं है। आक्सीकरण से इसके तल पर एक आवरण चढ जाता है जिसके कारण वायु का फिर कोई प्रभाव नही पड़ता। सामान्य ताप पर यह जल में घुलता नही पर आक्सीजनवाले जल मे घुलकर हाइड्राक्साइड बनाता है। अतः पेय जल के नल के लिये यह उपयुक्त नहीं है, तनु नाइट्रिक अम्ल और उष्ण सलफ्यूरिक अम्ल से यह आक्रात होता है। ठंडे सलफ्यूरिक अम्ल और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की कोई क्रिया नही होती। मुख या नाक से शरीर में प्रविष्ट होकर यह इकट्ठा होता जाता है। पर्याप्त मात्रा में इकट्ठे होने पर 'सीसाविष' के लक्षण प्रकट होते हैं। प्रति घनफुट वायु मे यदि ०.००६ मिग्रा सीसा है तो ढाई वर्ष के वाद सीसाविष के लक्षण प्रकट होते हैं।

सीसा के यौगिक — सीसा के अनेक योगिक बनते हैं जिनमें औद्योगिक दृष्टि से कुछ बडे महत्व के हैं।

आक्साइड — सीसे के पाँच आक्साइड बनते हैं जिनमें लिथार्ज (PbO), लेडपेराक्साइड (PbO_2) और रक्तसिंदूर (Red lead, $Pb_3 O_4$) अधिक महत्व के हैं। लिथार्ज पीला या पाडु रंग का गंधहीन चूर्ण होता है जिसका उपयोग रबर, पेंट, काँच, ग्लेज् और इनेमल के निर्माण में होता है। विद्युत् बैटरियों के लिये इसके पट्ट भी बनते हैं। कृमिनाशक ओषधियो और पेट्रोल की सफाई में सीसा लगता है। पिघली सीसा धातु को परावर्तक भ्राष्ट्र में ऊँचे ताप पर वायु द्वारा आक्सीकरण करने से लिथार्ज प्राप्त होता है।

रक्तसिंदूर चमकीला लाल रग का भारी चूर्ण होता है। इसका सर्वाधिक उपयोग वर्णक के रूप में होता है। इसके लेप से लोहे और इस्पात के तलो का सरक्षण होता और उसपर मोरचा नही लगता है। सचय बैटरी के पट्ट में भी यह काम आता है। काँच और ग्लेज का निर्माण भी इससे होता है। रक्तसिंदूर का निर्माण परावर्तक भ्राष्ट्र में ऑक्सीजन के साथ ४५०°—४८०° से० के बीच सीसा के तपाने से होता है। ५००° से० से ऊपर ताप पर यह लिथार्ज में बदल जाता है। इसे पीस और छानकर पेंट में प्रयुक्त करते हैं। लेड पेराक्साइड का उपयोग दियासलाई और रंजकों के निर्माण में होता है। यह प्रवल आक्सीकारक होता है। सीसा के शेष दो आक्साइड, लेड सबआक्साइड ($Pb_2 O$) और लेड सेस्क्विच-ऑक्साइड ($Pb_2 O_3$) व्यापार की दृष्टि से महत्व के नही हैं।

लेड ऐसीटेट — लिथार्ज को ऐसीटिक अम्ल में घुलाकर गरम कर विलयन को संतृप्त बनाकर ठंढा करने से लेड ऐसीटेट के क्रिस्टल प्राप्त होते हैं। क्रिस्टल को $Pb (C_2 H_3 O_2)_2 3H_2O$ सीसाशर्करा भी कहते हैं। वायु में खुला रखने से क्रिस्टल प्रस्फुटित होते है। जल और ग्लिसरीन में यह जल्द घुल जाता है। यह स्तंभ (astringent) होता है पर विषाक्त होने के कारण इसका सेवन नही कराया जाता। यह पशुचिकित्सा, कपड़े की रँगाई, छींट की छपाई, रेशम को भारी बनाने और सीसा के अन्य यौगिको के प्राप्त करने में व्यवहृत होता है। इसका एक क्षारक रूप भी होता है जो जल में जल्द घुलता नही, कार्बनिक पदार्थों की सफाई और विश्लेषण में यह रसायनशाला में काम आता है।

लेड कार्बोनेट — सीसा के अनेक कार्बोनेट होते हैं पर सबसे अधिक महत्व का कार्बोनेट जलयोजित क्षारक कार्बोनेट है जो सफेदा के नाम से वर्णक में बहुत बड़ी मात्रा में प्रयुक्त होता है। इसमें तलाच्छादन की क्षमता इसी प्रकार के अन्य वर्णको से बहुत अधिक है पर टाइटेनियम आक्साइड से कम। अब सफेदा का स्थान टाइटेनियम आक्साइड ले रहा है। सफेदा में दोष यह है कि यह वायु के हाइड्रोजन सल्फाइड से लेड सल्फाइड बनने के कारण काला हो जाता है। टाइटेनियम आक्साइड मे दोष यह है कि यह महँगा पड़ता है

का उद्‌वाचन और स्पष्टीकरण किया तथा उसे 'एपिग्रैफिग्रा इडिका' में प्रकाशित कराया। इसके सिवा इन्होंने सातवाहन राजवश के इतिहास पर कई महत्वपूर्ण लेख लिखे और महाकवि भास आदि का सम्यक् विवेचन किया।

श्री सुकथकर की प्रतिभा का पूर्ण विकसित रूप उस समय प्रकट हुआ जब सन् १९२५ में इन्होने भाडारकर प्राच्य अनुसधानशाला में 'महाभारत मीमासा' के प्रधान सपादक के रूप में काम करना आरभ किया। इन्होने बडे धैर्य और बडे परिश्रम के साथ कार्य करते हुए अद्‌भुत समीक्षात्मक विदग्धता का परिचय दिया और मूल पाठ-संबधी विवेचन की ऐसी विधाएँ प्रस्तुत की जिनका प्रयोग उस महाकाव्य के सपादन में कारगर रूप से किया जा सकता था। इनका शुरू में ही यह विश्वास हो गया था कि शास्त्रीय भाषाविज्ञान के जो सिद्धात यूरोप में निश्चित हो चुके हैं, वे उनके लक्ष्य के लिये पूर्णत उपयोगी नहीं हो सकते। इनका उद्देश्य इस ग्रथ के उस प्राचीन मूल पाठ का निर्धारण करना था, जो उपलब्ध विभिन्न पाडुलिपियो के पाठभेदों का उदारतापूर्वक किंतु सावधानी से प्रयोग करने पर उचित जान पड़े। महाभारत मीमांसा (१९३३) के उपोद्‌घात में इन्होने इस सबध मे अपने विचार बडी योग्यता से प्रस्तुत किए हैं। इस ग्रथ के लिये दो पर्वों — आदि पर्व तथा आरण्यक पर्व — का सपादन उन्होंने स्वय किया था।

बबई विश्वविद्यालय के तत्वावधान मे श्री सुकथकर महाभारत पर चार व्याख्यान देनेवाले थे किंतु तीसरे व्याख्यान के ठीक पहले उनका देहावसान हो गया। ये व्याख्यान इनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित किए गए। वास्तव में इनके निधन के दो वर्ष के भीतर ही इनकी सभी रचनाएँ दो जिल्दो में प्रकाशित कर दी गईं। ये अमरीकी प्राच्य सस्था के समानित सदस्य थे तथा प्राग के भी प्राच्य सस्थान के सदस्य थे। [आर० एन० दा०]

सुकरात (४६९–३९९ ई० पू०) से पहले यूनानी दर्शन यूनानियो का विवेचन था, यूनान का दर्शन नही था। सुकरात के साथ यह यूनान का दर्शन बना, और रायंज को दार्शनिक विवेचन की राजधानी बनने का गौरव प्राप्त हुआ। सुकरात का विशेष महत्व यह है कि उसके विचारो ने प्लेटो और अरस्तू की महान् कृतियो के लिये मार्ग साफ किया। इन तीनों विचारको ने पश्चिम की सस्कृति पर ऐसी छाप लगा दी जो शताब्दियाँ बीतने पर भी तनिक मद नही हुई। स्वय सुकरात का विवेचन सोफिस्ट विचारो की प्रतिक्रिया था। इस विवाद ने पश्चिमी दर्शन को एक नए मार्ग पर डाल दिया।

पूर्व के विचारको के लिये दार्शनिक विवेचन का प्रमुख विषय सृष्टिरचना था। सोफिस्टों और सुकरात ने मनुष्य को इस विवेचन में केंद्रीय विषय बना दिया। सोफिस्ट मत प्रोटैगोरस के एक कथन मे समाविष्ट है —

मनुष्य सभी वस्तुओ की माप है, ऐसी कसौटी है जो निर्णय करती है कि किसी वस्तु का अस्तित्व है या नही।

कौन मनुष्य ? मानवजाति, बुद्धिमान् वर्ग, या व्यक्ति ? प्रोटोगोरस ने यह गौरव का पद व्यक्ति को दिया। मेरे लिये वह सत्य है, जो मुझे सत्य प्रतीत होता है, मेरे साथी के लिये वह सत्य है जो उसे सत्य प्रतीत होता है। इसी प्रकार की स्थिति शुभ और अशुभ की है। जो कुछ किसी मनुष्य को सुखद प्रतीत होता है, वह उसके लिये शुभ है। सुकरात ने कहा कि इस विचार के अनुसार तो सत्य और शुभ का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। उसने विशेष के मुकाबले में सामान्य का महत्व बताया, आत्मपरकता के मुकाबले में वस्तुपरकता को प्रथम पद दिया। सुकरात ने विचार को दर्शन का मूल आधार बनाया, उसने यूनान को विचार करना सिखाया। सत्य ज्ञान इंद्रियो के प्रयोग से प्राप्त नही होता, यह सामान्य प्रत्ययों पर आधारित है।

नीति के सबंध में उसने सदाचार और ज्ञान को एक वस्तु बताया। इसका अर्थ यह था कि कोई कर्म शुभ नही होता, जब तक उसके करनेवाले को उसके शुभ होने का ज्ञान न हो, यह भी कि ऐसा ज्ञान होने पर व्यक्ति के लिये यह सभव ही नहीं होता कि वह शुभ कार्य न करे। बुरा कर्म सदा अज्ञान का फल होता है। राजनीति में इस नियम को लागू करने का अर्थ यह था कि बुद्धिमान् मनुष्यो को ही शासन करने का अधिकार है। धर्म के क्षेत्र में भी बुद्धि का उचित भाग है; कोई धारणा केवल इसलिये मान्य नही हो जाती कि वह जनसाधारण में मानी जाती है या मानी जाती रही है।

सुकरात ने कोई लिखित रचना अपने पीछे नही छोडी। उसकी सारी शिक्षा मौखिक होती थी। युवको का उसपर अनुराग था। नागरिको में बहुत से लोग उसे एक उत्पात समझते थे। ७० वर्ष की उम्र मे उसके ऊपर निम्न आरोपों के आधार पर मुकदमा चला—

१—वह जातीय देवताओ को नही मानता।
२—उसने नए देवता प्रस्तुत कर दिए हैं।
३—वह युवको के आचार को भ्रष्ट करता है।

सुकरात ने अपनी वकालत आप की। यूनान मे वकीलो की प्रथा नही थी। ५०० से अधिक नागरिक न्यायाधीश थे। बहुमत ने उसे दोषी ठहराया और मृत्यु का दड दिया। जीवन का अतिम दिन उसने आत्मा के अमरत्व की व्याख्या में व्यतीत किया। सुननेवाले रोते थे पर सुकरात का मन पूर्णत शात था। जीवन का यह अतिम दिन उसके सारे जीवन का नमूना था। ऐसे शानदार जीवन और ऐसी शानदार मृत्यु के उदाहरण इतिहास में बहुत कम मिलते हैं।

सुकरात की शिक्षा की बाबत हमें तीन समकालीन लेखको की रचनाओं से पता लगता है—प्लेटो के सवाद सुकरात का आदर्शीकरण हैं; जीनोफन ने उसकी प्रशसा की है, परंतु वह उसके दार्शनिक विचारों को समझता नही था; अरिस्टोफेनीज ने उसे हँसी मजाक का विषय बनाने का यत्न किया है। पीछे अरस्तू ने जो कुछ कहा, उसका विशेष ऐतिहासिक महत्व समझा जाता है। [दी० च०]

सुकेशी १ धनाध्यक्ष कुबेर की सभा की एक अप्सरा। अलकापुरी की अप्सराओं में इसका विशेष स्थान था। इसने महर्षि अष्टावक्र के स्वागत समारोह में कुबेर के सभाभवन में नृत्य किया था (म० भा० सभा० १९–४५)।

२ श्रीकृष्ण की प्रेयसी जो गाधारराज की कन्या थी। इन्हें श्रीकृष्ण ने द्वारका में ठहराया था। [चं० भा० पा०]

का भ्रमण करते रहे। हिंदी के अतिरिक्त इन्हे संस्कृत, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी और फारसी आदि भाषाओं की भी अच्छी जानकारी थी। सर्वदा स्त्रीचर्चा से दूर रहकर ये आजीवन बालब्रह्मचारी रहे। इनका स्वर्गवास कार्तिक शुक्ल ८, स० १७४६ वि० को सांगानेर नामक स्थान में हुआ।

छोटी बडी सभी कृतियो को मिलाकर सुंदरदास की कुल ४२ रचनाएँ कही गई हैं जिनमें प्रमुख हैं 'ज्ञानसमुद्र', 'सुंदरविलास', 'सर्वांगयोगप्रदीपिका', 'पंचेंद्रियचरित्र', 'सुखसमाधि', 'अद्भुत उपदेश', 'स्वप्नप्रबोध', 'वेदविचार', 'उक्त अनूप', ज्ञानझूलना' 'पचप्रभाव' आदि।

सुंदरदास ने अपनी अनेक रचनाओ के माध्यम से भारतीय तत्वज्ञान के प्रायः सभी रूपो का अच्छा दिग्दर्शन कराया। इनकी दृष्टि में अन्य सामान्य संतो की भाँति ही सिद्धांत ज्ञान की अपेक्षा अनुभव ज्ञान का महत्व अधिक था। ये योग और अद्वैत वेदात के पूर्ण समर्थक थे। ये काव्यरीतियों से भली भाँति परिचित रससिद्ध कवि थे। इस अर्थ में ये अन्य निर्गुणी संतो से सर्वथा भिन्न ठहरते हैं। काव्यगरिमा के विचार से इनका 'सुंदरविलास' बड़ा ललित और रोचक ग्रंथ है। इन्होने रीतिकवियो की पद्धति पर चित्रकाव्य की भी सृष्टि की है जिससे इनकी कविता पर रीतिकाव्य का प्रभाव स्पष्टत· परिलक्षित होता है। परिमार्जित और सालंकार ब्रजभाषा मे इन्होने भक्तियोग, दर्शन, ज्ञान, नीति और उपदेश आदि विषयो का पाडित्यपूर्ण प्रतिपादन किया है। शास्त्रज्ञानसंपन्न और काव्यकलानिपुण कवि के रूप में सुंदरदास का हिंदी संत-काव्य-धारा के कवियो में विशिष्ट स्थान है। [रा० फे० त्रि०]

सुंदर वन सुंदर वन पश्चिमी बंगाल तथा पूर्वी पाकिस्तान में एक विशाल जगली तथा दलदली क्षेत्र है। इसका विस्तार बगाल की खाडी के तट पर हुगली नदी के मुहाने से मेघना के मुहाने तक १७० मील तथा उत्तर दक्षिण ६६ किमी से १२८ किमी तक है। यह २१° ३१' से २२° ३८' उ० अ० तक तथा ८८° ५' से ९०° २८' पू० दे० तक लगभग १६७०६ वर्ग किमी क्षेत्र में विस्तृत है। इसका नाम इस जंगल में मिलनेवाले 'सुंदरी' वृक्षो के आधार पर पड़ा है। इसके अतिरिक्त गोरान, गेवा, बैन तथा ढुंडाल नामक वृक्ष मिलते हैं। सपूर्ण क्षेत्र उत्तर दक्षिण बहनेवाली हुगली, माल्टा, रायमगल, मालचा हरिणधारा, मेघना तथा इसकी अनेक शाखाओ से विधा हुआ है। नदियों में ज्वार आने से यह क्षेत्र पूर्णतः दलदलों तथा बीच बीच मे ऊँची जमीन से भरा हुआ है। यहाँ जंगली जानवर अधिक मिलते हैं। बाघ, दरियाई घोड़े, भैंसे, सुअर, हरिण, मगर, गेहुअन सर्प तथा अन्य भयानक जंतु मिलते हैं। अभी तक सुंदरवन अपनी प्राकृतिक अवस्था में है तथा यहाँ विकास का कोई प्रयास नही हुआ है। [ज० सिं०]

सुंदरलाल होरा (सन् १८९६-१९५५) भारतीय प्राणिविज्ञानी का जन्म पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान) के हाफिजाबाद नामक कस्बे में हुआ था। पंजाब विश्वविद्यालय की एम० एस-सी० परीक्षा में आपने प्रथम स्थान प्राप्त किया तथा आपको मैकलैगेन पदक और अन्य समान प्राप्त हुए। सन् १९१९ में आप भारत के जूलॉजिकल सर्वे विभाग में नियुक्त हुए। सन् १९२२ में पजाब विश्वविद्यालय और सन् १९२८ में एडिनबरा विश्वविद्यालय से आपने डी० एस-सी० की उपाधियाँ प्राप्त की।

आपके जैविक तथा मत्स्य विज्ञान संबधी अनुसंधान बहुत महत्वपूर्ण थे और इनके लिये आपको भारतीय तथा विदेशी वैज्ञानिक सस्थाओं से समानित उपाधियाँ तथा पदक प्राप्त हुए। आपके लगभग ४०० मौलिक लेख भारतीय तथा विदेशी वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। प्राणिविज्ञान के लगभग सभी पक्षो पर आपने लेख लिखे हैं। प्राचीन भारत में मत्स्य तथा मत्स्यपालन विज्ञान सबधी आपके अनुसधान विशेष महत्व के थे। आपने भारत के जूलॉजिकल सर्वे विभाग को मत्स्य सबधी अनुसंधान कार्य का केंद्र बना दिया।

आप एडिनबरा की 'रॉयल सोसायटी', लदन की 'जूलॉजिकल सोसायटी,' लदन के 'इस्टिट्यूट ऑव बायलॉजी', तथा अमरीका की 'सोसायटी ऑव इक्थियोलॉजिस्ट्स एंड हर्पेटोलॉजिस्ट्स' के सदस्य थे। आप 'एशियाटिक सोसायटी' के वरिष्ठ सदस्य निर्वाचित हुए। इस संस्था ने आपको 'जयगोविंद विधि' पदक प्रदान किया तथा कई वर्ष तक आप इस सस्था के उपाध्यक्ष रहे। भारत के 'नेशनल इस्टिट्यूट ऑव सायंस' के आप सस्थापक सदस्य तथा सन् १९५१ और १९५२ में उसके अध्यक्ष रहे। ये भारत की 'नेशनल जिऑग्रैफिकल सोसायटी' के सदस्य तथा उसके जवाहरलाल पदक के प्राप्तकर्ता, 'भारतीय जूलॉजिकल सोसायटी' के सदस्य तथा इसके सर दोराबजी ताता पदक के प्रापक थे। 'बॉम्बे नैचुरल हिस्ट्री सोसायटी' के भी आप सदस्य निर्वाचित हुए। इन वैज्ञानिक संस्थाओं के अलावा आप अनेक अन्य वैज्ञानिक और समुद्र विज्ञान तथा मत्स्य विज्ञान से सबधित सस्थाओं के समानित सदस्य थे।

आप 'इडियन सायंस काग्रेस' के प्राणिविज्ञान अनुभाग के सन् १९३० में तथा सायस काग्रेस के सन् १९५४ मे अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। इस सस्था द्वारा प्रकाशित 'भारतीय क्षेत्र विज्ञानो की रूपरेखा' (An Outline of Field Sciences in India) के आप संपादक भी थे। [भ० दा० व०]

सुकथंकर, विष्णु सीताराम (१८८७ १९४३) प्रारंभिक शिक्षा मराठा हाईस्कूल तथा सेंट जेवियर कालेज (बबई) मे प्राप्त करने के बाद ये कैंब्रिज चले गए, जहाँ इन्होने गणित मे एम० ए० किया। तत्पश्चात् इनका रुझान भाषाविज्ञान एव सस्कृत साहित्य के अध्ययन की ओर हो गया और ये बर्लिन जा पहुँचे। वहाँ इन्हें प्रोफेसर लूडर्स के अधीन भाषाविज्ञान की विधाओ में अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। इनके शोध प्रबध का शीर्षक था 'डाई ग्रैमैटिक शाकटायनाज़'। इसमें इन्होंने शाकटायनकृत व्याकरण के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद का सटीक विवेचन किया। भारत लौट आने के बाद इनकी नियुक्ति पुरातत्वीय पर्यवेक्षण विभाग मे सहायक अधीक्षक के पद पर हो गई। यहाँ इन्होने कितने ही पूर्वमध्यकालीन शिलालेखो

करके इसने कुछ शौर्य दिखाया। मिर्जा राजा जयसिंह के साथ जाकर पुरदर दुर्ग को इसने जीता। प्रसादस्वरूप इसका मसब बढाकर तीन हजारी तीन हजार सवार का कर दिया गया। इसके बाद आदिलशाहियो के विरुद्ध युद्ध में वीरता दिखाई और चांदा (बरार के निकट) प्रांत पर अधिकार करने के लिये भेजा गया। १६६८ ई० के लगभग इसकी मृत्यु हुई।

सुजुकी देइसेत्ज (१८७०—१९६६) जापान के बौद्ध साहित्य एवं दर्शन के विश्वविख्यात विद्वान्। आपने बौद्ध धर्म मे प्रचलित 'ध्यान सप्रदाय' को नवीन रूप प्रदान किया है। जापान में यह सप्रदाय 'ज़ेन' सप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। वैसे तो जापान में ज़ेन सप्रदाय की स्थापना 'येई साई' (११४१-१२१५) ने की, जो कर्मकाड आदि को हेय समझकर ध्यान एव आत्मसयम को ही सर्वश्रेष्ठ मानते थे—किंतु जापानी दार्शनिक डा० सुजुकी ने ज़ेन सप्रदाय की इस मौलिक विचारधारा को और भी परिमार्जित कर आगे बढाया। वे मानते थे कि दर्शन और धर्म का लौकिक उद्देश्य भी है।

डॉ० सुजुकी का जन्म कनजावा (जापान) में हुआ। प्रारभिक अध्ययन के बाद आप सन् १८९२ में तोक्यो विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण कर उच्च अध्ययन के लिये १८९७ में अमरीका गए। वहाँ आपने अध्ययन के साथ साथ बौद्धधर्म एव उदार चीनी दर्शन ताओवाद (Taoism) के अनेक ग्रथों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। सन् १९०९ में जापान लौटने पर सुजुकी पीअर विश्वविद्यालय (गाकाशुईन) में अंग्रेजी भाषा के अध्यापक नियुक्त हुए। इसी के साथ वे तोक्यो विश्वविद्यालय में भी अध्यापन-कार्य करते रहे। सन् १९२१ के पश्चात् आप ओतानी विश्वविद्यालय, क्योतो (जापान) में बौद्ध-दर्शन-विभाग के अध्यक्ष नियुक्त किए गए।

सन् १९३६ में डा० सुजुकी प्राध्यापक की हैसियत से अमरीका और ब्रिटेन गए और उन्होने जापानी सस्कृति एव ज़ेन दर्शन पर विद्वत्तापूर्ण भाषण दिए। इसके फलस्वरूप आपको जापान सरकार की ओर से 'ऑर्डर ऑव कल्चर' का समान प्रदान किया गया।

बौद्ध साहित्य के क्षेत्र मे डॉ० सुजुकी को और भी समान प्राप्त हुआ, जब उन्होंने ज़ेन बौद्ध धर्म पर ३० सस्करणों की एक ग्रथ-माला लिखी। इसी के बाद आपने एक अन्य पुस्तक 'ज़ेन और जापान की सस्कृति' जापानी भाषा मे प्रकाशित की। इसका अनुवाद अग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन और पुर्तगाली भाषा मे किया गया। इस प्रकार डॉ० सुजुकी की इस अनुपम कृति को अतरराष्ट्रीय समान प्राप्त हुआ। [नि० शा०]

सुत्त पिटक त्रिपिटक का पहला पिटक है। इस पिटक के पाँच भाग हैं जो निकाय कहलाते हैं। निकाय का अर्थ है समूह। इन पाँच भागों मे छोटे बडे सुत्त संगृहीत हैं। इसीलिये वे निकाय कहलाते हैं। निकाय के लिये 'सगीति' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। आरभ में, जब कि त्रिपिटक लिपिबद्ध नही था, भिक्षु एक साथ सुत्तो का पारायण करते थे। तदनुसार उनके पाँच संग्रह संगीति कहलाने लगे। बाद में निकाय शब्द का अधिक प्रचलन हुआ और संगीति शब्द का बहुत कम।

कई सुत्तो का एक वग्ग होता है। एक ही सुत्त के कई भाणवार भी होते हैं। ८००० अक्षरो का भाणवार होता है। तदनुसार एक एक निकाय की अक्षरसख्या का भी निर्धारण हो सकता है। उदाहरण के लिये दीघनिकाय के ३४ सुत्त हैं और भाणवार ६४। इस प्रकार सारे दीघनिकाय में ५१२००० अक्षर हैं।

सुत्तो में भगवान् तथा सारिपुत्र मौद्गल्यायन, आनद जैसे उनके कतिपय शिष्यो के उपदेश सगृहीत हैं। शिष्यो के उपदेश भी भगवान् द्वारा अनुमोदित हैं।

प्रत्येक सुत्त की एक भूमिका है, जिसका बडा ऐतिहासिक महत्व है। उसमें इन बातों का उल्लेख है कि कब, किस स्थान पर, किस व्यक्ति या किन व्यक्तियों को वह उपदेश दिया गया था और श्रोताओं पर उसका क्या प्रभाव पडा।

अधिकतर सुत्त गद्य मे हैं, कुछ पद्य में और कुछ गद्य पद्य दोनों में। एक ही उपदेश कई सुत्तों में आया है — कही सक्षेप में और कहीं विस्तार में। उनमें पुनरुक्तियों की बहुलता है। उनके सक्षिप्तीकरण के लिये 'पय्याल' का प्रयोग किया गया है। कुछ परिप्रश्नात्मक हैं। उनमें कही कहीं आख्यानों और ऐतिहासिक घटनाओ का भी प्रयोग किया गया है। सुत्तपिटक उपमाओं का भी बहुत बडा भडार है। कभी कभी भगवान् उपमाओं के सहारे भी उपदेश देते थे। श्रोताओ में राजा से लेकर रक तक, भोले भाले किसान से लेकर महान् दार्शनिक तक थे। उन सबके अनुरूप ये उपमाएँ जीवन के अनेक क्षेत्रों से ली गई हैं।

बुद्ध जीवनी, धर्म, दर्शन, इतिहास आदि सभी दृष्टियों से सुत्त पिटक त्रिपिटक का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। बुद्धगया के बोधिद्रुम के नीचे बुद्धत्व की प्राप्ति से लेकर कुशीनगर मे महापरिनिर्वाण तक ४५ वर्ष भगवान् बुद्ध ने जो लोकसेवा की, उसका विवरण सुत्त-पिटक में मिलता है। मध्यमडल में किन किन महाजनपदो में उन्होंने चारिका की, लोगों मे कैसे मिले जुले, उनकी छोटी छोटी समस्याओ से लेकर बडी बडी समस्याओ तक के समाधान में उन्होने कैसे पथ-प्रदर्शन किया, अपने सदेश के प्रचार में उन्हें किन किन कठिनाइयों का सामना करना पडा — इन सब बातो का वर्णन हमे सुत्तपिटक मे मिलता है। भगवान् बुद्ध के जीवनसंबंधी ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन ही नहीं, अपितु उनके महान् शिष्यों की जीवन झाँकियाँ भी इसमें मिलती हैं।

सुत्तपिटक का सबसे बडा महत्व भगवान् द्वारा उपदिष्ट साधना पद्धति मे है। वह शील, समाधि और प्रज्ञा रूपी तीन शिक्षाओ मे निहित है। श्रोताओं में बुद्धि, नैतिक और आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से अनेक स्तरों के लोग थे। उन सभी के अनुरूप अनेक प्रकार से उन्होने आर्य मार्ग का उपदेश दिया था, जिसमें पचशील से लेकर दस पारमिताएँ तक शामिल हैं। मुख्य धर्म पर्याय इस प्रकार हैं — चार आर्य सत्य, अष्टागिक मार्ग, सात बोध्याग, चार सम्यक् प्रधान, पाँच इद्रिय, प्रतीत्य समुत्पाद, स्कध आयतन धातु रूपी सस्कृत धर्म

सुगंध का ज्ञान मानव को बहुत प्राचीन काल से है। संसार के सभी प्राचीन ग्रंथो में इसका उल्लेख मिलता है। उस समय इसका घनिष्ट संबंध अंगरागों से था जैसा आज भी है। धार्मिक कृत्यो में किसी न किसी रूप मे इसका व्यवहार बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। मिस्रवासी सुगंध का उपयोग तीन उद्देश्यो से करते थे, एक देवताओ पर चढाने के लिये, दूसरे व्यक्तिगत व्यवहार के लिये और तीसरे शवो को सुरक्षित रखने के लिये। अनेक पादपों के पुष्पो, पत्तो, छालो, काष्ठो, जड़ो, कंदो, फलो, बीजो, गोदो तथा रेजिनों में सुगंध होती है। सुगंध या तो गंध तेल के रूप में या अनेक ग्लाइकोसाइडों के रूप में रहती है। वैज्ञानिको ने इनका विस्तृत अध्ययन किया है, उनकी प्रकृति का ठीक ठीक पता लगाया है और प्रयोगशाला में उन्हे प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है। प्राय. सभी प्राकृतिक सुगधो की नकलें कर ली गई हैं और कुछ ऐसी भी सुगधें तैयार हुई हैं जो प्रकृति में नही पाई जाती। अनुसंधान से पता लगा है कि ये सुगंध अम्ल, ऐल्कोहल, ऐस्टर, ऐल्डीहाइड, कीटोन, ईथर टरपीन और नाइट्रो आदि वर्ग के विशिष्ट कार्बनिक यौगिक होते हैं। आजकल जो सुगधें बाजारो में प्राप्त होती हैं वे तीन प्रकार की होती हैं। एक प्राकृतिक, दूसरी अर्धप्राकृतिक या अर्धसंश्लिष्ट और तीसरी संश्लिष्ट। प्राकृतिक सुगधों में वनस्पतियो से प्राप्त गंध तेलों के अतिरिक्त कुछ, जैसे ऐंबरग्रीस (ह्वेल मछली से), कस्तूरी (कस्तूरी मृग के कूपो से), मर्जारी कस्तूरी (मार्जार से) आदि जतुओं से भी प्राप्त होती हैं।

पादपो से सुगंध प्राप्त करने की साधारणतया चार रीतियाँ काम में आती हैं: १ — वाष्प द्वारा आसवन से, २ — विलायको द्वारा निष्कर्षण से, ३ — निचोड़ और ४ — एक विशिष्ट विधि से जिसे आनफलराज (Enflurage) कहते हैं। अंतिम विधि से ही भारत मे नाना प्रकार के अतर तैयार होते हैं। गुलाब, बेला, जूही, चमेली, नारंगी, लवेंडर, कदिल और वायोलेट आदि फूलो से, नारगी और नीबू के छिलको, सौंफ, धनियाँ, जीरा, मँगरैल, अजवाइन के बीजो से, खस और ओरिस (orris) की जड़ो से, चदन के काठ से, दालचीनी एवं तेजपात वृक्ष के छालो से, सिटोनेला, पामरोजा, जिरेनियल आदि घासो से (इन्ही विधियो से) गध तेल प्राप्त होते हैं। विलायक के रूप में पेट्रोलियम, ईथर, एल्कोहल, बेंजीन का साधारणतया व्यवहार होता है। अर्धसश्लिष्ट सुगंधो में वैनिलिन, अल्फा-बीटा तथा मेथिल आयोनोन हैं। सश्लिष्ट सुगंधो में बेंजोइक एव फेनिलऐसीटिक सदृश अम्ल, लिनेलूल टरमिनियोल सदृश ऐल्डीहाइड, ऐमिल सैलिसीलेट, बेंजील ऐसीटेट सदृश ऐस्टर, डाइफेनिल आक्साइड सदृश ईथर, आयोनोन कपूर सदृश कीटोन और २ : ४ : ६ : ट्राइनाइट्रो टर्शीयरी ब्युटिल टोल्विन तथा नाइट्रोबेंजीन सदृश नाइट्रो यौगिक हैं।

व्यवहार में आनेवाले सुगंध के तीन अंग होते हैं, एक गंध तेल, दूसरे स्थिरीकारक और तीसरे तनुकारक। गंध तेल तीव्र गंधवाले और कीमती होते हैं। ये जल्द उड़ भी जाते हैं। इनको जल्द उड़ने से बचाने के लिये स्थिरीकारको का व्यवहार होता है। तनुकारको से गंध की तीव्रता कम होकर अधिक आकर्षक भी हो जाती है और इसकी कीमत में बहुत कमी हो जाती है। स्थिरीकारको का उद्देश्य की गंध को उड़ने से बचाने के अतिरिक्त कीमत का कम करना भी होता है। कुछ स्थिरीकारक गंधवाले भी होते हैं। सुगंध में साधारणतया गंध तेल और स्थिरीकारक १० प्रतिशत और शेष ६० प्रतिशत तनुकारक रहते हैं।

स्थिरीकारकों के रूप में अनेक पदार्थो का व्यवहार होता है। इनमें कस्तूरी, कृत्रिम कस्तूरी, मस्क अब्रेट, मस्क कीटोन, मस्क टोल्विन, मस्का जाइलीन, ऐंबरग्रीस, ओलियोरेजिन, रेज़िन तेल, चदन तेल, गोंद के आसुत उत्पाद, द्रव ऐंबरा लैवडेनम तेल, पिपरानल, कुमेरिन, बेंजाइल सिनमेट, मेथाइल सिनिमेट, बेंजाइल आइसोयूजेनोल, बेंजोफीनोन, वैनिलिन, एथिलसिनेमेट, हाइड्राक्सी सिट्रोनेलोल, बेंजील सैलिसिलेट इत्यादि हैं। तनुकारको मे ऐथिल ऐल्कोहल, बेंजाइल ऐल्कोहल, एमिल बेंजोएट, बेंजाइल बेंजोएट, डाइएथिल थैलेट, डाइमेथाइल थैलेट और कुछ ग्लाइकोल रहते हैं।

कुछ सुगंध जल के रूप में भी व्यापक रूप से व्यवहृत होते हैं। ऐसे जलो मे गुलाब के जल, केवड़े के जल, यू०डी० कोलन, और लवेंडर जल इत्यादि हैं। इनमें कुछ तो, जैसे गुलाबजल, सीधे फूलो से प्राप्त होते हैं और कुछ संश्लिष्ट सुगंधो से प्राप्त किए जाते हैं।

कुछ सुगंध केवल गंध के लिये इस्तेमाल होते हैं। कुछ साबुन, केशतेल, अंगराग सदृश पदार्थो को सुगधित बनाने मे प्रचुरता से प्रयुक्त होते हैं। कुछ सुगंध जैसे नीबू के और नारंगी के छिलके के तेल, स्वाद के लिये, कुछ सुगंध जैसे वैनिलिन, ऐंजेलिका तेल तथा धनियाँ तेल गंध और स्वाद दोनों के लिये प्रयुक्त होते हैं। मलाई के बरफ बनाने में वैनिलिन का विशेष स्थान है। पिपरमेंट का तेल स्वाद के साथ साथ ओषधियो में भी प्रयुक्त होता है. अनेक गंध तेल आज ओषधियो के काम आते हैं, पहले जहाँ उनके निष्कर्ष का ही व्यवहार होता था। कुछ सुगंध जीवाणुनाशक और कीटनिष्कासक भी होते हैं तथा वे मच्छर, दंश और मक्खी सदृश कीटो को भगाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। धूप, गुग्गुल, कपूर और लोबान सदृश सुगंधो का धर्मकृत्यो में विशेष स्थान है। (देखें, तेल वाष्पशील)।

[ल० शं० शु०]

सुग्रीव वालि का छोटा भाई और वानरो का राजा। वालि के भय से यह किष्किंधा में रहता था और हनुमान का परम मित्र था। इसे सूर्य का पुत्र और इसीलिये रविनंदन कहते हैं। कहते हैं, सुग्रीव को अपना रूप परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त थी। सुग्रीव की स्त्री का नाम रूमा था और वालि के मरने पर उसकी पत्नी तारा भी सुग्रीव की रखेल हो गई थी। [रा० द्वि०]

सुजान सिंह बुंदेला, राजा राजा पहाड सिंह बुंदेला का पुत्र। पिता के जीवनकाल में मुगल सम्राट् शाहजहाँ का सेवक हो गया। पिता की मृत्यु के पश्चात् इसको दो हजारी २००० सवार मंसबदार बनाया गया। औरंगजेब के सिंहासनारूढ होने पर यह शाहशुजा के विरुद्ध युद्ध में नियुक्त हुआ। मुअज्जम खाँ के साथ कूचविहार के जमींदार को दंड देने के लिये भेजा गया। आसाम पर कई आक्रमण
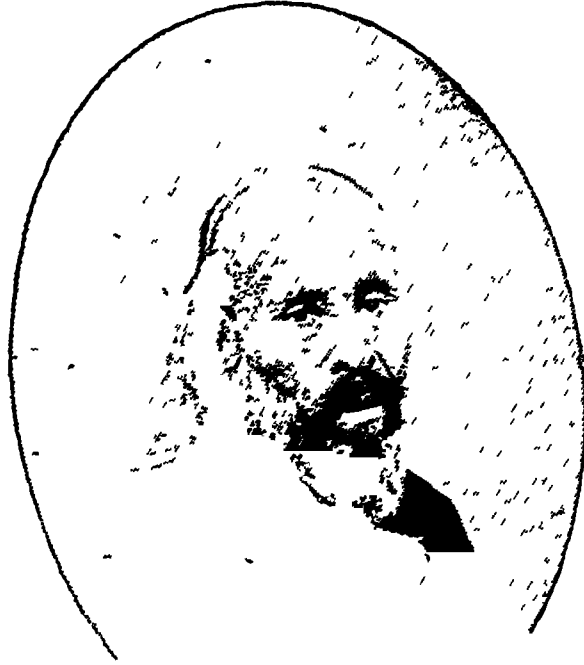
'हरिऔध', अयोध्यासिंह उपाध्याय
(देखिए—पृ० सं० २६३-२६४)

सुधाकर द्विवेदी

(देखिए—पृ० स० १२७–१२६)

सुधाकर जी ने गणित का गहन अध्ययन किया और भिन्न भिन्न ग्रंथों पर अपना 'शोध' प्रस्तुत किया। गणित के पाश्चात्य ग्रंथो का भी अध्ययन इन्होंने अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाओं को पढ़कर किया। बापूदेव जी ने अपने 'सिद्धांत शिरोमणि' ग्रंथ की टिप्पणी में पाश्चात्य विद्वान् डलहोस के सिद्धांत का अनुवाद किया था। द्विवेदी जी ने उक्त सिद्धांत की अशुद्धि बतलाते हुए बापूदेव जी से उसपर पुनर्विचार के लिये अनुरोध किया। इस प्रकार लगभग बाईस वर्ष की ही आयु में सुधाकर जी प्रकांड विद्वान् हो गए और उनके निवासस्थान खजुरी मे भारत के कोने कोने से विद्यार्थी पढ़ने आने लगे।

सन् १८८३ में द्विवेदी जी सरस्वतीभवन के पुस्तकालयाध्यक्ष हुए। विश्व के हस्तलिखित पुस्तकालयो में इसका विशिष्ट स्थान है। १६ फरवरी, १८८७ को महारानी विक्टोरिया की जुबिली के अवसर पर इन्हें 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से विभूषित किया गया।

द्विवेदी जी ने 'ग्रीनिच' (Greenwich) में प्रकाशित होनेवाले 'नाटिकल आॅल्मैनक' (Nautical Almanac) मे अशुद्धि निकाली। 'नाटिकल आॅल्मैनक' के सपादको एव प्रकाशको ने इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की और इनकी भूरि भूरि प्रशसा की। इस घटना से इनका प्रभाव देश विदेश मे बहुत बढ गया। तत्कालीन राजकीय सस्कृत कालेज (काशी) के प्रिंसिपल डा० वेनिस के विरोध करने पर भी गवर्नर ने इन्हें गणित और ज्योतिष विभाग का प्रधानाध्यापक नियुक्त किया।

सुधाकर जी गणित के प्रश्नो और सिद्धांतों पर बराबर मनन किया करते थे। बग्गी पर नगर मे घूमते हुए भी वे कागज पेंसिल लेकर गणित के किसी जटिल प्रश्न को हल करने में लगे रहते। द्विवेदी जी की गणित और ज्योतिष संबंधी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) वास्तव विचित्र प्रश्नानि, (२) वास्तव चद्रश्रृगोन्नति, (३) दीर्घवृत्तलक्षणम्, (४) ग्रमरेखानिरूपणम्, (५) ग्रहणेछादक निर्णय, (६) यत्रराज, (७) प्रतिभावोधकः, (८) धराभ्रमे प्राचीननवीनयोर्विचार, (९) पिंडप्रभाकर, (१०) सशल्यवाण निर्णय, (११) वृत्तातर्गत सप्तदश भुजरचना, (१२) गणकतरंगिणी (१३) दिङ्मीमासा, (१४) द्यु चर चार, (१५) फ्रेंच भाषा से सस्कृत में बनाई चद्रसारणी तथा भौमादि ग्रहो की सारणी (सात खडो मे), (१६) ११००००० की लघुरिक्थ की सारणी तथा एक एक कला की ज्यादा सारणी, (१७) समीकरण मीमासा (Theory of Equations) दो भागो में, (१८) गणित कौमुदी, (१९) वराहमिहिरकृत पचसिद्धांतिका, (२०) कमलाकर भट्ट विरचित सिद्धात तत्व विवेक, (२१) लल्लाचार्यकृत शिष्यधिवृद्धिदतत्रम्, (२२) करण कुतूहलः वासनाविभूषण सहित, (२३) भास्करीय लीलावती, टिप्पणीसहिता, (२४) भास्करीय बीजगणित टिप्पणीसहितम्, (२५) वृहत्सहिता भट्टोत्पल टीका सहिता, (२६) ब्रह्मास्फुट सिद्धात स्वकृततिलका (भाष्य) सहित, (२७) ग्रहलाघव स्वकृत टीकासहित, (२८) याजुष ज्योतिष सोमाकर भाष्यसहितम्, (२९) श्रीधराचार्यकृत स्वकृत टीका सहिताच त्रिशतिका, (३०) करणप्रकाश सुधाकरकृत सुधावर्षिणी सहित, (३१) सूर्यसिद्धात सुधाकरकृत सुधावर्षिणी सहित, (३२) सूर्यसिद्धातस्य एका वृहत्सारणी तिथिनक्षत्रयोगकरणाना घटिज्ञापिका आदि।

हिंदी में रचित गणित एव ज्योतिष सबधी प्रमुख ग्रंथ ये हैं—

(१) चलन कलन (Differential Calculus), (२) चलराशिकलन (Integral Calculus), (३) ग्रहण करण, (४) गणित का इतिहास, (५) पचागविचार, (६) पचागप्रपंच तथा काशी की समय समय पर की अनेक शास्त्रीय व्यवस्था, (७) वर्गचक्र में अंक भरने की रीति, (८) गतिविद्या, (९) त्रिशतिका—श्रीपति भट्ट का पाटीगणित (सपादित) आदि।

द्विवेदी जी उच्च कोटि के साहित्यिक एवं कवि भी थे। हिंदी और संस्कृत में उनकी साहित्य सबधी कई रचनाएँ हैं। हिंदी की जितनी सेवा उन्होंने की उतनी किसी गणित, ज्योतिष और सस्कृत के विद्वान् ने नही की। द्विवेदी जी और भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र में बडी मित्रता थी। दोनो हिंदी के अनन्य भक्त थे और हिंदी का उत्थान चाहते थे। द्विवेदी जी आशु रचना में भी पटु थे। काशीस्थित राजघाट के पुल का निर्माण देखने के पश्चात् ही उन्होंने भारतेंदु बाबू को यह दोहा सुनाया—

राजघाट पर बनत पुल, जहँ कुलीन को ढेर।
आज गए कल देखिके, आजहि लौटे फेर॥

भारतेंदु बाबू इस दोहे से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने द्विवेदी जी को जो दो बीडा पान घर खाने को दिया उसमे दो स्वर्ण मुद्राएँ रख दी।

द्विवेदी जी ने मलिक मुहम्मद जायसी के महाकाव्य 'पद्मावत' के पच्चीस खडों की टीका ग्रियर्सन के साथ की। यह ग्रथ उस समय तक दुरूह माना जाता था, किंतु इस टीका से उसकी सुदरता में चार चाँद लग गए। 'पद्मावत' की 'सुधाकरचद्रिका टीका' की भूमिका में द्विवेदी जी ने लिखा है :—

लखि जननी की गोद बीच, मोद करत रघुराज।
होत मनोरथ सुफल सब, धनि रघुकुल सिरताज॥
जनकराज-तनया-सहित, रतन सिंहासन आज,
राजत कोशलराज लखि, सुफल करहु सब काज॥
का दुसाधु का साधु जन, का बिमान समान।
लखहु सुधाकर चद्रिका, करत प्रकाश समान॥
मलिक मुहमद मतिलता, कविता कनक बितान।
जोरि जोरि सुवरन बरन, धरत सुधाकर सान॥

द्विवेदी जी राम के अनन्य भक्त थे और उनकी कविताएँ प्रायः रामभक्ति से ओतप्रोत होती थी। अपनी सभी पुस्तकों के प्रारंभ में उन्होंने राम की स्तुति की है।

द्विवेदी जी व्यंगात्मक (Satirical) कविताएँ भी यदाकदा लिखते थे। अंग्रेजियत से उन्हें बडी अरुचि थी और भारत की गिरी दशा पर बडा क्लेश था। राजा शिवप्रसाद गुप्त सितारे हिंद की

और अनित्य दुःख-अनात्म-रूपी संस्कृत लक्षण। इनमें भी सैंतीस बोधिपाक्षीय धर्म ही भगवान् के उपदेशों का सार है। इसका संकेत उन्होंने महापरिनिर्वाण सुत्त में किया है। यदि हम भगवान् के महत्वपूर्ण उपदेशों की दृष्टि से सुत्तों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करें तो हमें उनमें घुमा फिराकर ये ही धर्मपर्याय मिलेंगे। अंतर इतना ही है कि कहीं ये संक्षेप में हैं और कहीं विस्तार में हैं। उदाहरणार्थ संयुत्त निकाय के प्रारंभिक सुत्तों में चार सत्यों का उल्लेख मात्र मिलता है, धम्मचक्कपवत्तन सुत्त में इनका विस्तृत विवरण मिलता है, और महासतिपट्ठान में इनकी विशद व्याख्या भी मिलती है।

सुत्तों की मुख्य विषयवस्तु तथागत का धर्म और दर्शन ही है। लेकिन प्रकारांतर से और विषयों पर भी प्रकाश पड़ता है। जटिल, परिव्राजक, आजीवक, और निगंठ जैसे जो अन्य श्रमण और ब्राह्मण संप्रदाय उस समय प्रचलित थे, उनके मतवादों का भी वर्णन सुत्तों में आया है। वे संख्या में ६२ बताए गए हैं। यज्ञ और जातिवाद पर भी कई सुत्तंत हैं।

देश मगध, कोशल, वज्जि जैसे कई राज्यों में विभाजित था। उनमें कहीं राजसत्तात्मक शासन था तो कहीं गणतंत्रात्मक राज्य। उनका आपस का संबंध कैसा था, शासन प्रशासन कार्य कैसे होते थे — इन बातों का भी उल्लेख कहीं कहीं मिलता है। साधारण लोगों की अवस्था, उनकी रहन सहन, आचार विचार, भोजन छादन, उद्योग धंधा, शिक्षा दीक्षा, कला कौशल, ज्ञान विज्ञान, मनोरंजन, खेल कूद आदि बातों का भी वर्णन आया है। ग्राम, निगम, राजधानी, जनपद, नदी, पर्वत, वन, तड़ाग, मार्ग, ऋतु आदि भौगोलिक बातों की भी चर्चा कम नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुत्तपिटक का महत्व न केवल धर्म और दर्शन की दृष्टि से है, अपितु बुद्धकालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक और भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से भी है। इन सुत्तों में उपलब्ध सामग्री का अध्ययन करके विद्वानों ने निबंध लिखकर अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

सुत्तपिटक के पाँच निकाय इस प्रकार हैं : दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुत्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय। सर्वास्तिवादियों के सूत्रपिटक में भी पाँच निकाय रहे हैं, जो आगम कहलाते थे। उनके मूल ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। सभी ग्रंथों का चीनी अनुवाद और कुछ का तिब्बती अनुवाद उपलब्ध है। उनके नाम इस प्रकार हैं : दीर्घागम, मध्यमागम, संयुक्तागम, एकोत्तरागम और क्षुद्रकागम। मुख्य बातों पर निकायों और आगमों में समानता है। इस विषय पर विद्वानों ने प्रकाश डाला है। [भि०]

सुदर्शन कुल फूलों का एक कुल सुदर्शन कुल (ऐमेरिलिडेसी) है। इस कुल में बहुत सी (एक हजार से कुछ ऊपर ही) जातियाँ हैं और इस कुल के पुष्प लिली से बहुत मिलते जुलते हैं। सुदर्शन कुल के पुष्प उष्ण तथा उपोष्ण देशों में पाए जाते हैं। अधिकांश में कंद होता है। कई में लिली के समान पुष्प फूलते हैं। इस कुल के कुछ पौधों के (जैसे ऐमारिलिस बेलाडोना और बूफेन डिस्टिका के) कंद अत्यंत विषैले होते हैं। इस कुल में पीला डैफोडिल और श्वेत स्नोड्राप इंग्लैंड में बहुत प्रसिद्ध हैं। सुदर्शन कुल की कुछ जातियाँ भारत में भी होती हैं; इनका वर्णन नीचे दिया जाता है :

जेफीर पुष्प — वनस्पति; सुदर्शन कुल, प्रजाति जेफीरैंथस। प्याज की तरह शल्की कंद; ४-५ पतली २० सेमी तक की पत्तियाँ एवं कीपाकार पुष्प २५ ३० सेमी के निवृंत पर खिलता है। ऐसे ३-४ निवृंत एक कंद से निकलते हैं।

इसकी कतिपय जातियाँ, जिनमें गुलाबी पुष्पवाला रोजिया, श्वेत पुष्पवाला कैंडाइडा और पीत पुष्पीय फ्लावा प्रधान हैं, भारत में उगाई जाती हैं और आस पास के घास के मैदानों में बिखरित होकर जंगली हो जाती हैं।

अमरीका के उष्ण भागों में (बोलीविया से टेक्सास और मेक्सिको तक) ३० जातियाँ, और एक जाति पश्चिमी अफ्रीका में भी, देखी हैं। यहाँ से संसार के सभी भागों के उद्यानों में यह फूल उगाया गया है।

जेफीरैंथस फ्लावा वर्षा के प्रारंभ में उगता है। पीले फूल २-३ सप्ताह तक निकलते हैं और अगस्त में फलों से २५-३० काले चिपटे बीज झड़ते हैं। सितंबर तक प्ररोह सूख जाता है और भूमि में कंद सुषुप्तावस्था में पड़ा रहता है। उद्यानों में विशेष ध्यान रखकर फूल अक्टूबर तक निकाला जा सकता है। [रा० मि०]

सुदामा कृष्ण के बाल्यकाल के सखा जो उनके साथ सांदीपनि ऋषि के आश्रम में पढ़ते थे। ये ब्राह्मण थे और इनकी दरिद्रता तथा कृष्ण से प्राप्त सहायता, सहानुभूति आदि की कथा साहित्य का महत्वपूर्ण अंग हो गई है। कृष्ण-सुदामा-मैत्री संसार की आदर्श मैत्रियों में से है। [रा० द्वि०]

सुधाकर द्विवेदी महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी अपने समय के गणित और ज्योतिष के उद्भट विद्वान् थे। इनका जन्म वाराणसी के खजुरी मुहल्ले में अनुमानतः २६ मार्च, सन् १८६० (सोमवार संवत् १९१२ विक्रमीय चैत्र शुक्ल चतुर्थी) को हुआ। इनके पिता का नाम कृपालुदत्त द्विवेदी और माता का नाम लाची था।

आठ वर्ष की आयु में, इनके यज्ञोपवीत के दो मास पूर्व, एक शुभ मुहूर्त (फाल्गुन शुक्ल पंचमी) में इनका अक्षरारंभ कराया गया। प्रारंभ से ही इनमें अद्वितीय प्रतिभा देखी गई। बड़े थोड़े समय में (अर्थात् फाल्गुन शुक्ल दशमी तक) इन्हें हिंदी मात्राओं का पूर्ण ज्ञान हो गया। जब इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तो ये भली भाँति हिंदी लिखने पढ़ने लगे थे। संस्कृत का अध्ययन प्रारंभ करने पर ये 'अमरकोश' के लगभग पचास से भी अधिक श्लोक एक दिन में याद कर लेते थे। इन्होंने वाराणसी संस्कृत कालेज के पं० दुर्गादत्त से व्याकरण और पं० देवकृष्ण से गणित एवं ज्योतिष का अध्ययन किया। गणित और ज्योतिष में इनकी अद्भुत प्रतिभा से महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री बड़े प्रभावित हुए। कई अवसरों पर बापूदेव जी ने इन्हें विभिन्न पुरस्कारों से अलंकृत किया। श्री ग्रीफिथ को उन्होंने एक अवसर पर लिखा, 'श्री सुधाकर शास्त्री गणिते बृहस्पतिसमः।'

पर, लार्ड ग्रे के नेतृत्व में सगठित नई व्हिग सरकार ने ससदीय सुधार का बीडा उठाया। फलतः सन् १८३२ में ससदीय सुधार विषयक विधेयक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत हो विधान के रूप में घोषित हुआ। इस विधान के तीन भाग थे प्रतिनिधि भेजने के अधिकार के हरण से सबधित, प्रतिनिध भेजने के अधिकार से सबधित, तथा मताधिकार के लिये आवश्यक योग्यताओं के प्रसार से सबधित। पहले भाग के अतर्गत एक बरो जो अपना एक सदस्य तथा ५५ छोटे छोटे बरो जो अपने दो सदस्य सदन भेजते थे, इस अधिकार से वचित किए गए। इस प्रकार सदन के १४३ स्थान रिक्त हुए जिन्हें नए बरो में वितरित किया गया। ऐसे २२ बरो में जिन्हें अभी तक कोई प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त था, प्रत्येक को दो सदस्य प्राप्त हुए तथा अन्य २१ बरो मे प्रत्येक को एक सदस्य मिला। इगलिश काउटियो, स्कॉटलैंड, तथा आयरलैंड को क्रमशः ६५,८ तथा ५ अधिक सदस्य प्राप्त हुए। इस प्रकार सदन की समग्र सदस्य-सख्या अपरिवर्तित रही। मताधिकार के लिये आवश्यक योग्यताओं को इस प्रकार प्रसारित किया गया कि लगभग ४,५५,००० व्यक्तियो को मताधिकार प्राप्त हुआ।

परतु यह आदोलन श्रमिक वर्ग को सतुष्ट करने में पूर्ण रूप से असफल रहा। वस्तुत इसका प्रभाव श्रमिक वर्ग की पृष्ठभूमि में छोड़, मध्य वर्ग को राजनीतिक दृष्टि से सर्वोपरि बनाने मे प्रतिफलित हुआ। श्रमिक वर्ग का असतोष सन् १८३१-३८ के चार्टिस्ट आदोलन (The Chartist movement) के रूप में व्यक्त हुआ। कालातर में सन् १८३२, १८६७, १८८४, १८८५, १९१८, १९२८ तथा १९४८ ई० में निर्मित विधानो द्वारा हाउस ऑव कॉमस पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया, राजनीतिक सत्ता बहुतो पर केंद्रीभूत हुई और कुलीनतत्र के स्थान पर जनतत्रात्मक सिद्धात को प्रश्रय मिला।

सं० ग्र० — एडम्स, जी० बी० · कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्टरी ऑव इग्लैंड, लदन, १९५१, ऐन्सन, डब्ल्यू० आर० द ला ऐंड कस्टम ऑव द कान्स्टिट्यूशन, लदन १९०९, कियर, डी० एल० द कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्टरी ऑव माडर्न ब्रिटेन, लंदन, १९५३; वीच, जी० एस० . दि जेनेसिस ऑव पार्लमेंटरी रिफॉर्म, लदन, १९१२

[रा० ग०]

सुनीति (Equity) लौकिक अर्थ मे 'सुनीति' को सहज न्याय (Natural Justice) का पर्याय मानते हैं पर ऐसा सोचना भ्रमात्मक होगा कि प्राकृतिक न्याय के अतर्गत आनेवाले सभी विषयो पर न्यायालय अपना निर्णय देगा। दया, करुणा आदि अनेक मानवोचित गुण प्राकृतिक न्याय की सीमा के अदर हैं, पर न्यायालय किसी को दया का आचरण दिखलाने को बाध्य नहीं कर सकता। न्यायाधीश बक्ले ने रि टेलीस्क्रिप्टर सिंडीकेट लि० (१९०३) २ चासरी, १७४ द्रष्टव्य पृ० १९५-९६ में कहा था, 'This court is not a court of conscience' अर्थात् 'सुनीति' से सबधित मामलो की जाँच करनेवाले इस न्यायालय को हम अत करण का न्यायालय नही कह सकते। उसी प्रसंग में उन्होंने कहा कि कानून से विहिन उन अधिकारों को ही यह न्यायालय कार्यान्वित करेगा, जिनके लिये देश का साधारण कानून पर्याप्त नहीं है। अत 'सुनीति' प्राकृतिक न्याय का वह अंश है, जो न्यायालयों द्वारा कार्यान्वित होने योग्य रहने पर भी ऐतिहासिक कारणो से कॉमन लॉ के न्यायालयों द्वारा कार्यान्वित न होने के कारण 'चासरी' न्यायालय द्वारा लागू किया जाता था। अन्यथा तथ्य की दृष्टि से 'सुनीति' एवं 'कॉमन लॉ' में कोई अतर नही।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि — प्राचीन काल में नैतिकता एव कानून परस्पर मिले हुए थे एवं 'धर्म' के व्यापक अर्थ में संनिहित थे। हिंदू धर्म के चार स्रोत माने गए हैं — वेद, स्मृति, सदाचार एव सुनीति। सुनीति के सिद्धात 'न्याय' मे अंतर्निहित रहे हैं। स्मृति के वचन एवं सदाचार की विशद विवृति के बावजूद न्याय के सभी प्रश्नों का निर्णय देने के लिये मान्य नियमो एव कानून की कल्पनाओं (Fiction) का आश्रय लिया जाता रहा है तथा इनपर सुनीति की छाप स्पष्ट है। स्मृतिकारों ने स्वीकार कर लिया था कि सनातन धर्म स्वभावत व्यापक नही हो सकता। अत 'न्याय' के सिद्धातों को विभिन्न परिस्थितियों में कार्यान्वित करना ही होगा। याज्ञवल्क्य का कथन है कि कानून के नियमो के परस्पर एक दूसरे से विषम होने पर न्याय अर्थात् प्राकृतिक सुनीति एवं युक्ति की उनपर मान्यता होगी। बृहस्पति के अनुसार केवल धर्मशास्त्र का ही आश्रय लेकर निर्णय देना उचित नही होगा, क्योकि युक्तिहीन विचार से धर्म की हानि ही होती है। नारद ने भी युक्ति की महत्ता मानी है। कानून एव न्याय के बीच शाश्वत द्वद्व के प्रसग में स्मृतिकारों ने युक्ति एव सुनीति को मान्यता दी है।

भारत में अंग्रेजी शासन स्थापित होने पर इस देश के न्यायालयों के निर्णय अंतिम अपील के रूप में प्रिवी काउंसिल के अधिकार-क्षेत्र में आने लगे। अत इग्लैंड में विकसित सुनीति का प्रभाव हिंदू-विधान पर परिलक्षित होने लगा। प्रिवी काउंसिल ने कॅचुवा वी गिरिमालप्पा [१९२४] ५१९ ए, ३६८ मे यह निर्णय किया कि यदि कोई किसी की हत्या कर दे तो वह व्यक्ति मृतक की संपत्ति का अधिकारी नही होगा। सार्वजनिक नीति पर आधारित उक्त नियम हिंदुओं के मामले में न्याय एवं सुनीति की दृष्टि से लागू किया गया।

संसार के भिन्न भिन्न देशो में जहाँ पिछली कई शताब्दियो मे अंग्रेजी शासन रहा है, उनके न्यायालयों के निर्णय पर अंग्रेजी सुनीति का प्रभाव स्पष्ट है। अतः इग्लैंड में सुनीति के ऐतिहासिक विकास पर कुछ शब्द आवश्यक हैं। मध्ययुग में इग्लैंड के राजा का सचिवालय 'चासरी' कहलाता था एव उसका अधिकारी 'चासलर' के नाम से विख्यात था। देश में मामलों का निर्णय करने के निमित्त न्यायालयो के रहने के बावजूद न्याय की अतिम थाती (Reserve of justice) राजा में ही आश्रित थी। अत चासरी में बहुधा ऐसा आवेदन आने लगा कि आवेदक दरिद्र, वृद्ध और रुग्ण है; किंतु उसका विपक्षी धनी एव शक्तिशाली है। इसलिये उसे आशका है कि विपक्षी जूरी को घूस देगा, अपनी प्रभुता से उन्हें भय दिखलाएगा, अथवा चालाकी से उसने कुछ ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी है कि देश का साधारण न्यायालय उसे न्याय नही दे सकेगा। ऐसा आवेदन प्रायः करुण शब्दों में भगवान् और धर्म की दुहाई

हिंदी के प्रति अनुदार नीति और अंग्रेजीपन का अंधानुकरण न तो द्विवेदी जी को पसंद था और न भारतेंदु बाबू को ही।

द्विवेदी जी के समय में भारत में उर्दू, फारसी एवं अरबी का बोलबाला था। हिंदी भाषा का न तो कोई निश्चित स्वरूप बन सका था, और न उसे उचित स्थान प्राप्त था। हिंदी और नागरी लिपि को संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर-प्रदेश) के न्यायालयों में स्थान दिलाने के लिये नागरीप्रचारिणी सभा ने जो आदोलन चलाया उसमें द्विवेदी जी का सक्रिय योगदान था। इस सबध में संयुक्त प्रात के तत्कालीन अस्थायी राज्यपाल सर जेम्स लाटूश से (१ जुलाई, सन् १८९८ को) काशी मे द्विवेदी जी के साथ नागरीप्रचारिणी सभा के अन्य पाँच सदस्य मिले थे। द्विवेदी जी ने एक उर्दू लिपिक के साथ प्रतियोगिता में स्वयं भाग लेकर और निर्धारित समय से दो मिनट पूर्व ही लेख सुंदर और स्पष्ट नागरी लिपि में लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि नागरी लिपि शीघ्रता से लिखी जा सकती है। इस प्रकार हिंदी और नागरी लिपि को भी न्यायालयो में स्थान मिला।

द्विवेदी जी का मत था कि हिंदी को ऐसा रूप दिया जाय कि वह स्वत. व्यापक रूप में जनसाधारण के प्रयोग की भाषा बन जाय और कोई वर्ग यह न समझे कि हिंदी उसपर थोपी जा रही है। उन्होने पडिताऊ हिंदी का विरोध किया और उनके प्रभाव से मुहावरे-दार सरल हिंदी का प्रयोग पडितो के भी समाज में होने लगा। उन्होने अपनी 'रामकहानी' के द्वारा अपील की कि हिंदी उसी प्रकार लिखी जाय जैसे उसे लोग घरो में बोलते हैं। जो विदेशी शब्द हिंदी में अपना एक रूप लेकर प्रचलित हो गए थे, उन्हे बदलने के पक्ष मे वे न थे।

वे नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला के संपादक और बाद में सभा के उपसभापति और सभापति भी रहे। वे कुछ इने गिने व्यक्तियो मे से एक थे जिन्होने वैज्ञानिक विषयों पर हिंदी मे सोचने और लिखने का प्रशसनीय कार्य पिछली शताब्दी में ही बडी सफलता से किया।

भाषा एव साहित्य सबंधी उनकी रचनाएँ ये हैं—

(१) भाषाबोधक प्रथम भाग, (२) भाषाबोधक द्वितीय भाग, (३) हिंदी भाषा का व्याकरण (पूर्वार्ध), (४) तुलसी सुधाकर (तुलसी सतसई पर कुडलियाँ, (५) महाराजा मारणाधीश श्री रुद्रसिंहकृत रामायण का संपादन, (६) जायसी की 'पद्मावत' की टीका (ग्रियर्सन के साथ), (७) माधव पचक, (८) राधाकृष्ण रासलीला, (९) तुलसीदास की विनयपत्रिका संस्कृतानुवाद, (१०) तुलसीकृत रामायण बालकाड संस्कृतानुवाद, (११) रानी केतकी की कहानी (संपादन), (१२) राम-चरितमानस पत्रिका संपादन, (१३) रामकहानी, (१४) भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र की जन्मपत्री, आदि।

द्विवेदी जी आधुनिक विचारधारा के उदार व्यक्ति थे। काशी के पंडितो में उस समय जो संकीर्णता व्याप्त थी उसका लेश मात्र भी उनमें न था। उन्होने सिद्ध किया कि विदेशयात्रा से कोई धर्महानि नहीं। ३० अगस्त, सन् १९१० को काशी की एक विराट् सभा का सभापतित्व करते हुए उन्होने ओजस्वी स्वर में अपील की कि विलायत गमन के कारण जिन्हे जातिच्युत किया गया है उन्हें पुन जाति में ले लेना चाहिए। अस्पृश्यता, नीच, ऊँच एवं जातिगत भेदभाव से इन्हे बड़ी अरुचि थी। इनका निधन एक साधारण बीमारी से २८ नवबर, १९१० ई० मार्गशीर्ष कृष्ण द्वादशी सोमवार स० १९६७ को हुआ। [गु० द्वु०]

सुधारांदोलन इग्लैंड में संसदीय निर्वाचन संबंधी सुधारो के लिये होनेवाले आदोलन के तीन विभिन्न प्रेरणास्रोत थे: प्रथम, यह भावना कि निर्वाचन के लिये मतदान नागरिक का ऐसा अधिकार है जिसके बिना नागरिक स्वतन्त्र नही माना जा सकता; द्वितीय, १८वी शताब्दी के अंत में होनेवाली आर्थिक क्राति जिसने इंग्लैंड के सामाजिक जीवन मे महत्वपूर्ण परिवर्तन ला दिया था; तृतीय, तत्कालीन निर्वाचन व्यवस्था की नित्य बढती हुई अनियमितता। औद्योगिक क्राति के प्रतिफलो ने जनतंत्र की भावना प्रसारित कर सुधार के लिये जनसहयोग की मात्रा में यथेष्ट वृद्धि कर दी थी। निर्वाचन सबधी व्यवस्था में १५वी शताब्दी से कोई परिवर्तन नही हुआ था। हाउस ऑव कॉमंस के सदस्यो के निर्वाचन मे अब भी काउटी मे मताधिकार केवल उन व्यक्तियो को प्राप्त था जिनके पास ४० शिलिंग वार्षिक मुल्य की भूमि थी। जनसंख्या की दृष्टि से विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व में अद्भुद असमानता प्रचलित थी। औद्योगिक क्राति के फलस्वरूप बरमिंघम तथा मैनचेस्टर जैसे बहुत से नए नगरों का निर्माण हो गया था, परंतु उन्हे कोई प्रतिनिधित्व नही प्राप्त था। इतना ही नही, बरो में भूमिपति या तो अपने स्वामित्व द्वारा वहाँ का निर्वाचन नियंत्रित करते थे या फिर मतदाताओं को धन देकर आवश्यक मत क्रय कर लेते थे। फलतः सदन की लगभग आधी सदस्यता केवल व्यक्तिगत स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करती थी।

ससदीय सुधार संबंधी इस आदोलन का प्रथम महत्वपूर्ण चरण सन् १७८० ई० में 'सोसाइटी फॉर कास्टिट्यूशनल इनफारमेशन,' (Society for Constitutional Information) की स्थापना द्वारा प्रारभ हुआ। इसके संरक्षक एवं प्रमुख नेता कार्टराइट (Cart-wright) तथा हॉर्नटुक (Horntooke) थे। इसने वार्षिक संसद, सार्वभौम मताधिकार, सम निर्वाचन क्षेत्र, संसदसदस्यो के लिये सपत्ति की योग्यता का उन्मूलन, सदस्यो के वेतन, तथा गुप्त परिपत्र द्वारा मतदान की व्यवस्था की माँग की। इन माँगो को विधेयक के रूप मे ड्यूक ऑव रिचमंड (Duke of Rich-mond) ने सन् १७८० ई० में सदन मे प्रस्तावित किया, परतु वह विधेयक स्वीकृत न हो सका। सन् १७९२ ई० मे 'द फ्रेंड्स ऑव द पीप्लू' नामक दूसरी सस्था की स्थापना भी इसी उद्देश्य से हुई और ग्रे (Grey), बरडेट (Burdett) आदि नेताओं ने सदन से तत्संबंधी प्रस्ताव स्वीकृत कराने के कई प्रयत्न किए। परंतु फ्रास की क्राति तथा नैपोलियन के युद्धो के कारण राष्ट्र का ध्यान अंतर-राष्ट्रीय समस्याओ की ओर अधिक था। सन् १८१५ से सन् १८३० तक यदा कदा ससदीय सुधार का प्रश्न सदन के संमुख आता रहा। सन् १८३० ई० में सरकार से टोरी दल का आधिपत्य समाप्त होने

होने पर ही उसे मिलती। वयस्क होने पर उसने फिर ट्रस्टी से उक्त रकम की माँग की। यद्यपि नावालिग की रसीद पक्की नही मानी जाती, फिर भी न्यायालय ने कहा कि ट्रस्टी दुबारा उक्त रकम देने को जिमेवार नही है।

(७) विलंब सुनीति का घातक है। अथवा सुनीति क्रियाशील को सहायता देती है, अकर्मण्य को नही।

जहाँ दावा बहुत पुराना हो चुका है एवं कोई पक्ष अपने स्वत्व को पुन हासिल करने के लिये प्रस्तुत नहीं हुआ है तथा उसने विपक्षी के अनधिकार को अपनी अकर्मण्यता के कारण स्वीकार कर लिया है, ऐसी स्थिति में सुनीति कोई सहायता नही करेगी। किंतु कानून द्वारा निर्धारित मामला चलाने की अवधि को मान्यता देगी। पर यदि वादी की गफलत के कारण वह साक्ष्य, जिसके द्वारा प्रतिवादी मामले का जवाब देता, नष्ट हो चुका है तो विलब घातक होगा। विषय की अज्ञानता, कानूनी दृष्टि से असमर्थता, स्वेच्छा का अभाव इत्यादि 'विलब' के जवाब हैं।

(८) समता ही सुनीति है।

यदि सपत्ति का विभाजन इस प्रकार किया गया हो कि क को एक भाग, ख को पाँच भाग और ग को छह भाग मिले हो, पर ग अपना भाग न ले सके, ऐसी स्थिति में एक्रूएर क्लाज़ (Accruer Clause) के अनुसार ग के भाग समान रूप से क और ख को प्राप्त होंगे। अर्थात् प्रत्येक को तीन तीन अतिरिक्त भाग मिलेंगे एवं मौलिक विभाजन की असमानता की प्रकल्पना लागू नही होगी, क्योंकि समता ही सुनीति है।

(९) सुनीति तथ्य को ग्रहण करती है, बाहरी रूप को नही।

यह सिद्वात रेहन (Mortgage), शास्ति (Penalty), जब्ती (Forfeiture) एव अनुनय के शब्दो पर आधारित न्यास के मूल में है। जब यह प्रश्न उठता है कि कोई संपत्ति रेहन में दी गई है या इस विकल्प के साथ बेच दी गई है कि बिक्री करनेवाला इसे पुनः खरीद सकता है, तो ऐसी स्थिति में सुनीति यह देखती है कि मूल्य बिक्री की दृष्टि से पर्याप्त है या नहीं। तथाकथित खरीददार का संपत्ति पर कब्जा हुआ या नहीं। इसी प्रकार किसी सविदा में ऐसी शर्त रहे कि इसकी पूर्ति नही होने पर दोषी पक्ष को पूरी शास्ति देनी होगी तो सुनीति यह देखती है कि शास्ति की रकम सविदा की पूर्ति कराने के निमित्त रखी गई थी या यह क्षतिपूर्ति की रकम है।

(१०) जो होना उचित है, उसे सुनीति हुआ ही मानती है।

यदि वादी ने किसी मौखिक संविदा में अपना भाग इस विश्वास में पूरा कर दिया है कि प्रतिवादी भी अपना भाग पूरा करेगा, ऐसी स्थिति में न्यायालय बहुधा ऐसा आदेश देता है कि प्रतिवादी भी अपना भाग पूरा करे चूँकि प्रतिवादी का ऐसा न करना अन्यायपूर्ण होगा। इसी प्रकार यह सिद्वात सपरिवर्तन (Conversion) के मूल में भी परिलक्षित होता है।

(११) सुनीति दायित्व पूर्ण करने की इच्छा को मान्यता देती है। यदि किसी व्यक्ति पर कोई दायित्व है और वह कोई काम करता है, जो उस दायित्व के प्रसंग मे ग्रहण किया जा सकता हो तो सुनीति उस काम को उक्त दायित्व की पूर्ति में ही मानेगी। यह सिद्धांत निष्पादन (Performance), पूर्ति (Satisfaction) तथा विलंडन (Ademption) का आधार है।

(१२) सुनीति का क्षेत्राधिकार प्रतिवादी की उपस्थिति पर निर्भर है।

इस सिद्धात की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। प्रारंभ में चासरी न्यायालय प्रतिवादी की संपत्ति में हस्तक्षेप नही करता था। केवल उसे न्यायोचित कार्य करने को आदेश देता था। यदि प्रतिवादी आदेश का पालन नहीं करता तो न्यायालय उसे अवमान के लिये दडित करता था। उसकी संपत्ति भी जप्त कर ली जाती थी। अब भी सुनीति का मूल क्षेत्राधिकार वादी की उपस्थिति पर निर्भर है। यदि मामले की संपत्ति न्यायालय के क्षेत्रधिकार से बाहर भी हो, किंतु प्रतिवादी क्षेत्राधिकार में है या उसपर क्षेत्राधिकार से बाहर भी मामले के निमित्त समन जारी कराया जा सकता है एवं वादी के मामले में नैतिक अधिकार है तो न्यायालय प्रतिवादी के विरुद्ध मामला अवश्य चलाएगा। किंतु यदि भूमि में टाइटिल का प्रश्न है तथा भूमि न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर है तो न्यायालय उस विषय का निर्णय नही करेगा।

सं० ग्रं०—स्टोरी इक्विटी जुरिसप्रूडेंस (१८९२); होल्ड्सवर्थ · हिस्ट्री ऑव इंगलिश लॉ, खंड १,१९०५; मेटलैंड : इक्विटी (१९३६), स्नेल प्रिंसिपल्स ऑव इक्विटी, १९४७। [न० कु०]

सुन्नत (Circumcision) का अर्थ शिश्नाग्रच्छद के अनावश्यक भाग को काटकर अलग कर देना है। यह कृत्य मुसलमानो, यहूदियो तथा अन्य कई जातियों मे धार्मिक संस्कार के रूप में किया जाता है और इसे खतना (देखें, खतना ,खंड ३, पृष्ठ ३२१) कहा जाता है। सुन्नत छोटा सा शल्यकर्म है। इसमें शिश्नमुंड की अग्रत्वचा को काटकर निकाल देते हैं, जिससे मुंड के परे उसका आकुंचन (retraction) स्वच्छंदता से होता है। इस शल्यकर्म का मुख्य उद्देश्य शिश्नमुंड की समुचित सफाई रखना है जिसके फलस्वरूप त्वचा के नीचे एकत्र शिश्नमल (Smegma) साफ हो सके तथा मूत्र निकलने में किसी प्रकार की बाधा न उत्पन्न हो। बच्चो में सुन्नत शिश्नमल के एकत्र होने से बचाव के लिये ही की जाती है। वयस्को में सुन्नत का मुख्य उद्देश्य शिश्नाग्रशोथ (blancits) तथा रतिज व्रण (Venereal sore) की चिकित्सा करना है।

खतना के कारण हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमानो में शिश्न का कैंसर कम होता है। [प्रि० कु० चौ०]

सुपीरियर झील यह उत्तरी अमरीका की ही नहीं वल्कि ससार की सबसे बडी अलवण जल की झील है। यह सर्वाधिक गहरी, समुद्रतल से सर्वाधिक ऊँची और अमरीका की पाँच बडी झीलो के सुदूर उत्तर पश्चिम में स्थित है। सुपीरियर झील कैनाडा तथा संयुक्त राज्य अमरीका की अंतरराष्ट्रीय सीमा के दोनों ओर बहती है। कैनाडा का ओंटाइरा राज्य इसके उत्तर पूर्व में है।

देकर लिखा जाता था। चांसलर राजा के नाम आदेश (Writ) निकालकर विपक्षी को अपने समक्ष उपस्थित कराने लगे। उसे शपथ लेकर आवेदन की फरियाद का उत्तर देना पड़ता था। सन् १४७४ ई० से चांसलर स्वतंत्र रूप से निर्णय देने लगे एवं चासरी न्यायालय में सुनीति का विकास यहीं से आरंभ हुआ। चासरी की लोकप्रियता बढने लगी। इसका मुख्य कारण यह था कि चासलर ऐसे मामलो का निराकरण करने लगे, जिनके लिये साधारण न्यायालय में कोई विधान नही था। दृष्टात के लिये न्यास (Trust) को ले सकते हैं। क्रमश. छल (Fraud), दुर्घटना (Accident), दस्तावेज गुम होने के प्रसंग में तथा विश्वासघात (Breach of Confidence) भी उसके अधिकारक्षेत्र मे आ गए। सतरहवी शताब्दी के आरंभ में चासरी एवं कॉमन लॉ के न्यायालयो के बीच अपने अपने अधिकार-क्षेत्र का प्रश्न लेकर विवाद उपस्थित हुआ; पर अततः इस बात को मान्यता दी गई कि चासरी न्यायालय का निर्णय सर्वोपरि होगा। इस प्रसग में यह स्मरणीय है कि चासरी न्यायालय ने कॉमन लॉ के न्यायालयो पर प्रत्यक्ष शासन नही किया। उसने केवल सफल वादी को वारण किया कि वह अनैतिक निर्णय को कार्यान्वित न करे। उक्त दोनो प्रकार के न्यायालयो के विकास के साथ साथ चासलर के अधिकार भी सीमित होते गए। सुनीति के सिद्धात स्थिर हुए, जिनपर कॉमन लॉ की परिधि से बाहर के अधिकार आधारित थे और जिनके लिये निदान (Remedy) अपेक्षित था। सन् १८७३-७५ ई० के अभ्यंतर निर्मित कानून के द्वारा 'सुनीति' एव कॉमन लॉ की दो विभिन्न पद्धतियाँ एक हो गईं। इसका परिणाम यह हुआ कि कॉमन लॉ के न्यायालय व्यादेश (Injunction) जारी करने लगे एवं चासरी न्यायालय सविदा (Contract) के स्खलन (Breach) के कारण क्षतिपूर्ति कराने लगा, जैसा पूर्व में सभव नही था। अर्थात् अब देश के किसी भी न्यायालय मे कॉमन लॉ एवं सुनीति दोनों के निदान एक साथ प्राप्त होने लगे। सन् १८७५ ई० के बाद यदि किसी मामले में सुनीति एव कॉमन लॉ के नियमो में किसी एक ही विषय को लेकर विषमता उपस्थित हो तो सुनीति के नियम की मान्यता होगी। किंतु यह स्मरणीय है कि सुनीति का यह उद्देश्य नही था कि वह देश के साधारण कानून को नष्ट करे, वरन् उसकी कमी की पूर्ति करना ही इसका लक्ष्य था। उदाहरणार्थ, न्यास (Trust), व्यादेश (Injunction), सविदा की पूर्ति (Specific performance), एवं मृत व्यक्ति के इस्टेट का प्रबध सुनीति के ही अवदान हैं। इन विषयो के लिये कॉमन लॉ के न्यायालय में कोई निदान नही था।

सुनीति के सिद्धांत

(१) सुनीति प्रत्येक हरकत या अपकार (wrong) के लिये त्राण देती है।

यह नियम सुनीति का आधार है। इसका आशय यह है कि यदि कोई हरकत ऐसी है, जिसके लिये नैतिक दृष्टि से न्यायालय को त्राण देना चाहिए, तो न्यायालय त्राण अवश्य देगा। चांसरी न्यायालय का आरंभ इसी आधार पर हुआ। न्यास का कानून इस प्रसंग में एक उपयुक्त दृष्टात है।

(२) सुनीति कॉमन लॉ का अनुसरण करती है। इसका अर्थ यह है कि सुनीति देश के साधारण कानून द्वारा प्रदत्त किसी व्यक्ति के अधिकारो में तभी हस्तक्षेप करेगी, जब उस व्यक्ति के लिये ऐसे अधिकारो से लाभ उठाना अनैतिक होगा, क्योकि सुनीति अत करण पर आधारित है। दृष्टांत—किसी व्यक्ति को कॉमन लॉ के अनुसार फी सिंपुल (Fee simple) एक इस्टेट है एवं वह बिना वसीयत किए मर जाता है। उसके पुत्र और कन्याएँ हैं। सबसे ज्येष्ठ पुत्र इस्टेट का उत्तराधिकारी हो जाता है यद्यपि ऐसा होना अन्यान्य संततियो के हित मे अनुचित है तथापि सुनीति इस स्थिति मे हस्तक्षेप नही करेगी। पर यदि ज्येष्ठ पुत्र ने अपने पिता से कहा कि आप वसीयत न करें, मैं संपत्ति को सब भाइयो और बहनो में बाँट दूँगा और उसके आश्वासन पर पिता ने संपत्ति की वसीयत नही की और ज्येष्ठ पुत्र ने अपनी प्रतिज्ञा न रखकर पूरे इस्टेट को आत्मसात् कर लिया तो इस स्थिति में सुनीति उसे अपने वचन का पालन करने को बाध्य करेगी, चूँकि ज्येष्ठ पुत्र के लिये पूरी संपत्ति का उपभोग करना अंत करण के प्रतिकूल होगा।

(३) जहाँ सुनीति समान है, कॉमन लॉ की व्यापकता होती है।

(४) जहाँ सुनीति समान है, क्रम मे जो पहले है, उसकी मान्यता होती है।

दि सैमुएल एलेन एँड संस लि० (१९०७) १ चासरी ५७५ में एक कंपनी ने किराया-खरीद (Hire-purchase) की शर्त पर मशीन खरीदी। यह तय हुआ कि अतिम किस्त अदाकर देने तक मशीन का स्वत्वाधिकारी इसका विक्रेता रहेगा एवं उसे अधिकार रहेगा कि वह किस्त टूटने पर मशीन को उठाकर ले जाय। कंपनी के व्यवसायवाले मकान में मशीन लगा दी गई, अत. मशीन का कॉमन लॉ द्वारा प्रदत्त स्वत्वाधिकार कंपनी का हुआ। पीछे कंपनी ने उक्त मकान गिरवी में एक ऐसे व्यक्ति को दिया, जिसे मशीन से संबधित 'किराया-खरीद' की कोई सूचना नहीं थी। एक मामला हुआ जिसमें न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि मशीन हटाकर ले जाने का अधिकार भूमि में साम्यिक स्वत्वाधिकार (equitable interest) था। चूँकि क्रम में इसकी सृष्टि पहले हुई, अतः मकान के गिरवीदार के अधिकार की अपेक्षा इसकी प्राथमिकता है।

(५) जिसे सुनीति चाहिए, उसे सुनीतिपूर्ण कर्तव्य करना ही है।

यदि कोई व्यक्ति इस विश्वास में कि अमुक जमीन उसकी है, उसपर मकान बनाता है एवं जमीन का वास्तविक स्वत्वाधिकारी मकान बनते देखकर भी वास्तविक स्थिति से दूसरे व्यक्ति को अवगत नही कराता तो मकान बन जाने पर बिना इसकी यथोचित कीमत दिए जमीन का वास्तविक मालिक मकान प्राप्त नही कर सकता। जिस व्यक्ति ने सच्चे विश्वास से मकान बनाया, उसका उस संपत्ति पर मकान संबधी खर्च के लिये पूर्वाधिकार (Lien) रहेगा।

(६) जो सुनीति से सहायता चाहता है, उसका निजी आचरण भी निर्मल होना चाहिए।

एक नाबालिग ने ट्रस्टी को ठगने के अभिप्राय से यह कहकर कि वह वयस्क हो चुका है, उससे रुपए ले लिए। वह रकम वयस्क

सुमात्रा स्थिति . ०° ४०' उ० अ० तथा १००° २०' पू० दे० । यह इंडोनेशिया गणतंत्र के पाँच बडे द्वीपों में से एक है तथा मलाया द्वीपसमूह का सुदूर पश्चिमी द्वीप है। इसे उत्तर पूर्व में मलैका जलसंधि मलाया से तथा दक्षिण पूर्व में सुंडा जलसंधि जावा से पृथक् करती है। द्वीप का पश्चिमी किनारा हिंद महासागर की ओर है। यह संसार के बडे द्वीपों में छठा है। इस द्वीप का क्षेत्रफल ४,१३,४४० वर्ग किमी तथा जनसंख्या १,५७,३९,००० (१९६२) है। द्वीप की अधिकतम लंबाई १६९६ किमी तथा अधिकतम चौडाई ३९६ किमी है।

इस द्वीप में दक्षिण पश्चिम की ओर समांतर पर्वतमालाओं की श्रेणी है। सामूहिक रूप से इन पर्वतमालाओं का नाम बारिसान (Barisan) है और इनमें १२ सक्रिय तथा ७८ निष्क्रिय ज्वालामुखी हैं। सर्वोच्च चोटी केरिंचि (Kerintji) है जिसकी ऊँचाई ३,७८२ मी है। पूर्वी तट दलदली निम्नभूमि है जिसमें से होकर कांपार (Kampar), इंद्रागिरि तथा मिंशि (Meosia) नदियाँ बहती हैं और यह भूभाग घने जंगलों से आच्छादित है। इन जंगलों से टीक की लकड़ी, बाँस, रबर और मूल्यवान गोंद प्राप्त होता है। इन जंगलों में रबर के वृक्ष लगाए गए हैं जिसके कारण यह द्वीप विश्व के प्रमुख रबर उत्पादकों में से एक हो गया है। दक्षिणी पूर्वी और उत्तरी पूर्वी छोरों को छोड़कर शेष द्वीप की मृदा कृषि के लिये उपयुक्त नहीं है।

सुमात्रा की जलवायु उष्ण एवं आर्द्र है। अधिकांश वर्षा उन क्षेत्रों मे होती है जहाँ नियमित मानसून बारिसान पर्वतों द्वारा रोक लिए जाते हैं। टोबा झील क्षेत्र में १५२ सेमी से कम वर्षा होती है। लवंग क्षेत्र में ५०८ सेमी से अधिक वर्षा होती है। निम्न भूमि के मैदानों में ताप २१° से ३१° सें० तक रहता है।

धान यहाँ की प्रमुख फसल है। कॉफी, कालीमिर्च, तंबाकू, चाय, कपास, खजूर, अमरीकी घीकुँवार (Sisal), सुपारी, मूँगफली, सिनकोना, नारियल और रबर आदि की खेती निर्यात के लिये की जाती है। इस द्वीप के उष्ण कटिबंधी जंगलों में बाघ, हाथी, जंगली सुअर, दो सींगवाले राइनोसिरस, हरिण, कपि एवं बंदर मिलते हैं। इस द्वीप पर सर्वत्र चमकीले पक्षति (Plumage) वाले पक्षी मिलते हैं। यहाँ अनेक प्रकार के विषैले साँप जिनमें नाग एवं पिट वाइपर (Pit viper) भी हैं तथा भीमाकार अजगर पाए जाते हैं।

इस द्वीप में सीसा, रजत, गंधक एवं कोयले के निक्षेप हैं। पूर्वी तट का दलदली निम्नभूमि क्षेत्र पेट्रोलियम में धनी है पालमबंग क्षेत्र में कोयला एवं लिग्नाइट मिलते हैं। पेट्रोलियम पूर्वी मैदान में अचीन से पलेमबाग तक के क्षेत्र में मिलता है। बेनकूलेन के समीप सोने एवं रजत का खनन होता है।

मछली मारना यहाँ का प्रमुख व्यवसाय है। द्वीप का पूर्वी भाग इस कार्य के लिये विशेष उपयोगी है। यहाँ के अधिकांश उद्योग कृषि से संबंधित हैं। पादांग के समीप सीमेंट का बहुत बडा कारखाना है।

द्वीप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने के लिये सड़कें हैं। यहाँ लगभग १,२२७ मील लंबा रेलमार्ग भी है। मेडान और पलेमबाग नगरों में हवाई अड्डे हैं। ब्लावान (Belawan), पलेमबाग, एमाहैवन (Emmahaven), सूसू (Soesoe) तथा सबांग प्रमुख बंदरगाह हैं। पलेमबाग सुमात्रा का प्रमुख नगर है। [अ० ना० मे०]

सुमित्रा महाराज दशरथ की मँझली पत्नी जिनके गर्भ से लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न हुए थे। इसलिये लक्ष्मण जी को सौमित्र, सुमित्रानंदन आदि कहा जाता है। पुत्रेष्टियज्ञ से प्राप्त चरु का आधा भाग दशरथ ने कौशल्या को और आधा कैकेयी को दिया था। बाद में कौशल्या तथा कैकेयी ने अपने अपने भागों में से आधा आधा सुमित्रा को दे दिया। इसी से सुमित्रा जी के दो पुत्र हुए, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न।

[रा० द्वि०]

सुरंग अंतर्भौम क्षैतिज मार्ग, जो ऊपरी चट्टान या मिट्टी हटाए बिना ही बनाया जाय, सुरंग कहलाता है। कोई चट्टान या भूखंड तोड़ने के उद्देश्य से विस्फोटक पदार्थ भरने के लिये कोई छेद बनाना भी सुरंग लगाना कहलाता है। प्राचीन काल में सुरंग से मुख्यतया तात्पर्य किसी भी ऐसे छेद या मार्ग से होता था जो जमीन के नीचे हो, चाहे वह किसी भी प्रकार बनाया गया हो, जैसे कोई नाली खोदकर उसमें किसी प्रकार की डाट या छत लगाकर ऊपरी मिट्टी से भर देने से सुरंग बन जाया करती थी। किंतु बाद में इसके लिये जलसेतु (यदि वह पानी ले जाने के लिये है), तलमार्ग या छादित पथ नाम अधिक उपयुक्त समझे जाने लगे। इनके निर्माण की क्रिया को सुरंग लगाना नहीं, बल्कि सामान्य खुदाई और भराई ही कहते हैं।

बाद में चौडी करके सुरंग बडी करने के उद्देश्य से प्रारंभ में छोटी सुरंग लगाना अग्रचालन कहलाता है। खानों में छोटी सुरंगें गैलरियाँ, दीर्घाएँ या प्रवेशिकाएँ कहलाती हैं। ऊपर से नीचे सुरंगों तक जाने का मार्ग, यदि यह ऊर्ध्वाधर है तो कूपक, और यदि तिरछा है तो ढाल या ढालू कूपक कहलाता है।

प्राकृतिक बनी हुई सुरंगें भी बहुत देखी जाती हैं। बहुधा दरारों से पानी नीचे जाता है, जिसमें चट्टान का अंश भी घुलता है। इस प्रकार प्राकृतिक कूपक और सुरंगें बन जाती हैं। अनेक नदियाँ इसी प्रकार अंतर्भौम बहती हैं। अनेक जीव भूमि में बिल बनाकर रहते हैं, जो छोटे मोटे पैमाने पर सुरंगें ही हैं।

प्रकृति में इस प्रकार सुरंगों के प्रचुर उदाहरण देखकर निस्संदेह यह कल्पना की जा सकती है कि मनुष्य भी सुरंगें खोदने की दिशा में अति प्राचीन काल से ही अग्रसर हुआ होगा—सर्वप्रथम शायद निवासों और मकबरों के लिये, फिर खनिज पदार्थ निकालने के उद्देश्य से और अंततः जलप्रणालियों, नालियों आदि सभ्यता की अन्य आवश्यकताओं के लिये। भारत में अति प्राचीन गुफामंदिरों के रूप में मानव द्वारा विशाल पैमाने पर सुरंगें लगाने के उदाहरण प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। इनमें से कुछ गुफाओं के मुख्यद्वारों की उत्कृष्ट वास्तुकला आधुनिक सुरंगों के मुख्यद्वारों के आकल्पन में शिल्पियों का मार्गदर्शन करने की क्षमता रखती है। अजंता, इलोरा

झील के दक्षिण में विसकोसिन (Wisconsin) तथा मिशिगैन (Michigan) स्थित हैं।

सुपीरियर झील की सर्वाधिक लंबाई पूर्व से पश्चिम तक ५६० किमी. सर्वाधिक चौड़ाई २५६ किमी तथा संपूर्ण क्षेत्रफल ८१४५६ वर्ग किमी है और सर्वाधिक गहराई ३९६ मी है।

सुपीरियर झील की तलहटी पथरीली है। लगभग २०० नदियों का पानी झील में गिरता है। इन नदियों में सबसे बड़ी सेंट लुईज है। इसका मुँह झील के पश्चिमी सिरे पर है। इस झील में बहुत से द्वीप हैं जिनमें सबसे बड़ा द्वीप आइल राएल है।

सुपीरियर झील साल भर खुली रहती है। अधिक गहराई के कारण इसका पानी जमता नहीं है। केवल सीमावर्ती क्षेत्रों और खाडियों का पानी जम जाता है। पोताश्रयों के पास की जमी हुई बर्फ के गलने के कारण मध्य अप्रैल से पहली दिसंबर तक नौपरिवहन प्रतिबंधित रहता है। झील के चारों ओर की भूमि में तांबा, निकल तथा अन्य धातुओं के अयस्क पाए जाते हैं। सुपीरियर झील के बंदरगाहों में, सुपीरियर तथा ऐशलैंड (वाशिंगटन के) तथा फोर्ट विलियम एवं आर्थर (कनाडा के) प्रमुख हैं। [नं० कु० रा०]

सुब्बाराव, यल्ला प्रगडा (सन् १८९६-१९४८) इस मौन तपस्वी के बारे में लोग अधिक नहीं जानते। अमेरीका ने उसे 'चमत्कारी पुरुष' कहा है। इस मौन भारतीय प्रतिभा का जन्म मद्रास में एक क्लार्क के घर हुआ। सन् १९१८ में सुब्बाराव के भाई बहुत बीमार थे, उन्हें संग्रहणी हो गई थी। चिकित्सक असहाय थे, उनके पास दवा न थी। बाईस वर्षों के सुब्बाराव ने भाई को असहाय मरते देखा और वहीं शपथ ली कि मैं मानवता को इस हत्यारी स्प्रू से त्राण दिलाऊँगा।

उन्होंने मद्रास मेडिकल कालेज में प्रवेश लिया। चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त कर, वह इंग्लैंड गए। वहाँ डाक्टर रिचार्ड स्ट्राग को सुब्बाराव ने अपनी जिज्ञासा से इतना प्रभावित किया कि उन्हें अमरीका आने का निमंत्रण मिला। स्ट्राग ने लिखा है, 'प्रश्नों की ऐसी बौछार कि उत्तर देना सभव न था, भाग्य में ऐसा विश्वास, ऐसी प्रबल जिज्ञासा मैंने कभी नहीं देखी — उनका उत्साह पागलपन की सीमा पर था।'

जेब में ७० रुपए लिए सुब्बाराव ने अमरीका की भूमि पर पैर रखा। यहाँ उन्होंने छोटे मोटे कार्य किए — पर लक्ष्य की ओर बढ़ते चले। हॉवर्ड और रॉकफेलर छात्रवृत्तियों ने उनकी सहायता की। सन् १९२५ से अगले तेईस वर्षों में उन्होंने रक्त में फास्फोरस की मात्रा निर्णय करने का 'रंग मापक' तरीका निकाला, मासपेशियों की आकुंचनक्रिया पर नया प्रकाश डाला। इनके वैज्ञानिक लेखों ने पशुओं और जीवाणुओं के पोषण पर बहुमूल्य तथ्य प्रस्तुत किए, तथा इन्होंने पैलाग्रा की ओषधि निकोटिनिक अम्ल (विटामिन बी का अंश) की पहचान, पृथक्करण और तैयारी में योग दिया। १९४० में सुब्बाराव को साइनामाइड कंपनी की लेडरली अनुसंधानशाला में सहकारी डाइरेक्टर का पद प्राप्त हुआ और दो वर्ष बाद वे प्रधान निदेशक हो गए। इनके अंतर्गत ३०० वैज्ञानिक कार्य करते थे। यहाँ इन्होंने अपनी शपथ पूरी की और 'स्प्रू' की अमोघ ओषधि 'फोलिक एसिड' का आविष्कार किया। इनके नेतृत्व में 'टेरापटेरीन', 'सल्फामेथाज़ीन', 'आरोमायसीन' सी चमत्कारी ओषधियों का आविष्कार हुआ। इनकी शोध ने कैंसर पर नया प्रकाश डाला तथा लीवर के रासायनिक तत्व पृथक् किए। श्लीपद रोग की अमोघ ओषधि 'हेट्राजान' का आविष्कार भी इनके दल ने ही किया। सीरम-अल्बुमेन का उत्पादन, टिटनस तथा गैस गैंग्रीन के टाक्सायड उत्पादन के नए संशोधित तरीके और लेडरली द्वारा पेनिसिलीन उत्पादन को संभव करने का श्रेय ख्याति से दूर भागनेवाली इसी प्रतिभा को है।

डा० सुब्बाराव ने अपना जीवन मानवता के लिये अर्पित कर दिया था। वे प्रतिदिन औसत १८ घंटे कार्य करते थे। वह व्यक्तिगत श्रेय के विरुद्ध थे और तकनीकी युग में अन्वेषकों की टोली को श्रेय देते थे। वे उदारहृदय थे और गुप्त रूप से दीन दुखियों की सहायता करते थे। कड़े परिश्रम ने ससार से केवल ५२ वर्ष की अल्पायु में वह प्रतिभा छीन ली।

लेडरली प्रयोगशाला ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा है — 'जो ओषधियाँ अभी वरसों तक अज्ञात रहती उनकी खोज में जीवन अर्पित कर उन्होंने जिस नाम को छिपाना चाहा, वह इन ओषधियों द्वारा हजारों की रक्षा कर प्रकाशमान होता जा रहा है।'

लेडरली अनुसंधानशाला ने अपने पुस्तकालय को 'सुब्बाराव मेमोरियल' बनाया है और बंबई के पास बुलसार में स्थापित लेडरली प्रयोगशाला उन्हीं को अर्पित है। [भा० श० मे०]

सुभद्रा कृष्ण की बहिन जो वसुदेव की कन्या और अर्जुन की पत्नी थीं। इनके बड़े भाई बलराम इनका ब्याह दुर्योधन से करना चाहते थे पर कृष्ण के प्रोत्साहन से अर्जुन इन्हें द्वारका से भगा लाए। इनके पुत्र अभिमन्यु महाभारत के प्रसिद्ध योद्धा हैं। पुरी में जगन्नाथ की यात्रा में बलराम तथा सुभद्रा दोनों की मूर्तियाँ भगवान् के साथ साथ ही रहती हैं। [रा० द्वि०]

सुमंत्र महाराज दशरथ के मंत्रियों में से एक, जिन्होंने कैकयी को फटकारा था। इन्होंने ही राम को लौटाने का प्रयास किया था। किंतु उन्हें ही राम ने समझा बुझाकर लौटा दिया। सुमंत्र ने लौटकर महाराज दशरथ को राम का सदेश दिया कि अब वे बिना चौदह वर्ष वन में रहे लौट नहीं सकते। कौसल्या को इन्होंने सांत्वना प्रदान की। [चं० भा० पां०]

सुमति १. पुराणों में सुमति नामक अनेक व्यक्तियों के नाम आते हैं।

(क) ये भरत के पुत्र थे जिन्हें ऋषभ के धर्म का अनुगमन करने के कारण उस धर्मावलंबियों ने देवत्व प्रदान किया था। इनकी रानी वृद्धसेना थी, तथा पुत्र देवता था (भा० ग० ५. ७ ३)।

(ख) पुराणप्रसिद्ध राजा सगर की पत्नी थी जिन्होंने महर्षि और्व की कृपा से साठ सहस्र पुत्रों को जन्म दिया था।

[चं० भा० पा०]

ओर उतरती है। वसत और शरद ऋतुओ में कूपक के भीतर और बाहर तापमान का अतर नही के बराबर होता है, इसलिये सवातन नही हो पाता।

यात्रिक सवातन का सिद्धात यह है कि यथासभव सुरग के बीचोबीच से किसी कूपक द्वारा, जिसके मुँह पर पखा लगा होता है, गदी हवा निकलती रहे। मरसी नदी के नीचे से जानेवाली सुरग में यह सभव न था, क्योकि ऊपर पानी भरा था। इसलिये एक सवाती सुरग ऊपर से बनाई गई, जो नदी के दोनो किनारो पर खुलती है और बीच में मुख्य सुरग से उसके निम्नतम भाग मे मिलती है।

संवातन की गति क्या हो, अर्थात् कितनी हवा सुरग से भीतर जानी चाहिए, इसका अनुमान लगाने के लिये यह पता लगाया जाता है कि सुरग मे से गुजरने में इजन को कितना समय लगेगा और उतने समय मे कितना कोयला जलेगा। प्रति पौंड कोयले में से २६ घन फुट विषैली गैसें निकलती हैं और हवा में ०'२ प्रतिशत कार्बनडाइ-आक्साइड रह सकती है, इस आधार पर प्रति मिनट कितनी हवा सुरग में पहुँचाई जानी चाहिए, इसका परिकलन किया जाता है।

[वि० प्र० गु०]

सुरग और उसके प्रत्युपाय नौसेना युद्ध का चरम उद्देश्य समुद्री संचार पर निर्विवाद नियत्रण प्राप्त करना होता है। इसमें सुरगें, सुरगयुद्ध और उसके प्रत्युपायो का मुख्य हाथ है। इस दिशा मे उन्नत तकनीकी एवं वैज्ञानिक विधियों के कारण सुरगें नौसेना संघर्ष का एक आकर्षक अग बन गई हैं।

सुरग के मुख्य दो प्रकार हैं—

(क) उत्प्लावी (तैरती) सुरगें — ऐसी सुरगें समुद्रतट से कुछ दूरी पर और जल की ऊपरी सतह से कुछ नीचे तैरती रहती हैं। ये समुद्रतल में स्थित एक निमज्जक से सलग्न रहती हैं।

(ख) समुद्रतलीय सुरगें — ऐसी सुरगें समुद्रतल में स्थित रहती हैं।

उत्प्लावी तथा समुद्रतलीय सुरगो का विशेष विवरण इस प्रकार है—

(क) उत्प्लावी सुरग की सनिकट मापें विस्फोटक का भार २२७ किग्रा, केस सहित विस्फोटक भरी हुई सुरग का भार ५७० किग्रा, उत्प्लावकता १६० किग्रा, सुरग की पूरी ऊँचाई १ ५ मी तथा पट्टी का व्यास १ मी।

(ख) समुद्रतलीय सुरग की सनिकट मापें. वेलनाकार सुरग का विवरण—लबाई २'२ मी, व्यास ०'४ मी तथा विस्फोटक २७४'४ किग्रा।

पैराशूट युक्त सुरग का विवरण—पूरे सुरग का भार ५५६ किग्रा, तथा पैराशूट का भार १० किग्रा।

फायर करने की विधियाँ — उत्प्लावी सुरगें अधिकाशत संस्पर्श द्वारा फायर की जाती हैं, अर्थात् विस्फोट के लिये किसी जहाज या पनडुब्बी से इनपर प्रहार करना अत्यावश्यक होता है। कुछ उत्प्लावी सुरगें, असस्पर्श सुरगें होती हैं।

सभी समुद्रतलीय सुरंगें असंस्पर्श या प्रभावी सुरगें होती हैं। इनका फायर, विना प्रहार किए सुरगो पर जहाज या पनडुब्बो के प्रभाव से, होता है। प्रभाव चुबकीय, ध्वनिक या दबाववाला हो सकता है। चुंबकीय सुरगो का फायर जहाज के चुबकीय क्षेत्र के प्रभाव के कारण होता है। ध्वनिक सुरगो का फायर जहाज के नोदकों द्वारा उत्पन्न शोर गुल से होता है। दबाववाले सुरगो का फायर पानी में चलते हुए जहाज से उत्पन्न दवाव की तरगों से होता है। कुछ सुरंगो का फायर दो प्रभावो, जैसे 'चुबकीय एव ध्वनिक' या 'दवाव एव चुबकीय', से होता है। इन्हे 'सयुक्त सयोजन' (Combination Assemblies) कहते हैं और सुरग के फायर करने के लिये दोनो प्रभावो की एक साथ उपस्थिति आवश्यक होती है। ऐसी सुरगो का हटाना कठिन होता है।

सुरगों के उपयोग — सुरंगों का उपयोग आक्रमण एव रक्षा दोनों के लिये किया जा सकता है। रक्षा के लिये उपयोग किए जाने पर ये बदरगाह और तट की रक्षा करती हैं। ये तटीय जहाजो को शत्रु के आक्रमण से बचाती हैं। यदि सुरग को आक्रमण के लिये प्रयुक्त करना है तो शत्रुतट से दूर बदरगाह के प्रवेशमार्ग या अभ्यासक्षेत्र में सुरंगें बिछाई जाती हैं। इस प्रकार नाकेवदी से सुरक्षा कर सकते हैं या शत्रु के जहाजो को डुबा सकते हैं। समुद्रतलीय सुरगें साधारणतया आक्रमणक्षेत्र के लिये ही होती हैं। सुरग तोडनेवालों के कार्य को अधिक दुष्कर बनाने के लिये विभिन्न प्रकार की सुरगें एक ही क्षेत्र में रखी जाती हैं ताकि सुरग हटाने के लिये एक से अधिक विधियो का प्रयोग करना पडे। सुरगो के फायर में अवरोध उत्पन्न करके शत्रु के सुरग तोड़ने की समस्या को जटिल बनाया जाता है।

सुरग बिछानेवाले उपकरण — शत्रु के समुद्रतट से दूर समुद्रतलीय सुरगें साधारणत वायुयान द्वारा बिछाई जाती हैं। पनडुब्बी तथा तीव्रगामी गश्ती नौकाओ का भी प्रयोग किया जाता है। नौसेना में सुरग बिछानेवाले विशेष पोत होते हैं जिनका एकमात्र कार्य ही सुरगें बिछाना होता है। ये बहुत बडे और तीव्रगामी होते हैं। रक्षात्मक क्षेत्र में सुरगें बिछाने के लिये किसी भी तैरनेवाली वस्तु का उपयोग किया जा सकता है या उसको सुरंगें बिछानेवाले उपकरण में परिणत किया जा सकता है।

सुरंग के प्रत्युपाय — अपने क्षेत्र के पत्तनो, बदरगाहो तथा तटों से दूर बिछाई गई सुरगो से बचाव की अनेक विधियाँ प्रयुक्त होती हैं। उथले जल जैसे बदरगाह, गोदी तथा आतरिक जलमार्ग में बिछाई गई सुरगो को हटाने के लिये हटानेवाले गोताखोरो को प्रशिक्षित किया जाता है। वायुयान और हेलिकॉप्टर भी कुछ मदद करते हैं, लेकिन हटाने और सफाई का कार्य मुख्यत सुरग तोडनेवाले पोतो द्वारा, जिन्हें 'सुरग तोड़क' (Mine sweeper) कहते हैं, ही होता है।

सुरंगों का ससूचन — सुरगो का पता लगाना सरल कार्य नही है। यह कार्य पहले सैनिक करते थे, लेकिन आजकल कुछ ऐसी युक्तियाँ बनी हैं जिनसे सुरग की उपस्थिति का ज्ञान हो जाता है। इनमें से एक विधि को 'चुबकीय ससूचक' कहते हैं। ऐसे एक उपकरण मे

ौर एलीफैंटा की गुफाएँ सारे संसार के वास्तुकला विशारदो का यान आकर्षित कर चुकी हैं।

मध्यपूर्व मे निमरोद के दक्षिणी पूर्वी महल की डाटदार नाली ाधारण भूमि के भीतर सुरंग लगाने का प्राचीन उदाहरण है। ंट की डाट लगी ४·५ मी और ३ ६ मी एक सुरंग फरात नदी के ीचे मिली है। अलजीरिया में, स्विट्जरलैंड में और जहाँ कही भी ोमन लोग गए थे, सड़को, नालियो और जलप्रणालियो के लिये बनी ुई सुरगो के अवशेष मिलते हैं।

बारूद का आविष्कार होने से पहले सुरंगें बनाने की प्राचीन विधियो में कोई महत्वपूर्ण प्रगति नही हुई थी। १७वीं शती के त्कीर्ण चित्रो में सुरंग बनाने की जो विधियाँ प्रदर्शित हैं, उनमें केवल कुदाली, छेनी, हथौडी का प्रयोग और अग्रचालन के लिये रम चट्टान तोड़ने के उद्देश्य से लकड़ियो की आग जलाना ही दिखाया गया है। संवातन के लिये आगे की ओर कपडे हिलाकर वा करने और कूपको के मुख पर तिरछे तख्ते रखने का उल्लेख ी मिलता है। रेलो के आगमन से पहले सुरंगें प्राय नहरो के लिये ी बनाई जाती थी और इनमे से कुछ तो बहुत प्राचीन हैं। रेलो के आने पर सुरगो की आवश्यकता आम हो गई। ससार भर में ायद ५,००० से भी अधिक सुरगें रेलो के लिये ही खोदी गई हैं। धिकाश पर्वतीय रेलमार्ग सुरंगो में ही होकर जाता है। मेक्सिको लवे में १०५ किमी लवे रेलपथ मे २१ सुरगें, और दक्षिणी प्रशात लवे में ३२ किमी की लंबाई में ही ११ सुरंगें हैं, जिनमें एक सर्पिल ुरग भी है। संसार की सबसे लबी लगातार सुरंग न्यूयार्क में ६१७-२४ ई० मे कैट्सकिल जलसेतु के विस्तार के लिये बनाई गई ी। यह शंडकेन सुरंग २८८ किमी लबी है। कालका शिमला रेल- थ पर साठ मील लंबाई में कई छोटी सुरगें हैं, जिनमें सबसे बडी की लंबाई ११३७ मी है।

विश्व की अन्य महत्वपूर्ण सुरगें माउट सेनिस १४ किमी (१८५७-७१ ई०), सेंट गोथार्ड १५ किमी (१८७२-८१ ई०), ्यूट्शबर्ग (१६०६-११ ई०), यूरोप के आल्प्स पर्वत में कनाट (१६१३-१६ ई०) कनाडा के रोगर्स दर्रे में मोफट १० किमी (१६२३-२८ ई०) एवं न्यूकैस्केड (१६२५-२८ ई०) संयुक्त राष्ट्र अमरीका के पर्वतो मे हैं। सुरगनिर्माण का बहुत महत्वपूर्ण काम जापान में हुआ है। वहाँ सन् १६१८-३० में अटामी और मिशीमा के बीच टाना सुरंग खोदी गई, जो दो पर्वतो और एक घाटी के नीचे से होकर जाती है। इसकी अधिकतम गहराई ३६५ मी और घाटी के नीचे १८२ मी है। भारत में सडक के लिये बनाई गई सुरग जम्मू—श्रीनगर सडक पर बनिहाल दर्रे पर है, जिसकी लबाई २७६० मी है। यह समुद्रतल से २१८४ मी० ऊपर है तथा दुहरी है, जिससे ऊपर और नीचे जानेवाली गाड़ियाँ अलग अलग सुरग से जा सकें।

सुरगनिर्माण की आधुनिक विधियो में ढले लोहे की रोको का और सपीडित वायु का प्रयोग बहुप्रचलित है। लदन में रेलो के लिये लगभग १४४ किमी सुरगें बनी हैं, जिनमे सन् १८६० से ही ढोल जैसी रोकें और ढले लोहे की ही दीवारें लगती रही हैं। पैरिस मे भी लगभग ६६ किमी लंबी सुरगें हैं, किंतु वहाँ केवल ऊपरी आधे भाग में ढले लोहे की रोकें लगी हैं, जिनके निचे चिनाई की दीवारें हैं। प्रायः ऊपरी भाग पहले काट लिया जाता है और वहाँ रोकें लगाकर बाद मे नीचे की ओर दीवारें बना दी जाती हैं।

जहाँ पानी के नीचे से होकर सुरगें ले जानी होती हैं, वहाँ पहले से तैयार किए हुए बड़े बड़े नल रखकर उन्हे गला दिया जाता है। अपेक्षित गहराई पर पहुँच जाने पर वे परस्पर जोड़ दिए जाते हैं। सुरंग केसन भी जलतल मे नीचे ही बनाए जाते हैं। संपीडित वायु के प्रयोग द्वारा पानी दूर रखा जाता है, और वायुमंडल से तीन चार गुने अधिक दवाव मे आदमी काम करते हैं। वे बाहर खुली जगह से भीतर दवाव में जाते हुए और वहाँ से बाहर आते हुए पाश कक्षो में से गुजरते हैं। एक और विधि है, जिसमें जलसिक्त भूमि में ठढक पहुँचाकर पानी जमा दिया जाता है, और फिर उसे चट्टान की भाँति काट काटकर निकाल दिया जाता है। यह विधि कूपक गलाने के लिये अच्छी है और अनेक स्थानो मे सफलतापूर्वक प्रयुक्त हुई है, किंतु सुरगो के लिये नही आजमाई गई।

जहाँ सुरंग के ऊपर चट्टान का परिमाण बहुत अधिक हो, जैसे किसी पहाड के आर पार काटने में, तो शायद यही उचित अथवा अनिवार्य हो कि केवल दोनो सिरों मे ही काम आरंभ किया जाय, और बीच में कही भी कूपक गलाकर वहाँ से काम न चलाया जा सके। वास्तव में समस्या के समाधान के लिये मुख्य रूप से यह देखना अपेक्षित है कि चट्टान काटने और उसे निकाल बाहर करने के लिये क्या उचित होगा। विस्तृत अनुभव और आधुनिक यात्रिक युक्तियाँ, जैसे संपीडित वायु द्वारा चालित बर्मा और मलवा हटाने और लादने की मशीनें आदि, काम जल्दी और किफायत से करने में सहायक होती हैं।

सुरंगो में सवातन की समस्या अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। इसे दृष्टि से ओझल नही किया जा सकता। निर्माण के समय काम करने वाले व्यक्तियो के लिये तो अस्थायी प्रबध किया जा सकता है, किंतु यदि सुरंग रेल या सडक आदि के लिये है, तो उसके अंदर उपयुक्त संवातन के लिये स्थायी व्यवस्था होनी आवश्यक है। इसका सरलतम उपाय तो यह है कि पूरी सुरग की चोडाई के बराबर चौड़े और ६-६ मी लबे खड लगभग १५० १५० मी अंतर से खुले छोड दिए जायँ, जहाँ से सूर्य का प्रकाश और खुली हवा भीतर पहुँच सके। किंतु बहुत लबी और गहरी सुरगो में यह सभव नहीं होता, उनमें यात्रिक साधनो का सहारा लेना आवश्यक होता है। कभी कभी अपेक्षाकृत छोटी सुरगो में भी कृत्रिम संवातन व्यवस्था आवश्यक होती है। यदि सुरग ढालु है, तो धुआँ और गैसें ढाल के ऊपर की ओर चलेंगी। सुरग मे कोई इंजन तेजी से चल रहा हो तो उसकी गति के साथ भी धुआँ भीतर ही खिचता चला जाएगा। इसलिये जगह जगह पर सवाती कूपक बनाने पडते हैं। बिजली के मोटरो की अपेक्षा भाप के इजन चलते हो, तो सवातन की अधिक आवश्यकता होती है।

प्राकृतिक सवातन का आधार संवाती कूपक के भीतर की हवा के और धरातल पर बाहर की हवा के तापमान का अंतर है। शीत ऋतु में कूपक में हवा ऊपर की ओर चढ़ती है और गर्मी में नीचे की

कुछ को प्रबलित सुरा (fortified wine) कहते हैं। सुरा के सत को ऐल्कोहल कहते हैं। पेय सुरा मे ऐल्कोहल की मात्रा कम रहती है, बुद्बुद सुरा मे उससे कुछ अधिक और प्रबलित सुरा मे ऊपर से ऐल्कोहल डालकर उसे प्रबलित बनाया जाता है। सामान्य सुरा पेय सुरा होती है। इसमे ऐल्कोहल की मात्रा ४ से २० प्रतिशत तक रह सकती है। सामान्य किण्वन से ऐल्कोहल की मात्रा १२ प्रतिशत से अधिक नही हो पाती, क्योंकि इससे अधिक होने से किण्वन की क्रिया अवरुद्ध हो जाती है तथा उसमें उपस्थित सक्रिय अभिक्रमंक अधिक कार्य करने मे सक्षम नही होते।

सुरा का रग काला, लाल, गुलाबी, धूसर, हरा, सुनहरा या निरग जल सदृश हो सकता है। स्वाद और सुवास मे सुराएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। कुछ सुराएँ मीठी, कुछ शुष्क और कुछ तीक्ष्ण स्वाद वाली होती हैं। सुरा को मीठी बनाने के लिये कभी कभी ऊपर से शर्करा या शर्बत भी डाला जाता है। कुछ सुराओ में हाप (hop) का फूल डालकर उसको एक विशिष्ट स्वाद का बनाया जाता है। कुछ सुराओ में जडी बूटियाँ भी डाली जाती हैं, जिससे उनमें ओषधीय गुण भी आ जाता है। बुदबुद सुरा में कार्बन डाइआक्साइड सदृश गैसें रहती हैं, जो सुरा मे बँधी रहती हैं और ज्योंही बोतल खुलती है, उससे निकलती हैं, जिससे गैसो के बुदबुद निकलने लगते हैं। ऐसी सुरा मे शैंपेन सर्वोत्कृष्ट समझी जाती है। प्रबलित सुरा में किण्वन पूरा होने के पहले ही ब्रैंडी डाल दी जाती है, जिससे और किण्वन रुक जाता है और अगूर की शर्करा कुछ अकिण्वित रह जाती है। ऐसी सुरा पोर्ट और शेरी हैं। जब सुरा किण्वित रूप में ही, ज्यो की त्यो प्रयुक्त होती है, तब उसे सामान्य सुरा या वाइन कहते हैं। यदि उसे आसवन द्वारा आसुत कर इकट्ठा करते हैं, तो उसे सुरासव या स्पिरिट कहते हैं। इससे ऐल्कोहल की मात्रा अपेक्षतया अधिक हो जाती है। सुरासव में ऐल्कोहल के अतिरिक्त कुछ वाष्पशील पदार्थ जैसे एस्टर, ऐल्डीहाइड आदि रहते हैं, जिनसे सुरा में विशिष्ट प्रकार की वास और स्वाद आ जाते हैं। कुछ विशिष्ट सुराएँ ये हैं — बियर (beer), स्टाउट (stout), पोर्टर (porter), लागर (lager), पोर्ट (port), ब्रैंडी (brandy), शेरी (sherry), रम (rum), जिन (gin), क्लारेट (claret), शैंपेन (champagne), मडीरा (madeira), ह्विस्की (whisky), आदि।

बियर — सुरा बहुत प्राचीन काल से ज्ञात है। सभवतः यही सबसे पुरानी सुरा है, जिसका उल्लेख ईसा से कम से कम चार हजार वर्ष पूर्व मे मिलता है। मिस्र और चीन के प्राचीन ग्रंथों में भी इसका उल्लेख आया है। यह माल्टीकृत अनाजों से बनती है। अनाजो मे जौ, जई, गेहूँ, मक्का और चावल का प्रयोग आजकल होता है, पर अधिकाश बियर माल्टीकृत जौ से ही तैयार होती है। मधु और सेब से भी बियर बन सकती है। सबसे अधिक प्रयुक्त होनेवाली सुरा आज भी बियर ही है। इसकी कई किस्में हैं, जिनमें बियर, एल (ale), स्टाउट (stout), लागर (lager), और पोर्टर (porter) प्रमुख हैं। आज यूरोप और अमरीका के प्राय सभी देशो में यह तैयार होती है। बियर में लगभग दो से छह प्रतिशत ऐल्कोहल रहता है। इसमें दस भागो में नौ भाग तो जल का ही रहता है, शेष के १०० ग्राम में कार्बोहाइड्रेट ४४ ग्राम, प्रोटीन ० ६ ग्राम, कैल्सियम ४ मिलिग्राम, फास्फोरस २६ मिलिग्राम और राख ० २ ग्राम रहती है।

किण्वन दो किस्म का हो सकता है। तली किण्वन या शीर्ष किण्वन। तली किण्वन मे किण्वन के बाद यीस्ट पेंदे मे बैठ जाता है। शीर्ष किण्वन में किण्वन के बाद यीस्ट शिखर पर झाग के रूप में इकट्ठा हो जाता है। अधिकाश बियर तली किण्वन से तैयार होता है। एल, स्टाउट और पोर्टर बियर शीर्ष किण्वन से तैयार होते हैं। मद्यकरण के समय ही उसमें हॉप डाला जाता है। तली किण्वन में किण्वन का ताप ४७ डिग्री से ५५ डिग्री फा० रहता है और उसको १,२ या इससे अधिक मास तक जीर्णन के लिये १ डिग्री सें० से २ डिग्री सें० ताप पर रख दिया जाता है। शीर्ष किण्वन में किण्वन का ताप ६८ डिग्री से ७५ डिग्री फा० रहता है और जीर्णन के लिये मद्य ४० डिग्री से ४६ डिग्री फा० तक पर छोड दिया जाता है। जीर्णन से बियर परिपक्व हो जाता है तथा परिपक्व होने पर वह स्वच्छ हो जाता है। उसमे मृदुता आ जाती है और वह कार्बन डाइआक्साइड से आविष्ट हो जाता है। इससे तैयार बियर के स्वाद में विशिष्टता आ जाती है।

बियर का रग हलका पीला होता है। उसमें हॉप का स्वाद होता है। शीर्ष किण्वन से प्राप्त बियर को एल कहते हैं। पहले इसमें हॉप नही डाला जाता था। मान्य बियर में इससे कुछ अधिक ऐल्कोहल होता है। अत अधिक पीने से यह मादक होता है। यह हल्के रग का होता है तथा इसका स्वाद तीक्ष्ण। पोर्टर में लगभग ४ प्रतिशत ऐल्कोहल रहता है और चीनी भी रहती है। इससे पर्याप्त झाग निकलता है। स्टाउट बियर धुँधले रग का होता है। इसमें माल्ट और हॉप का प्रबल स्वाद रहता है।

पोर्ट सुरा — यह मीठी और सामान्यत गहरे लाल रग की, पर कभी कभी पिंगल (Tawny) या सफेद भी होती है। इसकी अनेक किस्में हैं जो अगूर की किस्मो, उत्पादन की विधि, बोतल में रखने की विधि और जीर्णनकाल पर निर्भर करती है। यह पहले पहल पुर्तगाल में बनी थी, पर आजकल प्राय सभी यूरोपीय और अमरीकी देशो मे बनती है। पिंगल पोर्ट का जीर्णन अधिक समय में होता है। पेंदे मे बैठे तलछट को बार बार निकाल देने से इसका लाल रग कुछ हलका हो जाता है। कम रगीन, अगूर से बनी पोर्ट सुरा भी हल्के रग की होती है।

शेरी सुरा — यह भूख बढानेवाली मीठी सुरा है, जिसका रग हल्के से गाढे ऐंबर रग का होता है। इसमें एक विशिष्ट प्रकार की मधुर गध होती है। इसे फलवास सुरा भी कहते हैं। यह पोर्ट से कम मीठी होती है। शुष्क शेरी में २ ५%, मध्य शेरी मे ४% और सुनहरी शेरी में ७% तक द्राक्षशर्करा रहती है। मद्यकरण के समय कुछ मद्यकरण हो जाने पर ब्रैंडी डालकर अधिक मद्यकरण को रोक देते हैं। शेरी के रग और स्वाद मे जीर्णन पहले धूप में और बाद में छाया मे सपन्न होना है। बहुधा नई सुरा में कुछ पुरानी सुरा मिलाकर इसके गुणो में एकरूपता लाते हैं। इसके लिये एक विशिष्ट पद्धति, जिसे सोलेरा (solera) पद्धति कहते हैं, अपनाई जाती है।

'ईयर फोन' (Ear phone) लगा रहता है, जिससे सुरंग के ऊपर चलते हुए सिपाही के कानो मे गुंजन सुनाई देता है। इन्हें 'विद्युत् चुंबकीय संसूचक' कहते हैं। ऐसी ध्वनि उन्ही सुरगो से आती है जो धातु की बनी होती हैं। अब अधातुओ की भी सुरगें बनने लगी हैं। सुरगो के तोड़ने का एक तरीका यह भी था कि सुरंगोवाले क्षेत्र मे विस्फोट उत्पन्न किया जाए, जिससे सुरगें विस्फोटित होकर नष्ट हो जाएँ। इसे 'प्रत्युपायी सुरग लगाना' (Counter mining) कहते हैं।

सुरंग तोड़क — एक विशिष्ट प्रकार के पोत होते हैं। इन पोतो में लगभग ६०० फुट लंबे तार के रस्से (Cable) लगे रहते हैं। ये रस्से पोत के एक किनारे से जुड़े रहते हैं। इन्हें 'तोड़न गियर' (Sweeping gear) कहते हैं। जल उत्प्लावक की, जिसे 'पैरावेन' (Paravane) कहते हैं, सहायता से ये रस्से जहाज से दूर रखे जाते हैं। पैरावेन डूबकर पेंदे में न चला जाय इसके लिये उनमे धातु का उत्प्लावक लगा रहता है।

तोड़न गियर सुरगो को उनके निमज्जक से जोडनेवाले तारो को पकड़ लेते हैं तथा उनमे लगे दाँतो की सहायता से काट देते हैं। इन तारो के कट जाने से सुरंग पानी पर तैरने लगती है और इसे राइफल फायर द्वारा नष्ट कर देते हैं।

प्रभावनाशक पोत — ये जहाज चुबकीय या ध्वनिक सुरगो को हटाने के लिये विशेष रूप से बनाए जाते है। चुंबकीय सुरगतोड़क पोत के पिछले हिस्से से एक तार का रस्सा जुडा रहता है। पूरा पोत चुबकीय गुण रहित होता है। इन रस्सो मे विद्युद्धारा प्रवाहित कर चुबकीय गुण उत्पन्न किया जाता है। इस कारण चुबकीय सुरगें जहाज के आगे निकल जाने के बाद विस्फोटित होकर नष्ट हो जाती हैं।

ध्वनिक सुरंग तोड़क पोत में डेरिक (Derrick) से एक ध्वनिक चप्पू (Acoustic sweep) लगा रहता है, जो उच्च तीव्रतावाली ध्वनि उत्पन्न करता है। इस कारण जहाज के उस स्थान पर पहुंचने से पूर्व ही सुरग विस्फोटित होकर नष्ट हो जाती है। [मं०]

सुरत १. जिला, यह भारत के गुजरात राज्य का जिला है, जिसका क्षेत्रफल १२४३१ वर्ग किमी एवं जनसंख्या २४, ५१, ६२४(१९६१) है। इसके उत्तर में भरुच जिला, पश्चिम में अरबसागर तथा दक्षिण एवं पूर्व मे महाराष्ट्र राज्य है। जिले की भूमि जलोढ मिट्टी से बनी है। ताप्ती एव किम नदियो के अतिरिक्त कोई दूसरी बडी नदी जिले में नही है। यहाँ आम, इमली, केला, पीपल और अन्य वृक्ष मिलते हैं। बाघ, चीता, भालू, जंगली सूअर, भेड़िया, लकडबग्घा, चित्तीदार हरिण और बारहसिंघा यहाँ के अन्य पशु हैं। यहाँ की मुख्य फसल कपास, धान, दलहन एवं मोटा अनाज (ज्वार, मक्का, बाजरा आदि) हैं। वलसाड एवं सुरत प्रमुख व्यापारिक केंद्र हैं। जिले मे ९५ सेमी से २०० सेमी तक वर्षा होती है।

२. नगर, स्थिति — २१° १२' उ० अ० तथा ७२° ५०' पू० दे०। यह उपर्युक्त जिले का प्रशासनिक नगर है और ताप्ती नदी के बाएँ किनारे पर नदी के मुहाने से २२ किमी दूर एवं बंबई से २६० किमी मील उत्तर मे रेलमार्ग पर स्थित है। नगर में तंग गलियाँ एवं सुंदर भवन हैं। यह नगर व्यापार एवं निर्माण का केंद्र है। यहाँ सूती वस्त्र की मिलें और कपास को ओटने और उसे गाँठ में बाँधने के कारखाने हैं। धान कूटने के कारखाने तथा कागज, वर्फ एवं साबुन उद्योग हैं। महीन सूती एव रेशमी वस्त्र यहाँ बुने जाते हैं। रेशमी किमख्वाब, सोने एवं चाँदी का तार, कालीन एवं दरी और चंदन उद्योग भी नगर मे हैं। नगर का औसत ताप ६८° सें० एवं वर्षा १०० सेमी० है। मुगलकाल मे यह प्रमुख बंदरगाह था। यहाँ की जनसंख्या २,८८,०२६ (१९६१) है। [अ० ना० मे०]

सुरथ (क) त्रिगर्त देश का राजा। यह महाभारत के युद्ध में जयद्रथ का अनुगामी था। द्रौपदीहरण के समय इसका नकुल के साथ युद्ध हुआ था और उन्हीं के द्वारा यह मार डाला गया।

(ख) एक प्राचीन नरेश जो यम की सभा मे रहकर उन्ही की उपासना किया करता था। [चं० भा० पा०]

सुरसा नागो की माता जिसके संबंध मे तुलसीदास ने रामचरितमानस मे लिखा है —

'सुरसा नाम अहिन की माता'

जब हनुमान लंका जा रहे थे तो इसने अपना मुँह फैलाकर इन्हें निगलना चाहा था, पर वे बड़े होते गए और अंत मे जब सुरसा का मुँह कई योजन चौड़ा हो गया तो हनुमान छोटे बनकर उसके एक कान मे से बाहर निकल आए। [रा० द्वि०]

सुरा (मदिरा, दारू, शराब, वाइन तथा स्पिरिट) सुरा का उपयोग इतना प्राचीन है कि यह पता लगाना संभव नही है कि सुरा को किसने और कब सर्वप्रथम तैयार किया और कौन उपयोग में लाया। मिस्र और भारत के प्राचीन निवासी इसके निर्माण और उपयोग से पूरे परिचित थे।

अनेक कवियो ने जैसे होमर, प्लिनी, शेक्सपियर, उमरखैयाम आदि ने सुरा का वर्णन किया है और कुछ ने उसकी प्रशंसा में कविताएँ भी लिखी हैं। ससार के प्राचीनतम ग्रंथ वेदो मे सोमरस का उल्लेख मिलता है। सभवत यह कोई किण्वित द्रव ही था, जिसका व्यवहार वैदिक काल मे व्यापक रूप से होता था। भारत के प्राचीन आयुर्वेद ग्रथ, चरकसंहिता और सुश्रुत मे अनेक आसवो और उनके उपयोगो का सविस्तर वर्णन मिलता है। उनकी प्राप्ति की विधियो का भी उल्लेख है।

आज नाना प्रकार की सुराएँ तैयार होती हैं और उनका उपयोग व्यापक रूप से हो रहा है। इनके नाम भी अनेक हैं। कुछ तो जिस क्षेत्र में वे तैयार होती थी या होती हैं, उनके नाम से जानी जाती हैं और कुछ जिन पदार्थों से तैयार होती हैं उनके नामो से जानी जाती हैं। सुरा प्रधानतया तीन प्रकार की होती है। कुछ को पेय सुरा (beverage), कुछ को बुदबुद सुरा (sparkling wine) और

सुरेंद्रनगर, जिला, भारत के गुजरात राज्य मे स्थित है। इसके उत्तर मे महेसाणा जिला, उत्तर पश्चिम मे कच्छ का रन, पश्चिम एव पश्चिम दक्षिण मे राजकोट जिला, दक्षिण मे भावनगर जिला, दक्षिण पूर्व तथा पूर्व उत्तर मे अहमदाबाद जिला है। इस जिले का क्षेत्रफल १०२, ४० वर्ग किमी एव जनसख्या ६,६३,२०६ (१९६१) हैं। सुरेंद्रनगर जिले का प्रशासनिक केंद्र है।

सुर्मा भारत के असम राज्य और पाकिस्तान के पूर्वी बगाल की नदी है। मणिपुर की उत्तरी पर्वतमाला से यह नदी निकलती है। इस नदी का उद्गम जप्वो (Japvo) के दक्षिणी पर्वतस्कधो के मध्य मे है। यहाँ से निकलने के बाद यह मणिपुर की पहाडियो से होकर बहती है। मणिपुर एव कछार में इस नदी का नाम बराक है। कछार जिले मे बदरपुर से कुछ आगे यह दो शाखाओ में बँट जाती है — उत्तरी शाखा और दक्षिणी शाखा। उत्तरी शाखा सुर्मा कहलाती है और पूर्वी बगाल के सिलहट जिले से होकर बहती है। दक्षिणी शाखा कुसिआरा कहलाती है और यह पुनः बिबियाना या कालनी एव बराक नामक शाखाओ में विभाजित हो जाती है। ये दोनो शाखाएँ आगे चलकर उत्तरी शाखा से मिल जाती है। पूर्वी बंगाल के मैमनसिंह जिले के भैरवबाजार नामक स्थान पर सुर्मा नदी ब्रह्मपुत्र की पुरानी शाखा से मिलती है। उद्गमस्थल से लेकर इस सगमस्थल तक सुर्मा नदी की कुल लबाई लगभग ८९६ किमी है। अब यह इस सगमस्थल से लेकर नारायणगज एव चाँदपुर के मध्य तक, जहाँ सुर्मा एव ब्रह्मपुत्र का संयुक्त जल गगा से मिलता है, मेघना कहलाती है। [अ० ना० मे०]

सुलेमान (९६१-९२२ ई० पू०)। यहूदियो का राजा दाऊद और बेथसावे का पुत्र। अपनी माता, याजक सादोक तथा नबी नाथन के समिलित प्रयास से सुलेमान अपने अग्रज अदोन्या का अधिकार अस्वीकार कराने में समर्थ हुए और वह स्वय राजा बन गए।

सुलेमान ने यरुसलेम का विश्वविख्यात मदिर तथा बहुत से महल और दुर्ग बनवाए। उन्होने व्यापार को भी प्रोत्साहन दिया। अपने अंतरराष्ट्रीय सबधो को सुदृढ बना लेने के उद्देश्य से उन्होने फराऊन की पुत्री के अतिरिक्त और बहुत सी विदेशी राजकुमारियो के साथ विवाह किया। वह कुशल प्रशासक थे। उन्होने यरुसलेम के मदिर को देश के धार्मिक जीवन का केंद्र बनाया और अनेक अन्य बातो में भी केंद्रीकरण को बढावा दिया।

अपने निर्माण कार्यों के कारण उन्होंने प्रजा पर करो का अनुचित भार डाल दिया था जिससे उनकी मृत्यु के बाद विद्रोह हुआ और उनके राज्य के दो टुकड़े हो गए — (१) उत्तर में इसराएल अथवा समारिया जो जेरोबोआम के शासन मे आ गया और जिसमे दस वश समिलित हुए, (२) दक्षिण में यूदा अथवा यरुसलेम, जिसमें दो वश समिलित थे और जो रोबोआम के शासन में आ गया।

परवर्ती पीढियो ने सुलेमान को आदर्श के रूप मे देखकर उनको यहूदियों का सबसे प्रतापी राजा मान लिया है किंतु वास्तविकता यह है कि अत्यधिक केंद्रीकरण तथा करभार के कारण उनका राज्यकाल विफलता में समाप्त हुआ। उनके द्वारा निर्मित भवन ही उनकी ख्याति के एकमात्र आधार थे। वह अपनी बुद्धिमानी के लिये प्रसिद्ध हुए और इस कारण नीति, उपदेशक, श्रेष्ठगीत, प्रज्ञा जैसे बाइबिल के अनेक परवर्ती प्रामाणिक ग्रंथों का श्रेय उनको दिया जाता था। कुछ अन्य अप्रामाणिक ग्रथ भी उनके नाम पर प्रचलित हैं।

स० ग्रं० — एनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी ऑव बाइबिल, न्यूयार्क, १९६३। [आ० बे०]

सुलेमान, डॉक्टर सर शाह मुहम्मद (सन् १८८६-१९४१) प्रसिद्ध वकील, न्यायाधीश तथा भारतीय वैज्ञानिक का जन्म जौनपुर (उ० प्र०) के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। वकालत इस परिवार का वशगत पेशा थी। लगभग २५० वर्ष पूर्व रचित, फारसी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक ग्रथ, शम्शेबज़ीघा, के लेखक, मुल्ला मुहम्मद, जिनका विद्वत्ता के लिये बादशाह शाहजहाँ के दरबार में बडा समान था, इनके पूर्वजो मे से थे। समरकद में तैमूरलग के पौत्र, उलूगबेग, ने खगोल के अध्ययन के लिये उस समय की सर्वोत्तम वेधशाला बनवाई थी। इसे देखकर तत्सदृश वेधशाला भारत में भी बनवाने के लिये शाहजहाँ ने इन्हें समरकद भेजा था।

शाह मुहम्मद सुलेमान ने जौनपुर के स्कूल मे प्रारभिक शिक्षा पाने के बाद इलाहाबाद में उच्च शिक्षा प्राप्त की। आपने स्कूल और कॉलेज की सब परीक्षाएँ समान सहित प्रथम श्रेणी मे पास की। बी० एस-सी० परीक्षा में विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम आने के कारण आपको इग्लैंड में अध्ययन करने के लिये छात्रवृत्ति भी मिली। इलाहाबाद में आपने डॉक्टर गणेशप्रसाद तथा इग्लैंड में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जे० जे० टॉमसन के अधीन अध्ययन किया। इन दो विद्वानों के सपर्क से गणित और विज्ञान में आपकी अभिरुचि स्थायी हो गई। सन् १९१० में डब्लिन युनिवर्सिटी से एल-एल० डी० की उपाधि प्राप्त कर आप भारत लौट आए। जौनपुर में एक वर्ष काम करने के बाद आपने इलाहाबाद हाइकोर्ट मे बैरिस्टरी आरंभ की, जिसमे इन्हे अद्भुत सफलता मिली। सन् १९२० में ये हाइकोर्ट के स्थानापन्न जज तथा लगभग ६ वर्ष बाद स्थानापन्न प्रधान न्यायाधीश नियुक्त हुए। इसके तीन वर्ष बाद आप इस पद पर स्थायी हो गए तथा सन् १९३७ में नवसगठित सघ अदालत (Federal Court) के जज नियुक्त किए गए।

विधि के क्षेत्र में आपने जिस असाधारण योग्यता का परिचय दिया तथा ब्रिटिश शासन में न्यायाधीश के पद पर रहकर जिस निर्भीकता से काम किया उसकी प्रशसा मुक्त कठ से की जाती है। मेरठ षड्यत्र के मामले का फैसला करने में मजिस्ट्रेट की अदालत को दो वर्ष तथा सेशन जज को चार वर्ष लगे थे, किंतु आपने आठ दिन में ही अपना फैसला सुना दिया और कुछ को निर्दोष बताकर छोड दिया। हाइकोर्ट और फेडरल कोर्ट में दिए गए आपके फैसलो की प्रशंसा भारत तथा इग्लैंड के विधिपडितो द्वारा की गई है। अपने कार्यकाल में न्यायालय के अधिकारों की रक्षा के लिये सरकार का विरोध करने में भी आपने हिचक न की।

रम — ईख के रस या छोवा के किण्वन से और उत्पाद के आसवन से रम प्राप्त होता है। इसमें ऐल्कोहल की मात्रा, आयतन के अनुसार, ४३ से ७६ प्रतिशत तक रह सकती है। रम में एक विशिष्ट स्वाद होता है। कुछ लोग इसका कारण ऐस्टर का होना और कुछ लोग एक तेल रम आयल का होना बतलाते हैं। भिन्न भिन्न रमों में एस्टर की किस्म और मात्रा भिन्न भिन्न होती है। अनेक देशों में रम तैयार होता है और निर्माण के स्थान के नाम से पुकारा जाता है, जैसे जमाइका रम, डेमरारा रम आदि। कुछ रमों में फल, जैसे अनानास, डालकर विशिष्ट प्रकार के फल की गंध वाला रम तैयार करते हैं।

जिन — जुनिपर बेरी (Juniper berry) से सुवासित करने के कारण संभवतः इस सुरा का नाम जिन पड़ा। यह सुरा मक्का (७५%), माल्ट (१०%) और राई (एक प्रकार का गेहूँ या अनाज (१०%) के किण्वन से यह तैयार होती है। अनाजों के स्वाद को बदलने के लिये जुनिपर बेरी के स्थान पर या साथ साथ धनियाँ, इलायची और नारंगी के छिलके आदि आजकल प्रयुक्त होते हैं। अमरीका में ८५% मक्का, १२% माल्ट और ३% राई के किण्वन तथा उसके उत्पादन के आसवन से जिन प्राप्त होता है। शर्बत डालने से मीठा जिन प्राप्त हो सकता है। विभिन्न देशों में प्रस्तुत जिन एक से नहीं होते। उनमें निर्माणविधि की विभिन्नता से स्वाद और वास में भिन्नता आ जाती है।

क्लैरेट — यह माणिक सदृश लाल रंग की सुरा है, जो सर्वोत्कृष्ट से लेकर सामान्य कोटि तक के अंगूरों से बनती है। खाने की मेज पर अन्य सुराओं की तुलना में यह सबसे अधिक प्रयुक्त होती है। इसका जीर्णन भी कई वर्षों तक रखकर किया जाता है। पर सर्वोत्कृष्ट कोटि का क्लैरेट अधिक जीर्ण नहीं होता। कुछ क्लैरेट में दस वर्षों तक जीर्णन से अच्छा स्वाद आता है। स्वाद में बीस वर्ष या इससे अधिक वर्षों तक सुधार होता रहता है। क्लैरेट कई प्रकार के होते हैं और इनकी जाति अंगूर के किस्म और तैयार करने की विधियों पर निर्भर करती है। अमरीका, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका तथा सभी यूरोपीय देशों में क्लैरेट बनता है। सुगंधित अंगूर से बना क्लैरेट सर्वोत्कृष्ट कोटि का होता है।

शैंपेन — फ्रांस के शैंपेन नामक स्थान के नाम पर इस सुरा का नाम पड़ा है। यह सुनहरे या पुआल के रंग की होती है। बोतल के खोलने के समय गैसों के निकलने से यह बुदबुदाती है अतः इसे बुद-बुद सुरा भी कहते हैं। यह भी अंगूर से तैयार होती है। संमिश्रण से भिन्न भिन्न स्वाद और सुवास के शैंपेन तैयार होते हैं। जीर्णित सुरा में कुछ शक्कर या शर्बत भी मिला दिया जाता है: इस शर्करा के किण्वन से जो कार्बन डाइऑक्साइड बनता है उसे निकलने नहीं दिया जाता, वरन् सुरा में ही स्थिरीकृत कर लिया जाता है। यही गैस बोतल के खोलने पर बुलबुले देती है, जिससे इसका नाम बुदबुद शैंपेन पड़ा। इसे ऐसी बोतल में रखते हैं, जो १०१ पाउंड का दबाव सह सके और उसके मोटे काग इस्पात के शिकंजे से जकड़े होते हैं। किण्वन के समय कुछ तलछट भी बैठता है जिसे निकाल लेते हैं। सस्ते शैंपेन में बाहर से कार्बन डाइऑक्साइड डालकर उसे बुदबुद किस्म का बनाते हैं। शैंपेन मिष्ट, अर्धमिष्ट या अमिष्ट भी होता है।

मडीरा सुरा — मडीरा पोर्चुगाल के अधीन एक द्वीप है, जहाँ सुरा का उत्पादन बहुत दिनों से होता आ रहा है। पुर्तगालियों ने वहाँ अंगूर की खेती शुरू की और उससे वे शराब बनाने लगे। पहले यहाँ की शराब केवल उपयोग में ही आती थी, पर पीछे वह अनेक देशों में, जिनमें भारत भी है, जाने लगी है। यह अनेक प्रकार की होती है तथा अंगूर की किस्म और निर्माणविधि पर इसकी जाति निर्भर करती है। कुछ मडीरा बड़े गाढ़े रंग की होती है। उसके आसवन से ब्रैंडी भी तैयार होती है जो अन्य सुराओं को प्रबलित करने में काम आती है। अंगूर के चुनाव, संमिश्रण और जीर्णन से उत्कृष्ट कोटि की मडीरा प्राप्त हो सकती है। पेय सुराओं में इसका स्थान प्रथम कोटि का है।

ब्रैंडी — (देखें ब्रैंडी)।

ह्विस्की — ह्विस्की का शाब्दिक अर्थ जीवन का जल है। यह ऐसा सुरासव या स्पिरिट है, जिसमें ऐल्कोहल की मात्रा सबसे अधिक रहती है। यह अनाजों से बनाई जाती है। गेहूँ से बनी ह्विस्की को गेहूँ ह्विस्की, जौ से बनी ह्विस्की को जौ ह्विस्की, चावल से बनी ह्विस्की को चावल ह्विस्की कहते हैं और इसी प्रकार राई ह्विस्की, मक्का ह्विस्की या माल्ट ह्विस्की भी होती है। यह निर्माण के स्थलों के नाम से भी जानी जाती है, जैसे स्कॉच ह्विस्की, आयरिश ह्विस्की, कैनेडियन ह्विस्की, अमरीकन ह्विस्की इत्यादि।

इसके निर्माण में तीन क्रम होते हैं। पहले क्रम में दले हुए अनाज (मैश, mash) को गरम पानी में मिला और चलाकर इससे वर्ट (wort, शर्कराओं का तनु विलयन) तैयार होता है। दूसरे क्रम में वर्ट का किण्वन होता है और उससे वह द्रव जिसे वाश (wash) कहते हैं, बनता है। तीसरे क्रम में वाश के आसवन से ऐल्कोहल प्राप्त होता है। पहले क्रम में दले हुए अनाज को भिगोकर उष्ण रखते हैं तथा उसमें माल्ट (यव्य) डाला जाता है। इससे अनाजों के स्टार्च का किण्वन होकर शर्करा बनती है। दूसरे क्रम में शर्करा में यीस्ट डालकर किण्वन किया जाता है, जिससे शर्करा ऐल्कोहल में परिणत हो जाती है। इस प्रकार वाश बनता है और तीसरे क्रम में वाश का आसवन होता है। आसुत में ऐल्कोहल की मात्रा ८०% या १६० डिग्री प्रूफ रहती है। इस असंमिश्रित ह्विस्की को स्ट्रेट ह्विस्की (Straight whisky) कहते हैं। संमिश्रित ह्विस्की (Blended whisky) २०% असंमिश्रित ह्विस्की होती है और शेष में ऐल्कोहल और जल मिला रहता है। बांडेड ह्विस्की (Bonded whisky) में ५०% या १०० डिग्री प्रूफ ऐल्कोहल रहता है। ऐसी ह्विस्की का जीर्णनकाल कम से कम ४ वर्ष का होता है। ह्विस्की का जीर्णन ओक के पीपे (बांज की लकड़ी से बने पीपों) में, जिनके अंदर का भाग आग से झुलसाया रहता है, संपन्न होता है।

ताजी ह्विस्की रंगहीन तथा स्वाद और वास में अरुचिकर होती है। इसमें अनुकूल स्वाद और गंध लाने के लिये इसे सुनियंत्रित रूप से परिपक्व किया जाता है। इस क्रिया को ही जीर्णन कहते हैं। जीर्णन से अनुकूल स्वाद और गंध के साथ साथ लकड़ी के पात्र से कुछ टैनिक अम्ल और वर्णक मिल जाता है जिससे स्वाद और सुवास में विशिष्टता आ जाती है तथा रंग लाली लिए हुए सुरा हो जाता है। [फ० हि०]

अधिकार है। इसकी पहली परिभाषा Termes de Laley नामक पुस्तक में दी गई है।

हिंदू और मुस्लिम दोनों कानूनों की पुस्तकों में सुविधाधिकारों की चर्चा मिलती है परन्तु ब्रिटिश भारत के न्यायालय इनको लागू नहीं करते थे हालांकि ऐसे व्यक्तिगत कानूनों को वे लागू कर सकते थे जो न्याय, साम्य और स्वच्छ अंतःकरण के विरुद्ध नहीं थे या जो रूढि अथवा प्रथा का रूप धारण कर चुके थे। भारत की भिन्न स्थिति देखते हुए अंग्रेजी कानून के नियमों को भी यहाँ लागू नहीं किया जा सकता था। इसलिये भारत में, शुरू शुरू में ही, इस विषय पर संहिताबद्ध कानून की आवश्यकता अनुभव की गई। सन् १८८२ में भारतीय सुविधाधिकार कानून पास किया गया। यह कानून मुख्यतः व्हिटले स्टोक्स के मसौदे पर आधारित था। आरंभ में यह कानून केवल मद्रास, कुर्ग और मध्यप्रांत (अब मध्यप्रदेश) ही में लागू किया गया परंतु समय समय पर इसे अन्य क्षेत्रों में लागू किया जाता रहा। सुविधाधिकार विधेयक पास होने से पूर्व सुविधाधिकार संबंधी कानून इंडियन लिमिटेशन ऐक्ट १८७७, में शामिल था।

भारतीय सुविधाधिकार विधेयक में सुविधाधिकार की यह परिभाषा दी गई है 'वह अधिकार जो किसी भूमि के स्वामी अथवा अधिभोक्ता को उस भूमि के लाभकारी उपयोग के लिये किसी ऐसी भूमि में अथवा ऐसी भूमि पर या उसके संबंध में दिया गया है जो उसकी नहीं है — कुछ करने का अधिकार अथवा करते रहने का अधिकार, या कुछ करने से रोकने का अधिकार अथवा रोके रहने का अधिकार।'

जिस भूमि के लाभकारी उपयोग के लिये यह अधिकार दिया जाता है उसे सुविधाधिकारी भूमि कहते हैं — उस भूमि के स्वामी अथवा अधिभोक्ता को सुविधाधिकारी स्वामी कहते हैं। जिस भूमि पर यह दायित्व लागू होता है उसे सुविधाभारित भूमि और उसके स्वामी अथवा अधिभोक्ता को सुविधाभारित स्वामी कहते हैं। 'क' नामक एक मकान मालिक को 'ख' की भूमि पर जाकर वहाँ से अपने इस्तेमाल के लिये एक सोते से पानी लेने का अधिकार है — यह सुविधाधिकार कहलाएगा।

सुविधाधिकार सकारात्मक हो सकता है अथवा नकारात्मक — यह निरंतर हो सकता है अथवा सविराम। सुविधाभारित भूमि पर कुछ करने का अधिकार अथवा करते रहने का अधिकार सकारात्मक सुविधाधिकार है — उसपर कुछ करने से रोकने का अधिकार अथवा रोके रहने का अधिकार नकारात्मक सुविधाधिकार है। निरंतर सुविधाधिकार वह है जिसका उपभोग अथवा निरंतर उपभोग मनुष्य द्वारा कुछ किए बिना ही होता रहता है जैसे रोशनी पाने का अधिकार। सविराम सुविधाधिकार वह है जिसके उपयोग के लिये मनुष्य का सक्रिय सहयोग अनिवार्य है, जैसे गुजरने के लिये रास्ते का उपयोग।

सुविधाधिकार प्रत्यक्ष हो सकता है अथवा अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष सुविधाधिकार वह है जिसमें इसके अस्तित्व का कोई दिखाई देनेवाला स्थायी चिह्न हो। अगर ऐसा कोई दिखाई देनेवाला चिह्न नहीं है, तो सुविधाधिकार अप्रत्यक्ष होगा।

सुविधाधिकार स्थायी हो सकता है अथवा नियतकालिक अथवा नियतकालिक बाधायुक्त। सुविधाधिकार केवल विशेष स्थान अथवा विशेष समय के लिये या किसी विशेष उद्देश्य के लिये भी हो सकता है।

सुविधाधिकार की प्राप्ति अभिव्यक्त अथवा ध्वनित अनुदान से हो सकती है या लंबे अर्से तक इसके उपयोग से हो सकती है, चिरभोग से हो सकती है अथवा इसके रूढि बन जाने से हो सकती है। जहाँ सुविधाधिकार आवश्यक हो, वहाँ कानून ध्वनित सुविधाधिकार स्वीकार करता है, जैसे एक इमारत की अदला बदली या विभाजन के फलस्वरूप अगर इसे दो या दो से अधिक अलग हिस्सों में विभाजित किया जाए और इन हिस्सों में से कोई एक इस स्थिति में हो कि उसे जब तक अन्य हिस्सों पर कोई विशेषाधिकार नहीं दे दिया जाता, तब तक उसका सदुपयोग नहीं हो सकता तो इस विशेषाधिकार चिरभोग को कानून स्वीकार करेगा और इसे ध्वनित विशेषाधिकार कहेंगे। चिरभोग द्वारा विशेषाधिकार की स्वीकृति के लिये यह अनिवार्य है कि पिछले बीस वर्ष से बगैर किसी बाधा के इस अधिकार का उपयोग किया गया हो। सुविधाधिकारी और सुविधाभारित के बीच हुए समझौते के फलस्वरूप अगर किसी अधिकार का उपभोग किया गया है तो उससे चिरभोग सुविधाधिकार की प्राप्ति नहीं होती। ऐसी बाधा से, जिसे सुविधाधिकारी ने एक वर्ष तक मौन स्वीकृति न दी हो या ऐसी बाधा से जिसे सुविधाधिकारी और सुविधाभारित के बीच हुए समझौते में स्वीकार किया गया हो, उपभोग की निरंतरता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और इस तरह चिरभोग द्वारा सुविधाधिकार की प्राप्ति में कोई रुकावट नहीं पड़ती।

रूढि द्वारा सुविधाधिकार की प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है कि रूढि प्राचीन, एकरूप और युक्तिसंगत हो। उसका निरंतर शांतिपूर्वक और खुलेआम उपभोग होता रहा हो।

रूढिसंबंधी सुविधाधिकारों अथवा अभिव्यक्त अनुदान से उत्पन्न सुविधाधिकारों को छोड़कर बाकी सुविधाधिकारों और सुविधाभारित स्वामियों के लिये भारतीय सुविधाधिकार विधेयक में कुछ सामान्य कर्तव्य और अधिकार निर्धारित किए गए हैं, जैसे सुविधाधिकारी को अपने अधिकार का उपभोग उस ढंग से करना चाहिए जो सुविधाभारित स्वामियों के लिये कम से कम दुर्भर हो, सुविधाधिकार के उपभोग के कर्म के फलस्वरूप अगर सुविधाभारित संपत्ति इत्यादि को कोई क्षति पहुँचती है, तो जहाँ तक संभव हो सुविधाधिकारी को उसकी पूर्ति करनी चाहिए।

विधेयक के अंतर्गत सुविधाधिकारी स्वामी से यह अधिकार छीन लिया गया है कि वह सुविधाधिकारी के रास्ते में डाली गई अनुचित बाधाओं का स्वयं शमन कर दे।

सुविधाधिकार की समाप्ति, निर्मुक्ति अथवा अभ्यर्पण अथवा नियत अवधि की समाप्ति पर हो सकती है। इसके अतिरिक्त इससे संलग्न समाप्ति अवस्था के उत्पन्न हो जाने पर भी इसकी समाप्ति हो सकती है। आवश्यकतासंबंधी सुविधाधिकार की समाप्ति उस आवश्यकता की समाप्ति पर हो सकती है जिसके लिये यह सुविधाधिकार दिया गया था।

कानून के क्षेत्र मे अधिकाधिक व्यस्त रहते और उत्तरोत्तर प्रगति करते हुए भी डॉक्टर सुलेमान ने गणित और विज्ञान से अपना सबध नहीं तोडा, वरन् अपनी स्वतत्र और मौलिक गवेषणाओ के कारण स्वदेश और विदेशो में प्रसिद्धि प्राप्त की। आइंस्टाइन द्वारा प्रतिपादित महत्वपूर्ण, क्रातिकारी, अति जटिल आपेक्षिकता सिद्धात का आपने विस्तृत अध्ययन किया। इस सबध में अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिये आपने 'सायस ऐंड कल्चर' नामक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका मे एक लेखमाला लिखी थी। डॉक्टर सुलेमान ने प्रकाश की गति के लिये एक समीकरण स्थापित किया, जो आइस्टाइन के समीकरण से भिन्न था। इसे इन्होने प्रकाशित कर दिया। सूर्य के निकट से होकर आनेवाले प्रकाश के पथ मे विचलन का सर सुलेमान की गणना से प्राप्त मान आइस्टाइन की गणना से प्राप्त मान से अधिक सही पाया गया। सूर्यप्रकाश के स्पेक्ट्रम में कुछ तत्वो की रेखाएँ प्रयोगशाला मे उत्पादित इन्ही तत्वो की रेखाओ के स्थान से कुछ हटी हुई पाई जाती हैं। आइंस्टाइन के मतानुसार यह हटाव सूर्य के सभी भागो से आनेवाले प्रकाश मे समान रूप से पाया जाना चाहिए, पर वास्तविकता इसके प्रतिकूल थी। डॉक्टर सुलेमान ने अपनी गणना से इसका भी समाधान किया।

सन् १९४१ मे 'नैशनल एकेडमी ऑव सायसेज' के दिल्ली में हुए वार्षिक अधिवेशन के आप सभापति मनोनीत हुए थे। इस समय आपने गणित पर आधारित प्रकाश की प्रकृति के संबध मे जो विचार व्यक्त किए थे, उनसे वैज्ञानिक प्रभावित हुए थे। 'इडियन सायस न्यूज ऐसोसिएशन' के आप प्रमुख सदस्य तथा 'करेंट सायंस' और 'सायंस ऐंड कल्चर' नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिकाओ के संपादकीय बोर्ड के सदस्य भी थे।

शिक्षा के क्षेत्र में भी आपने महत्वपूर्ण योगदान दिया। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कोर्ट तथा एक्जिक्यूटिव काउसिल के सदस्य निर्वाचित हुए और अलीगढ विश्वविद्यालय के वाइस चासलर नियुक्त किए गए थे। आपके उद्योगो से अलीगढ विश्वविद्यालय ने बहुत उन्नति की। विश्वविद्यालय की उच्च परीक्षाओ मे आपने उर्दू को स्थान दिलाया। प्रौढ शिक्षा के प्रसार मे सक्रिय भाग लेने के कारण आप अखिल भारतीय प्रौढ शिक्षा समेलन के सभापति चुने गए।

डॉक्टर सुलेमान की रहन सहन बडी सादी थी। इनके सपर्क में जो कोई भी आता था, उनके विचारो और विद्वत्ता से प्रभावित तो होता ही था, उनकी नम्रता, मिलनसारी और सौजन्य का भी कायल हो जाता था। [श्री ना० सिं०]

सुलोचना मेघनाद की पतिपरायणा, साध्वी स्त्री जिसके विलाप का रामायण में विशद वर्णन है। कहा जाता है, यह स्वयं शेषनाग की कन्या थी। इसी नाम की पत्नी विक्रम के पुत्र माधव की भी थी जिसे आदर्श भार्या कहा जाता है। [रा० द्वि०]

सुल्तान (बहुवचन सलातीन salatin) विजेता, नरेश, संप्रभु, रानी, पूर्ण सत्ता तथा निरकुश शक्ति इसके शाब्दिक अर्थ हैं। 'शक्ति' या 'बल' के अर्थ मे यह कुरान मे प्रयुक्त भी हुआ है। क्षेत्रविशेष के शक्तिशाली शासक एवं स्वतंत्र संप्रभु के अर्थ मे सुल्तान की उपाधि धारण करनेवाला प्रथम व्यक्ति था महमूद गजनवी।

सं० ग्र०—टी० डब्ल्यू० अर्नाल्ड : कैलीफेट, लदन १९२४; अल उत्बी : किताबुल यामिनी, अनुवादक जे० रेनाल्ड्स, लदन १८५८। [मु० या०]

सुल्तानपुर १. जिला, यह भारत के उत्तरप्रदेश राज्य का जिला है जिसका क्षेत्रफल ४३८४ वर्ग किमी एव जनसख्या १४,१२,९८४ (१९६१) है। इसके उत्तर मे बाराबकी एवं फैजाबाद, पूर्व मे जौनपुर, दक्षिण मे जौनपुर एव प्रतापगढ और पश्चिम में रायबरेली एव बाराबंकी जिले हैं। यहाँ की मुख्य नदी गोमती है जो जिले में उत्तरी पश्चिमी कोने से प्रवेश करती है और जिले के मध्य से बहती हुई दक्षिण पूर्व की ओर जाती है। यहाँ पर अनेक छिछली झीले हैं, पर किसी का विस्तार पर्याप्त नही है और न उनका कोई महत्व ही है। जिले का अधिकाश भूभाग समतल है। धान यहाँ की सबसे महत्वपूर्ण फसल है। इसके अतिरिक्त चना, गेहूँ, जौ, मटर, मसूर एव गन्ना अन्य फसलें हैं। जिले मे आम, जामुन और महुआ के वृक्ष पर्याप्त सख्या मे हैं। भेडिया, गीदड, नीलगाय एव जगली सुअर जिले में मिलनेवाले वन्य पशु हैं। यहाँ की औसत वार्षिक वर्षा ४३ इच है। यहाँ की भूमि जलोढ़ मिट्टी से बनी है।

२. नगर, स्थिति : २६° १५' उ० अ० तथा ८२° ५' पू० दे०। यह नगर उपर्युक्त जिले का प्रशासनिक केंद्र है, गोमती नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है और अनाज व्यवसाय का केंद्र है। यहाँ की जनसंख्या २६,०८१ (१९६१) है।

सुवर्णरेखा भारत के बिहार राज्य की नदी है, जो राँची नगर से १६ किमी० दक्षिण पश्चिम से निकलती है और उत्तर पूर्व की ओर बहती हुई मुख्य पठार को छोडकर प्रपात के रूप में गिरती है। इस प्रपात को हुड्रुघाघ (hundrughagh) कहते हैं। प्रपात के रूप में गिरने के बाद नदी का बहाव पूर्व की ओर हो जाता है और मानभूम जिले के तीन सगमबिंदुओ के आगे यह दक्षिणपूर्व की ओर मुडकर सिंहभूम में बहती हुई उत्तर पश्चिम से मिदनापुर जिले में प्रविष्ट होती है। इस जिले के पश्चिमी भूभाग के जगलो में बहती हुई बालेश्वर जिले में पहुँचती है। यह पूर्व पश्चिम की ओर टेढ़ीमेढ़ी बहती हुई बालेश्वर नामक स्थान पर बंगाल की खाडी में गिरती है। इस नदी की कुल लबाई ४७४ किमी० है और लगभग २८९२८ वर्ग किमी० का जलनिकास इसके द्वारा होता है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ काँची एव कर्कारी हैं। भारत का प्रसिद्ध एव पहला लोहे तथा इस्पात का कारखाना इसके किनारे स्थापित हुआ। कारखाने के संस्थापक जमशेद जी टाटा के नाम पर बसा यहाँ का नगर जमशेदपुर या टाटानगर कहा जाता है। अपने मुहाने से ऊपर की ओर यह १६ मील तक देशी नावो के लिये नौगम्य है।

[अ० ना० मे०]

सुविधाधिकार शब्द फ्रेंच अथवा नॉर्मन उद्भव का प्रतीत होता है। सुविधाधिकार सभवत. उतना ही प्राचीन है जितना सपत्ति का

भूमिका मे ईसा का शैशव वर्णित है, इसके बाद उनकी जीवनी पाँच प्रकरणों मे विभाजित है। प्रत्येक प्रकरण के अंत में ईसा का एक विस्तृत प्रवचन उद्धृत है। लोकप्रसिद्ध पर्वतप्रवचन (सरमन ग्रान दि माउंट) इनमे से प्रथम है (अध्याय ५-७)। अंतिम प्रवचन येरुसलेम के भावी विनाश तथा ससार के अत से सबध रखता है। (अध्याय २४-२५)। उपसहार मे ईसा का दु खभोग और पुनरुत्थान वर्णित है (अध्याय २६-२८)।

सत मार्क का सुसमाचार — सत मार्क रोम में संत पीटर के दुभाषिया थे। वहीं उन्होंने लगभग ६४ ई० में सत पीटर के प्रवचनों के आधार पर अपरिष्कृत यूनानी भाषा में अपना सुसमाचार लिखा था। ईसा के विषय में प्राचीनतम तथा सरलतम शिक्षा इस सुसमाचार में लिपिबद्ध की गई है। घटनाएँ कालक्रमानुसार दी गई हैं— प्रारभ में योहन बपतिस्ता का कार्यकलाप वर्णित है (दे० योहन बपतिस्ता), अनतर गलीलिया (अध्याय २-६) और इसके बाद यहूदिया तथा येरुसलेम (अ० १०-१३) मे ईसा के प्रवचनो और चमत्कारो का विवरण है, अतिम अध्यायो (१४-१६) का विषय है ईसा का दु खभोग और पुनरुत्थान। सत मार्क गैर यहूदी ईसाइयो को समझाना चाहते हैं कि ईसा के प्रवचन और चमत्कार यह सिद्ध करते हैं कि वह ईश्वर भी हैं और मनुष्य भी।

संत लूक का सुसमाचार — अधिक संभव है, गैर यहूदी सत लूक अतिओक के निवासी थे। उन्होने रोम अथवा यूनान में ७० ई० से पहले सुपरिष्कृत यूनानी भाषा में अपने सुसमाचार की रचना की थी। इसके अतिरिक्त उन्होने पट्ट शिष्यों का कार्यकलाप (ऐक्ट्स ऑव दि एपोसल्स) नामक बैबिल के नवविधान का पंचम ग्रथ भी लिखा है। वह विशेष रूप से पापियो के प्रति ईसा की दयालुता और दीन-हीन लोगो के प्रति उनकी सहानुभूति का चित्रण करते हैं और इस बात पर बल देते हैं कि ईसा ने समस्त मानव जाति के लिये मुक्ति के उपाय प्रस्तुत किए हैं। ईसा के शैशव (अध्याय १-२) तथा योहन बपतिस्ता के उपदेशों की चर्चा (अ०३) करने के बाद संत लूक ने अपने सुसमाचार मे कालक्रम की अपेक्षा प्रतिपाद्य विषय पर अधिक ध्यान दिया है। ईसा के प्रवचनो तथा चमत्कारो का वर्णन करते हुए उन्होंने इसका बराबर उल्लेख किया है कि ईसा गलीलियो से राजधानी येरुसलेम की ओर बढते जाते हैं, जहाँ पहुँचकर वह क्रूस पर मरकर तीन दिनो के बाद पुनर्जीवित हो जाते हैं। सत मार्क की प्राय समस्त सामग्री इस सुसमाचार मे भी विद्यमान है, दो अशो की सामग्री और किसी सुसमाचार में नही मिलती। (दे० अध्याय ६,२०-८,३ और ६,५१-१८,१४)।

संत योहन का सुसमाचार — ईसा के पट्ट शिष्य योहन ने अपने दीर्घ जीवन के अत में १०० ई० के आस पास सभवत एफसस में अपने सुसमाचार की रचना की थी, इसके पहले उन्होंने तीन पत्र और प्रकाशना ग्रथ भी लिखा था—ये चार रचनाएँ भी बाइबिल के नवविधान में समिलित हैं। सन् १६३५ ई० मे सत योहन के सुसमाचार की खडित हस्तलिपियाँ मिल गई हैं जिनका लिपिकाल १५० ई० के कुछ पूव है।

अन्य सुसमाचारो के ३०-४० वर्ष बाद इस ग्रंथ की रचना हुई थी। उन तीन रचनाओ मे छूटी हुई सामग्री का सकलन करना संत योहन का उद्देश्य नही है। वह ईसा की जीवनी के विषय में अपनी व्याख्या करते हैं और उनके प्रवचनो तथा कार्यों का गूढ एव आध्यात्मिक अर्थ स्पष्ट करते हैं। वह ईसा के ऐसे चमत्कारों का भी उल्लेख करते हैं जो अन्य सुसमाचारो में नही मिलते। ईसा की कई येरुसलेम यात्राओ का वर्णन करते हैं और भूगोल एव कालक्रम विषयक कई नए तथ्यों का भी उद्घाटन करते हैं। वह बहुधा ईसा के प्रवचन अपने ही शब्दों में प्रस्तुत करते हैं। उनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है—ईसा ईश्वर का शब्द है (दे० त्रित्व); वह ईसा ससार के अधकार में आकर उसकी ज्योति बन गए हैं। जो इस ज्योति को ग्रहण करने से इनकार करते हैं वे अधकार में रहकर मुक्ति के भागी नहीं हो पाएँगे।

स० ग्रं० — एनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी ऑव दि बाइबिल, न्यूयार्क १६६३। [आ० बे०]

सुहागा एक क्रिस्टलीय ठोस पदार्थ है जो अनेक निक्षेपो विशेषत तिब्बत, कैलिफोर्निया, पेरू, कनाडा, अर्जेंटिना, चिली, टर्की, इटली और रूस मे साधारणतया टिंकल (Tincal) ($Na_2 B_4 O_7 10H_2O$) के रूप में पाया जाता है। इसके खनिज रैसोराइट (Rasorite) ($Na_2B_4O_7,4H_2O$) और कोलेमैनाइट (Colemanite, $Ca_2 B_6 O_{11} 5H_2 O$) भी पाए जाते हैं।

सुहागे के सामान्य क्रिस्टलीय रूप का सूत्र ($Na_2 B_4 O_7 10H_2O$) है जो सामान्य ताप पर सुहागे के विलयन के क्रिस्टलन से क्रिस्टल के रूप में प्राप्त होता है। ६०° सें० से ऊपर गरम करने से यह अष्टफलकीय पेंटाहाइड्रेट (octahedral pentahydrate) (जौहरी के सुहागे) मे परिणत हो जाता है। इसका जलीय विलयन क्षारीय होता है। हाइड्रोजन पेराक्साइड के उपचार से यह 'परबोरेट' सो बो औ$_3$ ४ हा$_2$ औ ($Na B O_3. 4H_2 O$) बनता है जिसका उपयोग विरजक या आक्सीकारक के रूप में होता है। गरम करने से इसका कुछ जल निकल जाता है जिससे यह स्वच्छ काँच सा पदार्थ बन जाता है। पिघला हुआ सुहागा धातुओ के अनेक आक्साइडो से मिलकर बोरन काँच बनाता है जिसके विशिष्ट रंग होते हैं। इनका उपयोग रसायन विश्लेषण में होता है।

सुहागा का उपयोग धातुकर्म में आक्साइड धातु मलों के निकालने, धातुओ पर टाँका देने या तापान में, धातुओ के पहचानने, पानी के मृदु बनाने और रंगीन चमकीले ग्लेज़ तैयार करने में होता है। काँच और लोहे के पात्रो पर इसका इनेमल भी चढ़ाया जाता है। इससे महत्व का, ओषधियो में उपयुक्त होनेवाला कीटाणुनाशक बोरिक अम्ल प्राप्त होता है। उर्वरक के रूप में भी सुहागे का उपयोग अब होने लगा है यद्यपि अधिक मात्रा में इसका उपयोग कुछ फसलो के लिये विषैला भी हो सकता है। [फू० स० व०]

सूअर (Pig) आर्टियोडैक्टिला गण (Order Artiodactyla) के सुइडी कुल (family Suidae) जीव, के जिनमें ससार के सभी जगली और पालतू सूअर समिलित हैं, इसके अंतर्गत आते हैं। इन खुरवाले प्राणियों की खाल बहुत मोटी होती है और इनके शरीर

सुविधाधिकारी संपत्ति के लाभकारी उपयोग के लिये ही सुविधाधिकार दिया जाता है, इसलिये सुविधाभारित स्वामी को इसे चालू रखने की माँग करने का अधिकार नहीं है।

अंग्रेजी कानून में परस्वभोग वर्ग मे अधिकारो को स्वीकार किया गया है। भारतीय कानून मे ऐसा नहीं है।

परस्वभोग अधिकार वे है जो पड़ोसी भूमि के लाभो मे भाग लेने से संबद्ध हैं, जैसे चरागाह के अधिकार या शिकार अथवा मछली पकड़ने का अधिकार।

सुब्ल्येरा, पियर (१६९९-१७४९) फ्रेंच चित्रकार; जन्म उसेत्स में हुआ। अपने पिता और अंतोनी रिवाल्ज के पास कला की शिक्षा ग्रहण करते रहे। सन् १७२४ मे पैरिस जाकर दो साल मे ही अपना कौशल दिखाया और सन् १७२६ में 'पीत सर्प' शीर्षक कलाकृति पर फ्रेंच अकादमी की ओर से पुरस्कार पाया। वहाँ से रोम जाकर सन् १७३९ मे मारिया फेलिस निवाल्दी नामक युवती चित्रकार से, जो लघुचित्र बनाने में ख्यातिप्राप्त थी, विवाह कर लिया। सुदर रचना, रगविन्यास की श्रेष्ठता और कोमल प्रभाव इनके चित्रो की विशेषताएँ रही। रोम में और फ्रास की लोवरी म इनके चित्र रखे हैं। [भा० स०]

सुश्रुत संहिता का संबध सुश्रुत से है। सुश्रुत सहिता में सुश्रुत को विश्वामित्र का पुत्र कहा है। विश्वामित्र से कौन से विश्वामित्र अभिप्रेत हैं, यह स्पष्ट नही। सुश्रुत ने काशीपति दिवोदास से शल्यतंत्र का उपदेश प्राप्त किया था। काशीपति दिवोदास का समय ईसा पूर्व की दूसरी या तीसरी शती संभावित है, (भा० वृ० इ० पृ० १८३–१८८)। सुश्रुत के सहपाठी औपधेनव, वैतरणी आदि अनेक छात्र थे। सुश्रुत का नाम नावनीतक में भी आता है। अष्टागसग्रह में सुश्रुत का जो मत उद्धृत किया गया है, वह मत सुश्रुतसहिता मे नही मिलता; इससे अनुमान होता है कि सुश्रुतसंहिता के सिवाय दूसरी भी कोई संहिता सुश्रुत के नाम से प्रसिद्ध थी।

सुश्रुत के नाम पर आयुर्वेद भी प्रसिद्ध है। यह सुश्रुत राजर्षि शालिहोत्र के पुत्र कहे जाते हैं (शालिहोत्रेण गर्गेण सुश्रुतेन च भाषितम् — सिद्धोपदेशसग्रह)। सुश्रुत के उत्तरतन्त्र को दूसरे का बनाया मानकर कुछ लोग प्रथम भाग को सुश्रुत के नाम से कहते हैं; जो विचारणीय है। वास्तव में सुश्रुत सहिता एक ही व्यक्ति की रचना है। [अ० दे० वि०]

सुसमाचार मुक्ति की खुशखबरी के लिये बाइबिल मे जिस यूनानी शब्द का प्रयोग हुआ है, उसका विकृत रूप 'इजील' है; इसी का शाब्दिक अनुवाद हिंदी मे 'सुसमाचार' और अंग्रेजी मे गास्पेल (Good spell) है। सुसमाचार का सामान्य अर्थ है ईसा मसीह द्वारा मुक्तिविधान की खुशखबरी (दे० ईसा मसीह)। बाइबिल के उत्तरार्ध मे ईसा की जीवनी तथा शिक्षा का चार भिन्न लेखको द्वारा वर्णन किया गया है; इन चार ग्रंथो को भी सुसमाचार कहते हैं; इनका पूरा शीर्षक इस प्रकार है — सत मत्ती (अथवा मार्क, लूक, योहन के अनुसार येसु खीस्त का सुसमाचार (दे० बाइबिल)। इन चारो को छोड़कर चर्च ने कभी किसी अन्य ग्रंथ को सुसमाचार रूप मे नही ग्रहण किया है। संत योहन ने १०० ई० के लगभग अपने सुसमाचार की रचना की थी; शेष सुसमाचारलेखकों ने ५५ ई० और ६५ ई० के बीच लिखा था। मत्ती और योहन ईसा के पट्ट शिष्य थे; मार्क सत पीटर और संत पाल के शिष्य थे और लूक संत पाल की यात्राओ में उनके साथी थे।

ऐतिहासिकता — ईसा की मृत्यु (३० ई०) के बाद २०-३० वर्षों तक सुसमाचार मौखिक रूप मे प्रचलित रहा; उसे लिपिबद्ध करने की आवश्यकता तब प्रतीत हुई जब ईसाई धर्म फिलिस्तीन के बाहर फैलने लगा और ईसा की जीवनी के प्रत्यक्षदर्शियो की मृत्यु होने लगी। ईसा के शिष्यो ने अपने गुरु के जीवन की घटनाओ पर चिंतन किया था और उनसे कुछ निष्कर्ष निकाले थे जो सुसमाचार की प्रारंभिक मौखिक परपरा में समिलित किए गए थे, फिर भी उस मौखिक परंपरा मे उन घटनाओ का सच्चा रूप प्रस्तुत हुआ था क्योंकि प्रत्यक्षदर्शी तथा ईसा के शिष्य जीवित थे और सुसमाचार की सच्चाई पर नियंत्रण रखते थे। इस प्रकार सुसमाचारो के वर्तमान रूप मे तीन सोपान परिलक्षित हैं अर्थात् ईसा का जीवनकाल, मौखिक परंपरा की अवधि और सुसमाचारो को लिपिबद्ध करने का समय।

प्रथम तीन सुसमाचार : मत्ती, मार्क और लूक के सुसमाचारो की पर्याप्त सामग्री तीनो मे समान रूप मे मिलती है, उदाहरणार्थ मार्क की बहुत सामग्री मत्ती और लूक में भी विद्यमान है। शैली, शब्दावली, बहुत सी घटनाओ के क्रम आदि बातों की दृष्टि से भी तीनो रचनाओ में सादृश्य है। दूसरी ओर उन तीनो रचनाओ में पर्याप्त भिन्नता भी पाई जाती है। कुछ बातें केवल एक सुसमाचार में विद्यमान हैं। अन्य बातें एक ही प्रकार से, एक ही स्थान मे अथवा एक ही संदर्भ मे नहीं प्रस्तुत की गई हैं। और जो बातें बहुत कुछ एक ही ढग से दी गई हैं उनमें शब्दो के क्रम और चयन मे अंतर आ गया है। विद्वानो ने उस सादृश्य एवं भिन्नता के अनेक कारण बताए हैं — (१) तीनो सुसमाचार एक ही सामान्य मौखिक परपरा के आधार पर लिपिबद्ध किए गए हैं; (२) तीनो लिखित रूप मे एक दूसरे पर आधारित हैं; (३) तीनो की रचना भिन्न मौखिक और लिखित सामग्री के आधार पर हुई थी। इन कारणो के समन्वय से ही इस समस्या का पूरा समाधान संभव है।

प्राचीन काल से सुसमाचारो को एक ही कथासूत्र में ग्रथित करने का प्रयास किया गया है; हिंदी मे इसका एक उदाहरण है — मुक्तिदाता, काथलिक प्रेस, राँची (चतुर्थ सस्करण, १९६३)।

संत मत्ती का सुसमाचार — यह लगभग ५० ई० में इब्रानी बोलचाल की अरामेयिक भाषा में लिखा गया था; इसका यूनानी अनुवाद लगभग ६५ ई० में तैयार हुआ। मूल अरामेयिक अप्राप्य है। ईसा बाइबिल में प्रतिज्ञात मसीह और ईश्वर के अवतार हैं, यह बात यहूदियो के लिये स्पष्ट कर देना संत मत्ती का मुख्य उद्देश्य है। सत मत्ती ने घटनाओ के कालक्रम पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया है। इस सुसमाचार की

वार में जहाँ ४-६ बच्चे देती हैं वहीं पालतू सूअरों की मादा ४ से १० तक बच्चे जनती हैं।

ये बेलनाकार शरीरवाले भारी जीव हैं जिनकी खाल मोटी और दुम छोटी होती है। प्रौढ़ होने पर इनके दाँतो की संख्या ४४ तक पहुँच जाती है।

ये बहुत हठी और बेवकूफ जानवर हैं, जिनमें जगलों में रहनेवाले तो फुरतीले जरूर होते हैं, लेकिन पालतू अपने चरवीले शरीर के कारण काहिल और सुस्त होते हैं।

संसार में सबसे अधिक सूअर चीन में हैं, उसके बाद अमरीका का नबर आता है। इन दोनो देशो के सूअरो की संख्या संसार भर के सूअरो के आधे के लगभग पहुँच जाती है।

पालतू सूअर संसार के प्राय सभी देशों मे फैले हुए हैं और भिन्न भिन्न देशों मे इनकी अलग अलग जातियाँ पाई जाती हैं। यहाँ उनमें से केवल १३ जातियो का संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है जो बहुत प्रसिद्ध हैं।

१. बर्कशायर (Berkshire) — इस जाति के सूअर काले रग के होते हैं जिनका चेहरा, पैर और दुम का सिरा सफेद रहता है। यह जाति इग्लैंड में बनाई गई है। जहाँ से यह अमरीका में फैली। इनका मास बहुत स्वादिष्ट होता है।

२. चेस्टर ह्वाइट (Chester white) — इस जाति के सूअरों का रग सफेद होता है और खाल गुलाबी रहती है। यह जाति अमरीका के चेस्टर काउन्टी में बनाई गई और केवल अमरीका में ही फैली है।

३. ड्यूराक (Duroc) — यह जाति भी अमरीका से ही निकली है। इस जाति के सूअर लाल रग के होते हैं जो काफी भारी और जल्द बढ़ जानेवाले जीव हैं।

४. हैंपशायर (Hampshire) — यह जाति इग्लैंड में निकाली गई है लेकिन अब यह अमरीका में भी काफी फैल गई है। इस जाति के सूअर काले होते हैं जिनके शरीर के चारो ओर एक सफेद पट्टी पड़ी रहती है। यह बहुत जल्द बढते और चरबीले हो जाते हैं।

५ हियरफोर्ड (Hereford) — यह जाति भी अमरीका में निकाली गई है। ये लाल रग के सूअर हैं जिनका सिर, कान, दुम का सिरा और शरीर का निचला हिस्सा सफेद रहता है। ये कद मे अन्य सूअरों की अपेक्षा छोटे होते हैं और जल्द ही प्रौढ हो जाते हैं।

६. लैंडरेस (Landrace) — इस जाति के सूअर डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, जर्मनी और नीदरलैंड में फैले हुए हैं। ये सफेद रग के सूअर हैं जिनका शरीर लबा और चिकना रहता है।

७ लार्ज ब्लैक (Large Black) — इस जाति के सूअर काले होते हैं जिनके कान बड़े और आँखो के ऊपर तक झुके रहते हैं। यह जाति इंग्लैंड में निकाली गई और ये वहीं ज्यादातर दिखाई पड़ते हैं।

८. मैंगालिट्ज़ा (Mangalitza) — यह जाति बालकन स्टेट में निकाली गई है और इस जाति के सूअर हगरी, रूमानियाँ और यूगोस्लाविया आदि देशो में फैले हुए हैं। ये या तो धुर सफेद होते हैं या इनके शरीर का ऊपरी भाग भूरापन लिए काला और नीचे का सफेद रहता है। इनको प्रौढ़ होने में लगभग दो वर्ष लग जाते हैं और इनकी मादा कम बच्चे जनती है।

९. पोलैंड चाइना (Poland China) — यह जाति अमरीका के ओहायो (Ohio) प्रदेश की बट्लर और वारेन (Butler and Warren) काउटी में निकाली गई है। ड्यूराक जाति की तरह यह सूअर भी अमरीका में काफी सख्या में फैले हुए हैं। ये काले रग के सूअर हैं जिनकी टाँगें, चेहरा और दुम का सिरा सफेद रहता है। ये भारी कद के सूअर हैं जिनका वजन १२-१३ मन तक पहुँच जाता है। इनकी छोटी, मझोली और बड़ी तीन जातियाँ पाई जाती हैं।

१० स्पाटेड पोलैंड चाइना (Spotted Poland China) — यह जाति भी अमरीका में निकाली गई है और इस जाति के सूअर पोलैंड चाइना के अनुरूप ही होते हैं। अंतर सिर्फ यही रहता है कि इन सूअरो का शरीर सफेद चित्तियो से भरा रहता है।

११. टैम वर्थ (Tam Worth) — यह जाति इंगलैंड में निकाली गई जो शायद इस देश की सबसे पुरानी जाति है। इस जाति के सूअरों का रग लाल रहता है। इसका सिर पतला और लबोतरा, थूथन लबे और कान खड़े और आगे की ओर झुके रहते हैं। इस जाति के सूअर इग्लैंड के अलावा कैनाडा और यूनाइटेड स्टेट्स में फैले हुए हैं।

१२. वैसेक्स सैडल बैक (Wessex Saddle Back) — यह जाति भी इग्लैंड में निकाली गई है। इस जाति के सूअरो का रग काला होता है और उनकी पीठ का कुछ भाग और अगली टाँगें सफेद रहती हैं। ये अमरीका के हैंपशायर सूअरो से बहुत कुछ मिलते जुलते और मझोले कद के होते हैं।

१३ याकशायर (Yorkshire) — यह प्रसिद्ध जाति वैसे तो इंग्लैंड में निकाली गई है लेकिन इस जाति के सूअर सारे यूरोप, कैनाडा और यूनाइटेड स्टेट्स मे फैल गए हैं। ये सफेद रग के बहुत प्रसिद्ध सूअर हैं जिनकी मादा काफी बच्चे जनती है। इनका मास बहुत स्वादिष्ट होता है। [सु० सिं०]

सूक्ष्म ऊतक विज्ञान (Histology) के अंतर्गत हम जतुओ एवं पौधो के ऊतकों की सामान्य एव रासायनिक रचना तथा उनके कार्य का अध्ययन करते हैं। इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि विभिन्न प्रकार के ऊतक किस प्रकार आणविक (molecular), बृहद् आणविक (macromolecular), सपूर्ण कोशिका एव अतराकोशिकी (intercellular) वस्तुओ तथा अगो में सगठित (organized) हैं।

जतुओ के शरीर के चार प्रकार के ऊतक, कोशिका तथा अतराकोशिकी जिन वस्तुओ द्वारा बनी होती हैं, वे क्रमश निम्नलिखित हैं —

(१) उपकला ऊतक (Epithelial tissue) — उपकला ऊतक की रचना एक पतली झिल्ली के रूप में होती है, जो विभिन्न

पर जो थोडे बहुत बाल रहते हैं वे बहुत कड़े होते हैं। इनका थूथन आगे की ओर चपटा रहता है जिसके भीतर मुलायम हड्डी का एक चक्र सा रहता है जो थूथन को कडा बनाए रखता है। इसी थूथन के सहारे ये जमीन खोद डालते हैं और भारी भारी पत्थरो को आसानी से उलट देते हैं।

सूअरो के कुकुरदत उनकी आत्मरक्षा के हथियार हैं। ये इतने मजबूत और तेज होते हैं कि उनमे ये घोडो तक का पेट फाड़ डालते हैं। ऊपर के कुकुरदत तो बाहर निकलकर ऊपर की ओर घूमे रहते हैं लेकिन नीचे के बडे और सीधे रहते हैं। जब ये अपने जबडों को बद करते हैं तो ये दोनो आपस में रगड खाकर हमेशा तेज और नुकीले बने रहते हैं।

सूअरो के खुर चार हिस्सो में बँटे होते हैं जिनमें से आगे के दोनो खुर बडे और पीछे के छोटे होते हैं। पीछे के दोनो खुर टांगो के पीछे की ओर लटके भर रहते हैं और उनसे इन्हें चलने में किसी प्रकार की मदद नहीं मिलती।

इन जीवो की घ्राणशक्ति बहुत तेज होती है जिनकी सहायता से ये पृथ्वी के भीतर की स्वादिष्ट जडो आदि का पता लगा लेते हैं।

इनका मुख्य भोजन कंद मूल, गन्ना और अनाज है लेकिन इनके अलावा ये कीडे मकोडे और छोटे सरीसृपों को भी खा लेते हैं। कुछ पालतू सूअर विष्ठा भी खाते हैं।

सूपर पूर्वी और पश्चिमी गोलार्ध के शीतोष्ण और उष्ण देशो के निवासी हैं जो दो उपकुलो सुइना उपकुल (sub family suinae) और पिकैरिनी उपकुल (sub family peccarinae) मे विभक्त हैं।

सुइनो उपकुल — इस उपकुल में यूरोप, एशिया और अफ्रीका के जगली, सूअर आते हैं जिनमे यूरोप का प्रसिद्ध जंगली सूपर 'सुस स्क्रोफा' (sus scrofa) विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि इसी से हमारी अधिकाश पालतू जातियां निकली हैं।

यह पहले इग्लैड में काफी सख्या मे पाए जाते थे लेकिन अब इन्हें यूरोप के जगलो में ही देखा जा सकता है। इनका रंग घुमैला-भूरा या कलछौंह सिलेटी होता है। सिर लंबोतरा, गरदन छोटी और शरीर गठीला होता है। ये करीब ४½ फुट लबे और तीन फुट ऊँचे जानवर हैं जो अपने साहस और बहादुरी के लिये प्रसिद्ध हैं। नर के नोकीले और तेज कुकुरदंत ऊपरी होठ के ऊपर बढ़े रहते हैं जिनसे ये आत्मरक्षा के समय बहुत भयंकर हमला करते हैं।

इन्ही का निकट सबंधी दूसरा जगली सूपर 'सुस क्रिस्टेटस' (sus cristatus) है जो भारत के जगलो मे पाया जाता है। यह इतना बहादुर होता है कि कभी कभी युद्ध होने पर शेर तक का पेट फाड़ डालता है। यह भी कलछौह सिलेटी रग का जीव है जो ४½ फुट लबा और ३ फुट ऊँचा होता है।

ये दोनो सीधे सादे जीव हैं जो छेड़े जाने पर या घायल होने पर ही आक्रमण करते हैं। नर प्राय अकेले रहते हैं और मादाएँ और बच्चे झुड बनाकर इधर उधर फिरा करते हैं। इन्हें कीचड़ में लोटना बहुत पसद है और इनका गिरोह दिन मे अक्सर गन्ने आदि के घने खेतो में आराम करता रहता है। मादा साल में दो बार ४-६ बच्चे जनती है जिनके भूरे शरीर पर गाढी धारियां पडी रहती हैं।

इन दोनो प्रसिद्ध जंगली सूअरो के अलावा इनकी और भी कई जंगली जातियां एशिया, जापान और सिलीबीज़ (Celebese) में पाई जाती हैं जिनमे सुमात्रा और बोर्नियो का बियर्डेड वाइल्ड बोअर, Bearded wild boar (sus barbatus) किसी से कम उल्लेखनीय नही है। इसका सिर बडा और कान छोटे होते हैं।

दूसरा सब से छोटा जंगली सूपर, Pigmy wild Hog (Parculasalvania) जो नैपाल के जंगलो में पाया जाता है, केवल एक फुट ऊँचा होता है।

अफ्रीका के जगलो के तीन जंगली सूपर बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमे पहला बुश पिग, Bush Pig (Polamochoerus porcus) कहलाता है। यह दो फुट ऊँचा कलछौंह रंग का सूपर है जिसकी कई उप जातियां पाई जाती हैं।

दूसरा जगली सूअर फारेस्ट हाग, Forest Hog (Hylochoerus meinertzhageni) कहलाता है। यह बुश पिग से ज्यादा काला और पौने तीन फुट ऊँचा सूअर है जो मध्य अफ्रीका के जगलो मे अकेले या जोड़े मे ही रहना पसद करता है।

अफ्रीका का तीसरा जंगली सूपर वार्ट हाग, Wart Hog (Phacochoerus Aethiopicus) कहलाता है जो सबसे भद्दा और बदसूरत सूअर है। इसका थूथन काफी चौडा और दांत काफी लबे होते हैं। यह दो ढाई फुट ऊँचा सूअर है जिसका रंग कलछौह होता है।

पिकेरिनी उपकुल (Sub family Peccarinae) इस उपकुल मे अमरीका के जंगली सूपर जो पिकैरी कहलाते हैं, रखे गए हैं। ये छोटे कद के सूपर हैं जो लगभग डेढ फीट ऊँचे होते हैं और जिनके ऊपर के कुकुरदत अन्य सूपरो की भांति ऊपर की ओर न उठे रहकर नीचे की ओर झुके रहते हैं। इनकी पीठ पर एक गधग्रथि रहती है जिससे ये एक प्रकार की गंध फैलाते चलते हैं।

इनमें कालर्ड पिकैरी, Collared peccary (Pecari Tajacu) सब से प्रसिद्ध है जो कलछौंह सिलेटी रग का जीव है और जिसके कधे पर सफेद धारियां पडी रहती हैं।

सूपर जगली जातियो से कब पालतू किए गए यह अभी तक एक रहस्य ही बना हुआ है लेकिन चीन के लोगो का विश्वास है कि ईसा से २६०० वर्ष पूर्व चीन में पहले पहल सूअर पालतू बनाए गए। उनसे पहले तो मेहतरो का काम लिया जाता था लेकिन जब यह पता चला कि इनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है तो ये मास के लिये पाले जाने लगे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सूअरो की पालतू जातियां यूरोप के जंगली सूअर सस्क्रोफ (Suss scrofa) और भारत के जगली सूअर सस क्रिस्टेटस (sus cristatus) से एशिया में निकाली गई। उसके बाद चीन के सूअर और यूरोप के सूअर से वे जातियां निकली जो इस समय सारे यूरोप और अमरीका में फैली हुई हैं।

सूअर काफी बच्चे जननेवाले जीव हैं। जगली सूअरियां एक

रसायनकों के प्रयोग से, जो परिरक्षित वस्तुओं के प्रतिरक्षण, प्रतिधारण या अभिरंजन (Staining) करने के प्रयोग में लाए जाते थे, ऊतकों की रचना में कई प्रकार के अंतर आने लगे। फलस्वरूप पुन अभिनव वस्तुओ का अध्ययन सर्वथा नियंत्रित अवस्था में आरंभ हुआ तथा ऊतक विज्ञान के अतर्गत कई नवीन प्रयोग हुए, उदाहरणार्थ — "टिश्यू कल्चर" (Tissue culture), "माइक्रोमैनीपुलेशन" (Micro manipulation), "माइक्रो सिनेमैटोग्राफी" (Micro cinematography), अतर जीवनावश्यक अभिरंजन (Intervital staining) तथा अधिजीवनावश्यक अभिरंजन (Supervital staining)। (Intervital = जीवित कोशिकाओ का, supervital = उत्तरजीवी कोशिकाओं का),

इसके अतिरिक्त, हत्वारक्षण (To preserve after killing) के लिये जमाने (Freezing) एवं शुष्कन (Drying) की क्रियाएँ भी प्रयोग में लाइ गईं। इस क्रिया में वस्तु को, किसी द्रव्य पदार्थ में जो १५०° सें या उससे भी कम ताप तक ठंढा किया गया हो, डालकर बहुत शीघ्रता से जमा दिया जाता है, तत्पश्चात् उसे निर्वात (Vacuum) में — ३०° सें० या उससे कम ताप पर शोषित किया जाता है और पुन. पैराफिन मोम में अत.भरण (infilterate) किया जाता है।

सूक्ष्म ऊतक विज्ञान के अध्ययन के वृहत् क्षेत्र हैं — (१) आकारकीय वर्णन (Marphological description), (२) परिवर्धन सबंधी अध्ययन (Developmental studies), (३) ऊतकीय एव कोशकीय कार्यिकी (Histo and cyto physiology), (४) ऊतकीय एवं कोशकीय रसायन (Histo and cyto chemistry) तथा अध सूक्ष्मदर्शी रचनाएँ (Submicroscopic structure) एव ऊतकीय शरीर क्रियात्मक कोशकीय कार्यिकी के अतर्गत आकारकीय (Morphological and physiological) एव कार्यशीलता में सामजस्य का अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार ऊतकीय एव कोशकीय रसायन के अतर्गत आकारकीय रचनाओ की रासायनिक सरचना का ज्ञान प्राप्त करते हैं। अतिसूक्ष्मदर्शी रचनाओ का अध्ययन ऐसी सरचनाओं का वर्णन करता है जो साधारण प्रकाश द्वारा प्रकाशित सूक्ष्मदर्शी की दृश्य सीमा से परे हैं { ० २ म्यू (μ) के लगभग }।

[वि० श० भा०]

सूक्ष्मदर्शिकी (Microscopy) सूक्ष्मदर्शिकी भौतिकी का एक अभिन्न अग है। आज सूक्ष्मदर्शी का उपयोग कायचिकित्सा (Medicine), जीवविज्ञान (Biology), शैलविज्ञान (Petrology), मापविज्ञान (Metrology), क्रिस्टलविज्ञान (Crystallography) एव धातुओ और प्लास्टिक की तलाकृति के अध्ययन मे व्यापक रूप से हो रहा है। आज सूक्ष्मदर्शी का उपयोग वस्तुओ को देखने के लिये ही नही होता वरन् द्रव्यो के कणो के मापने, गणना करने और तौलने के लिये भी इसका उपयोग हो रहा है।

मनुष्य की प्रवृत्ति सदा ही अधिक से अधिक जानने और देखने की रही है, इसी से वह प्रकृति के रहस्यो को अधिक से अधिक सुलझाना चाहता है। हमारी इंद्रियो की कार्य करने की क्षमता सीमित है, और यही हाल हमारी आंख का भी है। इसकी भी अपनी एक सीमा है। बहुत दूर की जो वस्तु खाली आंख से दिखाई नहीं पड़ती वह दूरदर्शी से देखी जा सकती है या बहुत निकट की वस्तु का विस्तृत विवरण सूक्ष्मदर्शी से अधिक स्पष्ट देखा जा सकता है। यहाँ सूक्ष्मदर्शी के क्षेत्र में १८६५ ई० से अब तक जो प्रगति हुई है उसी का उल्लेख किया जा रहा है.

एकल उत्तल लेंस, जिसे साधारणत आवर्धन लेंस कहते हैं, सरलतम सूक्ष्मदर्शी कहा जा सकता है। इसे जेबी सूक्ष्मदर्शी भी कहते हैं। सरल सूक्ष्मदर्शी एक निश्चित दूरी पर स्थित दो उत्तल लेंस के संयोजन से बना होता है। पदार्थ की तरफ लगे लेंस को अभिदृश्यक (objective) लेंस, और आंख के पास लगे लेंस को अभिनेत्र लेस (eye-lens) कहते हैं। ऐसे सूक्ष्मदर्शी का दृष्टिक्षेत्र (field of view) सीमित होता है। इसमे सुधार की आवश्यकता है। अभिनेत्र लेंस में एक लेंस जोडने से क्षेत्र बढ़ जाता है और गोलीय एव वर्णीय वर्णविपथन (Chromatic aberration) से उत्पन्न दोष कम हो जाते हैं। ऐसे सूक्ष्मदर्शी को संयुक्त सूक्ष्मदर्शी या प्रकाश सूक्ष्मदर्शी या परपरागत प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी कहते हैं।

यद्यपि प्रकाश के परावर्तन, अपवर्तन और रैखीय सचरण के नियम ग्रीक दार्शनिको को ईसा से कुछ शताब्दियो पूर्व से ही ज्ञात थे पर आपतन (incidence) कोण और अपवर्तन कोण के ज्या के नियम का आविष्कार सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक नही हुआ था। हालैंड के स्नेल और फ्रास के देकार्त (Descartes, १५५१–१६५० ई०) ने अलग अलग इसका आविष्कार किया। १००० ई० के लगभग अरब ज्योतिर्विद अल्हैजैन ने परावर्तन और अपवर्तन के नियमो को सुत्रबद्ध किया पर ये ज्या में नही थे, वरन् लंब दूरी में थे। ऐसा कहा जाता है कि उसके पास एक बड़ा लेंस था। सूक्ष्मदर्शी का सूत्रपात यहीं से होता है। सूक्ष्मदर्शी निर्माण का श्रेय एक वनस्पतिज्ञ जेकारियोस जोन्मिड्स (१६००) को है। हाइगेंज (Higens) के अनुसार आविष्कार का श्रेय कॉर्नीलियस ड्रेबल (१६०८ ई०) को है।

ऐबे (Abbe) के समय तक सूक्ष्मदर्शी की परिस्थति ऐसी ही रही। १८७० ई० में ऐबे ने सूक्ष्मदर्शिकी की सुदृढ नींव डाली। उन्होने सुप्रसिद्ध तैलनिमज्जन तकनीकी निकाली। इससे सर्वोत्कृष्ट वैषम्य (Contrast) और आवर्धन प्राप्त हुआ। पर जहाँ तक परासूक्ष्मकणों (ultramicroscopic particles) के अध्ययन का सबध था, वैज्ञानिक अभी भी अपने को असहाय अनुभव कर रहे थे। १८७३ ई० में ऐबे ने अनुभव किया कि सूक्ष्मदर्शी को चाहे कितनी ही पूर्णता प्रदान करने का प्रयत्न किया जाय किसी पदार्थ में उसके कणों की सूक्ष्मता को एक सीमा तक ही देखा जा सकता है। केवल आंखो से परमाणु या अणु को देखना असभव है क्योंकि हमारे नेत्रों द्वारा सूक्ष्म वस्तुओ को देखने की एक सीमा है। यह सीमा उपकरण की अपूर्णता के कारण ही नही परंतु प्रकाश तरगो (रग) की प्रकृति के कारण भी है जिनके प्रति हमारी आंख सवेदनशील है। यदि हमे अणुओ को देखना है तो हमारे जैविकीविदों को एक ऐसे नए किस्म के नेत्रो

सरचनाओं के बाहरी सतह पर आवरण के रूप में तथा उनकी गुहाओं एवं नलियो में भीतरी स्तर के रूप में वर्तमान रहती है। इसके अतिरिक्त 'ग्रथि कोशिका' (Glandular cells) के रूप में यह ग्रंथियो की रचना में भी भाग लेता है। इसकी उत्पत्ति बाह्य त्वचा (Ectoderm) या अंतस्त्वचा (Endoderm) से होती हैं तथा साधारणत. इसकी कोशिकाएँ एक ही पक्ति में स्थित रहती हैं। ऐसी एकस्तरीय उपकला को 'सरल उपकला' (Simple epithelium) कहते हैं। परंतु कभी कभी इसकी कोशिकाएँ अनेक पक्तियो में बद्ध रहती हैं, जिन्हें 'स्तरित उपकला' (Stratified epithelium) कहते हैं।

अन्य ऊतको की अपेक्षा उपकला में कोशिकाओ की सख्या अधिक होती है। ये अति सघन रूप में अतराकोशिका द्रव्य द्वारा जुडे रहते हैं। उपकला झिल्ली द्वारा अपने नीचे की सरचनाओं एव ऊतको से सबद्ध रहती है। उपकला में रक्तवाहिनियाँ नही होती, इसलिये इसका पोषक तत्व लसीका (Lymph) द्वारा ही प्राप्त होता है।

उपकला ऊतक मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं —

(क) सरल उपकला।

(ख) स्तरित उपकला।

(ग) अस्थायी (Transitory) उपकला।

सरल उपकला के मुख्य प्रकार हैं — शल्की उपकला, स्तभाकार उपकला, ग्रंथीय उपकला, पक्ष्माभिकामय उपकला, सवेदी उपकला, वर्णक उपकला एवं भ्रूणीय उपकला।

(२) संयोजी ऊतक (Connective tissue) — संयोजी ऊतक में अतरकोशिकीय द्रव्य अधिक होते हैं। इस ऊतक का मुख्य कार्य अन्य ऊतको को सहारा देना तथा उन्हें आपस में संयुक्त करना है। उपास्थि, अस्थि तथा रुधिर सभी इसी प्रकार के ऊतक हैं। रुधिर को तरल संयोजी ऊतक कहते है।

(३) पेशी ऊतक (Muscular tissue) — शरीर के मासल भाग पेशी ऊतक द्वारा बने होते हैं। इसमें अनेक लबी ततु के समान कोशिकाएँ सबद्ध रहती हैं। ये कोशिकाएँ संकुचनशील होती हैं, जो तंतुओं को फैलने और सिकुडने की क्षमता प्रदान करती हैं। इसके तीन प्रकार होते हैं —

(क) अरेखित पेशी (Unstriped muscle) — इसे अनैच्छिक पेशी भी कहते हैं, क्योंकि इसकी क्रिया जतु की इच्छा पर निर्भर नही होती। आहारनाल, रक्तवाहिनियो, फेफडो, पित्ताशय आदि की दीवारो में इस प्रकार के पेशी ऊतक मिलते हैं। इनकी कोशिकाएँ सरल, लबी, तर्क्वाकार एवं अरेखित होती हैं।

(ख) रेखित (Striped) पेशी — शरीर की अधिकाश पेशियाँ रेखित होती हैं। इनकी क्रिया जंतु की इच्छाशक्ति पर निर्भर करती है। रेखित पेशी के प्रत्येक ततु की रचना लबी तथा बेलनाकार कोशिकाओ द्वारा होती है। इनमे शाखाएँ नही होती तथा केंद्रको की संख्या अधिक होती है। रेखित पेशी में एकातर रूप में गहरे एवं हल्के रंग की अनेक अनुप्रस्थ पट्टियाँ स्थित रहती हैं।

(ग) हृत्पेशी (Cordiac muscle) — हृदय के पेशीतंतु मे रेखित एवं अरेखित दोनो प्रकार के ततुओ के गुण वर्तमान होते हैं। इनमें अनुप्रस्थ पट्टियाँ तो होती हैं पर ये अरेखित पेशियो के सदृश शाखामय एवं एक ही केंद्रकवाली होती हैं। इनकी क्रिया अरेखित पेशियो के समान ही होती है।

तंत्रिका ऊतक (Nervous tissue) — इस प्रकार के ऊतक तन्त्रिकातंत्र (Nervous system) के विभिन्न अगो की रचना करते हैं। सवेदनशीलता के लिये इस ऊतक की रचना में तन्त्रिका कोशिकाएँ (Nerve cells) तथा तन्त्रिका ततु दोनो ही भाग लेते हैं। तन्त्रिका कोशिकाएँ प्रायः अनियमित आकार की होती हैं, तथा इनके मध्य मे बडा सा केंद्रक (Nucleus) होता है। प्रत्येक तंत्रिका कोशिका से बाहर की ओर सूक्ष्म प्रवध निकलते हैं, जो जीवद्रव्य (Protoplasm) के बने होते हैं।

शरीर के विभिन्न अंगो के निर्माण के लिये ये ऊतक विभिन्न प्रकार से सयुक्त होकर उन्हे अखंडता प्रदान करते हैं। अतः विभिन्न अगो की सूक्ष्म रचना एवं उनकी क्रियाओ के अध्ययन से किसी जंतु की आतरिक रचना का विस्तृत ज्ञान हो जाता है।

सूक्ष्म ऊतक विज्ञान के अंतर्गत हस्त लेंसो (Hand lens) की सहायता से देखी जा सकनेवाली सूक्ष्म रचनाओं से लेकर एलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोप (Electron Microscope) की दृश्य सीमा से बाहर की सरचनाओ के भी अध्ययन किए जाते हैं। इस कार्य के लिये अनेक प्रकार के यत्र प्रयुक्त किए जाते हैं जैसे — एक्स-रे यूनिट्स (X-ray units), "एब्सोर्पशन माइक्रोस्कोप" (Absorption-microscope), "एलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोप" (Electron microscope), "पोलराइजेशन माइक्रोस्कोप" (Polarization microscope), "डार्क फील्ड माइक्रोस्कोप" (Dark field microscope) "अल्ट्रावायलेट माइक्रोस्कोप" (Ultra violet microscope), विज़िब्लि लाइट माइक्रोस्कोप (Visible light microscope), "फेज कट्रास्ट माइक्रोस्कोप" (Phase contrast microscope), "इंटरफेरेंस माइक्रोस्कोप" (Interference microscope) तथा "डिसेक्टिंग माइक्रोस्कोप" (Disecting microscope) आदि।

प्राचीन काल मे सूक्ष्म ऊतक विज्ञानवेत्ता अभिनव (Fresh) वस्तुओं की परीक्षा के लिये उन्हे सूचीवेधन (Teased) कर या हाथो द्वारा ही तराशकर, खुरचकर या उसे फैलाकर (Smear) यथासभव पतला बना डालते थे, जिससे उन्हें पारगत प्रकाश (Transmitted light) द्वारा सूक्ष्मदर्शी से देखा जा सके। तत्पश्चात् "माइक्रोटोम" (Microtome) का आविष्कार हुआ, जिसकी सहायता से पतले से पतले खंड, १ "म्यू" (1μ) की मोटाई की (१ म्यू = $\frac{1}{1000}$ मिमी) काटे जा सकते हैं। अब तो १ "म्यू" से भी अधिक पतले खंड काटे जा सकते हैं।

जिस समय "माइक्रोटोम" का प्रयोग प्रारभ हुआ, लगभग उसी समय ऊतकों के "परिरक्षण" (preservation) एवं आकार प्रतिधारण (To retain structure) के लिये कई प्रकार के स्थायीकर (Fixative) रसायनको का भी आविष्कार हुआ। परंतु इन

है पर अवर्णता (achromatism) और अधिक क्रियात्मक दूरी का इसमें लाभ होता है।

चूँकि क्वार्ट्ज २०००A° तक विकिरण का अवशोषण नही करता इसलिये उस सूक्ष्मदर्शी से जिसमें क्वार्ट्ज लेंसो का उपयोग होता है, कम से कम विभेदन दूरी १,०००A° (१०⁻⁵m) प्राप्त होगी अत इस प्रकार के विन्यास के साथ परावैगनी विकिरण के उपयोग से 'परावैगनी सूक्ष्मदर्शी' का निर्माण होता है।

यदि सामान्य प्रकाशसूक्ष्मदर्शी का उपयोग छोटी वस्तुओं द्वारा बिखरे विकिरण को एकत्र करने के लिये होता है तो इस प्रकार की व्यवस्था को परासूक्ष्मदर्शी (ultramicroscope) कहते हैं।

(१) आपतित प्रकाश को वस्तु तक सीधे पहुंचने से रोक दिया जाता है। यह बिखरित या विवर्तित (Scattered or diffracted) प्रकाश द्वारा निर्मित प्रतिबिंब निमज्जित नही करता। इसे धुँधला पृष्ठाधार प्रदीप्ति कहते हैं।

(२) इस सूक्ष्मदर्शी से परासूक्ष्मदर्शी कणों के व्यास को आसानी से नापा जा सकता है।

(३) वस्तु के स्थान का अनुमान बिखरित विकिरण (किरण-पुंज) की चमक पर निर्भर करता है।

(४) यदि प्रकाशस्रोत की चमक वैसी ही हो जैसी सूर्य के तल पर होती है तो साधारण अणु भी देखे जा सकते हैं।

कला वैषम्य सूक्ष्मदर्शी में प्रकाशव्यवस्था प्रो० जेनिक (१९४२ ई०, जर्मनी) ने सक्ष्मदर्शी में कला वैषम्य प्रदीप्ति का उपयोग किया। इस तकनीकी को कला वैषम्य सूक्ष्मदर्शिकी (Phase Contrast Microscopy) कहते थे। यह रगहीन विशेषत पारदर्शक पदार्थों की सरचना दिखाने की विधि है। विभिन्न सरचनाओ के कारण उनमे क्रमभग देखा जाता है, जैसे मेढक के यकृत मे। वैषम्य को सुधारने के लिये जैविकीविद रजकों की सहायता लेते हैं। प्राय. वैषम्य वर्ण फिल्टर से ऐसा किया जाता है। ध्रुवित प्रकाश से कुछ ही किस्म के क्रिस्टलों का विश्लेषण किया जा सकता है पर कलावैषम्य से सब प्रकार के क्रिस्टलों का अध्ययन किया जा सकता है। इस तकनीकी में अभिरजक के रूप में कृत्रिम वर्णों का उपयोग नहीं होता। अभिरजन में दोष यह बताया जाता है कि यद्यपि अभिरजक जीवो या कोशिकाओ को नष्ट नही करता है, तथापि ऐसा नही कहा जा सकता कि वह जीवों या कोशिकाओं को बिल्कुल प्रभावित नहीं करता। कला-वैषम्य-विधि का लाभ यह है कि प्रदीप्ति जो प्रत्येक सूक्ष्मदर्शी में आवश्यक है, जीव को देखने के लिये और कुछ करना नहीं पड़ता।

कला वैषम्य सूक्ष्मदर्शी में सूक्ष्मदर्शी सामान्य किस्म का ही रहता है। इसमें केवल यह नवीनता रहती है कि एक नवीन प्रकाशमय युक्ति जोड दी जाती है। प (P) एक कांच का प्लेट है जिसमे एक वलयाकार खाँचा (groove) है। प्लेट पर कैलसियम फ्लुओराइड का पारदर्शक लेप चढा रहता है। लेप की मोटाई एक सी रहती है। निर्वात मे वाष्पन द्वारा लेप चढ़ाया जाता है। लेप की मोटाई ठीक इतनी रहती है कि खाँचा और प्लेट के अन्य भाग द्वारा पारित प्रकाश के बीच के समय का अतर कपन का चतुर्थांश (कला के ९०° परिवर्तन) रहे। द (D) पर्दा है जिसमें एक वलयाकार काट (Cut) होती है जिससे अभिदृश्यक मे उतना प्रकाश पारित होता है जितना कलापट्ट के खाँचे में भरेगा। वस्तु द्वारा बिखरित और विवर्तित प्रकाश खांचे द्वारा पारित नही होता और यह प्रकाश जब प्रतिबिंब पर पहुँचता है, तब वह स्रोत से सीधे पहुंचे प्रकाश से मिला हुआ नही होता है और व्यतिकरण चित्र (Interference Pattern) बनता है। अभिनेत्रक में यही प्रतिबिंब दिखाई पडता है। वस्तु के विभिन्न अग अपवर्तनाक के अनुसार प्रकाश मे विभिन्न कलातर प्रदर्शित करते हैं अत अभिनेत्र में दिखाई पडनेवाला प्रतिबिंब वस्तु का अपवर्तनांक चित्र होता है।

चित्र प्रकाश और इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की तुलना — यह सूक्ष्मदर्शी १९५२ ई० तक प्रयोग के लिये उपलब्ध हो गया। १९५२ ई० में इस उपलब्धि के लिये प्रो० ज़ेनिक (Zerniack) को नोबेल पुरस्कार मिला। डाइसन (Dyson) ने १९५१ ई० में इस समस्या को भिन्न रूप से सुलझाया जिसके फलस्वरूप उन्होने व्यतिकरण सूक्ष्मदर्शी का निर्माण किया जिसमें परपरागत कलावैषम्य सूक्ष्मदर्शी से कुछ श्रेष्ठता थी। इसमें वस्तु को कांच के दो अर्धरजतित पट्टो के मध्य में दबा दिया जाता है और उसे एक विशेष दपण प्रणाली से इस प्रकार देखा जाता है कि कुछ प्रकाश अभिनेत्रक में बिना वस्तु से पारित हुए सीधा चला जाय और शेष प्रकाश वस्तु से होकर जाय। इस प्रकार उत्पन्न व्यक्तिकरण फिंज वस्तु की अपवर्तनाक सरचना को व्यक्त कर देता है।

वस्तुत. दो प्रकार की यह प्रदीप्ति धुँधली पृष्ठभूमि और कला-वैषम्य मानव के लिये एक बडा महत्व का साधन है। धुँधली पृष्ठभूमि प्रदीप्ति अत्यत सूक्ष्म कणो को देखने में उपयोगी सिद्ध हुई है और कला वैषम्य प्रदीप्ति से प्रकाशीय घनत्व में न्यूनतम परिवर्तन जानने की तकनीकी की सभावना बढ़ गई है जिससे प्रतिबिंब की व्याख्या बडी आसानी से की जा सकती है।

हम देखते हैं कि चालीस वर्ष पूर्व के सूक्ष्मदर्शीविदो की अनेक आकाक्षाएँ पूरी हो गई हैं। इसका यही अंत नही है क्योंकि किसी शोध का अत नही होता और यही बात सूक्ष्मदर्शिकी के लिये भी है और आवर्धन क्षमता के विभेदन क्षमता की ऊपर दी गई सीमा की वृद्धि के प्रयास अब भी हो रहे हैं। नए किस्म के कांच और प्लास्टिक के उपयोग से सूक्ष्मदर्शिकी की तकनीकी में और भी प्रगति होना अनिवार्य है।

इन सब सूक्ष्मदर्शियो से, जिनका वर्णन किया गया है, केवल विस्तार में ही विभेदन प्राप्त किया जा सकता है। सूक्ष्मदर्शिकी की और शाखा है जो बडी शानदार और रोचक है। यह प्रकाश विभेदन सूक्ष्मदर्शिकी है (टोवोनस्की, १९४८)। इसके द्वारा गहराई में भी विभेदन मालूम किया जा सकता है। यह गहराई में विभेदन करने में उत्कृष्ट सिद्ध हुआ है। यह प्रकाशीय और व्यतिकरण-मापीय तकनीकी है जिसे प्रकाश कट (Light cut), प्रकाश प्रोफाइल (Light profile), बहुलित किरण पुंज (Multiple

का विकास करना होगा जो उन तरंगो को ग्रहण करें जो हमारे वर्तमान साधारण नेत्रो, या दृष्टितंत्रिका को सुग्राह्य होनेवाली तरंगो की अपेक्षा हजारों गुना छोटी हैं।

वास्तव में किसी वस्तु मे स्थित दो निकटवर्ती विंदुओ को कभी भी अलग पहचाना नही जा सकता है यदि उस प्रकाश का तरगदैर्घ्य जिसमें उन विंदुओं का अवलोकन किया जाता है उन विंदुओ के बीच की दूरी के दुगने से अधिक न हो। इस प्रकार से यह उनके विलगाव को सीमित कर देता है। इसे विभेदन (resolution) की सीमा कहते हैं। गणित में इसे निम्नलिखित सबध द्वारा व्यक्त किया जाता है।

विभेदन या पृथक्करण की सीमा $= \frac{\lambda/2}{N.A.}$

जहाँ N A. सख्यात्मक द्वारक है और $N\ A = \mu \sin\theta$। यहाँ μ वस्तुदूरी (object space) का अपवर्तनाक है। θ वह कोण है जो रिम किरण (rim-ray) प्रकाशिक अक्ष के साथ वनाती है। इस प्रकार दृष्टिविकिरण का विचार करने से अल्पतम विभेदन दूरी ३००० A° (3×10^{-5} सेमी) के लगभग होती है। सवसे छोटी पराबैंगनी और अवरक्त किरणो के लिये यह सीमा क्रमश. १५०० A° और ३८५० A° के लगभग होगी जहाँ १ A° = १०^{-८} सेमी०।

गत चालीस वर्षों में सूक्ष्मदर्शिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। आइए हम अपने को ४० वर्ष पूर्व के सूक्ष्मदर्शिकीविद् के रूप में सोचें और उन सुधारो पर विचार करें जो हम उस समय करना चाहते थे। साधारणत. हम अपनी आशाओ को चार वातो पर केंद्रित करते हैं :

(१) उच्चतर आवर्धन प्राप्त करना,
(२) अधिकतम विभेदनक्षमता प्राप्त करना,
(३) अधिक क्रियात्मक दूरी प्राप्त करना तथा
(४) उत्तम वैषम्य या पर्याप्त दृश्यता प्राप्त करना।

अव हम विचार करेंगे कि गत चालीस वर्षों के विकास से इन महत्वपूर्ण आवश्यकताओ की कितनी पूर्ति हुई। उपर्युक्त सुधार या कठिनाइयो का वस्तु की प्रकृति (अपारदर्शी या पारदर्शी), प्रदीप्ति के प्रकार (विकिरण) और फोटोग्राफी तकनीकी (फिल्म या प्लेट और प्रस्फुटक के प्रकार के सदर्भ में विचार करना उचित होगा। उपर्युक्त आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मदर्शी अभिकल्पित किए गए जिनमे छोटे से छोटे तरगदैर्घ्य के विकिरण का प्रयोग किया गया। हम देख चुके हैं कि लघुतम तरगदैर्घ्य विकिरण का अर्थ है उच्चतर विभेदन क्षमता।

रंटजेन (Roentgen) ने सन् १८९५ में एक्स किरण का आविष्कार किया। परतु सन् १९१२ तक एक्स किरण (X-ray) की तरंगप्रकृति का कोई पता नहीं था जव तक वान लाउए (Von Laue) ने उसे सिद्ध नही किया। अव यह आशा हुई कि एक्स-रे सूक्ष्मदर्शी वनाया जा सकता है। अतः उस समय यह विचार त्याग दिया गया।

कुछ वर्षो वाद १९२३ ई० में द ब्राग्ली (De Broglie) ने इलेक्ट्रॉन की तरंगप्रकृति को निश्चित किया और न्यूयार्क में १९२७ ई० में डेविसन (Davission) और जर्मर (Germer) ने तथा ऐवर्डीन में जी० पी० टामसन (G. P. Thomson) ने १९२८ ई० में उसकी पुष्टि की। इलेक्ट्रॉन के किरणपुंज भी उपयुक्त विद्युत् या चुवकीय क्षेत्र द्वारा मोड़े जा सकते हैं। ऐसे सूक्ष्मदर्शी जिन्हें सफलतापूर्वक उपयोग में लाया जा सकता था १९४७ ई० में नोल (Knovl), रस्क (Rusk) और ब्रुख (जर्मनी) ने प्रस्तुत किए। इस विकिरण का तरगदैर्घ्य निम्नलिखित सवध द्वारा व्यक्त किया जाता है।

$$\lambda = \frac{h}{m\,v} = \frac{12.24 \times 10^{-8}}{\sqrt{V}} \text{ सेमी}$$

यहाँ h प्लैंक का नियताक है, m इलेक्ट्रॉन का द्रव्यमान और v वेग हैं। वेग वोल्टता का फलन है, जो इलेक्ट्रॉन किरणपुज को त्वरित करने के लिये प्रयुक्त होता है। इस सूक्ष्मदर्शी से १० A° तक विभेदन सभव था और इसकी आवर्धन क्षमता बहुत अधिक थी। इसके द्वारा 1.6×10^{-8} मिमी विस्तार की वस्तुएँ देखी जा सकती हैं। निस्संदेह यह बडी ठोस प्रगति है और इसके साथ साथ अनेक नए आविष्कार जुड़े हुए हैं। आज इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शिकी की अपनी अनेक तकनीकियाँ हैं।

उच्च ऊर्जा इलेक्ट्रॉन की भाँति लघुतरंगदैर्घ्य के साथ साथ एक्स किरणो में वेधनक्षमता बहुत अधिक होती है और वे कम शीघ्रता से अवशोषित भी होती हैं। अत छोटी अपारदर्शी वस्तुओ की आतरिक सरचना ज्ञात करने में एक्स किरणें प्रयुक्त की जा सकती हैं। एरेनवेर्ग (Ehrenberg) ने १९४७ ई० में पहला एक्स किरण या छायासूक्ष्मदर्शी निकाला और १९४८ ई० में किक पैट्रिक (Kink Patrick) और बेयज (Baez) ने उसका सुधार किया। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की तरह यहाँ निर्वात की आवश्यकता नही होती। अच्छे प्रतिविब के लिये केवल सूक्ष्म छिद्र (Pin hole) का आवश्यकता होती है। इसका अर्थ है कि इससे कम विकिरण प्रवेश करता है और इसीलिये उद्भासन बहुत वड़ा होता है। पीछे चित्र का वड़ा विस्तार करना पड़ता है जिसके लिये वहुत सूक्ष्म कणो का पायस आवश्यक होता है।

परावर्ती सूक्ष्मदर्शी — अव हम सामान्य दृश्य प्रकाशसूक्ष्मदर्शिकी की ओर देखें। इसके पूर्व कि हम उस दिशा मे हुई प्रगति पर विचार विमर्श करे, हमें उन आकाक्षाओ पर ध्यान रखना होगा जो ४० वर्ष पूर्व सूक्ष्मदर्शिकीविदो की थी। एकमात्र उपकरण से सब आवश्यकताओ की साथ ही पूर्ति सभव न थी। विभेदनक्षमता मे वृद्धि संख्यात्मक द्वारक (N.A.) के मान से सीमित हो जाती है जिसका मान १·५ से अधिक नही हो सकता। प्रणाली की आवर्धनक्षमता की वृद्धि की भी एक सीमा होती है। यह प्रयुक्त लेंसों की फोकस दूरियो का फलन (Function) है। आवर्धन फोकस दूरी का प्रतिलोम फलन है, अत. फोकस दूरी की कमी से आवर्धन वढ़ जाता है। पर साथ ही क्रियात्मक दूरी नष्ट हो जाती है।

ऐसे ही विचारो के कारण लेंस के स्थान में दर्पणो के उपयोग से परावर्ती सूक्ष्मदर्शी का निर्माण वर्च ने व्रिस्टल में १९४७ ई० में किया। सिद्धाततः परावैंगनी किरण तक विकिरण का उपयोग यहाँ संभव हो सका। इसका सांख्यिक द्वारक (N.A.) कम होता

क्षेत्रलेंस (fieldlens) और दूसरा लेंस अभिनेत्र लेंस कहलाता है। क्षेत्रलेंस का काम होता है अभिदृश्यक से आनेवाली किरणशलाका (Pencil of rays) को, उसकी अभिबिंदुकता अथवा अपबिंदुकता को कायम रखते हुए, उपनेत्र अक्ष (Eyepiece Axis) की ओर झुकाना। अभिनेत्रलेंस क्षेत्र लेंस से कुछ दूरी पर स्थित होता है और इसका काम क्षेत्रलेंस से आनेवाली किरणों को समांतर या लगभग समांतर बनाना होता है, जिससे सूक्ष्मदर्शी में बननेवाला अंतिम प्रतिबिंब नेत्रों पर जोर डाले बिना देखा जा सके। साधारणतया सूक्ष्मदर्शियों में हाइगन्स उपनेत्र (Huygens Eyepiece) का उपयोग होता है, किंतु जहाँ प्रेक्ष्य वस्तु का माप संबंधी विवरण प्राप्त करने की जरूरत होती है वहाँ रैम्सडन उपनेत्र (Ramsden's Eyepiece) काम में लाया जाता है।

प्रकाश संधारित्र (Condenser) — सूक्ष्मदर्शी से देखे जानेवाली वस्तुएँ सूक्ष्म आकार की होती हैं और उनपर पड़नेवाली सूर्य या लैंप की रोशनी काफी नहीं होती। वस्तु की प्रदीप्ति बढ़ाने के लिये उसके नीचे एक और लेंस व्यवस्था लगाई जाती है। इसका काम पदार्थ पर रोशनी संग्रह करना होता है। इस लेंस व्यवस्था को संधारित्र कहते हैं। यह संधारित्र दो प्रकार के होते हैं, (१) दीप्त क्षेत्र संधारित्र (Bright field condenser), (२) अदीप्त क्षेत्र संधारित्र (Dark field condenser)। प्रथम प्रकार के संधारित्र सूक्ष्मदर्शी में बननेवाले अंतिम प्रतिबिंब को दीप्त पृष्ठभूमि में दिखाते हैं। दूसरे प्रकार के संधारित्र प्रतिबिंब को चमकीली बनाकर उसे अदीप्त पृष्ठभूमि में दिखाते है। जीवविज्ञान संबंधी अध्ययन और गवेषणाओं में प्रयुक्त सूक्ष्मदर्शियों में प्राय अदीप्त क्षेत्र संधारित्र का उपयोग होता है।

सूक्ष्मदर्शी की आवर्धन क्षमता (Magnifying power) और विभेदन क्षमता (Resolving power) — एक अच्छे सूक्ष्मदर्शी का उद्देश्य सूक्ष्म वस्तु के आकार का आवर्धन करके उसके अवयवों को अलग अलग करके दिखाना होता है। आवर्धन का परिमाण सूक्ष्मदर्शी की आवर्धनक्षमता पर निर्भर करता है जब कि उसके अवयवों को अलग अलग करने का संबंध सूक्ष्मदर्शी के अभिदृश्यक की विभेदनक्षमता पर निर्भर करता है।

सूक्ष्मदर्शी की आवर्धनक्षमता 'M' निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त की जाती है

$$M = \frac{LD}{Ff}$$

L = सूक्ष्मदर्शी नलिका की लंबाई, D = स्पष्ट दृष्टि की न्यूनतम दूरी। F और f क्रमश अभिदृश्यक और उपनेत्र के फोकस अंतर हैं। अच्छे यौगिक सूक्ष्मदर्शी में बने हुए प्रतिबिंब का आकार प्रेक्ष्य वस्तु के आकार से ६००—१००० गुना बडा होता है। श्रेष्ठ सूक्ष्मदर्शियों का आवर्धन २५०० —३००० तक होता है। सूक्ष्मदर्शी की विभेदनक्षमता वस्तु के प्रतिबिंब में अलग अलग दिखाई देनेवाले दो अवयवों की न्यूनतम दूरी के रूप में मापी जाती है। यदि यह दूरी S हो तो आबे (Abbe) के अनुसार

$$S = \frac{0.5\lambda}{\mu \sin\theta}$$

λ = सूक्ष्मदर्शी में प्रवेश करनेवाले प्रकाश का हवा में औसत तरंगदैर्घ्य। μ = वस्तु दूरी का अपवर्तनांक।

θ उसका अपवर्तनांक तथा अभिदृश्यक के अक्ष और उसमें प्रवेश करनेवाली किरणों के बीच का महत्तम कोण

μ sin θ को सूक्ष्मदर्शी के अभिदृश्यक का आंकिक द्वारक (Numerical Aperture) कहते हैं।

तुल्यता सिद्धांत (Equivalence Theory) के अनुसार स्वतःदीप्त (self luminous) और परप्रदीप्त पदार्थों का आचरण सूक्ष्मदर्शी में प्रतिबिंब निर्माण की दृष्टि से एक सा होता है। इसके अनुसार,

$$S = \frac{0.61\lambda}{\mu \sin\theta}$$

S की मात्रा जितनी कम होती है विभेदनक्षमता उतनी ही अधिक मानी जाती है।

अतिसूक्ष्मदर्शी (Ultramicroscope) — कभी कभी जिन अत्यंत सूक्ष्म वस्तुओं के रूप और आकार का निरीक्षण करना असंभव होता है उनके अस्तित्व का पता लगाना ही उपयोगी होता है। यदि कोई प्रदीप्त कण, चाहे वह कितना ही छोटा हो, प्रचुर मात्रा में सूक्ष्मदर्शी की ओर प्रकाश का प्रकीर्णन (Scattering) करता हो तो एक चमकीले बिंदु के रूप मे उसका प्रतिबिंब दिखाई पडता है। हैनरी सीडेंटाफ तथा रिचर्ड जिगमंडी (Henry Siedentopf and Richard Zsigmondy) ने सन् १९०५ में उपर्युक्त तथ्य लेकर एक व्यवस्था निर्माण की जिसमे एक आर्कलैंप (Arclamp) द्वारा प्रक्ष्य कण पर सूक्ष्मदर्शी के अक्ष से समकोण की दिशा मे प्रकाश डाला जाता है। कण द्वारा परावर्तित (Reflected) और विवर्तित (diffracted) प्रकाश सूक्ष्मदर्शी में प्रवेश करता है और एक चमकीले बिंदु के रूप में उसका प्रतिबिंब बन जाता है। इस व्यवस्था द्वारा ०००००००८ सेंमी व्यास तक के पदार्थ दिखाई पड जाते हैं। इस सारी व्यवस्था को अतिसूक्ष्मदर्शी (Ultra microscope) कहते हैं।

इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी (Electron microscope) — यह अत्यंत सूक्ष्मपदार्थों के आवर्धित प्रतिबिंब निर्मित करने की इलेक्ट्रानीय (Electronic) व्यवस्था है। इसमें प्रकाशकिरणों के स्थान में इलेक्ट्रान किरणों का उपयोग होता है। इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी का मूल आधार दे-ब्रोगली (de-Broglie) का द्रव्यतरंगों (Matter waves) का आविष्कार है। दे-ब्रोगली के अनुसार इलेक्ट्रान तथा अन्य सूक्ष्म द्रव्यकण तरंगों के समान आचरण करते हैं। इस तरंग की लंबाई,

$$\lambda = \frac{h}{mv}$$

जहाँ h प्लांक (Planck) का नियतांक है और mv इलेक्ट्रान या द्रव्यकण का संवेग (momentum) है।

सन् १९२६ मे बुश (Busch) ने बतलाया कि अक्षीय समिति (Axial symmetry) युक्त विद्युत् और चुंबकीय क्षेत्र (Electric and magnetic fields) इलेक्ट्रान किरणों के लिये लेंस का काम करते हैं। उक्त तथ्यों को लेकर सन् १९३२ मे इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी के निर्माण का कार्य प्रारंभ हुआ। सन् १९४०-४५ में इलेक्ट्रान

Beam) फिजो (Fizeau) फ्रिंज (Fringes) और समान वर्णिक कोटि के फ्रिंज के नाम से जाना जाता है। इन पृष्ठीय छान बीन की सुग्राह्य विधियों में आणविक परिमाण तक सरलतापूर्वक विभेदन किया जा सकता है।

इन सूक्ष्मदर्शिकियों की कार्यकुशलता कभी भी सम्भव न होती यदि पृष्ठ पर धात्विक फिल्म को जमा कर अधिक परावर्तित बनाने की युक्ति न विकसित की गई होती। [आ० ए० श०]

सूक्ष्मदर्शी (Microscope) सूक्ष्मदर्शी एक प्रकाशीय व्यवस्था (Optical System) है जिसके द्वारा सूक्ष्म आकार की वस्तुओं के विस्तारित और आवर्धित प्रतिबिंब प्राप्त किए जाते हैं। कुछ वर्ष हुए एक नवीन प्रकार के सूक्ष्मदर्शी का निर्माण हुआ जिसमें प्रकाश किरणावलि के स्थान पर इलेक्ट्रान किरणावलि का उपयोग किया जाता है। इस सूक्ष्मदर्शी को इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी (Electron Microscope) कहते हैं। साधारण बोलचाल में सूक्ष्मदर्शी को खुर्दबीन भी कहते हैं।

सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार हालैंड निवासी जोनीडेस (Joannides) ने किया था। सूक्ष्मदर्शी ने मनुष्य को सूक्ष्म विश्व में प्रवेश करने की अभूतपूर्व क्षमता दी है। सैद्धांतिक अन्वेषणों में उपयोगी होने के अलावा सूक्ष्मदर्शी व्यावहारिक उपयोग की दृष्टि से भी विशेष महत्व रखता है। प्राणिविज्ञान (Biology), कीटाणुविज्ञान (Bactereology) और चिकित्साविज्ञान के विकास मे सूक्ष्मदर्शी का महत्वपूर्ण योग है। कारखानों में भी रेशों इत्यादि की परीक्षा मे सूक्ष्मदर्शी का उपयोग होता है। सूक्ष्मदर्शी चार प्रकार के होते हैं —

१—सरल सूक्ष्मदर्शी (simple microscope) अथवा आवर्धक।
२—यौगिक सूक्ष्मदर्शी (compound microscope)
३—अति सूक्ष्मदर्शी (ultramicroscope)
४—इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी (electron microscope)

सरल सूक्ष्मदर्शी — यह एक एकाकी उत्तल लेंस होता है अथवा इसमे ऐसी लेंस व्यवस्था होती है जो एकाकी उत्तल लेंस की तरह आचरण करती है। इसको आवर्धक भी कहा जाता है।

सरल सूक्ष्मदर्शी द्वारा आवर्धित प्रतिबिंब निर्माण प्रदर्शित करता है। जिस वस्तु का आवर्धित प्रतिबिंब प्राप्त करना होता है उसे आवर्धक लेंस के फोकस के निकट किंतु लेंस की ओर हटाकर रखा जाता है।

सरल सूक्ष्मदर्शी द्वारा प्राप्त आवर्धन M निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जाता है।

$$M = \frac{10}{f} + 1$$

अंक १० स्पष्ट दृष्टि की न्यूनतम दूरी (least distance of distinct vision) को इंचों में व्यक्त करता है तथा f इंचों में आवर्धक लेंस का फ़ोकस अंतर है।

गोलीय विपथन (Spherical aberration), वर्ण विपथन (Chromatic aberration), अविंदुकता (Astigmatism), विकृति (Distortion) और वक्रता (Curvature) प्राय. प्रतिबिंबों के दोष होते हैं जो उनकी [illegible] लाते हैं। अच्छे आवर्धक में उक्त दोष न्यूनतम मात्रा में होने चाहिएँ। कुछ अच्छे आवर्धकों के नाम नीचे दिए जाते हैं ;

१. काडिंगटन आवर्धक (Coddington magnifier) — यह उभयोत्तल (double convex) लेंस होता है। इसकी पर्याप्त मोटाई होती है, जिसके मध्य में एक खांच (Groove) होती है। इस आवर्धक द्वारा निर्मित प्रतिबिंब अविंदुकता और वर्णविपथन से दोषमुक्त होता है।

२. हेस्टिंग्स का त्रिक लेंस (Hasting's triplet) — इसमे तीन घटक (Component) लेंस होते हैं। दो फ्लिंट लेंसों के मध्य में एक युगलोत्तल लेंस सीमेंट किया हुआ होता है। यह आवर्धक वर्णविपथन, अविंदुकता और वक्रता के दोष से रहित होता है।

यौगिक सूक्ष्मदर्शी — यौगिक सूक्ष्मदर्शी की प्रकाशकीय व्यवस्था के निम्न प्रधान अंग हैं .

१. अभिदृश्य लेंस या अभिदृश्य लेंस व्यवस्था।

२. उपनेत्र (Eyepiece)।

यौगिक सूक्ष्मदर्शी दो प्रकार के होते हैं, (१) एकाकी अभिदृश्य सूक्ष्मदर्शी (Single objective microscope), (२) द्वि अभिदृश्य सूक्ष्मदर्शी (Double objective microscope)। द्वितीय प्रकार का सूक्ष्मदर्शी दो एकाकी सूक्ष्मदर्शियों का युग्म होता है।

सूक्ष्मदर्शी अभिदृश्य — अच्छे सूक्ष्मदर्शी अभिदृश्य (Objective) का साधारणतया गोलीय विपथन और वर्णविपथन के दोष से रहित होना आवश्यक है। प्रथम दोष प्रतिबिंब की स्फुटता में कमी करता है, दूसरा दोष प्रतिबिंब को रंगीन बना देता है। गोलीय विपथन दूर करने के लिये एक दीर्घ अपवर्तक अवतल लेंस और एक लघु अपवर्तक उत्तललेंस का युग्म बनाया जाता है। वर्णविपथन हटाने के लिये एक दीर्घ वर्णविक्षेपण (High Dispersion) के अवतल लेंस को लघु वर्णविक्षेपण (Low Dispersion) के उत्तल लेंस के साथ मिलाया जाता है। दीर्घ अपवर्तनांक (High Refractive Index) के लेंसों का वर्णविक्षेपण अधिक और लघु अपवर्तनांक के लेंसों का वर्ण विक्षेपण कम होता है। इस प्रकार एक ही लेंस व्यवस्था को वर्ण विपथन और गोलीय विपथन के दोषों से रहित बनाया जा सकता है। कभी कभी अधिक अवर्णकता और अगोलीयता प्राप्त करने के लिये सूक्ष्मदर्शी अभिदृश्यक को १० लेंसों तक की व्यवस्था के रूप में बनाया जाता है। इस प्रकार की एक अभिदृश्यक व्यवस्था को अंग्रेजी में अति अवर्णी अभिदृश्यक (Apochromatic objective) कहते हैं। श्रेष्ठ प्रकार के सूक्ष्मदर्शी अभिदृश्यक तैल निमज्जन (Oil immersion) किस्म के होते हैं। इस प्रकार के अभिदृश्यक काफी अंश तक विपथन और अन्य दोषों से रहित होते हैं।

सूक्ष्मदर्शी का उपनेत्र (Eyepiece) — उपनेत्र का मुख्य काम अभिदृश्यक द्वारा निर्मित वास्तविक प्रतिबिंब का आवर्धन करना होता है। एक साधारण उपनेत्र दो लेंसों का युग्म होता है, पहला लेंस

डी और कैल्सियम का ध्यान रखना चाहिए। जिन बच्चो को माँ का दूध उपलब्ध नही होता उनके खाने मे विटामिन डी ४०० से ७०० मात्रक प्रति दिन अलग से देना चाहिए। उपचार के लिये विटामिन डी २५०० मात्रक प्रति दिन कैल्सियम और कृत्रिम परावैगनी किरणो का व्यवहार आवश्यक चिकित्सा में है। अस्थियाँ अधिकतर रोग दूर होने तक स्वय ठीक हो जाती हैं अन्यथा उनकी चिकित्सा विशेषज्ञ द्वारा करानी चाहिए। [ह० बा० मा०]

सूखी धुलाई (Dry Cleaning) सामान्य धुलाई पानी, साबुन और सोडे से की जाती है। भारत में धोबी सज्जी मिट्टी का व्यवहार करते हैं, जिसका सक्रिय अवयव सोडियम कार्बोनेट होता है। सूती वस्त्रो के लिये यह धुलाई ठीक है पर ऊनी, रेशमी, रेयन और इसी प्रकार के अन्य वस्त्रों के लिये यह ठीक नही है। ऐसी धुलाई से वस्त्रो के रेशे कमजोर हो जाते है और यदि कपडा रगीन है तो रग भी फीका पड जाता है। ऐसे वस्त्रो को धुलाई सूखी रीति से की जाती है। केवल वस्त्र ही सूखी रीति से नही धोए जाते वरन् घरेलू सजावट के साज सामान भी सूखी धुलाई से धोए जाते हैं। सूखी धुलाई की कला अब बहुत उन्नति कर गई है। इससे धुलाई जल्दी तथा अच्छी होती है और वस्त्रो के रेशे और रगो की कोई क्षति नही होती।

शुष्क धुलाई में कार्बनिक विलायकों का उपयोग होता है। पहले पेट्रोलियम विलायक (नैपथा, पेट्रोल, स्टोडार्ड इत्यादि) प्रयुक्त होते थे। पर इनमें आग लगने की सभावना रहती थी, क्योकि ये सब बडे ज्वलनशील होते हैं। इनके स्थान पर अब अदाह्य विलायको, कार्बन टेट्राक्लोराइड, ट्राइक्लोरोएथेन, परक्लोरोएथिलीन और अन्य हैलोजनीकृत हाइड्रोकार्बनो का उपयोग होता है। ये पदार्थ बहुत वाष्पशील होते हैं। इससे वस्त्र जल्द सूख जाते हैं। इनकी कोई गध अवशेष नही रह जाती। रेशे और रगो को कोई क्षति नही पहुँचती और न ऐसे धुले कपडो में सिकुडन ही होती है। वस्त्र भी देखने में चमकीले और छूने में कोमल मालूम पडते हैं।

विलायको की क्रिया से तेल, चर्बी, मोम, ग्रीज और अलकतरा आदि घुलकर निकल जाते हैं। धूल, मिट्टी, राख, पाउडर, कोयले आदि के कण रेशों से ढीले पड़कर विलायको के कारण बहकर और निकलकर अलग हो जाते हैं। अच्छे परिणाम के लिये वस्त्रो को भली भाँति धोने के पश्चात् विलायकों को पूर्णतया निकाल लेना चाहिए। वस्त्रो की अतिम सफाई इसी पर निर्भर करती है। विलायको को निथारकर या छानकर या आसुत कर, मल से मुक्त करके बारबार प्रयुक्त करते हैं। साधारणतया वस्त्रो मे प्राय. ०·८ प्रतिशत मल रहता है।

शुष्क धुलाई मशीनो में सपन्न होती है। एक पात्र में वस्त्रो को रखकर उसपर विलायक डालकर, ऊँचे दाबवाली भाप से गरम करते हैं और फिर पात्र में से विलायक को बहाकर बाहर निकाल लेते हैं। कभी कभी वस्त्रो पर ऐसे दाग पडे रहते है जो कार्बनिक विलायको में घुलते नही। ऐसे दागो के लिये विशेष उपचार, कभी कभी पानी से धोने, रसायनकों के व्यवहार से, भाप की क्रिया द्वारा अथवा स्पैचुला से रगडकर मिटाने की आवश्यकता पडती है। अच्छा अनुभवी मार्जक (क्लीनर) ऐसे दागो के शीघ्र पहचानने में दक्ष होता है और तदनुसार उपचार करता है। धुलाई मशीन के अतिरिक्त धुलाई के अन्य उपकरणों की भी आवश्यकता पडती है। इनमें चिह्न लगाने की मशीन, भभके, पंप, प्रेस, मेज, लोहा करने की मशीनें, दस्ताने, रैक, टंबलर, धौंकनी, शोषित्र, शोषणकक्ष और सिलाई मशीन इत्यादि महत्व के हैं।

शुष्क धुलाई का प्रचार भारत में अब दिनों दिन बढ रहा है। पाश्चात्य देशो में तो अनेक सस्थाएँ हैं जहाँ धुलाई के सबध में प्रशिक्षण दिया जाता है और अनेक दिशाओ में अन्वेषण कराया जाता है। [स० व०]

सूचकाक्षर (Abbreviation) बोलने तथा लिखने में सुविधा और समय तथा श्रम की बचत करने के उद्देश्य से कभी कभी किसी बडे अथवा क्लिष्ट शब्द के स्थान पर उस शब्द के किसी ऐसे सरल, सुबोध एव सक्षिप्त रूप का प्रयोग किया जाता है जिससे श्रोताओं और पाठको को पूरे शब्द (या मूल शब्द) का बोध सरलता से हो जाए। शब्दो के ऐसे सक्षिप्त रूप को सूचकाक्षर (याने ऐब्रिविएशन, Abbreviation) कहते हैं।

बडे अथवा क्लिष्ट शब्दो को सक्षिप्त या सरल बनाने की इस क्रिया मे प्राय. मूल शब्द के प्रथम दो, तीन या अधिक अक्षर, और यदि मूल शब्द (नाम) कई शब्दो के मेल से बना हो तो उन शब्दो के प्रथम अक्षर लेकर उन्हें अलग अलग अक्षरो या एक स्वतत्र शब्द के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार बनाए गए सूचकाक्षरो का प्रयोग कभी कभी इतना अधिक होने लगता है कि मूल शब्द का प्रयोग प्रायः बिलकुल ही बद हो जाता है और सूचकाक्षर लिखित भाषा का अग बनकर उस मूल शब्द का रूप ले लेता है। इसका एक सरल उदाहरण 'यूनेस्को' है जो वस्तुतः 'यूनाइटेड नेशस एज्युकेशनल, साइटिफिक ऐंड कल्चरल आर्गेनिजेशन' इस लबे नाम में प्रयुक्त पाँच मुख्य शब्दों के प्रथम अक्षरो के मेल से बना है। इसी प्रकार अग्रेजी में एक बहुप्रचलित शब्द 'मिस्टर' (Mister) है, जिसे शायद ही कभी पूरे रूप मे लिखा जाता हो। जब कभी किसी भी प्रसग में उक्त शब्द लिखना होता है तो पूरा शब्द न लिखकर केवल उसके सूचकाक्षर Mr. से ही काम चला लिया जाता है। इसी शब्द का स्त्रीलिंग रूप 'मिसेज' या 'मिस्ट्रेस' भी कभी अपने पूरे रूप में न लिखा जाकर केवल सूचकाक्षर Mrs के रूप में ही लिखा जाता है।

प्राणिमात्र का स्वभाव है कि वह कठिन एव अधिक समयवाले कार्य की अपेक्षा सरल और कम समय वाले कार्य को अधिक पसद करता है। सूचकाक्षर भी मनुष्य की इसी सहज स्वाभाविक प्रकृति की देन कहे जा सकते हैं। विद्वानो तथा भाषाविशेषज्ञों का मत है कि सूचकाक्षरो की प्रथा आदि काल से चली आ रही है। सूचकाक्षरो के प्राचीन उदाहरण प्राचीन काल के सिक्को और शिलालेखो मे आसानी से देखे जा सकते हैं जबकि सिक्को तथा शिलालेखों पर स्थान की कमी तथा शिलालेखो पर लिखने के श्रम को बचाने के लिये भी शब्दो के सक्षिप्त रूपो या सूचकाक्षरो का प्रयोग किया जाता था। आधुनिक काल मे भी विविध देशो के सिक्को पर सूचकाक्षर देखे जाते हैं।

सूक्ष्मदर्शी विश्वसनीय रूप से सूक्ष्मातिसूक्ष्म कीटाणुओं और द्रव्य-कणों के अध्ययन का साधन बन गया। इस सूक्ष्मदर्शी द्वारा प्राप्त आवर्धन १०⁶ के लगभग तक हो सकता है। इसकी विभेदकता इलैक्ट्रान के तरंगदैर्घ्य पर निर्भर करती है। अभी कुछ दिन हुए, एक हीलियम आयन सूक्ष्मदर्शी का भी निर्माण हुआ है। हीलियम आयन की तरंगें इलैक्ट्रान की तरंगों से बहुत छोटी होती हैं। इस नए सूक्ष्मदर्शी की आवर्धन एवं विभेदन क्षमता इलैक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से अधिक है। [व० ला० जै०]

सूक्ष्ममापी (Micrometer) वह युक्ति है जिसका उपयोग सूक्ष्म-कोण एवं विस्तार मापने के लिये इंजीनियरों, खगोलज्ञों एवं यान्त्रिक विज्ञानियो द्वारा किया जाता है। यान्त्रिकी में सूक्ष्ममापी कैलिपर या गेज (gauge) के रूप में रहता है और इससे एक इंच के १०⁻⁴ तक की यथार्थ माप ज्ञात कर सकते हैं। प्राय. यह युक्ति सूक्ष्म कोणीय दूरियो को मापने के लिये दूरदर्शी में तथा सूक्ष्म विस्तार मापने के लिये सूक्ष्मदर्शी में लगी रहती है। यार्कशायर के विलियम गैसकायन (William Gascoigne) ने १६३९ ई० में सूक्ष्ममापी का आविष्कार किया। गैसकायन ने फोकस तल में दो सकेतक (pointer) इस तरह रखे की उनके किनारे एक दूसरे के समातर रहें। एक पेंच की सहायता से सकेतक पेंच के समातर विपरीत दिशाओ में गति कर सकते थे। पेंच के एक सिरे पर सूचक (index) लगा था, जो १४ भाग में बँटे डायल के परिक्रमण के अंश का पाठ्यांक ले सकता था। ओज़ूत (Auzout) और पीकार (Picard) द्वारा १६०० ई० में सूक्ष्ममापी में सुधार किए गए। इन लोगो ने सकेतक के स्थान पर रजत तार या रेशम का धागा प्रयुक्त किया। इनमें से एक स्थिर और दूसरा पेंच की सहायता से गतिशील रहता था। अधिक शुद्ध माप प्राप्त करने के लिये १७७५ ई० मे फोटाना (Fontana) ने उपर्युक्त तार या धागे के स्थान पर मकडी का जाल (Spider web) प्रयुक्त करने का सुझाव दिया। सन् १८०० में ट्रटन (Troughton) ने उपर्युक्त सुझाव को व्यवहृत किया।

प्रारभिक सूक्ष्ममापी दूरियो के मापन में व्यवहृत होते थे। स्थितिकोण (position angle) और दूरियो को मापने के लिये सूक्ष्ममापी का घूर्णन इस प्रकार हो कि तारो की चंक्रमणदिशा किसी स्थितिकोण में हो, इसके लिये विलियम हर्शेल (William Herschel) ने सर्वप्रथम १७७९ ई० मे एक युक्ति का आविष्कार किया। उद्दिगंशक आरोपण (altazimuth mounting) के कारण सूक्ष्ममापी का उपयोग सरल हो गया जब से विषुवतीय प्रकार का आरोपण (equatorial type of mounting) सामान्य हो गया है. तब से सूक्ष्ममापी का उपयोग सुविधापूर्ण हो गया है।

फाइलर सूक्ष्ममापी — युग्म तारो (double stars) के मापन में प्रयुक्त होनेवाले आधुनिक फाइलर सूक्ष्ममापी (Filar micrometer) में दो पेंच रहते हैं और दो सकेतको के स्थान पर समातर तार या मकडी का जाला रहता है। एक पेंच, सूक्ष्ममापी के सपूर्ण बक्स को जिसमें दोनों तार रहते हैं, चलाता है, जबकि समुख पेंच एक तार को दूसरे के सापेक्ष चलाता है। तारो (wires) के सपात का पाठ्यांक प्राप्त किया जाता है। जब सूक्ष्ममापी के सपूर्ण बक्स को चलाकर स्थिर तार को एक तारे पर लगाते हैं, तब दूसरा तारा सर्पी तार से द्विभाजित होता है। दूसरे पेंच से सलग्न सूक्ष्ममापी का पाठ्यांक दूरी जानने के लिये पर्याप्त होता है। आजकल अधिकांश मापन फोटोग्राफी से होता है और अब फाइलर सूक्ष्ममापी का उपयोग स्थितिकोणो तथा अंतरालों के मापने मे ही हो रहा है।

चल तार सूक्ष्ममापी (travelling wire micrometer) — यह तथा याम्योत्तर वृत्त (transit circle) की युक्ति परिमाण समीकरण (magnitude equation) तथा अन्य क्रमबद्ध अशुद्धियो को दूर करने में अत्यंत सफल सिद्ध हुई है। सामान्यत मूल प्रेक्षण में अब इस युक्ति का उपयोग हो रहा है। इस युक्ति को प्रयुक्त करने में प्रेक्षक गतिमान तारे के बिंब को सूक्ष्म तार या जाले से सतत द्विभाजित करने के लिये पेंच को सतत घुमाया करता है। पेंच के घूमने से तार और नेत्रिका (eyepiece) घूमते हैं, अतः दृष्टिक्षेत्र (field of view) के केंद्र मे द्विभाजित तारा प्रकट रूप से अचल रहता है। जब गतिमान फ्रेम (frame) निश्चित स्थिति में पहुँचता है, तब वैद्युत संपर्क होते हैं और जब तार और इस प्रकार तारा स्थितियों की श्रेणी में पहुँचता है तब का समय समयलेखी (chronograph) पर स्वयं अंकित हो जाता है।

वैज्ञानिक उपकरणो की अंशाकित मापनी का यथार्थ पाठ्यांक प्राप्त करने के लिये एक ही आधारभूत सिद्धात पर बने अनेक प्रकार के सूक्ष्ममापी आजकल व्यवहृत हो रहे हैं। [अ० ना० मे०]

सूखा रोग (Ricket) शरीर मे विटामिन डी की कमी के कारण होता है। विटामिन डी भोजन द्वारा और त्वचा पर सूर्य की बैंगनी किरणों के प्रभाव से शरीर को प्राप्त होता है। इसकी कमी से कैल्सियम और फास्फोरस को आतो से सोखने मे तथा उसके पश्चात् शरीर में चयापचय क्रिया का असतुलन होकर इन अवयवो की शरीर मे कमी हो जाती है। विटामिन डी की कमी जन्म से तीन वर्ष के वृद्धिकाल में विशेष रूप से पाई जाती है। शिशुरोगी, जो चल फिर नही पाता, प्रायः बेचैन रहता है। सिर पर, विशेषत सोते समय अधिक पसीना आता है, बार बार खाँसी और दस्त हो जाते हैं, इससे पोषणजन्य अरक्तता हो जाती है। खोपड़ी का अग्रभाग उभडा लगता है तथा उसका अस्थिशून्य स्थान भरता नही है। यही रोग का मुख्य चिह्न है। छाती पर पसली सधि का स्थान चौड़ा और मोटा हो जाता है। पेट बढ़ जाता है, लबी अस्थियो के सिरे मोटे हो जाते हैं तथा काड खोखले होने के कारण कमान की भाँति मुड जाते हैं। पेशियो में दुर्बलता आ जाती है, इससे बच्चा ठीक से चल नही पाता। यदि रुधिर में कैल्सियम की मात्रा अधिक कम हो जाए तो शिशु को आक्षेप (convulsions) भी आने लगते हैं। रोग का निश्चित निदान रक्त की परीक्षा कर निर्धारित किया जाता है।

रोग की रोकथाक के लिये सूर्य की रोशनी, भोजन में विटामिन

ऐसा भी आता है जब उनका अस्तित्व भी नहीं रह जाता। गत महायुद्ध काल मे यूरोप तथा अमरीका के अनेक सरकारी विभागो तथा सैनिक कार्यों के लिये विविध सूचकाक्षरों का प्रयोग किया जाने लगा था। युद्धकाल के बाद जब ये सरकारी कार्यालय और विभाग अनावश्यक हो जाने के कारण बंद कर दिए गए या उन विभागों का कार्य समाप्त हो गया तो उनके लिये प्रयुक्त किए जानेवाले सूचकाक्षरों की भी कोई उपयोगिता नहीं रह गई। फलत उस समय के अधिकाश सूचकाक्षर आज अज्ञात हो गए हैं।

अंग्रेजी भाषा में सूचकाक्षरों का प्रयोग १४ वी सदी से ही होने लगा था। १४ वी सदी में प्रचलित प्रसिद्ध सूचकाक्षर के उदाहरण के रूप में हम 'कैम' (Cajm) शब्द को ले सकते हैं जो कार्मेलाइटस (Carmelites), आगस्टिनियन्स (Augustinians), जेकोबियन्स (Jacobins) और माइनारिटीज् (Minorities) के लिये प्रयोग किया जाता था, तथा जो इन्हीं शब्दो के प्रथम अक्षरो को मिलाकर बना है। १७ वी सदी में इग्लैंड के इतिहास मे 'केबाल' (Cabal) नामक पार्लियमेंट प्रसिद्ध है। यह नाम उस समय की सरकार के पाँच मन्त्रियो क्लिफोर्ड (Clifford), आर्लिगटन (Arlington), बकिंघम (Buckingham), ऐशली (Ashley) और लाडरडेल (Lauderdale) के प्रथम अक्षरो को मिलाकर बनाया गया था। १९३० के बाद अमरीका में इस प्रकार के नाम (सूचकाक्षर) बनाने की प्रथा तेजी से फैली। इसका परिणाम यह हुआ कि ज्ञानविज्ञान के प्राय सभी आधुनिक विषयों में तो सूचकाक्षर प्रचलित हो ही गए, अमरीकी सरकार के प्राय प्रत्येक कार्यालय, विभाग, उपविभाग तक के लिये सूचकाक्षरो का प्रयोग किया जाने लगा। और तो और, अब तक यह प्रथा इतनी अधिक फैल चुकी है कि अमरीका की प्राय प्रत्येक छोटी बडी कपनी, विश्वविद्यालय, कालेज, सस्था, प्रतिष्ठान आदि पुरे नाम की अपेक्षा सूचकाक्षर के नाम से ही अधिक अच्छी तरह ज्ञात है। इस सबध में यह भी एक मनोरजक तथ्य ही कहा जाना चाहिए कि जिस देश को आधुनिक युग मे सूचकाक्षरों की वृद्धि करने का अधिकाश श्रेय है, उसका नाम भी अंग्रेजी मे पूरा न लिखा जाकर सूचकाक्षर (U S. A) के रूप में ही लिखा जाता है। इसी प्रकार उसकी राजधानी न्यूयार्क के लिये भी प्रायः N. Y ही लिखा जाता है। अमरीका में लोग कालेज ऑव दी सिटी ऑव न्यूयार्क को सी० सी० एन० वाई० (C C NY.) कहना अधिक सुविधाजनक समझते हैं। भारत मे भी अब शिक्षित समुदाय में काशी हिंदू विश्वविद्यालय पूरे नाम की अपेक्षा बी० एच० यू० (B H. U.) के नाम से अधिक अच्छी तरह जाना जाता है।

अमरीका और यूरोप के देशो में तो अब यह एक प्रथा सी बन गई है कि किसी भी कपनी, सस्था, एजेंसी आदि प्रतिष्ठान या प्रकाशन आदि का नामकरण करते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि उसके नाम में प्रयुक्त शब्दो के अक्षरो से कोई सरल, सुविधाजनक सूचकाक्षर बनाया जा सके। 'एस्कप' (Ascap = अमरीकन सोसायटी ऑव कपोजर्स, आथर्स एंड पब्लिशर्स (American Society of Composers, Authors and Publishers), 'लूलोप' (Lulop = लंदन यूनियन लिस्ट ऑव पीरियोडिकल्स (London Union List of Periodicals) आदि इसी प्रकार के सूचकाक्षरो के उदाहरण हैं।

अलग अलग विषयो के सूचकाक्षर भी अलग अलग प्रकार के हैं। पाश्चात्य संगीत को जब लिपिबद्ध करना होता है तो उसके लिये कुछ विशिष्ट सूचकाक्षरों का प्रयोग किया जाता है। चिकित्साजगत् मे प्रचलित 'टी० बी०' शब्द से तो अब सामान्य जन भी परिचित हैं। यह वास्तव में सूचकाक्षर ही है। गणित शास्त्र मे कुछ प्रतीक सूचकाक्षरों का कार्य करते हैं।—, +, ÷, =, ∴, × आदि प्रतीकों का परिचय पाठको को देना आवश्यक नही जान पडता। ये भी एक प्रकार के सूचकाक्षर ही हैं। खगोलविज्ञान, ज्योतिषशास्त्र, गणितशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, रसायनशास्त्र और सगीतशास्त्र आदि विषयो का कार्य तो बिना सूचकाक्षरो के चल ही नहीं सकता। रसायनशास्त्र में विविध रासायनिक तत्वों के नामो के लिये सूचकाक्षरो का प्रयोग होता है। ये सूचकाक्षर प्राय मूल अंग्रेजी शब्दो के प्रथम अक्षर ही होते हैं। जब दो तत्वों का नाम एक ही अक्षर से प्रारंभ होता है तो उनके सूचकाक्षरो में प्रथम दो अक्षरों का प्रयोग किया जाता है। कुछ तत्वो के लिये, विशेषकर जो तत्व अति प्राचीन काल से ज्ञात हैं, लैटिन नामों के प्रथम अक्षरो का भी प्रयोग होता है। उदाहरणत लोहा का सूचकाक्षर Fe है जो वस्तुतः लैटिन के Ferrum शब्द से बना है। ऐसा प्रयोग किस प्रकार होता है, इस सबध मे विस्तृत जानकारी के लिये किसी अंग्रेजी विश्वकोष में 'केमिस्ट्री' शब्द के अतर्गत अधिक सूचना मिल सकती है।

वर्तमान काल में सूचकाक्षरों की जो वृद्धि हुई है, उसका बहुत कुछ श्रेय समाचारपत्रो को भी दिया जा सकता है। समाचारपत्रों का एक मुख्य सिद्धात यह होता है कि कम से कम स्थान में अधिक से अधिक समाचार सारगर्भित रूप में दिए जायँ। सूचकाक्षरों की सहायता से ही समाचारपत्र इस उद्देश्य में सफल हो पाते हैं। वर्तमान में बहुत सी राजनीतिक पार्टियों एव संस्थाओ के नामो के लिये जो अनधिकारिक नाम प्रचलित हो गए हैं, वे वस्तुत समाचारपत्रों की ही देन हैं। नाटो, सीटो और प्रसोपा जैसे नामो की कल्पना भी कभी इनके सस्थापकों ने न की होगी, पर समाचारपत्रों ने अपनी सुविधा के लिये 'नार्थ अटलांटिक ट्रीटी आर्गेनिजेशन' (उत्तर अतलातक सधि सघटन) के लिये 'नाटो' और प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी के लिये 'प्रसोपा' जैसे सरल और सहजग्राह्य सूचकाक्षरों का प्रयोग करना शुरू कर दिया।

समाचारपत्र राजनीतिक नेताओं के नामो के भी सूचकाक्षर बना लेते हैं। रूस के प्रधान मत्री श्री निकिता एस० ख्रुश्चेव के लिये केवल 'के' (K) और ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री हेरोल्ड मैकमिलन के लिये केवल 'मैक' (Mac) लिखकर ही काम चला लिया जाता था। अमरीका के राष्ट्रपति श्री आइसनहावर के लिये हिंदी के पत्र भी केवल आइक शब्द का प्रयोग करने लगे थे।

आधुनिक युग में सूचकाक्षरों की जो अप्रत्याशित वृद्धि हुई है उसे देखते हुए हम उन्हें साधारण भाषा के अंतर्गत प्रयोग की जाने-

प्राचीन लेखशास्त्र (Palaeography) में भी सूचकाक्षरों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन लेखशास्त्र में शब्दों को संक्षिप्त रूप में लिखने या मूल शब्दों के स्थान पर सूचकाक्षरों का प्रयोग करने के दो मुख्य कारण बतलाए जाते हैं—(१) एक ही प्रसंग (या लेख) में अनेक बार प्रयुक्त होनेवाले बड़े या क्लिष्ट शब्द या शब्दों को पूरे रूप में बार बार लिखने का श्रम बचाने की इच्छा। ऐसी स्थिति में मूल शब्द या शब्दों के स्थान पर सूचकाक्षरों का प्रयोग तभी किया जाता था जब उनका अर्थ उसी प्रकार आसानी से समझ में आ जाए जिस प्रकार मूल शब्द लिखे जाने पर, (२) लिखने का स्थान बचाने की इच्छा अर्थात् सीमित स्थान में अधिक से अधिक लिखने की इच्छा।

यदि कोई लेखक किसी वैज्ञानिक या प्राविधिक विषय की पुस्तक या लेख में किसी क्लिष्ट या बड़े शब्द के लिये किसी सरल सूचकाक्षर का प्रयोग करता है तो प्रायः देखा जाता है कि उसके द्वारा प्रयुक्त सूचकाक्षर उसी विषयक्षेत्र से संबंधित अन्य लेखक तथा विद्वान् भी शीघ्र ही अपना लेते हैं। कानूनी दस्तावेजों, सार्वजनिक और निजी कागजों तथा दिन प्रतिदिन के उपयोग में आनेवाले अन्य अनेक प्रकार के कागजों में भी प्रायः देखा जाता है कि बार बार प्रयोग में आनेवाले बड़े तथा क्लिष्ट शब्दों के सूचकाक्षर प्रचलन में आ जाते हैं। ये सूचकाक्षर पहले तो किसी व्यक्तिविशेष द्वारा केवल अपने निजी उपयोग के लिये ही निर्मित किए जाते हैं, पर बाद में इन्हें सुविधाजनक जानकर धीरे धीरे अन्य लोग भी इनका प्रयोग करने लगते हैं।

सूचकाक्षरों का सरलतम रूप वह है जिसमें किसी शब्द के लिये एक (प्रायः प्रथम) अक्षर या अधिक से अधिक दो या तीन अक्षरों का प्रयोग होता है। प्राचीन यूनान के सिक्कों में शहरों के पूरे नाम के स्थान पर उनके नाम के केवल प्रथम दो या तीन अक्षर ही मिलते हैं। इसी प्रकार प्राचीन शिलालेखों में शहरों के नाम के साथ साथ कुछ अन्य बड़े और क्लिष्ट शब्दों के सूचकाक्षर भी मिलते हैं। प्राचीन रोम में सरकारी ओहदे, पदवी या उपाधियों का आशय केवल उनके प्रथमाक्षर से ही समझ लिया जाता था।

सूचकाक्षर जब कुछ समय तक निरंतर प्रयोग में आते रहते हैं तब कुछ काल के बाद वे लिखित भाषा के ही अंग बन जाते हैं। प्राचीन यूनानी साहित्य में ऐसे अनेक सूचकाक्षर मिलते हैं जो आधुनिक यूनानी भाषा में भी ठीक उसी रूप और अर्थ में प्रचलित हैं जिस रूप और अर्थ में वे आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व प्रचलित थे। वर्तमान काल में भी हम दैनिक जीवन की बोलचाल की तथा लिखित भाषा में ऐसे बहुत से सूचकाक्षरों का प्रयोग करते हैं जो अब भाषा के ही अंग बन चुके हैं और जिनका पूरा रूप बहुत ही कम लोगों को ज्ञात है। इस प्रकार के सूचकाक्षर शायद ही कभी मूल शब्द के रूप में लिखे या बोले जाते हैं। नाटो, सीटो, सेंटो, गेस्टापो, सी० आई० डी०, बी० पी० (पी०) आदि कुछ ऐसे ही सूचकाक्षर हैं।

प्राचीन मिस्र से संबंधित जो सामग्री प्राप्य है तथा जो काहिरा के म्यूजियम तथा ब्रिटिश म्यूजियम, (लंदन) में सुरक्षित है, उसे देखने से पता चलता है कि प्राचीन यूनानी और लैटिन भाषाओं में भी सूचकाक्षरों का प्रयोग होता था। प्राचीन यूनानी भाषा में सूचकाक्षर बनाने की विधि बहुत सरल थी। या तो मूल शब्द का प्रथम अक्षर लिखकर उसके आगे दो आड़ी लकीरें खींचकर सूचकाक्षर बनाए जाते थे या मूल शब्द के जितने अंश को छोड़ना होता था उसका प्रथम अक्षर मूल शब्द के प्रारंभिक अंश से कुछ ऊपर लिखकर सूचकाक्षर का बोध कराया जाता था। कभी कभी इस प्रकार दो अक्षर भी प्रारंभिक अंश से कुछ ऊपर लिखे जाते थे।

अरस्तू लिखित एथेंस के संविधान संबंधी जो हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्य हैं तथा जो पहली शताब्दी (१०० ई०) के लिपिकों द्वारा लिखे माने जाते हैं, उनमें भी सूचकाक्षरों का प्रयोग मिलता है। इन ग्रंथों में कारकचिह्न (preposition) तथा कुछ अन्य शब्दों के सूचकाक्षर निर्माण की एक नियमित विधि देखने को मिलती है।

ब्रिटिश म्यूजियम (लंदन) में 'इलियड' की छठी शताब्दी की जो प्रतियाँ सुरक्षित हैं, उनमें भी सूचकाक्षरों का प्रयोग मिलता है। इन प्रतियों में जिन शब्दों के लिये सूचकाक्षरों का प्रयोग किया गया है, उनके प्रथम अक्षर के आगे अंग्रेजी के S के समान चिह्न बना हुआ है जिससे यह पता चलता है कि ये शब्द संक्षिप्त रूप में लिखे गए हैं। बाइबिल में भी संतों के नामों के लिये प्रायः सूचकाक्षरों का प्रयोग किया गया है।

लैटिन भाषा में सूचकाक्षर के रूप में बड़े शब्दों के प्रथम अक्षर लिखने की प्रथा बहुतायत से मिलती है। इस विधि से प्रायः संज्ञा (व्यक्तिवाचक शब्द), नाम, पदवी, उपाधि, तथा उच्च प्रतिष्ठित लेखकों (classic writers) की कृतियों आनेवाले सामान्य शब्दों को भी संक्षिप्त किया गया है। इस प्रथा के अनुसार मूल शब्द (या नाम) का प्रथम अक्षर लिखने के बाद उसके आगे एक बिंदु रखकर सूचकाक्षर का बोध कराया जाता था। लेकिन इस विधि का प्रयोग केवल एक निश्चित सीमा तक ही किया जा सकता है क्योंकि एक ही अक्षर से प्रारंभ होनेवाले अनेक शब्द होते हैं। सूचकाक्षर ऐसा होना चाहिए कि उससे किसी निश्चित प्रसंग में किसी निश्चित शब्द के अतिरिक्त अन्य किसी शब्द का भ्रम न हो। शायद इसी कारण लैटिन भाषा में सूचकाक्षरों के लिये मूल शब्द के प्रथम अक्षर के साथ साथ उसके आगे कुछ विशेष संकेतचिह्नों का प्रयोग भी मिलता है।

मुद्रणकला का आविष्कार होने के पूर्व लेखनकार्य में सूचकाक्षरों का प्रयोग अधिक होने लगा था। यहाँ तक कि कभी कभी एक ही वाक्य में ४-५ सूचकाक्षरों का प्रयोग भी एक ही साथ होता था जिससे अक्सर बड़ा भ्रम हो जाता था।

आधुनिक युग में सूचकाक्षरों के प्रयोग में जिस गति से वृद्धि हुई है उसे देखते हुए यह युग अन्य बातों के साथ ही साथ सूचकाक्षरों का युग भी कहा जा सकता है। सूचकाक्षरों की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि अंग्रेजी भाषा में इनके कई छोटे बड़े संग्रह तक प्रकाशित हो चुके हैं।

जैसा पहले बतलाया जा चुका है, अधिकांश सूचकाक्षर किसी खास उद्देश्य या क्षेत्र के लिये ही निर्मित किए जाते हैं। जब वह खास उद्देश्य पूरा हो चुकता है या उस क्षेत्र का कार्य समाप्त हो जाता है तो वे सूचकाक्षर भी क्रमशः लुप्त होते जाते हैं। अंततः एक समय

उक्त कोशों के अतिरिक्त एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, एन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना, एव्रीमैन्स एन्साइक्लोपीडिया आदि विश्वकोशों तथा ज्ञानमंडल द्वारा प्रकाशित 'बृहद् अंग्रेजी हिंदी कोश' मे भी सूनकारों की लंबी सूचियाँ दी गई हैं। [म० रा० जे०]

सूडान ३° ३०' – २३° २७' उ० अ० और २२°—३७° ५५' पू० दे० के मध्य स्थित उत्तर पूर्व अफ्रीका का एक बृहत् स्वतंत्र राज्य है जिसके उत्तर में मिस्र पूर्व मे लाल सागर एव इथियोपिया राज्य, दक्षिण मे केनिया, उगांडा एवं कांगो तथा पश्चिम मे मध्य अफ्रीकी गणराज्य, तथा चाट राज्य स्थित हैं। इस राज्य की लबाई उत्तर दक्षिण लगभग २००० किमी तथा चौडाई पूर्व पश्चिम १५०० किमी है एव क्षेत्रफल लगभग १५,१८,००० वर्ग किमी है।

सन् १९५३ ई० में स्वतत्रता प्राप्त करने के पहले इसे ऐंग्लो इजिप्शियन सूडान कहा जाता था और यह ब्रिटेन एवं मिस्र के सदृश राज्य (Condominion under British and Egypt) था। एक सार्वभौम राष्ट्र के रूप में सूडान १९५६ ई० में आया और उसी वर्ष राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया। १८२० ई० के पहले सूडान में अनेक छोटे राज्य बने एव बिगडे पर कोई भी अपनी छाप न छोड सका। ब्रिटिश शासन ही अधिक दिन तक प्रभुसत्ता कायम रख सका।

पूर्ण रूप से उष्ण कटिबंध मे स्थित इस राज्य का भूमि आकार प्राय सम है। प्राचीन चट्टानों एव स्थलखंडो पर अपक्षरण का प्रभाव प्रत्यक्ष है। नील नदी की घाटी मध्य मे उत्तर दक्षिण में फैली हुई है। देश का ५०% से अधिक क्षेत्र ४५७ मी तक ऊँचा है और शेष भाग, थोड़े से मध्य पश्चिमी एव द० पू० भाग जहाँ ईथियोपिया की उच्च भूमि का फैलाव है, को छोडकर, ९१५ मी तक ऊंचा है। इस प्रकार भूमि आकार के आधार पर इसके तीन खंड किए जा सकते हैं, १. मध्यवर्ती नदी घाटी २ पूर्वी एवं पश्चिमी पठारी प्रदेश जिसमें लिबिया का मरुस्थली प्रदेश भी संमिलित है एव ३ दक्षिण पूर्वी उच्च भूमि। केनिया पर्वत ३१८७ मी ऊँचा है। इस देश में विश्व का सबसे बडा दलदली भाग स्थित है जिसे एल सुड (El Sud) कहते हैं और जो लगभग ७८१२५ वर्ग किमी में फैला हुआ है। नील इस देश की प्रधान नदी है जो भूमि आकार को ही नहीं, यहाँ की आर्थिक एव सामाजिक दशा को परिवर्तित करने में भी सहायक है। यह नदी दक्षिणी सीमा पर निमूल के निकट इस देश मे प्रवेश करती है और ३४३५ किमी का लंबा मार्ग तय करके हाल्फा के निकट मिस्र में प्रवेश करती है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ बहरेलगजेल (Bahrel-Gazel), नीली नील (Blue Nile) एव अटबारा है। बहरेलगजेल विषुवतीय प्रदेश की अपेक्षाकृत निम्न भूमि से निकलकर पूर्व की ओर प्रवाहित होती हुई नील में एल सुद के दलदली क्षेत्र में टोंगा के निकट गिरती है। अन्य दो नदियाँ एबिसीनिया के पठार से निकलकर उत्तर एव उत्तर पश्चिम दिशा में प्रवाहित होकर क्रमश एल डैमर एव खारतूम के समीप श्वेत नील में गिरती हैं। प्राय सभी नदियों में वर्ष भर पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध रहता है। मुख्य नील का निकास विषुवती जगलों में स्थित झीलों से हुआ है अत इसमें सबसे अधिक मात्रा में जल उपलब्ध है।

यद्यपि संपूर्ण देश उष्ण कटिबंध में ही स्थित है तथापि विस्तार एवं धरातल ने जलवायु मे अधिक वैषम्य ला दिया है। उत्तरी भाग में जहाँ बालू की आँधियाँ चलती हैं वहीं दक्षिण मे प्रचुर मात्रा में वर्षा होती है। उत्तरी क्षेत्र में वर्षा आकस्मिक एव यदा कदा ही होती है। मध्य क्षेत्र में इसका औसत १५ सेमी है पर दक्षिण में १०१ सेमी तक पानी बरसता है। वर्षा प्राय मई से अक्टूबर महीने तक होती है। ग्रीष्म ऋतु का ताप (२७° से० ३२° से) प्राय उत्तर एव दक्षिण में समान रहता है जब कि शीत ऋतु में इसका वैषम्य बढ जाता है। इस ऋतु मे उत्तरी क्षेत्र का औसत ताप लगभग १५° से० रहता है जब कि दक्षिण में २७ से०। अप्रैल एव अक्टूबर के बीच बालू की भीषण आँधियाँ चला करती हैं जो प्रायः उत्तर पश्चिम क्षेत्र में मिलती हैं। ये आँधियाँ हानिकर नही हैं पर कभी कभी हजारो फुट बालू की ऊँची दीवार बना देती हैं। इन तूफानो को स्थानीय भाषा में हबूब कहते हैं।

राज्य के प्रमुख प्राकृतिक साधन नील नदी का जल, जगल और जंगल से उत्पन्न गोंद, जिससे इत्र, तेल तथा दवाएँ बनती हैं एव लाल सागर का जल जिससे नमक बनाया जाता है, हैं। इन जगलो मे पाए जानेवाले बबूल के रस से गोंद बनाया जाता है। विश्व की गोंद की माँग की ९०% की पूर्ति यहाँ से की जाती है। विश्वप्रसिद्ध बबूल गोंद (Gum Arabic) यहीं बनता है। इन वृक्षों के लिये कार्डोफन (Cordofan) पठार विशेष प्रसिद्ध है। पशुपालन मे लगे हजारो सूडानियों का पूरक व्यवसाय बबूल का रस इकट्ठा करना है। दक्षिणी जगलो में कठोर लकडीवाले वृक्ष महोगनी, इबोनी आदि अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। १९२५ ई० में जलपूर्ति के हेतु ब्लू नील पर १००६ मी लबे एव ३७ मी ऊँचे सेनार बाँध (Sennar dam) का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ। इससे निर्मित जलाशय ९३ मील लबा है। राज्य का प्रधान औद्योगिक उत्पादन दैनिक प्रयोग की वस्तुएँ हैं। अतिरिक्त कुछ उत्पादन स्थानीय माँग की पूर्ति के लिये भी होता है जिनमें बीयर, नमक, सीमेंट, परिरक्षित मास आदि प्रमुख हैं। इनका प्रमुख केंद्र खारतूम है। सभावित खनिजो की सूची मे स्वर्ण, ग्रेफाइट, गधक, क्रोमाइट, लोहा, मैंगनीज एव ताँबा हैं। वादीहाफा के दक्षिण सोने की खदानें हैं। अब तक इन खनिजों के उत्पादन एव उपयोग पर ध्यान नही दिया गया है।

जीविकोपार्जन के अन्य साधनों के अभाव में बजारो की प्रमुख जीविका पशुचारण एव कृषि ही है। उत्तरी सूडान के निवासी मरुस्थली प्रदेश के होने के नाते बजारो का जीवन व्यतीत करते हैं। इनकी जीविका पशुचारण है पर चारो एव भोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिये इन्हें यत्र तत्र घूमना पडता है। अन्य क्षेत्रो की मुख्य जीविका कृषि ही है। मध्य एव उत्तरी भाग में वर्षा की कमी के कारण खारतूम के उत्तर एव मध्य सूडान के कृषको को जल के लिये कूपो, तालावो एव नील नदी के जल पर निर्भर करना पडता है। संपूर्ण क्षेत्रफल के २०% भाग पर कृषि होती है और १०% भाग घास के मैदानों के अतर्गत आते हैं। उत्तर के कृषक अन्न, कपास एवं मटर की खेती करते हैं पर दक्षिणी कृषक बरसाती फसलें जैसे मीठे आलू की कृषि अधिक करते हैं। खारतूम के दक्षिण ब्लू एवं व्हाइट नील के क्षेत्र में लगभग १,०००,००० एकड मे लबे धागेवाली उत्तम कोटि

वाली प्राविधिक भाषा (Technical Language) कह सकते हैं। गणितशास्त्र तथा रसायनशास्त्र के विषय में, जिनमे प्रयुक्त किए जानेवाले सूचकाक्षर सभी देशो में समान रूप से ज्ञात हैं, यह बात विशेष रूप से कही जा सकती है। इन विषयो के सूचकाक्षर राष्ट्रीयता, धर्म, वर्ण आदि का बंधन तोडकर हर जगह समान रूप से प्रयुक्त होते हैं। शैक्षणिक जगत् में डिग्री और पाठ्यक्रम प्राय: सूचकाक्षरो से ही जाने जाते हैं। बी० ए०, एम० ए०, पी-एच० डी० आदि शब्द अब इतने अधिक प्रचलित हो चुके हैं कि इनके मूल शब्द 'बैचलर ऑव आर्ट्स', 'मास्टर ऑव आर्ट्स' तथा 'डाक्टर ऑव फिलासफी' आदि का प्रयोग प्रमाणपत्रो के अतिरिक्त शायद ही कही और होता हो। उद्योग, व्यवसाय आदि के क्षेत्र मे भी सूचकाक्षरो की एक लबी सूची प्रयोग मे आती है। आधुनिक जीवन में सूचकाक्षरो ने इतना अधिक स्थान बना लिया है कि उनके अर्थ को जानना अब दैनिक जीवन मे सफलता प्राप्त करने के लिये आवश्यक समझा जाने लगा है।

सूचकाक्षर बनाने के कोई निश्चित नियम नही हैं। किसी एक शब्द या नाम के लिये इतने अधिक सूचकाक्षर बनाए जा सकते हैं कि कभी कभी एक ही शब्द के लिये कई सूचकाक्षर प्रचलित हो जाते हैं। जो हो, वर्तमान में विविध प्रकार के जो सूचकाक्षर प्रचलित हो गए हैं, उनका अध्ययन करने पर हमें सूचकाक्षर बनाने के कुछ नियमो का पता चलता है, जो इस प्रकार है—

(१) सूचकाक्षरो का सरलतम रूप वह है जिसमें किसी नाम में प्रयुक्त किए जानेवाले शब्दो के केवल प्रथमाक्षरो का ही प्रयोग होता है, यथा—यू० एस० ए० (यूनाइटेड स्टेट्स ऑव अमरीका), उ० प्र० (उत्तर प्रदेश), अ० भा० का० क० (अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी), आई० ए० एस० (इडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस), प्रे० ट्र० (प्रेस ट्रस्ट), ए० पी० आई० (एसोशियेटेड प्रेस ऑव इडिया), एच० आर० एच० (हिज या हर रायल हाइनेस) आदि।

(२) मूल शब्द के प्रथम और अतिम अक्षरो को मिलाकर बनाए गए सूचकाक्षर यथा Dr. (Doctor), Mr. (Mister), Fa (Florida) आदि।

(३) मूल शब्द मे प्रयुक्त कुछ अक्षरो को इस क्रम से लिखना कि वे सहज ही मूल शब्द का बोध करा दें। यथा Ltd (Limited) Bldg. (Building) आदि।

(४) मूल शब्द का इतना प्राथमिक अंश लिखना कि उससे पूरे शब्द का बोध सहज ही हो जाए। यथा अग्रेजी मे Prof. (Professor), Wash (Washington), तथा हिंदी में क० (कंपनी), लि० (लिमिटेड), डा० (डाक्टर), प० (पडित) आदि।

(५) मूल शब्द या नाम में प्रयुक्त होनेवाले शब्दो के कुछ ऐसे अशों को मिलाना कि उनके मेल से एक स्वतत्र शब्द बन सके—यथा टिस्को (Tata Iron and Steel Company), गेस्टापो (Geheime Staats Polizic), रेडार (Radio detection and ranging system), Benelux (Belgium, Netherlands and Luxemburg), इम्पा (Indian Motion Pictures Producers Association) आदि।

(६) शब्दो को पूरे रूप में न कहकर (या लिखकर) केवल उनके प्रथमाक्षर ही कहना (या लिखना) यथा—ए० सी० (Alternative Current), डी० सी० (Direct Current या Deputy Collector), ए० जी० एम० (Annual General Meeting), एच० पी० (Horse Power), एम० पी० एच० (Mile per hour) आदि।

(७) विविध — इस श्रेणी में हम ऐसे सूचकाक्षरो को रख सकते हैं जो यद्यपि किसी मूल शब्द के अश हैं, तथापि जो अब स्वय स्वतत्र शब्द के रूप में प्रचलित हो चुके हैं। यथा—फ्लू (इन्फ्लुएजा), फ़ोटो (फोटोग्राफ), आटो (आटोमोबाइल), आदि।

कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियो के नामो के भी अब सूचकाक्षर प्रचलित हो गए हैं। अग्रेजी साहित्य मे जार्ज बर्नार्ड शा के लिये जी० बी० एस० और राबर्ट लुई स्टीवेन्सन के लिये आर० एल० एस० का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार राजनीति मे भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति श्री फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट के लिये एफ० डी० आर० और भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री आइसनहावर के लिये प्रयोग किए जानेवाले 'आइक' सूचकाक्षर से जनसाधारण अच्छी तरह परिचित है। नामो को सक्षिप्त करने की प्रथा प्राय. सभी देशो मे प्रचलित है। अंग्रेजी मे फ्रेडरिक को फ्रेड, विलियम को विल, पैट्रिशिया को पैट, हिंदी मे विश्वनाथ को बिस्सु, परमेश्वरी को परमू, चमेली को चपी आदि कहना भी वास्तव मे सूचकाक्षर का ही प्रयोग करना है, तथापि नामो को इस सक्षिप्त रूप में केवल स्नेह या प्यार के कारण ही कहा जाता है।

कभी कभी यह भी देखा गया है कि एक ही सूचकाक्षर कई शब्दों (नामों) के लिये प्रयुक्त होता है। अत प्रसगानुकूल ही उसका अर्थ लगाना चाहिए, अन्यथा कभी कभी अर्थ का अनर्थ हो सकता है। अग्रेजी के एक प्रसिद्ध सूचकाक्षर पी० सी० का अर्थ पुलिस कास्टेबल, प्रिवी कौसिल, पीस कमीशन, पोस्टकार्ड, पोर्टलैड सीमेंट, पनामा कैनाल, प्राइस करेंट, आदि हो सकता है। समाचारपत्रो के प्रसग मे ए० बी० सी० का अर्थ आडिट ब्यूरो सर्कुलेशन होता है, पर जब किसी राजनीतिक प्रसग में ए० बी० सी० कहा जाता है तो इसका अर्थ अर्जेंटाइना, ब्राजील और चिली होता है। किसी हिंदी शब्दकोश में सामान्यत सं० का अर्थ सज्ञा होता है पर किसी समाचारपत्र डायरेक्टरी में इसका अर्थ सपादक होगा।

सं० ग्रं० — कोलियर्स एन्साइक्लोपीडिया, १९५४; टाम्सन : हैंडबुक आव ग्रीक ऐंड लैटिन पैलियोग्राफी, केगन पाल, लदन, १८९३; पैट्रिज और क्लार्क : ब्रिटिश ऐंड अमेरिकन इंग्लिश सिंस १९००, ऐंड्र्यू डेकर्स, लदन, १९५१, पैट्रिज : डिक्शनरी आव ऐब्रिविएशस, ऐलेन ऐंड अनविन, लदन, १९४३, मैथ्यूज : ए डिक्शनरी आव ऐब्रिविएशस, रूटलेज केगन पाल, लदन, १९४७; स्वार्ट्ज : दि कप्लीट डिक्शनरी आव ऐब्रिविएशंस, हैरप, लंदन, १९५७।

योनियों के प्रयोग रचनासौंदर्य को बढाने के बजाय घटाते ही हैं। अप्रस्तुतयोजना भी इसकी अनाकर्षक है। यद्यपि उसके युद्धवर्णन सुंदर और सफल हुए हैं और वीररस से इतर शृंगारादि रसों पर भी उनका अधिकार है तथापि निष्कर्ष रूप में यही कहना पडता है कि 'सुजानचरित्र' का महत्व जितना ऐतिहासिक दृष्टि से है उतना साहित्यिक दृष्टि से नही।

सं० ग्रं० — आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, डॉ० उदयनारायण तिवारी : वीर काव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर हिंदी वीर काव्य।

[रा० फे० त्रि०]

सूरजमल (जन्म १७०८ ई०; मृत्यु, १७६३)। भरतपुर के जाट राजा बदनसिंह का दत्तक पुत्र, सूरजमल अपनी योग्यता तथा क्षमता के कारण बदनसिंह द्वारा अपने पुत्र की जगह, राज्य का उत्तराधिकारी निर्वाचित हुआ। बदनसिंह के अस्वस्थ होने पर राज्य का सचालन सूरजमल ने ही सँभाला। अपनी सैनिक योग्यता, कुशल शासन, चतुर राजनीतिज्ञता, तथा सबल व्यक्तित्व द्वारा उसने जाट सत्ता का अभूतपूर्व उत्थान किया।

बदनसिंह के जीवनकाल में सूरजमल ने अनेक विजयें प्राप्त की, तथा राज्य की अभिवृद्धि की। रोहिलखंड पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में मुगल सम्राट् ने बदनसिंह को राजा तथा महेंद्र की उपाधियों से, और सूरजमल को कुमारबहादुर तथा राजेंद्र की उपाधियों से विभूषित किया। फिर, कुछ दिनों बाद ही सूरजमल को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया। मराठों की विशाल सेना के विरुद्ध कुम्हेर के किले का सफल बचाव करने के कारण समस्त भारत में उसकी कीर्ति व्याप्त हो गई। उसकी बढती शक्ति को देख मुगल सम्राट् को भी उससे संधि करनी पडी (२६ जुलाई, १७५६)।

बदनसिंह की मृत्यु (७ जून, १७५६) के पश्चात् राज्यारोहण के बाद से सूरजमल को अपने वीर किंतु उद्दंड पुत्र जवाहिरसिंह का विद्रोह दमन करना पडा (नवबर, १७५६)। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के दौरान (१७५७-६१) विरोधी दलों का पक्ष ग्रहण करने से अपने को बचाए रखने में सूरजमल ने अद्भुत कूटनीतिज्ञता का परिचय ही नहीं दिया बल्कि अपने राज्य को भी तीव्र संकट से बचा लिया। तत्पश्चात् उसने पुन अपना राज्यविस्तार प्रारभ कर दिया। आगरा पर आक्रमण कर (जून, १७६१) उसने अपार धन लूटा। मेवात में फर्रुखनगर पर उसके पुत्र जवाहिरसिंह का अधिकार होने से नजीबखाँ रोहिल्ला से उसका वैमनस्य हो गया। तज्जनित युद्ध में उसपर अचानक आक्रमण के कारण उसका वध हो गया।

सं० ग्रं० — जदुनाथ सरकार . फॉल ऑव द मुगल एंपायर; के० आर० कानूनगो हिस्टरी ऑव द जाट्स।

[रा० ना०]

सूरज (या सूर्य) मुखी (Sunflower) अनेक देशों के बागों में उगाया जाता है। यह कपोजिटी (Compositae) कुल के हेलिएंथस (Helianthus) गण का एक सदस्य है। इस गण में लगभग साठ जातियाँ पाई गई हैं जिनमे हेलिएंथस ऐनुस (Helianthus annuus), हेलिएंथस डिकेपेटलेस (Helianthus decapetalus), हेलिएंथिस मल्टिफ्लोरस, (Helianthus multiflorus), हे० ओरगैलिस (H Orggalis) हे० ऐट्रोरूबेंस (H atrorubens), हे० जाइजेन्टियस (H. gigenteus) तथा हे० मौलिस (H molis) प्रमुख हैं।

यह फूल अमरीका का देशज है पर रूस, अमरीका, इंग्लैंड मिस्र, डेनमार्क, स्वीडन और भारत आदि अनेक देशों में आज उगाया जाता है। इसका नाम सूरजमुखी इस कारण पडा कि यह सूर्य की ओर झुकता रहता है, हालाँकि प्राय सभी पेड पौधे सूर्य प्रकाश के लिये सूर्य की ओर कुछ न कुछ झुकते हैं। सूरजमुखी का सूर्य की ओर झुकना आँखों से देखा जा सकता है। बागों में उगाए जानेवाले सूरजमुखी की उपर्युक्त प्रथम दो जातियाँ ही हैं। इसके पेड १ मी० से ५ मी० तक ऊँचे होते हैं। इनके डठल बडे तुनुक होते हैं, हवा के झोंके से टूट जा सकते हैं अतः इनमे टेक लगाने की आवश्यकता पड सकती है। इसकी पत्तियाँ ७ सेमी से ३० सेमी लबी होती हैं। कुछ सूरजमुखी एकवर्षी होते हैं और कुछ बहुवर्षी, कुछ बडे कद के होते हैं और कुछ छोटे कद के।

इसके पीले फूल बाग के फूलों मे सबसे बडे होते हैं। सिर ७ सेमी से १५ सेमी चौडे और कर्षण से उगाने पर ३० सेमी या इससे भी चौडे हो सकते हैं। ये शोभा के लिये बागों में उगाए जाते हैं। अच्छे कर्षण और खाद से भिन्न भिन्न रग, काति और आभा के फूल प्राप्त हो सकते हैं। फूल की पखुडियाँ पीले रग की होती हैं और मध्य में भूरे, पीत या नीललोहित या किसी किसी वर्णसंकर पौधे में काला चक्र रहता है। चक्र मे ही चिपटे काले बीज रहते हैं। बीज से उत्कृष्ट कोटि का खाद्य तेल प्राप्त होता है और खली मुर्गों को खिलाई जाती है। सूरजमुखी के पेड में रितुआ रोग भी कभी कभी लग जाता है जिससे पत्तियों के पिछले भाग में पीतभूरे रग के चकत्ते पड जाते हैं। इससे रक्षा के लिये गंधक की धूल छिडकी जा सकती है।

सूरजसिंह राठौर, राजा मुगल सम्राट् अकबर की सेवा में १५७० ई० में आया। यह मारवाड के राय मालदेव का पौत्र तथा उदयसिंह (मोटा राजा) का पुत्र था। इसकी बहन का विवाह राजकुमार सलीम से हुआ था। सुल्तान मुराद के गुजरात का अध्यक्ष नियुक्त होने पर यह उसके सहायक के रूप में नियुक्त हुआ। सुल्तान दानियाल की नियुक्ति जब दक्षिण प्रदेश में हुई तो यह उसके साथ भेजा गया। १६०० ई० में राजू दखिनी के दमनार्थ दौलतखाँ लोदी के साथ नियुक्त हुआ। दो वर्ष बाद खुदावंदखाँ हब्शी का विद्रोह दबाने के लिये अब्दुर्रहीम खानखानाँ के साथ भेजा गया। १६०८ ई० के लगभग, सम्राट् जहाँगीर के राज्यकाल में इसका मंसब बढ़ाकर चार हजारी चार हजार सवार का कर दिया गया। १६१३ ई० में सुल्तान खुर्रम के साथ दक्षिण गया। १६१५ ई० मे इसे पाँच हजारी मसब मिला। १६१६ ई० में दक्षिण में देहात हुआ।

सूरण कुल (Family Araceae) पौधों का एक बडा कुल है जिसमें लगभग १०० वश तथा १६०० स्पीशीज संमिलित हैं। ये

की कपास पैदा की जाती है। कपास ही राष्ट्र की अधिकतम आय का साधन है।

सूडान के व्यापार मे आयात एवं निर्यात मूल्य में संतुलन नहीं है क्योंकि इसे महँगी वस्तुएँ आयात करनी पडती हैं। सस्ते एवं कम सामान निर्यात होते हैं। आयात की वस्तुओं में सूती सामान, चीनी, काफी, चाय, लौहपात्र (hardware) मशीनें, मिट्टी का तेल, गेहूँ, आदि प्रमुख हैं पर निर्यात गोंद, कपास, बिनौले, चमड़े, सींग, हड्डियाँ, पशु एवं मटर का होता है। निर्यात करनेवाले प्रमुख राष्ट्र ग्रेट ब्रिटेन, भारत, मिस्र, ईरान, आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमरीका, पाकिस्तान एवं पश्चिम जर्मनी हैं। १९५७-५८ ई० मे ४८,१२४ टन गोंद का यहाँ से निर्यात किया गया।

सूडान राज्य मे ९ प्रांत, बहरेलगजेल, ब्लू नील, डार्फर, इक्वेटोरिया, कस्साल, खारतूम, कारडोफन, उत्तरी एवं अपर नील तथा ६९ जनपद हैं। राज्य की जनसंख्या ११,९२८,००० (१९६१) है। सर्वाधिक घने बसे भाग ब्लू नील एवं बहरेलगजेल हैं जहाँ राज्य के लगभग १४% क्षेत्रफल मे ३४% जनसंख्या निवास करती है। नगर प्राय नदियो के किनारे पर बसे हैं जहाँ जल की सुविधा है। खारतूम यहाँ का प्रशासनिक केंद्र है जिसकी जनसंख्या १९५५ में ८२७०० थी। अब खारतूम, उत्तरी खारतूम एवं अडरमन नगर प्राय. एक हो गए हैं और इनकी जनसंख्या १९६१ में ३१२,४६५ थी। अन्य नगर एल ओबेद (७०,१००), पोर्ट सूडान (६०,६००), वादी मेदानी (५७,३००) अतबारा (३६,१००) कस्साल, गेडरीफ आदि हैं। जनसंख्या का ¾ भाग अरबी भाषाभाषी मुसलमान है। दक्षिणी भाग में कुछ नीग्रो लोग रहते हैं जिनकी भाषा एवं रहन सहन उत्तर के निवासियो से भिन्न है। अरबी राष्ट्रभाषा है। नगरों में शिक्षण संस्थान हैं। सर्वोच्च शिक्षण संस्थान खारतूम में है। 'यूनिवर्सिटी कालेज ऑव खारतूम' १९५१ में स्थापित एकमात्र विश्वविद्यालय है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक एवं प्रशिक्षण संस्थान भी हैं। राज्य मे यातायात की सुविधा के लिये लगभग २३,००० किमी लंबा राजमार्ग है जो प्राय. सभी प्रमुख स्थानो को मिलाता है। रेलमार्ग (छोटी लाइन) १९६१ के अनुसार ५१६९ किमी था जिनमे खारतूम न्याला (१३८५ किमी) मुख्य है।

सूडान चार प्राकृतिक विभागो मे बाँटा जा सकता है ·

१. मरुस्थली प्रदेश — खारतूम के उत्तर का प्राय. संपूर्ण भाग सहारा के लिबिया एवं नुबिया मरुस्थलों से घिरा हुआ है। वनस्पति केवल ओसिस एवं अन्य जलवाले भागो तक सीमित है। नील इसके मध्य से प्रवाहित होती है। शेष भाग उजाड है।

२. स्टेपीज क्षेत्र — खारतूम से अल ओबेद तक का छोटी छोटी घासों का क्षेत्र, जिसमें कही कही झाड़ियाँ भी हैं, इसमे संमिलित है। कार्डोफा के पठार पर ये मैदान ४५७ मी तक की ऊँचाई पर भी मिलते हैं।

३. सवन्ना — उष्ण कटिबंधीय घास के मैदानों का क्षेत्र है जो विषुवती वनो के उत्तर स्थित है। घासे अत्यधिक लंबी होती हैं। (जिराफ, एंटीलोप्स आदि) कुछ जगली जीव भी इनमें रहते हैं।

४. विषुवत प्रदेश — दक्षिणी सूडान मे विषुवत रेखा के समीप अतिवृष्टि का क्षेत्र है। यह उथला बेसिन है जिसमें सफेद नील अपनी सहायक नदियो के साथ वक्र मार्ग में प्रवाहित होती है। ७८१-२५ वर्ग किमी में फैला हुआ दलदली क्षेत्र अल सुड इसी भाग मे है। दक्षिणी भाग उत्तरी भाग की अपेक्षा ऊँचा है। घने जंगल यहाँ की विशेषता है। [कै० ना० सिं०]

सूदन सूदन ने अपनी रचना 'सुजानचरित्र' मे अपना परिचय देते हुए कहा है *'मथुरापुर सुभ धाम, माथुरकुल उतपत्ति वर। पिता बसंत सुनाम, सूदन जानहु सकल कवि।'* इससे स्पष्ट है कि सूदन मथुरावासी माथुर ब्राह्मण थे और उनके पिता का नाम वसंत था। कोई मकरंद कवि सूदन के गुरु कहे जाते हैं जो मथुरा के निवासी थे। कुछ लोग प्रसिद्ध कवि सोमनाथ को उनका गुरु मानते हैं। सूदन की पत्नी का नाम सुंदर देवी था जिनसे उन्हे तीन पुत्र हुए थे। भरतपुर नरेश बदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह उपनाम सूरजमल ही इनके आश्रयदाता थे। वहीं के राजपुरोहित घमंडीराम से सूदन की घनिष्ठ मित्रता थी। अभी कुछ दिनों पूर्व तक उक्त राज्य से कविवंशजो को २५ रु० मासिक वृत्ति बराबर मिल रही थी। कृतित्व से सूदन बहुज्ञ और साहित्यमर्मज्ञ जान पड़ते हैं।

सूदन की एकमात्र वीररसप्रधान कृति 'सुजानचरित्र' है, जिसकी रचना उन्होने अपने आश्रयदाता सुजानसिंह के प्रीत्यर्थ की थी। इस प्रबंध काव्य मे संवत् १८०२ से लेकर संवत् १८१० वि० के बीच सुजानसिंह द्वारा किए गए ऐतिहासिक युद्धो का विशद वर्णन किया गया है। 'सुजानचरित्र' में अध्यायो का नाम 'जंग' दिया गया है। यह ग्रंथ सात जंगों मे समाप्त हुआ है। किन्हीं कारणो से सातवाँ जंग अपूर्ण रह गया है। कवि का उपस्थितिकाल (१८०२-१८१० वि०) ही ग्रंथ-रचना-काल का निश्चय करने मे सहायक हो सकता है। नागरीप्रचारिणी सभा, काशी से जो 'सुजानचरित्र' प्रकाशित हुआ है उसमे उसकी दो प्रतियाँ बताई गई हैं — एक हस्तलिखित और दूसरी मुद्रित। इसमें हस्तलिखित प्रति को और भी खंडित कहा गया है। मंगलाचरण के बाद इसमे कवि ने वंदना के रूप मे १७५ संस्कृत तथा भाषाकवियो की नामावली दी है। केशव की 'रामचंद्रिका' की भाँति ही इसमे भी लगभग १०० वर्णिक और मात्रिक छंदो का प्रयोग कर छंदवैविध्य लाने की कोशिश की गई है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य अनेक भाषाओं का प्रयोग भी इसमे किया गया है।

कवित्व की दृष्टि से कवि की वर्णन-विस्तार-प्रियता और रूढ़ वस्तु-परिगणन-प्रणाली उसकी कविता को नीरस बना देती है। घोड़ो, अस्त्रों और वस्त्रों आदि के बहुज्ञताप्रदर्शनकारी वर्णन पाठको को उबा देते हैं और सरसता में निश्चित रूप से व्याघात उपस्थित करते हैं। हिंदी में वस्तुओं की इतनी लंबी सूची किसी कवि ने नहीं प्रस्तुत की है। युद्धवर्णन में भीतरी उमंग की अपेक्षा बाह्य तडक भडक का ही प्राधान्य है। 'धडधद्धर धड़धद्धर। भड़भब्भरं भड़भब्भर। तड़तत्तर तडतत्तरं। कड़कक्कर कड़कक्करं॥' जैसे उदाहरण से स्पष्ट है कि डिंगल के अनुकरण पर काव्य में ओज लाने के लिये कवि ने शब्दनाद पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है जिससे शब्दों के रूप बिगड गए हैं और भाषा कृत्रिम हो उठी है। भिन्न भिन्न भाषाओं एवं

नाथ 'सूरदास जी' के जीवन पर भी एक तरंग — 'सूर सागर . अनुराग' नाम से लिखी है। इन सब संदर्भ ग्रंथों के आधार पर कहा जाता है कि श्रीसूरदास जी का जन्म वैशाख शुक्ला पंचमी या दशमी, सं० १५३५ वि० को दिल्ली के पास 'सीही' ग्राम में प० रामदास सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ हुआ। वे जन्मांध थे (श्री हरिराय कृत वार्ता टीका भावप्रकाश के अनुसार सिलपट्ट अर्थात्, बरोनियों से रहित पलक जुड़े हुए) बाद में आप पुराणप्रसिद्ध गोघाट, रेणुकाक्षेत्र (रुनुक्ता), आगरा के पास आकर रहने लगे। यहीं आप सं० १५६५ वि० में श्रीवल्लभाचार्य जी (स० १५३५ वि०) की शरण यह कहने पर हुए — "सूर ह्वै कें काहे घिघियात हो" और तभी भगवल्लीला संबंधी प्रथम यह पद गाया — "ब्रज भयौ मेहैर कें पूत, जब ये बात सूनी।" तदुपरि आप श्रीवल्लभाचार्य जी के साथ गोघाट से गोवर्धन आ गए और "श्रीनाथजी" — गोवर्धननाथ जी की कीर्तन सेवा करते हुए चंद्रसरोवर, परासोली गाँव में, जो गोवर्धन से निकट है, रहने लगे। स० १६४० वि० में आपका निधन —"श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी (स० १५७२ वि०), कुंभनदास (स० १५२५ वि०), गोविंदस्वामी (स० १५६२ वि० के पास), चतुर्भुजदास (सं० १५८७ वि० के पास) अष्टछाप के कवि और प्रसिद्ध गायक रामदास (स० अज्ञात) के संमुख—"खजन नैन रूप रस माँते" पद को गाते गाते हुआ। इस संप्रदाय-ग्रंथ-अनुमोदित प्रामाणिककल्प आपके चारु चरित्र के अपवाद में कुछ दूर की कौड़ी लानेवाले मनमौजी सूर जीवनी लेखकों ने आपको 'जाट, भाट और ढाँढ़ी' भी बताया है, जो सत्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

पुष्टिसंप्रदाय में सूर-जीवन-संबंधी कुछ जनश्रुतियाँ भी बड़ी मधुर हैं। तदनुसार आप देह रूप में 'उद्धव अवतार', भगवल्लीला रूप में 'सुबल वा कृष्णसखा' और नित्यरसपूरित निकुंजलीला में 'चंपकलता' सखी थे। पदरचनाओं में प्रयुक्त आपके छापों (नामों) 'सूर, सूरदास, सूरज, सूरजदास और सूरस्याँम' के प्रति भी एक वार्ताविशेष कही सुनी जाती है, जिसके अनुसार आपको 'सूर' नाम से श्रीवल्लभाचार्य जी पुकारा करते थे तथा कहते थे — "जैसे सूर (वीर पुरुष) होइ सो रन (रण) में पाँव पाछौ नाहीं देइ (और) सब सों आगें चले। तेसें ई सूरदास की भक्ति (में) दिन दिन चढ़ती दसा भई, तासों आचार्य जी सूरदास को 'सूर' (वीर) कहते, तातें आपने या छाप के पद किए। गो० विट्ठलनाथ जी सूरदास को 'सूरदास' ही कहते, कारण आप (सूरदास) में ते 'दास भाव' कभू गयो नाँही, नित नित बढ़तो भयो और ज्यों ज्यों लीला को अनुभव अधिक भयो त्यों त्यों सूरदास जी को दीनता अधिक भई। सो सूरदास जी को कबहू अहंकार मद भयो नाँही, तातें आप—श्री गो० विट्ठलनाथ जो 'सूरदास' कहि बोलते। श्री स्वामिनी जी (श्री कृष्ण-प्रिये) आपको 'सूरज' और सूरजदास' कहि पुकारते, कारन सूरदास जी ने 'श्रीस्वामिनी जी' के सात हजार पद किये, तामें सूरदास जी ने आपके अलौकिक भाव बरनन किए, तातें श्री कृष्णप्रिये ब्रजाधीश्वरी सूरदास को कहते 'जो ए सूरज (सूर्य) हैं, जैसे सूरज सो जगत में प्रकास होइ, सो या प्रकार इन नें (हमारे) सरूप को प्रकाश कियो, सो आपने सूरदास के 'सूरज' और 'सूरजदास' नाम धरे। आपकी पदप्रयुक्त 'सूर स्याँम' छाप के प्रति कहा जाता है—'सूरदास जी ने भगवल्लीला के सवा लाख पद रचिबे को प्रन कियो हो, सो सरीर छोडते समैं वो प्रन पूरो होत न देखि कें आपको क्लेश भयो, तब स्वयं वा लीलाविहारी नें प्रतच्छ ह्वै कें सूरदास सों कही कि 'मैं' उन्हें पूरो करोंगो, तुम चिंता मत करो, सो ठाकुर जी ने 'सूरस्याम' नाम सों पचीस हजार पदन की रचना करी सोऊ सूरदास जी के कहाए, तातें आपको 'सूरस्याँम' नाम हू कह्यो सुन्यों गयो है।' संप्रदाय में सूरदास जी के संबंध में एक और भी किंवदंती कही जाती है, उसके अनुसार आपके 'सेव्यनिधि' (पूजा की मूर्ति) 'श्याममनोहर जी' थे, जो आजकल चाँपासेनी, जोधपुर (राजस्थान) में विराज रहे हैं। यही नहीं, वहाँ आपके समय की पूर्ण 'सूरसागर' की प्रति भी विराजी हुई कही सुनी जाती है।

हिंदी साहित्य के इतिहासग्रंथों, खोजविवरणों एवं डी० फिल् तथा डी० लिट् के लिये लिखे गए निबंधग्रंथों और कुछ इतर ग्रंथों में श्री सूरदासरचित निम्नलिखित ग्रंथ माने गए हैं — 'गोवर्धन लीला (छोटी बड़ी), दशमस्कंध भागवत : टीका, दानलीला, दीनता आश्रय के पद, नामलीला, पदसंग्रह, प्रानप्यारी (श्याम सगाई), बाँसुरी लीला, बारहमासा वा मासी, बाललीला के पद, ब्याहुलो, भगवच्चरण-चिह्न-वर्णन, भागवत, मानलीला, मान सारंग, राधा-नख-सिख, राधा-रस-केलि-कौतुक, रामजन्म के पद, रामायण, राम-लीला के पद, वैराग्यसत्तक, सूर छत्तीसी, सूर पच्चीसी, सूर बहोत्तरी. सूरसागर, सार, सूर साठी—इत्यादि। इन सब कृतियों में 'सूरसागर' प्रधान और सर्वमान्य है। इतर ग्रंथ, उनके विशाल सागर—'सवालच्छ पदबद' — की ही लोल लहरियाँ हैं, पृथक् ग्रंथ नहीं। नई खोज में श्री सूरदास जी के कुछ स्वतंत्र ग्रंथ भी हमें मिले हैं, यथा : 'गोपालगारी, चीरहरण लीला, रुक्मिणीमंगल, सुदामा-चरित्र, सूर गीता, सूर सहस्रनामावली, सेवाफल'—आदि। हो सकता है—'गोपालगारी' से लेकर 'सुदामाचरित्र' तक के ग्रंथ भी आपके सागर के ही रत्न हैं; कारण, सूर के सागर का अभी तक पूर्ण अनुसंधान नहीं हुआ है। नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ने सूरसागर के प्रति उल्लेखनीय कार्य किया है, किंतु उसे पूर्ण नहीं कहा जा सकता। सागर की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ तब तक उसे उपलब्ध नहीं हो सकी थीं। सूरगीतादि आपके स्वतंत्र ग्रंथ हैं, और संप्रदाय की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। कुछ आपके सिर मढ़ी जानेवाली भी ग्रंथरूपेण कृतियाँ हैं। उनके नाम हैं — 'एकादशी महात्म्य, नलदमन (नलदमयंती—काव्य), राम-जन्म, साहित्यलहरी, सूरसारावली, और हरिवंशपुराण। अस्तु, ये सब कृतियाँ भाव, भाषा और उनके अहर्निश 'कृष्ण-लीला-गान' में व्यस्त भक्तजीवन के विपरीत हैं, जिससे ये रचनाएँ आपकी जान नहीं पड़तीं, फिर भी आपके नाम की 'स्वर्णांकित' छाप के साथ चल रही हैं।

श्रीसूर का काव्यकाल सं० १५५० वि० से स० १६४० वि० तक कहा जा सकता है। इस नब्बे (९०) वर्षों के दीर्घ, पर सुनिश्चित समय में श्री गोवर्धननाथ जी के सान्निध्य में बैठकर श्रीसूर

विश्व के भाग से लेकर शीतोष्ण क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इस कुल के कुछ सदस्य जलीय होते हैं, जैसे पिस्टिया (Pistia) जलगोभी, कुछ पौधों के तने ऊर्ध्व या आरोही होते हैं, जैसे मॉन्स्टेरा (Monstera), तथा कुछ अन्य सदस्यों में भूमिगत कंद अथवा प्रकंद, जैसे अमॉरफोफेलस (Amorphophallus) एवं कॉलोकेसिया (Colocasia) होते हैं। आरोही लताएँ उष्णकटिबंधी वर्षावाले जंगलों में विशेष रूप से पाई जाती हैं।

पौधे अधिकांशतः शाकीय होते हैं जिनमे जलीय या दुग्धरस पाया जाता है। मलाया तथा अफ्रीका के उष्ण कटिबंध के कुछ स्पीशीज की पत्तियाँ दीर्घाकार होती हैं और ये स्पीशीज अत्यधिक फूलोवाले स्पेथ (Spathe) उत्पन्न करते हैं। इस स्पेथों से बड़ी अप्रिय दुर्गंध निकलती है। इन पौधों में परागण मुर्दाखोर मक्खियों (Carrion fly) द्वारा होता है।

फूल छोटे तथा उभयलिंगी (hermaphrodite) या उभय लिंगाश्रयी (Monoecious) होते हैं। फूल स्पाइक (Spike), जिसे स्पेडिक्स (Spadix) कहते हैं, पर लगे रहते हैं। स्पेडिक्स हरे, जैसे एरम (Arum) में, अथवा चमकदार रंग के, जैसे ऐंथूरियम (Anthurium) में, स्पेथ से घिरा होता है।

सर्प पादप, जैसे ऐरिसिमा (Ariscaema) पहाड़ियों पर पाया जाता है, मॉन्स्टेरा डेलिसिओसा (Monstera deliciosa) फलों के लिये महत्वपूर्ण है, अमॉरफोफेलस अर्थात् सूरन (Elephant footyam) तथा एरम 'लार्ड्स ऐंड लेडीज' (Lords and Ladies) खाने योग्य प्रकंद उत्पन्न करते हैं। पोथॉस (Pothos) सजावटी आरोही लता है और एन्थूरियम ग्रीन हाउस का गमले में लगाया जानेवाला आकर्षक पौधा है।

[वी० एम० जी०]

सूरत दे० सुरत

सूरति मिश्र का जन्म आगरा में कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम सिंहमणि मिश्र था। ये वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। इनके गुरु का नाम श्री गंगेश था। कविताक्षेत्र में इनका प्रवेश भक्तिविषयक रचनाओं के माध्यम से हुआ। 'श्रीनाथविलास' इनकी प्रथम कृति है जिसमें इन्होंने कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। श्रीमद्भागवत के आधार पर 'कृष्णचरित्र' के प्रणयन के पश्चात् इन्होंने 'भक्तविनोद' की रचना की। इसमे भक्तों की दिनचर्या वर्णित है। 'भक्तमाल' में इन्होंने वल्लभाचार्य के शिष्यों का प्रशस्तिगान किया। भगवन्नामस्मरण के लिये 'कामधेनु' नामक चमत्कारी रचना के अनंतर 'नखशिख' का निर्माण किया। मर्मज्ञ शास्त्राभ्यासी होने के कारण काव्य के विविध रूपों की ओर इनका झुकाव हुआ। पिंगल, कविशिक्षा, अलंकार, नायिकाभेद एवं रस से संबंधित क्रमशः 'छंदसार', 'कविसिद्धांत', 'अलंकार माला', 'रसरत्न' तथा 'शृंगारसार' लिखा। रसरत्नमाला और रसरत्नाकर नामक रचनाएँ भी इनके नाम से संबद्ध बताई जाती हैं परंतु 'रसरत्न' के अतिरिक्त इनका पृथक् अस्तित्व नहीं है।

काव्यरचना के पश्चात् मिश्र जी पद्यबद्ध टीका की ओर उन्मुख हुए। सर्वप्रथम केशव की 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' की टीकाएँ इन्होंने प्रस्तुत की। रसिकप्रिया की इस टीका का नाम 'रसगाहकचंद्रिका' है। यह जहानाबाद के नसरुल्लाह खाँ के आश्रय में संवत् १७९१ में संपन्न हुई थी। खाँ साहब स्वयं कवि थे और रसगाहक उनका उपनाम था। जोधपुर के दीवान अमरसिंह के यहाँ इन्होंने बिहारी सतसई की 'अमरचंद्रिका' टीका सं० १७९४ में पूर्ण की। तदनंतर सं० १८०० में बीकानेर नरेश जोरावर सिंह के आग्रह पर मिश्र जी ने 'जोरावरप्रकाश' प्रस्तुत किया। वस्तुतः यह 'रसगाहक चंद्रिका' का ही परिवर्तित नाम है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के प्रसिद्ध प्रबोधचंद्रोदय नाटक तथा 'बैतालपंचविंशतिका' का भी इन्होंने पद्यमय अनुवाद किया। तत्कालीन कविसमाज में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

रीतिपरंपरा के समर्थ कवि एवं टीकाकार के रूप में मिश्र जी का महत्वपूर्ण स्थान है।

सं० ग्रं०—खोजविवरण १९०६-०८; शिवसिंह सरोज; मिश्रबंधुविनोद; आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास।

[रा० व० पां०]

सूरदास हिंदी साहित्य के लोकप्रिय महाकवि हैं, जिन्हे भारतीय जन 'भाषा-साहित्य सूर्य' की उपाधि से विभूषित कर नित्य नमन करता आ रहा है। आपकी जीवनी पर सत्य रूप से प्रकाश डालनेवाले कितने ही समसामयिक पूर्वापर के 'सांप्रदायिक' अर्थात् 'पुष्टिमार्गीय' तथा इतर 'भक्त-गुण-गायक' ग्रंथ हैं। इनमें प्रमुख हैं — चौरासी वैष्णवन की वार्ता : श्री गोकुलनाथ (स० १६०८ वि०); वार्ता टीका—'भावप्रकाश' : श्री हरिराय (स० १६६० वि०); वल्लभदिग्विजय . श्री यदुनाथ (स० १६५८ वि०); संस्कृत वार्ता मणिमाला : श्रीनाथ भट्ट (स० अज्ञात); संप्रदायकल्पद्रुम . विट्ठल भट्ट (स० १७२९ वि०); भावसंग्रह : श्रीद्वारकेश (स० १७६० वि०); अष्टसखामृत · प्राणनाथ कवि (स० १७६७ वि०); धौल संग्रह : जमुनादास (स० अज्ञात); वैष्णव आह्निक पद : श्रीगोपिकालंकार (स० १८७९ वि०) और इतर ग्रंथ — भक्तमाल : नाभादास (स० १६६० वि०), भक्तमाल टीका : प्रियादास (स० १७६९ वि०), भक्तनामावली : ध्रुवदास (स० १६९८ वि०); भक्तविनोद कवि मियाँसिंह (स० अज्ञात); नारायण भट्ट चरितामृत : जानकी भट्ट, (सं० १७२२ वि०), राम रसिकावली : रघुराजसिंह रीवाँ नरेश (स० १९३३ वि०); मूल गुसाईं चरित : वेणीमाधव दास (स० अज्ञात)। इनके सिवा अन्य भाषाग्रंथों में आईने अकबरी, मुंतखिब उल् तवारीख, मुंशियात अबुल फजल आदि आदि...। इधर नई खोज मे प्राप्त सूर जीवनी पर प्रकाश डालनेवाली एक कृतिविशेष 'भक्तविहार' और मिली है, जिसे स० १८०७ वि० में कवि 'चददास' ने लिखा है। उसमें अनेक भक्त कवियों के इतिवृत्त के

की उर्वरा शक्ति के अनुसार बाँधी जाती थी। भूमि की भिन्न भिन्न उर्वरता के अनुसार 'अच्छी', 'बुरी' और 'मध्यश्रेणी' की उपज को प्रति बीघे जोडकर, उसका एक तिहाई भाग राजस्व के रूप में वसूल किया जाता था, राजस्व भाग बाजार भाव के अनुसार रकम मे वसूल किया जाता था, जिससे राजस्व कर्मचारियों तथा किसानो को बहुत सुविधा हो जाती थी। इस्लामशाह की मृत्यु तक यह पद्धति चलती रही।

कृषको को जगल आदि काटकर खेती योग्य भूमि बनाने के लिये आर्थिक सहायता भी दी जाती थी। उपलब्ध प्रमाणो से यह ज्ञात हुआ है कि शेरशाह की मालवा पर विजय के पश्चात् नर्मदा की घाटी मे किसानो को बसाकर घाटी को कृषि के लिये प्रयोग किया गया था। शेरशाह ने उन किसानों को अग्रिम ऋण दिया और तीन वर्षों के लिये मालगुजारी माफ कर दी थी। सडको और उनके किनारे किनारे सरायों के व्यापक निर्माण द्वारा भी देश के आर्थिक विकास को जीवन प्रदान किया गया।

सैन्यसगठन में भी आवश्यक सुधार और परिवर्तन किए गए। पहले सामंत लोग किराए के घोडों और असैनिक व्यक्तियो को भी सैनिक प्रदर्शन के समय हाजिर कर देते थे। इस जालसाजी को दूर करने के लिये घोडो पर दाग देने और सवारो की विवरणात्मक नामावली तैयार करने की पद्धति चालू की गई।

स० ग्र०—अब्बास सरवानी : तारीख-ए-शेरशाही; अब्दुल्ला . तारीख-ए-दाऊदी, अबुल फजल अकबरनामा तथा आईन-ए-अकबरी, बदायूँनी · मुंतखबुल् तवारीख, निजामउद्दीन · तबकात-ए-अकबरी; रामप्रसाद त्रिपाठी : सम आस्पेक्ट्स ऑव मुस्लिम ऐड्मिनिस्ट्रेशन, कानूनगो : शेरशाह ऐंड हिज् टाइम्स, इक्तिदार हुसेन सिद्दीकी : अफ़गान डेस्पॉटिज्म इन इंडिया (नई दिल्ली, १९६६), मोरलैंड एग्रेरियन सिस्टम ऑव मुस्लिम इडिया। [इ० हु० सि०]

सूरसागर व्रजभाषा में महाकवि सूरदास द्वारा रचे गए कीर्तनो — पदो का एक सुदर सकलन जो शब्दार्थ की दृष्टि से उपयुक्त और आदरणीय है।

पुरा हस्तलिखित रूप में 'सूरसागर' के दो रूप मिलते हैं —'संग्रहात्मक और सस्कृत भागवत अनुसार 'द्वादश स्कधात्मक'। सग्रहात्मक 'सूरसागर' के भी दो रूप देखने में आते हैं। पहला, आपके—गोघाट (आगरा) पर श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य होने पर प्रथम प्रथम रचे गए भगवल्लीलात्मक पद — 'ब्रज भयो मैहेर कें पूत, जब यै बात सुनी' से प्रारभ होता है, दूसरा — 'मथुरा-जन्म-लीला' से ।' कहा जाता है, हिंदी साहित्येतिहास ग्रथो से ओझल 'सूरसागर' के उत्पत्तिविकास का एक अलग इतिहास है, जो अब तक प्रकाश में नही आया है और श्रीसूर के समकालीन भक्त इतिहास रचयिताओं — 'श्री गोकुलनाथ जी, श्रीहरिराय जी (स० – १६४७ वि०), और श्री नाभादास जी (स०—१६४२ वि०) प्रभृति ने जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया है। अत इन पूर्वापर के अनेक महत्वपूर्ण ग्रथो से जाना जाता है कि श्रीसूर ने — 'सहस्रावधि पद किए, लक्षावधि पद रचे, कोई ग्रथ नही रचा। बाद में यह अनत-सूर-पदावली सागर कहलाई। वस्तुत श्रीसूर, जैसा इन ऊपर लिखे सदर्भग्रथो से जाना जाता है, भगवल्लीला के भाव भरे उन्मुक्त गायक थे, सो नित्य नई नई पदरचना कर, अपने प्रभु 'गोवर्धननाथ जी' के समुख गाया करते थे। रचना करनेवाले थे, सो नित्य सवेरे से सध्या तक गाए जानेवाले रागो में ललित रसो का रंग भरकर अपनी वाणी की तूलिका से चित्रित कर अपने को धन्य किया करते थे। अस्तु, न उनमे अपनी उन्मुक्त कृतियो को सग्रह करने का भाव था, और न कोई क्रम देने की उमग। उनका कार्य तो अपने प्रभु की नाना गुनन गरूली गुणावली गान।, उसके अमृतोपम रस में निमग्न हो झूमना तथा — 'एतेचाश कलापु न कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (भाग० – १।३।२८) को नदालय मे बाल से पौगड अवस्था तक लीलाओं मे तदात्मभाव से विभोर होना था, यहाँ अपनी समस्त मुक्तक रचनाओ को एकत्र कर क्रमबद्ध करने का समय और स्थान कहाँ था? कहा जाता है, श्री सूरदास 'एकदम अधे थे,' तब अपनी जब तब की समस्त रचनाओ को कैसे एकत्र करते? फिर भी सूरदास द्वारा नित्य रचे और गाए जानेवाले पदों का लेखन और सकलन अवश्य होता रहा होगा। अन्यथा वे मौखिक रूप से रचित और गाए गए पद लुप्त हो गए होते। सभवत. सूर के समकालीन शिष्य या मित्र — यदि सूर सचमुच अधे थे तो — उन पदो को लिखते और सकलित करते रहे होगे। अब तक उसके सग्रहात्मक या द्वादश स्कधात्मक बनने का कोई इतिहास पूर्णत. ज्ञात नहीं है। 'गीत-संगीत-सागर. (गो० रघुनाथ जी नामरत्नाख्य) श्री विट्ठलनाथ जी गोस्वामी, (स० १५७२ वि०) के समय श्रीमद्वल्लभाचार्य सेवित कई' निधियाँ (मूर्तियाँ), आपके वशजो द्वारा, ब्रज से बाहर चली गई थी। यत सप्रदाय के अनुसार 'कीर्तनों के बिना सेवा नहीं, और सेवा, बिना कीर्तनो के नहीं अत जहाँ जहाँ ये निधियाँ गईं, वही वही 'कठ' वा 'ग्रथ' रूप मे अष्टछाप के कवियो की कृतियाँ भी गईं और वहाँ इनके सकलित रूप में — 'नित्य कीर्तन' और 'वर्षोत्सव' नाम पड़े, ऐसा भी कहा जाता है।

सूर के सागर का 'सग्रहात्मक' रूप श्रीसूर के समुख ही सकलित हो चुका था। उसकी स० १६३० वि० की लिखी प्रति व्रज में मिलती है। बाद के अनेक लिखित सग्रहरूप भी उसके मिलते हैं। मुद्रित रूप इसका कही पुराना है। पहले यह मथुरा (स० १८४० ई०) से, बाद में आगरा (स० — १८६७ ई० तीसरी बार), जयपुर (राजस्थान सं० १८६५ ई०), दिल्ली (स० १८६० ई०) और कलकत्ता से स० १८९८ ई० में लीथो प्रेसों से छपकर प्रकाशित हो चुका था। कृष्णानद व्यासदेव सकलित 'रागकल्पद्रुम' भी इस समय का सग्रहात्मक सूरसागर का एक विकृत रूप है, जो सगीत के रगो मे बँटा हुआ है। व्रजभाषा के रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि "द्विजदेव"—अर्थात् महाराज मानसिंह, अयोध्या नरेश (सं० १९०७ वि०) ने इसे स० १९२० वि० में सपादित कर लखनऊ के

की वाणी ने भगवल्लीला का जो यशोद्घाटन विस्तार के साथ किया, वह अवर्णनीय है, अकथनीय है। साहित्यशास्त्रोक्त वे सभी मान्य गुण — रस, ध्वनि, अलंकार — के सच्चे आगार हैं। सच तो यह है कि इस हिंदी भाषा के मुकुटमणि कवि ने जिस विषय को भी छू दिया, वही साहित्य का उज्वल चमकता रत्न बन गया। अथ से इति तक के सभी सूर-ग्रंथ-लेखकों ने आपकी रचनाओं के नानाभाँति से गुण गाए हैं।

सं० ग्रं० — खोजविवरण : काशी नागरीप्रचारिणी सभा, १९०६ ई० से १९४० ई० तक। हिंदी साहित्य का इतिहास : डा० जार्ज ग्रियर्सन। शिवसिंह सरोज। मिश्रबंधुविनोद। हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य प० रामचद्र शुक्ल। हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा। सूर : एक अध्ययन : शिखरचंद्र जैन। सूर साहित्य : प० हजारीप्रसाद द्विवेदी। सूरदास . आचार्य रामचद्र शुक्ल; महाकवि सूरदास : डॉ० नददुलारे वाजपेयी; सूरदास : नलिनीमोहन सान्याल; सूरदास : एक अध्ययन : रामरत्न भटनागर एम० ए०। सूरसाहित्य की भूमिका : रामरत्न भटनागर एम० ए०। सूरनिर्णय . द्वारिका पारीख। सूर-समीक्षा : नरोत्तम स्वामी एम० ए०। सूर की झाँकी : डॉ० सत्येंद्र। अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय : डॉ० दीनदयाल गुप्त। सूरदास का धार्मिक काव्य : डॉ० जनार्दन मिश्र। सूरदास — जीवनी और कृतियों का अध्ययन : डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा। सूरसौरभ : डॉ० मुंशीराम शर्मा। सूरदास और उनका साहित्य : डॉ० हरवंशलाल शर्मा। सूरदास . अध्ययनसामग्री : जवाहरलाल चतुर्वेदी, त्रिलोकी नाथ आदि।

[ज० च०]

सूरदास मदनमोहन ब्राह्मण थे तथा इनका नाम सूरध्वज था। यह भक्त सुकवि, सगीतज्ञ तथा साधुसेवी महात्मा थे। नामानुकूल सूरदास छाप था पर प्रसिद्ध सूरदास से विभिन्नता प्रगट करने के लिये अपने इष्टदेव मदनमोहन जी का नाम उसमें जोड दिया। अकबर के शासनकाल में यह संडीला के अमीन थे पर वहाँ की आय एक बार साधुओं के भडारे में व्यय कर देने से यह भागे और वृंदावन मे आ बसे। श्री सनातन गोस्वामी के प्रतिष्ठापित श्री मदनमोहन जी के पुराने मदिर मे रहने लगे, जहाँ अभी तक इनकी समाधि वर्तमान है। इनके पदों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनका समय सं० १५७० से स० १६४० के बीच में था।

[ब्र० र० दा०]

सूर राजवंश (१५४०–१५५५ ई०) का संस्थापक शेरशाह अफगानो की सूर जाति का था। यह 'रोह' (अफगानों का मूल स्थान) की एक छोटी और अभावग्रस्त जाति थी। शेरशाह का दादा इब्राहीम सूर १५४२ ई० में भारत आया और हिम्मतखाँ सूर तथा जमालखाँ की सेनाओं में सेवाएँ कीं। हसन सूर जो फरीद (बाद में शेरशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ) का पिता था, जमाल खाँ की सेवा मे ५०० सवार और सहसराम के इक्ता का पद प्राप्त करने मे सफल हो गया। शेरशाह अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् उसके इक्ता का उत्तराधिकारी हुआ, और वह उसपर लोदी साम्राज्य के पतन (१५२६ ई०) तक बना रहा। इसके पश्चात् उसने धीरे धीरे उन्नति की। दक्षिण बिहार में लोहानी शासन का अंत कर उसने अपनी शक्ति सुदृढ कर ली। वह बगाल जीतने मे सफल हो गया और १५४० ई० में उसने मुगलो को भी भारत से खदेड़ दिया। उसके सत्तारूढ होने के साथ साथ अफगान साम्राज्य चतुर्दिक् फैला। उसने प्रथम अफगान (लोदी) साम्राज्य मे बगाल, मालवा, पश्चिमी राजपूताना, मुल्तान और उत्तरी सिंध जोड़कर उसका विस्तार दुगुने से भी अधिक कर दिया।

शेरशाह का दूसरा पुत्र जलाल खाँ उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह १५४५ ई० में इस्लामशाह की उपाधि के साथ शासनारूढ हुआ। इस्लामशाह ने ९ वर्षों (१५४५–१५५४ ई०) तक राज्य किया। उसे अपने शासनकाल मे सदैव शेरशाह युगीन सामंतो के विद्रोहों को दबाने में व्यस्त रहना पडा। उसने राजकीय मामलो में अपने पिता की सारी नीतियों का पालन किया, तथा आवश्यकतानुसार संशोधन और सुधार के कार्य भी किए। इस्लामशाह का अल्पवयस्क पुत्र फीरोज़ उसका उत्तराधिकारी हुआ, किंतु मुबारिज खाँ ने, जो शेरशाह के छोटे भाई निजाम खाँ का बेटा था, उसकी हत्या कर दी।

मुबारिज़ खाँ सुलतान आदिल शाह की उपाधि के साथ गद्दी पर बैठा। फीरोज़ की हत्या से शेरशाह और इस्लामशाह के सामंत उत्तेजित हो गए और उन्होने मुबारिज़ खाँ के विरुद्ध हथियार उठा लिए। बाहरी विलायतों के सभी शक्तिशाली मुक्ताओं ने अपने को स्वाधीन घोषित कर दिया और प्रभुत्व के लिये परस्पर लड़ने लगे। यही बढ़ती हुई अराजकता अफगान साम्राज्य के पतन और मुगल-शासन की पुनः स्थापना का कारण बनी।

सूर साम्राज्य की यह विशेषता थी कि उसके अल्पकालिक जीवन में राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। यद्यपि शेरशाह और इस्लामशाह की असामयिक मृत्यु हुई, तथापि उनके द्वारा पुनर्व्यवस्थित प्रशासकीय सस्थाएँ मुगलो और अंग्रेजो के काल में भी जारी रहीं।

शेरशाह ने प्रशासनिक सुधारों और व्यवस्थाओं को अलाउद्दीन खल्जी की नीतियो के आधार पर गठित किया किंतु उसने कार्याधिकारियों के प्रति खल्जी के निर्दयतापूर्ण व्यवहार की अपेक्षा अपनी नीतियों में मानवीय व्यवहार को स्थान दिया। प्राय सभी नगरो में सामंतो की गतिविधियाँ बादशाह को सूचित करने के लिये गुप्तचर नियुक्त किए गए थे। अपराधो के मामलों में यदि वास्तविक अपराधी पकड़े नही जाते थे तो उस क्षेत्र के प्रशासनिक अधिकारी उत्तरादायी ठहराए जाते थे।

शेरशाह ने तीन दरें निश्चित की थीं, जिनमें राज्य की सारी पैदावार का एक तिहाई राजकोष में लिया जाता था। ये दरें जमीन

कालियदवन दहन, मुचुकुंद उद्धार, द्वारकाप्रवेश, रुक्मिणी विवाह, प्रद्युम्नविवाह, अनिरुद्धविवाह, राजा नृग उद्धार, बलराम जी का पुनः व्रजगमन, माधविवाह, कृष्ण-हस्तिनापुर-गमन, जरासंध और शिशुपाल का वध, शाल्व का द्वारका पर आक्रमण, शाल्ववध, दंतवक्र का वध, बल्वलवध, सुदामाचरित्र, कुरुक्षेत्र आगमन, कृष्ण का श्रीनंद, यशोदा तथा गोपियों से मिलना, वेद और नारद स्तुतियाँ, अर्जुन-सुभद्रा-विवाह, भस्मासुरवध, भृगु-परीक्षा, इत्यादि ।

एकादश स्कंध — श्रीकृष्ण का उद्धव को बदरिकाश्रम भेजना, नारायण तथा हंसावतार कथन ।

द्वादश स्कंध — 'बौद्धावतार, कल्कि-अवतार-कथन, राजा परीक्षित तथा जन्मेजय कथा, भगवद् अवतारों का वर्णन आदि ।

इस प्रकार यत्र तत्र बिखरे इस श्रीमद्भागवत अनुसार द्वादश-स्कंधात्मक रूप मे भी, श्री सूर का विशिष्ट वाङ्मय 'हरि, हरि, हरि, हरि सुमरन करो' जैसे अनेक अनगढ कांच मणियो के साथ रगड खा खाकर मटमैला होकर भी कवित्व की प्रभा के साथ कोमलता, कमनीयता, कला, एवं कृष्णस्तुभगवान् स्वय की सगुणात्मक भक्ति, उसकी भव्यता, विलक्षणता, उनके विलास, व्यग्य और विदग्धता आदि चमक चमककर आपके कृतित्वरूप सागर को, नित्य नए रूप में दर्शनीय और वदनीय बना रहे हैं । [ज० च०]

सूरी संचारण (Suri-transmission) अपने नवीनतम रूप में सूरी सचारण डीजल रेल कर्षण इकाइयो में शक्ति के सचारण के लिये सरल किंतु अत्यंत सक्षम विधि है। इसमे केवल दो चक्रपथों का उपयोग किया जाता है। एक परिवर्तक योजक (Converter-Coupling) का ब्रोकहाउस प्रकार (Brockhouse Type) और दूसरा द्रव यान्त्रिक योजक (Fluid Mechanical Coupling)। वास्तविक सेवा की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तक योजक की व्यवस्था की जा सकती है, जिससे यान की गति शून्य से ६०-७० प्रतिशत मार्गगति तक रह सके। द्रव यान्त्रिक योजक उस गति से आगे १०० प्रतिशत यान गति के लिये उपयोग में लाया जाता है।

ब्रोकहाउस परिवर्तक योजक और द्रव यान्त्रिक योजक पर प्रतिलोम नियमन (Reverse Governing) से डीजल इंजन के लक्षणों के ऊपर उचित प्रभाव डाल सकने के कारण सूरीसचारण रेल कर्षण मे सर्वत्र उपयोग के लिये अत्यत सतोषजनक विधि है और उच्च अश्वशक्ति के यानो उदाहरणार्थ ४०० से २००० अश्वशक्ति तक के लिये विशेष हितकारी है।

परिवर्तक योजक से द्रव यान्त्रिक योजक में चक्रपथ परिवर्तन, डीजल इंजन के पूरे भार और शक्ति की अवस्था में, यान के कर्षण कार्य (Tractive Effort) के किसी भी चरण में, किसी धक्के और रुकावट के बिना हो जाता है।

सूरी संचारण की क्षमता अत्यत अधिक है।

इस महत्वपूर्ण आविष्कार का नामकरण, जो रेलो के ईंधन व्यय में बहुत बचत करेगा, उसके आविष्कारक भारतीय रेलों के यान्त्रिक इंजीनियर श्री म० म० सूरी के नाम पर हुआ है।

[म० म० सू०]

सूर्य खगोल कार्यों में मनुष्य का सबसे अधिक संबंध सूर्य से है। यदि उन लोककथाओं का परीक्षण किया जाय जो आधुनिक वैज्ञानिक युग के प्रारंभ होने के पहले पृथ्वी के विविध भागों में बसने-वाली जातियों में प्रचलित थी तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि वे लोग यह पूर्णतया जानते थे कि सूर्य के बिना उनका जीवन असंभव है। इसी भावना से प्रेरित होकर उनमे से अनेक जातियों ने सूर्य की आराधना आरंभ की। उदाहरणत वेदो में सूर्य के संबंध में जो मंत्र हैं उनसे यह स्पष्ट है कि वैदिक आर्य यह भली भाँति जानते थे कि सूर्य प्रकाश और ऊष्मा का प्रभव है तथा उसी के कारण रात, दिन और ऋतुएँ होती हैं। एक सूर्योदय से अगले सूर्योदय की अवधि को उन्होने दिवस का नाम दिया। उन्हे यह भी विदित था कि लगभग ३६५ दिवसो की अवधि में सूर्य कुछ विशेष नक्षत्रमडलो मे भ्रमण करता हुआ पुन अपने पूर्व स्थान पर आ जाता है। इस अवधि को वे वर्ष कहते थे जो प्रचलित शब्दावली के अनुसार सायन वर्ष (Tropical Solar year) कहलाएगा। उन्होंने वर्ष को ३०-३० दिवसवाले १२ मासो मे विभक्त किया। इस विचार से कि प्रत्येक ऋतु सदैव निश्चित मासों मे ही पडे, वे वर्ष मे आवश्यकतानुसार अधिक मास जोड देते थे।

मनुष्य के जीवन का सूर्य के साथ इतना घनिष्ट सबध होते हुए भी प्राचीन लोग उपकरणों के अभाव के कारण विशेष वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त न कर सके। सूर्य संबंधी सबसे पहला महत्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य ईसा से लगभग ७४७ वर्ष पूर्व प्राचीन बेबीलोन निवासियो को विदित था। वे यह जानते थे कि प्रत्येक सूर्यग्रहण से १८ वर्ष और ११⅓ दिवसो की अवधि के पश्चात् ग्रहण के लक्षणों की आवृत्ति होती है। इस अवधि को वे सारोस कहते थे और आज भी यह इसी नाम से प्रसिद्ध है। परंतु सूर्य के भौतिक लक्षणो के वैज्ञानिक अध्ययन का प्रारंभ तो सन् १६११ से ही मानना चाहिए जब गेलीलियो ने प्रथम बार सौरबिंब के अवलोकन में दूरदर्शी (Telescope) का उपयोग किया। दूरदर्शी की सहायता से उन्होंने बिंब पर कुछ कलंक देखें जो नियमित रूप से पश्चिम की ओर परिवहन कर रहे थे। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि सूर्य, पृथ्वी की भाँति, अपने अक्ष पर परिभ्रमण करता है जिसका आवर्तकाल एक चंद्रमास के लगभग है। आगामी कुछ वर्षों मे सूर्यकलकों और सूर्य के परिभ्रमण के आवर्तनकाल का चाक्षुष अध्ययन होता रहा। ज्योतिष के अध्ययन में दूसरा महत्वपूर्ण वर्ष १८१४ है जब फ्राउनहोफर (Fraunhofer) ने सूर्य के अध्ययन में स्पेक्ट्रमदर्शी (spectroscope) का प्रथम बार प्रयोग किया। परंतु उस उपकरण का पूरा पूरा लाभ तो तभी उठाया जा सका जब फोटोग्राफी में इतनी प्रगति हो गई कि खगोल कार्यों के स्पेक्ट्रमपट्ट के स्थायी चित्र लिए जा सकें। इन चित्रों की सहायता से विविध कार्यों के स्पेक्ट्रमपट्टों का तुल-

नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित किया था। ये सभी संग्रहात्मक रूप सूरसागर, भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मलीला गायन रूप गोकुल नंदालय में मनाए गए 'नंदमहोत्सव' से प्रारंभ होकर उनकी समस्त व्रजलीला मथुरा आगमन, उद्धव-गोपी-संवाद, श्री राम, नरसिंह तथा वामन जयंतियाँ एवं पहले — श्री वल्लभाचार्य जी की शिष्यता से पूर्व रचे गए 'दीनता आश्रय' के पदों के बाद समाप्त हुए हैं। सूर पदों के इस प्रकार संकलन की प्रवृत्ति उनके सागर के संग्रहात्मक रूप पर ही समाप्त नहीं, वह विविध रूपों में आगे बढ़ी, जिससे उनकी पद कृति के नाना संकलित रूप हस्तलिखित तथा मुद्रित देखने में आते हैं, जो इस प्रकार हैं — दीनता आश्रय के पद, दृष्टिकूट पद, जिसे आज 'साहित्यलहरी' कहा जाता है। रामायण, बाललीला के पद, विनयपत्रिका, वैराग्यसतक, सूरपचासी, सूरबत्तीसी, सूरबहोत्तरी, सूर भ्रमरगीत, सूर-साठी, सूरदास नयन, मुरलीमाधुरी आदि आदि, किंतु ये सभी संग्रह आपके संग्रहात्मक 'सागर कल्पतरु' के ही मधुर फल हैं।

श्री सूर के सागर का रूप श्री व्यासप्रणीत और शुक-मुख-निसृत "श्रीमद् भागवत (संस्कृत) अनुसार "द्वादश स्कंधात्मक" भी बना। वह कब बना, कुछ कहा नहीं जा सकता। हिंदी के साहित्येतिहास ग्रंथ इस विषय में चुप हैं। इस द्वादश स्कंधात्मक "सूर सागर" की सबसे प्राचीन प्रति सं० १७५७ वि० की मिलती है।

इसके बाद की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। उनके आधार पर कहा जा सकता है कि सूर समुदित सागर का यह "श्रीमद्भागवत अनुसार द्वादश स्कंधात्मक रूप" अठारहवीं शती के पहले नहीं बन पाया था। उसका पूर्वकथित "संग्रहात्मक" रूप इस समय तक काफी प्रसार पा चुका था। साथ ही इस (संग्रहात्मक) रूप की सुंदरता, सरसता और भाषा की शुद्धता एवं मनोहरता में भी कोई विशेष अंतर नहीं हो पाया था। वह सूर के समय जैसी विविध रागमयी थी वैसी ही सुंदर बनी रही, किंतु इसके इस द्वादश स्कंधात्मक रूपों में वह बात समुचित रूप से नहीं रह सकी। ज्यों ज्यों हस्तलिखित रूपों में वह आगे बढ़ती गई त्यों त्यों सूर की मंजुल भाषा से दूर हटती गई। फिर भी जिस किसी व्यक्ति ने अपना अस्तित्व खोकर और 'हरि, हरि, हरि हरि सुमरन करो" जैसे असुंदर भाषाहीन कथात्मक पदों की रचना कर तथा श्री सूर के श्रीमद्वल्लभाचार्य की चरणशरण में आने से पहले रचे गए "दीनता आश्रय" के पदविशेषों को भागवत अनुसार प्रथम स्कंध तक ही नहीं, दशम स्कंध उत्तरार्ध, एकादश और द्वादश स्कंधों को सँजोया, वह आदरणीय है। इस द्वादशस्कंधात्मक सूरसागर की "रूपरेखा" इस प्रकार है :

प्रथम स्कंध — भक्ति की सरस व्याख्या, भागवतनिर्माण का प्रयोजन, शुक उत्पत्ति, व्यास अवतार, संक्षिप्त महाभारत कथा, सूत-शौनक-संवाद, भीष्मप्रतिज्ञा, भीष्म-देह-त्याग, कृष्ण-द्वारिकागमन, युधिष्ठिरवैराग्य, पांडवों का हिमालयगमन, परीक्षितजन्म, ऋषिशाप, कलियुग को दंड इत्यादि।

द्वितीय स्कंध — सृष्टि उत्पत्ति, विराट् पुरुष का वर्णन, चौबीस अवतारों की कथा, ब्रह्मा उत्पत्ति, भागवत चार श्लोक महिमा। साथ ही इस स्कंध के प्रारंभ में भक्ति और सत्संग की महिमा, भक्तिसाधन, आत्मज्ञान, भगवान् की विराट् रूप में आरती का भी यत्किंचित् उल्लेख है।

तृतीय स्कंध — उद्धव-विदुर-संवाद, विदुर को मैत्रेय द्वारा बताए गए ज्ञान की प्राप्ति, सप्तर्षि और चार मनुष्यों की उत्पत्ति, देवासुर जन्म, वाराह-अवतार-वर्णन, कर्दम-देवहूति-विवाह, कपिल मुनि अवतार, देवहूति का कपिल मुनि से भक्ति संबंधी प्रश्न, भक्तिमहिमा, देवहूति-हरि-पद-प्राप्ति।

चतुर्थ स्कंध — यज्ञपुरुष अवतार, पार्वतीविवाह, ध्रुवकथा, पृथु अवतार, पुरंजन आख्यान।

पंचम स्कंध — ऋषभदेव अवतार, जडभरत कथा, रहूगण संवाद।

षष्ठ स्कंध — अजामिल उद्धार, बृहस्पति अवतार-कथन, वृत्रासुरवध, इंद्र का सिंहासन से च्युत होना, गुरुमहिमा, गुरुकृपा से इंद्र को पुनः सिंहासनप्राप्ति।

सप्तम स्कंध — नृसिंह-अवतार-वर्णन।

अष्टम स्कंध — गजेंद्रमोक्ष, कूर्मावतार, समुद्रमथन, विष्णु भगवान् का मोहिनी-रूप-धारण, वामन तथा मत्स्य अवतारों का वर्णन।

नवम स्कंध — पुरुरवा-उर्वशी-आख्यान, च्यवन ऋषि कथा, हलधरविवाह, राजा अंबरीष और सौभरि ऋषि का उपाख्यान, गंगा आगमन, परशुराम और श्री राम का अवतार, अहल्योद्धार।

दशम स्कंध — (पूर्वार्ध): भगवान् कृष्ण का जन्म, मथुरा से गोकुल पधारना, पूतनावध, शकटासुर तथा तृणावर्त वध, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णछेदन, घुटुरुन चलाना, बालवेशशोभा, चंद्रप्रस्ताव, कलेऊ, मृत्तिकाभक्षण, माखन-चोरी, गोदोहन, वत्सासुर, बकासुर, अघासुरों के वध, ब्रह्मा द्वारा गो-वत्स-हरण, राधा-प्रथम-मिलन, राधा-नंदघर-आगमन, कृष्ण का राधा के घर जाना, गोचारण, धेनुक-वध, कालियदमन, दावानलपान, प्रलंबासुरवध, मुरली-चीर-हरण, पनघट रोकना, गोवर्धन पूजा, दानलीला, नेत्रवर्णन, रासलीला, राधा-कृष्ण-विवाह, मान, राधा गुरुमान, हिंडोला-लीला, वृषभासुर, केशी, भौमासुर वध, अक्रूर आगमन, कृष्ण का मथुरा जाना, कुब्जा मिलन, धोबी संहार, शल, तोपल, मुष्टिक और चाणूर का वध, धनुषभंग, कुवलयापीड़ (हाथी) वध, कंसवध, राजा उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाना, वसुदेव देवकी की कारागार से मुक्ति, यज्ञोपवीत, कुब्जाघर गमन, आदि आदि।

दशम स्कंध (उत्तरार्ध) — जरासंध युद्ध, द्वारकानिर्माण,

हाइड्रोजन तथा कैल्सियम परमाणुओं द्वारा विकिरण किए गए प्रकाश मे लिए गए फोटोग्राफ ने उन घटनाओ को प्रकट किया है जिनका कोई अनुमान भी नही लग सकता था। इन प्रकाशों में लिए गए फोटोग्राफ एक दूसरे मे भिन्न लक्षण प्रकट करते हैं। हाइड्रोजन परमाणुओ के प्रकाश में लिए गए फोटोग्राफ यह बताते हैं कि वहाँ के परमाणु किस भौतिक अवस्था में हैं तथा कैल्सियम के प्रकाश में लिए गए फोटोग्राफ यह बताते हैं कि द्वियनित कैल्सियम परमाणु किस भौतिक अवस्था में हैं।

द्वियनित कैल्सियम के प्रकाश में लिए गए फोटोग्राफों का प्रमुख लक्षण यह है कि वे कलंको के समीप के अथवा विक्षोभ में आए हुए प्रकाशमडल के भागों मे कैल्सियम गैस के बडे बडे दीप्तिमान मेघ प्रगट करते हैं। इसके विरुद्ध हाइड्रोजन के प्रकाश में लिए गए फोटोग्राफ प्रकाशमडल पर घटनेवाली सूक्ष्मतर घटनाओ को भी अधिक विस्तार से प्रगट करते हैं। इन फोटोग्राफो की पृष्ठभूमि में चमकते काले दाने होते हैं जिनपर चमकते एवं काले पतले ततु (filament) प्रगट होते हैं और कलक की परिधि के निकट के भाग तंतुओ से बने हुए दिखाई देते हैं। कैल्सियम और हाइड्रोजन के फोटोग्राफों में इतना अतर भिन्न भिन्न भागो के रासायनिक सघटन के अतर के कारण नही हो सकता क्योंकि सूर्य का वर्णमडल इतना प्रक्षुब्ध (turbulent) होता है कि ऐसे अतर अधिक समय तक विद्यमान नही रह सकते। वास्तव मे यह अतर इन तत्वों के रासायनिक लक्षणों की भिन्नता के कारण उत्पन्न होता है। अधिकाश कैल्सियम परमाणु सरलता से फोटोग्राफ के लिये अभीष्ट प्रकाश का विकिरण करने में समर्थ होते हैं। इसके विरुद्ध लगभग दस लाख हाइड्रोजन परमाणुओ में केवल एक ही परमाणु को अभीष्ट वर्ण का प्रकाश विकिरण करने को उद्दीप्त किया जा सकता है। अत: हाइड्रोजन परमाणु उद्दीपन की दशा मे अल्प से अल्प परिवर्तनों से भी प्रभावित हो जाता है। हाइड्रोजन का दीप्त मेघ यह प्रगट करता है कि वह भाग अत्यन्त उष्ण है। इसी प्रकार काला मेघ भी यह प्रगट करता है कि उस भाग मे ताप इतना है कि हाइड्रोजन परमाणु उद्दीपन की अवस्था मे है क्योंकि सामान्य परमाणु विकिरण के लिये लगभग पारदर्शी हैं। अभी तक यह न जाना जा सका कि क्यों कुछ मेघ दीप्त होते हैं और कुछ काले। कदाचित् दीप्त मेघो के भागो का पदार्थ काले मेघो के भागो के पदार्थ की अपेक्षा अधिक उष्ण, सघन एव विस्तृत है। दीप्त धब्बे स्पष्टत: प्रतुंगों से सबद्ध हैं जिनका वर्णन आगे किया जाएगा। काले मेघो को कैल्सियम के प्रकाश में देखें अथवा हाइड्रोजन के प्रकाश मे, वे भी रचना में साधारणत पत्र जैसे होते हैं, परतु कभी कभी लबे काले सर्प के आकार में भी दृष्टिगत होते हैं। ये लबे काले मेघ भी सहस्रों धागों से बुने हुए होते हैं और कुछ दिनों तक विद्यमान रहते हैं। अत में अचानक विस्फोट के साथ अदृश्य हो जाते हैं। ये काले मेघ भी प्रतुंग ही हैं जो प्रकाशमडल की दीप्त पृष्ठभूमि में काले दिखाई देते हैं। ये कैल्सियम के प्रकाश की अपेक्षा हाइड्रोजन के प्रकाश मे अधिक विशिष्ट दिखलाई देते हैं।

कणिकायन (Granulations) — कैल्सियम अथवा हाइड्रोजन के प्रकाश में लिए गए फोटोग्राफो मे पकाए हुए भात के समान दिखाई देनेवाले विकारों को कणिकायन कहते हैं। यह कणिकायन विकार प्रकाशमडल की अपेक्षा कुछ अधिक दीप्त होते हैं और इनके व्यास ७२०-२०८० किमी तक होते हैं। कीनन के मतानुसार प्रतिक्षण संपूर्ण सूर्यबिंब पर २५ लाख से अधिक कण विद्यमान होते हैं। अभी तक यह पूर्ण रूप से नही जाना जा सका है कि ये कण क्यो उत्पन्न होते हैं और इनके भौतिक लक्षण क्या हैं। कुछ ज्योतिषियो का मत है कि ये कण प्रकाशमडलीय पदार्थ मे विद्यमान तरंगो के शिखर हैं जिनका ताप निकट के पदार्थ की अपेक्षा अधिक है।

सूर्यकलक (Sunspot) कुछ कलक अकेले प्रगट होते हैं, परतु अधिकाश कलक दो या दो से अधिक के समूहो में प्रगट होते हैं। प्रत्येक कलक को दो भागो में विभाजित किया जा सकता है केंद्रीय कृष्ण भाग तथा उसके आसपास का श्यामल (Blackish) भाग। कलक अनेक परिमाण के होते हैं। सबसे छोटे कलक का परिमाण जो अब तक देखा गया है कुछ सौ किमी के लगभग होता है और ऐसे ही छोटे कलकों की सख्या सबसे अधिक होती है। इस कथन का अर्थ यह नही कि सूर्यबिंब पर इनसे छोटे परिमाण के कलक नही हैं अथवा नही हो सकते हैं। यदि इनसे छोटी माप के कलक हो, तो भी उनका अवलोकन सभव नही क्योंकि एक विशेष परिमाण से छोटे कलंक दूरदर्शी की सहायता से भी नही देखे जा सकते। बडे बडे अकेले कलको की माप ३२,००० किमी० से भी अधिक हो सकती है और कलंकयुग्म की माप १६,००,००० किमी से भी अधिक हो सकती है। यही नही, कलंकों के द्वारा उत्पन्न किए हुए विक्षोभ तो उनके आस पास बडे विस्तृत भाग मे फैल जाते हैं। सबसे बड़ा सूर्यकलक सन् १९४७ में दृष्टिगत हुआ था जो सूर्यबिंब के लगभग १ प्रतिशत क्षेत्र मे फैला था।

कलंक स्थायी रूप से विद्यमान नही रहते। वे उत्पन्न होते हैं और कुछ समय के पश्चात् विलीन हो जाते हैं। उनका जीवनकाल उनकी माप के अनुपात में होता है, अर्थात् छोटे कलक अल्पजीवी होते हैं और वे कुछ घटो से अधिक विद्यमान नहीं रहते। इसके विपरीत बडे कलकों का जीवनकाल कई सप्ताह तक का होता है।

ऐसा देखा गया है कि कलक, प्रकाशमडल के विशेष भागो में ही प्रगट होते हैं। (पृथ्वी की भाँति प्रकाशमडल पर भी विषुवत् वृत्त की कल्पना की गई है) विषुवत्वृत्त के दोनों ओर लगभग ४ अंश तक के प्रदेश में अत्यत कम कलक देखे गए हैं। इन प्रदेशो से आगे लगभग ४० अक्षातर तक प्रसारित भाग मे कलक अधिकता से उत्पन्न होते हैं। ४० अक्षातर से आगे कलको की सख्या कम होती जाती है, यहाँ तक कि ध्रुवों पर आज तक कोई कलक नही देखा गया है।

जर्मन ज्योतिषी स्वावे ने १९वीं शताब्दी के प्रारभ में लगभग २० वर्ष तक कलको का अवलोकन किया। वे प्रति दिन सूर्यबिंब पर दृष्टित होनेवाले कलकों की सख्या गिन लेते थे और इस प्रकार तिथि के विचार से उन्होंने बृहत् सारणी तैयार की जिसके आधार पर वे यह बता सके कि कलको की सख्या में नियमित रूप से परिवर्तन होता है। कुछ दिनो और कभी कभी कुछ सप्ताहों तक सूर्यबिंब पर भी कलक दृष्टिगत नहीं होता। इस काल को कलंक अतिपय्य

नात्मक अध्ययन संभव हो सका। सन् १८९१ में हेल और डेसलेंड्रेस ने एक स्पेक्ट्रमी-सूर्यचित्री (Spectroheliography) का आविष्कार किया जिसने इस अध्ययन को महान् प्रगति दी। कुछ वर्षों से एकवर्ण सूर्यचित्री को चलचित्रक (Movie Camera) के साथ जोडकर सूर्य पर होनेवाली अनेक घटनाओ के चलचित्र बनाए जा रहे हैं। इन चलचित्रो ने इस अनुसंधान को एक नवीन रूप प्रदान किया है। परंतु इन चित्रों का वास्तविक महत्व तो क्वांटम-सिद्धात और साहा के अयनन सूत्र की सहायता से ही जाना जा सका। सन् १९३० से अब तक अनेक यत्रो का आविष्कार हो चुका है जिनमें ल्यो द्वारा निर्मित परिमंडलचित्रक (Coronograph) का मुख्य स्थान है। इन यत्रो ने अनेक नवीन तथ्यो को प्रगट किया। दूसरी ओर सैद्धातिक अध्ययन में द्रवगतिकी (Hydrodynamics) तथा विद्युत्गतिकी (Electrodynamics) का उपयोग होने लगा जिससे अनेक भौतिक घटनाओ को समझने मे समुचित सहायता मिली है।

मदाकिनी में सूर्य की स्थिति : सूर्य मंदाकिनी का एक साधारण सदस्य है। वह मंदाकिनी के केंद्र से लगभग तीस हजार प्रकाशवर्षों (प्रकाशवर्ष उस दूरी को कहते हैं जिसको प्रकाश एक वर्ष में पार करता है) के अतर पर उस स्थान पर स्थित है जहाँ पर उसके और भागो की तुलना मे तारो का घनत्व बहुत कम है।

सूर्य का काय—साधारण चाक्षुष अवलोकन पर सूर्य एक गोल-काय जैसा दिखाई देता है जिसका पृष्ठ पूर्ण रूप से विकारहीन है। सूर्य का यह दृश्य प्रकाशमंडल (Photosphere) कहलाता है। प्रकाशमंडल का व्यास ८६४००० मील अथवा १४×१०^{१०} सेंमी है और लगभग पृथ्वी के व्यास का १०९ गुना है। इसका पुंज $२\cdot२४ \times १०^{२७}$ टन अथवा २×१०^{३३} ग्राम है जो पृथ्वी के पुंज का लगभग ३ लाख गुना है। इसका माध्य घनत्व १.४२ है। सूर्य से हमारी पृथ्वी की माध्य दूरी १४९८९१००० किमी है और प्रकाश सूर्य से पृथ्वी तक आने मे लगभग ८$\frac{१}{२}$ मिनट लेता है। प्रकाशमडल का प्रत्येक वर्ग इंच $३\cdot७८ \times १०^{३३}$ अर्ग प्रति क्षण की अर्घा से विकिरण करता है और मडल की प्रभाचंडता ३०,००,००० कैंडिल-शक्ति के तुल्य है।

सूर्य वामन श्रेणी का एक तारा है और अधिकाश तारो की भाँति सूर्यकाय दो मुख्य भागों मे विभाजित किया जा सकता है. (१) आतरिक भाग, जो प्रकाशमडल द्वारा सीमित है, और (२) वर्णमंडल। इस वर्णमंडल की गहराई प्रकाशमडल के अर्धव्यास के २० गुने के लगभग है और इसका सपूर्ण पुंज सूर्य-पुंज का $१०^{१५}$ भाग है जो लगभग हमारे वायुमडल के सपूर्ण पुंज के २० वें भाग के बराबर है। इतना कम पुज होने पर भी सूर्य के वर्णमडल में अनेक आश्चर्यजनक भौतिक घटनाएँ घटती हैं जिनका उल्लेख आगे चलकर किया जाएगा।

आधुनिक मत के अनुसार सूर्य का आतरिक भाग तीन मुख्य भागो में विभाजित किया जा सकता है. (१) केंद्रीय आतरक, जिसमें परमाण्वीय अभिक्रियाओ द्वारा ऊर्जा उत्पन्न होती है जो आतरक के पृष्ठ तक मुख्यतः संवाहन (Convection) की विधि से पहुँचती है, (२) आंतरक को घेरे हुए गोलीय वलय, जिसमें ऊर्जा का परिवहन विकिरण की विधि से होता है और (३) आतरिक भाग का शेष भाग जिसमे ऊर्जा के परिवहन की विधि पुन. सवाहन है।

सूर्य की आंतरिक सरचना—सूर्य की आतरिक सरचना के विषय मे निम्नलिखित तथ्य ज्ञात हुए हैं। इसका केंद्रीय ताप लगभग $२५\cdot७ \times १०^{६}$ अंश परम और केंद्रीय घनत्व ११० ग्राम प्रति घन सेमी है। इसकी ९८ प्रतिशत ऊर्जा केंद्रीय भाग में उत्पन्न होती है जिसका अर्धव्यास उसके सपूर्ण अर्धव्यास का आठवाँ भाग है। यह ऊर्जा परमाण्वीय अभिक्रियाओ द्वारा उत्पन्न होती है। आधुनिक मत के अनुसार अधिनिम्नाकित दो क्रियाएँ सूर्य ऊर्जा की प्रभव मानी जाती है. (१) कार्बन-नाइट्रोजन-चक्र और (२) प्रोटान-प्रोटान-प्रतिक्रिया। इन दोनो प्रतिक्रियाओ का शुद्ध फल यह होता है कि हाइड्रोजन परमाणु हीलियम परमाणुओ में परिवर्तित हो जाते हैं तथा कुछ पदार्थमात्रा, आइन्सटाइन द्वारा प्रतिपादित सिद्धात के अनुसार, ऊर्जा का रूप ले लेती है। प्रथम अभिक्रिया में कार्बननाइट्रोजन के परमाणु नष्ट नही होते, वे तो अभिक्रिया मे उत्प्रेरक (Catalyst) के रूप में भाग लेते हैं।

यदि ऊर्जा का प्रभव कार्बन-नाइट्रोजन-चक्र मानें और आतरक में कार्बन नाइट्रोजन की मात्रा उतनी ही लें जितनी वर्णमंडल में उपस्थित है तो आतरक में हाइड्रोजन लगभग ६० प्रतिशत, हीलियम ३६ प्रतिशत और अन्य तत्व ४ प्रतिशत होने चाहिए। परतु सूर्य के केंद्रीय तापमान पर ये दोनो अभिक्रियाएँ सभव हैं और यदि ऊर्जाप्रभव इन दोनो अभिक्रियाओं को मानें, तो हाइड्रोजन और हीलियम की मात्रा क्रमश लगभग ८२ प्रतिशत और १७ प्रतिशत होनी चाहिए।

प्रकाशमडल की आकृति—प्रकाशमंडल की चकाचौंध के कारण सूर्य के पृष्ठ और वर्णमडल के लक्षणो का अध्ययन नही किया जा सकता, परतु पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय जब चद्रमा सूर्यबिंब को ढक लेता है, वर्णमडल का अवलोकन किया जा सकता है। इस विधि से तो प्रति वर्ष कुछ ही मिनटों तक वर्णमंडल का अवलोकन किया जा सकता है, वह भी यदि मौसम अनुकूल हो। परतु आजकल दूरदर्शी में अपारदर्शी धातु का बिंब लगाकर प्रकाश-मडल के प्रतिबिंब का ढक लिया जाता है और इस प्रकार कृत्रिम रूप से पूर्ण सूर्यग्रहण की परिस्थिति उत्पन्न कर ली जाती है। फलतः दिन में किसी भी समय वर्णमंडल के किसी भी भाग का फोटोग्राफ लिया जा सकता है। तुलनात्मक अध्ययन के लिये कुछ वेधशालाओ मे प्रति दिन निश्चित अतर से वर्णमंडल के फोटोग्राफ लिए जाते हैं। हेल के एक वर्ण-सूर्य चित्री ने यह सभव कर दिया कि वर्णमंडल के प्रतिबिंब की सकीर्ण पट्टियो के फोटोग्राफ एक के बाद एक करके निश्चित वर्ण के प्रकाश में एक ही फोटोग्राफ पट्ट पर लिए जा सकते है और इस प्रकार सपूर्ण प्रतिबिंब का फोटोग्राफ लिया जा सकता है। सूर्यपृष्ठ के

होने के पूर्व उस स्थान की भौतिक अवस्था में कुछ ही मिनटो में अत्यत गंभीर परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार कलक के विलीन होने के पश्चात् कई दिनो और कभी कभी तो कई सप्ताहो तक उस स्थान पर दीप्तिमान नाडियाँ (Viens) सी वनी रहती हैं जो उर्णिकाएँ कहलाती हैं। ये उर्णिकाएँ अनेक अनियमित खडो और बल खाई हुई ततुओं की बनी हुई होती हैं जो प्रकाशमडल से लगभग १५ प्रतिशत अधिक दीप्त होती हैं। उर्णिकाएँ सूर्यकलक के दृष्टिगोचर होने के पश्चात् भी कुछ समय तक बनी रहती हैं। प्रचलित मतों के अनुसार उर्णिकाएँ प्रकाशमडलीय गैस हैं जो फलक में होनेवाली भीषण क्रियाओ द्वारा आस पास के समतल से ऊपर उठा दी गई हैं। क्योंकि यह गैस अधिक ताप के प्रदेश से आती है, कुछ समय तक आसपास की गैस से अधिक उष्ण रहती है फलतः अधिक दीप्तिमान होती है। इस प्रकार उर्णिकाओं को सूर्य के पृष्ठ पर उठी हुई अस्थायी पर्वतश्रेणियाँ कह सकते हैं जिनकी ऊँचाई ८ किमी से कुछ सौ किमी तक होती है।

सूर्य का अक्षीय परिभ्रमण — यदि कुछ दिनो तक भिन्न भिन्न अक्षातरों में स्थित कलको की गति का प्रेक्षण करें तो देखेंगे कि वे सूर्यबिंब पर पूर्व से पश्चिम की ओर इस प्रकार वहन करते हुए प्रतीत होते हैं जैसे वे एक दूसरे से दृढतापूर्वक बँधे हुए हो। नवीन कलक पूर्वीय अंग पर प्रगट होते हैं और सूर्यबिंब पर वहन करते हुए पश्चिमी अग पर अदृश्य हो जाते हैं। वे एक अंग से दूसरे अंग तक जाने में लगभग एक पक्ष लेते हैं। कलकों की इस सामूहिक गति से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि सूर्य भी अपने अक्ष पर, पूर्व से पश्चिम की ओर, पृथ्वी की भाँति परिभ्रमण करता है। परिभ्रमण अक्ष के लवरूप, सूर्य के केंद्र में होकर जानेवाला, समतल प्रकाशमंडल का एक दीर्घवृत्त में छेदन करता है। यही दीर्घवृत्त विषुवत्वृत्त है। परिभ्रमण का नाक्षत्रिक आवर्तकाल लगभग २५ दिन है। सूर्य दृढकाय के सदृश परिभ्रमण नहीं करता, भिन्न भिन्न अक्षातरों में परिभ्रमण की गति भिन्न होती है। विषुवत्वृत्तीय क्षेत्रों की गति ध्रुवीय क्षेत्रो की गति से अधिक होती है। प्रथम क्षेत्र के परिभ्रमण का नाक्षत्रिक आवर्तकाल लगभग २४$\frac{1}{2}$ दिन तथा द्वितीय क्षेत्र का नाक्षत्रिक आवर्तकाल लगभग ३४ दिन है। यहाँ यह लिखना आवश्यक है कि ध्रुवीय क्षेत्रों के आवर्तकाल का निश्चय कलको की गति से नहीं किया जा सकता क्योकि उस भाग में वे प्रगट नही होते। अत उसका निश्चय स्पेक्ट्रम मे गति से उत्पन्न होनेवाले प्रभाव के आधार पर, जिसे डाप्लर प्रभाव कहते हैं, किया जाता है। न्यूटन और नन (१९५१) ने सन् १८७८ से १९४४ तक के सूर्य-कलकों के अध्ययन के आधार पर कोणिक प्रवेग उ और अक्षातर फ में निम्नाकित सबंध दिया है। उ = १४ ३८°—२.७७ ज्या^{2}फ।

सूर्य का गैस मडल — सूर्य का गैस मडल तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है (१) प्रतिवर्ती स्तर (Reversing layer), (२) वर्णमडल (Chromosphere) और (३) सौर किरीट (Corona)। इनका वर्णन यथास्थान किया जाएगा।

सूर्य का स्पेक्ट्रम पट्ट

सूर्य का विपाकी ताप — ताराभौतिकी के प्रकरण में वर्णित साधनो के आधार पर सूर्य का विपाकी ताप लगभग ६००० अंश परम पर स्थिर किया गया है।

सौर स्थिराक — सौर स्थिराक ऊर्जा की वह मात्रा है जिसका पृथ्वीतल पर सूर्यकिरणो के लवरूप स्थित १ वर्ग सेमी क्षेत्रफल के फलक पर सपूर्ण तरंग आयामों का विकिरण प्रति मिनट निपात करता है। इसको निश्चित करने का सर्वप्रथम प्रयास लैंगले ने सन् १८९३ में स्वरचित बोलोमीटर की सहायता से किया। उसने इसका मान २ ५४ कैलोरी प्रति मिनट स्थिर किया। तत्पश्चात् अनेक बार उत्तरोत्तर अधिकाधिक शोधित यंत्रों द्वारा इस स्थिराक को निश्चित करने के प्रयास किए गए। पृथ्वी के वायुमंडल के प्रचूषण के लिये प्रेक्षित सामग्री को शुद्ध करने के लिये उसमें कितनी मात्रा का सशोधन करना चाहिए, इस विषय में बडा मतभेद है, परतु ऐलन द्वारा सन १९५० के संशोधन के अनुसार इसका मान १ ९७ कैलोरी प्रति मिनट है। वायुमडल के प्रचूषण का निराकरण करने के उद्देश्य से आजकल राकेटों की सहायता ली जाती है। इनमें रखे गए यत्र पृथ्वी तल से १०० किमी की ऊँचाई पर जाकर आवश्यक प्रेक्षणसामग्री एकत्र करते हैं। इस विधि ने स्थिराक की माप लगभग २ ०० कैलोरी प्रति मिनट निश्चित की है।

सूर्य के गैसमंडल का रासायनिक स घटन — यदि सूर्य को घेरे हुए गैसमडल न होता तो स्पेक्ट्रम पट्ट सतानी होता और उसमें फॉउनहोफर रेखाएं अनुपस्थित होती। परंतु सूर्य के स्पेक्ट्रम पट्ट में ये रेखाएँ बडी स ख्या में प्रगट होती हैं। इनके अध्ययन से यह

सूर्य के गैसमंडल में तत्वों की उपस्थिति

तत्व	आयतन प्रतिशत	भार (मिग्रा प्रति वर्ग सेमी)
हाइड्राजन	८१ ७६०	११००
हीलियम	१८·१७०	१०००
कार्बन	० ००३०००	० ५
नाइट्रोजन	० ०१००००	२ ०
ऑक्सीजन	० ०३००००	१०·०
सोडियम	०००३००	०·१
मैग्नीशियम	०२००००	१०·०
ऐलूमिनियम	०००२००	०·१
सिलिकन	००६०००	३ ०
गधक	००३०००	१·०
पोटैशियम	००००१०	०·००३
कैल्सियम	·०००३००	० २०
टाइटेनियम	·००००० ३	० ००३
वेनेडियम	००००० १	० ००१
क्रोमियम	००००० ६	०·००५
मैंगनीज	·००००१०	०·०१
लोह	०००८००	०·६०
कोबाल्ट	·००००० ४	० ००४
निकल	·०००२००	० २०
ताँबा	·००००० २	०·००२
जस्ता	००००३०	०·०३

(Spot minimum) कहते हैं। फिर धीरे धीरे प्रति दिन कलंको की सख्या बढ़ने लगती है, यहाँ तक कि कुछ समय के पश्चात् ऐसा काल आता है जिसमें कोई भी दिन ऐसा नही होता जब अनेक कलक तथा कलंकसमूह दृष्टिगत न हो। इस काल को कलक महत्तम (Spot maximum) कहते हैं। कलक महत्तम के पश्चात् कलको की सख्या धीरे धीरे घटने लगती है और फिर कलंक न्यूनतम आ जाता है। एक कलक न्यूनतम से अगले कलक न्यूनतम तक माध्य रूप से ११ वर्ष लगते हैं। इस अवधि को कलकचक्र कहते हैं। कुछ कलकचक्रो में इस माध्य अवधि से ४-५ वर्ष अधिक अथवा न्यून हो सकते हैं।

कलंकों की आंतरिक गति — एवरशेड ने सन् १९०९ में कलको के स्पेक्ट्रम पट्ट में डाप्लर प्रभाव पाया जिसके अध्ययन ने यह प्रगट किया कि गैस कलंककेंद्र से परिधि की ओर त्रिज्या की दिशा मे वहन करती है। इस गति में प्रवेग का परिमाण केंद्र पर शून्य होता है और ज्यो ज्यो कलक के कृष्ण भाग की परिधि की ओर किसी भी त्रिज्या की दिशा में जायें, परिमाण मे वृद्धि होती जाती है, यहाँ तक कि परिधि पर वह दो किमी प्रति सेकेंड हो जाता है। श्यामल भाग मे प्रवेग परिमाण घटने लगता है और अंत में श्यामल भाग की परिधि पर वह शून्य उर्जा प्राप्त कर लेता है। सन् १९१३ में सेंट जोन के अधिक विस्तृत अध्ययन ने प्रगट किया कि कलंको के निम्न स्तरो में गैस कलक के अक्ष से बाहर की ओर वहन करती है तथा ऊपरी स्तरो मे अक्ष की ओर। आगे चलकर अवेट्री (१९३२) ने यह ज्ञात किया कि कुछ कलको मे कृष्ण भाग की परिधि पर प्रवेग ६ किमी प्रति सेकंड तक हो जाता है और इस अरीयगति के अतिरिक्त गैस १ किमी प्रति क्षण के लगभग प्रवेग से अक्ष का परिभ्रमण भी करती है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि गैस अक्ष के समीप निम्न स्तरो से ऊपर उठती है तथा परिधि के समीप निम्न स्तरो की ओर अवतरण करती है और साथ ही साथ वह कलंक के अक्ष का परिभ्रमण भी करती है। अत गैस की गति के विचार से कलक को एक प्रकार का भ्रमर कह सकते हैं।

कलंकों का चुंबकत्व क्षेत्र — कलंको के अधिकांश चुंबकीय लक्षणो का अध्ययन सन् १९०८ और १९२४ के बीच में माउंट विलसन की वेधशाला में हेल एवं निकोलसन (१९३८) द्वारा किया गया था। इस अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित तथ्य ज्ञात किए गए हैं: (१) ऐसा कोई भी अवलोकित कलक नहीं जिसमें चुंबकत्व क्षेत्र विद्यमान न हो। (२) कलककेंद्र पर बलरेखाएँ लगभग उदग्र होती हैं और परिधि के निकट वे उदग्र के साथ लगभग २५ अश का कोण बनाती हैं। (३) चुंबकीय क्षेत्र का परिमाण कलंक के क्षेत्रफल पर निर्भर होता है। सबसे छोटे कलंको में क्षेत्रपरिमाण लगभग १०० गाउस और बड़े बड़े कलको में ४००० गाउस तक पाया जाता है। (४) क्षेत्रपरिमाण केंद्र से परिधि की ओर घटता जाता है। (५) चुंबकत्व के विचार से कलंक तीन वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं: (क) एकध्रुवीय, (ख) द्विध्रुवीय और (ग) बहुध्रुवीय। एकध्रुवीय कलक के संपूर्ण विस्तार में एक ही प्रकार की ध्रुवता रहती है। द्विध्रुवीय कलक एक प्रकार की कलकशृखला है जिसके पूर्ववर्ती तथा अनुवर्ती भागो की ध्रुवता एक दूसरे से विपरीत होती है। 'ग' वर्ग के कलंकसमूह मे दोनो प्रकार की ध्रुवता इस अनियमित रूप से प्रगट होती है कि वह 'ख' वर्ग में नही रखा जा सकता। (६) अवलोकित कलको मे से अधिकाश द्विध्रुवीय होते हैं, जैसा निम्न सारणी से प्रगट होगा जो हेल और निकोलसन के अध्ययन के आधार पर बनाई गई है:

प्रेक्षित कलंको की सख्या

वर्ष	एकध्रुवीय	द्विध्रुवीय	बहुध्रुवीय	अन्य
१९१७	४४	५३	१	१७
१९१८	४७	५१	१	१६
१९१९	४६	५१	२	१८
१९२०	४७	५०	२	१६
१९२१	४७	५१	२	२५
१९२२	४६	५०	५	२६
१९२३	३६	६४	०	२१
१९२४	४०	५९	१	१८

वास्तव में द्विध्रुवीय कलको की संख्या सारणी में दी गई संख्या से अधिक होती है क्योकि अधिकाश एकध्रुवीय कलक पुराने द्विध्रुवीय कलक हैं जिनके पूर्ववर्ती भाग नष्ट हो गए हैं।

ध्रुवता नियम — सन् १९१३ में हेल और उनके सहयोगियो ने ज्ञात किया कि नवीन कलकचक्र मे प्रत्येक गोलार्ध में कलंको की ध्रुवता का क्रम गतिचक्र के क्रम के विपरीत होता है। इस प्रकार एक सपूर्ण चक्र मे दो अनुगामी कलकचक्रो का समावेश होना चाहिए और उसकी अवधि लगभग २२-२३ वर्ष होनी चाहिए।

आठ कलको के स्पेक्ट्रम पट्ट का अध्ययन यह प्रगट करता है कि उसमें अणुओं की रेखाएँ उपस्थित होती हैं। धातुओ के अनायनित परमाणुओ की रेखाएँ गहरी हो जाती हैं और वे रेखाएँ, जिनकी उत्पत्ति के लिये अधिक उद्दीपन की आवश्यकता होती है, क्षीण हो जाती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कलंक का ताप प्रकाशमडल के ताप से लगभग २००० अश कम होता है।

काउलिंग ने सन् १९४६ मे पहली बार क्षेत्र के उद्विकास का अध्ययन किया। उन्होने देखा कि कलक के प्रगट होने के साथ ही साथ चुवकीय क्षेत्र भी प्रगट होता है और उसका परिमाण पहले शीघ्रता से और फिर कलंक के जीवनकाल के अधिकाश भाग में अचल रहकर अत में शीघ्रता से विलीन हो जाता है। उनका मत है कि चुंबकीय क्षेत्र कलको के प्रगट होने के पहले भी निम्न स्तरों मे विद्यमान रहता है और कलंक के प्रगट होने के साथ ही साथ वह किसी न किसी प्रकार कलंक के ऊपरी तल तक आ जाता है।

ऊर्णिका (Flocculus) — सूर्यकलंक प्रचड क्रियाओ का घटनास्थल है। कभी कभी तो ऐसा देखा गया है कि कलक प्रगट

तथा लॉ फांटेन पर निबंध लिखे। शैली की सुंदरता और उत्कृष्टता ने उनकी रचनाओं की मनोरंजकता बढ़ा दी है। [फ्रा० भ०]

सेंट लारेंस (नदी) यह उत्तरी अमरीका की एक प्रसिद्ध नदी है जो ओंटेरियो झील के उत्तरी पूर्वी सिरे से निकलकर ७४४ मील उत्तर पूर्व बहती हुई सेंट लारेंस की खाड़ी में गिरती है। मांट्रियल तक इस नदी में बड़े बड़े जलयान आ जाते हैं। क्यूबेक के ज्वारभाटीय क्षेत्र के बाद इसकी चौड़ाई अधिक होने लगती है तथा मुहाने तक जाकर ६० मील हो जाती है। इसकी मुख्य सहायक नदियाँ रिचेलिऊ, सेंट फ्रांसिस, ओटावा, सेंट मारिस एवं सागेने हैं। ओगडेंसबर्ग, किंग्स्टन, ब्राकविल, कार्नवाल, मांट्रियल, सोरेल, ट्रायज रिवियरेस और क्यूबेक नामक नगर इसके किनारे पर स्थित हैं। सेंट लारेंस की घाटी में लकड़ी एवं कागज के बहुत से कारखाने हैं। इससे पर्याप्त जलविद्युत् शक्ति प्राप्त की जाती है।

सेंट लारेंस (खाड़ी) — यह कैनाडा से पूर्व अध महासागर में स्थित सेंट लारेंस नदी के मुहाने पर स्थित है, इनका क्षेत्रफल १,००,००० वर्ग मील है। यह उत्तर में क्यूबेक, पश्चिम में गास्पे प्रायद्वीप तथा न्यू ब्रजविक, दक्षिण में नोवास्कोशिया तथा पूर्व में न्यूफाउंडलैंड द्वारा घिरी हुई है। यह खाड़ी ५०० मील लंबी तथा २५० मील चौड़ी है। इसमें कई द्वीप स्थित हैं जिनमे एंटीकोस्ती, प्रिंस एडवर्ड एवं मैग्डालेन उल्लेखनीय हैं। यह मत्स्याखेट का महत्वपूर्ण स्थल है। मध्य अप्रैल से लेकर दिसंबर के प्रारंभ तक जलयान यहाँ आ जा सकते हैं। इसके बाद के महीनो में यह खाड़ी हिमाच्छादित रहती है। [रा० प्र० सिं०]

सेंट लुइस १ स्थिति ३८° ३७' उ० अ० एवं ९०° १५' प० दे०। यह मिसौरी राज्य का सबसे बड़ा एवं संयुक्त राज्य अमरीका का आठवाँ बड़ा नगर है, जो मिसीसिपी नदी के किनारे शिकागो के २८५ मील दक्षिण पश्चिम में स्थित गमनागमन का महत्वपूर्ण केंद्र है। यहाँ जलमार्गों, वायुमार्गों, सड़कों एवं रेलमार्गों का जाल बिछा हुआ है। यह महत्वपूर्ण व्यापारिक, वित्तीय एवं औद्योगिक केंद्र है। संसार का सबसे बड़ा समूर का बाजार होने के साथ साथ पशु, अनाज, ऊन एवं लकड़ी का भी प्रसिद्ध बाजार है। शराब, दवा, जूता, यंत्र, वायुयान, मोटर, रेलगाड़ी, स्टोव एवं लौह इस्पात के कारखाने यहाँ हैं। यहाँ तेल, रबर, तंबाकू एवं लकड़ी की वस्तुओं का निर्माण भी होता है। मांस को डब्बों में बंद करना महत्वपूर्ण उद्योग है। यहाँ सेंट लुइस एवं वाशिंगटन नामक दो विश्वविद्यालय एवं दो सेमिनरी हैं। यह स्वतंत्र नगर है जो किसी भी काउंटी में नहीं है।

सेंट लुइस बंदरगाह से कोयला, तेल, गंधक, अनाज, चीनी, तथा कागज, रसायनक एवं मोटरगाड़ियों का आदान प्रदान होता है। सेंट लुइस के दर्शनीय स्थलों में आरकेस्ट्रा, कलासग्रहालय, ईड्स पुल, फारेस्ट पार्क, जेफरसन मेमोरियल भवन, प्राणिक एवं वानस्पतिक उद्यान, म्यूनिसिपल एवं अलो प्लाजा, जेफरसन एक्सपैंशन मेमोरियल एवं राक हाउस हैं। धर्माध्यक्ष का आवास यहाँ है। प्राचीन कैथेड्रल सबसे पुराना गिरजाघर है। यहाँ नौसेना, वायुसेना तथा म्यूनिसिपैलिटी के हवाई अड्डे हैं।

सेंट लुइस की जनसंख्या ७,५०,०२६ (१९६०) है।

२ मिसौरी राज्य में एक काउंटी है। क्षेत्रफल ६२८१ वर्गमील एवं जनसंख्या २०६,०६२ (१९५०) है। सेंट लारेंस एवं लिटिल फार्क नदियाँ मुख्य हैं। यहाँ वर्मिलियन एवं मेसाबी लौह पर्वत श्रेणियाँ हैं। खनन उद्योग के अतिरिक्त पशुपालन एवं तरकारी, विशेषकर आलू का उत्पादन होता है। राजकीय वन एवं सुपीरियर राष्ट्रीय वन उत्तरी भाग में है। डलुथ इसकी राजधानी है।

३ मिसौरी राज्य में ही एक दूसरी काउंटी है। क्षेत्रफल ४६७ वर्ग मील, जनसंख्या ४०६,३४६ (१९५०) है। क्लेटन यहाँ की राजधानी है। मिसौरी इव मेरमिक नदियों से यह घिरी हुई है। मक्का, गेहूँ एवं आलू मुख्य कृषि उपज है। बागाती उपज, पशुपालन एवं लकड़ी की वस्तुओं का निर्माण होता है। [रा० प्र० सिं०]

सेंट साइमन, हेनरी (१७६०-१८२५) फ्रांस का समाज दार्शनिक जिसे आधुनिक समाजवाद का जन्मदाता माना जाता है। अपनी बहुमुखी प्रतिभा तथा मौलिक चिंतन की क्षमता के कारण वह समाजदर्शन में उद्योगवाद एवं वैज्ञानिक यथार्थवाद जैसी पुष्ट चिंतनधाराओं का प्रवर्तक बना। उसकी मृत्यु के बाद उसके शिष्यों ने, जिनमें बाजार्ड तथा एनफैंटीन प्रमुख हैं, उसके विचारों का व्यवस्थित ढंग से प्रचार किया तथा सेंट साइमनवादी पंथ की स्थापना की। ऑगस्टिन थियरी तथा ऑगस्ट कोम्टे जैसे विचारक अनेक वर्षों तक उसके सेक्रेटरी रहे।

पेरिस के एक कुलीन परिवार में जन्म लेकर, परिवार की परंपराओं के अनुकूल सेंट साइमन (सां सिमो) ने अपनी आजीविका सैनिक के रूप में प्रारंभ की, परंतु शांति के दिनों में सैनिक जीवन की एकरसता से ऊबकर उसने कर्नल पद से त्यागपत्र दे दिया। फ्रांसीसी राज्यक्रांति के अवसर पर गिरजाघरों की जब्त की गई संपत्ति को खरीदकर मालामाल हुआ, परंतु ज्ञानार्जन संबंधी कामों में उसने खुले हाथ धन व्यय किया और १८०५ में वह निर्धन हो गया। १८२३ में निराश सेंट साइमन ने आत्महत्या की चेष्टा की परंतु बच गया। दो वर्ष बाद जब उसकी मृत्यु हुई, वह अपने शिष्यों से घिरा नई पुस्तकें लिखने की योजना बना रहा था। उसकी सभी मुख्य रचनाएँ १८०३ तथा १८२५ के बीच प्रस्तुत की गईं।

सेंट साइमन के सामने मुख्य प्रश्न फ्रांसीसी क्रांति से उत्पन्न व्यक्तिवादी अराजकता से पीड़ित यूरोपीय देशों को एक नई सामाजिक व्यवस्था की कल्पना प्रदान करना था। उद्योग एवं विज्ञान में ही उसे मानव का भविष्य दिखाई दिया, अतः नई धार्मिक चेतना से युक्त ऐसे राज्यतंत्र की रूपरेखा उसने प्रस्तुत की जिसमें राज्यशक्ति सैनिकों या सामंतों के हाथ में न रहकर अभिविज्ञों, वैज्ञानिकों तथा बैंकरों के हाथ में रहे और वे सामाजिक संपत्ति के ट्रस्टी के रूप में सामाजिक व्यवस्था की देखभाल करें। उद्योग एवं उत्पादन को सामाजिक प्रगति का आधार मानकर उसने 'सभी काम करें'

ज्ञात किया गया है कि गैसमंडल में कौन कौन से तत्व उपस्थित हैं। अब तक वहाँ २१ तत्व पहचाने जा चुके हैं जो उपर्युक्त सारणी में दिए गए हैं। प्रत्येक तत्व के संमुख उसकी मात्रा भी तुलना के लिये दी गई है जो यह प्रगट करती है कि वह तत्व किस मात्रा में उपस्थित है। इस सारणी के तृतीय स्तंभ में प्रकाशमडल के एक वर्ग सेमी क्षेत्रफल पर उदग्र दिशा में खड़े किए गए गैस के स्तभ में विद्यमान तत्वो की मात्रा दी गई है।

पृथ्वी के तल में भी ये तत्व विद्यमान हैं। कैलिसयम, लोह, टाइटेनियम और निकल जैसे भारी धातुओं की उपस्थिति सूर्य के गैसमडल और भूपर्पटी (earthcrust) में लगभग एक सा ही है, परंतु हाइड्रोजन, हीलियम, नाइट्रोजन आदि हलके तत्वो की उपस्थिति सूर्य के गैसमंडल में भूपर्पटी की अपेक्षा बहुत अधिक है।

सूर्य का साधारण चुंबकत्व क्षेत्र — स्पेक्ट्रम रेखाओ मे विद्यमान जेमान प्रभाव (Zeeman effect) के अध्ययन के आधार पर हेल (१९१३) ने बताया कि सूर्य एक चुंबकीय गोला है जिसके ध्रुवो पर चुंबकत्व क्षेत्र का उदग्र परिमाण लगभग ५० गाउस है। हेल, सीअरस, वान मानन और ऐलरमेन के सन् १९१८ तक के विस्तृत अध्ययन ने प्रगट किया कि हेल द्वारा निश्चित परिमाण वास्तविक परिमाण की अपेक्षा बहुत अधिक है और ध्रुव पर उसका परिमाण लगभग २५ गाउस होना चाहिए। कुछ वर्षों तक सूर्य के चुंबकीय क्षेत्र का परिमाण निश्चित नही हो सका। सन् १९४८ में वेबकाक ने अपने माउट विलसन की वेधशाला मे किए गए वर्षों के अध्ययन के आधार पर बतलाया कि सूर्य के चुंबकीय क्षेत्र का परिमाण शून्य से ६० गाउस तक कुछ भी हो सकता है। उनका मत है कि सूर्य का चुंबकीय क्षेत्र परिवर्तनशील हो सकता है। [प्र० ला० म०]

सूर्यमल्ल वंशभास्कर के रचयिता कविराजा सूर्यमल्ल चारणो की मिश्रण शाखा से संबद्ध थे। बूँदी के प्रतिष्ठित परिवार के अंतर्गत संवत् १८७२ में इनका जन्म हुआ था। बूँदी के तत्कालीन महाराज विष्णुसिंह ने इनके पिता कविवर चंडीदान को एक गांव, लाखपसाव तथा कविराजा की उपाधि प्रदान कर संमानित किया था। सूर्यमल्ल बचपन से ही प्रतिभासंपन्न थे। अध्ययन में विशेष रुचि होने के कारण संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पिंगल, डिंगल आदि कई भाषाओं मे इन्हें दक्षता प्राप्त हो गई। कवित्वशक्ति की विलक्षणता के कारण अल्पकाल में ही इनकी ख्याति चारो ओर फैल गई। महाराज बूँदी के अतिरिक्त राजस्थान और मालवे के अन्य राजाओं ने भी इनका यथेष्ट समान किया। अपने जीवन में ऐश्वर्य तथा विलासिता को प्रश्रय देनेवाले इस कवि की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि काव्य पर इसका प्रभाव नही पड़ सका है। इनकी श्रृंगारपरक रचनाएँ भी संयमित एवं मर्यादित हैं। दोला, सुरजा, विजया, यशा, पुष्पा और गोविंदा नाम की इनकी ६ पत्नियाँ थी। संतानहीन होने के कारण मुरारीदान को गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया था। संवत् १९२० में इनका निधन हो गया।

बूँदी नरेश रामसिंह के आदेशानुसार संवत् १८९७ में इन्होने 'वंशभास्कर' की रचना की थी। इस ग्रंथ में मुख्यत: बूँदी राज्य का इतिहास वर्णित है किंतु यथाप्रसग अन्य राजस्थानी रियासतो की भी चर्चा की गई है। युद्धवर्णन में जैसी सजीवता इस ग्रंथ में है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। राजस्थानी साहित्य में बहुचर्चित इस ग्रंथ की टीका कविवर बारहट कृष्णसिंह ने की है। वंशभास्कर के कतिपय स्थल क्लिष्टता के कारण बोधगम्य नही है, फिर भी यह एक अनूठा काव्यग्रंथ है। इनकी 'वीरसतसई' भी कवित्व तथा राजपूती शौर्य की दृष्टि से उत्कृष्ट रचना है। महाकवि सूर्यमल्ल वस्तुत: राष्ट्रीय विचारधारा तथा भारतीय संस्कृति के उद्बोधक कवि थे।

कृतियाँ — वंशभास्कर, बलवंत विलास, छंदोमयूख, वीरसतसई तथा फुटकर छंद।

सं० ग्रं०—आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी; कविराजा मुरारिदान : जसवंत भूषण; महताबचंद्र खारेड़ : रघुनाथ रूपक गीतां रो; नाथूसिंह महियारिया : वीरसतसई; डॉ० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४५ अंक ३।

[रा० व० पा०]

सूर्यानुवर्त (Heliotrope) बोरैगिनेसीई (Boraginaceae) कुल का छोटा क्षुप है। इस क्षुप की पत्तियाँ एवं पुष्प सूर्य की गति का अनुगमन करती हैं। इसकी पत्तियाँ छोटी तथा वलियुक्त और शिरायुक्त होती हैं। पुष्प अल्पकुडलित गुच्छ मे लाइलेक (lilac) नील रंग के होते हैं जिनसे वनिल्ला (Vanilla) की वास आती है। इसके २२० स्पीशीज ज्ञात हैं जिनमें से कुछ के पुष्प सफेद तथा कुछ के नीललोहित रंग के होते हैं। गमले मे तथा क्यारियो में लगाने के लिये इस क्षुप का अधिक उपयोग किया जाता है। [भ० ना० मे०]

सेंट बेव (Sainte Beuve) (१८०४-१८६९) उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस में साहित्यालोचन की ओर अधिक झुकाव देखा जाता था और ऐसे साहित्यकारों में सेंट बेव की ख्याति सबसे अधिक थी। २२ वर्ष की उम्र मे विक्टर ह्यूगो से उनकी मित्रता हो गई। उन्होंने कवि के रूप मे साहित्यिक जीवन का आरंभ किया और 'जोसेफ डीलाभ का जीवन, कविताएँ तथा विचार' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया। इसमे उनकी प्रेमकथा के साथ उनके शोकगीतो का संग्रह है। उनकी कविताओं की दूसरी पुस्तक 'कनसोलेशंस' (सांत्वना) है। कवि के रूप मे वे जनता में अधिक समादृत नही हुए। १८४० से १८६९ मे मृत्यु होने तक उन्होंने साहित्यालोचन की कई पुस्तकें लिखीं—'पोर्ट रायल', 'शातोब्रियाँ (Chatsaubriad) और उनके 'साहित्यिक साथी', कई व्यक्तिचित्र तथा 'मडे टाक्स' (सोमवार की वार्ताएँ)।

किसी साहित्यिक रचना के संबंध में वस्तुगत और सर्वांगीण छानबीन उनकी आलोचना का लक्ष्य होता था। लेखक के व्यक्तित्व का अध्ययन उनका अभीष्ट होता और इस दृष्टि से वे उसकी शिक्षा, संस्कृति, जीवन तथा सामाजिक पृष्ठभूमि के चित्रण का प्रयत्न करते थे। अज्ञात प्रतिभा के परिज्ञान की देन उन्हें प्राप्त थी और वे भावुकतावादी रचनाकारों के कट्टर समर्थक थे। बाद मे उनका झुकाव परिनिष्ठित साहित्य की ओर हो गया और उन्होंने मोलियर

सी बात है, परतु युद्धकाल मे डाक और तार की सेंसर व्यवस्था आवश्यक है क्योकि कई बार कई देशद्रोही शत्रु के गुप्तचरो के साथ अपने देश की निर्बलताओ अथवा दूसरे कई गुप्त विषयो पर पत्र व्यवहार करते पकडे गए है।

युद्धकाल में सब सैनिक पत्र सेंसर किए जाते हैं और इस कार्य का पूर्ति के लिये विशेष अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं जो इन पत्रों में से कोई भी आपत्तिजनक सूचना, जो शत्रु को किसी भी प्रकार लाभदायक हो सकती हो, काट सकते हैं अथवा पूरा पत्र ही नष्ट कर सकते हैं।

कई बार इन पत्रो में शत्रु को कई गुप्त सकेतो द्वारा सूचना दी जाती है जैसे साईफर कोड, नकली स्याही अथवा अन्य कई साधनो द्वारा। ब्रिटेन, फ्रास और जर्मनी मे तो ऐसे पत्रों के लिये पोस्टल सेंसर व्यवस्था की भिन्न भिन्न शाखाएँ खोली गईं और परिणाम तथा शत्रु के सूचना पाने के कई साधन बद हो गए। ब्रिटेन में शत्रु को सूचना भेजने के और भी कई साधन अपनाए गए थे जैसे पत्र तटस्थ देशो के नाम भेजे जाते थे परतु वास्तव में वे शत्रु के लिये ही होते थे। अत वहाँ पर तटस्थ देशो से आने जानेवाली सारी डाक सेंसर की जाने लगी। शत्रु देश से आनेवाला छपा हुआ साहित्य भी प्राय झूठा प्रचार करने के लिये भेजा जाता था इसलिये उसको तो वितरण करने से पूर्व ही नष्ट कर दिया जाता था।

युद्धकाल मे अमरीका का पोस्टमास्टर जनरल ही कोई भी साहित्य डाक द्वारा भेजने से मना कर सकता था।

युद्धकाल मे तारो की सेंसर व्यवस्था विशेषतया शत्रु देश के साथ व्यापारिक सबधो को छिन्न भिन्न करने के लिये की जाती थी और बहुत बार ये व्यापारिक तार अपने देश की स्थल तथा जल सेना की स्थिति की सूचना लिए होते थे। इसलिये तार भी सेंसर किए जाने लगे।

चलचित्रों की सेंसर व्यवस्था — चलचित्रो का सेंसर करने के लिये सरकार एक बोर्ड बनाती है जो भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न नामो से जाना जाता है। कोई भी फिल्म सेंसर बोर्ड से प्रमाणपत्र लिए बिना जनता के समक्ष उपस्थित नही की जा सकती। यह बोर्ड किसी भी चलचित्र को जनता के समक्ष उपस्थित करने से रोक सकता है अथवा उसमें से कुछ दृश्य या शब्द काट सकता है या किसी फिल्म को केवल वयस्को के लिये दिखाने की अनुमति दे सकता है।

चलचित्रो की सेंसर व्यवस्था विशेषत जनता की नैतिक भावनाओ पर निर्भर है। जनता का कोई भी शक्तिशाली समूह सरकार पर दबाव डालकर किसी भी अश्लील चित्र को जनता के समक्ष दिखलाने से रोक सकता है। [दे० रा० क०]

सेग्रारा यह ब्राजील के उत्तर पूर्व में समुद्रतट के किनारे स्थित राज्य है जिसका क्षेत्रफल १४८,०१६ वर्ग किमी एव जनसख्या ३३,३७,८५६ (१९६०) है। इसके सँकरे एव वालुकामय तटीय मैदान के दक्षिण मे अर्धशुष्क पठार है जिसे सर्टाओ कहते हैं। यह २०००' तक ऊँचा है। जैगुआराइब (Jaguaribe) नदी इस राज्य की मुख्य नदी है। यहाँ सिंचाई द्वारा कपास, गन्ना और कहवा की खेती की जाती है। खनिजो में केवल नमक एव रघूटाइल (Rutile) उल्लेखनीय है। पठारी भाग में पशुपालन होता है। यहाँ से खाल, मोम, तीसी का तेल, बीन, तरकारी एव रबर का निर्यात होता है। यहाँ की राजधानी फोर्टोलेजा (जनसख्या ५१४,८१८; १९६०) को सेग्रारा भी कहते हैं। कामोसिम यहाँ का मुख्य बदरगाह है। फोर्टोलेजा एव कामोसिम से रेलमार्ग आतरिक भागो मे गए हुए हैं। सडको एव नौगमनीय नदियो का अभाव है। सोबराल एव अराकाती अन्य महत्वपूर्ण नगर हैं। सेग्रारा मे व्यापक सिंचाई की योजनाएँ बनी हैं एव कुछ निर्माणाधीन भी हैं। मत्स्योद्योग का विकास हो रहा है। कुछ ही समय पूर्व ताँबा एवं यूरेनियम के निक्षेपो का पता चला है। सूखा के कारण शुष्क मौसम मे बहुत बडी सख्या में लोग दूसरे भागो मे चले जाते रहे हैं। ब्राजील से दासता का उन्मूलन करनेवाले राज्यो मे सेग्रारा भी एक था। यह हस्तशिल्प उद्योगो के लिये विख्यात है। [रा० प्र० सि०]

सेऊल स्थिति ३७° ३४' : उ० अ० एवं १२७° पू० दे०। दक्षिणी कोरिया गणतत्र की राजधानी हान नदी के किनारे पूसान के २०० मील उत्तर पश्चिम में स्थित है। यह एक महत्वपूर्ण सास्कृतिक एव औद्योगिक केंद्र है। पूखान पर्वतो के पादप्रदेश मे स्थित इस नगर का दृश्य बहुत ही मनोहर है। प्राचीन नगर ऊँची दीवारो से घिरा हुआ था। इसका आधुनिकीकरण २०वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में किया गया। उत्तर पश्चिम मे स्थित किंपो इसका हवाई अड्डा है जो चेमुल्पो नामक बदरगाह से रेलमार्ग द्वारा संबद्ध है। उद्योगधधों में रेल, वस्त्र, चर्म एव शराब उद्योग उल्लेखनीय हैं। सेऊल महत्वपूर्ण शिक्षा केंद्र है जहाँ सेऊल विश्वविद्यालय, कंफ्यूशियन (Confusion) संस्थान तथा महिला, चिकित्सा विज्ञान एवं क्रिश्चियन महाविद्यालय हैं। यहाँ रोमन कैथोलिक कैथेड्रल भी है। सेऊल में तीन सु दर राजप्रासाद हैं जिनमें यी राजवंश द्वारा १४ वी शताब्दी में निर्मित प्रासाद बहुत ही भव्य है। १४६८ ई० में निर्मित एक कास्य का ढला विशाल घंटा (Bronze Bell cast) नगर के मध्य मे है। अवशिष्ट दीवारो के द्वार वास्तुकला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। सेऊल १३९३ ई० में कोरिया की राजधानी बना। १९१०-१९४५ ई० तक यह जापानी गवर्नर जनरल का आवास रहा तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह संयुक्त राज्य की फौजी कार्रवाई (operation zone) का प्रधान कार्यालय था। १९४८ ई० में यह कोरिया गणतन्त्र (दक्षिणी कोरिया) की राजधानी बना।

सेऊल की जनसख्या ३३,७६,०३० (१९६३) है। [रा० प्र० सिं०]

सेक्सटैंट (Sextant) सबसे सरल और सुगठित यन्त्र है जो प्रेक्षक की किसी भी स्थिति पर किन्हीं दो बिंदुओ द्वारा बना कोण पर्याप्त यथार्थता से नापने में काम आता है। इसका आविष्कार सन् १७३० में जान हैडले (John Hadley) और टॉमस गोडफे (Thomas Godfrey) नामक वैज्ञानिको ने अलग अलग स्वतत्र रूप से किया था। तब से इतनी अवधि गुजरने पर भी यह यत्र

का नारा दिया तथा संपत्ति के उत्तराधिकार के नियम को अनैतिक घोषित किया। क्लासिकल अर्थशास्त्रियो की भाँति उसने भी आर्थिक स्वार्थ को सर्वोपरि घोषित किया, परतु उसके अनुसार इस स्वार्थ की पूर्ति तभी हो सकती है जब विशेषज्ञो के नियंत्रण में उत्पादन का उचित नियोजन हो। अतः उसने अहस्तक्षेप नीति (The Laissez faire) का समर्थन नही किया। सामान्य रूप से वह राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के लिये ससदीय प्रणाली का समर्थक था। चिंतन के क्षेत्र मे भी वह विशेष विज्ञानो को एक वैज्ञानिक यथार्थवादी दर्शन के अंतर्गत व्यवस्थित करना चाहता था। सामाजिक चिंतन को वैज्ञानिक यथार्थवादी रूप देने के यत्न में उसने समाज-शरीर-विज्ञान की रचना की, जिसे उचित ही आधुनिक समाजविज्ञान का पूर्वगामी कहा जाता है।

सं० ग्रं० — ए० दुरखीम : सोशलिज्म ऐंड सेंट साइमन।

सेंट हेलेंज यह इंग्लैंड की लकाशिर काउंटी में लिवरपूल के १२ मील उत्तर पूर्व मे स्थित ससदीय एवं नगरपालिका काउंटी है। क्षेत्रफल १२४ वर्गमील है। १७ वी शताब्दी मे कोयले की खदानो की प्राप्ति से इसके आधुनिक रूप का विकास प्रारंभ हुआ और बाद में १७७३ ई० मे काँच के कारखाने के कारण इसकी प्रसिद्धि और बढ गई। यह ससार के काँच निर्माण के औद्योगिक केंद्रो मे से एक है। यहाँ १९५१ ई० में २०००० व्यक्ति इस उद्योग में लगे हुए थे। लोह एवं पीतल की ढलाई तथा साबुन, वस्त्र, मिट्टी के बर्तन एवं पेटेंट दवाओं का निर्माण अन्य महत्वपूर्ण उद्योग हैं। पार नामक स्थान में एक व्यापारिक संस्थान (estate) है। सेंट मेरी गिरजाघर तथा गैंबुल संस्थान दर्शनीय स्थल हैं। गैंबुल सस्थान में एक तकनीकी विद्यालय तथा एक पुस्तकालय है।

सेंट हेलेंज की जनसख्या १,०८,३४८ (१९६१) है।

[रा० प्र० सि०]

सेंटो (केंद्रीय समझौता संघटन) २४ फरवरी, १९५५ को इराक की राजधानी बगदाद में तुर्की, ईरान, इराक और पाकिस्तान को मिलाकर एक समझौता किया गया जिसको 'बगदाद पैक्ट' की सज्ञा दी गई। अमरीका भी अप्रैल, १९५६ में इसमें शामिल हो गया। जुलाई, १९५८ मे इराक में क्रांति हो गई और वह इस समझौते से निकल गया। २१ अगस्त, १९५९ में इस करार का नाम 'बगदाद पैक्ट' से बदलकर 'सेंटो (केंद्रीय समझौता सघटन) हो गया। इसका केंद्रीय कार्यालय भी बगदाद से अंकारा में स्थानातरित दिया गया। इराक के डाक्टर ए० ए० खलात बेरी को इस सघटन का मुख्य सचिव बनाया गया। इस सघटन के बन जाने से इस्लामी राष्ट्रो का गुट बनाने और इसलाम के प्रचार का लक्ष्य पूरा समझा जाने लगा। अप्रैल, १९६० में पाकिस्तान के प्रयास से इस सघटन की सयुक्त कमान भी स्थापित कर दी गई। इसके साथ ही इस सघटन के एशियाई सदस्यो को अणुसपन्न करने का भी प्रस्ताव था। १९६३ में सदस्य देशो द्वारा सयुक्त सैनिक अभ्यास भी किया गया। इसकी एक बैठक वाशिंगटन में अप्रैल, १९६४ में हुई थी। इस समझौते का प्रमुख उद्देश्य मध्यपूर्व के देशों में साम्राज्यवादी हितो की रक्षा करना भी निर्धारित किया गया था। इसीलिये इस्लामी राष्ट्र होते हुए भी इन देशों ने १९६६ में स्वेज नहर के मामले में सयुक्त अरब गणराज्य (इस्लामी राष्ट्र) का विरोध करके अंग्रेजो का समर्थन किया। राष्ट्रीय स्वार्थों के कारण इस्लामी सघटन के लक्ष्य में दरार पड़ गई। इराक १९५८ में ही अलग हो गया था। इधर अरबो ने भी अपना नया सघटन बनाया और मतभेदो के बावजूद एक शक्तिशाली अरब लीग की स्थापना की गई जिससे 'सेंटो' का भविष्य खटाई मे पड़ गया।

[च० मि०]

सेंसर व्यवस्था जनता की स्वेच्छा से आपत्तिजनक वस्तुओं के देखने, सुनने और पढने से रोकने के प्रयत्नो को सेंसर व्यवस्था कहते हैं। अधिकांशत: यह समाचारपत्रों, भाषण, छपे हुऐ साहित्य, नाटक और चलचित्र, जो सरकार द्वारा जनता के चरित्र के लिये हानिकारक समझे जाते हैं, पर लगाई जाती है।

राजनीतिक सेंसर व्यवस्था — यह अक्सर तानाशाही मे लगाई जाती है। गणतंत्र देशो मे इसका कोई स्थान नही है। राजनीतिक सेंसर व्यवस्था का ध्येय जनता द्वारा सरकार की किसी भी प्रकार की आलोचना को रोकना है। रूस मे साम्यवादी सरकार द्वारा कड़ी सेंसर व्यवस्था लगाई गई है।

प्रेस सेंसर व्यवस्था — भूतकाल में छपे हुए साहित्य को सेंसर करने का तरीका प्राय सभी देशों में समान ही रहा है, परंतु उसकी कठोरता देश काल के अनुसार भिन्न भिन्न रही है। महायुद्ध के समय जर्मनी में प्रत्येक पुस्तक बडी सावधानी से सेंसर की जाती थी और कोई आपत्तिजनक बात होने पर लेखको को बडा कड़ा दड भी मिलता था। तानाशाही देशो में प्रेस सेंसर व्यवस्था आरभ से ही बड़े कडे प्रकार की रही है। कोई भी सपादक अपना पत्र बिना पूर्वनिरीक्षण के नही छपवा सकता था। नियम का उल्लघन करने का अर्थ पत्र को बद करना और सपादक को भारी दड भोगना था।

ब्रिटेन मे प्रेस सेंसर व्यवस्था से सपादकों में भारी असतोष फैल गया क्योकि कोई भी आपत्तिजनक बात छाप देने पर उनको दंड मिलने लगा। इसलिये बाद मे सरकार ने एक प्रेस ब्यूरो खोला जो समय समय पर सपादको का आवश्यक निर्देश दिया करता था जिससे वह कोई भी अपत्तिजनक विषय न छाप सकें परन्तु यह सस्था उनको दड से बचाने की जिम्मेवार नही थी।

प्रेस सेंसर व्यवस्था सरकार द्वारा सीमित रूप में ही लगाई जाती है और यह प्रत्येक देश की सभ्यता तथा रीति रिवाजो पर निर्भर है। सरकार कोई भी अश्लील पुस्तक जनता के समक्ष उपस्थित करने से मना कर सकती है; क्योकि देश की नैतिक उन्नति छपे हुए साहित्य पर ही निर्भर होती है।

युद्धकालीन सेंसर व्यवस्था — युद्धकाल में देश की सुरक्षा के लिये डाक, तार, समाचारपत्र तथा आकाशवाणी द्वारा भेजे गए सदेशो की सेंसर व्यवस्था आवश्यक है क्योकि शत्रु का गुप्तचर विभाग इन साधनो द्वारा देश की निर्बलताओ तथा दूसरे गुप्त विषयो पर सूचना पाने का प्रयास करता रहता है।

शांतिकाल में डाक और तार की सेंसर व्यवस्था असाधारण

सेनडाई स्थिति ३८°२१' उ० अ० एवं १४१° पू० दे०। जापान में उत्तरी हाशू द्वीप के मियागी परफेक्चर में ईशीनोगामी खाड़ी के उत्तरी भाग में टोकियो के १९० मील उत्तर पूर्व स्थित प्रमुख औद्योगिक केंद्र है जहाँ रेशम एवं रेशमी वस्त्र, लाखरजित पात्र, मिट्टी के वर्तन, सेक एवं शराब का निर्माण होता है। लकडी से संबधित उद्योग धंधे भी होते हैं। सेनडाई शैक्षणिक केंद्र भी है जहाँ टोहोकू विश्वविद्यालय एवं 'इडस्ट्रियल आर्ट रिसर्च इस्टीट्यूट' हैं। यह नगर १७ वी शताब्दी के शक्तिशाली सामत दाते मसामुने (Date Masamune) का गढ रहा है। सेनडाई का क्षेत्रफल २६ वर्ग मील है तथा इसकी जनसख्या ४,२५,२५० (१९६०) है।

[रा० प्र० सिं०]

सेन (Seine) फ्रास में एक नदी है जो लैंग्रेस पठार से १५४५' की ऊँचाई से निकलकर साधारणतया उत्तर पश्चिम में बहती है। शैंपेन, बार-सुर-सेन और ट्रायज नगरो के बाद यह अधिक घुमावदार मार्ग से होकर बहती हुई इले डी फ्रास (Ile de France), वेक्जिन एवं नारमडी क्षेत्र के मेलन, कारबील, पेरिस, मैंटीज, वेरनान तथा रूपेन नगरो से होती हुई इंगलिश चैनेल की एक ६ मील चौड़ी ज्वारनदमुख मे गिर जाती है। सेन नदी की कुल लंबाई ४८२ मील है। आवे, मार्ने, ओइसे, याने, लोइंग एवं यूरे इसकी सहायक नदियाँ हैं। सपूर्ण पेरिस बेसिन इसके प्रवाहक्षेत्र में आता है। यह फ्रास की सबसे अधिक नाव्य नदी है। इसमें रूपेन तक बडे बडे जलयान आ जाते हैं। पेरिस, रूपेन एव ली हार्वे नामक प्रसिद्ध नगर इसके किनारे स्थित हैं। इनके द्वारा ही फ्रास के अधिकाश आतरिक एव विदेशी व्यापार का आदान प्रदान होता है। सेन नदी एक नहर प्रणाली द्वारा शेल्ड्ज, म्यूज, राइन, रोन एव ल्वायर नदियों से मिली हुई है।

[रा० प्र० सिं०]

सेन राजवंश सेन एक राजवश का नाम था, जिसने १२ वी शताब्दी के मध्य से बगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इस वश के राजा, जो अपने को कर्णाट क्षत्रिय, ब्रह्म क्षत्रिय और क्षत्रिय मानते हैं, अपनी उत्पत्ति पौराणिक नायको से मानते हैं, जो दक्षिणापथ या दक्षिण के शासक माने जाते हैं। ९ वी, १० वीं और ११ वी शताब्दी में मैसूर राज्य के धारवाड जिले में कुछ जैन उपदेशक रहते थे, जो सेन वश से सबंधित थे। यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि बगाल के सेनों का इन जैन उपदेशको के परिवार से कोई सबध था। फिर भी इस बात पर विश्वास करने के लिये समुचित प्रमाण हैं कि बगाल के सेनों का मूल वासस्थान दक्षिण था। देवपाल के समय से पाल सम्राटो ने विदेशी साहसी वीरो को अधिकारी पदो पर नियुक्त किया। उनमें से कुछ कर्णाट देश से सबध रखते थे। कालातर मे ये अधिकारी, जो दक्षिण से आए थे, शासक बन गए और स्वयं को राजपुत्र कहने लगे। राजपुत्रो के इस परिवार में बगाल के सेन राजवश का प्रथम शासक सामतसेन उत्पन्न हुआ था।

सामतसेन ने दक्षिण के एक शासक, सभवत. द्रविड देश के राजेंद्रचोल, को परास्त कर अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। सामतसेन का पौत्र विजयसेन ही अपने परिवार की प्रतिष्ठा को स्थापित करनेवाला था। उसने वग के वर्मन शासन का अंत किया, विक्रमपुर में अपनी राजधानी स्थापित की, पालवश के मदनपाल को अपदस्थ किया और गौड़ पर अधिकार कर लिया, नान्यदेव को हराकर मिथिला पर अधिकार किया, गहडवालो के विरुद्ध गगा के मार्ग से जलसेना द्वारा आक्रमण किया, आसाम पर आक्रमण किया, उडीसा पर धावा बोला और कलिंग के शासक अनतवर्मन चोडगग के पुत्र राघव को परास्त किया। उसने वारेंद्री में एक प्रद्युम्नेश्वर शिव का मदिर बनवाया। विजयसेन का पुत्र एवं उत्तराधिकारी बल्लाल सेन विद्वान् तथा समाजसुधारक था। बल्लालसेन के बेटे और उत्तराधिकारी लक्ष्मणसेन ने काशी के गहडवाल और आसाम पर सफल आक्रमण किए, किंतु सन् १२०२ के लगभग इसे पश्चिम और उत्तर बगाल मुहम्मद खलजी को समर्पित करने पडे। कुछ वर्ष तक यह वग में राज्य करता रहा। इसके उत्तराधिकारियो ने वहाँ १३ वी शताब्दी के मध्य तक राज्य किया, तत्पश्चात् देववश ने देश पर सार्वभौम अधिकार कर लिया। सेन सम्राट् विद्या के प्रतिपोषक थे।

स० ग्रं०—आर० सी० मजुमदार: 'हिस्टरी ऑव वेंगॉल' (बगाल का इतिहास)।

[धी० चं० गा०]

सेना सेना सबधी उपलब्ध प्राचीनतम अभिलेखो में, ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व, प्राचीन मिस्र देश में योद्धावर्ग के लोगो के उल्लेख प्राप्त हुए हैं। ये लोग पैदल या रथो पर चढ़कर लडते थे। धनुष, बाण, भाले आदि आयुधो का प्रयोग करते थे। तत्कालीन मिस्री न्यायविधि मे, इन लोगो के प्रतिपालन की भी व्यवस्था थी। प्राचीन असीरिया और बेबीलोन नामक देशो में भी इसी प्रकार की सेनाएँ थी, परतु इन सेनाओ मे अश्वारोही भी समिलित थे जिनके कारण ये सेनाएँ मिस्र सेना की अपेक्षा अधिक सुचल और गतिमान थी। प्राचीन फारस देश की सेना का सगठन अस्थिरवासी जगली जातियो को सुगठित कर किया गया था। इसमें मुख्यतः अश्वारोही ही होते थे। अतएव अधिक सुचलता के कारण यह सेना सुविस्तृत क्षेत्र में युद्ध करने में भी सफल सिद्ध होती थी। फारस साम्राज्य की एक विशाल स्थायी सेना थी जो साम्राज्य के अधीन दूरस्थ सभी प्रातो और राज्यों की सुरक्षा के लिये समर्थ थी। इसी सेना मे दुर्गरक्षक तथा नगररक्षक सैनिको की गढसेना (*garrison troops*) भी थी।

यूनानी सेनाएँ — यूनानी नगरराज्यो में प्रत्येक देशवासी के लिये लगभग दो वर्ष पर्यंत सैनिक सेवा अनिवार्य थी। यूनानवासियो के उत्कट देशप्रेम तथा उनकी असाधारण व्यायाम अभिरुचि के कारण यूनानी सेनाएँ भी अत्यत सुदृढ एव अस्त्रप्रयोग मे सुदक्ष होती थी, और घोर युद्ध में भी पक्तिबद्ध कवायद करते हुए आगे बढती थी। यूनानी सैनिक प्राय नगर तथा पर्वत के वासी थे, जो अश्वो का प्रयोग न कर, पैदल ही युद्ध करते थे। सामरिक व्यूहरचना फ्लैनेक्स रूप में होती थी। फ्लैनेक्स में घनाकार वर्ग में स्थित भालाधारी सैनिक होते थे। फ्लैनेक्स सेना प्रत्येक प्रहार को रोकने में सर्वथा समर्थ थी और समतल भूमि पर अप्रतिहत आगे बढ सकती थी। परंतु इस सेना में जहाँ एक ओर सुचलता का अभाव था वहाँ दूसरी ओर यह असम भूमि पर सैनिक कार्यवाही में भी असमर्थ थी। कुछ समय

प्रचलित ही नही है वरन् वडे चाव से प्रयोग में आता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इसमे अन्य कोणमापी यंत्रों से अधिक सुविधाजनक विशेषताएँ उपलब्ध हैं। पहली विशेषता यह है कि अन्य कोणमापी यंत्रो की भाँति इसे प्रेक्षण के समय एकदम स्थिर रखना या किसी निश्चित अवस्था मे रखना अनिवार्य नही है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रेक्षक स्थिति और उसपर कोण वनानेवाले विंदु क्षैतिज ऊर्ध्वाधर या तिर्यक् समतल मे हो, इस यंत्र से उस समतल में वने वास्तविक कोण की मात्रा नाप सकते हैं। इन विशेषताओं के कारण सेक्सटैंट नाविक को उसकी यात्रा की दिशा का ज्ञान कराने के लिये आज भी वड़ा उपयोगी यंत्र है।

यंत्र के प्रकार — दो प्रकार के सेक्सटैंट प्रयोग में आते हैं। एक, वाक्स सेक्सटैंट और दूसरा खगोलीय या नाविक सेक्सटैंट। दोनो की वनावट में कोई सैद्धांतिक भिन्नता नही है। इनकी वनावट का सिद्धांत यह है कि यदि किसी समतल में प्रकाश की कोई किरण आमने सामने मुँह किए खड़े समतल दर्पणो से एक के वाद दूसरे पर परावर्तित (Refleced) होने के वाद देखी जाय तो देखी गई किरण और मूल किरण के वीच वना कोण परावर्तक दर्पणो के वीच पारस्परिक कोण से दूना होगा। सेक्सटैंट से १२०° तक का कोण एक वार मे ही नापा जा सकता है। इससे वड़ा कोण होने पर दो या अधिक से अधिक तीन भाग करके नापना होगा।

वनावट — वाक्स सेक्सटैंट एक छोटी, लगभग ८ सेंमी व्यास और चार सेंमी ऊँचाई की डिविया सा होता है। ऊपर का ढक्कन खोल देने पर ऊपर कुछ पेंच और एक वर्नियर थामी हुई भुजा दिखाई देगी जो अंशों पर उसके छोटे भागो में विभाजित चाप पर चल सकती है। दस्ते की भाँति एक पेंच भुजा से जुडा होता है। डिविया के भीतर धँसी पेंच की पिंडी से एक समतल दर्पण लगा रहता है। इसे निर्देशदर्पण कहते हैं। पेंच घुमाने से दर्पण और साथ ही अंकित चाप पर भुजा में लगा वर्नियर चलता है। इससे दर्पण की कोणीय गति ज्ञात हो जाती है।

इस निर्देशदर्पण के सामने ही एक दूसरा दर्पण रहता है जिसका नीचे का आधा भाग पारदर्शी और ऊपर का परावर्तक होता है। जिन दो विंदुओ के वीच कोण नापना होता है उनमे से एक को वक्स में लगी दूरवीन या वने छेद से क्षितिज दर्पण के पारदर्शी भाग से देखते हैं और दूसरे विंदु का प्रतिविंव निर्देशदर्पण से एक परावर्तन के वाद क्षितिज दर्पण में दिखाई देता है। इस समय पेंच से निर्देशदर्पण ऐसे घुमाते हैं कि क्षितिजदर्पण के पारदर्शी भाग से देखे विंदु की किरण प्रतिविंव की किरण पर सन्निपाती हो जाय। इस समय दोनो दर्पणों के वीच वना कोण प्रेक्षक की स्थिति पर दोनों विंदुओ द्वारा निर्मित कोण का आधा होगा। दर्पणो के वीच का कोण वर्नियर सूचक के सामने अकित चाप पर पढ़ा जा सकता है जिससे विंदुओ के वीच का कोण ज्ञात हो सके। वर्नियरसूचक पर ही सही पाठ्यांक (reading) लेने के लिये एक आवर्धक लेंस लगा रहता है।

मगर चाप पर अंशाकन इस प्रकार किया जाता है कि विंदुओं द्वारा निर्मित कोण सीधा पढा जा सके। यह सुविधा प्रदान करने के लिये निर्देशदर्पण की गति की दूनी राशियाँ लिखी जाती हैं। जैसे १०° के सामने २०°, २०° के सामने ४०°, इसी प्रकार अंतिम अंशांकन ६०° के सामने १२०° लिखते हैं। इससे पढ़ी गई राशि कोण की मात्रा होगी कोण एक मिनट तक सही पढ़ सकते हैं।

नाविक सेक्सटैंट — यह धातु का ६०° का वृत्तखंड होता है जिसका चाप अंकित होता है। वक्र के केंद्र से एक भुजा चाप पर फैली होती है। इस भुजा के सिरे पर वर्नियर (क्लैंप) और एक स्पर्शी पेंच लगे रहते हैं। इसी भुजा पर ऊपर निर्देशदर्पण लगा रहता है। केंद्र पर भुजा घूम सकती है और उसके साथ निर्देशदर्पण और अंकित चाप पर वर्नियर भी। चाप को थामे एक अर्धव्यास पर निर्देशदर्पण के सामने आधा पारदर्शी और आधा परावर्तक क्षितिज काँच दृढता से लगा होता है जिससे होकर देखने के लिये सामने दूरवीन होती है। स्पष्ट है कि इसकी वनावट वाक्स सेक्सटैंट के समान ही है और प्रेक्षण का ढग भी। सूर्य के प्रेक्षण के लिये रंगीन काँच रहता है। ६०° के चाप पर अंश और उसके छोटे विभाजन यंत्र के आकार के अनुसार २०' या १०' तक वने होते हैं। वर्नियर से २०" या १०" तक पढने की सुविधा रहती है।

सेक्सटैंट से ही पाठ्यांक प्राप्त करने के लिये निम्न ज्यामितीय संवंध होना चाहिए और न होने पर समायोजन करके ये सवध स्थापित कर लिए जाते हैं :

(१) सूचकांक और क्षितिज काँच चाप के समतल पर लंव हो,

(२) जव वर्नियर सूचकांक शून्य पर हो तो निर्देशक और क्षितिजदर्पण समातर हो, तथा

(३) दृष्टिरेखा चाप के समतल के समातर हो।

[गु० ना० दू०]

सेगांतीनी, जिओवान्नी (१८५८—१८९९) इटालियन चित्रकार। चार वर्ष की उम्र में ही माता की मृत्यु। पिता भी अवोध वालक जिओवान्नी को अपने किन्ही संवंधियो के पास छोडकर मिलान चला गया। उसका वचपन अधिकतर गरीव किसानों, गड़रियो और खेतिहर मजदूरो के साथ वीता। पर प्रकृति की खुली गोद मे उन्मुक्त विचरण करने से उसका मन निस्सीम सौंदर्य से ओतप्रोत हो गया। एल्प्स उसके जीवन का सच्चा प्रेरणास्रोत वना। १८८३ में 'एव मेरिया' नामक उसके एक चित्र पर एमस्टरडम प्रदर्शनी मे उसे एक स्वर्णपदक प्रदान किया गया। तत्पश्चात् पेरिस में 'ड्रिंकिंग ट्रफ' और ट्यूरिन में 'प्लोइग इन द इंगडाइन' नामक चित्रकृतियो पर भी उसे स्वर्णपदक प्राप्त हुए। ऋतुपरिवर्तन और प्राकृतिक दृश्यो की सहज सुषमा के साथ साथ लगता है जैसे उसकी तूलिका की नोक पर हर पर्वत पठार की पगडंडी, खेत और खलिहान सजीव हो उठे हैं। हरी भरी धरती ने उसकी प्राणात्मा का स्पर्श किया है और धूपछाँही वातावरण ने जीवंत रगो को अधिक व्यंजक वनाया है। प्रतीकात्मक विषयो, जैसे 'अय्याशी की सजा' और 'अस्वाभाविक माताएँ' आदि के चित्रण मे भी उसका अथक प्रयत्न प्रशंसनीय है। स्विटजरलैंड के मालोजा नगर में उसकी मृत्यु हुई, जहाँ के कलासंग्रहालय मे आज भी उसकी कुछ अधूरी कलाकृतियाँ मौजूद हैं। [श० रा० गु०]

में धन संपत्ति की अनिवार्यता को हटा दिया तब रोम सेना में मुख्यतः निम्नवर्गीय निर्धन रोम नागरिक तथा विदेशी ही रह गए। यद्यपि लीजस और मैनिपल्स अपने संशोधित रूप में अब भी विद्यमान थे तथापि परिवर्तित रोमभावना रोम सेना मे स्पष्ट प्रतिबिंबित हो रही थी। इस सेना में केवल सघभाव ही रह गया था अन्यथा स्वदेशाभिमान का सर्वथा अभाव था। प्रत्येक लीजन का सख्याकन कर उसका एक स्थायी अस्तित्व स्थापित कर दिया गया। सैनिको को अब अपने अपने लीजन का गर्व था। सैनिक, इस विशाल साम्राज्य की दूरस्थ सीमाओ पर चिरकाल तक अपनी कर्तव्यपरायणता से गर्वित हो, अपना अस्तित्व भी सामान्य नागरिको से पृथक् ही समझने लग गए थे। इन भावनाओं तथा सेना की व्यावसायिक वृत्ति के फलस्वरूप प्रेटोरियन गार्ड के प्रख्यात सैनिको का उदय हुआ जो सत्ता और वेतन के लिये षड्यन्त्र रचने लगे तथा सम्राटो की हत्या तक कर डाली। इन परिस्थितियो का अवश्यभावी परिणाम यह हुआ कि उत्तर दिशा से उग्र असभ्य जातियों का प्रभाव बढ़ने लगा, ऐड्रिनोपल की पराजय (३७८ ई०) हुई और रोम सेना की प्राचीन कीर्ति, विदेशी वाहुल्य के कारण, व्यगचित्र मात्र रह गई। रोम परपरा अब बिजैंटा (Byzantine) राज्य ही में जीवित रह गई थी।

बिजैंटा की सेना — आरंभ मे पूर्वी साम्राज्य की, अस्थिरवासी जातियो के आक्रमण से, गोथ देश के धनुर्धारी अश्वारोहियो तथा विदेशी फियोडेराटी सैनिको की सहायता से, सुरक्षा की गई। परतु सम्राट् जस्टिनयन के पश्चात् फियोडेटारी का लोप हो गया और छह सौ ईसवी के आस पास एक सजातीय (homogeneous) तथा सुसयोजित सेना का प्रादुर्भाव हुआ। आरभ मे सीमाप्रांतो ने सेना प्रदान की तथा राज्य के मध्य भाग में स्थित नागरिको ने सैनिक सेवा के वदले में सैविक कर (Scutage) देना स्वीकार किया। कालातर मे प्रादेशिक (territorial) सेनापद्धति का भी नियमन किया गया। समस्त राज्य सैनिक प्रदेशों तथा थेंस मे विभक्त था। प्रत्येक सैनिक प्रदेश को निजी प्रादेशिक सेना के लिये सैनिक स्वयं सुलभ करने पडते थे तथा पाँच हजार प्रशिक्षित सैनिक सामान्य सेना के लिये सदा तत्पर रखने पडते थे। प्रत्येक थेंस को निजी इजीनियर, सभरण, और चिकित्स्य कोर का भी प्रबध करना पडता था। वेली सेरयस सरीखे नायको के प्रयत्न से वैज्ञानिक आधार पर प्रशिक्षित सेना की भी उत्पत्ति हुई। अनेक शताब्दियो तक बिजैंटा की सेना अविकल बनी रही, परतु कालचक्र मे फँसकर इसका भी अंत हो गया। अन्य देशो की भाँति यहाँ भी, सर्वप्रथम तो वृत्तिपरक सैनिक वर्ग, जो पारस्परिक भी था, उभड पडा, और पीछे से मैनजिकर्ट की पराजय के कारण सेना मे विदेशी वाहुल्य और बढ जाने के कारण, अति सघातक प्रायटोरियन (Praetorian) भावनाओ का उदय होने लगा। इन कारणो से सन् १२०४ ईसवी में बिजैंटा की सेनाओ ने शत्रु की उपस्थिति में ही विद्रोह कर दिया। राज्य द्वारा इन विद्रोहो का अवरोध सन् १४५३ तक निरतर चलता रहा। अत में कुस्तुनतुनिया पर तुर्कों का अधिकार हो जाने पर बिजैंटा साम्राज्य विलुप्त हो गया।

मंगोल सेना — मगोल सेना मध्ययुग की सर्वाधिक शक्तिशाली सेना थी, जिसने १३ वी शताब्दी में प्रशात महासागर से लेकर एड्रियाटिक सागर पर्यंत विशाल क्षेत्र पर विजय प्राप्त की। इस सेना का सर्जन इतिहासविदित महान् विजेता चगेज खाँ के हाथों हुआ। कठोर और परिश्रमी अस्थिरवासी जातियों पर आधारित सपूर्ण मंगोल सेना मे प्राय हल्की अश्व सेना ही के सिपाही थे। अतएव इस सेना में युद्धनीतिक सुचलता (Strategic mobility) का अद्वितीय गुण विद्यमान था। सैनिक सेवा के अतिरिक्त आपत्काल मे घोडे भक्ष्य पदार्थों का भी कार्य देते थे। मगोल सैनिको की सख्या दो लाख से भी अधिक थी। ये सैनिक भूमि की उपज पर ही निर्वाह करते तथा सभरण साधनो से अपनी गतिविधि को अवरुद्ध नही होने देते थे। धनुष और बाण इन्हें अति प्रिय थे। हस्ताहस्ति युद्ध (Close fighting) के अवसर पर लघु कवच तथा खग का प्रयोग करते। दुर्ग की दीवारो को भेदन के उद्देश्य से बैलिस्टा तथा अन्य पर्यवरोध यन्त्रो (Siege engines) का प्रयोग करते। अपनी विशेष सुचलता तथा अश्वसेना द्वारा अन्वालोपी प्रहार (Enveloping charge) के समरतन्त्रों (tactics) का विकास किया। किसी चौड़े मोर्चे की ओर अग्रसर होने के लिये कई 'कोर' परस्पर असबद्ध होकर चलती थी, द्रुतगामी सदेशावाहको द्वारा इनमें परस्पर सपर्क स्थापित किया जाता था, तत्पश्चात् युद्ध समय में सकल सेना सहसा केंद्रित हो जाती थी। किसी दुर्गविशेष पर अधिकार करने के लिये सेना का कुछ भाग घेरा डालने के लिये पीछे रह जाता था, शेष सेना शीघ्रता से आगे बढ़ती रहती, और इस भाँति घिरी गढसेना की बाह्य सहायता की आशा नष्ट हो जाती थी।

यूरोप की सामतीय सेनाएँ — अधकार युग में जहाँ अन्य राजनीतिक क्षेत्रो में धुध छा गया था वहाँ सेनासस्थान का भी ह्रास हुआ। लौंबर्ड, विसिगोथ, फास और इग्लैड की सभी शक्तिशाली सेनाएँ प्राचीन अस्थिरवासी जातियो पर आधारित थी। चार्लमैगने (Charlemagne) द्वारा सामतीय सेनाओ का समारभ होने पर भी, धन और शक्ति सम्राट् और सामन्तो में वितरित होने के कारण एक विशाल तथा केंद्रशासित सेना की स्थिति सर्वथा असभव हो गई थी। सामतीय सेनाएँ रणप्रशिक्षण से अनभिज्ञ थी। साथ ही उनकी सेनाएँ वर्ष भर में केवल एक मास से तीन मास पर्यंत ही सुलभ हो सकती थी। एक कवचधारी राजरणक (knight) सामतीय सेनाओं के हथियारो द्वारा सवथा अभेद्य था। अतएव बहुसख्यक सेनाओ के स्थान पर, जो रणक्षेत्र में प्रायः निष्प्रभ सिद्ध होती थी, राजरणक शूरवीरो की सख्या तथा विशिष्टता पर अधिक बल दिया जाने लगा। सामतीय सेनाओ की इन परिमितताओ के कारण एक नई सेना के सर्जन की आवश्यकता हुई। इस नवीन सेना में वल्लम तथा धनुष-बाण-धारी (pikemen and crossbowmen) वृत्तिक सैनिको की बहुसख्या मे नियुक्ति की गई। यह क्रम उस समय तक चलता रहा जब तक अग्रेजी सेना के लबे धनुष, स्विस सेना के हल्बर्ड { 'हल्बर्ड' वल्लम तथा परशु (battleaxe) को मिलाकर बनाया जाता था। इसमें एक अकुशाकार काँटा भी लगा होता था, जिसमें राजरणक को फँसाकर घोडे से नीचे खीच लिया जाता था } नामक अस्त्रो से सामतीय सेनाओ का प्रभुत्व सर्वथा नष्ट नही हो गया। इसी समय वारूद के प्रयोग तथा व्यापारी वर्ग के अभ्युत्थान ने भी भूपालो की शक्ति बढ़ाने में और योग दिया। सम्राटो ने इटली

पश्चात् पैलीपोनेसिया और सिरेक्यूज के लंबे युद्धों के कारण यूनान मे वृत्तिक सेनाओ की भी नियुक्ति करनी पड़ी। ये सेनाएँ अधिक विवृत्त रूप से लड़ सकती थी तथा फ्लैनेक्स सेना के १८ फुट लवे सरीसा नामक भालो के स्थान पर लघु क्षेपणास्त्रों (light missiles) का प्रयोग करती थी। इफिक्रेट के इन पैलटास सैनिकों ने, ईसवी पूर्व सन् ३९१ में स्पार्टा नगर राज्य के सैनिको (होपलिट) की एक कोर पर विजय प्राप्त कर समस्त यूनान में खलबली मचा दी थी। इतिहासविदित सेनानायक इपैमिनोंडस ने होपलिट सैनिको की स्थिरता और पैलटास सैनिको की सुचलता के मिश्रित वल बूते पर ही अनेक युद्धो मे विजय प्राप्त की। मिश्रित सेना की यह विधि सिकंदर की सर्वविजयिनी सेना मे, जिसमे हल्की और भारी अश्वसेना भी समिलित थी, और विकसित हुई। सिकदरी सेना में, यूनानी फ्लैनेक्स स्थित होपलिट सेना सरीसा से सुसज्जित हो, सेना के मध्यभाग में स्थित होती थी। उसके चारो ओर पैलटास सैनिक अथवा धनुर्धारी अश्वसेना तैनात की जाती थी। मैसीडोन-गार्ड-सैनिक भारी अश्वसेना (heavy cavalry) का कार्य करते थे। वृत्तिक सैनिक वल्लम आदि हथियारो से सुसज्जित हो पार्श्व भाग में स्थित होकर हल्के रिसाले (light cavalry) के रूप में युद्ध करते थे। भारी रिसाले का प्रयोग शत्रु की वलात परतु युद्ध में डटी सेनाओ को अतिम आघात पहुँचाने के उद्देश्य से किया जाता था। हल्के रिसाले का उपयोग पराजित सेना का पीछा करने तथा उसमें भगदड मचाने के निमित्त किया जाता था।

मौर्यकालीन भारतीय सेना — वैदिक काल मे भारतीय सेना में पत्ती और रथ दो ही अंग थे। उत्तरवैदिक काल में अश्वसेना और हस्तिसेना का भी प्रयोग किया जाने लगा। जातक ग्रथो मे चतुरगबल अथवा चतुरग चमू का अनेक स्थलों पर वर्णन पाया जाता है।

चंद्रगुप्त की राज्यसभा में स्थित यूनानी राजदूत मेगस्थनीज के वर्णनानुसार मौर्य सेना में छह लाख पदाति, तीस हजार अश्वारोही तथा नौ हजार हाथी थे। युद्धभूमि में सम्राट् स्वयं सेना का नेतृत्व करते थे। चंद्रगुप्त मौर्य की सेना में सम्राट् की मौल सेना, मित्रसेना और वृत्तिक सेना के सिपाही होते थे। श्रेणी सेनाओं (guilds) तथा जगली जातियो द्वारा निर्मित सेनाओं का सहायक सेना तथा अनियमित सेना (irregular force) के रूप में प्रयोग किया जाता था। ये सेनाएँ, सैनिक दृष्टि से, केवल प्रतिरक्षा के लिये उपयोगी थी। गज, अश्व और पदाति ही सेना के प्रधान अंग थे, यद्यपि रथों और समर इंजनों का भी प्रयोग किया जाता था। सैन्यविद्या विशेष उन्नत थी। समूची सेना अग्रदल (vanguard), पृष्ठदल (rearguard), पार्श्वरक्षीदल (flankguard) और रिजर्व सेना (reserve force) आदि आदि भागो में विभक्त थी। प्रत्येक दल के सुनिश्चित कार्य थे। दुर्गनिर्माण और दुर्गसंक्रमण मौर्यकालीन समुन्नत भारतीय कलाएँ थी। इस काल में भी भारत देश युद्ध संबंधी नियमो मे समकालीन संसार में अतुल्य था। अन्य व्यक्ति के साथ युद्धरत शत्रु के विरुद्ध आक्रमण, घायल सैनिक की हत्या, निहत्थो पर वार और आत्मसमर्पित शत्रु पर आक्रमण आदि आदि अन्यायपूर्ण व्यवहार सर्वथा वर्जित थे। भारतीय सेना द्वारा प्रतिपालित, न्याययुद्ध के इन नियमो के कारण, सैन्य संस्कृति के विकास में, भारतीय सेनाओ का विशिष्ट स्थान है।

हनीवाल की सेना — एक अन्य सुप्रसिद्ध प्राचीन सेना कार्थेज देश की थी। हनीवाल के नेतृत्व मे, इस सेना की वीर गाथाओं से आज भी विश्व चकित हो उठता है। यूनान और रोम की प्राचीन सेनाओं से सर्वथा भिन्न इस सेना में स्वदेशाभिमान के स्थान पर संघभाव (espirit de corps) कूट कूटकर भरा गया था। फ्लैनेक्स के स्थान पर पदाति सेना पक्तिबद्ध विशाल गण (battalion) बनाकर लडती थी, जो फ्लैनेक्स के ही समान दुर्भेद्य होने के अतिरिक्त चारो ओर घूम फिरकर भी सैनिक कार्यवाही कर सकती थी। इसमे हल्की और भारी दोनो प्रकार की अश्वसेना भी थी। हनीवाल की सेना में कुछ भाग गजसेना का भी था जिसने फ्रास और इटली के मध्य बर्फीले ऐल्प्स पर्वतो को लाँघकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। परतु अन्य वृत्तिक सेनाओ की भाँति यह सेना भी दीर्घकालीन युद्धो के लिये अनुपयुक्त थी। युद्धजनित जनक्षति की पूर्ति के लिये इसे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा और अततोगत्वा, हनीवाल की अलौकिक क्षमता के वावजूद इसे रोम गणराज्य की सेना के आगे सिर झुकाना पडा।

रोम गणराज्य की सेनाएँ — रोम गणराज्य की सेना मे केवल धनीमानी रोम नागरिक ही होते थे, जो अवैतनिक कार्य तो करते ही थे, साथ ही कवच आदि भी सुलभ करते थे। अधिक धनी लोग अश्वारूढ हो सेना में समिलित होते थे। पदाति सेना में मध्यवर्गीय नागरिक ही होते थे। निर्धन जनता साधारण अस्त्रों से युक्त हो हल्की सेना का कार्य करती अथवा सैनिक सेवा से विल्कुल पृथक् रहती। रोम-सैनिकदल, लीजन, में छह हजार व्यक्ति होते थे जो तीस मैनिपलस में वँटे होते थे। इस प्रकार एक मैनिपल मे दो सौ सैनिक होते थे। इनके अतिरिक्त तीन सौ अश्वारोही और बारह सौ साधारण पदाति सेना के विलाइट्स सैनिक भी होते थे। तलवार तथा लघुक्षेपण (light throwing) भाले इस सेना के प्रधान अस्त्र थे। यदि रोम के स्वाभिमानी सैनिक इतने घोर कट्टर न होते और रोम मैनिपलस मे सैनिक चाल की सुगमता न होती तो रोम सेनाएँ, अपने इन हल्के हथियारों से, अपेक्षाकृत विवृत्त समर में, फ्लैनेक्स के बहुसख्यक आक्रमणो का कदापि सामना नहीं कर सकती थी। परंतु वैतृक नेतृत्व का अभाव रोम सेना की महानतम दुर्बलता थी। एक कौंसल (सेनानायक) दो द्विगुण लीजनो का नेतृत्व करता था। रोम नागरिक, जो स्वयं भी योद्धा थे, कौंसल का निर्वाचन करते। जब अनेक लीजन समवेत हो युद्ध करते, जैसा 'कैनी' के युद्ध में हुआ, तब प्रत्येक कौसल क्रमशः एक एक दिन सयुक्त सेना का नेतृत्व करता और इस भाँति कोई एकाकी सक्रिय योजना (single plan of operation) वस्तुतः असंभव थी।

रोम साम्राज्य की सेना — धन वैभव की अभिवृद्धि के परिणामस्वरूप रोम सस्कृति में दुर्बलता के कीटाणु भी प्रवेश करने लगे और शनैः शनैः उच्चवर्गीय धनी रोम नागरिको ने सेनिक सेवा से संन्यास ग्रहण करना आरभ कर दिया। जव मैरियस ने सैनिक-सेवा-नियमों

सैनिक भर्ती (conscription) का आश्रय लिया और कुछ ही महीनों में दस लाख से भी अधिक सैनिकों की एक महान् सेना खड़ी कर दी। कवायद आदि से अनभिज्ञ, ये सैनिक देशप्रेम से ओतप्रोत हो, रसद एवं रणसामग्री की असुविधा तथा नायकों के सूक्ष्म निरीक्षण के अभाव मे भी विवृत्त रूप से शत्रु से डटकर लड़ते थे। यह नई सेना निस्संदेह एक खड्ग-हस्त-राष्ट्र (nation-in-arms) थी। फ्रास की क्रातिकारी सेनाएँ १२० पद प्रति क्षण की अपूर्व गति से प्रयाण कर सकतीं, ग्रामो और किसानो से रसद प्राप्त करती तथा असम भूमि पर सहर्ष आगे बढती। तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ वृत्तिक सेनाओं का फ्रासीसी सेनाओं ने तख्ता पलट दिखाया। फ्रासीसी सेनाओ के बहुसख्यक होने के कारण कोर (corps) और डिविजन स्वत पूर्ण सैनिक विभाग करने पड़े। प्रत्येक डिविजन मे तोपखानो और इजिनियरो (engineers) के निजी दल भी होते थे।

अनंत युद्धों तथा भारी जनसहारजन्य अवश्यभावी नैतिक ह्रास के अतिरिक्त नैपोलियन की सेना मे एक महाघातक त्रुटि भी थी। सुविशाल क्षेत्र पर विस्तृत असख्य डिवीजनो की गति को समन्वित (coordinate) करने के लिये सुप्रशिक्षित सर्वबलाधिकरण अधिकारियों का (जो पीछे से General Staff Officers कहलाने लगे) होना नितात आवश्यक था। परतु नैपोलियन ने इस ओर कभी ध्यान नही दिया। वह स्वयं तो अपनी बहुमुखी अलौकिक क्षमता के सहारे विशाल सेना का कुशलतापूर्वक सचालन कर सकता था, परंतु उसके सुविख्यात मार्शल (महाधिपति, Marshals) अनेक युद्धनिर्णायक अवसरो पर असफल रहे। इन महाधिपतियो के सहायतार्थ सर्वबलाधिकरण अधिकारियो का भी अभाव था तथा उनमें नैपोलियन सदृश अलौकिक प्रतिभा तथा कार्यक्षमता भी नही थी।

सर्वबलाधिकरण अधिकारी का उदय — नैपोलियन के पश्चात् अधिकतर राज्यो ने पुन वृत्तिक सेनाओ की रीति अपनाई। ब्रिटेन ने अपने साम्राज्य का और अधिक विस्तार करने के उद्देश्य से एक छोटी ब्रिटिश सेना तथा बड़ी बड़ी औपनिवेशिक सेनाओं का सहारा लिया। यूरोप पर अपना प्रभाव ब्रिटेन ने अपनी महाशक्तिशाली नौसेना पर ही आधारित रखा। फ्रास मे अनिवार्य भर्ती नाममात्र ही को शेष रह गई थी। वास्तव में नागरिको को अनिवार्य सैन्य सेवा से मुक्ति दे रिक्त स्थानो की वृत्तिक सेनाओ द्वारा पूर्ति करने की आज्ञा दे दी गई थी। इसी आधार पर सयोजित आस्ट्रिया की सेना १८ वीं सदी के मध्य में यूरोप भर मे सर्वश्रेष्ठ सेना थी। परतु प्रशा ने शनै शनै एक नई शैली का विकास किया। सेना के पराजय के उपरात प्रशा की सैनिक सख्या पर कठोर प्रतिबंध लगा दिए गए थे, अतएव प्रशावासियो ने 'कपट' विधि का सहारा लिया। अखिल देशव्यापी आधार पर 'कपट' विधि के अनुसार सैनिकों को अल्पकालिक गहन प्रशिक्षण दिया जाता था। स्थायी सेना के साथ कुछ समय सैनिक कार्य करने के पश्चात् इन प्रशिक्षितो को प्रत्याघृत बना दिया जाता और अन्य सैनिको के प्रशिक्षण का कार्य आरभ कर दिया जाता था। इस भाँति स्थायी सेना छोटी होते हुए भी एक बहुसख्यक प्रशिक्षित रिजर्व सेना तैयार हो गई।

प्रशा ने विशेष प्रशिक्षित सेनाधिनायकों के सृजन में भी प्रगति की। ये सेनाधिनायक नवीन युद्धकला के प्रवर्तक बने। ये सेनाओं के क्षणश जटिल गमनागमन की और सैनिक सामग्री और रसद वितरण की अनुसूची तैयार करते तथा प्रमुख युद्ध सैनिक निर्णयों (major strategical decisions) की विस्तृत योजना बनाते थे। एकल सक्रियासिद्धात (single operational doctrine) से अभिमत, विशेष्वबलाधिकरण अधिकारी विचार विनिमय के बिना भी एक समान कार्य करते। इस प्रकार विशाल सेनाओ को सेनापति के एक सामान्य आदेश पर पूर्ण निपुणतापूर्वक एवं सुनिश्चित प्रकार से क्रियान्वित किया जा सकता था। ज्यो ज्यो युद्ध अधिकाधिक जटिल और विशालकाय होते गए त्यों त्यो सर्वबलाधिकरण अधिकारियों का महत्व भी बढ़ता गया। इस पद्धति का प्राय प्रत्येक सेना में समारंभ किया गया। सर्वबलाधिकरण अधिकारियो के लिये असाधारण योग्यता की सर्वाधिक आवश्यकता थी। सन् १९१४ के प्रथम विश्वयुद्ध में फ्रास और रूस दोनो देशों के एक एक हजार सर्वबलाधिकरण अधिकारियो के मुकाबले जर्मनी के केवल दो सौ पचास सर्वबलाधिकरण अधिकारी कहीं बढ़ चढकर सिद्ध हुए।

१९वीं शताब्दी का अंत — १९ वी शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रशा और फ्रास और अमरीका में दो गृहयुद्ध हुए। सेना संघटन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। अमरीका गृहयुद्धों की यूरोप के शक्तिशाली देशो ने केवल एक असभ्य भिड़ंत समझकर अवहेलना की, दूसरी ओर फ्रास और जर्मनी के मध्य हुए युद्ध की ओर विशेष ध्यान दिया गया। जर्मनी की नवीन सेनाओ के हाथो फ्रास की वृत्तिक सेनाओं के पराजित हो जाने पर जर्मन सेनाओ के अनुकरण की दिशा में भी एक उत्साहपूर्ण प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई।

नई प्रणाली के अनुसार अनिवार्य सैनिक सेवा अखिल देशव्यापी दायित्व घोषित की गई। किसी भी व्यक्ति को (स्वास्थिक अयोग्यता के अतिरिक्त) इससे छूट नही थी, न स्थानापन्नता का प्रश्न उठता था। यदि किसी वर्ष अनिवार्य सैन्यभर्ती आवश्यकता से अधिक हो जाती तो अधिक सेना रिजर्व दल मे भेज दी जाती और शेष समुदाय सामान्यत तीन वर्ष की अल्पावधि तक सेना में कार्य करने के पश्चात् लगभग छह वर्ष के लिये क्रियाशील रिजर्व में भेज दिया जाता, तत्पश्चात् इसे गढसेना अथवा द्वितीय श्रेणी की रिजर्व सेना में रहकर लगभग पाँच छह वर्ष पर्यंत कार्य करना पड़ता। इन रिजर्व सेनाओं में कार्य करने के बाद इन व्यक्तियों को लैंडस्टूम नामक गृहरक्षी दल (home guard force) में भेज दिया जाता। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को बीस वर्ष की आयु से पैंतालीस वर्ष की आयु तक अनिवार्य रूप से सैनिक कार्य करना पडता। इस भाँति असंख्य सैनिक समुदाय तथा इसे शत्रु मोर्चों पर पहुँचाने के लिये रेलगाड़ियो के प्राप्य हो जाने पर इन सैनिकों को लामबंदी (mobilise) कर युद्धभूमि की ओर भेजना प्राथमिक महत्ता का कार्य हो गया। उच्च प्रशिक्षित सर्वबलाधिकरण अधिकारी लामबंदी (mobilisation) की विस्तृत योजना बनाते, क्योकि शत्रुसीमा पर सेना पहुँचने में एक दिन का विलब भी महाविनाश का हेतु बन सकता था। अतएव लामबदी योजना को क्रियान्वित करने के बाद कोई भी बाधा सह्य नहीं

के काडेटेरी आदि अति निपुण भृत्य सैनिकों को अपनी अपनी सेनाओं में नियुक्त कर लिया। ये सेनाएँ स्वभावतः जनसंहार से बची रहती, जिसके कारण युद्ध प्राय. और भी रक्तपातहीन निष्परिणाम युद्धाभिनयन (monouvres) तक ही सीमित थे।

भारत में मुगल सेना — भारतीय मुगल सेना १६वी-१७वी शताब्दी में संसार की सर्वश्रेष्ठ सेनाओं में से थी। वंशानुगत हिंदू और मुसलमान योद्धाओं की एक सेना ने शक्तिशाली मुगल साम्राज्य की स्थापना कर दो सौ वर्षों तक इसकी सुरक्षा की। अश्वसेना इसका दृढ़तम अंग थी जो युद्धनिर्णायक घडियो मे समरविजय के उद्देश्य से प्रचंड पार्श्वपक्षीय आक्रमण के लिये चढ जाती थी। मुगल लोग तोप ढालने की कला मे अति प्रवीण थे। संग्रामस्थल मे तोपें युद्धरेखा के मध्य स्थित कर दी जाती थीं। इन्हें शत्रु से सुरक्षित रखने के लिये तोपो के आगे शृंखलाबद्ध गाड़ियाँ खडी कर दी जाती थीं। परंतु तोपखाना युद्धभूमि में स्थिर रहकर ही संकार्य कर सकता था और सेना को भी कवायद आदि का कोई अभ्यास नहीं था। आंशिक सेना बादशाह की निजी होती थी, जिसको शाही खजाने से वेतन दिया जाता था, शेष सेना मनसबदार सामंतो और प्रादेशिक शासनाध्यक्षो की ही होती थी। सैन्य संभरण का प्रबंध भी अलौकिक ही था क्योंकि प्रत्येक शिविर मे नागरिक सुविधाओं का पूरा बाजार लगता था। धान्यव्यापारी, परचूनिए, जौहरी, शस्त्रकार, पंडित, मौलवी और वेश्या आदि ये सभी सैनिक शिविर का अनुगमन करते और इस प्रकार शिविर स्वत एक चलता फिरता नगर प्रतीत होता। यह निस्संदेह एक बडी रुकावट थी, जिसके कारण ही उत्तरकालीन मुगल सेनाएँ, चपल मराठो और ईस्ट इडिया कपनी के सुप्रशिक्षित ब्रिटिश सिपाहियों के मुकाबले अति मंद गति के कारण अनुपयोगी सिद्ध हुईं।

१८वीं शताब्दी में सेना — नैपोलियन से पूर्व यूरोप मे सामान्यत. छोटी तथा स्थायी सेनाएँ होती थी। राजा स्वयं सेना को वेतन देते तथा अन्य आवश्यकताओं की भी पूर्ति करते थे। सर्वसत्ताधारी शासक के लिये शत्रुदमन के निमित्त एक आज्ञापालक सेना नितात आवश्यक थी। सर्वसाधारण लोग राजकार्यों से प्राय पृथक् रहते, अतएव सेनाकार्यो मे भी उनका कोई हस्तक्षेप नही होता था। यह प्रथा जनता की अभिरुचि के अनुकूल भी थी क्योंकि सर्वसाधारण के हृदयों में तीसवर्षीय लंबे युद्ध के प्रति तीव्र घृणा उत्पन्न हो गई थी। अतएव तत्कालीन यूरोप के एक आदर्श राज्य फ्रांस ने अपनी स्थायी वृत्तिक सेनाओं के लिये पृथक् पृथक् छावनियाँ बनवाई जहाँ सैनिको और नागरिकों के मध्य संबंध स्थापित नहीं किए जा सकते थे। सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कोष्ठागार भी स्थापित किए गए।

सैनिको को कवायद का खूब अभ्यास था। ये सैनिक अधिनायक के प्रत्यक्ष नेतृत्व मे युद्ध करते थे। अश्वसेना रेजिमेंट तथा स्क्वाड्रन (Squadrons) में संयोजित थी। अश्व सैनिक तलवार और पिस्तौल से सुसज्जित होते थे। पदाति सैनिक तीन गंभीर पंक्तियों में खड़े किए जाते थे, जो मसृणछिद्र नालिकाओं (Smoothbore muskets) तथा संगीन (Bayonets) का प्रयोग करते। साधारण स्थापन (normal establishment) से भिन्न तोपखाना अभी भी सेना का विशेष अंग था। व्यूहरचना रेखापंक्ति (linear order) में की जाती थी, जिसमें पदाति सेना मध्यभाग में, अश्वसेना पार्श्वभाग तथा अग्रभाग में स्थित होती थी। व्यूहरचना में सेना वाम एवं दक्षिण पक्ष में विभक्त की जाती थी। प्रत्येक पक्ष मे पदाति तथा अश्वारोही सैनिक होते थे। पक्षनायक (wing commander) पक्ष का नेतृत्व करता था। गण (Battalion) तथा रेजिमेंट ही सेना के प्रधानतम भाग थे, ब्रिगेड (Brigade) अथवा डिवीजन (Division) में सेना उपविभाजित नही थी। प्रत्यावृत सेना की भी कोई विधि नही थी। इस कारण आवश्यकता के समय नायकों को विशेष पुनर्बलन (heavy reinforcement) की कोई आशा नहीं होती थी। केवल एक प्रधान पराजय ही समस्त युद्धपराजय के लिये पर्याप्त थी। इस भय से घमासान युद्ध (pitched battle) तथा भीषण जनसंहार का परिहार किया जाता था। सेनाधिनायक भी प्रायः अभिजातीय सामंतगण (nobles) ही होते थे, जिनमें परस्पर बंधुत्व की भावना होती थी। इस कारण से भी युद्धीय भीषणता न्यूनतर हो गई थी। भूपाल भी युद्ध को अपने राजवंशीय हितो की सुरक्षा के लिये कौशलक्रीड़ा मात्र ही समझते थे, जिस कारण युद्ध में कतिपय व्यक्ति ही घायल होते, परंतु यूरोप में शक्तिसंतुलन क विनाश अथवा किसी भी राष्ट्रसत्ता के लोप हो जाने का लेशमात्र भी भय नही था। सिपाही राजा के प्रिय खिलौनो के समान थे, जिनका रक्तरंजित युद्ध में विनाश महान् क्षति समझा जाता था। इन परिस्थियो में घोर युद्ध के अभाव से युद्ध का अर्थ केवल सेना मार्च अथवा प्रतिमार्च (counter march) कोष्ठागारों तथा दुर्गों का अपहरण अथवा निवारण ही समझा जाता था। योधननीति केवल योधनकोण (war angles) तथा आधाररेखा (base line) का विषय बन गई थी।

प्रशा के फैड्रिक महान् तथा अमरीका उपनिवेशो के आवेशपूर्ण युद्धों में भावी युद्धों के चिह्न भी दृष्टिगोचर होने लगे थे। फैड्रिक ने अश्व तोपखाना (horse artillery) का प्रयोग किया जो शीघ्र ही कार्यान्वित की जा सकती थी। अटलांटिक के पार और भी क्रांतिकारी आविष्कार हो रहे थे। अमरीका अधिवासियों (settlers) में यद्यपि, कवायद तथा भडकीली पोशाको की कमी थी तथापि वे अनुभवी प्रणालिकाधारी थे, तथा राष्ट्रीय उत्साह के साथ युद्ध करते थे। काष्ठखंडों, वृक्षो तथा खाइयों के पीछे से विवृत्त रूप से लड़ते थे तथा अपनी प्रणालिकाओं द्वारा ठसाठस जनसमूह मे धँसती हुई ब्रिटिश सैनिको की मालाबद्ध पंक्तियों का सिर कुचल डालते थे। तोपखाना शक्ति के इस बढते हुए प्रभाव और युद्ध की बढ़ती हुई क्रूरता को यूरोप की सेनाओं और भूपालों ने सदा ही अवहेलना की। परंतु नैपोलियन के अभ्युदाय के साथ साथ एक नई सेना का भी अभ्युदय हुआ जिसने समस्त संसार पर अपनी अमिट छाप छोड दी।

१९वीं शताब्दी की सेनाएँ — फ्रांस की महान् क्रांति ने १८वी शताब्दी की सेनाओं से मूलतः भिन्न एक नई सेना का सृजन किया। तीन लाख विदेशी सैनिकों से आक्रांत फ्रांस ने अनिवार्य

(battalion) होता था; प्रत्येक बटैलियन में चार गण (Company) और प्रत्येक गण में तीन या चार पलटन। यूरोपीय सेनाओं में तीन गणों को मिलाकर एक रेजिमेंट (Regiment) बनाया जाता, दो रेजिमेंट मिलकर एक पदाति ब्रिगेड (Brigade) और दो ब्रिगेड मिलकर एक पदाति डिवीजन (Division)। आधारभूत अश्वदल रेजीमेंट होता था, जिसमें तीन से छह तक स्क्वाड्रन (squadron) होते थे। प्रत्येक स्क्वाड्रन में चार अश्ववृंद होते थे, दो अश्व रेजिमेंट (ब्रिटिश सेना में तीन) मिलाकर एक अश्व ब्रिगेड और दो अथवा तीन अश्व ब्रिगेड मिलाकर एक अश्व डिविजन। बैटरी (Battery) आधारभूत तोपखाना था, जिसमें सामान्यत छह तोपें होती थी जो दो तोप प्रति अनुभाग के हिसाब से अनुभागो मे विभक्त कर दी जाती थी। छह से नौ तक समूहो के मिलने से एक तोपखाना रेजिमेंट बनता था।

अश्व अथवा पदाति डिवीजन सबसे छोटा सैन्य सगठन था, जिसमें सभी शस्त्रास्त्र उपलब्ध थे और जो स्वतत्र रूप से सक्रिय कर सकता था। उदाहरणार्थ, पांच हजार व्यक्तियो के एक अश्व डिवीजन में अश्व तोपखाना के कुछ समूह, एक हल्का पदाति गण और इजीनियरो की एक टुकडी भी सम्मिलित होती थी। एक पदाति डिवीजन में सत्रह हजार से बीस हजार तक सैनिक, २४ से २७ तक तोपें और गेह (reconnaissance) आदि कार्यों के लिये कई अश्वारोही दल होते थे। परतु इन सब दलो का ठीक ठीक आकार प्रत्येक सेना में भिन्न भिन्न था।

एक लाख से भी अधिक सैनिको की विशाल सेनाओं के डिवीजनो को 'कोर' (corps) मे संगठित करना आवश्यक होता था। एक कोर में सामान्यत चालीस हजार व्यक्ति होते थे। युद्ध के समय में कभी कभी कोर युद्धनीतिक योजनानुसार सेनावर्गों (army groups) में वर्गित कर दिया जाता था।

प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४-१८) — इस युद्ध में जर्मनी एक तरफ से और ब्रिटेन फास आदि देश दूसरी तरफ से लड़े थे।

सेना सगठन में डिवीजन आदि की आधारभूत रूपरेखा तो विद्यमान रही, परतु विभिन्न सेना के अगो की महत्ता और अनुपात में अनेक परिवर्तन हुए। पदाति सेना को प्राय. तोपखाना, वायुसेना, टैंक आदि विशेष युद्धसाधनो के सहारे ही कार्य करना पडता था। टैंको के प्रचलन के कारण अश्वसेना किसी भी बडे युद्ध के लिये क्रमश गौण समझी जाने लगी और सन् १९१८ के पश्चात् तो उसका कोई महत्व ही नही रह गया। उपयोगिता की दृष्टि से तोपखाना बल अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण समझा जाने लगा। प्रति एक हजार पदाति सैनिको के साथ सामान्यत दस तोपें होती थी। रासायनिक युद्ध प्रचार, उद्धार (salvage), छद्मावरण (camouflage) तथा, ऋतु विज्ञान आदि कार्यों के लिये नए नए दल बनाए गए। ब्रिटिश सेना में तो टैंकों का एक पृथक् कोर (corps) ही सस्थापित कर दिया गया, और जल तथा थलसेना से सर्वथा स्वतत्र वायुसेना का तीसरा ही सैनिक बल भी स्थापित किया गया। यदि ऐसी प्रगतिशील चेष्टाएँ निरतर जारी रहतीं तो, निस्सदेह द्वितीय महायुद्ध मे ब्रिटेन को अनेक सुविधाएँ रहती।

दो विश्वयुद्धों का मध्यकाल — पर प्रथम विश्वयुद्धजनित प्रगति की यह प्रवृत्ति चालू न रह सकी। ब्रिटेन और अमरीका ने छोटी वृत्तिक सेनाओं की रीति पुन अपनाई, फास ने मितव्ययिता की दृष्टि से अपनी सेना घटा दी। जर्मनी को वर्साई की सधि के अनुसार केवल एक लाख सैनिक ही रखने का अधिकार था, प्रत्याधृत सेना की भी अनुमति नही थी। अतएव जर्मनी को अत्युच्च सैनिक प्रशिक्षण तथा अधिकाधिक सेना अधिकारियों की सख्या से ही सतोष करना पडा, ताकि अवश्यकता के समय तेजी सैन्यविकास किया जा सके। जर्मन नवयुवकों के आधारिक सैनिक प्रशिक्षण के लिये स्थान स्थान पर उपसैनिक युवक क्लब (paramilitary youth clubs) तथा व्यायाम समितियाँ खोल दी गई।

हिटलर के सत्तारूढ हो जाने पर जर्मनी में जब तेजी से पुन.शस्त्रीकरण हुआ तो फास और ब्रिटेन ने भी ऐसा ही किया। इटली, जापान और रूस की तो पहले ही बड़ी बडी सेनाएँ थी। इथियोपिया, मचूरिया, चीन और स्पेन के लघु युद्धो में नए उपकरणो के परीक्षण किए गए। प्राविधिक विज्ञान द्वारा युद्धशस्त्रो मे भी अभिवृद्धि हुई। मध्यम श्रेणी के टैंक भी, जो प्रथम युद्ध में केवल पांच टन भार के थे, अब पच्चीस टन के हो गए थे। वे अधिक भारी तोपें लाद सकते थे तथा दृढ़तर कवचो से सुरक्षित थे। वायुयान भी, जो प्रगतिशील राष्ट्रो द्वारा थलयुद्ध के लिये अनिवार्य स्वीकृत किए गए, अब सौ मील प्रति घटे के स्थान पर तीन सौ मील प्रति घटे की गति से उड सकते थे। हवामार तोप (antiaircraft gun) और टैंकमार तोप (antitank gun) का भी आविष्कार हुआ। रूस ने बहुसख्या मे छाताधारी सैनिक (paratroopers) का सर्वप्रथम प्रचलन किया। फास ने अपनी जर्मन सीमाओ की सुरक्षा के लिये दुर्भेद्य मेगिनोलाइन (इस सुरक्षा लाइन का नामकरण इसके अधिष्ठाता मैगिनो के नाम पर ही किया गया था।) बनाई, परतु इस दुर्गीकरण से लाभ उठाने के लिये एक सुचल प्रहारक बल का विकास न कर भारी भूल की। जर्मनी ने शीघ्र ही, सदा की भाँति सुप्रशिक्षित, सुसज्जित तथा विशाल सेना खडी कर ली। टैंक और वायुयान समूह (tank plane team) ही इस सेना का मुख्य शस्त्र था। इस सेना की सुविख्यात 'ब्लिट्ज क्रीग' नामक रणप्रणाली फुलर और लिड्डेल हार्ट के प्रशिक्षण पर आधारित थी। ब्रिटिश सेना ने इन युद्ध विशारदो के सिद्धातों पर कभी ध्यान नही दिया। जर्मनी वासियो ने परिवहन तथा संभरण सेनाओं का यत्रीकरण कर सैनिक सक्रिया में जो द्रुतता कर दिखाई उससे सारा संसार डगमगा उठा।

द्वितीय विश्वयुद्ध — सन् १९३९-४५ के दीर्घकृत लबे विश्वयुद्ध के कारण 'खड्गहस्त राष्ट्र' की भावना चरम सीमा पर पहुँच गई। प्रत्येक युद्धरत देश के अखिल साधन तथा प्रत्येक स्वस्थ पुरुष और स्त्री को युद्ध के लिये सुसज्जित किया गया। अनिवार्य सैनिक भर्ती अखिल देशव्यापी (भारत तथा कुछ अन्य देशों के अतिरिक्त जो गौण रूप में ही युद्धरत थे) घोषित कर दी गई। यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी सशस्त्र सेना में बहुसख्या में भर्ती की गई। यह कार्य केवल समग्र जनशक्ति को सुसज्जित करने के लिये ही नही अपितु, विभिन्न

थी। इसका तथ्य जुलाई, १९१४ ई० में सर्वविदित हो गया जब युद्धग्रस्त कोई भी देश कूटनीतिक वार्ता के उद्देश्य से सैनिक चालन को रोकने का साहस नही कर सका। वास्तव मे लामबंदी का आदेश ही युद्धारभ की घोषणा था।

दीर्घानुभवी, वृत्तिक तथा स्वयसेवक सेनानियो को अल्पकालिक अनिवार्य सैनिक-सेवा-बल का अधिकारी नियुक्त कर दिया जाता था। सैनिक सेवा के विशेष अभियोग्य तथा आजीवन सेनिक सेवा के इच्छुक व्यक्तियो को अराज्यादिष्ट अधिकारी (noncosmmissioned officers) अथवा अधिकारी बनाया जाता। वार्षिक अनिवार्य नव-सैनिको को यथासंभव प्रशिक्षित करना इनका प्रधान कार्य था। सर्वश्रेष्ठ अफसर सर्वबलाधिकरण अधिकारी चुने जाते, जिन्हे और विशेषोपयुक्त प्रशिक्षण दिया जाता। अधिकारियो को कठोर और नीरस जीवन व्यतीत करना पडता। वे वेतन भी साधारण ही प्राप्त करते, परंतु समाज में विशेष संमान की दृष्टि से देखे जाते थे।

जब यूरोपीय और जापानी सेनाओ ने उपर्युक्त जर्मन पद्धति को अपनाया, ब्रिटेन और अमरीका ने छोटी स्वयसेवक सेनाओ की पद्धति को ही जारी रखा। परतु इन दोनो देशो में नौसेना ही विशेष त्राण (Shield) प्रदान करती थी।

औद्योगिक (technological) विकास तथा दुष्परिणाम— फ्रास की महाक्राति से उत्पन्न परिवर्तनो के पश्चात् यूरोप की औद्योगिक क्राति के परिणामस्वरूप सैनिक सगठन सिद्धातो मे भी उतने ही महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

निस्सदेह शस्त्रास्त्रोन्नति प्रत्येक युग मे सैनिक विकास कार्य का निरतर एक प्रधान अंग रही है। 'सरीसा' सदृश अचल हस्ताहस्ति युद्धोपयोगी शस्त्रो के स्थान पर 'पिलम' सदृश अदूरगामी लघु क्षेपण अस्त्रों का विकास हुआ। समरकौशल तथा अति सीमित सुचलता से सपन्न कवचधारी राजरणक उन लबे धनुषो के समुख, जिन्होने सन् ११८४ मे चार इच मोटे ठोस वृक्षो को भी छेद दिया था, नही टिक सका। चगेज खाँ ने धनुर्धारी अश्वारोही सेना मे सुचलता एवं शक्ति का सयोग कर एक अपराजेय सेना का सृजन किया। चीन मे बारूद के आविष्कार तथा समस्त यूरोप मे उसके प्रचलन से धनुर्धारियो की महत्ता क्रमशः क्षीण होने लगी और प्रणालिकाधारी तथा ग्रेनेडियर्स की महत्ता बढ़ने लगी। फील्ड तोपो (field guns) की सख्या में भी वृद्धि कर दी गई। सन् १७०४ में ब्लैनहियम युद्ध मे मार्लबरो ने एक तोपखाना प्रति ९०० व्यक्ति की दर से इनका प्रयोग किया, परतु सन् १८१२ मे बोरोडिनो युद्ध मे नैपोलियन की सेना में एक तोपखाना प्रति ८४० व्यक्ति की दर से, क्षेत्र तोपखाना, उपलब्ध था।

नैपोलियन के पश्चात् औद्योगिक उन्नति को द्रुत प्रोत्साहन मिला। १९ वी शताब्दी के मध्य तक प्रमुख सेनाओ ने मसृण-छिद्र-मस्केट (Smooth bore muskets) का त्याग कर अधिक दूरगामी नालमुख भरण (muzzle loading) राइफल को अपनाया। अमरीकी गृहयुद्ध में ब्रीचभरण मैगजिन राइफल (breech loading magzine rifle) का प्रयोग किया गया। इसी अवसर पर एक ऐसे यंत्रतोप (Gatling machinegun) का भी निर्माण हुआ जिसमे दस नालें थी तथा एक मिनट मे २५० से ३०० तक प्रहार कर सक्ती थी। सन् १८७० में प्रशा के सैनिको ने ब्रीच भरण तोप (breech loading needle gun) तथा ब्रीच भरण राइफल तोप (breech loading field gun) का उपयोग किया, जब कि फ्रासीसी सैनिको को श्रेष्ठतर राइफल 'चैसोपाट' तथा अत्युत्तम यंत्रतोप 'मिट्रैल्यूज' प्राप्य थीं। सन् १९०४–५ में रूस और जापान के मध्य हुए युद्ध मे, ३२०० गज की दूरी तक मार कर सकनेवाली राइफल तथा ६००० गज की दूरी तक मार कर सकनेवाली क्षेत्रराइफलें प्रकट हुई। 'हाचकिस' और 'मैक्सिम' सदृश यत्रतोप राइफलो ने बहुसख्यक पदाति स्कधों के युग का अंत कर दिया।

तोपखाना शक्ति की विपुल उन्नति के साथ साथ जनसंख्या में भी शीघ्रता से वृद्धि होने के कारण सेना का आकार भी बढ़ गया। परिमाणत. सैनिक आवश्यकता के संभरण तथा गोलाबारूद (ammunition) की माँग मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई, जिसकी पूर्ति केवल रेलगाडियों द्वारा ही संभव थी। सामने से आक्रमण करना अब आत्मघातक बन चुका था, इसलिये युद्धक्षेत्रीय सीमाएँ भी अधिकाधिक फैलती चली गईं। ऐसी परिस्थिति में सेनापति को अपने अधीनस्थ नायको से संपर्क स्थापित करने के लिये दो नवीन आविष्कारो, मोटरकार तथा टेलीग्राम, पद्धति पर निर्भर होना पड़ता था। साथ ही उसे विशाल सेना को व्यवस्थित कर मोर्चों पर भेजने तथा उनके संभरण की योजनाएँ बनाने के लिये विशेषज्ञ कर्मचारी अधिकारियो (expert staff officers) की भी आवश्यकता हुई।

इस प्रकार १९ वी शताब्दी के अंत तक एक नवीन सेना का विकास हुआ। इसका नियत्रण सगठन (control organization) पर्याप्त जटिल था। योजना तथा सक्रिया के लिये एक सर्वबलाधिकरण (General staff) था, संभरण, वासस्थान आदि का प्रभारी एक महाभक्तयाम्त्रिक (Quarter master general) था। अश्व, पदाति और तोपयोधन सेनाओ के अतिरिक्त सभरण, भैषज्य, आदि अन्य अनेक सैनिक सेवाओ का सृजन किया गया। क्षेत्र दृढीकरण (field fortification), सुरंग (mines), संकेत (signals) और सडक निर्माण आदि कार्यों के लिये एक सर्वथा नवीन इजीनियर सैनिक सेवा का भी सृजन किया गया। इन सेनाओ तथा अन्य प्राविधिक सेनाओ की महत्ता और अनुपात भी दिनोत्तर जटिल उपकरणों के प्रयोग के कारण प्रति दिन बढ रहे थे। रेलगाडियाँ ही पहले युद्ध का मुख्य साधन थी परतु अब मोटर गाड़ियाँ और वायुयान भी शीघ्र अपरिहार्य बन गए। वास्तव मे युद्ध अब दिन प्रतिदिन औद्योगिक शक्ति पर ही आश्रित होता जा रहा था।

दो विश्वयुद्ध

सन् १९१४ की सेना—वर्तमान शताब्दी के आरभ में सेनाएँ, यद्यपि श्रेष्ठतर शस्त्रो से सुसज्जित थी, तथापि सैन्य संगठन अधिकतर १९वी शताब्दी के ढाँचे पर ही आधारित था। आधारभूत प्रत्येक पदाति दल लगभग एक हजार व्यक्तियो का एक बटैलियन

साम्यवादी सेनाएँ — सन् १९४५ के पश्चात् साम्यवादी देशो में पूर्व सैनिक वियोजन नही किया गया, अपितु जब पश्चिमी देशो ने पुर्नविस्तार आरभ किया तो इन्होने सेनाओ में भारी कमी आरभ कर दी। रूस ने सन् १९५६ में अपनी सशस्त्र सेनाओ में बारह लाख व्यक्तियो की कटौती की घोषणा की, सन् १९५७ मे छह लाख चालीस हजार व्यक्तियो की और सन् १९५९ में तीन लाख और व्यक्तियो की। इतने पर भी रूसी साम्यवादी सेना विश्व में सर्वाधिक शक्तिशाली है। सन् १९५८ में केवल पूर्वी जर्मनी मे इस सेना की बीस कवचसज्जित (armoured) अथवा यात्रिक डिवीजन तथा दस तोपखाने अथवा विमानमार डिवीजन थे, चार डिवीजन हगरी में और एक बडी सचार-पथ-सेना (Line of Cammunication Force) पोलड में स्थित थी।

रूस के साथ साथ अन्य साम्यवादी देशो ने भी अपनी सेनाएँ घटा दी। पोलैंड और चैकोस्लोवाकिया, प्रत्येक ने, बीस हजार व्यक्तियो की कटौती की घोषणा की, रूमानिया ने पैंतीस हजार की और बलगोरिया ने तेईस हजार की। परतु इन कटौतियों के उपरात भी पोलैंड मे सन् १९५८ के अत तक इक्कीस डिवीजन, चैकोस्लोवाकिया मे चौदह, रूमानिया में पद्रह और बलगेरिया मे बारह डिवीजन सेनाएँ थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद चीनी सेना भी एक प्रमुख सेना के रूप में प्रकट हुई। सन् १९३७ से चीनवासियो के मध्य पारस्परिक तथा जापान के विरुद्ध अनत युद्धो के कारण अनुभवी अफसरो तथा सिपाहियों का एक ऐसा समुदाय उत्पन्न हो गया, जिन्होने द्वितीय महायुद्ध के उत्तरवर्ती वर्षों मे अमरीका से बहुमूल्य उपकरण और हथियार प्राप्त किए तथा भारत में वैज्ञानिक आधार पर सैनिक प्रशिक्षण भी प्राप्त किया। सन् १९४५ तक चीन में लगभग तीस लाख व्यक्तियो की राष्ट्रीय सेना तथा उसके बीस लाख जानपद सैनिक, मिलीशिया (militia) थे। सन् १९४९ में चीनी साम्यवादी प्राय. इन सभी राष्ट्रीय सैनिक दलो पर अपना अधिकार जमाने मे सफल हुए, केवल दशमाश सेना तैवान की ओर बच निकल भागी। कोरियाई युद्ध मे स्वयसेवको की साम्यवादी सेना ने अपनी विस्मयकारी दृढता तथा युद्धक्षमता का परिचय दिया। सन् १९५३ तक चीन ने लगभग २० लाख व्यक्तियो की चार क्षेत्रीय सेनाओ (field armies) को बाईस सैनिक कोरो मे सयोजित किया। इसके अतिरिक्त बीस लाख व्यक्तियो की तो सैनिक प्रदेशों (military districts) की सेना और लगभग एक करोड बीस लाख स्त्रियो और पुरुषो की जानपद सेना थी। यह विशाल समुदाय पूर्ण प्रशिक्षित होने पर भी युद्धसमय में प्रतिरक्षा कार्य के लिये निस्सदेह उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

सेनाओं का संघटन और उनके उपकरण — द्वितीय विश्वयुद्ध में प्राप्त अनुभवो के कारण नए नए सैनिक दलो तथा विशिष्टोद्देशीय सेनाओ की वृद्धि होने लगी। उदाहरणार्थ — 'कमानडो' तथा दूरसचार (telecommunication) सेनाओ के नामो का उल्लेख किया जा सकता है। परतु आधारिक दल डिवीजन तथा गण ही रहे। टैंको और तोपखाने अनेक डिविजनों के अभिन्न अंग बन गए। डिवीजन संघटन पर बहुविध विवाद तथा विचार हुए। कुछ सेनाओ ने तो त्रिभुजी सघटन पर जोर दिया, जिसके अनुसार एक ब्रिगेड में तीन गण, एक डिवीजन में तीन ब्रिगेड आदि आदि योजनाएँ बनाई गई। अन्य सेनाओं में बे, उदाहरणार्थ अमरीका सेना ने, पाँच उपदलो पर आधारित 'पेंटामिक' सघटन को अपनाया। अधिक वैज्ञानिक प्रशिक्षण प्रणालियो का विकास हुआ, जिनमें चित्रपट, दूरवीक्षण यंत्र (television) और मनोवैज्ञानिक प्रविधियों का उपयोग किया गया। राजतत्रीय सिद्धातो में तीव्र विरोध होने के कारण सैनिको में अपने अपने सिद्धातो का प्रचार (political indoctrination) अत्यत महत्वपूर्ण बन गया; यहाँ तक कि प्रजातत्र राज्यो ने भी नैतिक सुदृढता की दृष्टि से अपनी जनता को इस सघर्ष के उद्देश्यों से भली भाँति परिचित कराना तथा निजी सामाजिक सगठन की श्रेष्ठता सिद्ध करना आवश्यक कार्य समझा। अतएव मनुष्य युद्ध का अब भी एक महत्वपूर्ण अग है।

तथापि यन्त्रों की महत्ता निस्सदेह और भी बढ गई है। भारी टैंको, सुचल रॉकेट फेंकुओ (mobile rocket launchers), तोपो तथा बडी बडी हाउत्सर (howitzer) के कारण केवल शौर्य युद्धजय के लिये अपर्याप्त हो चुका है। पदाति सेना के शस्त्रो में अब क्षेत्र तोपखाने (field artillery) की प्रहारशक्ति से परिपूर्ण बजूका (bajookas) तथा १०६ मिमी की धक्काहीन (recoilless) राइफल समिलित हैं। प्रति क्षण सैकडो लक्ष्यभेदी, स्वचालित सुविध राइफल, प्लास्टिक के बने देहकवच, विशिष्टाकृत बारूद (shaped charges), वी० टी० फ्यूज (V T fuse) और यांत्रिक खच्चरो का भी प्रयोग किया जाता है। आणविक उच्चकोणवाली हाउत्सर (atomic howitzer) तथा 'ह्वानेस्ट जान' नाम की आणविक-युद्ध-शीर्षवाली (with atomic warhead) निकटगामी रॉकेट (short range rocket) के समक्ष द्वितीय महायुद्ध की सबसे बडी तोप भी खिलौना सी प्रतीत होती है। ये नए शस्त्र रूस और अमरीका दोनो ही देशों को उपलब्ध हैं। इन आणविक शस्त्रो के कारण सेनाओ को युद्धक्षेत्र में विसर्जन (dispersal) तथा सुचलता के गुणो के विकास की आवश्यकता है। पिछले कुछ वर्षो से आणविक शस्त्रो की विपुल तोपखाना शक्ति पर आधारित तथा वायुपरिवहन द्वारा परम सुचल छोटी छोटी परतु उच्च प्रशिक्षित सेनाओ की आवश्यकता पर विशेष बल दिया जा रहा है। शारीरिक शक्ति का स्थान यात्रिक शक्ति ने पूर्णत ग्रहण कर लिया है। सभी सैनिक सक्रिय सवसैनिक (inter services) चेष्टाएँ बन गए हैं, तथा आधुनिक सेना केवल त्रिसैनिक सेवा सयोगी युद्धयत्र का एक खड मात्र रह गई है।

आधुनिक प्रवृत्तियाँ — आज के प्रतिरक्षा क्षेत्र में तीव्रतर प्राविधिक प्रगति ही सर्वप्रधान तत्व है। परमाणु बम और हाइड्रोजन बम इसी के चिह्न मात्र हैं। इतिहास मे प्रथम बार द्वितीय विश्वयुद्ध के समय विकसित शस्त्रों ने उस युद्ध का निर्णय किया। जो एक हजार आठ सौ साठ प्रकार के शस्त्र सन् १९४५ में अमरीका में बन रहे थे उनमे से केवल तीन सौ पचास शस्त्र सन् १९४० तक आविष्कृत हो समुन्नत हो चुके थे। युद्धोपरात यह प्राविधिक गति दिन प्रति दिन द्रुततर ही होती जा रही है।

सेवाओं के मध्य, मानव साधनो के समुचित विभाजन के उद्देश्य से भी किया गया था। युद्धकार्य में जिस बहुसख्या में लोग जुटे थे उसका अनुमान इसी से लग सकता है कि अमरीका ने कुल एक करोड दस लाख सैनिको को भर्ती किया जिनमें से पचास लाख सशस्त्र सेना के सिपाही थे। रूस ने एक करोड बीस लाख सैनिको की सुदृढ़ सेना बनाई। समस्त उद्योग, यहाँ तक कि कृषि भी, युद्ध कार्य ही के लिये उपयत्रित कर दिए गए, जिससे सभी उद्योग भी युद्धलक्ष्य बन गए और सैनिको तथा नागरिको के मध्य अंतर प्राय लुप्त हो गया।

इस नई युद्धविधि में दो या दो से अधिक सैनिक सेवाएँ (services) प्रायः सम्मिलित होती थी; क्योंकि दुहरी सक्रिया अनेक होती थी और न थलसेना और न नौसेना, वायुसेना की सहायता के बिना दक्षतापूर्वक कार्य कर सकती थी। रूस और अमरीका जैसी विशाल शक्तियो में स्वतत्र वायुसेना न थी, परतु विपुल वायुबल अवश्य था। ब्रिटेन और जर्मनी की थल, जल और वायु तीनो सेनाएँ पृथक् पृथक् थी, परतु उनमें परस्पर पूर्ण सहयोग बनाए रखने के लिये प्रत्येक संभव कार्य किया जाता था। यह कार्य सयुक्त कमान (joint command) और सयुक्त योजना अधिकारियो द्वारा सपन्न किया जाता था, अर्थात् एक ही युद्धक्षेत्राधिकारी उस क्षेत्र के लिये उपलब्ध जल, थल, और वायुसेना का नेतृत्व करता और उसके सैनिक मुख्यालय में तीनो ही सेवाओ के अधिकारी सम्मिलित होते थे। सार्वभौम युद्ध के लिये समस्त आदेश जारी करने का एक नया साधन खोज निकाला गया जो सम्मिलित (combined) मुख्यालय कहलाता था और जिसमें युद्धरत अनेक संयुक्त राष्ट्रो के प्रतिनिधि होते थे।

सेना का आधारभूत संगठन डिवीजन ही रही। परतु बडी बडी सेनाएँ प्राय सैनिक वर्ग भी रखती थी। कुछ रूसी और अमरीकी सैन्य वर्गों की कुल सैनिक सख्या बीस लाख से भी अधिक थी। प्रति डिवीजन सैनिक सख्या बीस हजार से घटाकर ग्यारह हजार से पद्रह हजार तक कर देने पर डिवीजन सुप्रबध्य बन गई थी। विशिष्ट शस्त्रो तथा उपकरणो की जटिलता तथा सख्या दोनो ही के बढ़ जाने से डिवीजन मे योद्धाओ का अनुपात, संभरण सैनिको तथा प्रविधिज्ञो (technicians) के मुकाबले और अधिक घट गया। इजीनियरो, सकेत और भैषजिक कर्मचारी वर्ग (personnels) विद्युत् और यात्रिक इजीनियरो द्वारा आवर्धित कर दिए गए।

इन विशाल सेनाओ के सगठन तथा प्रशिक्षण मे अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती थी। व्यक्तित्व परीक्षण का एक वैज्ञानिक ढग ढूँढा गया जिसके अनुसार अधिकारियो को छाँटकर उनके क्षमतानुकूल उन्हें विभिन्न शाखाओ में नियुक्त कर दिया जाता था।

जहाँ एक ओर सैनिक संघटन प्राय. अपरिवर्तित ही रहा वहाँ दूसरी ओर समर-व्यूह-कौशल तथा शस्त्रास्त्रो में विशेष परिवर्तन हुए। प्रत्येक युद्धमच के लिये विशेषोपयुक्त व्यूहकौशल तथा सैनिक दलो की आवश्यकता पडी। मलाया और बर्मा के घने जंगलो मे, पदाति सेना को अपने ही बल बूते पर छोटी छोटी टुकड़ियो में विभक्त हो लडना पड़ा। 'चिंडिट्स' सैनिको ने रिपु-रेखा से सैकड़ो मील पीछे वायुयान द्वारा रसद प्राप्त कर सैनिक कार्य किए। उत्तरी अफ्रीका में भी दीर्घगामी मरुदलो (long range desert groups) के सैनिक जीप गाडियों पर चढकर शत्रुप्रदेशो मे सैकडो मील तक घुस गए। जर्मन सैनिको ने द्रुतगामी टैंको तथा गोतामार बममारी दलो (dive bombers teams) का उपयोग किया जिनकी सहायता से वे शीघ्र ही शत्रु मोर्चों में प्रवेश कर बाद में तुरंत ही सैनिक अगो, कोष्ठागारों और रसद मार्गों पर छा जाते। रूसी सैनिको ने प्राय पदाति सेना, टैंकों और तोपो के भीषण प्रहारो पर निर्भर रहकर ही विजय प्राप्त की। सन् १९४५ में रूसी सेना में तीस से बत्तीस तोपें प्रति एक हजार पदति के लिये प्राप्त थी तथा प्रति मील मोर्चे पर प्राय तीन सौ से पाँच सौ तोपो द्वारा आक्रमण किया जाता था। बर्लिन युद्ध में नौ सौ पचहत्तर तोपें प्रति मील मोर्चे के हिसाब से प्रयुक्त की गई थी, तथा संपूर्ण नाज़ी राजधानी को मटियामेट करने के लिये बाईस हजार तोपो की कुल आवश्यकता पडी थी। अमरीकी और ब्रिटिश सेनाओ ने दुहरी संक्रियाओ तथा रणस्थल से दूर शत्रु नगरो पर वायुयानो द्वारा भयानक गोलाबारी की नीति अपनाई जो हिरोशिमा और नागासाकी नगरो में अणुबमो द्वारा महाविनाश कर अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई।

आज का सेनायुग—द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सैनिक शक्ति मुख्यत सब अमरीका ही में केंद्रित हो गई है। दोनो देशो के सैद्धांतिक मतभेद के कारण यह प्रतिस्पर्धा और भी बढ गई है। परिणामत. शीतयुद्ध का युग आरभ हो गया है और दो विरोधी सैनिक शिविर भी तैनात दिखाई देते हैं।

नाटो सेनाएँ — सन् १९४९ मे पश्चिमी यूरोप, कैनेडा और अमरीका की 'स्वतत्र जनतत्र' सरकारो के मध्य 'उत्तर अटलांटिक सधि सगठन' या नाटो (North Atlantic Treaty Organisatios or N. A. T. O) नामक एक समझौता किया गया जिसका स्पष्ट उद्देश्य साम्यवादी खतरे के विरुद्ध सैन्य सुरक्षा था।

कोरियाई युद्ध ने पश्चिमी जनतत्र राज्यो को सैनिक विकास कार्यों के लिये तीव्र प्रेरणा दी। ये चेष्टाएँ सन् १९५३ में कोरिया सघर्ष की समाप्ति के बाद भी चलती रही। नाटो सधि के अनुसार मध्य यूरोप में तीस डिवीजन सेना द्वारा प्रतिरक्षा योजना बनाई गई थी, परतु सन् १९५८ के अ त तक केवल सत्रह डिवीजन ही उपलब्ध हो सकी थी। इनमें से पाँच डिवीजन तो अमरीका ने और सात जर्मनी ने भेजी थीं। ब्रिटेन और फ्रास का योगदान पश्चिमी जर्मनी में स्थित क्रमशः साठ हजार और तीस हजार सैनिको तक ही सीमित रहा। ये दोनो देश अपने विस्तृत साम्राज्यो में अन्य कई भागो के सुरक्षा दायित्व के भार से और द्वितीय विश्वयुद्धजनित राष्ट्रीय क्षति के कारण साधारण योगदान ही कर सके थे। साम्यवादविरोधी जगत् की अन्य प्रमुख सेनाओ मे बाईस डिवीजनो में सगठित चार लाख व्यक्तियो की तुर्की सेना और इटली की सेना भी थी जिसमे से छह डिविजन तो नाटो संधि मे प्रदान कर दी गई और अन्य आठ से नौ डिवीजन तक तैयार की जा रही थी। ताईवान स्थित राष्ट्रीय चीन के तेईस डिविजनो में कुल चार लाख तीस हजार व्यक्ति थे।

r files), ज्वालाक्षेपण मिसाइल (flame throwers) और निकटगामी क्षेपक ट्रकों के सदृश हल्के शस्त्रों से सुसज्जित हो। बहुत सी सेनाएँ भारी तोपखाना शक्ति और लंबी लंबी समरण रेखाओं को हटाकर अपनी डिवीजनों का केवल वायुपरिवहन आधार पर ही पुनर्गठन कर रही हैं। इन सेनाओं में हेलीकोप्टर (helicopters) ने तो ट्रक गाड़ियों का और स्थलाक्रामक वायुयानों (ground attack planes) ने स्थल तोपों का स्थान ग्रहण कर लिया है। ये सैनिक दल निस्संदेह इतिहासविदित प्राचीन सेनाओं के सच्चे वंशज हैं। और यदि महान् राष्ट्रों ने परमाणविक निशस्त्रीकरण को स्वीकार कर लिया, तो ये सेनाएँ ही सर्वोच्च समझी जाएँगी। [श्री नं० प्र०]

सेनापति व्रजभाषा काव्य के एक अत्यंत शक्तिमान कवि माने जाते हैं। इनका समय रीतियुग का प्रारंभिक काल है। उनका परिचय देनेवाला स्रोत केवल उनके द्वारा रचित और एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ 'कवित्त रत्नाकर' है।

इसके आधार पर इनके पितामह का नाम परशुराम दीक्षित, पिता का नाम गंगाधर दीक्षित और गुरु का नाम हीरामणि दीक्षित था। 'गंगातीर वसति अनूप जिनि पाई है' से इनका अनूपशहर-निवासी होना कुछ लोग स्वीकार करते हैं; परंतु कुछ लोग अनूप का अर्थ अनुपम बस्ती लगाते हैं और तर्क यह देते हैं कि यह नगर राजा अनूपसिंह बडगूजर से संबंध रखता है जिन्होंने एक चीते को मारकर जहाँगीर की रक्षा की थी और उससे यह स्थान पुरस्कार स्वरूप प्राप्त किया था और इस प्रकार उसने अनूपशहर बसाया। अनूप सिंह की पाँच पीढ़ी बाद उनकी संपत्ति उनके वंशजों में विभक्त हुई और किन्हीं तारा सिंह को अनूपशहर बँटवारे में मिला। ऐसी दशा में सेनापति के पिता को अनूपशहर कैसे मिल सकता था। परंतु, यह तर्क विषयसंबद्ध नहीं है। अनूप बस्ती पाने का तात्पर्य उस बस्ती के अधिकार से नहीं, बल्कि अपने निवास के लिये सुंदर भूमि प्राप्त करने से है। ऐसी दशा में अनूपशहर से ऐसा तात्पर्य लेने में कोई असंभवता नहीं है।

सेनापति के उपर्युक्त परिचय तथा उनके काव्य की प्रवृत्ति देखने से यह स्पष्ट होता है कि वे संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् थे और अपनी विद्वत्ता और भाषाधिकार पर उन्हें गर्व भी था। अतः उनका संबंध किसी संस्कृत-ज्ञान-संपन्न वंश या परिवार से होना चाहिए। अभी हाल में प्रकाशित कविकलानिधि देवर्षि श्रीकृष्ण भट्ट द्वारा लिखित, 'ईश्वरविलास' और 'पद्यमुक्तावली' नामक ग्रंथों में एक तैलंग ब्राह्मण वंश का परिचय मिलता है जो तेलंगाना प्रदेश से उत्तर की ओर आकर काशी में बसा। काशी से प्रयाग, प्रयाग से बांधव देश (रीवाँ) और वहाँ से अनूपनगर, भरतपुर, बूँदी और जयपुर स्थानों में जा बसा।

इसी वंश के प्रसिद्ध कवि श्रीकृष्ण भट्ट देवर्षि ने संस्कृत के अतिरिक्त व्रजभाषा में भी 'अलंकारकलानिधि', 'शृंगार-रस-माधुरी', 'विदग्ध रसमाधुरी', जैसे सुंदर ग्रंथों की रचना की थी। इन ग्रंथों में इनका व्रजभाषा पर अपूर्व अधिकार प्रकट होता है। ऐसी दशा में ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि इसी देवर्षिभट्ट दीक्षितों की अनूपशहर में बसी शाखा से या तो स्वयं सेनापति का या उनके गुरु हीरामणि का संबंध रहा होगा। सेनापति और श्रीकृष्ण भट्ट की शैली को देखने पर भी एक दूसरे पर पड़े प्रभाव की संभावना स्पष्ट होती है।

सेनापति का काव्य विदग्ध काव्य है। इनके द्वारा रचित दो ग्रंथों का उल्लेख मिलता है — एक 'काव्यकल्पद्रुम' और दूसरा 'कवित्त रत्नाकर'। परंतु, 'काव्यकल्पद्रुम' अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। 'कवित्तरत्नाकर' संवत् १७०६ में लिखा गया और यह एक प्रौढ़ काव्य है। यह पाँच तरंगों में विभाजित है। प्रथम तरंग में ९७ कवित्त हैं, द्वितीय में ७४, तृतीय में ६२ और ८ कुंडलिया, चतुर्थ में ७६ और पंचम में ८८ छंद हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर इस ग्रंथ में ४०५ छंद हैं। इसमें अधिकांश लालित्य श्लेषयुक्त छंदों का है परंतु शृंगार, षट्ऋतु वर्णन और रामकथा के छंद अत्युत्कृष्ट हैं। सेनापति का काव्य अपने सुंदर यथातथ्य और मनोरम कल्पनापूर्ण षट्ऋतुवर्णन के लिये प्रसिद्ध है। भाव एवं कल्पनाचमत्कार के साथ साथ वास्तविकता का चित्रण सेनापति की विशेषता है। सबसे प्रधान तत्व सेनापति की भाषाशैली का है जिसमें शब्दावली अत्यंत संयत, भावोपयुक्त, गतिमय एवं अर्थगर्भ है।

सेनापति की भाषाशैली को देखकर ही उनके छंद बिना उनकी छाप के ही पहचाने जा सकते हैं। सेनापति की कविता में उनकी प्रतिभा फूटी पड़ती है। उनकी विलक्षण सूक्ष्म छंदों में उक्तिवैचित्र्य का रूप धारण कर प्रकट हुई है जिससे वे मन और बुद्धि को एक साथ चमत्कृत करनेवाले बन गए हैं। (उनके छंद एक कुशल सेनापति के दक्ष सैनिकों की भाँति पुकारकर कहते हैं 'हम सेनापति के हैं'।)

सं० ग्रं० — आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, उमाशंकर शुक्ल कवित्त रत्नाकर; भगीरथ मिश्र : हिंदी रीतिसाहित्य। [भ० मि०]

सेनेका, लूसिग्रस आनाह्यस (ई० पू० ४ से ई० सन् ६४ तक) महान् दार्शनिक और नाटककार का जन्म कोरडवा स्थान पर हुआ। एक सफल वकील के रूप में अपने जीवन का आरंभ कर बाद में वह एक महान् दार्शनिक और साहित्यकार बना।

सन् ४१ में तत्कालीन रोमन सम्राट् क्लाडियस ने उसका देशनिष्कासन कर उसे कार्सिका भेज दिया, लेकिन बाद में आग्रीपीना ने वापस बुलाकर उसे राजकुमार नीरू का शिक्षक नियुक्त कर दिया। सन् ५४ में क्लाडियस की मृत्यु के बाद नीरू सम्राट् बना और उसके प्रारंभिक पाँच वर्षों के उदार सफल शासन का श्रेय सेनेका के स्वस्थ निर्देशन को ही है। यद्यपि नीरू के शासनकाल में उसका जीवन संपन्न एवं सुख सुविधाओं से भरा हुआ था, फिर भी उसके राजदरबार में उसकी स्थिति डावाँडोल बनी हुई थी। इसलिये शासनक्षेत्र से अलग होकर उसने अपना जीवन दार्शनिक चिंतन में लगाया। सन् ६५ में पिसानियन षड्यंत्र को प्रोत्साहित करने का अभियोग उसपर लगाया गया और उसमें सम्राट् द्वारा अपने विरुद्ध दिए गए निर्णय पर आत्महत्या कर ली।

सेनेका ने अपने जीवन में अनेक महत्वपूर्ण कृतियों का सृजन

प्राविधिक उन्नति की इस गति का अर्थ यही है कि नए शस्त्र का विकास और परीक्षण कर उसके बहुनिर्माण (mass production) का कार्य आरंभ किया जाता है, तब तक उससे भी श्रेष्ठतर अस्त्र प्रारूप में बनने लगते हैं। इसके साथ ही शस्त्रों के मूल्य में भी बड़ी तेजी से वृद्धि हो रही है। आजकल की एक नई विमानमार तोपदर्शी (gunsight) का मूल्य १९वीं शताब्दी की एक संपूर्ण तोपखाना से भी अधिक हो सकता है। आधुनिक उद्योगों ने अत्यधिक शक्य तथा अनुकूलनीयता (adaptability) का परिचय दिया है। द्वितीय विश्वयुद्ध में केवल अमरीका ने ही तीन लाख युद्ध विमान, चौबीस लाख ट्रक और इकतालीस अरब गोला बारूद (ammunition) बनाए थे। परंतु समृद्धतम और परमोद्योगी राष्ट्र भी आधुनिक शस्त्रों के निर्माणभार का अनुभव कर रहे हैं और वे सभी शस्त्र पर्याप्त संख्या में रखने में असमर्थ हैं। ब्रिटेन का चार अरब सत्तर करोड पाउंड की पूंजी का त्रिवर्षीय पुनश्शस्त्रीकरण कार्यक्रम सन् १९५७ में अधिक दीर्घकालिक कर दिया गया; नाटो देश भी निर्धारित सेनाएँ सुलभ करने में असमर्थ ही रहे, यद्यपि प्रथम आठ वर्ष की अवधि मे इन देशो ने ३७१ अरब ९८ करोड ५० लाख डालर धनराशि प्रतिरक्षा कार्य पर ही व्यय की। आधुनिक सेनाओं में जो कटौती की गई है उसका भी एक कारण मितव्ययिता मालूम होता है।

अतएव प्रतिरक्षा बजट का सेना के विभिन्न अंगो में बँटवारा (allocation) भी महत्वपूर्ण दायित्व बन गया है। नियत धनराशि मे से कितना अंश थल, जल और वायुसेना को दिया जाए और कितना धन प्रतिरक्षा विज्ञान अनुसंधान कार्यों पर व्यय किया जाए, एक ऐसा प्रश्न है जिसका कोई सर्वथा संतोषजनक अथवा सदामान्य उत्तर असंभव है। इस प्रश्नोत्तर के लिये जिस आधार सामग्री की आवश्यकता है, वह हर घड़ी बदलती रहती है और कोई मानुषिक या इलेक्ट्रोनिक बुद्धि (electronic brain) इस समस्या को पूर्णत. नही सुलझा सकती। यह भी संदेहात्मक ही है कि प्रतिरक्षा बजट का आवटन प्रति सैनिक सेवा आधार पर ही हो, क्योंकि प्रगतिशील विचारधारा के अनुसार प्रत्येक युद्धनीति (strategy) के आधार पर "आयुध पद्धति" (weapon system) के आवश्यकतानुसार ही बजट का बँटवारा श्रेयस्कर होगा। उदाहरणार्थ संसार के किसी एक कोने में चल रहे एक सीमित परमाण्विक युद्ध के लिये केवल छोटी छोटी उच्च प्रशिक्षित सेनाएँ तथा स्वतः पूर्ण सुचलताप्रदायी वायुपरिवहन बेडे ही पर्याप्त होगे, जबकि किसी पूर्णत परमाण्विक युद्ध के लिये दूरगामी भीषण बमवर्षकों और राकेटों की आवश्यकता होगी, जो स्थायी स्थल अर्गों या सुचल पनडुब्बियो (submarines) पर से छोडे जा सकें। इस प्रकार विभिन्न सेवाओं (armed services) की पृथक् पृथक् कार्यक्षमता अपूर्ण ज्ञात होती है और युद्धनीतिक आवश्यकतानुसार तीनो सैनिक सेवाओं को "आयुध विधि" के अनुसार पुनर्विभाजन की आवश्यकता प्रतीत होती है। अन्यथा यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि नए रॉकेट मिसाइल (rocket missiles) थल, जल और वायु इन तीनो में से किस सेवा के अंतर्गत रखे जाएँ।

रूढ अथवा पारंपरिक (conventional), सामरिक नाभिकीय (tactical nuclear) और पूर्णनाभिकीय (total nuclear), भावी युद्ध के संभावित प्रकार दिखाई देते हैं। पूर्ण नाभिकीय युद्ध में स्थल सेना के लिये शायद ही कोई स्थान हो, क्योंकि युद्ध निर्णय तो युद्धरत देशो द्वारा दूरगामी परमाण्विक बमवर्षा पर ही आश्रित होगा, और यह कोई नही कह सकता कि क्या रेडियोऐक्टिव मलबे (radio active debris) में से टूटा फूटा स्थलयुद्ध भी प्रस्फुट हो सकेगा।

सामरिक परमाण्विक शस्त्रो पर आधारित युद्ध से संभवतः प्रथम विश्वयुद्ध जैसा ही गत्यवरोध पुनः उत्पन्न हो जाए क्योंकि ये शस्त्र मुख्यतः प्रतिरक्षा कार्य के ही पक्षपाती हैं। छोटी यंत्रीकृत (mechanised) सेनाएँ परमाण्विक तोपखाना अथवा निकटगामी राकेटों द्वारा विपुल तोपखाना शक्ति उत्पन्न करती हैं। ऐसी परिस्थिति मे सफल आक्रमण की एकमात्र आशा केवल उत्कृष्ट दलों द्वारा सहसा आक्रमण ही दिखाई देता है। ये दल आनन फानन में शत्रु सेना में घुसकर पूर्णतः घुलमिल जाएँगे और इस प्रकार इनपर परमाण्विक बमो के प्रयोग की संभावना नष्टप्राय हो जाती है अन्यथा इन बमो के प्रयोगकर्ता की निजी सेना भी राख की ढेरी बनकर रह जाएगी। इन युद्धों के लिये अभीष्ट सेनाओं में आधारिक दल, बड़ी डिवीजनो के स्थान पर अति सुप्रबंध्य वाहिनी ही को बनाया जा रहा है, और उनकी परिवहन और संभरण आदि आवश्यकताएँ पूर्णतः यंत्रित और सुवाही (streamlined) की जा रही हैं ताकि शत्रुप्रहार से विशेष हानि न हो। अमरीका पश्चिमी जर्मनी की सेनाएँ इस प्रकार की आधुनिक सेनाओं के समुचित उदाहरण हैं, जबकि साम्यवादी सेनाओं की कमी का कारण भी परमाण्विक शस्त्रो पर आधारित युद्ध की संभावना ही ज्ञात होती है।

अपरमाण्विक शस्त्रो पर आधारित पारंपरिक युद्ध अपने मूल उद्देश्यों और "आयुध पद्धति" दोनो मे सीमित ही रहता है। संभव है कि यह युद्ध केवल ऐसे औपनिवेशिक अथवा अमहत्वपूर्ण भाग मे छिडे जहाँ कोई भी देश परम विनाशक पूर्ण परमाण्विक युद्ध का खतरा अपने सिर न लेना चाहे। ऐसी दशा मे, आक्रमणकारी कोई धूर्त छापामार (guerilla) भी हो सकता है, जिसे केवल कुछ स्टेनगनो, कुछ अग्निस्फोटो तथा स्थानीय जनता की सहानुभूति ही की आवश्यकता हो। छापामार युद्ध वास्तव में, अब भी एक अति सफल प्रविधि है, परंतु यह अनियमित सेना निश्चित अर्थ में सेना का अंश नही कही जा सकती, अतएव प्रस्तुत लेख में इसपर कोई विचार नही किया गया है।

परिमित पारम्परिक युद्धो में उच्च प्रशिक्षित सैनिकों की ऐसी 'अग्निशामक' सेना की आवश्यकता होगी जो पूर्णतया वायुपरिवहन और वायुसंभरण पर ही आश्रित रह सके और तोपखाना शक्ति उत्पन्न करने के लिये 'बजूका', धक्काहीन राइफल (recoilless

और प्रावार (mantle) से ढका रहता है। कवच (shell) का स्राव (secretion) प्रावार द्वारा होता है। प्रावार और कवच के मध्य के स्थान को प्रावार गुहा (mantle cavity) कहते हैं। इस गुहा में गिल (gills) लटकते रहते हैं। आहार नाल में विशेष प्रकार की रेतन जिह्वा (rasping tongue) या रेडुला (redula) होता है।

सेफैलोपोडा के सिर तथा पैर इतने सन्निकट होते हैं कि मुँह पैरों के मध्य में स्थित होता है। पैरों के मुक्त सिरे कई उपांग (हाथ तथा स्पर्शक) बनाते हैं। अधिकांश जीवित प्राणियों में पक्ष (fins) तथा कवच होते हैं। इन प्राणियों के कवच या तो अल्प विकसित या ह्रसित होते हैं। इस वर्ग के प्राणियों का औसत आकार काफी बड़ा होता है। आर्किट्यूथिस (architeuthis) नामक वंश सबसे बड़ा जीवित अपृष्ठवंशी है। इस वंश के प्रिंसेप्स (princeps) नामक स्पेशीज की कुल लंबाई (स्पर्शक सहित) ५२ फुट है। सेफैलोपोडा, ह्वेल (whale), क्रस्टेशिया (crustacea) तथा कुछ मछलियों द्वारा विशेष रूप से खाए जाते हैं।

बाह्य शरीर एवं सामान्य संगठन — नाटिलॉइड (nautiloids) तथा ऐमोनाइट संभवतः उथले जल में समुद्र के पास रहते थे। रक्षा के लिये इनके शरीर के ऊपर कैल्सियमी कवच होता था। इनकी गति (movement) की चाल (speed) संभवत नगण्य थी। वर्तमान नाटिलस (nautilus) के जीवन में ये सभी संभावनाएँ पाई जाती हैं। डाइब्रैंकिया (dibranchia) इसके विपरीत तेज तैरनेवाले हैं। इनके बाह्य संगठन के कुछ मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं (१) मोलस्का तथा टेट्राब्रैंकिया (tetrabranchia) के प्राणियों में प्रावार लगभग निष्क्रिय तथा केवल आंतराग को ढके रहता है परंतु इस उपवर्ग में प्रावार चलन (locomotion) में भी सहायक होता है। प्रावार के संकुचन तथा प्रसार से चलन जलधारा प्रावार गुहा के अंदर आती है और कीप सदृश रचना से बाहर निकल जाती है। तेज गति से पानी बाहर निकलने के कारण प्राणियों में पश्चगति पैदा होती है। (२) नॉटिलस में कीप सदृश रचना दो पेशीय वलनों (muscular folds) की बनी होती है। ये वलन मध्य रेखा में जुड़े रहते हैं। डाइब्रैंकिया में इन वलनों का आपस में पूर्ण मिलन हो जाने के कारण एक नलिका बन जाती है। (३) पक्ष के आकार के अतिरिक्त गमन उपांग (additional locomotory appendages) प्रावार के एक किनारे से जुड़े होते हैं। ये उपांग बड़े आकार के हो सकते हैं। इनका मुख्य कार्य जल मे प्राणी का संतुलन बनाए रखना है। (४) तेज गति के कारण डाइब्रैंकिया के प्राणियों के परिमुखीय (circumoral) उपांग छोटे होते हैं। डेकापोडा (decapoda) में ये उपांग बड़े तथा शृंगी होते हैं। इनकी ऊपरी सतह पर चूषक भी पाए जाते हैं।

आंतरिक शरीर — सभी सेफैलोपोडा में तन्त्रिका तंत्र के मुख्य गुच्छिका (gangleon) के ऊपर आंतरिक उपास्थि का आवरण रहता है। डाइब्रैंकिया उपवर्ग में यह आवरण अधिक विकसित होकर करोटि सदृश रचना बनाता है। इसी उपवर्ग में करोटि सदृश रचना के अतिरिक्त पेशियों के कंकाली आधार भी पक्ष, ग्रीवा, गिल तथा हाथ आदि पर होते हैं। ये प्राणियों को अधिक गतिशीलता प्रदान करते हैं।

आंतरिक अंग — सेफैलोपोडा के आहार तंत्र में पेशीय मुख-गुहा जिसमें एक जोड़े जबड़े तथा कर्तन जिह्वा, ग्रसिका, लालाग्रंथि (Salivary gland), आमाशय, अंधनाल, यकृत तथा आंत्र होते हैं। कुशल चर्वण का कार्य शक्तिशाली जबड़ों तथा रेतन जिह्वा के दाँतों द्वारा होता है। रेतन जिह्वा किसी किसी सेफैलोपोडा में नहीं होती। डाइब्रैंकिया के लगभग सभी प्राणियों में गुदा के करीब आंत्र का एक अंधवर्ध (diverticulum) होता है, जिसमें एक प्रकार के गाढ़े द्रव जिसे सीपिया (Sepia) या स्याही कहते हैं, स्रवण होता है। प्राणियों द्वारा इसके तेज विसर्जन से जल में गहरी धुँधलाहट उत्पन्न होती है। इससे प्राणी अपने शत्रु से अपना बचाव करता है।

परिसंचरण एवं श्वसन तंत्र — सेफैलोपोडा में ये तंत्र सर्वाधिक विकसित होते हैं। रुधिर प्रवाह विशिष्ट वाहिकाओं द्वारा होता है। डाइब्रैंकिया में परिसंचरण तथा ऑक्सीजनीकरण का विशेष रूप से केंद्रीकरण हो जाता है। इसमें नॉटिलस की तरह चार गिल तथा चार आलिंद (auricles) के स्थान पर दो गिल तथा दो आलिंद ही होते हैं। डाइब्रैंकिया में श्वसन के लिये प्रावार के प्रवाहपूर्ण संकुचन तथा प्रसार से जलधारा गिल के ऊपर से गुजरती है। सेफैलोपोडा के गिल पर (feather) की तरह होते हैं।

वृक्कीय अंग — नाइट्रोजनी उत्सर्ग का उत्सर्जन वृक्क द्वारा होता है। यकृत जो अन्य मोलस्का में पाचन के साथ साथ उत्सर्जन का भी कार्य करता है, इसमें केवल पाचन का ही कार्य करता है। नॉटिलस में वृक्क चार तथा डाइब्रैंकिया में दो होते हैं।

तन्त्रिका तंत्र — सेफैलोपोडा का मुख्य गुच्छिकाकेंद्र सिर में स्थित होता है तथा गुच्छिकाएँ बहुत ही सन्निकट होती हैं। केंद्रीय तन्त्रिका का इस प्रकार का संघनन पाया जाता है। सेफैलोपोडा की ज्ञानेंद्रियाँ आँखें, राइनोफोर (Rhinophore) या घ्राण अंग, संतुलन पट्टी (तन्त्रिका-नियंत्रण-अंग) तथा स्पर्शक रचनाएँ आदि हैं। डाइब्रैंकिया की आँखें जटिल तथा कार्यक्षमता की दृष्टि से पृष्ठवंशियों की आँखों के समान होती हैं।

जनन तंत्र — सेफैलोपोडा में लिंगभेद पाया जाता है। उभय-लिंगी प्राणी इस वर्ग में नहीं पाए जाते हैं। लैंगिक द्विरूपता (sexual dimorphism) विकसित होती है। वेलापवर्ती (Pelagic) ऑक्टोपोडा (Octopoda) में नर मादा की तुलना में अत्याधिक छोटा होता है। कटलफिश के नर की पहचान उसके पक्ष की लंबी पूँछ सदृश रचना से की जाती है। लगभग सभी सेफैलोपोडा के नरों में एक या दो जोड़े उपांग 'मैथुन अंग' में परिवर्तित हो जाते हैं। नर जनन तंत्र मादा की अपेक्षा अधिक जटिल होता है। नर शुक्राणुओं को एक नलिका सदृश रचना या शुक्राणुधर (Spermatophore) में स्थानांतरित करता है। ये शुक्राणुधर विशेष कोश में स्थित रहते हैं। ये नलिकाएँ मादा के मुँह के समीप जैसा नाटिलस, सीपिया (sepia), लॉलिगो (loligo) आदि

किया। इनमें से एक, क्लाडियस की मृत्यु पर व्यंग सात भागो में है। प्रकृतिविज्ञान की व्याख्या पर भी एक ग्रथ है। ग्रीक पात्रो और पौराणिक कथाओ पर आधारित दुःखात नाटक और दार्शनिक विषयो पर लिखे गए अनेक निबध और पत्र प्रसिद्ध हैं। उसके निबध बहुत उच्च कोटि के हैं और उनकी तुलना बेकन तथा इमरसन के निबंधों से की जाती है। उसके निबंध मानवता और आध्यात्मिक तत्वो से भरे हुए हैं। मानव दुर्बलताओ के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई है, जिसके लिये जगत्पिता परमेश्वर की करुणा की अपेक्षा पर बल दिया गया है, जो प्राणिमात्र को नैतिक एवं उच्च जीवन व्यतीत करने की शक्ति देता है।

यूरोप के जाग्रतियुग के नाटककारो को सेनेका के ही नाटको से प्रेरणा मिली है। उसके नाटको में ताल, लय, सुबोधता एव भावुकता है। उसने यूरोप के दु खात नाटको को एक नई दिशा दी। इटली, फ्रेंच और अंग्रेजी भाषा के तत्कालीन नाटको की रचना सेनेका के ही नाट्य शिल्प के विविध पहलुओ पर आधारित है। एलिजाबेथ युग के दु खातो पर सेनेका जैसा प्रभाव और किसी साहित्यकार का नही पड़ा है।

सेनिगैंबिया पश्चिमी अफ्रीका में स्थित सेनेगल गणतत्र एवं भूतपूर्व फ्रेंच सूडान के लिये यह शब्द प्रयुक्त होता था क्योकि ये देश सेनेगल एवं गैंबिया नदियो द्वारा सिंचित थे। इन्ही नदियो के संयोग से सेनिगैंबिया बना है। यह १९०२ ई० में फ्रास द्वारा स्थापित प्रादेशिक अधीन राज्य (territorial dependency) का भाग था जिसे फ्रास में सेनिगैंबिया एव नाइजर राज्यक्षेत्र (territories) के नाम से जाना जाता था (देखें सेनगल गणतंत्र) [रा० प्र० सिं०]

सेनेगल गणतंत्र १ स्थिति : १२°–१७° उ० अ० एव ११°–१७° प० दे०। क्षेत्रफल (१९७,१६१ वर्ग किमी)। पश्चिमी अफ्रीका में एक गणतत्र है। इसके पश्चिम में अंध महासागर, उत्तर मे मारिटैनिया और सेनेगल नदी, पूर्व में माली गणतत्र, दक्षिण में गिनी, पुर्तगीज गिनी और ब्रिटिश गैंबिया हैं। तटीय क्षेत्र में बालू के टीले एवं अवरुद्ध नदमुख (estuaries) हैं। इसके बाद बालू द्वारा निर्मित मैदान तथा सेनेगल नदी के बाढ के मैदान पडते हैं। दक्षिणी पूर्वी भाग में फूटा जालुन पहाड़ियाँ हैं जिनकी सर्वाधिक ऊँचाई १६०० फुट से कुछ ही अधिक है। सेनेगल, सालूम गैंबिया और कासामास पूर्व से पश्चिम बहनेवाली मुख्य नदियाँ हैं। यहाँ की जलवायु में बहुत ही विभिन्नता पाई जाती है। तटीय क्षेत्र की जलवायु सम है। वर्षा जून से सितंबर तक होती है। उत्तर मे वर्षा की मात्रा २०" तथा दक्षिण में कासामास क्षेत्र मे ८०" है। वार्षिक ताप २४°-३८° सें० के बीच में रहता है। मध्य एवं पूर्वी भाग शुष्क हैं। वर्षा की कमी के कारण घास एवं कँटीली झाड़ियो की अधिकता से बाँस, टीक, बबूल और बेर मुख्य हैं। साधारणत. यहाँ की भूमि बलुई है जिनमें मूँगफली, ज्वार, बाजरा, मक्का एव कुछ धान उत्पन्न किया जाता है। कृषि एवं पशुपालन महत्वपूर्ण उद्योग हैं। सेनेगल टाईटेनियम, एलुमीनियम और गंधक के निक्षेप के लिये प्रसिद्ध है। रसायनक एवं सीमेंट निर्माण अन्य उल्लेखनीय उद्योग हैं।

यहाँ गेहूँ, चावल, चीनी, पेट्रोलियम एव उसके पदार्थों, वस्त्र एवं यंत्रो का आयात तथा मूँगफली, मूँगफली के तेल, खली (oil cake) और गधक का निर्यात होता है। अधिकाश व्यापार ब्रिटेन, टोगोलैंड, माली और गिनी से होता है।

सेनेगल की जनसंख्या ३१,००,००० (१९६२) है। इस प्रकार प्रति वर्ग मील जनसंख्या का घनत्व ४० है। डकार (Dakar) यहाँ की राजधानी एवं सर्वप्रमुख औद्योगिक नगर है। रुफिस्क (Rufisque), सेंट लुइस, काओलाक, थिएज (Thies) जिगुंकार (Ziguinchor), डाईयूरबेल (Diourbel) और लोगा अन्य प्रसिद्ध नगर हैं। नगरों में २५% लोग निवास करते हैं। राजकाज एवं अध्ययन अध्यापन की भाषा फ्रासीसी है उच्च शिक्षा की व्यवस्था डकार एव सेंट लुइस नगरो में है। इन नगरो मे ६ आधुनिक महाविद्यालय, तीन तकनीकी एव तीन प्रशिक्षण महाविद्यालय है। डकार मे एक विश्वविद्यालय भी है। काओलाक और थिएज मे भी अब अध्ययन की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। गमनागमन के साधन अधिक विकसित नहीं हैं। कुल सड़को की लबाई ७१०० मील है। रेलमार्गो की लबाई ६१५ मील है। प्रमुख नगर रेल एव सड़क मार्गों से संबद्ध हैं। डकार अफ्रीका के बडे बदरगाहो में से एक है जहाँ विदेशों के जलयान आते जाते रहते हैं। सेनेगल नदी पर स्थित सेंट लुइस से पोडार तक १४० मील लबा आतरिक जलमार्ग है। यह विदेशी जलयानो के लिये बद रहता है। यह गणतंत्र प्रशासन के लिये १२ क्षेत्रों में विभक्त है। याफ (डकार) के अतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे से विदेशो एव देश के प्रमुख नगरों के लिये वायुसेवाएँ हैं।

२. सेनेगल नदी, यह पश्चिमी अफ्रीका मे एक नदी है जो दक्षिणी पश्चिमी माली से निकलकर उत्तर पश्चिम सेनेगल में से बहती हुई सेंट लुइस के आगे जाकर अंध महासागर में गिर जाती है। यह सेनेगल और मारिटैनिया की सीमा कुछ दूर तक निर्धारित करती है। बैफिग, बैकाय एवं फालेम इसकी सहायक नदियाँ हैं। केइज (Kayes), बाकेल, केइडी (Kaedi), पोडार और सेंट लुइस नगर इसके किनारे स्थित हैं। यह लगभग २०० मील तक नाव्य है। वर्षा में दो केईज तक (५६५ मील तक) नौगमन होता है। सेनेगल नदी १००० मील लबी है। [रा० प्र० सिं०]

सेफैलोपोडा (Cephalopoda) अपृष्ठवशी प्राणियो का एक सुसगठित वर्ग जो केवल समुद्र ही में पाया जाता है। यह वर्ग मोलस्का (mollusca) संघ के अतर्गत आता है। इस वर्ग के ज्ञात जीवित वशो की संख्या लगभग १५० है। इस वर्ग के सुपरिचित उदाहरण अष्टभुज (octopus), स्क्विड (squid) तथा कटल फिश (cuttlefish) हैं। सेफैलोपोडा के विलुप्त प्राणियो की संख्या जीवितो की तुलना में अधिक है। इस वर्ग के अनेक प्राणी पुराजीवी (palaeozoic) तथा मध्यजीवी (mesozoic) समय मे पाए जाते थे। विलुप्त प्राणियो के उल्लेखनीय उदाहरण ऐमोनाइट (Ammonite) तथा बेलेम्नाइट (Belemnite) हैं।

सेफैलोपोडा की सामान्य रचनाएँ मोलस्का सघ के अन्य प्राणियों के सदृश ही होती हैं। इनका आंतराग (visceral organs) लंबा

इनमें कवच एक सूक्ष्म उपास्थिसम शूकिका (cartilagenous stylet) या पल आधार जिन्हें सिरेटा' (cirrata) कहते हैं, के रूप में होता है। ये रचनाएँ कवच का ही अवशेष मानी जाती हैं। यद्यपि विश्वासपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता है कि ये कवच के ही अवशेष हैं। वास्तव में इस समूह के पूर्वज परपरा (ancestory) की कोई निश्चित जानकारी अभी तक उपलब्ध नही है।

वितरण तथा प्राकृतिक इतिहास — सेफैनोपोडा के सभी प्राणी केवल समुद्र ही में पाए जाते हैं। इन प्राणियो के अलवण या खारे जल में पाए जाने का कोई उत्साहजनक प्रमाण नही प्राप्त है। यद्यपि कभी कभी ये ज्वारनद मुखो (estuaries) तक आ जाते हैं फिर भी ये कम लवणता को सहन नही कर सकते हैं।

जहाँ तक भौगोलिक वितरण का प्रश्न है कुछ वंश तथा जातियाँ सर्वत्र पाई जाती हैं। क्रैंचिआस्कैब्रा (Cranchiascabra) नामक छोटा सा जीव ऐटलैंटिक, हिंद तथा प्रशात महासागरो में पाया जाता है। सामान्य यूरोपीय ऑक्टोपस वलगेरिस (Octopus vulgaris) तथा ऑक्टोपस मैक्रापस (O macropus) सुदूर पूर्व में भी पाए जाते हैं। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि कुछ वर्गों तथा जातियों का वितरण उसी प्रकार का है जैसा अन्य समुद्री जीवों के बड़े वर्गों में होता है। बहुत सी भूमध्यसागरीय जातियाँ दक्षिणी ऐटलैंटिक तथा इडोपैसेफिक क्षेत्र में पाई जाती हैं।

छोटा तथा भगुर क्रैंचिआस्कैब्रा प्रौढावस्था में प्लवकों की तरह जीवन व्यतीत करता है अर्थात् यह पानी की धारा के साथ अनियमित रूप से इधर उधर होता रहता है। ऑक्टोपोडा मुख्यत समुद्रतल पर रेंगते अथवा तल से कुछ ऊपर तैरते रहते हैं। कुछ जातियाँ समुद्रतल पर ही सीमित न होकर मध्य गहराई में भी पाई जाती हैं। यद्यपि ऑक्टोपोडा के कुल मुख्यत उथले जल में ही पाए जाते हैं परतु कुछ नितात गहरे जल में भी पाए जाते हैं।

जनन ऋतु का इन प्राणियो के वितरण पर विशेष प्रभाव पड़ता है। सामान्य कटल फिश (सीपिआ ऑफिसिनेलिस—Sepia officinalis) वसत तथा गरमी में प्रजनन के लिये उथले तटवर्ती जल में आ जाते हैं। इस प्रकार के प्रवास (migration) अन्य प्राणियो में भी पाए गए हैं।

सेफैनोपोडा की मैथुनविधि विशेष रूप से ज्ञात नही हैं। सीपिआ, लॉलिगो (Loligo) आदि के सबध में यह कहा जाता है कि इनके प्रकाश अग लैंगिक प्रदर्शन का काम करते हैं। लैंगिक द्विरूपता (sexual dimorphism) नियमित रूप से पाई जाती हैं।

अधिकाश सेफैलोपोडा द्वारा अडे तटवर्ती स्थानो पर दिए जाते हैं। ये अंडे अकेले अथवा गुच्छो में होते हैं। वेलापवर्ती (pelagic) जीवों में अडे देने की विधि कुछ जीवों को छोडकर लगभग अज्ञात है।

अधिकाश सेफैनोपोडा मासाहारी होते हैं तथा मुख्यतः क्रस्टेशिआ (crustacea) पर ही जीवित रहते हैं। छोटी मछलियाँ तथा अन्य मोलस्का आदि भी इनके भोजन का एक अग हैं। डेकापोडा (Decapoda) की कुछ जातियाँ छोटे छोटे कोपेपोडा (copepoda) तथा टेरोपोडा (pteropoda) आदि को भी खाती हैं। सेफैलोपोडा; ह्वेल (whale), शिशुक (porpoises), डॉलफिन (dolphin) तथा सील आदि द्वारा खाए जाते हैं।

आर्थिक उपयोग — सेफैलोपोडा मनुष्यो के लिये महत्वपूर्ण जीव हैं। मनुष्यों की कुछ जातियो द्वारा ये खाए भी जाते हैं। दुनिया के कुछ भाग में सेफैनोपोडा मछलियो के पकडने के लिये चारे के रूप में प्रयुक्त होते हैं। नियमित रूप से इन प्राणियो के खानेवाले लोगों के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ नही कहा जा सकता है परतु अधिकाश मांसाहारियों द्वारा ये कभी कभी ही खाए जाते हैं। सेफैनोपोडा से कटल बोन (cuttle bone) नामक एक महत्वपूर्ण वस्तु निकाली जाती थी तथा आदिम जातियो द्वारा कोढ़ तथा हृदय की बीमारियो में प्रयुक्त होती थी।

सेफैलोपोडा का प्रथम अध्ययन अरस्तू द्वारा शुरू किया गया था। उसने इस समूह पर अपना विशेष ध्यान केंद्रित किया था। सेफैलोपोडा के आधुनिक आकृतिविज्ञान (morphology) का अध्ययन कुवियर (Cuvier) के समय से शुरू हुआ। सर्वप्रथम कुवियर ने ही इन प्राणियो के समूह का नाम सेफैलोपोडा रखा।

[न० कु० रा०]

सेम ससार के प्राय सभी भागो में उगाई जाती है। इसकी अनेक जातियाँ होती हैं और उसी के अनुसार फलियाँ भिन्न भिन्न आकार की लबी, चिपटी और कुछ टेढी तथा सफेद, हरी, पीली आदि रगों की होती है। इसकी फलियाँ शाक सब्जी के रूप में खाई जाती हैं, स्वादिष्ट और पुष्टकर होती हैं यद्यपि यह उतनी सुपाच्य नही होती। वैद्यक मे सेम मधुर, शीतल, भारी, बलकारी, वातकारक, दाहजनक, दीपन तथा पित्त और कफ का नाश करने वाली कही गई हैं। इसके बीज भी शाक के रूप में खाए जाते हैं। इसकी दाल भी होती है। बीज में प्रोटीन की मात्रा पर्याप्त रहती है। उसी कारण इसमें पौष्टिकता आ जाती है।

सेम के पौधे बेल प्रकार के होते हैं। भारत में घरो के निकट इन्हे छानो पर चढाते हैं। खेतों मे इनकी बेलें जमीन पर फैलती हैं और फल देती हैं। उत्तर प्रदेश में रेंड़ी के खेत में इसे बोते हैं।

यह मध्यम उपज देनेवाली मिट्टी में उपजती है। इसके बीज एक एक फुट की दूरी पर लगाए जाते हैं। कतारें दो से तीन फुट की दूरी पर लगाई जाती हैं। वर्षा के प्रारभ से बीज बोया जाता हैं। जाडे या वसत मे पौधे फल देते हैं। गरमी में पौधे जीवित रहने पर फलियाँ बहुत कम देते हैं। अत प्रति वरस बीज बोना चाहिए। यह सूखा सह सकता है। इसकी कई किस्में होती हैं जिनमें फ्रासिसी या किडनी सेम अधिक महत्व की है। यह दक्खिनी अमरीका का देशज है पर ससार के प्रत्येक भाग में उपजाई जाती है। यह मध्यम उपज वाली मिट्टियो में हो जाती है। प्रति एकड ३०-४० पाउड नाइट्रोजन देना चाहिए। मैदानों में शीतकालीन वामन या झाडीवाली जातियाँ उपजती है। इन्हें अक्टूबर या प्रारंभ नवबर तक डेढ़ से दो फुट कतारों में बोते हैं। बीज ६ इंच से १ फुट की दूरी पर लगाते हैं। कूडो में ३ इंच की दूरी पर बोकर पीछे ६ इच से १ फुट का विरलन कर लेते हैं। यह पर्वतों पर अच्छी उपजती है और अत मार्च से

मे होता है अथवा मैथुन अंगों की सहायता से प्रावार गुहा मे निक्षेपित कर दी जाती हैं जैसे अष्टभुज मे। अष्टभुज के एक उपांग का मुक्त सिरा साधारण चम्मच सदृश रचना में परिवर्तित होकर मैथुन अंग बनाता है। डेकापोडा (Decapoda) मे विभिन्न प्रकार के परिवर्तन पाए जाते हैं। इन प्राणियो मे एक या एक से अधिक उपांग मैथुन अंग में परिवर्तित हो सकते हैं।

रंगपरिवर्तन तथा संदीप्त — त्वचा के स्थायी रंग के अतिरिक्त डाइब्रैंकिया में संकुचनशील कोशिकाओं का एक त्वचीय तंत्र होता है। इन कोशिकाओं को रंज्यालव (Chromatophore) कहते हैं। इन कोशिकाओं मे वर्णक होते हैं। इन कोशिकाओं के प्रसार तथा संकुचन से त्वचा का रंग अस्थायी तौर पर बदल जाता है।

कुछ डेकापोडा मे, विशेषकर जो गहरे जल मे पाए जाते हैं, प्रकाश अंग (light organ) पाए जाते हैं। ये अंग प्रावार, हाथ तथा सिर के विभिन्न भागो में पाए जाते हैं।

परिवर्धन — सभी सेफैलोपोडा के अंडो में पीतक (Yolk) की असाधारण मात्रा पाई जाने के कारण अन्य मोलस्का के विपरीत इनका खंडीभवन (Segmentation) अपूर्ण तथा अंडे के एक सिरे तक ही सीमित रहता है। भ्रूण का विकास भी इसी सिरे पर होता है। पीतक के एक सिरे से बाह्य त्वचा का निर्माण होता है। बाद में इसी बाह्य त्वचा के नीचे कोशिकाओं की एक चादर (sheet) बनती है। यह चादर बाह्य त्वचा के उस सिरे से बननी आरंभ होती है जिससे बाद में गुदा का निर्माण होता है। इसके बाद बाह्य त्वचा से अंदर की ओर जानेवाला कोशिकाओं से मध्यजनस्तर (mesoderm) का निर्माण होता है। यह उल्लेखनीय है कि मुँह पहले हाथो के आद्यांगो (rudiments) से नही घिरा रहता है। हाथ के आद्यांग उद्वर्ध (outgrowth) के रूप में मौलिक भ्रूणीय क्षेत्र के पार्श्व (lateral) तथा पश्च (posterior) सिरे से निकलते हैं। ये आद्यांग मुँह की ओर तब तक बढते रहते हैं जब तक वे मुँह के पास पहुँचकर उसको चारो ओर से घेर नही लेते हैं। कीप एक जोड़े उद्वर्ध से बनती है। सेफैलोपोडा में परिवर्धन, जनन स्तर (germlayers) बनने के बाद विभिन्न प्राणियो मे विभिन्न प्रकार का होता है। परिवर्धन के दौरान अन्य मोलस्का की भाँति कोई डिंबक अवस्था (larval stage) नही पाई जाती है।

जातिवृत्त तथा विकास — जीवाश्म (fossil) सेफैलोपोडा के कोमल अंगो की रचना का अल्प ज्ञान होने के कारण इस वर्ग के कैंब्रियन कल्प मे प्रथम प्रादुर्भाव का दावा मात्र कवचों के अध्ययन पर ही आधारित है। इस प्रकार इस वर्ग का दो उपवर्गों डाइब्रैंकिआ तथा टेट्राब्रैंकिआ (Tetrabranchia) में विभाजन नॉटिलस के गिल की रचना तथा आंतरांग लक्षणो के विशेषकों पर ही आधारित है। इस विभाजन का आद्य नाटिलॉइड तथा ऐमोनाइड की रचनाओ से बहुत ही अल्प संबंध है। इसी प्रकार ऑक्टोपोडा के विकास का ज्ञान, जिसमें कवच अवशेषी तथा अकैल्सियमी होता है, सत्यापनीय (verifiable) जीवाश्मो की अनुपस्थिति में एक प्रकार का समाधान है।

भूवैज्ञानिक अभिलेखो द्वारा अभिव्यक्त सेफैनोपोडा के विकास का इतिहास जानने के लिये नॉटिलस के कवच का उल्लेख आवश्यक है। अपने सामान्य संगठन के कारण वह सर्वाधिक आद्य जीवित सेफैलोपोडा है। यह कवच कई बंद तथा कुंडलित कोष्ठो में विभक्त रहता है। अंतिम कोष्ठ में प्राणी निवास करता है। कोष्ठों के इस तंत्र में एक मध्य नलिका या साइफन (siphon) पहले कोष्ठ से लेकर अंतिम कोष्ठ तक पाई जाती है। सबसे पहला सेफैनोपोडा कैंब्रियन चट्टानो में पाया गया। ऑरथोसेरैस (Orthoceras) में नाटिलस की तरह कोष्ठोंवाला कवच तथा मध्य साइफन पाया जाता है; हालाँकि यह कवच कुंडलित न होकर सीधा होता था। बाद मे नॉटिलस की तरह कुंडलित कवच भी पाया गया। सिल्यूरियन (Silurion) ऑफिडोसेरैस (Ophidoceras) मे कुंडलित कवच पाया गया है। ट्राइऐसिक (Triassic) चट्टानो में वर्तमान नॉटिलस के कवच से मिलते जुलते कवच पाए गए हैं। लेकिन वर्तमान नॉटिलस का कवच तृतीयक समय (Tertiary period) के आरंभ तक नही पाया गया था।

इस संक्षिप्त रूपरेखा सेफैलोपोडा के विकास की प्रथम अवस्था का संकेत मिल जाता है। यदि हम यह मान लें कि मोलस्का एक सजातीय समूह है, तो यह अनुमान अनुचित न होगा कि आद्य मोलस्का मे, जिनसे सेफैनोपोडा की उत्पत्ति हुई है, साधारण टोपी के सदृश कवच होता था। इनसे किन विशेष कारणों या तरीकों द्वारा सेफैलोपोडा का विकास हुआ, यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नही है। सर्वप्रथम आद्य टोपी सदृश कवच के सिरे पर चूनेदार निक्षेपो के कारण इसका दीर्घीकरण होना आरंभ हुआ। प्रत्येक उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ आंतरांग के पिछले भाग से पट (Septum) का स्रवण होता गया। इस प्रकार नाटिलाइड कवच का निर्माण हुआ। इस प्रकार के लंबे कवच को धक्के आदि द्वारा नुकसान होने का भय था। गैस्ट्रोपोडा (Gastropoda) में इन्हीं नुकसानो से बचने के कवच लिये कुंडलित हो गया। वर्तमान गैस्ट्रोपोडा मे कुंडलित कवच ही पाए जाते हैं।

डाइब्रैंकिएटा उपवर्ग के आधुनिक स्क्विड, अष्टभुज तथा कटल-फिश मे आंतरिक तथा ह्रसित कवच होता है। इसी आधार पर ये नॉटिलॉइड से विभेदित किए जाते हैं। इसी उपवर्ग मे मात्र स्पाइरुला (Spirula) ही ऐसा प्राणी है जिसमे आंशिक बाह्य कवच होता है। डाइब्रैंकिआ के कवच की विशेष स्थिति प्रावार द्वारा कवच की अति वृद्धि तथा कवच के चारो ओर द्वितीयक आच्छद (secondary sheath) के निर्माण के कारण होती है। अंत में इस आच्छाद के अन्य स्वयं कवच से बड़े हो जाते हैं। सक्रिय तरण स्वभाव अपनाने के कारण कवच धीरे धीरे लुप्त होता गया तथा बाह्य रक्षात्मक खोल का स्थान शक्तिशाली प्रावार पेशियो ने ले लिया। इस प्रकार की पेशियों से प्राणियो को तैरने में विशेष सुविधा प्राप्त हुई। साथ ही साथ नए अभिविन्यास (orientation) के कारण प्राणियों के गुरुत्वाकर्षण केंद्र के पुनः समंजन की भी आवश्यकता पड़ी क्योंकि भारी तथा अपूर्ण अंतस्थ कवच क्षैतिज गति में बाधक होते हैं।

जीवित अष्टभुजो में कवच का विशेष न्यूनीकरण हो जाता है।

में दृश्नाग्नि [illegible], [illegible] विरंजित करते और अंत में धोकर सफाई करते हैं।

सेलुलोस के भौतिक गुण — सेलुलोस सफेद, अक्रिस्टलीय पदार्थ है। एक्स रे अध्ययन से यह कलिल (कोलायडीय, colloidal) सिद्ध होता है, पर रेशे के सेलुलोस में क्रिस्टलीय बनावटें भी दृष्टिगोचर होती हैं। उसमें क्रिस्टलीय क्षेत्र भी पाया जाता है। साधारणतः सेलुलोस रेशों के रूप में पाया जाता है जिनकी लंबाई ०·५ से २०० मिमी और व्यास ०·०१ से ०·०७ मिमी होता है। इसका विशिष्ट घनत्व १·५० से १·५३ होता है तथा विशिष्ट ऊष्मा प्राय ३२ और दहन ऊष्मा ४२०० कलारी है। यह ऊष्मा और विद्युत् का कुचालक होता है। इसके रेशे द्रवों को शीघ्रता से अवशोषित करते हैं।

सेलुलोस पर ऊष्मा के प्रभाव का विस्तार से अध्ययन हुआ है। शुष्क ऊष्मा या ८०° से १०० सें० तक यह प्रतिरोधक होता है। कई सप्ताह तक इस ताप पर रखे रहने से ऑक्सीजन के साथ संयुक्त होकर इसके रेशे दुर्बल हो जाते हैं। ऊँचे ताप पर सेलुलोस झुलस जाता है। २७०° सें० पर यह अवघटित होकर गैसें बनाता है और इसके ऊपर ताप पर इसका भंजन होकर अनेक आसवन उत्पाद प्राप्त होते हैं जिनमें बीटा ग्लूकोसान, कार्बन मानॉक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, जल और अल्प गैसीय हाइड्रोकार्बन रहते हैं। प्रकाश में खुला रखने से रेशों की सामर्थ्य और श्यानता में अंतर देखा जाता है। ऑक्सीजन और कुछ धात्विक उत्प्रेरकों की उपस्थिति में रेशे के ह्रास की गति बढ़ जाती है। बैक्टीरीया, कवक और प्रोटोज़ोआ से सेलुलोस का किण्वन होकर अंत में कार्बन डाइऑक्साइड और जल बनते हैं।

रासायनिक गुण — सेलुलोस रसायनतः निष्क्रिय और वायुमंडल का प्रतिरोधक होता है। शीतल या ऊष्ण वायु, तनुक्षार, साबुन और मृदु विरंजक आदि का इसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सांद्र दाहक सोडा से रेशे की चमक बढ़कर रेशे का मर्सरीकरण हो जाता है। तनु अम्लों के सामान्य ताप पर सेलुलोस पर धीरे धीरे क्रिया होती है। पर ऊँचे ताप पर वह जल्द आक्रांत हो जाता और हाइड्रोसेलुलोस बनता है।

सेलुलोस के सजात — सेलुलोस के अनेक सजात बनते हैं जिनमें कुछ औद्योगिक दृष्टि से बड़े महत्व के हैं। सबसे अधिक महत्व के सजात एस्टर हैं। सेलुलोस का नाइट्रोएस्टर जिसे साधारणतया गनकॉटन या नाइट्रोसेलुलोस कहते हैं, बड़े महत्व का एस्टर है। यह सेलुलोस पर नाइट्रिक अम्ल और सलफ्यूरिक अम्ल की मिश्रित क्रिया से बनता है। किस सीमा तक नाइट्रेटीकरण हुआ है यह मिश्रित अम्ल की और अन्य परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जिस नाइट्रोएस्टर में नाइट्रोजन १२·५ से १३·५ प्रतिशत रहता है वह गन कॉटन के नाम से विस्फोटक में प्रयुक्त होता है (देखें गन कॉटन)। इससे कम प्रतिशत नाइट्रोजनवाले नाइट्रोएस्टर सेलुलाइड (देखें सेलुलाइड), प्रलाक्षा रस और फिल्म निर्माण आदि में प्रयुक्त होते हैं। सेलुलोस सल्फेट और सेलुलोस फास्फेट भी बने हैं। सेलुलोस ऐसीटेट रेयन, प्लास्टिक और फोटोग्राफिक फिल्मों के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

अकार्बनिक अम्लों के कुछ मिश्रित एस्टर विलायक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। सेलुलोस जैंथेट भी विस्कोज रेयन और फिल्म में प्रयुक्त होता है।

सेलुलोस के ईथर भी होते हैं। इसके मेथिल, एथिल और बेंज़ील के ईथर बने हैं। कुछ ईथर अम्लों और क्षारों के प्रतिरोधक होते हैं। निम्न ताप पर उनकी लचक ऊँची होती है, उनके वैद्युत गुण अच्छे होते हैं और वे अनेक विलायकों में घुल जाते हैं। ये रेजीन आदि सुघट्य कार्यों के अनुकूल पड़ते हैं। एथिल सेलुलोस का उपयोग रंगसंरक्षक लेपों और प्लास्टिकों के निर्माण में व्यापक रूप से आजकल होता है।

सेलुलोस योगशील यौगिक भी, विशेषकर क्षारों के साथ, बनते हैं। ये भौतिक किस्म के पदार्थ हैं या वास्तविक रासायनिक यौगिक हैं, इस संबंध में विशेषज्ञ अभी एकमत नहीं हैं।

उपयोग — सेलुलोस से वस्त्र, कागज, वल्कनीकृत रेशे, प्लास्टिक पूरक, निस्यदन माध्यम, शल्यकर्म के लिये रूई इत्यादि बनते हैं। इनके संजातों का उपयोग विस्फोटक धूम्रहीन चूर्ण, लैकर, प्लास्टिक रेयन, एक्स-रे फिल्म, माइक्रोफिल्म, कृत्रिम चमड़े, सेलोफेन, चिपचिपा पलस्तर और रंगसंरक्षक कोलायड आदि अनेक उपयोगी पदार्थों के निर्माण में होता है। अनेक पदार्थों, जैसे मुद्रण की स्याही, पेंटों और खाद्यान्नों आदि, की श्यानता बढ़ाने और उनको गाढ़ा करने में भी ये प्रयुक्त होते हैं। [स० व०]

सेलेबीज (Celebes) १° ४५' उ० अ० से ५° ३७' द० अ० एवं ११८° ४९' से १२५° ५' पू० दे०। क्षेत्रफल ७२,९८६ वर्ग मील, जनसंख्या ७०,००,००० (१९६१) है।

हिंदेशिया में सुंडा के ५ बड़े द्वीपों में से एक है। हिंदेशियाई इसे सुलावेसी कहते हैं। इस द्वीप में ३ लंबे प्रायद्वीप हैं जो तोमिनी या गोरोंतलो, टोलो और बोनी की खाड़ियों का निर्माण करते हैं। इस कारण इसकी आकृति बहुत ही विचित्र है। सेलेबीज की लंबाई ८०० मील है लेकिन तटरेखाओं की लंबाई २००० मील है। इसकी औसत चौड़ाई ३६ से १२० मील तक है। वैसे एक स्थान पर तो इसकी चौड़ाई केवल १८ मील है। इस प्रकार इस द्वीप का कोई भी स्थान समुद्र से ७० मील से अधिक दूर नहीं है। गहरे समुद्र में स्थित इस द्वीप के पूर्व में न्यूगिनी, पश्चिम में बोर्नियो, उत्तर में सेलेबीज सागर तथा दक्षिण में फ्लोर्स सागर एवं द्वीप हैं। मकासार जलडमरूमध्य इसे बोर्नियो से पृथक् करता है। तट पर प्रवालीय द्वीप हैं। सेलेबीज का धरातल प्राय पर्वतीय हैं। इस द्वीप में उत्तर से दक्षिण दो समांतर पर्वतश्रेणियाँ फैली हुई हैं। माउंट रैंतेमेरिओ (११२८६) सर्वोच्च बिंदु है। उत्तर पूर्व एवं दक्षिण के पर्वत ज्वालामुखीय हैं जिनमें से कुछ सक्रिय भी हैं। पर्वतश्रेणियों के बीच में चौड़ी भूभ्रंश घाटियों में कई झीलें हैं। टोनटानो झील ६ मील लंबी तथा ३½ मील चौड़ी है। प्राकृतिक झरनों से युक्त इसका दृश्य बहुत ही मनोहारी है। यह समुद्रतल से २०००

जून तक बोई जाती है। सिंचाई प्रत्येक पखवारे करनी चाहिए। इसकी अनेक जातियाँ है। यह लेगुमिनेसी वंश का पौधा है।
[य० रा० मे०]

सेलम १. जिला :— भारत के तमिलनाडु राज्य का यह एक जिला है। इसका क्षेत्रफल ७,०२८ वर्ग मील एवं जनसख्या ३८,०४,१०८ (१९६१) है। इसके उत्तर एव उत्तर पश्चिम में मैसूर राज्य तथा पश्चिम में कोयपुत्तर, दक्षिण में तिरुच्चिराप्पल्लि, दक्षिण पूर्व में दक्षिणी आर्काडु और पूर्व उत्तर में उत्तरी अर्काडु जिले हैं। इसके दक्षिण का भूभाग मैदानी है, शेष भाग पहाडी है, लेकिन अनेक श्रेणियो के मध्य मे वृहत् समतल भूभाग भी हैं। जिला तीन क्षेत्रो से मिलकर बना है जिन्हे क्रमशः तालघाट, बाड़महाल एवं बालाघाट कहते हैं। तालघाट पूर्वी घाट के नीचे स्थित है, बाडमहाल के अतर्गत घाट का सपूर्ण संमुख भाग एव आधार का विस्तृत क्षेत्र आता है और बालाघाट क्षेत्र मैसूर के पठार मे स्थित हैं। जिले का पश्चिमी भाग पहाडी है। यहाँ की प्रमुख पर्वत श्रेणियाँ शेवाराय, कल्रायन, मेलगिरी, कोलाईमलाई, पचमलाई तथा येलगिरी हैं। यहाँ की प्रमुख फसलें धान, दलहन, तिलहन, आम एव मोटा अनाज (ज्वार, बाजरा आदि) हैं। शेवाराय पहाडियो पर कॉफी उत्पन्न की जाती है। वेरूर तालाब प्रणाली द्वारा जिले के अधिकाश भाग में सिंचाई होती है। यहाँ का प्रमुख उद्योग सूती वस्त्र बुनना है। मैंग्नेसाइट एव स्टिएटाइट का खनन यहाँ होता है। लोह एव इस्पात उद्योग भी यहाँ हैं। अग्रेजो ने इस जिले को अशत टीपू सुलतान से १७९२ ई० में शाति संधि द्वारा और अंशतः १७९९ ई० में मैसूर विभाजन सधि द्वारा प्राप्त किया था।

२ नगर, स्थिति : ११° ३९' उ० अ० तथा ७८° १०' पू० दे०। यह नगर उपर्युक्त जिले का प्रशासनिक केंद्र है और तिरुमनिमुत्तर नदी के दोनो किनारो पर मद्रास नगर से २०६ मील दक्षिण पश्चिम में स्थित है। यह हरी भरी घाटी में है जिसके उत्तर में शेवाराम तथा दक्षिण में जरुगुमलाई पहाडियाँ हैं। मेट्टूर जलविद्युत् योजना के विकास के कारण सेलम के सूती वस्त्र उद्योग मे अत्याधिक उन्नति हुई है। नगर से रेलवे स्टेशन ३ मील की दूरी पर स्थित हैं। नगर की जनसंख्या २,४९,१४५ (१९६१) है। [अ० ना० मे०]

सेलुलॉइड (Celluloid) व्यापार का नाम है। यह नाइट्रो सेलुलोस और कपूर का मिश्रण है पर मिश्रण की तरह यह व्यवहार नही करता। यह एक रासायनिक यौगिक की तरह व्यवहार करता है। इसके अवयवो को भौतिक साधनो द्वारा पृथक् करना सरल नही है।

सेलुलोस के नाइट्रेटीकरण से कई नाइट्रोसेलुलोस बनते हैं। कुछ उच्चतर होते हैं, कुछ निम्नतर। नाइट्रेटीकरण की विधि वही है जो गन कॉटन तैयार करने में प्रयुक्त होती है। इसके लिये सेलुलोस शुद्ध और उच्च कोटि का होना चाहिए। निम्नतर नाइट्रोसेलुलोस ही कपूर के साथ गरम करने से मिश्रित होकर सेलुलॉइड बनते हैं। इसके निर्माण में १० भाग नाइट्रोसेलुलोस के कपूर के ऐल्कोहली विलयन (४ से ५ भाग कपूर) के साथ और यदि आवश्यकता हो तो कुछ रंजक मिलाकर लोहे के बंद पात्र में प्रायः ९०° से० ताप पर गूँधते हैं, फिर उसे पट्ट पर रखकर सामान्य ताप पर सुखाते हैं।

सेलुलॉइड में कुछ अच्छे गुणो के कारण इसका उपयोग व्यापक रूप से होता है। इसमें लचीलापन, उच्च तन्यबल, चिमड़ापन, उच्च चमक, एकरूपता, सस्तापन, तेल और तनु अम्लो के प्रति प्रतिरोध आदि कुछ अच्छे गुण होते हैं। इसमें रजक बडी सरलता से मिल जाता है। तप्त सेलुलॉइड को सरलता से साँचे में ढाल सकते हैं। ठंढा होने पर यह जमकर कठोर पारदर्शक पिंड बन जाता है। बहुत निम्न ताप पर यह भगुर होता है और २००° से० से ऊँचे ताप पर विघटित होना शुरू हो जाता है। सेलुलॉइड को सरलतापूर्वक आरी से चीर सकते हैं, बरमा से छेद सकते हैं, खराद पर खराद सकते हैं और उसपर पालिश कर सकते हैं। इसमें दोष यही है कि यह जल्दी आग पकड़ लेता है।

बाजारो में साधारणतया दो प्रकार के सेलुलॉइड मिलते हैं, एक कोमल किस्म का जिसमें ३० से ३२ प्रतिशत और दूसरा कठोर किस्म का जिसमें लगभग २३ प्रतिशत कपूर होता है। यह चादर, छड, नली आदि के रूप में मिलता है। इसकी चादरें ०·००५ से ०२५० इंच तक मोटाई की बनी होती हैं। सेलुलॉइड के सैकड़ो खिलौने, पिंगपौंग के गेंद, पियानो की कुंजियाँ, चश्मो के फ्रेम, दाँत के बुरुश, बाइसिकिल के फ्रेम और मूठें, छूरी की मुठें, बटन, फाउटेन पेन, कंघी इत्यादि अनेक उपयोगी वस्तुएँ बनती हैं। [स० व०]

सेलुलोस वनस्पतिजगत् के पेड पौधो की कोशिका दीवारो का सेलुलोस प्रमुख अवयव है। पेड़ पौधो का यह वस्तुत ककाल कहा जाता है। इसी के बल पर पेड पौधे खडे रहते हैं। वनस्पतिजगत् के पौधों शैवाल, फर्न, कवक और दहाणु में भी सेलुलोस रहता है। प्रकृति मे पाए जानेवाले कार्बनिक पदार्थो में यह सबसे अधिक मात्रा मे और व्यापक रूप से पाया जाता है।

प्रकृति में सेलुलोस शुद्ध रूप में नही पाया जाता। उसमे न्यूनाधिक अपद्रव्य मिले रहते हैं। सेलुलोस सबसे अधिक रूई में (प्रायः ९० प्रतिशत) फिर कोनिफेरस काष्ठ में (प्राय. ६० प्रतिशत) और अनाज के पुआलो में (प्राय ४० प्रतिशत) पाया जाता है। अपद्रव्य के रूप में सेलुलोस के साथ लिग्निन, पोलिसैकेराइड, वसा, रेजिन, गोंद, मोम, प्रोटीन, पेक्टीन और कुछ अकार्बनिक पदार्थ मिले रहते हैं।

शुद्ध सेलुलोस सामान्यतः रूई से प्राप्त होता है। प्राप्त करने की विधियाँ सल्फाइट या सल्फेट विधियाँ है जिनका विस्तृत वर्णन अन्यत्र लुगदी के प्रकरण में हुआ है (देखें लुगदी)। प्राकृतिक सेलुलोस से अपद्रव्यों के निकालने के लिये साधारणतया सोडियम हाइड्रॉक्साइड प्रयुक्त होता है। इस प्रकार प्राप्त लुगदी में ८९-९० प्रतिशत ऐल्फा-सेलुलोस रहता है। सेलुलोस वस्तुत. तीन प्रकार का होता है ऐल्फा सेलुलोस, बीटा सेलुलोस तथा गामा सेलुलोस। रूई से प्राप्त शुद्ध सेलुलोस में प्राय ९९ प्रतिशत ऐल्फा सेलुलोस रहता है। इसे प्राप्त करने के लिये रूई को १३०° से १८०° सें० पर सोडियम हाइड्राक्साइड के २ से ५ प्रतिशत विलयन से दबाव

स्थापना की। इटली में एक केंद्रीय सेना का गठन किया। सैनिक नौकरी की अवस्थाओं तथा उनके वेतन में भी सुधार किए और सैनिकों को उनके इच्छानुसार अपनी पत्नियों को साथ रखने की स्वीकृति दी। गृहशासन के क्षेत्र में उसने सीनेट के महत्व को कम करके उसके सदस्यों के अधिकार एवं कर्तव्यों की नई सीमा निर्धारित की। उसने रोमन साम्राज्य के प्रांतों की स्थिति को बहुत कुछ इटली के समानांतर किया। सब मिलाकर उसका शासन शांति एवं समृद्धि का था।

सन् २०८ में लूसिअस स्काटलैंड के पर्वतीय क्षेत्रों में विद्रोह खड़ा करने के लिये ब्रिटेन गया। लेकिन अपने इस प्रयत्न में बहुत हानि उठाने के बाद अंत में वह यार्क लौट आया और वहीं ४ फरवरी, २११ को उसकी मृत्यु हो गई।

सेबेस्तियन, संत संत अंब्रोसियस (सन् ३४०—३९७ ई०) के अनुसार सेबस्तियन मिलान के निवासी थे और सम्राट् डायोक्लीशन (सन् २८४-३०५ ई०) के समय रोम में शहीद हो गए थे। पाँचवीं शताब्दी से उनके विषय में एक दंतकथा प्रचलित है कि जल्लादों ने उन्हें एक खंभे में बाँधकर बाणों से छिन्न कर दिया और उन्हें मृत समझकर चले गए थे। किंतु जब ईसाई उनका दफन करने आए तब उनको जीवित पाया। बाद में सम्राट् ने उन्हें लाठियों से मरवा डाला।

संत सेबस्तियन शताब्दियों तक यूरोप में अत्यंत लोकप्रिय संत रहे। बहुत से कलाकारों ने बाणों से छिन्न संत सेबस्तियन का चित्र बनाया है जिससे कला के इतिहास में उनका विशेष स्थान है। संत सेबस्तियन का पर्व २० जनवरी को पड़ता है। [का० बु०]

सेवासिंह ठीकरीवाला (१८८६ ई० – १९३५ ई०) पंजाब के अकाली दल और रियासती प्रजामंडल के महान् नेता थे। अंबाला-भटिंडा रेलमार्ग पर स्थित बरनाला (जि० संगरूर) से लगभग नौ मील दूर ठीकरीवाल ग्राम में फूलकियाँ रियासत के प्रतिष्ठित रईस श्री देवासिंह के घर उत्पन्न हुए। इनके चार भाई और एक बहन थी। मिडिल पास करते ही ये पटियाला के हजूरी विभाग में नौकर हो गए। सन् १९११ में ये सिंह-सभा-लहर की ओर आकृष्ट हुए। इसका पहला दीवान ठीकरीवाल में हुआ; अमृत प्रचार तथा ग्राम सुधार का कार्य भी प्रारंभ हुआ। सन् १९१२ में गुरुद्वारा ठीकरीवाल का शिलान्यास किया गया। देश विदेश से एकत्र लाखों रुपयों से यह कार्य पाँच वर्ष में पूरा हुआ। वहाँ पर पंजाबी भाषा की पढ़ाई भी शुरू हो गई।

२१ फरवरी, १९२१ के ननकाना साहब के शहीदी साके का समाचार सुनकर आप सिख पंथ की सेवा की ओर उन्मुख हो गए। तभी से पटियाला में अकाली जत्था की स्थापना करके शिरोमणि अकाली दल एवं शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी से संबंध जोड़कर गुरुद्वारा सुधार में तल्लीन हो गए। १९२७ ई० के कुठाला शहीदी साके ने आपको रजवाड़ाशाही समाप्त करने और रियासती प्रजामंडल की स्थापना के लिये प्रेरित किया। आप इसके पहले सभापति तो थे ही, लाहौर (सन् १९२९), लुधियाना (सन् १९३०), शिमला (सन् १९३१) के वार्षिक अधिवेशनों के स्वागताध्यक्ष भी रहे। शिमला संमेलन के समय अंग्रेजी सरकार की शिकायत आपने गांधी जी से की थी, उन्हीं दिनों आपकी सारी संपत्ति भी जब्त कर ली गई थी। ऑल इंडिया कांग्रेस के सन् १९२९ के, ऑल इंडिया प्रजामंडल के १९३१ के तथा रियासती प्रजामंडल के सन् १९३२ के अधिवेशनों में भी आप संमिलित हुए। रायकोट (पंजाब) के अछूत-नाशक संमेलन (सन् १९३३) की अध्यक्षता भी आपने की थी। इन्हीं गतिविधियों के कारण आपको कई बार जेल की यात्रा करनी पड़ी, यथा —

(क) सन् १९२३ में शाही किला, लाहौर में अकाली नेताओं के विद्रोह के मुकदमे में ३ वर्ष की नजरबंदी।

(ख) सन् १९२६ में विद्रोही होने के अपराध में पटियाला जेल में ३½ वर्ष की कैद।

(ग) सन् १९३० में विद्रोह के अपराधस्वरूप ५ हजार रुपया दंड और पटियाला जेल में ६ वर्ष की कैद, किंतु चार मास बाद बंधनमुक्त हो गए।

(घ) सन् १९३१ में संगरूर सत्याग्रह के कारण ४ महीने नजरबंद।

(ङ) सन् १९३२ में मालेरकोटला मोर्चे के कारण ३ महीने नजरबंद।

(च) मार्च, १९३३ में पटियाला राज्य की नृशंसता के विरोधस्वरूप नारे लगाने के कारण दिल्ली में दो दिन की जेल।

(छ) अगस्त, १९३३ में 'पटियाला हिदायतों की खिलाफवर्जी' के मामले में दस हजार रुपया दंड तथा आठ वर्ष का सश्रम कारावास दंड। इसी जेल यात्रा की यातनाएँ सहन करते हुए १९ जनवरी, १९३५ को पटियाला केंद्रीय जेल के धमियार अहाते में निधन।

सन् १९२६ तथा सन् १९३३ की कैद में आपने कई सप्ताह तक अनशन किया था।

जीवन में आपको अनेक धार्मिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक संस्थाओं में प्रतिष्ठित स्थान मिला है। दैनिक 'कौमी दर्द' (अमृतसर), साप्ताहिक 'रियासती दुनिया' (लाहौर) एवं 'देशदर्दी' (अमृतसर) के जन्मदाता भी आप ही थे।

आपकी स्मृति में प्रतिवर्ष १९ जनवरी को ठीकरीवाल में शहीदी मेला लगता है। सन् १९१२ से प्रारंभ किया हुआ गुरु का लंगर निरंतर चल रहा है। स० सेवासिंह गवर्मेंट हाई स्कूल, ठीकरीवाल में है। पटियाला नगर के प्रसिद्ध माल रोड पर (फूल थिएटर के समीप) सिंहसभा के सामने इनकी आदमकद मूर्ति भी लगाई गई है।

सं० ग्रं० — शहीद स० सेवासिंह ठीकरीवाला ' जीवनी ते इक झात (प्रकाशन स्थान — लोकसंपर्क विभाग, पंजाब, चंडीगढ़)।

[न० क०]

सेबास्तिम्रानो, देल पिम्रोंबो (१४८५ – १५४७) वेनेशियन स्कूल का इटालियन चित्रकार। वेनिस में उत्पन्न हुआ। प्रारंभ में

फुट की ऊँचाई पर है। पोसो, मैंटेना एवं होवूती अन्य मुख्य झीलें हैं। सेलेबीज की नदियाँ बहुत ही छोटी छोटी हैं तथा प्रपात एव खड्ड का निर्माण करती हैं। तटीय मैदान नाम मात्र का ही है। जेनेमेजा, पोसो, सादाग और लासोलो मुख्य नदियाँ हैं। यहाँ की जलवायु गर्म है लेकिन समुद्री हवाओं के कारण गर्मी का यह प्रभाव कम हो जाता है। औसत ताप ११°-३०° सें० के बीच में रहता है। न्यूनतम एव उच्चतम ताप क्रमश: २०° एवं ७०° सें० है। पश्चिमी तट पर वर्षा २१ इंच होती है जबकि उत्तरी पूर्वी प्रायद्वीप में १०० इंच होती है। अधिकाश भाग जंगलो से ढका है। पर्वतीय ढालों पर की वनस्पतियो का दृश्य बडा ही लुभावना है। ताड़ की विभिन्न जातियों से रस्सियों के लिये रेशे, चीनी के लिये रस, तथा सैगुयेर (Sagueir) नामक पेय पदार्थ की प्राप्ति होती है। बाँस, ब्रेडफ्रूट, टेमिरिट और नारियल के वृक्षों की बहुलता है। खाद्यान्न में धान और मक्का उल्लेखनीय है। गन्ना, तबाकू और शाक सब्जी की उपज खूब होती है। तटीय क्षेत्रो में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। मेनाडो में सोना मिलता है। अन्य खनिजों मे निकल, लोहा, हीरा, सीस एवं कोयला मुख्य हैं। निर्यात की वस्तुओं में गरी, मक्का, कहवा, रबर, कापाक, जायफल खाल और सींगें तथा लकड़ियाँ हैं। तटीय भागो में अधिक लोग निवास करते हैं। अधिकाश निवासी मलय हैं। सेलेबीज में पाँच जनजातियाँ मुख्य हैं — टोला (Toala), बुगिनीज (Buginese), मकासर (Macassar), मिनाहासीज एवं गोरोंतलीज (Gorontalese)।

सर्वप्रथम १५१२ ई० मे पुर्तगाली यहाँ आए और १६२५ ई० में ये मकासर में बसे। १६६० ई० में डचों ने इन्हे निकाल बाहर कर दिया और १९४६ तक इसपर नीदरलैंड्स ईस्ट इंडीज के भाग के रूप में वे शासन करते रहे। १९५० ई० में हिंदेशिया गणतंत्र के बनने पर यह सुलावेसी नाम का प्रदेश बना। प्रशासकीय दृष्टि से इसे दो प्रातो, उत्तरी सुलावेसी एवं दक्षिणी सुलावेसी, में बाँटा गया है। इनके प्रशासकीय केंद्र क्रमश: मेनाडो एवं मकासर हैं। मकासर मुख्य बंदरगाह एवं व्यापारिक केंद्र भी है। मेनाडो भी बंदरगाह है। दूसरा महत्वपूर्ण नगर एवं बदरगाह गोरोतलो है। [रा० प्र० सिं०]

सेलैंगर (Selangar) क्षेत्रफल ३१६७ वर्ग मील, जनसंख्या १२, ७९, १९८ (१९६४) मलेशिया गणतंत्र में मलय संघ के मध्य में मलक्का जलडमरूमध्य के किनारे स्थित राज्य है। सेलैंगर उत्तर में पेराक, पूर्व में पहाग तथा दक्षिण में नेग्री सेंबिलान राज्यों द्वारा घिरा हुआ है। पूर्वी सीमा पर स्थित पर्वतो में टिन की महत्वपूर्ण खदानें हैं लेकिन अधिकाश निचला मैदान सेलैंगर, क्लांग और लगट नदियों द्वारा प्रवाहित उपजाऊ मैदान है। कोयला भी एक महत्वपूर्ण खनिज है। ऊपरी घाटी एवं उत्तरी पश्चिमी दलदली भाग में रबर एव धान की उपज होती है तथा तटीय भागों में नारियल, अनन्नास एवं मत्स्योत्पादन उल्लेखनीय हैं। क्वालालपुर इस राज्य की ही नही अपितु मलय संघ तथा सपूर्ण मलेशिया की राजधानी है। पोर्ट स्वेटेनहम प्रधान बंदरगाह है, जहाँ मलय आनेवाले जलयान नियमित रूप से आते रहते हैं। निर्यात की मुख्य वस्तुएँ रबर एवं टिन हैं। सेलैंगर मलय सघ का सबसे घना आबाद राज्य है। चीनी एवं भारतीयों की सख्या कुल जनसख्या के दो तिहाई से भी अधिक है, शेष मलय हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इस राज्य ने पर्याप्त औद्योगिक प्रगति की है। १८७४ ई० में सेलैंगर ब्रिटेन के सरक्षण में आया तथा १८९५ ई० में मलय फेडरेटेड राज्यों में से एक हुआ। यह सन् १९४२ से लेकर (अगस्त) सन् १९४५ तक जापान के अधिकार में रहा। [रा० प्र० सिं०]

सेवक जन्म सं० १८७२ वि०। इनके पूर्वपुरुष देवकीनंदन सरयूपारीण पयासी के मिश्र थे किंतु राजा मझौली की बारात में भाँटों की तरह कवित्त पढने और पुरस्कार लेने के कारण जातिच्युत होकर भाँट बन गए और असनी के नरहरि कवि की पुत्री से विवाह कर वही बस गए। कवि ऋषिनाथ के पुत्र ठाकुर, जिन्होने सतसई पर 'तिलक' की रचना की है, काशी के रईस बाबू देवकीनंदन के आश्रित थे। सेवक ठाकुर के पौत्र तथा कवि धनीराम के पुत्र थे। इनके भाई शंकर भी अच्छे कवि थे। सेवक ऋषिनाथ के प्रपौत्र और बाबू हरिशकर जी के आश्रित थे। कभी भी कवि ने उन्हे छोड़कर किसी अन्य आश्रयदाता के यहाँ जाना स्वीकार नही किया।

इनका 'वाग्विलास' नामक ग्रंथ, जिसमें नायिकाभेद के साथ ही उतने ही नायकभेद भी किए गए हैं, महत्वपूर्ण है। अन्य ग्रंथ 'पीपा प्रकाश', 'ज्योतिष प्रकाश' और 'बरवै नखशिख' हैं। मिश्रबधुओं ने इनके षट्ऋतुवर्णन की बड़ी प्रशसा की है और इनकी गणना तोष कवि की श्रेणी में की है। इनकी मृत्यु स० १९३८ में काशी मे हुई।

स० ग्रं० — मिश्रबधु . मिश्रबंधु विनोद, भा० ३; आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास। [रा० फे० त्रि०]

सेवरेस, लूसिअस सेप्तीमिअस (१४६-२११), रोम के सम्राट् लूसिअस का जन्म अफ्रीका के तट पर हेप्टिस मागना स्थान पर ११ अप्रैल, १४६ को हुआ। लुसिअस ही वह लौह पुरुष है जो अनेक वर्षों के कठोर गृहयुद्ध के बाद बिखरे रोमन राज्यो को अपने नेतृत्व में संगठित करने में सफल हुआ। उसने रोम में कानून का अध्ययन किया और प्रात तथा साम्राज्य के उच्च प्रशासकीय पदो पर कार्य किया। उसने सन् १९३ में पनोतिया में सेना का नेतृत्व सँभाला और रोम के तत्कालीन कठपुतली सम्राट् जुलिआनस को उखाड फेंका।

अपने शासन के प्रारंभिक दिन उसने अपने प्रतिद्वंद्वियो — पूर्व में नाइजर, पश्चिम में अलबाइनस और १९७ से २०२ तक के युद्ध में पार्थियंस — का सफाया करने मे बिताए। इसके बाद उसने अपना ध्यान प्रशासकीय मामलों के सुधार मे लगाया। सैनिक इतिहास में सैन्य आधिपत्य की प्रथा उसके शासन से ही शुरू होती है। उसने साम्राज्य में न्यायाधीशो के प्रभुत्व के स्थान पर सैनिक प्रभुत्व की

सैक्सनों ने इंग्लैंड पर छोटीछोटी टोलियों में आक्रमण किया और अंत में जीते हुए यही छोटे छोटे भाग ही नार्थंब्रिया, मर्सिया तथा वेसेक्स के बड़े राज्य बन गए। सैक्सन देहात के निवासी थे और इसलिये कुछ ही दिनों में रोमन लोगों के बसाए हुए नगरों में उल्लू बोलने लगे तथा उनकी भाषा का भी लोप हो गया और इस प्रकार ऐंग्लो सैक्सन भाषा ने ही आज की अंग्रेजी का रूप धारण किया। ब्रिटेन के देहातों का सामाजिक संगठन भी पुरानी सैक्सन बस्तियों की ही तरह है, विशेषकर सैक्सनों द्वारा प्रचारित 'खुली खेती' का ब्रिटेन में अब भी प्रचलन है जिसके द्वारा प्रत्येक जुता हुआ खेत तीन भागों में विभक्त कर दिया जाता था और हर साल उनमें से एक भाग बिना बोए छोड़ दिया जाता था।

सैक्सन पार्लियामेंट का, जिसे 'वितान' कहते हैं, अध्यक्ष राजा हुआ करता था जो राज्य के सभी महत्वपूर्ण व्यक्तियों को इसके लिये आमंत्रित करता था। यह पार्लियामेंट अगले राजा का चुनाव करती थी तथा कानून बनाती थी। प्रशासन की सरलता के लिये सौ गाँवों का एक भाग बनाया जाता था तथा बाद में और बड़े भाग बनने लगे जिनके नाम के अंत में 'शायर' लगा होता था जिनका अस्तित्व आज भी है। सैक्सनों ने धीरे धीरे ईसाई धर्म अपना लिया, जिसका प्रभाव पुराने गिरजाघरों के निर्माण में दिखाई देता है। ये लोग क्रिसमस के उत्सव पर लकड़ी का लट्ठा जलाते थे। इसी प्रकार ईओस्टर — वसंत की देवी — का त्योहार भी धीरे धीरे ईस्टर में परिणत हो गया।

सैक्सनी (Saxony) यूरोप का किसी काल का शक्तिशाली राज्य जिसने अब पूर्वी जर्मनी के दक्षिणी पूर्वी प्रांत के रूप में अपना अस्तित्व बना रखा है। यह प्रांत ५०° २०' से ५१° १०' उ० अ० एवं १२° से १५° पू० दे० के मध्य स्थित है। इसके दक्षिण पूर्व में चेकोस्लोवाकिया राज्य, पूर्व में नीसा नदी, जो इसे पोलैंड से पृथक् करती है, उत्तर में प्रशा प्रदेश तथा पश्चिम में थूरिंजिया एवं दक्षिण में बवेरिया के प्रांत स्थित हैं। इस प्रांत की अधिकतम लंबाई पूर्व पश्चिम में लगभग १३० मील एवं चौड़ाई उत्तर दक्षिण में लगभग ९३ मील तथा इसका क्षेत्रफल ५७८९ वर्गमील है।

उत्तरी भाग को छोड़कर प्रांत का अधिकांश यूरोप के मध्यवर्ती पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित है। ये पर्वत परमोकार्बोनीफेरस युग में निर्मित मोड़दार पर्वतों के अवशेष के रूप में हैं। दक्षिणी सीमा पर अर्जगेबर्ग (Erzgeberg) की श्रेणी ९० मील लंबी है जिसकी सर्वोच्च चोटी फिटलबर्ग (Fichtelberg) ३९७९ फुट ऊँची है। दक्षिणी एवं दक्षिणी पश्चिमी भाग में इसी की उपश्रेणियाँ फैली हुई हैं जिन्हें मध्य सैक्सनी की श्रेणी एवं ओस्चाज (Oschatz) की श्रेणी कहते हैं। दक्षिणी पूर्वी भाग में २६०० फुट तक ऊँची लुसाटिया पर्वतश्रेणी है। इनके उत्तर पूर्व में एल्ब नदी के दोनों ओर आकर्षक सैक्सन स्विट्जरलैंड स्थित हैं। इस पत्थर के चट्टानी प्रदेश में जल एवं हिमानी क्षरण द्वारा गहरी नदी घाटियों एवं छिन्न भिन्न पर्वतशिखरों का निर्माण हुआ है जिनकी अधिकतम ऊँचाई १८०५ फुट है। लिलिस्टीन, कोनिग्स्टीन एवं वास्टी अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक है। सैक्सनी प्रांत की मुख्य नदी एल्ब है जिसका ७२ मील लंबा मार्ग नव्य है। इसी की सहायक म्यूल्डे अन्य उल्लेखनीय नदी है। एल्ब रिमेन्सबर्ग पर्वतश्रेणी से निकलकर उत्तरी सागर में गिरती है। अन्य नदियाँ ब्लैक एल्स्टर, व्हाइट एल्स्टर पनीजे, और स्प्री आदि हैं जो एल्ब की प्रणाली में ही सम्मिलित हैं। संपूर्ण क्षेत्र में झीलों का अभाव है। प्रदेश का एकमात्र खनिज स्रोत वोटलैंड के समीप वैड एल्स्टर पर है। जलवायु एल्ब, यूल्डे एवं पनीजे की घाटियों में सम पर अर्जगेबर्ग की उच्च भूमि में अति विषम है। औसत ताप ५° से० १०° से० तक रहता है। अर्जगेबर्ग क्षेत्र में सर्वाधिक वर्षा २७.५" से ३३.५" तक होती है। पश्चिमोत्तर दिशा में मात्रा क्षीण होती जाती है। लाइपजिग में मात्र १७" रह जाती है।

सैक्सनी के मैदानी भाग की मिट्टी अधिक उपजाऊ है। कृषि की इस क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई है। दक्षिण की ओर पठारी एवं पहाड़ी भागों पर उर्वरता एवं कृषि व्यवसाय भी क्षीण होता जाता है। आधुनिक कृषिपद्धति का प्रादुर्भाव प्रायः १८३४ ई० से माना जा सकता है जब चकबंदी कानून लागू किया गया। कृषि के लिये मिसेन, ग्रिम्मा, वाट्जन, डवेलन एवं पिर्ना के समीपवर्ती क्षेत्र अधिक उपयुक्त हैं। प्रदेश की मुख्य उपज राई एवं ओट है। गेहूँ एवं जौ का कृषिक्षेत्र अपेक्षाकृत कम है। वोगटलैंड में आलू एवं अर्जबोवर्ग एवं लुसाटिया में सन (flax) की कृषि विशेष प्रसिद्ध है। सन की उपज के कारण ही प्राचीन काल में इस क्षेत्र में लिलेन कपड़ा बुनने का व्यवसाय गृह उद्योग हो गया था। बेरी, चेरीन, अनार की पैदावार, लाइपजिग ड्रेस्डेन एवं कोल्डिज के समीपवर्ती क्षेत्रों में होती है। मिजेन एवं ड्रेस्डेन के निकट एल्ब के तटवर्ती भागों में अंगूर की कृषि धीरे धीरे अपना महत्व खोती जा रही है। छठी शताब्दी से ही प्रचलित पशुचारण अब भी अर्जगेबर्ग एवं वोगटलैंड के चरागाहों पर होता है। १७६५ ई० में ३०० स्पेन की नर भेड़ों द्वारा नस्ल सुधारने के उपरांत यहाँ की भेड़ों एवं ऊन की माँग विश्व में बढ़ गई थी पर अब यह धीरे धीरे क्षीण होती जा रही है। सूअर, हंस, मुर्गे एवं मुर्गियाँ अब खाद्य पदार्थों में प्रयुक्त हो रही हैं। सैक्सनी में वनसंपत्ति भी प्रचुर मात्रा में है जो वोटलैंड एवं अर्जगेबर्ग में है। इस प्रदेश में चाँदी का उत्पादन १२वीं सदी से ही हो रहा है और अर्जेंटीफेरस लेड अब भी खनिजों में महत्वपूर्ण है। अन्य खनिजों में टिन, लोहा, कोबाल्ट, कोयला, ताँबा, जस्ता एवं बिस्मथ है। मध्यम कोटि के कोयले का भंडार एवं उत्पादन यहाँ यूरोप के सभी राज्यों से अधिक होता है। खनिज पदार्थों के चार प्रमुख क्षेत्र हैं : (१) — फ्रीबर्ग क्षेत्र जहाँ का प्रमुख खनिज सीस एवं चाँदी है, (२) — अल्टेनबर्ग क्षेत्र, जिसकी विशेषता टिन उत्पादन में है, (३) — स्नीबर्ग, जहाँ कोबाल्ट, निकेल एवं लौह प्रस्तर (Iron stone) निकाला जाता है, एवं (४) — जोहान जार्जेस्टाड क्षेत्र, जहाँ चाँदी एवं लौह प्रस्तर मुख्य हैं। कोयला उत्पादन का मुख्य क्षेत्र ज्विकाऊ एवं ड्रेस्डेन हैं। पीट कोयला अर्जगेबर्ग में मिलता है। यह क्षेत्र कोयले का निर्यात भी करता है। इन खनिजों के अतिरिक्त इमारती पत्थर एवं पोर्सलीन क्ले (चीनी मिट्टी) क्रमशः एल्ब की उच्च भूमि एवं मिजेन के समीप पाए जाते हैं।

इस प्रांत की मध्यवर्ती स्थिति एवं जलविद्युत् शक्ति ने क्रमशः

संगीत की ओर रुझान, पर बाद में चित्रकला की साधना ही उसके जीवन का ध्येय बन गई। पहले जिओवान्नी वेलिनी और बाद में जिओर्जिओन का वह शिष्य हो गया। वेनिस के सान जिओवान्नी चर्च में उसने अनेक महत्वपूर्ण चित्रांकन प्रस्तुत किए, किंतु सियना के धनिक व्यापारी द्वारा जब उसे रोम बुला लिया गया फिर तो माइकेल एंजलो का जबर्दस्त प्रभाव उसपर हावी हो गया। रोम स्थित मोतोरिओ के पियेत्रो चर्च मे 'रेज़िंग ऑव लैज़रस' (Raising of Lazarus) उसकी सर्वोत्कृष्ट कृति बन पड़ी जो आजकल लदन की नेशनल गैलरी में सुरक्षित है।

सेबास्तिआनो ने बाद में विरक्त का बाना धारण कर लिया। वह एक श्रमी साधक था, पर स्वभाव से कुछ दमी, प्रमादी और अपने तई सीमित। फ्लोरेंटाइन के एक विशाल चित्र 'अतिम निर्णय' (Last Judgment) पर माइकेल एंजलो से उसका गंभीर मतभेद हो गया। सेबास्तिआनो ने पोप को यह चित्र तैलरगो में बनाने की सलाह दी। किंतु माइकेल एंजलो ने भित्तिचित्र के रूप में इसे बनाने का आग्रह किया और कहा कि तैलचित्रण औरतों और सेबास्तिआनो जैसे आलसी साधुओं के लिये ही उपयुक्त है। इसपर परस्पर कटुता आ गई और सेबास्तिआनो मरते दम तक उससे नाराज रहा। उसके कुछ पोर्ट्रेट चित्र भी मिलते हैं जिनमें प्रतिपाद्य से गजब की समानता द्रष्टव्य है। [श० रा० गु०]

सेस्केचवान (Seskatchewan) (स्थिति : ४९° ६०° उ० अ० एव १०१°—११०° प० दे०) यह कनाडा का एक प्रांत है जिसका क्षेत्रफल २५१, ७०० वर्ग मील एवं जनसख्या ६२५,१८१ (१९६१) है। इसके क्षेत्रफल में से स्थलीय भाग का विस्तार २२०,१८२ वर्गमील एवं जलीय भाग का विस्तार ३१५२८ वर्ग मील है।

इस प्रात की सीमाएँ कृत्रिम हैं। उत्तरी आधा भाग कैंब्रियन-पूर्वकल्प चट्टानों का बना हुआ है। जहाँ जगल, झील और दलदल की अधिकता है। चर्चिल नदी हडसन की खाड़ी में गिरती है लेकिन उत्तर पूर्व में मैकेंजी नदी का प्रवाहक्षेत्र है। इस प्रात के दक्षिणी भाग में उत्तरी एवं दक्षिणी सस्केचवान नदियो का क्षेत्र है जिसे प्रेरी का मैदान कहते हैं। दक्षिणी पूर्वी भाग में थोडा सा भूभाग सोरिस (Souris) नदी के प्रवाहक्षेत्र में आता है। इस प्रात की औसत ऊँचाई १२००—१५०० फुट तक है लेकिन रेजिना (Regina) नामक नगर १८९६ फुट की ऊँचाई पर स्थित है।

जलवायु — इस प्रांत के दक्षिणी क्षेत्र में गरमी मे अधिक गरमी एवं जाडे में अधिक ठंढक पड़ती है। दैनिक ताप जाडे में हिमाक से नीचा रहता है। गरमी का औसत ताप १०° से १३° से० रहता है लेकिन धूप जाडे और गरमी में बराबर रहती है। इससे जलवायु शुष्क और स्वास्थ्यकर होती है।

यहाँ ३०" से ३५" तक हिमवर्षा होती है जो लगभग ३—५ फुट पानी के बराबर होती है। वर्षा की मात्रा १२" से १५" है। दक्षिणी भाग सूखाग्रस्त है। फार्म पुनर्वास योजना (Rehabilitation Programme) के अंतर्गत १९३५—५० तक लगभग ४३ हजार कृषको को भूमिसुधार एवं जलसंग्रह के लिये आर्थिक सहायता दी गई।

कृषि — कृषियोग्य भूमि का क्षेत्रफल १,२५,०८० वर्ग मील है जिसमें से लगभग १ लाख वर्ग मील में वडे वडे कृषि फार्म हैं। वसतकालीन गेहूँ की उपज का यह प्रसिद्ध क्षेत्र है जो संपूर्ण कनाडा का ५०% गेहूँ उत्पन्न करता है। राई (एक प्रकार का अनाज) अन्य महत्वपूर्ण उपज है। पशुपालन एवं मुर्गीपालन भी होता है। घास के मैदान बहुत दूर तक विस्तृत हैं। दक्षिण के एक तिहाई भाग में जनसंख्या का घनत्व बहुत ही अधिक है। जंगल आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नही हैं। प्रात के मध्य भाग में स्प्रूस, हेमलॉक, बर्च, पॉपलर और फर मुख्य वृक्ष हैं। कुछ मछलियाँ भी यहाँ पकड़ी जाती हैं। खनिजो मे ताँबा, सोना, जिंक, निकल, कोयला, रजत, लोहा, सीसा और प्लैटिनम उल्लेखनीय हैं। जलविद्युत् का उत्पादन भी होता है। कृषि प्रधान उद्योग है। दूसरा स्थान निर्माण उद्योग का है। इसमें तीन समूह मुख्य हैं :—आटा और भोज्य पदार्थों के कारखानें, मास उद्योग एव मक्खन और पनीर उद्योग। रेजिना मे कच्चे माल का गोदाम, पशुवधशाला, यत्रनिर्माण और पुर्जों के जोड़ने का काम होता है। निचले भाग में सड़को एव रेलमार्गों का जाल बिछा हुआ है। देश के भीतरी भाग में होने के कारण बदरगाह नही हैं।

रेजिना (जनसख्या ११२,१४१) इस प्रात की राजधानी है। सस्कैटून (Saskatoon) (१०३,६२३) में विश्वविद्यालय है। मूज जा (Moose Jaw) (३३,२०६) एवं प्रिंस अलबर्ट (२४,१६८) अन्य महत्वपूर्ण नगर हैं।

२—सस्केचवान नदी — कनाडा के अलबर्टा एवं सस्केचवान प्रातों मे बहनेवाली नदी है। इसकी दो बड़ी धाराएँ—उत्तरी एवं दक्षिणी सस्केचवान, प्रिंस अलबर्ट के निकट मिलती हैं और तब पूर्व की ओर बहती हुई विनीपेग झील में मिल जाती हैं। उत्तरी सस्केचवान राकी पर्वतमाला मे ५२° ७' उ० अ० एवं ११७° ६' पू० दे० से निकलती है और पूर्व की ओर बहती है। इसमे कई प्रसिद्ध सहायक नदियाँ, जैसे क्लियरवाटर, ब्रैजियन और बैटिल मिलती हैं। दक्षिणी सस्केचवान बो एव वेली नदियो के मिलने से बनती है। पूर्व की ओर इसमे रेड नदी मिलती है और कुछ आगे जाने पर उत्तरी सस्केचवान भी मिल जाती है। यहाँ से लेकर विनीपेग झील मे गिरने के स्थान तक सयुक्त धारा की लबाई ३४० मील है। बो नदी के उद्गमस्थान तक सस्केचवान की कुल लबाई १२०५ मील है। इस नदी का नौगमन के लिये बहुत ही कम उपयोग होता है। [रा० प्र० सिं०]

सैक्सन रोमन शासको के लौट जाने के बाद ब्रिटेन पर जर्मनी आदि देशो के जिन लोगो ने आक्रमण किए वे सैक्सन कहलाए। इनमे ऐंग्ल, सैक्सन तथा जूट्स नामक निम्नवर्गीय जर्मन मूल की जातियाँ थीं जो डेनमार्क, जर्मनी और हालैंड से ४०० ई० में ब्रिटेन आए थे और इन्हे इंग्लैंड पर विजय पाने के लिये सेल्ट लोगो से १५० वर्षों तक युद्ध करना पड़ा था। सेल्ट जाति के लोगो को भागकर वेल्ज़ के पर्वतो मे शरण लेनी पड़ी जहाँ उनकी भाषा अब भी जीवित है।

प्रकाशन है। मास, मछलियाँ, फल, शाक सब्जी, तेल, खनिज, अनाज आदि बाहर भेजे जाते हैं तथा वस्त्र, जूते और फर्निचरों का निर्माण होता है। यह अन्य नगरों से रेल, बसों और वायुयानों से संबद्ध है।

सैनिक अभिचिह्न रणक्षेत्र में परस्पर युद्धरत विरोधी दलों में प्रतीति अथवा पहचान कराना ही सैनिक अभिचिह्नों को प्रधान उपादेयता है। अभिज्ञानात्मक चिह्नों का प्रयोग केवल आधुनिक युग की ही सैनिक विशेषता नही है। मानव मात्र के इतिहास में प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेदसंहिता में ध्वज, अक्र, केतु, बृहत्केतु, और सहस्रकेतु आदि शब्दों का भिन्न भिन्न कोटि के सैनिक झंडों के अर्थ में उल्लेख किया गया है। सुप्रसिद्ध महाभारत की वीर गाथाओं में भीष्म, द्रोण, अर्जुन, कर्ण, पौरराज आदि अनेक सेनानायकों के निजी झंडे के चिह्न वर्णित हैं। रामायण के वर्णनानुसार भरत के झंडे पर कोविदार वृक्ष चिह्नित था। लंकापति रावण के झंडे पर नरकपाल की आकृति थी। कौटिलीय अर्थशास्त्र के प्रमाणानुसार मौर्य सेना में प्रत्येक सेना के प्रत्येक व्यूह की निजी ध्वजा और पताका थी। 'ध्वजा' और 'पताका' प्राचीन भारतीय सेना के इतने आवश्यक अंग थे कि संस्कृत वाङ्मय में 'ध्वजिनी' तथा 'पताकिनी' शब्दों का प्रयोग सेना के पर्याय मे ही किया जाने लगा था।

इसी भाँति भारतेतर प्राचीन संस्कृतियों के सैनिक इतिहास में भी अभिचिह्नों के प्रयोग के प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं। लगभग ५०० ई० पू० रचित चीनी युद्धपुस्तक में चीनी झंडों पर अंकित सपक्ष नाग, श्वेत व्याघ्र, रक्तचटक, सूर्य और कूर्म आदि की आकृतियाँ वर्णित हैं। पंच नखरी उड्डीय नाग प्राचीन चीन राज्य का प्रतीक था। हेम पुष्प जापान का प्राचीन राजचिह्न था। मेक्सिको में स्पेन वासियों के बसने के पूर्व वहाँ के सैनिक सरदार चिह्नांकित ढालों तथा झंडों का प्रयोग करते थे। ५०० ई० पू० ऐस्चीलस ने थेब्स के आक्रांताओं की ढालों पर बने प्रतीकों की चर्चा की है। अवेंटीनस के वर्म (शील्ड) पर अभिचिह्न बने होने का वर्जिल का वचन प्रमाण है। हेरोडोटस के कथनानुसार किरियन सैनिक ही सर्वप्रथम अपने शिरस्त्राणों पर शिखरचिह्नों (कलंगियों) का प्रदर्शन तथा शील्डों पर चित्ररचना करते थे। प्राचीन एथेन्स वासियों के झंडे पर उल्लू की आकृति बनी होती थी। यह पक्षी नगर की संरक्षिका मिनर्वा देवी का पवित्र पक्षी माना जाता था। स्फिंक्स थेब्स के नगरराज्य का मान्य चिह्न था। रोम के सैनिक दल (लीजियन) अपने झंडों में महान् श्रद्धा रखते थे तथा इन्हें चलता फिरता युद्धेश्वर मानते थे। प्रारंभकालिक रोमन सैनिक झंडों पर महाश्येन, भेड़िया, वराह आदि पशु पक्षियों के लांछन बने होते थे। कालांतर में रोमन झंडों तथा बिल्लों पर महाश्येन लांछन ही अंकित किया जाने लगा था।

इंग्लैंड की सैक्सन और नार्मन जातियों द्वारा प्रयुक्त पताकाओं तथा शील्डों का विस्तृत वर्णन 'ब्यूटेक्स टेपेस्ट्री' में सुरक्षित है। इन सेनाधिकारियों के झंडे विविध आकार के होते थे तथा उनपर नाना जाति के पशु पक्षी, क्रास चिह्न तथा वर्तुलाकार चिह्न होते थे। झंडों के पुच्छल भाग की संख्या भी भिन्न भिन्न होती थी। हेस्टिंग्ज युद्ध में अंग्रेजी सेना के झंडे पर नाग का चिह्न था जो संभवतः चित्रित न होकर काटकर चिपकाई गई आकृति थी। यही निशान पूर्व नार्मन शासकों ने भी अपने झंडे पर प्रदर्शित किया था।

प्राचीन काल में इन अभिचिह्नों के धारण, प्रदर्शन, और प्रवरण आदि के संबंध मे कोई नियम नही था। अभिचिह्न विशेषज्ञों की धारणा है कि इस विषय पर १२ वी शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में यूरोप के क्रूसेड नामक धर्मयुद्धों के पश्चात् ही सर्वप्रथम ध्यान आकृष्ट हुआ और शीघ्र ही सैनिक अभिचिह्न विद्या हेराल्ड्री के अंतर्गत तत्संबंधी नियमों तथा तद्विषयक शब्दावली का निर्माण किया गया। पश्चिम यूरोप में इस कला की अभिवृद्धि का एक अन्य कारण शांतिकालीन चक्रस्पर्धी युद्ध सम्मेलन भी था। इन खेलों में भाग लेनेवाले प्रतिस्पर्धी निजी अभिचिह्नों का प्रयोग करते थे जो कालांतर में भूतपूर्व सफलताओं के द्योतक होने के कारण गौरव का प्रतीक बनकर वंशानुगत कुलचिह्न बन गए। यही मनोवृत्ति क्रूसेड के धर्मग्रंथों में अपनाए गए अभिचिह्नों के प्रति भी विकसित हुई।

सैनिक अभिचिह्नों के पैतृक बन जाने का एक महान् कारण १२वी शताब्दी मे यूरोप की तत्कालीन सामंती राजव्यवस्था थी जिसके अधीन भूमि अधिकार के बदले में राजगणक वर्ग के बैरन आदि छोटे बड़े सभी सामंत एक निश्चित सेना सहित युद्ध के समय महाराज की सेना में संमिलित होते थे। ये सामंत पृथक् पृथक् निजी अभिचिह्नों का प्रयोग करते थे जो नायकों की अभिव्यक्ति के साथ साथ सामंतों की कोटि के भी परिचायक थे। इन सामंतों ने अपनी राजमुद्राओं पर अपनी पूर्ण कवचित अश्वारोही आकृतियों का प्रदर्शन आरंभ कर दिया। स्वभावत जो अभिचिह्न वे अपने अधीनस्थ सैनिक दलों में प्रयुक्त करते थे उन्ही को उन्होंने राजमुद्राओं पर भी अपनाया। वही अभिचिह्न प्राय असैनिक व्यवहार मे आनेवाली राजमुद्राओं में भी व्यवहृत किया गया। सामंत के मृत्यूपरांत उसके पुत्र को भूमि अधिकार प्राप्त होने पर वह भी पूर्वप्रयुक्त राजमुद्रा का ही प्रयोग करता था। इस भाँति सैनिक तथा असैनिक दोनों कारणों से मध्यकालीन सैनिक अभिचिह्न पैतृक बन गए।

१३वी शताब्दी मे कवच के साथ पूर्ण संवृत शिरस्त्राणों का भी प्रचलन हुआ जिसके कारण सेनानायक का पूरा चेहरा अदृश्य हो जाता था। अतएव राजराणकों ने कवच के ऊपर एक लंबा अर्धचिह्नांकित चोला (कोट ऑव आर्म्स) पहनना आरंभ कर दिया। उनकी शील्डों पर भी वही अभिचिह्न (शील्ड आव आर्म्स) अंकित होता था। ये लंबे चोले नायकों के एक प्रकार के गौरवांक थे जिनका सर्वप्रथम प्रयोग क्रूसेड युद्धों में धातुमय कवचों तथा शिरस्त्राणों को पूर्वी सूर्य की तप्त किरणों से बचाने तथा वर्षाकाल में कवचों को सुरक्षित रखने के लिये हुआ था। इसी समय अश्वकवचों को भी इसी प्रकार गौरवांकों से आच्छादित किया जाने लगा। युद्धभूमि में जो सामंत वंशपरंपरा अथवा भूमि अधिकार के नाते परस्पर संबंधित होते थे वे सामान्यतः एक ही अभिचिह्न को, उसमें साधारण भेदांतर कर, ग्रहण कर लेते थे। इसलिये भेद दर्शाने के लिये भिन्न भिन्न आकृतियों तथा चिह्नों की आवश्यकता पड़ी। कभी कभी एक ही शील्ड पर दो या अधिक गौरवांकों के अंकन द्वारा धारक अपने वैवाहिक संबंधों अथवा अधिकाधिक प्राप्त भूमि अधिकारों की भी अभिव्यक्ति कराते थे।

व्यापार एव उद्योगो को बढाया है। ५०% से अधिक शक्ति जल-विद्युत् की है। इसमे म्यूल्डे नदी का अंश सर्वोच्च है। लाइपजिग विश्वमेला एव प्रशासको की नीति ने भी व्यापार एव उद्योग के ससाधनो के उपयोग को वढाया है। वस्त्रोद्योग यहाँ का विशेष प्रसिद्ध उद्योग है। ज्विकाऊ, केमिनिट्ज (कार्ल मार्क्स स्टाड) ग्लाकाऊ, मिरेन, होहेंस्टीन, कामेंज, पुल्सनिट्स, विस्काफवर्डा में सूत एव कपड़े की मिलें हैं। केमिनिट्ज मे होजिरी, वोटलैंड मे मस्लिन, कामेंज, विस्काफेन वर्डा एव प्रासेनहेन में ऊनी वस्त्रोद्योग, केमिनिट्ज, ग्लाकाऊ, मीरेन, रिचेतवाक मे अर्ध ऊनी वस्त्रोद्योग एवं लुसाटिया मे लिलेन वस्त्रोद्योग प्रसिद्ध है। गोट ल्यूगा एव लाऊ विज के मध्यवर्ती पर्वतीय क्षेत्रो की ढालो पर मुख्य व्यवसाय स्ट्रा प्लोटिंग है। लाइपजिग में मोमजामा (Wax cloth) बनाया जाता है। पत्थर एव मिट्टी के बर्तन केमिनिट्ज, ज्विकाऊ, वाजेन एवं मिजेन में बनते हैं। लाइपजिग एव समीपवर्ती क्षेत्रो मे रासायनिक उद्योग एव सिगार, डल्विन, वर्डाऊ एव लासनिज मे चम उद्योग एव व्यापार तथा लाइपजिग, ड्रेस्डेन, केमिनिट्ज में हैट आदि बनते हैं। पश्चिम जर्मनी में कागज बनाने का उद्योग केमिनिट्ज एवं ड्रेस्डेन में मशीनो का निर्माण कार्य होता है। केमिनिट्ज एक वृहद् लोह इस्पात उद्योग केंद्र है। यहाँ वाष्प इजिन, जलयान आदि बनाए जाते हैं पर लोहा अन्य क्षेत्रो से ही मँगाना पडता है। सैक्सनी के निर्यात व्यापार में ऊन, ऊनी वस्तुएँ, लिलेन के सामान, मशीनें, चीनी मिट्टी के सामान, सिगरेट, फ्लानेल, पर्दे, लेस, घड़ियाँ और खिलौने का विशेष हाथ है।

आज सैक्सनी प्रात, जो जर्मन डिमाक्रेटिक रिपब्लिक मे है, का क्षेत्रफल १७,७०९ वर्ग किमी एव जनसंख्या ५४,८५,३४६ (३१ दिसबर, १९६२) है। जनसंख्या का घनत्व लगभग ३१० व्यक्ति वर्ग किमी है। इसमे तीन जनपद (उपखंड) सम्मिलित हैं (१) लिपजिक जिसकी जनसख्या १५,१३,८१६ एव क्षेत्रफल ४९६२ वर्ग किमी है, (२) ड्रेस्डेन, जिसका क्षेत्रफल ६७३८ किमी एव जनसख्या १.८,७६,७६७ है एवं (३) कार्लमर्क्स स्टाड (केमिनिट्ज) जिसका क्षेत्रफल ६००९ वर्ग किमी एव जनसख्या २,०,६४,७६३ है। यही इस क्षेत्र का सबसे घना वसा हुआ क्षेत्र है जिसकी जनसख्या का घनत्व ३४९ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। पूर्वी वर्लिन को छोड़कर, लाइपजिग पूरे गणतंत्र का सबसे बड़ा नगर है। इस प्रकार प्रात के दूसरे नगरो में भी जनसंख्या में ह्रास दिखाई पड़ता है।

१२ वी शताब्दी में सैक्सनी पूर्व में एल्व से पश्चिमे राइन नदी तक फैला हुआ था। धीरे धीरे केवल पूर्वी भाग ही रह गया। यहाँ के प्रशासको द्वारा स्थापित चार विश्वविद्यालयो लाइपजिग, जेना, विहेनवर्ग एव अर्फर्ट में से केवल प्रथम ही अब इस प्रात मे रह गया है। सैक्सनी मे औद्योगिक शिक्षण सस्थानो की अधिकता है। इसने टेक्सटाइल उद्योग, माइनिंग प्रशिक्षण केंद्र एव वनविद्यालय विशेष प्रसिद्ध हैं। [कै० ना० सि०]

सैक्सनी अनहाल्ट वर्तमान जर्मनी के डिमाक्रेटिक गणतन्त्र का एक प्रात है जिसमे प्राचीन सैक्सनी राज्य का उत्तरी भाग समिलित है। यह १८१५ ई० में प्रशा को दे दिया गया था। इसमें वर्तमान मॅगडेवर्ग एव हेल जनपद (उपखड) सम्मिलित है जिनका क्षेत्रफल ९८६० वर्गमील है। इसके पूर्व मे ब्राडेनवर्ग प्रात मे पश्चिम मे पश्चिमी जर्मनी, दक्षिण मे थूरिंजिया एव सैक्सनी स्थित हैं। इसका अधिकतर भाग जर्मनी के उत्तरी मैदान के अंतर्गत है जिसकी मिट्टी अत्यधिक उपजाऊ है। हार्ज एवं थूरिंजिया की उच्च भूमि कुछ दक्षिणी पश्चिमी भाग मे पड़ती है। प्रात का ९/१० भाग एल्व नदी की घाटी में एवं शेष वीजर की घाटी मे स्थित है। इस उपजाऊ क्षेत्र की प्रधान उपज गेहूँ एवं चुकदर है। यहाँ हमें एक विषमता दृष्टिगोचर होती है क्योकि सर्वोत्तम कृषिक्षेत्र हार्ज पर्वत की तलेटी मे एव चरागाह नदियो की घाटियो में स्थित हैं। उत्तर मे अलमार्ट का वलुआ मैदान कृषि के योग्य कम है। गेहूँ एव राई का यहाँ से निर्यात भी होता है। चुकदर की कृषि हाज के उत्तर स्थित क्षेत्रो में होती है। अन्य उपज फ्लैक्स (सन), फल, तिलहन आदि हैं। प्रात की वनसंपदा प्रायः कम है। कुछ उच्च कोटि के जगल हार्ज क्षेत्र में हैं। पशुपालन नदी घाटियो तक ही सीमित है जिनमें बकरियो की सख्या अधिक होती है। पोटास एव लिग्नाइट यहाँ की प्रधान खनिज संपत्ति है। पोटास एवं राक साल्ट स्टासफर्ट कोनेवेक एव हेल के समीप निकाले जाते हैं। लिग्नाइट के क्षेत्र ग्रोस्का स्लेवेन से विजेन फेन तक फैले हुए हैं। ल्यूना प्रखड के लिग्नाइट का उपयोग जलविद्युत, गैसोलिन एवं अन्य संबंधित वस्तुओ मे किया जाता है। चीनी मिलो के अतिरिक्त, कपडा, लोहे, इस्पात, चमडा आदि के उद्योग भी महत्वपूर्ण हैं, रासायनिक उद्योग स्टासफर्ट मे हैं। एल्व का जलमार्ग व्यापार में अधिक सहायक है। इसकी जनसख्या १९६२ ई० में लगभग ३३,००,००० थी। प्रधान नगर हेल (२७८०४९) एव मेगडेवर्ग (२,६५,५१२) हैं।

[कै० ना० सि०]

सैन फ्रांसिस्को (San Francisco) संयुक्त राज्य अमरीका के कैलिफोर्निया राज्य का नगर है जो ३७°४७' उ० अ० तथा १२२°३०' प० दे० पर स्थित है। इसकी जलवायु भूमध्यसागरीय है। जाडा मृदुल होता है और गरमी असह्य नही होती। वर्षा २२' के लगभग दिसवर और मार्च के बीच होती है। नगर के पश्चिम और प्रशांत महासागर और पूरव में सैन फ्रासिस्की की खाडी है। लगभग तीन मील लबे और एक मील चौड़े 'गोल्डेन गेट' नामक मुहाने से, उत्तर से सैनफ्रासिस्को में प्रवेश होता है। यहाँ ४५० वर्गमील का सुरक्षित जल प्राप्त होता है जिसमे बड़े से बड़े जहाज आ जा सकते हैं। अतः यह बहुत ही सुरक्षित बदरगाह बन गया है और यहाँ बहुत बडी सख्या में व्यापारिक जहाज आते जाते हैं। खाड़ी में सैन फ्रासिस्को के समान तीन छोटे छोटे द्वीप गोट आइलैंड, अल्काट्राज और ऐंजेल आइलैंड हैं। सैन फ्रासिस्को बड़ा घना वसा हुआ नगर है और ३० राष्ट्रो के निवासी यहाँ वसे हुए हैं। सैन फ्रासिस्को लगभग ९३ वर्ग मील में फैला हुआ है जिसमे लगभग ४३ वर्ग मील जमीन है। यहाँ लगभग २०० पब्लिक स्कूल, अनेक कालेज और सैन फ्रासिस्को विश्वविद्यालय है। यहाँ अनेक जनता ग्रंथागार और पार्क हैं। सब धर्मो के लोग यहाँ रहते हैं। यहाँ का प्रमुख उद्योग छपाई और

की आवश्यकता अभी तो पूर्ववत् बनी हुई थी। सैनिक झंडे, बिल्ले, शिखरचिह्न आदि आज भी प्रत्येक देशीय सेना के पृथक् पृथक् होते हैं। थल, जल और वायु तीनों सेनाओं में इनका प्रयोग नितांत आवश्यक है। इन आधुनिक अभिचिह्नों की विशेषताओं का सामान्य विवरण निम्न प्रकार है :

आज समस्त राष्ट्रों की तीनों थल, जल और वायु सेनाएँ तथा निजी देशविशेष के द्योतक पृथक् पृथक् झंडों का प्रयोग करती हैं। आधुनिक थल सेना में 'पदाति' रेजिमेंटों के झंडों की अंतर्राष्ट्रीय संज्ञा 'कलर' है। अश्वसेना के झंडे 'गाइडन' और 'स्टैंडर्ड' दो प्रकार के होते हैं। 'गाइडन' निम्न कोटि का झंडा है। सामान्यतः इन तीनों प्रकार के झंडों को कलर ही कह दिया जाता है। पूर्व वर्णनानुसार मध्यकाल में बैरन के अधीन अनेक कंपनियाँ होती थीं अतएव परवर्ती समय में बैरन का झंडा ही आधुनिक कर्नल का और नाइट का झंडा कंपनी का निशान बन गया। कुछ समय पश्चात् 'कर्नल' आदि का झंडा निषिद्ध कर दिया गया और उसके स्थान पर एक शासक का झंडा और दूसरा रेजिमेंटी झंडा सैन्य दलों को प्रदान किया जाने लगा। प्रजातंत्र राष्ट्रों में राष्ट्रपति का झंडा प्रदान किया जाता है। फ्रांस, जापान आदि अनेक देशों में केवल रेजीमेंटी कलर ही धारण करने का नियम है। समुद्री तथा हवाई रेजीमेंटों और कोर आदि को भी कलर प्रदान किए जाते हैं। 'कलरों' पर रेजीमेंट का चिह्नविशेष (बिल्ला) चित्रित होता है। आदर्श वाक्य भी प्राय उल्लिखित होता है और उन सभी युद्धों और अभियानों का नामोल्लेख होता है जिनमें उन रेजीमेंटों ने भाग लिया था। 'स्टैंडर्ड' वर्गाकार होता है तथा 'गाइडन' पुच्छल भाग में फाँकदार कटा होता है। कभी कभी ध्वजदंड के शिरोभाग पर भी आकृतिविशेष होती है। इन झंडों के रंग तथा उनपर चिह्नित चित्र आदि के संबंध में प्रत्येक देश के निजी नियम हैं।

१६ वीं शताब्दी के अंत तक नाविक झंडों का प्रयोग भी इतना विधिमय हो चुका था कि आधुनिक नौध्वजों का नियम भी अधिकांशतः उसी पर आधारित है। गत १५० वर्षों में अधिकतर देशों में नौसेना के अंतर्गत विभिन्न विभागों तथा संस्थानों के परिचायक अनेक झंडों के प्रयोग और प्रदर्शन के नियम बना लिए गए हैं। सूर्योदय के उपरांत ध्वजारोहण तथा सूर्यास्त के पश्चात् ध्वजावरोहण आजकल की अंतर्राष्ट्रीय नाविक प्रथा है। इसी भाँति वाणिज्य जलयानों को भी इस संबंध में अनेक अंतरराष्ट्रीय नियमों का पालन करना पड़ता है।

एक अन्य प्रकार के झंडे वरिष्ठ सेनाधिकारियों में पदस्थिति के सूचक होते हैं। इन झंडों के प्रयोग और प्रदर्शन का अधिकार तीनों सेनाओं के अधिकारियों को प्राप्त है।

आधुनिक अभिचिह्नों में सैनिक वेशभूषा भी एक आवश्यक चिह्न है जिसे देखकर कोई अशिक्षित भी सरलता से सैनिक तथा असैनिक में भेद कर सकता है। सामंतीय सेनाओं के स्थान पर स्थायी भृत्य सेनाओं का प्रयोग किए जाने पर निश्चित वेशभूषा का भी आयोजन किया गया। इंग्लैंड में जब सर्वप्रथम स्थायी सेनाओं की भर्ती हुई तब प्राचीन भृत्य वेशभूषा (livery) के लाल, नीले रंग ही वेशभूषा के लिये नियत किए। ऐसी ही प्रगति अन्य देशों में भी हुई। परंतु आधुनिक युद्धों में चटकीले, भड़कीले रंगों के स्थान पर मंद रंग की वर्दियाँ अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं। सर्वप्रथम ब्रिटिश सेनाओं ने भारत की उष्ण जलवायु तथा सीमांत प्रदेश की आतपतप्त चट्टानों के नीचे सुखदायक खाकी रंग की वर्दी का प्रयोग किया। ब्रिटिश सैनिकों ने मिस्र और सूडान के अभियानों में भी इसी रंग की पोशाक पहनी। २०वीं शताब्दी में आश्चर्यकारी आग्नेयास्त्रों के आविष्कार के कारण समस्त देशीय सेनाओं में मंद रंग की वर्दियों को ही प्राथमिकता दी जाती है। आधुनिक थलसेना में खाकी तथा वायुसेना में सामान्यत खाकी अथवा सलेटी रंग का प्रचलन है। नौसैनिक युद्ध मे जहाज विनाश का मुख्य लक्ष्य होता है, व्यक्ति नहीं, अतएव नौसैनिक गहरे नीले रंग की वर्दी पहनते हैं, परंतु ग्रीष्म ऋतु तथा जलवायु में सफेद वर्दी भी निर्धारित है।

सभी देशों तथा सैन्य दलों की वर्दी समान होने पर विशेष अभिज्ञात्मक अभिचिह्नों की आवश्यकता अनुभव हुई। इन अभिचिह्नों को 'बैज' अथवा 'बिल्ला' कहते हैं। ये बिल्ले मुख्यत तीन प्रकार के होते हैं रेजीमेंटी, पद-कोटि-सूचक तथा विरचना सूचक (formation of signs)। एक अन्य प्रकार के बिल्ले विशिष्ट कार्यसेवाओं में प्रवीणता (skill at arms) प्राप्ति के सूचक होते हैं। रेजीमेंटी बिल्लों में, जो टोपियों अथवा शिरस्त्राणों पर टाँके जाते हैं साधारणत माला का चिह्न, रेजीमेंट का नाम अथवा संख्या, कोई आकृतिविशेष आदि अभिज्ञानात्मक चिह्न रहते हैं। ये बिल्ले धातु के बने होते हैं। पद-कोटि-सूचक बिल्ले, जो कंधों पर धारण किए जाते हैं, आयुक्त (commissioned) अथवा अनायुक्त (non-comissioned) अधिकारियों के भिन्न भिन्न होते हैं। आयुक्त अधिकारियों की पदस्थिति सामान्यत. खड्ग अथवा अन्य कोई चिह्नविशेष अथवा सितारे, राजचिह्न आदि के संख्याभेद से प्रकट की जाती है। अनायुक्त अधिकारियों की वर्दी की भुजाओं पर संख्याभेद से कपड़े के द्विवेणी चिह्न (chevron) बने होते हैं। आयुक्त नौसेना अधिकारियों की पदकोटि उनके कोट के कफों पर सुनहरे रंग की पट्टियों के संख्याभेद द्वारा दर्शाई जाती है। केवल कमीज आदि पहनने पर कंधों पर ही पदसूचक बिल्ले बटन द्वारा टाँक दिए जाते हैं। कुछ देशों की नौसेना में पट्टियों के साथ साथ नक्षत्रचिह्न, श्येन आकृति आदि चिह्नित कर नौसैनिक ध्वजधारी अधिकारियों (Flag Officer) की पदकोटि सूचित करने की प्रथा है। वायुसेना में प्राय. ऐसे नियमों का पालन किया जाता है।

शौर्य पारितोषिक (gallantry awards) भी आधुनिक वेशभूषा के आवश्यक अंग हैं। अनेक अवसरों पर जब पूरी पोशाक पहनकर सैनिकों को उपस्थित होना पड़ता है तब उनके लिये समस्त विजित पदकों को भी धारण करना अनिवार्य होता है। एक से अधिक पदक प्राप्त होने पर उन्हें निर्धारित प्राथमिकता के क्रमानुसार सज्जित किया जाता है। ये पदक रंग बिरंगी पट्टियों द्वारा वक्षस्थल पर दाएँ अथवा बाएँ लटकाए जाते हैं। रिबनों में वर्णभेद से पदकाभिज्ञान में भी सहायता मिलती है। अतएव दैनिक व्यवहार के सामान्य अवसरों पर पदक के स्थान पर केवल सूक्ष्म रूप रिबन ही

इस भाँति १३ वीं शताब्दी तक सैनिक अभिचिह्नों का प्रयोग इतना व्यापक हो गया कि इनके अभिज्ञान तथा अर्थ आदि समझाने के लिये विशेष अभिलेखाधिकारी नियुक्त किए गए। ये अधिकारी अभिचिह्न विशेषज्ञ होते थे, अभिचिह्नों का संकलन तथा पंजीकरण करते थे, शांतिकाल में नियतकालिक परिभ्रमण तथा दूत कार्य करते थे। इंग्लैंड के राजगृह में 'किंग ऑव आर्म्स' नामक अधिकारी नियुक्त थे। रिचार्ड द्वितीय ने (१३६७—१४०० ई०) इंग्लैंड में इन अधिकारियों का एक संघ स्थापित किया था। यह संघ 'कालेज ऑव आर्म्स' अथवा 'हेराल्ड्स कालेज' के नाम से आज भी कार्य करता है।

मध्यकालिक शील्डें आरंभ में बहुत साधारण होती थीं। प्रायः रंगभेद द्वारा अथवा रंगीन चौड़ी पट्टियों द्वारा अथवा सीधी, आड़ी, घुमावदार, कटावदार आदि आदि सूक्ष्म लकीरों द्वारा भिन्नता प्रकट की जाती थी। परंतु यह सरलता अधिक न रह सकी। शील्डों की आवश्यकता बढ़ती गई और शीघ्र ही अनेक प्रकार के दैवी जीवों, मानवीय जीवों, वन्य पशुओं, पालतू पशुओं, पक्षियों, जलचरों, खगोलिक वस्तुओं, वृक्षों, पौधों, पुष्पों और अचेतन पदार्थों आदि के भी चित्रांकन किए जाने लगे। कभी कभी शील्डों के किनारे सफेद अथवा सुनहरी धातु भी अलंकृत की जाती थी। शील्डों के एक अथवा दोनों ओर जीवाकार आधारक भी बना दिए जाते थे जो दैवी, मानुषी, प्राकृतिक अथवा काल्पनिक कैसे भी हो सकते थे। मध्यकालीन शील्डों की एक अन्य विशेषता उन्हें रोमयुक्त पशुचर्मों से अलंकृत करने की थी। ये पशुचर्म साधारण काले सफेद अथवा नीले सफेद के भेद से लगाए जाते थे। इस अलंकरण का मूल उद्देश्य भी डिजाइनों में भेद प्रकट करना ही था। इन अभिचिह्नों के वरण का कोई निर्धारित नियम नहीं था। चिह्नधारक अपनी शक्ति, गुणों आदि के तुल्य पशु पक्षियों को अथवा जिनके गुणों को अपनाने का वह अभिलाषी होता था, चिह्नित कर लेता था। पूर्वकालिक शील्डों के अध्ययन से पता चलता है कि उनपर बनी आकृतियाँ उनके धारकों के नाम से किंचित् संबंधित थीं।

क्रूसेड के धर्मयुद्धों के परिणामस्वरूप सैनिक झंडे भी क्रमबद्ध हो गए। आकारभेद से तीन प्रकार के झंडे मुख्य थे। पैनन निम्नकोटि का राजराणक का झंडा था। लंबे और तिकोने आकार का यह झंडा बल्लम के शिरोभाग के ठीक नीचे लटकाया जाता था। झंडे पर स्वामी का निजी बिल्ला अंकित होता था। कभी कभी यह झंडा सुनहरी झालर से भी सुशोभित होता था। दूसरे प्रकार के वर्गाकार अथवा दीर्घायत बैनर नामक झंडे का प्रयोग नाइट वर्ग के राजराणकों से उच्च कोटि के नाइट, बैरोनेट, बैरन और राजवंशी आदि ही कर सकते थे। मध्ययुग में इस झंडे का प्रयोग जलपोत की पालों पर भी होता था। नारविच के अर्ल के पोत के वातवस्त्र (पाल) पर आधुनिक चिह्न के प्रमाण हैं। सन् १४३६ में इंग्लैंड, आयरलैंड और एक्यूटेन के पोतनायक तथा हंटिंगडन के अर्ल जोहन हालैंड की सील पर अभिचिह्नसज्जित पोत का चित्रण है। तीसरे प्रकार का झंडा स्टैंडर्ड, अन्य दोनों प्रकारों से बड़े, आकार का था। यह युद्धस्थल में चल झंडों के विपरीत केवल एक ही स्थान पर खड़ा किया जाता था। इन झंडों की लंबाई, चौड़ाई आदि के भी निर्धारित मान थे। ध्वजवाहक का पद भी बड़ा सम्मानपूर्ण था और उसकी नियुक्ति भी महत्वपूर्ण दायित्व की थी।

इनके अतिरिक्त गाइडन, ग्रानफैलेन, पैनोकल तथा पेंडेंट नामक गौण झंडे भी थे। अश्व नायक के झंडे 'गाइडन' का उड्डीय भाग फाँकदार तथा कोने काटकर गोल बनाए होते थे। ग्रानफैलेन सेनापति के पद की स्थिति का सूचक होने के कारण युद्धभूमि में उसके निकट ही रखा जाता था। यह ध्वजदंड से जुड़ा न होकर कैंचीनुमा लटका होता था। इसका निचला भाग दाँतेदार कटा होता था। मध्यकालीन इटली में इसका अत्यधिक प्रचलन था। पैनोकेल, पैनन से कम लंबा ऐस्क्वायरों द्वारा धारित झंडे की संज्ञा थी। स्ट्रीमर अथवा पेंडेंट तिकोना लंबा पोतचिह्न था। कभी कभी इसका उड्डीय भाग फाँकदार कटा होता था।

युद्ध के समय सामंतों के अधीन सामान्य सैनिक भी स्वामी के प्रति वफादारी के द्योतक बिल्लों का प्रयोग करते थे। सामूहिक रूप में बिल्लों का प्रयोग १४ वीं तथा १५ वीं शताब्दी की विशेषता है। इंग्लैंड में रिचार्ड द्वितीय की घोषणा (सन् १३८५) के अनुसार प्रत्येक सैनिक के लिये आगे और पीछे दोनों ओर सेंट जार्ज के आर्म्स का चिह्न धारण करना अनिवार्य था। शेक्सपियर के नाटक हेनरी पंचम के चतुर्थ अंक के सप्तम दृश्य के वर्णन से प्रतीत होता है कि अगिन कोर्ट के युद्ध (२५ अक्टूबर, १४१५) में वेल्स सैनिकों ने लीक (प्याज के सदृश) के बिल्ले धारण किए थे। इंग्लैंड में १५वीं शताब्दी के राजकुल संबंधी युद्धों में यार्कवंशियों ने श्वेत गुलाब तथा लैंकास्टर वासियों ने रक्त गुलाब के बिल्लों का प्रयोग किया था जिसके कारण ये युद्ध 'वार ऑव रोज़ेज़' के नाम से ही इतिहास-प्रसिद्ध हुए। कभी कभी परस्पर गुँथी हुई डोरियों द्वारा निर्मित ग्रंथिचिह्न भी बिल्लों के लिये प्रदर्शित किया जाता था, यद्यपि ऐसे बिल्लों की संख्या थोड़ी ही थी।

अपने सहयोगियों द्वारा प्रयुक्त बिल्ले से भिन्न निजी बिल्ला सेनानायक अपने शिरस्त्राण पर कलँगी रूप में भी प्रदर्शित करते थे। प्रारंभ में शिखरचिह्न शिरस्त्राण पर चित्रित होता था परंतु पीछे से उसे उभरी हुई प्रतिमा का रूप दे दिया गया। कभी कभी पक्षियों के पंखों का बना तुर्रा भी शिखरचिह्न का काम देता था। १६ वीं शताब्दी के पश्चात् शिखरचिह्न समतल पर ही चिह्नित किए जाने लगे।

१६ वीं शताब्दी में नए नए ढंग के कवचों और शिरस्त्राणों का निर्माण होने, १७वीं शताब्दी में आग्नेयास्त्रों के अधिक उपयोगी होने तथा सामंती सेनाओं के स्थान पर स्थायी भृत्य सेनाओं की अधिक उपयोगिता सिद्ध होने के कारण मध्यकालीन सैनिक अभिचिह्नों की उपयोगिता नष्ट होती गई। १६ वीं और १७ वीं शताब्दियों के अभिचिह्नों विशेषज्ञों का प्रधान कार्य अपने अभिलेखों की विवरणपूर्ति तथा नियतकालिक परिभ्रमण द्वारा वंशावलियाँ तैयार करना था। मध्य कालिक अभिचिह्न अब सैनिक न रहकर केवल अतीत के गौरवाभिमान के प्रतीक, भूस्वामियों के घरों तथा पैतृक स्मारकों के सौंदर्य उपकरण मात्र थे। परंतु सैनिक अभिचिह्नों

कुछ वर्गों पर भी इसके कुछ अंश लागू होते हैं। ऐसे नागरिक हैं : सक्रिय सेवा के शिविर अनुचर, युद्ध सवाददाता इत्यादि।

मार्शल ला — मार्शल ला और सैनिक कानून एक नहीं हैं। मार्शल ला का आशय है सामान्य कानून का स्थगन कर देश के अनुशासन (या उसके कुछ अंश) को सैनिक अधिकरण को सौंप देना। इसका नवीन उदाहरण पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब खाँ द्वारा पाकिस्तान के अनुशासन को यहिया खाँ को सौंपकर मार्शल ला लागू करना। ऐसा ही मार्शल ला पंजाब के राज्यपाल सर माइकेल ओडायर ने सन् १९१९ ई० में अमृतसर में लागू किया था जब जलियाँवाला बाग की नरहत्यावाली घटना हुई थी। मार्शल ला का आशय उस कानून से भी है जो विजयी कमांडर किसी विदेश को अधिकार में करके उस देश या देश के किसी भाग पर लागू करता है।

इतिहास — भारत मे सैनिक कानून का इतिहास बहुत प्राचीन है। सेना में अनुशासन रखने के सबंध की सूचनाएँ बहुत कम प्राप्य हैं। इस उद्देश्य के लिये हमारे स्मृतिकारो ने कुछ सहिताएँ बनाई थी, इसमें कोई सदेह नहीं है। महाभारत के शांतिपर्व और अर्थशास्त्र, जो ईसा के पूर्व लिखे ग्रंथ हैं, मे कुछ ऐसी उक्तियाँ मिलती हैं जो सैनिक कानून की परिभाषा के अतर्गत आती हैं। उदाहरणस्वरूप शांतिपर्व में ऐसा नियम दिया हुआ है कि सेना के भगोडे को मार डाला या जला भी दिया जा सकता है। अर्थशास्त्र में प्रधान सेनापति को ऐसा आदेश है कि युद्ध या शांति में सेना के अनुशासन पर विशेष ध्यान दे। इसी प्रकार 'शुक्रनीति' और 'नीतिप्रकाशिका', जो बहुत पीछे के लिखे ग्रंथ हैं, मे सैनिक कानून के कुछ नियम दिए हैं। 'शुक्रनीति' में ऐसा आदेश दिया हुआ है कि हथियारो और वर्दी को बराबर स्वच्छ रखना चाहिए, ताकि उनका उपयोग तत्काल किया जा सके, सैनिकों को शत्रु के जवानो से बधुत्वभाव नहीं रहने देना चाहिए। अवसा, विश्वासघात, युद्धक्षेत्र से भाग जाने, गुप्त सूचनाओ के भेद खोल देने पर तत्काल जो दड देना चाहिए उसका उल्लेख 'नीतिप्रकाशिका' में है। पाश्चात्य देशों में ऐसे नियम बहुत बाद में बने। सबसे पहली सैनिक पुस्तिका दूसरी शताब्दी की बनी समझी जाती है जिसके कुछ अंश शाहशाह जस्टिनियन (Emperor Justinion) द्वारा उनके डाइजेस्ट में दिए हुए हैं। अन्य पाश्चात्य देशो में तो ऐसे नियम और बाद में बने, तब इनका नाम 'सैन्य नियम' (Articles of War) पड़ा था। ऐसे सैन्य नियम इंगलैंड मे किंग रिचार्ड द्वितीय द्वारा १४वीं शताब्दी में बनाए गए थे। संयुक्त राज्य अमरीका में १७७५ ई० में सैन्य नियम बने। आधुनिक काल मे सभी सुविकसित राज्यो में सैनिक कानून की सहिताएँ बनी हैं। ये अशत. देश के रस्म रिवाजों पर आधारित हैं पर अधिकाशत विधानमडलो द्वारा अधिनियम (enactments) से बने हैं। भिन्न भिन्न देशो में ये भिन्न भिन्न नामों से जाने जाते हैं। भारत, ग्रेट ब्रिटेन और राष्ट्रमडल के कुछ अन्य देशों में ये आर्मी ऐक्ट (Army Act), सयुक्त राज्य अमरीका में युनिफार्म कोड ऑव मिलिटरी जस्टिस (Uniform Code of Military Justice), रूस में डिसिप्लिनरी कोड ऑव दि सोवियेट आर्मी (Desciplinary Code of the Soviet Army) कहे जाते हैं। भारत में भी कुछ अन्य देशों की तरह जज, ऐडवोकेट जेनरल सैनिक कानून की एक पुस्तिका (Manual) प्रकाशित करते हैं जिसमें सभी अधिनियम और सैनिक कानून के प्रशासन के क्रम (procedure) दिए रहते हैं। इसी विभाग पर मार्शल ला अदालत की कार्यप्रणाली का दायित्व रहता है।

भारत में आधुनिक सैनिक कानून — ब्रिटेनवालों ने गत लगभग ३०० वर्षों में भारत मे स्थित अपनी सेना के नियत्रण के लिये जो नियम बनाए थे, उन्हीं पर भारत का आधुनिक सैनिक कानून आधारित है। १७वीं शताब्दी के प्रथम अर्धकाल में व्यापार के लिये अंग्रेजी ईस्ट इडिया कम्पनी ने जो कारखाने स्थापित किए उन कारखानो के संरक्षण और अपने प्रधान अधिकारियो के गौरव के लिये रक्षकों को नियुक्त किया। बाद में इन रक्षको के सगठन में सुधार हुआ और उसके फलस्वरूप देशी और यूरोपीय सेनाओ का प्रादुर्भाव हुआ। सेनाओ की सख्या क्रमश: बढती गई और अनुशासन स्थापित रखने के लिये समय समय पर कानून बनाने की आवश्यकता पडी। ये कानून 'युद्ध के नियम' (Articles of War) कहलाए। भारत मे तत्कालीन कपनी के तीन अलग प्रशासनिक भाग बबई, मद्रास और कलकत्ता थे जिन्हें 'प्रेसिडेन्सी' कहते थे। प्रत्येक प्रेसिडेंसी की अपनी सेनाएँ थीं और १८१३ ई० से उन्हें युद्ध के नियम बनाने के अपने अपने अधिकार थे। अत: तीन अलग अलग सहिताएँ बनीं जो प्रत्येक प्रेसिडेंसी की विशिष्ट परिस्थितियो के कारण एक दूसरे से भिन्न थी। १८३३ ई० में ब्रिटिश ससद ने शासपत्रित अधिनियम (Charter Act) बनाया जिसके अनुसार ब्रिटिश भारत में कानून बनाने का अधिकार कलकत्ते के केवल गवर्नर जेनरल इन कौंसिल (Governor General in Council) के हाथ में रहा पर प्रेसिडेंसियो की अपनी अलग अलग सेनाएँ थीं। १८९५ ई० में तीनों प्रेसिडेन्सी सेनाएँ मिलकर एक हो गईं और तब भारतीय युद्ध के नियमों में पर्याप्त सुधार करने की आवश्यकता पडी। फिर १९११ ई० में एक बिल का मसौदा बना जिसमें तब तक भारतीय सेना संबंधी बने सब कानूनो को मिलकर एक सरल और व्यापक अधिनियम बना। १९११ ई० के मार्च में ये अधिनियम कानून बन गए और उसका नाम 'भारतीय सेना अधिनियम' (Indian Army Act) पडा और १९१२ ई० के जनवरी से यह लागू हो गया। इस विषय से सबधित पहले के सभी अधिनियम निरस्त (repeal) हो गए।

१९१४–१८ ई० के विश्वयुद्ध में सैनिकों के कुछ दंडों को निलबित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इनका निलबन इतना उपयोगी सिद्ध हुआ कि युद्ध के बाद १९२० ई० में एक दूसरा अधिनियम, जिसे सेना दड निलबन अधिनियम कहते हैं, पारित हुआ। उस समय से लेकर ३० वर्षों तक दोनों अधिनियम और उनके अतर्गत बने नियम, भारतीय सैनिक कानून की सहिता बने रहे। भारत के स्वतंत्र हो जाने के बाद, कुछ अल्प सुधारों के साथ उन्हीं कानूनों को एक व्यापक अधिनियम में समाविष्ट कर १९५० ई० का सैनिक अधिनियम बनाया गया जो अब भारतीय सेना की सैनिक सहिता है। नौसेना और वायुसेना के अलग अलग अधिनियम हैं। इनके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट अधिनियम भी हैं जो उन अधिनियमो के अंतर्गत बनी सेनाओं पर लागू होते हैं, जैसे टेरिटोरियल आर्मी

धारण किए जाते हैं। मेडल स्वर्ण, रजत, ताम्र और गनमेटल आदि अनेक धातुओं के बने होते हैं। इनके मुख और पृष्ठ दो भाग होते हैं।

प्रथम महायुद्ध मे सैनिक यानो की विरचना अभिज्ञप्तिलेखो के स्थान पर चिह्नो द्वारा सुरक्षा की दृष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध हुई। अतएव तभी से सैनिक यानो को भी अधिक चिह्नित किया जाने लगा। यह अभिचिह्न प्रत्येक विरचना के अधीन यानों पर चिह्नित होता है। सैनिक जलयानो तथा वायुसेना का भी विशेष बैज अथवा बिल्ला होता है जिसे क्रेस्ट (शिखरचिह्न) भी कहते हैं। ये क्रेस्ट वर्तुलाकार होते हैं। इनकी पृष्ठभूमि श्वेत अथवा वर्णित कैसी भी हो सकती है। इसपर बनी आकृतियाँ यानो के पूर्व इतिहास, श्लाघनीय कृत्यों अथवा प्रकार्यों से संबंधित होती हैं। क्रेस्ट के नीचे आदर्शवाक्य भी उल्लिखित रहता है। जलसेना मे जहाजो के अतिरिक्त तटसस्थानो, नौसैनिक प्रशिक्षणकेंद्रो आदि को तथा वायुसेना मे स्क्वाड्रनो के अतिरिक्त कमाडो, ग्रुपो, स्टेशनो तथा प्रशिक्षण केंद्रो आदि को भी इसी प्रकार के बिल्ले प्रदत्त होते हैं। परतु उनपर आदर्श वाक्यो का उल्लेख अनिवार्य नही है।

सैनिक अभिचिह्नो के इस सामान्य एवं सक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि इनकी आवश्यकता सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक रही है। देश काल की परिस्थितियो तथा सैनिक आवश्यकताओ के अनुकूल इनमे समय समय पर सशोधन, परिवर्तन तथा अधिकरव भी अवश्य होते रहते हैं। आधुनिक युग में ज्यो ज्यो सैन्यविज्ञान मे वृद्धि हो रही है त्यो त्यो इन अभिचिह्नो की बहुलता भी उत्तरोत्तर बढ रही है। आणविक युद्ध की परिस्थिति में सैनिक अभिचिह्नो के स्वरूप में किन किन परिवर्तनो की संभावना हो सकती है, कहना कठिन है परतु अभिचिह्नो की आवश्यकता किसी न किसी रूप में अवश्य ही विद्यमान रहेगी। [ब्र० ना० श०]

सैनिक कानून (Military Law) प्रत्येक राष्ट्र या समाज के कुछ ऐसे नियम होते हैं जिनका राष्ट्र या समाज के प्रत्येक व्यक्ति को पालन करना पडता है। ऐसे नियमो को दीवानी कानून या केवल कानून कहते हैं। ये कानून राष्ट्र या समाज की स्थापित परपरा तथा रीतिरिवाज पर आधारित होते हैं या कानून बनानेवाले किसी विधानमंडल द्वारा बनाए गए होते हैं।

ऐसे कानून सब व्यक्तियो पर, चाहे वे सामान्य नागरिक हों या सैनिक, लागू होते हैं। इन कानूनो के अतिरिक्त कुछ ऐसे कानूनो की भी आवश्यकता अनुभव की गई है जिन्हे सैनिक कानून कहते हैं और ये सैनिक अदालतो द्वारा प्रशासित किए जाते हैं। इसके अतर्गत वे अपराध आते हैं जो सैनिको और सैनिक अधिकारियो द्वारा किए जाते हैं। इस सबंध मे दो बातें स्मरण रखने की हैं, पहली बात यह है कि ये कानून उन्ही अधिकारियो द्वारा पारित होते हैं। कुछ सैनिक कानून अतरराष्ट्रीय कानून पर भी आधारित होते हैं, जैसे युद्धविराम पर सफेद झंडा दिखलाना, रेडक्रास के साथ अथवा युद्धबंदी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए इत्यादि इत्यादि। दूसरी बात यह है कि सेना में (सैनिक या अधिकारी के रूप में) भर्ती होने पर कोई मनुष्य नागरिकता से वचित नही हो जाता। देश के सामान्य कानून उसपर भी समान रूप से लागू होते हैं, जब तक सामान्य कानून से उसकी मुक्ति विशेष रूप या कारणों से न कर दी गई हो। अतः सैनिको पर सामान्य कानून के साथ साथ सैनिक कानून भी लागू होते हैं, जो सामान्य नागरिकों पर लागू नहीं होते। डिसी (Dicey) का कहना है, सैनिक पर सामान्य नागरिक दायित्व के ऊपर सैनिक दायित्व भी आधारित होता है। अत उसपर सैनिक कानून के साथ साथ दीवानी कानून भी लागू होता है। पर सैनिक के रूप में उसे कुछ सुविधाएँ प्राप्त हैं। जैसे ऋण के लिये उसकी गिरफ्तारी नहीं हो सकती, अस्त्र शस्त्र रखने की कुछ छूट होती है। दीवानी अधिकारियो द्वारा कुर्की (attachment) नही हो सकती इत्यादि। पर साथ ही नागरिकता के उसके कुछ अधिकार छिन जाते हैं, जैसे विधानसभा या नगरपालिका के चुनाव मे वह खडा नही हो सकता और किसी श्रमिक संघ को नही बना सकता इत्यादि।

सैनिक कानून का प्रयोजन — सैनिको के लिये कई कारणो से विशिष्ट कानून की आवश्यकता पड़ी है। इनमे कुछ इस प्रकार हैं — (१) बहुत से ऐसे कार्य हैं जो सामान्य नागरिक द्वारा किए जाने पर अपराध नही समझे जाते अथवा बहुत सामान्य अपराध समझे जाते हैं, पर सैनिको द्वारा किए जाने पर वे गंभीर अपराध होते हैं। ऐसे कार्य हैं, संतरी का चौकी पर सो जाना, घोडो के प्रति क्रूर व्यवहार करना, हथियार लेकर शराब के नशे मे होना, विद्रोह करना आदि। ये युद्ध सैनिक अपराध हैं। इनका दंड निर्धारित करने के लिये विशिष्ट सहिता की आवश्यकता पडती है। (२) दीवानी अदालतो का काम युद्ध संबधी आवश्यकताओ के लिये बहुधा बडा मंद होता है (३) कभी कभी, जब दीवानी अदालत निकट नहीं है तब युद्ध संबंधी अपराधो के लिये संक्षिप्त विचार कर तत्काल दंड देने की आवश्यकता पड़ती है।

परिभाषा — सामान्य नागरिक पर जो कानून लागू होते हैं, सैनिक कानून उनसे भिन्न होते हैं। सैनिक कानून में विशिष्ट सहिताएँ होती हैं जो ऐसे सैनिक अपराधो मे निपटने के लिये बनी होती हैं जिनका दीवानी कानून मे कोई स्थान नही होता, अथवा जिनके अपराधियो का दीवानी अधिकारियो के हाथ में सौंपना वाछनीय नही होता। सैनिक अधिकारी ऐसे अपराधों को अविलंब निर्णीत कर सकते हैं अथवा कोर्ट मार्शल (सैनिक अदालत) में विचारार्थ भेज सकते हैं, पर उनकी कार्यविधियाँ सदा ही सेना अधिनियम (Army Act) और उसके अतर्गत बने नियमो (Rules) के निर्देशन के अनुकूल ही होनी चाहिए। सैनिक कानून सेना सबंधी कुछ प्रशासनिक बातो पर भी विचार करता है पर व्यवहार में सामान्यत. केवल अनुशासनिक काररवाई से ही संबंध रखता है।

कानून का लागू होना — शातिकाल और युद्धकाल मे देश मे या देश से बाहर सशस्त्र सैनिको के सभी सदस्यो पर सभी समय यह कानून लागू होता है। कुछ विशिष्ट अवसरो पर सामान्य नागरिको के

सजाएँ एक साथ दी जा सकती हैं, जैसे पद से गिरा देना और अर्थदंड, बर्खास्तगी तथा कारावास, दोनो ही एक ही अपराध के लिये दिए जा सकते हैं। सेना से हटा देना भारत और ब्रिटेन में प्रचलित है पर सयुक्त राज्य अमरीका और अन्य अनेक देशों में नही है। यह केवल अधिकारियो पर लागू होता है। जिसको यह सजा दी जाती है वह सरकार में किसी भी काम के लिये कोई दूसरी नौकरी पाने के लिये अयोग्य होता है। बरखास्तगी सभी कोटि के व्यक्तियो पर लागू होती है। इसमे लाछन अतर्निहित है। पर बर्खास्त व्यक्ति बर्खास्त करनेवाले अधिकारी की अनुज्ञा से पुन नियुक्त हो सकता है। कानून में महत्तम सजा, जो दी जा सकती है, दी रहती है पर अदालत उसे महत्तम या उससे कम, जैसा वह उचित समझे, दे सकती है। ब्रिटिश सैनिक कानून में इस नियम के दो अपवाद हैं — १. यदि किसी अधिकारी को अपकर्षक (Scandalous) आचरण के लिये सजा दी गई है तो उसे सेना से हट जाना अनिवार्य है। २. यदि उसे हत्या के लिये दोषी पाया गया है तो उसे मृत्युदड अवश्य मिलना चाहिए। इसके लिये कोई दूसरा वैकल्पिक दड नहीं है। मृत्यु पाए व्यक्ति को फाँसी पर लटका दिया जाता है अथवा गोली मार दी जाती है, जैसा अदालत का निर्देश हो।

सैनिक न्यायालय (Court Martial) — भारत में सैनिक न्यायालय चार प्रकार के, ग्रेट ब्रिटेन और सयुक्त राज्य अमरीका में तीन प्रकार के और फ्रांस में केवल एक प्रकार के होते हैं। भारत के न्यायालय हैं : (१) समरी (Summary) सैनिक न्यायालय, (२) समरी सामान्य सैनिक न्यायालय, (३) जिला सैनिक न्यायालय तथा (४) सामान्य सैनिक न्यायालय। किसी व्यक्ति को सैनिक न्यायालय में विचारार्थ आने के पहले उसकी पूरी छानबीन कर ली जाती है।

समरी सैनिक न्यायालय — किसी यूनिट या टुकडी का कमान अधिकारी, यदि वह राजादिष्ट अधिकारी है तो, न्यायालय में बैठ सकता है। वह अकेले न्यायालय बनता है पर दो अन्य अधिकारी कार्यक्रम में अवश्य उपस्थित रहते हैं। यह न्यायालय कारावास का दड, जो एक वर्ष से अधिक न हो और अन्य सजाएँ, मृत्यु या निर्वासन को छोड़कर, दे सकता है। सजा की सपुष्टि की आवश्यकता नही पडती और तत्काल कार्यान्वित की जा सकती है, सिवाय उस दशा में जब अन्यायपूर्ण या अवैध होने के कारण केंद्रीय सरकार के प्रधान सैनिक स्टाफ द्वारा रद्द न कर दिया जाय।

समरी सामान्य सैनिक न्यायालय — इस न्यायालय में कम से कम तीन अधिकारी रहते हैं। वरिष्ठ अधिकारी अध्यक्ष होता है। यह न्यायालय सेना भारतीय अधिनियम के अतर्गत आनेवाले किसी भी व्यक्ति का विचार कर सकता है और मृत्यु या इससे छोटा दड दे सकता है। ऐसा न्यायालय सामान्यत सक्रिय सेवा परिस्थितियों में, जब सामान्य सैनिक न्यायालय बुलाना व्यवहार्य नही होता, बैठता है।

जिला सैनिक न्यायालय — इसमें तीन अधिकारी (पेचीदे मुकदमो मे जाँच) रहते हैं और इसका अधिकारक्षेत्र उन सभी व्यक्तियो पर होता है जो सैनिक अधिनियम में आते हैं, अधिकारी, अवर कमीशन अधिकारी या नागरिक अधिकारी इसके अपवाद हैं। यह कारावास, जो दो वर्ष से अधिक न हो, या अन्य छोटी छोटी सजाएँ (अर्थदड इत्यादि) दे सकता है। मृत्यु या निर्वासन का दड यह नही दे सकता।

सामान्य मार्शल न्यायालय — मे कम से कम पाँच (कठिन मुकदमों मे सात तक) अधिकारी रहते हैं। इसका अधिकारक्षेत्र उन सभी व्यक्तियो पर होता है जो सैनिक अधिनियम के अंतर्गत आते हैं और अधिनियम में दिए गए दडो को वह दे सकता है। यह सर्वोच्च मार्शल न्यायालय है। इन सभी न्यायालयो के लिये अधिनियम और नियमों मे विस्तृत अनुदेश और न्यायालय के बुलाने, न्यायालय के बैठाने, सदस्यो की योग्यता, सजा की सपुष्टि या रद्द करने, गवाहों और उनकी पृच्छा, अभियुक्त के बचाव करने के लिये ऐडवोकेटों या वकीलो की नियुक्ति और अन्य सबद्ध कार्यों की सविस्तर क्रियाविधि दी हुई है।

इस सबध मे निम्नलिखित कुछ सामान्य बातो का उल्लेख किया जा रहा है : १. प्रमाण और कानून की व्यवस्था के निर्वचन के सबध मे वे ही नियम लागू होते हैं जो सामान्य दीवानी या फौजदारी अदालतों मे लागू होते हैं। २ मार्शल न्यायालय का कोई भी सदस्य अभियुक्त के पद से नीचे के पद का नहीं हो सकता। ३. प्रत्येक सामान्य मार्शल न्यायालय मे एक न्यायाधिवक्ता (Judge Advocate) अवश्य रहना चाहिए जो न्यायालय को सलाह देने के लिये कानूनी असेसर (Assessor) का कार्य करता है और कानून के सबध में न्यायालय को परामर्श देता है तथा न्यायालय का प्रशासन अधिकारी होता है। न्यायाधिवक्ता महान्यायाधिवक्ता विभाग का सामान्यत कोई अधिकारी होता है। न्यायाधिवक्ता जिला मार्शल न्यायालय या समरी सामान्य मार्शल न्यायालय में भी उपस्थित रह सकता है।

अधिकारक्षेत्र — सभी व्यक्ति, जो सैनिक अधिनियम के अतर्गत आते हैं, असैनिक अपराधी के लिये देश के सामान्य दीवानी कानून के अतर्गत भी आते हैं। यदि वे भारतीय दडसहिता के विरुद्ध कोई अपराध करते हैं तो उनपर दडसहिता लागू होती है। यदि किसी अभियुक्त को किसी अपराध के लिये मार्शल न्यायालय से सजा मिली है या वह छोड दिया जाता है तो दीवानी अदालत उसका विचार कर सकती है, पर दड देने में दीवानी अदालत सैनिक न्यायालय में दी गई सजा को ध्यान में रख सकती है। यदि किसी अपराध के लिये दीवानी अदालत ने पहले विचार किया है तब फिर उसी अपराध के लिये सैनिक न्यायालय विचार नही कर सकता है। यदि कोई अपराध ऐसा है जिसका विचार दीवानी, फौजदारी अदालत या मार्शल अदालत दोनो मे हो सकता है तो सैनिक अधिकारी निर्णय कर सकते हैं कि नैतिकता और सैनिक सुरक्षा के विचार से उस अपराध पर वे स्वय ही विचार करें अथवा नही। पर जब कोई व्यक्ति सामान्य फौजदारी कानून का गभीर अपराध (बलात्कार, हत्या आदि) करता है तब सैनिक अधिकारी को अपराधी का विचार करने के लिये उसे दीवानी अदालत को सौंप देना चाहिए। यदि कोई अपराध दीवानी या फौजदारी अदालत के क्षेत्राधिकार के अदर आता है और अदालत यह समझती है कि अपराध का विचार उसी के द्वारा

ऐक्ट (प्रदेशिका सेना अधिनियम), राष्ट्रीय केडेट कोर (National Cadet Corps) इत्यादि।

यद्यपि भारत का आधुनिक सैनिक कानून प्रधानतया ब्रिटिश सैनिक कानून पर आधारित है और भारतीय परिस्थिति के अनुकूल बनाने के लिये उसमें कुछ सुधार किए गए हैं पर दोनो में एक मौलिक अतर है। ब्रिटेन के सैनिक अधिनियम का प्रति वर्ष संसद द्वारा नवीकरण होता रहता था पर भारत का सैनिक अधिनियम बिना वार्षिक नवीकरण के स्थायी रूप से लागू रहता है। आवश्यकता होने पर समय समय पर उसमें संशोधन होते रहते हैं। ब्रिटेन में भी १९५५ ई० में कानून मे सविधानी परिवर्तन हुए जिससे वार्षिक नवीकरण हटा दिया गया।

भारत का आधुनिक सैनिक कानून — जब कोई व्यक्ति सेना मे भर्ती होता है, तब उसे एक नामाकनपत्र पर हस्ताक्षर करना होता है, जिसपर सेना में भर्ती होने की शर्तें दी हुई रहती हैं। हस्ताक्षर करने का तात्पर्य यह होता है कि वह उन शर्तों का पालन करने की अपनी स्वीकृति देता है। नामांकन के पश्चात्, उसे परिवीक्षाकाल पूरा करना पडता है और तब वह सेवा के लिये योग्य हो जाता है। फिर उसे सैनिक निष्ठा (वफादारी) की शपथ लेनी पडती है। इसे 'साक्ष्यांकन' (attestation) कहते हैं। किसी व्यक्ति के नामाकन और साक्ष्यांकन हो जाने पर वह सैनिक का पूरा पद (rank) प्राप्त कर लेता है और तब स्थायी रूप से सैनिक कानून के अधीन आ जाता है, सिवाय उस दशा में जब वह व्यक्ति सेना से हटा दिया गया है अथवा बर्खास्त कर दिया गया है। अधिकारियो अथवा अवर राजाधिष्ठ अधिकारियो (Junior Commissioned officers) का नामाकन नही होता, उनका कमीशन होता है। जिन व्यक्तियो का नामाकन या साक्ष्याकन नही होता पर वे सेना के साथ सक्रिय सेवा में अथवा शिविर मे सेना के किसी अंश के साथ या मार्च पर या किसी सीमात पद (frontier post) पर रहते हैं उनपर भी सैनिक कानून स्थायी रूप से लागू होता है।

सैनिक कानून प्रशासन — सैनिक कानून सामान्यतः मार्शल अदालत द्वारा प्रशासित होता है परंतु कुछ परिस्थितियों मे यूनिट के कमान अधिकारी द्वारा भी प्रशासित होता है। सब देशो में छोटे छोटे अपराधों के लिये मार्शल अदालत की शरण न लेकर कमान अधिकारियो द्वारा ही दंड दे दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप ब्रिटेन में यदि कोई सैनिक शराब के नशे मे पाया जाय तो बिना मार्शल अदालत में गए ही उसके वरिष्ठ अधिकारी उसे अर्थदंड दे सकते हैं। उसी प्रकार भारत में भी छोटे छोटे अपराधो के लिये कमान अधिकारी तत्काल दंड, जैसे लाइन में हाजिर रहना, कैंप मे रोक रखना, फटकारना, कुछ निश्चित काल के लिये वेतन रोक रखना, या जब्त कर लेना आदि, दे सकते हैं।

अपराध — सैनिकों द्वारा किए गए अपराध दो प्रकार के, दीवानी या सैनिक, होते हैं। सैनिक अपराधो पर मार्शल अदालतो अथवा सक्रिय सेवा की यूनिटों के कमान अधिकारियो द्वारा विचार किया जाता है। भारत के बाहर अथवा सक्रिय सेवा में लगे सैनिको के दीवानी अपराधों पर भी मार्शल अदालतो द्वारा विचार किए जाते हैं। शांतिकाल में भी यदि सैनिक ने दीवानी अपराध किया हो तो उसका भी विचार मार्शल अदालत मे हो सकता है। भारत में किए गए ऐसे लोगो के प्रति जिनपर सैनिक कानून लागू नही होता, असैनिक अपराधों का सैनिक अदालत मे विचार नही होता। उन्हें विचारार्थ दीवानी अदालत मे भेज दिया जाता है। दीवानी अपराधों के लिये भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code) मे दी गई सजाएँ लागू होती हैं। दीवानी अपराधों का आशय यहाँ उन अपराधो से है जिनके लिये सैनिक अधिनियम में कोई व्यवस्था नही है।

सैनिक अपराध दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं, एक वे जिनमें मृत्यु या इससे कम दंड की व्यवस्था है, दूसरे वे जिनमे मृत्युदंड नही दिया जा सकता है। इन अपराधो के कुछ दृष्टांत इस प्रकार हैं . (१) किसी सैनिक को मृत्युदंड दिया जा सकता है, यदि वह गैरिसन या पद से निर्लज्जता से हट जाता है, हथियारो को निर्लज्जता से त्याग देता है, शत्रु के साथ संबंध स्थापित करता है अथवा शत्रु को सूचना प्रदान करता है। अनधिकृत व्यक्ति को सकेत बता देता है या शत्रु को आश्रय या सरक्षण देता है इत्यादि।

निम्नलिखित अपराधो के लिये भी मृत्युदंड दिया जा सकता है, चाहे वह सक्रिय सेवा मे रहे अथवा नही — विद्रोह (एक व्यक्ति विद्रोह नही कर सकता, कम से कम दो व्यक्ति का विद्रोह के लिये होना आवश्यक है), अवज्ञा (insubordination), किसी वरिष्ठ अधिकारी को मारना, वरिष्ठ अधिकारी की आज्ञा का उल्लंघन करना, विद्रोह को जानते हुए वरिष्ठ अधिकारी को तत्काल उसकी सूचना न देना, सेना को छोडकर भाग जाना और हिरासत में रखे व्यक्ति को बिना अधिकार छोड़ देना इत्यादि। (२) मृत्यु से कम दंड उस व्यक्ति को दिया जाता है जो शांतिकाल में संतरी को मारे, संतरी के मना करने पर भी किसी स्थान में बलात् घुस जाय, झूठे ही सकट की घंटी बजाए, संतरी होने पर अपने अधिकार में रखे पदार्थों को लूटे, अपनी चौकी पर सो जाय, अपने वरिष्ठ अधिकारियो की अवज्ञा करे अथवा उनके प्रति धृष्टता का व्यवहार करे, भगोड़े को आश्रय दे, चोरी का दोषी हो, अपने को चोट पहुँचाए ताकि वह सेवा के अयोग्य हो जाय, क्रूरता (जैसे घोड़े के प्रति) प्रदर्शित करे, नशे मे हो, आकर्षण (Extortion) करे इत्यादि।

कुछ अन्य सैनिक अपराध, जिनमें मृत्युदंड नही दिया जाता, ये हैं — अपने पद के लिये अशोभन रीति से व्यवहार करना, अपने अधीनस्थ कर्मचारियो के साथ बुरा व्यवहार करना, किसी व्यक्ति की धर्मभावना पर आघात करना, आत्महत्या का प्रयत्न करना, इत्यादि। (अपराधो की पूरी सूची के लिये सैनिक अधिनियम देखें)।

दंड — सैनिक कानून के अंतर्गत जो दंड दिया जा सकता है उनमें कुछ इस प्रकार हैं : मृत्यु, निर्वासन (transportation) कारावास (सामान्य या कठोर), सेना से हटा देना, बर्खास्तगी, अर्थदंड, फटकार इत्यादि क्रूर तथा असामान्य दंड, जैसे कोड़े मारना, सभी सभ्य देशो के सैनिक कानून में वर्जित है, भिन्न भिन्न

अस्थायी सैनिक प्रकाशन, सैनिकों के लेख तथा भूगोल सबधी पुस्तकें हैं। यह सूचना प्राय उस देश के विश्वसनीय कार्यकर्ताओं, जो विदेशो में रहते हैं, द्वारा प्राप्त की जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ गुप्त सूचनाएँ दूसरे देशों के कर्मचारियो को घूस आदि देकर भी प्राप्त की जा सकती हैं।

युद्धकाल में गुप्तचर विभाग के कुछ कर्मचारी शत्रु के बड़े बड़े नगरो में जाकर भी पर्याप्त सूचना प्राप्त कर सकते हैं। वायुयान द्वारा लिए गए चित्र शत्रु की गतिविधि के विषय में काफी जानकारी देते हैं। इन चित्रों की सहायता से किसी भी बदरगाह के अच्छे या बुरे होने का ज्ञान हो सकता है। शत्रु के आकाशवाणी द्वारा भेजे गए गुप्त सदेश, शत्रु के समाचारपत्र तथा पत्रिकाओ से भी कई महत्वपूर्ण समाचार मिलते हैं। गुप्तचर विभाग के उच्चाधिकारी शत्रु के बदियो से प्रश्न पूछकर भी कई महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं।

सूचनाओं का प्रयोग — गुप्तचर विभाग द्वारा शांतिकाल में एकत्र सूचनाएँ, किसी भी देश की शत्रुशक्ति के अनुसार सुरक्षा कार्य तथा आक्रमण करने की योजना बनाने में सहायता देती है। युद्ध छिड जाने पर भी गुप्त सूचनाएँ अधिकारियो को शत्रु की चालों का और उसी के अनुसार सेनासचालन में सहायता देती है।

युद्धकालीन गुप्तचर्या — शांतिकालीन प्राप्त सूचनाएँ युद्ध छिड़ने पर युद्ध सबधी योजना का आधार बनती हैं। परतु युद्ध छिड जाने पर भी गुप्तचर विभाग को शत्रु की अकस्मात् खेली गई किसी भी नई चाल से सावधान रहना चाहिए तथा शत्रु की गतिविधि, उस देश की राजनीतिक अवस्था आदि की भी अवश्य सूचना प्राप्त करनी चाहिए। युद्धकाल में गुप्तचर विभाग के कार्यालय अधिकाशत. युद्धक्षेत्र के बाह्य भाग में होते हैं।

गुप्त सूचना के क्षेत्र तथा अभिप्राय — सूचनाप्राप्ति का अभिप्राय शत्रु की प्रत्येक योजना का ध्यान रखना तथा उसको पराजित करना है। क्योंकि शत्रु ही युद्ध में विजय प्राप्त करने में मुख्य रुकावट है, इसलिये प्राप्त सूचनाएँ शत्रु की क्षमता तथा गतिविधि से सबधित होनी चाहिए जिससे कमांडर को युद्ध में मुँह की न खानी पड़े। शत्रु की युद्धसबधी गतिविधि, जनसख्या, युद्ध सामग्री, बचाव के साधन, उत्साह, युद्ध स्थल के चित्र आदि की यथार्थ सूचनाएँ तथा उनकी समयानुकूल प्राप्ति बहुत महत्व रखती है। इन सूचनाओ का महत्व युद्ध में परिवर्तन के कारण अनुकूलत परिवर्तित हो जाता है।

शत्रु का युद्ध आदेश बड़ा महत्वपूर्ण है। इसमे शत्रु की सैन्य रचना, उसकी सख्या, गतिविधि, विभाजन, मानसिक भावना, लडने की योग्यता, सेना के अफसरों की विशेषताएँ और मृतक सिपाहियो की पूर्ति के साधन आदि का पता चलता है। सेना के भिन्न यूनिटों की पहचान ही गुप्तचर्या की मूल जड है। शत्रु के यातायात साधनों की असुविधा युद्धयोजना में परिवर्तन ला सकती है।

युद्धारभ में शत्रु की कला का ज्ञान शत्रु के शांतिकालीन प्रशिक्षण से लगाया जा सकता है। परतु युद्ध मे प्रयुक्त हथियार और युद्ध में जो परिवर्तन किए गए हों उनका अध्ययन आवश्यक है। कोई भी कमांडर अपनी योजनाएँ गुप्तचर विभाग द्वारा प्राप्त शत्रु की सूचनाओं के आधार पर ही कार्यान्वित करता है। इसीलिये शत्रु की प्रत्येक कार्यवाही को अत्यंत सावधानी से देखा जाना चाहिए।

युद्धबदियो, भगोडो और वहाँ के निवासियों, हाथ में आए कागजात तथा सामग्री की जाँच बडी सावधानी से की जाती है। विशेषत अस्थिर स्थिति मे यह जानकारी शत्रु की युद्ध सबधी सामग्री, हथियार और रसद आदि के विषय में पता लगाने के लिये की जाती है। भूमि की देखभाल का उद्देश्य शत्रु की टूटी फूटी भूमि की देखभाल करना है। शीघ्रगामी यत्रचालित यूनिटें और रिसाला का गुप्तचर विभाग दूरस्थ कार्य करते हैं, जब कि पैदल सेना आस पास घूमनेवाले दस्ते देती है जिनका कार्य अपने यत्र से ही शत्रु की गतिविध की देखभाल द्वारा स्थिरीकृत परिस्थितियो की सुव्यवस्था करना है। गुप्तचर्या के सुशिक्षित पर्यवेक्षको को, जिनको विशेष सामग्री दी गई हो, ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ से वे शत्रु की वास्तविक स्थिति को जान सकें। गुप्तचर विभाग का तोपखाना आवाज और चमक से ही शत्रु के तोपखाने पर चौकसी रखता है। सिगनल विभाग शत्रु के सचारसाधनों पर चौकसी रखता है।

हवाई प्रगति और फोटोग्राफी ने तो गुप्तचरकार्य मे क्रांति ही ला दी है। हवाई फोटोग्राफी ने शत्रु के बचाव की व्यवस्था, सचार, सप्लाई और हवाई बमबारी के विषय में सूचना प्राप्त करना सभव कर दिया है। हवाई गुप्तचर्या का यदि भूमि पर किए गए गुप्तचर्या से मेलजोल कर लिया जाय तो अधिक प्रभावशाली होता है।

चर विभाग युद्ध मे शत्रुदेश की पीछेवाली बातो की सूचना देता है, जिनमें रिजर्व सेना की स्थिति, जनशक्ति, पीछे की रक्षा, शत्रु की आतरिक दशा और सैनिक सामग्री प्राप्ति के साधन आदि समिलित हैं। चर विभाग का कार्य प्रत्येक सूचना को उचित और अनुचित ढग से प्राप्त करना है। युद्धकाल में गुप्तचर्या अति कठिन होती है। गुप्तचर को भावुक नही होना चाहिए। सफल गुप्तचर वही होता है जो शत्रुदेश मे अपनी उपस्थिति का अनुकूल अथवा कानूनी कारण बता सके।

गुप्तचर का प्रत्युत्तर — गुप्तचर के प्रत्युत्तर में वे सब कार्य समिलित हैं जो शत्रु के गुप्तचर्या को अव्यवहारीय सिद्ध कर दें। इन कार्यों में मुकाबिले की गुप्तचर्या, छल, कपट, रहस्य रखने का अनुशासन, सुरक्षा, रगो द्वारा छुपाव तथा बनवटी वा प्राकृतिक छुपाव, साईफर कोर्स द्वारा महत्व रखना, रेडियो तथा समाचारपत्रों की सेंसर व्यवस्था और शत्रु द्वारा सेना और बाकी जनता को प्रभावित करने के प्रपचो को नकारा करना आदि समिलित हैं। [मे० क०]

सैपोनिन और सैपोजेनिन सैपोनिन ($C_{32}H_{52}O_{17}$) नामक पदार्थ सैपोजेनिन एव शर्करा के सयोग से बने हुए ग्लाइकोसाइड होते हैं। ये विभिन्न प्रकार के पौधो से प्राप्त किए जाते हैं। इनकी विशेषता है कि पानी के साथ विलयन बनाने पर ये फेन (झाग) देते हैं। ऐलकोहली सल्फ्यूरिक अम्ल की उपस्थिति में फेरिक क्लोराइड के साथ हरा रंग देता है।

सैपोनिन दो प्रकार के होते हैं.

(१) ट्राइटरविनाइड सैपोनिन, (२) स्टेराइडाय सैपोनिन

पास भेज दिया जायगा
। के लिये कहे तब तक
, के यहाँ से आवश्यक
का निर्णय अंतिम होता
सेवा में लगे यदि किसी
ानी अधिकारी पकड़े तो
करेंगे पर ब्रिटेन मे ऐसा
चार करेंगे ।

। से कोई सजा दी जाती
सैनिक अदालत मे विचार
की सूचना उच्च सैनिक
को बरखास्त अथवा उसके

- आंतरिक कानून और
सैनिक अधिकारियों पर है
ा से वे ऐसा करते हैं। पर
ा के बाहर हो जाए और
ा अधिक व्यक्ति का गैर
तब वह किसी नागरिक
में सहायता ले सकता है।
अपराधियों को गिरफ्तार
अधिकार मे सैनिक हो।
करना सैनिको का सबसे
ों को करना पड़ता है।
क अधिकारी सैनिको का
ास अन्य कोई उपाय नहीं
उनके काम के संपादन में

क सहायता के लिये आदेश
चाहिए। ऐसा काम करते
कम से कम बल का उपयोग
को तितर बितर करने या
असंगत बल की आवश्यकता
हा ही, वह इतना कम रहना
ासकुल आवश्यक हो।

पड़े और निकट में कोई
या जा सके, तब सेना का
जमाव को तितर बितर
कारवाई कर सकता है।
। तो मजिस्ट्रेट के संपर्क में
ऐसा होने पर उसके आदेश
ले से पहले कमान अधिकारी
ा देना चाहिए कि वे बल्व
देना चाहिए कि यदि गोली
क द्वारा माँगी गई मदद के

संबद्ध अधिकारी को मदद करने के लिये अवर कोई मजिस्ट्रेट नहीं है तो स्वतःप्रेरणा से यदि वह कोई काम करता है तब वह उसके लिये दोषी नहीं समझा जाता बशर्ते उसने ऐसा काम सद्भाव से किया है और कम से कम बल का प्रयोग किया है। इसी प्रकार वैध आदेश के पालन मे यदि कोई अवर अधिकारी या सैनिक कोई कार्य करता है तो वह कोई अपराध नहीं समझा जाता। ऐसे कार्यों के लिये किसी फौजदारी अदालत में केंद्र सरकार की अनुमति के बिना अधिकारी या सैनिक के विरुद्ध कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

असैनिक अधिकारियों की सहायता के लिये यदि कोई अधिकारी सैनिक भेजता है तो उसे इसकी सूचना तत्काल जेनरल स्टाफ के प्रधान के पास, जब घटनास्थल से और सैनिक हटा लिए जाँय, तब भेज देनी चाहिए। उसमें उल्लेख करना चाहिए कि यदि गोली चली तो कितने हताहत हुए। गोली चलने पर जो उपद्रवी घायल हुए उनको तत्काल डाक्टरी या अन्य सहायता मिलनी चाहिए और आहतों को बिना सहायता के घटनास्थल पर नहीं छोड़ देना चाहिए।

जब मजिस्ट्रेट गोली चलाना बंद करने का आदेश दे तब गोली चलाना बंद हो जाना चाहिए। उसके बाद सैनिक कमांडर अपनी और अपने सैनिकों की सुरक्षा के लिये ही आत्मपरिरक्षा के अधिकार के अंतर्गत कार्य कर सकता है। [प्रा० ना० से०]

सैनिक गुप्तचर्या (Military Espionage) आधुनिक युद्ध का युक्तिपूर्ण संपादन तथा उसमें विजय प्राप्त करना जितना सैनिकों और हथियारों पर निर्भर है उतना ही गुप्तचर विभाग की सूचनाओं पर। जल, स्थल तथा वायुसेना का वह विभाग जो शत्रु की गतिविधियों की सूचना देता है, गुप्तचर विभाग कहलाता है। गुप्तचर विभाग को युद्ध के समय बहुत काम करना पड़ता है। उदाहरणतया द्वितीय महायुद्ध में अमरीका का गुप्तचर विभाग प्रति दिन २,५०,००० पत्र, फोटो, मानचित्र और अन्य संदेश प्राप्त किया करता था।

सैनिक गुप्तचर्या का कार्य दूसरे देशों की सूचनाएँ एकत्र करना, अनुवाद करना, उनको समझना तत्पश्चात् प्राप्त सूचना को वितरित करना है, यह सूचना युद्ध अथवा शांतिकाल में प्राप्त की जा सकती है। यद्यपि पुरातन काल से ही युद्ध में सैनिक गुप्तचर विभाग का मुख्य स्थान रहा है, परंतु सभ्यता के विकास के साथ ही गुप्तचर विभाग का क्षेत्र भी विकसित हो गया है तथा साधनों में भी नवीनता आ गई है।

सूचना के प्रकार — शत्रु की योग्यता तथा उनकी योजनाओं का सही अनुमान तभी लगाया जा सकता है जब हमें उनको रणशक्ति, फैलाव, अस्त्र शस्त्र, चालें, सैन्य शक्ति, स्वरक्षा कार्य, उस देश की भौगोलिक तथा राजनीतिक स्थिति, यातायात के साधन, हवाई अड्डे, तार, टेलीफोन, वायरलेस व्यवस्था, उत्पादन के साधन, औद्योगिक स्थिति तथा उनके नेताओं की विशेषताओं का ज्ञान हो।

सूचना प्राप्ति के साधन — शांतिकाल में शत्रु विषयक सूचनाप्राप्ति के मुख्य साधन उस देश के सरकारी प्रकाशन, व्यापार संबंधी पत्र पत्रिकाएँ, कलात्मक कार्य तथा उनके प्रकाशन, स्थायी तथा

ऑव दि रॉयल नैवी' नाम से ब्रिटिश नौसेना का इतिहास भी लिखा। दो वर्ष तक वह 'रॉयल सोसाइटी' का अध्यक्ष भी रहा।

परंतु पीप्स की ख्याति इन सरकारी पदो के कारण नही बल्कि उसकी उस अद्भुत 'डायरी' के कारण है जो अंग्रेजी साहित्य को उसकी महान् देन है। १ जनवरी, १६६० से प्रारंभ होकर यह दैनिकी ३१ मई, १६६९ तक चलती है, जब आँखें कमजोर हो जाने के कारण उसे इसको बंद करना पडा। इसमें राजदरबार, नौसेना तथा लंदन के तत्कालीन समाज का आँखों देखा हाल मिलने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्व तो है ही, परंतु निस्संकोच आत्माभिव्यंजन की दृष्टि से यह संभवत: अपने ढंग की अकेली अंग्रेजी रचना है। इसमें उसने अपनी मानवसुलभ चारित्रिक दुर्बलताओं को बडी ही सादगी और निर्ममता से चित्रित किया है। यह 'डायरी' एक प्रकार की सांकेतलिपि में लिखी गई थी। सर्वप्रथम १८२५ मे यह जॉन स्मिथ द्वारा सामान्य लिपि में परिवर्तित की गई तथा लॉर्ड ब्रेब्रुक के संपादकत्व में प्रकाशित हुई। [ज० वि० मि०]

सैयद अहमद खाँ, सर का जन्म १७ अक्टूबर, १८१७ ई० को देहली मे हुआ। उनके पूर्वज मुगल शाहशाहों के दरबार में उच्च पदो पर आरूढ रह चुके थे। उनकी शिक्षा पुराने ढंग के मुगल परंपरानुसार हुई। देहली के मुगल शासक की शोचनीय दशा देखकर वे ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा में प्रविष्ट हो गए और आगरा, देहली, बिजनौर, मुरादाबाद, गाजीपुर तथा अलीगढ में विभिन्न पदो पर आरूढ रहे। प्रारंभ से ही उनकी पुस्तकों की रचना में बडी रुचि थी और शीआ-सुन्नी-मतभेद संबंधी उन्होंने कई ग्रंथ लिखे। किंतु कुछ अंग्रेज विद्वानों के संपर्क के कारण उन्होंने यह मार्ग त्याग दिया और १८४५ ई० में आसारुस्सनादीद का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया जिसमें देहली के प्राचीन भवनो, शिलालेखों आदि का सविस्तर विवरण दिया। १८५७ ई० के संघर्ष के समय वे बिजनौर में थे। उन्होने वहाँ अंग्रेजो की सहायता की और शांति हो जाने के तुरंत बाद एक पुस्तक 'रिसाला अस्बाबे बगावते हिंद' लिखी जिसमें अंग्रेजों के प्रति हिंदुस्तानियो के क्रोध का बडा मार्मिक विश्लेषण किया। मुसलमानो की अंग्रेजो के प्रति निष्ठा के प्रमाण में उन्होंने कई पुस्तको की रचना की और मुसलमानो का ईसाइयों से घनिष्ठ संबंध स्थापित कराने के उद्देश्य से तबीनुल कलाम (बाइबिल की टीका) और रिसालये तआम अहले किताब की रचना की। खुत्बाते अहमदिया में सर विलियम म्योर की पुस्तक लाइफ़ ऑव मुहम्मद का उत्तर लिखा और कुरान की टीका सात भागों में की। अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि शिक्षा एवं सिद्धांत नेचर अथवा प्रकृति के नियमो के अनुकूल हैं और विज्ञान तथा आधुनिक दर्शनशास्त्र से इस्लामी नियमो का किसी प्रकार खंडन नही होता और उससे प्रत्येक युग तथा काल में मानव समाज का उपकार हो सकता है।

सर सैयद का सबसे बडा कारनामा शिक्षा का प्रसार है। सर्वप्रथम इन्होंने १८५९ ई० में मुरादाबाद में फारसी का मदरसा स्थापित कराया। १८६४ ई० में गाजीपुर में एक अंग्रेजी स्कूल खुलवाया। १८६३ ई० में गाजीपुर में यूरोप की भाषा से उर्दू में ग्रंथों के अनुवाद तथा यूरोप की वैज्ञानिक उन्नति पर वादविवाद कराने के उद्देश्य से गाजीपुर मे ही साइंटिफिक सोसाइटी की स्थापना कराई। सर सैयद के अलीगढ स्थानांतरित हो जाने के उपरांत शीघ्र ही सोसाइटी का कार्यालय भी वहाँ चला गया। इसी उद्देश्य से सर सैयद ने अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट नामक एक समाचारपत्र भी निकालना प्रारंभ किया। इसका स्तर समकालीन समाचारपत्रों में काफी ऊँचा समझा जाता था। वे एक उर्दू के विश्वविद्यालय की स्थापना भी करना चाहते थे। उच्च वर्ग के हिंदू मुसलमान दोनो ने खुले दिल से सर सैयद का साथ दिया किंतु वे हिंदुओ के उस मध्य वर्ग की आकांक्षाओं से परिचित न थे जो अंग्रेजी शिक्षा द्वारा उत्पन्न हो चुकी थी। इस वर्ग ने सर सैयद की योजनाओ का विरोध किया और उर्दू के साथ हिंदी में भी पुस्तकों के अनुवाद की माँग की। सर सैयद इस वर्ग से किसी प्रकार समझौता न कर सके। १८६७ ई० की उनकी एक वार्ता से, जो उन्होंने वाराणसी के कमिश्नर शेक्सपियर से की, यह पता चलता है कि हिंदी आंदोलन के कारण वे हिंदुओं के भी विरोधी बन गए। उसी समय स्वेज नहर के खुदने (१८६९ ई०) एवं मध्य पूर्व की अनेक घटनाओ के कारण अंग्रेज राजनीतिज्ञ ससार के मुसलमानो के साथ साथ भारत के मुसलमानों मे भी अधिक रुचि लेने लगे थे। सर सैयद ने इस परिवर्तन से पूरा लाभ उठाया। १८६९-१८७० ई में उन्होने यूरोप की यात्रा की और टर्की के सुधारो का विशेष रूप से अध्ययन किया। मुसलमानों की जाग्रति के लिये तहजीबुल इख़्लाक़ नामक एक पत्रिका १८७० ई० से निकालनी प्रारंभ की। अलीगढ में मोहमडन ऐंग्लो ओरिएंटल कालेज की स्थापना कराई जो १८७९ ई० में पूरे कालेज के रूप में चलने लगा। १९२१ ई० में यही कालिज यूनीवर्सिटी बन गया।

१८७८ ई० से १८८२ ई० तक वे वाइसराय की कौंसिल के मेंबर रहे और देश के कल्याण के कई काम किए, विशेष रूप से एलबर्ट बिल के समर्थन में जोरदार भाषण दिया। २७ जनवरी, १८८३ ई० को पटना में और १८८४ ई० के प्रारंभ में पंजाब में कई भाषणों में हिंदुओं तथा मुसलमानों को एक कौम बताते हुए पारस्परिक मेलजोल पर अत्यधिक जोर दिया किंतु वे राजनीति में जेम्स स्टुअर्ट मिल के सिद्धांतों से बडे प्रभावित थे। १८८३ ई० में ही उन्होंने इस बात का प्रचार प्रारंभ कर दिया था कि भारत में हिंदुओं के बहुमत के कारण जनता के प्रतिनिधियों द्वारा शासनप्रणाली मुसलमानो के लिये हानिकारक है। इसी आधार पर उन्होंने कांग्रेस का विरोध किया। १८८६ में एक यूनाइटेड इंडिया पैट्रिक असोसिएशन की स्थापना कराई और इस बात का प्रचार किया कि मुसलमानों को केवल अपनी शिक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए। इसी उद्देश्य से १८८६ ई० में उन्होंने मोहमडन एजूकेशनल कांग्रेस की स्थापना की। १८९० ई० में इसका नाम मोहमडन एजूकेशनल कान्फ्रेंस हो गया। २७ मार्च, १८९८ ई० को उनकी मृत्यु हो गई।

सं० ग्रं० — सर सैयद की रचनाओ के अतिरिक्त अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गज़ट, तहज़ीबुल इख़्लाक़ हाली, हयाते जावेद, सैयद तुफैल अहमद : मुसलमानों का रोशन मुस्तक़बिल (देहली, १९४५),

दोनो प्रकार के सैपोनिन में भिन्नता केवल ग्लाइकोसाइडो की संरचना में सैपोजेनिनवाले भाग में ही होती है। ट्राइटरपिनाइड सैपोनिन में ट्राइटरपिनाइड सैपोजेनिन क्वीलाइक अम्ल है जब कि स्टेराइल सैपोनिन में स्टेराइडाल सैपोजेनिन डिग्रोवजेनिन है।

सैपोनिन की सुई ठंडे रक्तवाले जीवो की रक्तशिराओं में विषैला प्रभाव डालती है और रक्त के लाल कणो को नष्ट कर देती है, १ ५०,००० के अनुपात की तनुता (dilution) में भी जब कि गर्म रक्तवाले जीवो को इससे कोई हानि नही पहुँचती। इसी कारण इसका उपयोग मत्स्यविष के रूप में किया जाता है।

ट्राइटरपिनाइड सैपोनिन तथा सैपोजेनिन — रीठा, स्वफेनिका (सैपोनेरिया वैक्सारिया, Saponaria vacsaria), स्वफेनिकाछाल एवं स्वफेनिका की जड से ट्राइटरपिनाइड सैपोनिन प्राप्त किए जाते हैं तो व्यापारिक दृष्टि से बडे महत्व का है। इसी के अम्लीय जल अपघटन से ट्राइटरपिनाइड सैपोजेनिन प्राप्त किया जाता है। कुछ स्वतंत्र अवस्था में भी पाए जाते हैं, जैसे यूरोसोलिक अम्ल (Urosolic acid), इलेमोलिक अम्ल (Elemolic acid), बासवेलिक अम्ल (Boswellic acid)।

इसका व्यापारिक नाम सोपबार्क सैपोनिन (Soapbark-Saponin) है। इसे क्वीलाजा या क्वीलिया सैपोनिन भी कहते हैं।

सैपोनिन पीत रंग लिए हुए श्वेत प्रक्रिस्टलीय अतिक्लेदग्राही चूर्ण होता है जिसकी थोडी सी मात्रा मे छीक आ जाती है तथा श्लेष्मा में क्षोभ उत्पन्न होता है। जल के साथ कोलाइलीय विलयन बनाता है, ऐलकोहॉल में थोड़ा घुलता है, मेथेनोल में बराबर मात्रा में घुलता है। ईथर, क्लोरोफार्म और बेंजीन में विलेय है। रेजिन तथा स्थिर तेलो के साथ पायस बनाता है। विलयन मे सैपोनिन द्वारा सतह तनाव कम हो जाता है और वे बहुत फेन उत्पन्न करते हैं। पानी के साथ १: १००,००० अनुपात मे भी फेन देता है। अंत.शिरा (intravenous) में इन्जेक्शन देने से रुधिरसलागी प्रभाव दिखाता है।

इसे निम्न उद्योगो मे उपयोग मे लाते हैं :

१—ध्वनिशोषक टाइल (Acoustic tiles) २—आग बुझाने, ३—फोटोग्राफी प्लेट वाले पदार्थों में फेना, देने के लिये ४—फिल्म, ५—कागज, ६—मृत्तिका उद्योग, ७—दंतमंजन, ८—सुरा उद्योग, ९—शैंपू और तरल साबुन, १०—सौंदर्य प्रसाधन, ११—तेल के पायसीकरण में, १२—रक्त के आक्सीजन की मात्रा का मान निकालने मे।

स्टेराइडाल सैपोनिन तथा सैपोजेनिन — डिजिटैलिस जाति के पौधो से तथा लिली कुल के मेक्सिकान पौधो से प्राप्त किया जाता है। जल अपघटन या ऐंजाइम विघटन द्वारा सैपोनिन से सैपोजेनिन उन्मुक्त होता है, यद्यपि कभी कभी जल अपघटन से सैपोजेनिन की सरचना मे परिवर्तन भी हो जाता है। स्टेराइडाल सैपोनेनिन की संरचना की यह विशेषता है कि स्टेराइड के केंद्र के कई स्थानो पर आक्सीजन जटिल पार्श्वशृंखला निर्माण किए रहते हैं।

स्टेराइडाल सैपोनिन झाग देने के गुण के साथ साथ सब प्रकार के स्टेरोल या स्टेराइड्स के साथ अविलेय अणु यौगिक बनाते हैं जो अधिकतम तनुता होने पर भी रुधिरसलागी प्रभाव रखते हैं।

अभी तक इसका उपयोग प्रक्षालक (detergents), मत्स्य-विष और फेनकारक के ही हेतु किया जाता था, पर इधर कुछ वर्षों में सैपोजेनिन की सरचना के विस्तृत अध्ययन के पश्चात् इससे स्टेराइडाल हारमोन बनाया जाने लगा है जिससे इसका अधिक महत्व बढ गया है। इस हारमोन के लिये यह कच्चा माल (raw material) के रूप में काम आता है। [ल० शं० गु०]

सैबिन, सर एडवर्ड (Sabine, Sir Edward, सन् १७८८-१८८३) अंग्रेज भौतिकीविद, खगोलशास्त्री और भूगणितज्ञ, का जन्म डब्लिन में हुआ था तथा इन्होने वूलिच (Woolwich) की रॉयल मिलिटरी ऐकैडमी में शिक्षा पाई थी।

सन् १८१८ और सन् १८१९ में उत्तरी पश्चिमी मार्ग की खोज के लिये सगठित अभियान मे ये खगोलज्ञ नियुक्त हुए थे। इसके पश्चात् इन्होने अफ्रीका और अमरीका के उष्ण कटिबधीय सागर-तटो की यात्रा, लोलक पर आधारित प्रयोगो द्वारा पृथ्वी की यथार्थ आकृति ज्ञात करने के लिये, की। सन् १८२१ में सेकडवाले लोलक की लंबाई के अन्वेषण सबधी प्रयोग आपने लदन तथा पेरिस में किए। अपने जीवन का अधिकाश इन्होने पार्थिव चुंबकत्व के अनुसधान में बिताया। आपके ही प्रयत्नो से पृथ्वी पर अनेक स्थानो में चुंबकीय वेधशालाएँ स्थापित की गई। सूर्य के धब्बो और पृथ्वी पर चुंबकीय विक्षोभ में संबध है, यह बात आप ही ने खोज निकाली थी।

सन् १८६१–७१ तक आप रॉयल सोसायटी के अध्यक्ष थे। सन् १८२१ मे इस सोसायटी का कॉपलि पदक, सन् १८४९ में रॉयल पदक तथा सन् १८६९ में के० सी० बी० की उपाधि आपको प्रदान की गई। [भ० दा० व०]

सैमुएल पीप्स (१६३३-१७०३) अंग्रेजी दैनिकी लेखक। जन्मस्थान लदन। कैंब्रिज विश्वविद्यालय मे शिक्षा समाप्त करके विवाहोपरात पिता के चचेरे भाई सर एडवर्ड मांटेग्यू (कालातर में अर्ल ऑव सैंडविच) क परिवार मे नौकरी कर ली जो उसका आजीवन संरक्षक रहा। अपने जीवन में उसने जो सफलताएँ प्राप्त की उनका श्रेय मांटेग्यू को ही था। १६६० ई० मे वह क्लार्क ऑव दि किंग्स-शिप्स' और 'क्लार्क ऑव दि प्रिवीसील' नियुक्त हुआ। १६६५ मे वह नौसेना के भोजन विभाग का 'सर्वेयर जनरल' बनाया गया जहाँ उसने बड़ी प्रबधकुशलता तथा सुधार के लिये उत्साह प्रदर्शित किया। १६७२ मे वह नौसेना विभाग का सेक्रेटरी नियुक्त हुआ। १६७९ मे 'पोपिश प्लॉट' नामक षड्यंत्र से संबधित मिथ्यारोपो के फलस्वरूप उसका पद छीन लिया गया और उसे 'लदन टावर' में कैद कर दिया गया। परतु १६८४ में वह पुन: नौसेना विभाग का सेक्रेटरी बना दिया गया। १६८८ में गौरवपूर्ण क्रांति होने तक वह इस पद पर बना रहा तथा इस बीच एक सक्षम नौसैनिक बेड़े की स्थापना के लिये उसने बड़ा काम किया। १६९० में उसने मेवाएसं

महत्वपूर्ण रोगाणुनाशक यौगिक है। पहले यह वात रोग में ओषधि के रूप में प्रयुक्त होता था पर आजकल इसके स्थान में इसका एक सजात ऐस्पिरिन (Acetyl Salicylic acid गलनांक, १२८°C) के नाम से व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है। सैलिसिलिक अम्ल का एक दूसरा सजात सैलोल (फेनिल सैलिसिलेट) के नाम से रोगाणुनाशक के रूप में विशेषतः दतमंजनों में प्रयुक्त होता है। एक तीसरा सजात बेटोल भी सैलोल के साथ प्रयुक्त होता है। सिरदर्द की एक ओषधि सैलोफीन (Salophene) इसी का सजात है। सैलिसिलिक अम्ल का उपयोग रंजकों और सुगंधों के निर्माण में भी होता है। [स० व०]

सैलिस्बरी, रॉबर्ट आर्थर टैल्बट गैस्कोइन-सेसिल (१८३०–१९०३) जेम्स और उसकी प्रथम पत्नी फ्रांसिस मेरी गैस्कोइन के द्वितीय पुत्र का जन्म ३ फरवरी, १८३० को हैटफील्ड में हुआ। उन्होंने ईटन और ऑक्सफर्ड के क्राइस्ट चर्च कालेज में शिक्षा ग्रहण की। अस्वस्थ होने के कारण वे दो वर्ष तक समुद्रयात्रा करते रहे। यात्रा से लौटने पर २२ अगस्त, १८५३ को स्टेमफर्ड के 'बरो' से संसद् के लिये निर्विरोध सदस्य निर्वाचित हुए।

जुलाई, १८५७ में उनका विवाह हुआ। इस समय धनाभाव के कारण उन्होंने 'सैटरडे रिव्यू' में कार्य आरंभ किया। परंतु उनकी अधिकांश रचनाएँ 'क्वार्टर्ली रिव्यू' में लगभग छ वर्ष तक निरंतर अनामतः प्रकाशित होती रहीं। १८६४ में उन्होंने विदेशनीति पर भाषण दिए। १८६६ में लार्ड रसल की मंत्रिपरिषद् के पतन के पश्चात् लार्ड डरबी ने उन्हें अपने मंत्रिमंडल में आमंत्रित किया। जुलाई, १८६६ में उन्होंने भारतमंत्री का पद सँभाला। इस पद पर उन्होंने केवल सात महीने तक ही कार्य किया और ९ फरवरी, १८६८ को त्यागपत्र दे दिया।

उनके पिता का देहांत १२ अप्रैल, १८६८ को हुआ। फलस्वरूप उन्हें लार्ड सदन का सदस्य होना पड़ा। १८६८ से १८७४ तक लार्ड सैलिस्बरी ने ग्लैडस्टन के विधानों का निरंतर विरोध किया। १८७४ में डिजरैली ने उन्हें मंत्रिमंडल में आमंत्रित किया, और वे पुन भारतमंत्री नियुक्त हुए। इन्हीं दिनों भारत में भयानक अकाल पड़ा, और उन्हें इस संकट का शमन करने के लिये अथक परिश्रम करना पड़ा।

१८७६ में दक्षिण पूर्व यूरोप में एक संकट उत्पन्न हुआ। उन्हें कुस्तुनतुनिया सम्मेलन में भाग लेने के लिये भेजा गया। इंग्लैंड के मंत्रिमंडल की ढुलमुल नीति के कारण वे सफलता प्राप्त न कर सके। युद्ध नीति आवश्यक थी। डरबी को त्यागपत्र देना पड़ा, और सैलिस्बरी विदेश मंत्री नियुक्त हुए। इस पद का भार सँभालते ही उन्होंने यूरोप की सभी राजधानियों को एक परिपत्र भेजा, जिसके द्वारा यह सिद्ध किया कि सैन स्टीफानों की संधि द्वारा टर्की का साम्राज्य रूस के अधीन हो गया है जो यूरोप की अन्य शक्तियों के लिये भयप्रद होगा। इसलिये इस संधि के विषय में संबंधित राज्यों ने पुनः परिनिरीक्षण के लिये माँग की। इस प्रकार यूरोप के राज्य ब्रिटेन के पक्ष में हो गए और रूस को झुकना पड़ा। बर्लिन काँग्रेस में इंग्लैंड की ओर से डिजरैली और सैलिस्बरी संमिलित हुए। उद्देश्यप्राप्ति के पश्चात् उन्होंने गर्व के साथ कहा कि वे शांति को मान सहित लाए हैं।

१८८० के चुनाव में कंजरवेटिव हार गए और उसी वर्ष लार्ड बीकंसफील्ड की मृत्यु हो गई। परिणामस्वरूप लार्ड सभा का नेतृत्व सैलिस्बरी को सँभालना पड़ा। १८८५ में सूडानी दुर्घटना के कारण लिबरल असंगठित थे। ग्लैडस्टन की पराजय हुई, और सैलिस्बरी प्रधान मंत्री नियुक्त हुए। इस पद को सँभालते ही बल्गेरिया में उपद्रव हुआ। परिणामस्वरूप उत्तरी और दक्षिणी बल्गेरिया मिल गए। सैलिस्बरी ने इसका समर्थन किया।

सैलिस्बरी का द्वितीय मंत्रिमंडल १८८६ से १८९२ तक रहा। वे ब्रिटेन, जर्मनी, ऑस्ट्रिया और इटली की ओर झुके एवं उन्होंने रूस और फ्रांस का विरोध किया। १८९० में बिस्मार्क की मृत्यु के पश्चात् सैलिस्बरी की गणना यूरोप के प्रमुख राजनीतिज्ञों में होने लगी। अफ्रीका में साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये झगड़ रही थीं। सैलिस्बरी ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों को बिना संकट में डाले उस देश की स्थायी रूपरेखा निर्धारित की।

१८९२ के सामान्य निर्वाचन में लिबरल दल विजयी हुआ और लोक सदन ने ग्लैडस्टन के 'होम रूल विधेयक' को स्वीकार किया। लार्ड सदन में सैलिस्बरी ने विरोध किया। आंग्ल विधान में लार्ड सदन का कार्य निर्वाचकों को पुन विचार करने का अवसर प्रदान करने का है। १८९५ में संसद भंग की गई। सामान्य निर्वाचन का मत कंजरवेटिव दल (रूढ़िवादियों) के पक्ष में रहा; और सैलिस्बरी तीसरी बार प्रधान एवं विदेशमंत्री नियुक्त हुए।

इन्होंने ब्रिटिश गायना और वैनिज्वीला के बीच सीमा संबंधी चले आ रहे झगड़े को बुद्धिमत्ता से हल किया। १८९७ में रूस ने चीन के 'पोर्ट आर्थर' और तेलिनवान पर अवैध रूप से अधिकार कर लिया। सैलिस्बरी के विरोधपत्र से आंग्ल जनता असंतुष्ट थी अत उसने शक्तिप्रयोग की माँग की। इंग्लैंड का फ्रांस से मिस्र पर पुराना झगड़ा चला आ रहा था। उसे भी सैलिस्बरी ने बड़ी चतुराई से हल कर लिया। उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका के युद्धों को सफलतापूर्वक संचालित किया। नवंबर, १९०० में विदेशमंत्री पद तथा जुलाई, १९०२ में प्रधानमंत्री पद से मुक्ति पाकर २२ अगस्त, १९०३ को जीवनलीला समाप्त की। [गि० कि० ग०]

सैल्वाडार, एल (Salvador, El) *स्थिति* १३° १५' उ० अ० तथा ८९° ०' प० दे०। यह मध्य अमरीका का अत्यधिक घनी जनसंख्यावाला प्रशांत महासागर के तट पर स्थित सबसे छोटा गणतंत्र है। इसके पश्चिम मे ग्वाटेमाला तथा उत्तर और पूर्व में हांडुरैस हैं। इसका क्षेत्रफल २०,००० वर्ग किमी जनसंख्या २५,१०,९८४ (१९६१) और राजधानी सैन सैल्वाडार है।

एल सैल्वाडार की प्रमुख नदी लेंपा (Lempa) है जिसका पानी प्रशांत महासागर में गिरता है। लेंपा नदी की आकर्षक घाटी एल सैल्वाडार की सबसे अधिक उपजाऊ भूमि है। तटीय भागों की जलवायु उष्ण कटिबंधी तथा उच्चतर भूमि की जलवायु शीतोष्ण है। एल सैल्वाडार की आय का मुख्य साधन यहाँ की उपजाऊ

ग्राहम सी० एफ० आई० . दि लाइफ ऐंड वर्क ऑव सैयद अहमद खाँ (एडिनबर्ग, लदन १८८५) । [सं० अ० अ०]

सैयद मुहम्मद गौस ग्वालियर के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम खतीरुद्दीन था। बचपन में ही यह हाजी हामिद हजूर के शागिर्द हो गए जिन्होने उनको अपने मत की प्रारंभिक दीक्षा देकर आध्यात्मिक साधना करने के लिये चुनार भेज दिया। तेरह वर्षों से भी अधिक समय तक इन्होंने अत्यत कठोर विरक्त जीवन की यातनाएँ झेली और पेड की पत्तियो से ही अपनी भूख शात करते थे। विंध्याचल के एकात अचल में रहते समय यह हिंदू योगियो के सपर्क मे आए जिसने इनके धार्मिक विचारो और दृष्टिकोण के पोषण मे महत्वपूर्ण योगदान किया। बाद में इनके आध्यात्मिक गुरु ने इन्हे ग्वालियर में बसने की हिदायत की और वही पर ८० वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु (लजान १७, ९७० हि०) १० मई, १५६३ ई० को हुई।

विंध्याचल के अपने आध्यात्मिक अनुभवो का सकलन इन्होने 'जवाहरे खमसा' नाम से किया जिसे पढने से प्रकट होता है कि हिंदू धर्म की विचारधारा तथा कर्मकाड का इनपर कितना अधिक प्रभाव पड़ा। यह पहले भारतीय मुसलमान सत हैं जिन्होने हिंदू और मुसलमान रहस्यवादी विचारधारा के समन्वय का प्रयत्न किया। तत्रशास्त्र का भी इनपर अत्यधिक प्रभाव पडा। इसके तो यह इतने मुरीद हो गए कि ये शत्तारी तत्रवाद (Shattari Tantrism) मत के सस्थापक ही कहे जा सकते हैं। इनके दूसरे ग्रथ 'अवरादे गौसियाह' मे यह मुसलमान रहस्यवादी की अपेक्षा तंत्रशास्त्र के योगी जैसे दिखाई पडते हैं। इन्होने करिश्मो की जिन गाथाओ का वर्णन अपने ग्रथ मे किया है उनपर विश्वास करना कठिन है। यह ग्रथ मृत लोगो से सपर्क, आसमानी दुनिया मे यात्रा और काल एवं अतरिक्ष मे घटित करिश्मो से भरा पडा है।

हिंदूधर्म के कितने ही आधारभूत विचारों को अपना लेने के बाद हिंदुओ के प्रति धार्मिक कट्टरता दिखाना इनके लिये सभव ही न रह गया। अपने इस्लाम धर्म के प्रचार और दूसरे धर्मावलबियों को मुसलमान बनाने का कोई होसला इनमे बाकी नही रहा और यह हिंदुओ को इस्लाम धर्म की दीक्षा प्राप्त करने की शर्त लगाये बिना अपने रहस्यवाद के उपदेश देने को तैयार हो जाते थे। वे गान विद्या के बड़े समर्थक थे। अकबर के दरबार के प्रसिद्ध गायक तानसेन इनके शिष्य थे, जिनके द्वारा इस्लाम धर्म अपनाए जाने का उल्लेख किसी भी ग्रंथ में नही मिलता। धार्मिक विश्वासों की भिन्नता से प्रभावित हुए बिना आप हिंदुओ से प्रेमभाव और सामाजिक सबध रखते थे। फलतः कट्टर मुसलमान लोग इनसे नाखुश रहते थे। गायों और सांड़ो के प्रति यह बहुत रुचि रखते थे और मिलने के लिये आनेवाले हिंदुओं से बहुत आदर का व्यवहार करते थे।

सं० ग्र० — सैयद मुहम्मद गौस (जवाहरे खमसह पाडुलिपि, आजाद पुस्तकालय, अलीगढ), वाकरनामा, जिल्द दो; तवकाते अकबरी (निजामुद्दीन), जिल्द दो; अकबरनामा, जिल्द दो; आईने अकबरी, जिल्द एक, तवकाते शाहजहानी (मुहम्मद सादिक खाँ); सूफियो के शत्तारिया सप्रदाय का इतिहास (काजी मोइनुद्दीन अहमद) । [का० मो० अ०]

सैरागॉसा सागर (Saragossa Sea) कैनरी द्वीपो (Canary Islands) से २,००० मील पश्चिम, उत्तरी ऐटलैंटिक महासागर का एक भाग है। स्थूलतः यह २०° से ४०° उत्तरी अक्षाश तथा ३५° से ७५° पश्चिमी देशातर तक, २०,००,००० वर्ग मील में विस्तृत है अर्थात् इसका क्षेत्रफल समस्त भारत के क्षेत्रफल के डेढ़ गुने से भी अधिक है।

स्पेनीय शब्द "सेरागॉसा" का अर्थ समुद्री घासपात होता है। इस विशाल सागरक्षेत्र का यह नाम इसलिये पडा कि यह घासपात के खडो से भरा हुआ है। इन खडो से प्राचीन काल के सागर यात्रियो को फैले हुए खेतो का भ्रम हुआ और उनमे अनेक जहाजो के फँसकर अचल हो जाने और सडकर नष्ट हो जाने की कल्पित कहानियाँ फैल गईं।

वैज्ञानिको का पहले यह ख्याल था कि इस समुद्र का घासपात निकटतम भूमि या छिछले समुद्रतल से आता होगा। किंतु सागर वहाँ पर दो से चार मील तक गहरा है और भूमि बहुत दूर है। चतुर्दिक् के समुद्रतटो पर उगनेवाली समुद्री घासो तथा यहाँ पाई जानेवाली वनस्पतियो की बनावट और जाति में भी भेद है। अंततोगत्वा इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पडा कि यहाँ की जलीय वनस्पति विशिष्ट प्रकार की है और इसने खुले समुद्र में पनपने योग्य अपने को बना लिया है। इसमें अंगूर की आकृति की थैलियाँ सी लगी होती हैं, जिनमे हवा भरी होती है। इस कारण यह जल मे तैरती रहती है और जल में ही बढ़ती जाती है। इसका सबसे सघन भाग केंद्र मे है। [भ० दा० व०]

सैलिसिलिक अम्ल यह अर्थोहाइड्रोक्सि वेंजोइक ($C_7H_6O_3$) अम्ल है जो मेथाइल एस्टर के रूप में विंटरग्रीन तेल का प्रमुख अवयव है। तेल मे सैलिसिन (Salicin) नामक ग्लुकोसाइड रहता है जिसमें सैलिसिलिक अम्ल सैलिजेनिन नामक ऐल्कोहल से सयुक्त रहता है। यह वर्णरहित सूच्याकार क्रिस्टल बनाता है जिसका गलनाक १५५° सें० है। ठंडे जल मे बहुत कम विलेय है पर उष्ण जल, ऐल्कोहल और क्लोरोफार्म में शीघ्र विलेय है, इसका जलीय या ऐल्कोहलीय विलयन फेरिक क्लोराइड से बैंगनी (voilet) रग बनाता है।

रसायनशाला मे या बड़े पैमाने पर कोलबे विधि (Cholbeis method) से लगभग १४०° सें० पर सोडियम फीनेट का कार्बन डाइआक्साइड के साथ दबाव में गरम करने से सैलिसिलिक अम्ल बनता है। यहाँ सोडियम फीनेट कार्बन डाइआक्साइड के साथ सबद्ध हो फीनोल आर्थोकार्बोक्सिलिक अम्ल का सोडियम लवण बनता है जिसमे खनिज अम्लो के डालने से सैलिसिलिक अम्ल का अवक्षेप प्राप्त होता है।

उष्ण जल से अवक्षेप का क्रिस्टलन करते हैं। सैलिसिलिक अम्ल

(Circulation) द्वारा जल वाष्प बनाने के काम में लाते हैं और उत्पन्न वाष्प द्वारा टरबाइन चलने पर विद्युत् का उत्पादन होता है।

सोडियम के अनेक यौगिक चिकित्सा मे काम आते हैं। आज के औद्योगिक युग मे सोडियम तथा उसके यौगिको का प्रमुख स्थान है।

यौगिक — सोडियम एक सयोजक यौगिक बनाता है। सोडियम यौगिक जल में प्रायः विलेय होते हैं।

सोडियम के दो आक्साइड ज्ञात हैं Na_2O और Na_2O_2। सोडियम धातु पर ३००° सें० पर वायु प्रवाहित करने से सोडियम परआक्साइड बनेगा। यह शुष्क वायु में स्थायी होता है और जल में शीघ्र अपघटित हो सोडियम हाइड्राक्साइड में परिणत हो जाता है। यह सुविधानुसार ऑक्सीकारक (oxidant) तथा अपचायक (reductant) दोनों का ही कार्य कर सकता है। यह कार्बन मोनोआक्साइड (CO) और कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) दोनों से मिलकर सोडियम कार्बोनेट बनाता है। कार्बन डाइआक्साइड से क्रिया के फलस्वरूप ऑक्सीजन मुक्त होता है। इस क्रिया का उपयोग बंद स्थानो (जैसे पनडुब्बी नावो) मे ऑक्सीजन निर्माण मे हुआ है।

सोडियम और हाइड्रोजन का यौगिक सोडियम हाइड्राइड (Na H) एक क्रिस्टलीय पदार्थ है। इसके वैद्युत अपघटन पर हाइड्रोजन गैस धनाग्र पर मुक्त होती है। सोडियम हाइड्राइड सूखी वायु में गर्म करने पर जल जाता है और जलयुक्त वायु में अपघटित हो जाता है।

सोडियम कार्बोनेट (Na_2Co_3) अनार्द्र तथा जलयोजित दोनो दशाओ में मिलता है। इसे घरेलू उपयोग में कपडे तथा अन्य वस्तुओं के साफ करने के काम मे लाते हैं। चिकित्साकार्य मे भी यह उपयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त सोडियम बाइकार्बोनेट ($Na H CO_3$) भी रसायनिक क्रियाओ तथा दवाइयो में काम आता है।

अनेक सरचना के सोडियम सिलिकेट ज्ञात हैं। इनमें विलेय सोडा कॉच (Soda glass) सबसे मुख्य है। सिलिका को सोडियम हाइड्राक्साइड (Na OH) विलयन के साथ उच्च दाब पर गर्म करने से यह तैयार होता है। यह पारदर्शी रगरहित पदार्थ है जो उबलते पानी में घुल जाता है। कुछ छापेखाने के उद्योगो मे इसका उपयोग होता है। पत्थरो तथा अन्य वस्तुओ के जोडने में भी इसका उपयोग हुआ है।

सोडियम कार्बोनेट, सोडियम टार्टरेट, सोडियम ब्रोमाइड, सोडियम सेलिसिलेट, सोडियम क्लोराइड आदि यौगिको का चिकित्सा निदान मे उपयोग होता है।

किसी कारण से शरीर मे जल की मात्रा कम होने पर सोडियम क्लोराइड अथवा साधारण नमक के विलयन को इजेक्शन द्वारा रक्तनाडी में प्रविष्ट करते हैं।

अनेक प्राकृतिक झरनो में सोडियम यौगिक पाए गए हैं। इन झरनों का जल गठिया तथा पेट और चर्मरोगों में लाभकारी माना जाता है।

सोडियम की पहचान स्पेक्ट्रममापी (Spectrometer) द्वारा हो सकती है। इसके यौगिक बुसन लौ को पीला रग प्रदान करते हैं। इस प्रकाश का तरगदैर्घ्य ५८९० तथा ५८९६ एगस्ट्राम है। आयन विनिमय स्तभ (Ion exchange column) द्वारा भी इसकी पहचान की गई है। [र० च० क०]

सोन या सोनभद्र नदी गगा की सहायक नदियों में सोन का प्रमुख स्थान है। इसका पुराना नाम सभवतः 'सोहन' था जो पीछे बिगडकर सोन बन गया। यह नदी मध्यप्रदेश के अमरकटक नामक पहाड से निकलकर ३५० मील का चक्कर काटती हुई पटना से पश्चिम गगा में मिलती है। इस नदी का पानी मीठा, निर्मल और स्वास्थ्यवर्धक होता है। इसके तटो पर अनेक प्राकृतिक दृश्य बडे मनोरम हैं। अनेक फारसी, उर्दू और हिंदी कवियो ने नदी और नदी के जल का वर्णन किया है। इस नदी मे डिहरी-आन-सोन पर बाँध बाँधकर २९६ मील लबी नहर निकाली गई है जिसके जल से शाहाबाद, गया और पटना जिलो के लगभग सात लाख एकड भूमि की सिंचाई होती है। यह बाँध १८७४ ई० में तैयार हो गया था। इस नदी पर ही एशिया का सबसे लबा पुल, लगभग ३ मील लबा, डिहरी-ऑन-सोन पर बना हुआ है। दूसरा पुल पटना और आरा के बीच कोइलवर नामक स्थान पर है। कोइलवर का पुल दोहरा है। ऊपर रेलगाडियाँ और नीचे बस, मोटर और बैलगाडियाँ आदि चलती हैं। इसी नदी पर एक तीसरा पुल भी ग्रैंड ट्रक रोड पर बन गया है। इसके निर्माण में ढाई करोड रुपयों से ऊपर लगा है। १९६५ ई० में यह पुल तैयार हो गया था और अब यातायात के लिये खुल गया है।

ऐसे यह नदी शात रहती है। इसका तल अपेक्षया छिछला है और पानी कम ही रहता है पर बरसात में इसका रूप विकराल हो जाता है, पानी मटियाले रग का, लहरें भयकर और झाग से भरी हो जाती हैं। तब इसकी धारा तीव्र गति और बडे जोर शोर से बहती है।

सोनपुर बिहार के सारन जिले का एक कस्बा है। यह पटना नगर से लगभग तीन मील उत्तर, गगा और गडक नदियों के सगम पर बसा है। यह स्थान दो वस्तुओ, लबे प्लेटफार्म तथा मेले के लिये प्रसिद्ध है। पश्चिम और पूर्व से पूर्वोत्तर रेलवे द्वारा और पटना से स्टीमर द्वारा गगा पार कर फिर रेल द्वारा सोनपुर पहुँचा जाता है। यहाँ का रेलवे प्लेटफार्म लबाई के लिये सुप्रसिद्ध है। सोनपुर की सबसे अधिक प्रसिद्धि उस मेले के कारण है जो कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर यहाँ लगता है और एक मास तक चलता है। भारत के कोने कोने से हजारो व्यक्ति एव मवेशी इस मेले में आते हैं। यह मेला वस्तुतः भारत का ही नहीं वरन् एशिया का सबसे बडा मेला है। सोनपुर का पुराना नाम हरिहरक्षेत्र है। यहाँ का मेला हरिहरक्षेत्र के मेले के नाम से भी प्रसिद्ध है। पुराणो में इसे महाक्षेत्र भी कहा गया है। गंगा और वैदिक काल की नदी सदानीरा (नारायणी) के इस सगम पर एक बार ऋषि, साधु तथा संत बहुत बडी संख्या में एकत्र हुए, उनमे वैष्णव एव

भूमि है। सैल्वाडार के गरम उष्ण कटिबंधी तट पर इमारती लकड़ी के घने जंगल हैं। यहाँ सोना, चाँदी, कोयला, तांबा, सीसा और जस्ता आदि के निक्षेप भी पाए गए हैं। सडक एवं रेल व्यवस्था विकसित है। यहाँ की भाषा स्पेनी है।

पनामा नहर के बनने से पूर्व एल सैल्वाडार का विदेशी व्यापार मुख्यतः संयुक्त राज्य अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन तथा जर्मनी से ही होता था परंतु अब अन्य देशो से भी होने लगा है। यहाँ से निर्यात होनेवाली वस्तुएँ कॉफी, रबर, तबाकू, नील तथा सोना हैं।

२ सैल्वाडार — स्थिति : १३° ०' द० अ० तथा ३८° ३०' प० दे०। यह ब्राजील का अत्यंत प्राचीन नगर है। आकार की दृष्टि से इसका चौथा स्थान है। यहाँ से चीनी, रबर तथा कपास का निर्यात होता है। इसकी जनसंख्या ६,५५,७३५ (१९६०) है।

३. सैल्वाडार नाम का एक नगर कैनाडा में भी है।

[नं० कु० रा०]

सैसून, सर अल्बर्टट अब्दुल्ला डेविड (१८१८-१८९६) उन्नीसवी सदी के भारतीय व्यापारी और समाजसेवी। ये जन्मत: यहूदी थे। इनका जन्म बगदाद में २५ जुलाई, सन् १८१८ को हुआ था। इनके पूर्वज स्पेनवासी थे जो १६ वी शताब्दी में बगदाद आ बसे थे। पर यहाँ भी यहूदी विरोधी आंदोलन से त्रस्त होकर उनके पिता को बगदाद छोड़ना पड़ा। यहाँ से वे फारस चले गए। सन् १८३२ से इनका परिवार बंबई में स्थायी रूप से आ बसा। यहाँ उन्होने महाजनी और व्यापार शुरू किया। इस दिशा मे उन्हे अच्छी सफलता मिली। सैसून की शिक्षा भारत में ही हुई थी। पिता के बाद उनके वारिस के रूप में उन्होने भारतीय समाज के प्रति अपनी सेवाएँ अर्पित की। विशेष रूप से बबई नगर को उनका योगदान स्मरणीय कहा जाएगा। उनके अनुदान से तैयार हुआ सैसून डाक सन् १८७५ में पूरा हुआ। उनकी मृत्यु २४ अक्टूबर सन् १८९६ में इंग्लैंड में हुई। [मु० रा०]

सोडियम (Sodium) आवर्त सारणी के प्रथम मुख्य समूह का दूसरा तत्व है, इसमें धातुगुण विद्यमान हैं। इसके एक स्थिर समस्थानिक (द्रव्यमान संख्या २३) और चार रेडियोऐक्टिव समस्थानिक द्रव्यमान (संख्या २१, २२, २४, २५) ज्ञात हैं।

उपस्थिति — सोडियम अत्यंत सक्रिय तत्व है जिसके कारण यह मुक्त अवस्था में नहीं मिलता। यौगिक रूप मे यह सब स्थानो में मिलता है। सोडियम क्लोराइड अथवा नमक इसका सबसे सामान्य यौगिक है। समुद्र के पानी में घुले यौगिको में इसकी मात्रा ८०% तक रहती है। अनेक स्थानों पर इसकी खानें भी हैं। पश्चिमी पाकिस्तान मे इसकी बड़ी खान है। राजस्थान प्रदेश की साँभर झील से यह बहुत बड़ी मात्रा मे निकाला जाता है।

सोडियम कार्बोनेट भी अनेक स्थानो में मिलता है। क्षारीय मिट्टी में सोडियम कार्बोनेट उपस्थित रहता है। इसके अतिरिक्त सोडियम के अनेक यौगिक, जैसे सोडियम सल्फेट, नाइट्रेट, फ्लोराइड आदि विभिन्न स्थानो पर मिलते हैं। जर्मनी के सेक्सनी प्रदेश मे स्तेस्फुर्त की खानें इसके अच्छे स्रोत हैं। सिलिकेट के रूप में सोडियम समस्त खानिज पदार्थों तथा चट्टानो में उपस्थित रहता है यद्यपि इसकी प्रतिशत मात्रा कम रहती है।

निर्माण — सक्रिय पदार्थ होने के कारण बहुत काल तक सोडियम धातु का निर्माण सफल न हो सका। १८०७ ई० में इंग्लैंड के वैज्ञानिक डेवी ने तरल सोडियम हाइड्राक्साइड के वैद्युत अपघटन द्वारा इस तत्व का सर्वप्रथम निर्माण किया। सन् १८९० में केस्टनर (Castner) ने इस विधि को औद्योगिक रूप दिया। इस विधि में लोहे के बर्तन के मध्य में ताम्र या निकेल का ऋणाग्र और उसके चारो ओर निकेल का धनाग्र रखते हैं। बेलन को उष्ण गैस द्वारा गर्म किया जाता है जिससे उसमें रखा सोडियम हाइड्राक्साइड पिघल जाय। वैद्युत अपघटन द्वारा सोडियम धातु ऋणाग्र पर निर्मित होकर सतह के ऊपर तैरने लगती है। इसे धनाग्र पर जाने से रोकने के लिये ऋणाग्र को लोहे की बेलनाकार जाली से घेरा जाता है।

आजकल तरल सोडियम क्लोराइड के वैद्युत अपघटन द्वारा भी सोडियम का निर्माण हो रहा है।

गुणधर्म — सोडियम रुपहली चमकदार धातु है। वायु में ऑक्सीकरण के कारण इसपर शीघ्र ही परत जम जाती है। यह नरम धातु है तथा उत्तम विद्युच्चालक है क्योंकि इसके परमाणु के बाहरी कक्ष का इलेक्ट्रान अत्यंत गतिशील होने के कारण शीघ्र एक से दूसरे परमाणु पर जा सकता है। इसके कुछ भौतिक स्थिराक संकेत, सो० (Na), परमाणु संख्या ११, परमाणु भार २२.९९ घनत्व ०·९७ ग्रा०। घसेमी, गलनाक ९७·८° सें०, क्वथनांक ८८२° सें०, परमाणु व्यास १·५५ एंग्सट्राम, आयनीकरण विभव ५·१३ इवो०। सोडियम धातु के परमाणु अपना एक इलेक्ट्रॉन खोकर सोडियम आयन मे सरलता से परिणत हो जाते हैं। फलत: सोडियम अत्यंत शक्तिशाली अपचायक (reductant) है। इसकी क्रियाशीलता के कारण इसे निर्वात या तैल में रखते है। जल से यह विस्फोट के साथ क्रिया कर हाइड्रोजन मुक्त करता है। वायु में यह पीली लपट के साथ जलकर सोडियम आक्साइड (Na_2O) तथा सोडियम परआक्साइड (Na_2O_2) का मिश्रण बनाता है।

हेलोजन तत्व तथा फॉस्फोरस के साथ सोडियम क्रिया करता है। विशुद्ध अमोनिया द्रव में सोडियम घुलकर नीला विलयन देता है। पारद से मिलकर यह ठोस मिश्रधातु बनाता है। यह मिश्रधातु अनेक क्रियाओ मे अपचायक के रूप में उपयोग की जाती है।

उपयोग — सोडियम धातु का उपयोग अपचायक के रूप में होता है। सोडियम परआक्साइड (Na_2O_2), सोडियम सायनाइड ($NaCN$) और सोडेमाइड ($NaNH_2$) के निर्माण में इसका उपयोग होता है। कार्बनिक क्रियाओ मे भी यह उपयोगी है। लेड टेट्राएथिल [$Pb(C_2H_5)_4$] के उत्पादन से सोडियम–सीस मिश्रधातु उपयोगी है। सोडियम में प्रकाशवैद्युत (Photo–electric) गुण है। इसलिये इसको प्रकाश वैद्युत सेल बनाने के काम में लाते हैं। कुछ समय से परमाणु ऊर्जा द्वारा विद्युत उत्पादन में सोडियम धातु का बृहद् उपयोग होने लगा है। परमाणु रिऐक्टर (Atomic reactor) द्वारा उत्पन्न ऊष्मा को तरल सोडियम के चक्रण

कर पारद की परतदार ताम्र की थालियों पर धोते हैं जिससे अधिकांश स्वर्ण थालियो पर जम जाता है। परत को खुरचकर उसके आसवन (distillation) द्वारा स्वर्ण को पारद से अलग कर सकते हैं। प्राप्त स्वर्ण में अपद्रव्य वर्तमान रहता है। इसपर सोडियम सायनाइड के विलयन द्वारा क्रिया करने से सोडियम ऑरोसायनाइड बनेगा।

४ स्वर्ण + ८ सोडियम सायनाइड + ऑक्सीजन + २ जल =

४ सोडियम ऑरोसायनाइड + ४ सोडियम हाइड्रॉक्साइड

$4\ Au + 8\ NaCN + O_2 + 2\ H_2O = 4\ Na\ [Au(CN)_2] + 4\ NaOH$
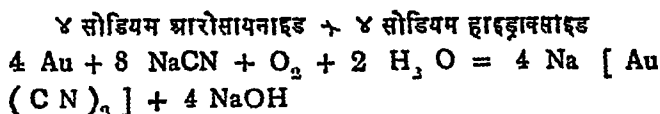
इस क्रिया मे वायुमडल की ऑक्सीजन ऑक्सीकारक के रूप मे प्रयुक्त होती है।

सोडियम ऑरोसायनाइड विलयन के विद्युत् अपघटन द्वारा अथवा यशद धातु की क्रिया से स्वर्ण मुक्त हो जाता है।

$Zn + 2\ Na\ [Au(CN)_2] = Na_2\ [Zn(CN)_4] + 2\ Au$
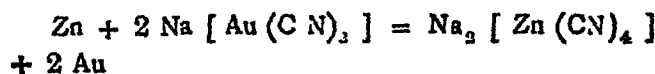
सायनाइड विधि द्वारा ऐसे अयस्को से स्वर्ण निकाला जा सकता है जिनमे स्वर्ण की मात्रा न्यूनतम हो (देखें सायनाइड विधि)। अन्य विधि के अनुसार अयस्क मे उपस्थित स्वर्ण को क्लोरीन द्वारा गोल्ड क्लोराइड ($Au\ Cl_3$) में परिणत कर जल में विलयित कर लिया जाता है। विलयन मे हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) प्रवाहित करने पर गोल्ड सल्फाइड बन जाता है जिसके दहन से स्वर्ण धातु मिल जाती है।

ऊपर बताई क्रियाओ से प्राप्त स्वर्ण में अपद्रव्य उपस्थित रहते हैं। इसके शोधन की आधुनिक विधि विद्युत् अपघटन पर आधारित है। इस विधि में गोल्ड क्लोराइड को तनु (dilute) हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में विलयित कर लेते हैं। विलयन में अशुद्ध स्वर्ण के धनाग्र और शुद्ध स्वर्ण के ऋणाग्र के बीच विद्युत् प्रवाह करने पर अशुद्ध स्वर्ण विलयित हो ऋणाग्र पर जम जाता है।

गुणधर्म — स्वर्ण पीले रग की धातु है। अन्य धातुओ के मिश्रण से इसके रंग में अतर आ जाता है। इसमें रजत का मिश्रण करने से इसका रग हलका पड जाता है। ताम्र के मिश्रण से पीला रंग गहरा पड जाता है। गिनी गोल्ड मे ८·३३ प्रतिशत ताम्र रहता है। यह शुद्ध स्वर्ण से अधिक लालिमा लिए रहता है। प्लैटिनम या पेलैडियम के समिश्रण से स्वर्ण में श्वेत छटा आ जाती है।

स्वर्ण अत्यत कोमल धातु है। स्वच्छ अवस्था मे यह सबसे अधिक घातवर्ध्य (malleable) और तन्य (ductile) धातु है। इसे पीटने पर $१०^{-५}$ मिमी पतले वरक बनाए जा सकते हैं।

स्वर्ण के कुछ विशेष स्थिराक निम्नांकित हैं ·

सकेत (Au), परमाणुसख्या ७९, परमाणुभार १९६ ९७, गलनाक १०६३° से०, क्वथनाक २९७०° से०, घनत्व १९·३ ग्राम प्रति घन सेमी, परमाणु व्यास २ ९ एग्स्ट्राम A°, आयनीकरण विभव ९·२ इवों, विद्युत् प्रतिरोधकता २ १९ माइक्रोओहम् — सेमी०।

स्वर्ण वायुमडल ऑक्सीजन द्वारा प्रभावित नही होता है। विद्युत्-वाहक-बल-श्रृखला (electromotive series) मे स्वर्ण का सबसे नीचा स्थान है। इसके यौगिक का स्वर्ण आयन सरलता से इलेक्ट्रान ग्रहण कर धातु में परिवर्तित हो जाएगा। स्वर्ण दो संयोजकता के यौगिक बनाता है, १ और ३। १ सयोजकता के यौगिकों को ऑरस (aurous) और ३ के यौगिको को ऑरिक (auric) कहते हैं।

स्वर्ण नाइट्रिक, सल्फ्यूरिक अथवा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से नहीं प्रभावित होता परंतु अम्लराज (aqua regia) (३ भाग साद्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तथा १ भाग साद्र नाइट्रिक अम्ल का संमिश्रण) मे घुलकर क्लोरोऑरिक अम्ल ($H\ Au\ Cl_4$) बनाता है। इसके अतिरिक्त गरम सेलीनिक अम्ल (selenic acid) क्षारीय सल्फाइड अथवा सोडियम थायोसल्फेट में विलेय है।

यौगिक — स्वर्ण के १ और ३ सयोजी यौगिक प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त इसके अनेक जटिल यौगिक भी बनाए गए हैं जिनमे इसकी सख्या उपसहसयोजकता (co ordination number) २ या ४ रहती है।

स्वर्ण का हाइड्रॉक्साइड ऑरस हाइड्रॉक्साइड ($Au\ OH$), ऑरस क्लोराइड ($Au\ Cl$) पर तनु पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड (dil KOH) की क्रिया द्वारा प्राप्त होता है। यह गहरे बैंगनी रग का चूर्ण है जिसे कुछ रासायनिक जलयुक्त ऑक्साइड (Au_2O) कहते हैं। यह स्वर्ण तथा त्रिऑक्साइड ($Au_2\ O_3$) में परिणत हो सकता है। ऑरस हाइड्रॉक्साइड में शिथिल क्षारीय गुण वर्तमान हैं। यदि ऑरिक क्लोराइड ($Au\ Cl_3$) अथवा क्लोरोऑरिक अम्ल ($HAuCl_4$) पर क्षारीय हाइड्रॉक्साइड की क्रिया की जाय तो ऑरिक हाइड्रॉक्साइड $\{Au(OH)_3\}$ बनता है जिसे गरम करने पर ऑराइल हाइड्रॉक्साइड $Au\ O\ (O\ H)$ ऑरिक ऑक्साइड ($Au_2\ O_3$) और ($Au_2\ O_2$) और तत्पश्चात् स्वर्ण धातु बच रहती है।

हेलोजन तत्वों से स्वर्ण अनेक यौगिक बनाता है। रक्तताप पर स्वर्ण फ्लोरीन से संयुक्त हो गोल्ड फ्लोराइड बनाता है। क्लोरीन के साथ दो यौगिक ऑरस क्लोराइड ($Au\ Cl$) और ऑरिक क्लोराइड ($Au\ Cl_3$) ज्ञात हैं। ऑरस क्लोराइड जल द्वारा अपघटित हो स्वर्ण और ऑरिक क्लोराइड बनाता है। ऑरिक क्लोराइड उच्च ताप पर ऑरस क्लोराइड ($Au\ Cl$) बना है और अधिक उच्च ताप पर पूर्णतय· विघटित हो जाता है। ब्रोमीन के साथ ऑरस ब्रोमाइड ($Au\ Br$) और ऑरिक ब्रोमाइड ($Au\ Br_3$) बनते हैं। इनके गुण क्लोराइड यौगिको की भाँति हैं। आयोडीन के साथ भी स्वर्ण के दो यौगिक ऑरस आयोडाइड ($Au\ I$) और ऑरिक आयोडाइड ($Au\ I_3$) बनते हैं परतु वे दोनों अस्थायी होते हैं।

वायु की उपस्थिति में स्वर्ण क्षारीय सायनाइड में विलयित हो जटिल यौगिक ऑरोसाइनाइड $[Au(CN)_2]$ बनाता है जिसमें स्वर्ण १ संयोजी अवस्था में है। त्रिसंयोजी अवस्था के जटिल यौगिक $\{K\ Au(CN)_4\}$ भी ज्ञात हैं।

ऑरिक ऑक्साइड पर साद्र अमोनिया की क्रिया से एक काला चूर्ण बनता है जिसे फ्लीमिनेटिंग गोल्ड ($2\ Au\ N\ NH_3\ 3\ H_2O$) कहते हैं। यह सूखी अवस्था में विस्फोटक होता है।

शिव दोनो मे गंभीर वाद विवाद हुआ, अंत मे दोनो ने मिलकर कार्य करने का निश्चय किया एव विष्णु और शिव के नामो पर इसका नाम हरिहरक्षेत्र रखा। इसके निकट ही कोनहरा घाट पर पौराणिक गज और ग्राह की लडाई हुई थी। प्यासा गज अपनी प्यास बुझाने के लिये नदी के पानी मे गया तब ग्राह (भयानक मगरमच्छ) ने उसे पकड लिया, फिर दोनों में युद्ध छिड़ा, जो ऐसा कहा जाता है कि बहुत वर्षों तक चलता रहा। अंत मे विष्णु की कृपा से ग्राह मारा गया और गज की विजय हुई। कुछ लोग इसका यह भी अर्थ लगाते हैं कि गज और ग्राह का युद्ध वस्तुत अच्छाइयो और बुराइयो के बीच युद्ध था, जिसमे अच्छाइयो की विजय हुई। यहाँ के मदिर में विष्णु और शिव दोनो की मूर्तियाँ स्थापित हैं। ऐसा कहा जाता है कि हरिहर नाथ की स्थापना विभिन्न विचारो के मिलन, एकता और बधुत्व बनाए रखने के लिये की गई थी।

यहाँ के मेले मे बडी बडी दूकानें कलकत्ता और बबई तक से आती हैं और लाखो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति यहाँ से करते हैं। हाथियो का तो इतना बडा मेला और कही नही लगता। हजारो की संख्या में हाथी यहाँ आते हैं तथा उनका क्रय विक्रय होता है। मेले का प्रबध बिहार सरकार की ओर से होता है। स्थान स्थान पर पानी के कल, बिजली के खभे और शौचालय आदि बनाए जाते हैं। स्थान को साफ सुथरा बनाने के लिये पूरा प्रबध किया जाता है ताकि कोई बीमारी न फैल सके और न ही लोगो को किसी प्रकार का कष्ट हो। लोगो को लाने तथा ले जाने के लिये कई स्पेशल गाडियाँ चलाने का प्रबध किया जाता है। १९६७ ई० के मेले मे लगभग २००० हाथी और ५०,००० से ऊपर मवेशी एकत्र हुए थे। देखें 'हरिहर क्षेत्र'।

सोना या स्वर्ण (Gold) स्वर्ण अत्यत चमकदार मूल्यवान धातु है। यह आवर्तसारणी के प्रथम अतर्वर्ती समूह (transition group) में ताम्र तथा रजत के साथ स्थित है। इसका केवल एक स्थिर समस्थानिक (isotope, द्रव्यमान १९७) प्राप्त है। कृत्रिम साधनो द्वारा प्राप्त रेडियोऐक्टिव समस्थानिको का द्रव्यमान क्रमश १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९८ तथा १९९ है।

स्वर्ण के तेज से मनुष्य अत्यत पुरातन काल से प्रभावित हुआ है क्योकि बहुधा यह प्रकृति मे मुक्त अवस्था मे मिलता है। प्राचीन सभ्यताकाल में भी इस धातु को सम्मान प्राप्त था। ईसा से २५०० वर्ष पूर्व सिंधु घाटी की सभ्यताकाल में (जिसके भग्नावशेष मोहनजोदडो और हडप्पा मे मिले हैं) स्वर्ण का उपयोग आभूषणो के लिये हुआ करता था। उस समय दक्षिण भारत के मैसूर प्रदेश से यह धातु प्राप्त होती थी। चरकसहिता में (ईसा से ३०० वर्ष पूर्व) स्वर्ण तथा उसके भस्म का औषधि के रूप में वर्णन आया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे स्वर्ण की खान की पहचान करने के उपाय धातुकर्म, विविध स्थानो से प्राप्त धातु और उसके शोधन के उपाय, स्वर्ण की कसौटी पर परीक्षा तथा स्वर्णशाला में उसके तीन प्रकार के उपयोगो (क्षेपण, गुण और क्षुद्रक) का वर्णन आया है। इन सब वर्णनो से यह ज्ञात होता है कि उस समय भारत में सुवर्णकला का स्तर उच्च था।

इसके अतिरिक्त मिस्र, ऐसीरिया आदि की सभ्यताओ के इतिहास मे भी स्वर्ण के विविध प्रकार के आभूषण बनाए जाने की बात कही गई है और इस कला का उस समय अच्छा ज्ञान था।

मध्ययुग के कीमियागरो का लक्ष्य निम्न धातु (लोहे, ताम्र, आदि) को स्वर्ण मे परिवर्तन करना था। वे ऐसे पत्थर पारस की खोज करते रहे जिसके द्वारा निम्न धातुओं से स्वर्ण प्राप्त हो जाए। इस काल मे लोगो को रासायनिक क्रिया की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान न था। अनेक लोगो ने दावे किये कि उन्होने ऐसे गुर का ज्ञान पा लिया है जिनके द्वारा वे लोह से स्वर्ण बना सकते हैं जो बाद में सदैव मिथ्या सिद्ध हुए।

उपस्थिति — स्वर्ण प्राय मुक्त अवस्था में पाया जाता है। यह उत्तम (noble) गुण का तत्व है जिसके कारण से उसके यौगिक प्रायः अस्थायी ही होते हैं। आग्नेय (igneous) चट्टानो में यह बहुत सूक्ष्म मात्रा में वितरित रहता है परतु समय से क्वार्ट्ज नलिकाओ (quartz veins) मे इसकी मात्रा मे वृद्धि हो गई है। प्राकृतिक क्रियाओ के फलस्वरूप कुछ खनिज पदार्थों में जैसे लोह पायराइट ($Fe S_2$), सीस सल्फाइड ($Pb S$), चेलकोलाइट ($Cu_2 S$) आदि अयस्को के साथ स्वर्ण भी कुछ मात्रा में जमा हो गया है। यद्यपि इसकी मात्रा न्यून ही रहती है परंतु इन धातुओ का शोधन करते समय स्वर्ण की समुचित मात्रा मिल जाती है। चट्टानों पर जल के प्रभाव द्वारा स्वर्ण के सूक्ष्म मात्रा में पथरीले तथा रेतीले स्थानो में जमा होने के कारण पहाडी जलस्रोतो में कभी कभी इसके कण मिलते हैं। केवल टेलूराइड के रूप में ही इसके यौगिक मिलते हैं।

भारत में विश्व का लगभग दो प्रतिशत स्वर्ण प्राप्त होता है। मैसूर की कोलार की खानो से यह सोना निकाला जाता है। कोलार मे स्वर्ण की ५ खानें हैं। इन खानों से स्वर्ण पारद के साथ पारदन (amalgamation) तथा सायनाइड विधि द्वारा निकाला जाता है। उत्तर मे सिक्किम प्रदेश में भी स्वर्ण अन्य अयस्को के साथ मिश्रित अवस्था में मिला करता है। बिहार के मानभूम और सिंहभूम जिले में सुवर्णरेखा नदी मे भी स्वर्ण के कण प्राप्य हैं।

दक्षिण अमरीका के कोलबिया प्रदेश, मेक्सिको, सयुक्त राष्ट्र अमरीका के केलीफोर्निया तथा एलास्का प्रदेश, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका स्वर्ण उत्पादन के मुख्य केंद्र हैं। ऐसा अनुमान है कि यदि पद्रहवी शताब्दी के अत से आज तक उत्पादित स्वर्ण को सजाकर रखा जाय तो लगभग २० मीटर लबा, चौडा तथा ऊँचा घन बनेगा। आश्चर्य तो यह है कि इतनी छोटी मात्रा के पदार्थ द्वारा करोडों मनुष्यो के भाग्य का नियत्रण होता रहा है।

निर्माणविधि — स्वर्ण निकालने की पुरानी विधि मे चट्टानों की रेतीली भूमि को छिछले तवो पर धोया जाता था। स्वर्ण का उच्च घनत्व होने के कारण वह नीचे बैठ जाता था और हल्की रेत धोवन के साथ बाहर चली जाती थी। हाइड्रालिक विधि (hydraulic mining) में जल की तीव्र धारा को स्वर्णयुक्त चट्टानो द्वारा प्रविष्ट करते हैं जिससे स्वर्ण से मिश्रित रेत जमा हो जाती है।

आधुनिक विधि द्वारा स्वर्णयुक्त क्वार्ट्ज (quartz) को चूर्ण

अपनाई जाती है। भारत मे आज भी जिस विधि से सोना चढाया जाता है इसकी प्राचीनता का एक सुंदर उदाहरण है।

आधुनिक गिल्डिंग में तरह तरह की विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं और इनसे हर प्रकार के सतहो पर सोना चढाया जा सकता है, जैसे तस्वीरो के फ्रेम, अलमारियों, सजावटी चित्रण, घर और महलो की सजावट, किताबों की जिल्दसाजी, धातुओ के आवरण, बटन बनाना, गिल्ड टाव ट्रेड, प्रिंटिंग तथा विद्युत् आवरण, मिट्टी के बर्तनो, पोर्सिलेन, कांच तथा कांच की चूड़ियो की सजावट। टेक्सटाइल, चमडे और पार्चमेंट पर भी सोना चढाया जाता है तथा इन प्रचलित कामो में सोना अधिक मात्रा में उपभुक्त होता है।

सोना चढाने की समस्त विधियाँ यांत्रिक अथवा रासायनिक साधनो पर निर्भर हैं। यांत्रिक साधनो से सोने की बहुत ही बारीक पत्तियाँ बनाते हैं और उसे धातुओ या वस्तुओ की सतह से चिपका देते हैं। इसलिये धातुओ की सतह को भली भाँति खुरचकर साफ कर लेते हैं और उसे अच्छी तरह पालिश कर देते हैं। फिर ग्रीज तथा दूसरे अपद्रव्यो (Impurities) जो पालिश करते समय रह जाती है, गरम करके हटा देते हैं। बहुधा लाल ताप पर धातुओ की सतह पर बर्निशर से सोने की पत्तियों को दबाकर चिपका देते हैं। इसे फिर गरम करते हैं और यदि आवश्यकता हुई तो और पत्तियाँ रखकर चिपका देते हैं, तत्पश्चात् इसे ठढा करके बर्निशर से रगड कर चमकीला बना देते हैं। दूसरी विधि में पारे का प्रयोग किया जाता है। धातुओं की सतह को पूर्ववत् साफकर अम्ल विलयन में डाल देते हैं। फिर उसे बाहर निकालकर सुखाने के बाद झाँवा तथा सुर्खी से रगड कर चिकनाहट पैदा कर देते हैं। इस क्रिया के उपरात सतह पर पारे की एक पतली पर्त पारदन कर देते हैं, तब इसे कुछ समय के लिये पानी मे डाल देते हैं और इस प्रकार यह सोना चढाने योग्य बन जाता है। सोने की बारीक पत्तियाँ चिपकाने से ये पारे से मिल जाती हैं। गरम करने के फलस्वरूप पारा उड जाता है और सोना भूरेपन की अवस्था में रह जाता है, इसे अगेट बर्निशर से रगड़कर चमकीला बना देते हैं। इस विधि में सोने का प्राय दुगुना पारा लगता है तथा पारे की पुनः प्राप्ति नही होती।

रासायनिक गिल्डिंग में वे विधियाँ शामिल हैं जिनमें प्रयुक्त सोना किसी न किसी अवस्था में रासायनिक यौगिक के रूप में रहता है।

सोना चढ़ाना — चाँदी पर प्राय सोना चढाने के लिये, सोने का अम्लराज में विलयन बना लेते हैं और कपडे की सहायता से विलयन को धात्विक सतह पर फैला देते हैं। फिर इसे जला देते हैं और चाँदी से चिपकी काली तथा भारी भस्म को चमड़े तथा अगुलियो से रगडकर चमकीला बना देते हैं। अन्य धातुओ पर सोना चढाने के लिये पहले उसपर चाँदी चढा लेते हैं।

गीलो सोनाचढ़ाई — गोल्ड क्लोराइड के पतले विलयन को हाईड्रोक्लोरिक अम्ल की उपस्थिति में पृथक्कारी कीप की मदद से ईथरीय विलयन में प्राप्त कर लेते हैं तथा एक छोटे बुरुश से विलयन को धातुओ की साफ सतह पर फैला देते हैं। ईथर के उड़ जाने पर सोना रह जाता है और गरम करके पालिश करने पर चमकीला रूप धारण कर लेता है।

आग सोनाचढ़ाई (fire Gilding) — इसमें धातुओ के तैयार साफ और स्वच्छ सतह पर पारे की पतली सी परत फैला देते हैं और उसपर सोने का पारदन चढा देते हैं। तत्पश्चात् पारे को गरम कर उडा देते हैं और सोने की एक पतली पटल बच जाती है, जिसे पालिश कर सुदर बना देते हैं। इसमे पारे की अधिक क्षति होती है और काम करनेवालो के लिये पारे का धुआँ अधिक अस्वस्थ्यकर है।

काष्ठ सोनाचढाई — लकडी की सतह पर चाक या जिप्सम का लेप चढाकर चिकनाहट पैदा कर देते हैं। फिर पानी में तैरती हुई सोने की बारीक पत्तियो का स्थामी विरूपण कर देते हैं। सूख जाने पर इसे चिपका देते हैं तथा दबाकर समस्थितीकरण कर देते हैं। इसके उपरात यह सोने की मोटी चद्दरो की तरह दिखाई देने लगती है। दाँतेदार गिल्डिंग से इसमे अधिक चमक आ जाती है।

मिट्टी के बरतनो, पोर्सिलेन तथा काँच पर सोना चढाने की कला अधिक लोकप्रिय है। सोने के अम्लराज विलयन को गरम कर पाउडर अवस्था मे प्राप्त कर लेते हैं और इसमें बारहवाँ भाग बिसमथ आक्साइड तथा थोडी मात्रा में बोराक्स और गन पाउडर मिला देते हैं। इस मिश्रण को ऊँट के बालवाले बुरुश से वस्तु पर यथास्थान चढा देते हैं। आग में तपाने पर काले मैले रंग का सोना चिपका रह जाता है, जो अगेट बर्निशर से पालिश कर चमकाया जाता है। और फिर ऐसीटिक अम्ल से इसे साफ कर लेते हैं।

लोहा या इस्पात पर सोना चढाने के लिये सतह को साफ कर खरोचने के पश्चात् उसपर लाइन बना देते हैं। फिर लाल ताप तक गरम कर सोने की पत्तियाँ बिछा देते हैं और ढडा करने के उपरात इसको अगेट बर्निशर से रगडकर पालिश कर देते हैं। इस प्रकार इसमें पूर्ण चमक आ जाती है और इसकी सुदरता अनुपम हो जाती है।

धातुओ पर विद्युत् आवरण की कला को आजकल अधिक प्रोत्साहन मिल रहा है। एक छोटे से नाद में गोल्ड सायनाइड और सोडियम सायनाइड का विलयन डाल देते हैं तथा सोने का ऐनोड और जिसपर सोना चढ़ाना होता है, उसका कैथोड लटका देते हैं। फिर विद्युत्प्रवाह से सोने का आवरण कैथोड पर चढ़ जाता है। विद्युत् आवरणीय सोने का रग अन्य धातुओ के निक्षेपण पर निर्भर है। अच्छाई, टिकाऊपन, सुदरता तथा सजावट के लिये निम्न कोटि की धातुओं पर पहले ताँबे का विद्युत् आवरण करके चाँदी चढाते हैं। तत्पश्चात् सोना चढाना उत्तम होता है। इस ढग से सोने के बारीक मे बारीक परत का आवरण चढाया जा सकता है तथा जिस मोटाई का चाहे सोने का विद्युत्-आवरण आवश्यकतानुसार चढ़ा सकते हैं। इससे धातुओ की सक्षरण से रक्षा होती है तथा हर प्रकार की वस्तुओ पर सोने की सुदर चमक आ जाती है। [द० सि०]

सोनीपत स्थिति २८° ५९' ३०" उ० अ० तथा ७७° ३' ३०" पू० दे०। भारत के हरियाणा राज्य के रोहतक जिले की एक तहसील

स्वर्ण के कालायडी विलयन (colloidal solution) का रंग कणों के आकार पर निर्भर है। बड़े कणों के विलयन का रंग नीला रहता है। कणों का आकार छोटा होने पर वह क्रमश. लाल तथा नारंगी हो जाता है। क्लोरोऑरिक अम्ल विलयन मे स्टैनश क्लोराइड ($SnCl_2$) मिश्रित करने पर एक नीललोहित अवक्षेप प्राप्त होता है। इसे कैसियस नीललोहित (purple of cassius) कहते हैं। यह स्वर्ण का बड़ा सवेदनशील परीक्षण (delicate test) माना जाता है।

उपयोग — स्वर्ण का मुद्रा तथा आभूषण के निमित्त प्राचीन काल से उपयोग होता रहा है। स्वर्ण अनेक धातुओं से मिश्रित हो मिश्रधातु बनाता है। मुद्रा में प्रयुक्त स्वर्ण में लगभग ९० प्रतिशत स्वर्ण रहता है। आभूषण के लिये प्रयुक्त स्वर्ण में भी न्यून मात्रा में अन्य धातुएँ मिलाई जाती हैं जिससे उसके भौतिक गुण सुधर जायँ। स्वर्ण का उपयोग दंतकला तथा सजावटी अक्षर बनाने में हो रहा है।

स्वर्ण के यौगिक फोटोग्राफी कला में तथा कुछ रासायनिक क्रियाओं मे भी प्रयुक्त हुए हैं।

स्वर्ण की शुद्धता डिग्री अथवा कैरट में मापी जाती हैं। विशुद्ध स्वर्ण १००० डिग्री अथवा २४ कैरट होता है। [र० चं० क०]

सोने का उत्खनन

सोने का खनन भारत में अत्यंत प्राचीन समय से हो रहा है। कुछ विद्वानों का मत है कि दसवीं शताब्दी के पूर्व पर्याप्त मात्रा में खनन हुआ था। गत तीन शताब्दियो में अनेक भूवेत्ताओं ने भारत के स्वर्णयुक्त क्षेत्रो मे कार्य किया किंतु अधिकांशत: वे आर्थिक स्तर पर सोना प्राप्त करने में असफल ही रहे। भारत में उत्पन्न लगभग संपूर्ण सोना मैसूर राज्य के कोलार तथा हट्टी स्वर्णक्षेत्रो से निकलता है। अत्यंत अल्प मात्रा में सोना उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा मद्रास राज्यो में भी अनेक नदियों की मिट्टी या रेत में पाया जाता है किंतु इसकी मात्रा साधारणत. इतनी कम है कि इसके आधार पर आधुनिक ढंग का कोई व्यवसाय आर्थिक दृष्टि से प्रारंभ नही किया जा सकता। इन क्षेत्रो में कुछ स्थानों पर स्थानीय निवासी अपने अवकाश के समय में इस मिट्टी एवम् रेत को धोकर कभी कभी अल्प सोने की प्राप्ति कर लेते हैं।

कोलार स्वर्णक्षेत्र (Kolar Gold Field) — यह क्षेत्र मैसूर राज्य के कोलार जिले में मद्रास के पश्चिम की ओर १२५ मील की दूरी पर स्थित है। समुद्र से २,८०० फुट की ऊँचाई पर यह क्षेत्र एक उच्च स्थली पर है। वैसे तो इस क्षेत्र का विस्तार उत्तर-दक्षिण मे ५० मील तक है किंतु उत्पादन योग्य पट्टिका (Vein) की लबाई लगभग ४½ मील ही है। इस क्षेत्र मे बालाघाट, नंदी दुर्ग, उरगाम, चैंपियन रीफ (Champion Reef) तथा मैसूर खानें स्थित हैं। खनन के प्रारंभ से मार्च १९५१ के अत तक २,१८,४२,९०२ आउंस स्वर्ण, जिसका मूल्य १६९·६१ करोड रुपया हुआ, प्राप्त हुआ। कोलार क्षेत्र में कुल ३० पट्टिकाएँ हैं जिनकी औसत चौडाई ३-४ फुट है। इन पट्टिकाओं में सर्वाधिक स्वर्ण उत्पादक पट्टिका 'चैंपियन रीफ' है। इसमे नीले भूरे वर्ण का, विशुद्ध तथा कणोंवाला स्फटिक प्राप्त होता है। इसी स्फटिक के साहचर्य में सोना भी मिलता है। सोने के साथ ही टुरमेलीन (Tourmaline) भी सहायक खनिज के रूप में प्राप्त होता है। साथ ही साथ पायरोटाइट (Pyrotite), पायराइट, चाल्कोपायराइट, इल्मेनाइट, मैग्नेटाइट तथा शीलाइट (Shilite) आदि भी इस क्षेत्र की शिलाओं मे मिलते हैं।

स्वर्ण उद्योग — कोलार (मैसूर) की सोने की खानो मे पूर्णत: आधुनिक एव वैज्ञानिक विधियो से कार्य होता है। यहाँ की चार खानें 'मैसूर', 'नदीदुर्ग', 'उरगाम', और 'चैंपियनरीफ' ससार की सर्वाधिक गहरी खानो मे से हैं। इन खानो मे से दो तो सतह से लगभग १०,००० फुट की गहराई तक पहुँच चुकी हैं। इन खानों में ताप १४८° फारेनहाइट तक चला जाता है अतः शीतोत्पादक यंत्रो की सहायता से ताप ११८° फारेनहाइट तक कम करने की व्यवस्था की गई है। सन् १९५३ में उरगाम खान बंद कर दी गई है। औसत रूप से कोलार में प्रति टन खनिज मे लगभग पौने तीन माशे सोना पाया जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व विपुल मात्रा में सोने का निर्यात किया जाता था। सन् १९३९ में ३,१४,५१५ आउंस सोने का उत्पादन हुआ जिसका मूल्य ३,२४,३४,३६४ रुपये हुआ किंतु इसके पश्चात् स्वर्ण उत्पादन में अनियमित रूप से कमी होती चली गई है तथा सन् १९४७ में उत्पादन घटकर १,७१,७९५ आउंस रह गया जिसका मूल्य ४,८९,५४,६३९ रुपए हुआ। गत कुछ ही वर्षों में इस उद्योग की प्रगति के कुछ लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे हैं। सन् १९५७ मे उत्पादन १,७९,००० आउंस, जिसका मूल्य ५,१०,६९,००० रुपए हुआ, तक पहुँचा। कोलार स्वर्णक्षेत्र की खानों का राष्ट्रीयकरण हो गया है तथा मैसूर की राज्य सरकार द्वारा संपूर्ण कार्य संचालित होता है। कोलार विश्व का एक अद्वितीय एवं आदर्श खनन नगर है। यहाँ स्वर्ण खानो के कर्मचारियों को लगभग सभी सभव सुविधाएँ प्रदान की गई हैं। खानो मे भी आपातकालीन स्थिति का सामना करने के लिये विशेष सुरक्षा दल (Rescue Teams) रहते हैं।

हैदराबाद में हट्टी में भी सोना प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार केरल में वायनाड नामक स्थान पर सोना मिला था किंतु ये निक्षेप कार्य योग्य नही थे। [वि० सा० दु०]

सोना चढ़ाना (Gilding)

किसी पदार्थ की सतह पर उसकी सुरक्षा अथवा अलकरण हेतु यांत्रिक तथा रासायनिक साधनो से सोना चढाया जाता है। यह कला बहुत ही प्राचीन है। मिस्रवासी आदिकाल ही से लकडी और हर प्रकार के धातुओ पर सोना चढाने में प्रवीण तथा अभ्यस्त रहे। पुराने टेस्टामेंट में भी गिल्डिंग का उल्लेख मिलता है। रोम तथा ग्रीस आदि देशों में प्राचीन काल से इस कला को पूर्ण प्रोत्साहन मिलता रहा है। प्राचीन काल मे अधिक मोटाई की सोने की पत्तियाँ प्रयोग मे लाई जाती थी। अतः इस प्रकार की गिल्डिंग अधिक मजबूत तथा चमकीली होती रही। पूर्वी देशो के सजावट की कला में इसका प्रमुख स्थान है — मदिरो के गुंबजो तथा राजमहलो की शोभा बढ़ाने के लिये यह कला विशेषतः

से कहलाया गया है—"मनुष्य सभी वस्तुओं की माप है, जो हैं उनका कि वे हैं, जो नहीं हैं उनका कि वे नहीं हैं।" यही सोफिस्त विचारकों के दर्शन का मुख्य स्वर था। इसी से प्राचीन परंपराओं के पोषकों ने, 'सोफिस्त' कहकर उनका उपहास किया। किंतु यूनानी सभ्यता में जनजागरण कि वे अग्रदूत थे।

सोफिस्त विचारकों ने नागरिक एवं दास का भेदभाव मिटाकर सबको शिक्षा देना प्रारंभ किया। सोफिस्तों ने कहीं अपने विद्यालय स्थापित नहीं किए। वे घूम घूमकर शिक्षा देते थे। निःशुल्क शिक्षण के वे समर्थक न थे, क्योंकि उन्होंने इसी कार्य को अपना व्यवसाय बना लिया था।

यूनान में पहले कभी, कला के रूप में, सभाषण की शिक्षा नहीं दी गई थी। सोफिस्तों ने, जनकार्य के लिये भाषण की योग्यता अनिवार्य समझकर, युवकों को सभाषणकला सिखाना प्रारंभ किया। थ्रेसीमेकस और थियोडोरस नामक सोफिस्तों ने अपने विद्यार्थियों के लिये उक्त विषय पर टिप्पणियाँ तैयार की थीं। अरस्तू ने इनके ऋण को स्वीकार नहीं किया किंतु अपने 'रेतारिक्स' में उसने इनकी दी हुई सामग्री का उपयोग किया था।

प्रॉडिकस ने मिलते जुलते शब्दों का अर्थभेद स्पष्ट करने के लिये पुस्तकें लिखी थीं। शिक्षा की दृष्टि से यह कार्य उस प्राचीन काल में कितना महत्वपूर्ण था जब यूनानी भाषा के शब्दकोश का निर्माण नहीं हुआ था। यही नहीं, सोफिस्तों ने विज्ञान आदि विषयों पर भी पाठ तैयार किए।

प्रसिद्ध है कि सोफिस्त किसी भी शब्द का मनमाना अर्थ कर लेते थे। पर उनके इस कार्य का एक दूसरा पक्ष भी है। तब तक किसी सीमित व्याख्यापद्धति का विकास नहीं हुआ था। सोफिस्तों के इस कार्य से विचारकों की आँखें खुलीं और उन्होंने समझा कि चिंतन के नियम स्थिर करके ही व्याख्याओं को सीमित किया जा सकता है। अरस्तू के 'तादात्म्य के नियम' को सोफिस्तों की स्वतंत्र व्याख्यापद्धति का फल मानना सभवत अनुचित न होगा।

परंपरा ने सोफिस्तों को स्थूल व्यक्तिवाद का पोषक ठहराया है। किंतु, प्रोतागोरस के कथन को कि 'मनुष्य ही सब वस्तुओं की माप है' यदि उस समय तक विकसित दार्शनिक मतों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी मानें तो कोई बड़ी भूल न होगी। दार्शनिकों के चिंतन का न कोई मानदंड था, न उनके चिंतन की कोई शैली थी। पाश्चात्य तर्क का जन्मदाता अरस्तू (३८५-२२ ई० पू०) तो बाद में हुआ। अतएव, सोफिस्त विचारकों की स्वतंत्र व्याख्यापद्धति को यूनानी दर्शन के तार्किक उत्कर्ष का निमित्त कारण कहा जा सकता है।

स० ग्रं० — प्लेटो के सवाद, जेलर आउटलाइन हिस्टरी ऑव ग्रीक फिलासफी, ग्रोटे : हिस्ट्री ऑव ग्रीस, भाग ८। [शि० श०]

सोमालिया क्षेत्रफल ६३७६६० वर्ग किमी (२४६,१३५ वर्ग मील) भूतपूर्व ब्रिटिश सरक्षित क्षेत्र सोमालीलैंड एव राष्ट्रसघीय न्यास क्षेत्र सोमालिया को मिलाकर १ जुलाई, १९६० ई० को इस गणतंत्र का निर्माण हुआ। इसके उत्तर में अदन की खाड़ी, पूर्व एव दक्षिण में हिंद महासागर, दक्षिण पश्चिम में केनिया तथा पश्चिम में ईथीयोपिया एव फ्रेंच सोमालीलैंड स्थित हैं। सोमालिया एक चरागाह प्रधान क्षेत्र है। इसकी ८०% जनसख्या पशुपालन पर निर्भर है। दक्षिणी भाग में शेबेली एवं जुब्बा नदियों की घाटियों में गन्ना, केला, दुर्रा, मक्का, तिलहन एव फल की उपज होती है। उत्तरी पश्चिमी प्रांत की मुख्य फसल ज्वार है।

बहुत थोड़े से खनिज पाए जाते हैं। लेकिन अभी इन सबकी खुदाई नहीं होती। जिप्सम एव खनिज तेल निकाले जाते हैं। बेरिल एव कोलंबाइट यहाँ पाए जानेवाले अन्य खनिज हैं।

उद्योग धंधे मुख्यत मास, मत्स्य एवं चमड़े से सबधित हैं। यहाँ से पशुओं एव उनके चमड़ों तथा ताजे फलों का निर्यात होता है। सोमालिया का आयात निर्यात व्यापार मुख्य रूप से इंग्लैंड से होता है। गमनागमन के साधन विकसित नहीं हैं। सड़कों की लबाई ४०० मील है परतु रेलमार्ग तो बिलकुल ही नहीं है। इस देश की कोई व्यापारिक वायुसेवा भी नहीं है। मोगादिशिओ हवाई अड्डे से नैरोबी एव अदन जाया जा सकता है। प्रशासन के लिये इसे आठ विभागों में बाँटा गया है।

सोमालिया की जनसंख्या २० से ३० लाख के बीच में है। मोगादिशु (१०,०००) यहाँ की राजधानी है। सोमाली राष्ट्रीय भाषा है लेकिन कामकाज की भाषाएँ अरबी, इतालवी एव अंग्रेजी हैं। इन भाषाओं में दैनिक समाचारपत्र भी निकलते हैं। निवासियों में सुन्नी मुसलमानों की अधिकता है। शेष किसान (रोमन कैथोलिक) हैं। इस देश मे उच्च शिक्षा के लिये एक विश्वविद्यालयीय सस्थान है। जहाँ विधि, अर्थशास्त्र एव प्रशिक्षण की पढ़ाई होती है। रूसी मदद से वायुसेना को सुदृढ़ किया जा रहा है। [रा० प्र० सि०]

सोमेश्वर अजमेर के स्वामी अर्णोराज का कनिष्ठ पुत्र था। पिता की मृत्यु के बाद उसने अपने जीवन का कुछ भाग कुमारपाल चौलुक्य के दरबार में व्यतीत किया। उसके नाना सिद्धराज जयसिंह के समय गुजरात में ही उसका जन्म हुआ था, और वहीं पर चेदि राजकुमारी कर्पूरदेवी से उसका विवाह हुआ। जब कुमारपाल ने कोंकण देश के स्वामी मल्लिकार्जुन पर आक्रमण किया, तो चौहान वीर सोमेश्वर ने शत्रु के हाथी पर कूदकर उसका वध किया।

उधर अजमेर में एक के बाद दूसरे राजा की मृत्यु हुई। अपने पिता अर्णोराज की हत्या करनेवाले जगद्देव को बीसलदेव ने हराया। बीसलदेव की मृत्यु के बाद उसके पुत्र को हटाकर जगद्देव का पुत्र गद्दी पर बैठा किंतु दो वर्षों के अंदर ही सिंहासन फिर शून्य हो गया और चौहान सामंत और मंत्रियों ने गुजरात से लाकर सोमेश्वर को गद्दी पर बैठाया। सोमेश्वर ने लगभग आठ वर्ष (वि० स० १२२६-१२३४) तक राज्य किया।

सोमेश्वर का राज्य प्राय सुख और शांति का था। उसने अर्णोराज के नाम से एक नगर बसाया, और अनेक मंदिर बनवाए) जिनमें से एक भगवान् त्रिपुरुष देव का और दूसरा वैद्यनाथ देव का था। ब्राह्मण और अब्राह्मणों सभी सप्रदायों को उसकी संरक्षा

तथा नगर है। नगर की जनसंख्या ४५,८८२ (१६६१) तथा क्षेत्रफल ४३८ वर्ग किमी है। भार्गों द्वारा स्थापित इस नगर का उत्तम और पुनीत इतिहास है। दुर्योधन से युधिष्ठिर द्वारा याचित 'पतों' मे यह भी एक था। वर्तमान नगर स्थानीय व्यापारिक केंद्र है। तहसील तथा अन्य राजकीय कार्यालय नगर के मध्यवर्ती किंचित् उच्च धरातल पर स्थित हैं। नगर से 'ग्रैंड ट्रंक रोड' पाँच मील दूर है। दिल्ली-पानीपत-मार्ग पर यह स्थित है। नगर के दक्षिणी भाग में साइकिल का कारखाना है, जिसके ठीक सामने, रेलवे लाइन के दूसरी ओर, औद्योगिक क्षेत्र है। गंगा और सिंधु का जलविभाजक क्षेत्र सोनीपत तहसील से होकर जाता है। पश्चिमी यमुना नहर से सिंचाई होती है। यमुना नदी के दाहिने किनारे पर नदीनिर्मित भूमि है। कुछ भाग पठारी भी है। [शा० ला० का०]

सोपारा बंबई के थाना जिले मे स्थित है। इसका प्राचीन नाम शूर्पारक है। देवाना प्रिय प्रियदर्शी अशोक के चतुर्दश शिलालेख शहबाजगढ़ी (जिला पेशावर), मनसेहरा (जिला हजारा), गिरनार (जूनागढ, काठियावाड़ के समीप), सोपारा (जिला थाना, बंबई), कलसी (जिला देहरादून), धौली (जिला पुरी, उड़ीसा), जौगढ़ (जिला गंजाम) तथा इलगुर्डा (जिला कर्नूल, मद्रास) से उपलब्ध हुए हैं। ये लेख पर्वत की शिलाओं पर उत्कीर्ण पाए गए हैं।

शहबाजगढ़ी तथा मनसेहरा के अभिलेखों के अतिरिक्त, सोपारा का अभिलेख तथा अन्य अभिलेख भारतीय ब्राह्मी लिपि में हैं। इसी ब्राह्मी से वर्तमान देवनागरी लिपि का विकास हुआ है। यह बाईं ओर से दाहिनी ओर को लिखी जाती थी। शहबाजगढ़ी तथा मनसेहरा के अभिलेख ब्राह्मी में न होकर खरोष्ठी मे हैं। खरोष्ठी अलमाइक की एक शाखा है जो अरबी की भाँति दाहिने से बाएँ को लिखी जाती थी। सीमाप्रात के लोगों के समवतः ब्राह्मी से अपरिचित होने के कारण अशोक ने उनके हेतु खरोष्ठी का उपयोग किया।

सोपारा का अभिलेख अशोक के साम्राज्य के सीमानिर्धारण में भी अति सहायक है। सोपारा तथा गिरनार के शिलालेखो से यह सिद्ध है कि पश्चिम में अशोक के साम्राज्य की सीमा पश्चिमी समुद्र थी।

अशोक के अभिलेख हृदय पर सीधा प्रभाव डालते हैं। अशोक ने इस तथ्य को भली भाँति समझ रखा था कि भाष्यकार मूल उपदेश को निस्सार कर देते हैं। अतएव उसने अपनी प्रजा तक पहुँचने का प्रयास किया। सम्राट् के अपने शब्दों में ये लेख सरल एवं स्वाभाविक शैली में जनभाषा पालि के माध्यम से उसके उपदेशों को जन जन तक पहुँचाते हैं। यही इन अभिलेखो का वैशिष्ट्य तथा यही इनकी सफलता है। [र० उ०]

सोफिया (Sofia) स्थिति : ४२° ४५' उ० अ० तथा २३° २०' पू० दे०। यह बल्गेरिया की राजधानी तथा वहाँ का सबसे बड़ा नगर है। यह नगर विटोशा (Vitosha) तथा बाल्कैन पर्वतो के मध्य उच्च समतल भूमि पर स्थित है तथा बूखारेस्ट से लगभग १८० मील दक्षिण पश्चिम में है। यहाँ की जनसंख्या ६,६८,४६४ (१६६२) है।

सोफिया, बल्गेरिया का प्रमुख व्यापारिक केंद्र है। यहाँ पर मशीनें, कपड़े, खाद्य पदार्थ, बिजली के सामान तथा अनेक पदार्थों के निर्माण के लिये कई कारखानें हैं। यहाँ से चमड़ा, कपड़ा तथा अनाज का निर्यात होता है।

सोफिया की प्रमुख इमारतों में राजमहल, सेंट एलेक्जेंडर का गिरजाघर, संसद भवन, ओपेरा हाउस तथा विश्वविद्यालय भवन हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय नगर को बमबारी से काफी क्षति उठानी पड़ी थी। [नं० कु० रा०]

सोफिस्त आधुनिक प्रचलन में, 'सोफ़िस्त' वह व्यक्ति है, जो दूसरों को अपने मत में करने के लिये युक्तियों, एवं व्याख्याओं का आविष्कार कर सके। किंतु यह 'सोफ़िस्त' का मूल अर्थ नहीं है। प्राचीन यूनानी दर्शनकाल मे, ज्ञानाश्रयी दार्शनिक ही सोफिस्त थे। तब 'फ़िलॉस-फ़ॉफ़' का प्रचलन न था। ईसा पूर्व पाँचवीं तथा चौथी शताब्दियों में यूनान के कुछ सीमावर्ती दार्शनिको ने सांस्कृतिक विचारों के विरुद्ध आंदोलन किया। एथेंस नगर प्राचीन यूनानी संस्कृति का केंद्र था। वहाँ इस आंदोलन की हँसी उडाई गई। अफलातून के कुछ संवादों के नाम सोफिस्त कहे जानेवाले दार्शनिकों के नामों पर हैं। उनमें सुकरात और प्रमुख सोफिस्तो के बीच विवाद प्रस्तुत करते हुए अंत में सोफिस्तों को निरुत्तर करा दिया गया है। सुकरात के आत्मत्याग से यूनान मे उसका संमान इतना अधिक हो गया था कि सुकरात को सोफिस्त आंदोलन का विरोधी समझकर, परंपरा ने 'सोफिस्त' शब्द अपमानसूचक मान लिया।

वस्तुत. सोफिस्त दार्शनिको ने ही यूनानी सभ्यता का मानवीकरण किया। इनसे पूर्व, कभी किसी यूनानी दार्शनिक ने मनुष्य को सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माता नही समझा था। एकियन सभ्यता में, जिसकी झलक होमर के 'इलियड' नामक महाकाव्य में मिलती है सृष्टि का भार ओलिंपस के देवी देवताओ को सौंपा गया था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में, देवी देवताओ से अनिच्छा होने पर जिस दर्शन का सूत्रपात हुआ, वह प्रकृति, अथवा नियति को संसार और उसकी संपूर्ण गति विधि की जननी मान बैठा था। किंतु सोफिस्त विचारकों का ध्यान इस विचार के प्रत्यक्ष रूप की ओर गया। उन्होने देखा, देवपुत्र, अथवा प्रकृतिपुत्र यूनानी कुलीन प्रथा से आक्रांत थे। उन्होंने समाज को स्वतंत्र पुरुषों एवं दासों में विभाजित कर रखा था। सार्वजनिक शिक्षा की कोई रूपरेखा बनी ही न थी। उपेक्षित वर्ग का जनकार्यों में कोई स्थान न था। परिवर्तन की किसी भी योजना के सफल होने की आशा तभी की जा सकती थी, जब पुरानी दूषित परंपराओं के सुरक्षित रखने का श्रेय मनुष्य को दिया जाता। अतएव सोफिस्तो ने प्रकृतिवादी दर्शन के स्थान पर मानववादी दर्शन की स्थापना की। अफलातून के 'प्रोतागोरस' नामक संवाद में प्रसिद्ध सोफिस्त प्रोतागोरस के मुख

वंश, प्रतिहार, परमार और चहमाण सभी अग्निकुल के सदस्य थे। अपने पुरालेखों के आधार पर चौलुक्य यह दावा करते हैं कि वे ब्रह्मा के चुलुक (करतल) से उत्पन्न हुए थे, और इसी कारण उन्हें यह नाम मिला। प्राचीन परंपराओं से ऐसा लगता है कि चौलुक्य मूल रूप से कन्नौज के कल्याणकटक नामक स्थान में रहते थे और वहीं से वे गुजरात जाकर बस गए। इस परिवार की चार शाखाएँ अब तक ज्ञात हैं। इनमें से सबसे प्राचीन मत्तमयूर (मध्यभारत) में नवीं शताब्दी के चतुर्थांश में शासन करती थी। अन्य तीन गुजरात और लाट में शासन करती थीं। इन चार शाखाओं में सबसे महत्वपूर्ण वह शाखा थी जो सारस्वत मंडल में अणहिलपत्तन (वर्तमान गुजरात के पाटन) को राजधानी बनाकर शासन करती थी। इस वंश का सबसे प्राचीन ज्ञात राजा मूलराज है। उसने ९४२ ईस्वी में चापों को परास्त कर सारस्वतमंडल में अपनी प्रभुता कायम की। मूलराज ने सौराष्ट्र और कच्छ के शासकों को पराजित करके, उनके प्रदेश अपने राज्य में मिला लिए, किंतु उसे अपने प्रदेश की रक्षा के लिये, शाकंभरी के चहमाणों, लाट के चौलुक्यों, मालव के परमारों और त्रिपुरी के कलचुरियों से युद्ध करने पड़े। इस वंश का दूसरा शासक भीम प्रथम है, जो १०२२ में सिंहासन पर बैठा। इस राजा के शासन के प्रारंभिक काल में महमूद गजनवी ने १०२५ में अणहिलपत्तन को ध्वस कर दिया और सोमनाथ के मंदिर को लूट लिया। महमूद गजनवी के चौलुक्यों के राज्य से लौटने के कुछ समय पश्चात् ही, भीम ने आबू पर्वत और भीनमल को जीत लिया और दक्षिण मारवाड़ के चाहमानों से लड़ा। ११वीं शताब्दी के मध्यभाग में उसने कलचुरि कर्ण से संधि करके परमारों को पराजित कर दिया और कुछ काल के लिये मालव पर अधिकार कर लिया। भीम के पुत्र और उत्तराधिकारी कर्ण ने कर्णाटवालों से संधि कर ली और मालव पर आक्रमण करके उसके शासक परमार जयसिंह को मार डाला, किंतु परमार उदयादित्य से हार खा गया। कर्ण का बेटा और उत्तराधिकारी जयसिंह सिद्धराज इस वंश का सबसे महत्वपूर्ण शासक था। ११वीं शताब्दी के पूर्वार्ध से चौलुक्यों का राज्य गुर्जर कहलाता था। जयसिंह शाकंभरी और दक्षिण मारवाड़ के चहमाणों, मालव के परमारों, बुंदेलखंड के चंदेलों और दक्षिण के चौलुक्यों से सफलतापूर्वक लड़ा। उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल ने, शाकंभरी के चहमाणों, मालव नरेश बल्लाल और कोंकण नरेश मल्लिकार्जुन से युद्ध किया। वह महान् जैनधर्म विचारक हेमचंद्र के प्रभाव में आया। उसके उत्तराधिकारी अजयपाल ने भी शाकंभरी के चाहमानों और मेवाड़ के गुहिलों से युद्ध किया, किंतु ११७६ में अपने द्वारपाल के हाथों मारा गया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी मूलराज द्वितीय के शासनकाल में मुइज-उद्दीन मुहम्मद गोरी ने ११७८ में गुजरात पर आक्रमण किया, किंतु चौलुक्यों ने उसे असफल कर दिया। मूलराज द्वितीय का उत्तराधिकार उसके छोटे भाई भीम द्वितीय ने सँभाला जो एक शक्तिहीन शासक था। इस काल में प्रांतीय शासकों और सामंतों ने स्वतंत्रता के लिये सिर उठाया किंतु बघेलवंशी सरदार, जो राजा के मंत्री थे, उनपर नियंत्रण रखने में सफल हुए। फिर भी उनमें से जयसिंह नामक एक व्यक्ति को कुछ काल तक सिंहासन पर बलात् अधिकार करने में सफलता मिली किंतु अंत में उसे भीम द्वितीय के समुख झुकना पड़ा। चौलुक्य वंश से संबंधित वाघेलों ने इस काल में गुजरात की विदेशी आक्रमणों से रक्षा की, और उस प्रदेश के वास्तविक शासक बन बैठे। भीम द्वितीय के बाद दूसरा राजा त्रिभुवनपाल हुआ, जो इस वंश का अंतिम ज्ञात राजा है। यह १२४२ में शासन कर रहा था। चौलुक्यों की इस शाखा के पतन के पश्चात् वाघेलों का अधिकार देश पर हो गया।

सं० ग्रं० — ए० के० मजूमदार : हिस्टरी ऑव द चौलुक्याज।

[वी० च० गा०]

सोलारिओ, आंद्रिया (१४६०-१५२० ई०) मिलान स्कूल का इटालियन चित्रकार। प्रारंभ में अपने बड़े भाई क्रिस्टोफानो के तत्वावधान में कला सीखी, जो स्वयं भी एक अच्छा मूर्तिकार और भवनशिल्पी माना जाता था तथा मिलान के चर्च में नियुक्त था। सोलारिओ की सर्वप्रथम कृति 'होली फैमिली ऐंड सेंट जेरोम' काफी सुंदर बन पड़ी। फिर तो उसने कितने ही पोर्ट्रेट चित्रों का निर्माण किया जिससे वह धीरे धीरे ख्याति अर्जित करता गया। १५०७ ई० में एक परिचयपत्र के साथ जब वह फ्रांस गया तो एंबोइज के कार्डिनल ने नारमंडी के किले में स्थित चर्च की दीवारों को, जो बाद में फ्रेंच राज्यक्रांति के दौरान ध्वस्त हो गईं, चित्रित करने का काम उसे सौंपा। इसी बीच उसे फ्लांडर्स भी जाना पड़ा। उसकी परवर्ती कलाकृतियों पर फ्लेमिश प्रभाव भी द्रष्टव्य है। १५१५ ई० में वह पुन. इटली लौट आया। 'फ्लाइट इनटु ईजिप्ट' के दृश्यांकन में इसकी अप्रत्यक्ष झलक मिलती है। अंतिम कृति 'दि एजम्प्शन ऑव दि वर्जिन' जब एक वेदिका पर चित्रित की जा रही थी तभी उसकी अकस्मात् मृत्यु हो गई। इस अधूरी कृति को बर्नार्डिनो डि कैंपी नामक दूसरे कलाकार ने पूरा किया। मिलान और रोम के संग्रहालयों में उसके अनेक पोर्ट्रेट चित्र मिलते हैं। [श० रा० गु०]

सोवियत संघ में कला सोवियत प्रदेश में खोज से प्राप्त आद्य स्मारक पाषाणयुग का निर्देश करते हैं। यह मध्य एशिया तथा देश के अन्य बहुतेरे भागों में प्राप्त चट्टानों पर उत्कीर्ण चित्रण तथा छोटी मूर्तियाँ थीं। ईसा के पूर्व तीसरी और दूसरी सहस्राब्दियों में नीपर डिस्ट्रिक्ट और मध्य एशिया मिट्टी के बर्तनों के चित्रण के लिये प्रसिद्ध थे, और मध्य एशिया तथा काकेशस के कारीगरों ने मूल्यवान धातुओं के सुंदर अलंकार तैयार किए थे। ईसा पूर्व प्रथम सहस्राब्दी तथा ईसा की आरंभिक शतियों में कला उन प्रदेशों में फल फूल रही थी जो अब सोवियत संघ के दक्षिणी प्रदेश कहे जाते हैं। कृष्णसागर तट के उत्तर में रहनेवाले सीथियन लोग सोने के पशु चित्रित किया करते थे। संस्कृति में सीथियनों के सजातीय अल्ताई फिर्के के मृतक स्तूपों में एक कंबल मिला जो संसार में सबसे पुराना समझा जाता है तथा जिसकी रूपाकृति में घुड़सवार और रेनडीयर बने थे। अलंकार निर्माण, चित्रकला और मूर्तिकला कृष्णसागर तट के प्राचीन नगरों में उत्कर्ष पर थी। ट्रांस काकेशस में उरार्तु राज्य, जहाँ दास रखने की प्रथा प्रचलित थी, अपने सुंदर

प्राप्त थी। सोमेश्वरीय द्रम्मों का प्रचलन भी इसके राज्य के ऐश्वर्य को द्योतित करता है।

सोमेश्वर ने प्रतापलंकेश्वर की पदवी धारण की। पृथ्वीराज-रासो के अनुसार उसका विवाह दिल्ली के तंवर राजा अनंगपाल की पुत्री से हुआ और पृथ्वीराज इसका पुत्र था। इसी काव्य में गुजरात के राजा भीम के हाथों उसकी मृत्यु का उल्लेख है। ये दोनो बातें असत्य हैं। पृथ्वीराज चेदि राजकुमारी कुमारदेवी का पुत्र था और सोमेश्वर की मृत्यु के समय भीम गुजरात का राजा नही बना था। किंतु गुजरात से उसकी कुछ अनबन अवश्य हुई थी। उसकी मृत्यु के समय पृथ्वीराज केवल दस साल का था।

[द० श०]

सोयाबीन (Soybean) लेग्युमिनोसी (Leguminosae) कुल का पौधा है। यह दक्षिणी पूर्वी एशिया का देशज कहा जाता है। हजारो वर्षों से यह चीन मे उगाया जा रहा है। आज संसार के अनेक देशो, रूस, मंचूरिया, अमरीका, अफ्रीका, फ्रास, इटली, भारत, कोरिया, इडोनेशिया और मलाया द्वीपो मे यह उगाया जा रहा है। अमरीका मे मक्का के बाद इसी फसल का स्थान है। अमरीका मे प्रति एकड़ २,००० पाउंड उपज होती है, जब कि भारत में प्रति एकड़ ३,००० पाउड तक उगाया गया है तथा और अधिक देखभाल से ४,००० पाउंड तक उगाया जा सकता है। उत्तर प्रदेश के पंतनगर के कृषि विश्वविद्यालय मे और जबलपुर के जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय में इसपर विशेष शोध कार्य हो रहा है।

प्राचीनकाल मे चीन मे खाद्य के रूप मे और औषधो मे इसका व्यवहार होता था। आज यह पशुओं के चारे के रूप में, मानव आहार और अनेक उद्योगो मे काम आता है। इसकी खेती और उपयोगिता दिन दिन बढ़ रही है। एक समय इसका महत्व चारे के रूप मे ही था पर आज मानव खाद्य के रूप में भी इसका महत्व बहुत बढ गया है। एक पाउंड सोयाबीन से इसका एक गैलन दूध बनाया जा सकता है। इसमे एक प्रकार की महक होती है जो कुछ लोगो को पसंद नही है, पर इस महक के हटाने का प्रयत्न हो रहा है। सोयाबीन में मास की अपेक्षा प्रोटीन, दूध की अपेक्षा अधिक कैलिसयम तथा अंडे की अपेक्षा अधिक वसावाला लेसिथिन रहता है। इससे प्राप्त लेसिथिन का उपयोग मिठाइयो, पावरोटी और ओषधियो में हो रहा है। इसमें अनेक विटामिन, खनिज लवण और अम्ल भी पर्याप्त मात्रा में रहते हैं। इसकी दाल बड़ी स्वादिष्ट और पुष्टिकर होती है। इसकी हरी फली की साग सब्जियां बनती हैं।

सोयाबीन में १८ से २० प्रतिशत तेल रहता है। इस तेल में ८४ से ८७ प्रतिशत तक असंतृप्त ग्लिसराइड रहता है। अत इसकी गणना सूखनेवाले तेलो में होती है और पेंटों के निर्माण में उपयुक्त होता है। फुलर मिट्टी द्वारा विरंजन तथा भाप द्वारा, निर्गंधीकरण के बाद, यह तेल खाने के योग्य हो जाता है। तब इसके मारगरीन और वनस्पति तैयार हो सकते हैं। भारत में भी अमरीका से आया यह तेल, मूंगफली के तेल के स्थान पर वनस्पति के निर्माण में इस्तेमाल होता है। तेल का सर्वाधिक उत्पादन आज अमरीका, जर्मनी तथा मंचूरिया में होता है।

बीज से तेल निकालने पर जो खली बच जाती है उसमे प्रोटीन प्रचुर मात्रा में रहता है। यह सूअरो, मुर्गों और अन्य पशुओं के आहार के रूप में बहुमूल्य सिद्ध हुई है। पालतू मधुमक्खियो को भी यह खिलाई जा सकती है। बीज से आटा भी बनाया गया है। इस आटे की रोटियाँ और मिठाइयाँ स्वादिष्ट और पुष्टिकर होती हैं। आटे का उपयोग पेंट, अग्निशामक द्राव और ओषधियाँ बनाने मे होता है। इससे कोर्टोसोम (Cortosome) नामक ओषधि भी बनाई जाती है। इसकी सहायता से सुप्रसिद्ध ओषधि 'स्ट्रेप्टोमाइसिन' बनाई जाती है। आटे का कागज पर लेप चढाने तथा वस्त्रों के सज्जीकरण मे भी उपयोग हुआ है। यह प्रमेह, अम्लोपचय (acidosis) तथा पेट की अन्य गड़बड़ियो में लाभप्रद बताया गया है।

सोयाबीन उन सभी मिट्टियों में अच्छा उपजता है जहाँ मक्का उपजता है। मक्के के लिये अच्छे किस्म की मिट्टी और जलवायु आवश्यक होती हैं। दुमट मिट्टी सबसे अच्छी होती है। इसके खेतो मे पानी जमा नही रहना चाहिए। सामान्य मिट्टी में भी यह उपज सकता है यदि उसमें चूना और उर्वरक डाले गए हो। इसके पौधो की जड़ो मे गुटिकाएँ (nodules) होती हैं जिनमें वायु के नाइट्रोजन का मिट्टी में स्थिरीकरण का गुण होता है। अतः इसके खेतो मे अधिक नाइट्रोजन खाद की आवश्यकता नही होती। इसके खेतो में घासपात नही रहना चाहिए। जुलाई मास में ड्रिल द्वारा बीज बोए जाते हैं और चार मास में फसल तैयार हो जाती है। इसके खेत में फिर गेहूँ, आलु, और मूंगफली आदि की अन्य फसलें उगाई जा सकती हैं।

सोयाबीन सैकड़ो प्रकार का होता है। संकरण से और भी अनेक प्रकार के पौधे उगाए गए हैं। इसके पौधे दो से साढ़े तीन फुट ऊँचे होते हैं। इसके डंठल, पत्ते और फलियो पर छोटे छोटे महीन भूरे या धूसर रोएँ होते हैं। इसका फूल सफेद या नीलारुण (purple) होता है। फलियाँ हल्के पीले से धूसर भूरे या काले रंग की होती हैं। फलियो में दो से छह तक गोल या अडाकार दाने होते हैं। दाने पीले, हरे, भूरे, काले या चित्तीदार हो सकते हैं। पीले बीजवाले सोयाबीन मे तेल की मात्रा सर्वाधिक होती है। पौधे और बीज की प्रकृति मिट्टी, उपजाने की विधि, मौसम और स्थान के कारण बदल सकती है।

सोयाबीन के शत्रु भी होते हैं। कुछ कीड़े और इल्लियाँ पौधो को क्षति पहुँचाती हैं। कुछ जानवर, भूशूकर और खरगोश भी पौधों को खाकर नष्ट कर देते हैं। भारत में सोयाबीन की अधिकाधिक खेती करने के लिये भारत का कृषि विभाग किसानो को प्रोत्साहित कर रहा है। प्रोटीन की प्रचुरता के कारण महात्मा गाधी ने भी इसको उगाने और उपयोग करने की ओर लोगो का ध्यान दिलाया था।

[फू० स० व०]

सोलंकी राजवंश १३वीं और १४वीं शताब्दी की चारणकथाओं मे गुजरात के चौलुक्यों का सोलंकियो के रूप में वर्णन मिलता है। ये राजपूत जाति के थे, और कहा जाता है, इस वंश का संस्थापक आबू पर्वत पर एक अग्निकुंड से उत्पन्न हुआ था। यह

परंपराओं की रक्षा करती है उन्हें जारी रखती है और उनका विकास करती है। कला की यह राष्ट्रीय बहुरूपता और व्यक्तिगत रचनात्मक शैलियों की विविधरूपता समाजवादी यथार्थवाद के आधार पर तथा सार्थक आदर्शवादी कला के सोवियत ढंग पर आश्रित है, और यह ऐसे इतिहाससिद्ध मूर्त रूपों में अभिव्यजित होती है, जो जीवन को विकासप्रक्रिया में होकर गुजरते हुए प्रतिबिंबित करते हैं।

सोवियत संघ के सभी लोग, जिनमें वे लोग भी शामिल हैं जो चित्रकला, मूर्तिकला और बिंदु-रेखा-चित्रण के संबंध में बहुत कम या बिलकुल नहीं जानते थे, कला की उन्नति के लिये यथासंभव सब कुछ कर रहे हैं। उजबेक लोगों का उल्लेख पर्याप्त है जिनकी कला का प्रतिनिधित्व अब प्रतिभाशाली प्रकृतिचित्रण करनेवाले यूतजिरब्येव, अजरबैजानवाले (मूर्तिकार एफ० अब्दुर्रखमानोव) बूरियत लोग (टी० सदिलोव) और दूसरे बहुतेरे लोगों के साथ बहुमन्यक चित्रकार कर रहे हैं। सोवियत कलाकारों के रचनात्मक संघ में अब विभिन्न जातियों के ८,००० से अधिक कलाकार सम्मिलित हैं।

सोवियत चित्रकला की शाखा ने अब विविध प्रकार का चित्रण करनेवाले चित्रकारों की अनेकानेक कृतियों को जन्म दिया है जैसे आई० ब्रोद्स्की, बी० ग्रेकोव, बी० जोहान्सन और वी सेरोव के सामान्य ऐतिहासिक और आधुनिक विषयों के चित्रों को, एस० चुइकोव (भारतीय विषयवस्तु पर एक चित्रमाला के रचनाकार) ए० प्लास्तोव, और टी० याब्लोंस्काया के जनजीवन संबंधी चित्रों को, एम० नेस्तेरोव और पी० कोरिन के व्यक्तिचित्रों, एस० जेरासिमोव और एम० सयनि के दृश्यचित्रों और वाई० लाजेरे और ए० दानेका के स्मारक चित्रों को। एन० आद्रेयेव, आई० श्वाद्र, वी० मुखीना, एस० कोनेन्कोव और वाई० निकोलाद्जे के द्वारा स्मारकों से मूर्तियों तक सोवियत् तक्षणकारों ने सभी शैलियों का प्रतिनिधित्व किया है। ग्राफिक कला (पोस्टर, उत्कीर्ण चित्र, रेखांकन, व्यंगचित्र आदि) में कुक्रिनिक्सी, डी० मूर, वी० फ़ावोर्स्की, डी० श्मारिनोव, वाई० किब्रिक, इस्टोनिया के ग्राफिक कलाकारों के एक दल ने अत्यंत सजीव कार्य किया है। लोगों की आदर्शवादी और सौंदर्यानुभूति विषयक शिक्षा को बढ़ाने के उच्च उद्देश्य से सोवियत कला भावात्मक (ऐब्स्ट्रैक्ट) शैली का परित्याग करती है। वह उसे कला के विकास के लिये हानिप्रद, उसको नाश की ओर ले जानेवाली, तथा सत्य और जीवन के सौंदर्य को प्रतिबिंबित करने में अवरोधक मानती है।

सोवियत कला का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र लोगों की हस्तकला है, यथा रूसियों, उक्रेनियों, जॉर्जियावासियों, कज़ाक और बाल्टिक-[वासियों के मिट्टी के बर्तन, तुर्कमेनिया, आर्मीनिया, अजरबैजान और दागिस्तान निवासियों का कालीन का काम, लाख की वार्निश की रूसियों की नन्ही नन्ही चीजें, और बहुतेरे लोगों की बनाई लकड़ी और हड्डी पर नक्काशी और धातु की चीजें। सोवियत कलाकौशल की चीजों को राज्य और जनसंस्थाओं द्वारा व्यापक सहायता प्राप्त है और उनके इस प्रोत्साहन से नए सिरे से विकसित हो रही हैं।

सौदा, मिर्जा मुहम्मद रफ़ीअ इनके पिता मुहम्मद शफ़ीअ व्यापार के लिये काबुल से दिल्ली आए और यहीं विवाह कर बस गए। सन् १७११ ई० में यहीं सौदा का जन्म हुआ और यहीं शिक्षा पाई। पिता के धन के समाप्त होने पर सेना में नौकरी की, पर उसे छोड़ दिया। कविता करने की ओर रुचि पहले ही से थी। पहले फारसी में शेर कहने लगे और फिर उर्दू में। यह शाह हातिम के शिष्य थे। बादशाह शाहआलम इनसे अपनी कविता का संशोधन कराते थे। दिल्ली की दुरवस्था बढ़ने पर यह पहले फर्रुखाबाद गए और वहाँ कई वर्ष रहने के अनंतर यह सन् १७७१ ई० में नवाब शुजाउद्दौला के दरबार में फैजाबाद पहुँचे। नवाब आसफ़ुद्दौला ने इन्हें मलिकुश्शुअरा की पदवी तथा अच्छी वृत्ति दी, जिससे अंतिम दिनों में सुखपूर्वक रहते हुए सन् १७८१ में इनकी लखनऊ में मृत्यु हुई।

उर्दू काव्यक्षेत्र में सौदा का स्थान बहुत ऊँचा है क्योंकि यह उन कवियों में से हैं, जिन्होंने उर्दू भाषा का खूब प्रसार किया और उसे इस योग्य बनाया कि उसमें हर प्रकार की बातें कही जा सकें। इन्होंने हर प्रकार की कविताएँ — गजल, मर्सिया, मुखम्मस कसीदा, हजो आदि रचकर उसके भांडार को संपन्न किया। इनमें कसीदा तथा हजों में सौदा के समकक्ष कोई अन्य कवि नहीं हुआ। कसीदे में इनकी कल्पना की उड़ान तथा शब्दों के नियोजन के साथ ऐसा प्रवाह है कि पढ़ने ही में आनंद आता है। अपनी हजोओं में समय की अवस्था तथा लोगों के वर्णन में अत्यंत विनोदपूर्ण व्यंग्य किए हैं।

इनकी कविता में केवल मुसलमानी संस्कृति ही नहीं झलकती प्रत्युत हिंदुस्तान के रीति रिवाज, देवताओं के नाम, उनकी लीलाओं के उल्लेख यत्र तत्र बराबर मिलते हैं। सौदा ने फारसी शब्दों के साथ हिंदी शब्दों का प्रयोग ऐसी सुंदरता से किया है कि इनकी कविता की भाषा में अनोखापन आ गया है। इनका भाषा पर ऐसा अधिकार है कि यह हर प्रकार के प्रसंग का बड़ी सुंदरता से वर्णन कर देते हैं। इनकी समग्र कविता कुल्लियाते सौदा' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है, जिसमें गजल, कसीदे, हजो सभी संकलित हैं। [र० ज०]

सौरपुराण की गिनती उपपुराणों में होती है, सूतसंहिता में (सन् १४ सौ के पूर्व) स्थित क्रम के अनुसार यह सोलहवाँ उपपुराण है। किसी किसी का मत है कि सांब, भास्कर, आदित्य, भानव और सौरपुराण एक ही ग्रंथ हैं केवल नाम भिन्न भिन्न हैं, परंतु यह कथन गलत है, क्योंकि देवी भागवत ने आदित्यपुराण से पृथक् सौर को गिना है (स्क० १, ३, १५) एवं सूतसंहिता ने सांबपुराण से भिन्न सौरपुराण गिना है, भास्कर और भानव ये दो पाठभेद भार्गव और मानव के स्थान में पाए जाते हैं। अत: सौरपुराण के साथ उनको एकरूप कहना गलत है, कदाचित् ये उपपुराण होने पर भी संप्रति उपलब्ध नहीं हैं, एवं प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथों में इनका उल्लेख नहीं है।

सौरपुराण पूना की आनंदाश्रम संस्था द्वारा संभवतः दाक्षिणात्य

काँसे के काम के लिये प्रसिद्ध था। मध्य एशिया के कारीगर मिट्टी, पत्थर और हाथीदाँत के स्मृतिशिल्प बनाते थे। इन लोगो के कुछ भाग यूनानी बाख्त्री राज्य, पार्थिया, और कस्साइ राज्य के अधीन थे। खोरेज्म राज्य को अपनी स्मारक चित्रकला पर गर्व था जिसके बाद के युग के कुछ नमूने मध्य एशिया के दूसरे भागो में पाए गए हैं।

सोवियत संघ के बहुत से लोगो की कला सामंतवादी युग मे रूप ग्रहण करने लगी थी। रूसी, उक्रेनी और बेलोरूसी संस्कृति का आधार कीएव रूस की कला अपने उत्कर्ष पर १० वीं और १२ वी शती के बीच पहुँच गई थी। स्लाव जाति की प्राचीन कला से उत्पन्न होकर कीएव रूस की कला ने ईसाई धर्म के उद्भव के साथ साथ बैजंतिया कला के अनेक रूप और पद्धतियो को आत्मसात् किया। यह कीएव और नोवगोरोद मे दक्षिणी सोफिया के गिरजाघरों के मूल मोज़ेक और फ्रेस्को मे प्रत्यक्ष है। १२ वी और १३ वी शती मे स्मारक और पवित्र प्रतिमा के चित्रण की स्थानीय प्रणालियाँ नोवगोरोद, व्लादीमीर और रूस के कुछ अन्य नगरो में प्रारंभ हुईं।

काकेशिया पार के लोगों की कला मध्ययुग में जड़ पकड़ने लगी थी। जॉर्जिया के चित्रकारो ने अपने गिरजे मनोहर भित्तिचित्रो से अलंकृत किए, और कारीगरो ने धातु या रंगीन मीना की सूक्ष्म नक्काशी के अलंकार बनाए। आर्मीनिया ने अपनी पुस्तको की चित्रसज्जा के लिये प्रसिद्धि प्राप्त की जिनमे सबसे सुंदर तोरोस रोज़लिन (१३ वी शती) के बनाए हुए थे। सूक्ष्म और आलंकारिक चित्रण में अज़रबैजान का भी विशिष्ट स्थान रहा। मध्ययुग के सूक्ष्म चित्र बनानेवाले कलाकारो में बेहज़ाद था (१६ वी शताब्दी के मोड़ पर), जिसके कार्य ने अज़रबैजान और मध्य एशिया दोनो की संस्कृति को बढाया। मध्य एशिया — उजबेकिस्तान, ताजिकिस्तान और तुर्कमानिस्तान — में इस्लाम के आने के साथ कंबल, मिट्टी के बर्तन, और टाइलो में मोज़ेक अलंकरण की कारीगरी पूर्णता के उच्च स्तर पर पहुँच गई।

१४ वीं शताब्दी में जब मंगोल और तातार आक्रमणकारी निकाल बाहर किए गए, तब रूस राज्य के पुनर्जागरण के समय दीवारो के चित्रण, पवित्र मूर्ति बनाने की कला, किताबो की चित्रकला ऐसी विकसित हुई जैसी पहले कभी नही हुई थी। १५ वी और १६ वीं शताब्दी ने यूनानी थियोफेनीस और आंद्री रुब्ल्योव के समान श्रेष्ठ चित्रकारो को जन्म दिया जिनकी पवित्र मूर्ति और भित्तिचित्र उच्च मानवता तथा समुज्वल सामंजस्य के भाव से अनुप्राणित थे, और डायोनियस भी उसी काल मे हुआ। यह अपनी सुंदर प्रेरित चित्रकारी के लिये प्रसिद्ध था। १७ वी शती में रूसी, उक्रेनी और बिलोरूसी कला में मध्यकालीन परंपरा से अलग हटने के लक्षण प्रकट होने लगे। इसी समय के लगभग लैटविया, लिथुआनिया और एस्टोनिया की कला का मध्यकाल भी समाप्त होने लगा।

१८ वी शती के आरंभ से रूसी कला अपने इतिहास की नई मंजिल की ओर बढी। धर्मनिरपेक्ष यथार्थवाद तथा पश्चिमी यूरोप की कला का प्रभाव इस अवस्था के प्रमुख लक्षण थे। एफ० रोकोमोव, डी० लेवित्स्की और वी० बोरोविकोव्स्की (१८ वी शती के अंत और १९ वी शती का आरंभ) के व्यक्तिचित्रो मे प्रकृति और मानव शरीर की बढती हुई जानकारी दृष्टिगत होती है। नागरिक वीरता के प्रशंसात्मक ऐतिहासिक विषयो के चित्र, प्राकृतिक दृश्यो तथा ग्रामजीवन और दैनिक जीवनशैली के चित्र बनाए गए। इनके अतिरिक्त व्यक्तियो की मूर्तियाँ (एफ शुबिन) और स्मारक (एम० कोज़लोव्स्की और आई० मार्तोस) भी बने। बढती हुई राष्ट्रीय चेतना तथा स्वतंत्रताप्रिय विचारो के प्रतिक्रियास्वरूप १९ वी शती के आरंभ की रूसी कला में अभूतपूर्व जीवन और शक्ति का संचार हुआ। ब्र्यूलोव के चित्रो के विषय महान् इतिहास की गूँज लिए रहते थे। ए० इवानोव ने इतिहास के विषयो तथा दार्शनिक विचारो को कलात्मक अभिव्यक्ति दी। ओरेकिप्रेंस्की के व्यक्तिचित्र तथा एस० श्चेद्रिन के दृश्यो में गहरा मनोवेगात्मक आकर्षण रहता था। इस काल में जनता पर अत्याचार और जारशाही के विरुद्ध प्रतिवाद के स्वर चित्रकला में प्रतिध्वनित हुए। अपने लोकजीवनशैली के चित्रो में पी० फेदोरोव ने जनसामान्य के हित का समर्थन किया। कवि टी० शेवचेंको ने कला में आलोचनात्मक यथार्थवाद की उक्रेनियन शाखा की स्थापना की। अंत मे १८७० में एक सचल प्रदर्शनियो का संघ (पेरेद्विज्निकी) जारशाही के अंतर्गत जीवन की हीन दशा प्रदर्शित करने के लिये संगठित किया गया। उनके चित्रो में स्वयं प्रतिबिंबित होता था। आई० क्राम्सकोय, वी० पेरोव, वी मैक्सिमोव, वी० माकोव्स्की, के० सावित्स्की और अन्य पेरेद्विज्निस्की प्रदर्शनी चित्रकारो ने रूसी चित्रकला मे लोकतंत्रीय तत्व तथा यथार्थवादी रूप को दृढता के साथ चित्रित किया। उनका सबसे अच्छा प्रतिनिधि आई० रेपिन था जिसने, जार से पीडित किंतु जिनका उत्साह भंग नही हुआ था, ऐसे लोगो के अत्याचारों के चित्र प्रस्तुत किए; और वी० सुरिकोव के इतिहासविषयक चित्रो में जनता के कष्ट और संघर्ष अत्यंत प्रबल शक्ति से प्रतिबिंबित होते थे। एक अन्य विशिष्ट प्रदर्शनीचित्रकार वी० वेरेश्चेगिन था, जो रणभूमि के चित्र प्रस्तुत करता था। भारतयात्रा ने उसे ब्रिटिश लोगों द्वारा सिपाहियो के नृशंस वध का चित्र बनाने को प्रेरित किया। प्रदर्शनी चित्रकार राष्ट्रीय यथार्थवादी दृश्यचित्रो (आई० लेवितन, और आई० शिश्किन) के उन्नायक भी थे। उक्रेन (टी० शेवचेंको), जॉर्जिया (जी० गाबशविली और ए० म्रेव्लिशविली), लैटविया (के० गुन), तथा दूसरे देशो मे जिनकी राष्ट्रीय संस्कृति जार के शासन के अत्याचारो में निर्मित हो रही थी उनमे वे यथार्थवादी चित्रकला के विकास मे साधन स्वरूप बने।

१९१७ की अक्टूबर की महान् समाजवादी क्रांति ने कला में व्यापक परिवर्तन किए। कला अब जनता की संपत्ति बन गई। प्रदर्शनियो, अजायबघरो, और उनके दर्शको की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई। सोवियत कला ने लाखो श्रमजीवियो की पहुँच में और समझ में आनेवाली कला बनने की समस्या का सामना किया। अब वह विषयवस्तु और रूपविन्यास में समाजवादी कला की भाँति विकसित हो रही है। यद्यपि वह सोवियत संघ के सभी लोगो के हितो को प्रतिबिंबित करती है, फिर भी वह सावधानी से राष्ट्रीय

योग्य शासक भी था। गुणासन के लिये चक्रपालित की नियुक्ति तथा प्रजा की समृद्धि के निमित्त सुदर्शन कासार के जीर्णोद्धार का विवरण जूनागढ़ अभिलेख में पाया जाता है। इस सम्राट् के लौकिक तथा लोकोपकारिता के गुणों का वर्णन अनेक लेखों में निहित है। परमभागवत की उपाधि, सिक्कों पर लक्ष्मी की आकृति तथा विष्णु-प्रतिमा की स्थापना स्कंदगुप्त को वैष्णव मतानुयायी सिद्ध करती है। सम्राट् में धार्मिक सहिष्णुता की भावना भी पूर्ण मात्रा में विद्यमान थी। अन्तर्वेदी में सूर्यपूजा तथा जैन तीर्थंकरों की मूर्ति-स्थापना की घटनाएँ इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। गुप्तवंश के इतिहास में स्कंदगुप्त का स्थान महत्वपूर्ण है। उसने साम्राज्य को दृढ कर स्कंद (स्थानी कार्तिकेय) नाम को चरितार्थ किया। [वा० उ०]

स्कर्वी (Scurvy) रोग शरीर में विटामिन 'सी' की कमी के कारण होता है। इसकी कमी से केशिका (Capillary) की पारगम्यता बढ जाती है। वैसे तो किसी भी अवस्था के व्यक्ति में इस रोग के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं, परतु प्राय ८ से १२ माह के शिशु मे, जिसे प्रारभ से माँ के दूध के स्थान पर पाउडर का दूध आदि दिया जाता है, मिलते हैं। रोग के लक्षण प्राय. धीरे धीरे प्रकट होते हैं। त्वचा एव परिअस्थिक (periosteum) के नीचे रक्त स्राव होने के कारण बच्चा हाथ पैर हिलाने या छूने से रोने लगता है। आँखो के निकट त्वचा के नीचे रक्तस्राव होने से ललाई और सूजन आ जाती है और आँख के पीछे रक्तस्राव होने से आँख की पुतली आगे को उभर आती है। मसूडो, आँतो तथा पेशाब की राह खून आने लगता है। हल्का हल्का ज्वर हो जाता है जिसमे नाडी की गति कुछ तीव्र हो जाती है। रक्तक्षय से बच्चा पीला एव कमजोर हो जाता है।

रोग के निश्चित निदान में रक्त की परीक्षा में बिबाणुगणन की सख्या, स्कधन तथा रक्तस्राव में कोई परिवर्तन नही होता। अदृश्य किरणो से हड्डियो के सिरों पर सूजन और सफेद रेखा दिखलाई देती है।

इस रोग की रोकथाम के लिये जिन शिशुओ को माँ का दूध उपलब्ध नहीं हो पाता उनको विटामिन सी, फलो विशेषत सतरे और टमाटर का रस जन्म से ही देना चाहिए। रोग के उपचार में फलो का रस एव ऐस्कार्बिक अम्ल दिया जाता है। [हृ० वा० मा०]

स्काट, सर वाल्टर (१७७१–१८३२ ई०) अग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यास-कार तथा कवि स्काट का जन्म सन् १७७१ ई० में एडिनबरा नगर में हुआ जहाँ उनके पिता 'राइटर टु दी सिगनेट' के पद पर कार्य करते थे। बाल्यकाल मे उन्होंने कुछ वर्ष अपने पितामह के साथ ट्वीड नदी की घाटी मे व्यतीत किए, जहाँ उनका मन प्रकृतिप्रेम और रोमांटिक के प्रति आकर्षण से भर गया। स्काटलैंड के सीमात प्रदेश की शौर्यपूर्ण कथाओ से उन्हें विशेष अनुराग था। उनकी शिक्षा एडिनबरा में हुई। एडिनबरा विश्वविद्यालय से उन्होने कानून की शिक्षा प्राप्त की और १७९२ ई० मे बैरिस्टर की हैसियत से कार्य करने लगे। यद्यपि जीविका के लिये उन्होने इस व्यवसाय को अपनाया तथापि उनकी अभिरुचि मुख्यत साहित्यिक थी। अत उन्होने अपना अधिकाश समय साहित्यसेवा को ही प्रदान किया तथा अत में कवि, उपन्यासकार एवं इतिहास ग्रंथो के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हुए। सन् १८१२ ई० में स्काट ने मेलरोज के निकट ट्वीड नदी के तट पर अपने लिये एक भव्य भवन का निर्माण किया जो प्राचीन कथाओं मे वर्णित चमत्कारपूर्ण प्रासादो की याद दिलाता था। लेखन के अतिरिक्त स्काट ने वेलेंटाइन नामक एक व्यक्ति के साथ मिलकर प्रकाशन व्यवसाय में भी भाग लिया। कुछ वर्षों के बाद इस व्यवसाय में हानि हुई जिसकी पूर्ति के लिये सन् १८२६ के उपरात लेखक ने अथक और अनवरत परिश्रम किया। फलत उनका स्वास्थ्य बिगड गया। उनका देहात सन् १८३२ में हुआ। स्काट का चरित्र उदात्त तथा उनका मन देशप्रेम, साहित्यप्रेम तथा आत्मसम्मान की भावना से परिपूर्ण था।

अपने साहित्यिक जीवन के प्रारभ मे स्काट ने कतिपय जर्मन कथाओ का अनुवाद अग्रेजी में किया और तदुपरांत सन् १८०२ में बार्डर मिस्ट्रेलसी नामक सग्रह तीन भागो मे प्रकाशित हुआ। प्रथम मौलिक काव्यरचना 'दि ले आँव दि लास्ट मिंस्ट्रेल' का प्रकाशन १८०५ में हुआ और इसके बाद क्रमश 'मारमियन' १८०८, दि लेडी आँव दि लेक' १८१० तथा 'राकबी' १८१३ प्रकाशित हुए। इन सभी रचनाओ मे शौर्यवर्णन तथा स्वच्छंदतावादी उपकरणो की प्रधानता है।

१८१३ के लगभग बायरन के वर्णनात्मक काव्य की लोक-प्रियता बढने लगी। अतएव स्काट ने काव्य का माध्यम छोडकर गद्य में कथालेखन आरभ किया। इनका प्रथम उपन्यास 'वेवरली' १८१४ ई० मे निकला। इसके अनतर अनेक निम्नलिखित उपन्यास प्रकाशित हुए — 'मैनरिंग' १८१५, 'दि एंटिक्वेरी' १८१६, 'दि ब्लैक ड्वार्फ' १८१६, 'दि ओल्ड मारटैलिटी' १८१६, राब राय १८१७, 'दि हार्ट आँव मिडलोथियन' १८१८, 'दि ब्राइड आँव लैमरमूर' १८१९, दि लीजेंड आँव माट्रोज १८१९, आइवन हो १८१९, दि मानेस्टरी १८२०, दि ऐबट १८२०, केनिलवर्थ १८२१, दि पाइरेट १८२१, दि फारचून्स आँव निजेल १८२२, पेवरिल आँव दि पीक १८२३, क्वेंटिन डरवर्ड १८२३, सेंट रानॅसवेल १८२३, रेड गाटलेट १८२४, टेल्स आँव दि क्रुसेडर्स, दि बिट्रोथ्ड, दि टेलिसमैन १८२५, उडस्टाक १८२६ क्रोनिकिल्स आँव दि कैननगेट, सेंट वेलटाइस डे, दि फेयरमेड आँव पर्थ १८२८, काउंट राबर्ट आँव पेरिस, कैसिल डैंजरस १८३२।

स्काट ने चार पांच नाटकों की भी रचना की जिनकी कथावस्तु का सबंध स्काटलैंड के इतिहास एव जनश्रुति से है। इन नाटकों मे लेखक को विशेष सफलता नही मिली। इसके अतिरिक्त स्काट ने अनेक साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा पुरातत्वविषयक ग्रथों का सृजन अथवा सपादन किया। इस प्रकार के ग्रंथो मे प्रमुख हैं — (१) ड्राइडेन का जीवनचरित् तथा उनकी रचनाओ का नवीन सस्करण १८०८, (२) स्विफ्ट का जीवनचरित् तथा उनकी कृतियो का नवीन सस्करण १८१७, (३) बोर्डर एँटिक्विटीज़ आँव इंग्लैंड एँड स्काटलैंड (१८१४-१७), (४) प्राविंशियल एँटिक्विटीज आँव स्काटलैंड (१८१९-१८२६) आदि।

यद्यपि सर वाल्टर स्काट विशेषतया अपने उपन्यासों के लिये ही प्रसिद्ध हैं तथापि उनकी काव्यरचनाओं मे रोचकता एव वैशिष्ट्य

नी प्रतियों से मुद्रित उपलब्ध है, उत्तरीय प्रतियों के पाठ भिन्न हो सकते हैं।

इस पुराण में अध्याय ६९ तथा श्लोक संख्या ३,७९९ है. सौरपुराण अपने को ब्रह्माण्डपुराण का 'खिल' अर्थात् उपपुराण कहता है एवं सनत्कुमारसंहिता और सौरीसंहिता रूप दो भेदों से युक्त मानता है (९। १३-१४)। इस समय सौरीसंहिता को ही सौरपुराण कहते हैं और सनत्कुमारसंहिता को सनत्कुमारपुराण नाम से उपपुराणों में प्रथम गिनते हैं।

सौरपुराण नाम से इसमें सूर्य का ज्ञान विज्ञान होगा, ऐसा भ्रम होता है परंतु यह एक शिवविषयक उपपुराण है, केवल सूर्य ने मनु से कहा है। अत. अन्य पुराणों के समान इसको सौरपुराण कहते हैं। नैमिषारण्य में ईश्वरप्रीत्यर्थ दीर्घसत्र करनेवाले शौनकादिक ऋषियों के संमुख व्यास द्वारा प्राप्त यह पुराण सूत ने कहा है (१,२–५)। यह उपपुराण होने पर भी पुराण के 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च' आदि लक्षण इसमें पाए जाते हैं, (अ० २१-२३.२६,२८,३०–३१,३३)।

इस पुराण में ३९-४० अध्यायों में द्वैतमतस्थापक मध्वाचार्य का (सन् ११९३) वर्णन विस्तार से आया है, वे अध्याय यदि प्रक्षिप्त न हों तो इस पुराण का प्रणयन नए विचार से दक्षिण देश में सन् १२०० में हुआ, यह कह सकते हैं। चौथे अध्याय में आया हुआ कलियुग का वर्णन भी इस कल्पना का पोषक है।

इस पुराण का प्रारंभ इस प्रकार है — सूर्यपुत्र मनु कामिका वन में यज्ञ करनेवाले प्रतर्दन राजा के यज्ञ में गया, वहाँ तत्व का विचार करनेवाले परंतु निर्णय करने में असमर्थ ऋषियों के साथ आकाशवाणी द्वारा प्रवृत्त होकर सूर्य के द्वादशादित्य नामक स्थान में जाकर सूर्यदर्शन के निमित्त तप करने लगा, हजार वर्षों के अनंतर सूर्य ने दर्शन दिए और सौरपुराण सुनाया (१,१९-४५)।

इसमें विशेष विषय ये हैं —

सुद्युम्न (१), प्रह्लाद (२९–३०), त्रिपुर (३४-३५), उपमन्यु (३६) आदि के चरित्र पढने योग्य हैं। वाराणसी, गंगा, विश्वेश्वर आदि का वर्णन भी (४-८) सुंदर है। योगों के अनेक अंगों का (१२–१३) एवं अनेक दानों का (९-१०) वर्णन देखने योग्य है। अनेक कृष्णाष्टम्यादिव्रत, वर्णभेद, श्राद्ध, वानप्रस्थ, सन्यासधर्म भी वर्णित हैं (१४-२०)। शिवपूजादि (४२,४४), पाशुपत (४५), पार्वती की उत्पत्ति एवं शिव के साथ विवाह, स्कंद की उत्पत्ति एवं तारकासुरवध (४९-६३) आदि का वर्णन रोचक ढंग से हुआ है। शिवभक्ति (६४), उज्जयिनीस्थ महाकाल आदि का वर्णन (६४), पंचाक्षरमंत्रमहिमा (६५) भी द्रष्टव्य हैं। धर्मशास्त्रीय उपयुक्त निर्णय — तिथि, (५७, ६८), संक्रांति (५१), प्रायश्चित्त (५२), उमामहेश्वर व्रत (४३), पुण्य और वर्ज्यदेश (१७), श्राद्ध (१९) आदि विचारणीय हैं।

शिव और विष्णुभक्तों में अपने अपने उपास्य देवता को लेकर जो उग्र विरोध था उसको मिटाने के लिये एवं समाज में सामंजस्य स्थापन के लिये शिव और विष्णु में भेद देखना बड़े पाप का कारण बताया है (२९)। [अ० शा० फ०]

स्कंदगुप्त गुप्त सम्राटों का उत्कर्षकाल ई० स० ३५०–४६७ ई० तक माना जाता है। इसी युग का अंतिम सम्राट् स्कंदगुप्त था। इस नरेश के स्तंभलेख घोषित करते हैं कि स्कंदगुप्त कुमारगुप्त का पुत्र तथा राज्य का उत्तराधिकारी था। स्कंदगुप्त के उत्तराधिकार का विषय विद्वानों के लिये विवाद की वार्ता हो गया है। इसका मुख्य कारण भीतरी राजमुद्रा में वर्णित पुरुगुप्त का नामोल्लेख समझा जाता है जो कुमारगुप्त का पुत्र कहा गया है। अतएव प्रश्न सामने आता है कि कुमारगुप्त के दोनों पुत्रों, स्कंदगुप्त तथा पुरुगुप्त, में सर्वप्रथम कौन शासक हुआ।

इस विवाद के निर्णय से पूर्व स्कंदगुप्त के अभिलेख तथा सिक्कों के अध्ययन से इस सम्राट् का शासनकाल निश्चित करना युक्तिसंगत होगा। स्कंदगुप्त के छह लेख भिन्न भिन्न स्थानों से प्राप्त हुए हैं जिनमें कुछ पर गुप्त संवत् (सं० ३१९ ई०) में तिथि का उल्लेख मिलता है। जूनागढ़ (काठियावाड से प्राप्त) लेख की तिथि गु० सं० १३६ है तथा गढ़वा (प्रयाग के समीप) अभिलेख में १४८ अंकित है। इनके आधार पर स्कंदगुप्त का शासन सन् ४५५ से लेकर सन् ४६७ पर्यंत निश्चित हो जाता है। कुमारगुप्त की रजतमुद्रा पर १३६ तिथि अंकित मिली है, जिससे स्पष्ट है कि सन् ४५५ में स्कंदगुप्त सिंहासन पर बैठा। कुमारगुप्त के पुत्रों में स्कंदगुप्त सर्वपराक्रमी तथा योग्य व्यक्ति था जो शासन की बागडोर लेकर सुचारु रूप से कार्य करने में दक्ष सिद्ध हुआ। जूनागढ़ की प्रशस्ति उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है। इसकी स्वर्णमुद्रा पर राजा तथा एक देवी के चित्र अंकित हैं जिसमें देवी राजा को कुछ भेंट कर रही है।

कुछ विद्वान् स्कंदगुप्त को गुप्त-राज्य-सिंहासन का उचित अधिकारी नहीं मानते किंतु यह व्यक्त करते हैं कि उसने अपने पराक्रम द्वारा पुरुगुप्त को हटाकर सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। भीतरी स्तंभलेख पर एक श्लोक मिलता है जिससे पुरुगुप्त तथा स्कंदगुप्त के मध्य दायाधिकार के निमित्त युद्ध का अनुमान लगाया जाता है। "पितरि दिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मीं भुजबलविजितारिर्यः प्रतिष्ठाप्य भूय.।" पिता की मृत्यु के पश्चात् स्कंदगुप्त ने चंचल वंशलक्ष्मी को अपने भुजबल से पुनः प्रतिष्ठित किया था। इसी आधार पर दायाधिकार के युद्ध की पुष्टि की जाती है। परंतु उसी भीतरी स्तंभलेख में पुष्यमित्रों का उल्लेख है। वे ही बाहरी शत्रु थे जिन्हें स्कंदगुप्त ने पराजित किया। वंशलक्ष्मी को चंचल करनेवाला राजघराने का कोई व्यक्ति नहीं था। कालीघाट से प्राप्त स्वर्णमुद्राओं तथा स्कंदगुप्त द्वारा प्रचलित सोने के सिक्कों की माप, तौल, धातु तथा शैली के तुलनात्मक अध्ययन से गुप्त साम्राज्य के बँटवारे का भी सिद्धांत उपस्थित किया जाता है। स्कंदगुप्त मगध का राजा तथा पुरुगुप्त पूर्वी बंगाल का शासक माना जाता है। विवाद का निष्कर्ष यह है कि न तो गृहयुद्ध और न साम्राज्य का बँटवारा हुआ था। स्कंदगुप्त गौरव के साथ काठियावाड़ से बंगालपर्यंत शासन करता रहा।

स्कंदगुप्त केवल योद्धा तथा पराक्रमी विजेता ही नहीं था अपितु

एक चौथाई है। यह भूमिखंड, जो मध्य की घाटी के नाम से प्रसिद्ध है, यहाँ की अधिक उपजाऊ भूमि समुद्र से संबद्ध होने, आवागमन के साधनों की सुगमता तथा खनिज पदार्थों की उपलब्धि के कारण शताब्दियों से स्काटलैंड के आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन का मुख्य केंद्र रहा है। यहाँ पर स्कॉटलैंड के दो तिहाई लोग निवास करते हैं। ग्रेट ब्रिटेन का दूसरा बड़ा नगर ग्लासगो, जिसकी जनसख्या १० लाख से अधिक है, इसी भाग मे स्थित है।

मध्य की घाटी धँसान की घाटी है जिसके उत्तर तथा दक्षिण की ओर भ्रंश (fault) की पंक्तियाँ मिलती हैं। निचले भाग में डिवोनी तथा कार्बोनीफेरस युग की चट्टानें लाल बाल पत्थर, शेल, कोयला, मृत्तिका, और चूनापत्थर आदि मिलते हैं। इन चट्टानो से निर्मित पहाड़ियो की दो पंक्तियाँ फैली मिलती हैं। घाटी का पूर्वी भाग अपनी उपजाऊ भूमि के लिये प्रसिद्ध है, यहाँ गेहूँ, जई, जौ, आलू, मलवर, लूसर्न, और सलगम की अच्छी उपज होती है। भेड तथा गोपालन आर्थिक दृष्टि से अच्छा उद्यम माना जाता है। बगीचो में फल उगाए जाते हैं।

कुछ नगर उपजाऊ मैदान में स्थित हैं और वहाँ कृषि मंडियाँ (Agricultural towns) हैं। कुछ नगर, जैसे स्टिरलिंग और पर्थ, अपनी भौगोलिक स्थितियो के कारण बड़े नगर हो गए हैं। फोर्थ नदी के ज्वारमुहाने पर खदानें मिलती हैं। इसके दक्षिणी तट पर लोथियन की कोयले की खदानें विस्तृत हैं जिसकी ४६ तहो की कुल मोटाई ४०मी है। फिफीशिर तथा क्लाकमन कोयले की अन्य खदानें हैं। इसके फलस्वरूप यहाँ लोहे के कई कारखानें हैं। यहाँ लिनलिथगो तथा मिडलोथियन में खनिज तेल की प्रमुख खानें हैं।

टे के ज्वार मुहाने पर जूट, मोटे कपड़े तथा लिनेन (Linen) तैयार करने के उद्योग बहुत पहले से केंद्रित हैं। इन उद्योगो से संबंधित नगर समुद्रतट पर डंडी से फोर्थ तक बिखरे हुए हैं। कपडे की सफाई तथा रँगाई पर्थ में होती है परंतु जूट तथा लिनेन का मुख्य केंद्र डंडी है। प्रारभ में यह मत्स्यकेंद्र था जहाँ ह्वेल पकडने का विशेष कार्य होता था। जहाजनिर्माण का भी कार्य यहाँ होता था, परतु अब यह मुख्यतया लिनेन, सन (हेंप) तथा जूट का ही काम करता है। यहाँ के कारखाने बोरे, टाट तथा जूट के कपडे तथा चद्दरें (sheets) तैयार करते हैं। सन् १८८० तक डंडी के मुकाबिले में जूट के कारखाने स्थापित हो जाने से इसका एकाधिकार समाप्त हो गया। आसपास में फल उत्पन्न होने के कारण यहाँ जैम उद्योग स्थापित हो गया है। अतः बाहर से आयात होनेवाली वस्तुओं में चीनी की मात्रा अधिक रहती है। उद्योग धंधों के विकास के साथ जनसख्या का विकास भी हुआ है।

स्काटलैंड की राजधानी एडिनबर्ग फोर्थ की खाडी पर उस ऐतिहासिक मार्ग पर स्थित है जो पर्थ, इर्स्टलिंग, डनफर्मलिन को सबद्ध करता है। नगर ज्वालामुखी पहाड़ियों पर स्थित है। प्रारंभ में नगर कैसिल राक तथा काल्टन हिल पर बसा था, धीरे धीरे पूर्व में आर्थर्स सीट, पश्चिम में कास्टरफिन हिल और दक्षिण में ब्लैकफोर्ड हिल तक नगर का विकास हो गया। 'राक' के पश्चिमी भाग में प्राचीन दुर्ग तथा पूर्वी भाग में होली रुड अबे तथा राजमहल स्थित हैं। अबे तथा दुर्ग को हाईस्ट्रीट तथा कैनन गेट मार्गों द्वारा सबद्ध किया गया है। नगर के इस भाग में मकान बहुत करीब करीब हैं तथा इमारतें कई तल्ले ऊँची उठती हैं। १८वी शताब्दी में ग्रेट ब्रिटेन की आर्थिक उन्नति के साथ नगर के उत्तर की ओर एक नए नगर की स्थापना हुई जो प्राचीन भाग से एक लबे खड द्वारा अलग होता है। इस नए नगर में सडकें चौडी, सीधी तथा इमारतें खुली हुई हैं। प्रिंसेज स्ट्रीट यहाँ का मुख्य जनपथ है जो खड्ड के समातर जाती है। खड्ड में उसकी तलहटी तक सुदर फूलों के बाग लगे हुए हैं। लीथ इस नगर का मुख्य बदरगाह है।

मध्य की घाटी में पश्चिमी तट पर ससार का एक प्रसिद्ध औद्योगिक केंद्र ग्लासगो स्थित है। यह अपेक्षाकृत नवविकसित नगर है (देखें ग्लासगो)।

जहाज-निर्माण उद्योग, जो क्लाइड के तट पर स्थापित है, सस्ते कोयले तथा लोहे की उपलब्धि के कारण केंद्रित तथा विकसित हो गए हैं। ग्लासगो से ग्रीनाक तक जलयानप्रांगण की दो कतारें पैट्रिक, क्लाइड बैंक, डलमर, किल पैट्रिक, बाउलिंग और डनबर्टन आदि स्थलो पर मिलती हैं। जलयानप्रागणो ने पोतनिर्माण सबधी विशेष प्रकार के कार्य में विशेषता भी प्राप्त कर ली है— कही माल ढोनेवाली नावें तैयार होती हैं, कही, लाइनर्स, कही युद्धक जहाज, कही बड़े बड़े जहाज, कही जहाज सबधी मशीनें आदि तैयार होती हैं। ससार के दो प्रसिद्ध जहाजो 'क्वीन मैरी' तथा 'क्वीन एलिजाबेथ' का निर्माण यही हुआ। सन् १८७१ ई० तक ग्रेट ब्रिटेन के ५० प्रतिशत जहाज (भार के रूप मे) यही निर्मित होते थे। उसके पश्चात् इसमें ह्रास हुआ और १९२३ ई० में यह सख्या २८ प्रतिशत तक पहुँच गई।

कपड़े बुनने का काम लनार्कशिर, आयरशिर और रेनफ्रीशिर में अधिक विकसित हुआ है। पेसले कपडा की सिलाई के लिये ससार का सबसे बडा केंद्र है। किलमरनाक में पर्दे तथा फीते बनाने का कार्य होता है। डनबर्टन में रँगाई का काम होता है। लनार्कशिर मे रेशमी कपड़े तैयार होते हैं।

इन सब उद्योगो के विकास के फलस्वरूप नगर का विस्तार नदी के दोनो किनारो पर बडी दूर तक चला गया है जिससे इसकी जनसख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

इस विशाल नगर का प्रभाव आसपास के क्षेत्रों पर भी अधिक पडा है। इसके फलस्वरूप इसपर आश्रित अनेक औद्योगिक नगर स्थापित हो गए हैं। ग्लासगो का प्रभाव फोर्थ तक विस्तृत है जहाँ ग्रग माउथ एक नदी पर स्थित एक बंदरगाह है। क्लाइड नदी के निचले भाग में स्थित नगरो में जहाज बनाने का काम बहुत पहले से होता आया है।

३ दक्षिणी पठारी भाग — स्काटलैंड के तीसरे भाग के अतर्गत एक पठारी भाग की पेटी पडती है जो मध्य की घाटी तथा साल्वे की खाडी के बीच विस्तृत है। यह भाग उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम की दिशा में फैला हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस भाग में

का अभाव नहीं है। अपने शौर्यवर्णन, देश-प्रेम-प्रकाशन एवं ओज के कारण ये रचनाएँ आज भी पठनीय एवं आनंददायिनी बनी हुई हैं। लेखक के उपन्यासों का विशेष महत्व है। इनमें इंग्लैंड और स्काटलैंड के इतिहास से सामग्री लेकर जीवन के विराट् चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। कतिपय उपन्यासों में मध्ययुगीन जीवन की झलक देखने को मिलती है। सभी कथाओं में कल्पना तथा यथार्थ तथ्यों का सुंदर मिश्रण हुआ है। घटनाएँ और पात्र जीवन के सभी स्तरों से लिए गए हैं। अतः स्काट के उपन्यासों में सार्वभौम आकर्षण मिलता है। अंग्रेजी में स्काट ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रथम सफल लेखक थे। यद्यपि वस्तुविन्यास और शैली कहीं कहीं त्रुटिपूर्ण हैं तथापि भावुकता, कवित्व, कल्पना एवं यथार्थ की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति के कारण इन उपन्यास में अनुपम रोचकता उत्पन्न हो गई है। स्काट के उपन्यासों का प्रभाव न केवल इंग्लैंड वरन् यूरोप के अन्य देशों के साहित्य पर भी पड़ा। [रा० प्र० द्वि०]

स्कॉटलैंड ग्रेट ब्रिटेन का उत्तरी भाग है। यह पहाड़ी देश है जिसका क्षेत्रफल ७८,८५० वर्ग किमी और जनसंख्या ५१,२३ ३०० (१९५१ ई०) है। ८० प्रतिशत मनुष्य इस देश के नगरों में तथा शेष २० प्रतिशत लोग गावों में निवास करते हैं।

भौगोलिक दृष्टि से स्कॉटलैंड को तीन प्राकृतिक भागों में विभाजित कर सकते हैं — १. उत्तरी पहाड़ी भाग, २ दक्षिणी पठारी भाग तथा ३ मध्य की घाटी।

१. उत्तरी पहाड़ी भाग — क्रिस्टली चट्टानों से निर्मित यह पहाड़ी भाग दो बड़े निचले भागों द्वारा, ग्लीनमोर तथा मिच की घाटियों द्वारा तीन भागों में विभाजित हो जाता है। ग्लीनमोर का पतला निचला भाग प्राचीन चट्टानी भागों के विभंजन (Fracture) से निर्मित हुआ है, इसमें अब भी भूचाल आते हैं। यह उत्तरी पश्चिमी पहाड़ी भाग को मध्य के पहाड़ी भागों से अलग करता है। मिच धसान घाटी है जो २४ किमी की लंबाई तथा ४८ किमी की चौड़ाई में, पतले 'चैनेल' के रूप में, स्कॉटलैंड के स्थलखंड को हेब्राइड्स द्वीपसमूह से अलग करती है। पहाड़ी भाग की औसत ऊँचाई करीब ९१५ मी है यद्यपि कुछ चोटियाँ १२२० मी से ऊपर उठी हैं।

पहाड़ी भाग के पश्चिमी किनारे पर द्वीपों तथा प्रायद्वीपों की एक पतली कतार मिलती है। दक्षिण की ओर बूटे, अरान, मुल ऑव केंटियर, जुरा और इसले, फिर द्वीपों की एक पंक्ति, स्लीट, इग, कोल, टिरी और स्केरी वोर राक, मिलती है। समुद्रतट के निकट इनर हेब्राइड्स तथा मिच के उस पार आउटर हेब्राइड्स के द्वीप मिलते हैं। अंत में पेंटलैंड की खाड़ी के उस पार आर्कनी तथा शेटलैंड के द्वीप मिलते हैं। उत्तरी हेब्राइड द्वीपसमूह आपस में इतने अधिक संबद्ध हैं कि उसे 'लांग आइलैंड' की संज्ञा दी जाती है।

इस क्षेत्र में स्थल तथा समुद्र एक दूसरे से इतने संलग्न तथा मिश्रित देख पड़ते हैं कि 'ग्रीकी' के शब्दों में इस स्थल पर चट्टान, पानी तथा 'पीट' ही देखने को मिलते हैं। आर्कनी द्वीपसमूह में २८ बड़े हुए तथा २९ 'बेचिरागी' द्वीप संमिलित हैं।

परंतु पूर्वी भाग में न तो इतनी झीलें मिलती हैं और न ऐसी चट्टानी भूमि, बल्कि समुद्रतट पर कुछ चौड़े मैदान भी मिलते हैं। द्वीप भी नहीं मिलते। नदियाँ ज्वारमुहानें बनाती हैं।

आर्थिक रूपरेखा — इस पर्वतीय भाग में, ऊबड़ खाबड़ धरातल, मिट्टी के छिछले जमाव तथा समुद्र के धरातल से अधिक ऊँचाई के कारण खेती की सुविधा नहीं है। कृषि योग्य भूमि केवल नदियों की घाटी तथा समुद्रतट तक ही सीमित है। ३०५ मी की ऊँचाई कृषिक्षेत्रों की ऊपरी सीमा निर्धारित करती है। अधिकतर भाग की भूमि बेकार है। मिट्टी अधिकतर रेतीली, कंकरीली, पथरीली तथा छिद्रयुक्त होने के कारण कम उपजाऊ होती है। परंतु पूर्वी भाग में गर्मी की ऋतु में ताप पश्चिम की अपेक्षा अधिक होता है और उत्तर में रास तथा पश्चिम में क्लाइड की खाड़ी तक गेहूँ की खेती होती है। अबरडीनशिर में ४८८ मी की ऊँचाई तक जई की खेती होती है।

जई स्काटलैंड का मुख्य खाद्यान्न है। कृषिक्षेत्र के २० प्रतिशत भाग में जई की, ४-५ प्रतिशत भाग में आलू की तथा ४ प्रतिशत में जौ की खेती होती है।

यहाँ का मुख्य व्यवसाय पशुपालन है। पहाड़ी भाग में भेड़ पालने का व्यवसाय बहुत पुराना है। कुछ भागों में अधिक भेड़ें पाली जाती हैं और कुछ भाग में अधिक गाएँ पाली जाती हैं कुछ वर्ष पूर्व से पहाड़ी नदियों से विद्युत् शक्ति पैदा करने का प्रयास किया जा रहा है। घासवाले क्षेत्रों में शिकार करने की भी प्रथा प्रचलित है। यहाँ का क्षेत्रफल स्कॉटलैंड के क्षेत्रफल का $\frac{1}{20}$ वाँ भाग है, पर जनसंख्या $\frac{1}{20}$ ही है। क्षेत्र का सबसे बड़ा नगर अबरडीन है।

स्काटलैंड का यह भाग सदैव अन्य भागों से पृथक् रहा है। १८ वीं शताब्दी तक 'हाईलैंडर' लोगों ने अपनी पोशाक, रीति रिवाज और लड़ाई झगड़े की प्रवृत्ति कायम रखी थी। वे लोग गैलिक भाषा बोलते थे। भेड़ पालने के तौर तरीकों में पीछे सुधार हुआ और रेलों तथा सड़कों के बनने से उनमें नया जीवन आया।

पूर्वी समुद्रतटीय मैदान में, जो मोरे की खाड़ी के निकट पड़ते हैं, और ही दृश्य देखने को मिलता है। कृषि तथा मछली पकड़ना यहाँ का मुख्य उद्यम है। इस उपजाऊ भाग में इस विभाग के $\frac{1}{20}$ लोग निवास करते हैं। वलास्टर, गैनटाउन, डारनोच और इवरनेस मुख्य व्यापारी नगर हैं। मत्स्य व्यवसाय के कारण समुद्रतट पर छोटे छोटे मत्स्यनगर (fishing towns) बस गए हैं।

२. मध्य की घाटी — उत्तर के प्राचीन पहाड़ी भाग तथा दक्षिण के पठारी भाग के बीच दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की दिशा में फैला हुआ एक ऊँचा नीचा मैदान है। बीच बीच में नदियों के बड़े बड़े ज्वारमुहानों के घुस जाने के फलस्वरूप मैदान सँकरा हो गया है और उसका क्षेत्रफल पूरे स्कॉटलैंड के क्षेत्रफल का केवल

शिलालेख मे पुराने काव्य ही सुरक्षित हैं। आधुनिक नॉर्डिक भाषाएँ बाद में मध्ययुग की प्राचीन भाषाओं से विस्तृत की गई। आज नॉर्डिक भाषासमुदाय में उपर्युक्त आइसलैंडिक और फारो द्वीप की भाषाओं के अतिरिक्त डेनिश, स्वीडिश और नॉर्वेजिअन भाषाओं का समावेश मिलता है। नॉर्वेजिअन भाषा के १९२९ ई० से दो विभाग अधिकारपूर्वक किए गए। वे हैं लिखने की भाषा (जिसको प्रमाणभाषा भी कहा जाता है), प्रांतिक और नई नॉर्वेजिअन (अर्थात् प्रांतिक भाषा)।

डेनिश भाषा — मध्ययुग में १८१४ (?) तक नार्वे डेन्मार्क से सयुक्त था और डेनिश शीघ्र ही साहित्य की प्रधान भाषा बन गई। रूपातरित डेनिश सुशिक्षित लोगों की, विशेषकर नॉर्वे के पूर्वी और दक्षिणी भाग के शहरो में बोलचाल की भाषा बन गई। उन्नीसवी शताब्दी में राष्ट्रीय आदोलन की लहर में, विशेषकर पश्चिमी प्रांतीय भाषाओं पर आधारित शुद्ध नॉर्वेजिअन भाषा बनाने की कल्पना को प्रेरणा मिली। इसमें सबसे प्रधान है 'इवार आसेन' का १८४८ का लिखा हुआ शब्दशास्त्र और १८५० में लिखा हुआ शब्दकोश। आज ३५ लाख से अधिक लोग नॉर्वेजिअन भाषा बोलते हैं। डेनिश भाषा पहले रुने डेनिश, फिर प्राचीन डेनिश और बाद में नई डेनिश बन गई। मध्ययुग और उसके बाद के समय में डेनिश भाषा में कुछ विशिष्टताएँ उत्पन्न हो गई जिससे डेनिश भाषा सनातनी स्वीडिश भाषा से अलग हो गई। यिल्लाड की भाषा, प्रधान द्वीप की भाषा (जिसपर लिखने की भाषा प्रमुख रूप से आधारित है) और पूर्वी डेनिश (बोर्नहोलम और स्कोने विभाग की) इन प्रांतीय भाषाओं से मिलकर डेनिश भाषा बनी हुई है। १५५० ई० मे तीसरे क्रिस्तियान की लिखी हुई बाइबिल से डेनिश भाषा के व्यवहार को डेन्मार्क और नॉर्वे में बहुत महत्व प्राप्त हुआ। आज जर्मन भाषा के सबध में सीमारेखा फ्लेन्सबुर्ग के समुद्र की चट्टानों से घिरे हुए मार्ग से (फिओर्ड) विडोस के उत्तर महासागर के निकास तक मानना उचित होगा। अब डेनिश भाषा ४७ लाख लोगों में बोली जाती है।

स्वीडिश भाषा — स्वीडिश भाषा १२२५ ई० तक रुने स्वीडिश, १५२६ ई० तक — जब बाइबिल का नया टेस्टामेंट प्रकाशित हुआ — प्राचीन स्वीडिश और उसके बाद नई स्वीडिश में मौजूद है। प्राचीन समय से स्वीडिश भाषा आज के स्वीडन के बाहर भी बोली जाती है, जैसे ओलाड और फिनलैंड के किनारे पर। आज स्वीडिश लगभग ७० लाख लोग बोलते हैं। इसमें से ३,००,००० लोग फिनलैंड में हैं। १८५० ई० के बाद प्रथम महायुद्ध तक स्कैंडिनेविया से उत्तर अमरीका को जो विशाल परदेशगमन हुआ, उसकी वजह से आज तक वहाँ कम से कम १० लाख लोग अंग्रेजी के साथ नॉर्डिक भाषाएँ ही बोलते हैं।

आइसलैंड का साहित्य — प्राचीन आइसलैंडिक साहित्य अंशत काव्यमय (भाटों का काव्य और एडा महाकाव्य) तथा अंशत गद्यरूप (लोगों और उनके रिश्तेदारों के वृत्तात, कहानियाँ, पौराणिक कथाएँ) है। सामान्य छद में लिखे हुए अनुप्रासयुक्त काव्य से ८०० से १२०० ई० की अवधि में प्राचीन एडा महाकाव्य निर्मित हुआ है। तेरहवी शताब्दी के प्रारंभ की इसकी हस्तलिखित प्रति प्राप्त है। एडा महाकाव्य का विषय अंशत प्राचीन नॉर्डिक देवताओं और अंशत महावीरों से सबधित है। महावीरो से सबधित काल मे जर्मन आक्रमणकाल के साहित्य के अंश बचे हैं। 'हावामाल' मे पुराने पांडित्य की रक्षा की गई है। आइसलैंड में प्राय १००० ई० के थोड़े पहले लिखा हुआ 'वोलुस्पा' तेजस्वी महाकाव्य है। इसमे पृथ्वी के आरभ और उसके नाश का विषय वर्णित है। प्राचीन एडा महाकाव्य का कुछ अंश नॉर्वे में लिखा गया और कुछ ग्रीनलैंड से प्राप्त है। भाट लोग विशेषत: राजदरबार से सबंधित थे और उनका काव्य महाराजाओं के रणसग्राम के विषय में है। एगिल स्कालाग्रिमसन नॉर्डिक साहित्य का प्रथम मुख्य कवि (सोनातोरेक काव्य की वजह से) समझा जाता है। भाटों का काव्य अनेक काव्यमय वर्णनों से युक्त होने से बहुत ही सुदर लगता है। यह बहुधा प्राचीन देवताओं की कथाओं की ओर सकेत करता है। तेरहवी शताब्दी में आइसलैंड के क्रिस्तानी लोगो को यह काव्य समझने के लिये पौराणिक पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता पडी। इस तरह की एक रचना है 'स्नोरे स्तुर्लुसन' (११७८–१२४१) का लिखा महाकाव्य जिसमें शक्तिमान् देवता 'तोर' द्वारा राक्षसो के देश की यात्राओं और धूर्त 'लोके' तथा खूबसूरत 'फ्रेया' का वर्णन उत्साहपूर्ण शैली में है। स्नोरे प्राचीन आइसलैंड के गद्य साहित्य का प्रमुख लेखक समझा जाता है। उसने नवी शताब्दी से बारहवी शताब्दी तक के महाराजाओं की कथाएँ लिखी हैं। दूसरे लोगो और रिश्तेदारों के बारे में लिखी हुई कथाओं में एगरविज्या, लाक्सडोएला और न्याल की कथा, इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इन कथाओं मे लिखी हुई घटनाएँ १००० ई० के आसपास की हैं किंतु उनको लिखित रूप सौ साल के बाद मिला। इनके ऐतिहासिक मूल्य पर अभी तक वादविवाद चल रहा है। चौदहवीं शताब्दी से आइसलैंड के साहित्य का अत होने लगा। ब्यार्नी थोरारिनसन और यनास हालाग्रिमसन जैसे महान् लेखक उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे हुए। आज आइसलैंड के प्रमुख साहित्यकार हैं हालडोर हाक्सनेस (जन्म १९०२, नोबेल पुरस्कार १९५५)।

नॉर्वेजिअन साहित्य — मध्ययुग का नार्वेजिअन साहित्य 'कोगस्पेयलेत' नामक राजकुमारों के लिये लिखी हुई पाठ्यपुस्तक और 'द्राउमक्वेदेत' नामक क्रिस्तानी धर्मकाव्य इत्यादि से बना है। इसके बाद की शताब्दी में नॉर्वे के साहित्य का भार प्रमुख रूप से डेन्मार्क और नॉर्वे में उत्पन्न हुए लेखकों पर था,— जैसे 'लुडविग होलबेरिय' (१६८४-१७५४) और 'जे० एच० वेसेल' (१५४२-८५) जो जीवन भर डेन्मार्क में कार्य करते रहे। फ्रेंच उच्च कोटि के साहित्य (मोलिएर) और वृत्तात (वोल्टेर) का सबसे प्रसिद्ध प्रतिनिधि है लुडविग होलबेरिय, जो अपने 'देन डान्स्के स्कुएप्लाड्स' के लिये लिखे आज तक खेले जानेवाले सुखात नाटकों (येपो पो बेर्येत, देन पोलितिस्के कादेस्तोबर इत्यादि) के लिये विशेष रूप से प्रख्यात है। नॉर्वे के डेन्मार्क से स्वतंत्र होने के बाद वहाँ प्रथम 'वेलहावेन' और वेर्गेलाड जैसे काव्यो से राष्ट्रीय साहित्य का प्रारंभ हुआ। शताब्दी के मध्य तक 'आस ब्योर्नसेन' और 'मो' ने शुद्ध लोककथासग्रह 'नोर्स्के फोल्के रावेंतुर' प्रस्तुत किया। उन्नी-

इंगलैंड तथा स्काटलैंड की राजनीतिक सीमा उत्तर से दक्षिण की ओर खिसकती रही है।

पठारी भाग की आधारशिला सिलूरियनयुग की शेल (Shale) हैं जिसमें अधिक मोड़ होने के फलस्वरूप एक चौड़े पठार का निर्माण हुआ है। इसका वर्तमान धरातल छोटे छोटे पेड़ों, झाड़ियों तथा घास के मैदानों से ढका हुआ है। पठारी भाग का कुछ स्थल ६०० मी से अधिक ऊँचा है। बीच बीच में चौड़ी घाटियाँ मिलती हैं। पश्चिम की ओर एनन, निथ, डी और क्री नदियाँ उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व को पठार के ढाल के अनुसार बहती हैं और सालवे की खाड़ी में गिरती हैं। पूर्व की ओर ट्वीड की बड़ी घाटी द्वारा इस पठारी भाग के दो भाग हो जाते हैं — लमरम्यूर और चेवियट की पहाड़ियाँ। लमरम्यूर का धरातल अधिक समतल है जहाँ के घास के मैदानों में भेड़ पालने का कार्य होता है। ट्वीड के दक्षिण चेवियट की पहाड़ी दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की दिशा में फैली हुई है। यह भाग प्राचीन शिस्ट (schist), लाल पत्थर, ग्रैनाइट और लावा आदि चट्टानों से निर्मित है। कुछ भाग घासों तथा झाड़ियों तथा पीट (Peat) से ढँका हुआ है परंतु पश्चिमी उत्तरी भाग में अधिक जंगल तथा हरियाली मिलती है। ट्वीड की घाटी की भूमि अधिक उपजाऊ है जहाँ पर इस भाग का अधिकांश जनसमूह निवास करता है।

दक्षिणी पठार का पश्चिमी भाग क्लाइड तथा सोलवे की खाड़ी के बीच प्रायद्वीप के रूप में है। यहाँ वर्षा की अधिकता और धूप की कमी के कारण खेती करने का कम अवसर है। अतः पशुपालन मुख्य धंधा है। मांस तथा दूध का उत्पादन अधिक होता है। १८० मी की ऊँचाई के ऊपर अधिकतर घास के मैदान ही मिलते हैं जहाँ भेड़ अधिक संख्या में चराई जाती हैं।

पठार का पूर्वी भाग जो उत्तर सागर के तट पर पड़ता है, नीचा उपजाऊ भाग है। यहाँ धूप अपेक्षाकृत अधिक होती है। यहाँ कृषियोग्य भूमि तथा चरागाह मिलते हैं, जहाँ गेहूँ, जई, जौ, आलू इत्यादि फसलें उगाई जाती हैं। ऊँचे भागों में भेंड पालना मुख्य पेशा है। चेवियट की भेंड़ें अपने ऊन के लिये जगत्प्रसिद्ध हैं।

इस उन्नत तथा धनी प्रदेश के लिये इंग्लैंड तथा स्कॉटलैंड में अवसर युद्ध होता रहा है। अत सभी मुख्य नगर कभी न कभी युद्धस्थल रह चुके हैं जहाँ पुराने किले के भग्नावशेष अब भी मिलते हैं। इसी भाग से होकर इग्लैंड तथा स्कॉटलैंड के बीच के प्रमुख स्थलमार्ग, रेल तथा सड़कें जाते हैं। [उ० सिं०]

स्कैंडिनेविया स्थिति · लगभग ५५° से ७१° उ० अ० और ५° से ३१° पू० दे० के मध्य एक प्राचीन पठार है जिसमें नार्वे तथा स्वीडेन सम्मिलित हैं। इसकी ढाल सामान्यत. पूर्व की ओर है। इसका क्षेत्रफल लगभग ४६२६२५ वर्ग किमी है। यहाँ की जलवायु पश्चिम से पूर्व क्रमश पश्चिमी यूरोप तुल्य एव ठंडी महाद्वीपीय है। यहाँ शंकुधारी वनों की प्रचुरता है। झीलों तथा पूर्वोन्मुखी प्रपाती नदियों की अधिकता है।

दुग्धशालाओं के अतिरिक्त गेहूँ, जौ, राई, आलू, और चुकंदर आदि यहाँ की कृषि की उपजें हैं। जलप्रपातों की सस्ती बिजली के अतिरिक्त स्थान स्थान पर लोहा, ताँबा, चाँदी, गंधक, सीसा, जस्ता और सोना आदि मिलते हैं। जनसख्या अधिकांशत. दक्षिणी भाग में है। लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि, दूध, मछली, जगली, स्थानीय खनिज एवं शिल्प सबधी है। प्रायद्वीप में जरूरत से अधिक उत्पन्न वस्तुओं का निर्यात तथा आवश्यक वस्तुओं का आयात होता है। ओसलो, स्टाक्होम, बरजन, नारविक और गोटेबर्ग प्रमुख नगर हैं। [रा० स० ख०]

स्कैंडिनेविअन भाषाएँ और साहित्य अगर भारतीय भाषाओं के बारे में यह कहा जाता है कि वह भारोपीय भाषापरिवार के दक्षिणपूर्वी भाग से उत्पन्न हुई हैं तो नॉर्डिक या स्कैंडिनेविअन भाषाओं के लिये यह कहना उचित होगा कि वह उसके विपरीत भाग अर्थात् उत्तरपश्चिम से आई हैं। नॉर्डिक भाषाएँ जर्मन भाषा-समुदाय से संबधित हैं और तदनुसार जर्मन उमलाउट इन भाषाओं मे भी पाए जाते हैं। प्रथम शताब्दी मे नॉर्डिक भाषाओं ने पृथक् होकर अपना नया समुदाय बनाया। पुराने २४ अक्षरों की वर्णमाला में लिखे हुए शिलालेख, फिनलैंड और लैपलैंड की भाषाओं में उधार लिए गए हुए और अनेक शताब्दियों तक बिना परिवर्तन के रक्षित शब्द, सीजर और टॅकिटस जैसे प्राचीन प्रसिद्ध लेखकों द्वारा दिए हुए निर्देश आदि, इन सबसे यह समझा जाता है कि उस वक्त संपूर्ण नॉर्डिक क्षेत्र में, अर्थात् डेनमार्क और स्कैंडिनेविया के प्रायद्वीप में एक ही भाषा बोली जाती थी। यह भाषा तब पुरानी जर्मन भाषा के समान थी लेकिन छठी शताब्दी के बाद उसमे बहुत परिवर्तन हुआ और वह अशतः पश्चिमी जर्मन तथा कुछ अंश तक पूर्वी जर्मन — जिसमें चौथी शताब्दी में लिखे हुए साहित्य की भाषा गोथिक सबसे प्रधान है—भाषासमुदाय से अलग हुई। वाइकिंग लोगों के समय में (८००-१००० ई०) नॉर्डिक भाषा के दो प्रधान विभाग किए गए — पश्चिमी नार्डिक (प्राचीन नॉर्वेजिअन और प्राचीन आइसलैंडिक) तथा पूर्वी नॉर्डिक (प्राचीन स्वीडिश और प्राचीन डेनिश)। बारहवी शताब्दी मे लिखे हुए साहित्य के अंश (लैटिन अक्षरों में लिखे हुए चर्मपत्र) आज प्राप्त हैं। किंतु पूर्वी नॉर्डिक साहित्य के अवशेष सौ साल बाद के हैं।

प्राचीन आइसलैंडिक भाषा वह पश्चिमी नॉर्डिक भाषा है जिसे ८७०-९३० ई० के मध्य आइसलैंड के पहले बसनेवाले अपने साथ वहाँ ले गए। यह भाषा बहुत मामूली परिवर्तन के बाद आज भी आइसलैंड के प्रजातंत्र राज्य के १,८०,००० लोगों की राष्ट्रीय भाषा बनी हुई है। इसके बाद पश्चिमी नॉर्वेजिअन प्रांतीय भाषा और फारो द्वीप की (जनसंख्या प्राय. ३०,०००) भाषा का स्थान है। पश्चिमी नॉर्डिक भाषा पहले से शेटलैंड द्वीप, ओर्कनी द्वीप, आइल ऑव मैन और आयर्लैंड के कुछ भागों मे बोली जाती थी। उसी प्रकार से प्राचीन डेनिश इग्लैंड के डानलेगन भाग में और नॉरमंडी मे तथा प्राचीन स्वीडिश रूस के वाइकिंग लोगों में बोली जाती थी। वाइकिंग लोगों की और मध्ययुग की भाषा आज हमको हजारों प्राप्त शिलालेखों के ७६ अक्षरों की वर्णलिपि में देखने को मिलती है। प्राप्त शिलालेख साधारणतया मृत सबधियों के स्मारकचिह्न हैं और इस कारण वे कुछ अंश में एक ही ढंग के हैं। लेकिन रुने

स्टर्लिंग संख्याएँ गणितीय विश्लेषण की कई शाखाओं में काम आती हैं। इनके प्रस्तुतकर्ता जेम्स स्टर्लिंग के नाम पर इनका नाम पड़ा। ये प्रथम और द्वितीय, दो प्रकार की होती हैं।

(१ + य) (१ + २ य) (१ + न य) = १ + $_n$स$_1$ य + $_n$स$_2$ य^2 + $_n$स$_3$ य^3 + ...

$$[(1+x)\ (1+2x)\ \ (1+nx) = 1 + {}_nS_1 x + {}_nS_2 x^2 + {}_nS_3 x^3 + \ \ ]$$

य (x) के आरोही क्रमवाले उपरिलिखित प्रसार के गुणाक, प्रथम प्रकार की न (n) कोटि की स्टर्लिंग संख्याएँ हैं तथा द्वितीय प्रकार की स्टर्लिंग संख्याएँ निम्नलिखित प्रसार के य (x) के गुणाको में हैं :

१ / ((१ + य) (१ + २य) (१ + न य)) = १ − $_n$ट$_1$ य + $_n$ट$_2$ य^2 − $_n$ट$_3$ य^3 + .

$$\left[\frac{1}{(1+x)\ (1+2x)\ \ (1+nx)} = 1 - {}_nT_1 x + {}_nT_2 x^2 - {}_nT_3 x^3 + \ \ \right]$$

उपर्युक्त परिभाषा से निम्नलिखित प्रमेय प्राप्त होते हैं .

(१) प्रथम न (n) पूर्णांकों में से यदि पुनरावृत्ति बिना प (p) को लिया जाय तो इनके गुणनफलों का योग प्रथम प्रकार की न (n) कोटि की प वी (pth) स्टर्लिंग संख्या के बराबर होता है।

(२) प्रथम न (n) पूर्णांको में से यदि पुनरावृत्तियो सहित प (p) को लिया जाय, तो इनके गुणनफलो का योग द्वितीय प्रकार की न (n) कोटि की प वी (pth) स्टर्लिंग संख्या के बराबर होता है।

स्टर्लिंग ने य^n (x^n) को निम्नलिखित क्रमगुणित श्रेणी में प्रदर्शित किया .

य^2 = य (य − १) + य

य^3 = य (य − १) (य − २) + ३ य (य − १) + य

य^4 = य (य − १) (य − २) (य − ३) + ६ य (य − १) (य − २) + ७ य (य − १) + य

य^5 = य (य − १) (य − २) (य − ३) (य − ४) + १० य (य − १) (य − २) (य − ३) + २५ य (य − १) (य − २) + १५ य (य − १) + य

$$\left\{\begin{array}{l} x^2 = x(x-1) + x \\ x^3 = x(x-1)(x-2) + 3x(x-1) + \\ x^4 = x(x-1)(x-2)(x-3) + 6x(x-1)(x-2) + 7x(x-1) + n \\ x^5 = x(x-1)(x-2)(x-3)(x-4) + 10x(x-1)(x-2)(x-3) + 25x(x-1)(x-2) + 15x(x-1) + x \end{array}\right\}$$

ऊपर लिखे विभिन्न क्रमगुणितों (Factorials) के गुणाक, जैसे १ १, १'३१, १६७१; १'१० २५'१५ १ [1'1 ; 1 31; 16'71, 1 10 25 15 1] द्वितीय प्रकार की स्टर्लिंग संख्याएँ हैं। [भ० दा० व०]

स्टाइन, सर ऑरिल (Stein, sir Aurel, १८६२-१९४३) ब्रिटिश पुरातत्वज्ञ, का जन्म बुडापेस्ट (हगरी) तथा मृत्यु काबुल (अफगानिस्तान) में हुई। इनकी शिक्षा प्रारंभ में वियना तथा टुबिंगेन विश्वविद्यालयो में, किंतु उच्च शिक्षा ऑक्सफोर्ड तथा लदन विश्वविद्यालयों में सपन्न हुई। शिक्षोपरात वे भारत चले आए। सन् १८८९ से सन् १८९९ तक पजाब विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार तथा लाहौर स्थित ओरिएटल कालेज के प्रधानाचार्य के रूप में कार्य किया। भारत सरकार ने पुरातात्विक अनुसधान एव खोज के लिये इन्हें १९०० ई० में चीनी तुर्किस्तान भेज दिया। इस क्षेत्र मे इन्होंने प्राचीन अवशेषो तथा बस्ती के स्थलो (settlement sites) का प्रचुर अनुसधान किया। पुन सन् १९०६ से १९०८ तक इन्होंने मध्य-एशिया तथा पश्चिमी चीन के विभिन्न भागो मे महत्वपूर्ण पुरातात्विक खोज की। इनके अनुसधानो से मध्य एशिया तथा समीपवर्ती भागों में मनुष्य के प्रारंभिक जीवन के विषय पर महत्वपूर्ण प्रकाश पडा और जलवायु परिवर्तन सबधी सभावनाओ के भी कुछ तथ्य सामने आए। १९०९ ई० में इन्हे भारतीय पुरातत्व विभाग में सुपरिटेंडेंट नियुक्त किया गया। १९१३-१६ ई० मे वे ईरान तथा मध्य एशिया गए और पुरातात्विक एव भौगोलिक खोज की। इन यात्राओ तथा अनुसधानो एव प्राप्त तथ्यों का वर्णन उन्होने लदन से प्रकाशित जियोग्रैफिकल जर्नल के १९१६ ई० वाले अक मे किया है। पुरातात्विक एव भौगोलिक अनुसधानो के लिये लदन की रायल जियोग्रैफिकल सोसायटी (Royal Geographical Society) ने इन्हे स्वर्णपदक से विभूषित किया।

इनकी रचनाओ में निम्नलिखित प्रमुख हैं — (१) सस्कृत भाषा के सुप्रसिद्ध कश्मीरी कवि कल्हण द्वारा विरचित 'राजतरंगिणी' अथवा कश्मीर के राजाओं के इतिहास का अगरेजी अनुवाद (दो जिल्दें, १९०० ई०), (२) 'प्राचीन खोतान' (दो जिल्दें, १९०३ ई०), (३) 'काथे मरुभूमि के अवशेष' (२ जिल्दें,१९१२ ई०); (४) 'सेरेंडिया' (पाँच जिल्दें, १९२२ ई०), (५) 'सहस्र' बुद्ध (The thousand Budhas १९२१ ई०), (६) 'अततंम (Innermost), एशिया (चार जिल्दें, १९२८ ई०, (७) सिकंदर का सिंधु तक आगमनपथ (On Alexander's track to Indus १९२९ ई०), (८) तुन हुआंग से सप्राप्त चित्रकारियों का सकलन (१९३१ ई०), (९) गेड्रोशिया में पुरातात्विक भ्रमण (१९३१ ई०), (१०) दक्षिण पूर्वी ईरान में पुरातात्विक वीक्षण (Reconneissances), १९३७ ई०), (११) पश्चिमी ईरान को जानेवाले प्राचीन पथ (१९४० ई०)। [का० ना० सिं०]

स्टालिनग्रेड (Stalingrad) स्थिति : ४८° ४५' उ० अ० एव ४४° ३०' पू० दे०। १९६१ ई० से इसका नाम वोलगाग्राड हो गया है। सोवियत सघ के फेडरल सोशियालिस्ट रिपब्लिक (R. S F S R) में वोल्गा नदी के दोनो ओर स्थित एक क्षेत्र है जिसका क्षेत्रफल १,३३,८३३ वर्ग किमी है यह एक निचला क्षेत्र है जिसका कुछ भाग तो समुद्रतल से भी नीचा है। डान नदी के पश्चिम में ही काली उपजाऊ मिट्टी मिलती है। यहाँ की जलवायु महाद्वीपीय है। वर्षा कम होती है। पहले यह वर्षा की

सवी शताब्दी के अंतिम वर्षों को नार्वे के साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है, जिसमे 'ए० कीलान्ड' और 'जे० ली' जैसे गद्य लेखक और प्रमुख रूप से 'एच० इब्सेन' (१८२८-१९०६) और 'बी० ब्योर्नसन' (१८३२-१९१०, नोबेल पुरस्कार १९०३) जो लोककहानियों (फोरलेलिंगर) के भी प्रसिद्ध लेखक हैं — जैसे नाटककार और कवि हुए। इब्सेन के नाटक, विशेषकर उसके ललित, मनोवैज्ञानिक नाटक, समाज की आलोचना करनेवाले समकालीन नाटको (विल्दादेन, हेडा गेबलर, एन फोल्कफिरांडे) तथा अन्य यूरोपीय नाटको के लिये यथेष्ट प्रभावकारी थे। 'नूट हामसुन' (नोबेल पुरस्कार १९२०) के ग्रंथ मौलिक जीवनपूजा और कलापूर्ण चैतन्य से भरे हुए हैं। मध्ययुग मे लिखा गया 'सिग्रीद उंदसेन' का (नोबेल पुरस्कार १९२८) 'क्रिस्तीन लावरास दात्तर' ललित तथा मानसशास्त्रीय अनुभवों से भरा ग्रंथ है जिसमें स्त्री जाति का वर्णन है। ओलाव दून आरनुल्फ ओवर लांद, एस० होएल, नोरदाल, ग्रीग इत्यादि नॉर्वे के उत्तरकाल के कवि हैं।

डेनमार्क का साहित्य — मध्ययुगीन डेन्मार्क के सबसे प्रधान साहित्य ग्रंथ है डेन्मार्क के वीररसकाव्य, जो स्वीडन और नार्वे मे भी प्रस्तुत हुए और जिनको पांच सौ साल बाद अद्भुत साहित्यविचार के उदय के समय बहुत महत्व प्राप्त हुआ। अद्भुत काव्य के प्रतिनिधि हैं 'ए० उहलेनश्लेनगर' (अल्लादिन,' 'हाकोन 'मार्ल)', 'ग्रुडाल्विग', और 'जे० एल० हैबर्ग'। एस० किर्केगार्ड (एतेन एलर), जिसको यूरोप मे बडी लोकप्रियता मिली, सत्य का दृढ लेखक था। बच्चो के लिये लिखी गई किंतु गभीर और जीवन के मर्मभेदी परिज्ञान से युक्त एच० सी० ऐंडरसन की साहस कथाएँ (१८३५–१८७२) जगत्प्रसिद्ध हैं। आधुनिक समाज की समालोचना और प्राकृतिक नियमो के सिद्धांत का प्रारंभ साहित्य की आलोचना करनेवाले 'जॉर्ज ब्रांडेस' (हुवेद स्त्रमनिंगार १८७३), अद्भुत कथालेखक 'जे० पी० याकोबसेन' (नील्स लिहने १८८०) और 'हरमान बाग' (हाबलोसे स्लेग्तर १८८६) आदि के साहित्य से हुआ। कवि एच० द्राकमान, उपन्यास लेखक 'एच० पोंतोप्पिदान' (नोबेल पुरस्कार १९१७) 'जे० वी० येनसेन' (नोबेल पुरस्कार १९४४), एम० ऐंडरसननेक्सो (सुधारक समाज समालोचक पेले एरेब्रेरेन १९१०) आदि अन्य साहित्यकार हैं। लघुकथा लेखक हैं 'कारेन ब्लिक्येन', नाटककार 'काय मुंक' और लोककथाओ का यथार्थ वर्णन करनेवाले 'मार्टिन ए० हानसेन'।

स्वीडन का साहित्य — स्वीडन के मध्यकालीन साहित्य में प्राचीन धारा (एल्द्रे वेस्तयोना लागेन, तेरहवी शताब्दी) इतिहास, वर्णन (एरिक्स क्रोनिकान, १४वीं शताब्दी के आरंभ से), काव्य, वीरकाव्य और धार्मिक साहित्य का समावेश होता है। साहित्य का प्रधान लेखक है 'पवित्र बिर्गित्ता' (१४वी शताब्दी) जिसका लिखा 'उप्पेनबारेल्सेर' प्रमुख रूप से लैटिन भाषा मे लपेटा हुआ है। गुस्ताव वासा की १५४१ में लिखी बाइबिल भाषा और साहित्य दोनो की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। स्वीडिश साहित्य को प्राचीन नमूने पर लिखा कलापूर्ण काव्य 'जी० स्तिएर्नहिएल्म' ने (हर्क्युलिस १६४८) प्रदान किया। 'ओ० वी० डालिन (आर्गस १७३२) और 'जे० एच० मेंकेलग्रेन' (मृत्यु १७६५) के साहित्य पुराने फ्रेंच साहित्य की झलक और वृत्तांत अभिव्यक्त हुआ। पक्षपातहीन कल्पनाप्रधान कवि थे 'सी० एल० बेलमान' (१७४०-१७९५) जिन्होंने 'फ्रेदमास एपिस्तलार' में एक अमर विलासियो के समुदाय का चित्रण किया। नागरिक सत्य और तीक्ष्ण सामाजिक परिहासपूर्ण लेख लिखे हैं कवयित्री 'ए० एम० लेनग्रेन' ने। अद्भुत साहित्य में प्रमुख है कवि 'इ० टेंगनेर' (फ्रित्योफ्स सागा १८२५), 'इ० जी० गेयर', 'पी० डी० ए० आत्तरबुम' और 'ई० जे० स्तोग्नेलियुस'। 'सी० जे० एल० आलमक्विस्त' के (तोर्नरोसेन्स बूक १८३२-५१) साहित्य में नागरिक सत्यकथा तक हुआ गमन प्रस्तुत है। ध्येयवाद और नूतन शास्त्रीय पांडित्य का वर्णन 'वी० रिदबेरिय' ने (१८२८-१८९५) किया है। प्राकृतिक नियमो के सिद्धांत का प्रमुख प्रतिनिधि है 'ए० स्त्रिंदबेरिय' १८४९-१९१२ रदा रुमेन, हेमसोबुर्ना) जो नॉर्डिक साहित्य में सबसे बड़ा नाटककार (मेस्तर ओलोफ, एन द्रमस्पेल, तिल दमास्कस) है। १८९० के बाद कवि 'वी० व० ह्वाइडेनस्ताम' (कारोलीनर्ना, नोबेल पुरस्कार १९०९), 'इ० ए० कार्लफेल्ट' (नोबेल पुरस्कार १९३१)' और स्वीडिश साहित्य के सबसे बड़े कवियो में से एक 'जी फ्रोडिंग' — इन जैसे राष्ट्रीय साहित्यकारो का उदय हुआ। बाद के साहित्यिको में विशेषकर 'ह्यालमार बेरियमान' 'वी० शोबेरिय' (१९२४ में 'क्रीसर ओक क्रान्सर' लिखकर स्वीडिश कविता को पुनर्जन्म प्रदान करनेवाले) 'पेर लागरक्विस्त' (नोबेल पुरस्कार १९५१), 'एच मार्टिनसोन' (अनियारा १९५६), 'ह्यालमार गुलबेरिय' इत्यादि का समावेश किया जाता है। स्वीडिश भाषा मे लिखनेवाले फिनलैंड के साहित्यिकों मे प्रधान हैं 'जे० एल० रुनेबेरिय' (फेनरिक स्लोल्स सेगर १८४८-६०)। बाद के समय के कवि 'ई० डिकनोनियस' 'जी० ल्योलिंग' और 'इडिथ सदरग्रान' इत्यादि हैं।

स्टर्न, ऑटो (Stern, Otto; सन् १८८८ —) जर्मन भौतिकीविद् का जन्म जर्मनी के सोहरॉं (Sohran) नामक कस्बे मे हुआ था। इन्होने ब्रेस्लॉ के विश्वविद्यालय तथा कैलिफॉर्निया में शिक्षा पाई।

गेर्लाख (Gerlach) के सहयोग से इन्होने परमाणुओ के चुंबकीय घूर्ण को नापा, जिससे क्वाटम सिद्धात की यांत्रिकी का उपयोग कर परमाणुओ के आकाश की विशिष्टताओं को जानने में सहायता मिली। बाद में एस्टरमैन (Estermann) के साथ अनुसंधान कर इन्होने प्रदर्शित किया कि हाइड्रोजन, हीलियम आदि के पूर्ण अणुओं का क्रिस्टल तल से परावर्तन होने के पश्चात् अपवर्तन कराया जा सकता है। इससे पदार्थ की तरंगीय प्रकृति के साधारण सिद्धात के संबंध में अतिरिक्त प्रमाण प्राप्त हुआ।

सन् १९३३ में ये संयुक्त राज्य अमरीका में पिट्सबर्ग के कार्नेगी इंस्टिट्यूट ऑव टेक्नॉलाजी में रिसर्च प्रोफेसर नियुक्त हुए तथा सन् १९४३ मे नाभिकीय भौतिकी से संबंधित अनुसंधानो के लिये आपको नोबेल पुरस्कार मिला। [भ० दा० व०]

दार्शनिकों की इसीलिये याद आ जाती है। किंतु ज्ञान की उत्पत्ति मे मन की मौलिकता नष्ट कर देने पर ज्ञान की सत्यता के प्रसग में स्टोइको को उसी प्रकार की कठिनाइयो का अनुभव हुआ जैसी कठिनाइयाँ लॉक और काट के सामने आगे चलकर उपस्थित हुई। ज्ञान को उन्होंने वस्तुतत्र माना था। वस्तुएँ इद्रियो पर अपने प्रभाव छोडती हैं। इन्ही के माध्यम से मन वस्तुओ को जानता है। अब प्रश्न उठता है कि ऐंद्रिक प्रभावों की माध्यमिकता से मन जिस वस्तुजगत् को जानता है, वह उससे बाह्य है, तो ज्ञान की सत्यता की परीक्षा कैसे हो सकती है? सभी यथार्थवादियों के लिये यह एक कडी गुत्थी है। या फिर हेनरी बर्गसाँ (१८५९-१९४१) की भाँति, अपरोक्षानुभूति स्वीकार की जाय। स्टोइकों ने ऐसा कुछ तो माना न था। इसलिये उन्हे यह मानना पडा कि सत्य वस्तुओ के प्रभाव अथवा प्रतिबिंब, स्वप्नो और मात्र कल्पनाओं के प्रतिबिंबों से कही अधिक स्पष्ट होते हैं। वे अपनी जीवतता से हमारे भीतर सत्यता की भावना या विश्वास उत्पन्न करते हैं। यह आत्मगत भावना या विश्वास ही सत्य की कसोटी है। इस प्रकार स्टोइक दार्शनिकों ने ज्ञानात्मक व्यक्तिवाद का बीजवपन किया।

स्टोइक भौतिकी — भौतिकी के अंतर्गत स्टोइको की पहली मान्यता यह थी कि किसी अशरीर वस्तु का अस्तित्व नही होता। उन्होने ज्ञान को भौतिक सवेदना पर आधारित किया था। इसलिये पदार्थ की सत्ता को, जिसे हम ऐंद्रिक सवेदना द्वारा जानते हैं, स्वीकार करना आवश्यक था। किंतु वे सत्तात्मक द्वैत अथवा बहुत्व को स्वीकार करना अयुक्त समझते थे। वे अद्वैतवादी थे अतएव उनके लिये पदार्थ की ही एकमात्र सत्ता थी। पर उन्होने आत्मा और ईश्वर का निराकरण नही किया। उन्हे भी पदार्थ में ही स्थान दिया। ईश्वर और आत्मा सबंधी परपरागत विचारो से यह मत भिन्न अवश्य है किंतु स्टोइक दार्शनिकों ने अविरोध के नियम के आग्रह से ही इसे स्वीकार किया था। उनकी ज्ञानमीमासा पदार्थ की सत्ता सिद्ध कर रही थी। ससार की एकता की व्याख्या के निमित्त उसे एक ही स्रोत से उद्भूत मानना उचित था। आत्मा और शरीर के सबध पर विचार करने से भी उन्हें यही युक्तियुक्त प्रतीत हुआ। आत्मा और शरीर एक दूसरे पर क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ करते हैं। आत्मा शरीर का चेतनता अथवा बुद्धि है। आत्मा की स्थापना करने के साथ ही वैश्व चेतना या वैश्व बुद्धि की स्थापना आवश्यक हो जाती है। इसलिये उन्होंने ईश्वर और ससार मे वही सबंध माना जो व्यक्तिगत बुद्धि और शरीर में होता है। इन विचारो का उन्होने यूनानी दर्शन के प्राचीन प्राथमिक सामग्री या उपादान के विचार के साथ समन्वय किया। हेराक्लाइटस ने ईसापूर्व छठी शताब्दी मे कहा था, अग्नि वह प्राथमिक तत्व है जिससे विश्व का निर्माण हुआ। स्टोइक दार्शनिको को अग्नि और बुद्धि में स्वभावसाम्य दिखाई दिया और उन्होने कहा कि प्राथमिक अग्नि ही ईश्वर है। इस प्रकार उन्होने एक सर्ववाद (पैंथीज्म) की स्थापना की, जिसमें ससार के मौलिक उपादान या प्रकृति, ईश्वर, आत्मा, बुद्धि और पदार्थ के अर्थों मे कोई मौलिक अतर न था। इस मान्यता के आधार पर स्टोइकों को यह मानने में कोई कठिनाई न थी कि विश्व बौद्धिक नियम के अधीन है। इस प्रकार पदार्थवाद का समर्थन करते हुए भी स्टोइक दार्शनिको ने ससार की व्यवस्था, संगति, सुंदरता आदि की व्याख्या के निमित्त एक व्यापक चेतन प्रयोजन खोज लिया।

स्टोइक नीति — किंतु अब उनके पास व्यक्ति की स्वतन्त्रता की स्थापना के लिये कोई उचित तर्क नही रह गया था। उसके स्वभाव में बौद्धिक नियम की व्याप्ति होने से, वह जो कुछ करता है, स्वाभाविक है, बौद्धिक है। यह वही कठिनाई थी जो जर्मन दार्शनिक इमैनुएल काट के नैतिक मन मे आकर अटक गई। पर स्टोइक दार्शनिको ने सैद्धातिक स्तर से नीचे उतरकर इसका व्यावहारिक उत्तर दिया। उन्होने कहा कि प्रकृति में बौद्धिक नियम की व्याप्ति के कारण मनुष्य बौद्धिक प्राणी है। प्राकृतिक नियमो के अनुसार सभी कुछ होता है; उसी के अनुसार प्राणिमात्र के व्यापार सपन्न होते हैं। किंतु मनुष्य को यह सुविधा है कि वह अपने कर्मों को, जो नियमित हैं, स्वीकार कर सके। बुद्धिमान् मनुष्य जानता है कि उसका जीवन विश्व के जीवन में समाहित है। वह जब अपनी स्वतन्त्रता की बात सोचता है तो शेष मनुष्यो की स्वतन्त्रता की बात भी सोचता है और तभी उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। किंतु दूसरो की स्वतंत्रा की स्वीकृति से अपनी स्वतंत्रता सीमित करने में उसे बाध्यता का अनुभव नही होता। इन स्टोइक विचारो से अवगत होकर, जब हम काँट को यह कहते हुए पाते हैं कि 'दूसरो के साथ ऐसा व्यवहार करो जैसा अपने साथ किए जाने पर तुम्हें कोई आपत्ति न हो' अथवा, 'ऐसे कर्म करो कि तुम्हारे कर्म विश्व के लिये नियम बन सकें', तब हमें स्टोइक जीवनदर्शन के व्यापक प्रभाव का भान होता है। स्टोइक दार्शनिको ने व्यवस्थित व्यक्तिगत जीवन के माध्यम से व्यवस्थित एव सपन्न सामाजिक जीवन की आशा की थी। व्यक्तिगत जीवन की व्यवस्था के लिये उन्होने बहुत उपयोगी सुझाव दिए थे। वासनाओ को उन्होने दुर्गुणो में गिना, सुखों को शुभो मे स्थान नहीं दिया; और कर्तव्यपालन को उन्होने बौद्धिक मनुष्य के गौरव के अनुकूल बताया। कहा जा सकता है कि उन्होंने मनुष्य को स्वतन्त्रता का मार्ग न बताकर कठिन आत्मनियन्त्रण का मार्ग बताया। बिना आत्मनियन्त्रण के व्यवस्थित एव सतुलित समाज की कल्पना नही की जा सकती। इस दृष्टि से, स्टोइक दार्शनिको ने पाश्चात्य जगत् को वह मूल मन्त्र दिया था, जिसकी सभी सामाजिक विचारको ने बार बार आवृत्ति की। जर्मन दार्शनिक काट के मत में स्टोइक नीति की व्याप्ति का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अंग्रेज उपयोगितावादियों जेरेमी बेंथम और जॉन स्टुअर्ट मिल के नैतिक मतों का विश्लेषण करने पर भी हम यही पाएँगे कि यद्यपि उन्होने प्रत्यक्षत सुखवाद का समर्थन किया था तथापि मूलत उन्होने व्यक्ति के हित के माध्यम से समाज के हित की उपलब्धि के स्टोइक नियम का ही आश्रय लिया था। प्रसिद्ध अंग्रेज आदर्शवादी फ्रासिस हर्बर्ट ब्रैडले (१८४६-१९२४) भी समाज में प्रत्येक व्यक्ति के एक निश्चित स्थान का निरूपण करता है और कहता है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्थान के अनुरूप कर्तव्यो का पालन करता रहे, तो वह स्वय संपन्न जीवन व्यतीत कर सकता है। [शि० श०]

कमी के कारण अकालग्रस्त क्षेत्र था लेकिन वोल्गा-डान-नहर के बन जाने से सिंचाई की समस्या अब हल हो गई है। गेहूँ, राई, ज्वार, बाजरा, जौ, जई, मक्का, आलू, अंगूर एवं सूर्यमुखी फूल मुख्य कृषि उपज हैं। कृषि के अतिरिक्त मत्स्याखेट, पशुपालन, समूर, चमड़े एव वस्त्र से सबधित उद्योग धधे होते हैं। एल्टन झील से पर्याप्त नमक की प्राप्ति होती है तथा पशु, ऊन, गेहूँ, ट्रैक्टर एव इस्पात का निर्यात यहाँ से होता है।

२. नगर — इस क्षेत्र की राजधानी मास्को के ६३० किमी दक्षिण पूर्व में वोल्गा नदी के दोनो किनारो पर ५६ किमी की लबाई में फैली हुई है। यह नगर वोल्गा-डान-नहर द्वारा डान नदी एवं डोनेत्ज वेसिन से सबद्ध होने के कारण महत्वपूर्ण नदीबंदरगाह एवं व्यापारिक तथा औद्योगिक केंद्र हो गया है। इस बदरगाह से खनिज तेल, कोयला, खनिज धातुओं, लकडी एव मछली का आदान प्रदान होता है। यह प्रसिद्ध रेलमार्गकेंद्र है जो मास्को, डोनेत्ज वेसिन, काकेशस और दक्षिणी पश्चिमी साइवेरिया से मिला हुआ है। यहाँ एक विशाल जलविद्युत् गृह है। वोल्गाग्राड भारी मशीनो के निर्माण का केंद्र है जहाँ ट्रैक्टर, कृषियत्र, लौह, इस्पात, तेलशोधनयत्र, रेलवे कार तथा ऐलुमिनियम की वस्तुओं का निर्माण होता है। यहाँ शराव, रसायनक, नेप्था, जलायननिर्माण तथा तेलशोधन कारखाने भी हैं। इस नगर में अध्यापन, कृषि एवं चिकित्सा महाविद्यालय हैं द्वितीय विश्वयुद्ध मे इसे भारी क्षति उठानी पड़ी थी। हिटलर की सेनाओं ने कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था। तीन महीने के घमासान युद्ध के बाद फरवरी, १९४३ ई० में जर्मन सेनापति जनरल पॉलस ने आत्मसमर्पण किया था। युद्ध में काम आए जर्मन सैनिक तीन लाख थे। जनसख्या ६,६३,००० (१९६३) है।

[रा० प्र० सिं०]

स्टुअर्ट या स्टेवर्ट स्कॉटलैंड के इस घराने का उद्भव एलन (Alan) नामक ब्रिटेन देशातरवासी से ग्यारहवी शताब्दी के लगभग हुआ बताया जाता है। इस वश के वॉल्टर नामक व्यक्ति को स्कॉटलैंड के शासक डेविड प्रथम ने वशानुगत परिचारक नियुक्त कर दिया था तथा उसे दक्षिण मे भूमि भी दे दी थी। आगे चलकर इस घराने का वैवाहिक संबध स्कॉटलैंड के राजवश से हो गया। फलतः जब डेविड द्वितीय १३७१ ई० मे निःसतान मर गया तो स्कॉट्लैंड का राज्य वॉल्टर और मारजोरी के पुत्र को मिला और वह रॉबर्ट द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठा। वह स्टुअर्ट वंश का प्रथम राजा हुआ। उसके छह वंशज गद्दी पर बैठे जिनके नाम रॉबर्ट तृतीय से जेम्स प्रथम और जेम्स पंचम तक आते हैं। १५४२ मे जेम्स पचम की मृत्यु से प्रत्यक्ष पुरुष वंशज समाप्त हो जाता है। उसकी पुत्री मेरी जिसके द्वारा स्टुअर्ट (Stuart) अक्षरविन्यास ग्रहण किया गया, हेनरी सप्तम की पुत्री मार्गरेट से उत्पन्न होने तथा जेम्स चतुर्थ की रानी होने के कारण इंगलैंड तथा स्कॉटलैंड की गद्दी पर अपना अधिकार सिद्ध कर रही थी। मेरी का पुत्र जेम्स षष्ठ जेम्स प्रथम के बाद से १६०३ ई० में इंगलैंड की गद्दी पर बैठकर, ग्रेट ब्रिटेन के स्टुअर्ट घराने का आदिपुरुष सिद्ध हुआ और स्टुअर्ट घराने ने इंगलैंड और स्कॉटलैंड का शासन १६०३ ई० से १६८८ की क्रांति तक किया। जेम्स द्वितीय के भाग जाने के बाद स्टुअर्ट पुरुषवंश सदैव के लिये समाप्त कर दिया गया। जेम्स के उत्तराधिकारी क्रमश. उसकी पुत्रियाँ मेरी (अपने पति विलियम ऑव ऑरेंज के साथ) तथा एन हुईं। स्टुअर्ट घराने की पुरुषरेखा का अंत जेम्स द्वितीय के पौत्र चार्ल्स एडवर्ड (The young Pretender) तथा हेनरी स्टुअर्ट (Cardinal York) की मृत्यु से हुआ।

स्टुअर्ट संज्ञा राजा के परिचारक (Steward) से ग्रहण की गई है। स्टुअर्ट अक्षरविन्यास मेरी के समय से प्रयोग में आने लगा था। उस परिवर्तन का कारण फ्रेंच प्रभाव कहा जा सकता है। इंगलैंड की गद्दी पर बैठने के उपरांत इस घराने ने स्टुअर्ट स्वरूप को ही पसंद किया। स्कॉट्लैंड में अब भी बहुधा स्टेवर्ट (Stewart) लिखा जाता है।

सं० ग्रं० — डंकन स्टेवर्ट : जीनिओलोजीकल अकाउट ऑव दी सरनेम ऑव० स्टेवर्ट (१७३९); एस काउअन (Cowan): रॉयल हाउस ऑव स्टुअर्ट (Stuart), १९०८; टी० एफ० हेंडरसन : दी रॉयल स्टेवर्ट्स् (१९१४)।

स्टोइक (दर्शन) यह दर्शन अरस्तू के बाद यूनान में विकसित हुआ था। सिकंदर महान् की मृत्यु के बाद ही विशाल यूनानी साम्राज्य के टुकड़े होने लगे थे। कुछ ही समय मे वह रोम की विस्तारनीति का लक्ष्य बन गया और पराधीन यूनान में अफलातून तथा अरस्तू के आदर्श दर्शन का आकर्षण बहुत कम हो गया। यूनानी समाज भौतिकवाद की ओर झुक चुका था। एपीक्यूरस ने सुखवाद (भोगवाद) की स्थापना (३०६ ई० पू०) कर, पापो के प्रति देवताओं के आक्रोश तथा भावी जीवन में बदला चुकाने के भय को कम करने का प्रयत्न प्रारंभ कर दिया था। तभी जीनो ने रंग-विरंगे मडप (स्टोआ) में स्टोइक दर्शन की शिक्षा द्वारा, अंध-विश्वासो को मिटाते हुए, अपने समाज को नैतिक जीवन का मूल्य बताना प्रारंभ किया। इस दर्शनपरपरा को पुष्ट करनेवालो में जीनो के अतिरिक्त, क्लिऐंथिस और क्रिसिप्पस के नाम लिए जाते हैं। 'स्टोइक दर्शन' को तीन भागो में प्रस्तुत किया जाता है — तर्क, भौतिकी तथा नीति।

स्टोइक तर्क — स्टोइक दार्शनिको को अफलातून और अरस्तू का प्रत्ययवाद स्वीकार्य न लगा। उनके विचार से, चेतना से बाह्य प्रत्ययो की कोई सत्ता नही। वे मात्र विचार हैं, जिन्हे मन वस्तुओं से अलग करके देखता है। ज्ञान को मन की कृति मानकर वे उसे निराश्रित कल्पना नही बनाना चाहते थे। इसलिये उन्होने कहा, ज्ञान इंद्रियद्वारो से होकर मन तक पहुँचता है। स्टोइक दार्शनिको ने ही, पहले पहल मन को कोरी पट्टी (टेबुला राजा) ठहराया था। किंतु, आधुनिक अंग्रेज विचारक जॉन लॉक (१६३२-१७१४) की भाँति, स्टोइक मन को निष्क्रिय ग्राहक नही मानते थे। वे उसे क्रियाशील समझते थे। पर मन की क्रियाशीलता के लिये ऐंद्रिक प्रदत्तो की वे आवश्यकता समझते थे। जर्मन दार्शनिक इमैनुएल काट (१७२४-१८०४) की ज्ञानमीमासा पढ़ते हुए हमें स्टोइक

ओषधियो में इसका व्यवहार होता है। यह बडी अल्प मात्रा में बलवर्धक होता है। कुछ शर्बतों में सल्फेट या हाइड्रोक्लोराइड के रूप में प्रयुक्त होता है। बडी मात्रा मे यह बहुत विषाक्त होता है। यह सीधे रक्त में प्रविष्ट कर जाता है। अल्प मात्रा में आमाशय रस का स्राव उत्पन्न करता है। इसका विशेष प्रभाव केंद्रीय तंत्रिकातंत्र (Central nervous system) पर होता है। रीढरज्जु के प्रेरक क्षेत्र (motor area) को यह उत्तेजित करता और प्रतिवर्त क्षोभ्यता (reflex irritability) को बढाता है। अल्प मात्रा मे स्पर्श, दृष्टि और श्रवण संवेदनशक्ति को बढाता है। बडी मात्रा में पेशियो का स्फुरण और निगलने में कठिनता उत्पन्न करता है। अधिक मात्रा में ऐंठन उत्पन्न करता है। सामान्य मात्रा से शरीर के ताप पर कोई प्रभाव नहीं पडता पर अतिमात्रा से ताप में वृद्धि होती है। विषैली मात्रा से बीस मिनट के अंदर विष के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। गरदन के पीछे का भाग कडा हो जाता है। पेशियो का स्फुरण होता है और दम घुटने सा लगता है। फिर रोगी को तीव्र ऐंठन होती है। एक मिनट के बाद ही पेशियाँ ढीली पड जाती हैं और रोगी थककर गिर पडता है। पर चेतना बराबर बनी रहती है। स्ट्रिकनिन विष की दवा काठ के कोयले या अंडे की सफेदी का तत्काल सेवन है। वमनकारी ओषधियो का सेवन निषिद्ध है क्योंकि उससे ऐंठन उत्पन्न हो सकती है। रोगी को पूर्ण विश्राम करने देना चाहिए और बाह्य उद्दीपन से बचाना चाहिए। बारबिट्यूरेटो या ईथर की शिराभ्यंतरिक (Intravenous) सूई से ऐंठन रोकी जा सकती है। कृत्रिम श्वसन का भी उपयोग हो सकता है।

[फू० स० व०]

स्ट्रेबो यूनानी भूगोलवेत्ता तथा इतिहासकार का जन्म एशिया माइनर के अमासिया स्थान में ईसा से लगभग ६३ वर्ष पूर्व हुआ था। स्ट्रेबो ने अनेक यात्राएँ कीं किंतु जब १९ ई० में मरे तो रोम मे रहते थे।

स्ट्रेबो ने अच्छी शिक्षा पाई। इन्होने अनेक यात्राएँ की, पूर्व में आर्मीनिया से पश्चिम से सार्डिनिया तक तथा उत्तर में काला सागर से दक्षिण मे इथिओपिया (अबिसीनिया) तक। इन्होने ४३ खडो में एक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा था जो लुप्त हो चुका है। केवल कुछ अश ही प्राप्य हैं। इनमें पोलिबियस के इतिहास से लेकर ऐक्टियम की लडाई तक का हाल निहित है। स्ट्रेबो का १७ खडो में लिखा हुआ 'ज्योग्रैफिका' सुरक्षित है, जो यूरोप, एशिया तथा अफ्रीका के भूगोल से सबधित है। यह बडा महत्वपूर्ण ग्रंथ है। आठ पुस्तकें यूरोप पर और शेष एशिया और अफ्रीका पर हैं। यद्यपि इन्होने बहुत कुछ पूर्वकालिक लेखको से लिया है तथापि इसमें व्यक्तिगत अनुभव भी दिए गए हैं।

[शा० ला० का०]

स्तनग्रंथि (Mammary gland) यह स्तनधारी वर्ग के शरीर की एक विशेष और अनूठी ग्रंथि है। यह 'दूध' का स्रवण करती है जो नवजात शिशु के लिये पोषक आहार है। इस प्रकरण में सबसे आद्यकालीन (primitive) स्तनधारी डकबिल (बत्तखचंचु, duck-bill) और प्लेटिपस (platypus) हैं जो अंडा देते हैं। इनकी स्तनग्रंथि में चूचुक (nipples) का अभाव होता है और दूध की रसना (oozing) दो स्तनप्रदेशों से होती है जिसे पशुशावक जीभ से चाटते हैं।

धानी प्राणीगण, जैसे कंगारू, में स्तनग्रंथि से सबंधित उसके नीचे एक धानी (pouch) रहती है जिसे स्तनगर्त (mammary pocket) कहते हैं। जन्म के बाद पशुशावक गर्भाशय से रेंगकर स्तनगर्त मे आ जाते हैं। वहाँ वे अधिक समय तक अपना मुँह चूचक से लगाए रहते हैं और इस तरह दुग्ध आहार ग्रहण करते हैं।

मानव जाति में जन्म के समय स्तनग्रंथि का प्रतिरूप केवल चूचक होता है। स्तनग्रंथियो को त्वचाग्रंथि माना जाता है क्योकि त्वचा की तरह इनकी भ्रूणीय उत्पत्ति भी बहिर्जनस्तर (ectoderm) की वृद्धि से होती है। तरुण अवस्था मे एस्ट्रोजेन (oestrogen), (स्त्री मदजन), हारमोन और मदचक्र (oestrons cycle) के कारण स्तन ऊनको को अधिक उत्तेजना मिलती है और स्तन की नली प्रणाली, वसा और स्तन ऊतक में अधिक वृद्धि होती है। गर्भावस्था में स्तनग्रंथि की नलियाँ शाखीय हो जाती हैं और इन शाखाओ के छोर पर एक नई प्रकार की अंगूर की तरह कोष्ठिकाओं (alveoli) की वृद्धि होती है। इन कोष्ठिकाओं की धारिच्छद कोशिकाएँ (epithelial cells) दूध और कोलोस्ट्रम (colostrum) स्रावित करने में समर्थ होती हैं जो अवकाशिका (central cavity) में एकत्र होते हैं और इस कारण स्तन मे फैलाव भी होता है। गर्भावस्था मे कोष्ठिकाओ की वृद्धि को अडाशय (ovary) के हारमोन (oestrogen) एस्ट्रोजेन और प्रोजेस्टरोन (progesterone) से और पियुषिका पिंड के अग्रखड (anterior lobe of pituitary) में स्रावित एक दुग्धजनक हारमोन (lactogenic hormone) से अधिक उत्तेजना मिलती है। दूध की उत्पत्ति कोष्ठिकाओं की सख्या पर निर्भर होती है। प्रसूति (parturition) के समय स्तनग्रंथियाँ पूर्ण रूप से विकसित और दूध स्रावित करने में समर्थ रहती हैं।

[प्र० ना० मे०]

स्तरित शैलविज्ञान (Stratigraphy) भौमिकी की वह शाखा है जिसके अतर्गत पृथ्वी के शैलसमूहो, खनिजो और पृथ्वी पर पाए जानेवाले जीव जतुओं का, अध्ययन होता है। पृथ्वी के धरातल पर उसके जन्म से लेकर अब तक हुए विभिन्न परिवर्तनो के विषय में स्तरित शैलविज्ञान हमें जानकारी प्रदान करता है। शैलो और खनिजों के अध्ययन के लिये स्तरित शैलविज्ञान, शैलविज्ञान (petrology) की सहायता लेता है और जीवाश्म अवशेषो के अध्ययन में पुराजीवविज्ञान की। स्तरित शैलविज्ञान के अध्ययन का ध्येय पृथ्वी के विकास और इतिहास के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है। स्तरित शैलविज्ञान न केवल पृथ्वी के धरातल पर पाए जानेवाले शैलसमूहों के विषय में ज्ञान प्रदान करता है, बल्कि यह पुरातन भूगोल, जलवायु और जीव जतुओ की भी एक झलक प्रदान करता है और हम स्तरित शैलविज्ञान को पृथ्वी के इतिहास का एक विवरण कह सकते हैं।

स्तरित शैलविज्ञान को कभी कभी ऐतिहासिक भौमिकी भी कहते हैं जो वास्तव में स्तरित शैलविज्ञान की एक शाखा मात्र है।

स्टिफेंसन, जॉर्ज (Stephenson George; सन् १७८१-१८४८) अंग्रेज इजीनियर, का जन्म निउकासल के पास वाइलैम (Wylam) में हुआ था। इनके पिता पंप चलानेवाले इंजन में कोयला झोंकने का काम करते थे। इनका बालपन मजूरी करते बीता। १७ वर्ष की आयु मे दूसरा काम करते हुए, इन्होने रात्रिपाठशाला में शिक्षा प्राप्त करनी आरभ की। २१ वर्ष की आयु मे ये इजन चलाने के काम पर नियुक्त हुए और खाली समय में घडियो की मरंमत कर कुछ उपार्जन करते रहे।

सन् १८१२ में इन्हे इंजिन के मिस्त्री का काम मिला। तीन वर्ष बाद इन्होने खनिको के सुरक्षा (Safety) लैंप का आविष्कार लगभग उसी समय किया जब हम्फ्री डेवी ने। इस आविष्कार के श्रेय के संबंध में विवाद उठ खडा हुआ, किंतु इससे इनकी प्रसिद्धि हुई। सन् १८१४ में इन्होने अपना प्रथम चल इजन बनाया, जिससे एक ट्राम चलाने का काम लिया जाने लगा। सन् १८२१ मे ये स्टॉक्टन तथा डार्लिंगटन रेलवे मे इंजीनियर तथा पाँच वर्ष बाद लिवरपूल-मैंचेस्टर रेलवे के मुख्य इंजीनियर नियुक्त हुए। इन रेलो की गाडियाँ घोडे खीचते थे। रेलवे के निदेशको को इन्होने भाप से चलनेवाले इंजन के प्रयोग का सुझाव दिया और उनकी स्वीकृति पर 'रॉकेट' नामक प्रथम रेल इंजन बनाया, जो बहुत सफल रहा। इस सफलता के कारण, रेलों का विशेष विकास हुआ, जिसमें स्टिफेंसन ने प्रमुख भाग लिया और बहुत धन कमाया। निउकासल में रेल के इजन बनाने का कारखाना सन् १८२३ मे खोला, जिसमे इन्होंने अनेक इजन बनाए और सैकडो मिमी लंबी रेलो के बनाने के काम का संचालन किया।

इनकी ख्याति रेल इजन के जन्मदाता होने के कारण है।
[भ० दा० व०]

स्टिफेंसन, रॉबर्ट (सन् १८०३-५९) अंग्रेज इंजीनियर, जॉर्ज स्टिफेंसन, प्रथम रेल इजन के निर्माणकर्ता, के पुत्र थे। निउकासल नगर और एडिनबरा विश्वविद्यालय में काम करना आरंभ किया जिसमे प्रथम रेल इंजन, रॉकेट, बना था। बाद में इन्होने इग्लैंड तथा विदेश में भी कई रेलो के निर्माण में भाग लिया।

इनकी प्रसिद्धि का कारण इनके द्वारा निर्मित कई अत्युत्तम नलिकाकार (tubular) पुल, जैसे मीनाइ जलडमरूमध्य के आर पार ब्रिटानिया पुल, कॉनवे पुल, विक्टोरिया ब्रिज (मॉण्ट्रियल, कैनाडा में), नील नदी पर दुमयात (dumyat, मिस्र) में दो पुल, आदि हैं।
[भ० दा० व०]

स्टेथॉस्कोप (Stethoscope, वक्षस्थल-परीक्षक-यंत्र) फ्रास के चिकित्सक रेने लैनेक ने १८१६ ई० में उर-परीक्षण के लिये एक यत्र की खोज की, जिसके आधार पर प्रचलित वक्षस्थल परीक्षक यंत्र का निर्माण हुआ है। आजकल प्राय सभी चिकित्सक द्विकर्णीय यत्र को ही उपयोग में लाते हैं। इसके दो भाग होते हैं, एक वक्षखंड जो घंटी या प्राचीर प्रकार का होता है तथा दूसरा कर्णखड। ये दोनो रबर की नलिकाओ द्वारा जुडे रहते हैं। हृदय, फेफडे, आँत, नाडियाँ और वाहनियाँ आदि जब रोग से ग्रस्त हो जाती हैं तब चिकित्सक इसी यत्र द्वारा उनसे निकली ध्वनि को सुनकर जानता है कि ध्वनि नियमित है या अनियमित। अनियमित ध्वनि रोग का संकेत करती है। इस यत्र से ध्वनि तेज सुनाई पड़ती है। रोग-परीक्षण मे एक अच्छे वक्षस्थल परीक्षक यत्र का होना अति आवश्यक है।
[इ० मा०]

स्ट्रांशियम (Strontıam) क्षारीय मृत्तिका तत्वों का एक महत्वपूर्ण सदस्य है। इसके दो अन्य सदस्य बेरियम और कैलसियम हैं। स्ट्रांशियम, बेरियम और कैल्सियम के मध्य आता है। इसका सकेत, स्ट्रॉं, Sr, परमाणुसंख्या ३८, परमाणुभार ८७·६३, घनत्व २·५४, गलनाक ८००° सें० और क्वथनाक ११,५००° सें० है। इसके चार समस्थानिक, जिनकी द्रव्यमान सख्या ८८, ८६, ८७ और ८४ हैं, पाए गए हैं। तीन रेडिओऐक्टिव समस्थानिक, जिनकी द्रव्यमान सख्या ८५, ८७ और ८९ है, कृत्रिम विधि से प्राप्त हुए हैं। स्काटलैंड के स्ट्राशियान में पाए जाने के कारण इसका नाम स्ट्राशियम पड़ा। इसके परमाणु में इलेक्ट्रान चार कक्षाओ में वितरित हैं और एक बाह्यतम कक्ष होता है जिसमें दो सयोजक इलेक्ट्रान रहते हैं। यह सदा ही द्विसंयोजक लवण बनता है।

स्ट्राशियम धातु और इसके लवणों के गुण बेरियम और कैल्सियम धातुओ और उनके लवणों के गुणो से बहुत समानता रखते हैं। उनके प्राप्त करने की विधियाँ भी प्राय: एक सी ही हैं।

स्ट्राशियम के प्रमुख खनिज स्ट्राशिएनाइट (Strontıanıte), कार्बोनेट और सेलेस्टाइट (Celestıte) सल्फेट हैं। इनके निक्षेप अनेक देशो, कैलिफोर्निया, वाशिंगटन, टेक्सास, मेक्सिको, स्पेन, और इग्लैंड आदि में पाए जाते हैं। स्ट्राशियम के लवण, क्लोराइड, ब्रोमाइड, कार्बोनेट, क्लोरेट, नाइट्रेट, हाइड्राक्साइड आदि प्राप्त हुए हैं। क्लोराइड द्रावक के रूप में और इस्पात उपचार के लिये लवण ऊष्मक में, कार्बोनेट, क्लोरेट, नाइट्रेट आतशबाजी में, हाइड्राक्साइड, शोरा से शर्करा प्राप्त करने मे, काम आते हैं। नाइट्रेट सकेतप्रकाश में भी काम आता है। स्ट्राशियम का लैक्टेट मंद रोगाणुरोधक, ज्वरनाशी और पीडाहारी होता है।

हाइड्राक्साइ स्फुरदीप्त, प्रतिदीप्त प्रकाशन युक्तियो एवं लोम-नाशक ओषधियो के निर्माण मे प्रयुक्त होता है। स्ट्राशियम के लवण इनेमल, ग्लेज और काँच के निर्माण में भी काम आते हैं। [स० व०]

स्ट्रिकनिन एक ऐलकेलाइड है जिसका आविष्कार १८१८ ई० में हुआ था। यह स्ट्रिकनोस वंश के एक पौधे नक्सवोमिका के बीज से निकाला गया था। पीछे अन्य कई पौधो में भी पाया गया। साधारणतया यह एक दूसरे ऐलकेलाइड ब्रुसिन के साथ साथ पाया जाता है। ऐलकोहॉल से यह वर्णरहित प्रिज्म बनाता है। जल में यह प्राय. अविलेय होता है। सामान्य कार्बनिक विलायको में भी कठिनता से घुलता है। यह क्षारीय क्रिया देता है। यह अम्लीय क्षार है। स्वाद में बडा कड़वा होता है।

उद्योगो की स्थापना, और नए श्रमिक समाज का निर्माण। सरकार सामूहिक खेतों में उत्पन्न अन्न को एक निश्चित दर पर खरीदती थी और ट्रैक्टर किराए पर देती थी। निर्धन और मध्य वर्ग के कृषकों ने इस योजना का समर्थन किया। धनी कृषकों ने इसका विरोध किया किंतु उनका दमन कर दिया गया। १९४० ई० में ८६% अन्न सामूहिक खेतों में, १२½% सरकारी फार्मों मे और केवल १½% व्यक्तिगत किसानो के खेतों मे उत्पन्न होने लगा। इस प्रकार लगभग १२ वर्षों मे रूस में कृषि में यह क्रांतिकारी परिवर्तन हो गया। उद्योगो का विकास करने के लिये तुर्किस्तान में बिजली का उत्पादन बढ़ाया गया। नई क्रांति के फलस्वरूप १९३७ में केवल १०% व्यक्ति अशिक्षित रह गए जबकि १९१७ से पूर्व ७९% व्यक्ति अशिक्षित थे।

स्तालिन साम्यवादी नेता ही न था, वह राष्ट्रीय तानाशाह भी था। १९३६ में १३ रूसी नेताओं पर स्तालिन को मारने का षड्यंत्र रचने का आरोप लगाया गया और उन्हे प्राणदंड दिया गया। इस प्रकार स्तालिन ने अपना मार्ग निष्कंटक कर लिया। १९३९ तक मजदूर संघ, सोवियत और सरकार के सभी विभाग पूर्णतया उसके अधीन हो गए। कला और साहित्य के विकास पर भी स्तालिन का पूर्ण नियंत्रण था।

१९२४ में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री ने रूस की सरकार को मान्यता दे दी। १९२६ मे सोवियत सरकार ने टर्की और जर्मनी आदि देशों से संधि की। १९३४ ई० में रूस राष्ट्रसंघ का सदस्य बना। जब जर्मनी ने अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा ली तो स्तालिन ने ब्रिटेन और फ्रांस से संधि करके रूस की सुरक्षा का प्रबंध किया। किंतु ब्रिटेन ने जब म्यूनिक समझौते से जर्मनी की मांगें मान ली तो उसने १९३९ में जर्मनी के साथ तटस्थता की संधि कर ली। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ में रूस ने जर्मनी का पक्ष लिया। जब जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया तो ब्रिटेन और अमरीका ने रूस की सहायता की। १९४२ में रूस ने जर्मनी को आगे बढ़ने से रोक दिया और १९४३-४४ में उसने जर्मनी की सेनाओ को पराजित किया। १९४५ मे स्तालिन ने अपने आपको जेनरलिसिमो (generalissimo) घोषित किया।

फरवरी, १९४५ मे याल्टा समेलन में रूस को सुरक्षा परिषद् में निषेधाधिकार दिया गया। चेकोस्लोवाकिया से चीन तक रूस के नेतृत्व में साम्यवादी सरकारें स्थापित हो गईं। फ्रांस और ब्रिटेन की शक्ति अपेक्षाकृत कम हो गई। १९४७ से ही रूस और अमरीका में शीत युद्ध प्रारंभ हो गया। साम्यवाद का प्रसार रोकने के लिये अमरीका ने यूरोपीय देशो को आर्थिक सहायता देने का निश्चय किया। उसी वर्ष रूस ने अंतरराष्ट्रीय साम्यवाद संस्था को पुनरुज्जीवित किया। स्तालिन के नेतृत्व में सोवियत रूस ने सभी क्षेत्रो मे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। वस्तुओं का उत्पादन बहुत बढ गया और साधारण नागरिक को शिक्षा, मकान, मजदूरी आदि जीवन की सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हो गईं। [ओं० प्र०]

स्तीफेन, जार्ज (Stephan, George १८६३–१९३३) जर्मन कवि स्तीफेन जार्ज ने उस समय लिखना प्रारंभ किया जब साहित्य मे यथार्थवाद का बोलबाला था। अपने गुरु नीत्से (Nietzsche) की भाँति इन्होंने अनुभव किया कि यथार्थवादी प्रवृत्ति साहित्य के लिये घातक सिद्ध हो रही है तथा इसके कुप्रभाव से सौंदर्यबोध एवं सर्जनात्मकता का ह्रास हो रहा है। यथार्थवाद की वेगवती धारा को रोकना इनके साहित्यिक जीवन का मुख्य ध्येय था। सर्वप्रथम इन्होंने भाषा को परिष्कृत करने का कार्य हाथ में लिया।

ईसाई धर्म में विनम्रता, कष्ट सहन करने की क्षमता तथा दीन और निर्बल की सेवा पर जोर दिया गया है। नीत्से ने इस धर्म के उपर्युक्त आदर्शों को दासमनोवृत्ति का परिचायक बताया और उनकी कटु आलोचना की। ईसाई धर्म के विपरीत उसने एक नया जीवन दर्शन दिया जिसमें शक्ति की महत्ता पर बल दिया गया था। उसके अनुसार महापुरुष नैतिकता अनैतिकता के धरातल से ऊपर उठकर दृढ़ संकल्प के साथ कार्य करने में ही जीवन की सार्थकता देखते हैं। नीत्से के प्रभाव के फलस्वरूप ही जर्मनी में फासिज्म और हिटलर का प्रादुर्भाव हुआ।

स्तीफेन जार्ज ने नीत्से के जीवनदर्शन को साहित्य के क्षेत्र में स्वीकार किया। पराक्रमी पुरुषो में दैवी शक्ति भी निहित होती है। ऐसी ही विभूतियाँ जीवन के चरम मूल्यों की स्थापना कर पाती हैं। जहाँ साधारण प्राणी बहुधा सही गलत की उधेड़बुन में फँस जाते हैं और उनकी क्रियाशीलता किसी न किसी अंश मे नष्ट हो जाती है, पराक्रमी पुरुष एकनिष्ठ भाव से अपने लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास करते हैं। उनमे जीवन और समाज को अपनी धारणाओं के अनुसार नए साँचे में ढालने के लिये अदम्य उत्साह होता है। जार्ज स्तीफेन ने काव्य को आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का सर्वोत्कृष्ट रूप माना। श्रेष्ठ कवि बाह्य क्रियाकलाप के आवरण के नीचे छिपे जीवन के मूल तत्वों को प्रकाश मे लाता है। उसका काम स्थूल दृष्टि को भोंडी दिखनेवाली चीजों में निहित सौंदर्य को निखारना है। सन् १८९० से १९२८ तक इनकी कविताओं के कई संग्रह निकले। इन कविताओ में इन्होने एक नए जर्मन साम्राज्य की कल्पना प्रस्तुत की जिसमें नेता का आदेश सर्वोपरि होगा। इन्हें जनतंत्र में विश्वास नहीं था और सबके लिये समान अधिकार का सिद्धांत इन्होंने कभी नही स्वीकार किया। नया साम्राज्य किसी एक पराक्रमी व्यक्ति के निर्देश में काम करनेवाले कुछ गिने चुने लोगो द्वारा ही स्थापित हो सकता था। जार्ज स्तीफेन ने उस नेता की कल्पना एक कवि के रूप में की और स्वयं को सर्वथा उपयुक्त पाते हुए अपने इर्द गिर्द कवियो के एक गिरोह को भी खडा कर लिया। इनके शिष्यों में गंडोल्फ (Friedrich Gundolf) भी थे, जिन्होंने हिटलरी शासन में प्रचारमंत्री डा० गोबेल्स को पढ़ाया था। [तु० ना० सिं०]

स्त्रीरोगविज्ञान (Gynaecology) स्त्रीरोगविज्ञान, चिकित्साविज्ञान की वह शाखा है जो केवल स्त्रियों से संबंधित विशेष रोगों, अर्थात् उनके विशेष रचना अंगों से संबंधित रोगो एवं उनकी चिकित्सा विषय का समावेश करती है। स्त्री के प्रजननांगो को दो वर्ग में विभाजित किया जा सकता है (१) बाह्य और (२) आंतरिक।

इतिहास में पिछली घटनाओं का एक क्रमवार विवरण होता है; पर स्तरित शैलविज्ञान पुरातन भूगोल और विकास पर भी प्रकाश डालता है। प्राणिविज्ञानी (Zoologist), जीवो के पूर्वजो के विषय मे स्तरित शैलविज्ञान पर निर्भर हैं। वनस्पतिविज्ञानी (Botanist) भी पुराने पौधो के विषय में अपना ज्ञान स्तरित शैलविज्ञान से प्राप्त करते हैं। यदि स्तरित शैलविज्ञान न होता तो भूआकृतिविज्ञानी (geomorphologists) का ज्ञान भी पृथ्वी के आधुनिक रूप तक ही सीमित रहता। शिल्पवैज्ञानिक (Technologists) को भी स्तरित शैलविज्ञान के ज्ञान के विना अंधेरे मे ही कदम उठाने पड़ते।

इस प्रकार स्तरित शैलविज्ञान बहुत ही विस्तृत विज्ञान है जो शैलो और खनिजो तक ही सीमित नहीं वरन् अपनी परिधि में उन सभी विषयो को समेट लेता है जिनका संबंध पृथ्वी से है।

स्तरित शैलविज्ञान के दो नियम हैं जिनको स्तरित शैलविज्ञान के नियम कहते हैं। प्रथम नियम के अनुसार नीचेवाला शैलस्तर अपने ऊपरवाले से उम्र मे पुरातन होता है और दूसरे के अनुसार प्रत्येक शैलसमूह में एक विशिष्ट प्रकार के जीवनिक्षेप सग्रहीत होते हैं।

वास्तव में ये नियम जो बहुत वर्षों पहले बनाए गए थे, स्तरित शैलविज्ञान के विषय में संपूर्ण विवरण देने मे असमर्थ हैं। पृथ्वी के विकास का इतिहास मनुष्य के विकास की भाँति सरल नहीं है। पृथ्वी का इतिहास मनुष्य के इतिहास से कही ज्यादा उलझा हुआ है। समय ने बार बार पुराने प्रमाणो को मिटा देने की चेष्टा की है। समय के साथ साथ आग्नेय क्रिया (igneous activity) कायातरण (metamorphism) और शैलसमूहों के स्थानातरण ने भी पृथ्वी के रूप को बदल दिया है। इस प्रकार वर्तमान प्रमाणो और ऊपर दिए नियमों के आधार पर पृथ्वी का तीन अरब वर्ष पुराना इतिहास नही लिखा जा सकता। पृथ्वी का पुरातन इतिहास जानने के लिये और बहुत सी दूसरी बातो का सहारा लेना पड़ता है।

स्तरित शैलविज्ञानी का मुख्य ध्येय है किसी स्थान पर पाए जानेवाले शैलसमूहो का विश्लेषण, नामकरण, वर्गीकरण और विश्व के स्तरशैलो से उनकी समतुल्यता स्थापित करना। उसको पुरातन जीव, भूगोल और जलवायु का भी विस्तृत विवरण देना होता है। उन सभी घटनाओं का जो पृथ्वी के जन्म से लेकर अब तक घटित हुई हैं एक क्रमवार विवरण प्रस्तुत करना ही स्तरित शैलविज्ञानी का लक्ष्य है।

पृथ्वी के आँचल में एक विस्तृत प्रदेश निहित है। इसलिये यह स्वाभाविक है कि उसके प्रत्येक भाग में एक सी दशाएँ नहीं पाई जाएँगी। बीते हुए युग में बहुत से भौमिकीय और वायुमडलीय परिवर्तन हुए हैं। इन्ही कारणो से किसी भी प्रदेश में पृथ्वी का संपूर्ण इतिहास संग्रहीत नही है। प्रत्येक महाद्वीप के इतिहास में बहुत सी न्यूनताएँ हैं। इसीलिये प्रत्येक महाद्वीप से मिलनेवाले प्रमाणो को एकत्र करके उनके आधार पर पृथ्वी का संपूर्ण इतिहास निर्मित किया जाता है। किंतु यह ऐसा ढंग है जिसके ऊपर पूर्ण विश्वास नही किया जा सकता और इसीलिये पृथ्वी के विभिन्न भागो में पाए जानेवाले शैलसमूहो के बीच बिल्कुल सही समतुल्यता स्थापित करना संभव नही है। इन्ही कठिनाइयो को दूर करने के लिये स्तरित शैलविज्ञानी समतुल्यता के बदले समस्थानिक (homotaxial) शब्द प्रयोग में लाते हैं जिसका अर्थ है *व्यवस्था की सदृशता*।

पुरातनयुग में जीवो का विकास एकरूपेण और समान नही था। वायुमडलीय दशाएँ भी जीवविकास के क्रम में परिवर्तन लाती हैं। जो जीव समशीतोष्ण जलवायु में बहुतायत से पाए जाते हैं वे ऊष्ण जलवायु में जीवित नही रह पाएँगे या उनकी सख्या मे भारी कमी हो जायगी। हममें से कुछ को रेगिस्तानी जलवायु न भाती हो लेकिन बहुत से लोग इसी जलवायु में रहते हैं। इस प्रकार जीवविकास पृथ्वी के प्रत्येक भाग मे एक गति से नही हुआ है। आजकल आस्ट्रेलिया में पाए जानेवाले कुछ जीवो के अवशेष यूरोप के मध्यजीवकल्प (Mesozoic Era) में पाए गए हैं। इसलिये यह कहना उचित न होगा कि इन दोनो के पृथ्वी पर अवतरण का समय एक है। [रा० चं० सिं०]

स्तालिन, जोज़फ, विसारिग्रोनोविच (१८७९-१९५३) स्तालिन का जन्म जॉर्जिया में गोरी नामक स्थान पर हुआ था। उसके माता पिता निर्धन थे। जोज़फ गिर्जाघर के स्कूल मे पढने की अपेक्षा अपने सहपाठियो के साथ लड़ने और घूमने मे अधिक रुचि रखता था। जब जॉर्जिया में नए प्रकार के जूते बनने लगे तो जोज़फ का पिता तिफ्लिस चला गया। यहाँ जोज़फ को संगीत और साहित्य में अभिरुचि हो गई। इस समय तिफ्लिस मे बहुत सा क्रातिकारी साहित्य चोरी से बाँटा जाता था। जोज़फ इन पुस्तको को बड़े चाव से पढने लगा। १६ वर्ष की अवस्था में वह मार्क्स के सिद्धातो पर आधारित एक गुप्त संस्था का सदस्य बना। १८९९ ई० में इसके दल से प्रेरणा प्राप्त कर काकेशिया के मजदूरो ने हड़ताल की। सरकार ने इन मजदूरो का दमन किया। १९०० ई० में तिफ्लिस के दल ने फिर क्राति का आयोजन किया। इसके फलस्वरूप जोज़फ को तिफ्लिस छोड़कर बातूम भाग जाना पड़ा। १९०२ ई० में जोज़फ को बदीगृह में डाल दिया गया। १९०३ से १९१३ के बीच उसे छह बार साइबेरिया भेजा गया। मार्च १९१७ में सब क्रातिकारियो को मुक्त कर दिया गया। स्तालिन ने जर्मन सेनाओ को हराकर दो बार खार्कोव को स्वतत्र किया और उन्हें लेनिनग्रेड से खदेड़ दिया।

१९२२ में सोवियत समाजवादी गणराज्यो का संघ बनाया गया और स्तालिन उसकी केंद्रीय उपसमिति में समिलित किया गया। लेनिन और ट्रॉट्स्की विश्वक्राति के समर्थक थे। स्तालिन उनसे सहमत न था। जब उसी वर्ष लेनिन को लकवा मार गया तो सत्ता के लिये ट्रॉट्स्की और स्तालिन में संघर्ष प्रारंभ हो गया। १९२४ में लेनिन की मृत्यु के पश्चात् स्तालिन ने अपने को उसका शिष्य बतलाया। चार वर्ष के संघर्ष के पश्चात् ट्रॉट्स्की को पराजित करके वह रूस का नेता बन बैठा।

१९२८ ई० मे स्तालिन ने प्रथम पंचवर्षीय योजना की घोषणा की। इस योजना के तीन मुख्य उद्देश्य थे — सामूहिक कृषि, भारी

पूर्व तथा रजो निवृत्ति के पश्चात् पाया जानेवाला रुद्धार्तव प्राकृतिक होता है। गर्भधारण का सर्वप्रथम लक्षण रुद्धार्तव है।

(३) हीनार्तव (Hypomenorrhoea) तथा स्वल्पार्तव (oligomenorrhoea) — हीनार्तव में मासिक (menstrual cycle) रज चक्र का समय बढ़ जाता है तथा अनियमित हो जाता है। स्वल्पार्तव मे रज स्राव का काल तथा उसकी मात्रा कम हो जाती है।

(४) ऋतुकालीन अत्यार्तव — (Menorrhagia) रज स्राव के काल में अत्यधिक मात्रा मे रज स्राव होना।

(५) अऋतुकाली अत्यार्तव (Metrorrhagia) दो रज स्रावकाल के बीच बीच में रक्तस्राव का होना।

(६) कष्टार्तव — (Dysmenorrhoea) इसमे अतिस्राव के साथ वेदना बहुत होता है।

(७) श्वेत प्रदर (Leucorrhoea) — योनि से श्वेत या पीत श्वेत स्राव के आने को कहते हैं। इसमें रक्त या पूय नहीं होना चाहिए।

(८) बहुलार्तव (Polymenorrhoea) — इसमें रज चक्र २८ दिन की जगह कम समय में होता है जैसे २१ दिन का अर्थात् स्त्री को रज स्राव शीघ्र शीघ्र होने लगता है। अंडोत्सर्ग (ovulation) भी शीघ्र होने लगता है।

(९) वैकारिक आर्तव (Metropathia Haemorrhagica)— यह एक अनियमित, अत्यधिक रज स्राव की स्थिति होती है।

कानीय रजोदर्शन —निश्चित वय या काल से पूर्व ही रज-स्राव के होने को कहते हैं तथा इसी प्रकार के यौवनागमन को कानीन यौवनागमन कहते हैं।

(१०) अप्राकृतिक आर्तव क्षय — निश्चित वय या काल से बहुत पूर्व तथा आर्तव विकार के साथ आर्तव क्षय को कहते हैं। प्राकृतिक क्षय चक्र की अवधि बढकर या मात्रा कम होकर धीरे धीरे होता है।

प्रजननांगों के सहज विकार — (१) बीजग्रथियाँ — ग्रथियों की रुद्ध वृद्धि (Hypoplasea) पूर्ण अभाव आदि विकार बहुत कम उपलब्ध होते हैं। कभी कभी अडग्रथि तथा बीजग्रंथि संमिलित उपस्थित रहती है तथा उसे अडवृषण (ovotesties) कहते हैं।

(२) बीजवाहिनियाँ — इनका पूर्ण अभाव, आंशिक वृद्धि, तथा इनका अधवर्ध (diverticulum) आदि विकार पाए जाते हैं।

(३) गर्भाशय — इस अग का पूर्ण अभाव कदाचित् ही होता है (अ) गर्भाशय मे दो शृग, एवं दो ग्रीवा होती है तथा दो योनि होती है अर्थात् दोनों म्यूलरी वाहिनी परस्पर विलग विगल रहकर वृद्धि करती है। इसे डाइडेलफिस (didelphys) गर्भाशय कहते हैं। (आ) इस तरह वह अवस्था जिसमें म्यूलरी वाहिनियाँ परस्पर विलग रहती हैं परतु ग्रीवा योनिसधि पर सयोजक ऊतक द्वारा सयुक्त होती है उसे कूट डाइडेल फिस कहते हैं। (इ) कभी गर्भाशय में दो शृग होते हैं जो एक गर्भाशय ग्रीवा में खुलते हैं। (ई) कभी गर्भाशय स्वाभाविक दिखाई देता है परतु उसकी तथा ग्रीवा की गुहा, पट द्वारा विभाजित रहती है। यह पट पूर्ण तथा अपूर्ण हो सकता है। (उ) कभी कभी छोटी छोटी अस्वाभाविकताएँ गर्भाशय मे पाई जाती हैं जैसे शृग का एक ओर झुकना, गर्भाशय का पिचका होना आदि। (ऐ) शैशविक आकार एव आयतन का गर्भाशय युवावस्था में पाया जाता है क्योंकि जन्म के समय से ही उसकी वृद्धि रुक जाती है। (ओ) अल्पविकसित गर्भाशय में गर्भाशय शरीर छोटा तथा ग्रैवेय ग्रीवा लबी होती है।

(४) गर्भाशय ग्रीवा — (अ) ग्रीवा के बाह्य एव अंतःमुख का बंद होना। (आ) योनिगत ग्रीवा का सहज अतिलव होना एवं भग तक पहुँचना।

(५) योनि — योनि कदाचित् ही पूर्ण लुप्त होती है। योनि-छिद्र का लोप पूर्ण अथवा अपूर्ण, पट द्वारा योनि का लबाई में विभाजन आदि प्राय मिलते हैं।

(६) इसमें अत्यधिक पाए जानेवाले सहज विकारो योनिच्छद का पूर्ण अछिद्रित होना या चलनी रूप छिद्रित होना होता है।

जननांगों के आघातज विकार एवं अगविस्थापन — (१) मूलाधार (Perineaum) तथा भग के विकार — साधारणतया प्रसव में इनमें विदर हो जाती है तथा कभी कभी प्रथम संयोग से, आघात से तथा कडु से भी विदरव्रण बन जाते हैं।

(२) योनि के विकार —गिरने से, प्रथम संभोग से, प्रसव से, यत्रप्रवेश से, पेसेरी से तथा योनिभित्तिसर्स से ये आघातज विकार होते हैं। इसी तरह प्रसव से योनि गुद तथा मूत्राशय योनि भगदर उत्पन्न होते हैं।

(३) गर्भाशय ग्रीवा विकार — ग्रीवाविदर प्राय प्रसव से उत्पन्न होता है।

(४) गर्भाशय एवं सह अंगों के विकार — प्रायः ये विकार कम होते हैं। गर्भाशय में छिद्र शल्यकर्म अथवा गर्भपात में यत्रप्रयोग से होता है।

(५) गर्भाशय का विस्थापन — (displacesment) (अ) गर्भाशय का अति अग्रनमन (anteversion) होना अथवा पश्चनति (Retroversion) होना। (आ) योनि के अक्ष से गर्भाशय अक्ष के सबंध का विकृत होना अर्थात् दोनों अक्षो का एक रेखा में होना अथवा प्रत्यग्वक्र (Retroflexion) होना। (इ) श्रोणिगुहा में गर्भाशय की स्थिति की जो प्राकृत सतह है उससे ऊपर या नीचे स्थित होना या भ्रंश (Prolapse) होना। (ई) गर्भाशय भित्तियो का उसकी गुहा में लटकना या विपर्यय (Inversion) होना।

प्रजननांगों के उपसर्ग

भग के उपसर्ग — (१) भग के विशिष्ट उपसर्ग — तीव्र भगशोथ, बार्थोलियन ग्रंथिशोथ गोनॉरिया में होते हैं। डुक्रे के जीवाणुओं द्वारा भग में मृदुव्रण उत्पन्न होता है। इसी प्रकार के यक्ष्मा एवं फिरंगज व्रण भी भग पर पाए जाते हैं।

(२) द्वैतीयिक भगशोथ — मधुमेह, पूयमेह, मूत्रस्राव, कृमि एव अर्श आदि में व्रण उत्पन्न होते हैं जिनसे यह शोथ होता है।

बाह्य प्रजननागो मे भग (Vulva) तथा योनि (Vagina) का अतर्भाव होता है।

आतरिक प्रजननागो में गर्भाशय, डिंबवाहिनियों और डिंबग्रथियो का अतर्भाव होता है।

प्रजननागो मे से अधिकतम की अभिवृद्धि म्यूलरी वाहिनी (Mullerian duct) से होती है। म्यूलरी वाहिनी भ्रूण की उदर गुहा एवं श्रोणिगुहाभित्ति के पश्चपार्श्वीय भाग में ऊपर से नीचे की ओर गुजरती है तथा इनमें मध्यवर्ती, वुल्फियन पिंड एव नलिकाएँ होती हैं, जिनके युवा स्त्री मे अवशेष मिलते हैं।

वुल्फियन नलिकाओ से अदर की ओर दो उपकला ऊतको से निर्मित रेखाएँ प्रकट होती हैं, यही प्राथमिक जनन रेखा है जिससे भविष्य मे डिंबग्र थियो का निर्माण होता है।

प्रजननांग संस्थान का शरीरक्रियाविज्ञान — एक स्त्री की प्रजनन आयु अर्थात् यौवनागमन से रजोनिवृत्ति तक, लगभग ३० वर्ष होती है। इस सस्थान की क्रियाओ का अध्ययन करने में हमे विशेषतः दो प्रक्रियाओ पर विशेष ध्यान देना होता है :

(क) बीजोत्पत्ति तथा (ख) मासिक रजःस्रवण। बीजोत्पत्ति का अधिक संबध बीजग्र थियो से है तथा रज स्रवण का अधिक सबध गर्भाशय से है परतु दोनों कार्य एक दूसरे से संबद्ध तथा एक दूसरे पर पूर्ण निर्भर करते हैं। बीजग्र थि (डिंबग्र थि) का मुख्य कार्य है, ऐसे बीज की उत्पत्ति करना है जो पूर्ण कार्यक्षम तथा गर्भाधान योग्य हो। बीजग्र थि स्त्री के मानसिक और शारीरिक अभिवृधि के लिये पूर्णतया उत्तरदायी होती है तथा गर्भाशय एवं अन्य जननागो की प्राकृतिक वृद्धि एवं कार्यक्षमता के लिये भी उत्तरदायी होती है।

बीजोत्पत्ति का पूरा प्रक्रम शरीर की कई हारमोन ग्र थियो से नियत्रित रहता है तथा उनके हारमोन (Harmone) प्रकृति एव क्रिया पर निर्भर करते हैं। अग्रग्रीयूष ग्र थि को नियत्रक कहा जाता है।

गर्भाशय से प्रति २८ दिन पर होनेवाले श्लेष्मा एवं रक्तस्राव को मासिक रज.स्राव कहते हैं। यह रज स्राव यौवनागमन से रजोनिवृत्ति तक प्रति मास होता है। केवल गर्भावस्था में नही होता है तथा प्राय धात्री अवस्था में भी नही होता है। प्रथम रज स्राव को रजोदय अथवा (menarche) कहते हैं तथा इसके होने पर यह माना जाता है कि अब कन्या गर्भधारण योग्य हो गई है तथा यह प्रायः यौवनागमन के समय अर्थात् १३ से १५ वर्ष के वय में होता है। पैंतालीस से पचास वर्ष के वय में रज स्राव एकाएक अथवा धीरे धीरे वद हो जाता है। इसे ही रजोनिवृत्ति कहते हैं। ये दोनो समय स्त्री के जीवन के परिवर्तनकाल हैं।

प्राकृतिक रज चक्र प्रायः २८ दिन का होता है तथा रज दर्शन के प्रथम दिन से गिना जाता है। यह एक रज स्राव काल से दूसरे रज स्राव काल तक का समय है। रज चक्र के काल में गर्भाशय अत : कला में जो परिवर्तन होते है उन्हे चार अवस्थाओं में विभाजित कर सकते हैं (१) वृद्धिकाल, (२) गर्भाधान पूर्वकाल, (३) रज - स्रावकाल तथा (४) पुनर्निर्माणकाल।

(१) रज.स्राव के समाप्त होने पर गर्भाशय कला के पुन. निर्मित हो जाने पर यह गर्भाशयकला वृद्धिकाल प्रारभ होता है तथा अडोत्सर्ग (ovulation) तक रहता है। अडोत्सर्ग (जीवग्रथि से अंडोत्सर्ग) मासिक रज स्राव के प्रारभ होने के पद्रहवें दिन होती है। इस काल में गर्भाशय अतःकला धीरे धीरे मोटी होती जाती है तथा डिंवग्रथि में डिंबनिर्माण प्रारभ हो जाता है। डिंबग्रथि के अतःस्राव ओस्ट्रोजेन की मात्रा बढती है क्योंकि ग्रेफियन फालिकल वृद्धि करता है। गर्भाशय अत कला ओस्ट्रोजेन के प्रभाव मे इस काल में ४-५ मिमी तक मोटी हो जाती है।

(२) इस अवस्था के पश्चात् स्राविक या गर्भाधान पूर्वकाल प्रारभ होता है तथा १५ दिन तक रहता है अर्थात् रज स्राव प्रारभ होने तक रहता है। रजःस्राव के पद्रहवें दिन डिंबग्र थि से अडोत्सर्ग (ovulation) होने पर पीत पिंड (Corpus Luteum) बनता है तथा इसके द्वारा मिर्मित स्रावो (प्रोजेस्ट्रान) तथा ओस्ट्रोजेन के प्रभाव के अतर्गत गर्भाशय अत कला में परिवर्तन होते रहते हैं। यह गर्भाशय अत कला अंततोगत्वा (पतनिका decidua) में परिवर्तित होती है जो कि गर्भावस्था की अत कला कही जाती है। ये परिवर्तन इस रज चक्र के २८ दिन तक पूरे हो जाते हैं तथा रज.स्राव होने से पूर्व गर्भाशय अंत कला की मोटाई ६-७ मिमी होती है।

(३) रज.स्रावकाल ४-५ दिन का होता है। इसमें गर्भाशय अ त कला की बाहरी सतह टूटती है और रक्त एव श्लेष्मा का स्राव होता है। जब रजःस्रावपूर्व होनेवाले परिवर्तन पूरे हो चुकते है तब गर्भाशय अत.कला का अपजनन प्रारभ होता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस अतःकला का वाह्य स्तर तथा मध्य स्तर ही इन अ त स्रावो से प्रभावित होते हैं तथा गहन स्तर या अंत.-स्तर अप्रभावित रहते हैं। इस तरह से रजःस्राव मे रक्त, श्लेष्मा इपीथीलियम कोशिकाएँ तथा स्ट्रोमा (stroma) केशिकाएँ रहती है। यह रक्त जमता नही है। रक्त की मात्रा ४ से ८ औंस तक प्राकृतिक मानी जाती है।

(४) पुनः जनन या निर्माण का कार्य तब प्रारंभ होता है जब रजःस्रवण की प्रक्रिया द्वारा गर्भाशय अतःकला का अप्रजनन होकर उसकी मोटाई घट जाती है। पुनः जनन अतःकला के गभीर स्तर से प्रारभ होता है तथा अत:कला वृद्धिकाल के समान दिखाई देता है।

रज.स्राव के विकार — (१) अंडिभी (anouhlar) रजः-स्राव — इस विकार में स्वाभाविक रज स्राव होता रहता है, परतु स्त्री वध्या होती है।

(२) रुद्धार्तव (Amehoryboea) स्त्री के प्रजननकाल अर्थात् यौवनागमन (Puberty) से रजोनिवृत्ति तक के समय में रजः-स्राव का अभाव होने को रुद्धार्तव कहते हैं। यह प्राथमिक एवं द्वितीयक दो प्रकार का होता है। प्राथमिक रुद्धार्तव में प्रारभ से से ही रुद्धार्तव रहता है जैसे गर्भाशय की अनुपस्थिति में होता है। द्वितीयक में एक वार रज.स्राव होने के पश्चात् किसी विकार के कारण बंद होता है। इसका वर्गीकरण प्राकृतिक एव वैकारिक भी किया जाता है। गर्भिणी, प्रसूता, स्तन्यकाल तथा यौवनागमन के

(२) गर्भाशय के अर्बुद गर्भाशय के अघातक अर्बुद पेशी से या अंतःकला से उत्पन्न होते हैं अथवा गर्भाशय तंतु पेशी से उत्पन्न होते हैं।

(अ) फाइब्रोमायोमाटा—ये अचल, धीरे धीरे बढ़नेवाले तथा गर्भाशयपेशी में स्थित आवरण से युक्त होते हैं। ये गर्भाशयशरीर मे प्रायः होते हैं कभी कभी अर्बुद गर्भाशयग्रीवा में भी पाए जाते हैं। गर्भाशय में तीन प्रकार के होते हैं—(क) पेरीटोनियम के नीचे (ख) पेशी के अंतर्गत और (ग) अंतःकला के नीचे।

(आ) गर्भाशय पालिपस — ये अधिकतर पाए जाते हैं। ग्रीवा एव शरीर दोनों में होते हैं।

शरीर में एडिनोमेटस, फाइब्राइड, अपरा के कार्सिनोमा एवं सार्कोमा। ग्रीवा में —अंतःकला के फाइब्राइड, कार्सिनोमा, सार्कोमा, गर्भाशय के घातक अर्बुद, इपीथीलियल कोशिकाओं से उत्पन्न होते हैं। अतः कार्सिनोमा तथा सारकोमा से अधिक पाए जाते हैं।

(३) बीजग्रंथि के अर्बुद — इनमें होनेवाली पुटि (सिस्ट) तथा अर्बुद का वर्गीकरण करना कठिन होता है क्योंकि उन कोशिकाओं का जिनसे ये उत्पन्न होते हैं विनिश्चय करना कठिन होता है।

(अ) फालिक्यूलर सिस्टम के सिस्ट — फालिक्यूलर सिस्ट, पीतपिंड सिस्ट, ग्रीकाल्यूटीन सिस्ट।

(आ) इपीथीलयम अर्बुद

घातक
१ — साधारण सीरस
२ — पंपेलरी सिरस सिस्ट एडिनोमा
३ — कूट म्यूसीन सिस्ट एडिनोमा
४ — गर्भाशयिक विस्तृत स्नायु बीजग्रंथि सिस्ट

अघातक
१ — कार्सिनोमा प्राथमिक
२ — कार्सिनोमा द्वितीयक
प्रजननांगो से — अन्य अंगो से
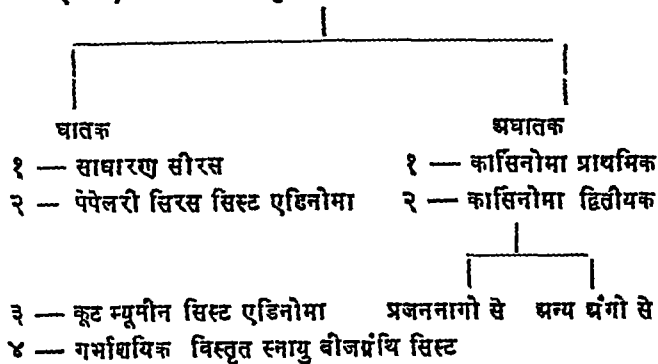
अन्य रोगवर्ग

(१) इंडोमेट्रोसिस (endometrosis) इस विकार का मुख्य कारण यह है कि इंडोमेट्रियल ऊतक अपने स्थान के अलावा अन्य स्थानों पर उपस्थित रहता है।

(२) इनके अतिरिक्त अन्य रोग जैसे वंध्यत्व, कष्ट मैथुन, नपुंसकता, योनापकर्ष आदि नाना रोगो का वर्णन तथा चिकित्सा का वर्णन इस शास्त्र में करते हैं। [ल० वि० शु०एव वि० नं० पा०]

स्थानीय कर इन्हें स्थानीय संस्थाएँ जैसे नगरनिगम, नगरपालिकाएँ, जिलामडल, सुधार प्रन्यास (improvement trusts), ग्रामसभाएँ तथा पचायतें आरोपित एव सगृहीत करती हैं। इन संस्थाओं का गठन एव इनके अधिकार ससद् एव राज्य विधानमंडलो द्वारा बनाई विधियों के अनुसार होते हैं, इनके कराधिकार भी संविधानीय रूप में निश्चित न होकर विधियो एव अधिनियमो में निर्धारित होते हैं। ये सस्थाएँ करारोपण तभी कर सकती हैं जब इन्हें इस विषय में अधिकार प्राप्त हो। ये सस्थाएँ वे कर लगाती हैं जो सविधान की सप्तम अनुसूची में दी हुई राज्यसूची में निहित हैं और राज्यमडलो ने इन्हें सौंप दिया है। इन करो में निम्न कर शामिल हैं —

१. भूमि और भवनकर,

२ स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, प्रयोग या विक्रय के लिये वस्तुओं के प्रवेश पर कर,

३ मार्ग उपयोगी यानों पर कर,

४ पशुओं और नौकाओ पर कर,

५ पथकर (tolls),

६ वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर,

७ विलास, आमोद विनोद कर तथा

८. प्रतिव्यक्ति कर (capitation tax) इत्यादि।

राज्यों में ग्रामसभाएँ और पंचायतें प्राय सामान्य सपत्तिकर, व्यवसायकर, पशु तथा वाहनकर लगाती हैं। वे राज्य सरकारों को भूराजस्व (land revenue) के सग्रहण कार्य में सहायक होती हैं, और भूराजस्व पर लगनेवाले कर लगाती भी हैं। जिला मडलों के कराधिकार सीमित होते हैं। वे बहुधा उपकर लगाते हैं। संपत्तिकर वे नहीं लगाते। नगरनिगम और नगरपालिकाएँ अधिक कर लगाती हैं। इन करों में भूमिकर, भवनकर, स्थानीय उपभोग कर, स्थानीय प्रयोग तथा विक्रय हेतु स्थानीय क्षेत्र में लाई हुई वस्तुओं पर कर, मार्ग उपयोगी वाहनकर, पशुकर, पथकर, वृत्तीय कर, आमोद प्रमोद कर, प्रतिव्यक्ति कर इत्यादि समिलित हैं। अधिकाश नगरनिगमो तथा नगरपालिकाओं का राजस्वस्रोत संपत्तिकर (गृहकर) और जलकर है। संपत्तिकर अचल संपत्ति पर लगता है। कर की राशि सपत्ति के वार्षिक मूल्य अथवा पूंजीगत मूल्य पर आधारित होती है, पर पूंजीगत मूल्य पर कर स्थानीय सस्थाएँ नही लगा सकती, क्योंकि ऐसा कर राज्यसूची में उल्लिखित नहीं है और केवल ससदीय विधि के अंतर्गत आधारित एवं सगृहीत किया जा सकता है। स्थानीय संस्थाओं द्वारा आधारित सपत्ति-कर-राशि बहुधा भवनो के नियंत्रित किराए के आधार पर निश्चित की जाती है। मदरास राज्य में ग्रामपंचायतें मकान के कुर्सीक्षेत्र एव बनावट की किस्म के आधार पर भी सपत्ति कर आरोपित करती हैं।

प्रत्येक राज्य मे नगरपालिकाएँ आमोद-प्रमोद-कर नही लगातीं, पर कुछ राज्यो में, जैसे महाराष्ट्र में, उन्हे यह अधिकार प्राप्त है। दिल्ली नगरनिगम के अधिकार बबई नगरनिगम तथा कलकत्ता नगरनिगम के से विस्तृत हैं। स्थानीय संस्थाएँ संपत्तिकर धार्मिक स्थानों, मदिरों मस्जिदों, गिरजाघरों, गुरुद्वारों आदि के भवनो पर नहीं लगाती। दिल्ली में यह धर्मशालाओ तथा अन्य ऐसे स्थानों पर से उठा लिया गया है। कोई भी स्थानीय कर, प्रतिरक्षा दलों के सदस्यों से सगृहीत नही किया जाता (स्थानीय सस्थाएँ कर अधिनियम १९६१)। कर भारत सरकार की संपत्ति पर आम तौर से नहीं लग सकता, यदि सविधान के पूर्वकाल मे भारत सरकार की किसी सपत्ति पर कर लगता था, तो अब भी लग सकता है, पर कोई नया कर

(३) प्राथमिक त्वक्विकार — पिडिकाएँ, हरपिस आदि त्वक्-विकार भगत्वक् में भी होता है।

(४) विशिष्ट प्रकार के भगशोथ — (अ) भग परिगलन (gangrene) यह मीसल्स, प्रसूतिज्वर अथवा रतिजन्य रोगों मे होता है।

(आ) फेचेट का लक्षण — यह मासिक स्राव पूर्व दिनो में होता है। इसमे मुखपाक, नेत्र-श्लेष्मा-शोथ सहलक्षण रूप में होता है।

(इ) अप्थस भगशोथ (apthous) इसमें भग का थ्रस (Thrush) रूपी उपसर्ग होता है।

(ई) दूगी सेपलास भग — रक्त लाई स्ट्रेप्टोकोकस के उपसर्ग से भगशोथ होता है।

(उ) भग योनिशोथ (बालिकाओं में) — यह स्वच्छता के अभाव में अस्वच्छ तौलियों के प्रयोग से होनेवाले गोनोकोकस उपसर्ग से तथा मैथुनप्रयत्न से होता है।

(५) भग के चिरकालिक विशेष रोग —

(अ) भग का ल्युकोप्लेकिया (leucoplakia) — भग त्वचा का यह एक विशेष शोथ रजोनिवृत्ति के पश्चात् हो सकता है।

(आ) क्राराउसिस (kraurausis) भग — बीजग्रंथियो की अकर्मण्यता होने पर यह भगशोथ उत्पन्न होता है।

योनि के उपसर्ग — यो तो कोई भी जीवाणु या वाइरस का उपसर्ग योनि मे हो सकता है तथा योनिशोथ पैदा हो सकता है परतु बीकोलाई, डिफ्थेराइड, स्टेफिलोकोकस, स्ट्रप्टोकोकस, ट्रिकनामस मोनिला (श्वेत) का उपसर्ग अधिकतर होता है।

(१) बालयोनिशोथ — इसमें उपसर्ग के साथ साथ अंत.-स्राविक कारक भी सहयोगी होता है।

(२) द्वितीयक योनिशोथ — पेसेरी के आघात, तीव्र पूतिरोधक द्रव्यो से योनिप्रक्षालन, गर्भनिरोधक रसायन, गर्भाशय ग्रीवा से चिरकालिक औपसर्गिक स्राव आदि के पश्चात् होनेवाले योनिशोथ।

(३) प्रसवपश्चात् योनिशोथ — कठिन प्रसवजन्य विदार इत्यादि तथा आस्ट्रोजेन के प्रभाव को कुछ समय के लिये हटा लेने से बीजोत्सर्ग न होने से होता है।

(४) वृद्धत्वजन्य योनिशोथ — यह केवल वृद्धयोनि का शोथ है।

गर्भाशय के उपसर्ग — स्त्रीरोगो में प्रायः मुख होते हैं। यह ऊर्ध्वगामी तथा अधःगामी दोनो प्रकार का होता है। प्रसव, गर्भपात, गोनोरिया, गर्भाशयभ्रंश, यक्ष्मा, अर्बुद, ग्रीवा का विस्फोट आदि के पश्चात् प्रायः उपद्रव रूप उपसर्ग होता है। गर्भाशयशोथ — आधारीय स्तर में चिरकालिक शोथ से परिवर्तन होते हैं परतु प्राय. इनके साथ गर्भाशय पेशी में भी ये चिरकालिक शोथपरिवर्तन होते हैं। यह शोथ तीव्र, अनुतीव्र, चिरकालिक वर्ग में तथा यक्ष्मज और वृद्धताजन्य मे विभाजित होता है।

बीजवाहिनियों तथा बीजग्रंथियों के उपसर्ग —

बीजवाहिनी बीजग्रंथि शोथ — इसके अंतर्गत बीजवाहिनी बीजग्रंथि तथा श्रोणिकला के जीवाणुओं द्वारा होनेवाले उपसर्ग आते हैं। यह उपसर्ग प्राय: नीचे योनि से ऊपर जाता है परतु यक्ष्मज बीजवाहिनी शोथ प्रायः श्रोणिकला से प्रारंभ होता है अथवा रक्त द्वारा लाया जाता है।

प्रजनन अंगों के अर्बुद (tumours) — इसके अंतर्गत नियोप्लास्म (neoplasm) के अलावा अन्य अर्बुद भी वर्णित किए जाते हैं।

(१) भगयोनि के अर्बुद — (क) भग के अर्बुद —

(अ) भगशिश्न की अतिपुष्टि — यह प्राय. सहज होती है। हस्तमैथुन, बीजग्रंथि अर्बुद, चिरकालिक उपसर्ग तथा अधिवृक्क ग्रंथि के रोगो मे यह रोग उपद्रव स्वरूप होता है।

(आ) लघु भगोष्ठ की अतिपुष्टि — यह प्रायः सहज होती है परतु चिरकालिक उत्तेजनाओ से भी होती है।

(इ) पुटियुक्त शोथ (cystic swelling) — इसके अंतर्गत (१) बार्थोलियन पुटी, (२) नक (nuck) नलिका हाइड्रोसील, (३) इंडोमेट्रियोमाटा तथा (४) भगोष्ठो के एवं भगशिश्निका के सिस्ट आते हैं।

(ई) रक्तवाहिकामय शोथ — भग की शिराओ का फूलना तथा भग में रक्तसंग्रह (haematoma) आदि साधारणतया मिलता है।

(उ) वास्तविक अर्बुद —

(१) अघातक — (क) फाइब्रोमाटा (छोटा, कडा तथा पीड़ारहित)

(ख) पेपिलोमाटा (प्राय. अकेला वर्टि के समान होता है)

(ग) लाइपोमाटा (अधःत्वक् में प्रारंभ होता है।)

(घ) हाइड्रेडिनोमा (स्वेदग्रंथि का अर्बुद)

(२) घातक — (अ) कारसिनोमा भग, (आ) एडिनो कारसिनोमा (बार्थोलियन ग्रंथि से प्रारंभ होता है)।

(३) विशिष्ट — (क) बेसल कोशिका कार्सिनोमा (रोडाडव्रण)

(ख) इपीथीलियल अंत.कारसिनोमा

(१) बी एन का रोग

(२) घातक मेलिनोमा

(३) पेगेट का रोग

(४) सारकोमा

(५) द्वितीयक कोरियन इपिथोलियमा

(ख) योनि के अर्बुद —

(अ) गार्टनर नलिका का सिस्ट

(आ) इनक्लूजन सिस्ट (शल्यकर्म के द्वारा इपीथीलियम को अंतःप्रविष्ट करने से बनता है)।

(इ) वास्तविक अर्बुद —

(१) अघातक — (क) फाइब्रोमा (गोल, कठिन, चल)

(ख) पेपिलोमाटा

(२) घातक— (क) कार्सिनोमा (प्राथमिक, द्वितीयक)

(ख) सारकोमा

कशाभिका से अपना भोजन प्राप्त कर सकती है और उसकी पाचन-क्रिया की पूर्ति करके आवश्यकतानुसार भोजन बाँटती है। कुछ लोगों का विचार है कि यह नाइट्रोजनीय क्षय पदार्थ तथा उत्सर्ग की परिवहन अभिकर्ता है। कुछ कोशिकाएँ भोजन एकत्र करती हैं और कुछ ऐसी हैं जो अंडाणु (Ova) और शुक्राणु (Spermatozoa) बनाती हैं।

पूर्वमध्यजन कोशिका का विशेष कार्य है चूने (Calcium carbonate) का सुइयों जैसा कंकाल बनाना। इसका मतलब यह हुआ कि यह कोशिका ककालजनक है। चूने की सुई को कटिका (Spicule) कहते हैं। कटिका स्पज का ककाल बनाती हैं। ककाल का कार्य है कोशिकाओं के नर्म भाग को सहारा देना, जलनलिकाओं को फैलाए रखना और स्पज की वृद्धि करना। कटिका चूने के अतिरिक्त सिलिका की भी बनती हैं। कटिका के अलावा स्पजिन (Spongin) नामक वस्तु के धागे से भी स्पज का कंकाल बनता है। कटिका दो प्रकार की होती है—बडी गुरुकटिका (Megasclera) और छोटी लघुकटिका (Microsclera) वडी कटिकाएँ स्पज के शरीर का आकार बनाती हैं और छोटी कटिका शरीर के सभी भागो में पाई जाती हैं। साधारण रूप में कटिका एक सुई की तरह होती है जिसके दोनो सिरे या एक सिरा नुकीला होता है। ऐसी कटिका को मॉनोएक्ज़ान (Monoaxon) कटिका कहते हैं। कुछ कटिकाएँ ऐसी भी होती हैं जिनमें एक बिंदु से तीन काँटे निकलते हैं, इनको त्रिअरिक (Triradiate) कटिका कहते हैं। ये सबसे अधिक होती हैं। इसके अलावा चार और छह काँटेवाली कटिकाएँ भी होती हैं। कटिकाएँ अन्य रूपों की भी होती हैं। एक ही स्पंज में कई रूप की कटिकाएँ पाई जाती हैं।

कटिकाजनक कोशिका जेली (Jelly) में उत्तर आती हैं तब हर कोशिका का नाभिक (Nucleus) दो भागों में विभाजित हो जाता है। न्यूक्लियस के दोनो टुकडे अलग हो जाते हैं और अपने बीच चूने की सुई बनाते हैं। जब तीन मूल कटिकाएँ बनानी होती हैं तो तीन कोशिकाएँ एक साथ मिलकर उसे बनाती हैं। इसी तरह कभी चौथी कटिकाजनक कोशिका भी इनसे मिलकर चार मूल कटिकाएँ बनाती है। स्पोंजिन के धागे भी पूर्वमध्यजन कोशिकाओं मे उत्पन्न होते हैं।

लिउकोसोलेनिया का अध्ययन करते समय देखा गया है कि स्पज की वाहरी सतह पर स्थित छिद्र एक नन्ही सी नलिका मे खुलते हैं। यह नलिका अंदर मध्यस्थ गुहा में खुलती है। जल इसी से होकर मध्यस्थ गुहा में जाता है। यह नलिका एक कोशिका से होकर जाती है जिसे छिद्रकोशिका (Porocyta) कहते हैं। ऐसी अनेक नलिकाएँ लिउकोसोलेनिया की देहभित्ति से अरीय (Radially) ढग से गुजरती हैं। इस तरह के नालतत्र को एस्कन नालतत्र (Ascon canal system) कहते हैं, ऐसा ही नालतत्र क्लैथ्राइना (Clathrina) के ओलिंथस (Olynthus) मे भी मिलता है।

ज्यो ज्यो स्पज का विकास होता है, उसकी देहभित्ति जटिल रूप धारण कर लेती है। जगह जगह वह अदर की ओर धँस जाती है। इस तरह बाहरी कोशिकाओं से आच्छादित भित्ति की कुछ नालियाँ बन जाती हैं, इन्हें अतर्वाही नाली (incurrent canal) कहते हैं। अतर्वाही नाली बाहर की ओर खुलती है। ऐसी ही अदर की नालियों का स्तर कीप कशाभिका का होता है। इसलिये इन्हें कशाभिका नाली (Flagellated canals) कहते हैं। प्राथमिक नाली वाहरी नालियो को भीतरी नालियो से जोडती है। इसमे सतह पर दिखनेवाले छिद्र मध्यस्थ गुहा में नही खुलते, वल्कि अंतर्वाही नाली में। इन छिद्रो को चर्मरध्र (Dermal pore) कहते हैं। कशाभिका नाली मध्यस्थ गुहा में जिन छिद्रो से खुलती हैं उन्हें अपद्वार (Apophyle) कहते हैं। इस तरह देहभित्ति के सिकुडने से जलप्रवेश की सतह बढ जाती है और अदर की कशाभिकाओ से स्तरित कोष्ठो की सख्या बढ जाती है। इस तरह के नालतत्र को साइकन नालतत्र कहते हैं। स्पज की देहभित्ति की सिकुडन स्पज के विकास के साथ बढ़ती जाती है। इससे अदर और अनेक प्रकार के कीपकशाभिकायुक्त कोष्ठ बन जाते हैं और जो नालतत्र बनता है उसे लिउकन नालतत्र (Leucon canal system) कहते हैं।

पोषण और मलोत्सर्ग — स्पंज का प्राकृतिक भोजन छोटे छोटे प्राणी, सडते हुए जीवाग तथा पानी में घुले हुए पदार्थ हैं। जल की अदर जाती हुई धाराओं के साथ भोजन अदर जाता है और उसे कशाभिकाएँ पकड लेती हैं। उनके कीप (Coller) से लगे लगे इनकी पाचनक्रिया प्रारभ हो जाती है। पचा हुआ भोजन अमीवा जैसी कोशिकाओ के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाता है। अपाच्य भोजन मध्यस्थ गुहा में आ जाता है और यहाँ से पानी की धारा के साथ शरीर के बाहर निकल जाता है।

श्वसन क्रिया — यद्यपि स्पज बहुकोशिका प्राणी हैं फिर भी इनमे श्वास की क्रिया के विशेष अग नही हैं। आक्सीजन कोशिकाओं की सतह से अंदर चली जाती है और वहाँ वह शक्ति का उत्पादन करती है। स्पज ऐसा स्वच्छ जल पसद करते हैं जिसमें ऑक्सीजन की मात्रा अधिक हो। यदि यह गदे पानी में अथवा ऐसे पानी में रखे जायँ जिसमें ऑक्सीजन की मात्रा कम हो तो इनकी वृद्धि रुक जाती है तथा अंत में मर जाते हैं। यह हाल उस समय भी होता है जब इनके वाहरी छिद्र वद हो जाते हैं। ऐसा इसलिये होता है कि श्वसन जल की धाराओ की गति पर आधारित होता है।

जल की धारा — ऊपर लिखा जा चुका है कि स्पज के शरीर पर अनेक छोटे छोटे छेद होते हैं। जल इनमें से होकर अदर जाता है और मध्यस्थ गुहा से होकर वह बाहर ऊपर के बडे छेद से निकलता है। पानी का प्रवाह निरतर एक सा होता रहता है। प्रवाह की गति जलनाली (water canal) की रचना पर आधारित है। लिऊकोसोलेनिया जैसे स्पज में जलप्रवाह धीरे धीरे होता है और जटिल बनावटवाले स्पज मे धारा तेज हो जाती है। ज्यों ज्यों बनावट जटिल होती जाती है धारा की गति बढ़ती जाती है। लोगो ने यह भी अध्ययन किया है कि एक स्पज के शरीर से कितना जल बहता है। अनुमान लगाया गया है कि १० सेंमी ऊँचे और एक सेंमी व्यासवाले स्पंज में लगभग २२,५०,००० कशाभिका कोष्ठ होते हैं। इनमें से होकर एक दिन में २२५ लीटर जल बहता है। जितना स्पज बड़ा होगा, जल की मात्रा भी उतनी ही बढती

लगाने के पूर्व संसद् की अनुमति आवश्यक है; और संसदीय विधि के अनुसार और रीति से लग सकता है (अनुच्छेद २८५)।

[मं० चं० जै० का०]

स्नातक भारतीय शिक्षापद्धति का ग्रैजुएट (graduate) कहा जा सकता है। वर्णाश्रम और शिक्षा ग्रहण का भारतीय विधान यह था कि द्विज ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत संस्कार के बाद अपनी शिक्षा की पूर्णता के उद्देश्य से गुरुकुल (गुरु के घर) जाय। वहाँ ब्रह्मचर्य और शिक्षा समाप्त कर चुकने पर उस ब्रह्मचारी का समावर्तन संस्कार होता और वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिये घर लौटता था। लौटते समय उसे एक प्रकार का याज्ञिक स्नान कराया जाता था, जिससे उसे स्नातक की संज्ञा मिलती थी। शिक्षा, संस्कार तथा विनय की पूर्णता अथवा अपूर्णता की दृष्टि से स्नातकों के तीन प्रकार माने जाते थे। वेदाध्ययन मात्र को पूर्ण करनेवाले की विद्यास्नातक संज्ञा होती थी। वह ज्ञानप्राप्ति के बाद घर वापस चला जाता था। व्रतस्नातक वह होता, जिसने ब्रह्मचर्याश्रम के सभी व्रतो (विनय और नियमो) का तो पालन कर लिया हो, किंतु वेदाध्ययन की पूर्णता न प्राप्त की हो। विद्याव्रत स्नातक का तीसरा प्रकार ही विशिष्ट था, जिसमे अध्ययन और व्रतनियमादि की समान सिद्धि प्राप्त की जा चुकी हो। कभी कभी स्नातक अपनी शिक्षा प्राप्त कर घर नही लौटता था, अपितु गुरुकुल में ही अध्यापन का कार्य शुरू कर देता था। किंतु इससे उसके स्नातकत्व में कोई कमी नही पड़ती थी।

[वि० पा०]

स्पंज जल में रहनेवाला एक बहुकोशिक प्राणी है। साधारण तौर से देखने में यह पौधो की भाँति लगता है। इसीलिये पहले इसकी गणना वनस्पतिविज्ञान के अतर्गत होती थी। परतु सन् १७६५ में एलिस (Ellis) ने देखा कि इसमें जल की धाराएँ अंदर जाती हैं और बाहर आती हैं। उसके बाहरी छिद्र 'ग्रोस्कुला' की गति भी देखी और यह प्रमाणित किया कि यह जानवर है वनस्पति नही। इनको अंग्रेजी में पॉरीफैरा (Porifara) कहते हैं, इसलिये कि इनके सारे शरीर पर छोटे छोटे छेद (Pore) होते हैं। यद्यपि यह बहुकोशिक है तथापि यह स्पष्ट रूप से प्राणी के विकास की सीधी रेखा पर नहीं है, इसीलिये इसे पैराज़ोआ (Parazoa) अतिरिक्त प्राणी भी कहा जाता है।

स्नान के समय शरीर को रगड़ने के काम आनेवाला स्पंज इन जंतुओ का ककाल मात्र है। पुराने ग्रीसवासी भी स्नान के समय इसका उपयोग करते थे। मेज और फर्श को भी स्पंज से रगड़कर साफ किया जाता था। सिपाही अपने कवच तथा पैरो में पहने जानेवाले कवच के नीचे स्पज भरते थे, ताकि उनके कवचकुडल ढीले न रह जाएँ। रोम के निवासी इन्हें रँगनेवाले ब्रुश में लगाते थे और बाँस के सिरो पर बाँधकर झाड़ू बनाते थे। आज भी स्पंज अनेक कामो मे आता है। इसीलिये समुद्र की गहराई से स्पंज को निकालना तथा उनका एकत्र करना एक व्यवसाय बन गया है। लगभग एक हजार टन स्पंज हर वर्ष एकत्र किया जाता है। स्नान के काम में लाया जानेवाला स्पंज केवल गरम तथा उथले समुद्र में पैदा होता है, परंतु अन्य प्रकार के स्पंज समुद्र की तली पर रहते हैं। नदियों, झीलो और तालाबो में भी स्पंज सफलता से पनपते हैं।

देखने में जीवित स्पंज स्ननागार के स्पंज से बिलकुल भिन्न लगता है। वह चिकना होता है। स्पंज के संरचनात्मक अध्ययन के लिये लिऊकोसोलेनिया (Leucosolenia) नामक स्पंज की रचना जान लेना आवश्यक है। यह एक लबे फूलदान के आकार का होता है जो ऊपर चौड़ा तथा नीचे पतला होता है। इसके ऊपरी सिरे पर एक बड़ा छेद होता है, जिससे जल की धारा बाहर निकलती है। इस छेद को बहिर्वाही नाल (Excurrent canal) या ऑसकुलम (Osculum) कहते हैं। यह शरीर की मध्यस्थ गुहा में खुलता है। मध्यस्थ गुहा को स्पजगुहा (spongvocoel), अवस्कर (cloaca) अथवा जठराभगुहा (Paragastric cavity) कहते हैं। चारो ओर देहभित्ति मे अनेक छोटे छोटे छेद होते हैं। इनसे जल मध्यस्थगुहा में जाता है। इसलिये इन्हें अंतर्वाही रंध्र (Incurrent pores) या आस्य (ostia) कहते हैं। इन छिद्रो से प्रविष्ट जल एक नन्ही सी नलिका से होकर अंदर जाता है। इसको अंतर्वाही नाल (Incurrent canal) कहते हैं। देहभित्ति के बाहर की परत चपटी बहुभुजी कोशिकाएँ होती हैं।

मध्यस्थ गुहा की भीतरी परत विशेष प्रकार की कोशिकाओं से बनती है। इनको कीप कोशाभिका (Collared flagellates) कहते हैं। इनकी रचना अजीब ढंग की होती है। इनके स्वतंत्र सिरो पर प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) की एक कीप होती है। कीप के बीच से एक लंबी कशाभिका (Flagellum) निकलती है। इसलिये इन्हें कीप कशाभिका कहते हैं। कशाभिका की गति से जलप्रवाह प्रारंभ होता है और जल अंतर्वाही रंध्र से अंदर जाता है तथा बहिर्वाही रध्र से बाहर निकलता है। जल की धारा के साथ छोटी छोटी वनस्पति तथा जतु आदि अदर आ जाते हैं। कशाभिका इनको पकडकर भोजन करती हैं। इनके भोजन करने का ढग भी निराला है। भोज्य पदार्थ कशाभिका की सतह पर चिपक जाते हैं और बाहर ही बाहर नीचे के भाग मे चले जाते हैं। यह भाग इनको अपने अंदर कर लेता है, उसी तरह जैसे अमीबा अपना भोजन करता है। अंदर खाद्यरिक्तिका (Food vacaoles) बन जाती हैं और पाचनक्रिया उन्ही के अंदर पुरी होती है। ये कशाभिकाएँ एककोशिक कशाभिकाओ से मिलती जुलती है, और इसी प्रकार भोजन भी करती हैं। इसलिये ऐसा अनुमान किया जाता है कि स्पंज को जन्म उन्हीं एककोशिकीय प्राणियो ने दिया जिनसे आधुनिक कशाभिका एककोशिक प्राणी पैदा हुए हैं।

बाहरी रक्षा करनेवाली परत और मध्यस्त गुहा के स्तर के बीच में निर्जीव जेली (jelly) जैसा पदार्थ है। इसमें पूर्वमध्यजन कोशिका इधर उधर अमीबा की भाँति घूमती रहती है। यह साधारण कोशिका है जो एक दूसरे से अपने कूटपाँद (Pseudopod) द्वारा जुडी रहती हैं। यह सबसे कम विशिष्टताप्राप्त कोशिका है और आवश्यकता पड़ने पर किसी विशिष्ट रूप को प्राप्त कर सकती है। यह

de Intellectus Emendatione, Compendium Grammatices Linguae Hebraeae) हैं — जो उनके मुख्य ग्रंथ एथिक्स के साथ, उनकी मृत्यु के उपरांत उसी साल १६७७ में प्रकाशित हुए। बहुत दिनों बाद उनके एक और ग्रंथ ट्रैक्टेटस ब्रेविस डी डियो (Tractatus Brevis de Deo) का पता चला, जिसका प्रकाशन १८५८ में हुआ। स्पिनोज़ा के जीवन तथा दर्शन के विषय में अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं जिनकी सूची स्पिनोज़ा इन द लाइट ऑव वेदांत (Spinoza in the light of Vedanta) में दी गई है।

इस कल्पना का कि द्रव्य की सृष्टि हो सकती है अतः विचारतत्व और विस्तारतत्व द्रव्य हैं, स्पिनोज़ा ने घोर विरोध किया। द्रव्य, स्वयप्रकाश और स्वतंत्र है, उसकी सृष्टि नहीं हो सकती। अत विचारतत्व और विस्तारतत्व, जो सृष्ट हैं, द्रव्य नहीं बल्कि उपाधि हैं। स्पिनोज़ा अनीश्वरवादी इस अर्थ में कहे जा सकते हैं कि उन्होंने यहूदी धर्म तथा ईसाई धर्म में प्रचलित ईश्वर की कल्पना का विरोध किया। स्पिनोज़ा का द्रव्य या ईश्वर निर्गुण, निराकार तथा व्यक्तित्वहीन सर्वव्यापी है। किसी भी प्रकार ईश्वर को विशिष्ट रूप देना उसको सीमित करना है। इस अर्थ में स्पिनोज़ा का ईश्वर अद्वैत वेदांत के ब्रह्म के समान है। जिस प्रकार ब्रह्म की दो उपाधियाँ, नाम और रूप हैं, उसी प्रकार स्पिनोज़ा के द्रव्य की दो उपाधियाँ विचार और विस्तार हैं। ये द्रव्य के गुण नहीं हैं। ब्रह्म के स्वरूपलक्षण के समान द्रव्य के भी गुण हैं जो उसके स्वरूप से ही सिद्ध हो जाते हैं, जैसे उसकी अद्वितीयता, स्वतंत्रता, पूर्णता आदि। विचार तथा विस्तार को गुण न कहकर उपाधि कहना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि स्पिनोज़ा के अनुसार वे द्रव्य के स्वरूप को समझने के लिये बुद्धि द्वारा आरोपित हैं। इस प्रकार की अनंत उपाधियाँ स्पिनोज़ा को मान्य हैं। ईश्वर की ये उपाधियाँ भी असीम हैं परंतु ईश्वर में और उनमें भेद यह है कि जहाँ ईश्वर की निस्सीमता निरपेक्ष है वहाँ इन उपाधियों की असीमता सापेक्ष है।

ईश्वर जगत् का स्रष्टा है, परंतु इस रूप में नहीं कि वह अपनी इच्छाशक्ति से संपूर्ण विश्व की रचना करता है। वास्तव में ईश्वर में इच्छाशक्ति आरोपित करना उसको सीमित करना है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि ईश्वर स्वतंत्र नहीं है; उसकी स्वतंत्रता उसकी सर्वनिरपेक्षता है न कि स्वतंत्र इच्छा। इसी से स्पिनोज़ा सृष्टि को सप्रयोजन नहीं मानता। ईश्वर जगत् का कारण उसी अर्थ में है जिसमें स्वर्णपिंड आभूषण का या आकाश त्रिभुज का। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि ईश्वर परिवर्तनशील है। जगत् कल्पित है किंतु उसका आधार ईश्वर सत्य है। ईश्वर और जगत् विभिन्न हैं, परंतु विभक्त नहीं।

जिस प्रकार ईश्वर में इच्छाशक्ति नहीं है वैसे ही मनुष्य में भी स्वतंत्र इच्छाशक्ति नाम की कोई वस्तु नहीं है। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक विचार का कारण एक अन्य विचार हुआ करता है, अत कोई भी विचार स्वतंत्र नहीं है। साथ ही स्पिनोज़ा की दृष्टि में विचारजगत् पर भौतिक जगत् का प्रभाव नहीं पड़ता। दोनों की कार्य-कारण-शृंखला अलग हैं परंतु दोनों एक ही द्रव्य, ईश्वर, पर आरोपित हैं अत. वे संबंधित मालूम पड़ते हैं।

व्यवहारजगत् में स्पिनोज़ा नियतिवादी जान पड़ते हैं। उनका कहना है कि इच्छाशक्ति के अस्वीकार करने से हमारे व्यवहार तथा आचार पर प्रभाव नहीं पड़ता अत उससे सशंक होना अनावश्यक है। वास्तविकता तो यह है कि यदि हमको यह दृढ निश्चय हो जाय कि संसार की कार्य-कारण-शृंखला इच्छानिरपेक्ष है तो हमको बड़ी शांति मिले। मनुष्य तभी तक अशांत रहता है जब तक उसको कार्य-कारण-शृंखला में परिवर्तन की आशा रहती है। इच्छास्वातंत्र्य में विश्वास ही हमारा बंधन है। इच्छास्वातंत्र्य का उपयोग इच्छास्वातंत्र्य के निराकरण के लिये करना चाहिए। इच्छास्वातंत्र्य के शमन से राजसिक वृत्ति तथा मानसिक विकारों का शमन होता है और मन ईश्वरचिंतन के योग्य होता है।

जीवन का परम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति है क्योंकि तभी नित्यशुभ की प्राप्ति हो सकती है। ईश्वर की प्राप्ति ईश्वर से प्रेम करने से होती है परंतु प्रेम का अर्थ भावुकता नहीं बल्कि तन्मयता है। इसी से स्पिनोज़ा ने इस प्रेम को बौद्धिक प्रेम कहा है। ईश्वरतन्मयता का एक अर्थ यह भी है कि हम सदाचार सदाचार के लिये करें, क्योंकि सदाचार के उपलक्ष्य में प्रतिफल की इच्छा रखना एक बंधन की सृष्टि करना है। जब हमारा मन ईश्वरमय तथा हमारा दृष्टिकोण नित्य का दृष्टिकोण हो जाता है तब हम ईश्वर के साथ तादात्म्य का अनुभव करते हैं तथा परम शांति प्राप्त करते हैं। स्पिनोज़ा के विचार में ईश्वर के सगुण साकार रूप का भी महत्व है। जिनका बौद्धिक स्तर नीचा है तथा जिनके मन में सगुण, साकार ईश्वर की कल्पना से धर्मभावना जाग्रत होती है उनके लिये यह कल्पना अत्यंत उपयोगी है। ईश्वर को न मानने की अपेक्षा सगुण साकार ईश्वर को मानना श्रेयस्कर है। स्पिनोज़ा का विचार सर्वधर्मनिरपेक्ष था, इसी से आज के युग में लोगों की दृष्टि स्पिनोज़ा की ओर बार बार जा रही है। [र० कां० त्रि०]

स्पेंसर, एडमंड (१५५२-१५९९ ई०) अंग्रेजी साहित्य में कवि के रूप में चॉसर के बाद स्पेंसर का ही नाम आता है। इनका जन्म लंदन में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा मर्चेंट टेलर्स ग्रामर स्कूल में हुई। कैंब्रिज विश्वविद्यालय से इन्होंने बी० ए० तथा एम० ए० की उपाधियाँ लीं। सन् १५८० में इन्हें लार्ड ग्रे के मंत्री के रूप में आयरलैंड भेजा गया। कुछ साल बाद इनकी प्रशंसनीय सेवा के उपलक्ष में आयरलैंड में ही इन्हें एक जागीर भी मिल गई। यहीं उन्होंने अपने सर्वोत्तम ग्रंथ 'फेयरी क्वीन' की रचना प्रारंभ की। तत्पश्चात् इसके तीन सर्ग लंदन में प्रकाशित हुए तथा महारानी ने स्पेंसर के लिये पचास पौंड वार्षिक पेंशन की स्वीकृति दी।

चॉसर और स्पेंसर के बीच का लगभग डेढ सौ वर्षों का समय अंग्रेजी कविता के लिये बड़ा ही शोचनीय रहा। मौलिक प्रतिभा का कोई भी कवि देखने को नहीं मिलता। यूरोपीय पुनर्जागरण ने प्राचीन ग्रीक और लैटिन साहित्य को लोगों के सामने लाकर साहित्यिक प्रतिभा के प्रस्फुरण के लिये वातावरण तो अवश्य तैयार किया लेकिन इसका एक भयावह परिणाम भी हुआ। क्लासिकी भाषाओं एवं साहित्य की चकाचौंध में आकर कवियों ने उन्हें ही आदर्श मानकर साहित्यसर्जन प्रारंभ किया। ये लोग

जाएगी। एक छोटा स्पंज ल्यूकैंड्रा (Leucandra) कहलाता है। इनके ऊपर के छेद से ८·५ घन सेंमी जल प्रति सेकेंड निकलता है।

व्यवहार — कोई वयस्क स्पज एक स्थान से दूसरे स्थान पर नही जा सकता। अधिकतर स्पंज में सिकुड़ने की शक्ति रहती है, या तो किसी एक स्थान मे सिकुडने की शक्ति होती है या सारा शरीर सिकुड़ सकता है। यह शक्ति शरीर के अदर स्थित विशेष कोशिकाओ के कारण होती है। कुछ ऐसे भी स्पंज हैं जिनमें सिकुडने की शक्ति नही होती, इनमे केवल कुछ रंध्रकोशिका (Porocyta) जिनसे जलनाली जाती है सिकुड सकती हैं। जब कभी कभी स्पंज को छुआ जाता है, अथवा उन्हें उनके स्थान से उठाया जाता है तब वे सिकुडते हैं। जब भी स्पंज हवा में लाए जाते हैं या आक्सीजन की कमी होती है या ताप बहुत कम या बहुत अधिक हो जाता है तब अपवाही रंध्र (oscula) बंद हो जाता है। जल में जहरीले रसायन मिलाने से भी यही होता है। प्रकाश का इनपर कोई प्रभाव नही पड़ता, सारी क्रियाएँ बडी धीमी होती हैं इसलिये कि स्पंज में स्नायविक संस्थान का विकास नही होता।

रंग और गंध — अधिकतर स्पंज अप्रत्यक्ष मास के रंग के होते हैं; कुछ हल्के भूरे रग के होते हैं और कुछ खाकी रग के। भडकीले रंग-वाले स्पंज भी मिलते हैं। नारगी, पीले, लाल, हरे, नीले, बैंगनी रग के तथा काले स्पंज भी कभी कभी मिल जाते हैं। प्रायः गहराई में रहनेवाले स्पज का रंग अप्रत्यक्ष होता है और उथले जल में रहनेवाले का भड़कीला।

पुनरुद्भवन (Regeneration) — स्पज में नवोद्‌गम शक्ति अधिक होती है। शरीर का कटा हुआ कोई भी भाग पूरा स्पज बन सकता है। परंतु यह क्रिया अधिक समय लेती है। कुछ ऐसे भी स्पंज हैं जिनकी प्रत्येक कोशिका में यह शक्ति होती है अर्थात् यदि एक कोशिका भी अलग कर दी जाए तो वह पूरा स्पंज बना सकती है। यदि एक स्पंज को रेशम के एक टुकड़े में रखकर गाड दिया जाए तो उसके अंग अंग के टुकड़े हो जाएँगे, बहुत सी कोशिकाएँ भी पृथक् हो जाएँगी। ये सब टुकडे अथवा कोशिका पूरे पूरे स्पंज बन जाएँगी यदि इन्हें उपयुक्त ढंग से रखा जाय।

अलिंगी जनन — स्पंज में अलिंगी जनन मुकुलन (Budding) द्वारा होता है। किसी किसी में अलिंगी जनन के लिये विशेष प्रजनन इकाइयाँ बन जाती हैं। इन्हें जेम्यूल (Gemmule) कहते हैं। लगभग सभी मीठे जल में रहनेवाले स्पज में जेम्यूल बनते हैं। जेम्यूल सुराही के आकार की इकाई है जिसके अदर मीजेनकाइम कोशिकाएँ भरी रहती हैं। इसकी भित्ति पर अनेक कंटिकाएँ पाई जाती हैं। जेम्यूल के सिर पर एक छोटा छेद होता है। उपयुक्त समय में अंदर से कोशिका बाहर निकलती है और पूरा स्पज बना देती है। साधारण स्पज के नीचे के भाग से कुछ शाखाएँ निकलती हैं जो तली पर फैल जाती हैं। इन शाखाओ पर स्थान स्थान पर मुकुलन निकलते हैं और बढ़कर पैत्रिक व्यक्ति के रूप के हो जाते हैं। इस तरह साधारण बेलनीय व्यक्तियो के निवह (Colony) बन जाते हैं। कभी कभी एक या दो मुकुलन अलग भी हो जाते हैं।

लिंगीय जनन (Sexual reproduction) — साधारण तौर से स्पंज में अंडाणु तथा शुक्राणु द्वारा ही लिंगीय जनन होता है। अधिकतर स्पंज उभयलिंगी (Hermophrodite) होते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जिनमें नर तथा मादा अलग अलग होते हैं। उभय-लिंगी स्पज में भी अंडाणु और शुक्राणु अलग अलग समय पर परिपक्वता प्राप्त करते हैं। स्पज मे निषेचन (Fertilization) अद्‌भुत ढग से होता है। शुक्राणु अडाणु के निकटस्थ कशाभिका मे घुस जाता है। इससे कशाभिका लुप्त हो जाती है और यह अमीबा जैसा होकर अडाणु के पास आ जाता है और उससे लिपट जाता है। इसमें से शुक्राणु अंडाणु में प्रवेश कर जाता है और निषेचन की क्रिया पूरी हो जाती है तथा युग्मज (zygote) कोशिकाओ की परत के बीच विभाजित होने लगता है थोड़े ही समय में यह एक छोटे डिंभक (larva) का रूप ग्रहण कर लेता है। यह डिंभक बहिर्वाही नाल से होकर पितृ स्पज से बाहर निकल जाता है। कुछ घंटे तैरने के पश्चात् लारवा नीचे तली पर किसी चीज से चिपक जाता है और वयस्क रूप ग्रहण कर लेता है।

जंतुजगत् में स्थान — स्पंज अनेक कोशिकाओ से बने हैं। इसलिये यह बहुकोशिक प्राणी (Metazoa) कहे जा सकते हैं। किंतु स्पंज अनेक महत्वपूर्ण बातो मे बहुकोशिक प्राणियो से भिन्न हैं। अन्य बहुकोशिक प्राणियों की भाँति इनमें मुँह नही होता। यह एक बात ही इन्हे बहुकोशिक प्राणियो से अलग करती है। इनकी सरचना में सामजस्य नही है और न इनमें तंत्रिकातंत्र तथा ज्ञानकोशिकाएँ हैं जिससे इनमें व्यावहारिक सामजस्य पैदा हो सके। इनका जन्म एककोशिक प्राणियो से हुआ प्रतीत होता है परंतु इनका आगे विकास नही हुआ। इसलिये इनको अतिरिक्त प्राणी माना जाता है और पैरोजोआ समुदाय में रखा जाता है। इनकी गणना एककोशीय प्राणियो मे भी नहीं की जा सकती क्योकि यह स्पष्ट है कि इनका विकास (development) एक युग्मज (zygote) के खंडीकरण से होता है। यह बहुकोशिक प्राणियो की विशेषता है। [प्र० ग्रो०]

स्पिनोजा बेनीडिक्टस डी० स्पिनोज़ा का जन्म हालैंड (एम्स्टर्डम) मे, यहूदी परिवार में, सन् १६३२ में हुआ था। वे स्वभाव से एकातप्रिय, निर्भीक तथा निर्लोभ थे। अपने विश्वासो को त्यागने के लिये उनको लोभ दिखाया गया, उनकी हत्या का षड्यंत्र रचा गया, उन्हे यहूदी संप्रदाय से बहिष्कृत किया गया, फिर भी वे अडिग रहे। सासारिक जीवन उनको एक असह्य रोग के समान जान पड़ता था। अतः उससे मुक्ति पाने तथा ईश्वरप्राप्ति के लिये वे बेचैन रहते थे।

स्पिनोजा का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ उनका एथिक्स (नीतिशास्त्र) है। किंतु इसके अतिरिक्त भी उन्होने सात या आठ ग्रथो का प्रणयन किया है। प्रिंसिपल्स ऑव फिलासफी तथा मेटाफिजिकल कोजिटेशस का प्रकाशन १६६३ में और ट्रैक्टेटस थियोलोजिको पोलिटिकस (Tractatus Theologico Politicus) का प्रकाशन १६७० मे, बिना उनके नाम के हुआ। उनके तीन अधूरे ग्रंथ — ट्रैक्टेटस पोलिटिकस, ट्रैक्टेटस डी इटेलेक्टस इमेनडेटिओन, कपेंडियम ग्रैमेटिसेस लिंगुए हेब्रेसई (Tractatus Politicus, Tractatus

थे, एक रंग दूसरे से मिला था। इसका कारण यह था कि उन्होंने किरणों को एक गोल छेद से लेकर प्रिज्म पर डाला था। सन् १८०२ ई० में वोलास्टन (W H. Wollaston) ने गोल छिद्र के स्थान पर सँकरी झिरी (Slit) का प्रयोग करके शुद्ध स्पेक्ट्रम प्राप्त किया। आगे चलकर जासेफ फ्राउनहोफर (Fraunhofer) ने प्रिज्म की सहायता से शुद्ध स्पेक्ट्रम प्राप्त किया और समतल ग्रेटिंग का आविष्कार किया। ग्रेटिंग एक दूसरा उपकरण है जो विभिन्न वर्णों की रश्मियों को परिक्षेपित (Disperse) कर देता है। स्पेक्ट्रमिकी की प्रगति में फ्राउनहोफर का कार्य विशिष्ट महत्व रखता है। सन् १८५९ ई० में किरखाफ और बुनशन (G R. Kirchhoff and Bunsen) ने बहुत से शुद्ध तत्वों का स्पेक्ट्रम लिया और यह बताया कि वे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं। किरखॉफ और बुनशन ने यह भी सिद्ध किया कि कोई पदार्थ उत्तेजित होने पर जिस वर्ण की रश्मियाँ दे सकता है कम ताप पर केवल उसी वर्ण की रश्मियों को अवशोषित भी कर सकता है। इन तत्वो की जानकारी के बाद स्पेक्ट्रमिकी की प्रगति बडी तीव्रता से हुई। इस विज्ञान ने अणुपरमाणुओ की रचना का ज्ञान प्राप्त कराने मे महत्तम योगदान किया है।

किसी पदार्थ को विद्युत् या ऊष्मा देकर उत्तेजित किया जाता है तब उससे प्रकाश निकलने लगता है। उस पदार्थ से निकलनेवाली रश्मियो का स्पेक्ट्रम उसकी आतंरिक रचना पर निर्भर करता है। किसी ठोस पदार्थ को इतना गरम किया जाय कि वह तीव्र चमक देने लगे तो उससे जो स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है उसे सतत स्पेक्ट्रम (continuous spectrum) कहते हैं क्योंकि इसमे विभिन्न वर्णों की पट्टियाँ एक दूसरी से मिली जुली रहती हैं, उनकी कोई सीमा नहीं पाई जाती है। बिजली के बल्ब तथा सूर्य से ऐसा ही स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। इसके विपरीत यदि किसी पदार्थ को इतनी अधिक ऊर्जा दी जाय कि उसके परमाणु उत्तेजित हो जायँ तो उससे रेखीय स्पेक्ट्रम मिलता है। इसमें विभिन्न वर्णों की तीक्ष्ण रेखाएँ पाई जाती हैं। विद्युत् आर्क तथा कुछ तारों (Stars) से भी रेखीय स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। स्पेक्ट्रम की एक तीसरी श्रेणी भी होती है। यदि किसी गैस में कम दबाव पर विद्युत् विसर्जन किया जाय तो वे गैसें उत्तेजित होकर सपट्ट स्पेक्ट्रम देती हैं। इस स्पेक्ट्रम में एक दूसरे से पृथक् बहुत से पट्ट पाए जाते हैं जिनका एक सिरा तीक्ष्ण ैर दूसरा क्रमश धूमिल होता है। ये सभी स्पेक्ट्रम उत्सर्जित (Emission) स्पेक्ट्रम कहे जाते हैं।

यदि किसी पदार्थ के भीतर से सभी वर्ण (Colour) की रश्मियाँ भेजी जायँ तो वह उन रश्मियों को, जिन्हें स्वयं उत्सर्जित कर सकता है, अवशोषित कर लेता है। बिजली के बल्ब से दृश्यक्षेत्र की सभी वर्ण की रश्मियाँ निकलती हैं। यदि किसी नली में सोडियम की भाप भरी हो और उसके भीतर से बल्ब का प्रकाश भेजकर बहिर्गत प्रकाश का स्पेक्ट्रम लिया जाय तो उसके पीले भाग में दो काली रेखाएँ पाई जाती हैं। इसका कारण यह है कि सोडियम स्वय उत्तेजित होने पर रेखीय स्पेक्ट्रम देता है। इस स्पेक्ट्रम में दो पीली रेखाएँ भी होती हैं जिन्हें सोडियम की 'डी' रेखाएँ कहा जाता है। जब बल्ब का प्रकाश सोडियम की भाप से होकर जाता है तो सोडियम डी रेखाओं के अनुकूल वर्ण को अवशोषित कर लेता है और बहिर्गत प्रकाश में इसी स्थान पर दो काली रेखाएँ बन जाती हैं। इस स्पेक्ट्रम को अवशोषण (Absorption) स्पेक्ट्रम कहते हैं। अवशोषण स्पेक्ट्रम भी तीन प्रकार के होते हैं। जिस अवशोषण स्पेक्ट्रम में काली रेखाएँ पाई जाती हैं उन्हे रेखीय अवशोषण स्पेक्ट्रम, जिनमे काले बैंड पाए जाते हैं उन्हे बैंड अवशोषण स्पेक्ट्रम और जिनमें स्पेक्ट्रम का थोडा या अधिक सतत क्षेत्र ही अवशोषित हो जाता है उन्हे सतत अवशोषण स्पेक्ट्रम कहते हैं।

स्पेक्ट्रम प्राप्त करने के लिये जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है उन्हे स्पेक्ट्रमदर्शी, स्पेक्ट्रममापी, और स्पक्ट्रमलेखी कहते हैं। प्रत्येक स्पेक्ट्रोलेखी या स्पेक्ट्रोदर्शी में तीन मुख्य अवयव (Components) होते हैं। पहला भाग स्रोत से आनेवाली रश्मियो को उचित दिशा में नियन्त्रित करता है, दूसरा भाग विभिन्न वर्णों को पृथक् करता अर्थात् मिश्रित रश्मियो को परिक्षेपित करता है तथा तीसरा भाग उन्हें अलग अलग एक नाभितल (focal surface) पर फोकस करता है। यदि उपकरण में केवल स्पेक्ट्रम देखने मात्र की ही व्यवस्था हो तो उसे स्पेक्ट्रोदर्शी कहते हैं, यदि उसके तीसरे भाग को घुमाकर स्पेक्ट्रम के विभिन्न वर्णों का विचलन (Deviation) पढने की व्यवस्था भी हो तो उसे स्पेक्ट्रोमापी कहते हैं। स्पेक्ट्रोलेखी में तीसरा भाग एक फोटो कैमरा का काम करता है इससे स्पेक्ट्रम का स्थायी चित्र लिया जा सकता है। सभी स्पेक्ट्रोलेखी बनावट में लगभग समान होते हैं किंतु परिक्षेपण के लिये दो साधन काम में लाए जाते हैं — प्रिज्म और ग्रेटिंग। इसीलिये स्पेक्ट्रोलेखी भी दो प्रकार के होते हैं — प्रिज्म स्पेक्ट्रोलेखी और ग्रेटिंग स्पेक्ट्रोलेखी।

स्पेक्ट्रम के विभिन्न क्षेत्र — अध्ययन की सुविधा के लिये स्पेक्ट्रम को विभिन्न क्षेत्रो में बाँट लिया गया है। यह विभाजन तीन बातों के आधार पर किया गया है — रश्मिस्रोत, परिक्षेपण विधि और अभिलेखन (Recording)। स्पेक्ट्रमिकी विभाग में निम्नांकित क्षेत्रों का अध्ययन किया जाता है — सुदूर अवरक्तकिरण दृश्यक्षेत्र, परावैंगनी क्षेत्र और निर्वात परावैंगनी क्षेत्र। विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के स्पेक्ट्रोलेखी काम आते हैं। सारणी में विभिन्न क्षेत्रों की सीमा, परिक्षेपण यत्र और अभिलेखन यत्रों का सक्षिप्त विवरण दिया गया है —

सारणी

म्यू = $१०^{-४}$ सेमी और A° = $१०^{-८}$ सेमी

क्षेत्र	तरगदैर्घ्य सीमा	रश्मिस्रोत	परिक्षेपण सयत्र	अभिलेखन
१. सुदूर इन्फारेड	१ म्यू–५० म्यू	तप्त ठोस	वक्रग्रेटिंग	ताप-विद्युत् रिकार्डर
२. इन्फारेड	७०००-३०,०००A°	तप्त ठोस	क्लोराइड तथा फ्लोराइड प्रिज्म वक्र ग्रेटिंग	ताप-विद्युत् रिकार्डर

क्लासिकी भाषाओं की तुलना में अपनी भाषा को तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगे।

कवि के रूप में स्पेंसर रेनेसाँ युग की नई राष्ट्रीयता के प्रतीक हैं। क्लासिकी साहित्य के किसी प्रख्यात कवि को नहीं वरन् अपने ही देश के कवि चॉसर को इन्होंने अपना आदर्श माना। इन्हें अंग्रेजी भाषा को, जो कविता के लिये सर्वथा अनुपयुक्त समझी जाती थी, सजा सँवारकर नए शब्दों एवं छंदों से अलंकृत करना था। इसके लिये इन्होंने कठोर परिश्रम द्वारा अन्य भाषाओं एवं साहित्य का अध्ययन किया। इसीलिये इनकी कविता में अंत:प्रेरणा के साथ ही साथ प्रकांड विद्वत्ता एवं अध्ययनशीलता की भी झलक है। यह जानते हुए कि इनकी प्रथम मौलिक रचना 'शेपर्ड्स कैलेंडर' लोगों के लिये बिलकुल नई चीज होगा, इन्होंने अपने मित्र एडवर्ड कर्क द्वारा उसकी विस्तृत व्याख्या की व्यवस्था की। एडवर्ड कर्क ने स्पेंसर को 'नए कवि' की संज्ञा दी और काव्यसंबंधी इनके उद्देश्यों को घोषित किया।

स्पेंसर की कविता, विशेष रूप से 'फेयरी क्वीन' महारानी एलिजाबेथ की प्रशंसा से ओतप्रोत है। महारानी एलिजाबेथ ने न केवल देश के भीतर षड्यत्रकारियों को दबाकर अमन चैन कायम किया वरन् बाहरी शत्रुओं से भी उसकी रक्षा की। इंगलैंड ने जैसी राष्ट्रीय एकता का अनुभव उनके शासनकाल में किया, वैसा पहले कभी नहीं किया था। स्वाभाविक रूप से वे ब्रिटिश राष्ट्रीयता का प्रतीक सी बन गई और कवियों के लिये उनकी प्रशस्ति गाना राष्ट्रीय चेतना को ही व्यक्त करना था।

रेनासाँ का एक अन्य प्रभाव भी स्पेंसर की कविता में देखने को मिलता है। यह है भौतिक जगत् की सभी सुंदर वस्तुओं के प्रति उनका आकर्षण। नारी सौंदर्य के तो वे श्रद्धालु पुजारी थे। प्लेटो की ही भाँति उन्होंने शारीरिक सौंदर्य को आत्मिक सौंदर्य एवं पवित्रता की अभिव्यक्ति माना। उनके अनुसार किसी भी सुंदर वस्तु से सात्विक प्रेम करने में कोई पाप नहीं। जैसे सौंदर्य पवित्र होता है वैसे ही प्रेम भी। अध्यात्म एवं नैतिकता से बोझिल मध्ययुग के बाद स्थूल सौंदर्य के प्रति यह अनुराग एक नई चीज थी।

लेकिन जहाँ एक ओर स्पेंसर में हमें आधुनिक युग की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं, वहीं दूसरी ओर उनका काव्य कतिपय मध्ययुगीन मान्यताओं के बंधन से भी मुक्त नहीं। धर्म एवं नैतिकता के व्यापक प्रभाव के कारण मध्ययुग में साहित्यसर्जन का प्रमुख उद्देश्य जनसाधारण को सदाचार की शिक्षा देना समझा जाता था। कवि मनोरंजन के लिये नहीं, समाज एवं व्यक्ति के चारित्रिक उत्थान के लिये लिखता था। स्पेंसर ने भी अपने सर्वोत्तम ग्रंथ 'फ़ेयरी क्वीन' की रचना इसी महान् उद्देश्य से की।

मध्ययुग मे रूपक नैतिकता की शिक्षा देने का सर्वोत्तम माध्यम समझा जाता था। स्पेंसर ने भी रूपक शैली को ही उपयुक्त समझा। साथ ही साथ उन्होंने तत्कालीन राजनीति तथा शासन से संबंधित प्रमुख व्यक्तियों की भी आलोचना की। खुले रूप मे ऐसा करना संकट मोल लेना होता है। रूपक का सहारा लेकर वे कानून की चपेट में आए बिना जो चाहते, कह सकते थे।

स्पेंसर का सर्वोत्तम ग्रंथ 'फ़ेयरी क्वीन' शब्दचित्रों से भरा है। जो सफलता चित्रकार अपनी तूलिका द्वारा प्राप्त करता है, वह इन्होंने अपनी असाधारण वर्णनशैली द्वारा प्राप्त की। सौंदर्य का वर्णन करते समय थोड़ी देर के लिये ये अपना नैतिक उद्देश्य भूलकर उसी में तन्मय हो जाते हैं। लेकिन भद्दी और हृदय में घृणा एवं भय उत्पन्न करनेवाली वस्तुओं को मूर्त रूप देने में भी उनकी लेखनी वैसा ही जादू दिखाती है। [तु० ना० सिं०]

स्पेक्ट्रमिकी भौतिकी का एक विभाग है जिसमें पदार्थों द्वारा उत्सर्जित या अवशोषित विद्युच्चुंबकीय विकिरणों के स्पेक्ट्रमों का अध्ययन किया जाता है और इस अध्ययन से पदार्थों की आंतरिक रचना का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इस विभाग में मुख्य रूप से स्पेक्ट्रम का ही अध्ययन होता है अतः इसे स्पेक्ट्रमिकी या स्पेक्ट्रम-विज्ञान (Spectroscopy) कहते हैं। स्पेक्ट्रमिकी की नींव सर आइज़ेक न्यूटन ने सन् १६६६ ई० में डाली थी। उन्होंने एक बंद कमरे में खिड़की के छिद्र से आते हुए सौर किरणपुंज (beam of light) को एक प्रिज्म से होकर पर्दे पर जाने दिया। पर्दे पर सात रंगों की पट्टी बन गई जिसके एक सिरे पर लाल रंग और दूसरे सिरे पर बैंगनी रंग था। पट्टी में सातों रंग — लाल, नारंगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और बैंगनी — इसी क्रम से दिखाई पड़ते थे। न्यूटन ने इस पट्टी को 'स्पेक्ट्रम' कहा। इस प्रयोग से उन्होंने यह सिद्ध किया कि सूर्य का श्वेत प्रकाश वास्तव में सात रंगों का मिश्रण है। बहुत समय तक 'स्पेक्ट्रम' का अर्थ इसी सतरंगी पट्टी से ही लगाया जाता था। बाद मे वैज्ञानिकों ने यह देखा कि सौर स्पेक्ट्रम के बैंगनी रंग से नीचे भी कुछ रश्मियाँ पाई जाती हैं जो आँख से नहीं दिखाई पड़ती हैं परंतु फोटोप्लेट पर प्रभाव डालती हैं और उनका फोटो लिया जा सकता है। इन किरणों को पराबैंगनी किरणें (Ultra-violet rays) कहा जाता है। इसी प्रकार लाल रंग से ऊपर अवरक्त किरणें पाई जाती हैं। वास्तव में सभी वर्णों की रश्मियाँ विद्युच्चुंबकीय तरंगें होती हैं। रंगीन प्रकाश, अवरक्त, पराबैंगनी प्रकाश, एक्स-किरण, गामा (γ) — किरण, माइक्रो तरंगें तथा रेडियो तरंगें — ये सभी विद्युच्चुंबकीय तरंगें हैं। इन सबका स्पेक्ट्रम होता है। प्रत्येक वर्ण की रश्मियों का निश्चित तरंगदैर्घ्य लगभग ७००० A° होता है। पारे को उत्तेजित करने से जो हरे रंग की किरणें निकलती हैं उनका तरंगदैर्घ्य ५४६१ A° होता है। अत: अब विभिन्न वर्णों की रश्मियों का विभाजन रंग के आधार पर नहीं वरन् तरंगदैर्घ्य के आधार पर किया जाता है और स्पेक्ट्रम का अर्थ बहुत व्यापक हो गया है — तरंगदैर्घ्य के अनुसार रश्मियों की सुव्यवस्था को स्पेक्ट्रम कहा जाता है। स्पेक्ट्रमविज्ञान का संबंध प्राय: सभी प्रकार की विद्युच्चुंबकीय तरंगों से है। माइक्रो तरंग-स्पेक्ट्रमिकी, इन्फ्रारेड-स्पेक्ट्रमिकी, दृश्य क्षेत्र स्पेक्ट्रमिकी, एक्स किरण-स्पेक्ट्रमिकी और न्यूक्लियर-स्पेक्ट्रमिकी आदि सभी विभाग स्पेक्ट्रमिकी के ही अंग हैं किंतु प्रचलित अर्थ में स्पेक्ट्रमिकी के अंतर्गत अवरक्त, दृश्य तथा पराबैंगनी किरणों के स्पेक्ट्रम का अध्ययन ही आता है।

न्यूटन ने सूर्य की किरणों से जो 'स्पेक्ट्रम' प्राप्त किया था वह शुद्ध नहीं था अर्थात् सभी रंग पासवाले रंग से पूर्णत: पृथक् नहीं

रश्मियो का परिक्षेपण तीन रीतियों से होता है (१) जब रश्मियाँ किसी प्रिज्म से होकर जाती हैं तब अपवर्तन के कारण पृथक् हो जाती हैं। इसे अपवर्तनीय परिक्षेपण कहते हैं; (२) यदि बहुत सी सँकरी झिरियों को एक दूसरी के समांतर पास पास रखकर उनमें से मिश्रित प्रकाशपुंज भेजा जाय तो विवर्तन के कारण रश्मियाँ अलग अलग हो जाती हैं और स्पेक्ट्रम बन जाता है। ऐसे परिक्षेपण को विवर्तनीय परिक्षेपण (Diffractive dispersion) कहते हैं; (३) रश्मियो के व्यतिकरण (Interference) द्वारा भी परिक्षेपण उत्पन्न किया जाता है। पहली दो रीतियाँ अधिक प्रचलित हैं।

प्रिज्म स्पेक्ट्रोलेखी — के तीन मुख्य भाग होते हैं — कॉलीमेटर, प्रिज्म और कैमरा। कॉलीमेटर एक खोखली नली होती है जिसके एक सिरे पर पतली झिरी और दूसरे सिरे पर लेंस लगा होता है। झिरी और लेंस की दूरी परिवर्तनीय होती है तथा झिरी की चौड़ाई भी परिवर्तनीय होती है। प्रिज्म एक दृढ़ आधार पर इस प्रकार रखा जाता है कि लेंस से आनेवाला समांतर रश्मिपुंज इसपर पड़े। प्रिज्म से परिक्षेपित रश्मियाँ कैमरे मे जाती हैं और कैमरा लेंस द्वारा फोटोप्लेट पर केंद्रित (Focus) की जाती हैं। पूरी व्यवस्था एक साथ इस प्रकार ढकी रहती है कि झिरी के अतिरिक्त और कही से भी प्रकाश भीतर न जा सके।

सामान्यत दृश्य और पराबैंगनी क्षेत्र में काम आनेवाले स्पेक्ट्रोग्राफ ऐसे ही होते हैं। दृश्यक्षेत्र में काम आनेवाले स्पेक्ट्रोलेखी में काँच के लेंस और प्रिज्म लगे रहते हैं। पराबैंगनी क्षेत्र के लिये क्वार्ट्ज, फ्लोराइड तथा फ्लोराइड के प्रिज्म और लेंस काम आते हैं। दूरस्थ अवरक्त के लिये उपयोगी प्रिज्म नही मिलते हैं। विक्षेपण बढाने के लिये दो या तीन प्रिज्म वाले स्पेक्ट्रोलेखी बनाए गए हैं। निर्वात पराबैंगनी क्षेत्र के लिये ऐसे स्पेक्ट्रोग्राफ काम आते हैं जिनसे वायु निकाल दी जाती है। इन्हे निर्वात स्पेक्ट्रोग्राफ कहते हैं। ये बड़े मूल्यवान होते हैं।

अवरक्त के लिये विशेष प्रकार के स्पेक्ट्रोमापी काम में लाए जाते हैं। इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोमीटर से किसी पदार्थ का शोषण वर्णक्रम प्राप्त होता है। सततवर्णी इन्फ्रारेड रश्मियो को पदार्थ से होकर जाने दिया जाता है। पदार्थ से निकलने के बाद इन्हें प्रिज्म या ग्रेटिंग से विक्षेपित किया जाता है। विक्षेपित रश्मियों का अभिलेख (Recording) तापविद्युत् रिकार्डरों द्वारा किया जाता है। इन स्पेक्ट्रोमीटरो में क्लोराइड तथा फ्लोराइड के प्रिज्म लगे रहते हैं और लेंसो के स्थान पर धातु की कलईवाले दर्पण लगाए जाते हैं।

ग्रेटिंग स्पेक्ट्रोग्राफ (Grating Spectrograph) — कई सँकरी झिरियों को समानांतर रखकर जो झिरीसमूह बनाया जाता है उसे ग्रेटिंग कहते हैं। यदि स्वच्छ पारदर्शक काँच पर समांतर रेखाएँ खुरच दी जायँ तो प्रत्येक दो रेखाओ के बीच का पारदर्शक स्थान झिरी का काम देता है। ऐसे शीशे को समतल पारगामी (plane transmission) ग्रेटिंग कहते हैं। इनका उपयोग प्रिज्म की ही भाँति सीमित है। यदि किसी वक्रतल पर एलुमिनियम या चाँदी की कलई की जाय और इसी पर समांतर रेखाएँ खुरच दी जायँ तो यह उपकरण अवतल परावर्तक ग्रेटिंग (Concave reflection grating) कहा जाता है। प्रत्येक दो रेखाओं के बीच का तल रश्मियो को परावर्तित कर देता है, इन्हीं परावर्तित रश्मियो के विवर्तन (diffraction) से स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। इस प्रकार की ग्रेटिंग सर्वप्रथम हेनरी रोलैंड (Henry Rowland) ने सन् १८८२ ई० मे बनाई थी। रेखाएँ खुरचने के लिये रोलैंड ने रूलिंग मशीन भी बनाई थी जो सुधरे हुए रूप में अब भी प्रचलित है।

वक्र ग्रेटिंग स्पेक्ट्रोलेखी में लेंस की आवश्यकता नही होती है। रश्मिपुंज एक सँकरी झिरी से होकर ग्रेटिंग पर पड़ता है। परावर्तित रश्मियाँ स्वत. एक वृत्त पर केंद्रित हो जाती हैं। इस वृत्त को 'रोलैंड वृत्त' कहते हैं। जिस वक्रतल पर रेखाएँ खुरची जाती हैं उसे 'ग्रेटिंग ब्लैंक' कहते हैं। रोलैंड वृत्त का अर्धव्यास 'ब्लैंक' के वक्रतार्धव्यास का आधा होता है। यह वृत्त ग्रेटिंग को उस स्थान पर स्पर्श करता है जहाँ इसका व्यास ग्रेटिंग पर अभिलब होता है। इसी अभिलब के दूसरे सिरे पर झिरी का प्रत्यक्ष बिंब बनता है। इसे शून्य कोटि का स्पेक्ट्रम कहते हैं। इसके दोनों ओर रोलैंड वृत्त पर जो सर्वप्रथम स्पेक्ट्रम पाए जाते हैं उन्हें प्रथम कोटि का स्पेक्ट्रम कहा जाता है। इसी वृत्त पर और आगे क्रमशः कम तीव्रता के कई स्पेक्ट्रम मिलते हैं। इन्हे क्रमश. द्वितीय, तृतीय आदि कोटि का स्पेक्ट्रम कहा जाता है।

स्पेक्ट्रोलेखी की उपयोगिता दो बातों पर निर्भर करती है। पहली उसकी परिक्षेपण क्षमता और दूसरी विभेदन क्षमता (Resolving power) है। किसी स्पेक्ट्रोलेखी में परिक्षेपक यंत्र से निकलने पर विभिन्न तरंगदैर्घ्य की रश्मियाँ एक दूसरी से जितना ही अधिक पृथक् हो जाती हैं उस स्पेक्ट्रोलेखी की परिक्षेपण क्षमता उतना ही अधिक होती है। इसी प्रकार दो अत्यंत समीपवर्ती तरंगदैर्घ्य की रेखाओं को एक दूसरी से ठीक ठीक अलग दिखाने की क्षमता को विभेदनक्षमता कहते हैं। यदि किसी स्पेक्ट्रम में दो ऐसी रेखाएँ ली जायँ जिनमें एक का तरंगदैर्घ्य λ और दूसरी का $\lambda + d\lambda$ हो तो अधिक विभेदनक्षमतावाले स्पेक्ट्रोलखी में दोनो रेखाएँ एक दूसरी से अलग दिखाई देती हैं किंतु कम विभेदक स्पेक्ट्रोलेखी में दोनो मिलकर केवल एक ही रेखा दिखाई पड़ती है। विभेदनक्षमता को $\lambda/d\lambda$ के अनुपात से व्यक्त किया जाता है।

रश्मियो का अभिलेखन — स्पेक्ट्रोलेखी में परिक्षेपित रश्मियो का फोटो उतार लिया जाता है। इसे स्पेक्ट्रोलेखी कहते हैं। जहाँ फोटो नहीं उतारा जा सकता है वहाँ रश्मियों का अभिलेखन (Recording) किया जाता है। फोटो उतारने तथा अभिलेखन के लिये जो उपकरण काम आते है उन्हें 'डिक्टेटर' कहा जाता है। स्पेक्ट्रमिकी के विभिन्न क्षेत्रो में विभिन्न प्रकार के डिक्टेटर काम में लाए जाते हैं।

तरंगदैर्घ्य की माप — किसी एकवर्ण रश्मि का तरंगदैर्घ्य अत्यंत शुद्धतापूर्वक ज्ञात करने के लिये व्यतिकरणमापी (Interferometer) काम में लाए जाते हैं। फेब्रीपेरो इंटरफेरोमीटर और माइकेल्सन इंटरफेरोमीटर इस कार्य के लिये अत्यधिक उपयोगी होते हैं।

सभी रेखाओ का तरंगदैर्घ्य व्यक्तिकरणमापी से ही ज्ञात करना कठिन और बहुधा असभव है अतः किसी तत्व की तीक्ष्ण और प्रखर

३. दृश्यक्षेत्र	४०००A°-७०४०A°	तप्त ठोस आर्क स्पार्क विद्युत् विसर्जन	काँच के प्रिज्म तथा वक्रग्रेटिंग	फोटो प्लेट और फिल्म
४. अल्ट्रा-वायलेट	४०००A°-२०००A°	आर्क स्पार्क विद्युत् विसर्जन	क्वार्ज प्रिज्म तथा वक्र ग्रेटिंग	फोटोप्लेट तथा विद्युत् रिकार्डर
५. निर्वात अल्ट्रावायलेट	२०००A°-२००A°	स्पार्क विद्युत् विसर्जन	फल्यूराइड प्रिज्म तथा वक्र ग्रेटिंग	"

रश्मिस्रोत — स्पेक्ट्रम तीन प्रकार के होते हैं,—रेखीय, पट्टदार तथा सतत। रेखीय स्पेक्ट्रम मे केवल रेखाएँ पाई जाती हैं। पट्टदार स्पेक्ट्रम मे पट्ट बैंड (Band) पाए जाते हैं जिनका एक किनारा तीक्ष्ण और दूसरा क्रमश. धूमिल होता है। सतत स्पेक्ट्रम में सभी वर्ण की रश्मियाँ एक दूसरे से संलग्न रहती हैं। विभिन्न प्रकार के स्पेक्ट्रम पाने के लिये उपयुक्त रश्मिस्तोत काम में लाए जाते हैं।

(अ) रेखीय स्पेक्ट्रम के स्रोत — रेखीय स्पेक्ट्रम उत्तेजित परमाणुओं द्वारा प्राप्त होता है। इन्हे उत्तेजित करने के लिये ऊष्मा, विद्युत् या अत्यधिक ऊर्जायुक्त विद्युच्चुबकीय रश्मियो की आवश्यकता होती है। सामान्यत' विद्युत् आर्क और विद्युत् स्पार्क उपयोग मे आते हैं। ज्वाला (Flame), ताप भट्ठी तथा विद्युत् विसर्जन द्वारा भी परमाणुओं को उत्तेजित किया जाता है।

विद्युत् आर्क — धातु के दो इलेक्ट्रोड एक विशेष प्रकार के स्तंभ में कस दिए जाते हैं किंतु स्तंभ से पृथग्यस्त रहते हैं। एक स्क्रूहेड को घुमाकर इलेक्ट्रोडो के बीच का रिक्त स्थान कम या अधिक किया जा सकता है। दोनो इलेक्ट्रोड एक परिवर्तनीय अवरोध तथा एक प्रेरकत्व (inductance) श्रेणीक्रम में जोड दिए जाते हैं।

आर्क चलाने के लिये आरंभ में दोनो इलेक्ट्रोड सटा दिए जाते हैं अत. विद्युत् परिपथ पूरा हो जाता है और धारा प्रवाहित होने लगती है। जहाँ इलेक्ट्रोड सटते हैं उस बिंदु पर भीषण ऊष्मा उत्पन्न होती है क्योकि वहाँ अवरोध अत्यत कम होने से सहसा हजारों ऐंपीयर की धारा प्रवाहित होती है। इस उष्मा के कारण इलेक्ट्रोड के अग्र भाग वाष्पित हो जाते हैं और उन्हें थोड़ा विलग करने पर भी यह भाप विद्युत् परिपथ को पुरा किए रहती है। इस भाग मे स्थित अणु-परमाणु उत्तेजित होकर प्रकाश देने लगते हैं। आर्क का तापक्रम लगभग ३५०० सें० से ८००० सें० तक होता है। मुख्य तार आर्क चलाने के पूर्व इलेक्ट्रोडो के बीच का विभवातर मेन (Mains) के विभवातर के बराबर (२२० वोल्ट) होता है किंतु आर्क चलते समय यह घट जाता है। प्रत्यावर्तीधारा से भी आर्क चलाए जाते हैं। आजकल कई प्रकार के सुधरे हुए आर्क उपलब्ध हैं।

इलेक्ट्रिक स्फुलिंग — की रचना लगभग आर्क की ही भाँति होती है किंतु स्फुलिंग के इलेक्ट्रोडो का विभवातर आर्क की अपेक्षा कई सौ गुना अधिक होता है। यही कारण है कि स्फुलिंग का स्तभ (Stand) अधिक सुरक्षित तथा इलेक्ट्रोडो से भली भाँति पृथग्यस्त रखा जाता है। इलेक्ट्रोडों को एक स्टेपअप ट्रान्सफार्मर के सेकंडरी सिरो (Secondary terminals) से जोड़ दिया जाता है। स्फुलिंग रिक्त स्थान का विभवातर १०,००० वो० से ५०,००० वोल्ट तक होता है; अतः इस स्रोत में अणु परमाणुओं को अत्यधिक उत्तेजना मिलती है। स्फुलिंग रिक्त स्थान इच्छानुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है।

इस स्रोत में उत्तेजित होनेवाले अणु परमाणुओ को बहुत अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है। अत वे आयनित हो जाते हैं। परमाणु या अणु के केंद्रक (nucleus) के चारो ओर बहुत से इलेक्ट्रान घूमते रहते हैं। ये इलेक्ट्रान निश्चित नियम के अनुसार विभिन्न कक्षाओ मे बँटे रहते हैं। सबसे बाहरवाली कक्षा के इलेक्ट्रानो को 'आप्टिकल इलेक्ट्रान' कहा जाता है। यदि किसी अणु या परमाणु में से एक या अधिक आप्टिकल इलेक्ट्रान निकाल दिए जायँ तो वह 'आयनित' कहा जाता है। केवल एक इलेक्ट्रान निकल जाने पर परमाणु पहली आयनित स्थिति में हो जाता है। यदि दूसरे, तीसरे आदि इलेक्ट्रान भी निकल जायँ तो परमाणु क्रमशः दूसरी, तीसरी आदि आयनित स्थिति में चला जाता है। इन स्थितियो के लिये उत्तरोत्तर अधिक ऊर्जा देनी होती है। अत्यत उच्च विभवांतर पर चलनेवाले स्फुलिंग से टिन की २३वी आयनित स्थिति प्राप्त की जा चुकी है।

स्पेक्ट्रो रासायनिक विश्लेषण (Spectro Chemical analysis) के लिये विद्युत् स्फुलिंग मुख्य रूप से उपयोगी होता है। स्फुलिंग को स्थिर रूप से देर तक चलाने के लिये इसमे विविध प्रकार के सुधार किए गए हैं।

(ब) पट्टदार स्पेक्ट्रम के स्रोत — पदार्थों को प्रज्वलित करने या बुनसन ज्वालक की ज्वाला में जलाने पर पट्टदार स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। कुछ पदार्थों को विद्युत् आर्क में प्रज्वलित करने से भी पट्टदार स्पेक्ट्रम प्राप्त किया जा सकता है। गैसो में विद्युत् विसर्जन से पट्टदार स्पेक्ट्रम बडी सुविधा से प्राप्त होते हैं। विद्युत विसर्जन के लिये गैस को बहुत कम दाब पर एक नली में भरकर उसके सिरो के बीच कई हजार वोल्ट का विभवातर (Potential difference) देना पड़ता है। निऑन गैस में विद्युत् विसर्जन से रक्त वर्ण की रश्मियाँ निकलती हैं। आजकल प्रदर्शन और प्रचार के लिये अक्षरो और चित्रो के आकार की विसर्जन नलियाँ बनाई जाती हैं जिनमें नीऑन गैस भरी रहती है। इन्हे निऑन साइन (Neon sign) कहते हैं।

(स) सतत स्पेक्ट्रम के स्रोत — किसी ठोस पदार्थ को इतनी ऊष्मा दी जाय कि वह लाल होकर चमकने लगे तो उससे संतत रश्मिपुंज निकलता है। बिजली के बल्व से दृश्यक्षेत्र में सतत स्पेक्ट्रम पाने के लिये विशेष प्रकार के हाइड्रोजन लैंप, जीनान आर्क लैंप तथा पारद-वाष्प विसर्जन काम में लाए जाते हैं।

स्पेक्ट्रोलेखी — विभिन्न प्रकार के रश्मिस्रोतो से जो रश्मियाँ निकलती हैं उनका स्थायी स्पेक्ट्रम प्राप्त करने के लिये स्पेक्ट्रोलेखी काम में लाए जाते हैं। प्रत्येक स्पेक्ट्रोलेखी में लाया हुआ परिक्षेपण यंत्र विभिन्न वर्णों की मिश्रित रश्मियो को पृथक् कर देता है।

किरणों की खोज डब्ल्यू॰ के॰ रंटगेन (W K Rontgen) ने १८९५ ई॰ मे की थी। ये किरणें भी विद्युत् चुबकीय तरगें होती हैं। एक्स किरणो का तरगदैर्घ्य बहुत छोटा, १०० ए° से १ए° तक होता है। स्पेक्ट्रमिकी के इस विभाग की नींव डालनेवाले वैज्ञानिको में हेनरी जेफरी मोस्ले, ब्रैग और लावे के नाम उल्लेखनीय हैं।

जब तीव्र गति से चलते हुए इलेक्ट्रानो की धारा को किसी धातु के टार्जेट पर रोक दिया जाता है तब उससे एक्स-किरणें निकलने लगती हैं। इनसे प्राप्त स्पेक्ट्रम दो प्रकार के होते हैं—रेखा स्पेक्ट्रम और सतत स्पेक्ट्रम। रेखा स्पेक्ट्रम टार्जेट के तल का लाक्षणिक स्पेक्ट्रम (Characteristic Spectrum) होता है। सतत स्पेक्ट्रम में एक सीमित क्षेत्र की प्रत्येक आवृत्ति की रश्मियाँ होती हैं। इस स्पेक्ट्रम की उच्चतम आवृत्तिसीमा तीक्ष्ण और स्पष्ट होती है किंतु निम्न आवृत्तिसीमा निश्चित नहीं होती है। उच्चतम आवृत्तिसीमा को एक्स स्पेक्ट्रम की क्वांटम-सीमा कहते हैं।

सतत एक्स किरण स्पेक्ट्रम की विशेषताएँ—(१) एक्स किरणो को उत्पन्न करने के लिये जितना ही अधिक विभवांतर रखा जाता है, सतत स्पेक्ट्रम की उच्चतम आवृत्तिसीमा भी उतनी ही अधिक होती है।

(२) एक निश्चित टार्जेट के लिये संतत स्पेक्ट्रम की संपूर्ण तीव्रता (total intensity) उपयोग किए हुए विभव के वर्ग के सरल अनुपात में होती है। यदि विभव स्थिर रखकर टार्जेट बदलते जाएँ तो तीव्रता परमाणुसख्या के अनुसार बढ़ती जाती है।

रैखिक एक्स स्पेक्ट्रम की विशेषताएँ — (१) रैखिक ऐक्स स्पेक्ट्रम की रेखाओ को प्रायः दो श्रेणियो में बाँटा जाता है। छोटी तरगदैर्घ्य की रेखाओ को 'के' (K) श्रेणी मे और बडी तरगदैर्घ्य की रेखाओ को 'एल' (L) श्रेणी में रखा जाता है। इन रेखाओ की सख्या तत्वो के परमाणुभार के अनुसार बढ़ती जाती है। उच्च विभव का प्रयोग करने पर भी इनकी सख्या बढ़ती है। इस दशा में 'के' और 'एल' श्रेणियो के अतिरिक्त एम, एन, ओ (M, N, O) श्रेणियाँ भी मिलने लगती हैं। यूरेनियम और थोरियम के ऐक्स स्पेक्ट्रम में के, एल, एम और एन श्रेणियाँ पाई जाती हैं।

(२) सूक्ष्मदर्शी स्पेक्ट्रोदर्शी की सहायता से यह ज्ञात हुआ है कि 'के' श्रेणी मे चार रेखाएँ होती हैं, एल श्रेणी में इससे अधिक रेखाएँ होती हैं। एम, एन आदि श्रेणियों में और भी अधिक रेखाएँ होती हैं।

(३) उपर्युक्त रेखाओ के अतिरिक्त उनके अत्यत निकट धुँधली रेखाएँ भी पाई गई हैं। इन्हें 'सेटेलाइट' रेखाएँ कहते हैं।

प्रतिदीप्ति — जब किसी धातु पर एक्स रश्मियाँ पड़ती हैं तब उससे लाक्षणिक रैखिक स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। इसे एक्स किरण प्रतिदीप्ति कहते हैं। इससे ठीक पहले धातु से इलेक्ट्रान भी निकलते हैं, यह फोटो इलेक्ट्रिक क्रिया कहलाती है।

अवशोषण एक्स-किरण स्पेक्ट्रम — स्पेक्ट्रोमापी में जाने के पूर्व यदि सतत एक्स किरणों को किसी धातु के पतले पत्र से होकर जाने दिया जाय तो वह अपनी लाक्षणिक आवृत्तियो को अवशोषित कर लेता है और हमें अवशोषण स्पेक्ट्रम मिलता है। स्पेक्ट्रम की अवशोषण रेखाओ को पहले की भाँति के, एल, एम आदि श्रेणियो में रख सकते हैं। ये रेखाएँ उत्सर्जित रेखाओ की भाँति तीक्ष्ण नहीं होती वरन् पट्ट की भाँति मालूम पड़ती हैं क्योंकि इनमें चौड़ाई होती है और इनका एक ही किनारा तीक्ष्ण होता है।

एक्स-किरण स्पेक्ट्रमदर्शी तथा स्पेक्ट्रमलेखी — एक्स-किरण स्पेक्ट्रमदर्शी में दो प्रकार के उपकरण काम में लाए जाते है।
१. क्रिस्टल एक्स-स्पेक्ट्रममापी (Crystal x spectrometer)
२ ग्रेटिंग एक्स-स्पेक्ट्रमलेखी (Grating spectrograph)

क्रिस्टल एक्स-किरण स्पेक्ट्रममापी—ये कई प्रकार के होते हैं किंतु सबका मूल सिद्धात प्रायः ब्रैग स्पेक्ट्रममापी पर ही आधारित है। नीचे अन्य प्रकार के स्पेक्ट्रममापी के नाम दिए गए हैं :—

(१) ब्रैग का आयनीकरण स्पेक्ट्रममापी।

(२) डी ब्रोग्ली का क्रिस्टल स्पेक्ट्रममापी — इसमें क्रिस्टल को घुमाया जा सकता है और संसूचक को स्थिर रखा जा सकता है।

(३) सीमन का एक्स-किरण स्पेक्ट्रममापी।

(४) रुदरफोर्ड का पारगामी एक्स किरण स्पेक्ट्रमलेखी।

ग्रेटिंग ऐक्स-किरण स्पेक्ट्रमलेखी — इस प्रकार का स्पेक्ट्रोग्राफ सर्वप्रथम कांपटन और डोन द्वारा १९२६ ई॰ में बनाया गया। परावर्तक सतहों से एक्स-किरणों का पूर्ण परावर्तन हो सकता है। इसी तथ्य के आधार पर यह संभव हुआ है कि खचित परावर्तन ग्रेटिंग (Ruled reflection grating) की सहायता से एक्स किरणो का तरगदैर्घ्य निकाला जा सकता है। एक्स-किरणो को परावर्तन के लिये ग्रेटिंग के साथ अत्यत छोटा कोण बनाना चाहिए। (पूर्ण परावर्तन के लिये चरमकोण से छोटा आपतन कोण बनाना चाहिए)। छोटी तरगदैर्घ्य की एक्स किरणों के लिये ग्रेटिंग स्पेक्ट्रमलेखी उपयोगी नही होते हैं।

एक्स-किरण स्पेक्ट्रमदर्शी की उपयोगिता सामान्य स्पेक्ट्रमदर्शी की अपेक्षा कम नहीं है। अणुओं की आंतरिक रचना जानने के लिये एक्स-किरण स्पेक्ट्रम के अध्ययन से बडी सहायता मिली है। सामान्य स्पेक्ट्रमदर्शी में हम केवल ऐसे ही स्पेक्ट्रम प्राप्त करते हैं जो परमाणुओं के समीपवर्ती इलेक्ट्रानो की उत्तेजना से प्राप्त करते हैं। एक्स-किरणों से संबद्ध ऊर्जा का मान बहुत अधिक होता है। अत जब ये किसी पदार्थ के परमाणुओं से टकराती हैं, या अत्यधिक ऊर्जावाले इलेक्ट्रान जब परमाणुओ से टकराते हैं तब परमाणु की आंतरिक कक्षाओं के इलेक्ट्रान (एक या अधिक) बाहर निकल जाते हैं। उनको स्थानापन्न करने के लिये अन्य कक्षाओं से इलेक्ट्रान जाते हैं। इन्ही इलेक्ट्रनो के संक्रमण से एक्स-विकिरणें (X-radiation) निकलती हैं और रैखिक स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। प्रत्येक तत्व का एक्स-स्पेक्ट्रम दूसरों के स्पेक्ट्रम मे भिन्न होता है। इसकी सहायता से तत्वो की पहचान बहुत सुविधापूर्वक की जा सकती है। एक्स-किरण स्पेक्ट्रम

रेखा को प्राथमिक मानक (Primary standard) मान लिया जाता है और इसकी सहायता से अन्य रेखाओं के तरंगदैर्घ्य ज्ञात किए जाते हैं। कैडमियम तत्व की लाल रेखा का तरंगदैर्घ्य ६४३८.४६९६ ए° को प्राथमिक मानक माना गया है। हाल ही में (१९५८-५९ ई०) बहुत से वैज्ञानिकों ने हीलियम गैस की रेखा ६०५७.८०२ ए° (A°) को प्राथमिक मानक मानने का निर्णय किया है। शुद्ध लोह तथा विरल गैसों के तरंगदैर्घ्य गौण मानक (Secondary standard) माने जाते हैं। किसी स्पेक्ट्रम का फोटो लेते समय फोटोप्लेट को यथास्थान रखकर मुख्य स्पेक्ट्रम के साथ साथ लोहे या ताँबे के विद्युत्आर्क का स्पेक्ट्रम भी ले लिया जाता है और इसकी रेखाओं से तुलना करके, सूत्रों की सहायता से, स्पेक्ट्रम की रेखाओं या बैंडशीर्षों का तरंगदैर्घ्य ज्ञात कर लिया जाता है। रेखाओं की पारस्परिक दूरियाँ कंपरेटर नामक उपकरण की सहायता से मापी जाती हैं।

स्पेक्ट्रमों की उत्पत्ति का सिद्धांत — प्रत्येक परमाणु में एक नाभिक (nucleus) होता है। इसके चारों ओर कई इलेक्ट्रान नियत कक्षाओं में घूमते रहते हैं। इलेक्ट्रानों की कुल संख्या नाभिक के प्रोटानो की सख्या के बराबर होती है। भिन्न भिन्न कक्षाओं में इलेक्ट्रानो की सख्या भी नियत होती है। कोई भी इलेक्ट्रान किसी नियत कक्षा में ही रह सकता है। वास्तव में ये कक्षाएँ परमाणु की ऊर्जास्थिति की द्योतक होती हैं। यदि कोई इलेक्ट्रान किसी अन्य रिक्त कक्षा में चला जाय तो परमाणु की ऊर्जास्थिति बदल जाती है। भीतरी कक्षाओं के इलेक्ट्रानो का हटना प्राय: संभव नहीं होता है किंतु अंतिम कक्षा का इलेक्ट्रान बाहरी ऊष्मा या विद्युत् शक्ति से उत्तेजित होने पर अगली कक्षा मे जा सकता है। यदि पहली कक्षा में उससे संबद्ध ऊर्जा E_1 और उससे ठीक अगली कक्षा में E_2 है तो पहली से दूसरी उच्चतर ऊर्जास्थिति में जाने के लिये इलेक्ट्रान केवल $E_2 - E_1$ ऊर्जा ही ले सकता है। उत्तेजित स्तर पर जाने के बाद ही वह पुन. पूर्वस्थिति में वापस आता है और $E_2 - E_1$ ऊर्जा उत्सर्जित करता है। इस उत्सर्जित या अवशोषित ऊर्जा का मान $h\nu$ ही होता है अर्थात् इलेक्ट्रान एक ऊर्जास्तर से ठीक अगले ऊर्जास्तर मे जाने या वापस आने में निश्चित ऊर्जा $h\nu$ अर्ग ही ले सकता है या दे सकता है। इससे कम ऊर्जा का आदान प्रदान नहीं हो सकता है। h एक स्थिर संख्या है और ν उत्सर्जित रश्मि की आवृत्ति (frequency) है। $h\nu$ अर्ग ऊर्जा का एक पैकेट या 'क्वांटम' कहा जाता है। इसी प्रकार जब इलेक्ट्रान अन्य ऊर्जास्तरों में संक्रमण करता है तो भिन्न भिन्न आवृत्ति की रश्मियाँ प्राप्त होती हैं और स्पेक्ट्रम में तदनुकूल बहुत सी रेखाएँ बन जाती हैं। अणु, परमाणुओं में इलेक्ट्रानो की व्यवस्था के अनुसार कई इलेक्ट्रानिक ऊर्जास्तर पाए जाते हैं और इलेक्ट्रानिक संक्रमण के कारण विभिन्न प्रकार के स्पेक्ट्रम प्राप्त होते हैं। परमाणुओं मे केवल इलेक्ट्रानिक ऊर्जास्थितियाँ ही पाई जाती हैं। अत इलेक्ट्रानो के संक्रमण (transition) से निश्चित तरंगदैर्घ्य की रश्मियाँ निकलती हैं और रेखीय स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। अणुओं में तीन प्रकार की ऊर्जा होती है — इलेक्ट्रानिक, कंपनजन्य (vibrational) और घूर्णनजन्य (rotational)। इलेक्ट्रानिक ऊर्जा का मान और भी कम होता है। जिस प्रकार इलेक्ट्रानिक ऊर्जास्थितियाँ नियत हैं उसी प्रकार कंपनजन्य और घूर्णनजन्य ऊर्जा की स्थितियाँ भी नियत हैं। अतः कंपनजन्य संक्रमण से पट्ट या बैंड प्राप्त होता है। प्रत्येक बैंड में घूर्णनजन्य संक्रमण से रेखाएँ प्राप्त होती हैं। ये बहुत पास पास होती हैं अतः छोटे स्पेक्ट्रोदर्शी से अलग अलग नहीं दिखाई पड़ती हैं और स्पेक्ट्रम में विभिन्न वर्ण के बैंड ही दिखाई पडते हैं। अधिक परिक्षेपण तथा विभेदनक्षमतावाले स्पेक्ट्रोदर्शी से इन रेखाओं को देखा जा सकता है। दो से अधिक परमाणुवाले अणुओं की घूर्णन रेखाएँ और भी पास पास होती हैं अतः उन्हें देखना कठिन होता है। बहुपरमाणुक अणुओं की घूर्णनरेखाओं को देखना अब तक संभव नहीं हुआ है।

स्पेक्ट्रमदर्शी के उपयोग — १. स्पेक्ट्रमी रासायनिक विश्लेषण : आर्क या स्फुलिंग द्वारा किसी पदार्थ को उत्तेजित करके उसके स्पेक्ट्रम द्वारा यह जाना जा सकता है कि उक्त पदार्थ किन किन तत्वों से बना है तथा इसमें उनका अनुपात क्या है। ऐसे विश्लेषण से किसी तत्व की अत्यंत सूक्ष्म मात्रा का अनुपात ज्ञात किया जा सकता है। किसी धातु में दूसरी धात्वीय अशुद्धि यदि ०.००१०% तक है तब भी इसका पता लगाया जा सकता है। रासायनिक रीतियों से यह संभव नहीं है।

२ अणु-परमाणुओं की आंतरिक रचना ज्ञात की जाती है।

३ नाभिकीय भ्रमि (Nuclear spin) और समस्थानिकों का पता सुविधापूर्वक लगाया जा सकता है।

४ द्विपरमाणुक पदार्थों के चुंबकीय गुणों का पता लगाया जाता है।

५. जहाँ सीधी रीतियों से ताप ज्ञात करना संभव नहीं है वहाँ स्पेक्ट्रमदर्शी की रीति अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है। स्पेक्ट्रम की रेखाओं की दीप्ति नापकर उनके स्रोत का ताप बताया जा सकता है।

६. पदार्थों के ऊष्मागतिक (Thermodynamical) गुणों की गणना भी स्पेक्ट्रमदर्शी की रीति से की जा सकती है।

७. बहुत से ऐसे 'रैडिकल' या परमाणुसमूह, जिनका बनना रासायनिक क्रियाओं द्वारा असंभव है और जो मुक्त रूप में नहीं बन सकते, उनका अध्ययन भी स्पेक्ट्रमदर्शी में बहुधा अत्यंत सरल है। C N और O H मूलक स्वतंत्र रूप मे कभी नहीं पाए जाते हैं पर स्पेक्ट्रोदर्शी की रीतियों से इनका यथेष्ट अध्ययन किया गया है। तारों का ताप और उनकी बनावट का ज्ञान भी स्पेक्ट्रमदर्शी की विधियों से ही प्राप्त किया जाता है। [अ० कु० ति०]

स्पेक्ट्रमिकी, एक्स-किरण स्पेक्ट्रमिकी के इस विभाग मे एक्स किरणों के स्पेक्ट्रम का अध्ययन किया जाता है। इससे परमाणुओं की संरचना का ज्ञान प्राप्त करने मे सहायता मिलती है। एक्स

होती है। उन्होंने सूर्य के प्रकाश के एक सकीर्ण किरणपुंज को एक छिद्र में से होकर तथा में प्रविष्ट कराकर प्रिज्म द्वारा देखा। उन्होंने देखा कि यह किरणपुंज काली रेखाओं द्वारा चार रंगों में विभक्त हो गई। यह भी देखा कि एक मोमबत्ती की ज्वाला के निचले भाग से आने प्रकाश को एक प्रिज्म के द्वारा देखने पर बहुत से चमकीले अभिविन्द दिखाई पड़ते हैं, जिनमे से एक सौर स्पेक्ट्रम के पीले और नारंगी रंगों के बीच की काली रेखा का सपाती होता है। बाद में १८१४ ई० मे फ्राउनहोफर (Fraunhofer) ने काली रेखाओं की दूरदर्शी और सकीर्ण रेखाछिद्र से विस्तृत परीक्षा की और वे स्पेक्ट्रम में ५७४ तक काली रेखाओं को गिन सके थे। उन्होंने इनमे से कुछ प्रमुख रेखाओं का नाम A, a, B, C, D, E, b इत्यादि दिया जो आज भी प्रचलित हैं। उन्होंने यह भी देखा कि सौर स्पेक्ट्रम की D रेखाएँ दीपक की ज्वाला के स्पेक्ट्रम में दिखाई पड़नेवाली काली रेखाओं की संपाती होती हैं। इस सपात की व्याख्या तब तक अज्ञात रही जब तक किर्खहॉफ (Kirchhoff) ने १८५९ ई० में एक साधारण प्रयोग द्वारा यह स्पष्ट नही किया कि स्पेक्ट्रम मे D रेखाओं की उपस्थिति इनके तरंगदैर्घ्य पर तीव्रता की न्यूनता के कारण है, जिसका कारण सूर्य में सोडियम वाष्प की तप्त उपस्थिति है और इससे उन्होंने सूर्य मे सोडियम की उपस्थिति को सिद्ध किया। इस महत्वपूर्ण सुझाव का उपयोग हगिन्स (Huygens) ने किर्खहॉफ की खोजो को तारकीय स्पेक्ट्रम के अध्ययन में प्रयुक्त कर किया। प्राय उसी समय रोम में सेकी (Secchi) ने तारकीय स्पेक्ट्रम को देखना प्रारभ किया और यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि तारे भी लगभग उन्ही पदार्थों से बने हैं जिनसे सूर्य बना है।

किर्खहॉफ, हगिंज और सेकी के प्रारभिक कार्य के बाद यग, लाकियर लॉकयर, फोगल (Vogel) और इनके पश्चात् डिस्लैड्रिस पिकरिंग, फ्रास्ट, डुनर (Duner), हेल (Hele) वेलोपोलस्की (Belopolsky) और अन्य लोगो ने इस दिशा मे कार्य किया।

१८७३ ई० मे लॉकयर ने सर्वप्रथम प्रदर्शित किया कि एक तत्व एक से अधिक विशिष्ट स्पेक्ट्रम उत्सर्जित (emitting) करने में समर्थ है। यह स्पेक्ट्रम उत्सर्जित परमाणु के ऊपर प्रयुक्त उद्दीपन पर निर्भर करता है। जब लॉकयर ने स्पेक्ट्रम को उत्तेजित करने के लिये आर्क के बाद अधिक उग्र स्फुलिंग विधि का प्रयोग किया तब कुछ स्पेक्ट्रम रेखाएँ और तीव्र हो गईं उन्हे उन्होंने वर्धित रेखाओं का नाम दिया। ये यह प्रदर्शित करनेवाले प्रथम व्यक्ति थे कि सूर्य के वर्णमंडल (Chromo phere) का स्पेक्ट्रम मडलक और सूर्यकलक (Sunspot) के स्पेक्ट्रम से भिन्न है और इससे निष्कर्ष निकाला कि प्रकाशमंडल (photosphere) के ताप की अपेक्षा वर्णमडल का ताप अधिक और सूर्यकलको का ताप कम होता है।

लॉकयर ने यह ज्ञात किया कि यौगिकों के ज्वाला स्पेक्ट्रम (Flame Spectrum) में पट्टियो (प्रत्येक रेखाओं के समूह से युक्त होती है) का अनुक्रम दिखाई पड़ता है। ये पट्टियाँ घटक (Constituent) परमाणुओं द्वारा प्राप्त रेखिल स्पेक्ट्रम (line spectrum) से भिन्न होती हैं। परन्तु जब ताप बढ़ा दिया गया, तब पट्टियाँ लुप्त हो गईं और घटक तत्वो के रेखिल स्पेक्ट्रम प्रकट हो गए। इस प्रेक्षण से लॉकयर ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि स्फुलिंग स्पेक्ट्रम में तत्वों की वर्धित रेखाएँ साधारण तत्वो के वियोजन (dissociation) से प्राप्त होनेवाले प्रोटोएलिमेंट (proto element) के कारण होती हैं। इस प्रकार आज की ज्ञात पिकरिंग श्रेणी जो आयनित हीलियम परमाणु के कारण है उसे प्रोटो हाइड्रोजन (Proto hydrogen) स्पेक्ट्रम कहा गया। आज हम जानते हैं कि ये प्रोटोएलिमेंट मात्रा वे ही तत्व हैं जिनके परमाणु आयनित हो गए हैं। लॉकयर ने अनेक तारो का प्रेक्षण किया और यह निष्कर्ष निकाला कि वे विभिन्न प्रकार के स्पेक्ट्रम केवल इसलिये प्रदर्शित करते हैं कि उनका ताप विभिन्न है। सन् १९२१ तक यह विवेकपूर्ण सुझाव उपेक्षित ही रहा जब तक कि साहा (Saha) ने स्पेक्ट्रम अनुक्रम के बारे मे सही व्याख्या नही की। इनके अनुसार तारो की भिन्नता का कारण उनकी आतरिक रसायनिक रचना नहीं है अपितु उनके ताप और दवाव की भिन्नता है।

१९०० ई० के लगभग यग के विचारो के आधार पर तारकीय परिमडल (Stellar atmosphere) के बारे मे एक पर्याप्त सतोपजनक गुणात्मक सिद्धात प्रतिपादित हुआ। इस सिद्धात के अनुसार परिमडल का निम्नतम स्तर एक अपारदर्शी प्रकाशमडल है जिसमें गैसीय माध्यम में संघनित धातु या कार्बन वाष्प तैरते रहते हैं। प्रेक्षित सतत स्पेक्ट्रम का उद्गम इसी स्तर से होता है। इस स्तर के ऊपर अपेक्षाकृत ठढा परिमडल रहता है जो वरणात्मक अवशोषण (Selective absorption) द्वारा प्रेक्षित काली रेखाएँ उत्पन्न करता है।

१९ वीं शताब्दी के अंतिम दशक मे तारों, विशेषत सूर्य के परिमडल का विस्तृत गुणात्मक विश्लेषण किया गया। अनेक अन्वेषकों, मुख्यरूप से रोलैंड (Roland), ने स्पेक्ट्रम रेखाओं की पहचान तरंगदैर्घ्य के सबध के आधार पर करने का प्रयास किया। सूर्य का तल, सूर्य धब्बों के बदलते हुए दृश्य, सौर ज्वाला का अध्ययन किया गया।

अनेक ग्रहणों के अध्ययन से सौर वर्णमडल और किरीट (Corona) की सरचनाओं के बारे में बहुमुल्य सूचनाएँ प्राप्त हुईं। बहुत सी नई समस्याएँ, जैसे किरीट रेखाओं की पहचान आदि पैदा हो गईं। ग्रहो के अध्ययन के लिये स्पेक्ट्रमिकी का उपयोग भी किया गया, यद्यपि कोई महत्वपूर्ण परिणाम नहीं प्राप्त हुआ। १९०० ई० तक स्पेक्ट्रमिकीय युग्मतारों (Spectroscopic binaries), वे तारे जो देखने मे एकल दिखाई देते हैं परंतु वास्तव में युग्म तारे हैं और जिनसे स्पेक्ट्रम रेखाओं में कभी कभी आवर्ती द्विगुण उत्पन्न हो जाते हैं) का पता लगा। विभिन्न वेधशालाओं में अनेक स्पेक्ट्रमलेखी (Spectrographs) कार्य में लाए गए और अनेक अन्वेषको द्वारा, विशेषत लिक वेधशाला में कैंपबेल द्वारा, त्रिज्य वेग (radial velocity) का स्पेक्ट्रमी मापन प्रारभ हुए। ऐसा कहा जा सकता है कि इसी के साथ खगोलीय स्पेक्ट्रमिकी के प्रथम चरण का समापन हुआ।

१९ वी शताब्दी की खगोलभौतिकी (astrophysics)

से रासायमिक विश्लेषण करने का मूल सिद्धात यही है। ऐसे विश्लेषण का प्रारभ मोस्ले ने किया था।

यदि दिए हुए पदार्थ का 'टार्जेट' बनाकर ऐक्स किरणें प्राप्त की जाँय तो उनके स्पेक्ट्रम की सहायता से दिए हुए तत्वो की पहचान हो सकती है। प्रत्येक तत्व को टार्जेट के रूप में बनाना और प्रत्येक के लिये एक्स-किरण नलिका बनाना अत्यंत असुविधाजनक है। अतः एक्स-किरणो द्वारा दिए हुए पदार्थ के परमाणुओ को उत्तेजित करके गौण विकिरण (Secondary Radiation) प्राप्त किया जाता है और इन्हीं के स्पेक्ट्रम का अध्ययन करके अज्ञात पदार्थ के अवयवों (परमाणुओ) का पता लगाते हैं। इन गौण विकिरणो से प्राप्त स्पेक्ट्रम उस पदार्थ से प्रत्यक्ष उत्सर्जित स्पेक्ट्रम के समान ही होता है। द्वितीयक स्पेक्ट्रम की तीव्रता अपेक्षाकृत कुछ कम होती है। जिस पदार्थ का विश्लेषण करना होता है उसे एक्स-किरण नलिका के टार्जेट के यथासंभव समीप रखते हैं क्योकि नली से निकलनेवाली प्राथमिक किरणो की तीव्रता दूरी के वर्ग के अनुपात में घटती जाती है। पदार्थ को एक्स-रश्मियों द्वारा उत्तेजित करके द्वितीयक रश्मियाँ प्राप्त करने की प्रक्रिया को प्रतिदीप्ति कहा जाता है। प्रत्येक पदार्थ के अवशोषण स्पेक्ट्रम में अपनी विशिष्ट अवशोषणसीमा होती है। किसी पदार्थ से प्रतिदीप्ति प्राप्त करने के लिये उत्तेजना देनेवाली प्राथमिक एक्स-रश्मियों का तरंगदैर्घ्य उस पदार्थ की अवशोषण सीमा से थोडा अधिक होना चाहिए। उदाहरणार्थ ताम्र की अवशोषणसीमाएँ १·५४ ए° तथा १.३६ ए° हैं। इससे प्रतिदीप्ति पाने के लिये कोबाल्ट (Co) टार्जेट से प्राप्त एक्स-किरणें, जिनका तरगदैर्घ्य १.६१ ए° है, प्रयोग मे लाई जाती हैं। किंतु ये किरणें जस्ते में प्रतिदीप्ति नही पैदा कर सकती क्योकि इसकी अवशोषणसीमा १·२८ ए° पर पडती है। बहुधा उत्तेजना देने के लिये असतत रश्मिस्रोत काम में लाए जाते हैं। इसके द्वारा सभी तत्वो से प्रतिदीप्ति प्राप्त की जा सकती है। एक्स किरण देनेवाली नली में यदि टग्स्टन का टार्जेट रखा जाय और ५०,००० वो० का विभव दिया जाय तो इससे असंतत रश्मियाँ प्राप्त होती हैं। इन रश्मियो से अज्ञात पदार्थ को उत्तेजित करके द्वितीयक रश्मियो को स्पेक्ट्रमलेखी में ले जाते हैं और अभिलेखन की उचित विधियो द्वारा स्पेक्ट्रम प्राप्त करते हैं। विभिन्न तत्वो के स्पेक्ट्रम इसी प्रकार प्राप्त किए जाते हैं। इनमें रेखाओ की दीप्ति और पदार्थ की प्रतिशत मात्रा के बीच लेखाचित्र खीच दिए जाते हैं। इन्हे अंशशोधनवक्र कहते हैं। इन वक्रो की तुलना से किसी पदार्थ मे उपस्थित तत्वो का प्रतिशत ज्ञात किया जा सकता है।

अभिलेखन के लिये मुख्यत दो विधियाँ अपनाई जाती हैं। बहुधा क्रिस्टलवाले स्पेक्ट्रमलेखी में एक्स-रश्मियाँ स्फुरण गणित्र (Scintilation Counter) या ऐसे ही अन्य ससूचक (Detector) पर पडती हैं। इसके प्रभाव से विद्युत् ऊर्जा उत्पन्न होती है जिससे अभिलेखी द्वारा एक्स-किरणो की दीप्ति का लेखाचित्र उतर जाता है। साधारण ग्रेटिंग वाले स्पेक्ट्रमलेखी में फोटोप्लेटो का प्रयोग करके पूरा स्पेक्ट्रम एक ही बार उतारा जाता है किंतु ब्रैग स्पेक्ट्रमलेखी में क्रिस्टल या ससूचक को स्थिर गति से इस प्रकार घुमाते हैं कि स्पेक्ट्रम का विभिन्न भाग क्रम से ससूचक द्वारा ग्रहण किया जा सके।

क्रिस्टल विवर्तन से यह सिद्ध किया गया है कि २d Sin θ = n λ होता है, यहाँ θ सस्पर्श (glancing) कोण और d ब्रैग अतराल (Bragg spacing) कहलाता है। n (=1, 2, 3) स्पेक्ट्रम की कोटि (order) प्रकट करता है। क्रिस्टल 2d से अधिक तरगदैर्घ्यवाली रश्मियो को परावर्तित नही कर सकता है अतः क्रिस्टल का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है। इसके अतिरिक्त क्रिस्टल की परावर्तनक्षमता भी अच्छी होनी चाहिए। कैलसाइट, अबरक और क्वार्ट् ज इस काम के लिये उपयोगी होते हैं।

एक्स-किरणो द्वारा रासायनिक विश्लेषण का कार्य सामान्य स्पेक्ट्रमदर्शी रीतियो की अपेक्षा अधिक सुगम होता है। एक्स-किरणो का स्पेक्ट्रम प्राप्त करने के लिये सभी प्रकार के ठोस काम में लाए जा सकते हैं। उन्हे किसी आर्क या स्फुलिग में जलना नही पडता है और पदार्थ की कम मात्रा की आवश्यकता होती है। साथ ही प्राप्त स्पेक्ट्रम सरल होता है; इसमे रेखाएँ कम होती हैं।

एक्स-किरण स्पेक्ट्रममदर्शी का उपयोग विविध व्यवसायो मे हो रहा है क्योंकि यह प्रत्यक्ष और अपेक्षाकृत सरल रीति है। इसमें समय कम लगता है और विश्लेषण के लिये पदार्थ को नष्ट नही करना पड़ता। इस रीति से जितनी सूचनाएँ मिलती हैं वे प्राय. अन्य रीतियों से नही मिल पातीं।

एक्स-किरणो द्वारा विवर्तन (X-Ray Diffraction) की रीति से यौगिको की पहचान की जा सकती है। चूर्ण विवतन की रीति भी बहुत लाभदायक है क्योकि रासायनिक दृष्टि से भिन्न भिन्न यौगिकों के चूर्ण-विवर्तन-पैटर्न सर्वथा भिन्न होते हैं।

परमाणु के चारो ओर घूमनेवाले इलेक्ट्रान विभिन्न कक्षाओ मे भ्रमण करते हैं। सबसे छोटी कक्षा को के शेल कहते हैं। इसके आगे एल, एम, एन इत्यादि शेल होते हैं। यदि कोई तीव्र इलेक्ट्रान परमाणु से टकराकर कक्षा के एक इलेक्ट्रान को परमाणु से बाहर कर दे तो वहाँ एक स्थान रिक्त हो जाता है। उसे पूरा करने के लिये एल या एम कक्षाओ का एक इलेक्ट्रान जाता है। उसके संक्रमण से उर्जा उत्सर्जित होती है और रैखिक स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है। इलेक्ट्रानो के सक्रमण को कोसेल चित्र (Kossel's Diagram) द्वारा व्यक्त किया जाता है। [अ० कु० ति०]

स्पेक्ट्रमिकी, खगोलीय वह विज्ञान है जिसका उपयोग आकाशीय पिंडो के परिमडल की भौतिक अवस्थाओ के अध्ययन के लिये किया जाता है। प्लैस्केट के मतानुसार भौतिकविद् के लिये स्पेक्ट्रमिकी वृहद् शस्त्रागार मे रखे हुए अनेक अस्त्रो में से एक अस्त्र है। खगोल भौतिकविद् के लिये आकाशीय पिंडो के परिमडल की भौतिक अवस्थाओं के अध्ययन का यह एकमात्र साधन है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और प्रारंभिक शोध — १६७५ ई० में न्यूटन ने सर्वप्रथम श्वेत प्रकाश की सयुक्त प्रकृति का पता लगाया। इसके सौ वर्ष से कुछ अधिक समय के पश्चात् १८०२ ई० में वुलैस्टन (Wollastan) ने प्रदर्शित किया कि सौर स्पेक्ट्रम में काली रेखाएँ

उपयोग किया। इन परिकलनो का उपयोग विभिन्न प्रभावी तापो पर तीव्रता वितरण के वक्र बनाने के लिये किया गया और अनेक वैज्ञानिको ने सूर्य और तारो के सतत स्पेक्ट्रमो के प्रेक्षणो से इनकी तुलना की। इस तुलना से यह पता चला कि परमाणु हाइड्रोजन का प्रकाशिक आयनन ऊष्ण तारों में मुख्य रूप से भाग लेता है जब कि सूर्य और इसी प्रकार के अन्य तारो के लिये सतत अवशोषण का अन्य स्रोत होना चाहिए। १९३९ ई० मे विल्ड्ट ने यह ज्ञात किया कि सौर किस्म के तारो में सतत अवशोषण का कारण ऋणात्मक हाइड्रोजन हो सकते हैं जिनमे एक प्रोटॉन और दो इलेक्ट्रान रहते हैं। इन आयनो के विन्यास (configuration) की स्थिरता आरंभ में ही स्थापित हो चुकी थी। यह शीघ्र ही मालूम हो गया कि सतत अवशोषण के स्रोत के रूप मे ऋणात्मक हाइड्रोजन आयन की महत्ता १०,०००° के नीचे बढ जाती है और ६,०००° पर यह प्रबल हो जाती है। एक ओर चद्रशेखर और दूसरी ओर चैलांग (Chalong) एव कुर्गनॉफ (Kourganoff) की खोजो मे यह ज्ञात हो गया कि सौर मडलक के अगतमिस्रण (limbdarkening) के प्रेक्षण असाधारण रूप से सद्धांतिक परिणामो के अनुरूप होते हैं, यदि ऋणात्मक हाइड्रोजन आयन के कारण होनेवाले अवशोषण को ध्यान में रखा जाय।

यद्यपि यह कहा जा सकता है कि तारो के सतत स्पेक्ट्रमो के बारे मे हमें पर्याप्त जानकारी हो गई है, तथापि अभी भी बहुत सी समस्याओं का हल नही मिला है, उदाहरणार्थ, सूर्य का ४००० A° के नीचे का सतत अवशोषण का स्रोत अभी भी अज्ञात है। इस सबध मे अनेक सिद्धात प्रस्तुत किए गए हैं पर कोई भी सतोषजनक नही है।

अपेक्षाकृत ठंडे तारो में आणविक यौगिक (molecular compound) प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं और उनका सतत अवशोषण अभी भी अज्ञात है। बम-विटेंस (Bohm Vitense) ने हाल में ३८४०° A° से लेकर १,००,८००° A° ताप के लिये अनुमानित रासायनिक सगठनवाले तारकीय द्रव्यो के सतत अवशोषण के गुणाको की सारणी प्रस्तुत की है। हाइड्रोजन (H), हीलियम (He) और हीलियम$^+$(He$^+$) के अवशोषण की सारणी भी वेनो (Veno) द्वारा प्रस्तुत की गई है।

५०००A° पर के कुछ ऊष्ण तारो के स्पेक्ट्रम में होनेवाली असतता और महादानवी (Super giant) तारो के सतत स्पेक्ट्रमो को अभी भी पूर्ण रूप से समझा नही जा सका है। फिर भी हम यह कह सकते हैं कि इस शती के पूर्वार्ध में तारो के संतत स्पेक्ट्रम सबधी ज्ञान मे हुई प्रगति पर्याप्त सतोषजनक रही है।

तारकीय स्पेक्ट्रमों में अवशोषण रेखाएँ — तारकीय स्पेक्ट्रमों में अवशोषण रेखाओ की रचना के बारे में प्रारंभिक विचार बडे सरल थे। प्रकाशमडल को घेरे हुए ठढा गैसीय मडल, प्रकाशमंडल से सतत उत्सर्जित होनेवाले विकिरण का वरणात्मक अवशोषण करता है जिससे अवशोषण रेखाएँ बनती हैं। सर्वप्रथम शुस्टर ने तारकीय स्पेक्ट्रमो मे अवशोषण रेखाओ का क्रमबद्ध सिद्धांत प्रस्तुत किया। इन्होंने इन रेखाओ के बनने का कारण सतत प्रकीर्णन पर आरोपित स्पेक्ट्रम रेखाओं के अवशोषण को बताया।

शुस्टर ने इन रेखाओ में तीव्रता की कमी के लिये कुछ परिकलन किए और उनकी जब प्रेक्षण से तुलना की तो यह ज्ञात हुआ कि समकालिक अवशोषण एव प्रकीर्णन के विचार से शुस्टर की विधि सही था। शुस्टर ने प्रकाशमडल के चारो ओर शुद्ध प्रकीर्ण परिमडल की कल्पना की।

शुस्टर के बाद श्वार्ट्सचाइल्ड ने इस दिशा मे कार्य किया। इन्होंने विकिरणात्मक सतुलन के आधार पर स्पेक्ट्रम रेखाओ में उत्सर्जन फलनो को ज्ञात किया और सौर मडलक मे अनेक बिंदुओं पर बनी सौर अवशोषण रेखाओ के प्रक्षणों से उनकी तुलना की।

इन्होंने यह पाया कि अवशोषण रेखाओं के बनने मे प्रकीर्णन का महत्वपूर्ण योग है, क्योंकि इनके प्रेक्षणो को एक शुद्ध अवशोषित परिमडल द्वारा नही समझाया जा सकता।

आधुनिक खगोलीय स्पेक्ट्रमिकी को प्रारभ करने का श्रेय अनसल्ड को है, जिन्होंने सूर्य मडलक के ऊपर पाई जानेवाली सोडियम रेखाओं की परिच्छेदिका की विशेष रूप से की गई प्रकाशमापीय मापो को श्वार्ट्सचाइल्ड द्वारा विकसित विकिरणात्मक (radiative) अतरण (transfer) के सिद्धात और रेखीय अवशोषण के क्वाटम सिद्धात से सबध स्थापित करने का प्रयास किया और उसने सौर परिमडल की इलेक्ट्रान दाब तथा कम से कम अशत. रासायनिक सघटन का पता लगाया। अनसल्ड के लेखो के पश्चात् इस दिशा मे काफी तेजी से प्रगति हुई। १९२९ ई० मे एडिंग्टन ने अवशोषण रेखाओं के निर्माण पर एक निबध प्रकाशित किया जिसमे तारकीय अवशोषण रेखाओ के बनने की विधि का स्पष्टीकरण किया था। इसके अनुसार इन रेखाओ के बनने मे प्रकीर्णन और अवशोषण का समान रूप से हाथ रहता है। इस प्रकार परिमडल के सभी स्तरो पर प्रकीर्णन और अवशोषण होता है। इन रेखाओ के बनने का कारण यह है कि रेखा के समीप अवशोषण बहुत अधिक होता है। आगामी वर्षों में एडिंग्टन के सिद्धात का मिल्न, वुलि (Woolley), पेनीकॉक, अनसल्ड और चद्रशेखर द्वारा सुधार और विस्तार किया गया।

इस प्रकार जब शुस्टर-श्वार्ट्सचाइल्ड के अनुसार रेखाओं का निर्माण प्रकाशमडल के ऊपर स्थित उत्क्रमणमडल (reversing-layer) में होता है, जो सतत स्पेक्ट्रम उत्पन्न करते हैं, मिल्न-एडिंग्टन के अनुसार रेखीय अवशोषण के गुणाक और सतत अवशोषण के गुणाक का अनुपात सभी स्थानों पर स्थायी रहता है और सभी स्तर समान रूप से रेखिल और सतत अवशोषण उत्पन्न करने में समर्थ हैं। परतु किसी रेखा की वास्तविक स्थिति दोनो चरम सीमाओ के बीच मे होती है। उत्क्रमणमडल और प्रकाशमडल एक दूसरे में धीरे धीरे विलीन हो जाते हैं और प्रकाशमडल की पहचान करनेवाला कारक अपारदर्शिता (opacity) क्रमिक वृद्धि है।

मिल्न ने फ्राउनहोफर रेखाओ के बनने की दो अवस्थाओं पर

तारकीय स्पेक्ट्रम की गुणात्मक व्याख्या तक ही सीमित थी। बीसवीं सदी में परिमाणात्मक व्याख्या का प्रारंभ हुआ। १९०० ई० के प्लैंक के विकिरण नियम परमाणु ऊर्जास्तर की मान्यता आयनन विभव (ionisation potential) एवं रिंटून प्रयोगशाला और परमाणु स्पेक्ट्रमी (atomic spectra) के सैद्धांतिक अन्वेषण से तारों की भौतिक दशा और उनके संघटन का परिमाणात्मक अध्ययन संभव हो सका है। ऐसा कहा जा सकता है कि इन्हीं अन्वेषणों से खगोलीय स्पेक्ट्रमिकी के द्वितीय चरण का प्रारंभ हुआ।

शुस्टर (Schuster) ने सन् १९०२ में खगोलभौतिकी जर्नल में एक लेख प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने सौर मडलक के छोर (limb) की ओर के प्रेक्षित अंधेरों को विस्तृत परिमंडल द्वारा समझाने का प्रयास किया। कुछ वर्षों के पश्चात् उन्होंने दूसरा निबंध प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने तारकीय स्पेक्ट्रमों में अवशोषण और उत्सर्जन रेखाओं की व्याख्या करने का प्रयत्न किया। इन लोगों के पश्चात् श्वार्ट्स चाइल्ड के (Schwarzschild), मिल्न (Milne), एडिंगटन (Eddington), फाउलर (Fowler) और इनके पश्चात् अनसॉल्ड (Unsold), चंद्रशेखर, स्ट्रामग्रेन (Stromgren) तथा अन्य लोगों ने इस दिशा में कार्य किया।

तारों का सतत स्पेक्ट्रम — सूर्य पृथ्वी के सबसे निकट का और सबसे अधिक चमकीला तारा है, जो प्रेक्षणीय मंडलक प्रदर्शित करता है। यह स्वाभाविक है कि तारों के सतत स्पेक्ट्रम सिद्धांत की जाँच सूर्य के ऊपर इसके अनुप्रयोग द्वारा की जाय। सूर्य मंडलक के ऊपर की तीव्रता वितरण का प्रेक्षण समाकलित (integrated) प्रकाश में ही नहीं वरन् अलग अलग तरंगदैर्घ्य के एकवर्णी प्रकाश में भी किया गया है। यह पाया गया कि अंग (Limb) तक पहुँचने पर तीव्रता घट जाती है और अंगतमिस्रण की घटना दीर्घ तरंगदैर्घ्य की अपेक्षा लघु तरंगदैर्घ्य में अधिक स्पष्ट होती है।

शुस्टर ने इस प्रेक्षित अंगतमिस्रण की व्याख्या करते समय यह मान लिया था कि प्रकाशमंडल सभी दिशाओं में समान रूप से विकिरण करता है और उसके चारों ओर का गैसीय परिमंडल सभी आवृत्तियों पर उसका अवशोषण और उत्सर्जन करता है। यह मानकर कि गैसीय परिमंडल निचले प्रकाशीय मंडल की अपेक्षा ठंढा है, शुस्टर ने एक सैद्धांतिक नियम का प्रतिपादन किया और इस सिद्धांत की प्रेक्षणों से तुलना की।

तारकीय परिमंडल में विकिरणात्मक (radiative) संतुलन की महत्ता को समझने का श्रेय श्वार्ट्स चाइल्ड को है जो यह दिखाने में सफल रहे कि प्रेक्षणों के साथ रुद्धोष्म (adiabatic) संतुलन की अपेक्षा विकिरणात्मक संतुलन का अधिक तालमेल बैठता है। इस विचार के अनुसार अभ्यंतर से ऊर्जा का अभिगमन एक स्तर से दूसरे स्तर तक विकिरण द्वारा होता है।

संतुलन के लिये परिमंडल में एक निश्चित ताप वितरण आवश्यक है। यदि हम अनुमान कर लें कि ताप भीतर की ओर बढ़ता जाता है, तो अंगतमिस्रण की घटना को बड़ी सरलता से समझा जा सकता है। जैसे जैसे हम मंडलक केंद्र से अंग की ओर अग्रसर होते हैं, दृष्टिरेखा सतह के उस बिंदु पर अधिकाधिक झुक जाती है जहाँ वह सौर परिमंडल में प्रवेश करती है। फलस्वरूप उत्सर्जित तीव्रता में अंशदान करनेवाले स्तर की औसत गहराई घट जाती है। चूँकि ताप भीतर की ओर बढ़ता है अत अंगतमिस्रण उत्पन्न हो जाता है।

श्वार्ट्सचाइल्ड के विचारों से मूल समस्याओं को समझाने में काफी सहायता मिली परंतु बोर (Bohr) के परमाणु सिद्धांत के विकसित होने तक और सतत अवशोषण एवं उत्सर्जन की प्रक्रिया समझ में आने तक ये विचार अस्पष्ट रहे। इस सिद्धांत के अनुसार सतत अवशोषण तभी होता है जब कि बद्ध इलेक्ट्रॉन प्रकाशिक आयनन (photoionnisation) द्वारा मुक्त होता और संतत उत्सर्जन तभी होता है जब मुक्त इलेक्ट्रॉन का ग्रहण (capture) आयन द्वारा होता है।

परमाणु सिद्धांत के विकास की दृष्टि से श्वार्ट्स चाइल्ड के अन्वेषण निरंतर चलते रहे। १९२० ई० में लुंडब्लैंड ने (Lundbland) ने यह सिद्ध किया कि श्वार्ट्सचाइल्ड की कल्पनाएँ (assumptions), जैसे (१) अवशोषण गुणांक तरंगदैर्घ्य से स्वतंत्र है तथा (२) प्रकीर्णन (scattering) नगण्य है, बहुत हद तक ठीक हैं। इन कल्पनाओं के आधार पर व्युत्पन्न सतत स्पेक्ट्रम में तीव्रता का वितरण प्रेक्षणों से भली भाँति मेल खाता है। श्वार्ट्सचाइल्ड की कल्पनाओं के आधार पर ही कार्य कर मिल्न (Milne) द्वारा आगे विकास किया गया और स्वतंत्र रूप से वे उन्हीं परिणामों पर पहुँचे जिन पर लुंडब्लैंड पहुँचे थे। मिल्न ने एक अन्वेषण द्वारा, जिसे उन्होंने १९२३ ई० में प्रकाशित किया, सतत स्पेक्ट्रम के सिद्धांत का विस्तार समकालिक प्रकीर्णन और अवशोषण तक किया। संतत स्पेक्ट्रम के सिद्धांत में बनी कल्पनाओं की सार्थकता की जाँच तक ही भावी शोध सीमित था। ये कल्पनाएँ थीं (१) परिमंडल समतल समांतर है, (२) यह विकिरणात्मक संतुलन में है, (३) उत्सर्जन गुणांक प्रत्येक स्थान पर किर्खहॉफ प्लांक के संबंध द्वारा व्यक्त किया जाता है अर्थात् $I_\nu = K_\nu B_\nu (T)$, तथा (४) अवशोषण गुणांक आवृत्ति से स्वतंत्र है, केवल उन्हीं स्थितियों को छोड़कर जहाँ तीव्रता वितरण वक्रता से प्रभावित होता है। पहली कल्पना की वैधता अनेक स्थितियों में सही सिद्ध हुई, दूसरी कल्पना के संबंध में यह देखा गया कि यदि संवहन द्वारा ऊर्जा अभिगमन नगण्य न हो तो संभावित विचलन हो सकते हैं। अनसॉल्ड ने सूर्य में एक संवहनी (convective) क्षेत्र का पता लगाया है। नवीनतम खोजों से पता लगता है कि विकिरणात्मक संतुलन का सबसे ऊपरी स्तर के प्रेक्षण से जो विरोधाभास है, वह सौरतल के दानेदार होने के कारण है। कम से कम अधिक गहरे स्तर में, जहाँ यह माना जा सकता है कि ऊष्मागतिकी संतुलन विद्यमान है, तीसरी कल्पना वैध होगी। चौथे अनुमान की वैधता का परीक्षण करने के लिये मक्रिया (Mecrea), बियरमैन, (Biermann), अनसाल्ड, (Unsold), पेनीकॉक (Pannekock) और अन्य लोगों द्वारा अवशोषण गुणांक के विस्तृत परिकलन किए गए। इन लोगों ने अपने परिकलन में रसेल द्वारा निर्धारित सूर्य के रासायनिक संगठन का

के नाम से जाने जाते हैं। प्रत्येक वर्ग का पुन अंतर्विभाजन होता है जिसके लिये अक्षरों या ६ तक के अंकों का उपयोग किया जाता है। जिन तारों का स्पेक्ट्रम ज्ञात हो चुका है उनमें ९०% से अधिक ए (A), एफ (F), जी (G) और के (K) वर्ग के हैं।

वर्ग ओ — इसमें ३०,००० °A से अधिक प्रभावी तापवाले नील-श्वेत तारे हैं जिनके स्पेक्ट्रम में चमकीले बैंड पाए जाते हैं। ये बैंड धुँधली सतत पृष्ठभूमि पर आरोपित हाइड्रोजन, आयनित हीलियम दुबारा और तिबारा आयनित ऑक्सीजन और नाइट्रोजन के कारण हैं, जैसे टी प्यूपिस (T. Pupis), वाल्फ राये (Wolf Rayet) तारे (इनका वर्णन नीचे देखिए)।

वर्ग बी — इसमें लगभग २०,००० °A प्रभावी तापवाले नील-श्वेत तारे हैं। इनके स्पेक्ट्रम उदासीन हीलियम और हाइड्रोजन की काली रेखाओं द्वारा अभिलक्षणिक हैं। आयनित कैल्सियम की दुर्बल एच (H) और के (K) रेखाएँ भी पाई जाती हैं, जैसे चित्रा (Spica), राइजेल (Rigel) और मृग (Orion) के बेल्ट तारे।

वर्ग ए — इनमें ११,०००°A ताप के श्वेत तारे हैं जिनके स्पेक्ट्रम में प्रबल हाइड्रोजन रेखाएँ होती हैं। हीलियम अनुपस्थित होता है। एच (H) और के (K) रेखाएँ कुछ कुछ दिखाई देती हैं। वर्धित धात्विक रेखाएँ भी पाई जाती हैं परन्तु वे दुर्बल होती हैं, जैसे लुब्धक (Sirius), अभिजित (Vega) तथा फोमलहॉट (Fomalhaut)।

वर्ग एफ — इसमें वे तारे हैं जिनका ताप लगभग ७,५०० °A है और जिनके स्पेक्ट्रम में प्रबल एच (H) तथा के (K) रेखाएँ न्यून प्रबल हाइड्रोजन रेखाएँ और अधिक संख्याओं में सुस्पष्ट धात्विक रेखाएँ पाई जाती हैं, जैसे अगस्त्य (Canopus) तथा प्रोसियन (Procyon)।

वर्ग जी — ये सूर्य की किस्म के पीले तारे हैं जिनका प्रभावी ताप ६,००० °A है। इनके स्पेक्ट्रम में प्रबल एच (H) तथा के (K) रेखाएँ और अनेक सूक्ष्म धात्विक रेखाएँ पाई जाती हैं, जैसे सूर्य, कैपेला (Capella) और α सेंटारी (α-Centauri)।

वर्ग के — ये नारंगी रंग के तारे हैं जो जी और एम वर्ग के मध्य में होते हैं। इनका ताप लगभग ४,२०० °A के होता है। इनके स्पेक्ट्रम में धातुओं की उदासीन रेखाएँ प्रबल और एच एवं के रेखाएँ भी बड़ी प्रबल होती हैं। हाइड्रोजन रेखाएँ अपेक्षाकृत निर्बल होती हैं। सतत स्पेक्ट्रम की चमक बैंगनी में शीघ्रता से कम हो जाती है, जैसे सूर्यकस्क, स्वाती (Arcturus)।

वर्ग एम — लगभग ३,००० °A ताप के ये लाल तारे हैं। इनके स्पेक्ट्रम के (K) तारों के स्पेक्ट्रम के समान ही होते हैं पर अंतर केवल इतना ही है कि इनमें टाइटेनियम ऑक्साइड के सुस्पष्ट बैंड पाए जाते हैं, जैसे ज्येष्ठा (Antares), आर्द्रा (Betelgeuse)।

वर्ग एन — ये लाल तारे हैं जिनका ताप लगभग ३,००० °A होता है। इन्हें कार्बन तारे भी कहते हैं। सतत स्पेक्ट्रम पर, जो बैंगनी में बहुत दुर्बल होता है, आणविक कार्बन के कारण काले हंस बैंड (dark Swan bands) अध्यारोपित रहते हैं, जैसे वाई कैनम (Y-Canum), वैनाटिको रम, १९ मीन (19 Pisces)।

वर्ग आर — इस किस्म के तारों के स्पेक्ट्रम में एन वर्ग के तारों की भाँति ही बैंड होते हैं परन्तु स्पेक्ट्रम बैंगनी तक फैला रहता है। ये तारे बड़े धुँधले हैं और कुछ ही ज्ञात हैं।

वर्ग एस — इन तारों के स्पेक्ट्रम एम (M) वर्ग के समान होते है। अंतर यही है कि टाइटेनियम ऑक्साइड के स्थान पर जरकोनियम ऑक्साइड के बैंड रहते हैं। इन तारों की संख्या बहुत थोड़ी है और ये बड़े धुँधले होते हैं।

वोल्फ राये तारे — १८६७ ई० में पैरिस वेधशाला के वोल्फ और राये ने एक चाक्षुष स्पेक्ट्रमलेखी की सहायता से सिग्नस (Cygnus) के बड़े तारामेघ में तीन बड़े असाधारण तारकीय स्पेक्ट्रमों का पता लगाया। अन्य स्पेक्ट्रमों से ये स्पेक्ट्रम इस बात में भिन्न थे कि इनमें चौड़े उत्सर्जन बैंड थे। कुछ बैंड अभी तक पहचाने नहीं गए थे। प्रत्येक बैंड दोनों ओर समान रूप से धुँधला होता गया था। उसमें रेखाएँ नहीं थीं और सभी बैंड धुँधले सतत स्पेक्ट्रम पर अध्यारोपित थे। इनपर हाइड्रोजन और आयनित हीलियम की चमकीली रेखाएँ भी थीं। अभी तक इस किस्म के लगभग १०० तारों का आकाशगंगा (milky way) और मैलेनीय मेघों (Magelleanic clouds) में पता लगा है। वोल्फ राये तारे शून्य वर्ग में निचली श्रेणी के अंतर्गत आते हैं और ज्ञात तारों में उष्णतम हैं। इन तारों का ताप १,००,००० °A क्रम का है।

अनेक एम तारों के स्पेक्ट्रमों में संतत स्पेक्ट्रम पर दूसरी काली रेखाओं के मध्य में चमकीली हाइड्रोजन रेखाएँ दिखाई देती हैं। इन तारों को उत्सर्जन तारे कहते हैं और इन्हें एम ई (Me) से प्रकट करते हैं। एम-ई तारों की चमक परिवर्ती (Variable) होती है।

उपर्युक्त स्पेक्ट्रम वर्गों के अतिरिक्त दो और वर्ग हैं जिन्हें पी (P) और क्यू (Q) अक्षरों से प्रकट करते हैं। गैसीय नीहारिकाओं (Nebulae) के स्पेक्ट्रमों को, जिनमें चमकीली रेखाएँ पाई जाती हैं, पी (P) वर्ग में तथा नवताराओं (Nova) के स्पेक्ट्रमों को क्यू (Q) वर्ग में रखते हैं।

नवताराओं के स्पेक्ट्रम और पी सिगनी (P-cygani) किस्म के तारों में प्राय दोहरी रेखाएँ दिखाई पड़ती हैं जिनमें एक चौड़ा उत्सर्जन घटक (Component) और एक तीव्र अवशोषण घटक होता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये तारे शीघ्रता से बढ़ती हुई पट्टिका या खोल (Shell) द्वारा घिरे रहते हैं। कुछ बी (B) किस्म के तारे भी हैं जिनमें ऐसी उत्सर्जन रेखाएँ पाई जाती हैं जिनमें से प्रत्येक एक अवशोषणरेखा द्वारा खंडित रहती है। यह तारों के चारों ओर घूर्णी गैसीय खोल (Shell) के कारण होता है। उत्सर्जन रेखाएँ खोल (Shell) द्वारा उत्पन्न होती हैं और अपने विभिन्न भागों के डॉप्लर विस्थापन (Shift) द्वारा चौड़ी की जाती हैं। केंद्रीय धुँधली रेखा की उत्पत्ति खोल के उस भाग से होती है जो तारे और तारे के विकिरण का अवशोषण करनेवाले प्रेक्षक की दृष्टिरेखा के आर पार घूमता है। यह आवृत्ति इस स्पेक्ट्रम की अपनी विशेषता है।

मात्रा में है। एस (S) वर्ग में जिरकोनियम ऑक्साइड की पट्टियों की प्रमुखता है जबकि एम (M) तारों में टाये (Tio) पट्टियाँ प्रबल हैं। उच्च तापवाले वोल्फ रायें तारों के एक वर्ग की विशिष्टता हीलियम कार्बन एवं ऑक्सीजन रेखाओं के कारण है और दूसरे वर्ग में हीलियम तथा नाइट्रोजन प्रमुख रूप से पाए जाते हैं परंतु कार्बन निर्बल है। ग्रहीय नीहारिकाएँ और नवतारों का संघटन साधारण तारों के समान ही है।

असामान्य संघटन के पदार्थों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिये विस्तृत खोज की आवश्यकता है। कुछ तारों का संघटन क्यों असाधारण है, विशेषत जहाँ कार्बन, नाइट्रोजन और ऑक्सीजन संबंधित हैं ? ऐसे प्रश्नों का उत्तर ब्रह्मांडोत्पत्तिक संबंधी अभिरुचि का है। [ए० एस० आर० तथा जे० वी० एन०]

स्पेन स्थिति ४३° ४७' से ३६° उ० अ०, ३° १९' तथा ९° ३०' प० दे०। यह यूरोप महाद्वीप का एक गणतंत्र है। इसके उत्तर में बिस्के (Biscay) की खाड़ी तथा फ्रांस, पूर्व और दक्षिण में भूमध्यसागर, पश्चिम में पुर्तगाल तथा एटलैंटिक महासागर स्थित हैं। इसका कुल क्षेत्रफल बेलिऐरिक (Balearic) तथा कानेरि (Canary) द्वीपों सहित ५,०३,४८६ वर्ग किमी है। भूमध्यसागरीय तटरेखा १६५३ किमी तथा ऐटलैंटिक तटरेखा ६७५ मी लंबी है। ६७४ किमी लंबे पिरेनीज (Pyrenees) पर्वत स्पेन को फ्रांस से अलग करते हैं। यहाँ की भाषा स्पेनी (Spanish) है।

स्पेन पाँच स्थलाकृतिक (topographic) क्षेत्रों में विभक्त है, (१) उत्तरी तटवर्ती कटिबंध, (२) केंद्रीय पठार मेसेटा, (३) स्पेन का सबसे बड़ा नगर आंडालूसीआ (४) दक्षिणी पूर्वी भूमध्यसागरीय कटिबंध लीवेंटे (Levante) और (५) उत्तर पूर्व क्षेत्र की कैटालोनिया (Catalonya) तथा एब्रो (Ebro) घाटी। स्पेन में छह मुख्य पर्वतमालाएँ हैं। सबसे ऊँची चोटी पर्डिडो (Perdido) है। स्पेन में पाँच मुख्य नदियाँ हैं, एब्रो, ड्यूरो (Duero), टैगस (Tagus), ग्वादियाना (Duadiana) तथा ग्वाडलक्विवर (Guadalquivir)। स्पेन का समुद्री तट चट्टानी है।

स्पेन की जलवायु बदलती रहती है। उत्तरी तटवर्ती क्षेत्रों की जलवायु ठंडी और आर्द्र (humid) है। केंद्रीय पठार जाड़ों में ठंडा तथा गर्मियों में गरम रहता है। उत्तरी तटवर्ती क्षेत्र तथा दक्षिणी तटवर्ती कटिबंध में वार्षिक औसत वर्षा क्रमश. १०० सेमी तथा ७५ सेमी है। विभिन्न किस्म की जलवायु होने के कारण प्राकृतिक वनस्पतियों में भी विभिन्नता पाई जाती है। उत्तर के आर्द्र क्षेत्रों में पर्णपाती (deciduous) वृक्ष जैसे अखरोट, चेस्टनट (Chestnut), एल्म (elm) आदि पाए जाते हैं।

यहाँ की जनसंख्या बैलिएरिक तथा कानेरी द्वीपों सहित ३,०१,२८,०५६ (१९६०) है। जनसंख्या का औसत घनत्व प्रति वर्ग किमी ५९.८ है। स्पेन की राजधानी मैड्रिड की जनसंख्या १९,९९,०७० (१९६०) है (देखें मैड्रिड)। अन्य बड़े नगर बार्सिलोना (देखें बार्सिलोना), वालेंशिया (Valencia), सिवेले (Sivelle), मलागा (Malaga) तथा जैरागोजा (Zaragoza) आदि हैं। लगभग सभी स्पेनवासी कैथोलिक धर्म के अनुयायी हैं।

यद्यपि अन्य साधनों की तुलना में खेती का विकास नहीं हुआ है फिर भी यहाँ की आय का प्रमुख साधन कृषि ही है। बैलिऐरिक तथा कानेरी द्वीपों की भूमि सहित यहाँ पर कुल ४,४३,३२,००० हेक्टर भूमि कृषि योग्य है। अनाज विशेषकर गेहूँ की पैदावार केंद्रीय पठार में होती है। स्पेन की मुख्य फसल गेहूँ है। अन्य उल्लेखनीय फसलें नारंगी, धान और प्याज आदि हैं। स्पेन संसार का सबसे बड़ा जैतून उत्पादक है तथा यहाँ आलू, रूई, तंबाकू तथा केला आदि का भी उत्पादन होता है। स्पेन में भेड़ें सर्वाधिक संख्या में पाली जाती हैं।

उत्तरी समुद्रतट पर मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। सारडीन (Sardine), कॉड (Cod) तथा टूना (Tuna) आदि जातियों की मछलियाँ ही मुख्य रूप से पकड़ी तथा बेची जाती हैं। लवणित सारडीन तथा कॉड डिब्बों में बंदकर विदेशों को भेजी जाती हैं।

यद्यपि यहाँ की कुल भूमि के १०% क्षेत्र में जंगल पाए जाते हैं फिर भी इमारती लकड़ियों का आयात करना पड़ता है। स्पेन संसार का दूसरा सबसे बड़ा कार्क (cork) उत्पादक देश है। रेजिन तथा टर्पेंटाइन (Turpentine) अन्य प्रमुख जंगली उत्पाद हैं।

यहाँ लगभग सभी ज्ञात खनिज प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। खनन (mining) यहाँ की आय का मुख्य साधन है। लोहा, कोयला, ताँबा, जस्ता, सीसा, गंधक, मैंगनीज आदि की खानें पाई जाती हैं। संसार में सबसे अधिक पारे का निक्षेप स्पेन के अलमादेन (Almaden) की खानों में पाया जाता है।

वस्त्र उद्योग यहाँ का प्रमुख लघु उद्योग है। महत्वपूर्ण रासायनिक उत्पाद सुपर फॉस्फेट, सल्फ्यूरिक अम्ल, रंग तथा दवाएँ आदि हैं। लोह तथा इस्पात उद्योग उल्लेखनीय भारी उद्योग हैं। सीमेंट तथा कागज उद्योग भी काफी विकसित हैं। स्पेन में उद्योग का तेजी से विकास हो रहा है।

शिक्षण संस्थाएँ सरकारी तथा गैरसरकारी दोनों प्रकार की हैं। गैरसरकारी शिक्षण संस्थाएँ गिरजाघरों द्वारा नियंत्रित होती हैं। प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य तथा नि.शुल्क है। स्पेन में विश्वविद्यालयों की संख्या १२ है। मैड्रिड विश्वविद्यालय छात्रों की संख्या की दृष्टि से स्पेन का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है। यहाँ का सर्वप्राचीन विश्वविद्यालय सालामान्का (Salamanca) का है। इसकी स्थापना १२५० ई० में हुई थी।

स्पेन में मैड्रिड नगर तथा यहाँ का संग्रहालय, मैड्रिड के समीपस्थ एस्कोरियल महल (Escorial palace), टोलिडू (Toledo) तथा सान सेबास्ट्यान (San Sebastian) के पास का एमेराल्ड समुद्रतट (Emeraled Coast) आदि प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं। स्पेन में त्योहारों तथा अन्य दिनों में भी वृषभयुद्ध का आयोजन किया जाता है (देखें वृषभयुद्ध)। [न० कु० रा०]

स्फोटन (Blasting) विस्फोटकों की सहायता से चट्टानों या इसी प्रकार के कठोर पदार्थों के तोड़ने फोड़ने की प्रक्रिया को कहते

नीहारिकाओं के स्पेक्ट्रम — अनेक नीहारिकाओं में ऐसे स्पेक्ट्रम होते हैं जिनमें चमकीली रेखाएँ होती हैं। उनमें सबसे प्रबल दोहरे और तेहरे आयनित आक्सीजन की वर्जित रेखाएँ हैं और उन्हें प्रकाशमान् गैसों का मेघ कहते हैं। अन्य नीहारिकाओं के स्पेक्ट्रम निकटवर्ती तारों के स्पेक्ट्रम के समान होते हैं और वे तारों के परावर्तित प्रकाश द्वारा चमकते हैं। फिर भी अन्य नीहारिकाओं, जैसे परागांगेय नीहारिकाओं (Extragalactic nebula) में काली रेखा के स्पेक्ट्रम पाए जाते हैं, जैसा अनेक तारों के मिश्रित प्रकाश से आशा की जाती है।

प्राचल (Parameter) के ताप से घनिष्ट रूप से संबंधित हार्वर्ड के स्पेक्ट्रम वर्गीकरण कि तारों की वास्तविक ज्योति पर आधारित एक दूसरा वर्गीकरण भी है जिसका नामकरण I, II, III, IV, V के नाम से यर्केस वेधशाला के कीनन और मॉर्गेन द्वारा स्वतंत्र रूप से किया गया है। वास्तविक ज्योतियाँ निरपेक्ष तारकीय कांतिमान (Absolute steller magnitude) के रूप में व्यक्त की जाती हैं। तारों का कांतिमान वही है जो मानक दूरी, १० पारसेक्स (३२·६ प्रकाश वर्ष = २ × १०^१४ मील) पर होता है। उदाहरणस्वरूप वर्ग एक के तारों का निरपेक्ष कांतिमान (Absolute magnitude) – ५ के क्रम का और वर्ग पाँच के तारों का + ५ क्रम का होता है। अंतिम मान सूर्य की तेज चमक के अनुरूप और पहला मान १०,००० गुना अधिक चमकदार होता है।

तारकीय स्पेक्ट्रमों की व्याख्या—किसी अवशोषण रेखा की तीव्रता परमाणुओं की उस संख्या पर निर्भर करती है जो रेखा का अवशोषण करने में समर्थ है। रेखा की तीव्रता जानने के लिये हमें किसी तत्व के सभी परमाणुओं का ज्ञान होना चाहिए तथा यह भी ज्ञान होना चाहिए कि उसका कितना भाग किसी विशेष रेखा का अवशोषण करने मे समर्थ है। बोल्ट्समैन (Boltzmann) के सूत्र (जो ऊष्मागतिक संतुलन को मान लेने पर ही वैध है) से किसी स्तर में परमाणुओं की संख्या और क्षेत्र (ground) में उनकी संख्या का अनुपात स्तर के ताप और उद्दीपन विभव के फलन के रूप में प्राप्त होता है। १९२०-२१ ई० में साहा ने क्रमबद्ध निबंधों में एक या अधिक बार आयनित परमाणुओं का विभिन्न अचर दशाओं में विकिरण के सुलझाने का प्रथम बार प्रयास किया। साहा ने सिद्धांत रूप से गैसों के आयनन और उद्दीपन को ताप और दबाव के फलन के रूप मे ज्ञात किया। उन्होंने व्यक्त किया कि विभिन्न स्पेक्ट्रमी वर्गों के तारों की अवशोषणरेखाओं के स्पेक्ट्रमों मे अंतर का मुख्य कारण परिमंडल के ताप मे अंतर है। साहा के आयनन समीकरण की परिशुद्ध व्युत्पत्ति आर. एच फाउलर द्वारा प्रस्तुत की गई जिन्होंने मिल्न के संग स्पेक्ट्रम वर्ग के साथ रेखाशक्ति के परिवर्तन सिद्धांत को विकसित किया जिससे कई पक्षों में साहा के प्रारंभिक कार्यों में महत्वपूर्ण सुधार प्रस्तुत हुआ। इस सिद्धांत की सहायता से किसी तत्व की सभी अचर दशाओं में परमाणुओं के वितरण को ताप और इलेक्ट्रान के दबाव के फलन के रूप में ज्ञात किया जा सकता है।

इस प्रकार उष्णतम तारों मे धात्विक रेखाएँ नहीं प्रकट होती, क्योंकि उच्च ताप पर धातुएँ दोहरी और तेहरी आयनित हो जाती हैं और इन आयनित परमाणुओं की रेखाएँ पराबैंगनी क्षेत्र में दूरी पर स्थित होती हैं। ठंडे तारों मे कोई हीलियम रेखा नहीं दिखाई देती क्योंकि रेखाओं को उत्तेजित करने के लिये ताप पर्याप्त नही होता है।

फिर यदि हम लगभग समान ताप के दानव (giant) और वामन (Dwarf) तारों के स्पेक्ट्रमों की तुलना करें तो हमें कुछ अंतर मिलते हैं जिनकी व्याख्या तारों के परिमंडलों के घनत्वों के अंतर से की जा सकती है। दानव तारों का परिमंडल विरलित और विस्तृत होता है जबकि वामन तारों का परिमंडल हलका और संपीडित होता है। एक ही ताप के दानव और वामन तारों के स्पेक्ट्रमों में एक ही तत्व के आयनित और उदासीन परमाणुओं की रेखाओं की तुलना करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि उदासीन परमाणुओं की रेखाएँ दानव की अपेक्षा वामन में तो अधिक प्रबल होती हैं जब कि आयनित परमाणुओं की रेखाएँ दानव तारे में प्रबल होती हैं। इस प्रकार एक निर्दिष्ट ताप के दानव तारे का स्पेक्ट्रम कुछ उच्च ताप के वामन तारे के लगभग अनुरूप होता है। वामन तारे का उच्च ताप कुछ हद तक दानव तारे के परिमंडल मे न्यून घनत्व का पूरक है।

तारों का रासायनिक संघटन — १९२७ ई० मे रसेल ने रोलैंड तीव्रताओं (Rowland intensities) के अंशशोधन (Calibration) द्वारा सूर्य के रासायनिक संघटन को ज्ञात करने का प्रयास किया। पेनेगेपोशिकन ने, जिन्होंने हार्वर्ड वेधशाला में लिए गए वस्तुनिष्ठ प्रिज्म प्लेट पर साहा के आयनित सिद्धांत और रेखा तीव्रता के दृष्टि अनुमान (eye estimation) का उपयोग किया, यह प्रदर्शित किया कि अधिकांश तारों का रासायनिक संघटन मुख्यतः सूर्य जैसा ही है। उसी समय से परिच्छेदिका (Profile) और वृद्धि के वक्र पर आधारित परिमाणात्मक प्रक्रिया ने रेखातीव्रता और सक्रिय परमाणुओं की संख्या के बीच के संबंधों के गुणात्मक विचारों का स्थान ग्रहण कर लिया। इन दोनों उपगमनों में रेखानिर्माण के निश्चित सिद्धांत निहित हैं। धातुओं की आपेक्षिक प्रचुरता का ज्ञान उतना ही यथार्थ हो सकता है जितना यथार्थ ज्ञान उनके f के मानों का (f-values) है और हाइड्रोजन के अनुपात का ज्ञान सूर्य जैसे तारों के लिये भी प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि सतत अवशोषण के के रूप में ऋणात्मक हाइड्रोजन आयन ही उत्तरदायी है।

हाइड्रोजन और हीलियम की तुलना में ऑक्सीजन समूह, कार्बन, नाइट्रोजन और निऑन इत्यादि की प्रचुरता का ज्ञान उष्ण तारों के आँकड़ों से भी प्राप्त हो सकता है। इन तारों के स्पेक्ट्रमों से, जिनमें हलके तत्वों की रेखाओं की प्रचुरता होती है हलके तत्वों की प्रचुरता भी निर्धारित की जा सकती है।

विश्लेषणों से ज्ञात हुआ कि अधिकांश तारों का संघटन एक सा ही है। अन्य तारों का संघटन भिन्न है। एम (M) वर्ग के तारों में कार्बन की अपेक्षा ऑक्सीजन प्रचुर मात्रा मे है जब कि आर (R) और एन (N) वर्ग के तारों में ऑक्सीजन की अपेक्षा कार्बन प्रचुर

याग की इक्कीस सस्थाम्रो में पहली सात पाकसस्था के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं. ग्रोपासन होम, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टका, मासिश्राद्ध, श्रमणाकर्म और शूलगव। एक बार इस अग्नि का परिग्रह कर लेने पर जीवनपर्यंत उसकी उपासना एव संरक्षण करना अनिवार्य है। इस प्रकार से उपासना करते हुए जब उपासक की मृत्यु होती है, तब उसी अग्नि से उसका दाहसस्कार होता है। उसके अनतर उस अग्नि का विसर्जन हो जाता है (दे० 'पौरोहित्य और कर्मकाड')।

गर्भाधान प्रभृति सस्कार के निमित्त विहित समय तथा शुभ मुहूर्त का होना आवश्यक है। संस्कार के समय अग्नि का साक्ष्य परमावश्यक है। उसी अग्नि पर हवन किया जाता है। अग्नि और देवताओं की विविध स्तुतियाँ और प्रार्थनाएँ होती हैं। देवताओं का आवाहन तथा पूजन होता है। सस्कार्य व्यक्ति का अभिषेक होता है। उसकी भलाई के लिये अनेक आशीर्वाद दिए जाते हैं। कौटुबिक सहभोज, जातिभोज और ब्रह्मभोज प्रभृति मागलिक विधान के साथ कर्म की समाप्ति होती है। समस्त गृह्यसूत्रो के सस्कार एव उनके क्रम मे एकरूपता नही है।

विभिन्न शाखाओं के गृह्यसूत्रो का प्रकाशन अनेक स्थानो से हुआ है। 'शाखायनगृह्यसूत्र' ऋग्वेद की शाखायन शाखा से सबद्ध है। इस शाखा का प्रचार गुजरात मे अधिक है। कौशीतकि गृह्यसूत्र का भी ऋग्वेद से सबध है। शाखायनगृह्यसूत्र से इसका शब्दगत अर्थगत पूर्णत साम्य है। इसका प्रकाशन मद्रास युनिवर्सिटी सस्कृत ग्रथमाला से १९४४ ई० मे हुआ है। आश्वलायन गृह्यसूत्र ऋग्वेद की आश्वलायन शाखा से सबद्ध है। यह गुजरात तथा महाराष्ट्र में प्रचलित है।

पारस्करगृह्यसूत्र शुक्ल यजुर्वेद का एकमात्र गृह्यसूत्र है। यह गुजराती मुद्रणालय (मुबई) से प्रकाशित है।

यहाँ से लौगाक्षिगृह्यसूत्र तक समस्त गृह्यसूत्र कृष्ण यजुर्वेद की विभिन्न शाखाओं से सबद्ध हैं। बौधायन गृह्यसूत्र के अत मे गृह्यपरिभाषा, गृह्यशेषसूत्र और पितृमेध सूत्र हैं। मानव गृह्यसूत्र पर अष्टावक्र का भाष्य है। भारद्वाजगृह्यसूत्र के विभाजक प्रश्न हैं। वैखानसस्मार्त सूत्र के विभाजक प्रश्न की सख्या दस है। आपस्तब गृह्यसूत्र के विभाजक आठ पटल हैं। हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र के विभाजक दो प्रश्न हैं। वाराहगृह्यसूत्र मैत्रायणी शाखा से सबद्ध है। इसमें एक खड है। काठकगृह्यसूत्र चरक शाखा से सबद्ध है। लौगाक्षिगृह्यसूत्र पर देवपाल का भाष्य है।

गोभिलगृह्यसूत्र सामवेद की कौथुम शाखा से संबद्ध है। इसपर भट्टनारायण का भाष्य है। इसमें चार प्रपाठक हैं। प्रथम में नौ और शेष में दस दस कडिकाएँ हैं। कलकत्ता सस्कृत सिरीज से १९३६ ई० में प्रकाशित हैं। द्राह्यायणगृह्यसूत्र, जैमिनिगृह्यसूत्र और कौथुम गृह्यसूत्र सामवेद से संबद्ध है। खादिरगृह्यसूत्र भी सामवेद से सबद्ध गृह्यसूत्र है।

कौशिकगृह्यसूत्र का संबध अथर्ववेद से है। ये सब गृह्यसूत्र विभिन्न स्थलों से प्रकाशित हैं। [म० ला० द्वि०]

स्मिथ, एडम (१७२३-१७९० ई०) ग्लासगो और ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालयों में अध्ययन। ग्लासगो विश्वविद्यालय में तर्कशास्त्र का अध्यापन। अपने गुरु हचेसन, ह्यूम, वॉलटेयर तथा रुसो से प्रभावित। स्कॉटलैड में जकात के आयुक्त के रूप में नियुक्ति। इस पद पर इन्होंने जीवन के अतिम दिनो तक कार्य किया। नैतिक मनोभावो का सिद्धात (थियोरी ऑव मॉरल सेंटिमेंट्स) नामक पुस्तक से पर्याप्त ख्याति मिली। स्मिथ से ही अर्थशास्त्र का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रारभ होता है। आर्थिक विचारधारा के इतिहास में अर्थशास्त्र के जन्मदाता के रूप मे प्रसिद्ध। राष्ट्र की सपत्ति (वेल्थ ऑव नेशस) पुस्तक को आर्थिक विचारधारा के इतिहास में क्रातिकारी ग्रथ माना जा सकता है।

स्मिथ श्रम को सपत्ति का स्रोत मानता था। इस दृष्टिकोण से मार्क्स का अग्रगामी था। परावलबन और पारस्परिक हित की भावना विनिमय को जन्म देते हैं। श्रम विभाजन विनिमय की स्वाभाविक उपज है। स्मिथ आर्थिक स्वातत्र्य का समर्थक और अतरराष्ट्रीय व्यापार में सरक्षण एव सरकारी हस्तक्षेप का विरोधी था। स्मिथ के विचार इग्लैड के हित में सिद्ध हुए। अग्रेज अर्थशास्त्रियो से उसके विचारों को समर्थन मिला। अमरीकन स्वातत्र्य का सग्राम तथा फ्रासीसी क्राति से उत्पन्न वातावरण ने भी उसकी ख्याति बढाने में सहायता की। लॉर्ड नॉर्थ तथा पिट आदि ने उसके विचारो का समावेश अपनी वित्तीय नीति मे किया। रिकार्डो ने अपने लगान के सिद्धात के लिये स्मिथ को ही आधारशिला माना। श्रम, मजदूरी, पूँजी, तथा उपयोगितावाद के सबध मे उसके विचार अपना स्थान रखते हैं।

स० ग्र० — भटनागर. हिस्टरी ऑव इकॉनॉमिक थॉट, जाइड एव रिस्ट : ए हिस्टरी ऑव इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, अमरीकन एव ब्रिटिश विश्वकोश। [उ० ना० पा०]

स्मोलेट, टोबिग्रस जार्ज (१७२१-७१) इनका जन्म स्काटलैंड में हुआ था। ग्लासगो विश्वविद्यालय मे इन्होने चिकित्साविज्ञान की शिक्षा पाई और पाँच वर्ष तक जहाज के एक सर्जन के साथ काम भी किया। लेकिन इनकी आकाक्षा नाट्यसाहित्य में सफलता प्राप्त करने की थी और इसी उद्देश्य से ये एक नाटक 'रेजिसाइड' लिखकर लदन आए। यहाँ थियेटर मालिको से किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन न मिलने पर इन्होने उपन्यास लिखना प्रारंभ किया। रोडरिक रैंडम, परिग्रिन पिकिल, काउट फैदम, सर लासलाट ग्रीव्स तथा हफ्री क्लिकर कुल पाँच उपन्यास इन्होंने लिखे। सन् १७७१ में इनकी मृत्यु हो गई।

स्मोलेट के उपन्यास पिकारेस्क (Picaresque) परपरा में आते हैं। उनके मुख्य पात्र बहुधा घुमक्कड़ प्रवृत्ति के नवयुवक हैं जो आवारागर्दी मे चक्कर लगाते हुए जीवन की विभिन्न परिस्थितियो से गुजरते हैं। ऐसे उपन्यासो मे घटनाओं की प्रधानता स्वाभाविक है, क्योकि ये उपन्यास किसी सामाजिक या नैतिक दृष्टिकोण से न लिखे जाकर कथानक की मनोरजकता के विचार से ही लिखे गए हैं। इनमें फील्डिंग या रिचर्डसन का शिल्पगठन नही मिलता।

हैं। विस्फोटन से बड़ी मात्रा में उच्च ताप पर गैसें बनती हैं जिससे अकस्मात् इतना तनाव उत्पन्न होता है कि वह पदार्थों के बीच प्रतिरोध हटाकर उन्हे छिन्न भिन्न कर देता है। विस्फोटको के उपयोग से पूर्व छेनी और हथौड़े से चट्टानें तोड़ी जाती थी। यह बहुत परिश्रमसाध्य होता था। चट्टानों पर आग लगाकर गरम कर ठढा करने से चट्टानें विदीर्ण होकर टूटती थी। तप्त चट्टानो पर पानी डालकर भी चट्टानों को चिटकाते थे। विस्फोटक के रूप में साधारणतया बारूद, कार्डाइट, डाइनेमाइट और बारूदी रुई (gun cotton) प्रयुक्त होते है।

विस्फोटन के लिये एक छेद बनाया जाता है। इसी छेद में विस्फोटक रख कर उसे विस्फुटित किया जाता है। छेद की गहराई और व्यास विभिन्न विस्तार के होते हैं। व्यास ३ सेमी से ३० सेमी तक का या कभी कभी इससे भी बडा और गहराई कुछ मीटर से ३० मी तक होती है। सामान्यतः छेद ४ सेमी व्यास का और ३ मी गहरा होता है। छेद मे रखे विस्फोटक की मात्रा भी विभिन्न रहती है। विस्फोटन के पश्चात् चट्टान चूर चूर होकर टूट जाती है। चट्टान के छिन्न भिन्न करने मे कितना विस्फोटक लगेगा, यह बहुत कुछ चट्टान की प्रकृति पर निर्भर करता है।

चट्टानो में बरमें से छेद किया जाता है। बरमे कई प्रकार के होते हैं। जैसे हाथ बरमा या मशीन बरमा या पिस्टन बरमा या हैमर (हथौडा) बरमा या विद्युच्चालित बरमा या जलचालित बरमा। ये भिन्न भिन्न परिस्थितियों में काम आते हैं। सभी के पक्ष या विपक्ष में कुछ न कुछ बातें कही जा सकती हैं। छेद हो जाने पर छेद की सफाई कर उसमें विस्फोटक भरते हैं। १८६४ ई० तक स्फोटन के लिये केवल बारूद काम में आता था। अल्फ्रेड नोबेल ने पहले पहल नाइट्रोग्लिसरीन और कुछ समय बाद डाइनेमाइट का उपयोग किया। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य निरापद विस्फोटक भी खानो में प्रयुक्त होते हैं विशेषतः उन खानों में जिनमें दहनशील गैसें बनती या बन सकती हैं। बारूद को जलाने के लिये फ्यूज की जरूरत पड़ती है। बारूद से चारगुना अधिक प्रबल डाइनेमाइट होता है। डाइनेमाइट को जलाने के लिये 'प्रस्फोटक' की आवश्यकता पडती है। प्रस्फोटक को 'कैप' या टोपी भी कहते हैं। टोपी फ्यूज प्रकार की हो सकती है या विद्युत् किस्म की। आजकल विस्फोटकों का स्फोटन बिजली द्वारा संपन्न होता है। इन्हें 'वैद्युत प्रस्फोटक' कहते हैं। कभी कभी प्रस्फोटक के विस्फुटित न होने से 'स्फोटन' नही होता इसे 'मिसफायर' कहते हैं।

स्फोटन के लिये 'विस्फोटकों' के स्थान में अब संपीडित वायु का प्रयोग हो रहा है। पहले १९४० ई० में यह विधि निकली और तब से उत्तरोत्तर इसके व्यवहार में वृद्धि हो रही है। यह सतह पर या भूमि के अंदर समानरूप से संपन्न किया जा सकता है। इसमें आग लगने का बिल्कुल भय नहीं है। अतः कोयले की खानो में इसका व्यवहार दिन दिन बढ़ रहा है।

स्मट्स, जॉन क्रिश्चन (१८७०-१९५० ई०) स्मट्स का जन्म दक्षिण अफ्रीका में पश्चिमी राइबीक (Riebeek West) के निकट हुआ। उसके पूर्वज डच थे। १८८६ ई० में वह विक्टोरिया कालेज में प्रविष्ट हुआ। १८९१ मे स्नातक होकर वह कैंब्रिज गया। १८९५ में उसने वकालत की परीक्षा पास की। दक्षिण अफ्रीका लौटकर केपटाउन मे वकालत प्रारभ की। १८९८ में राष्ट्रपति क्रूगर ने उसे सरकारी वकील बना दिया। १८९९ से १९०२ तक अंग्रेजों और डचो मे युद्ध हुआ। उस समय स्मट्स स्वय ब्रिटेन की सेनाओ के विरुद्ध लडा। १९०२ में उसने समझौता कराने में प्रमुख भाग लिया। उसी के प्रयत्न से १९१० में दक्षिण अफ्रीका का सघ बनाया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारंभ मे दक्षिण अफ्रीका के निवासी डचो ने अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह किया। जनरल बोथा के साथ स्मट्स ने इस विद्रोह का दमन करने में अग्रेज सेना की सहायता की। स्मट्स के उत्साह और दूरदर्शिता के कारण जर्मन दक्षिण अफ्रीका में न घुस सके। १९१७ ई० में ब्रिटेन के युद्धकालीन मत्रिमडल में स्मट्स को भी सम्मिलित किया गया।

१९१८ मे जनरल बोथा की मृत्यु के पश्चात् स्मट्स दक्षिण अफ्रीका का प्रधान मत्री बना। १९२४ तक वह इस पद पर रहा। १९३३ में स्मट्स ने डचो के नेता हर्टज़ोग के साथ सगठन बनाकर सरकार बनाई। उसने ब्रिटेन और कॉमनवेल्थ ऑव नेशस के सहयोग से दक्षिण अफ्रीका की आर्थिक दशा सुधारने का भी महान् प्रयत्न किया। १९४८ के चुनाव मे स्मट्स का सयुक्त दल सफल न हो सका। [ओ० प्र०]

स्मार्त सूत्र वेद द्वारा प्रतिपादित विषयों को स्मरणकर उन्ही के आधार पर आचार विचार को प्रकाशित करनेवाली शब्दराशि को 'स्मृति' कहते हैं। स्मृति से विहित कर्म स्मार्त कर्म हैं। इन कर्मों की समस्त विधियाँ स्मार्त सूत्रों से नियन्त्रित हैं। स्मार्त सूत्र का नामातर गृह्यसूत्र है। अतीत में वेद की अनेक शाखाएँ थी। प्रत्येक शाखा के निमित्त गृह्यसूत्र भी होंगे। वर्तमानकाल में जो गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं वे अपनी शाखा के कर्मकांड को प्रतिपादित करते है।

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छद और ज्योतिष ये छह वेदाग हैं। गृह्यसूत्र की गणना कल्पसूत्र में की गई है। अन्य पाँच वेदांगों के द्वारा स्मार्त कर्म की प्रक्रियाएँ नहीं जानी जा सकती। उन्ही प्रक्रियाओ एव विधियो को व्यवस्थित रूप से प्रकाशित करने के निमित्त आचार्यों एव ऋषियों ने स्मार्त सूत्रों की रचना की है। इन स्मार्त सूत्रों के द्वारा सप्तपाकसस्था एवं समस्त संस्कारो के विधान तथा नियमो का विस्तार के साथ विवेचन किया गया है।

सामान्यत गृह्यकर्मों के दो विभाग होते हैं। प्रथम सप्तपाकसंस्था और द्वितीय संस्कार। त्रेताग्नि पर अनुष्ठेय कर्मों से अतिरिक्त कर्म स्मार्त कर्म कहे जाते हैं। इन स्मार्त कर्मों में सप्तपाकसस्थाओं का अनुष्ठान स्मार्त अग्नि पर विहित है। इनको वही व्यक्ति संपादित कर सकता है जिसने गृह्यसूत्र द्वारा प्रतिपादित विधान के अनुसार स्मार्त अग्नि का परिग्रहण किया हो। स्मार्त अग्नि का विधान विवाह के समय अथवा पैतृक संपत्ति के विभाजन के समय हो सकता है। औपासन, गृह्य अथवा आवसथ्य, ये स्मार्त अग्नि के नामांतर हैं।

खनिज हैं। खनिजों के सोते भी कुछ भागों में पाए जाते हैं। नगरों एवं उद्योगधंधों का बहुत विकास हुआ है। खनन, जलयाननिर्माण, कृषि तथा धातु पदार्थों का रूपांतरण यहाँ के प्रधान उद्योग हैं। इस प्रदेश की जनसंख्या ४१,१३,४०० (१९६१) थी। स्लोवाक लोग कुल जनसंख्या के ८७.३% हैं। ये रोमन कैथोलिक, धर्मावलंबी हैं। ब्रैटिस्लावा स्लोवाकिया की राजधानी है।

भाषा एवं मानवप्रजाति में समानता होते हुए भी स्लोवाकिया, चेक लोगों से सांस्कृतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से १००० वर्ष तक बिल्कुल अलग रहा। [रा० प्र० सिं०]

स्वतंत्रता की घोषणा (अमरीकी) (४ जुलाई, १७७६ ई०) अमरीका के निवासियों ने ब्रिटिश शासनसत्ता के अधिकारों और अपनी कठिनाइयों से मुक्ति पाने के लिये जो संघर्ष सन् १७७५ ई० में आरंभ किया था वह दूसरे ही वर्ष स्वतंत्रता संग्राम में परिणत हो गया। इंगलैंड के तत्कालीन शासक जॉर्ज तृतीय की दमननीति से, समझौते की आशा समाप्त हो गई और शीघ्र ही पूर्ण संबंधविच्छेद हो गया। इंगलैंड से आए हुए उग्रवादी युवक टॉमस पेन ने अपनी पुस्तिका 'कॉमनसेंस' द्वारा स्वतंत्रता की भावना को और भी प्रज्वलित किया। ७ जून, १७७६ ई० को वर्जीनिया के रिचर्ड हेनरी ली ने प्रायद्वीपी कांग्रेस में यह प्रस्ताव रखा कि उपनिवेशों को स्वतंत्र होने का अधिकार है। इस प्रस्ताव पर वादविवाद के उपरांत 'स्वतंत्रता की घोषणा' तैयार करने के लिये ११ जून को एक समिति बनाई गई, जिसने यह कार्य जेफ़रसन को सौंपा। जेफरसन द्वारा तैयार किए गए घोषणापत्र में ऐडम्स और फ्रैंकलिन ने कुछ संशोधन कर उसे २८ जून को प्रायद्वीपी कांग्रेस के समक्ष रखा और २ जुलाई को वह बिना विरोध पास हो गया।

जेफ़रसन ने उपनिवेशिकों की कठिनाइयों और आवश्यकताओं का ध्यान रखकर नहीं, अपितु मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों के दार्शनिक सिद्धांतों को ध्यान में रखकर यह घोषणापत्र तैयार किया था जिसके निम्नांकित शब्द अमर हैं 'हम इन सिद्धांतों को स्वयंसिद्ध मानते हैं कि सभी मनुष्य समान पैदा हुए हैं और उन्हें अपने स्रष्टा द्वारा कुछ अविच्छिन्न अधिकार मिले हैं। जीवन, स्वतंत्रता और सुख की खोज इन्हीं अधिकारों में है। इन अधिकारों की प्राप्ति के लिये समाज में सरकारों की स्थापना हुई जिन्होंने अपनी न्यायोचित सत्ता शासित की स्वीकृति से ग्रहण की। जब कभी कोई सरकार इन उद्देश्यों पर कुठाराघात करती है तो जनता को यह अधिकार है कि वह उसे बदल दे या उसे समाप्त कर नई सरकार स्थापित करे जो ऐसे सिद्धांतों पर आधारित हो और जिसकी शक्ति का संगठन इस प्रकार किया जाय कि जनता को विश्वास हो जाय कि उनकी सुरक्षा और सुख निश्चित हैं।'

इस घोषणापत्र में कुछ ऐसे महत्व के सिद्धांत रखे गए जिन्होंने विश्व की राजनीतिक विचारधारा में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। समानता का अधिकार, जनता का सरकार बनाने का अधिकार और अयोग्य सरकार को बदल देने अथवा उसे हटाकर नई सरकार की स्थापना करने का अधिकार आदि ऐसे सिद्धांत थे जिन्हें सफलतापूर्वक क्रियात्मक रूप दिया जा सकेगा, इसमें उस समय अमरीकी जनता को भी संदेह था परंतु उसने इनको सहर्ष स्वीकार कर सफलतापूर्वक कार्यरूप में परिणत कर दिखाया। जेफरसन ने ब्रिटिश दार्शनिक जॉन लॉक के 'जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति' के अधिकार के सिद्धांत को भी थोड़े संशोधन के साथ स्वीकार किया। उसने 'संपत्ति' को ही सुख का साधन न मानकर उसके स्थान पर 'सुख की खोज' का अधिकार माँगकर अमरीकी जनता को वस्तुवादिता से बचाने की चेष्टा की, परंतु उसे कितनी सफलता मिली इसमें संदेह है। [च० भू० त्रि०]

स्वदेशी आंदोलन से हम विशेषकर उस आंदोलन को लेते हैं जो बंगभंग के विरोध में बंगाल और भारत में चला। इसका मुख्य अंग अपने देश की वस्तु अपनाना और दूसरे देश की वस्तु का बहिष्कार करना है। यह विचार बंगभंग से बहुत पुराना है। भारत में स्वदेशी का पहले पहल नारा श्री बंकिमचंद्र ने 'बंगदर्शन' के १२७९ की भाद्र संख्या यानी १८७२ ई० में ही विज्ञानसभा का प्रस्ताव रखते हुए दिया था। उन्होंने कहा था — जो विज्ञान स्वदेशी होने पर हमारा दास होता, वह विदेशी होने के कारण हमारा प्रभु बन बैठा है, हम लोग दिन ब दिन साधनहीन होते जा रहे हैं। अतिथिशाला में आजीवन रहनेवाले अतिथि की तरह हम लोग प्रभु के आश्रय में पड़े हैं, यह भारतभूमि भारतीयों के लिये भी एक विराट् अतिथिशाला बन गई है।

इसके बाद श्री भोलानाथ चंद्र ने १८७४ में श्री शंभुचंद्र मुखोपाध्याय प्रवर्तित 'मुखर्जीज मैगज़ीन' में स्वदेशी का नारा दिया था। उन्होंने लिखा था "किसी प्रकार का शारीरिक बलप्रयोग न करके, राजानुगत्य अस्वीकार न करते हुए, तथा किसी नए कानून के लिये प्रार्थना न करते हुए भी हम अपनी पूर्वसंपदा लौटा सकते हैं। जहाँ स्थिति चरम में पहुँच जाए, वहाँ एकमात्र नहीं तो सबसे अधिक कारगर अस्त्र नैतिक शत्रुता होगी। इस अस्त्र को अपनाना कोई अपराध नहीं है। आइए हम सब लोग यह संकल्प करें कि विदेशी वस्तु नहीं खरीदेंगे। हमें हर समय यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत की उन्नति भारतीयों के द्वारा ही संभव है।' यह नारा कांग्रेस के जन्म के पहले दिया गया था। जब १९०५ ई० में बंगभंग हुआ, तब स्वदेशी का नारा जोरों से अपनाया गया। उसी वर्ष कांग्रेस ने भी इसके पक्ष में मत प्रकट किया। देशी पूँजीपति उस समय मिलें खोल रहे थे, इसलिये स्वदेशी आंदोलन उनके लिये बड़ा ही लाभदायक सिद्ध हुआ।

इन्हीं दिनों जापान ने रूस पर विजय पाई। उसका असर सारे पूर्वी देशों पर हुआ। भारत में बंगभंग के विरोध में सभाएँ तो हो ही रही थीं। अब विदेशी वस्तु बहिष्कार आंदोलन ने बल पकड़ा। 'वंदेमातरम्' इस युग का महामंत्र बना। १९०६ के १४ और १५ अप्रैल को स्वदेशी आंदोलन के गढ़ बारिशाल में बंगीय प्रादेशिक संमेलन होने का निश्चय हुआ। यद्यपि इस समय बारिशाल में बहुत कुछ दुर्भिक्ष की हालत थी, फिर भी जनता ने अपने नेता अश्विनीकुमार दत्त आदि को धन जन से इस संमेलन के लिये सहायता दी।

घटनाओ को एक दूसरे से सवद्ध करने का एकमात्र माध्यम उपन्यास का नायक होता है जिसके चतुर्दिक् ये घटित होती हैं। उनके उपन्यासो में हमें तत्कालीन सामाजिक जीवन तथा मानवचरित्र की ऊपरी सतह का ही चित्र मिलता है। गहराई में जाने की क्षमता उनमें नही थी।

चरित्रचित्रण में भी मानव स्वभाव की छोटी मोटी कमजोरियो तथा विचित्रताओ को अतिरजित रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है जिसका उपयोग बाद मे चार्ल्स डिकेंस ने किया।

[तु० ना० सि०]

स्याही या मसी ऐसे रगीन द्रव को कहते हैं जिसका प्रयोग अक्षरो एव चिह्नो को अकित करने अथवा किसी वस्तु में छपाई करने में होता है। लेखन में प्रयुक्त होनेवाली स्याही का प्रयोग सबसे पहले भारत तथा चीन में हुआ था। प्राचीनतम स्याही अर्धठोस पदार्थ होती थी। इसे काजल (दीपकालिमा) तथा सरेस के संमिश्रण से तैयार किया जाता था। पीछे तरल स्याही का प्रयोग आरंभ हुआ। प्रारभ में तरल स्याही तैयार करने में कार्बन के निलबन तथा उसके कोलॉइडी द्रवो का प्रयोग होता था। ऐसी स्याही अल्प समय मे ही विश्व के अनेक देशो में प्रयुक्त होने लगी। आठवी शताब्दी में पाश्चात्य देशो में कार्बनयुक्त स्याही का स्थान लौह माजूफल (gallnut) ने ले लिया। ऐसी स्याही तैयार करने मे माजूफल को दलकर उसके आस्वाथ (infusion) अथवा टैनिनयुक्त किसी अन्य द्रव में कसीस के विलयन को मिलाते थे। इसमें पर्याप्त मात्रा में बबूल का गोद भी मिलाते थे जिससे कोलॉइडी लौह टैनेट द्रव में निलबन की स्थिति में रहता था। स्याही के बनने मे किसी भी शल्कछाल (Scale bark) का प्रयोग होता है पर माजूफल सर्वाधिक उपयुक्त कच्चा माल माना जाता है। माजूफल मे सामान्यत ५० से ८० प्रतिशत गैलो टैनिन तथा अल्प मात्रा में गैलिक अम्ल उपस्थित रहते हैं। हरीतकी (हड़) का प्रयोग प्रतिलिपि स्याही के बनाने मे किया जाता है। इसमे ४० से ५० प्रतिशत टैनिन रहता है। माजूफल के गैलोटैनिन तथा गैलिक अम्ल का पाइरोगैलिक समूह वर्ण का एक अ श होता है। अत. माजूफल का रँगनेवाला गुण उसमे उपस्थित गैलो टैनिन तथा गैलिक अम्ल की सयुक्त मात्रा पर निर्भर करता है। स्याही के बनाने मे विभिन्न मात्रा में माजूफल का प्रयोग होता है। माजूफल का प्रयोग किसी निश्चित मात्रा के आधार पर नही होता है। स्थायी स्याही के उत्पादन में भी विभिन्न मात्रा में माजूफल तथा कसीस का उपयोग होता है पर सामान्यत. तीन भाग माजूफल के साथ एक भाग कसीस रहता है। माजूफल में टैनिन की मात्रा निश्चित न होने के कारण स्याही मे माजूफल तथा कसीस का भाग निश्चित करना सभव नही है। लिखने की लौह माजूफल स्याही बनाने की एक रीति में माजूफल, कसीस, बबूल का गोद, जल तथा फीनोल क्रमश १२०, ८०, ८०, २४०० तथा ६ भाग रहते है। यहाँ दलित माजूफल को जल से बारबार निष्कर्षित कर सब निष्कर्ष को एक साथ मिलाकर उसमें अन्य पदार्थ मिलाते हैं। स्याही को इस प्रकार तैयार कर परिपक्व होने के लिये कुछ समय तक किसी पात्र में छोड़ देते हैं। स्याही बनाने मे कसीस के रूप में फेरस सल्फेट का प्रयोग बहुत समय से होता आ रहा है पर अब लौह के अन्य लवण जैसे फेरिक क्लोराइड या सीमित मात्रा में फेरिक सल्फेट का प्रयोग भी होने लगा है। व्यापारिक कसीस मे लौह की मात्रा निश्चित नही रहती। सामान्य कसीम नीलापनयुक्त होने से लेकर चमकीला धानी हरे रंग का होता है। इसमे लौह की मात्रा १८ से २६ प्रतिशत तक रहती है।

सामान्य नीलीकाली स्थायी स्याही गैलोटैनेट स्याही होती है। इसमें लौह की मात्रा ० ५ से ० ६ प्रतिशत तक रहती है। स्याही मे लौह तथा टैनिन पदार्थों का अनुपात ऐसा रखा जाता है कि लिखावट अधिक स्थायी रहे। फाउटेनपेन की नीलीकाली स्याही में लौह की मात्रा न्यूनतम ०·२५ प्रतिशत के लगभग रहती है। ऐसी स्याही का रंग बोतल मे तथा लिखने के समय नीलाकाला होता है पर वायु के प्रभाव से कुछ समय बाद काला हो जाता है। गैलिक अम्ल स्याही सामान्य लौह माजूफल के अपेक्षाकृत अधिक समय तक रखने पर खराब नहीं होती। प्रतिलिपि स्याही सांद्र लौह टैनेट (नीलीकाली) स्याही होती है जिसमें ग्लिसरीन अथवा डेक्सट्रिन की कुछ मात्रा मिलाकर कागज पर स्याही मे होनेवाले वायुमंडलीय आक्सीकरण क्रिया में अवरोध उत्पन्न किया जाता है। इनके रजकों के उपयोग से विभिन्न वर्णों की स्याही बनाई जाती है। अधिकाश लाल वर्ण की स्याही में मजेंटा अथवा इयोसिन का उपयोग होता है। इनमें आवश्यकतानुसार गोद अथवा यदि स्याही प्रतिलिपि के कार्य के लिये है तो ग्लिसरीन मिलाया जाता है। नीले वर्ण की स्याही बनाने में प्रशियन नील नामक रंजक तथा अम्ल का प्रयोग होता है जिनका अनुपात कमश: ८ : १ होता है। इडिगो कारमाइन नामक रजक के प्रयोग से भी नीली स्याही प्राप्त होती है। १·२ प्रतिशत ऐसिड-ग्रीन अथवा ०·२ प्रतिशत मैलकाइट ग्रीन के प्रयोग से हरे वर्ण की स्याही प्राप्त होती है।

कागज पर स्याही के वर्ण में परिवर्तन न होने से लेखन के समय का अनुमान लगाया जा सकता है। अनेक ऐसी स्याहियाँ भी उपलब्ध हैं जो लिखने के समय दिखाई नही पडती हैं पर किसी विशेष उपचार से उन्हे पढ़ा जा सकता है। ऐसी स्याही को गुप्त मसी या स्याही कहते हैं। कागज पर छपाई, कपड़ो पर छपाई आदि विशेष प्रयोजनो के लिये विशेष प्रकार की स्याहियाँ काम में आती हैं।

[अ० सि०]

स्लोवाकिया चेकोस्लोवाकिया का एक प्रदेश है जिसका क्षेत्रफल ४९,००८ वर्ग किमी है। इसके पश्चिम मे मोरेविया प्रदेश, दक्षिण पश्चिम मे आस्ट्रिया, दक्षिण में हंगरी, पूर्व में यूक्रेन और उत्तर में पोलैंड हैं। स्लोवाकिया का अधिकाश भाग पहाड़ी है। कारपेथिऐन, टाट्रा और बेस्किड्स पर्वतश्रेणियाँ इसमें फैली हुई हैं। गेरलाखोफ्का (Gerlachovka) सबसे ऊँची (२७५० मी०) चोटी है। दक्षिणी स्लोवाकिया हगरी के विशाल उपजाऊ मैदान का एक भाग है जिसमे डैन्यूब और उसकी सहायक वाह नदी वहती है। पहाड़ी भाग मे वन एव चरागाह हैं। यहाँ भेड़ें पाली जाती हैं। मैदानी भाग मे अंगूर के लताकुंज, बाग और चरागाह मुख्य आर्थिक साधन हैं।

लोहा, पारा, चाँदी, सोना, ताँबा, सीसा, एवं नमक महत्वपूर्ण

स्वप्न के विषय में सबसे महत्व की खोजें डाक्टर सिगमंड फ्रायड ने की हैं। इन्होने अपने अध्ययन से यह निर्धारित किया कि मनुष्य के भीतरी मन को जानने के लिये उसके स्वप्नो को जानना नितांत आवश्यक है। 'इंटरप्रिटेशन ऑव ड्रीम्स' नामक अपने ग्रंथ में इन्होने यह बताने की चेष्टा की है कि जिन स्वप्नों को हम निरर्थक समझते हैं उनके विशेष अर्थ होते हैं। इन्होंने स्वप्नों के संकेतो के अर्थ बताने और उनकी रचना को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। इनके कथनानुसार स्वप्न हमारी उन इच्छाओं को सामान्य रूप से अथवा प्रतीक रूप से व्यक्त करता है जिसकी तृप्ति जाग्रत अवस्था में नहीं होती। पिता की डाँट के डर से जब बालक मिठाई और खिलौने खरीदने की अपनी इच्छा को प्रकट नही करता तो उसकी दमित इच्छा स्वप्न के द्वारा अपनी तृप्ति पा लेती है। जैसे जैसे मनुष्य की उम्र बढती जाती है उसका समाज का भय जटिल होता जाता है। इस भय के कारण वह अपनी अनुचित इच्छाओ को न केवल दूसरो से छिपाने की चेष्टा करता है वरन् वह स्वयं से भी छिपाता है। डाक्टर फ्रायड के अनुसार मनुष्य के मन के तीन भाग हैं। पहला भाग वह है जिसमे सभी इच्छाएँ आकर अपनी तृप्ति पाती हैं। इनकी तृप्ति के लिये मनुष्य को अपनी इच्छाशक्ति से काम लेना पडता है। मन का यह भाग चेतन मन कहलाता है। यह भाग बाहरी जगत् से व्यक्ति का समन्वय स्थापित करता है। मनुष्य के मन का दूसरा भाग अचेतन मन कहलाता है। यह भाग उसकी सभी प्रकार की भोगेच्छाओं का आश्रय है। इसी मे उसकी सभी दमित इच्छाएँ रहती हैं। उसके मन का तीसरा भाग अवचेतन मन कहलाता है। इस भाग में मनुष्य का नैतिक स्वत्व रहता है। डाक्टर फ्रायड ने नैतिक स्वत्व को राज्य के सेन्सर विभाग की उपमा दी है। जिस प्रकार राज्य का सेन्सर विभाग किसी नए समाचार के प्रकाशित होने के पूर्व उसकी छानबीन कर लेता है। उसी प्रकार मनुष्य के अवचेतन मन में उपस्थित सेन्सर अर्थात् नैतिक स्वत्व किसी भी वासना के स्वप्नचेतना में प्रकाशित होने के पूर्व काँट छाँट कर देता है। अत्यत अप्रिय अथवा अनैतिक स्वप्न देखने के पश्चात् मनुष्य को आत्मभर्त्सना होती है। स्वप्न-द्रष्टा को इस आत्मभर्त्सना से बचाने के लिये उसके मन का सेन्सर विभाग स्वप्नो में अनेक प्रकार की तोडमरोड करके दबी इच्छा को प्रकाशित करता है। फिर जाग्रत होने पर यही सेन्सर हमें स्वप्न के उस भाग को भुलवा देता है जिससे आत्मभर्त्सना हो। इसी कारण हम अपने पूरे स्वप्नो को ही भूल जाते हैं।

डा० फ्रायड ने स्वप्नों के प्रतीको के विशेष प्रकार के अर्थ बताएँ हैं। इनमें से अधिक प्रतीक जननेंद्रिय संबंधी हैं। उनके कथनानुसार स्वप्न मे होनेवाली बहुत सी निरर्थक क्रियाएँ रति-क्रिया की द्योतक होती हैं। उनका कथन है कि मनुष्य की प्रधान वासना, कामवासना है। इसी से उसे अधिक से अधिक शारीरिक सुख मिलता है और इसी का उसके जीवन मे सर्वाधिक रूप से दमन भी होता है। स्वप्न में अधिकतर हमारी दमित इच्छाएँ ही छिपकर विभिन्न प्रतीको द्वारा प्रकाशित होती हैं। सबसे अधिक दमित होनेवाली इच्छा कामेच्छा है। इसलिये हमारे अधिक स्वप्न उसी से संबध रखते हैं। मानसिक रोगियों के विषय में देखा गया है कि एक ओर उसकी प्रबल कामेच्छा दमित अवस्था में रहती है और दूसरी ओर उसकी उपस्थिति स्वीकार करना उनके लिये कठिन होता है। इसलिये ही मानसिक रोगियो के स्वप्न न केवल जटिल होते हैं वरन् वे भूल भी जाते हैं।

डाक्टर फ्रायड ने स्वप्नरचना के पाँच सात प्रकार बताए हैं। उनमें से प्रधान हैं — संक्षेपण, विस्तारीकरण, भावातरकरण तथा नाटकीकरण। संक्षेपण के अनुसार कोई बहुत बडा प्रसग छोटा कर दिया जाता है। विस्तारीकरण मे ठीक इसका उलटा होता है। इसमे स्वप्नचेतना एक थोडे से अनुभव को लबे स्वप्न में व्यक्त करती है। मान लीजिए किसी व्यक्ति ने किसी पार्टी मे हमारा अपमान कर दिया और इसका हम बदला लेना चाहते हैं। परतु हमारा नैतिक स्वत्व इसका विरोधी है, तो हम अपने स्वप्न मे देखेंगे कि जिस व्यक्ति ने हमारा अपमान किया है वह अनेक प्रकार की दुर्घटनाओं में पडा हुआ है। हम उसकी सहायता करना चाहते हैं, परतु परिस्थितियाँ ऐसी हैं जिनके कारण हम उसकी सहायता नहीं कर पाते। भावातरीकरण की अवस्था मे हम अपने अनैतिक भाव को ऐसे व्यक्ति के प्रति प्रकाशित होते नही देखते जिसके प्रति उन भावों का प्रकाशन होना आत्मग्लानि पैदा करता है। कभी कभी किशोर बालक भयानक स्वप्न देखते हैं। उनमें वे किसी राक्षस से लड़ते हुए अपने को पाते हैं। मनोविश्लेषण से पीछे पता चलता है कि यह राक्षस उनका पिता, चाचा, बडा भाई, अध्यापक अथवा कोई अनुशासक ही रहता है।

नाटकीकरण के अनुसार जब कोई विचार इच्छा अथवा स्वप्न में प्रकाशित होता है तो वह अधिकतर दृष्टि प्रतिमाओ का सहारा लेता है। स्वप्नचेतना अनेक मार्मिक बातो को एक पूरी परिस्थिति चित्रित करके दिखाती है। स्वप्न किसी शिक्षा को सीधे रूप से नही देता। स्वप्न में जो अनेक चित्रो और घटनाओ के सहारे कोई भाव व्यक्त होता है उसका अर्थ तुरत लगाना सभव नही होता। मान लीजिए, हम अकेले में हैं और हमें डर लगता है कि हमारे ऊपर कोई आक्रमण न कर दे। यह छोटा सा भाव अनेक स्वप्नो को उत्पन्न करता है। हम ऐसी परिस्थिति में पड जाते हैं जहाँ हम अपने को सुरक्षित समझते हैं परतु हमें बाद को भारी धोखा होता है।

डाक्टर फ्रायड का कथन है कि स्वप्न के दो रूप होते हैं — एक प्रकाशित और दूसरा अप्रकाशित। जो स्वप्न हमें याद आता है वह प्रकाशित रूप है। यह रूप उपर्युक्त अनेक प्रकार की तोड मोड की रचनाओ और प्रतीकों के साथ हमारी चेतना के समक्ष आता है। स्वप्न का वास्तविक रूप वह है जिसे गूढ़ मनोवैज्ञानिक खोज के द्वारा प्राप्त किया जाता है। स्वप्न का जो अर्थ सामान्य लोग लगाते हैं वह उसके वास्तविक अर्थ से बहुत दूर होता है। यह वास्तविक अर्थ स्वप्ननिर्माण कला के जाने बिना नही लगाया जा सकता।

डाक्टर फ्रायड ने स्वप्नानुभव के बारे में निम्नलिखित बात महत्व की बताई हैं स्वप्न मानसिक प्रतिगमन का परिणाम है। यह प्रतिगमन थोडे काल के लिये रहता है। अतएव इससे व्यक्ति के मानसिक विकास की क्षति नही होती। दूसरे यह प्रतिगमन अभिनय के रूप मे होता है। इस कारण इससे मनुष्य की उन इच्छाओं का

उन दिनों सार्वजनिक रूप से 'वंदेमातरम्' का नारा लगाना गैरकानूनी बन चुका था और कई युवकों को नारा लगाने पर बेंत लग चुके थे और अन्य सजाएँ मिली थी। जिला प्रशासन ने स्वागतसमिति पर यह शर्त लगाई कि प्रतिनिधियों का स्वागत करते समय किसी हालत में 'वंदेमातरम्' का नारा नहीं लगाया जाएगा। स्वागतसमिति ने इसे मान लिया। किंतु अत्युग्र दल ने इसे स्वीकार नहीं किया। जो लोग 'वंदेमातरम्' का नारा नहीं लगा रहे थे, वे भी उसका बैज लगाए हुए थे। ज्योंही प्रतिनिधि सभास्थल में जाने को निकले त्यों ही उनपर पुलिस टूट पड़ी और लाठियों की वर्षा होने लगी। श्री सुरेंद्रनाथ बनर्जी गिरफ्तार कर लिये गए। उनपर २०० रुपया जुर्माना हुआ। वह जुर्माना देकर सभास्थल पहुँचे। सभा में पहले ही पुलिस के अत्याचारों की कहानी सुनाई गई। पहले दिन किसी तरह अधिवेशन हुआ, पर अगले दिन पुलिस कप्तान ने आकर कहा कि यदि वंदेमातरम्' का नारा लगाया गया तो सभा बंद कर दी जाएगी। लोग इस पर राजी नहीं हुए, इसलिये अधिवेशन यहीं समाप्त हो गया। पर उससे जनता में और जोश बढ़ा।

लोकमान्य तिलक और गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे भी इस संबंध में कलकत्ता पहुँचे और बंगाल में भी शिवाजी उत्सव का प्रवर्तन किया गया। रवींद्रनाथ ने इसी अवसर पर शिवाजी शीर्षक प्रसिद्ध कविता लिखी। १० जून को तीस हजार कलकत्तावासियों ने लोकमान्य तिलक का विराट् जुलूस निकाला। इन्हीं दिनों बंगाल में बहुत से नए पत्र निकले, जिनमें 'वंदेमातरम्' और 'युगांतर' प्रसिद्ध हैं।

इसी आंदोलन के अवसर पर विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर पिकेटिंग शुरू हुई। अनुशीलन समितियाँ बनीं जो दबा दी जाने के कारण क्रांतिकारी समितियों में परिणत हो गईं। अरविंद के छोटे भाई बारींद्रकुमार घोष ने बंगाल में क्रांतिकारी दल स्थापित किया। इसी दल की ओर से खुदीराम ने जज किंग्सफोर्ड के धोखे में कैनेडी परिवार को मार डाला, कन्हाईलाल ने जेल के अंदर मुखबिर नरेंद्र गोसाईं को मारा और अंत में बारींद्र स्वयं अलीपुर षड्यंत्र में गिरफ्तार हुए। उनको तथा उनके साथियों को लंबी सजाएँ हुईं।

दिल्ली दरबार (१९११) में बंगभंग रद्द कर दिया गया, पर स्वदेशी आंदोलन नहीं रुका और वह स्वतंत्रता आंदोलन में परिणत हो गया।

सं० ग्रं० — पट्टाभि सीतारमैया : द हिस्टरी ऑव द कांग्रेस (अंग्रेजी); योगेशचंद्र बागल : मुक्तिसंधाने भारत (बंगला)।

[मं० गु०]

स्वप्न आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सोते समय की चेतना की अनुभूतियों को स्वप्न कहते हैं। स्वप्न के अनुभव की तुलना मृगतृष्णा के अनुभवों से की गई है। यह एक प्रकार का विभ्रम है। स्वप्न में सभी वस्तुओं के अभाव में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ दिखाई देती हैं। स्वप्न की कुछ समानता दिवास्वप्न से की जा सकती है। परंतु दिवास्वप्न में विशेष प्रकार के अनुभव करनेवाला व्यक्ति जानता है कि वह अमुक प्रकार का अनुभव कर रहा है। स्वप्न अवस्था में अनुभवकर्ता जानता नहीं कि वह स्वप्न देख रहा है। स्वप्न की घटनाएँ वर्तमान काल से संबंध रखती हैं। दिवास्वप्न की घटनाएँ भूतकाल तथा भविष्यकाल से संबंध रखती हैं।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार स्वप्न चेतना की चार अवस्थाओं में से एक विशेष अवस्था है। बाकी तीन अवस्थाएँ जाग्रतावस्था, सुषुप्ति अवस्था और तुरीय अवस्था हैं। स्वप्न और जाग्रतावस्था में अनेक प्रकार की समानताएँ हैं। अतएव जाग्रतावस्था के आधार पर स्वप्न अनुभवों को समझाया जाता है। इसी प्रकार स्वप्न अनुभवों के आधार पर जाग्रतावस्था के अनुभवों को भी समझाया जाता है।

स्वप्नों का अध्ययन मनोविज्ञान के लिये एक नया विषय है। साधारणतः स्वप्न का अनुभव ऐसा अनुभव है जो हमारे सामान्य तर्क के अनुसार सर्वथा निरर्थक दिखाई देता है। अतएव साधारणतः मनोवैज्ञानिक स्वप्न के विषय में चर्चा करनेवालों को निकम्मा व्यक्ति मानते हैं। प्राचीन काल में साधारण अपढ़ लोग स्वप्न की चर्चा इसलिये किया करते थे कि वे समझते थे कि स्वप्न के द्वारा हम भावी घटनाओं का अंदाज लगा सकते हैं। यह विश्वास सामान्य जनता में आज भी है। आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन इस प्रकार की धारणा को निराधार मानता है और इसे अंधविश्वास समझता है।

स्वप्नों के वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा यह जानने की चेष्टा की गई है कि बाहरी उत्तेजनाओं के प्रभाव से किस प्रकार के स्वप्न हो सकते हैं। सोए हुए किसी मनुष्य के पैर पर ठंढा पानी डालने से उसे प्रायः नदी में चलने का स्वप्न होता है। इसी प्रकार सोते समय शीत लगने से नदी में नहाने अथवा तैरने का स्वप्न हो सकता है। शरीर पर होनेवाले विभिन्न प्रकार के प्रभाव भिन्न भिन्न प्रकार के स्वप्नों को उत्पन्न करते हैं। स्वप्नों का अध्ययन चिकित्सा दृष्टि से भी किया गया है। साधारणतः रोग की बढ़ी चढ़ी अवस्था में रोगी भयानक स्वप्न देखता है और जब वह अच्छा होने लगता है तो वह स्वप्नों में सौम्य दृश्य देखता है।

स्वप्नों के अध्ययन के लिये मनोवैज्ञानिक कभी कभी संमोहन का प्रयोग करते हैं। विशेष प्रकार के संमोहन देकर जब रोगी को सुला दिया जाता है तो उसे उन संमोहनों के अनुसार स्वप्न दिखाई देते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक सोते समय रोगी को स्वप्नों को याद रखने का निर्देश दे देते हैं। तब रोगी अपने स्वप्नों को नहीं भूलता। मानसिक रोगी को प्रारंभ में स्वप्न याद ही नहीं रहते। ऐसे रोगी को संमोहित करके उसके स्वप्न याद कराए जा सकते हैं।

साधारणत. हम स्वप्नों में उन्हीं बातों को देखते हैं जिनके संस्कार हमारे मस्तिष्क पर बन जाते हैं। हम प्रायः देखते हैं कि हमारे स्वप्नों का जाग्रत अवस्था से कोई संबंध नहीं होता। कभी कभी हम स्वप्न के उन भागों को भूल जाते हैं जो हमारे जीवन के लिये विशेष अर्थ रखते हैं। ऐसे स्वप्नों को कुशल मनोवैज्ञानिक संमोहन द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। देखा गया है कि जिन स्वप्नों को मनुष्य भूल जाता है वे उसके जीवन की ऐसी बातों को चेतना के समक्ष लाते हैं जो उसे अत्यंत अप्रिय होती हैं और जिनका भूल जाना ही उसके लिये श्रेयस्कर होता है। ऐसी बातों को विशेष प्रकार के संमोहन द्वारा व्यक्ति को याद कराया जा सकता है। इन स्वप्नों का मानसिक चिकित्सा में विशेष महत्व रहता है।

एक नियंत्रित प्रक्षेप्यास्त्र का उपयोग, जर्मनी द्वारा अधिकृत फ्रास मे, सागरतट पर स्थित वी-२ (V-2) बम सस्थापनो के विरुद्ध किया गया। इन प्रक्षेप्यास्त्रो में २०,००० पाउड विस्फोटक भर कर, इन्हे वायुयान चालक उचित ऊँचाई तक वायुमडल में पहुँचाने के पश्चात् स्वय वापस चला आता था और एक अन्य नियत्रक वायुयान रेडियो और रेडियोवीक्षण द्वारा उसका मार्गदर्शन कर, लक्ष्य तक पहुँचा देता था, किंतु ये बम भी मौसम की खराबी और विरोधी तोपो की मार के कारण विशेष उपयोगी सिद्ध न हुए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम दिनो में अमरीका ने जी बी–१ (G B-1), जे बी-२ तथा जे बी–१० प्रक्षेप्य बमो का विकास भी किया। ये बम जर्मनी द्वारा निर्मित वी–१ (V-1) बमो की नकल थे तथा इनमे वैसा ही इजिन भी लगाया गया था। इन बमो मे ऐसे रॉकेट लगे थे जिनका विस्फोट, इनको पृथ्वी से ऊर्ध्व दिशा मे सीधा उठाकर आवश्यक दिशा में गतिमान कर देता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इस क्षेत्र मे सर्वाधिक सफलता जर्मनो ने वी—१ तथा वी—२ प्रक्षेप्यास्त्र बनाकर प्राप्त की। इन्होने सन् १९२६ में ही इससे संबधित प्रयोग और अनुसधान प्रारंभ कर दिए थे। ये दोनो ही अस्त्र २,००० पाउड भार के विस्फोटकवाले शीर्ष से युक्त होते थे। वी – १ की गति केवल ४०० मील प्रति घटा होती थी। इसके आगमन की पूर्वसूचना इसकी ध्वनि से मिल जाती थी, जिस कारण यह वज्र बम भी कहलाता था और वायुयान विरोधी तोपें इसे मार गिराती थीं। परतु वी — २ की गति ध्वनि की गति से कई गुना अधिक, अर्थात् ३,५०० मील प्रति घटा तक होने के कारण यह नि शब्द आ पहुँचता था और सतर्क होने तक का अवसर नही मिलता था। यह वी — १ से कही अधिक विनाशक सिद्ध हुआ।

वी — १ का रूप छोटे मोनोप्लेन के सदृश, लबाई २९ फुट, पखों की विस्तृति १७ फुट तथा भार ५,००० पाउड होता था। एक अपक्षेपी यत्र (Catapult) इसको वायु में ऊपर फेंक देता था। इसके पश्च भाग में स्थित स्पद जेट (pulse jet) इंजिन द्वारा इसका नोदन (propulsion) तथा उड़ान के समय नियत्रण प्रचलित प्रकार के स्वत पथप्रदर्शक द्वारा होता था। नियत्रण में भूल का निवारण वायुगतिकीय निरोधक पृष्ठों द्वारा, एक परिशुद्ध चुबकीय दिक्सूचक करता था। प्रक्षेप्यास्त्र को जो मार्ग पकडना है उसके अनुसार दिक्सूचक का पूर्वनियोजन कर दिया जाता था और प्रक्षेप के कुछ ही समय पश्चात् अस्त्र वही पथ पकड लेता था। यह अधिक से अधिक ५,००० फुट तक ऊँचा उठ सकता था। आवश्यक ऊँचाई तुंगमापक (altimeter) पर स्थिर कर दी जाती थी। अस्त्र के अग्र भाग मे रखे एक वायु गति-लेख (air log) का भी नियोजन इस प्रकार कर दिया जाता था कि लक्ष्य की ओर आवश्यक दूरी तय कर लेने पर यह प्रक्षेप्यास्त्र को पृथ्वी की तरफ मोड देता था। इसका परास लगभग १६० मील था।

वी — २ नामक बम वी—१ से कही बडा प्रक्षेप्यास्त्र था। द्वितीय विश्वयुद्ध के अत तक इससे रक्षा का कोई उपाय ज्ञात न था। इसकी लबाई ४६ फुट तथा भार लगभग २८,००० पाउंड था। इसके रॉकेट के मोटर मे ऐल्कोहल तथा तरल ऑक्सीजन ईंधन का काम देते थे। एक चबूतरे से यह सीधा ऊपर चढ जाता था तथा प्रक्षेप के लिये शक्ति इसमे लगे मुख्य जेट से प्राप्त होती थी। ६० मील की ऊँचाई तक पहुँच जाने पर, इसका परास २०० मील तथा गति ३,५०० मील प्रति घटा तक होती थी। छूटने के कुछ ही देर पश्चात् इसमें स्थित एक यत्र इसे ऊर्ध्व दिशा से लक्ष्य की ओर इस प्रकार घुमा देता था कि पृथ्वी से लगभग ४५° का कोण बना रहे। एक अन्य यत्र परास (range) के अनुसार उचित समय पर ईंधन की पहुँच रोक देता था। पूरे परास के लिये ईंधन का ज्वलनकाल केवल ६५ सेकड होता था। ईंधन के बद हो जाने पर इसका मार्ग तोप के गोले के प्रक्षेपपथ के सदृश हो जाता था। यह इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाता था कि इसके प्रक्षेपपथ के अधिकाश में वायु से कोई रुकावट न होती थी। इसकी पूँछ में लगे बृहत् पक्ष (fins) इसे स्थायित्व प्रदान करते थे तथा जेट धारा में स्थित छोटे पिच्छफलको (vanes) से क्षेपण के समय मार्ग दर्शन का काम लिया जाता था। वी — २ को लक्ष्यप्राप्ति में भूल केवल लगभग २½ मील पार्श्वतः तथा लगभग ७½ मील परास में संभाव्य थी।

इन अस्त्रो के अतिरिक्त जर्मनो ने रेडियो द्वारा नियत्रित बमों का भी पृथ्वी पर के लक्ष्यो तथा समुद्र पर के जहाजो के विरुद्ध प्रयोग किया। पृथ्वी से वायुमडल तथा वायुमडल से वायुमडल, दोनो प्रकार के वायुयानरोधी प्रक्षेप्यास्त्रो का विकास भी युद्ध के अत समय जर्मन कर रहे थे।

युद्धोत्तर काल — युद्ध के बाद नियत्रित प्रक्षेप्यास्त्रो के विकास के लिये दीर्घकालिक कार्यक्रम बनाए गए। इनमें पराध्वनिक (supersonic) गतियों, उच्च वायुमडलीय घटनाओं, नोदन (propulsion), इलेक्ट्रानिकी, नियत्रण तथा मार्गदर्शन सबधी अन्वेषणो पर जोर दिया गया तथा प्राप्त फलो के अनुसार पृथ्वीतल से पृथ्वीतल, पृथ्वी से वायु, वायु से वायु तथा वायु से पृथ्वी पर मार करनेवाले, नियत्रित प्रक्षेप्यास्त्रो के विकास का कार्यक्रम निश्चित किया गया।

इस चेष्टा के फलस्वरूप प्राप्त प्रक्षेप्यास्त्रों में एक का नाम एयरो बी (Aero bee) है। इसका उपयोग ऐसे परियोजनों के निमित्त मौलिक आँकडे एकत्रित करने के लिये किया गया, जिनमें हजारों मील प्रति घटा की गति, सौ मील तक की ऊँचाई तथा बारह हजार मील तक का परास प्राप्त हो। पेंसिल की आकृति का यह प्रक्षेप्यास्त्र १५० फुट ऊँची मीनार से छोडा जाता था और इसका रॉकेट इजिन, जिसमें तरल ईंधन प्रयुक्त होता था, एक मिनट से भी कम काल तक कार्य कर और लगभग ३,००० मील प्रति घटा की गति उत्पन्न कर, इसे वायुमडल में दीर्घ ऊँचाई पर पहुँचा देता था। एयरो बी की लबाई २१ फुट तथा ६ फुट लबे वर्धक (booster) सहित भार १,५०० पाउड से अधिक होता था और यह पृथ्वीतल से ७० मील तक की ऊँचाई तक पहुँच जाता था।

ध्वनि से कम गतिवाले प्रक्षेप्यास्त्रों में ऊपर उठने के लिये मुख्य पक्षों की, अनुदैर्घ्य अक्ष पर स्थिरता के लिये किसी प्रकार के स्थायी-

रेचन हो जाता है जो बचपन की अवस्था की होती हैं। यदि ऐसे स्वप्न मनुष्य को न हो तो उसका मानसिक विकास रुक जाय अथवा उसे किसी न किसी प्रकार का मानसिक रोग हो जाय। डाक्टर फ्रायड ने दूसरी महत्व की बात यह बताई है कि स्वप्न निद्रा का विनाशक नहीं वरन् उसका रक्षक है। भयानक अथवा उत्तेजक स्वप्नों से दमित उत्तेजना बाहर आकर शांत हो जाती है। स्वप्न मानव अवरण की जटिल समस्याओं को हल करने का एक मार्ग है। फ्रायड ने तीसरी बात यह बताई कि स्वप्न न तो व्यर्थ मानसिक अनुभव है और न उसमे देखे गए दृश्य निरर्थक होते हैं। अप्रिय स्वप्नो द्वारा व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा होती है। स्वप्नो का अध्ययन करना मन के आंतरिक रूप को समझने के लिये नितांत आवश्यक है। स्वप्नो को डाक्टर फ्रायड ने मनुष्य के आंतरिक मन की कुंजी कहा है।

स्वप्न संबंधी बातचीत से रोगी के बहुत से दमित भाव चेतना की सतह पर आते हैं और इस तरह उनका रेचन हो जाता है। किसी रोगी के अनेक स्वप्न सुनते सुनते और उनका अर्थ लगाते लगाते रोगी का रोग नष्ट हो जाता है। मानसिक चिकित्सा की प्रारंभिक अवस्था में रोगी को प्राय. स्वप्न याद ही नही रहते। जैसे जैसे रोगी और चिकित्सक की भावात्मक एकता स्थापित होती है वैसे वैसे उसे स्वप्न अधिकाधिक होने लगते हैं तथा वे अधिकाधिक स्पष्ट भी होते हैं। एक ही स्वप्न कई प्रकार से होता है। स्वप्न का भाव अनेक प्रकार के स्वप्नो द्वारा चिकित्सक के समक्ष आता है।

चार्ल्स युंग ने स्वप्न के विषय में कुछ बातें डाक्टर फ्रायड से भिन्न कही हैं। उनके कथनानुसार स्वप्न के प्रतीक सभी समय एक ही अर्थ नही रखते। स्वप्नो के वास्तविक अर्थ जानने के लिये स्वप्नद्रष्टा के व्यक्तित्व को जानना, उसकी विशेष समस्याओ को समझना और उस समय देश, काल और परिस्थितियो को ध्यान में रखना नितांत आवश्यक है। एक ही स्वप्न भिन्न भिन्न स्वप्नद्रष्टा के लिये भिन्न भिन्न अर्थ रखता है और एक ही द्रष्टा के लिये भिन्न भिन्न परिस्थितियों में भी उसके भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं। अतएव जब तक स्वयं स्वप्नद्रष्टा किसी अर्थ को स्वीकार न कर ले तब तक हमें यह नही जानना चाहिए कि स्वप्न का वास्तविक अर्थ प्राप्त हो गया। डॉक्टर फ्रायड की मान्यता के अनुसार अधिक स्वप्न हमारी काम वासना से ही संबंध रखते हैं। युग के कथनानुसार स्वप्नो का कारण मनुष्य के केवल वैयक्तिक अनुभव अथवा उसकी स्वार्थमयी इच्छाओ का ही दमन मात्र नही होता वरन् उसके गंभीरतम मन की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ भी होती हैं। इसी के कारण मनुष्य अपने स्वप्नों के द्वारा जीवनोपयोगी शिक्षा भी प्राप्त कर लेता है।

चार्ल्स युंग के मतानुसार स्वप्न केवल पुराने अनुभवो की प्रतिक्रिया मात्र नही हैं वरन् वे मनुष्य के भावी जीवन से संबंध रखते हैं। डॉक्टर फ्रायड सामान्य प्राकृतिक जडवादी कारणकार्य प्रणाली के अनुसार मनुष्य के मन की सभी प्रतिक्रियाओ को समझाने की चेष्टा करते हैं। इनके प्रतिकूल डॉक्टर युंग मानसिक प्रतिक्रियाओ को मुख्यत: लक्ष्यपूर्ण सिद्ध करते हैं। जो वैज्ञानिक प्रणाली जड़ पदार्थों के व्यवहारो को समझाने के लिये उपयुक्त होती है वही प्रणाली चेतन क्रियाओ को समझाने में नही लगाई जा सकती। चेतना के सभी कार्य लक्ष्यपूर्ण होते हैं। स्वप्न भी इसी प्रकार का एक लक्ष्यपूर्ण कार्य है जिसका उद्देश्य रोगी के भावी जीवन को नीरोग अथवा सफल बनाना है। युंग के कथनानुसार मनुष्य स्वप्न द्वारा ऐसी बातें जान सकता है जिनके अनुसार चलने से वह अपने आपको अनेक प्रकार की दुर्घटनाओ और दु.खों से बचा सकता है। इस तथ्य को उन्होंने अनेक दृष्टांतो के द्वारा समझाया है। [ला० शु०]

स्वयंचालित प्रक्षेप्यास्त्र अथवा नियंत्रित प्रक्षेप्यास्त्र (guided missile), सैनिक भाषा में यंत्र द्वारा चलनेवाले ऐसे क्षेपणीय यान या वाहन को कहते हैं जिसके गतिमार्ग को उस यान के अंदर स्थित यन्त्रों द्वारा बदला या नियन्त्रित किया जा सकता है। इस नियन्त्रण का आयोजन प्रयाण से पूर्व, अथवा प्रक्षेप्यास्त्र के वायु में पहुँच जाने पर, दूर से किया जा सकता है, या प्रक्षेप्यास्त्र में ऐसी युक्ति लगी होती है जो विशिष्ट लक्षणोवाले लक्ष्य तक उस अस्त्र को पहुँचा देती है।

प्रथम विश्वयुद्ध — अमरीका में प्रथम विश्वयुद्ध के समय में ही स्वनियन्त्रित वायुयानो से संबंधित प्रयोग किए गए थे, किंतु द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व ऐसे वायुयानो तथा दीर्घ परास नियंत्रित प्रक्षेप्यास्त्रों के बारे में कुछ अधिक न किया जा सका।

द्वितीय विश्वयुद्ध — इस युद्ध में अमरीका की वायुसेना ने ऐज़ॉन (Azon) नामक १,००० पाउंड के बम के प्रयोग में आंशिक सफलता पाई। इस बम को छोडने के पश्चात् इसके पुच्छपृष्ठतलों को रेडियो तरंगो से प्रभावित कर, चलानेवाला, इसको केवल दिगंश (Azimuth only) में, अर्थात् पार्श्वत:, नियंत्रित कर सकता था, किंतु १०,००० फुट से अधिक की ऊँचाई से इसका उपयोग व्यावहारिक सिद्ध न हुआ। प्रहार में इससे अधिक सफलता जी बी-१ (G B — 1) नामक संसर्पक (glide) बम से मिली, जो २,००० पाउंड का सामान्य बम था। इसमे १२ फुट का एक पंख जोड दिया गया था। लक्ष्य से २० मील की दूरी से, इसका पूर्व नियंत्रण कर, इसे छोड़ दिया जाता था। इसके पश्चात् ऐसे संसर्पक बमो का निर्माण हुआ, जिनके परास तथा पथच्युति, दोनों का नियंत्रण रेडियो द्वारा किया जाता था। इसके भी पश्चात् ऐसे जी-बी-४ (G B-4) तथा ऐज़ॉन प्रकार के बमों का निर्माण किया गया, जिनके अंदर रेडियोवीक्षण (Television) प्रेषित्र लगे रहते थे और जिनका नियंत्रण रेडियो से किया जा सकता था। किंतु रेडियोवीक्षण यंत्र की अपर्याप्त विभेदनक्षमता तथा मौसम से उत्पन्न लघु दृश्यता के कारण ऐसे बम भी सफल सिद्ध न हुए। सन् १९४५ में लक्ष्य से निकलनेवाली ऊष्मा से मार्गदर्शन पानेवाले बम बनाए गए, जो समुद्र पर जहाजो के विरुद्ध भी काम मे लाए जा सकते थे, किंतु तब तक युद्ध का अंत हो गया था।

इसी समय यूरोप में वेयरी विली (Weary Willie) नामक

सकता है। ये चारो विधियाँ अलग अलग या संयुक्त रूप से काम में लाई जा सकती हैं, परतु साधारणत. उडान के अधिकाश भाग में प्रथम तीनो में से किसी एक का प्रयोग किया जाता है और चतुर्थ प्रणाली यथार्थ लक्ष्यभेद के लिये काम आती है।

स्वयचालित प्रक्षेप्यास्त्रों का महत्व — उच्चगति, दीर्घ परास, लक्ष्यप्राप्ति में अचूकता तथा स्वत चालन की क्षमता आदि गुणो के कारण भविष्य के युद्धो में इन अस्त्रो की महत् तथा व्यापक उपयोगिता सभाव्य है, किंतु इनके उत्पादन में बडा खर्च होता है तथा इनके प्रयोग के लिये उच्च प्रशिक्षित प्रविधिज्ञो, विद्युत् उपकरणो से सज्जित उडान स्थलों (Launching sites), जनशक्ति तथा विपुल सामग्रियो की आवश्यकता होती है। ये सब राष्ट्रो के लिये साध्य नही हैं। ऐटम बम के विकास के पश्चात् इन बमों का उपयोग स्वयचालित प्रक्षेप्यास्त्रो द्वारा भी संभव हो गया है। इसलिये उपरिलिखित कठिनाइयो के रहते हुए भी, ऐटम बम की अपरिमित विनाशकारी शक्ति से विपक्षी का ध्वस करने के लिये भविष्य के युद्धो मे इन प्रक्षेप्यास्त्रों का उपयोग अवश्यभावी है।

प्रक्षेप्यास्त्रों से बचाव की रीतियाँ — प्रत्येक अस्त्र की मार से बचाव की रीति का आविष्कार आवश्यक है। स्वयचालित प्रक्षेप्यास्त्रो से बचाव इसी जाति के ऐसे विरोधी प्रक्षेप्यास्त्र द्वारा ही सभव है जिसमें खोजने और लक्ष्यप्राप्ति के लिये मार्गदर्शन करानेवाली युक्तियाँ लगी हों। आक्रमणकारी प्रक्षेप्यास्त्र को वायुमडल मे ही ये विरोधी प्रक्षेप्यास्त्र खोज निकालेंगे और लक्ष्य तक पहुँचने के पूर्व ही उसे नष्ट कर देंगे। तलाश, लक्ष्य की पहचान तथा भार नियत्रण के लिये उन्नत रेडार यंत्र और नए प्रकार की वायुयाननाशक तोपें, जो आज से कही अधिक क्षिप्रता से काम करें, संभवतः बचाव के लिये उपयोगी सिद्ध हो। इन सब पर निरतर और बड़े पैमाने पर खोज जारी है। [भ० दा० व०]

स्वयचालित मशीनें (Automatic Machines)

ऐसी मशीनें हैं जो मानव प्रयास के अभाव में भी किसी प्रचालन चक्र को पूर्णत या अशत. सचालित करती हैं। ऐसी मशीनें केवल पेशियो का ही कार्य नही करतीं वरन् मस्तिष्क का कार्य भी करती हैं। स्वयचालित मशीनें पूर्ण रूप से या आशिक रूप से स्वयचालित हो सकती हैं। ये निम्नलिखित प्रकार का कार्य कर सकती हैं .

१ माल तैयार करना
२. माल को सँभालना
३ माल का निरीक्षण करना
४ माल का संग्रह करना
५. माल को पैक करना

स्वयचालित मशीनो के लाभ ये हैं : १ श्रम की लागत में कमी, २. उत्पादन समय में कमी अर्थात् नियमित समय में अधिक उत्पादन करना, ३ प्रचालक की आवश्यक कुशलता में कमी का होना, ४. तैयार माल के गुणो में सुधार, ५. अदल बदल में उत्कृष्टता, ६ प्रचालन क्षति में कमी का होना तथा ७ औजारो और उनकी व्यवस्था में कमी का होना।

इन लाभों के कारण जहाँ पहले केवल मनुष्यो से काम लिया जाता था, जैसे कार्यालयो, गृह और सडक के निर्माणो, खनन, कृषि और कृषि के अन्य कामकाजो तथा अनेक उद्योग धधों में, वहाँ अब स्वयचालित मशीनें पूर्ण रूप से या आशिक रूप से कार्य कर रही हैं।

किसी संयंत्र में कितना स्वचालित अश होगा, यह लागत, प्राप्यता और अन्य प्रतिबधो (limitations) पर निर्भर करता है। किसी सयत्र के समस्त भागों को या सयत्र के किसी एक भाग को या किसी संयत्र की अनेक मशीनो या विभागो को स्वयचालित रखना सभाव्य और व्यावहारिक हो सकता है। कुछ सयत्र ऐसे हो सकते हैं कि उनका कुछ अंश ही स्वयचालित रखना व्यावहारिक हो सकता है। कुछ स्वयचालित मशीनो के उदाहरण निम्नलिखित हैं

१. पैक करने की मशीन — कारखाने के तैयार माल को पैक करने की अनेक स्वयंचालित मशीनें आज मिलती हैं। तैयार माल लपेटने के कागज, दफ्ती के डिब्बे आदि आवश्यक पदार्थ परिचालक द्वारा मशीन में डाल दिए जाते हैं और कागज के लपेटने, डिब्बे में भरने आदि पैक करने का सारा काम मशीन द्वारा ही होता है। यदि आवश्यक हो तो डिब्बे या खोल में रखी वस्तुओ की गिनती या भार नियत्रित करने की भी व्यवस्था रहती है, जैसे सिगरेट बक्स में सिगरेट की सख्या, दियासलाई की डिबियो में लकडी की सख्या, टॉफी डिब्बे में टॉफी की संख्या इत्यादि।

२. बोतल भरने की मशीन — ऐसी अनेक प्रकार की मशीनें बनी हैं। इनमें बोतलो की सफाई, वाछित द्रवों (शर्बत, तेल, फलरस, शराब आदि) से भराई और मुहरलगाई आदि सब कार्य स्वत होते हैं।

३. डिब्बाबदी मशीन — खाद्य या अन्य पदार्थों को डिब्बे मे बद करने का समस्त कार्य आज स्वयंचालित मशीनो द्वारा होता है। इसमें वाछित पदार्थों को डिब्बे में भरना, मोहर लगाना और पैक करना सब संमिलित है।

४. कार्यालय मशीन — आधुनिक कार्यालयो में काम करनेवाली अनेक स्वयचालित मशीनें — लिखने की, पुनरुत्पादन की, पजीकृत करने की, गणना करने की, सगणक आदि बनी हैं। इन मशीनों में नकद कारबार का अकन भी होता है, पुर्जे छप जाते हैं, रुपया निकालने का काम भी होता है। सगणक में सामान्य जोडने घटाने के अतिरिक्त अनेक पेचीदी गणनाओ का हल भी निकल आता है। सगणक अनेक काम कर सकते हैं पर ये बहुत कीमती होते हैं। उनका प्रचलन इतना सामान्य नही है। इनके अतिरिक्त सूत कातने, कपडा बुनने, फसल काटने और तौलने आदि की भी स्वयचालित मशीनें बनी हैं।

भिन्न भिन्न प्रकार के उद्योग धधो में काम आनेवाली जो अनेक प्रकार की विशिष्ट मशीनें आज बनी हैं उन सब का वर्णन यहाँ सभव नहीं है।

धातु शिल्प उद्योगों में काम आनेवाली स्वयचालित मशीनें — गुल्लियाँ और साँचे पहले जहाँ हाथो से बनते थे वहाँ वे अब

कारी की तथा सहपक्षों (aelerons) और/या पतवारों तथा उत्थापकों द्वारा नियंत्रण की आवश्यकता होती है। जेट तथा रॉकेट से चालित प्रक्षेप्यास्त्रों की गति शीघ्र ही पराध्वनिक हो जाती है। इन्हें वायु मे सँभालने के लिये कम वायुगतिकीय (aerodynamic) पृष्ठो की आवश्यकता होती है। इनके पुच्छ भाग मे स्थायीकारक पख (fins) मुख्यतः आवश्यक होते हैं। जब तक प्रक्षेप्यास्त्र वायुमडल में रहता है, केवल तब तक पतवार तथा उत्थापकों (elevators) की आवश्यकता क्षैतिज तथा ऊर्ध्वाधर तलों में शीर्ष का दिशा-परिवर्तन करने के लिये पड़ती है। उस गति के प्राप्त करने के पूर्व जब ये तल कार्यकारी हो जाते हैं तथा प्रक्षेप्यास्त्र के वायुमडल के बाहर पहुँच जाने के पूर्व, मुख्य जेट मे स्थित विच्छुफलको द्वारा या जेट की दिशा बदलकर, नियंत्रण करना आवश्यक होता है।

पराध्वनिक गति प्राप्त हो जाने पर, नियंत्रित प्रक्षेप्यास्त्रों के बहिस्तलो का ऊष्मारोधी धातुओ से बना होना आवश्यक होता है, अन्यथा वायुघर्षण से गरम होकर ये अपरूप या ऑक्सीकृत हो जाएँगे। इस प्रकार की उच्च गति जेट नोदन से प्राप्त होती हैं। जेट इजिनों मे ज्वलन की गैसो से प्रणोद (thrust) उसी प्रकार प्राप्त होता है जैसे बच्चों के खिलौना गुब्बारे में भरी वायु के सहसा निकल जाने से। यों तो इजिन के धारक पात्र के अदर की सब दीवारो पर गैसो के अविलंब ज्वलन से दाब पड़ती है, पर जो प्रणोद प्रक्षेप्यास्त्र को गति देता है, उसकी उत्पत्ति जेट इजिन के पुच्छ भाग मे ज्वलन गैसो के बाहर निकल जाने के लिये बने छिद्रों से विपरीत दिशा मे स्थित, इंजिन की दीवार पर पड़े दबाव के कारण होती है।

संमिश्र ईंधन के विस्फोट के लिये वायु की आवश्यकता नही होती। इजिन की खोल (Casing) के अग्रपृष्ठ पर ऐसे विस्फोट द्वारा पड़नेवाले प्रणोद या धक्के से ही प्रक्षेप्यास्त्र को गति मिलती है। इसलिये जेट से चालित प्रक्षेप्यास्त्र बहिरतरिक्ष में भी, जहाँ वायु नही होती, यात्रा कर सकता है।

जेट इजिनों के विभेद — ये इजिन मुख्यत दो प्रकार के होते हैं : (१) रॉकेट तथा (२) वायुनली (Airduct) वाले। जैसा ऊपर कहा गया है, रॉकेट के कार्य मे वायु की आवश्यकता नही होती, क्योकि इसमे ईंधन और उसका दाहक, दोनो उपस्थित रहते हैं। ऐलकोहल—तरल ऑक्सीजन सयुक्त प्रणोदक, जिसका प्रयोग वी—२ रॉकेट में किया गया, साधारणत ऐसे ईंधन के रूप में प्रयुक्त होता है।

वायुनलिक वाले जेट तीन प्रकार के, अर्थात् टर्वोजेट (Turbo Jets), स्पद जेट (Pulse Jets) तथा रैमजेट (Ram Jets), होते हैं। ये तीनो जेट वायुमडल में से गुजरते हुए, रॉकेट के अग्रभाग मे स्थित एक नलिका द्वारा वायु को खीच लेते हैं। इस वायु का सपीडन हो जाता है और यह रॉकेटो में भरे ईंधन, गैसोलीन या किरोसीन तेल, को जला देती है। रॉकेटो की तुलना मे वायुनलिका प्रकार का इजिन इसलिये अधिक सुविधाजनक तथा दक्ष होता है क्योकि इनमें ईंधन को जलाने के लिये वायु काम में आती है तथा इस कार्य के लिये ईंधन के साथ अन्य ऑक्सीकारक पदार्थ भी नही लादना पड़ता। इस कारण कम भार के ईंधन मे आवश्यक प्रणोद उत्पन्न हो जाता है। यह स्पष्ट है कि वायुनलिका इजिनवाले प्रक्षेप्यास्त्रो का प्रक्षेप पथ वायुमडल के भीतर ही होगा, जबकि रॉकेट इजिनवाले प्रक्षेप्यास्त्र अतरिक्ष में यात्रा कर सकते हैं। वर्तमान काल में चद्रमा तथा ग्रहो तक यात्रा करनेवाले नव प्रक्षेप्य यानो मे रॉकेट इजिनो का प्रयोग होता है।

प्रक्षेपण — स्पद जेट तथा रैम जेट प्रकार के रॉकेटो को वायु में ऊपर उठने के लिये सहायता की आवश्यकता होती है, किंतु रॉकेट तथा टर्वो जेट प्रकार के इजिनो मे स्वप्रक्षेपण की शक्ति रहती है। फिर भी सामान्यत सभी प्रकार के प्रक्षेप्यास्त्रो या प्रक्षेप्यानो को वायुमडल के उच्च स्तरो तक पहुँचाने के लिये गुलेल सदृश अपक्षेपी, तोप या जाटो (Jato) का प्रयोग किया जाता है। जाटो में ऐसे छोटे रॉकेटो से काम लिया जाता है जो प्रक्षेप्य के ऊपर पहुँच जाने पर स्वत उससे अलग हो जाते हैं।

स्थायीकरण — प्रक्षेपण के समय प्रक्षेप्यास्त्र के अनुदैर्घ्य स्थायीकरण के लिये वायुगतिकीय स्थायीकारी तलो मे काम लिया जाता है। बाद मे प्रक्षेपण के पश्चात् प्रक्षेप्यास्त्र मे अपने अक्ष पर घूर्णन उत्पन्न हो जा सकता है। यदि घूर्णन होने दिया जाय तो पतवार और उत्थापक नियत्रण तल क्रमानुसार ऊर्ध्व तथा क्षैतिज समतलों मे नही रह पाएँगे और मार्गदर्शन सभव नही होगा। नियत्रण तथा मार्गदर्शन के समय इस घूर्णन का रोकने के लिये प्रक्षेप्यास्त्र में एक छोटा चबूतरा लगा रहता है, जिसके परित प्रक्षेप्यास्त्र के अनुदैर्घ्य अक्षीय स्थितिसूचक सकेतो का उपयोग घूर्णन रोकने मे काम आनेवाले वायुगतिकीय नियत्रको को कार्यकारी करने मे किया जाता है। इस कृत्रिम चबूतरे का तल जाइरो (gyro) द्वारा इस प्रकार निर्धारित होता है कि किसी क्षण पृथ्वी के जिस बिंदु के ऊपर प्रक्षेप्यास्त्र उड रहा है उस बिंदु पर पृथ्वी के स्पर्शी समतल से चबूतरे का तल समानातर रहे।

नियंत्रण — स्थायीकृत प्रक्षेप्यास्त्र का नियत्रण चार प्रकार से होता है। प्रथम, अर्थात् 'पूर्वनिर्धारण' रीति में, प्रक्षेप्यास्त्र में स्थित यंत्रो को इस प्रकार नियोजित कर दिया जाता है कि अस्त्र निश्चित पथ पर चले। यदि वह इस पथ के बाहर चला जाता है, तो मार्गदर्शक यत्रो से ऐसे सकेत निकलते हैं जो पतवार, या उत्थापक या दोनो की स्थितियो में परिवर्तन कर प्रक्षेप्यास्त्र को सही पथ पर ला देते हैं। दूसरी रीति को 'आज्ञा प्रणाली' (Command system) कहते हैं। इसमे प्रक्षेप्यास्त्र के पथ को नियत्रण केंद्रो से रेडार द्वारा जाँचते रहते हैं। विपथगामी होने पर, रेडियो या रेडार सकेत द्वारा प्रक्षेप्यास्त्र का लक्ष्य तक मार्गदर्शन किया जाता है। तीसरी रीति, अर्थात् 'रश्मिदड आरोहण' (Beam Riding) मे कई केंद्रो से प्रक्षेप्यास्त्र तक युगपत् रेडियो सकेत भेजे जाते हैं। इनकी पहुँच के समयो की तुलना से एक विशेष यत्र प्रक्षेप्यास्त्र की स्थिति का निर्णय, और यदि आवश्यक हो, तो पथपरिवर्तन कर उसे सही मार्ग पर ले जाता है। चतुर्थ प्रणाली 'लक्ष्यसिद्धि' (Homing) पद्धति कहलाती है। इस प्रणाली में प्रक्षेप्यास्त्र में स्थित यत्र का मार्गदर्शन लक्ष्य से उत्सर्जित विद्युत्-चुंबकीय ध्वनि, ऊष्मा अथवा प्रकाशतरगो से होता है। यह उत्सर्जन लक्ष्य से प्राकृतिक रूप से, अथवा उससे परावर्तन कराकर, प्राप्त हो

है और ओजारो की गति कटिका द्वारा द्रवचालित या वैद्युतीय युक्तियो से नियन्त्रित की जाती है। अनुरेखक नियन्त्रण एक, दो या तीन विमाओ (dimensions) में कार्य कर सकते हैं। एक दिशा में नियन्त्रण खरादो पर होता है जहाँ ओजार भीतर तथा बाहर पल्याण (Saddle) के साथ गति करता है। अस (shoulder) में पल्याण का अनुदैर्घ्य सचलन स्वतः पकड में आ जाता है।

द्विविम अनुरेखक नियन्त्रण या तो कर्तक (Cutter) को घुमाता है या समकोणिक दिशा में कार्य करता है। टेंपलेट के सपर्क का कटिका, विक्षेप की दिशा और मात्रा के अनुपात में सकेत भेजता है। इलेक्ट्रानीय (Electronic) युक्ति दो सभरण (two feed) मोटरों की गति नियन्त्रित करते हैं ताकि मच (table) की परिणामी (Resultant) गति कटिका के साथ ससर्ग मे टेंपलेट पर स्पर्शीय हो।

संख्यात्मक नियन्त्रण — प्रतिलिपि विधि में, जैसा ऊपर कहा गया है, टेंपलेट या प्रतिरूप का उत्पादन आवश्यक है जो स्वय में कठिनाइयाँ और विलब प्रस्तुत कर सकता है। इलेक्ट्रानीय नियन्त्रण टेंपलेट या प्रतिरूप के प्रयोग का निराकरण करता है तथा चुबकीय और छिद्रित (Perforated) टेप द्वारा सचित सूचनाओं से विभिन्न भागो का यथार्थता से पुनरुत्पादन होता है। टेप पर अकित सूचना की व्याख्या के तथा उचित समय पर m/c को सकेत भेजने के लिये उपयुक्त उपस्कर (equipment) की आवश्यकता होती है। ये सकेत m/c पर एक नियन्त्रक युक्ति द्वारा ग्रहण किए जाते हैं जो m/c को आदेश पालन कराते हैं। m/c ओजारों के सख्यात्मक नियन्त्रण के दो प्रमुख वर्ग हैं :

(1) m/c ओजार स्लाइडो का नियत स्थानीकरण अर्थात् कर्तन से पहले पूर्वनिर्धारित स्थानों पर ओजारो का घुमाना, जैसे छेदन (Drilling), रीमिंग (Reaming) और वेधन (Boring)।

२ बहुत सी स्लाइडों का सतत नियन्त्रण जहाँ उनकी आपेक्षिक स्थितियाँ और वेग अवश्य नियन्त्रित होने चाहिए। यह वक्र तलों को मशीनित करने के लिये प्रयुक्त होता है जहाँ ओजार हमेशा चलते रहना चाहिए जिसमें मशीन वाछित वक्र बनाती रहे।

इन दोनों प्रणालियों में कुछ बुनियादी साम्य हैं जिनमें ४ तत्व मुख्य हैं —

१ निविष्ट (In put) युक्ति
२ मापन
३. तुलना
४ सर्वोस (Servos) की स्थिति

मशीनिंग के लिये पूरी सूचना 'प्रक्रम इंजीनियर' द्वारा तैयार की जाती है ताकि मशीन की सभी गतियाँ पूर्व निर्धारित रहें और मशीन परिचर (attendant) पर आश्रित न हो।

इसमे निम्न सोपान हैं —

१ सभी यात्रिक विवरणों को ज्ञात करना — यथा, कर्तक का प्रकार, कर्तन का क्रम (Order) और कर्तनों की संख्या।

२. उपयुक्त दत्त (Datum) से सभी प्रमुख विमाओ का परिकलन (calculation)

द्विविम नियन्त्रण हेतु सभी बिंदुओ के x और y निर्देशाकों (Coordinates) की गणना चुने हुए दत्त से कर ली जाती है। यह पार्ट (Part) के ब्लू प्रिंट (Blue print) से प्राप्त होता है।

३ कार्यक्रम निर्धारण — मशीनिंग के लिये विस्तृत निर्देश अको और शब्दो का प्रयोग कर सकेतो (Codes) मे तैयार किए जाते हैं।

कर्तक के व्यास, कर्तक भरण दर और नियन्त्रण दर आदि की रचना के लिये सकेत प्रयुक्त होते हैं।

४ ये निर्देश विशिष्ट भाषा मे कार्डों पर छिद्रित होते हैं। ये छिद्रित कार्ड एक परिकलन यत्र (Computor) मे छोडे जाते हैं जो कागज के टेप पर बने छिद्रित छेदों में विशिष्ट भाषा का अनुवाद कर देते हैं। यदि बीच की स्थितियों की सूचना की आवश्यकता पडती है तो टेप, परिकलनयन्त्र पर लगा दिया जाता है जो कर्तक की निर्देशाक स्थिति की गणना कर देता है, वह फिर चुंबकीय टेप पर लपेट दिया जाता है जिसका उपयोग निविष्ट माध्यम की तरह m/c ओजार नियन्त्रक ईकाई के लिये किया जाता है।

५ टेप पाठ्याक सिरे पर लगाते हैं जो नियन्त्रण इकाई या नियन्त्रक को निर्देश भेजता है और बाद में मशीन स्लाइडों को नियन्त्रित करता है। वही टेप बार बार प्रयुक्त हो सकता है और इस प्रकार चक्र (cycle) की पुनरावृत्ति होती रहती है।

प्रति संभरण (Feed back) — वाछित स्थिति से किसी विचलन को सही करने के लिये इसका प्रयोग होता है। यह वाछित शर्त से m/c की च्युति (Drift) प्रवृत्ति को दूर करने का साधन है। उदाहरणतया यदि m/c मच की स्थिति नियन्त्रित की जाती है, तो प्रतिसभरण नियन्त्रक को वापसी सकेत भेजता है तथा आवश्यकता पडने पर सकेतों में शुद्धि की जाती है।

मच स्थिति की त्रुटि निकाली जाती है तथा सकेत नियन्त्रण इकाई को भेजे जाते हैं जो नियमन मोटर द्वारा मच स्थिति को शुद्ध कर देते हैं।

मशीन ओजारो के प्रयुक्त होने पर सख्यात्मक नियन्त्रण, सभी कर्तक चालो, पूर्ण पथ, वर्क पीस के सापेक्ष कर्तक की सभरण दर तथा अन्य सहायक फलन (auxiliary function) यथा खरादन, कर्तन, तरल जोडतोड (on and off) आदि के नियन्त्रण हेतु, कार्य करता है। [रा० नु०]

स्वयंभू ये अपभ्रंश भाषा के महाकवि थे। अभी तक इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं — पउमचरिउ (पद्मचरित)। रिट्ठणेमिचरिउ (अरिष्ट नेमिचरित या हरिवश पुराण) और स्वयभू छदस्। इनमे की प्रथम दो रचनाएँ काव्यात्मक तथा तीसरी प्राकृत-अपभ्रंश छदशास्त्रविषयक है। ज्ञात अपभ्रंश प्रबध काव्यो में स्वयभू की प्रथम दो रचनाएँ ही सर्वप्राचीन, उत्कृष्ट और विशाल पाई जाती

मशीनो से बनने लगे है। तार खीचना, वहिर्वेधन (extrusions) आदि सब काम स्वयचालित मशीनो से होते हैं। धातु की चादरें, डाई आदि बड़ी मात्रा में बनते और सपीडित वायु द्वारा बाहर निकाल फेंके जाते है।

मशीनी औजारो में स्वचालन का प्रचलन बहुत बढ़ गया है। इनसे लागत मे बहुत कमी होती है।

खराद और पेंच मशीन — इनका उपयोग छड या चक्का (Chuck) बनाने मे होता है। चक्का बनाने में हाथ से पदार्थ डाला जाता है तथा काम आरभ होता है और विभिन्न सरको (Slides) की गति स्वयंचालित होती एव चाल और भरण स्वतः नियत्रित होता है। लादने और उतारने को छोड़कर अन्य सब कार्यों के चक्र स्वयचालित होते हैं।

दूसरे प्रकार के औजार में मशीन में छड का भरण होता और समस्त चक्र तब तक स्वयंचालित होता है जब तक समान छड खतम नही हो जाता। अब नवीन छड डालकर चक्र पुनः चालित होता है।

मशीन एक टकुआवाली या बहुटकुआवाली हो सकती है। बहुटकुआवाली मशीन में कई छड़ भ्रमित होते हैं और साथ साथ मशीन का कार्य चलता रहता है।

स्वयंचालित मशीनी औजारो के अन्य उदाहरण हैं — पेषण चक्की, गियर काटने की मशीन, मिलिंग मशीन, छेदने की मशीन इत्यादि।

प्रतिलिपि मशीन (प्रतिलिपित्र) — खराद और पेषण के लिये यदि परिचालन को बार बार करना पडता है, तो यह कार्य परिचालक के लिये बहुत थकानेवाला और उकतानेवाला होता है। ऐसे स्थान मे प्रतिलिपि का वैसा ही नमूना प्राप्त करने के लिये इसका उपयोग बहुत सामान्य हो गया है और इसमें पदार्थ की बडी यथार्थ प्रतिलिपि प्राप्त होती है।

रूपद (टेंपलेट, Template) के ससर्ग मे कटिका (Stylus) मशीन स्लाइडो को चालू करता है और औजार वाछित मार्ग का अनुसरण करते हुए समोच्च रेखा (Contour) का पुनरुत्पादन करते हैं। कटिका उन वैद्युतीय या द्रवचालित युक्तियो (Hydraulic devices) को प्रचालित (operate) कर सकती है जो मशीन स्लाइडों को चलानेवाली मोट रो को नियत्रित करती है।

स्थानांतरण मशीन — ये पूर्ण स्वचालन मात्रा (Degree of automation) की विशिष्ट मशीने हैं। इनकी समाकलित (integrated) उत्पादनरेखा में स्वयचालित मशीनो के साथ स्थान स्थान से सरल रेखा में सूचक (Indexing) अथवा स्थायक (Fixtured) भागो का संयोजन (Combination) उत्पादनदर बहुत अधिक है और व्यवहारतः वर्क पीस (Work piece) तलो की संख्या की कोई सीमा नही है, जिन्हे मशीनित किया जा सकता है। क्योकि युक्तियाँ मशीनगत प्रचालनो को पूर्ण करने के लिये अभिविन्यस्त (Orienting) या वर्क पीसो को निकालने के लिये अपनाई जा सकती हैं। ये मशीनें प्राय. द्रवचालन से सचालित होती हैं अथवा वैद्युतीय विधि से नियत्रित होती हैं।

स्थानांतरण मशीनों का प्रमापन — मशीन चलते समय विशिष्ट मशीनो में यथार्थता का निर्दिष्ट नियत्रण वाछित है। चूँकि बहुत से प्रचालन होते हैं अत स्थानातरण मशीनो में कुछ अतरप्रक्रम और बहिर्प्रक्रम प्रमापन प्रविधियो का उपयोग होता है। ढली हुई वस्तुओ और मशीनित तलो की जाँच तथा विभिन्न भागों की स्वत. अस्वीकृति भी रहती है।

सख्यात्मक रूप से नियंत्रित मशीन औजार — ऐसी मशीनो में मशीन स्लाइडो के स्थिर गुटका सेटिंग (manual setting) स्वचालित सेटिंग से बदल (Replace) दी जाती हैं। मशीन स्लाइड की गति नियन्त्रित करनेवाली 'हाथ चक्र' नियमन मोटर (Servomotor) से बदल दी जाती है। मशीन पर निर्देश छिद्रित पत्रक (punched cards) या टेप (फीता) या चुबकीय टेप द्वारा सकेतो मे लिखे रहते हैं। ये आदेश वैद्युतीय सकेतो मे बदल कर नियत्रक इकाई द्वारा सर्वोमोटर तक पहुँचा दिए जाते हैं। सर्वोमोटर इस इकाई से सकेत पाने पर सकेत द्वारा निर्देशित मात्रा और दिशा मे अपने नियत्रणाधीन स्वनियत्रित मशीन स्लाइडो को घुमा देता है। मशीन की यह प्रणाली तुलना की जानेवाली सारणियो (tables) की हर समय की वास्तविक आदेश स्थिति को बताती है और आवश्यक सशोधन स्वय हो जाते हैं। एकत्रित संख्यात्मक आंकड़े मशीन औजारो के लिये कई दृष्टियो से लाभप्रद हैं.

(१) तेज उत्पादन दर,

(२) जिग्स (Jigs), फिक्सचर्स (Fixtures), टेंपलेट और प्रतिरूप (model) का निराकरण,

(३) आर्थिक व्यापारिक निर्माण,

(४) स्थापन (Set up) के समय और चक्र (Cycle) के समय में कमी तथा

(५) अल्प खुरच (Scrap), क्योकि मानवीय त्रुटियो का लगभग निराकरण हो जाता है।

सख्यात्मक नियत्रण के लिये जो मशीन औजार लिए गए हैं वे ये हैं — जिग वेधन मशीनें, पेषण तथा खराद मशीनें।

स्वयचालित मशीनों पर नियत्रण के प्रकार — १. यान्त्रिक युक्तियाँ—गीयर, लीवर, पेंच, कैम (Cams) तथा ग्राम (Clutches) हैं।

मशीन के विभिन्न प्रचालनो के नियंत्रणार्थ ये युक्तियाँ सरलतम तथा सामान्य हैं। ये स्वयचालित भरण (feeding) मे तथा दाबयत्र (Presses) और पेंचमशीनो के विभिन्न पुर्जों के हटाने में भी प्रयुक्त होती हैं। कैम विभिन्न स्लाइडो की गति को नियन्त्रित करते हैं तथा स्वयचालित खराद मशीनों का संभरण करते तथा उन्हें गति प्रदान करते हैं।

(२) द्रवचालित युक्तियाँ — विभिन्न मशीन स्लाइडो का स्वचालित सचालन किसी बेलन के भीतर कार्य कर रहे तेल-दाब से होता है।

अनुरेखक नियत्रण — कंटिका टेंपलेट का अनुसरण करती

श्वसन काल में रज्जुद्वार खुला रहता है और चौडा तथा त्रिकोणाकार होता है। सांस लेने में यह कुछ अधिक चौडा तथा श्वास छोडने में कुछ सकीर्ण हो जाता है। बोलते समय रज्जुएँ आकर्षित होकर परस्पर सन्निकट आ जाती हैं और उनका द्वार अत्यत सकीर्ण हो जाता है। जितना ही स्वर उच्च होता है, उतना ही रज्जुओं में आकर्पण अधिक होता है और द्वार उतना ही सकीर्ण हो जाता है।

स्वरयत्र की वृद्धि के साथ साथ स्वररज्जुओं की लंबाई बढती है जिससे युवावस्था में स्वर भारी हो जाता है। स्वररज्जुएँ स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषो में अधिक लबी होती हैं।

स्वर की उत्पत्ति — उच्छ्वसित वायु के वेग से जब स्वर रज्जुओ का कपन होता है तब स्वर की उत्पति होती है। यहाँ स्वर एक ही प्रकार का उत्पन्न होता है किंतु आगे चलकर तालु, जिह्वा, दत और ओष्ठ आदि अवयवों के संपर्क से उसमें परिवर्तन आ जाता है। स्वररज्जुओं के कपन से उत्पन्न स्वर का स्वरूप निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर करता है

१. प्रबलता (loudness) — यह कंपन तरंगो की उच्चता के अनुमार होती है।

२. तारत्व (Pitch) — यह कपन तरगों की सख्या के अनुसार होता है।

३ गुणता (Quality) — यह गुंजनशील स्थानों के विस्तार के अनुसार बदलता रहता है और कपन तरगो के स्वरूप पर निर्भर होता है। [प्रि० कु० चौ०]

स्वरक्त चिकित्सा (Autohamemic Therapy) रोगी की शिरा से रक्त लेकर इसे सुई द्वारा उसकी मासपेशी में प्रविष्ट कराने को कहते हैं। कई रोगों में यह चिकित्सा लाभप्रद सिद्ध हुई है। रक्त एक बार शरीर से बाहर निकलने के बाद शरीर में पुन. जाने पर विजातीय प्रोटीन जैसा व्यवहार करता है। यह विश्वसनीय अविशिष्ट प्रोटीन चिकित्सा का अंग बन गया है। सुई से शरीर में रक्त प्रविष्ट कराने पर शरीर में प्रतिक्रिया होती है जिससे ज्वर आ जाता है, सर्दी मालूम होती है और प्यास लगती है। श्वेत रुधिर-कणों की संख्या बढ जाती है पर शीघ्र ही उनका ह्रास होकर लाल रुधिर कणों की संख्या सहसा बढ़ जाती है। इससे शरीर की शक्ति एव प्रतिरोध क्षमता बढ जाती है जिससे रोग में आराम होने लगता है। कही कही इसका परिणाम स्थायी और कही कहीं अस्थायी होता है। जीर्ण एव तीव्र श्वास रोग में यह लाभकारी सिद्ध हुआ है। अम्लपित्त, नेत्ररोग, त्वचा के रोग और एलर्जी में यह अच्छा कार्य करता है। एक घन सेमी रुधिर सुई से दे सकते हैं। रुधिर की अल्पमात्रा की सुई शरीर की किसी भी मासपेशी में दे सकते हैं किंतु चार या इससे अधिक घन सेमी रक्त की सुई केवल नितब की मासपेशी मे ही देते हैं। सुई एक दिन के अतर पर ही दी जाती है। [प्रि० कु० चौ०]

स्वरूप दामोदर गोस्वामी इनके पिता पद्मगर्भाचार्य थे। इनका जन्म नवद्वीप में स० १५४१ मे हुआ और नाम पुरुषोत्तम रखा गया। यही सन्यास लेने पर स्वरूप दामोदर नाम से विख्यात हुए। यह श्रीगौराग के सहाध्यायी तथा परम मित्र थे और उनपर बडी श्रद्धा रखते थे। श्रीगौराग के अंतिम बारह वर्ष राधा-भाव की महाविरहावस्था में बीते थे और इस काल मे श्री स्वरूप-दामोदर तथा राय रामानद ही उन्हे सँभालते। इनके सुमधुर गायन से वह परम तृप्त होते थे। श्रीगौर के अप्रकट होने पर यह भी शीघ्र ही नित्यलीला में पधारे। इन्होने गौरलीला पर एक काव्य लिखा था पर वह अप्राप्य है। कुछ श्लोक चैतन्य चरितामृत में उद्धृत हैं। [व्र० र० दा०]

स्वरूपाचार्य अनुभूति स्वरूपाचार्य को सारस्वत व्याकरण का निर्माता माना जाता है। बहुत से वैयाकरण इनको सारस्वत का टीकाकार ही मानते हैं। इसकी पुष्टि में जो तथ्यपूर्ण प्रमाण मिलते हैं उनमें क्षेमेद्र का प्रमाण सर्वोपरि है। मूल सारस्वतकार कौन थे इसका पता नही चलता।

सारस्वत पर क्षेमेद्र की प्राचीनतम टीका मिलती है। उसमें सारस्वत का निर्माता 'नरेंद्र' माना गया है। क्षेमेद्र स० १२५० के आसपास वर्तमान थे। उसके बाद अनुभूति स्वरूपाचार्यकृत 'सारस्वतप्रक्रिया' नामक ग्रथ पाया जाता है। ग्रथ के नामकरण से ही मूल ग्रथकार का खडन हो जाता है। फिर भी आज तक पूरा वैयाकरणसमाज अनुभूतिस्वरूपाचार्य को ही सारस्वतकार मानता आ रहा है।

पाणिनि व्याकरण की प्रसिद्धि का स्थान लेने के लिये ही स्यात् 'सारस्वतप्रक्रिया' का निर्माण किया गया था। सचमुच यह उद्देश्य अत्यत सफल रहा। देश के कोने कोने में 'सारस्वतप्रक्रिया' का पठनपाठन चल पडा। अतएव अनुभूति स्वरूपाचार्य को टीकाकार तक ही सीमित न रखकर मूलकार के रूप में भी प्रतिष्ठापित किया गया।

अनुभूति स्वरूपाचार्य की प्रक्रिया के अनुकरण पर अनेक टीकाग्रथो का निर्माणप्रवाह चल पडा। परिणामत सारस्वत व्याकरण पर १८ टीकाग्रथ बनाए गए, परंतु अनुभूति स्वरूपाचार्य की प्रक्रिया टीका के आगे सभी टीकाएँ फीकी पड गई। इन्होंने स० १३०० के लगभग 'सारस्वत प्रक्रिया' का निर्माण किया था। लोकश्रुति है कि सरस्वती की कृपा से व्याकरण के सूत्र मिले थे। अतएव 'सारस्वत' नाम सार्थक माना गया।

सारस्वत प्रक्रिया का प्रभाव उत्तरवर्ती टीकाग्रंथो में स्वीकार किया गया है।

स्वर्ग (ईसाई दृष्टि से) ईसाई विश्वास के अनुसार मनुष्य की सृष्टि इस उद्देश्य से हुई थी कि वह कुछ समय तक इस ससार में रहने के बाद सदा के लिये ईश्वर के परमानद का भागी बन जाय। ईश्वर के इस विधान मे पाप के कारण बाधा उत्पन्न हुई किंतु ईसा ने सभी पापो का प्रायश्चित्त करके मानव जाति के लिये मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है (दे० मुक्ति)। जो मनुष्य मुक्ति का अधिकारी बनकर मरता है वह स्वर्ग पहुँच जाता है, अत स्वर्ग मुक्ति की उस परिपूर्णता का नाम है, जिसमें मनुष्य ईश्वर

हैं और इसीलिये उन्हे अपभ्रंश का आदि महाकवि भी कहा गया है। स्वयभू की उपलब्ध रचनाओ से उनके विषय मे इतना ही ज्ञात होता है कि उनके पिता का नाम मारुतदेव और माता का पद्मिनी था। स्वयंभू छंदस् में एक दोहा माउरदेवकृत भी उद्धृत है, जो संभवत: कवि के पिता का ही है। उनके अनेक पुत्रो में से सबसे छोटे त्रिभुवन स्वयभू थे, जिन्होने कवि के उक्त दोनो काव्यो को उनकी मृत्यु के बाद अपनी रचना द्वारा पूरा किया था। कवि ने अपने रिट्ठणेमिचरिउ के आरंभ में भरत, पिंगल, भामह और दडी के अतिरिक्त बाण और हर्ष का भी उल्लेख किया है, जिससे उनका काल ई० की सातवी शती के मध्य के पश्चात् सिद्ध होता है। स्वयभू का उल्लेख पुष्पदत ने अपने महापुराण में किया है, जो ई० सन् ९६५ मे पूर्ण हुआ था। अतएव स्वयभू का रचनाकाल इन्ही दो सीमाओ के भीतर सिद्ध होता है।

स्वयभू की रचनाओ में महाकाव्य के सभी गुण सुविकसित पाए जाते हैं, और उनका पश्चात्कालीन अपभ्रंश कविता पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। पुष्पदंत आदि कवियो ने उनका नाम बडे आदर से लिया है। स्वयभू ने स्वयं अपने से पूववर्ती चउमुह (चतुर्मुख) नामक कवि का उल्लेख किया है, जिनके पद्धडिया, छडनी, दुवई तथा ध्रुवक छदों को उन्होने अपनाया है। दुर्भाग्यवश चतुर्मुख की कोई स्वतत्र रचना अभी तक उपलब्ध नही हो सकी है। (देखिए पउमचरिउ, हिंदी अनु० सहित प्रकाशित भारतीय ज्ञानपीठ, काशी : अप० साहित्य — ह० कोछड)।

स्वर (Voice) या कंठध्वनि की उत्पत्ति उसी प्रकार के कंपनो से होती है जिस प्रकार वाद्ययंत्र से ध्वनि की उत्पत्ति होती है। अत स्वरयत्र और वाद्ययत्र की रचना में भी कुछ समानता है। वायु के वेग से बजनेवाले वाद्ययंत्र के समकक्ष मनुष्य तथा अन्य स्तनधारी प्राणियो में निम्नलिखित अग होते हैं·

१ कंपक (Vibrators) इसमें स्वर रज्जुएँ (Vocal cords) भी संमिलित हैं।

२. अनुनादक अवयव (resonators) इसमें निम्नलिखित अंग संमिलित हैं

क नासा ग्रसनी (nasopharynx), ख ग्रसनी (pharynx), ग. मुख (mouth), घ स्वरयत्र (larynx), च श्वासनली और श्वसनी (trachea and bronchus) छ फुफ्फुस (lungs), ज वक्षगुहा (thoracic cavity)।

३. स्पष्ट उच्चारक (articulators) अवयव — इसमे निम्नलिखित अंग संमिलित हैं : क जिह्वा (tongue), ख. दाँत (teeth), ग. ओठ (lips), घ कोमल तालु (soft palate), च कठोर तालु (hard palate)।

स्वर की उत्पत्ति मे उपर्युक्त अवयव निम्नलिखित प्रकार से कार्य करते हैं : फुफ्फुस जब उच्छ्वास की अवस्था में संकुचित होता है, तब उच्छ्वसित वायु वायुनलिका से होती हुई स्वरयत्र तक पहुँचती है, जहाँ उसके प्रभाव से स्वरयत्र मे स्थित स्वररज्जुएँ कंपित होने लगती हैं, जिसके फलस्वरूप स्वर की उत्पत्ति होती है। ठीक इसी समय अनुनादक अर्थात् स्वरयंत्र का ऊपरी भाग, ग्रसनी, मुख तथा नासा अपनी अपनी क्रियाओं द्वारा स्वर मे विशेषता तथा मृदुता उत्पन्न करते हैं। इसके उपरात उक्त स्वर का शब्द उच्चारण में रूपातर उच्चारक अर्थात् कोमल, कठोर तालु, जिह्वा दाँत तथा ओठ करते हैं। इन्हीं सब के सहयोग से स्पष्ट शुद्ध स्वरो की उत्पत्ति होती है।

स्वरयत्र — यह पेशी तथा स्नायुजाल से बँधी उपास्थियो (cartilages) के जुडने से बनी रचना है। यह एक ऊपर नीचे छिद्रवाला मुकुटाकार रचना है जो गले के संमुख भाग में श्वासनली के शिखर पर रहता है और जिसके द्वारा श्वासवायु का प्रवेश होता है तथा कंठ से स्वर निकलता है। यह पेशियो से घिरा रहता है तथा त्वचा के नीचे अनुभव भी किया जा सकता है। यह ऊपर कठिकास्थि और नीचे श्वासनली से मिला है। स्वरयत्र नौ उपास्थियों से बना है जिनमे तीन एकल बड़ी उपस्थियाँ और तीन युग्म उपस्थियाँ होती हैं।

अवटु (thyroid) उपास्थि — यह स्वरयंत्र की प्रधान उपास्थि है, जिसका आकार फैले हुए युग्म पख के समान होता है। इसका बाहर से उभार युवावस्था में, विशेषकर पुरुषो में दिखाई देता है। इसके दोनो पंख मध्यरेखा के दोनो ओर हैं और संमुख में कोण बनाकर पीछे की ओर फैले हुए हैं। इसके ऊपर नीचे दो शृंग (horns) हैं। ऊपर के शृंगो में कंठिकास्थि के दोनों पार्श्व जुड़े हैं तथा नीचे के दोनो शृंगवलय उपास्थि से मिलते हैं। दोनो पंखों के सधिकोण के ऊर्ध्व भाग में कठच्छद (epiglottis) का मूलस्थान है। इन सब रचनाओ के चारो तरफ छोटी बडी मासपेशियाँ आच्छादित रहती हैं।

वलय (Cricoid) उपास्थि — यह स्वरयत्र के नीचे की उपास्थि है जिसका आकार अँगूठी के समान होता है। इसके दो भाग होते हैं जिनमें संमुख का भाग पतला और गोल है और पीछे का भाग स्थूल और चौडा है। संमुख भाग के ऊपर की ओर अवटु उपास्थि का निम्नभाग और नीचे की ओर श्वासनली का ऊर्ध्वभाग श्लेष्म झिल्ली द्वारा जुडा रहता है। पश्चिम भाग के पीछे मध्य रेखा में अन्ननली का समुख भाग है। इसके दोनो ओर मासपेशियाँ आच्छादित हैं।

इसी प्रकार स्वरयंत्र की अन्य प्रमुख उपास्थियो मे कुंभकार (arytenoid) उपास्थि, कीलक (cuneiform) उपस्थि तथा शृंगी (Corniculate) उपास्थि हैं, जो चारो तरफ से मासपेशियों से बँधी रहती हैं तथा स्वर की उत्पत्ति में सहायक होती हैं।

रज्जुएँ— ये सख्या में चार होती हैं जो स्वरयंत्र के भीतर सामने से पीछे की ओर फैली रहती हैं। यह एक रेशेदार रचना है जिसमें अनेक स्थितिस्थापक रेशे भी होते हैं। देखने मे उजली तथा चमकीली मालूम होती है। इसमे ऊपर की दोनो तत्रियाँ गौण तथा नीचे की मुख्य कहलाती हैं। इनके बीच मे त्रिकोण अवकाश होता है जिसको कठद्वार (glottis) कहते हैं। इन्ही रज्जुओ के खुलने और बंद होने से नाना प्रकार के विचित्र स्वरो की उत्पत्ति होती है।

स्वर की उत्पत्ति में स्वररज्जुओं की गतियाँ (movements)—

कम नहीं है और यह सब स्वस्तिक मंत्र हैं जो शरीररक्षा के लिये तथा सुखप्राप्ति एव आयुवृद्धि के लिये प्रयुक्त होते हैं।

[म० ला० श०]

स्वामी, तैलंग इन तपस्वी महात्मा का जन्म दक्षिण भारत के विजियाना जनपद के होलिया नगर मे हुआ था। बाल्यावस्था में इनका नाम तैलगधर था। बचपन से ही आत्मचिंतन तथा वैराग्य की प्रवृत्ति देखी गई। माता की मृत्यु के पश्चात् जहाँ चिता लगी थी वहीं बैठ गए। पीछे लोगो ने वहीं कुटी बना दी। लगभग बीस वर्ष की योगसाधना के पश्चात् देशाटन में निकल पडे। इसी देशाटन में पश्चिम प्रदेश के पटियाला नामक नगर में भाग्यवश भगीरथ स्वामी महाराज का दर्शन हुआ जिन्होने इनको सन्यास दीक्षा दी। इसके पश्चात् बहुत दिनो तक नेपाल, तिब्बत, गगोत्री, जमनोत्री, मानसरोवर आदि में कठोर तपस्या कर अनेक सिद्धियाँ भी प्राप्त कर ली। रामेश्वरम् प्रयाग, नर्मदाघाटी, उज्जैन आदि अनेक तीर्थ स्थानो में निवास और साधना करते हुए काशी पहुँचे। काशी में मणिकर्णिका, राजघाट, अस्सी आदि क्षेत्रों में रहने के बाद अत में पचगगाघाट पर स्थायी रूप से रहने लगे, जहाँ आज भी तैलंग स्वामी मठ है। इस मठ में स्वामी जी द्वारा पूजित भगवान् कृष्ण का एक विचित्र विग्रह है जिसके ललाट पर शिवलिंग और सिर पर श्रीयन्त्र खचित है। मडप के २०-२५ फुट नीचे गुफा है जिसमें बैठकर स्वामी जी साधना करते थे। मठ की बनावट काफी पुरानी है। अनुमानत माधव जी के मदिर को तोडकर मसजिद बनाने के समय से पूर्व वहाँ मठ बन चुका था। इसी मठ मे विक्रमाब्द १९४४ की पौष शुक्ल ११ को स्वामी जी ब्रह्मीभूत हुए।

तैलंगधर स्वामी को काशी-प्रवास-काल में तैलगी होने के कारण काशीवासी तैलग स्वामी के नाम से पुकारने लगे। स्वामी जी जहाँ कहीं जाते कोई न कोई ऐसी घटना घटती जो अत्यंत चमत्कारपूर्ण होती और लोग घेरने लगते। भीड बढ़ते ही स्वामी जी वह स्थान छोडकर कही अन्यत्र निर्जन स्थान में चल देते। मणिकर्णिका घाट पर दिनरात धूप और शीत में स्वामी जी पड़े रहते। उनका कहना था कि जीवित रहने के लिये प्राणवायु (oxygen) या किसी विशेष साधना, क्रम, अपक्रम या खूराक की जरूरत नही। सिद्ध साधक यौगिक साधना से घनीकृत तेजस द्वारा जीवित रहने की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। अस्तु, उन्हें प्राकृतिक नियमों और क्रमो का अपघात करने में कठिनाई नही होती। मनोजय और कुडलिनी जागरण द्वारा शरीर और प्राण को जैसा चाहे कर लेना साधारण सी बात है।

[श्री० च० पा०]

स्वामी रामतीर्थ वेदात की जीती जागती मूर्ति थे। इनकी वाणी के शब्द शब्द से आत्मानुभूति का उल्लास टपकता है। केवल ३३ वर्ष की अल्पायु में कैसे इन्होंने आत्मज्ञान के प्रकाश से स्वदेश और विदेशो को आलोकित किया, यह एक चमत्कार जैसा है।

इनका जन्म सन् १८७३ की दीपावली के अगले दिन पजाब के मुरारीवाला ग्राम मे एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सन् १८९१ में पजाब विश्वविद्यालय की बी०, ए० परीक्षा में प्रात भर में सवप्रथम आए और गणित लेकर एम० ए० की परीक्षा में भी सर्वप्रथम रहे। गणित इनका अत्यत प्रिय विषय था। उसकी तल्लीनता में ये दिन रात भूख प्यास सब भूल जाते थे।

अर्थाभाव की जिन विकट परिस्थितियों में इन्होने विद्याध्ययन किया, वे हृदयविदारक हैं। इनका रहन सहन सीधा सादा था। मोटे कपडे, सात्विक भोजन, एकात निवास, ये ही इनकी आवश्यकताएँ थी। शोक नाम की चीज तो इन्होने कभी जानी नही।

तुलसी, सूर, नानक, आदि भारतीय सत, शम्स तबरेज, मौलाना रूमी आदि सूफी सत, गीता, उपनिषद्, षड्दर्शन, योगवासिष्ठ आदि के साथ ही पाश्चात्य विचारवादी और यथार्थवादी दर्शनशास्त्र, तथा इमर्सन, वाल्ट ह्विटमैन, थोरो, हक्सले, डार्विन आदि, सभी मनीषियो का साहित्य इन्होंने हृदयगम किया था।

आध्यात्मिक साधना — दस वर्ष की अवस्था में इन्होंने भगत धन्नाराम को गुरु के रूप में वरण किया। वे बालब्रह्मचारी सिद्ध योगी थे। इन्होने अपने गुरु के नाम एक सहस्र से अधिक पत्र लिखे हैं। वे पूर्ण आत्मसमर्पण के भाव से ओतप्रोत हैं। गुरुनिष्ठा से हृदय विकसित हुआ और वही भगवद्भक्ति में परिणत हो गई। इनके हृदय में अपने इष्ट कृष्ण के दर्शन की लालसा जाग्रत हुई। कृष्णविरह में रात रात भर रोते रहते। भक्ति की चरम सीमा होते ही कीटभृगवत् ये अद्वैत स्तर पर आने लगे। इन्होंने अद्वैत वेदात का अध्ययन और मनन प्रारभ किया और अद्वैत-निष्ठा बलवती होते ही उर्दू में एक मासिक 'अलिफ' निकाला। इसी बीच उनपर दो महात्माओं का विशेष प्रभाव पडा — द्वारकापीठ के तत्कालीन शकराचार्य और विश्वविश्रुत स्वामी विवेकानंद।

संन्यास — सन् १९०० में स्त्री पुत्रो को भगवान् के भरोसे छोड ये गगा और हिमालय की शरण में जा पड़े और तीर्थराम से स्वामी रामतीर्थ हो गए। ऋषिकेश से आगे तपोवन में आत्मचिंतन करते हुए ऐसी निर्विकल्प समाधि हुई कि उसके खुलते ही जो देखा, सो नया, सब अपनी ही आत्मा। सारी प्रकृति सजीव हो उठी। इन दिनो की उर्दू अंग्रेजी कविताएँ अद्वैतपरक काव्य के अनमोल रत्न हैं।

विदेशयात्रा — स्वामी राम ने जापान मे लगभग एक मास और अमेरिका मे लगभग दो वर्ष तक प्रवास किया। जहाँ जहाँ पहुँचे, वहाँ लोगो ने एक अद्वितीय पावन सत के रूप में स्वागत किया। उनके स्वरूप में एक दिव्य चुबकीय आकर्षण था, जो देखता, अपने को भूल सा जाता और एक शातिमूलक चेतना का अनुभव करता। उनकी मधुर 'ॐ' ध्वनि भुलाए न भूलती थी। दोनो देशों में राम ने एक ही सदेश दिया—'आप लोग देश और विज्ञान के लिये सहर्ष प्राणो का उत्सर्ग कर सकते हैं। यह वेदात के अनुकूल है। पर आप जिन सुख साधनो पर भरोसा करते हैं उसी अनुपात में इच्छाएँ बढती हैं। शाश्वत शाति का एकमात्र उपाय है आत्मज्ञान। अपने आप को पहचानो, तुम स्वय ईश्वर हो।

प्रत्यागमन — सन् १९०४ में स्वदेश लौटने पर लोगों ने राम से अपना एक समाज खोलने का आग्रह किया। राम ने बाँहें फैलाकर कहा, भारत में जितनी सभा समाजें हैं, सब राम की अपनी हैं। राम मतैक्य के लिये हैं, मतभेद के लिये नहीं। देश को इस

का साक्षात्कार पाकर ईसा तथा स्वर्गदूतों के साथ ईश्वरीय परमानंद का भागी बन जाता है।

बाइबिल की प्रतीकात्मक शैली मे स्वर्ग अथवा पैराडाइज को ईश्वर के निवासस्थान के रूप में चित्रित किया गया है (दे० पैराडाइज) किंतु कहाँ तक उसे एक निश्चित स्थान मानना चाहिए, यह स्पष्ट नहीं है। इतना ही निश्चित है कि स्वर्गवासी मनुष्यों का शरीर महिमामडित है, वह क्षुद्र भौतिक आवश्यकताओं तथा इद्रियग्राह्य सुखों के ऊपर उठ चुका होता है और एक अनिर्वचनीय आध्यात्मिक आनंद में विभोर रहता है। [का० बु०]

स्वर्ग (जैन) धार्मिक मान्यताओं के आधार पर लोक दो माने गए हैं — इहलोक जिसे मृत्युलोक कहते हैं, तथा परलोक जिसके अतर्गत नरक, स्वर्ग, ब्रह्मलोक आदि आते हैं। चूँकि स्वर्ग में देवगण रहते हैं, उसे देवलोक कहा गया है। जैनमतानुसार देवताओं के चार निकाय अर्थात् चार जातियाँ हैं —

१. भवनपति, २. व्यंतर, ३. ज्योतिष्क, और ४ वैमानिक। इन सभी के क्रमश दस, आठ, पाँच और बारह भेद हैं। वैमानिक देवताओं के दो रूप होते हैं — कल्पोत्पन्न तथा कल्पातीत। ये ऊपर रहते हैं। इन सब के रहने के स्थान हैं— सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेंद्र, ब्रह्मलोक, लातक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत तथा नव ग्रैवेयक और विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि, जिनमे से सौधर्म से लेकर अच्युत तक बारह स्वर्ग कहे गए हैं। सभी भवनपति जंबूद्वीप में स्थित सुमेरु पर्वत के नीचे, उसके उत्तर और दक्षिण लाखो योजनो में रहते हैं। व्यंतरदेव ऊर्ध्व, मध्य और अधः तीनो लोको में भवन तथा आवासों में रहते हैं। और मनुष्यलोक में जो मानुषोत्तर पर्वत पर है, ज्योतिष्कदेव भ्रमण करते हैं। सौधर्म कल्प या सौधर्म स्वर्ग ज्योतिष्क के ऊपर असंख्यात योजन चढ़ने के बाद मेरु के दक्षिण भाग से उपलक्षित आकाश में स्थित है। उसके ऊपर किंतु उत्तर की तरफ ऐशान है। सौधर्म के समश्रेणी में सानत्कुमार है। ऐशान के ऊपर समश्रेणी में माहेंद्र है। इन दोनों के बीच में लेकिन ऊपर ब्रह्मलोक है। ब्रह्मलोक के ऊपर समश्रेणी में क्रमश. लांतक, महाशुक्र, और सहस्रार एक दूसरे के ऊपर हैं। इनके ऊपर आनत, प्राणत हैं। इनके ऊपर आरण और अच्युत कल्प हैं। फिर कल्पो के ऊपर नव विमान हैं। भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क तथा प्रथम और द्वितीय स्वर्ग के वैमानिक देवगण मनुष्यो की तरह शरीर से कामसुख भोगते और खुश होते हैं। तीसरे तथा चौथे स्वर्ग के देवता देवियों के स्पर्शमात्र से कामतृष्णा को शांत कर लेते हैं। पाँचवें और छठे स्वर्ग के देव देवियो के सजेधजे रूप को देखकर, सातवें और आठवें स्वर्ग के देव देवियो के शब्द सुनकर, तथा नवें दसवें, ग्यारहें एवं बारहवें स्वर्गों के देवों को देवियों के स्मरण में चितन मात्र से वैषयिक सुख की प्राप्ति होती है। पहले तथा दूसरे स्वर्ग में शरीर का परिमाण सात हाथ; तीसरे, चौथे में छह हाथ, सातवें आठवें में चार हाथ; नवें, दसवें, ग्यारहवें तथा बारहवें में तीन हाथ है। पहले स्वर्ग मे बत्तीस लाख, दूसरे में अट्ठाईस लाख, तीसरे में बारह लाख, चौथे में आठ लाख, पाँचवें में चार लाख, छठे में पचास हजार, सातवें मे चालीस हजार, आठवें में छह हजार, नवें से बारहवें तक मे सात सौ विमान हैं। पहले और दूसरे स्वर्गों के देवो में पीतलेश्या, तीसरे से पाँचवें के देवों में पद्मलेश्या, तथा छठे से सर्वार्थसिद्धि पर्यंत के देवो में शुक्ल लेश्या पाई जाती हैं (तत्वार्थसूत्र, वाचक उमास्वाति, अध्याय चतुर्थ)। [व० ना० सि०]

स्वर्गदूत मनुष्य की सृष्टि के पूर्व ईश्वर ने अभौतिक एवं अशरीरी आत्माओ की सृष्टि की थी, ऐसा ईसाइयो का विश्वास है। ये आत्माएँ स्वर्गदूत, देवदूत अथवा फरिश्ते हैं। उनमे से एक दल ने शैतान के नेतृत्व मे ईश्वर के प्रति विद्रोह किया था, वे नरक में डाले गए और नरक दूत कहलाए (दे० 'शैतान', 'नरक')।

बाइबिल में बहुत से स्थलो पर देवदूतो की चर्चा है यद्यपि उनमें से केवल तीन का नाम दिया गया है, अर्थात् गब्रीएल, राफाएल और मिकाएल (दे० ग्रबीएल)। देवदूत ईश्वर के सेवक हैं, वे उसकी महिमा का गुणगान करते हैं। समय समय पर उसके द्वारा भेजे जाकर यहूदी जाति की रक्षा करते हैं। उत्तरार्ध में वे ईसा के जन्म की घोषणा करते हैं और उनके अधीन रहकर अनेक प्रकार से मनुष्यों की मुक्ति के कार्य में सहायक बन जाते हैं। ईसा के मरण के बाद वे चर्च के प्रारंभिक काल में उनके शिष्यो की रक्षा करते हैं। कयामत के वर्णन में उनके विषय मे लिखा है कि वे ईसा के साथ प्रकट हो जाएँगे। [का० बु०]

स्वस्तिक मंत्र यह मंत्र शुभ और शांति के लिये प्रयुक्त होता है। ऐसा माना जाता है कि इससे हृदय और मन मिल जाते हैं। मंत्रोच्चार करते हुए दर्भ से जल के छींटे डाले जाते थे तथा यह माना जाता था कि यह जल पारस्परिक क्रोध और वैमनस्य को शांत कर रहा है। गृहनिर्माण के समय स्वस्तिक मत्र बोला जाता है। मकान की नीव में घी और दुग्ध छिड़का जाता था। ऐसा विश्वास है कि इससे गृहस्वामी को दुधारू गाएँ प्राप्त होती हैं एवं गृहपत्नी वीर पुत्र उत्पन्न करती है। खेत में बीज डालते समय मत्र बोला जाता था कि विद्युत् इस अन्न को क्षति न पहुँचाए, अन्न की विपुल उन्नति हो और फसल को कोई कीड़ा न लगे। पशुओं की समृद्धि के लिये भी स्वस्तिक मत्र का प्रयोग होता था जिससे उनमें कोई रोग नहीं फैलता था। गायो को खूब संतानें होती थी।

यात्रा के आरंभ में स्वस्तिक मंत्र बोला जाता था। इससे यात्रा सफल और सुरक्षित होती थी। मार्ग में हिंसक पशु या चोर और डाकू नही मिलते थे। व्यापार में लाभ होता था, अच्छे मौसम के लिये भी यह मत्र जपा जाता था जिससे दिन और रात्रि सुखद हो, स्वास्थ्य लाभ हो तथा खेती को कोई हानि न हो।

पुत्रजन्म पर स्वस्तिक मंत्र बहुत आवश्यक माने जाते थे। इससे बच्चा स्वस्थ रहता था, उसकी आयु बढ़ती थी और उसमें शुभ गुणो का समावेश होता था। इसके अलावा भूत, पिशाच तथा रोग उसके पास नही आ सकते थे। षोडश संस्कारो में भी मंत्र का अंश

सम्राट् हर्षवर्धन (देखें पृष्ठ ४५७)

सिकंदर (देखें पृष्ठ ४५५)

समुद्रगुप्त (देखें पृष्ठ ४५२)

जोज़फ स्तालिन (देखें पृष्ठ २३५)

अडोल्फ़ हिटलर (देखें पृष्ठ ३६३)

स्वामी विवेकानद (देखें पृष्ठ २७५)

स्वामी श्रद्धानंद (देखें पृष्ठ २७६)

आचार्य विनोबा भावे (देखें पृष्ठ ४२३)

लॉर्ड बर्ट्रेंड रसेल (देखें पृष्ठ ४२६)

लगे। १८९० की जुलाई में शारदादेवी का आशीर्वाद लेकर वह लंबी यात्रा पर चल पड़े। वह हिमालय में घूमते रहे। फिर वह राजस्थान, काठियावाड, बबई, मैसूर, कोचीन, मालाबार, तिरुवाकुर होते हुए रामेश्वरम् और कन्याकुमारी पहुँचे। उन्होंने १८९३ में शिकागो में होनेवाले सर्वधर्म संसद् की बात सुनी और वह अमरीका के लिये रवाना हो गए।

११ सितंबर को सर्वधर्म ससद् का प्रारभ हुआ। उन्होने अपने भाषण में यह कहा कि ईसाई को हिंदू या बौद्ध अथवा हिंदू और बौद्ध को ईसाई होने की जरूरत नहीं है, हर एक व्यक्ति दूसरे धर्म की बातों को अपने में पचाए, साथ ही अपना व्यक्तित्व कायम रखे और विकास के नियमानुसार बढे। लोगों को यह उदार विचार बहुत पसद आया। फिर तो उनकी धूम मच गई और वह सारे अमेरिका में व्याख्यान देते हुए फिरने लगे। १८९५ तक उनके लगभग १२ पक्के शिष्य बन चुके थे।

वह सितबर, १८९५ में इंग्लैंड गए, और वहाँ से पेरिस तक। १८९५ के अंत तक वह अमेरिका लौट आए। वहाँ रामकृष्ण परमहस तथा उनके दर्शन पर व्याख्यान देते रहे। १८९६ में अप्रैल में वह फिर लदन चले गए। वहाँ सफल व्याख्यानो के बाद १८९६ के दिसबर में वह वहाँ से चल पडे और इटली होते हुए भारत लौट आए।

वह निरे अध्यात्मवादी न थे। उन्होने भारतीयों को बलिष्ठ और प्राणवान् बनने का उपदेश दिया और यह कहा कि तामसिक अवस्था से सीधे सात्विक अवस्था में नहीं पहुँचा जा सकता, बल्कि पश्चिम की तरह राजसी उन्नति आवश्यक है। उन्होने एक बार यह भी कहा था कि हम भारतीयो के लिये गीता पढ़ने से फुटबाल खेलना ज्यादा जरूरी है। उनके विचारो में समाजवादी सिद्धांत का पुट है।

[म० गु०]

स्वामी श्रद्धानंद का जन्म पजाब के जालंधर शहर से बीस मील दूर तलवन गाम में सं० १९१४(१८५७ ई०) में हुआ। ये चार भाइयों में सबसे छोटे थे। इनका पहला नाम मुंशीराम था। इनकी शिक्षा संयुक्त प्रांत मे ही हुई। ये प० मोतीलाल नेहरू के सहपाठी रहे थे। बड़े होकर वकील बने और जालधर में वकालत आरम्भ की। आय अच्छी थी। रईसी ठाट से रहते थे। जालधर में होशियारपुर अड्डे के पास एक विशाल कोठी बनवाई थी। आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानद सरस्वती के सपर्क मे आने से आर्यसमाज की विचार-धारा को अपना चुके थे। इस विचारधारा के प्रचार के उद्देश्य से आपने 'सद्धर्मप्रचारक' नाम का एक साप्ताहिक पत्र स० १९४६ में उर्दू में निकाला और कुछ समय पश्चात् सद्धर्मप्रचारक प्रेस की स्थापना भी अपनी कोठी के अहाते मे ही की। ये सच्चे देशभक्त एव समाज-सुधारक थे। पजाबकेसरी लाला लाजपतराय एव उनके कुछ सहयोगियों के प्रयत्न से लाहौर मे डी० ए० वी० (दयानद एग्लो वैदिक) कालेज की स्थापना हो चुकी थी। इसमें मैकाले के मार्ग का ही अनुसरण किया गया था। संस्कृत और हिंदी को महत्व नही दिया गया था, इसलिये ला० मुंशीराम जी ने सद्धर्मप्रचारक में अपने लेखों तथा भाषणो द्वारा स्वामी दयानंद जी प्रदर्शित आर्य शिक्षा-पद्धति का पुनरुद्धार करने के लिये आदोलन आरंभ किया और उसे क्रियात्मक रूप देने के लिये जालधर के आर्यसमाज में एक वैदिक पाठशाला की स्थापना की। कुछ समय पश्चात् यह पाठशाला उन्होंने आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब को सौंप दी। सभा ने इसे जालधर से उठाकर स० १९५७ (१९ मई १९००) मे गुजराँवाला में (पश्चिमी पाकिस्तान) गुरुकुल के रूप में चलाने की व्यवस्था की। ला० मुंशीराम ने ३० अक्टूबर, १८९८ ई० को गुरुकुलप्रणाली की शिक्षा के लिये विस्तृत योजना प्रस्तुत की। आर्य प्रतिनिधि सभा से स्वीकृति मिलने पर इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये सर्वात्मना जुट गए। उन्होंने अपनी वकालत छोड दी तथा इस कार्य के लिये धनसग्रह में लग गए। जिला बिजनौर (उ० प्र०) के मुंशी अमनसिंह ने हरिद्वार के पास गंगा के पार, आठ सौ बीघा भूमि का अपना कांगडी ग्राम, गुरुकुल स्थापित करने के लिये दान में दे दिया। वह ग्राम नगाधिराज हिमालय की उपत्यका में गगा की धारा से एक कोस दूर सघन वन से घिरा हुआ था। वन का कुछ भाग साफ करके फूस की झोपड़ियाँ तैयार की गई और स० १९५९ (४ मार्च, १९०२) को गुजराँवाला से हटाकर कागड़ी ग्राम में गुरुकुल की स्थापना की गई।

लाला मुंशीराम जी अब त्याग, तपस्या एवं सच्ची लगन के कारण जनता द्वारा 'महात्मा मुंशीराम' पुकारे जाने लगे थे। वे गुरुकुल कागडी के सस्थापक ही नहीं, उसकी आत्मा थे। उनके सुयोग्य सचालन में गुरुकुल ने बडी प्रगति की। महात्मा मुंशीराम जी आरभ से स० १९७४ (१९१७ ई०) पर्यंत गुरुकुल के मुख्या-धिष्ठाता रहे। जालधर की विशाल कोठी उन्होंने गुरुकुल को दान दे दी। सम्राट् हर्ष के समान, सर्वमेध यज्ञ (सर्वस्वदान) करके सं० १९७४ (१९१७ ई०) में गंगा के तट पर उन्होंने सन्यास ग्रहण किया। उस समय उन्होंने घोषणा की —

"मैं सदा सब निश्चय परमात्मा की प्रेरणा से श्रद्धापूर्वक ही करता हूँ। मैंने संन्यास भी श्रद्धा की भावना से प्रेरित होकर ही लिया है। इस कारण मैंने 'श्रद्धानंद' नाम धारण करके संन्यास में प्रवेश किया है।"

सन्यासी बनने के पश्चात् दो वर्ष तक उत्तरी भारत में स्वामी जी ने दलितोद्धार आदोलन को जाग्रत एवं सगठित किया। सन् १९१८ में योरप के प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत के राजनीतिक घटनाचक्र में कुछ तेजी आ गई। अंग्रेजों के विश्वासघात के कारण सर्वत्र असतोष और रोष की लहर फैल गई थी। सन् १९१९ के आरभ मे गाधी जी वायसराय से मिलने दिल्ली आए तो स्वामी जी भी उनसे मिले। दिल्ली की सत्याग्रही सेना का नेतृत्व गाधी जी ने स्वामी जी के कधो पर डाल दिया। बस यहीं से देश की राजनीति मे स्वामी जी के क्रियात्मक जीवन का आरंभ हुआ।

सत्याग्रह आदोलन का आरंभ गाधी जी के आदेश से प्रार्थना-दिवस के रूप में हुआ। ३० मार्च, १९१९ को दिल्ली मे प्रार्थनादिवस को पूर्ण हडताल रही। हिंदू और मुसलानो की एक वृहद सभा पीपल पार्क में स्वामी जी के नेतृत्व में हुई। सभा पाँच घटे तक चलती रही। इस बीच मशीनगनों सहित पुलिस और सेना ने दो बार सभास्थल को घेरा किंतु स्वामी जी के शांति प्रयत्नों से आश्वस्त

समय आवश्यकता है एकता और संगठन की, राष्ट्रधर्म और विज्ञान साधना की, सयम और ब्रह्मचर्य की। सन् १९०६ में राम पुनः हिमालय और गगा के साहचर्य में चले गए और दीपावली को 'ॐ ॐ' कहते हुए गंगा में चिर समाधि ले ली। राम के जीवन का हर पहलू आदर्शमय था, आदर्श विद्यार्थी, आदर्श गणितज्ञ, अनुपम सुधारक और अनुपम देशभक्त, महान् कवि और महान् संत।

सिद्धांत — स्वामी राम शंकर के अद्वैतवाद के समर्थक थे, पर उसकी सिद्धि के लिये उन्होने स्वानुभव को ही महत्वपूर्ण माना है। वे कहते हैं — हमें धर्म और दर्शनशास्त्र भौतिकविज्ञान की भाँति पढ़ना चाहिए। पाश्चात्य दर्शन केवल जाग्रतावस्था पर आधारित हैं, उनके द्वारा सत्य का दर्शन नहीं होता। यथार्थ तत्व वह है जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के आधार मे सत् चित् आनद रूप से विद्यमान है। वही वास्तविक आत्मा है।

उनकी दृष्टि मे सारा संसार केवल एक आत्मा का खेल है। जिस शक्ति से हम बोलते हैं, उसी शक्ति से उदर मे अन्न पचता है। उनमें कोई अंतर नही। जो शक्ति एक शरीर में है, वही सब शरीरो में है। जो जंगम में है, वही स्थावर मे है। सब का आधार है हमारी आत्मा।

राम विकासवाद के समर्थक थे। मनुष्य भिन्न भिन्न श्रेणियो में है। कोई अपने परिवार के, कोई जाति के, कोई समाज के और कोई धर्म के घेरे से घिरा हुआ है। उसे घेरे के भीतर की वस्तु अनुकूल है और घेरे से बाहर की प्रतिकूल। यही सकीर्णता अनर्थों की जड़ है। प्रकृति में कोई वस्तु स्थिर नही। अपनी सहानुभूति के घेरे को भी फैलना चाहिए। सच्चा मनुष्य वह है, जो देशमय, विश्वमय हो जाता है।

राम आनद को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं, पर जन्म से मरण पर्यंत हम अपने आनदकेंद्रो को बदलते रहते हैं। कभी किसी पदार्थ में सुख मानते हैं और कभी किसी व्यक्ति में। आनद का स्रोत हमारी आत्मा है। हम उसके लिये प्राणो का भी उत्सर्ग कर देते हैं।

जब से भारतवासियों ने अपने आत्मस्वरूप को भुलाकर हृदय से अपने आपको दास मानना प्रारंभ किया हम पतनोन्मुख हुए। श्रुति अटल और शाश्वत है। स्मृति गौण है, उसे देशकालानुसार बदलना चाहिए। श्रमविभाजन के आधार पर वर्णव्यवस्था किसी समय समाज के लिये हितकर थी, पर आज हमने उसके नियमों को अटल बना कर समाज के टुकड़े टुकड़े कर दिए। आज देश के सामने एक ही धर्म है—राष्ट्रधर्म। अब शारीरिक सेवा और श्रम केवल शूद्रो का कर्तव्य नहीं माना जा सकता। सभी को अपनी सारी शक्तियो को देशोत्थान के कार्यों में लगाना चाहिए।

भारत के साथ तादात्म्य होनेवाले स्वामी राम ने भविष्यवाणी की थी — चाहे एक शरीर द्वारा, चाहे अनेक शरीरो द्वारा काम करते हुए राम प्रतिज्ञा करता है कि बीसवी शताब्दी के अर्धभाग के पूर्व ही भारत स्वतंत्र होकर उज्वल गौरव को प्राप्त करेगा। राम ने अपने एक पत्र में लाला हरदयाल को लिखा था — हिंदी में प्रचार कार्य प्रारभ करो। वही स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा होगी। एक शब्द में इनका सदेश है — त्याग और प्रेम। [दी० द०]

स्वामी विवेकानंद (सन् १८६३-१९०२ ई०) स्वामी विवेकानंद रामकृष्ण परमहस के प्रधान शिष्य और सदेशवाहक थे। उन्होने रामकृष्ण मिशन का संगठन किया। अंग्रेजी और बंगला के अच्छे वक्ता थे। कई जिल्दो में उनके भाषण प्रकाशित हुए हैं, जो बहुत ही विद्वत्तापूर्ण और ओजस्वी हैं।

उनका नाम पहले नरेंद्रनाथ दत्त था। उनका जन्म कलकत्ते के एक कायस्थ परिवार में हुआ। नरेंद्र अपने भावी गुरु से बिल्कुल पृथक् ढंग के व्यक्ति थे। रामकृष्ण परमहस में सुकुमारता अधिक थी, पर नरेंद्र मे पौरुष और ओज अधिक था और वह देखने में हट्टे-कट्टे थे। वह घूँसेबाजी, कुश्ती, दौड, घुडसवारी और तैराकी में पारगत थे। रामकृष्ण सात्विक गुणयुक्त थे तो वह राजसिक। रामकृष्ण का कंठ मधुर था, पर वह केवल लोकगीत और कीर्तन आदि गाते थे, पर नरेंद्र ने कठ तथा यंत्रसंगीत में बाकायदा प्रशिक्षण प्राप्त किया था। रामकृष्ण लगभग अनपढ़ थे तो नरेंद्रनाथ विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त कर चुके थे और कालेज मे उनके अध्यापक तथा सहपाठी उनका लोहा मानते थे। उनके लिये आस्था अंतिम शब्द नही था, बल्कि वह हर प्रतिपाद्य को बौद्धिक कसौटी पर कसना चाहते थे।

रामकृष्ण से नरेंद्रनाथ की जिस समय भेंट हुई थी, उस समय रामकृष्ण प्राच्य जगत् के प्रतिनिधि थे और नरेंद्रनाथ मुख्यत. पाश्चात्य से प्रभावित थे। दोनो का मिलन बहुत ही अद्भुत था। कहाँ विवेकानंद, जो हर्बर्ट स्पेंसर, जॉन स्टुअर्ट मिल, शेली, वर्ड्स्वर्थ, हेगेल और फ्रेंच राज्यक्राति के सिद्धातो से ओतप्रोत थे और कहाँ सरल, ऋजु रामकृष्ण परमहंस।

प्रथम मिलन के बाद नरेंद्रनाथ बराबर उनसे मिलते रहे। रामकृष्ण ने अपने सरल व्यवहार और प्रभाव द्वारा नरेंद्र के सदेहजाल को छिन्न कर दिया और वह उन्हे बडी तेजी से आकर्षित करने लगे। नरेंद्र को ऐसा मालूम हुआ जैसे उनमे कुछ भयकर हो रहा है और वह एक बार शकित होकर कह भी उठे, यह क्या कर रहे हैं ? मेरे घर माँ बाप हैं। इसपर रामकृष्ण हँसे और उन्होने नरेंद्रनाथ के वक्षस्थल पर हाथ रख दिया और बोले —'अच्छी बात है, अभी जाने दो।' — इसपर नरेंद्र फिर पूर्ववत् हो गए।

धीरे धीरे वह रामकृष्ण के प्रभाव में आ गए। सदेह का अधकारजाल तो पहले ही छिन्न हो चुका था, अब साधना की किरणें फैलने लगीं।

१८८४ में नरेंद्र के पिता का देहात हो गया। वह परिवार को कर्ज और गरीबी में छोड़ गए थे। नरेंद्र के सामने परिवार की जीविका का प्रश्न था। वह दफ्तरो मे नौकरी के लिये मारे मारे फिरने लगे। उन्होंने एक के बाद एक कई नौकरियाँ की, पर कोई स्थायी नौकरी नही लगी। वे दक्षिणेश्वर गए।

कुछ समय बाद वह सपूर्ण रूप से रामकृष्ण परमहंस के साथ हो गए। रामकृष्ण के महाप्रयाण के बाद वे बराबर भ्रमण करते

की स्वच्छता, परिवेश स्वास्थ्य आदि स्वास्थ्यविज्ञान के महत्वपूर्ण अंग है। सर्वांगपूर्ण बहुमुखी योजना द्वारा स्वास्थ्यसुधार राष्ट्रोन्नति का प्रमुख साधन है। राष्ट्र के लिये शिक्षा, स्वास्थ्य, उत्पादन और सामाजिक न्याय समान रूप से आवश्यक है और इन चारों क्षेत्रों में संतुलित विकास ही राष्ट्रोन्नति का राजमार्ग प्रशस्त करता है। ये चारो परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं और किसी को भी एक दूसरे से पृथक् नही किया जा सकता।

प्रत्येक मनुष्य प्राप्त धन से संतोष न कर उससे अधिक उपार्जन करने की निरन्तर चेष्टा करता है उसी प्रकार प्रस्फुटित (radiant) स्वास्थ्य लाभ के लिये निरंतर प्रयास द्वारा उत्तरोत्तर वृद्धि पूर्ण धनात्मक (positive) स्वास्थ्य प्राप्त करना चाहिए। सर्वांगपूर्ण स्वास्थ्य के लिये शारीरिक और मानसिक स्वस्थता के साथ साथ प्रत्येक व्यक्ति को समाज में सम्मानित पद भी प्राप्त करना आवश्यक है। समाज द्वारा समादृत स्वस्थ पुरुष अपने समाजसेवी कर्त्तव्यों द्वारा ही समाज का उपयोगी अंग बन सकता है। समाज में हीन पद पानेवाला व्यक्ति स्वस्थ नही गिना जा सकता है

लोक-स्वास्थ्य सुधार का इतिहास तीन कालो में बँटा हुआ है पहला परिशोधी काल जिसमे जल, वायु, भोजन, शरीर, वस्त्र आदि की स्वच्छता पर ध्यान दिया जाता था। दूसरा कीटाणु शास्त्रसबंधी ज्ञान का काल जिसमें संक्रामक रोगो का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कर उनसे बचने की चेष्टा की गई और तीसरा धनात्मक स्वास्थ्य का वर्तमान काल जिसमे शारीरिक, मानसिक और सामाजिक हृष्टपुष्टतायुक्त सर्वांगपूर्ण समस्त जनता का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर संवर्धन किया जाता है। [भ० शं० या०]

स्वास्थ्य विज्ञान, मानसिक मानसिक स्वास्थ्य के विशेषज्ञो की व्यवस्थानुसार सुदृढ (sound) मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण इस प्रकार हैं

वह व्यक्ति सतोषी और प्रसन्नचित्त रहता है और भय, क्रोध, प्रेम द्वेष, निराशा, अपराध, दुश्चिंता आदि आवेगो से व्यथित नही होता। वह अपनी योग्यता और क्षमता को न तो अत्यधिक उत्कृष्ट और न हीन समझता है। वह ममत्वशील होता है और दूसरों की भावनाओ का ध्यान रखता है। वह अन्य पुरुषो के प्रति रुचि और विश्वास रखता है और समझता है कि अन्य भी उसके प्रति रुचि और विश्वास की भावना रखते हैं, वह नित्य नई उठनेवाली समस्याओ का सामना करता है। वह अपने परिवेश (environment) को यथा सभव अपने अनुकूल बना लेता है और आवश्यकता पडने पर स्वय उससे सामजस्य स्थापित कर लेता है। वह अपनी योजना पहले ही निश्चित कर लेता है किंतु भावी से भयातुर नही होता। वह नई अनुभूतियों और विचारो का स्वागत करता है। वह वास्तविकता का ध्यान रख अपने लक्ष्य को निर्धारित करता है। वह अपना बुरा सोच सकता है और स्वय ही अपना कर्तव्य निश्चित करता है।

मनुष्य के गुण दोष उसके स्वभाव, आचरण तथा मान्यताओं से जाने जाते हैं। माता, पिता तथा अन्य व्यक्तियों के सपर्क से बालक में व्यक्तित्व का विकास होता है और उसकी धारणाएँ दृढ हो जाती हैं। मानसिक स्वस्थता की दशा में (१) जीवन के प्रति रुचि, (२) साहस और स्वावलबन का वृद्धि, (३) आत्मगौरव का भाव, (४) सहिष्णुता तथा दूसरो के विचार का आदर, (५) व्यवस्थित विचारधारा, (६) जीवन के प्रति सदुद्देश्यपूर्ण दार्शनिक दृष्टिकोण, (७) विनोदशीलता तथा (८) अपने काय में मनोयोग और तल्लीनता की धारणाएँ स्वभावत पुष्ट होने लगती हैं। अस्वस्थ दशा में इनका अभाव सा होता है। शिक्षा और अभ्यास द्वारा इन स्वस्थ भावों को अपनाना चाहिए। स्वस्थ मनोविकास के लिये जो अभ्यास और प्रक्रिया फलीभूत सिद्ध हुई है, इस प्रकार है

(१) आवेगों को वश मे रखने का अभ्यास करना और उन्हें किसी सुकार्य की ओर प्रेरित करना, (२) छोटी मोटी घटनाओं से अपने को व्यथित न होने देना, (३) व्यर्थ की चिंताओं से छुटकारा पाने के लिये भय पर विजय पाना, (४) वास्तविकता का आवश्यक दृढ़ता से सामना करना, (५) जीवन के प्रति रुचि और आस्था का भाव उत्पन्न करना, (६) अपनी सामर्थ्य पर विश्वास रख स्वावलबी बनना, (७) दूसरे के विचारो का आदर करना, (८) अपने विचारो का व्यवस्थित रूप से नियमन तथा नियन्त्रण करने का अभ्यास करना, और उनको किसी कल्याणकारी लक्ष्य की ओर प्रेरित करना, (९) जीवन के प्रति वास्तविकता-पूर्ण दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाकर सुख दुख मे समत्व बुद्धि द्वारा अपने जीवन को सुखी और सतुष्ट बनाना, (१०) विनोदशील प्रवृत्ति द्वारा जीवन की कठोरता और व्यग्रकारी समस्याओ को दूर करना तथा (११) चित्त को एकाग्र कर अपने कार्य में रुचि, उत्साह और तल्लीनता उत्पन्न करना।

अल्पबुद्धिता (Mental defficiency) और मानसिक विकार (Mental disorder) मे भेद है। अठारह वर्ष की आयु तक होनेवाले मानसिक विकास में कुछ बाधा पड जाने के कारण अल्पबुद्धिता होती है और मानसिक विकार, विकसित मन में दोषोत्पत्ति के कारण। अल्पबुद्धिवाले जडमूर्ख, मूढ (embecile) अथवा बालिश (moron) होते हैं। अल्पबुद्धिता वशानुगत दोष तो होता ही है परंतु बधिरता, अंधता, अपगता तथा अन्य-शारीरिक दोष के कारण बालक पढने लिखने मे पिछड जाते हैं और उनकी बुद्धि का स्तर उन्नत नही हो पाता। इन शारीरिक दोषों को दूर करने से विद्यार्थियो की मानसिक शक्ति में सुधार किया जा सकता है। मद्यपान तथा अन्य मादक वस्तुओ का सेवन, जीवन की जटिलता, समाज से सघर्ष तथा शारीरिक रोगो के कारण चिंता, व्यग्रता, अनिद्रा, भीति, अस्थिरता, बुद्धिविपर्यय और विभ्रम आदि उत्पन्न होते हैं जिससे आक्रमकता, ध्वसकारिता, मिथ्याचरण, तस्करता, हठवादिता, अनुशासनहीनता आदि आचरण दोष (behaviour disorder) बढ़ने लगते हैं। इन दोषो से समाज की बडी हानि होती है। किशोरावस्था की दुश्चरित्रता समाज का सबसे अधिक हानिकर रोग है। इन दोषों के रहते समाज का व्यवस्थित सगठन संभव नही है। स्वस्थ मानसिक संतुलन तथा समत्व बुद्धि के लिये जो उपाय करने चाहिए वे मुख्यतः इस प्रकार हैं—

होकर घेरा हटा लिया गया। जुलूस जब चाँदनी चौक से आ रहा रहा था तब बदूक के चलने की आवाज सुनकर स्वामी जी ने सैनिको से गोली चलाने का कारण पूछा। उन्होने स्वामी जी की ओर संगीनें तान दी। स्वामी जी ने अपनी छाती सगीनो से छुआते हुए कहा 'लो मारो'। किंतु तुरंत बडे सेनाधिकारी ने सेना को पीछे हटने का आदेश दिया। स्वामी जी के साहस और वीरता की कथा सारे देश में फैल गई।

खिलाफत का आदोलन जोरो पर था। ४ अप्रैल, १९१९ को दिल्ली की जामा मसजिद मे मुसलमानो की एक विशाल सभा का आयोजन हुआ। इसमें भाषण करने के लिये स्वामी जी को आमत्रित किया गया। यह इस्लाम के इतिहास में पहला अवसर था कि किसी मुसलमानेतर ने जामा ममजिद की मिंबर (वेदी) पर भाषण किया। भाषण ऋग्वेद के एक मत्र से आरभ और 'ओं शाति शाति : शाति' से समाप्त हुआ। ६ अप्रैल, १९१९ को फतेहपुरी मस्जिद में भी स्वामी जी का भाषण हुआ।

१९१९ के १३ अप्रैल को अमृतसर के जलियाँवाला बाग मे ओ० डायर ने अपनी क्रूरता का नग्न नृत्य दिखाया था। सारे देश मे बिजली सी कौंध गई। स्वामी श्रद्धानद जी तुरत सहायता-कार्य के लिये अमृतसर पहुँचे। इस वर्ष दिसंबर मास में कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हुआ। स्वामी श्रद्धानद जी स्वागताध्यक्ष और अध्यक्ष श्री मोतीलाल नेहरू बने। अब तक की परपराओ के विरुद्ध स्वामी जी ने अपना भाषण हिंदी मे पढा। लगभग सन् १९२४ तक कांग्रेस के साथ स्वामी जी का सक्रिय योग रहा। दिसबंर, १९२२ मे अमृतसर में अकाल तख्त के समीप हुई सत्याग्रहियो की सभा मे दिए गए भाषण के अपराध मे स्वामी जी को एक वर्ष का कारावास दंड दिया गया।

उन दिनो आगरा मे मलकानो की शुद्धि का आदोलन चल रहा था। वहाँ एक शुद्धिसभा का सगठन किया गया। स्वामी जी उसके प्रधान चुने गए। दिसंबर, १९२३ मे कांग्रेस के विशेषाधिवेशन के अवसर पर एकता समेलन में स्वामी जी से कहा गया कि वे शुद्धि-आदोलन को बद कर दें। एक शर्त के साथ स्वामी जी ने इस अनुरोध को स्वीकार किया कि दूसरा पक्ष भी ऐसा ही करे। किंतु मौलवियो के अस्वीकार करने पर कोई समझौता नही हो सका। २३ दिसंबर, १९२६ को अब्दुल रशीद नामक एक मुसलमान ने उनके अस्वस्थ शरीर को अपनी पिस्तौल की गोलियो का निशाना बनाया। वे धर्म पर बलिदान हो गए।

यद्यपि कोई क्षेत्र ऐसा नही है, जिसमें स्वामी श्रद्धानद जी ने अपना योगदान न दिया हो, तथापि तीन क्षेत्रो से उन्होने विशेष रूप से कार्य किया। ये क्षेत्र हैं— १.समाजसुधार, २ राष्ट्र का स्वातंत्र्यादोलन, और ३. भारत की प्राचीन गुरुकुलीय शिक्षापद्धति का पुनरुद्धार। यद्यपि प्राचीन शिक्षापद्धति के वे प्रबल समर्थक थे, तथापि शिक्षा के नव आलोक के विरोधी नही थे। उन्होने अपने गुरुकुल में दोनो का समन्वय किया, किंतु शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा हिंदी को ही बनाया। [ध० ना० शा०]

स्वास्थ्य विज्ञान स्वास्थ्य से सभी परिचित हैं किंतु पूर्ण स्वास्थ्य का स्तर निश्चित करना कठिन है। प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य अपने प्रयास से और भी अधिक स्वस्थ हो सकता है। व्यक्ति के स्वास्थ्य सुधार से समाज और राष्ट्र का स्वास्थ्य स्तर ऊँचा होता है। स्वास्थ्यविज्ञान का ध्येय है कि प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक वृद्धि और विकास और भी अधिक पूर्ण हो, जीवन और भी अधिक तेजपूर्ण हो, शारीरिक ह्रास और भी अधिक धीमा हो और मृत्यु और भी अधिक देर से हो। वास्तव में स्वास्थ्य का अर्थ केवल रोगरहित और दु खरहित जीवन नही है। केवल जीवित रहना ही स्वास्थ्य नही है। यह तो पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक हृष्टता पुष्टता की दशा है। अधिकतम सुखमय जीवन और अधिकतम मानवसेवा का अवसर पूर्ण स्वस्थता से ही सभव हैं।

अपने व्यक्तिगत स्वास्थ्योपार्जन का भार प्रत्येक प्राणी पर ही है। जिस प्रकार धन, विद्या, यश आदि द्वारा जीवन की सफलता अपने ही प्रयास से प्राप्त होती है उसी प्रकार स्वास्थ्य के लिये प्रत्येक को प्रयत्नशील होना आवश्यक है। अनायास या दैवयोग से स्वास्थ्य प्राप्ति नहीं होती परतु प्राकृतिक स्वास्थ्यप्रद नियमो का निरतर पालन करने से ही स्वास्थ्य प्राप्ति और उसका सरक्षण सभव है।

स्वास्थ्य के सवर्धन, संरक्षण तथा पुन स्थापन का ज्ञान स्वास्थ्य-विज्ञान द्वारा होता है। यह कार्य केवल डाक्टरो द्वारा ही संपन्न नही हो सकता। यह तो जनता तथा उसके नेताओ के सहयोग से ही सभव है। स्वास्थ्यवेत्ता सेनानायक की भाँति अस्वस्थता से युद्ध करने हेतु सचालन और निर्देशन करता है किंतु युद्ध तो समस्त जनता को सैनिक की भाँति लड़ना पडता है। इसी कारण स्वास्थ्यविज्ञान भी एक सामाजिक शास्त्र है। संपूर्ण समाज का अस्वस्थता के निवारणार्थ सगठित प्रयास लोकस्वास्थ्य की उन्नति के लिये आवश्यक है।

लोकस्वास्थ्य के सुधार के लिये स्वास्थ्यसंबधी आवश्यक ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को होना चाहिए। इस ज्ञान के अभाव में कोई सुधार नही हो सकता। स्वास्थ्य संबधी कानून की उपयोगिता स्वास्थ्य शिक्षा के अभाव मे नगण्य है और स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा जनता में स्वास्थ्य चेतना होने पर कानून की विशेष आवश्यकता नही रहती। स्वास्थ्यशिक्षा वही सफल होती है जो जनता को स्वस्थ्य जीवनयापन की ओर स्वभावत प्रेरित कर सके। प्रत्येक प्राणी को अपने स्वास्थ्य सुधार के लिये स्वास्थ्य शिक्षा तथा सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए। यह तो जन्मसिद्ध मानव अधिकार है और कोई कल्याणकारी राज्य इस सुकार्य से मुख नही मोड़ सकता। रोग एक देश से दूसरे देशो में फैल जाते हैं। इसलिये किसी देशविशेष का यदि स्वास्थ्यस्तर गिरा हुआ है तो वह सभी देशो के लिये भयावह है। इसी कारण अंतर्जातीय सस्थाओ द्वारा रोग-नियत्रण और स्वास्थ्यसुधार का कार्य सभी देशो में करने का प्रयास किया जाता है। स्वास्थ्य की देखरेख जन्म से मृत्यु पर्यंत सभी के लिये आवश्यक है। मातृत्व स्वास्थ्य, बाल स्वास्थ्य, पाठशाला स्वास्थ्य, व्यावसायिक स्वास्थ्य, सैनिक स्वास्थ्य, जरावस्था स्वास्थ्य, सक्रामक और अन्य रोगो की रोकथाम, रोगचिकित्सा, जल, भोजन और वायु

इस तरह से कोई भी स्वास्थ्य चर, स्वास्थ्य शिक्षक (Health Educator) तथा चिकित्सक जनता की निम्नलिखित प्रकार से सेवा कर सकता है ·

(क) रोग के संबध में रोगी के भ्रमात्मक विचार तथा अंध-विश्वास को दूर करना।

(ख) रोगी का रोगोपचार, स्वास्थ्य रक्षा तथा रोग के समस्त रोगनिरोधात्मक उपायो का ज्ञान करा सकना।

(ग) अपने ज्ञान से रोगी को पूरा विश्वास दिलाना जिससे रोगी अपनी तथा अपने परिवार की स्वास्थ्य रक्षा के हेतु उनसे समय समय पर राय ले सके।

(घ) रोग पर असर करनेवाले आर्थिक एवं सामाजिक प्रभावों का भी रोगी को बोध करावे तथा एक चिकित्सक, उपचारिका, स्वास्थ्य चर तथा इस क्षेत्र में कार्य करनेवाले स्वयसेवको की कार्य-सीमा कितनी है, इसका लोगो को बोध कराना अत्यंत आवश्यक है।

इस प्रकार से दी गई शिक्षा ही सही स्वास्थ्य शिक्षा कही जा सकती है और उसका जनता जनार्दन के लिये सही और प्रभावशाली असर हो सकता है। [प्रि० कु० चौ०]

स्विट्ज़रलैंड स्थिति: ४५°४९' से ४७°४९' उ० अ० तथा ५°५७' से १०°३०' पू० दे०। यह मध्य यूरोप का एक छोटा जनतांत्रिक देश है जिसमें २२ प्रदेश (Canton) हैं। इसके पश्चिम और उत्तर पश्चिम में फ्रास, दक्षिण में इटली, पूर्व में आस्ट्रिया और लिक्टेनश्टाइन (Liechtenstein) तथा उत्तर में पश्चिमी जर्मनी स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल ४१,२८८ वर्ग किमी है। स्विट्ज़रलैंड की पूर्व से पश्चिम तक की अधिकतम लबाई ३६० किमी तथा अधिकतम चौडाई २२० किमी है।

यूरोप महाद्वीप में स्विट्ज़रलैंड सबसे अधिक पर्वतीय देश है। हिमाच्छादित आल्प्स (Alps) और जूरा (Jura) पर्वत इसका ३।४ भाग घेरे हुए हैं। जूरा पर्वत देश के उत्तर पश्चिम भाग में एक बडा अर्धवृत्त बनाते हैं। इन दोनो पर्वतश्रेणियो के बीच में मिडिललैंड पठार स्थित है और इसी पठार में अधिकाश लोग रहते हैं। बहुत से छोटे छोटे जिलो से मिलकर बने होने से प्राकृतिक एकता बहुत कम अथवा नहीं के बराबर है। ये जिले भाषा, धर्म, रीतिरिवाज और मानवजाति विज्ञान (Ethnology) में एक दूसरे से भिन्न हैं।

आधुनिक स्विट्ज़रलैंड मे तीन बडी नदी घाटियाँ रोन, राइन और आर हैं। ये आल्प्स की मुख्य शृखला के उत्तर में हैं। राइन और रोन घाटियाँ, आर घाटी से बर्नीज ओबरलैंड और टोडो आल्प्स की उत्तरी श्रेणी द्वारा अलग हैं। टिसिनो और इन अन्य प्रमुख नदियाँ हैं। राइन, रोन, टिसिनो, और इन क्रमश. उत्तरी सागर, भूमध्यसागर, ऐड्रियाटिक सागर और कृष्णसागर में गिरती हैं।

माटे रोजा की ड्यूफोरस्पिट्ज (Dufourspitze) मिशाबेल श्रेणी की डोम तथा बर्नीज ओबरलैंड मे फिटरार हार्न मुख्य ऊँची चोटियाँ हैं। आल्प्स की भूतात्विक रचना बहुत ही जटिल एवं दुरुह है। जूरा पर्वत मोड़ तथा अनावरण में कम जटिल है। मध्य मैदानी भाग आदिनूतनयुग तथा मध्यनूतनयुग का बना है।

झील, जलप्रपात तथा हिमसरिताएँ — स्विट्ज़रलैंड प्राकृतिक सौंदर्य के लिये विश्वविख्यात है। झीलों, जलप्रपातों और हिमाच्छादित पर्वतश्रेणियों के कारण ससार का महत्त्वपूर्ण पर्यटन एव स्वास्थ्यवर्धक केंद्र है। इस देश के १/५ भूभाग पर (लगभग ८७,००० वर्ग किमी) जलाशय है। झीलो में मुख्य ब्रिज, कास्टैंस, जेनेवा, और लूमर्न आदि हैं। स्विट्ज़रलैंड का सर्वोच्च जलप्रपात स्टाबक्ट (२८७ मी) है जो लॉटरब्रुनेन की घाटी में गिरता है। इस देश मे लगभग १,००० हिमसरिताएँ हैं।

जलवायु — स्विट्ज़रलैंड ऐसे देश में, जिसका अक्षाशीय विस्तार २° से भी कम है, कई प्रकार की जलवायु पाई जाती है। सपूर्ण देश की जलवायु उत्साह एवं स्वास्थ्यवर्धक हैं। मिडिललैंड में औसत वर्षा ९१ सेमी होती है। जैसे जैसे ऊँचाई बढती जाती है वर्षा तथा हिमपात भी बढता जाता है। कई स्थानों पर पानी अधिकतर हिम के रूप में ही गिरता है। जुलाई गर्म महीना है। इन दिनो ताप १०° से २०° से० तक रहता है।

कृषि — पूरे देश के क्षेत्रफल का कुल ७५% भाग उपजाऊ है। लगभग ९९% फार्म ७५ एकड से कम तथा अधिकाश ७ से २५ एकड तक के हैं। अधिकाश कृषियोग्य भूमि केंद्रीय पठार मिडिललैंड में है। बर्न, वो (Vaud), फ्राइबर्ग तथा ज्युरिख प्रदेश में गेहूँ की उपज अच्छी होती है।

पहाडी ढालो पर गेहूँ, राई, जो, जई, आलू, चुकदर तथा तंबाकू आदि की खेती होती है। शाक सब्जियाँ भी उगाई जाती हैं। फलो में सेब, नाशपाती, चेरी, बेर, खुमानी, अगूर, काष्ठफल (nuts) आदि होते हैं। अगूर से शराब बनाई जाती है।

घाटियों में जैतून और अन्य इमारती लकडीवाले पेड़ पाए जाते हैं। पशुओ में घोडे, भेड, बकरियाँ, गाय, बैल, सूअर तथा मुर्गियाँ आदि पाली जाता हैं। यहाँ अनेक डेयरी फार्म भी हैं। कृषि पर आधारित उद्योग धधे पनीर, मक्खन और चीनी हैं।

खनिज — स्विट्ज़रलैंड में खनिजो की कमी है। केवल नमक की खानें पाई गई हैं। यहाँ पर कोयले का अभाव है। अल्प मात्रा में लोहा, मैंगनीज तथा ऐल्यूमिनियम के खनिज निकाले जाते हैं।

उद्योग धधे — यहाँ का विश्वविख्यात उद्योग घडियों का निर्माण है। ससार के प्रायः सभी देशों को यहाँ से घडियाँ निर्यात की जाती हैं। सन् १९६० में घड़ियो के १,२७२ कारखाने थे, जिनमें लगभग ५९,९०० व्यक्ति कार्य करते थे।

वस्त्र उद्योग स्विट्ज़रलैंड का सबसे पुराना उद्योग है। यहाँ ऊनी, सूती, रेशमी तथा अन्य प्रकार के वस्त्र तैयार किए जाते हैं। रसायन और ओषधियो का भी निर्माण होता है। धातुकर्म काफी समुन्नत है। यहाँ नाना प्रकार के हथियारो से लेकर सूक्ष्म प्रकाशीय यत्रो का भी निर्माण होता है।

शक्ति — जलविद्युत् शक्ति का विकास द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हुआ, जब युद्ध के कारण देश को कोयला मिलना बंद हो

(१) वंशानुगत विकारों को दूर करने के लिये विवाह तथा संतानोत्पत्ति संबंधी सततिशास्त्रानुमोदित योजना का प्रसार करना जिससे अनुपयुक्त मनुष्यों द्वारा संतानोत्पत्ति रोकी जा सके और केवल पूर्णत स्वस्थ स्त्री पुरुषों द्वारा ही स्वस्थ बालकों की उत्पत्ति हो, (२) शारीरिक स्वास्थ्य के सुधार द्वारा तथा आवश्यक विश्राम द्वारा मानसिक दुरावस्था, क्लांति (Strain) और शारीरिक विकारों को दूर करना, (३) अत्यधिक प्रश्रय (Indulgence), कठोरतापूर्ण अनुशासित और आग्रहपूर्ण हठवादिता का परित्याग करना, (४) बालकों के प्रति सद्भाव, ममत्व, सहानुभूति, प्रोत्साहन और विश्वास का भाव प्रदर्शित करना, (५) व्यक्तित्व के विकास में बाधा न डालना, (६) क्षमता से अधिक कार्यभार बालक पर न डालना, (७) बालक की हीनता के निवारण मे सहायता करना, (८) उन्नयन (Sublimation) की सभी संभाव्य रीतियों का अनुसंधान कर अवांछनीय दोष को किसी समाजानुमोदित सुरुचिपूर्ण कार्य के साथ जोड़ने का प्रयास करना (९) योनि संबंधी परंपरागत विचारों को त्याग कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए सुशिक्षा का प्रसार करना, तथा (१०) बाल निर्देशनशाला स्थापित कर मनोदौर्बल्य दूर करना और बालक के मन में व्यष्टि तथा समष्टि के कल्याण की भावना जाग्रत करना।

बालक संरक्षण चाहता है और ममत्व का भूखा होता है। उसकी ममत्वपूर्ण देखरेख कर उसे आश्वस्त करना चाहिए। खेल कूद, व्यायाम, विश्राम, मनोरंजन द्वारा मानसिक विकलता दूर करनी चाहिए। जीवन की कठिनाइयाँ, साधनों का अभाव और आपदाओं से विचलित न होना चाहिए परंतु इनसे उच्चतर जीवन की प्रेरणा लेनी चाहिए। अभाव की चिंता करने की अपेक्षा जो कुछ भी प्राप्त है उससे संतोषसुख प्राप्त करना श्रेष्ठतर है। अपने को हतभाग्य समझकर हाय हाय करना कापुरुषत्व है। प्रसन्नचित्त रहने का सतत प्रयत्न करते रहने से मनोदौर्बल्य दूर किया जा सकता है और यह प्रसन्नता और संतोष द्वारा प्राप्य है।

[भ० श० या०]

स्वास्थ्य शिक्षा (Health Education) ऐसा साधन है जिससे कुछ विशेष योग्य एवं शिक्षित व्यक्तियों की सहायता से जनता को स्वास्थ्यसंबंधी ज्ञान तथा औपसर्गिक एवं विशिष्ट व्याधियों से बचने के उपायों का प्रसार किया जा सकता है। चिकित्साक्षेत्र में कार्य करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को रोगोपचार के अतिरिक्त किसी न किसी रूप में स्वास्थ्य शिक्षक के रूप में भी कार्य करने की क्षमता रखनी पड़ती है। 'स्वास्थ्य शिक्षा' का कार्य कभी भी स्वतंत्र रूप से नहीं चल सकता। यह हमेशा 'शिक्षा विभाग' एवं 'स्वास्थ्य विभाग' के संयुक्त उत्तरदायित्व पर ही चलता है। इसका सफलतापूर्वक प्रसार स्वयंसेवकों द्वारा होता है। स्वास्थ्य स्वयंसेवकों के लिये यह आवश्यक है कि वे आधुनिकतम स्वास्थ्य एवं चिकित्सा संबंधी ज्ञान से अपनी योग्यता बढ़ाते रहें जिससे उस ज्ञान का सही स्थान पर उचित रूप से स्वास्थ्य शिक्षा के अंतर्गत जनता के लाभार्थ प्रसार एवं उपयोग कर सकें।

स्वास्थ्य शिक्षा के द्वारा जनसाधारण को यह समझाने का प्रयास किया जाता है कि उसके लिये क्या स्वास्थ्यप्रद और क्या हानिप्रद है तथा इनसे साधारण बचाव कैसे किया जाय, संक्रामक रोगों जैसे चेचक, क्षय, मलेरिया और विसूचिका इत्यादि के टीके लगवाकर हम कैसे अपनी सुरक्षा कर सकते हैं। स्वास्थ्य शिक्षक ही जनता से संपर्क स्थापित कर स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा स्वास्थ्यसंबंधी आवश्यक नियमों का उन्हें ज्ञान कराता है। इस योजना से लोग यथाशीघ्र स्वास्थ्य-रक्षासंबंधी नियमों से परिचित हो जाते हैं। स्वास्थ्य शिक्षा से तत्काल लाभ पाना कठिन होता है क्योंकि इसमें अधिकतर समय स्वास्थ्य शिक्षक का लोगों का विश्वास प्राप्त करने मे लग जाता है।

स्वास्थ्य शिक्षा की विधि — स्वास्थ्य शिक्षा की तीन प्रमुख विधियाँ हैं जिनमें दो विधियों में तो चिकित्सक की आंशिक आवश्यकता पड़ती है परंतु तीसरी स्वास्थ्य शिक्षक के ही अधीन है। ये तीनों विधियाँ इस प्रकार है —

१ — स्कूलों एवं कालेजों के पाठ्यक्रमों में स्वास्थ्य शिक्षा का समावेश। इसके अंतर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं : —

(क) व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा व्यक्ति एवं पारिवारिक स्वास्थ्य की रक्षा तथा लोगों को स्वास्थ्य के नियमों की जानकारी कराना।

(ख) संक्रामक रोगों की घातकता तथा रोगनिरोधन के मूल तत्वों का लोगों को बोध कराना।

(ग) स्वास्थ्य रक्षा के सामूहिक उत्तरदायित्व को वहन करने की शिक्षा देना।

इस प्रकार से स्कूलों मे स्वास्थ्य शिक्षा प्राप्त कर रहा छात्र आगे चलकर सामुदायिक स्वास्थ्यसंबंधी कार्यों मे निपुणता से कार्य कर सकता है तथा अपने एवं अपने परिवार के लोगों की स्वास्थ्य रक्षा के हेतु उचित उपायों का प्रयोग कर सकता है। अनुभव द्वारा यह देखा भी गया है कि इस प्रकार की स्कूलों में स्वास्थ्य शिक्षा से संपूर्ण देश की स्वास्थ्य रक्षा में प्रगति हुई है।

२ — सामान्य जनता को स्वास्थ्यसंबंधी सूचना देना — यह कार्य मुख्य रूप से स्वास्थ्य विभाग का है परंतु अनेक ऐच्छिक स्वास्थ्य संस्थाएँ एवं अन्य संस्थाएँ जो इस कार्य में रुचि रखती हैं, सहायक रूप से कार्य कर सकती हैं। इस प्रकार की स्वास्थ्य शिक्षा का कार्य आजकल रेडियो, समाचारपत्रों, भाषणों, सिनेमा, प्रदर्शनी तथा पुस्तिकाओं की सहायता से यथाशीघ्र संपन्न हो रहा है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी उपकरणों का भी प्रयोग करना चाहिए जिससे अधिक से अधिक जनता का ध्यान स्वास्थ्य शिक्षा की ओर आकर्षित हो सके। इसके लिये विशेष प्रकार के व्यवहारकुशल और शिक्षित स्वास्थ्य शिक्षकों की नियुक्ति करना श्रेयस्कर है।

३ — उन लोगों से स्वास्थ्य शिक्षा दिलाना जो रोगियों की सेवा सुश्रूषा तथा अन्य स्वास्थ्यसंबंधी कार्यों मे निपुण हों।

यह कार्य स्वास्थ्य चर (Health visitor) बड़ी कुशलता से कर सकता है। प्रत्येक रोगी तथा प्रत्येक घर जहाँ चिकित्सक जाता है वहाँ किसी न किसी रूप में उसे स्वास्थ्य शिक्षा देने की सदा आवश्यकता पड़ा करती है अत. प्रत्येक चिकित्सक को स्वास्थ्य शिक्षा चिकित्सक के प्रमुख अंग के रूप में ग्रहण करना चाहिए।

स्विफ्ट का 'गुलिवर्स ट्रैवेल्स' अंग्रेजी साहित्य की सर्वोत्तम रचनाओं में से है। गुलिवर एक साहसी यात्री है जो नए देशो की खोज में ऐसे ऐसे स्थानों पर जाता है जहाँ के लोग तथा उनकी सभ्यता मानव जाति तथा उसकी सभ्यता से सर्वथा भिन्न हैं। तुलनात्मक अध्ययन द्वारा स्विफ्ट ने मानव समाज-व्यवस्था, शासन, न्याय, स्वार्थपरता के परिणामस्वरूप होनेवाले युद्ध आदि पर तीव्र प्रहार किया। प्राय उनका रोष संयम की सीमा का अतिक्रमण कर जाता है। कही कही ऐसा प्रतीत होता है जैसे उन्हे मानव जाति से तीव्र घृणा हो। कतिपय आलोचको ने स्विफ्ट की घृणा का कारण उनके जीवन की असफलताओं को बताया है। लेकिन इस महान् लेखक को व्यक्तिगत निराशा की अभिव्यक्ति करनेवाला मात्र स्वीकार करना उसके साथ अन्याय करना होगा। स्विफ्ट ने 'गुलिवर्स ट्रैवेल्स' मे समाज एव शासन की बुराइयों पर तीखा व्यग्य करने के साथ ही साथ सत्य और न्याय के ऊँचे आदर्शों की स्थापना भी की और इसी कारण इनकी गणना अंग्रेजी साहित्य के महानतम लेखको में है। [तु० ना० सिं०]

स्वीडेन स्थिति ५५° २०' से ६९° ४' उ० अ० तथा १०° ५८' से २४° १०' पू० दे०। यह स्कैंडिनेवियन देशों में सबसे बडा तथा यूरोप का चौथा बडा देश है। इसका अधिकाश भाग बाल्टिक सागर के किनारे है। शीतकाल में यह सागर जम जाता है। स्वीडेन का समुद्रतट अधिक कटाफटा नही है। स्वीडेन के पूर्व और दक्षिण में कैटेगैट (Kattegat) तथा स्कैगेरैक (Skagerrak) स्थित हैं। स्वीडन का कुल क्षेत्रफल ४,४९,६६२ वर्ग किमी है। कुल क्षेत्रफल का ३८,५६२ वर्ग किमी भाग जल से भरा है। स्वीडेन की उत्तर से दक्षिण तक की अधिकतम लबाई १,५७४ किमी तथा चौडाई ४९९ किमी है।

नदियों तथा झीलो की अधिकता के कारण यहाँ की जलवायु बहुत ठडी नहीं है। यहाँ लगभग सात मास जाडा पडता है। ग्रीष्म काल लगभग दो मास (मई, जून) का होता है। ग्रीष्मकाल का सर्वाधिक लबा दिन २३ घटे का होता है। यहाँ की औसत वर्षा लगभग ५० सेंमी है।

स्वीडेन को चार भौगोलिक विभागो में बाँटा जा सकता है — १ नारलैंड (Norrland) — यह स्वीडेन का उत्तरी भाग है। इसके अतर्गत स्वीडेन का लगभग ६०% भाग आता है। २ झीलों का प्रांत — यह नारलैंड के दक्षिण में स्थित है। स्वीडेन में कुल ९६,००० झीलें हैं। ३. स्मालैंड — यह दक्षिणी स्वीडेन के मध्य में स्थित है। यहाँ जगलो तथा दलदलों की अधिकता है। ४ स्केनिया — यह स्वीडेन का दक्षिणी पश्चिमी भाग है। इस प्रदेश की भूमि बहुत ही उपजाऊ है।

स्वीडेन में लगभग ९% भूमि पर खेती होती है। गेहूँ, जौ, राई तथा चुकदर आदि यहाँ के प्रमुख कृषि उत्पादन है। यद्यपि खाद्यान्न की दृष्टि से स्वीडेन लगभग आत्मनिर्भर है तथापि कुछ खाद्य सामग्री आयात की जाती हैं।

स्वीडेन में कोयले के अभाव के कारण जलविद्युत् शक्ति का बहुत विकास हुआ है। उत्तरी स्वीडेन की जलशक्ति दक्षिणी स्वीडेन के उद्योग धंधों के लिये लगभग १६०० किमी लबे पारेषण लाइन (Transmission line) द्वारा पहुँचाई जाती है। हारस्प्राग (Harsprong) दुनियाँ का दूसरा सबसे बडा जलविद्युत् केंद्र है। यहाँ से रेलो तथा औद्योगिक केंद्रो को विद्युत पहुँचाई जाती है।

स्वीडेन की आय का प्रमुख साधन यहाँ की वनसपत्ति है। इन वनो में पाइन, बर्च, ऐश, ओक और बीच आदि के वृक्ष उगते हैं। इनसे अनेक पदार्थ जैसे इमारती लकडी, फर्नीचर, काष्ठ लुगदी, सेलुलोज और कागज आदि का निर्माण होता है। दियासलाई निर्माण का भी यह प्रमुख केंद्र है। यहाँ के निवासी बडे परिश्रमी होते हैं।

स्वीडेन में खनिज पदार्थों की बहुलता है। यहाँ का लौहक्षेत्र अपनी उत्कृष्टता के लिये विश्वप्रसिद्ध है। उत्तरी स्वीडेन के किरुना तथा गैलिवरा क्षेत्रो में उच्च श्रेणी के लोहे के अयस्क पाए जाते हैं। इन अयस्को में ६०% से ७१% तक लोहा पाया जाता है। यहाँ से इस्पात तथा लौह अयस्क का निर्यात होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद स्वीडेन का निर्यात मुख्यत ग्रेट ब्रिटेन, सयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य देशों को होता है। उससे पहले विशेषत जर्मनी को होता था। लोहे के अतिरिक्त यहाँ चाँदी, सीसा, मैंगनीज, जस्ता तथा ताँबा आदि के खनिज भी पाए जाते हैं।

स्वीडेन के प्रमुख नगरो मे स्टाकहोम तथा गोटेबर्ग मुख्य हैं। स्टाकहोम स्वीडेन की राजधानी है। यह नगर उद्योगों तथा रेलो का केंद्र है। गोटेबर्ग स्वीडेन का व्यापारिक केंद्र है। यह दक्षिणी स्वीडेन के पश्चिमी भाग मे स्थित है। यह देश के अन्य भागों से रेलो तथा नहरो से जुडा हुआ है।

स्वीडेन का हर व्यक्ति भली भाँति लिखना पढना जानता है। यहाँ ७ से ९ वर्ष की आयु तक शिक्षा अनिवार्य तथा नि शुल्क है। स्वीडेन में चार विश्वविद्यालय हैं। इनका अधिकाश व्यय सरकार वहन करती है। यहाँ की भाषा स्वीडिश है। सविधान द्वारा सभी धर्मों को पूरी छूट मिली हुई है फिर भी यहाँ ९४% लोग लूथरन धर्म के अनुयायी हैं। [रा० स० ख०]

स्वेच्छा व्यापार (Laissez Faire) स्वेच्छा व्यापार सिद्धांत का प्रतिपादन रूढिवादी अर्थशास्त्रियो द्वारा किया गया था। उनका विश्वास था कि यदि राजव्यवस्था ने जनता के आर्थिक निर्णय और अभिरुचियों में हस्तक्षेप किया, तो व्यक्ति अपने इच्छानुसार वस्तुओं की मात्रा और गुण का उत्पादन न कर सकेंगे, फलत कल्याण अधिकतम न हो पाएगा। इसलिये अर्थशास्त्रियो ने प्रशासन को रक्षा तथा देश में शातिस्थापना आदि प्रारंभिक कर्तव्यो तक ही सीमित रखना चाहा और राज्य की नीति ऐसी निर्धारित की कि राज्याधिकारी समाज के आर्थिक जीवन मे हस्तक्षेप न कर सकें।

इस सिद्धांत ने काफी समय तक आर्थिक व्यवस्था पर अपना प्रभाव बनाए रखा। किंतु समय परिवर्तन के साथ इसकी कार्यविधि में अनेक दोष पाए गए। प्रथम तो यह देखा गया कि आर्थिक व्यवस्था

गया था। नदियो पर अनेक बांध बांधकर जलविद्युत् उत्पन्न की जाती है। स्विट्सरलैंड मे जलविद्युत् आवश्यकता से अधिक होने के कारण अन्य देशो जैसे फ्रास, इटली तथा जर्मनी आदि को भी भेजी जाती है।

व्यापार — स्विट्सरलैंड का व्यापार बड़े महत्व का है। खाद्य-पदार्थ और कच्चे माल, जैसे अनाज, मांस, लोहा, तांबा, भारी मशीनें और वाहन आदि का आयात किया जाता है तथा घड़ियाँ, रजक, औषधियाँ, रसायन तथा कुछ मशीने भी निर्यात की जाती हैं। निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक होता है। जिन देशों को चीजें निर्यात की जाती हैं उनमे फ्रांस, इटली, जर्मनी, इंग्लैंड, स्पेन, स्वीडेन, तुर्की, अर्जेनटाइना तथा संयुक्त राज्य अमरीका हैं।

यातायात एवं संचार — स्विट्सरलैंड के रेलपथ की लंबाई सन् १९६० में ५,६४१ किमी थी। यहाँ की रेल व्यवस्था यूरोप के सर्वोत्कृष्ट रेल व्यवस्थाओ मे से एक है। स्विट्सरलैंड अपनी प्राकृतिक स्थिति के कारण अंतर्राष्ट्रीय रेलों का केंद्र है। ५३% रेलें सरकारी व्यवस्था के अधीन हैं। सन् १९६० मे पक्की सड़को की कुल लंबाई १७,४४५ किमी थी।

यहाँ की डाक तार व्यवस्था बहुत अच्छी है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक डाक पहुँचाने के लिये बसो का प्रयोग किया जाता है। यहाँ डाक तार व्यवस्था के अतर्गत रेडियो और टेलीविजन भी आते हैं। ये सभी व्यवस्थाएँ सरकार के अधीन हैं।

स्विट्सरलैंड के पास अनेक व्यापारिक जहाज हैं जिनसे माल बाहर से मँगाया तथा भेजा जाता है। इनका प्रधान कार्यालय बेसिल मे है। यह आयात निर्यात का मुख्य केंद्र है। यहाँ का वायुमार्ग भी पर्याप्त विकसित है। वायुयानो के द्वारा लाखों यात्री, हजारो टन डाक और माल प्रति वर्ष आता जाता है। सन् १९६० में 'स्विस एअर' कंपनी के पास ३६ वायुयान थे जो यातायात के लिये प्रयुक्त होते थे। इस कंपनी के अलावा स्विट्सरलैंड में २४ अन्य विदेशो कपनियाँ भी हैं जो यातायात का कार्य करती हैं।

शिक्षा तथा धर्म — स्विट्सरलैंड का प्रत्येक व्यक्ति भली भाँति लिख पढ सकता है। प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क है। ६ से १५ वर्ष की आयु के बच्चो का स्कूल जाना अनिवार्य है। बालक एवं बालिकाओ की शिक्षा का प्रबध एक साथ ही है। प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अपनी स्थानीय भाषा के अतिरिक्त एक अन्य भाषा सीखना अनिवार्य है। व्यावसायिक एव प्रशासनिक विद्यालय भी हैं। स्विट्सरलैंड मे कुल ७ विश्वविद्यालय हैं तथा जूरिख मे एक 'फेडरल इंस्टिट्यूट ऑव टेक्नोलॉजी है'।

मुख्य धर्म ईसाई धर्म है। किसी भी व्यक्ति को किसी भी गिरजाघर में पूजा करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। कुल जनसख्या के लगभग ५२·७% प्रोटेस्टेंट, ४२% रोमन कैथोलिक, ०.६% पुराने कैथोलिक और ·०४% यहूदी हैं। धर्म का भाषा से कोई संबंध नहीं है।

भाषा — यहाँ तीन आधिकारिक राष्ट्रीय भाषाएँ जर्मन, फ्रासीसी तथा इतालवी हैं। स्विट्सरलैंड के कुछ निवासी जर्मन से मिलती जुलती, कुछ फ्रासीसी से मिलती जुलती तथा कुछ प्राचीन इतालवी से मिलती जुलती बोली बोलते हैं। एक और अन्य भाषा को, जो पुराने लैटिन से मिलती जुलती है, रीटो रोमंश (Rhaeto Romansh) कहते हैं। यह भाषा भी स्विट्सरलैंड के एक प्रदेश ग्राउबनडेन में बोली जाती है। इस भाषा का पूर्ण विकास अभी तक नहीं हुआ है।

पर्यटन — यहाँ की आय का एक साधन पर्यटन भी है। संसार के प्रत्येक देश से पर्यटक यहाँ स्वास्थ्यलाभ एवं सौंदर्य-दर्शन हेतु आते हैं। पर्वतारोहियो के लिये भी स्विट्सरलैंड आकर्षण का केंद्र है। यहाँ की जलवायु शुष्क एवं ठंढी है तथा क्षय रोगियो के लिये अत्यंत उत्तम है। ऊष्ण जल के झरने और खनिज जल की स्वास्थकर झीलों से भी पर्यटक आकर्षित होते हैं।

जनसंख्या एवं प्रमुख नगर — सन् १९६० में यहाँ की जनसंख्या ५४,२९,०६१ थी। जिसमें ६७% ग्रामीण तथा ३३% शहरी लोग थे। जनसख्या का घनत्व ३४७ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी था।

मुख्य नगर जूरिख, बेसिल, जेनेवा, बर्न, सेंट गालेन, लूसर्न और विंटरथर आदि हैं। [रा० प्र० सि०]

स्विफ्ट, जोनाथन (१६६७–१७४५ ई०) तीखे व्यंग्य का जैसा निर्मम प्रहार स्विफ्ट की रचनाओ में मिलता है वैसा शायद ही कही अन्यत्र मिले। इनका जन्म आयरलैंड के डबलिन नगर में हुआ था। पद्रह वर्ष की अवस्था में इन्होने डबलिन के ट्रिनिटी कालेज मे प्रवेश किया। कालेज छोड़ने के साथ ही इन्होने सर विलियम टेंपुल के यहाँ उनके सेक्रेटरी के रूप में काम करना प्रारंभ किया और उनके साथ सन् १६९९ ई० तक रहे। वह समय दलगत राजनीति की दृष्टि से बड़े कशमकश का था और स्विफ्ट ने ह्विग पार्टी के विरुद्ध टोरी दल का साथ दिया। ये एक महत्वाकाक्षी व्यक्ति थे। टोरी सरकार से इन्होंने अपनी सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप बड़ी आशाएँ की थी जो पूरी नही हुईं। जीवन के अंतिम दिन निराशा और दुःख मे बीते।

स्विफ्ट की प्रारंभिक आकांक्षा कवि होने की थी, लेकिन इनकी साहित्यिक प्रतिभा अंततः व्यंग्यात्मक रचनाओ में मुखरित हुई। इनकी पहली महत्वपूर्ण कृति 'बैटल ऑव द बुक्स' सन् १६९७ में लिखी गई लेकिन सन् १७०४ में बिना लेखक के नाम के छपी। इस पुस्तक में स्विफ्ट ने प्राचीन तथा आधुनिक लेखको के तुलनात्मक महत्व पर व्यंग्यात्मक शैली में अपने विचार व्यक्त किए हैं। जहाँ एक ओर प्राचीन लेखको ने मधुमक्खी की तरह प्रकृति से अमृततुल्य ज्ञान का संचय किया, आधुनिक लेखक मकड़ी की तरह अपने ही आतरिक भावो का ताना बाना प्रस्तुत करते हैं।

इनकी दूसरी महत्वपूर्ण रचना 'द टेल ऑव ए टब' भी सन् १७०४ में गुमनाम ही छपी। इस पुस्तक में स्विफ्ट ने रोमन चर्च एवं डिसेंटर्स की तुलना में अंग्रेजी चर्च को अच्छा सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

उद्योग धंधे तथा विदेशी व्यापार — आटा पीसने के अनेक कारखाने हैं। शराब पर्याप्त परिमाण में बनती है और बाहर भेजी जाती है। चीनी का परिष्कार महत्व का उद्योग है। सन से भी अनेक सामान तैयार किए जाते हैं। निर्यात् की वस्तुओं में सूअर, मुर्गियाँ, सूती वस्त्र, आटा, चीनी, मक्खन, ताजे फल, मक्का, शराब, ऊन और सीमेंट आदि हैं। आयात की वस्तुओं में कच्ची रूई, कोयला, इमारती लकड़ी, नमक आदि हैं। छोटी छोटी मशीनें भी यहाँ बनती हैं और उनका निर्यात होता है। यहाँ का व्यापार सोवियत रूस, चेकोस्लोवाकिया, जर्मनी, पोलैंड, यूगोस्लाविया आदि से होता है।

अधिवासी — हंगरी के अधिवासियों को मग्यार (Magyars) कहते हैं। लगभग ९० प्रतिशत मग्यार ही यहाँ रहते हैं, शेष जनसंख्या में जर्मन, स्लोवाक, रोमानियन, क्रोट, सर्ब और जिप्सी हैं। लगभग आधी जनसंख्या नगरों में रहती है। हंगरी की कुल जनसंख्या १,००,५०,००० (१९६२ अनुमानित) है। यहाँ के निवासी स्वतंत्र प्रकृति के और आनवाले होते हैं। इनके लोकगीत और नृत्य सुप्रसिद्ध हैं। यहाँ के लोग रंगबिरंगे वस्त्र पहनते हैं और स्वादिष्ट भोजन करते हैं। यहाँ के रसोइए जगत् प्रसिद्ध हैं। यहाँ के निवासी फुटबाल, टेनिस, घुड़सवारी, तैराकी आदि के शौकीन हैं।

भाषा और धर्म — हंगरी के ६८ प्रतिशत निवासी रोमन-कैथोलिक, २७ प्रतिशत प्रोटेस्टेंट तथा शेष यहूदी एवं अन्य धर्मावलंबी हैं। यहाँ की भाषा मग्यार है।

यातायात — हंगरी में ८८०० किमी लंबी रेल, सड़कें, ६०८०० किमी लंबे राजमार्ग और १९२० किमी लंबा नौगम्य जलमार्ग है। यहाँ का हवाई अड्डा बहुत बड़ा है और समस्त यूरोपीय देशों से संबद्ध है। रेलमार्ग भी अन्य यूरोपीय देशों से संबद्ध है। देश के अंदर भी पर्याप्त विकसित वायु यातायात है।

नगर — हंगरी के प्रमुख नगर हैं बुडापेस्ट (राजधानी), डेब्रेसेन (Debrecen) जनसंख्या १,३४,०१९ (१९६१), मिशकोल्त्स (Miskolc) जनसंख्या १,५०,४५१ (१९६१), पेक (Peck) जनसंख्या १,२१,१७० (१९६१), सेगेड (Szeged) जनसंख्या १,०२,०५६ (१९६१) और ड्योर (Gyor) जनसंख्या ५५,०००। [रा० ना० मा०]

हंटर, जान (सन् १७२८–९३ ई०), अंग्रेज शरीरविद् तथा शल्यचिकित्सक का जन्म लैनेर्कशिर के लाग कैल्डरवुड ग्राम में हुआ था। ये विद्यालय में बहुत कम शिक्षा पा सके। १७ वर्ष की आयु में आलमारी बनाने के कारखाने में काम करने से जीविकोपार्जन आरंभ किया, पर तीन वर्ष बाद अपने बड़े भाई, विलियम हंटर, के शरीरविच्छेदन कार्य (dissection) में सहायता देने के लिये लंदन चले गए। सन् १७५४ में सेंट जॉर्ज अस्पताल से इनका संबंध हुआ, जहाँ दो वर्ष बाद ये हाउस सर्जन नियुक्त हुए। सन् १७६० ई० में बेलआइल (Belleisle) के अभियान में स्टाफ सर्जन के पद पर गए। तत्पश्चात् पोर्तुगाल में सेना में कार्य कर, सन् १७६३ ई० में वापस आए तथा चिकित्सा व्यवसाय आरंभ किया।

प्रातः और रात्रि का समय विच्छेदन और प्रयोगों में इन्होंने लगाना आरंभ किया। सन् १७६८ ई० में सेंट जॉर्ज अस्पताल में शल्यचिकित्सक नियुक्त हुए, इस बीच इन्होंने शल्य चिकित्सा के नियमों की जो परिकल्पनाएँ प्रस्तुत कीं, वे उनके समय के चिकित्सकों की शरीर संबंधी प्रचलित धारणाओं से अत्यग्रिम होने के कारण उनकी समझ में न आईं। सन् १७७२ ई० से इन्होंने शल्यचिकित्सा पर व्याख्यान देना आरंभ किया। सन् १७७६ ई० में इंगलैंड के राजा, जार्ज तृतीय, के विशेष शल्यचिकित्सक नियुक्त हुए। सन् १७६७ ई० में रॉयल सोसायटी के सदस्य मनोनीत हुए तथा सन् १७७६ ई० से लेकर १७८२ ई० तक 'पेशीय गति' पर आपने व्याख्यान दिए। सन् १७८८ ई० में पॉट की मृत्यु के पश्चात् ब्रिटेन के सर्वश्रेष्ठ शल्यचिकित्सक माने जाने लगे।

हंटर ने अपने ज्ञान का विस्तार पुस्तकों से नहीं, वरन् निरीक्षण तथा प्रयोगों से किया। सन् १७६७ ई० में इनकी पिंडली की कंडरा (tendon) टूट गई थी तब इन्होंने कंडराओं की चिकित्सा का अध्ययन किया। इसी से आधुनिक अधस्त्वचीय कंडरोपचार का जन्म हुआ। 'मानव दंतों का प्राकृतिक इतिहास' शीर्षक से लिखे आपके ग्रंथ में सर्वप्रथम इस विषय के वर्तमान प्रचलित पदों का उपयोग हुआ जिससे दंतचिकित्सा में क्रांति आ गई। सन् १७७२ ई० में आपने 'मृत्यूपरांत् पाचन' और जैव शक्तिवाद पर महत्व के अपने विचार प्रकट किए। सन् १७८५ ई० में इन्होंने पाया कि यदि हरिण के शृंगाभ की मुख्य धमनी को बाँध दिया जाय, तो भी सपार्श्विक रक्तसंचरण इतना हो जाता है कि शृंग की वृद्धि हो सके। जानुपश्च उत्स्फार (politeal aneurysm) विकृति के उपचार के लिये इन्होंने इसी नियम का ऊरु धमनी (femoral artery) के बंधन में उपयोग किया, जिससे इस प्रकार के रोगों की चिकित्सा का ढंग पूर्णतः बदल गया। जैव वैज्ञानिक तथा शरीरक्रियात्मक प्रयोगों से संबंधित आपने अनेक लेख लिखे। 'रक्त, शोथ तथा बंदूक के घाव' पर भी अपने प्रयोगों के आधार पर आपने एक ग्रंथ लिखा।

हंटर का सबसे बड़ा स्मारक वह संग्रहालय है, जिसकी आकल्पना इन्होंने सरलतम से लेकर जटिलतम वानस्पतिक और जंतुजगत् के तुलनात्मक अध्ययन के लिये की। इनकी मृत्यु के समय इसमें १३,६०० परिरक्षित द्रव्य थे, जिनपर इन्होंने लगभग दस लाख रुपए खर्च किए थे।

जॉन हंटर को आधुनिक शल्यचिकित्सा का संस्थापक माना जाता है। जैवविज्ञान के क्षेत्र में शीतनिष्क्रियता, मधुमक्खियों का स्वभाव, रेशम के कीड़े का जीवन, अंडों का परिपाक, पक्षियों के वायुकोष, मछलियों के विद्युतांग, पौधों के ताप और जीवाश्म संबंधी इनकी खोजें तथा जीवन के गुप्त ताप से संबंधित सिद्धांत आदि इनके श्रेष्ठ वैज्ञानिक होने के प्रमाण हैं। [भ० दा० व०]

हकीकत राय (सन् १७२४-४१) स्यालकोट (पश्चिमी पाकिस्तान) निवासी भागमल का धर्मपरायण एकमात्र पुत्र। मौलवी साहब की मकतब से अनुपस्थिति में हकीकत के सहपाठियों ने हिंदू देवी दुर्गा को गाली दी। विरोध में हकीकत ने कहा 'यदि मैं मुहम्मद

सरकार द्वारा पथप्रदर्शन के अभाव मे किसी नीति अथवा दिशाविशेष का अनुसरण नही करती जिसके कारण इसमे अनेक सामाजिक और आर्थिक कमजोरियाँ आ जाती हैं। आयविभाजन में विषमता आ जाती है तथा देश के उत्पत्तिसाधनो का पूर्णतः प्रयोग नही हो पाता। द्वितीय, अनियन्त्रित बाजार अर्थव्यवस्था के कारण प्रजातत्रीय राज्य की सामाजिक आवश्यकताएँ पूरी नही हो सकती। तृतीय, स्वेच्छा व्यापार के अतर्गत देश के निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन नही मिलता, अधिक उन्नत देशो की औद्योगिक स्पर्धा के कारण देश के निर्यात उद्योग विकसित नही हो पाते। चतुर्थ, इस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत आर्थिक शोषण बढता जाता है तथा श्रमिक वर्ग आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विषमता का शिकार बना रहता है। अत में यह सिद्धात यद्यपि व्यक्तिगत स्वतत्रता प्रदान करता है तथापि सामाजिक स्वतंत्रता से संबंध नही रख पाता।

आज के राजनीतिक तथा आर्थिक विचारक स्वेच्छा व्यापार के सिद्धात को व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था मे उतना ही अपूर्ण मानते हैं जितना नियोजित अर्थव्यवस्था को स्वेच्छा व्यापार के अंश के बिना। आर्थर लैविस (W. Arthur Lewis) के अनुसार शत प्रतिशत मार्गनिर्धारण उतना ही असभव है जितना शत प्रतिशत स्वेच्छा व्यापार। आधुनिक काल में सभी देशो की अर्थव्यवस्थाओं में, आर्थिक नियोजन में स्वेच्छा व्यापर के सिद्धातो का आंशिक समावेश अवश्य होता है। [अ० ना० अ०]

स्वेज नहर लाल सागर और भूमध्य सागर को संबद्ध करने के लिये सन् १८५९ में एक फासीसी इंजीनियर की देखरेख में इस नहर का निर्माण शुरू हुआ था। यह नहर आज १६५ किमी लबी, ४८ मी चौडी और १० मी गहरी है। दस वर्षों मे बनकर यह तैयार हो गई थी। सन् १८६९ में यह नहर यातायात के लिये खुल गई थी। पहले केवल दिन में ही जहाज नहर को पार करते थे पर १८८७ ई० से रात मे भी पार होने लगे। १८६६ ई० में इस नहर के पार होने में ३६ घंटे लगते थे पर आज १८ घटे से कम समय ही लगता है।

इस नहर का प्रबंध पहले 'स्वेज कैनाल कंपनी' करती थी जिसके आधे शेयर फास के थे और आधे शेयर तुर्की, मिस्र और अन्य अरब देशों के थे। पीछे मिस्र और तुर्की के शेयरो को अंग्रेजो ने खरीद लिया। १८८८ ई० मे एक अंतरराष्ट्रीय उपसधि के अनुसार यह नहर युद्ध और शाति दोनो कालो में सब राष्ट्रो के जहाजो के लिये बिना रोकटोक समान रूप से आने जाने के लिये खुली थी। इस नहर पर किसी एक राष्ट्र की सेना नही रहेगी, ऐसा करार था, पर अंग्रेजो ने १९०४ ई० में इसे तोड दिया और नहर पर अपनी सेनाएँ बैठा दी और उन्ही राष्ट्रो के जहाजो के आने जाने की अनुमति दी जाने लगी जो युद्धरत नही थे। १९४७ ई० में स्वेज कैनाल कपनी और मिस्र सरकार के बीच यह निश्चय हुआ कि कपनी के साथ ९९ वर्ष का पट्टा रद हो जाने पर इसका स्वामित्व मिस्र सरकार के हाथ आ जायगा। १९५१ ई० मे मिस्र मे ग्रेट ब्रिटेन के विरुद्ध आदोलन छिड़ा और अंत मे १९५४ ई० में एक करार हुआ जिसके अनुसार ब्रिटेन की सरकार कुछ शर्तो के साथ नहर से अपनी सेना हटा लेने पर राजी हो गई। पीछे मिस्र ने इस नहर का राष्ट्रीयकरण कर इसे अपने पूरे अधिकार मे कर लिया।

इस नहर के कारण यूरोप से एशिया और पूर्वी अफ्रीका का सरल और सीधा मार्ग खुल गया और इससे लगभग ६,००० मील की दूरी की बचत हो गई। इससे अनेक देशो, पूर्वी अफ्रीका, ईरान, अरब, भारत, पाकिस्तान, सुदूर पूर्व एशिया के देशो, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि देशो के साथ व्यापार मे बडी सुविधा हो गई है और व्यापार बहुत बढ़ गया है। [रा० स० ख०]

हंगरी गणतंत्र स्थिति : ४५° ५०' से ४८° ४०' उ० अ० तथा १६° से २३° पू० दे०। इस गणतंत्र की अधिकतम लबाई २५६ किमी और चौडाई ४२८ किमी है। हंगरी, मध्ययूरोप की डैन्यूब नदी के मैदान मे स्थित है। इसके उत्तर में चेकोस्लोवाकिया और सोवियत सघ, पूर्व मे रोमानिया, दक्षिण में युगोस्लाविया तथा पश्चिम मे आस्ट्रिया हैं। इस देश में समुद्रतट नही है।

प्राकृतिक बनावट — यह आल्प्स पर्वतश्रेणियों से घिरा है। यहाँ कार्पेथिऐन पर्वत भी है जो मैदान को लघु एल्फोल्ड और विशाल एल्फोल्ड नामक भागों में विभक्त करता है। सर्वोच्च शिखर केकेस ३,३३० फुट ऊँचा है। इसमे दो बडी झीलें हैं — (१) बालाटान (लबाई ७७५ किमी और चौडाई ५ किमी) (२) न्यूसीडलर {इसे हंगरी में फर्टो (Ferto) कहते हैं}। प्रमुख नदियाँ हैं : डैन्यूब, टिजा और द्रवा।

जलवायु — देश की जलवायु शुष्क है। शीतकाल में अधिक सरदी और ग्रीष्मकाल में अधिक गरमी पड़ती है। न्यूनतम ताप ४° सें० और अधिकतम ताप ३६° सें० से भी अधिक हो जाता है। पहाडी जिलो में औसत वर्षा १०१६ मिमी और मैदानी जिलों मे ३८१ मिमी होती है। सबसे अधिक वर्षा जाड़े मे होती है जो खेती के लिये हानिप्रद नही होती है।

कृषि — राष्ट्र की आधे से अधिक आय कृषि से होती है। डैन्यूब नदी के मैदानो मे मक्का, गेहूँ, जौ, राई आदि अनाजो के अतिरिक्त आलू, चुकदर प्याज और सन भी उगाए जाते हैं। चुकदर से चीनी बनाई जाती है। यहाँ अच्छे फल भी उगते हैं। अगूर से एक विशिष्ट प्रकार की शराब टोके (Tokay) बनाई जाती है। मैदानो में चरागाह हैं जहाँ हिरण, सूअर और खरगोश आदि पशु पाले जाते हैं। पैप्रीका (paprika) नामक मिर्च होती है। यहाँ के वनो में चौड़े पत्तेवाले पेड, ओक, बीच, ऐश तथा चेस्टनट पाए जाते हैं।

खनिज सपत्ति — देश में खनिज धन अधिक नही है। लोहे, मैंगनीज और ऐलुमिनियम (बॉक्साइट) के कुछ खनिज निकाले जाते हैं। लोहे के खनिज निम्न कोटि के हैं। कुछ पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस भी निकलती है। लिग्नाइट कोयला भी यहाँ निकाला जाता है। जलविद्युत् के उत्पादन के साधनो का यहाँ बहुत अभाव है।

हड़ताल औद्योगिक मांगो की पूर्ति कराने के लिये हडताल मजदूरो का अत्यत प्रभावकारी हथियार है। औद्योगिक विवाद अधिनियम १६४७ में हडताल की परिभाषा करते हुए लिखा गया है कि औद्योगिक सस्थान में कार्य करनेवाले कारीगरों द्वारा (जिनकी नियुक्ति कार्य करने के लिये हुई है) सामूहिक रूप से कार्य बद करने अथवा कार्य करने से इनकार करने की कार्यवाही को हडताल कहा जाता है।

हडताल के अविभाज्य तत्वों में—औद्योगिक मजदूरों का समिलित होना, कार्य का वद होना अथवा कार्य करने से इन्कार करना और समान समझदारी से सामूहिक कार्य करने की गणना होती है। सामूहिक रूप से कार्य पर से अनुपस्थित रहने की क्रिया को भी हडताल की सज्ञा दी जाती है। हडताल के अतर्गत उपर्युक्त तत्वो का उसमें समावेश है।

आम तौर पर मजदूरो ने मजदूरी, बोनस, मुअत्तली, निष्कासन-आज्ञा, छुट्टी, कार्य के घटे, (continued) ट्रेड यूनियन सगठन की मान्यता आदि प्रश्नों को लेकर हडतालें की हैं। श्रमिकों मे व्याप्त असतोप ही अधिकतर हडतालों का कारण हुआ करता है। इगलैंड में श्रमिक संघों के विकास के साथ साथ मजदूरो में औद्योगिक उमग अर्थात् उद्योगों में स्थान बनाने की भावना तथा राजनीतिक विचारो के प्रति रुचि रखने की प्रवृत्ति भी विकसित हुई। परतु सयुक्त पूंजीवादी प्रणाली (Joint stock system) के विकास ने मजदूरो मे असतोष की सृष्टि की। इस प्रणाली से एक ओर जहाँ पूंजी के नियत्रण एव स्वामित्व में भिन्नता का प्रादुर्भाव हुआ, वही दूसरी ओर मालिको और श्रमिकों के व्यक्तिगत सबध भी विगडते गए। फलस्वरूप द्वितीय महायुद्ध के वाद मजदूरी, वोनस, महँगाई आदि के प्रश्न हडतालों के मुख्य कारण बने। इगलैंड में हडतालें श्रमसगठनों की मान्यता एव उद्योग के प्रबध में भाग लेने की इच्छा को लेकर भी हुई हैं।

वर्तमान काल में, हडताल द्वारा उत्पादन का ह्रास न हो, अत सामूहिक सौदेवाजी (Collective bargaining) का सिद्धात अपनाया जा रहा है। ग्रेट ब्रिटेन में श्रमसगठनो को मालिको द्वारा मान्यता प्राप्त हो चुकी है तथा सामूहिक सौदेवाजी के अंतर्गत जो भी समझौते हुए हैं उनको व्यापक वनाया जा रहा है।

अतरराष्ट्रीय श्रमसगठन की रिपोर्ट के अनुसार अमरीका मे गैर-कृषिउद्योगों में कार्यरत एक तिहाई मजदूरो के कार्य की दशाएँ 'सामूहिक सौदेवाजी' के द्वारा निश्चित होने लगी हैं। स्विटजरलैंड में लगभग आधे औद्योगिक मजदूर सामूहिक अनुबधो के अंतर्गत आते हैं। आस्ट्रेलिया, वेल्जियम, जर्मन गणराज्य, लुकजवर्ग, स्कैंडेनेवियन देशो तथा ग्रेट ब्रिटेन के अधिकाश औद्योगिक मजदूर सामूहिक करारो के अतर्गत आ गए हैं। सोवियत सघ और पूर्वीय यूरोप के प्रजातत्र राज्यो में भी ऐसे सामूहिक करार प्रत्येक औद्योगिक संस्थान में पाए जाते हैं।

प्रथम महायुद्ध से पूर्व भारतीय मजदूर अपनी माँगो को मनवाने के लिये हडताल का सुचारु रूप से प्रयोग करना नही जानते थे। इसका मूल कारण उनकी निरक्षरता, जीवन के प्रति उदासीनता और उनमें सगठन तथा नेतृत्व का अभाव था। प्रथम महायुद्ध की अवधि तथा विशेषकर उसके वाद लोकतत्रीय विचारो के प्रवाह ने, सोवियत क्राति ने, समानता, भ्रातृत्व और स्वतत्रता के सिद्धात की लहर ने तथा अतरराष्ट्रीय श्रम सगठन ने मजदूरो के बीच एक नई चेतना पैदा कर दी तथा भारतीय मजदूरो ने भी साम्राज्यवादी शासन के विरोध, काम की दशाओ, काम के घटे, छुट्टी, निष्कासन आदि प्रश्नो को लेकर हडतालें कीं। [पु० वा०]

भारत में हडतालों की पृष्ठभूमि — १६१४ के पूर्व का काल : भारत में सर्वप्रथम हडताल ववई की 'टेक्सटाइल मिल' में १८७४ में हुई। तीन वर्ष उपरात 'इम्प्रेस मिल्स' नागपुर के श्रमिकों ने अधिक मजदूरी की माँग की पूर्ति न होने के फलस्वरूप हडताल की। १८८२ से १८६० तक ववई एव मद्रास में हडतालों की सख्या २५ तक पहुँच गई। १८६४ मे अहमदाबाद मे श्रमिको ने एक सप्ताह के स्थान पर दो सप्ताह पश्चात् मजदूरी देने के विरोध में हडताल का सहारा लिया, जिसमें ८००० बुनकरो ने भाग लिया परतु हडताल असफल रही। दूसरी वडी हडताल मई, १८६७ में बबई के श्रमिको ने दैनिक मजदूरी देने की प्रथा समाप्त कर देने के विरोध में की। यह भी असफल रही। उद्योगों में वृद्धि के फलस्वरूप बंबई एव मद्रास में १६०५ से १६०७ तक काफी हडतालें हुई। १६०५ में कलकत्ता के भारतीय सरकारी प्रेस के श्रमिको ने निम्नाकित माँगों की पूर्ति के लिये हडताल की .

१. रविवार एव सरकारी (गजटेड) छुट्टियों एव मजदूरी सहित अवकाश न देने पर,
२. अनियमित दड देने पर,
३ अतिरिक्त समय के काम की मजदूरी न मिलने एव
४. अधिकारियो द्वारा चिकित्सक के प्रमाणपत्र पर छुट्टी अस्वीकार करने पर।

यह हडताल लगभग एक मास तक चली। दो वर्ष उपरात समस्तीपुर रेलकर्मचारियो ने अधिक मजदूरी की माँग में हडताल की। १६०८ में बंबई के टेक्सटाइल मिलों के श्रमिको ने श्री बाल-गंगाधर तिलक के जेल भेजे जाने के फलस्वरूप हडताल की। इसके अतिरिक्त १६१० मे बबई में हडतालें हुईं।

१६१४—१६२६ प्रथम विश्व महायुद्ध की समाप्ति ने अपूर्व सघर्षो को जन्म दिया। बगाल, बिहार एव उडीसा के श्रमिको ने हडताल की। सन् १६२० मे बबई, मद्रास, बगाल, उडीसा, पंजाब और आसाम में करीब २०० हडतालें हुई। १६२१ से १६२७ तक भी हडतालो की संख्या काफी रही। १६२८ की बवई की भीषण हडताल की आग सपूर्ण देश में फैल गई। स्थिति सन् १६२६ तक पूर्ववत् रही।

१६३०–१६३८ के मध्य भी अधिक हडतालें हुईं। परतु इनकी सख्या पिछले वर्षों से अपेक्षाकृत काफी कम थी। १६३८ के द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका से पुन. एक वार श्रमिको की आर्थिक दशा पर कुठाराघात किया गया। फलस्वरूप इनकी दशा और दयनीय हो

साहब की पुत्री फ़ातिमा के विषय में ऐसी ही अपमानजनक भाषा प्रयुक्त करें तो तुम लोगों को कैसा लगे? मौलवी साहब के समक्ष तथा स्यालकोट के शासक अमीर बेग की अदालत में हकीकत ने सच्ची बात कह सुनाई। तब भी मुल्लाओं की संमति ली गई। इन्होंने इस्लाम के अपमान का विचार भी मृत्युदंड ठहराया। लाहौर के सूबेदार खानबहादुर (जकरिया खान) की कचहरी में भी यही निर्णय बहाल रहा। मुल्लाओं के सुझाव के अनुसार प्राण-रक्षा का अकेला साधन था — इस्लाम ग्रहण करना। पिता का अनुरोध, माता गौराँ एवं अल्पवयस्का पत्नी दुर्गा के आँसू भी हकीकत को टस से मस न कर सके। माघ सुदी पंचमी को हकीकत को फाँसी दे दी गई। लाहौर से दो मील पूर्व दिशा में हकीकतराय की समाधि बनी हुई है।

सं० ग्रं० — काह्न सिंह : गुरुशबद रत्नाकर। महान कोश (इंसाइक्लोपीडिया ऑव सिख लिटरेचर), द्वितीय संस्करण, १९६० ई० (भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला), कल्याण (बालक अंक), वर्ष २७, संख्या १ (गीता प्रेस, गोरखपुर) [न० क०]

हक्स्ले, टामस हेनरी (Huxley, Thomas Henry, सन् १८२५-१८९५) इस जीववैज्ञानिक का जन्म लंदन के ईलिंग नामक स्थान में हुआ था। आपने चेयरिंग क्रास हॉस्पिटल में चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन किया। सन् १८४६ में ये रॉयल नेवी के चिकित्सा विभाग में सहायक सर्जन नियुक्त हुए तथा एच० एम० एस० 'रैटिल स्नेक' पर, जो प्रवाल रोधिका (Barrier reef) वाले क्षेत्रों का मानचित्र तैयार करने के लिये भेजा गया था, सहायक सर्जन के रूप में गए। इस समुद्रयात्रा के समय हक्स्ले ने समुद्री, विशेष कर अपृष्ठवंशी जंतुओं का अध्ययन किया। इन्होंने हाइड्राइड पॉलिप और मेडुसी में संबंध स्थापित कर, यह सिद्ध किया कि ये जीव मूलत. दो स्तरों, बाह्य त्वचा तथा अंतस्त्वचा द्वारा बने निर्मित होते हैं। इसके बाद आप रॉयल सोसाइटी के सदस्य चुने गए। बाद मे इनकी रुचि पृष्ठवंशियों की ओर हुई और इन्होंने सन् १८५८ में करोटि के कशेरुक सिद्धांत (vertebral theory of skull) का प्रतिपादन किया। इनके इस सिद्धांत को ओवेन (Owen) द्वारा समर्थन प्राप्त हुआ।

ये डॉरविन (Darwin) के सिद्धांत के पहले की जीवविकास-संबंधी सभी खोजों से असंतुष्ट थे। इन्होंने डॉरविन के सिद्धांत का समर्थन किया तथा उसमें आवश्यक संशोधनों पर प्रकाश डाला। इन्होंने सन् १८६० से सन् १८७० तक जीवाश्मों (fossils) पर भी शोधकार्य किए और कई महत्वपूर्ण निबंध लिखे। सन् १८७० से १८८१ तक आप रायल सोसाइटी के सचिव तथा सन् १८८५ तक अध्यक्ष रहे। [नं० कु० रा०]

हजारीबाग बिहार का एक जिला है जिसका विस्तार २३° २५' से २४° ४९' उ० अ० तक तथा ८४° २७' से ८६° ३४' पू० दे० तक है। इसके उत्तर में गया तथा मुंगेर, दक्षिण में राँची, पूरब में धनबाद तथा पश्चिम में पलामू जिले हैं। इस जिले का क्षेत्रफल ७०१६ वर्ग मील एवं जनसंख्या २३,९६,४११ (१९६१) है। धरातल पठारी है जिसकी ऊँचाई १३०० फुट से लेकर २००० फुट है। यहाँ नाथ की पहाड़ी (४४८० फुट) सबसे ऊँची है। दामोदर तथा उसकी सहायक बराकर प्रमुख नदियाँ हैं। इस जिले में धान और मकई की खेती होती है परंतु खेती से अधिक महत्वपूर्ण यहाँ जंगल की लकड़ियाँ कोयला, अभ्रक, आदि खनिज पदार्थ हैं। यहाँ का नेशनल पार्क दर्शनीय है।

हजारीबाग नगर जिले का प्रमुख केंद्र है। इस नगर की जनसंख्या ४० ९५८ (१९६१) है। यहाँ बिहार का एक सेंट्रल जेल है। यह नगर सड़कों द्वारा राँची आदि अन्य नगरों से संबद्ध है तथा हजारीबाग रोड स्टेशन से ३३ किमी दूर है। [ज० सिं०]

हडसन, विलियम हेनरी (१८४१-१९२२) अंग्रेजी लेखक। जन्मस्थान, रियो दे ला प्लाता, ब्यूनस आयर्स, अर्जेंटाइना। अमरीकी मातापिता की संतान। प्रारंभिक जीवन अर्जेंटाइना के घास के विस्तृत मैदानोंवाले प्रदेश में ही बीता, परंतु १८६९ में वह दक्षिणी अमरीका छोड़कर इंग्लैंड आ गया। यहाँ उसका लगभग संपूर्ण जीवन, विशेषकर प्रारंभ में, निर्धनता और अकेलेपन के कारण कष्टपूर्ण रहा। १८७६ में उसने एमिली विनग्रेव से विवाह किया और दस साल तक पत्नी ने बोर्डिंग हाउस चला चलाकर दोनों का भरण-पोषण किया। १९०० में वह ब्रिटिश नागरिक बन गया। १९०१ में सरकारी पेंशन मिल जाने के कारण उसे कुछ सुविधा हो गई, परंतु परिस्थिति सुधरते ही उसने पेंशन लेना बंद कर दिया। बचपन से ही उसे प्रकृति से अत्यधिक अनुराग था और उसने उसका सूक्ष्म अध्ययन किया था, विशेषकर पक्षियों के जीवन का। उसके प्रकृति-वर्णन में वैज्ञानिक निस्संगता और तीव्र भावनानुभूति का अद्भुत सम्मिश्रण है।

हडसन की रचनाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : प्रथम वे रचनाएँ हैं जो दक्षिणी अमरीका से संबंधित हैं, यथा 'दि पर्पुल लैंड' (युरुग्वे) (१८८५) 'ए क्रिस्टल एज' (इसमें शांतिपूर्ण आदर्श कल्पनालोकों पर व्यंग्य किया गया है) (१८८७), 'ए नेचुरलिस्ट इन ला प्लाता' (१८९२) 'एल ऑम्बू' (१९०२), 'ग्रीन मैन्शंस' (१९०४), तथा 'फ़ार एँड लौंग एगो' (१९१८) जो आत्मकथात्मक है। 'ग्रीन मैंशंस' की अर्धपक्षी और अर्धमानव नायिका 'रीमा' उसके द्वारा निर्मित सबसे स्मरणीय चरित्र है।

ब्रिटिश प्रकृति एवं ग्राम्य प्रदेश से संबंधित कुछ रचनाएँ हैं : 'नेचर इन डाउनलैंड' (१९००), 'हैंपशायर डेज' (१९०३), 'अफ़ुट इन इंग्लैंड' (१९०९), 'ए शेफर्ड्स लाइफ़' (१९१०) तथा 'डेड मैंस प्लैंक' (१९२०)।

पक्षीजीवन से संबंधित रचनाओं में प्रमुख हैं : 'ब्रिटिश बर्ड्स' (१८९५), 'बर्ड्स ऐंड मेन' (१९०१) तथा 'बर्ड्स ऑव ला प्लाता' (१९२०)।

हडसन की कुछ अन्य पुस्तकें हैं : 'आइडिल डेज इन पैटागोनिया' (१८९३), 'ए लिटिल ब्वाय लॉस्ट' (१९०५), 'दि लैंड्स एंड' (१९०८), 'ए ट्रैवेलर इन लिटिल थिंग्स' (१९२१), तथा मृत्यु के बाद प्रकाशित 'ए हाइंड इन रिचमंड पार्क' (१९२२)। [च० दि० मि०]

विद्रोही प्रजा के विरुद्ध दोनो का सहयोग होगा और राजनीतिक भगोड़ों का दोनो परिवर्तन कर लेंगे। यह संधि इतनी महत्वपूर्ण समझी गई कि मिस्री और खत्ती रानियो ने भी संधि की खुशी मे एक दूसरे को बधाई के पत्र भेजे। पश्चात् खत्ती नरेश की कन्या मिस्र भेजी गई जो रामसेज द्वितीय की रानी बनी।

बोगजकोइ की पट्टिकाओ पर प्रायः २०० पैरों के खत्ती कानून की धाराएँ खुदी हैं। साधारणत खत्तियों की दंडनीति असूरी, बाबुली, यहूदी दंडनीति से कही मृदुल थी। प्राणदंड अथवा नाक कान काटने की सजा शायद ही कभी दी जाती थी। कुछ यौनापराध संबंधी दंड तो इतने नगण्य थे कि खत्तियो की आचारचेतना पर विद्वानों को संदेह होने लगता है। उस विधान का एक बड़ा अंश राष्ट्र के आर्थिक जीवन से संबंध रखता है। उससे प्रगट है कि वस्तुओं के मूल्य, नाप तौल के पैमाने, बटखरे आदि निश्चित कर लिए गए थे। कृषि और पशुपालन संबंधी प्रधान समस्याओं का उसमें आश्चर्यजनक मृदु हल खोजा गया है। उसमें कानून और न्याय के प्रति प्रकटित आदर वस्तुतः अत्यंत सराहनीय है। अनेक अभिलेखो में महार्घ धातुओं के प्रयोग, युद्धबंदियो के प्रबंध, चिकित्सक, शालिहोत्र आदि पर खत्ती मे प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। मध्यपूर्व में संभवत पहले पहल अश्व का प्रयोग शुरू हुआ। उस दिशा में अश्वविज्ञान पर पहला साहित्य शायद खत्तियो के आर्य पडोसी मितन्नियों ने प्रस्तुत किया। उनसे खत्तियों ने सीखा फिर पड़ोसियो तथा उत्तरवर्ती सभ्यताओ को वे उसे सिखा गए।

खत्तियो के साहित्यभांडार में सबसे अधिक भाग धर्म का मिला है। खत्तियो के देवताओ की संख्या विपुल थी और प्राय छह अन्या-धारो से वे लिए गए थे। ऊपर संधिपत्रों पर देवसाक्ष्य का उल्लेख किया जा चुका है। इन्ही संधिपत्रो पर देवताओ के नाम खुदे हैं जो सुमेरी, बाबुली, हुर्री, कस्सी, खत्ती और भारतीय हैं। इन देवताओ के अतिरिक्त खत्ती आकाश, पृथ्वी, पर्वतो, नदियो, कूपों, वायु और मेघो की भी आराधना करते थे, जैसा उनके इस धार्मिक साहित्य के संदर्भों से प्रमाणित है।

पौराणिक आनुवृत्तिक साहित्य मे प्राधान्य उनका है जो सुमेरी बाबुली से ले लिए गए हैं। खत्तियो में बाबुली आधार से अनूदित 'गिलगमेश' महाकाव्य बडा लोकप्रिय हुआ। उस काव्य के अनेक खंड अक्कादी, खत्ती और हुर्री मे लिखे बोगजकोइ के उस भंडार में मिले थे। हुर्री मे लिखे 'गिलगमेश के गीत' तो पंद्रह से अधिक पट्टिकाओ पर प्राप्त हुए थे। खत्तियो से ही ग्रीको ने गिलगमेश का पुराण पाया। खत्तियो के उस धार्मिक साहित्य में अक्कादी साहित्य की ही भाँति सूत्र और गायन थे। मंदिरो आदि में होनेवाली यज्ञादि क्रियाओ को नर और नारी दोनो ही प्रकार के पुरोहित संपन्न करते थे। दोनो के नाम अनुष्ठानो मे लिखे जाते थे। अनुष्ठान मंत्रदोष, प्रायश्चित्त आदि के संबंध के थे। अपनी संस्कृति के निर्माण में जितना योग अन्य संस्कृतियो से सर्वथा उदार भाव से खत्तियो ने लिया उतना संभवतः किसी और जाति ने नही। कोशनिर्माण का एक प्रयत्न उन्होने ही अनेक भाषाओ के पर्याय एक साथ समानांतर स्तंभो में लिखकर किया। विविध भाषाओ के समानांतर पर्यायो से ही भाषा-विज्ञान की नींव की पहली ईंट रखी जा सकी। वह ईंट खत्तियो ने प्रस्तुत की। खत्तियो के अंतकाल मे आर्य ग्रीको (एकियाई दोरियाइ) के आक्रमण ग्रीस पर हुए और लघुएशिया पर भी उनका दबदबा धीरे धीरे बढा जब उन्होंने त्राय का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर नष्ट कर दिया।

सं० ग्रं० — डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी : विश्व इतिहास (प्राचीन काल), हिंदी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ। [भ० श० उ०]

हनूमान् अंजना अथवा अंजनी के गर्भ से उत्पन्न केसरी के पुत्र, जो परमवीर हुए हैं। केसरी सुमेरुपर्वत पर रहनेवाले वानरो के राजा थे और अंजनी गौतम की कन्या थी। हनूमान् पवनदेव के अंश माने जाते हैं।

अंजनी फलों के लिये घोर वन में गई थी, वहीं हनूमान् का जन्म हुआ। तुरंत ही इन्हें भूख लगी तो सूर्य को फल समझकर उसे खाने दौड़े। आकाश में उडकर जब इन्होने सूर्य को ढक लिया तब सारे संसार में हाहाकार मच गया और सभी देवता लोग दौड़े। इंद्र ने अपने वज्र से इन्हे मारा तो इनकी ठुड्डी (हनु) टेढ़ी हो गई तभी से इनका नाम हनूमान् पड गया।

वज्र लगने से जब ये मूर्छित हो गए तब वायु ने इन्हें ले जाकर एक गुफा में छिपा दिया। वायुदेव स्वयं बहुत देर तक वही रुके रहे फिर तो भूमंडल भर में लोगो का साँस लेना दूभर हो गया। तब सब देवताओ ने आकर हनूमान् को अपनी अपनी शक्तियाँ प्रदान कीं और उन्हें अमरत्व भी प्राप्त हुआ। इन शक्तियो में उड़ने, नाना रूप धारण करने आदि की शक्तियाँ हैं। इनका शरीर वज्र का बना माना जाता है। इसीलिये इन्हें वज्रांग अथवा बजरंगबली भी कहते हैं। इनके दूसरे नामो में, मरुत् या वायुपुत्र होने से मारुति, पवनतनय तथा महावीर, अंजनिपुत्र, केसरीनंदन, आंजनेय आदि हैं।

हनूमान् के जन्म की कथा रामायण, शिवपुराण आदि में विस्तार-पूर्वक मिलती है और सर्वत्र इन्हें परमपराक्रमी योद्धा के रूप में ही देखा गया है। इन्ही के हाथो त्रिशरादि रावण के कई सेनापतियों का वध हुआ था और इनके महान् पराक्रम का उदाहरण रामायण में ही मिलता है जब लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर ये उड़कर हिमालय से संजीवनी बूटी लाने गए और वहाँ शीघ्रता में ओषधि न मिलने पर सारा पर्वत ही उखाड़कर उठा लाए। सीता जी की खोज तथा राम-रावण युद्ध की सफलता का अधिकांश श्रेय इन्ही को है। ये अजेय, कामरूप, कामचारी तथा यमदंड से अवध्य थे और सभी शक्तियाँ प्राप्त होने पर जब ये देवताओ पर अत्याचार करने लगे तब इनके पिता केसरी तथा वायु देव दोनो ने इन्हे बहुत समझाया। उत्तरकांड में लिखा है कि जब हनूमान् न माने तो भृगु तथा अंगिरा वंशीय ऋषियों ने इन्हे शाप दे दिया कि भविष्य में इनकी सारी शक्तियाँ सीमित हो जाएँगी और किसी के स्मरण दिलाने पर ही उनका विकास हो सकेगा और तभी उनका उपयोग हनुमान् कर सकेंगे।

हनुमान की गणना सप्त चिरजीवियो में की जाती है जिनमें ये लोग हैं —

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमाश्च विभीषणः।
कृप परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

[रा० द्वि०]

गई। तत्पश्चात् १९४० में ३२२ तथा १९४२ में ६६४ हड़तालें हुईं। १९४२ से १९४६ के मध्य भी हड़तालें होती रही जिनमे जुलाई, १९४६ की डाक एवं तार विभाग के कर्मचारियो की आम हड़ताल अधिक महत्वपूर्ण है। इनका मूल कारण मजदूरी एवं महँगाई भत्ता में वृद्धि करना था।

१९४७–१९६९ — १९४७ में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने संघर्षों को शातिपूर्ण ढंग से सुलझाने के अनेक प्रयास किए। परंतु दिन प्रतिदिन महँगाई बढने से श्रमिको में असतोष की ज्वाला कम न हुई। उदाहरणस्वरूप केंद्रीय सरकारी कर्मचारियो की हड़ताल, एयर इंडिया इंटरनेशनल के पाइलटो की हड़ताल, स्टेट बैंक एव अन्य व्यापारिक बैंको के कर्मचारियो की हड़ताल, हेवी इलेक्ट्रिकल, भोपाल के कर्मचारियो की हड़ताल, पोर्ट एव डाक के मजदूरो की हड़ताल, राउरकेला, दुर्गापुर, भिलाई एव हिंदुस्तान स्टील प्लाट के श्रमिको की हड़ताल तथा अन्य छोटे बडे उद्योगो की हड़तालें विशेष महत्व की हैं। इनसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को अधिक क्षति पहुँची है।

सहानुभूतिक हड़ताल—कुछ ऐसी हड़तालें भी कभी कभी हो जाती हैं जिन्हे सामूहिक हड़तालें कहते है। ये श्रमिको तथा मालिको के किसी मतभेद के कारण नही, वरन् दूसरे उद्योग के श्रमिको की सहानुभूति में होती हैं। इस प्रकार की हड़तालो को नियत्रित करने के लिये कोई वैधानिक धारा नही है (दे० 'श्रमिक विधि')।

[सु० च० श्री०]

हत्ती या हित्ती प्राचीन खत्तियो (हित्ताइत) की जाति और भाषा। भाषा के रूप में खत्ती हिंद-यूरोपीय परिवार की है परंतु उसकी लिपि प्राचीन सुमेरी-बाबुली-असूरी है और उसका साहित्य अक्कादी (असूरी-बाबुली) अथवा उससे भी पूर्ववर्ती सुमेरी से प्रभावित है।

तुर्की (एशियाई) साम्राज्य के एक बडे भाग के स्वामी खत्ती थे, जिनका अपना साम्राज्य था। वह साम्राज्य मध्यपूर्व के साम्राज्यो में (ई० पू० १७वी–१२वी सदियो में) तीसरा स्थान रखता था। उससे बड़े साम्राज्य अपने अपने राज्य मे केवल मिस्रियो और असूरी-बाबुलियो के ही रहे थे। खत्तियो का लोहा, उनके उत्कर्षकाल में, बाबुलियो और मिस्रियो दोनों में माना। फिलिस्तीन, लघुएशिया, सीरिया और दजला फरात के द्वावे पर दीर्घकाल तक उनका दबदबा बना रहा। उनका पहला साम्राज्यकाल १७वी से १५वी सदी ई० पू० तक रहा, और दूसरा १४वी से १२वी सदी ई० पू० तक। मिस्री फराऊन रामसेज से उनका दीर्घकाल तक युद्ध होता रहा था और अत मे दोनो में सधि हुई। उनके भेजे शिष्टमडल का स्वागत करते समय रामसेज ने तोरस पर्वत के पार हिमपात के परिवेश में बसनेवाले खत्तियो पर बडा आश्चर्य प्रकट किया था।

जर्मन पुराविद् ह्यूगो विक्लर ने प्राचीन खत्ती राजधानी बोगाजकोइ (प्राचीन का आधुनिक प्रतिनिधि) से खोदकर बीस हजार ईंटें और पट्टिकाएँ निकाल दी। इनपर कीलाक्षरो मे प्राचीनतर अन्यो का और स्वयं खत्तियों का साहित्य खुदा था। भारत के लिये इन ईंटो का बडा महत्व था क्योंकि वही मिलो १४वी सदी ई० पू० की एक पट्टिका पर ऋग्वेद के इंद्र, वरुण, मित्र, नासत्यो के नाम पादपाठ में खुदे मिले थे। यह पट्टिका खत्ती मितन्नी दो राष्ट्रो के युद्धातर का संधिपत्र थी जिसपर पुनीत साक्ष्य के लिये इन देवताओ के नाम दिए गए थे। इस अभिलेख में आर्यों के संक्रमण ज्ञान पर प्रभूत प्रकाश पड़ा है।

ई० पू० की तृतीय सहस्राब्दी में कभी खत्तियो का लघुएशिया के पूर्वी भाग मे प्रवेश हुआ और उन्होने स्थानीय अनार्य संस्कृति की अनेक बातें सीखकर अपना ली। खत्तियो का इस प्रकार अनेक भाषाओ और साहित्यो से संपर्क था और उन्होने उनसे अपना ज्ञान-भडार भरा। बोगजकोइ से मिली एक पट्टिका पर बराबर कालम बनाकर उनमें सुमेरी, अक्कादी, खत्ती आदि भाषाओ के शब्दपर्याय दिए हुए हैं। ससार के प्राचीनतम बहुभाषी शब्दकोशो में इसकी भी गणना है। अनेक बार तो बाबुली आदि साहित्यों के लिपिपाठ खत्तीसमानातर अनूदित साहित्य से शुद्ध किए गए हैं। प्रसिद्ध सुमेरी-बाबुली काव्य गिल्गमेश के अनेक अश, जो मूल पट्टिकाओ के टूट जाने से नष्ट हो गए थे, खत्ती पट्टिकाओं के मिलान से ही पूरे किए गए हैं।

खत्ती ऐतिहासिक साहित्य का अधिकाश राजवृत्तो से भरा है। लेखक वृत्तगद्य की साहित्यिक शैली में वृत्त लिखते थे और उनके नीचे अपना हस्ताक्षर कर देते थे। इन वृत्तो में अनेक प्रकार का ऐतिह्य है — असुरी-बाबुली-मिस्री राजाओ और सम्राटो के साथ सुलहनामे और अहदनामे, राजघोषणाएँ और राजकीय दानपत्र, नगरो के पारस्परिक विवादों में मध्यस्थता और सुलह, विद्रोही सामंतो के विरुद्ध साम्राज्य के अपराध परिगणन, सभी कुछ इन खत्ती अभिलेखो में भरा पड़ा है। इनमे विशेष महत्व के वे अगणित पत्र हैं जो खत्ती सम्राटो ने अन्य समकालीन नरेशो को लिखे थे या उनसे पाए थे। इन पत्रो को साधारणत. अमरना के टीले (तेल-एल-एमरना) के पत्र कहते हैं। प्राचीन काल की यह पत्रनिधि सर्वथा अद्वितीय और अनुपम है। इन पत्रो मे एक बडे महत्व का है। उसे खत्तियो के राजा शुप्पिलुलिउमाश के पास मिस्र की रानी ने भेजा था। उसमें रानी ने लिखा था कि खत्ती नरेश कृपया अपने एक पुत्र को उसका पुत्र बनने के लिये भेज दें। कुछ काल बाद इस निमित्त राजा का एक पुत्र मिस्र भेजा गया परतु मिस्रियो ने उसे शीघ्र पकड़कर मार डाला।

बोगजकोइ के उस भाडार से एक बडा महत्वपूर्ण खत्ती और मिस्र के बीच अतरराष्ट्रीय सधिपत्र उपलब्ध हुआ। जब खत्ती नरेश मुत्तालिश की सेनाओं ने मिस्री विजेता रामसेज द्वितीय की सेनाओं को १२८८ ई० पू० में एक देश के युद्ध में बुरी तरह पराजित कर दिया तब मुत्तालिश के उत्तराधिकारी खत्तुशिलिश तृतीय और मिस्र-राज के बीच संधि हुई। उसमे तय पाया कि मिस्र और खत्ती साम्राज्य के बीच बराबर मैत्री और पारस्परिक शांति बनी रहेगी। ई० पू० १२७२ मे यह अहदनामा लिख डाला गया। अहदनामा चाँदी की पट्टिका पर खुदा है और उसमें १८ पैराग्राफ हैं। खोदकर वह रामसेज के पास भेजा गया था। उसकी मुख्य शर्तें इस प्रकार थी — दोनो में से कोई दूसरे पर आक्रमण न करेगा, दोनो पक्ष दोनो साम्राज्यो के बीच की पहली सधियो का फिर से समर्थन करते हैं, दोनो शत्रु के आक्रमण के समय एक दूसरे की सहायता करेंगे,

४४६ (१९६१) है। यह जिला बुंदेलखंड के मैदान में स्थित है जो मध्य विंध्य पठार और यमुना नदी के मध्य में फैला हुआ है। जिले में महोवा की कृत्रिम झीलें हैं। ये झीलें चंदेल राजाओं द्वारा, मुगलो के भारत में आने से पूर्व बनवाई गई थी। इन झीलो में से अनेक में द्वीप या प्रायद्वीप हैं जिनपर ग्रेनाइट के बने मंदिरों के भग्नावशेष मिलते हैं। जिले का मुख्य मैदान उत्तर की ओर शुष्क एव वृक्षरहित भूमि में विस्तृत है। यहाँ की मिट्टी काली है जिसमें आर्द्रता वनी रहती है और इस कारण यह मिट्टी उपजाऊ है। वर्षा अनिश्चित है, जिसका औसत ९१.५ सेंमी है। चना और कपास मुख्य फसलें हैं।

२. नगर, स्थिति : २५° ५७' उ० अ० तथा ८०° १०' पू० दे०। यह नगर वेतवा एव यमुना नदी के सगम के समीप कानपुर से सागर जानेवाली पक्की सडक पर इलाहाबाद से १७६ किमी उत्तर पश्चिम में स्थित है। परपरा के अनुसार इस नगर के सस्थापक करचुरि राजपूत हमीर देव माने जाते हैं। नगर में हमीर के किले तथा कुछ मुसलमानो के मकवरो के भग्नावशेष हैं। नगर उपर्युक्त जिले का प्रशासनिक केंद्र है तथा यहाँ की जनसख्या १०,९२१ (१९६१) है। [अ० ना० मे०]

हम्मीर चौहान पृथ्वीराज की मृत्यु के वाद उसके पुत्र गोविंद ने रणथभोर में अपने राज्य की स्थापना की। हम्मीर उसीका वशज था। सन् १२८२ ई० में जब उसका राज्याभिषेक हुआ गुलाम वंश उन्नति के शिखर पर था। किंतु चार वर्षों के अंदर ही सुल्तान वल्वन की मृत्यु हुई, और चार वर्ष के वाद गुलाम वश की समाप्ति हो गई। हम्मीर ने इस राजनीतिक परिस्थिति से लाभ उठाकर चारों ओर अपनी शक्ति का प्रसार किया। उसने मालवा के राजा भोज को हराया, मडलगढ़ के शासक अर्जुन को कर देने के लिये विवश किया, और अपनी दिग्विजय के उपलक्ष्य में एक कोटियज्ञ किया। सन् १२९० मे पासा पलटा। दिल्ली में गुलाम वश का स्थान साम्राज्याभिलाषी खल्जी वश ने लिया, और रणथभौर पर मुसलमानो के आक्रमण शुरू हो गए। जलालुद्दीन खल्जी को विशेष सफलता न मिली। तीन चार साल तक अलाउद्दीन ने भी अपनी शनैश्चरी दृष्टि इसपर न डाली।

किंतु सन् १३०० के आरभ में जब अलाउद्दीन के सेनापति उलुग खाँ की सेना गुजरात की विजय के वाद दिल्ली लौट रही थी, मगोल नवमुस्लिम सैनिकों ने मुहम्मदशाह के नेतृत्व मे विद्रोह किया और रणथभोर में शरण ली। अलाउद्दीन की इस दुर्ग पर पहले से ही आँख थी, हम्मीर के इस क्षत्रियोचित कार्य से वह और जलभुन गया। अलाउद्दीन को पहले आक्रमण मे कुछ सफलता मिली। दूसरे आक्रमण में खल्जी बुरी तरह परास्त हुए; तीसरे आक्रमण में खल्जी सेनापति नसरतखाँ मारा गया और मुसलमानो को घेरा उठाना पड़ा। चौथे आक्रमण में स्वय अलाउद्दीन ने अपनी विशाल सेना का नेतृत्व किया। धन और राज्य के लोभ से हम्मीर के अनेक आदमी अलाउद्दीन से जा मिले। किंतु वीरव्रती हम्मीर ने शरणागत मुहम्मद शाह को खल्जियों के हाथ मे सौंपना स्वीकृत न किया। राजकुमारी देवल देवी और हम्मीर की रानियों ने जौहर की अग्नि में प्रवेश किया। वीर हम्मीर ने भी दुर्ग का द्वार खोलकर शत्रु से लोहा लिया और अपनी आन, अपने हठ, पर प्राण न्योछावर किए।

स० ग्र० — हम्मीर महाकाव्य; तारीखे फिरोजशाही; श्री हरविलास शारदा : हम्मीर ऑव रणथभोर; दशरथ शर्मा : प्राचीन चौहान राजवश। [द० श०]

हयदल (घुड़सवार सेना) का साग्रामिक महत्व उसकी सहज गतिशीलता मे निहित था। पैदल सेना यदि सुरक्षा और स्थिरता का केंद्र थी, तो हयदल उस सुदृढ केंद्र पर अवलंबित गतिमान आक्रामक शक्ति थी। शत्रु का डटकर मुकावला करने के लिये एक ओर तो कवचो और भालो से सुसज्जित पैदल सैनिकों की अभेद्य दीवार थी और दूसरी ओर छापामार हयदल रिपुसेना को पीडित करने, उसकी रसद व्यवस्था भग करने और अत में पार्श्वाघात द्वारा अथवा सवेग पीछा करके उसे छिन्न भिन्न करने के लिये प्रस्तुत था। इस भाँति पैदल सेना और हयदल दोनो के सहकार्य से ही रण में विजय होती थी।

ईसा से लगभग हजार वर्ष पूर्व से यह प्रथा अवश्य ही विद्यमान थी। ऋग्वेद, अथर्ववेद, रामायण और महाभारत में तत्सबधी वर्णन सुलभ हैं। ईसवी पूर्व नवीं शताब्दी में असीरियाई मूर्तिकाल में भी उसकी आकृति प्राप्य है। ट्रॉय सग्राम में युद्धग्रस्त वीर भी अश्व से भलीभाँति परिचित थे और सभवत तत्कालीन चीनी भी अश्वारूढ हो चुके थे।

हयदल का सर्वप्रथम ऐतिहासिक वर्णन ईरानी सम्राट् साइरस महान (५५० ई० पू०) की सेना में मिलता है। तदनतर ईरानी प्रतिस्पर्धी यूनानी राज्यों ने भी हयदल तैयार किए। सिकदर महान (३३६–३२३ ई० पू०) ने तो अपने २२ युद्धो में से १५ युद्धों में हयदल के बलबूते पर ही सफलता प्राप्त की। तत्पश्चात् सुप्रसिद्ध सेनानायक हैनिबाल ने भी अपने प्रवल हयदल की सहायता से ही रोम की सेनाओ का कैनी जैसे युद्धों (२१६ ई० पू०) में दमन किया। रोम साम्राज्य आरभ में सुगठित तथा चपल लीजन नामी पैदल सेना पर आधारित था, पर धीरे धीरे वहाँ भी हयदल का सामरिक महत्व समझा गया और ईसोत्तर तीसरी शताब्दी तक रोमन सेना में अश्वारोहियों की सख्या कुल सेना के दशमाश से बढकर तृतीयाश हो गई। अब इनकी कुल सख्या १,६०,००० थी। अपने विशाल साम्राज्य की विस्तृत सीमाओं की सुरक्षा के लिये और द्रुतगामी हूण, गॉथ आदि बर्बर जातियों के अश्वारोहियो से लोहा लेने के लिये रोम को भी मुख्यतः हयदल का ही आश्रय लेना पड़ा, तदपि रोम साम्राज्य का पतन हुआ।

यूनानी और रोमन हयदलों का युद्धकौशल प्रचड आक्रमण (Shock action) पर आधारित था। पार्श्व अथवा पृष्ठ भाग पर प्रहार करना हयदलों की विशेष चेष्टा होती थी। ये हयदल प्रधानतः पैदल सैनिको के सहयोग से ही युद्धरत होते थे।

एशियाई हयदलो की युद्धप्रणाली इससे कुछ भिन्न थी। भारतीय अश्वारोहियो की युद्धप्रणाली शुद्ध प्रचंड आघाती आक-

हब्शी मानव जाति को तीन मुख्य जातीय विभागों में बाँटा जा सकता है : काकेसियाई या 'श्वेत' वर्ण के लोग, मंगोलियाई या 'पीत' वर्ण के लोग और नीग्रोई अर्थात् हब्शी या 'काले' वर्ण के लोग। मानव जाति की पूरी हब्शी आबादी सारे अफ्रीका में फैली हुई है; साथ ही इस जाति के लोग महासागरीय भागों में भी पाए जाते हैं। हब्शी जाति के लोग दो प्रकार के हैं . लंबे हब्शी और नाटे कद के हब्शी, जो कांगो के बौनों की तरह होते हैं। असली हब्शी का चेहरा आगे को निकला हुआ, बाल घुँघराले, नाक बड़ी सी तथा चपटी और होंठ मोटा तथा बाहर की ओर मुड़ा हुआ होता है। शरीर हट्टा कट्टा, हाथ लंबे और पैर छोटे होते हैं। ऐसे हब्शी केवल पश्चिम अफ्रीका में कांगो के बेसिन और वहाँ से पूर्व और झीलबहुलक्षेत्र में रहते हैं।

उत्तरी अफ्रीका के हब्शियों के रक्त में गोरी जातियों के रक्त की मिलावट है। इस कारण वे ज्यादा लंबे और अपेक्षाकृत पतले होते हैं। इस समूह के हब्शी जिन्हें नील तटवर्ती हब्शी कहा जाता है, इथियोपिया और दक्षिण में रोडेशिया होते हुए दक्षिण अफ्रीका तक फैले हुए हैं। दक्षिण की ओर उत्तरोत्तर श्वेत रक्त कम होता गया है।

दक्षिण अफ्रिका के आदिम बुशमैनों को हब्शी जति में रखा गया है किंतु उनकी शकल सूरत आदि में मंगोलियाई तत्व की भी झलक दिखाई पड़ती है। नीलतटवर्ती हब्शियों ने बुशमैनों को रेगिस्तान से खदेड़ दिया। उन नीलतटवर्ती हब्शियों और बुशमैनों के रक्त मिश्रण से जो संकर जाति बनी वह है करीब करीब बुशमैनों की ही तरह होटेनटॉट, जिसे बुशमैनों के ही वर्ग में रखा जाता है क्योंकि उसमें बुशमैन के लक्षण बहुत अधिक और नील तटवर्ती हब्शियों के लक्षण बहुत कम हैं।

महासागरीय प्रदेश के हब्शी मलयेशिया तथा न्यूगिनी द्वीप में मिलते हैं और पोलिनेशिया की आबादी में उनकी अपनी एक जाति है।

नाटे हब्शी या बौने अफ्रीका और महासागरीय प्रदेश दोनों में ही मिलते हैं। अफ्रीका में वे कांगो बेसिन के भूमध्यरेखावर्ती प्रदेश के घने जंगलों में रहते हैं। वे बहुत ही आदिम हैं, उनकी अपनी कोई भाषा नहीं है और वे किसी प्रकार की खेती नहीं करते। वे अपनी वनवस्तुओं का हब्शियों की अन्य वस्तुओं से विनिमय करते हैं। महासागरीय प्रदेश में नाटे कद के हब्शी अंडमान द्वीप में भी पाए जाते हैं और वे मलय के सेमांगों की तरह हैं। नाटी जाति के हब्शी तत्व दक्षिण भारत की कुछ पहाड़ी जनजातियों, न्यूगिनी, और फिलिपीन में भी हैं।

हब्शियों के मूल के विषय में अभी भी बहुत विवाद है। उनके सबसे पुराने प्रकार का पता इतालवी औरिगनेशियन (पूर्व प्राचीन पाषाणयुग का एक चारण) के ग्रिमाल्डी अस्थिपंजरों से और केनिया के पूर्व औरिगनेशियन युग में मिलता है।

अफ्रीकी और महासागरीय दोनों ही के नाटे हब्शी यद्यपि एक दूसरे से इतनी दूर हैं, फिर भी उनकी शारीरिक बनावट उल्लेखनीय रूप से एक ही तरह की है। इससे ऐसा आभास मिलता है कि इनका उद्गम एक ही रहा है।

दक्षिण अफ्रीका के बुशमैन होटेनटॉट लोग, भौतिकीय नृविज्ञानवेत्ताओं के मतानुसार, वहाँ प्रातिनूतनयुग (Pleistocene times) से ही रह रहे हैं। उनमें कुछ ऐसे लक्षण मिलते हैं जो प्रकट करते हैं कि उनकी उत्पत्ति किसी आदिम मंगोलियाई जाति से हुई।

एक जाति के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की सबसे महत्वपूर्ण घटना आधुनिक काल में हुई, जब हब्शियों के समूह के समूह गुलामों की बिक्री करनेवाले स्पेनिश व्यापारियों द्वारा अमरीका ले जाए गए। किंतु अधिकांश देशों में हब्शी अधिक समय तक गुलाम नहीं रहे। हेती में तो वे कुछ समय के लिये सबसे प्रभावशाली वर्ग बन गए। वे बहुत तेजी से ब्राजील और मेक्सीको के निवासियों में विलीन हो गए; किंतु संयुक्त राज्य में उनका बिल्कुल अलग अस्तित्व कायम रहा।

१८४० में ब्रिटेन और उसकी बस्तियों में दासप्रथा अवैध घोषित कर दी गई। फ्रांस ने १८४८, रूस और हालैंड ने १८६३ और पुर्तगाल ने १८७८ में दासता का अंत किया। किंतु अमरीका में दक्षिणी राज्यों के गोरे जमींदारों ने, जिनकी तंबाकू और कपास की लंबी खेती हब्शियों के श्रम से होती थी, दासप्रथा समाप्त नहीं की। दासताविरोधी आंदोलन ने जोर पकड़ा। कुछ दक्षिणी राज्य संघ से पृथक् हो गए और उत्तरी राज्यों की विजय हुई और १८६३ की "मुक्ति घोषणा" द्वारा दासता समाप्त कर दी गई। अब यद्यपि हब्शी अमरीका का स्वतंत्र नागरिक बन गया, फिर भी अपनी विलक्षण शकल सूरत और रंग के कारण वह कटु सामाजिक द्वेष का भागी बना रहा। अमरीकी हब्शी का अमरीका के संगीत, कला और नाटक पर काफी प्रभाव पड़ा है। अमरीकी हब्शी ने महान् संगीतज्ञ और महान् खिलाड़ी की मान्यता प्राप्त की है। जेसी ओवेन्स आधुनिक युग के सबसे बड़े व्यायामपराक्रमी थे; पाल राब्सन और मैरियन एंडरसन का संगीत सारे विश्व ने सुना और सराहा है। विश्व के एक सबसे बड़े 'हेवीवेट बॉक्सर' के रूप में जो लुई कथा के विषय बन गए हैं।

अफ्रीका में हब्शी यद्यपि तेजी से स्वतंत्रता प्राप्त करते जा रहे हैं तथापि दक्षिण अफ्रीका गोरों को तो सभी सुविधाएँ देता है किंतु अश्वेतों को नहीं। दक्षिण अफ्रीका की यह रंगभेद नीति विश्व जनमत के कड़े विरोध के कारण काफी कमजोर हो गई है।

[मु० या०]

हमीदा बानू बेगम — दे० मरियम मकानी।

हमीरपुर १. जिला, यह भारत के उत्तर प्रदेश राज्य का जिला है। इसके उत्तर में कानपुर एवं जालौन, पश्चिम में झाँसी, पूर्व में बाँदा, पूर्व उत्तर में फतेहपुर जिला और दक्षिण में मध्य प्रदेश राज्य है। इस जिले का क्षेत्रफल ७,१०४ वर्ग किमी एवं जनसंख्या ७,६४

परिषद् के जैवरसायन विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। सन् १९६० में इन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका के विस्कान्सिन विश्वविद्यालय के इंस्टिट्यूट ऑव एन्ज़ाइम रिसर्च में प्रोफेसर का पद पाया और अब इसी संस्था के निदेशक हैं। वहाँ उन्होंने अमरीकी नागरिकता स्वीकार कर ली।

डाक्टर खुराना जीवकोशिकाओं के नाभिकों की रासायनिक संरचना के अध्ययन में लगे रहे हैं। नाभिकों के नाभिकीय अम्लों के संबंध में खोज दीर्घकाल से हो रही है, पर डाक्टर खुराना की विशिष्ट पद्धतियों से वह संभव हुआ। इनके अध्ययन का विषय न्यूक्लिओटिड नामक उपसमुच्चयों की अत्यंत जटिल, मूल, रासायनिक संरचनाएँ हैं। डाक्टर खुराना इन समुच्चयों का योग कर महत्व के दो वर्गों के न्यूक्लिओटिड इन्ज़ाइम नामक यौगिकों को बनाने में सफल हो गए हैं।

नाभिकीय अम्ल सहस्रों एकल न्यूक्लिओटिडों से बनते हैं। जैव कोशिकाओं के आनुवंशिकीय गुण इन्हीं जटिल बहु न्यूक्लिओटिडों की संरचना पर निर्भर रहते हैं। डॉ० खुराना ग्यारह न्यूक्लिओटिडों का योग करने में सफल हो गए थे तथा अब वे ज्ञात शृंखलाबद्ध न्यूक्लिओटिडोंवाले न्यूक्लीक अम्ल का प्रयोगशाला में संश्लेषण करने में सफल हो गए हैं। इस सफलता से ऐमिनो अम्लों की संरचना तथा आनुवंशिकीय गुणों का संबंध समझना संभव हो गया है और वैज्ञानिक अब अनुवंशिकीय रोगों का कारण और उनको दूर करने का उपाय ढूँढने में सफल हो सकेंगे।

डाक्टर खुराना की इस महत्वपूर्ण खोज के लिये उन्हें अन्य दो अमरीकी वैज्ञानिकों के साथ सन् १९६८ का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। आपको इसके पूर्व सन् १९५८ में कैनाडा के केमिकल इंस्टिट्यूट से मर्क पुरस्कार मिला तथा इसी साल आप न्यूयार्क के राकफेलर इंस्टिट्यूट में वीक्षक (visiting) प्रोफेसर नियुक्त हुए। सन् १९५९ में ये कैनाडा के केमिकल इंस्टिट्यूट के सदस्य निर्वाचित हुए तथा सन् १९६७ में होनेवाली जैवरसायन की अंतरराष्ट्रीय परिषद् में आपने उद्घाटन भाषण दिया। डा० निरेनबर्ग के साथ आपको पचीस हजार डालर का लूशिया ग्रौट्ज हॉर्विट्ज पुरस्कार भी सन् १९६८ में ही मिला है। [भ० दा० व०]

हरदयाल, लाला इनका जन्म १४ अक्टूबर, १८८४ को दिल्ली में हुआ। माता ने तुलसी रामायण एवं वीरपूजा के पाठ पढ़ाकर उदात्त भावना, शक्ति एवं सौंदर्य बुद्धि का संचार किया। उर्दू, फारसी के पंडित गौरीदयाल माथुर ने बेटे को विद्याध्यसन दिया। अंग्रेजी तथा इतिहास में एम० ए० करने पर रेकार्ड स्थापित किया। मास्टर अमीरचंद की गुप्त क्रांतिकारी संस्था के सदस्य ये इससे पूर्व बन चुके थे।

हरदयाल जी एक समय में सात कार्य कर लेते थे। १२ घंटे की नोटिस देकर मित्र इनसे शेक्सपियर का कोई भी नाटक मुँह जबानी सुन लेते। भारत सरकार ने छात्रवृत्ति देकर ऑक्सफर्ड भेजा। वहाँ दो और छात्रवृत्तियाँ पाईं। परंतु इतिहास के अध्ययन के परिणामस्वरूप अँगरेजी शिक्षापद्धति को पाप समझकर ऑक्सफर्ड छोड़ दिया। अब लंदन में 'देशभक्त समाज' स्थापित कर असहयोग का प्रचार करने लगे (जिसका विचार गांधी जी को १४ बरस बाद आया)। भारत को स्वतंत्र करने के लिये यह योजना बनाई — जनता में राष्ट्रीय भावना जगाने के पश्चात् सरकार की कड़ी आलोचना तथा युद्ध की तैयारी की जाय। भारत लौटने पर पूना में लो० तिलक से मिले। पटियाला पहुँच गौतम के समान संन्यास लिया। शिष्यमंडली के संमुख ३ सप्ताह संसार के क्रांतिकारियों के जीवन का विवेचन किया। फिर लाहौर के अँगरेजी दैनिक 'पंजाबी' का संपादन करने लगे। इनके आत्मत्याग, अहंकारशून्यता, सारल्य, विद्वत्ता, भाषा पर आधिपत्य, बुद्धिप्रखरता, राष्ट्रभक्ति का ओज तथा परदु:ख में संवेदन के कारण मनुष्य एक बार दर्शन कर मुग्ध हो जाता। निजी पत्र हिंदी में ही लिखते, दक्षिण भारत के भक्तों को संस्कृत में उत्तर देते। ये कहते : 'अंग्रेजी शिक्षापद्धति से राष्ट्रीय चरित्र नष्ट होता है और राष्ट्रीय जीवन का स्रोत विषाक्त।' 'अँगरेज ईसाइयत के प्रसार द्वारा दासत्व को स्थायी बना रहे हैं।'

१९०८ में दमनचक्र चला। लाला जी के प्रवचन के फलस्वरूप विद्यार्थी कॉलेज छोड़ने लगे और सरकारी नौकर नौकरियाँ। भयभीत सरकार इन्हें गिरफ्तार करने लगी। ला० लाजपतराय के अनुरोध पर ये पेरिस चले गए। जेनेवा से मासिक 'वंदेमातरम्' निकलने पर ये उसके संपादक बने। श्री गोखले जैसे मॉडरेटों को खूब लताड़ते। हुतात्मा मदनलाल ढींगड़ा के संबंध में इन्होंने लिखा — इस अमर वीर के शब्दों एवं कृत्यों पर शतकों तक विचार किया जायगा जो मृत्यु से नववधू के समान प्यार करता था। 'ढींगड़ा ने कहा था — 'मेरे राष्ट्र का दास होना परमात्मा का अपमान है।'

पेरिस को इस संन्यासी ने प्रचारकेंद्र बनाया था। परंतु इनके रहने का प्रबंध भारतीय देशभक्त न कर पाए। अत ये १९१० में अल्जीरिया और वहाँ से लामार्तनीक में बुद्ध के समान तप करने लगे। भाई परमानंद जी के अनुरोध पर ये हिंदू संस्कृति के प्रचारार्थ अमरीका गए। तत्पश्चात् होनोलूलू के समुद्रतट पर एक गुफा में रहकर शंकर, कांट, हीगल, मार्क्स आदि का अध्ययन करने लगे। भाई जी के कहने पर इन्होंने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में हिंदू दर्शन पर व्याख्यान दिए। अमरीकी इन्हें हिंदू संत, ऋषि एवं स्वातंत्र्य सेनानी कहते। १९१२ में स्टेफर्ड विश्वविद्यालय में दर्शन तथा संस्कृत के प्राध्यापक हुए। तत्पश्चात् 'गदर' पत्रिका निकालने लगे। इधर जर्मनी और इंगलैंड में युद्ध छिड़ गया। इनके प्राण फूँकनेवाले प्रभाव से दस हजार पंजाबी भारत लौटे। कितने ही गोली से उड़ा दिए गए। जिन्होंने विप्लव मचाया, सूली पर चढ़ा दिए गए। सरकार ने कहा कि हरदयाल अमरीका और भाई परमानंद ने भारत में क्रांति के सूत्रों को सँभाला। दोनों गिरफ्तार कर लिए गए। भाई जी को पहले फाँसी, बाद में कालेपानी का दंड सुनाया गया। हरदयाल जी स्विट्ज़रलैंड खिसक गए और जर्मनी के साथ मिलकर भारत को स्वतंत्र करने के यत्न करने लगे। महायुद्ध के उत्तर भाग में जर्मनी हारने लगा। लाला जी स्वीडन चले गए। वहाँ की भाषा में इतिहास, संगीत, दर्शन आदि का व्याख्यान देने लगे। तेरह भाषाएँ ये सीख चुके थे।

मरण पर आधारित नहीं थी। चाणक्य के कथनानुसार निजी पड़ाव को शत्रु से सुरक्षित रखना, विपक्षी गुप्तचरो को दूर रखना, रिपुदल की सख्या तथा उसके आवागमन आदि का पूरा ज्ञान रखना, किसी विशेष लाभकारी भूमि को शत्रु से पहिले ही हस्तगत कर लेना, शत्रु की कुमुक को मार्ग में ही नष्ट कर देना, विपक्षी व्यूह में घुसकर सैनिको को विचलित कर देना, भागती हुई शत्रुसेना को तेजी से पीछा करके नष्ट कर देना आदि भारतीय अश्वसेना के कार्य थे। इस प्रकार के ही कार्य उसके लिये उचित भी थे, क्योकि भारतीय अश्व हलके शरीर के होते थे और प्रचंड आघाती आक्रमण के लिये भारत में हस्तिदल उपलब्ध था। चंद्रगुप्त मौर्य (३२६–३०२ ई० पू०) की सेना में ३०,००० अश्वारोही और ९,००० हाथी थे। हर्षवर्धन (६०६ ई० से ६४६ ई०) की सेना में हयदल की सख्या १,००,००० तक पहुँच गई थी। तदपि भारतीय हयदल पैदल सैनिको तथा हाथियो के सहयोग से ही युद्ध करता था।

मध्य एशिया की मंगोल आदि सेनाओ में केवल अश्वारोहियो का ही बोलबाला था। वह तो अश्वारोहियो का प्राकृतिक निवासस्थान था। अनुपम विजेता मंगोल सेनानायक चंगेज खाँ ने तेरहवी शताब्दी में २,००,००० अश्वारोहियो की सेना संगठित कर, चीन से यूरोप पर्यंत विशाल भूभाग पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। चगेज खाँ के एक सेनानायक सुबताई का हयदल हंगरी आक्रमण के समय तीन दिन में २९० मील शत्रुप्रदेश में घुस गया था। वास्तव में हयदल का उत्कृष्ट रणकौशल मगोल सेना मे अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था।

मध्यकालीन यूरोप में हयदल कवचो पर ही अधिकतर निर्भर था। सुदृढ धातुमय वर्मों के मूल्यवान होने के कारण हयदल किंचित् धनाढ्य परिवारो में ही सीमित हो गया था। वर्मसज्जित योद्धा वर्मभार के कारण अश्व पर सरलता से बैठ भी नही पाता था, जिसके कारण हयदल की पुरानी द्रुतगति भी लुप्त हो गई।

सन् १३४६ ईसवी में क्रेसी के युद्ध में अंग्रेज पैदल धनुर्धारियो ने अपने लबे धनुषो के भीषण प्रहार से फ्रांसीसी वर्मधारी अश्वारोहियों का घोर संहार किया। कालातर में आग्नेय शस्त्रों में भी उन्नति होने पर, पैदल सेना बंदूको से लैस हो गई और इस प्रकार हयदल और पैदल सेना दोनों पुन सेना के महत्वपूर्ण अग बन गए। सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप में गुस्टेवस एडालफस ने अपने सुसगठित हयदल के कारण अनेक युद्धो में विजयपताका फहराई। यह हयदल पृथक् पृथक् टोलियो में विभक्त था और प्रत्येक टोली में १२० अश्वारोही थे, जो कवायद करने में दक्ष थे और शीघ्रता से सामरिक पैतरो द्वारा समाकलित (integrated) रूप से शत्रु पर प्रहार करते थे, अट्ठारहवीं शताब्दी में फ्रेडरिक महान् के हयदल भी इसी भाँति के थे, जो अपने द्रुतिमान सामरिक पैतरों तथा ठोस प्रचंड आघाती आक्रमण के कारण शत्रु पर विजयी होते थे। अश्वचालित तोपें भी इनके सहायतार्थ तत्पर रहती थी।

ज्यों ज्यों आग्नेय शस्त्रो का विकास होता गया, त्यों त्यो हयदल की उपयोगिता घटने लगी। १९वीं शताब्दी के प्रारभ में नेपोलियन ने अपने हयदल का प्रयोग अधिकतर भारतीय हयदलों की ही भाँति किया। वाटरलू सदृश भीषण संग्राम में जब इस हयदल को ठोस आक्रमण करना पड़ा, तो बदूको और तोपों की मार ने उसे छिन्न भिन्न कर दिया। क्रीमिया के युद्ध में और १८७०-७८ ईसवी के जर्मन फ्रासीसी सग्राम में भी यही घटना हुई। नए शस्त्रो ने हयदल की पारपरिक आक्रमणविधि का सर्वथा अंत कर दिया।

बाबर के सुचालित हयदल और उसकी तोपो ने भारत में मुगल साम्राज्य की नीव डाली और भारत के विस्तृत भूभाग पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। जब मराठा हयदल ने छापामार गतिशील युद्धप्रणाली अपनाकर मुगल सेना का सामना किया तो मुगल साम्राज्य का पतन आरभ हो गया। मराठो की इस प्रणाली के कारण भारत के विशाल क्षेत्र पर उनका आधिपत्य हो गया।

परंतु द्रुतगति का समुचित उपयोग करके हयदल ने आधुनिक काल में भी महत्वपूर्ण युद्ध परिणाम दिखाए हैं। सन् १७६९ मे भारतीय सेनानायक हैदर अली पहले तो अंग्रेजी बलशाली सेना को इधर उधर दौडाकर दूर ले गया और फिर सहसा मुडकर उसने ६,००० अश्वारोहियो सहित सीधा मद्रास पर धावा बोल दिया। दो दिन में १३० मील उड़कर यह दल (जिसमें २०० चुने हुए पैदल सिपाही भी थे) मद्रास पहुँच गया और वहाँ की आश्चर्यचकित घबराई हुई सरकार को अपनी शर्तं मानने पर बाध्य कर दिया। अमरीकी गृहयुद्ध में यद्यपि दूरमारक राइफलें और अति कुशल लक्ष्यभेदी भी उपलब्ध थे, तथापि स्टुअर्ट जैसे नायको ने अपने हयदल को ड्रैगन रूप से संगठित किया। इस ड्रैगन रूप में भी हयदल महान उपयोगी सिद्ध हुआ। प्रथम महायुद्ध (१९१४–१८ ई०) में जेनरल ऐलेनबी ने पैलेसटाइन में हयदल की उपयोगिता सिद्ध की। परतु आज के युद्ध में दूरमारक अस्त्रो, गतिशील वाहनो, वायुयान और राकेट आदि के आविष्कार के कारण अब युद्ध के लिये हयदल उपयोगी नही रह गया है। [नं० प्र०]

हरगोविंद खुराना (सन् १९२२–) भारतीय वैज्ञानिक का जन्म अविभाजित भारतवर्ष के रायपुर (जिला मुल्तान, पजाब) नामक कस्बे मे हुआ था। पटवारी पिता के चार पुत्रों में ये सबसे छोटे थे। प्रतिभावान् विद्यार्थी होने के कारण स्कूल तथा कालेज में इन्हे छात्रवृत्तियाँ मिलीं। पजाब विश्वविद्यालय से सन् १९४३ में बी० एस-सी० (आनर्स) तथा सन् १९४५ में एम० एस-सी० (ऑनर्स) परीक्षाओ में ये उत्तीर्ण हुए तथा भारत सरकार से छात्रवृत्ति पाकर इंग्लैंड गए। यहाँ लिवरपूल विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर ए० रॉबर्टसन् के अधीन अनुसधान कर इन्होने डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। इन्हे फिर भारत सरकार से शोधवृत्ति मिली और ये जुरिख (स्विट्सरलैंड) के फेडरल इंस्टिट्यूट ऑव टेक्नॉलोजी में प्रोफेसर वी० प्रेलॉग के साथ अन्वेषण में प्रवृत्त हुए।

भारत में वापस आकर डाक्टर खुराना को अपने योग्य कोई काम न मिला। हारकर इग्लैंड चले गए, जहाँ कैंब्रिज विश्वविद्यालय मे सदस्यता तथा लार्ड टाड के साथ कार्य करने का अवसर मिला। सन् १९५२ में आप वैंकूवर (कैनाडा) की ब्रिटिश कोलंबिया अनुसधान

सदी का वह सार्वजनिक नवजागरण उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था, जो बीसवीं शताब्दी में परिपोषित और विकसित हुआ। एक रूढ़िपरायण ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न होकर भी वे अपने संस्कारों में वैसे ही उदात्त थे जैसे अपनी प्रतिभा में, अतएव, जीवन की तरह ही उनकी रचनाओं मे भी विविध युगों का समावेश मिलता है। व्रजभाषा से लेकर छायावाद तक उनकी कृतियों में काव्य की अनेक पद्धतियाँ हैं। काव्यशैली में ही नहीं, उनकी भाषा में भी अनेकरूपता है।

'हरिऔध' जी की कृतियो मे सबसे पहले उनकी भाषा की ओर ही ध्यान जाता है। एक ओर उनकी भाषा सरलतम हिंदी है, जैसे 'ठेठ हिंदी का ठाट', 'अधखिलाफूल', 'चोखे चौपदे', 'चुभते चौपदे', और 'बोलचाल' में, दूसरी ओर गहनतम संस्कृतनिष्ठ हिंदी, जैसे 'प्रियप्रवास' में।

'प्रियप्रवास' के लेखनकाल में ही 'हरिऔध' जी 'वैदेहीवनवास' लिखने के लिये प्रेरित हुए थे। 'प्रियप्रवास' संस्कृत के वर्णवृत्तो मे था, 'वैदेहीवनवास' हिंदी के मात्रिक छंदो में है। 'प्रवास' और 'वनवास' से उनकी सुकोमल संवेदना अथवा करुण स्वभाव का परिचय मिलता है। इन काव्यों का कथानक पुराना होते हुए भी कथा का निरूपण और स्पंदन नया है। भाषा की दृष्टि से हरिऔध जी के सभी प्रयोगो (ठेठ हिंदी, प्रियप्रवास और चौपदों) का 'वैदेही वनवास' समवाय है।

पुराने विषयों में नवीनता का उन्मेष हरिऔध जी की विशेषता है। व्रजभाषा में लिखा गया वृहत् काव्य 'रसकलश' यद्यपि लक्षणग्रंथ है, तथापि वह पुरानी परिपाटी का पिष्टपेषण मात्र नहीं है। उसमें कई नई उद्भावनाएँ हैं।

'पारिजात' हरिऔध जी का मुक्तक महकाव्य है। मुक्तक इसलिये कि इसमे प्रकीर्णक उद्गार हैं, महाकाव्य इसलिये कि सभी उद्गार विषयक्रम से सर्गबद्ध हैं। इसे 'आध्यात्मिक और आधिभौतिक विविध-विषय-विभूषित' कहा गया है। यह महाकाव्य 'हरिऔध' जी के संपूर्ण अध्ययन, मनन, चिंतन का समाहार है। इसमें उनकी सभी तरह की भाषा, सभी तरह के छंदों और सभी तरह की काव्य-शैलियो का संयोजन है।

हरिऔध जी ने बच्चो के लिये भी कविताएँ लिखी हैं। उपन्यास, नाटक, लेख, भाषण और भूमिका के रूप मे उनका गद्य साहित्य भी पुष्कल है। [शां० प्रि० द्वि०]

हरिकृष्ण 'जौहर' का जन्म काशी में संवत् १९३७ वि० को वर्तमान हिंदू स्कूल के सामने श्री सीताराम कृषिशाला में भाद्रपद ऋषिपंचमी को हुआ था। जौहर जी के पिता मुंशी रामकृष्ण कोहली काशी के महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के प्रधान मंत्री थे। शैशव में ही जौहर के मातापिता का स्वर्गवास हो गया। आपकी प्रारंभिक शिक्षा फारसी के माध्यम से हुई। आरंभ में उर्दू में लिखने के कारण आपने अपना उपनाम 'जौहर' रख लिया।

बाबू हरिकृष्ण के साहित्यिक जीवन का प्रारंभ भारतजीवन-प्रेस की छत्रच्छाया में प्रारंभ हुआ। प्रेस के स्वामी बाबू रामकृष्ण वर्मा के अतिरिक्त उस समय के प्रमुख एवं श्रेष्ठ साहित्यकार पं० अंबिकादत्त व्यास, पं० नकछेदी तिवारी, लच्छीराम, रत्नाकर, कार्तिकप्रसाद जी, पं० सुधाकर द्विवेदी तथा पं० किशोरीलाल गोस्वामी के संपर्क में आप आए। काशी से प्रकाशित होनेवाले मासिक पत्र 'मित्र', 'उपन्यास तरंग' तथा साप्ताहिक 'द्विजराज' पत्र का इन्होंने बहुत दिनों तक संपादन किया।

भारतजीवन प्रेस में काम करते समय आपने कुसुमलता नामक उपन्यास लिखा। काशी के समाज से विरक्ति होने पर आप बंबई वेंकटेश्वर समाचारपत्र में सहायक संपादक के रूप में कार्य करने लगे। सन् १९०२ ई० मे आप कलकत्ते चले आए और वहाँ 'बंगवासी' के सहकारी संपादक के रूप में काम करने लगे। कालांतर में आप बंगवासी के प्रधान संपादक नियुक्त हो गए। कलकत्ते में जौहर जी ने बाबू दामोदरदास खत्री तथा बाबू निहाल सिंह की सहायता से हिंदी के प्रचार व प्रसार के लिये नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना की।

बंगवासी में १७ वर्ष कार्य करने के पश्चात् जौहर सन् १९१८ ई० में नाटकों की दुनिया में चले आए। १९१९ ई० में आपने 'मदन थियेटर्स' मे नाटककार के रूप में प्रवेश किया। सन् १९३१ में मदन-थियेटर्स के स्वामी रुस्तम जी की मृत्यु होने पर आपने यह नौकरी छोड़ दी और फिर काशी चले गए। आपने गुदादास, माँ, कर्मवीर आदि फिल्मों की कथाएँ लिखी हैं। काशी में मालुरगंज से आपने हिंदी प्रेस से 'आधार' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला।

पत्रकार के रूप में जौहर जी को काफी ख्याति मिली। युद्ध-संबंधी समाचार आप बहुत ही सजीव देते थे। इस दिशा में ये कहा करते थे, हम केवल युद्ध लिखने के लिये ही पत्र का संपादन कर रहे हैं। पत्रकार के अतिरिक्त ये सफल उपन्यासकार भी थे। इनका 'कुसुमलता' नामक तिलस्मी उपन्यास देवकीनंदन खत्री की परंपरा में है। 'काला बाघ', 'गवाह गायब' लिखकर अपने जासूसी साहित्य मे एक नए चरण की स्थापना की। जौहर जी का जीवन बड़ा सात्विक था। चाय सिगरेट से आपको भारी नफरत थी। अपने जीवन के संबंध में आप प्रायः कहा करते थे — 'कागज ओढ़ना और बिछाना, कागज से ही खाना, कागज लिखते पढ़ते साधु कागज में मिल जाना।'

बंबई में जब आप वेंकटेश्वर समाचारपत्र के संपादक के रूप में कार्य कर रहे थे तभी आपकी ठोढी मे साधारण सी चोट लग गई और इसी चोट ने भयानक टिटनस रोग का रूप धारण कर लिया। अधिक अस्वस्थ होने पर १९ सितंबर, १९४४ को काशी चले आए और यहीं ११ फरवरी, १९४५ में आपका स्वर्गवास हो गया। [गि० च० त्रि०]

हरिजन आंदोलन हिंदू समाज में जिन जातियों या वर्गों के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता था, और आज भी कुछ हद तक वैसा ही विषम व्यवहार कहीं कहीं पर सुनने और देखने में आता है, उनको अस्पृश्य, अंत्यज या दलित नाम से पुकारते थे। यह देखकर कि ये सारे ही नाम अपमानजनक हैं, सन् १९३२ के अंत में गुजरात के एक अंत्यज ने ही महात्मा गांधी को एक गुजराती भजन का हवाला देकर लिखा कि अंत्यजों को 'हरिजन' जैसा सुंदर नाम क्यों न दिया

१९२७ में इंगलैंड जाकर 'बोधिसत्व' पुस्तक लिखी। इसपर लंदन विश्वविद्यालय ने डॉक्टर की उपाधि दी। तब 'हिंट्स फार सेल्फ कल्चर' छापी। विद्वत्ता अथाह थी। अंतिम पुस्तक 'ट्रेवेल्स रिलिजिस ऐंड मॉडर्न लाइफ' में मानवता पर बल दिया। मानवता को धर्म मान लंदन में 'आधुनिक संस्कृति संस्था' स्थापित की। सरकार ने १९३८ में भारत लौटने की छूट दे दी। इन्होंने स्वदेश लौटकर जीवन को देशोत्थान में लगाने का निश्चय किया। ३ मार्च, १९३८ को हृदय की गति बंद हो जाने से इनकी मृत्यु हुई। [ध०]

हरदोई १ जिला, यह भारत के उत्तर प्रदेश राज्य का जिला है जिसके उत्तर में खीरी और शाहजहाँपुर, पश्चिम में फर्रुखाबाद, दक्षिण में कानपुर, दक्षिण पूर्व में उन्नाव, पूर्व में लखनऊ तथा पूर्वोत्तर में सीतापुर, जिले हैं। इस जिले का क्षेत्रफल ५९५२ वर्ग किमी तथा जनसंख्या १५,७३,१७१ (१९६१) है। सतह प्राय. समतल है और गंगा, रामगंगा, गढा, सई, सुखेता तथा गोमती आदि नदियो द्वारा सिंचित है। इसके मध्य भाग की निचली भूमि में झीलें हैं जिनमें दाहर झील सबसे बड़ी है। जिले मे बड़े जंगली क्षेत्र अभी भी हैं। इन जंगलो में ढाक, बरगद और बाँस अधिकता से मिलते हैं। यहाँ भेडिए, नीलगाय, बारहसिंघा, गीदड और खरगोश आदि जानवर मिलते हैं। जंगली मुर्गियाँ, जलकुक्कुट, हंस, धूसर, बत्तख तथा जंगली बत्तख भी मिलते हैं।

जिले की जलवायु स्वास्थ्यवर्धक है। जनवरी में यहाँ का ताप ५०° फारेनहाइट तथा जून में ९५° फारेनहाइट रहता है। यहाँ की औसत वार्षिक वर्षा ८१·३ सेमी है। जिले की प्रमुख फसल गेहूँ है। इसके अतिरिक्त जौ, बाजरा, चना, अरहर और दलहन अन्य फसलें हैं। अब कुछ क्षेत्रों में धान, मक्का और ज्वार की खेती भी होने लगी है। पोस्ता दूसरी महत्वपूर्ण फसल है।

२ नगर, स्थिति : ३७° २६' उ० अ० तथा ८०° १५' पू० दे०। यह नगर उपर्युक्त जनपद का प्रशासनिक केंद्र तथा राज्य की प्रमुख अनाज मंडियो में से एक है। यह लखनऊ से ६३ मील उत्तर पूर्व तथा रेलमार्ग पर स्थित है। नगर में शोरा बनाने के दो कारखाने हैं। अनाज और शोरा यहाँ से बाहर जाता है। यहाँ लकड़ी पर खुदाई का काम होता है। नगर में कई शिक्षण संस्थाएँ हैं। यहाँ की जनसंख्या ३६,७२५ (१९६१) है। [अ० ना० मे०]

हरद्वार स्थिति : २९° ५७' ३०" उ० अ० तथा ७८° १२° ६२" पू० दे०। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले में सहारनपुर से ३९ मील उत्तर पूर्व में गगा के दाहिने तट पर बसा हुआ हिंदुओ का प्रमुख तीर्थ स्थान है। यही गंगा पर्वतीय प्रदेश छोड़कर मैदान में प्रवेश करती है। यह बहुत प्राचीन नगरी है। प्राचीन काल में कपिलमुनि के नाम पर इसे कपिला भी कहा जाता था। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ कपिल मुनि का तपोवन था। यह स्थान बडा रमणीक है और यहाँ की गंगा हिंदुओं द्वारा बहुत पवित्र मानी जाती है। ह्वेनसाग भी ७वीं शताब्दी में हरद्वार आया था और इसका वर्णन उसने 'मोन्यु-लो' नाम से किया है। मोन्यू लो को आधुनिक मायापुरी गाँव समझा जाता है जो हरद्वार के निकट में ही है। प्राचीन किलो और मंदिरों के अनेक खंडहर यहाँ विद्यमान हैं। यहाँ का प्रसिद्ध स्थान हर की पैडी है जहाँ 'गंगा द्वार का मंदिर भी है। हर की पैडी पर विष्णु का चरणचिह्न है जहाँ लाखों यात्री स्नान कर चरण की पूजा करते हैं और यहाँ का पवित्र गंगा जल देश के प्रायः सभी स्थानो में यात्रियो द्वारा ले जाया जाता है। प्रति वर्ष चैत्र में मेष संक्राति के समय मेला लगता है जिसमें लाखो यात्री इकट्ठे होते हैं। बारह वर्षों पर यहाँ कुभ का मेला लगता है जिसमे कई लाख यात्री इकट्ठे होते और गंगा में स्नान कर विष्णुचरण की पूजा करते हैं। यहाँ अनेक मंदिर और देवस्थल हैं। माया देवी का मंदिर पत्थर का बना हुआ है। संभवत. यह १०वी शताब्दी का बना होगा। इस मंदिर मे माया देवी की मूर्ति स्थापित है। इस मूर्ति के तीन मस्तक और चार हाथ हैं। १९०४ ई० में लक्सर से देहरादून तक के लिये रेलमार्ग बना और तभी से हरद्वार की यात्रा सुगम हो गई। हरद्वार का विस्तार अब पहले से बहुत बढ़ गया है। यह डेढ मील से अधिक की लंबाई मे बसा हुआ है। यह स्थान वाणिज्य का केंद्र था और कभी यहाँ बहुत घोड़े बिकते थे। इसके निकट ही हृषिकेश के पास सोवियत रूस के सहयोग से एक बहुत बड़ा ऐंटी-बायोटिक कारखाना खुला है। यहाँ से गंगा की प्रमुख नहर निकली है जो इंजीनियरी का एक अद्भुत कार्य समझा जाता है। यात्रियों की सुविधा के लिये अनेक धर्मशालाएँ बनी हैं। यहाँ के स्वास्थ्य की दशा में अब बहुत सुधार हुआ है।

लोगो का विश्वास है कि यहाँ मरनेवाला प्राणी परमपद पाता है और स्नान से जन्म जन्मांतर का पाप कट जाता है और परलोक मे हरिपद की प्राप्ति होती है। अनेक पुराणो में इस तीर्थ का वर्णन और प्रशंसा उल्लिखित।

हस्तिनापुर स्थिति : २९° ९' उ० अ० तथा ७८° ३' पू० दे०। चंद्रवंशीय हस्ति नामक राजा का बसाया हुआ नगर है। महाभारत में इसे पांडवो की राजधानी कहा गया है।

राजा परीक्षित की यह राजधानी थी। बाद में राजधानी कौशाबी चली गई जो मेरठ से २२ मील दूर है। कार्तिक पूर्णिमा को यहाँ बड़ा मेला लगता है। यह प्रसिद्ध जैन तीर्थ भी है। आदि तीर्थंकर वृषभदेव को राजा श्रेयास ने यहीं इक्षुरस का दान किया था। इसलिये इसे दानतीर्थ भी कहते हैं। इसके पास ही मसूमा गाँव में प्राचीन जैन प्रतिमाएँ हैं।

'हरिऔध', अयोध्यासिंह उपाध्याय (सन् १८६५ से–१९४७ जन्मभूमि निजामाबाद (आजमगढ़, उ० प्र०)। प्रारंभिक शिक्षा आजमगढ, इसके बाद कुछ समय क्वीस कालेज (वाराणसी) में अंग्रेजी शिक्षा, तदुपरांत आजमगढ से नार्मल हुए। सन् २३ तक आजमगढ मे कानूनगो रहे, वहाँ से अवकाश ग्रहण पर काशी विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक हुए। वहाँ से भी अवकाशग्रहण करने पर उनका शेष जीवन आजमगढ में व्यतीत हुआ।

'हरिऔध' जी भारतेंदु युग के अंतिम चरण के कवि थे। उन्हें उस युग मे पर्यवसित मध्ययुग का काव्य साहित्य और उन्नीसवी

नेताओं ने निश्चय किया कि अस्पृश्यतानिवारण के उद्देश से एक अखिल भारतीय अस्पृश्यताविरोधी मंडल (एँटी-अन्टचेबिलिटी लीग) स्थापित किया जाय, जिसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में रखा जाय, और उसकी शाखाएँ विभिन्न प्रांतों में और उक्त उद्देश को पूरा करने के लिये यह कार्यक्रम हाथ में लिया जाय—(क) सभी सार्वजनिक कुएँ, धर्मशालाएँ, सड़कें, स्कूल, श्मशानघाट, इत्यादि दलित वर्गों के लिये खुले घोषित कर दिए जाएँ, (ख) सार्वजनिक मंदिर उनके लिये खोल दिए जाएँ, (ग) बशर्ते कि (क) और (ख) के संबंध में जोर जबरदस्ती का प्रयोग न किया जाय, बल्कि केवल शांतिपूर्वक समझाने-बुझाने का सहारा लिया जाय।''

इन निश्चयों के अनुसार 'अस्पृश्यता-विरोधी-मंडल' नाम की अखिल भारतीय संस्था, बाद में जिसका नाम बदलकर 'हरिजन-सेवक-संघ' रखा गया, बनाई गई। संघ का मूल संविधान गांधी जी ने स्वयं तैयार किया।

हरिजन-सेवक संघ ने अपने संविधान में जो मूल उद्देश्य रखा वह यह है—'संघ का उद्देश्य हिंदूसमाज में सत्यमय एवं अहिंसक साधनों द्वारा छुआछूत को मिटाना और उससे पैदा हुई उन दूसरी बुराइयों तथा निर्योग्यताओं को जड़मूल से नष्ट करना है, जो तथाकथित अछूतों को, जिन्हें इसके बाद 'हरिजन' कहा जाएगा, जीवन के सभी क्षेत्रों में भोगनी पड़ती हैं, और इस प्रकार उन्हें पूर्ण रूप से शेष हिंदुओं के समान स्तर पर ला देना है।'

'अपने इस उद्देश को पूरा करने के लिये हरिजन सेवक-संघ भारत भर के सवर्ण हिंदुओं से संपर्क स्थापित करने का प्रयत्न करेगा, और उन्हें समझाएगा कि हिंदूसमाज में प्रचलित छुआछूत हिंदू धर्म के मूल सिद्धांतों और मानवता की उच्चतम भावनाओं के सर्वथा विरुद्ध है, तथा हरिजनों के नैतिक, सामाजिक और भौतिक कल्याणसाधन के लिये संघ उनकी भी सेवा करेगा।''

हरिजन-सेवक संघ का प्रथम अध्यक्ष श्री घनश्यामदास बिड़ला को नियुक्त किया गया, और मंत्री का पद संभाला श्रीअमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर ने, जो 'ठक्कर बापा' के नाम से प्रसिद्ध थे। श्रीठक्कर ने सारे प्रांतों के प्रमुख समाजसुधारकों एवं लोकनेताओं से मिलकर कुछ ही महीनों में संघ को पूर्णतया संगठित कर दिया।

गांधी जी ने जेल के अंदर से ही हरिजन आंदोलन को व्यापक और सक्रिय बनाने की दृष्टि से तीन साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन कराया—अंग्रेजी में 'हरिजन', हिंदी में 'हरिजन सेवक' और गुजराती में 'हरिजन बंधु'। इन साप्ताहिक पत्रों ने कुछ ही दिनों में 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' का स्थान ले लिया, जिनका प्रकाशन राजनीतिक कारणों से बंद हो गया था। हरिजन प्रश्न के अतिरिक्त अन्य सामयिक विषयों पर भी गांधी जी इन पत्रों में लेख और टिप्पणियाँ लिखा करते थे।

कुछ दिनों बाद, ठक्कर बापा के अनुरोध पर अस्पृश्यता-निवारणार्थ गांधी जी ने सारे भारत का दौरा किया। लाखों लोगों ने गांधी जी के भाषणों को सुना, हजारों ने छुआछूत को छोड़ा और हरिजनों को गले लगाया। कहीं कहीं पर कुछ विरोधी प्रदर्शन भी हुए। किंतु विरोधियों के हृदय को गांधी जी ने प्रेम से जीत लिया। इस दौरे में हरिजनकार्य के लिये जो निधि इकट्ठी हुई, वह दस लाख रुपए से ऊपर ही थी।

हरिजनों में अपना जन्मजात अधिकार प्राप्त करने का साहस पैदा हुआ। सवर्णों का विरोध भी धीरे धीरे कम होने लगा। गांधी जी की यह बात लोगों के गले उतरने लगी कि 'यदि अस्पृश्यता रहेगी तो हिंदू धर्म विनाश से बच नहीं सकता।'

हरिजन-सेवक-संघ ने सारे भारत में हरिजन-छात्र-छात्राओं के लिये हजारों स्कूल और सैकड़ों छात्रालय चलाए। उद्योगशालाएँ भी स्थापित कीं। खासी अच्छी संख्या में विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ और अन्य सहायताएँ भी दीं। हरिजनों की बस्तियों में आवश्यकता को देखते हुए अनेक कुएँ बनवाए। होटलों, धर्मशालाओं तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों के उपयोग पर जो अनुचित रुकावटें थीं उनको हटवाया। बड़े बड़े प्रसिद्ध मंदिरों में, विशेषतः दक्षिण भारत के मंदिरों में हरिजनों को सम्मानपूर्वक दर्शन पूजन के लिये प्रवेश दिलाया।

देश स्वतंत्र होते ही संविधान परिषद् ने, डॉ॰ अंबेडकर की प्रमुखता में जो संविधान बनाया, उसमें अस्पृश्यता को 'निषिद्ध' ठहरा दिया। कुछ समय के उपरांत भारतीय संसद् ने अस्पृश्यता अपराध कानून भी बना दिया। भारत सरकार ने अनुसूचित जातियों के लिये विशेष आयुक्त नियुक्त करके हरिजनों की शिक्षा तथा विविध कल्याण कार्यों की दिशा में कई उल्लेखनीय प्रयत्न किए।

संसद् और राज्यों की विधान सभाओं में सुरक्षित स्थानों से जो हरिजन चुने गए, उनमें से अनेक सुयोग्य व्यक्तियों को केंद्र में एवं विभिन्न राज्यों में मंत्रियों के उत्तरदायित्वपूर्ण पद दिए गए। विभिन्न सरकारी विभागों में भी उनकी नियुक्तियाँ हुईं। उनमें स्वाभिमान जाग्रत हुआ। आर्थिक स्थिति में भी यत्किंचित् सुधार हुआ। किंतु इन सबका यह अर्थ नहीं कि अस्पृश्यता का सर्वथा उन्मूलन हो गया है। स्पष्ट है कि समाजसंशोधन का आंदोलन केवल सरकार या किसी कानून पर पूर्णतः आधारित नहीं रह सकता। अस्पृश्यता का उन्मूलन प्रत्येक सवर्ण हिंदू का अपना कर्तव्य है, जिसके लिये उसका स्वयं का प्रयत्न अपेक्षित है। [वि॰ ह॰]

हरिण (Antelope) विशाल अंगुलेटा वर्ग (order ungulata) के अंतर्गत गो कुल फैमिली बोवाइडी (Family Bovidae) के खुरवाले जीव हैं जो अफ्रीका, भारत तथा साइबेरिया के जंगलों के निवासी हैं।

ये बारह उपकुलों में विभक्त हैं जिनमें निम्नलिखित प्रसिद्ध हरिण आते हैं।

पहले उपकुल — ट्रागेलाफिनि (Tragelaphine) में बड़े और मझोले सभी तरह के हरिण सम्मिलित हैं। ये अफ्रीका और भारत के निवासी हैं जिनकी सींगें घुमावदार होती हैं। इनमें इलैंड (Eland Taurotragus oryx) ६ फुट ऊँचा, चटक बादामी रंग का हरिण है जो अफ्रीका का निवासी है।

जाय। उस भजन में हरिजन ऐसे व्यक्ति को कहा गया है, जिसका सहायक संसार में, सिवाय एक हरि के, कोई दूसरा नहीं है। गांधी जी ने यह नाम पसंद कर लिया और यह प्रचलित हो गया।

वैदिक काल में अस्पृश्यता का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। परंतु वर्णव्यवस्था के विकृत हो जाने और जाति पांति की भेद भावना बढ़ जाने के कारण अस्पृश्यता को जन्म मिला। इसके ऐतिहासिक, राजनीतिक आदि और भी कई कारण बतलाए जाते हैं। किंतु साथ ही साथ, इसे एक सामाजिक बुराई भी बतलाया गया। 'वज्रसूचिका' उपनिषद् मे तथा महाभारत के कुछ स्थलो मे जातिभेद पर आधारित ऊंचनीचपन की निंदा की गई है। कई ऋषि मुनियो ने, बुद्ध एवं महावीर ने, कितने ही साधु संतो ने तथा राजा राममोहन राय, स्वामी दयानद प्रभृति समाजसुधारकों ने इस सामाजिक बुराई की ओर हिंदू समाज का ध्यान खींचा। समय समय पर इसे मिटाने के जहां तहां छिट पुट प्रयत्न भी किए गए, किंतु सबसे जोरदार प्रयत्न तो गांधी जी ने किया। उन्होंने इसे हिंदूधर्म के माथे पर लगा हुआ कलंक माना और कहा कि 'यदि अस्पृश्यता रहेगी, तो हिंदू धर्म का — उनकी दृष्टि में 'मानव धर्म' का — नाश निश्चित है।' स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिये गांधी जी ने जो चतुःसूत्री रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामने रखा, उसमें अस्पृश्यता का निवारण भी था। परंतु इस आंदोलन ने देशव्यापी रूप तो १९३२ के सितंबर मास मे धारण किया, जिसका संक्षिप्त इतिहास यह है —

लंदन मे आयोजित ऐतिहासिक गोलमेज परिषद् के दूसरे दौर में, कई मित्रों के अनुरोध पर, गांधी जी सम्मिलित हुए थे। परिषद् ने भारत के अल्पसख्यको के जटिल प्रश्न को लेकर जब एक कमेटी नियुक्त की, तो उसके समक्ष १३ नवंबर, १९३१ को गांधी जी ने अछूतों की ओर से बोलते हुए कहा — 'मेरा दावा है कि अछूतो के प्रश्न का सच्चा प्रतिनिधित्व तो मैं कर सकता हूँ। यदि अछूतो के लिये पृथक् निर्वाचन मान लिया गया, तो उसके विरोध मे मैं अपने प्राणों की बाजी लगा दूंगा।' गांधी जी को विश्वास था कि पृथक् निर्वाचन मान लेने से हिंदू समाज के दो टुकड़े हो जाएँगे, और उसका यह अंगभंग लोकतंत्र तथा राष्ट्रीय एकता के लिये बड़ा घातक सिद्ध होगा, और अस्पृश्यता को मानकर सवर्ण हिंदुओं ने जो पाप किया है उसका प्रायश्चित्त करने का अवसर उनके हाथ से चला जाएगा।

गोलमेज परिषद् से गांधी जी के आते ही स्वातंत्र्य आंदोलन ने फिर से जोर पकड़ा। गांधी जी को तथा कांग्रेस के कई प्रमुख नेताओं को जेलों में बंद कर दिया गया। गांधी जी ने यरवदा जेल से भारत मंत्री श्री सेम्युएल होर के साथ इस बारे में पत्रव्यवहार किया। प्रधान मंत्री को भी लिखा। किंतु जिस बात की आशंका थी वही होकर रही। ब्रिटिश मंत्री रैमजे मैकडानल्ड ने अपना जो सांप्रदायिक निर्णय दिया, उसमें उन्होंने दलित वर्गों के लिये पृथक् निर्वाचन को ही मान्यता दी।

१३ सितंबर, १९३२ को गांधी जी ने उक्त निर्णय के विरोध में आमरण अनशन का निश्चय घोषित कर दिया। सारा भारत कांप उठा इस भूकंप के जैसे धक्के से। सामने विकट प्रश्न खड़ा था कि अब क्या होगा। देश के बड़े बड़े नेता इस गुत्थी को सुलझाने के लिये इकट्ठा हुए। मदनमोहन मालवीय, च० राजगोपालाचारी, तेजबहादुर सप्रू, एम० आर० जयकर, अमृतलाल वि० ठक्कर, घनश्यामदास बिड़ला आदि, तथा दलित वर्गों के नेता डाक्टर अंबेडकर, श्रीनिवासन्, एम० सी० राजा और दूसरे प्रतिनिधि। तीन दिन तक खूब विचार-विमर्श हुआ। चर्चा मे कई उतार चढ़ाव आए। अंत में २४ सितंबर को सबने एकमत से एक निर्णीत समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए, जो 'पूना पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पूना पैक्ट ने दलित वर्गों के लिये ब्रिटिश भारत के अंतर्गत मद्रास, बंबई (सिंध के सहित) पंजाब, बिहार और उड़ीसा, मध्यप्रांत, आसाम, बंगाल और संयुक्त प्रांत की विधान सभाओं मे कुल मिलाकर १४८ स्थान, संयुक्त निर्वाचन प्रणाली मानकर, सुरक्षित कर दिए, जबकि प्रधान मंत्री के निर्णय में केवल ७१ स्थान दिए गए थे, तथा केंद्रीय विधान सभा में १८ प्रतिशत स्थान उक्त पैक्ट में सुरक्षित कर दिए गए। पैक्ट की अवधि १० वर्ष की रखी गई, यह मानकर कि १० वर्ष के भीतर अस्पृश्यता से पैदा हुई निर्योग्यताएँ दूर कर दी जाएँगी।

सर तेजबहादुर सप्रू और श्रीजयकर ने इस पैक्ट का मसौदा तत्काल तार द्वारा ब्रिटिश प्रधान मंत्री को भेज दिया। फलत. प्रधान मंत्री ने जो साम्प्रदायिक निर्णय दिया था, उसमें से दलित वर्गों के पृथक् निर्वाचन का भाग निकाल दिया।

समस्त भारत के हिंदुओ के प्रतिनिधियो की जो परिषद् २५ सितंबर, १९३२ को बंबई में पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में हुई, उसमे एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसका मुख्य अंश यह है — आज से हिंदुओ मे कोई भी व्यक्ति अपने जन्म के कारण 'अछूत' नहीं माना जायगा, और जो लोग अब तक अछूत माने जाते रहे हैं, वे सार्वजनिक कुओं, सड़को और दूसरी सब संस्थाओं का उपयोग उसी प्रकार का कर सकेंगे, जिस प्रकार कि दूसरे हिंदू करते हैं। अवसर मिलते ही, सबसे पहले इस अधिकार के बारे में कानून बना दिया जाएगा, और यदि स्वतंत्रता प्राप्त होने से पहले ऐसा कानून न बनाया गया तो स्वराज्य संसद् पहला कानून इसी के बारे मे बनाएगी।

२६ सितंबर को गांधी जी ने, कवि रवींद्रनाथ ठाकुर तथा अन्य मित्रो की उपस्थिति में संतरे का रस लेकर अनशन समाप्त कर दिया। इस अवसर पर भावविह्वल कवि ठाकुर ने स्वरचित 'जीवन जखन शुकाये जाय, करुणा धाराय एशो' यह गीत गाया। गांधी जी ने अनशन समाप्त करते हुए जो वक्तव्य प्रकाशनार्थ दिया, उसमें उन्होंने यह आशा प्रकट की कि, 'अब मेरी ही नहीं, किंतु सैकड़ो हजारो समाजसंशोधकों की यह जिम्मेदारी बहुत अधिक बढ़ गई है कि जब तक अस्पृश्यता का उन्मूलन नहीं हो जाता, इस कलंक से हिंदू धर्म को मुक्त नहीं कर लिया जाता, तब तक कोई चैन से बैठ नहीं सकता। यह न मान लिया जाय कि संकट टल गया। सच्ची कसौटी के दिन तो अब आनेवाले हैं।'

इसके अनंतर ३० सितंबर को पुन. बंबई में पंडित मालवीय जी की अध्यक्षता में जो सार्वजनिक सभा हुई, उसमे सारे देश के हिंदू

ourelei) नाम के अफ्रीका निवासी छोटे हरिण हैं जो डेढ़ फुट ऊँचे और हल्के भूरे रग के होते हैं।

आठवें उपकुल —(Oreo traqine) में अफ्रीका के क्लिपस्पिगर (Klip Springer Oveotragus Oveotragus) नाम के १ फुट ऊँचे बादामी रग के हरिण हैं।

नवें उपकुल — (Madoquine) में डिक डिक (Dik Dik) (Madoqua Sattiana) नाम के सवा फुट ऊँचे छोटे हिरण हैं जो पहाड़ियो पर चढने मे उस्ताद होते हैं।

दसवें उपकुल — (Pantholopine) ये हमारे देश का चेरू (Cheru, Pantholops hodqsoni) नाम का २ फुट ऊँचा प्रसिद्व पहाडी हिरण है जिसकी सींग काफी लबी होती है।

ग्यारहवें उपकुल — (Saiqine) में मध्य एशिया के सैगा (Saiga tatarica) नाम के ढाई फुट ऊँचे हलके बादामी रग के हरिण हैं जो जाडों में सफेद हो जाते हैं इनकी सींग सीधी और घरारेदार होती हैं।

बारहवें उपकुल (Rupicaprine) — में एशिया के शेमाइज़ Chamois (Rupicapra Rupicapra) नाम के २½ फुट ऊँचे भूरे रग के हरिण हैं जिनके नर मादा दोनो की सीगें सिरे पर पीछे की ओर मुडी रहती हैं।

चीतल, कृष्ण सार, चौसिंहा, काकर, पाढ़ा, तथा बारहसिंगा के विवरण के लिये देखें शिकार। [सु० सिं०]

हरिणपदी कुल (कॉन्वाल्वुलेसी, Convolvulaceae) यह द्विदालीय वर्ग के पौधो का एक कुल है जिसमे करीब ४५ जीनरा (genera) तथा १००० जातियाँ (Species) का वर्णन मिलता है। इस कुल के पौधे अधिकतर उष्णकटिबंध मे पाए जाते हैं यों तो इनकी प्राप्ति प्राय सारे विश्व में है। पौधे अधिकाश एकवर्षीय तथा कुछ बहुवर्षीय होते हैं। कुछ लतास्वरूप परारोही तथा कुछ छोटे पौधों के रूप में उगा करते हैं। सफेद दूध सा पदार्थ पौधो के हरेक भाग में विद्यमान रहता है। जडपद्धति (root system) बहुत विस्तृत होती है। जडें कभी कभी लबी तथा पतली होती हैं, कुछ पौधो में ये मोटी, गूदादार तथा अधिक लबी होती हैं, जैसे शकरकद। इनमें खाद्य पदार्थ स्टार्च के रूप में विद्यमान होता है। अमरबेलि (Cuscuta) इसी कुल का पौधा है जो पराश्रयी और अन्य वृक्ष पर लिपटा हुआ फैला रहता है तथा अपनी जडें धँसाकर खाना आदि लेता रहता है।

तना नरम, कभी कभी पराश्रयी एवं लिपटा हुआ होता है। किसी किसी में पर्याप्त मोटा होता है। अमरबेलि में तना नरम तथा पीला होता है। पत्तियाँ सरल डठलयुक्त तथा असमुख होती हैं। अमरबेलि में पत्तियाँ बहुत छोटी तथा शल्कपत्रवत् (Scaly) होती हैं। पुष्प एकाकी (solitary) अथवा पुष्पक्रम (inflorescence) में पैदा होते हैं। ये पचतयी (Pentamarous), जायांगाधर (hypogynous) और नियमित होते हैं। बाह्यदलपुंज (Calx) पाँच तथा स्वतन्त्र बाह्यदल का बना होता है। दलपुंज (Covolla) पाँच सयुक्तदली (gamopetalous) तथा घंटे के आकार का होता है। रग भिन्न भिन्न परंतु अधिकाशत: गुलाबी होता है। पुमंग (Androecium) पाँच पुंकेसरो (Stamens) का दललग्न (epiepetalous) तथा अंतर्मुखी (introrse) होता है।

जायाग (Gynaecium) दो या तीन अंडप (Carpels) का होता है जो जुडे हुए होते हैं। अडाशय जयांगाधर (hypogynous) होता है। बीजाड (ovules) स्तभीय (axile) बीजाडासन (Placenta) पर लगे रहते हैं तथा प्रत्येक कोष्ठक (locule) मे इनकी सख्या प्राय. दो अथवा कभी कभी चार भी होती है। वर्तिका (Style) एक या तीन तथा वर्तिकाग्र (Stigma) दो या तीन भागो में विभाजित होता है। शहद सा पदार्थ एक विशेष अग से पैदा होता है जो अंडाशय (ovary) के नीचे विद्यमान रहता है।

फल अधिकतर सपुटिका (Capsule) तथा कभी कभी बेरी (berry) होता है। बीज असंख्य होते हैं। ससेचनक्रिया कीडो द्वारा होती है।

इस कुल के कुछ मुख्य पौधे निम्न हैं·

(१) शकरकद (ipomoea batata) यह पोषणतत्व से भरा होने के कारण खाने के काम आता है।

(२) करेम (Ipomoea reptaus) — यह पानी का पौधा है तथा इसे शाक के रूप में प्रयोग करते हैं।

(३) चद्रपुष्प (moon flower, Ipomoea bona-nose) — इसके पुष्प शाम को खिलते हैं और प्रात मुरझा जाते हैं।

(४) हिरनखुरी (Convolvulus arvensis) यह गेहूँ और जौ के खेतो में उगकर फसलो को हानि पहुँचाता है।

(५) अमरबेलि (Cuscuta) या आकाशबेलि — यह परारोही तथा पूर्ण पराश्रयी होता है। [र० श० द्वि]

हरिता (Moss, मॉस) ब्रायोफाइटा के एक वर्ग मसाइ (Musci) या ब्रायोपसिडा (Bryopsida) के अतर्गत लगभग १४००० जातियाँ पाई जाती हैं। ये पृथ्वी के हर भाग में पाए जाते हैं। ये छाया तथा सर्वथा नम स्थानो में पेड की छाल, चट्टानो आदि पर उगते हैं। इनके मुख्य उदाहरण स्फैगनम (Sphagnum), (जो यूरोप के पीट में बहुत उगता है), एड्रिया (Andreaea), फ्यूनेरिया (Funaria), पोलीट्राइकम (Polytrichum), बारबुला (Barbula) इत्यादि हैं।

मॉस एक छोटा सा एक या दो सेमी ऊँचा पौधा है, इसमे जडो के बजाय मूलाभास (Rhizoid) होते हैं जो जल तथा लवण लेने मे मदद करते हैं। तना पतला, मुलायम और हरा होता है, इनपर छोटी छोटी मुलायम पत्तियाँ घनी तरह से लगी होती हैं जिसके कारण मॉस पौधो का समूह एक हरे मखमल की चटाई जैसा लगता है। प्रजनन के हेतु इन पौधो में स्त्रीधानी (Archegonium) तथा पुधानी (Antheridium) होती हैं। पुधानी में नर युग्मक बनते हैं जो इसके बाहर आकर अपनी दो बाल जैसी पक्ष्माभिका (Celia) की मदद से पानी मे तैरकर स्त्रीधानी तक पहुँचते हैं और उसके अंदर मादा युग्मक से मिल जाते हैं।

बोंगो (Bongo T Eurycerus) को इलैंड का निकट संबंधी कहना अनुचित न होगा। यह भी अफ्रीका का हरिण है जिसकी ऊँचाई ५ फुट तक पहुँच जाती है। इसके शरीर का रंग कत्थई होता है, जिसपर १०-१२ सफेद धारियाँ पड़ी रहती हैं। नर मादा दोनो की सीगें घुमावदार होती हैं।

कुडू (Koodoo, Strepsiceros Strepsiceros) सिलेटी भूरे, बड़े कद का हरिण है जिसकी ऊँचाई ५ फुट तक पहुँच जाती है, केवल नर के माथे पर चक्करदार लबी सीगें रहती हैं।

बुश बक (Bush Buck, Tragelaphus Buxtoni) यह भी दक्षिण अफ्रीका का ४ फुट ऊँचा भूरे रंग का हरिण है जिसकी सीगें घुमावदार रहती हैं।

न्याला (Nyala, Tragelaphus angasi) भी अफ्रीका का हरिण है जिसका नर सिलेटी भूरा और मादा चटक लाल रंग की

(गजेले)

अफ्रीकी बारहसिंगा (कुडू)

वृष हरिण (नू)

अफ्रीकी हिरण (हार्ट बीस्ट)

विभिन्न प्रकार के हिरण

होती है। यह ३½ फुट ऊँचा और घुमावदार सीगोंवाला जानवर है।

मार्श बक (Marsh Buck, Limnotragus spekii) भी ४ फुट ऊँचा मध्य अफ्रीका निवासी हरिण है जो अपना अधिक समय पानी और कीचड मे बिताता है।

चौसिंघा (Four horned Antelope, Tetra cerus guadri cornis) हमारे देश का छोटा हरिण है। जो कद में दो फुट ऊँचा होता है। इसके नर के सिर पर चार छोटी छोटी नोकीली सीगें रहती हैं।

नीलगाय (Nilgai, Boselaphus Tragocamelus) भी भारत का निवासी है लेकिन यह ४ फुट ऊँचा और भूरे रंग का होता है। इसके नर पुराने हो जाने पर निलछोंह सिलेटी रंग के हो जाते हैं। नर के माथे पर ८-९ इंच के सींग रहते हैं।

दूसरे उपकुल (Kobines) — में अफ्रीका के वाटर और रीड हरिण (Water Buck and Reed Buck) आते हैं। इनकी सीगें जो केवल नरो को होती हैं, टेढी और बिना घुमाव के होती है।

वाटर बक (Kobus ellipsi prymnus) ४ फुट ऊँचे और गाढे भूरे रंग के होते हैं। ये पानी और कीचड़ के निकट रहते हैं।

रीड बक (Redunca arundinacea) ये २½ फुट ऊँचे सिलेटी रंग के हरिण हैं जो पहाड़ियो पर पाए जाते हैं।

तीसरे उपकुल (Aepycerines) — में अफ्रीका के इंपाला (Impala) हरिण है।

इंपाला (Aepyceros melampus) कत्थई रंग के तीन फुट से कुछ ऊँचे हरिण हैं जो झाड़ियो से भरे मैदानो में रहते हैं। नर को लंबी धारीदार सीगें रहती हैं।

चौथे उपकुल (Bubalines) — में अफ्रीका के हार्ट बीस्ट (Hart beest) और वाइल्ड बीस्ट (wild beest) नाम के हरिण हैं। जो भारी कद के और खुले मैदानो में रहनेवाले जीव हैं।

वाइल्ड बीस्ट या नू (Gnu, Gorgon taurinus) ४½ फुट ऊँचे सिलेटी रंग के हरिण हैं। नर मादा दोनो के धरारेदार सीगें रहती हैं।

हार्ट बीस्ट (Bubalis buselaphus) ३½ फुट का हल्के बादामी रंग का हरिण है।

पाँचवें उपकुल (Gazellines) — में अफ्रीका और भारत के मझोले कद के हरिण हैं, जो खुले हुए मैदानो में रहना अधिक पसंद करते हैं। इनमें चिंकारा और मृग प्रसिद्ध हैं।

चिंकारा (Gazella quanti) पूर्वी अफ्रीका के निवासी हैं जो ३ फुट ऊँचे और घुमावदार सीगो वाले हरिण हैं।

मृग — (Antilope cercicapra) भारत के २½ फुट ऊँचे भूरे रंग के प्रसिद्ध हरिण हैं जिनके नर पुराने होने पर काले हो जाते हैं — सींगें लबी और घुमावदार होती हैं।

छठे उपकुल — (Cephalophine) मे अफ्रीका के डुइकर (Dui Kers) हरिण हैं जो करीब ३० इंच ऊँचे होते हैं जिनकी सीगें सीधी और नोकीली होती है, जो नर मादा दोनो के रहती हैं।

सातवें उपकुल — (Neo traqine) में ओरीबी (Oribi

सफलता से करते रहे। इस पत्रिका में इनके लगभग इक्कीस उपन्यास प्रकाशित हुए जिनमें दस सामाजिक और ग्यारह ऐतिहासिक हैं। मराठी उपन्यास के क्षेत्र मे क्राति का सदेश लेकर ये अवतीर्ण हुए। इनकी रचनाओ से मराठी उपन्याससाहित्य की सर्वांगीण समृद्धि हुई। इनकी सामाजिक कृतियो में समाजसुधार का प्रबल सदेश है। मुख्य सामाजिक उपन्यासो में 'मछली स्थिति', 'गणपतराव', 'पण लक्षात कोण घेतो', 'मी' और यशवतराव खरे' उत्कृष्ट हैं। ये चरित्रचित्रण करने में सिद्धहस्त थे। इनकी रचनाओ में यथार्थवाद और ध्येयवाद (आदर्शवाद) का मनोहर सगम है। साथ ही मिल और स्पेंसर के बुद्धिवाद का रोचक विवेचन भी है। इन्होने मध्यमवर्गीय महिलाओ की समस्याओ का भावपूर्ण एव कलात्मक चित्रण किया।

ऐतिहासिक उपन्यासो में चद्रगुप्त, उष काल, गड आला पण सिंह गेला, और वज्राघात आपटे की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। इनकी ऐतिहासिक दृष्टि व्यापक और विशाल थी। गुप्तकाल से मराठो की स्वराज्य स्थापना तक के काल पर इन्होने कलापूर्ण उपन्यास लिखे। 'वज्राघात' इनकी अतिम कृति है जिसमे दक्षिण के विजयानगरम् राज्य के नाश का प्रभावकारी चित्रण है। इसकी भाषा काव्यपूर्ण और सरस है। इनके सामाजिक उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास जैसे सजीव चरित्रचित्रण से ओतप्रोत हैं। ये सत्यं शिवं, सुंदरम् के अनन्य उपासक थे।

इनकी कहानियाँ 'स्फुट गोष्टी' नामक चार पुस्तको में सगृहीत हैं। इनमें चरित्रचित्रण तथा घटनाचित्रण का मनोहर सगम है। कला तथा सौंदर्य की अभिव्यक्ति करते हुए जनजागरण का उदात्त कार्य करने में ये सफल रहे। [भी० गो० दे०]

हरियाणा भारत का राज्य है। जिसका क्षेत्रफल ४६५२० वर्ग किमी एवं जनसख्या ७५,६६,७५६ (१९६१) है। राज्य में एक डिवीजन एव सात जिले हैं। इन जिलो में २७ तहसीलें एव इन तहसीलों के अतर्गत ६,६६० ग्राम और ६२ उपनगर हैं। यहाँ की ग्रामीण जनसख्या ६२,६२,०७६ (१९६१) एव शहरी जनसख्या १३,०७,६८० (१९६१) है। इस राज्य की राजधानी चडीगढ़ है।

यह राज्य मुख्यतः कृषिप्रधान है, पर सिंचाई के साधनो की यहाँ अत्यधिक कमी है। अधिकाश भाग शुष्क एव अर्धशुष्क क्षेत्रो मे पडता है। राज्य में कोई भी ऐसी नदी नही है जिसमें वर्ष भर जल रहे। यहाँ ऋतु के अनुसार ताप मे बडा परिवर्तन होता रहता है। हिसार, महेंद्रगढ़ एव गुडगाँव में ताप का परिवर्तन अधिक होता है। जाडे में पाले से बडी हानि होती है। ग्रीष्म में प्राय धूल से भरी आँधियाँ चला करती हैं। राज्य के आधे हिस्से मे औसत वार्षिक वर्षा ५१ सेमी से कम होती है। घग्गर, टगडी, मरकद, सरस्वती, चुतग, कृष्णावती एव दोहन भी बरसाती एवं छिछली नदियाँ हैं। पूर्व की ओर यमुना उत्तर प्रदेश के साथ उसकी सीमा बनाती है। राज्य के अधिकाश भाग की अवमृदा (Subsoil) नुनखरी है।

गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, गन्ना एव दलहन यहाँ की प्रमुख फसलें हैं। धान एव कपास की खेती भी यहाँ की जाती है।

हरियाणा सर्वोत्कृष्ट नस्ल की सुंदर एवं सुडौल मुर्रा भैंसो और गायो के लिये अतीत काल से प्रसिद्ध है तथा सपूर्ण देश में उपर्युक्त दोनो पशुओ की बडी माँग है। हिसार का मवेशी फार्म एशिया के बडे मवेशी फार्मो में से एक है और भारत मे मवशियो के नस्ल सुधार क्रियाकलापो का प्रमुख केंद्र है।

अब तक यह राज्य औद्योगिक क्षत्र में पिछडा रहा, पर अब दिल्ली के आसपास स्थित सोनीपत, फरीदाबाद आदि नगरों में औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित हो रही हैं। हरियाणा वित्त निगम, उद्योग विकास निगम तथा हरियाणा लघु उद्योग एव निर्यात निगम राज्य में बडे एव छोटे उद्योगों को स्थापित करने में सहायता प्रदान कर रहे हैं और राज्य उद्योगो के लिये सस्ती भूमि और जल एव विद्युत्शक्ति के सभरण का कार्य कर रहा है। महेंद्रगढ़ के अतिरिक्त राज्य में खनिजो का अभाव है।

हरियाणा राज्य बनने से पूर्व तक यह प्रदेश शिक्षा के क्षेत्र मे अत्यत पिछड़ा हुआ था। १९६१ ई० की जनगणना के अनुसार इस राज्य मे समिलित जिलो की जनसख्या का मात्र २० प्रतिशत ही शिक्षित है। राज्य की भाषा हिंदी है। कुरुक्षेत्र मे एक विश्वविद्यालय है। मैट्रिकुलेशन एव उच्चतर माध्यमिक स्तर की परीक्षा लेने और पाठ्यक्रमो में सुधार के लिये एक शिक्षा बोर्ड का सगठन किया गया है। फरीदाबाद में जर्मनी के वाइ एम सी ए (Y M. C. A) के सहयोग से स्थापित तकनीकी प्रशिक्षण केंद्र भी यहाँ है। रोहतक मे चिकित्सा महाविद्यालय है।

राज्य के कई स्थान दर्शनीय हैं। दिल्ली से १०० मील की दूरी पर कुरुक्षेत्र है, जो हिंदुओ का अत्यत प्रसिद्ध, धार्मिक एव ऐतिहासिक स्थल है। यहाँ कौरवो एव पाडवों के मध्य ऐतिहासिक युद्ध महाभारत हुआ था। सूर्यग्रहण के अवसर पर भी यहाँ बहुत तीर्थयात्री आते हैं। दिल्ली के समीप ही बदखल झील एव सूरजपुर कुड दर्शनीय स्थल हैं। चडीगढ़ और नगर से १३ मील दूर स्थित पिंजोर के मुगल उद्यान भी दर्शनीय हैं। ताजीवाला कलेसर नारायणगज क्षेत्र शिकारियो के लिये आकर्षण का केंद्र हैं। अबाला, झज्जर, थानेश्वर, रेवाडी, नारनौल, पानीपत एव चडीगढ़ राज्य के प्रसिद्ध नगर हैं।

राज्य सभा में पाँच और लोकसभा में नौ सदस्यों द्वारा यहाँ का प्रतिनिधित्व किया जाता है। [अ० ना० मे०]

हरिराम व्यास भक्तप्रवर व्यास जी का जन्म सनाढ्यकुलोद्भव ओड़छानिवासी श्री सुमोखन शुक्ल के घर मार्गशीर्ष शुक्ला पचमी, सवत् १५६७ को हुआ था। सस्कृत के अध्ययन में विशेष रुचि होने के कारण अल्प काल ही में इन्होंने पाडित्य प्राप्त कर लिया। ओड़छानरेश मधुकरशाह इनके मत्रशिष्य थे। व्यास जी अपने पिता की ही भाँति परम् वैष्णव तथा सद्गृहस्थ थे। राधाकृष्ण की ओर विशेष झुकाव हो जाने से ये ओड़छा छोड़कर वृदावन चले आए। राधावल्लभ सप्रदाय के प्रमुख आचार्य गोस्वामी हितहरिवश जी के जीवनदर्शन का इनके ऊपर ऐसा मोहक प्रभाव पडा कि इनकी अतर्वृत्ति नित्यकिशोरी राधा तथा नित्यकिशोर कृष्ण के निकुजलीलागान मे रम गई। ऐसी स्थिति में वृदावन के प्रति अगाध निष्ठा स्वाभाविक थी। अतः ओड़छानरेश के आग्रह पर भी ये वृदावन से पृथक् नही हुए।

गर्भाधान के पश्चात् बीजाणु उद्भिद या कैप्सूल बनता है जिसके अंदर छोटे छोटे हजारों बीजाणु बनते हैं। ये बीजाणु हवा मे तैरते हुए पृथ्वी पर इधर उधर बिखर जाते हैं, और एक नए आकार को जन्म देते हैं। इन्हे प्रथमतंतु (Protonema) कहते हैं। ये जल्दी ही नए मॉस पौधे को जन्म देते हैं।

मॉस मिट्टी का निर्माण करते हैं। उनकी छोटी छोटी मूलिकाएँ धीरे धीरे कार्य करती हुई चट्टानों को छोटे छोटे कणों में तोड देती हैं। समय पाकर वे पत्थरों को धूल में परिणत कर देते हैं। इनकी पत्तियाँ वायु के धूलकणों को रोककर धीरे धीरे मिट्टी को गहरी बना देती हैं। मॉस वर्षा के जल को भी रोक रखता है। इससे मिट्टी गीली रहती है जहाँ अन्य पौधे आकर रुक जाते और पनपते हैं। मिट्टी मे जल को रोककर मॉस बाढ से भी बचाते हैं। मॉस के बारबार उगने और मर जाने से वहाँ समय पाकर पीट नामक कोयला बनता है जिसका व्यावहार जलावन के रूप मे होता है। मिट्टी के साथ मिलकर मॉस उसे उपजाऊ भी बनाता है। मॉस से मिट्टी में जल रोक रखा जाता है। पीट के दलदल अनेक देशों, जैसे जर्मनी, स्वीडन, हॉलैंड आयरलैंड और संयुक राज्य अमरीका के अनेक भागों मे पाए जाते हैं।

हरिदास जी का जन्म किस संवत् मे हुआ था, यह अनिश्चित सा है परंतु इतना निश्चित है कि अकबर के सिंहासनारूढ़ होने के पहले इनका नाम प्रसिद्ध हो चुका था। जो अपने आपको स्वामी हरिदास का वंशधर मानते हैं, उनका कहना है कि वे सारस्वत ब्राह्मण थे, मुल्तान के पास उच्च गाँव के रहनेवाले थे। बाबू राधाकृष्ण दास ने 'भक्तसिंधु' ग्रंथ का प्रमाण देकर यह माना है कि स्वामी जी सनाढ्य ब्राह्मण तथा, कोल के निकट हरिदासपुर के निवासी थे। स्वामी जी की शिष्यपरंपरा के महात्मा सहचरिशरण जी का भी यही मत है। किंतु, नाभा जी ने 'भक्तमाल' में 'आसधीर उद्योतकर' इतना ही इनके विषय में कहा है। 'भक्तमाल' में जो छप्पय दिया गया है, उसमें स्वामी हरिदास जी की प्रेमपरा भक्ति और गहरी रसिकता का ही वर्णन किया गया है।

स्वामी हरिदास जी उच्च कोटि के त्यागी, निस्पृह और महान् हरिभक्त थे। त्यागी ऐसे कि कौपीन, मिट्टी का एक करवा और यमुना की रज इतना ही पास में रखते थे। श्रीराधाकृष्ण के नित्य-लीलाविहार के ध्यान और कीर्तन में आठो पहर यह मग्न रहते थे। बड़े बड़े राजे महाराजे भी दर्शन करने के लिये इनके निकुंज द्वार पर खड़े रहते थे।

स्वामी हरिदास जी संगीतशास्त्र के बहुत बड़े आचार्य थे। सुप्रसिद्ध तानसेन भी इनके शिष्य थे।

निंबार्क संप्रदाय के अंतर्गत वृंदावन में जो 'टट्टी' स्थान है उसके प्रवर्तक एवं संस्थापक स्वामी हरिदास जी थे। उनका 'निधुवन' आज भी दर्शनीय है। उनकी शिष्यपरंपरा में वीठल विपुल, भगवत-रसिक, सहचरिशरण आदि अनेक त्यागी और रसिक महात्मा हुए हैं।

स्वामी हरिदास जी के रचे पद बड़े भावपूर्ण और श्रुतिमधुर हैं, और स्वभावत राग रागिनियो में खुब बैठते हैं। सिद्धांत और लीला-विहार दोनो पर उन्होंने पदरचना की है। सिद्धांतसंबंधी १६ पद मिलते हैं, तथा लीलाविहारविषयक ११० पद। लीलाविहार की पदावली को 'केलिमाला' कहते हैं। 'केलिमाला' के सरस पदो मे श्री श्यामश्यामा के नित्यविहार का अनूठा चित्रण किया गया है। ऐसा लगता है कि वृंदावनविहारी की लीलाएँ प्रत्यक्ष देखकर हरिदास जी ने तबूरे पर इन पदो को रच रचकर गाया होगा।

सिद्धांतपक्ष में 'तिनका बियारि के बस, ज्यो भावै त्यो उडाइ लै जाइ आपने रस' तथा 'हित तौ कीजै कमलनैन सो, जा हित के आगे और हित लागै फीको' एवं 'मन लगाइ प्रीति कीजै कर करवा सो, व्रज बीथिन दीजै सोहिनी; वृंदावन सो, बन उपवन सो, गुंज-माल कर पोहिनी' ये पद बहुत प्रसिद्ध हैं। इन पदो में सर्वस्वत्याग, अकिंचनता, ऊँची रहनी, भगवत्प्रपन्नता एवं अनन्यता की निर्मल झाँकी देखने को मिलती है। [वि० ह०]

हरिनारायण हरिनारायण नामधारी दो कवि हुए हैं — एक हरिनारायण मिश्र और दूसरे हरिनारायण। इनमें एक हरिनारायण बेरी (जिला मथुरा) के निवासी थे। 'बारहमासी' और 'गोवर्धन-लीला' खोज में इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं। 'बारहमासी' में कांता प्रत्येक मास मे होनेवाले दुःखो का वर्णन कर अपने पति को प्रवास जाने से रोकती है। 'गोवर्धनलीला' प्रबंधात्मक रचना है जिसमे श्रीकृष्ण इंद्रपूजा का निषेध करवाकर नंद गोपो से गोवर्धन पुजवाते हैं। कवित्व के विचार से इन दोनो ही रचनाओ का साधारण महत्व है।

दूसरे हरिनारायण भरतपुर में स्थित कुम्हेर के निवासी ब्राह्मण थे। इनकी तीन रचनाएँ बताई गई हैं — (१) 'माधवानलकाम-कदला', (२) 'बैतालपचीसी' और (३) 'रुक्मिणीमंगल'। प्रथम कृति का रचनाकाल सं० १८१२ वि० है और यह प्रबंधात्मक रचना है। 'बैतालपचीसी' कथाप्रधान रचना है। तीसरी रचना 'रुक्मिणीमंगल' में श्रीकृष्णप्रिया रुक्मिणी के हरण का वर्णन है। पहले हरिनारायण की अपेक्षा दूसरे हरिनारायण में काव्यगरिमा अधिक है। [रा० फे० त्रि०]

हरि नारायण आपटे (१८६४-१९१९ ई०) मराठी के प्रसिद्ध उपन्यासलेखक हरिभाऊ आपटे का जन्म खानदेश मे हुआ। पूना में पढ़ते समय इनके भावुक हृदय पर निबंधमालाकार चिपलूणकर और उग्र सुधारक आगरकर का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इसी अवस्था में इन्होने कई अंग्रेजी कहानियों का मराठी में सरस अनुवाद किया। विद्यार्थी जीवन में ही इन्होंने संस्कृत के नाटको का तथा स्कॉट, डिकसन्, थैकरे, रेनाल्ड्स इत्यादि के उपन्यासो का गहरा अध्ययन किया और लोकमंगल की दृष्टि से उपन्यासरचना की आकांक्षा इनमे अंकुरित हुई।

सन् १८८५ में इनका 'मधली स्थिति' नामक पहला सामाजिक उपन्यास एक समाचारपत्र में क्रमशः प्रकाशित होने लगा। बी० ए० की परीक्षा मे अनुत्तीर्ण होने पर इन्होंने 'करमणूक' नामक पत्रिका का संपादन करना आरंभ किया। यह कार्य ये अट्ठाईस वर्षों तक

पर हरिवश इन पुराणो से पूर्ववर्ती निश्चित होता है। अतएव हरिवश के विष्णुपर्व और भविष्यपर्व को तृतीय शताब्दी का मानना चाहिए।

हरिवश के अंतर्गत हरिवशपर्व शैली और वृत्तातो की दृष्टि से विष्णुपर्व और भविष्यपर्व से प्राचीन ज्ञात होता है। अश्वघोषकृत वज्रसूची में हरिवंश से अक्षरश समानता रखनेवाले कुछ श्लोक मिलते हैं। पाश्चात्य विद्वान् वेंवर ने वज्रसूची को हरिवंश का ऋणी माना है और रे चौधरी ने उनके मत का समर्थन किया है। अश्वघोष का काल लगभग द्वितीय शताब्दी निश्चित है। यदि अश्वघोष का काल द्वितीय शताब्दी है तो हरिवशपर्व का काल प्रक्षिप्त स्थलो को छोडकर, द्वितीय शताब्दी से कुछ पहले समझना चाहिए।

हरिवश में काव्यतत्व अन्य प्राचीन पुराणों की भाँति अपनी विशेषता रखता है। रसपरिपाक और भावो की समुचित अभिव्यक्ति में यह पुराण कभी कभी उत्कृष्ट काव्यो से समानता रखता है। व्यजनापूर्ण प्रसंग पौराणिक कवि की प्रतिभा और कल्पनाशक्ति का परिचय देते हैं।

हरिवश में उपमा, रूपक, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, यमक और अनुप्रास ही प्राय. मिलते हैं। ये सभी अलकार पौराणिक कवि के द्वारा प्रयासपूर्वक लाए गए नहीं प्रतीत होते।

काव्यतत्व की दृष्टि से हरिवश में प्रारभिकता और मौलिकता है। हरिवश, विष्णु, भागवत और पद्म के ऋतुवर्णनों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि कुछ भाव हरिवश में अपने मौलिक सुदर रूप में चित्रित किए गए हैं और वे ही भाव उपर्युक्त पुराणों में क्रमशः कृत्रिम, अथवा सश्लिष्ट होते गए हैं।

सामग्री और शैली को देखते हुए भी हरिवश एक प्रारभिक पुराण है। सभवत इसी कारण हरिवश का पाठ अन्य पुराणों के पाठ से शुद्ध मिलता है। कतिपय पाश्चात्य विद्वानों द्वारा हरिवश को स्वतत्र वैष्णव पुराण अथवा महापुराण की कोटि में रखना समीचीन है। [वी० पा० पा०]

हरिश्चंद्र (राजा) अयोध्या के प्रसिद्व सूर्यवंशी राजा जो सत्यव्रत के पुत्र थे। ये अपनी सत्यनिष्ठा के लिये अद्वितीय हैं और इसके लिये इन्हें अनेक कष्ट सहने पडे। ये बहुत दिनो तक पुत्रहीन रहे पर अत में अपने कुलगुरु वशिष्ठ के उपदेश से इन्होंने वरुणदेव की उपासना की तो इस शर्त पर पुत्र जन्मा कि उसे हरिश्चद्र स्वय यज्ञ में बलि दे दें। पुत्र का नाम रोहिताश्व रखा गया और जब राजा ने वरुण के कई बार आने पर भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी न की तो उन्होंने हरिश्चद्र को जलोदर रोग होने का शाप दे दिया।

रोग से छुटकारा पाने और वरुणदेव को फिर प्रसन्न करने के लिये राजा वशिष्ठ जी के पास पहुँचे। इधर इद्र ने रोहिताश्व को वन में भगा दिया। राजा ने वशिष्ठ जी की संमति से अजीगर्त नामक एक दरिद्र ब्राह्मण के बालक शुन शेप को खरीदकर यज्ञ की तैयारी की। परतु बलि देने के समय शमिता ने कहा कि मैं पशु की बलि देता हूँ, मनुष्य की नही। जब शमिता चला गया तो विश्वामित्र ने आकर शुन शेप को एक मत्र बतलाया और उसे जपने के लिये कहा। इस मंत्र का जप करने पर वरुणदेव स्वय प्रकट हुए और बोले — हरिश्चद्र, तुम्हारा यज्ञ पूरा हो गया। इस ब्राह्मणकुमार को छोड दो। तुम्हें मैं जलोदर से भी मुक्त करता हूँ।

यज्ञ की समाप्ति सुनकर रोहिताश्व भी वन से लौट आया और शुन शेप विश्वामित्र का पुत्र बन गया। विश्वामित्र के कोप से हरिश्चद्र तथा उनकी रानी शैव्या को अनेक कष्ट उठाने पडे। उन्हें काशी जाकर श्वपच के हाथ बिकना पडा, पर अत में रोहिताश्व की असमय मृत्यु से देवगण द्रवित होकर पुष्पवर्षा करते हैं और राजकुमार जीवित हो उठता है। [रा० द्वि०]

हरिश्चद्र (भारतेंदु) जन्म भाद्रपद शुक्ल ऋषि पंचमी स० १९०७ वि०, सोमवार, ९ सितबर, सन् १८५० ई० को वाराणसी मे हुआ। पिता का नाम गोपालचद्र उपनाम गिरधर दास था। यह अग्रवाल वैश्य तथा वल्लभ सप्रदाय के कृष्णभक्त वैष्णव थे। बाल्यकाल ही से इनकी प्रतिभा के लक्षण दिखलाई पडने लगे थे। पाँच छह वर्ष की अवस्था ही में इन्होने एक दोहा बनाया था तथा एक उक्ति की नई व्याख्या की थी। पहले घर पर ही इन्हें सस्कृत, हिंदी, उर्दू तथा अग्रेजी की शिक्षा मिली और फिर कुछ वर्षों तक इन्होंने काशी के क्वीस कालेज के वार्ड्स स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। यह अति चचल तथा हठी थे और पढने में मन नही लगाते थे पर इनकी स्मरणशक्ति तथा धारणा शक्ति प्रबल थी। सं० १९२२ वि० के लगभग यह सपरिवार जगन्नाथ जो गए और तभी इनका शिक्षाक्रम टूट गया। अपने कवि पिता तथा उनकी साहित्यिक मित्रमडली के सपर्क मे निरतर रहने से इनकी साहित्यिक बुद्धि जाग्रत हो चुकी थी पर इस जगन्नाथ जी का यात्रा में देश के भिन्न भिन्न भागो के अनुभवो ने इनकी बुद्धि को विशेष रूप से ऐसा विकसित कर दिया कि वहाँ से लौटकर आते ही वह उन सब कार्यों में दत्तचित हो कर लग गए जिन्हें वह अंत तक करते रहे। इन्हीं अनुभवों में पाश्चात्य नवीन विचारो, सभ्यता तथा सस्कृति का परिज्ञान भी था। यह स्वभाव से अत्यत कोमलहृदय, परदुःखकातर, उदारचेता, गुणियों तथा सुकवियों के आश्रयदाता तथा स्वाभिमानी पुरुष थे। इसी दानशीलता में तथा हिंदी की सेवा में इन्होने अपना सर्वस्व गँवा दिया पर अत तक अपना यह व्रत निबाहते गए। यह अनन्य कृष्णभक्त थे पर धार्मिक विचारो में अत्यंत उदार थे तथा किसी अन्य धर्म या सप्रदाय के प्रति विद्वेष न रखकर उसका आदर करते थे। स्वसमाज के अधविश्वासो को दूर करने के लिये इनकी वाणी सतत प्रयत्नशील रही और बालविवाह, विधवाविवाह, विलायतयात्रा, स्त्रीशिक्षा सभी विषयो पर इन्होने लेख लिखे तथा व्याख्यान दिए। पाश्चात्य शिक्षा का अभाव देखकर इन्होने सन् १८६५ ई० के लगभग घर पर ही बालको को अग्रेजी पढाने का प्रबध किया जो पहले चौखंभा स्कूल कहलाया और अब हरिश्चद्र कालेज के नाम से एक विशाल विद्यालय में परिणत हो गया है।

देशभक्ति इनका मूल मंत्र था और देशसेवा के लिये मुख्यत इन्होने 'निज भाषा उन्नति' ही को साधन बनाया। देश के पूर्व गौरव का गायन किया, वर्तमान कुदशा पर रुदन किया तथा भविष्य

चैतन्य संप्रदाय के रूप गास्वामी और सनातन गोस्वामी से इनकी गाढ़ी मैत्री थी। इनकी निधनतिथि ज्येष्ठ शुक्ला ११, सोमवार सं० १६८९ मानी जाती है।

इनका धार्मिक दृष्टिकोण व्यापक तथा उदार था। इनकी प्रवृत्ति दार्शनिक मतभेदों को प्रश्रय देने की नही थी। राधावल्लभीय सप्रदाय के मूल तत्व — नित्यविहार दर्शन — जिसे रसोपासना भी कहते हैं — की सहज अभिव्यक्ति इनकी वाणी में हुई है। इन्होने शृगार के अतर्गत संयोगपक्ष को नित्यलीला का प्राण माना है। राधा का नखशिख और शृगारपरक इनकी अन्य रचनाएँ भी सयमित एव मर्यादित हैं। 'व्यासवाणी' भक्ति और साहित्यिक गरिमा के कारण इनकी प्रौढतम कृति है। ये उच्च कोटि के भक्त तथा कवि थे। राधावल्लभीय संप्रदाय के हरित्रय मे इनका विशिष्ट स्थान है

कृतियाँ — व्यासवाणी, रागमाला, नवरत्न और स्वधर्म (दोनो संस्कृत तथा अप्रकाशित)।

स० ग्रं० — प० बलदेव उपाध्याय : भागवत सप्रदाय, श्री वासुदेव गोस्वामी : भक्त कवि व्यास जी, डॉ० विजयेंद्र स्नातक : राधावल्लभ सप्रदाय सिद्धात और साहित्य। [रा० व० पा०]

हरिवंशपुराण महाभारत के खिल के रूप में हरिवशपुराण सर्वविदित है। विविध ग्रथ हरिवश को महाभारत का खिल प्रमाणित करते हैं। महाभारत तथा हरिवंश में पाए जानेवाले प्रमाण भी इसी बात का समर्थन करते हैं।

महाभारत आदिपर्व के अंतर्गत पर्वसग्रहपर्व में हरिवश के हरिवशपर्व और विष्णुपर्व महाभारत के अतिम दो पर्वों में परिगणित किए गए हैं। इन दो पर्वों को जोडकर ही महाभारत 'शतसाहस्री सहिता' के रूप में पूर्ण माना जाता है।

हरिवश में अनेक प्रसग महाभारत की पूर्वस्थिति की ओर संकेत करते हैं। साथ ही महाभारत में उपलब्ध कुछ आख्यान सभवत: आवृत्ति के भय से हरिवश में उपेक्षित किए गए हैं। महाभारत मौसलपर्व में यादवो के विनाश और द्वारकानगरी के समुद्रमग्न होने का वृत्तात हरिवश में केवल एक श्लोक में वर्णित है। महाभारत आदिपर्व में विस्तार के साथ वर्णित शकुतला का उपाख्यान हरिवश में अत्यत सक्षिप्त रूप में मिलता है। महाभारत के ही आदिपर्व में जबूककथा के वक्ता कणिक मुनि की ओर संकेतमात्र हरिवश में 'मित्रस्य धनदस्य च' के द्वारा हुआ है।

महाभारत का खिल होने पर भी हरिवश एक स्वतंत्र पुराण है। पुराण पचलक्षण—सर्ग, प्रतिसर्ग, वश, मन्वतर और वंशानुचरित्— के आधार पर ही हरिवश का विकास हुआ है। केवल पुराणपंचलक्षण ही नही, वरन् अर्वाचीन पुराणो मे प्राप्त स्मृतिसामग्री और साप्रदायिक विचारधाराएँ भी हरिवश में उपलब्ध होती हैं।

अग्निपुराण में रामायण और महाभारत के साथ हरिवंश की भी गणना हुई है (अग्नि १२–१३)। संभवत: अग्निपुराण के काल मे हरिवश एक पुराण के रूप में स्वतत्र अस्तित्व रखने लगा था, अन्यथा हरिवश का पृथक् नामोल्लेख न होता।

हरिवंशपुराण के हरिवंशपर्व में पुराण पचलक्षण के वंश और मन्वतर क अनुरूप विविध क्षत्रिय राजवंशो और ब्राह्मणवशो का विवरण मिलता है। अन्य पुराणो की वशावलि से तुलना करने पर हरिवंश की वशावलि अधिक स्पष्ट और प्रमाणिक ज्ञात होती है।

विष्णुपर्व मे कृष्णचरित विस्तृत रूप से वर्णित है। विष्णु, भागवत, पद्म और ब्रह्मवैवर्त आदि वैष्णव पुराणो से तुलना किए जाने पर हरिवश का कृष्णचरित्र अपनी प्रारंभिक अवस्था मे ज्ञात होता है। हरिवश के अंतर्गत रास अपने सीमित और सरल रूप मे मिलता है, उत्तरकालान वैष्णव पुराणो की भाँति वह विशद और रहस्यात्मक नही हुआ है। इस पुराण में कृष्ण का चरित्र उतना अधिक लोकोत्तर नही है जितना उत्तरकालीन पुराणो में दिखलाई देता है। भागवत और पाचरात्र सिद्धात भी इस पुराण के अंतर्गत अपने आदि रूप में हैं। सभवत इसी कारण, केवल प्रक्षिप्त स्थलो को छोडकर, (हरि० २. १२१. ६ और २. १२१. १५) पाचरात्र के चतुर्व्यूह का उल्लेख इस पुराण के किसी भी भाग में नही हुआ है। चतुर्व्यूह का उल्लेख विष्णु, भागवत और पद्मपुराण में है।

हरिवश मे कृष्ण का स्वरूप वैष्णव पुराणो से भिन्न छादोग्योपनिषद् के देवकीपुत्र कृष्ण से समानता रखता है। यहाँ पर कृष्ण के लिये प्रयुक्त सूर्य से सादृश्य रखनेवाले विशेषण — 'अग्नि', 'अग्निपति और 'ज्योतिषा पति' (हरि० ३.९०. २०–२१) छादोग्य मे वर्णित सूर्यपूजक देवकीपुत्र कृष्ण के विशेषणो से निकट सबंध सूचित करते हैं।

हरिवंशपुराण भविष्यपर्व में पुराण पंचलक्षण के सर्गप्रतिसर्ग के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति, ब्रह्म के स्वरूप, अवतार गणना और साख्य तथा योग पर विचार हुआ है। स्मृतिसामग्री तथा साप्रदायिक विचारधाराएँ भी इस पर्व में अधिकाश रूप में मिलती हैं। इसी कारण यह पर्व हरिवशपर्व और विष्णुपर्व से अर्वाचीन ज्ञात होता है।

विष्णुपर्व में नृत्य और अभिनयसबधी सामग्री अपने मौलिक रूप मे मिलती है। इस पर्व के अतर्गत दो स्थलों में छालिक्य का उल्लेख हुआ है। छालिक्य वाद्यसगीतमय नृत्य ज्ञात होता है। हाव भावो का प्रदर्शन इस नृत्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। छालिक्य के सबध में अन्य पुराण कोई भी प्रकाश नही डालते।

विष्णुपर्व (९१ २६–३५) में वसुदेव के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर भद्र नामक नट का अपने अभिनय से ऋषियो को तुष्ट करना वर्णित है। इसी नट के साथ प्रद्युम्न, साब आदि वज्रनाभपुर मे जाकर अपने कुशल अभिनय से वहाँ दैत्यो का मनोरजन करते हैं। यहाँ पर 'रामायण' नामक उद्देश्य और 'कौवेर रभाभिसार' नामक प्रकरण के अभिनय का विशद वर्णन हुआ है।

हापकिंस ने हरिवश को महाभारत का अर्वाचीनतम पर्व माना है। हाजरा ने रास के आधार पर हरिवंश को चतुर्थ शताब्दी का पुराण बतलाया है। विष्णु और भागवत का काल हाजरा ने क्रमश: पाँचवी शताब्दी तथा छठी शताब्दी के लगभग निश्चित किया है। श्री दीक्षितर के अनुसार मत्स्यपुराण का काल तृतीय शताब्दी है। कृष्णचरित्र, रजि का वृत्तात तथा अन्य वृत्तातों से तुलना करने

हरिश्चंद्र (भारतेंदु)
(देखिए—पृ० सं० ३०२-३०३)

अपने पिता संगम के पाँच पुत्रों में हरिहर का नाम सर्वोपरि माना जाता है। वह हरिहर प्रथम के नाम से सिंहासन पर बैठा। संगमवंश के अभिलेखों में वर्णन मिलता है कि हरिहर ने सम्राट् की पदवी धारण की तथा प्रभावहीन राजा से कार्यभार स्वयं ले लिया। शाम लेखों में 'महामंडलेश्वर हरिहर होयसल देश में शासन करता है' ऐसा उल्लेख है। तत्कालीन मुसलमानों से युद्ध की परिस्थिति में हिंदू संस्कृति की रक्षा ही विजयनगर राज्य की स्थापना का मूल उद्देश्य था।

हरिहर प्रथम की सत्ता को दक्षिण भारत के हिंदू राजाओं ने स्वीकार कर लिया। केंद्रीय शासन को सुदृढ़ करने की ओर इसका ध्यान था। नूनेज का कथन है कि 'मंत्रिमंडल' की सहायता से शासन-कार्य संचालित हो रहा था। हरिहर प्रथम शैव थे, यद्यपि राज्य में अन्य मत भी पल्लवित होते रहे। हरिहर के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि विद्यारण्य स्वामी का उनपर विशेष प्रभाव था। १३५७ ई० में हरिहर ने अपने छोटे भ्राता बुक्का को राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। पश्चिमी तथा पूर्वी समुद्र के मध्य भूभाग पर राज्य विस्तृत करने में हरिहर प्रथम को अच्छी सफलता मिली।

[बा० उ०]

हरिहरक्षेत्र बिहार की राजधानी पटना से तीन मील उत्तर में गंगा और गंडक के संगम पर स्थित सोनपुर नामक नगर को ही प्राचीन काल में हरिहरक्षेत्र कहते थे। ऋषियों और मुनियों ने इसे प्रयाग और गया से भी श्रेष्ठ तीर्थ माना है। ऐसा कहा जाता है कि इस संगम की धारा में स्नान करने से हजारों वर्ष के पाप कट जाते हैं। कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर यहाँ एक विशाल मेला लगता है जो मवेशियों के लिये एशिया का सबसे बड़ा मेला समझा जाता है। यहाँ हाथी, घोड़े, गाय, बैल एवं चिड़ियों आदि के अतिरिक्त सभी प्रकार के आधुनिक सामान, कपड़े, दरियाँ, नाना प्रकार के खिलौने और लकड़ी के सामान बिकने को आते हैं (देखें सोनपुर)। यह मेला लगभग एक मास तक चलता है। इस मेले के संबंध में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। इसी के पास कोनहरा-घाट में पौराणिक कथा के अनुसार गज और ग्राह का वर्षों चलनेवाला युद्ध हुआ था। बाद में भगवान् विष्णु की सहायता से गज की विजय हुई थी। एक अन्य किंवदंती के अनुसार जय और विजय दो भाई थे। जय शिव के तथा विजय विष्णु के भक्त थे। इन दोनों में झगड़ा हो गया तथा दोनों गज और ग्राह बन गए। बाद में दोनों में मित्रता हो गई और यहाँ शिव और विष्णु दोनों के मंदिर साथ साथ बने जिससे इसका नाम हरिहरक्षेत्र पड़ा। कुछ लोगों के अनुसार प्राचीन काल में यहाँ ऋषियों और साधुओं का एक विशाल सम्मेलन हुआ था तथा शैव और वैष्णव के बीच गंभीर वादविवाद खड़ा हो गया किंतु बाद में दोनों में सुलह हो गई और शिव तथा विष्णु दोनों की मूर्तियों की एक ही मंदिर में स्थापना की गई, उसी की स्मृति में यहाँ कार्तिक में पूर्णिमा के अवसर पर मेला आयोजित किया जाता है।

इस मेले का आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्व है।

हर्निया (Hernia) मानव शरीर के कुछ अंग शरीर के अंदर खोखले स्थानों में स्थित हैं। इन खोखले स्थानों को 'देहगुहा' (body cavity) कहते हैं। देहगुहा अपनी ही झिल्ली से ढकी रहती है। इन गुहाओं की झिल्लियाँ कभी कभी फट जाती हैं और अंग का कुछ भाग बाहर निकल आता है। ऐसी विकृति को हर्निया कहते हैं। मनुष्य हर्निया से आक्रांत है, ऐसा कहा जाता है। साधारणतया हर्निया से हमारा आशय उदर हर्निया से ही होता है। हर्निया कई प्रकार के होते हैं। स्थान के अनुसार उनका वर्गीकरण किया गया है। कुछ व्यक्तियों के नाम पर भी हर्निया का नाम दिया गया है, जैसे रिक्टर हर्निया। विभिन्न स्थानों के हर्निया इस प्रकार हैं —

१ कटिप्रदेश हर्निया
२ श्रोणि गवाक्ष (obturator) हर्निया
३ उपस्थिका (perineal) हर्निया
४. स्फिक (gluteal) हर्निया
५. उदर हर्निया
६ महाप्राचीरभेदी विवर हर्निया
७ नाभि हर्निया (जन्मजात, शैशव, युवा अवस्था में हो सकता है)
८ पराणाभि हर्निया (para numblical)
९. ऊर्वी हर्निया, कटकास्थिका (pectineal) हर्निया भी इसी के अंतर्गत आता है।

१० वंक्षण हर्निया (inguinal hernia) जन्मजात या अर्जित हो सकता है। जन्मजात हर्निया जन्मजात, शैशव या अर्जित हो सकता है। पूर्ण या अपूर्ण जन्मजात हर्निया बाह्य (external) पार्श्व, ग्लानिस्नायु के पास, से या अंदर (internal) पार्श्व ग्लानिस्नायु के अंदर से प्रत्यक्ष और पार्श्वंक हर्निया भी हो सकता है। इनके अतिरिक्त ... के, मस्तिष्क के तथा उरःस्तम्भ के भी हर्निया होते हैं।

हर्निया में निकलनेवाले अंगों के अनुसार भी हर्निया का वर्गीकरण किया गया है।

हर्निया के कारण — १. गुहा की भित्ति की दुर्बलता या त्रुटि। २. जन्म से अंग की आवरणकला के थैले में उपस्थिति। ३. आघात या अभिघात।

प्रवर्तक (promotor) कारणों में खाँसी, कोष्ठबद्धता, प्रसव, पौरुषग्रंथि (prostate gland), मूत्रकृच्छ्रता आदि के कारण उदरगुहा में निरंतर दबाव पड़ना अथवा 'प्रसरण' का स्थान-भ्रंश होना हो सकता है। यह रोग पैतृक भी हो सकता है।

अवस्थाएँ एवं उपद्रव — (क) जिस हर्निया में विस्थापित अंग दबाव आदि से पुनः यथास्थान स्थापित किया जा सकता है वह रिड्यूसिबल (reducible) हर्निया कहलाता है।

(ख) शोथ, संकोच आदि के उपद्रवों के कारण जिस हर्निया में विस्थापित अंग पुनः यथास्थान संस्थापित न किया जा सकता हो वह इर्रिड्यूसिबल हर्निया कहलाता है।

(ग) सशोथ हर्निया।
(घ) अवरुद्ध हर्निया।

में उसके उन्नयन के लिये प्रेरणाएँ दी। यह सूक्ष्म तथा दूरदर्शी थे अत. इनकी रचनाओं में बहुत सी ऐसी बातें आ गई हैं, जो प्रतिफलित होती जाती हैं। परंपरा की काव्यभाषा का सस्कार कर इन्होंने उसे स्वच्छ, सरल, स्निग्ध चलता स्वरूप दिया तथा खड़ीबोली हिंदी को ऐसी नई शैली मे ढाला कि वह उन्नति करती हुई अब देश की राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा हो गई है। इन्होंने साहित्य की धारा को मोड़कर जनता की विचारधारा को उसी में मिला लिया और समयानुकूल साहित्य के अनेक विषयो पर पुस्तकें, कविता, लेख आदि लिखकर उसे सशक्त बनाया। समग्र देश के भिन्न भिन्न प्रातवासियो को एकत्र होकर एक ही मच से भारत की उन्नति के उपायो को सोचने और करने की इन्होने संमति दी और यही राष्ट्रीयता की इनकी प्रथम पुकार थी। इन्होने हिंदी मे पत्रपत्रिकाओं का अभाव देखकर हानि उठाकर भी अनेक पत्रपत्रिकाएँ निकाली और दूसरो को प्रभावित कर निकलवाईं। यह इतने सहृदय तथा मित्रप्रेमी थे कि स्वतः क्रमश इनके चारो ओर समर्थ साहित्यकारो का भारी मंडल घिर आया और सभी ने इनके अनुकरण पर देश तथा मातृभाषा के उन्नयन में यथाशक्ति हाथ बँटाया। भारतेंदु जी कृत दो सौ से अधिक छोटी बड़ी रचनाएँ हैं, जिनमे नाटक, काव्य, पुरातत्व, जीवनचरित्र, इतिहास आदि सभी हैं। ये सामाजिक, धार्मिक, देशभक्ति आदि सभी विषयो पर रची गई हैं। कविवचनसुधा पत्र, हरिश्चंद्र मैगजीन या हरिश्चंद्रचद्रिका तथा स्त्रियोपयोगी बालाबोधिनी इनकी पत्रपत्रिकाएं हैं जिनमें इनके लिखे अनेक लेख निकले हैं।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने इनकी सभी रचनाएँ संगृहीत तथा सपादित कराकर भारतेंदुग्रथावली नामक तीन खंडो में प्रकाशित की है। भारतेंदु जी का देहावसान माघ कृष्ण ६, सं० १९४१ वि०, ६ जनवरी, सन् १८८५ ई० को हुआ था। [ब्र० र० दा०]

(हरिश्चंद्र १) हरिचंद्र (जैन कवि) दिगंबर जैन संप्रदाय के कवि थे। इन्होंने माघ की शैली पर धर्मशर्माभ्युदय नामक इक्कीस सर्गो का महाकाव्य रचा, जिसमें पंद्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित वर्णित है। ये महाकवि बाण द्वारा उद्धृत गद्यकार भट्टार हरिचंद्र से भिन्न थे, क्यो कि ये महाकाव्यकार थे गद्यकार नही। सौभाग्य से इस महाकवि ने अंत में कुछ श्लोको में स्वयं अपना भी परिचय दिया है। हरिचद्र नोमकवंश के कायस्थकुल मे उत्पन्न हुए थे। इनके पिता परमगुणशाली आर्द्रदेव तथा माता रथ्या थी। गुरुकृपा से उनकी वाणी सारस्वते प्रवाह मे स्नात होकर निर्मल हो गई थी — 'अर्हत्पदाम्भोरुहचञ्चरीकस्तयोः सुत. श्रीहरिचंद्र आसीत्। गुरुप्रसादादमला बभूवु सारस्वेत स्रोतसि यस्य वाच।' (धर्मशर्मा०,४) अपने अतिशयस्निग्ध अनुज लक्ष्मण की सहायता से उन्होने शास्त्रपयोधि का, भाई लक्ष्मण की सहायता से राम की भाँति, पार प्राप्त कर लिया था।

सर्गक्रम से धर्मशर्माभ्युदय का कथानक इस प्रकार है — रत्नपुर नगरवर्णन; रत्नपुराधीश इक्ष्वाकुवशीय नरेश महासेन, महारानी सुव्रता, राजा की पुत्र-प्राप्ति चिता तथा दिव्यमुनि प्राचेतस का आगमन; मुनि महीपाल समागम तथा मुनि द्वारा पंद्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का पुत्ररूप मे अवतार लेने का आश्वासन; पुत्ररूप में अवतार लेनेवाले धर्मनाथ का पूर्वजन्म में धातकीखंड द्वीप में वत्सदेश के राजा दशरथ के रूप में वर्णन; राजा महासेन के यहाँ दिव्यागनाओं का महेंद्र की आज्ञा से रानी की सेवा के लिये उपस्थित होना, रानी का स्वप्न तथा गर्भधारण; गर्भ एवं उत्पत्तिवर्णन; शची द्वारा मायाशिशु देकर धर्मनाथ को इंद्र को देना. इंद्र द्वारा उन्हे सुमेरु पर ले जाना; सुमेरु पर धर्मनाथ का इंद्रादि देवों द्वारा अभिषेक एवं स्तुति तथा पुनः उनका महासेन की महिषी की गोद में आना; धर्मनाथ का स्वयंवर के लिये विदर्भदेशगमन; विंध्याचलवर्णन; षड्ऋतु, पुष्पावचय; नर्मदा में जलक्रीडा; सायंकाल, अधकार, चंद्रोदय आदि वर्णन; पानगोष्ठी, रात्रिक्रीड़ा; प्रभातवर्णन एव धर्मनाथ द्वारा कुडिनपुरप्राप्ति; स्वयंवर तथा राजकुमारी द्वारा वरण, विवाह, एवं पुनः कुबेरप्रेषित विमान पर चढकर वधूसमेत रत्नपुर आगमनवर्णन, महासेन द्वारा राज्य धर्मनाथ को सौंपकर वैराग्यप्राप्ति तथा धर्मनाथ की राज्य स्थिति; अनेक नरेशों के साथ धर्मनाथ के सेनापति सुषेण का चित्रयुद्धवर्णन; पाँच लाख वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् धर्मनाथ द्वारा राज्यत्याग, तपस्या, ज्ञानप्राप्ति एवं दिव्य ऐश्वर्य; धर्मनाथ द्वारा संक्षेप में जिन सिद्धांत का निरूपण।

हरिचंद्र ने अपने इस 'धर्मशर्माभ्युदय' काव्य को रसध्वनिमार्ग का सार्थवाह तथा 'कर्णपीयूषरसप्रवाह' कहा है।

यह वस्तुत अत्यंत परिमार्जित शैली में सिद्धहस्त कवि की प्रौढ रचना समझ पडता है। कालिदास का प्रभाव तो कही कहीं अतिस्पष्ट प्रतीत होता है, जैसे रघुवंश के 'तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः सुखै'। ३।२६। इस श्लोक का 'उत्संगमारोप्य तमंगजं नृप.' इस श्लोक पर छठे सर्ग में वर्णित रानी सुव्रता की गर्भावस्था रघुवंश की सुदक्षिणा की सी ही है, आदि।

इस काव्य ने स्वयं पश्चाद्वर्ती महाकाव्यो को प्रभावित किया है। बारहवीं शती में महाकवि श्रीहर्ष द्वारा निर्मित 'नैषधीय चरित' धर्मशर्माभ्युदय से अतिशय प्रभावित जान पडता है।

हरिचंद्र का समय ईसा की ग्यारहवी शताब्दी माना जाता है। [चं० प्र० शु०]

हरिहर मध्ययुग के भारतीय इतिहास मे हरिहर का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जा चुका है। दक्षिण भारत के अतिम हिंदू साम्राज्य विजयनगर राज्य के संस्थापको मे हरिहर अग्रणी थे। प्रारंभिक जीवन में वारंगल के राजा प्रतापरुद्र द्वितीय के कर्मचारी के रूप में हरिहर ने कुछ समय व्यतीत किया। मुसलमानी आक्रमण के कारण कांपिलि चले गए, जहाँ १३२७ ई० मे बंदी बना लिए गए। दिल्ली जाकर ईस्लाम धर्मावलंबी हो जाने पर वे सुलतान के प्रियपात्र बन गए। कुछ समय पश्चात् सुलतान ने इन्हे (छोटे भ्राता बुक्क के साथ) दक्षिण में बगावत दबाने का कार्यभार सौंपा। हरिहर ने सब लोगो के साथ सद्व्यवहार किया परंतु हिंदू संस्कृति की विनाशलीला ने उसके कोमल हृदय को द्रवित कर दिया। शीघ्र ही हिंदू धर्म को पुनः अंगीकार कर हरिहर ने १३३६ ई० में वैदिक रीति से अभिषेक संपन्न कर विजयनगर नामक राज्य की संस्थापना की।

ज्ञान की अपेक्षा प्रेरणा का महत्व अधिक है। हर्बार्ट का शैक्षिक उद्देश्य एकांगी है। इन्होंने शारीरिक तथा स्त्रीशिक्षा की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया। इनकी पारिभाषिक शब्दावली कृत्रिम है। ये सब होते हुए भी हर्बार्ट के शैक्षिक अवदान की अवहेलना नहीं की जा सकती। सर्वप्रथम शिक्षा का वैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत करने का श्रेय इन्हीं को है। इनके द्वारा किए गए प्रत्ययों के कलननिर्माण संबंधी प्रयासों तथा मानसिक मात्रात्मक अध्ययन के आधार पर आधुनिक मनोभौतिकी एवं प्रायोगिक मनोविज्ञान का विकास हुआ। आज भी संसार की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ इनके विचारों से प्रेरणा ले रही हैं।

सं० ग्रं० — [अंग्रेजी] रॉबर्ट आर० रस्क द डॉक्ट्रिन्स ऑव द ग्रेट ऐजुकेटर्स, एफ० पी० ग्रेव्ज ग्रेट एजुकेटर्स ऑव थ्री सेंचुरीज; जी० एफ० स्टाउट : स्टडीज़ इन फिलॉसॉफी ऐंड साइकॉलॉजी; एच० एम० और ई० फ़ेल्किन ' इंट्रोडक्शन टु हर्बार्ट्स साइंस ऐंड प्रैक्टिस ऑव एजुकेशन, पॉलमनरो : ए ब्रीफ कोर्स इन द हिस्टरी ऑव एजुकेशन, एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, खंड ११; एन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना, खंड १४। [हिंदी] एस० के० पाल : महान् पाश्चात्य शिक्षाशास्त्री; सीताराम जायसवाल : आधुनिक शिक्षा का विकास, सीताराम चतुर्वेदी शिक्षा प्रणालियाँ और उनके प्रवर्तक; गुलाबराय पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास। [जं० सिं०]

हर्शेल, सर (फ्रेडरिक) विलियम (Herschel, Sir Frederick William, सन् १७३८–१८२२), ब्रिटिश खगोलज्ञ, बैंड बजानेवाले एक जर्मन के पुत्र थे और आरंभ में नफीरी बजाने के काम पर जर्मन सेना में नियुक्त हुए। सन् १७५७ में ये इंग्लैंड में आ बसे और लीड्स नगर में पहले संगीतशिक्षा देने और तत्पश्चात् ऑर्गन बजाने का काम करने लगे।

खगोलविज्ञान में रुचि जागृत हो जाने पर, इन्होंने अपने अवकाश का सारा समय गणित और खगोलविज्ञान के अध्ययन में लगाना आरंभ किया। दूरदर्शी खरीदने के लिये धनाभाव के कारण, इन्होंने स्वयं पाँच फुट फोकस दूरी के न्यूटनीय परावर्तन दूरदर्शी का निर्माण किया तथा सन् १७७४ में आकाश का व्यवस्थित निरीक्षण आरंभ किया। लगभग सात वर्ष के निरीक्षण के बाद, आकाश में इन्हें एक ऐसी नई वस्तु दिखाई पड़ी, जिसका बिंब चक्रिका रूप का था। अधिक जाँच करने पर सिद्ध हुआ कि यह एक ग्रह था। ऐतिहासिक काल में खोज कर निकाला जानेवाला यह प्रथम ग्रह था, जिसका नाम यूरेनस रखा गया। इस खोज के फलस्वरूप, हर्शेल रॉयल सोसायटी के सदस्य निर्वाचित किए गए, इनको कोपली पदक प्रदान किया गया तथा दो सौ पाउंड की वार्षिक वृत्ति पर वे राजकीय खगोलज्ञ नियुक्त किए गए। तब से संगीत का धंधा छोड़कर, ये अपना सारा समय खगोल विज्ञान के अध्ययन में लगाने लगे।

हर्शेल नाक्षत्रीय खगोलविज्ञान के जनक थे। ये प्रथम खगोलज्ञ थे, जिन्होंने मुख्यत नाक्षत्रीय निकाय का तथा उसके सदस्यों के आपसी संबंधों का अध्ययन आरंभ किया। अध्ययन के परिणामस्वरूप वे इस निश्चय पर पहुँचे कि नाक्षत्रीय निकाय कुम्हार के चक्के सदृश, चिपटित निकाय है और आकाशगंगा इसके विस्तार को प्रदर्शित करती है। तारों के समूहों और नीहारिकाओं पर आपने विशेष ध्यान दिया और इनकी सारणियाँ तैयार कीं। इन्हें विश्वास हो गया कि प्रदीप्त नीहारिकाओं में से कुछ ऐसी हैं जो सुदूर, मंद तारों के समूह नहीं हैं, वरन् तरल, दीप्त पदार्थ से भरी हैं। इन्हें अब गैसीय नीहारिकाएँ कहा जाता है। अन्य नीहारिकाओं को इन्होंने हमारे नक्षत्र निकाय के बाहर का बताया तथा द्वीप विश्वों की संज्ञा दी। इन्हें अब हम आकाशगंगा से बाहर स्थित, सर्पिल नीहारिकाएँ मानते हैं।

हर्शेल ने अनेक युग्म तारों का उल्लेख किया है। बाद में इनमें से कुछ के निरीक्षण से वे यह सिद्ध करने में समर्थ हुए कि वास्तव में इनमें से प्रत्येक तारों का जोड़ा है और इस जोड़े के तारे उभयनिष्ठ गुरुत्वकेंद्र के चतुर्दिक् घूर्णन करते हैं। इन्होंने यूरेनस तथा शनि के दो दो उपग्रहों का, तारों की आपेक्षिक द्युति का तथा इस बात का भी पता लगाया कि सूर्य, हरकुलीज़ नामक तारामंडल में स्थित एक बिंदु की ओर गतिमान है।

हर्शेल की इन अपूर्व सेवाओं के कारण, उन्हें सन् १८१६ में नाइट की उपाधि प्रदान की गई। [भ० दा० व०]

हलद्वानी स्थिति २९° १३' उ० अ० तथा ७९° ३२' पू० दे०। यह नगर भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के नैनीताल जिले में बरेली से नैनीताल जानेवाली सड़क पर स्थित है। इस नगर के समीप के जंगलों में हलदू के वृक्ष मिलते हैं जिसके कारण नगर का नामकरण हुआ है। इस नगर की स्थापना मंडी के रूप में हुई थी। नैनीताल जिले तथा कुमायूँ डिवीजन के सरकारी कार्यालय शीतकाल में यहाँ आ जाते हैं। काठगोदाम सहित नगर की जनसंख्या ३८,०३२ (१९६१) है। [अ० ना० मे०]

हलधरदास का जन्म बिहार राज्य के मुजफ्फरपुर जिलांतर्गत पदमौल नामक ग्राम में सन् १५२५ ई० के आसपास और देहावसान १६२६ ई० के आसपास हुआ। इनकी तीन पुस्तकों का पता चला है—'सुदामाचरित्र', 'श्री मद्‌भागवत भाषा' और 'शिवस्तोत्र'। अंतिम पुस्तक संस्कृत में है। 'सुदामाचरित्र' इनकी सर्वप्रसिद्ध पुस्तक है जिसकी रचना सन् १५६५ ई० में हुई थी। यह सुदामाचरित्र परंपरा के अद्यावधि ज्ञात काव्यों में ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वप्रथम और काव्य की दृष्टि से उत्कृष्टतम है।

शैशव में ही इनके माता पिता की मृत्यु हो गई थी। अपने अग्रज की छत्रछाया में ये पले। शीतला से पीड़ित होकर इन्होंने दोनों आँखें खो दीं। ये फारसी और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे तथा पुराण, शास्त्र और व्याकरण का भी इन्होंने अध्ययन किया था।

समयक्रम से सूरदास के बाद कृष्ण-भक्ति-परंपरा के दूसरे प्रसिद्ध कवि हलधरदास ही हैं। सूरदास और हलधरदास में जीवन और भक्ति को लेकर बहुत कुछ साम्य भी है। दोनों नेत्रहीन हो गए थे और दोनों ने कृष्ण की सख्यभाव से उपासना की। पर

(ङ) स्ट्रैंग्यूलेटेड (Strangulated) हर्निया — इसमें विस्थापित अंग द्वारा सूक्ष्म ऊतकों मे रुधिर परिवहन रुक जाता है।

क, को छोड़कर हर्निया की सब अवस्थाएँ कष्टसाध्य हैं। ख, घ, और ङ अवस्था मे तुरंत शल्यकर्म करना चाहिए।

लक्षण — हर्निया के स्थान पर गोल उभार होना, कुछ उतरने जैसा अनुभव होना, उभार का अंदर दवाकर ठीक किया जा सकना तथा खाँसने पर बढ़ना। आंत्र का हर्निया होने पर उसमें आंत्र कुंजन सुनाई देता है तथा थपथपाने पर अनुनाद सुनाई देता है।

चिकित्सा — (क) हर्निया का पट्टा (Truss) बाँधना तथा (ख) शल्यकर्म — इसमे (१) हर्नियाटामी, (२) हर्नियाराफी तथा हर्नियाप्लेक्पी किया जाता है। स्ट्रैंग्यूलेटेड हर्निया में तो शल्यकर्म का उपचार शीघ्रातिशीघ्र करना चाहिए। देर करने से घातक हो सकता है। सर्वांग आसन से भी इसमे लाभ होता है। [लं० वि० गु०]

हर्बार्ट, जॉहैन (योहान) फ्रीड्रिक (१७७६-१८४१ ई०) जर्मन दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और शिक्षाशास्त्री। ज्ञान से ओतप्रोत वातावरण में पले। पितामह ओल्डनबर्ग की उच्चतम श्रेणी की पाठशाला में प्रधानाचार्य और पिता पारिषद् थे। यूनानी भाषा के ज्ञानार्जन में माता से सहायता मिली। येना विश्वविद्यालय में फिक्टे के शिष्य थे। इंटरलेकन (स्विट्सरलैंड) में राज्यपाल के तीन पुत्रों के उपशिक्षक १७९७ से १७९९ तक रहे। उसी समय इनका पेस्तैं-लॉत्सी से संपर्क हुआ। गॉटिंगैन विश्वविद्यालय में कई वर्षों तक शिक्षा सिद्धांतो पर व्याख्यान दिए। इसी काल में पेस्तैलॉत्सी की शैक्षिक रचनाओं की आलोचना के अतिरिक्त इन्होने एक पुस्तक शिक्षाविज्ञान पर और दूसरी व्यावहारिक दर्शनशास्त्र पर लिखी। १८०९ में इन्हें कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय मे सुप्रसिद्ध दार्शनिक कांट का स्थान मिला। वहीं इन्होने अध्यापकों का प्रशिक्षणालय और बच्चों का विद्यालय भी चलाया और शिक्षा, मनोविज्ञान एवं तत्वज्ञान संबंधी पुस्तकें भी लिखीं। १८३३ में गॉटिंगैन लौटकर दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक का कार्य मृत्यु पर्यंत किया। इसी बीच इनका 'शिक्षासिद्धांतों की रूपरेखा' नामक ग्रंथ (१८३५ में) प्रकाशित हुआ।

हर्बार्ट का दार्शनिक दृष्टिकोण बहुत्ववादी यथार्थवाद था। इनके मतानुसार विश्व असख्य मूल तत्वों से बना है। ये मूल तत्व अथवा 'सत्' काल तथा स्थान के प्रभाव से परे हैं। मानव बुद्धि द्वारा इनकी जानकारी संभव नहीं। ये सत्' पृथक् बिंदुओं पर रहने से असबद्ध और एक बिंदु पर होने से सबद्ध कहलाते हैं। सबद्ध 'सत्' आपस में मिल जाते हैं। जब असबद्ध 'सत्' एक बिंदु पर आते हैं तो परिवर्तन और गुणबाहुल्य की प्रतीति होती है। चेतना के कारण ही विश्व परिवर्तनशील जान पड़ता है। गुण की दृष्टि से मन का दूसरा नाम आत्मा है। तर्कशास्त्र के विशुद्ध औपचारिक पक्ष पर ही हर्बार्ट ने बल दिया।

मनोविज्ञान के क्षेत्र मे हर्बार्ट ने मन की विभिन्न शक्तियों के स्वतंत्र अस्तित्व को अस्वीकार किया और मन की एकरूपता पर बल दिया। इनके मतानुसार तंत्रिकातंत्र द्वारा मन प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण से संपर्क स्थापित करता है और इसी से विचारों की उत्पत्ति होती है। प्रकटीकरण की आंतरिक क्रिया द्वारा विचारों का विकास होता है और सामान्यीकरण द्वारा प्रत्यय बनते हैं। संवेदना एवं प्रत्यक्षीकरण, कल्पना एवं स्मृति, और प्रत्ययात्मक चिंतन तथा निर्णय, ये मन के विकास के तीन स्तर हैं। ज्ञान, संवेदन और इच्छा, मानसिक व्यवहार के तीन मूल पक्ष हैं। हर्बार्ट ने तत्वज्ञान, गणित और अनुभव के आधार पर मनोविज्ञान का स्वरूप निश्चित करने का प्रयास किया।

शिक्षा के सिद्धांतों एवं शिक्षण पद्धति की ओर हर्बार्ट ने विशेष ध्यान दिया। इन्होने नैतिकता को शिक्षा का सार बताया और सद्गुण को शिक्षा का उद्देश्य। आतरिक स्वतंत्रता, पूर्णता, सद्भावना न्याय और साम्य को नैतिकता का आधार माना। इच्छा और अंतरात्मा में द्वंद्व के अभाव को आंतरिक स्वतंत्रता कहा गया है। पूर्णता से प्रभावपूर्ण एवं संतुलित दृढ संकल्प का बोध होता है। सद्भावना में दूसरों की भलाई चाहने का भाव है। न्याय का संकेत पक्षपात के अभाव की ओर है। सुनीति अथवा औचित्य की भावना साम्य के अंतर्गत आती है। अंतरात्मा का स्वरूप विचारो पर निर्भर है। विचारों का स्रोत जड एवं चेतन वातावरण है। प्राकृतिक तथा सामाजिक संसर्ग से प्राप्त अनुभवों द्वारा ही विचारवृत्त निर्मित होता है। विचारवृत्त का विस्तार बहुमुखी रुचि पर निर्भर है। इंद्रियभावी, जिज्ञासाभावी, सौंदर्यभावी, सहानुभूतिमय, सामाजिक तथा धार्मिक, इस रुचि के छह प्रकार हैं। शिक्षाप्रद अनुदेश द्वारा शिक्षक छात्र के मन मे ऐसी रुचि का बीजारोपण कर सकता है। इस प्रकार बच्चों के चरित्रनिर्माण मे शिक्षक का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। इस उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिये सुव्यवस्थित शिक्षणपद्धति आवश्यक है।

हर्बार्ट की शिक्षणप्रणाली मे संप्रत्यक्ष के उस पक्ष पर विशेष बल दिया गया है जिसमें पूर्वज्ञान की सहायता से नवीन ज्ञान का आत्मसात् सरल हो जाता है। आत्मसात् के साथ मननक्रिया भी सबद्ध है। आत्मसात् के दो भेदों, स्पष्टता और संगति, तथा मनन के भी दो भेदो, व्यवस्था और प्रयोग, को लेकर हर्बार्ट की 'चतुष्पदी' निर्मित हुई। उनके अनुयायियों ने स्पष्टता के दो भाग, प्रस्तावना और वस्तूपस्थापन, कर दिए। इस प्रकार 'पंचपदी' या 'पंचसोपान' का प्रचलन हुआ। 'पंचसोपान' का उद्देश्य था पाठ्यसामग्री को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करना ताकि छात्र अपने योग्यतानुसार उसे सुगमता से ग्रहण कर सकें। एकाग्रीकरण द्वारा सभी पाठ्य विषयों को साहित्य और इतिहास जैसे एक या दो व्यापक विषयों से संबद्ध कर देने पर बल दिया गया।

कुछ विद्वानों ने हर्बार्ट के विचारों की कड़ी आलोचना की है। उनका कथन है कि हर्बार्ट ने शिक्षणविधि को औपचारिक और यांत्रिक स्वरूप दे दिया। सभी प्रकार के पाठों को 'पंचसोपान' के ढाँचे मे ढालना संभव नहीं। बालक की स्वाभाविक प्रवृत्तियों की उपेक्षा करके केवल ज्ञानसंचार से ही चरित्रनिर्माण नहीं हो सकता।

अनुमानत संसार में जितनी ऊर्जा की १६५७ ई० में आवश्यकता थी उसका १५ प्रतिशत भाग पवनशक्ति से पूरा किया जाता था। पवनशक्ति की ऊर्जा गतिज ऊर्जा होती है। इसके अतिरिक्त वायु के वेग में बहुत परिवर्तन होता रहता है अत कभी तो वायु की गति अत्यंत मंद होती है और कभी वायु के वेग मे तीव्रता आ जाती है। अत जिस हवा चक्की को वायु के अपेक्षाकृत कम वेग की शक्ति से कार्य के लिये बनाया जाता है वह अधिक वायु वेग की व्यवस्था मे ठीक ढग से कार्य नही करता है। इसी प्रकार तीव्र वेग के वायु को कार्य में परिणत करनेवाली हवाचक्की को वायु के मंद वेग से काम में नहीं लाया जा सकता है। सामान्यत यदि वायु की गति ३२० किमी प्रति घंटा से कम होती है तो इस वायुशक्ति को सुविधापूर्वक हवाचक्की मे कार्य मे परिणत करना अव्यावहारिक होता है। इसी प्रकार यदि वायु की गति ४८ किमी प्रति घटा से अधिक होती है तो इस वायु शक्ति के ऊर्जा को हवाचक्की में कार्य रूप में परिणत करना अत्यत कठिन होता है। परतु वायु की गति सभी ऋतुओ में तथा सभी समय इस सीमा के भीतर नही रहती है इसलिये इसके प्रयोग पर न तो निर्भर रहा जा सकता है और न इसका अधिक प्रचार ही हो सका है। उपर्युक्त कठिनाइयो के होते हुए भी अनेक देशो में पवनशक्ति के व्यावसायिक विकास पर बहुत ध्यान दिया गया है। एक सम तथा ३२ से ४८ किमी घटा वायु की गतिवाले क्षेत्रो मे २००० किलोवाट बिजली का उत्पादन करनेवाली हवाचक्की को सरलता से चलाया जा सकता है जिससे विद्युत् ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है।

हवा की चक्की मे वायु की गति से टरबाइन घूमता है जिससे यांत्रिक अथवा विद्युत् शक्ति प्राप्त होती है। केवल अमरीका मे ही १६५० ई० में ३ लाख हवाचक्की का उपयोग पानी खीचने मे होता था तथा एक लाख हवाचक्की का उपयोग बिजली के उत्पादन में होता था। हालैंड में आज भी इसका उपयोग होता है परंतु धीरे धीरे विद्युत् तथा भाप इजनो के कारण अन्य देशो में इसका प्रचलन बद हो गया है। [अ० सि०]

हवाना स्थिति २३° ०२' उ० अ० तथा ८२° २६' प० दे०। यह क्यूबा गणतंत्र की राजधानी एवं पश्चिमी द्वीपसमूह का सर्वप्रमुख व्यापारिक केंद्र है जो क्यूबा द्वीप के उत्तरी पश्चिमी तट पर स्थित है। यह ससार के अच्छे पोताश्रयो मे से एक है। इस सुरक्षित पोताश्रय तक बडे बडे जहाज चले आते हैं। देश का आयात तथा निर्यात का ¾ भाग इस बदरगाह से होता है। निर्यात की मुख्य वस्तुएँ चीनी, तबाकू, सिगार एवं सिगरेट हैं। खाद्य और वस्त्र का प्रमुख आयात होता है। ससार के प्रत्येक देश के जलयान यहाँ आते हैं। हवाना रेल, सडक, वायु एव जलमार्गो का महत्वपूर्ण केंद्र है। अनेक देशो और द्वीपो को नियमित रूप से जलयान यहा से जाते हैं। यहाँ बाईं ओर प्रकाशगृह तथा दाईं ओर स्पेन प्रवासीय नूना पत्थर द्वारा निर्मित पेजियो द मारटी (Paseo De Marti) या प्रादो (Prado) है। पश्चिमी उपकूल पर मालेकान (Malecon) स्थित है जहाँ अब आधुनिक सरकारी भवनो तथा चौडी सडको का निर्माण किया गया है। मेन पार्क, राष्ट्रपति का प्रासाद, राष्ट्रीय कांग्रेस भवन एवं राष्ट्र का सर्वोच्च न्यायालय दर्शनीय स्थल हैं। पुराने भवनों में ला फ्यूर्जा (La Fuerja) बडा गिरजाघर एव साता क्लेरा (Santa Clara) उल्लेखनीय हैं। साता क्लेरा को सरकार ने १६२८ ई० मे खरीद लिया, अब इसमे सार्वजनिक निर्माण मत्रालय है। हवाना में विश्वविद्यालय, 'सोसियाइटेड इकानामिका' नामक संस्थान एव राष्ट्रीय ग्रंथागार हैं जो पर्यटकों के लिये आकर्षण हैं।

२ प्रदेश का क्षेत्रफल ८२५० वर्ग किमी एव जनसख्या १५,३८८०३ (१६५३) थी। जनसख्या का घनत्व प्रति वर्गमील ४८५ व्यक्ति है। [रा० प्र० सि०]

हसरत मुहानी इनका नाम फजलुल्हसन था पर इनका उपनाम इतना प्रसिद्ध हुआ कि लोग इनका वास्तविक नाम भूल गए। इनका जन्म उन्नाव के एक कस्बा मुहान में सन् १८७५ ई० मे हुआ। आरंभिक शिक्षा घर पर ही हुई और उसके बाद यह अलीगढ गए। अलीगढ के छात्र दो दलो में बँटे हुए थे। एक दल देशभक्त था और दूसरा दल स्वार्थभक्त। हसरत प्रथम दल में समिलित होकर उसकी प्रथम पंक्ति में आ गए। यह तीन बार कालेज से निर्वासित हुए पर अत में सन् १६०३ ई० मे बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए। इसके अनतर इन्होंने एक पत्रिका 'उर्दुएमुअल्ला' निकाली और नियमित रूप से स्वतत्रता के आदोलन में भाग लेने लगे। यह कई बार जेल गए तथा देश के लिये बहुत कुछ बलिदान किया। इन्होने एक खद्दर भडार भी खोला जो खूब चला।

हसरत मुहानी लखनऊ के प्रसिद्ध शायर 'तस्लीम' के शिष्य थे और मोमिन तथा नसीम लखनवी को बहुत मानते थे। हसरत ने उर्दू गजल को एक नितात नए तथा उन्नतिशील मार्ग पर मोड दिया है। आज उर्दू कविता मे स्त्रियो के प्रति जो शुद्ध और लाभप्रद दृष्टिकोण दिखलाई देता है, प्रेयसी जो सहयात्री तथा मित्र रूप में दिखाई पडती है तथा समय से टक्कर लेती हुई अपने प्रेमी के साथ सहवेदना तथा मित्रता दिखलाती ज्ञात होती है, वह बहुत कुछ हसरत ही की देन है। हसरत ने गजलों ही में शासन, समाज तथा इतिहास की बातों का ऐसे सुदर ढग से उपयोग किया है कि उसका प्राचीन रग अपने स्थान पर पूरी तरह बना हुआ है। हसरत की गजलें अपनी पूरी सजावट तथा सौंदर्य को बनाए रखते हुए भी ऐसा माध्यम बन गई हैं कि जीवन की सभी बातें उनमें बडी सुदरता से व्यक्त की जा सकती हैं। उन्हें सहज में उन्नतशील गजलो का प्रवर्तक कहा जा सकता है।

हसरत ने अपना सारा जीवन कविता करने तथा स्वतत्रता के सघर्ष में प्रयत्न करने एव कष्ट उठाने में व्यतीत किया। साहित्य तथा राजनीति का सुदर समिलन कराना कितना कठिन है, ऐसा जब विचार उठता है तब स्वत' हसरत की कविता पर दृष्टि जाती है। हसरत की मृत्यु १३ मई, सन् १६५१ ई० को कानपुर मे हुई। इनकी कविता का सग्रह 'कुलियाते हसरत' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। [र० ज०]

दोनों में एक बड़ा अंतर भी है। सूर के कृष्ण प्रधानत लीलाशाली हैं जब कि हलधर के कृष्ण ऐश्वर्यशाली। फिर, सूर एवं अन्य कृष्णभक्त कवियों की प्रतिभा मुक्तक के क्षेत्र में विकसित हुई थी, किंतु हलधर भी काव्यप्रतिभा का मानदंड प्रबंध है। 'सुदामाचरित्र' एक उत्तम खंडकाव्य है। इस तरह हलधरदास कृष्णभक्त कवियों में एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।

सं० ग्रं० — सियाराम तिवारी : हिंदी के मध्यकालीन खंडकाव्य (दिल्ली); शिवपूजन सहाय : हिंदी साहित्य और बिहार, (पटना); गार्सां द तासी : 'इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ऐं ऐंदुस्तानी, मौंटगोमरी मार्टिन . 'ईस्टर्न इंडिया, जिल्द १ (लंदन) आदि। [सि० ति०]

हलाकू यह एक मंगोल शासक था। हलाकू खाँ की मगोल सेना मुल्तान के शासक किशलू खाँ की राज्यसीमा पर हावी थी। किशलू खाँ ने अपने राज्य के रक्षार्थ बगदाद स्थित हलाकू खाँ से वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिया था और उसके दरबार में अपना एक पौत्र भी भेज दिया था। इस प्रकार किशलू मगोलों से सुरक्षित होकर उनकी सहायता से दिल्ली सुल्तान पर आक्रमण करना चाहता था किंतु हलाकू इसपर सहमत नहीं हुआ।

सन् १२५८ के अंत में हलाकू ने एक प्रतिनिधिमंडल दिल्ली के सुल्तान के दरबार में भेजा। मंडल का स्वागत करने में सल्तनत के ऐश्वर्य तथा साजसज्जा का ऐसा प्रदर्शन किया गया कि हलाकू के प्रतिनिधि प्रभावित हुए बिना न रह सके। जब हलाकू को दिल्ली सुल्तान की लोकप्रियता तथा समृद्धि का स्तर ज्ञात हुआ तब उसने मंगोल सेना को आदेश भिजवाया कि दिल्ली राज्य की सीमाओं का उल्लंघन न किया जाय। [मि० चं० पा०]

हल्दी (Turmeric) एक बहुवर्षीय पादप की जड़ से प्राप्त होती है। यह पौधा ज़िंजीबिरेसी (Zingiberacea) कुल का करकुमाडोमेस्टिका या करकुमा लौंगा (Curcuma domestica or curcuma longa) है। यह पौधा दक्षिणी एशिया का देशज है। भारत के हर प्रदेश में यह उगाई जाती है। उत्तर प्रदेश की निचली पहाड़ियों तथा तराई के भागों में विशेष रूप से इसकी खेती होती है। जड चीमड और कड़ी होती है। इसके ऊपरी भाग का रंग पीलापन या भूरापन लिए हरा होता है। इसके तोड़ने से अंदर के रेज़िन सदृश भाग का रंग नारंगी भूरे से गहरे लाल भूरे रंग का दीख पड़ता है। जड़ों को साफ कर कुछ घंटे जल में उबालते हैं तब इसे चूल्हे पर सुखाते हैं। इसके पीसने से पीला चूर्ण प्राप्त होता है जिसमें विशिष्ट सुवास और प्रबल तीखा स्वाद होता है। इसका उपयोग वस्त्रों के रँगने और मसाले के रूप में आज भी व्यापक रूप से होता है। भारत में सब शाक सब्जियों और दालों में हल्दी आवश्यक रूप से मसाले के रूप में प्रयुक्त होती है। एक समय इसका व्यवहार ओषधियों में बहुत होता था। आज भी धातु के साथ मिलाकर ठंढक के लिये चमड़े और आँखों पर लगाते हैं। चूने के साथ मिलाकर दर्द दूर करने के लिये चोटों पर चढ़ाते हैं। रसायनशाला में इससे रँगा हुआ सूखा कागज क्षारों के पहचानने में काम आता है। इसका पीला रंग कच्चा होता है जो धूप से जल्द उड़ जाता है। हल्दी का रंजक पदार्थ करक्यूमिन, $C_{21}H_{20}O_6$ है जिसकी मात्रा हल्दी में लगभग ०·३ प्रतिशत रहती है।

इसको उपजाने के लिये भली भाँति तैयार की हुई तथा अच्छे पानी के निकासवाली हल्की पर उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है जिसमें आलू के समान मेड़ें बनाई जाती हैं और जिनपर प्रकंद के छोटे छोटे टुकड़े अप्रैल मई में लगाए जाते हैं। मेड से मेड की दूरी डेढ़ इंच तथा पौधे से पौधे की दूरी लगभग ९ इंच न एक फुट तक रहती है। जब पौधे लगभग ९ इंच की ऊँचाई के हो जाते हैं तब मिट्टी चढ़ाई जाती है। नवंबर मास में फसल तैयार हो जाती है तब खेतों से खोदकर निकाल ली जाती है।

[वाइ० आर० मे०]

हल्लीशक इस नृत्यशैली का एकमात्र विस्तृत वर्णन महाभारत के खिल भाग हरिवंश (विष्णु पर्व, अध्याय २०) में मिलता है। विद्वानों ने इसे रास का पूर्वज माना है साथ ही रासक्रीडा का पर्याय भी। आचार्य नीलकंठ ने टीका करते हुए लिखा है — हल्लीश क्रीडनं एकस्य पुंसो बहुभि स्त्रीभिः क्रीडनं सैव रासक्रीड़ा। (हरि० २।२०।३६) यह नृत्य स्त्रियों का है जिसमें एक ही पुरुष श्रीकृष्ण होता है। यह दो दो गोपिकाओं द्वारा मंडलाकार बना तथा श्रीकृष्ण को मध्य में रख संपादित किया जाता है। हरिवंश के अनुसार श्रीकृष्ण वंशी, अर्जुन मृदंग, तथा अन्य अप्सराएँ अनेक प्रकार के वाद्ययंत्र बजाते हैं। इसमें अभिनय के लिये रंभा, हेमा, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा, मेनका आदि अप्सराएँ प्रस्तुत होती हैं। सामूहिक नृत्य, सहगान आदि से मंडित यह कोमल नृत्य श्रीकृष्णलीलाओं के गान से पूर्णता पाता है। इसका वर्णन अन्य किसी पुराण में नहीं आता। भासकृत बालचरित् में हल्लीश का उल्लेख है। अन्यत्र संकेत नहीं मिलता।

[रा० ना०]

हवाचक्की (Wind mill) तथा पवनशक्ति (Wind power) पवनशक्ति एक सदिश राशि है। पवनशक्ति का मापन अश्वशक्ति की ईकाई में किया जाता है। जिस भौगोलिक दिशा से हवा बहती है उसे वायु की दिशा कहा जाता है। वायु के वेग को सामान्यत वायु की गति कहा जाता है।

धरती की सतह पर वायु का प्रत्यक्ष प्रभाव भूमिक्षरण, वनस्पति की विशेषता, विभिन्न संरचनाओं में क्षति तथा जल के स्तर पर तरंग उत्पादन के रूप में परिलक्षित होता है। पृथ्वी के उच्च स्तरों पर हवाई यातायात, रॅकेट तथा अनेक अन्य कारकों पर वायु का प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न होता है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में वायु की गति से बादल का निर्माण एवं परिवहन, वर्षा और ताप इत्यादि पर स्पष्ट प्रभाव उत्पन्न होता है। वायु के वेग से प्राप्त बल को पवनशक्ति कहा जाता है तथा इस शक्ति का प्रयोग यांत्रिक शक्ति के रूप में किया जाता है। संसार के अनेक भागों में पवनशक्ति का प्रयोग बिजली उत्पादन में, आटे की चक्की चलाने में, पानी खींचने में तथा अनेक अन्य उद्योगों में होता है।

नहीं होती है। किंतु ऐसी परिस्थिति में हस्तलेख विशेषज्ञ की राय भारत साक्ष्य अधिनियम की धारा ४५ के अधीन ग्राह्य होती है और उसका विशेष महत्व भी होता है। उक्त धारा ४५ के अधीन
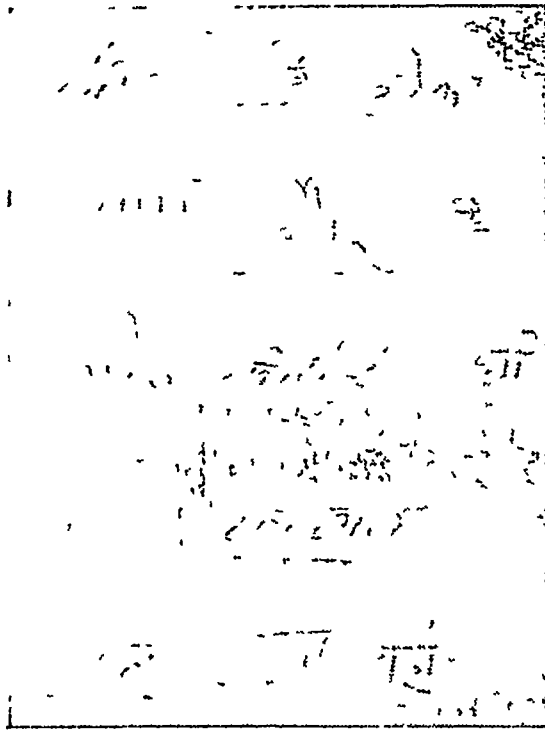
चित्र सं० ३—प्रत्यक्ष विशेषताएँ

'म' तथा 'द' के आकार, शब्द 'और' में मात्राओं का आकार, शब्द 'रामलाल' में 'ल' का आकार।

उन व्यक्तियों की राय भी ली जा सकती है जो उस व्यक्ति के लेख से सुपरिचित हो और उसे पहचानने में अपने को समर्थ कहें।

इतिहास — हस्तलेख विशेषज्ञ पहले भी होते थे, विशेषतया विदेशों में। वे प्राय: अक्षरों की बनावट को देखकर अपनी राय दिया करते थे, जिसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता था और त्रुटि का पर्याप्त अवसर रहता था। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एम्स, हेगन, आसबर्न आदि विद्वानों ने हस्तलेख पहचानने की कला को परिमित करके उसे विज्ञान के स्तर पर पहुँचाया। भारत में इस विज्ञान के प्रथम विशेषज्ञ श्री चार्ल्स आर० हार्डलेस थे, जो सन् १८८४ में कलकत्ते के तारघर में लिपिक थे। उनकी हस्तलेख-विज्ञान में दक्षता को देखकर सन् १९०० ई० में उनको बंगाल सरकार ने अपना हस्तलेख विशेषज्ञ नियुक्त किया था। आजकल भारत में विभिन्न सरकारों के अपने अपने कार्यालय हैं, जिनमें सुशिक्षित विशेषज्ञ रहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे विशेषज्ञ भी हैं जो राय देने का काम निजी तौर पर करते हैं।

हस्तलेखानुमिति — हस्तलेखविज्ञान के साथ साथ एक और कला भी विकसित हो रही है जिसे अंग्रेजी में ग्रेफॉलॉजी कहते हैं और हिंदी में 'हस्तलेखानुमिति' कह सकते हैं। इसके अनुसार किसी व्यक्ति के लेख को देखकर उसके स्वभाव आदि का ही नहीं अपितु उसके भविष्य का भी अनुमान किया जा सकता है। यह भी कहा जाता है कि जिस व्यक्ति का लेख दाहिनी ओर झुका होता है वह भावुक होता है और जिसका बाईं ओर झुका होता है वह बुद्धि के नियंत्रण में चलनेवाला होता है। लिखने में जिसकी पंक्ति ऊपर को चढ़ती चली जाती है वह आशावादी होता है और जिसकी पंक्ति नीचे की ओर उतरती चली जाती है वह निराशावादी होता है। यद्यपि इस प्रकार के अनुमान बहुधा सत्य निकलते हैं तथापि इनका
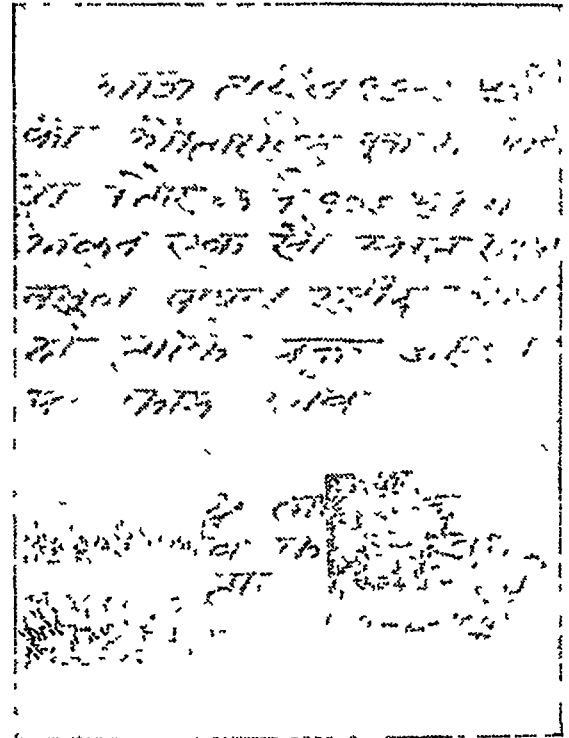
चित्र सं० ४—अप्रत्यक्ष विशेषताएँ

'त' के गोले का डंडे से अधिक नीचे की ओर मिलना, 'ओ' की मात्राओं का समानांतर न होना, 'ह' के नीचे के छोर का बाईं ओर घूमना, तथा 'र' और 'स' में 'र' के नीचे की छोर का ऊपर की ओर घुमाव।

कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता और हम यही कह सकते हैं कि यह कला अभी तक विज्ञान का स्तर प्राप्त नहीं कर पाई है।

सं० ग्रं० — ए आसबर्न : क्वेश्चंड डाक्यूमेंट्स, एफ ब्रयूसटर : कंटेस्टेड डाक्यूमेंट्स ऐंड फोजरीज, डोरीथी सारा : रीडिंग हैंडराइटिंग फार फन ऐंड पाप्युलैरिटी [मि० गु०]

हांगकांग (Hong Kong) चीन के दक्षिणी तट पर सिकियांग नदी के मुहाने पर स्थित एक द्वीप है, जिसकी लंबाई १६ किमी और चौड़ाई ३ से ८ किमी है। स्वयं हांगकांग का क्षेत्रफल लगभग ८२ वर्ग किमी है पर इसमें काउलून प्रायद्वीप (Kowloon

हस्तलेखविज्ञान के अंतर्गत हस्तलेख का वैज्ञानिक परीक्षण आता है, जिसका मुख्य उद्देश्य यह निश्चित करना होता है कि कोई लेख-व्यक्तिविशेष का लिखा हुआ है या नहीं।

हस्तलेख की पहचान — लेखनकला अर्जित संपत्ति है, जिसे मनुष्य अभ्यास से प्राप्त करता है। लेखक की मनोवृत्ति तथा उसकी मासपेशियों के सहयोग के अनुसार उसके लेख में विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन विशेषताओं के कारण प्रत्येक व्यक्ति का लेख अन्य व्यक्ति के लेख से भिन्न होता है। जिस प्रकार हम किसी मनुष्य की पहचान उसके सामान्य तथा विशिष्ट लक्षणो को देखकर कर सकते हैं उसी प्रकार किसी लेख के सामान्य तथा विशिष्ट लक्षणो की तुलना
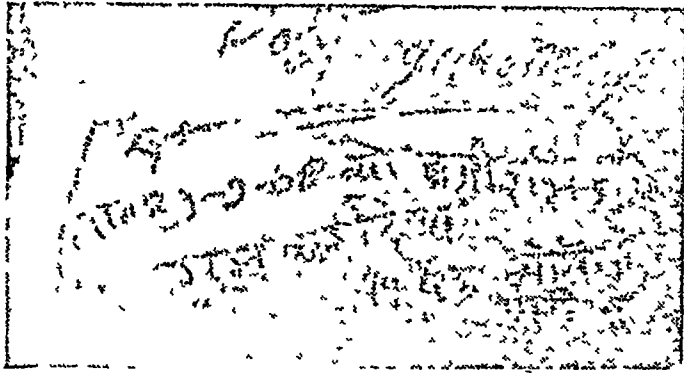
चित्र सं० १ कत्ल के अभियुक्त की नोटबुक का एक पन्ना।
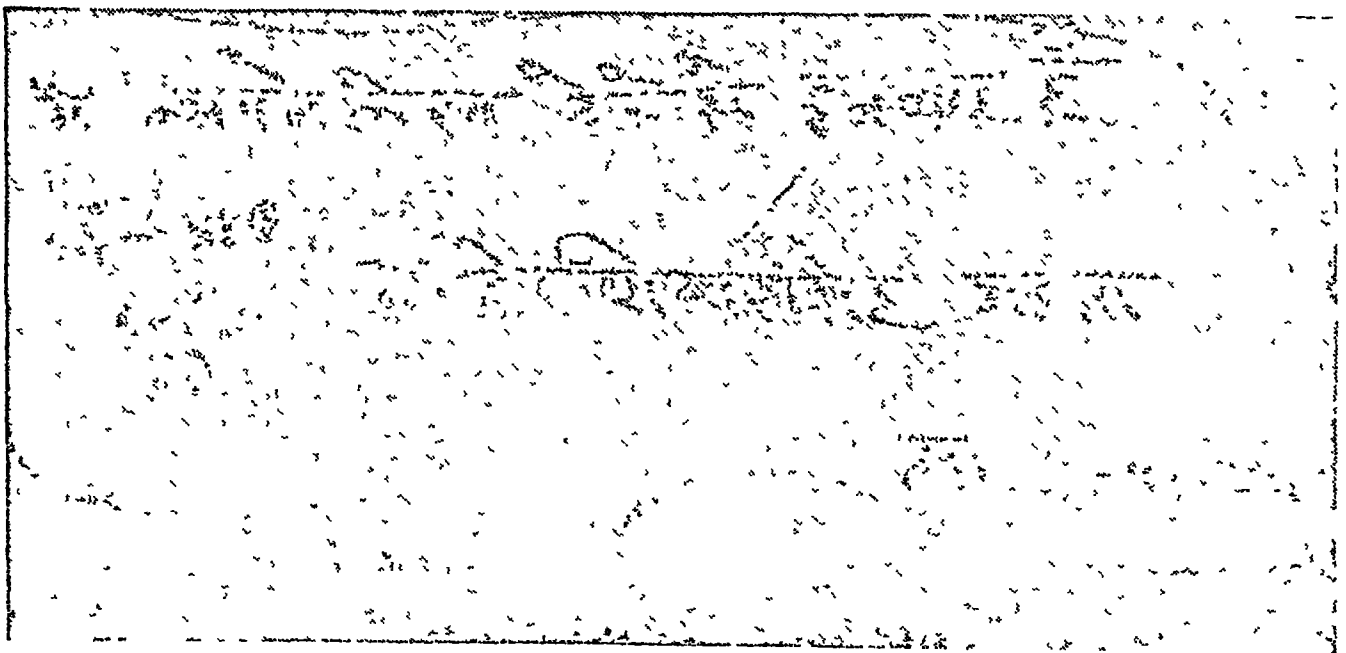
चित्र सं० २ — वह लेख जो अभियुक्त ने न्यायालय में नमूने का लेख देने से इन्कार करते हुए लिखा। दोनो लेखो में समानताएँ देखें; जैसे अक्षर 'अ', 'ह', 'सि', 'श' आदि में।

करके हम उसे पहचान सकते हैं। मनुष्य के रग, रूप, कद आदि उसके सामान्य लक्षण हैं तथा मस्सा, तिल, चोट के निशान, आदि विशिष्ट लक्षण है। इसी प्रकार लेख की गति, उसके प्रवाह की अबाधता, उसका झुकाव, कौशल तथा हाशिया, पंक्तियो की सिधाई आदि उसके सामान्य लक्षण हैं और अक्षरो के विभिन्न आकार विशिष्ट लक्षण हैं। दो लेखो के इन्ही दो प्रकार के लक्षणो का मिलान करके विशेषज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि उनका लिखनेवाला एक ही व्यक्ति है या नही।

विशिष्ट लक्षण, जिनको हम व्यक्तिगत विशेषताएँ भी कह सकते हैं, दो प्रकार के होते हैं — प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष विशेषताएँ उन प्रकट विशेषताओ को कहते हैं जो सामान्य लेखनप्रणाली से विशिष्ट रूप से भिन्न हो, जैसे कुछ लोग अक्षरविशेष को सामान्य आकार का न बनाकर किसी विशिष्ट आकार का बनाते हैं।

'अप्रत्यक्ष विशेषता' व्यक्तिविशेष के लेख मे पुन पुन· मिलनेवाली उस विशेषता को कहेंगे जिसकी ओर सामान्यतया ध्यान नही जाता है (देखिए चित्र स० ४)। क्योंकि इनकी ओर प्राय: न उस लेखक का ध्यान होता है जो अपने लेख को छिपाने के लिये बिगाड़कर लिखता है, न उस जालसाज का ध्यान होता है जो दूसरे के लेख की नकल करना चाहता है, अतः लेख के पहचानने मे इनका विशेष महत्व हो जाता है।

हस्तलेखविज्ञान के अतर्गत लेखन सामग्री तथा प्रक्षिप्त, अर्थात् बाद मे बढाए गए, लेखो का परीक्षण भी आता है, क्योंकि इनसे भी लेख सबंधी प्रश्नो को हल करने में सहायता मिलती है।

विधि में स्थान — आजकल न्यायालय में यह विवाद बहुधा उठा करते हैं कि अमुक लेख किस व्यक्ति का लिखा हुआ है। ऐसी तथा अन्य तत्सदृश परिस्थितियो में हस्तलेख विशेषज्ञ की विशेष आवश्यकता होती है। सामान्यत. न्यायालय में किसी अन्य व्यक्ति की राय ग्राह्य

है जहाँ एक ही दिन और एक ही समय पर दर्जनों वक्ता विभिन्न श्रोतासमूहों के बीच खड़े होकर विविध विषयों पर भाषण करते रहते हैं। महारानी विक्टोरिया के ही शासनकाल में सन् १८५१ में यहाँ एक विशाल अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था जो ११४ दिन तक रही तथा जिसे ६२ लाख से अधिक दर्शकों ने देखा।

प्रथम तथा द्वितीय महायुद्धों के काल में इस पार्क का उपयोग नए रंगरूटों को क्वायद सिखाने के लिये किया गया था। उस समय जो लोग यहाँ कवायद सीखने के लिये आए थे, वे ही लोग युद्ध समाप्त होने के बाद शांतिकाल में एक बार फिर यहाँ एकत्र हुए थे। उनका स्वागत करने के लिये तत्कालीन सम्राट्, राजपरिवार के सदस्य तथा जनसाधारण का विशाल समूह यहाँ एकत्र हुआ था। हाइड पार्क को इतना अधिक महत्व वस्तुतः इसकी विशालता के कारण ही मिला है। पार्क के साथ एक विशाल उद्यान भी लगा हुआ है जिसे मिलाकर इसका क्षेत्रफल करीब ६०० एकड़ हो जाता है। यहाँ एक ओर तो शांति का पूर्ण साम्राज्य सा छाया रहता है और दूसरी ओर मनोरंजन के ऐसे विविध साधन भी उपलब्ध हैं जो मानसिक थकावट को दूर कर अवकाश का समय व्यतीत करने में सहायता करते हैं। घुड़सवारों के लिये राटन रो नामक स्थान, फूलों के प्रेमियों के लिये एक ही स्थान पर विविध प्रकार के फूलों का संग्रह, संगीतप्रेमियों के लिये कासर्ट का आयोजन, तैरने के शौकीनों के लिये सर्पेटाइन झील, नौकाविहार के लिए किराए पर उपलब्ध नावें, आदि प्रत्येक प्रकार के मनोरंजन की सामग्री यहाँ उपलब्ध है। दिन में यह लंदनवासियों तथा विदेशी पर्यटकों के लिये घूमने एवं छुट्टी का दिन व्यतीत करने का स्थान माना जाता है तो शाम होते ही यह 'विलासकेंद्र' बन जाता है। १४-१५ वर्ष की लड़कियों से लेकर प्रौढ़ महिलाएँ तक यहाँ अपने शिकार की तलाश में अवसर घूमती रहती हैं। १९५९ से लंदन के समाचारपत्रों ने इस कलंक के विरुद्ध सामूहिक रूप से आवाज उठाई। शायद तब से अवांछित कार्यों की रोकथाम के लिये पार्क के अंदर ही एक पुलिस स्टेशन बना दिया गया। लंदन की वर्ष प्रति वर्ष बढ़ती जा रही यातायात समस्या का समाधान हाइड पार्क के नीचे दो भूगर्भ मार्ग बनाकर किया गया है। हाइड पार्क कार्नर से प्रति दिन औसत एक लाख ३० हजार गाड़ियाँ आती जाती हैं। पार्क के ही नीचे ३६ एकड़ भूमि में एक अंडरग्राउंड कार पार्क भी बनाया गया है, जहाँ ११०० कारें एक साथ रखी जा सकती हैं। [म० रा० जै०]

हाइड्राइड (Hydrides) हाइड्रोजन जब अन्य तत्वों, धातुओं, उपधातुओं और अधातुओं, से संयोग कर द्विअंगी (binary) यौगिक बनाता है तब उन्हें 'हाइड्राइड' कहते हैं। कुछ ऐसे भी हाइड्राइड प्राप्त हुए हैं जिनमें एक से अधिक धातुएँ विद्यमान हैं। हाइड्राइडों का महत्व इस बात में है कि इनमें हाइड्रोजन की मात्रा सर्वाधिक रहती है और उनसे शुद्ध हाइड्रोजन प्राप्त किया जा सकता है। ये अपचायक और अच्छे जलशोषक होते हैं। इनकी सहायता से धातुओं का उत्कृष्ट निक्षेप भी प्राप्त हो सकता है। कुछ संघननकारक के रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं।

हाइड्राइड चार वर्गों में विभक्त किए गए हैं १ लवण किस्म के हाइड्राइड (Salt like hydride), २. धातु किस्म के हाइड्राइड (Metal type hydride), ३ द्विलक या बहुलक (Dimer or polymer) हाइड्राइड और ४. सहसंयोजक (Covalent) हाइड्राइड।

लवण किस्म के हाइड्राइडों को क्रिस्टलीय हाइड्राइड भी कहते हैं। ये क्षार धातुओं और क्षारीय मृत्तिका धातुओं के हाइड्राइड होते हैं। लिथियम हाइड्राइड ($Li H$), सोडियम हाइड्राइड ($Na H$), कैल्सियम हाइड्राइड ($Ca H_2$), लिथियम एलुमिनियम हाइड्राइड ($Li Al H_3$) आदि, इसके उदाहरण हैं। ये वर्णहीन, क्रिस्टलीय, विद्युत् कुचालक, अवाष्पशील और अक्रिय विलायकों में अविलेय होते हैं। जल की क्रिया से ये जो हाइड्रोजन मुक्त करते हैं उसका आधा हाइड्रोजन हाइड्राइड से और आधा हाइड्रोजन जल से आता है। अत हाइड्रोजन की प्राप्त मात्रा हाइड्राइड में उपस्थित हाइड्रोजन की मात्रा से दुगुनी होती है। धातुओं और हाइड्रोजन के सीधे संयोग से विभिन्न तापों पर तप्त करने से हाइड्राइड बनते हैं। ये बड़े सक्रिय होते हैं और जल, ऐल्कोहॉल, कार्बन डाइआक्साइड, सल्फर डायक्साइड, नाइट्रोजन आदि से क्रिया देकर विभिन्न उत्पाद बनाते हैं और हाईड्रोजन मुक्त करते हैं। नाइट्रोजन की क्रिया से ये धातुओं के नाइट्राइड बनते हैं।

धातु किस्म के हाइड्राइडों को अंतरालीय (interstitial) हाइड्राइड भी कहते हैं। टाइटेनियम हाइड्राइड ($Ti H_2$), जारकोनियम हाइड्राइड ($Zr H_2$) और युरेनियम हाइड्राइड ($U H_3$) इनके उदाहरण हैं। ये कठोर भंगुर, धात्विक चमकवाले और विद्युत् चालक होते है। जल पर इनकी कोई क्रिया नहीं होती और निष्क्रिय विलायकों में अविलेय होते हैं।

द्विलक और बहुलक हाइड्राइड साधारणतया अधातुओं के हाइड्राइड होते हैं। ये वाष्पशील हाइड्राइड के अंतर्गत भी आते हैं, जैसे डाइबोरेन ($B_2 H_6$), डेकाबोरेन ($B_4 H_{10}$), ऐलुमिनियम हाइड्राइड ($Al H_3$)n। ये गैसीय, द्रव या ठोस हो सकते हैं। ये विद्युत् के अचालक होते हैं। जल की इनपर क्रिया होती है और उससे हाइड्रोजन निकलता है। इनके तैयार करने की कोई सामान्य विधि नहीं है। लिथियम ऐलुमिनियम हाइड्राइड पर बोरोनक्लोराइड की क्रिया से डाइबोरेन प्राप्त होता है। बोरोन क्लोराइड या बोरोन ब्रोमाइड पर हाइड्रोजन के विद्युत् विसर्जन द्वारा संयोजन से भी यह प्राप्त हो सकता है।

सहसंयोजक हाइड्राइड — इन हाइड्राइडों में बंध सामान्य सहसंयोजक बंध होते हैं जिनमें बंध का इलेक्ट्रॉन धातु या अधातु और हाइड्रोजन के बीच न्यूनाधिक समान रूप से बँटा रहता है। ये हाइड्राइड भी गैसीय या शीघ्रवाष्पशील द्रव तथा विद्युत् के अचालक होते हैं। जल की क्रिया से या गरम करने से ये सरलता से विघटित हो जाते हैं और हाइड्रोजन मुक्त करते हैं। सिलिकन हाइड्राइड ($Si H_4$), आर्सीन ($As H_3$), जर्मेन ($Ge H_4$) इत्यादि इनके उदाहरण हैं।

हाइड्राइडों का वियोजन — लवण और धातु किस्म के हाइड्राइड

Peninsula) और न्यू टेरिटोरीज (New Territories) भी मिला हुआ है। यह ब्रिटिश उपनिवेश है। १८४२ ई० में हांगकांग अंग्रेजों के अधिकार में आया, १८६० ई० में काउलून खरीदकर इसमें जोड़ दिया गया और १८६८ ई० में न्यू टेरिटोरीज ६६ वर्ष के पट्टे पर मिला। हांगकांग की राजधानी विक्टोरिया है जो द्वीप के उत्तरी तट पर स्थित है।

हांगकांग की भूमि पहाड़ी है। विक्टोरिया शिखर (१८२३ फुट) सबसे ऊंचा शिखर है। हांगकांग की लगभग २० प्रतिशत भूमि में ही खेती होती है। काउलून कैंटन और मध्य चीन से रेलों द्वारा संबद्ध है और यहीं हांगकांग का हवाई अड्डा स्थित है। हांगकांग का बंदरगाह मुक्त है। वस्तुओं पर कोई आयात या निर्यात कर नहीं लगता। यहाँ के अधिकांश निवासी चीनी हैं, शेष में अंग्रेज, अमरीकन तथा भारतीय हैं। हांगकांग की आबादी २० लाख से ऊपर है।

जलवायु — यहाँ की जलवायु उपोष्ण कटिबंधीय है। जुलाई का औसत ताप २७.५° सें० और फरवरी का १५° सें० रहता है। वार्षिक वर्षा लगभग ८५ इंच होती है। जाड़े का मानसून उत्तर पूर्व से और गरमी का मानसून दक्षिण पश्चिम से आता है।

शिक्षा — यहाँ शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य नहीं है पर विद्यालयों का शुल्क बहुत अल्प है। अतः अधिकांश बालक (लगभग ७० प्रतिशत तक) विद्यालयों में पढ़ते हैं। शिक्षा का माध्यम कैंटोनी भाषा है पर उच्चतर विद्यालयों में अंग्रेजी का ही बोलबाला है। यहाँ १९११ ई० में हांगकांग विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी जहाँ अनेक आवश्यक विषयों की शिक्षा दी जाती है।

उद्योग धंधे — यहाँ अनेक पदार्थों का उत्पादन होता है, जैसे वस्त्र, रबर के जूते और बूट, इनेमल सामान, प्लास्टिक, वैक्युअम फ्लास्क, टार्च, खाद्यसामग्री, चीनी का परिष्कार, सीमेंट निर्माण जहाज निर्माण और जहाज मरम्मत। लोहे के कुछ सामान भी यहाँ बनते हैं। कृषि और मछली पकड़ना जीविका के अन्य साधन हैं। हैं। यहाँ अनेक खनिज पाए गए हैं पर उनका उपयोग अभी बहुत कम हो रहा है। व्यापार बहुत उन्नत है और अधिकांश लोगों की जीविका इसी से चलती है। [रा० स० ख०]

हाइगेंज, क्रिश्चियन (Huygens, Christian, सन् १६२९-१६९५) हालैंड के सुविख्यात गणितज्ञ, खगोलज्ञ तथा भौतिकी के विद्वान्। आपका जन्म हेग में अप्रैल १४, सन् १६२९ को हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा आपको अपने योग्य पिता से मिली, तदुपरांत आपने लाइडेन में शिक्षा पाई।

अनुसंधान कार्य — सन् १६५५ में दूरदीन की निरीक्षण क्षमता बढ़ाने के प्रयत्न में आपने लेंस निर्माण की नई विधि का आविष्कार किया। अपने बनाए हुए लेंस से उत्तम किस्म की दूरबीन तैयार करके आपने शनि के एक नए उपग्रह की खोज की। लोलक (pendulum) के दोलन के लिये आपने सही सूत्र प्राप्त किया और इस प्रकार दीवार घड़ी में समय निरूपण के लिये आपने पहली बार लोलक का उपयोग किया। वृत्ताकार गति में उत्पन्न होनेवाले अपकेंद्र बल की भी आपने विशद व्याख्या की, जिसके आधार पर न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के नियमों का सफलतापूर्वक प्रतिपादन किया। सन् १६६३ में आप लंदन की रायल सोसायटी के सदस्य चुने गए।

हाइगेंज का नाम प्रकाश के तरंगवाद (Wave Theory) के साथ विशेषरूप से संलग्न है। यद्यपि १६६५ में हुक ने इस सिद्धांत को सबसे पहले अपनाया था तथापि हाइगेंज ने ही इस सिद्धांत का विशेष रूप से प्रतिपादन किया तथा अपने द्वैतीयिक (secondery) तरंग के सिद्धांत द्वारा प्रकाश के परावर्तन तथा अन्य गुणों को प्राप्त किया। इस सिद्धांत की मदद से आपने क्वार्ट्ज तथा अभ्रक के रवों में दुहरे वर्तन (double refraction) से प्राप्त होनेवाली असाधारण (extraordinary) किरण की पथदिशा को निर्धारित किया। [भ० प्र० श्री०]

हाइड पार्क लंदन का सबसे बड़ा पार्क। वर्तमान में करीब ३६० एकड़वाला यह पार्क ग्यारहवीं सदी में ऊबड़ खाबड़ जमीन के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। घने वृक्षों के इस जंगल में उस समय जंगली मवेशी और सूअर चरा करते थे।

प्लैंटेजिनेट युग में तत्कालीन शासकों ने इस स्थान की सफाई करवाकर यहाँ शाही परिवार के सदस्यों के लिये शिकार स्थल बनवाया। १५३६ में तत्कालीन शासक हेनरी अष्टम ने इसके चारों ओर कँटीदार तार की सरहद बनवाकर यहाँ जनसाधारण का प्रवेश वर्जित कर दिया। चार्ल्स प्रथम के समय में यह स्थान जनसाधारण के प्रवेश के लिये खोल दिया गया और उसी समय से इसका उपयोग घुड़सवारी सीखने के लिये भी किया जाने लगा। कुछ समय बाद यहाँ सफाई करवाकर चार्ल्स प्रथम ने इस पार्क को कला और फैशन का केंद्र भी बनाया जिसके परिणामस्वरूप उच्च वर्गों के स्त्री पुरुष शाम को मिलने जुलने के लिये यहाँ आने लगे।

१७३० में यहाँ सर्पेंटाइन नामक झील बनाई गई जो आज अपनी सुंदरता के लिये विश्वविख्यात हो चुकी है। कहा जाता है, यूरोप के किसी भी शहर के अंदर इतना सुंदर अन्य कोई स्थान नहीं है। हाइड पार्क का महत्व बढ़ने देख धीरे धीरे लोग इसके पूर्वी ओर मकान बनवाने लगे और शीघ्र ही पश्चिमी भाग को छोड़कर बाकी तीनों ओर बड़ी बड़ी इमारतें खड़ी हो गईं। कोई भी इमारत अपने आपमें किसी महल से कम नहीं।

१८ वीं सदी के मध्य में यह पार्क डकैती, राहजनी, हत्या आदि की घटनाओं के लिये पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुका था। उस समय ये घटनाएँ यहाँ इतनी अधिक बढ़ गई थीं कि शाम को अँधेरा होने के बाद कोई भी व्यक्ति यहाँ अकेले आने का साहस नहीं कर पाता था। महारानी विक्टोरिया के समय से यह पार्क वक्ताओं का स्थल बना। १८७२ में सरकारी आदेश से १५० वर्ग गज का स्थान सभाओं आदि के लिये निश्चित कर दिया गया। यह स्थान आजकल स्पीकर्स कार्नर (वक्ताओं का कोना) कहलाता है। स्पीकर्स कार्नर में होनेवाले भाषणों की एक मुख्य विशेषता यह है कि उनके संबंध में पहले से किसी प्रकार का प्रचार नहीं किया जाता और न किसी प्रकार की सूचना ही दी जाती है।

संभवतः संसार के किसी भी देश में यही एकमात्र ऐसा स्थान

निर्माण होता है। सामान्य ताप पर हाइड्रोजन क्लोराइड और सोडियम बाइसल्फेट बनते और उच्च ताप पर हाइड्रोजन क्लोराइड और सोडियम सल्फेट बनते हैं।

$$NaCl + H_2SO_4 = NaHSO_4 + HCl$$

सोडियम बाइसल्फेट

$$2\,NaCl + H_2SO_4 = Na_2SO_4 + 2HCl$$

सोडियम सल्फेट
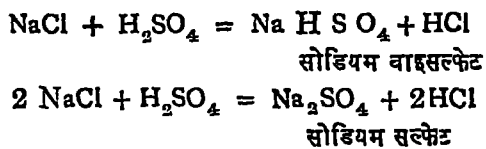
ल ब्लॉक विधि से 'धोने का सोडा' के निर्माण में यही उच्च तापवाली विधि प्रयुक्त होती है और यहाँ हाइड्रोजन क्लोराइड उपोत्पाद के रूप में प्राप्त होता है।

हाइड्रोजन क्लोराइड के निर्माण में पोर्सिलेन या काँच के पात्र सुविधाजनक होते हैं क्योंकि सामान्य धातुएँ इससे आक्रांत हो जाती हैं। परंतु अब कुछ ऐसी धातुएँ या मिश्र धातुएँ प्राप्त हुई हैं, जैसे टैंटेलम, हिस्टेलाय (histalloy), डुरिक्लोर (durichlor) जिनके पात्रों का उपयोग हो सकता है क्योंकि ये अम्ल का अत्यधिक प्रतिरोध करती हैं।

शुद्ध हाइड्रोक्लोरिक अम्ल वर्णहीन होता है पर व्यापार का अम्ल लोहे और अन्य अपद्रव्यों के कारण पीले रंग का होता है। विलयन में २८% से ३६% अम्ल रहता है। व्यापार का अम्ल प्रधानतया तीन श्रेणियों का होता है, १८ बौमेका (HCl, २७.९२ प्रतिशत, विशिष्ट गुरुत्व १.१४१७), २० बौमेका (HCl, ३१.४५ प्रतिशत, विशिष्ट गुरुत्व १.१६००) और २२ बौमेका (HCl, ३५.२१, प्रतिशत विशिष्ट गुरुत्व १.१७८९)।

गुण — हाइड्रोजन क्लोराइड वर्णहीन, तीव्र गंधवाली गैस है। ०° सें० और १ वायुमंडलीय दबाव पर एक लिटर गैस का भार १.६३९ ग्राम होता है। द्रव का क्वथनांक — ८५° सें० और हिमांक –११४°, क्रांतिक ताप ५२° सें० और क्रांतिक दबाव ९० वायुमंडलीय है। यह जल में अतिविलेय है। ०° सें० पर एक आयतन जल ५०६ आयतन गैस और २०° सें० पर ४७७ आयतन का घुलता है। गैस के घुलने से ऊष्मा निकलती है। आर्द्र वायु में यह धूम देती है। इसका विलयन स्थायी क्वथनांकवाला द्रव, क्वथनांक ११०°, बनता है। ऐसे द्रव में हाइड्रोजन क्लोराइड २०.२४ प्रतिशत रहता है।

यह रसायनत: प्रबल अम्ल है। अनेक धातुओं, जैसे सोडियम, लोहा, जस्ता, वंग आदि को आक्रांत कर क्लोराइड बनाता और हाइड्रोजन उन्मुक्त करता है। धातुओं के आक्साइडों और हाइड्राक्साइडों को आक्रांत कर धातुओं का क्लोराइड बनाता और जल उन्मुक्त करता है। यह सरलता से आक्सीकृत हो क्लोरीन मुक्त करता है। मैंगनीज डाइआक्साइड पर हाइड्रोजनक्लोराइड की क्रिया से क्लोरीन निकलता है।

सांद्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल चमड़े को जलाता और शोथ उत्पन्न करता है। तनु अम्ल अपेक्षया निर्दोष होता है।

नाइट्रिक अम्ल के साथ मिलकर (HNO_3 HCl (३:१ अनुपात में) यह अम्लराज (aquaregia) बनता है जिसमें नाइट्रोसिल क्लोराइड (NOCl) रहता है जो अन्य धातुओं के साथ साथ प्लैटिनम और स्वर्ण को भी आक्रांत करता है। ये दोनों उत्कृष्ट धातुएँ अन्य किसी एक अम्ल से आक्रांत नहीं होती हैं।

उपयोग — हाइड्रोक्लोरिक अम्ल रसायनशाला का एक बहुमूल्य अभिकारक है। इसके उपयोग अनेक उद्योग धंधों में भी होते हैं। लोहे पर जस्ते या वंग का लेप चढ़ाने के पहले इसी अम्ल से सतह को साफ करते हैं। अनेक पदार्थों, जैसे सरेस, जिलेटिन, अस्थि-कोयला, रंजकों के माध्यम, कार्बनिक यौगिकों आदि के निर्माण, में यह काम आता है। इसके अनेक लवण भी बड़े औद्योगिक महत्व के हैं। यह द्विगुण लवण भी बनाता है जिसके महत्व रासायनिक विश्लेषण में अधिक हैं। पेट्रोलियम कूपों के उपचार, बिनौले से कर्पासिका निकालने और रोगाणुनाशी के रूप में भी यह काम आता है।

हाइड्रोजन (Hydrogen) एक गैसीय द्रव है जिसमें कोई गंध, स्वाद और रंग नहीं होता। यह सबसे हल्का तत्व है (घनत्व ०.०९ ग्राम प्रति लिटर)। इसकी परमाणुसंख्या १, संकेत हा (H) और परमाणुभार १.००८ है। यह आवर्तसारणी में प्रथम स्थान पर है। साधारणतया इसके दो परमाणु मिलकर एक अणु (हा$_2$, H_2) बनता है। हाइड्रोजन बहुत नीचे ताप पर द्रव और ठोस बनता है। द्रव हाइड्रोजन –२५३° सें० पर उबलता और ठोस हाइड्रोजन –२५८ सें० पर पिघलता है।

उपस्थिति — असंयुक्त हाइड्रोजन बड़ी अल्प मात्रा में वायु में पाया जाता है। ऊपरी वायु में इसकी मात्रा अपेक्षया अधिक रहती है। सूर्य के परिमंडल में इसकी प्रचुरता है। पृथ्वी पर संयुक्त दशा में यह जल, पेड़ पौधे, जातव ऊतक, काष्ठ, अनाज, तेल, वसा, पेट्रोलियम, प्रत्येक जैविक पदार्थ में रहता है। अम्लों का यह आवश्यक घटक है। क्षारों और कार्बनिक यौगिकों में भी यह रहता है।

निर्माण — प्रयोगशाला में जस्ते पर तनु गंधक अम्ल की क्रिया से यह प्राप्त होता है। युद्ध के कामों के लिये कई सरल विधियों से यह प्राप्त हो सकता है। 'सिलिकोल' विधि में सिलिकन या फेरो सिलिकन पर सोडियम हाइड्राक्साइड की क्रिया से, 'हाइड्रोलिथ' विधि में कैलसियम हाइड्राइड पर जल की क्रिया से 'हाइड्रिक' विधि में एलुमिनियम पर सोडियम हाइड्राक्साइड की क्रिया से प्राप्त होता है। गरम स्पंजी लोहे पर भाप की क्रिया से एक समय बड़ी मात्रा में हाइड्रोजन तैयार होता था।

आज हाइड्रोजन प्राप्त करने की सबसे सस्ती विधि 'जल गैस' है। जल गैस में हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड विशेष रूप से रहते हैं। जल गैस को ठंढाकर द्रव में परिणत करते हैं। द्रव का फिर प्रभाजक आसवन करते हैं। इससे कार्बन मनॉक्साइड (क्वथनांक १९१° सें०) और नाइट्रोजन (क्वथनांक १९५° सें०) पहले निकल जाते हैं और हाइड्रोजन (क्वथनांक २५०° सें०) शेष रह जाता है।

जल के वैद्युत अपघटन से भी पर्याप्त शुद्ध हाइड्रोजन प्राप्त हो सकता है। एक किलोवाट घंटा से लगभग ७ घन फुट हाइड्रोजन प्राप्त

ऊष्मा से वियोजित हो जाते हैं पर यह वियोजन उत्क्रमणीय (reversible) होता है जबकि बहुलक, सहसंयोजक और गौणीय हाइड्राइड भी वियोजित होने पर उनका वियोजन अनुत्क्रमणीय होता है। उच्च ताप पर अपचयन गुण अधिक स्पष्ट होता है। पोटैशियम हाइड्राइड कार्बन का अपचयन कर पोटैशियम फार्मेट बनता है। कैल्सियम हाइड्राइड धातुओं के आक्साइड को लगभग ६००° सें० पर अपचयित कर धातुओं में परिणत कर देता है। गौण लवण हाइड्राइड अधिक प्रबल अपचायक होते हैं। हाइड्रोजनीकरण में अनेक धातुओं के हाइड्राइड प्रबल अपचायक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। संघननकारक के रूप में इनके उपयोग दिन प्रति दिन बढ रहे हैं। [र० चं० अ०]

हाइड्रॉक्सिलऐमिन (Hydroxylamine, NH_2OH) वस्तुतः अमोनिया का एक संजात है जिसमें अमोनिया का एक हाइड्रोजन हाइड्रॉक्सिलसमूह से विस्थापित हुआ है। पहले पहल इसका निर्माण १८६५ ई० में लॉसेन (Lossen) द्वारा क्लोराइड के रूप में हुआ था। शुद्ध रूप में लब्रि डब्रुयन (Lobry de Bruyn) ने इसे पहले पहल प्राप्त किया।

इसके तैयार करने की अनेक विधियाँ हैं पर साधारणतया नाइट्राइट पर अम्ल सल्फाइटो की (१:२ ग्रामाणु अनुपात में) क्रिया से हाइड्रॉक्सिलऐमिन सल्फेट के रूप मे प्राप्त होता है। एक दूसरी विधि नाइट्रोपैराफिनों के जल अपघटन से है। शुद्ध अजल हाइड्रॉक्सिलऐमिन प्राप्त करने के लिये इसके क्लोराइड को परिशुद्ध मेथाइल ऐल्कोहलीय विलयन में सोडियम मेथिलेट से उपचारित करते हैं। अवक्षिप्त सोडियम क्लोराइड को छानकर निकाल देते हैं और न्यून दबाव पर आसवन से ऐल्कोहल को निकालकर उत्पाद को शुद्ध रूप में प्राप्त करते हैं।

शुद्ध हाइड्रॉक्सिलऐमिन रंगहीन, गंधहीन, क्रिस्टलीय ठोस है जो ३३° सें० पर पिघलता है और २२ मिमी दबाव पर ५८° सें० पर उबलता है। उच्च ताप पर यह विघटित, कभी कभी विस्फोट के साथ, हो जाता है। यह जल में अतिविलेय है और जलीय विलयन समान्यत स्थायी होता है। शुद्ध क्लोरीन में यह जलने लगता है। यह प्रबल अपचायक होता है। चांदी के लवणो से चांदी और तांबे के लवणो से क्यूप्रस ऑक्साइड अवक्षिप्त करता है। कुछ विशिष्ट परिस्थितियो में यह ऑक्सीकारक भी होता है। फेरस हाइड्रॉक्साइड को फेरिक हाइड्रॉक्साइड में परिवर्तित कर देता है।

हाइड्रॉक्सिलऐमिन के लवण सरलता से बनते हैं। इसके अधिक महत्व के लवण सल्फेट और क्लोराइड हैं। ऐल्डीहाइड और कीटोन के साथ यह ऑक्सिम बनाता है। कार्बनिक रसायन में ऑक्सिम बड़े महत्व के यौगिक हैं। [स० व०]

हाइड्रेज़ीन (Hydrazine) $H_2N\text{-}NH_2$ रंगहीन द्रव, क्वथनांक ११४.५° सें०, गलनांक २.०° सें० जो कर्टियस द्वारा १८८७ ई० में पहले पहल तैयार हुआ था। आजकल राशिग विधि (Rashig Method) से यह तैयार होता है। इस विधि में यह जलीय अमोनिया या यूरिया को जिलेटीन या ग्लू की उपस्थिति में हाइपोक्लोराइट के आधिक्य मे ऑक्सीकरण से तैयार किया जाता है। यह अभिक्रिया १६०° १८०° सें० ताप पर दबाव में संपन्न होती है और २% की मात्रा में हाइड्रेज़ीन बनता है जिसके आंशिक आसवन द्वारा सांद्रण से ६०-६५% हाइड्रेज़ीन प्राप्त होता है। इससे बेरियम आक्साइड, दाहक सोडा या पोटाश द्वारा निर्जलीकरण से अजल हाइड्रेजीन प्राप्त हो सकता है। अजल हाइड्रेज़ीन जल, मेथिल और एथिल ऐल्कोहॉल में सब अनुपात में मिश्र होता है। जलीय विलयन अमोनिया की अपेक्षा दुर्बल क्षारीय होता है, यह दो श्रेणी का लवण, क्लोराइड आदि, बनाता है। जलीय विलयन में हाइड्रेज़ीन प्रबल अपचायक होता है। तांबे, चांदी और सोने के लवणो से धातुओं को यह अवक्षिप्त कर देता है। द्वितीय विश्वयुद्ध में ईंधन के रूप में राकेट और जेट नोदक मे यह प्रयुक्त हुआ था। इसको बडी सावधानी से संग्रह करने की आवश्यकता होती है क्योंकि यह सरलता से आर्द्रता, कार्बन डाइआक्साइड और ऑक्सीजन से अभिक्रिया देता है। इसके विलयन तथा वाष्प दोनो विषैले होते हैं। हाइड्रेज़ीन के वाष्प और वायु के मिश्रण जलते हैं।

हाइड्रेज़ीन के हाइड्रोजन कार्बनिक मूलकों द्वारा सरलता से विस्थापित होकर अनेक कार्बनिक संजात बनते हैं। एक ऐसा ही संजात फेनिल हाइड्रेज़ीन है जिसका आविष्कार एमिल फिशर ने १८७७ ई० में किया था। इसकी सहायता से उन्होने कार्बोहाइड्रेटों के अध्ययन में पर्याप्त प्रगति की थी। हाइड्रेज़ीन का एक दूसरा संजात अम्ल हाइड्रेज़ाइड ($RCO_2\ N_2H_4$) है जो अम्ल क्लोराइड या एस्टर पर हाइड्रेज़ीन की अभिक्रिया से बनता है। ऐसे दो संजात सेमी कार्बेज़ाइड, $CO(NH_2)\ N_2H_3$, और कार्बोहाइड्रेज़ाइड $CO\ (N_2H_3)_2$ हैं जिनका उपयोग वैश्लेषिक रसायन में विशेष रूप से होता है। [स० व०]

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और हाइड्रोजन क्लोराइड हाइड्रोजन क्लोराइड, हाइड्रोजन और क्लोरीन का द्वैधीय यौगिक है। हाइड्रोजन क्लोराइड गैस के जलीय विलयन को ही हाइड्रोक्लोरिक अम्ल कहते हैं। इस अम्ल का उल्लेख ग्लौबर ने १६४८ ई० में पहले पहल किया था। जोसेफ प्रीस्टली ने १७७२ ई० में पहले पहल तैयार किया और सर हंफ्री डेवी ने १८१० ई० मे सिद्ध किया कि यह हाइड्रोजन और क्लोरीन का यौगिक है। इससे पहले लोगो की गलत धारणा थी कि इसमें ऑक्सीजन भी रहता है। तब इसका नाम म्यूरिएटिक अम्ल पडा था जो आज भी कहीं कहीं प्रयोग में आता है।

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल ज्वालामुखी गैसों में पाया जाता है। मानव जठर में इसकी अल्प मात्रा रहती है और आहार पाचन में सहायक होती है।

हाइड्रोजन और क्लोरीन के सीधे संयोजन से यह बन सकता है। कहीं कहीं व्यापार का हाइड्रोक्लोरिक अम्ल इसी विधि से तैयार होता है। क्रिया सामान्य ताप पर नहीं होती। सूर्यप्रकाश में अथवा २५०° सें० पर गरम करने से संयोजन विस्फोट के साथ होता है। साधारणतया नमक पर गंधकाम्ल की क्रिया से इसका

को एक साथ लेने से ही शृंखलाक्रिया चालू होगी। शृंखलाक्रिया में न्यूट्रॉन की संख्या बड़ी शीघ्रता से बढ़ती है।

परमाणु बम में विखंडन से यूरेनियम और उसके निकटवर्ती अन्य पदार्थों का ताप बड़ी शीघ्रता से ऊपर उठता है। धात्विक यूरेनियम बड़ी ऊँची दाब और ताप पर तापदीप्त गैस में परिणत हो जाता है। विस्फोटक पिंड का ताप १०,००,००,०००° से० तक उठ जाता है। इतने ऊँचे ताप पर यूरेनियम को थापी (tamper) टूट जाती है। तब सारा पिंड बड़ी प्रचंडता से विस्फुटित होता है। परमाणु बम के विस्फुटित होने पर आघात तरंगें (Shock waves) उत्पन्न होती हैं जो ध्वनि की गति से भी अधिक गति से चारों ओर फैलती हैं। जब परमाणु बम को पृथ्वीतल के ऊपर विस्फुटित किया जाता है तो तरंगें पृथ्वीतल से टकराकर ऊपर उठती हैं और नया आघात उत्पन्न करती हैं जो ऊपर और नीचे तीव्रता से फैलता है। बम स्फोट (Bomb blast) का केंद्र तत्काल तप्त होकर निर्वात उत्पन्न करता है। निर्वात भरने के लिये आसपास की ठंडी हवाएँ दौड़ती हैं। इस प्रकार परमाणु बम से घरों पर आघात पर आघात पड़ने से वे टूट जाते हैं।

विस्फोटी यूरेनियम अन्य नए तत्वों में बदल जाता है, उससे रेडियो ऐक्टिववेधी किरणें निकलकर जीवित कोशिकाओं को आघात कर उन्हें नष्ट कर देती हैं। बम का विनाशकारी कार्य (१) आघात तरंगों, (२) वेधी किरणों तथा (३) अत्यधिक ऊष्मा उत्पादन के कारण होता है।

हाइड्रोजन बम या एच-बम (H–Bomb) अधिक शक्तिशाली परमाणु बम होता है। इसमें हाइड्रोजन के समस्थानिक ड्यूटीरियम (deuterium) और ट्राइटिरियम की आवश्यकता पड़ती है। परमाणुओं के संलयन करने (fuse) से बम का विस्फोट होता है। इस संलयन के लिये बड़े ऊँचे ताप, लगभग ५००,००,०००° सें० की आवश्यकता पड़ती है। यह ताप सूर्य के उष्णतम भाग के ताप से बहुत ऊँचा है। परमाणु बम द्वारा ही इतना ऊँचा ताप प्राप्त किया जा सकता है।

जब परमाणु बम आवश्यक ताप उत्पन्न करता है तभी हाइड्रोजन परमाणु संलयित (fuse) होते हैं। इस संलयन (fusion) से ऊष्मा और शक्तिशाली किरणें उत्पन्न होती हैं जो हाइड्रोजन को हीलियम में बदल देती हैं। १९२२ ई० में पहले पहल पता लगा था कि हाइड्रोजन परमाणु के विस्फोट से बहुत अधिक ऊर्जा उत्पन्न हो सकती है।

१९३२ ई० में ड्यूटीरियम नामक भारी हाइड्रोजन का और १९३४ ई० में ट्राइटिरियम नामक भारी हाइड्रोजन का आविष्कार हुआ। १९५० ई० में संयुक्त राज्य, अमरीका के राष्ट्रपति ट्रूमैन ने हाइड्रोजन बम तैयार करने का आदेश दिया। इसके लिये १९५१ ई० में साउथ कैरोलिना में एक बड़े कारखाने की स्थापना हुई। १९५३ ई० में राष्ट्रपति आइजेनहावर ने घोषणा की थी कि TNT के लाखों टन के बराबर हाइड्रोजन बम तैयार हो गया है। १९५४ ई० में सोवियत संघ ने हाइड्रोजन बम का परीक्षण किया। चीन और फ्रांस ने भी हाइड्रोजन बम के विस्फोट किए हैं।

हाइड्रोजनीकरण (Hydrogenation) हाइड्रोजनीकरण का अभिप्राय केवल असंतृप्त कार्बनिक यौगिकों से हाइड्रोजन की क्रिया द्वारा संतृप्त यौगिकों के प्राप्त करने से है। इस प्रकार एथिलीन अथवा ऐसेटिलीन से एथेन प्राप्त किया जाता है।

नवजात अवस्था में हाइड्रोजन कुछ सहज अपचेय यौगिकों के साथ सक्रिय है। इस भाँति कीटोन से द्वितीयक ऐल्कोहॉल तथा नाइट्रो यौगिकों से ऐमीन सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं। आजकल यह मान लिया गया है कि कार्बनिक पदार्थों का उत्प्रेरक के प्रभाव से हाइड्रोजन का प्रत्यक्ष संयोजन भी हाइड्रोजनीकरण है। ऐतिहासिक दृष्टि से उत्प्रेरकीय हाइड्रोजनीकरण से हाइड्रोजन (H_2) तथा हाइड्रोजन साइनाइड (HCN) के मिश्रण को प्लैटिनम कालिख पर प्रवाहित कर मेथिलऐमिन सर्वप्रथम प्राप्त किया गया था। पाल सैबेटिये (१८५४-१९४१) तथा इनके सहयोगियों के अनुसंधानों से वाष्प अवस्था में हाइड्रोजनीकरण विधि में विशेष प्रगति हुई। सन् १९०५ ई० में द्रव अवस्था हाइड्रोजनीकरण सूक्ष्म कणिक धातुओं के उत्प्रेरक उपयोगों के अनुसंधान आरंभ हुए और उसमें विशेष सफलता मिली जिसके फलस्वरूप द्रव अवस्था में हाइड्रोजनीकरण औद्योगिक प्रक्रमों में विशेष रूप से प्रचलित है। बीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिकों ने हाइड्रोजनीकरण विधि में विशेष प्रगति की और उसके फलस्वरूप हमारी जानकारी बहुत बढ़ गई है। स्कीटा तथा इनके सहयोगियों ने निकेल, कोबाल्ट, लोहा, ताम्र और सारे प्लेटिनम वर्ग की धातुओं की उपस्थिति में हाइड्रोजनीकरण का विशेष अध्ययन किया।

हाइड्रोजनीकरण में एथिल ऐल्कोहॉल, ऐसीटिक अम्ल, एथिल ऐसीटेट, संतृप्त हाइड्रोकार्बन जैसे हाइड्रोकार्बनों में नार्मल हेक्सेन (n hexane), डेकालिन और साइक्लोहेक्सेन विलायकों का प्रयोग अधिकता से होता है।

उत्प्रेरकीय हाइड्रोजनीकरण द्वारा कठिनता से उपलब्ध पदार्थ भी सहज में प्राप्त किए जा सकते हैं तथा बहुत सी तकनीकी की विधियाँ, जो विशेष महत्व की हैं, इसी पर आधारित हैं। इनमें द्रव ग्लिसराइडों (तेलों) से अर्ध ठोस या ठोस वनस्पति बनाने की विधि अधिक महत्वपूर्ण है। तेल में द्रव ग्लिसराइड रहता है। हाइड्रोजनीकरण से वह अर्ध ठोस वनस्पति में परिवर्तित हो जाता है। मछली का तेल हाइड्रोजनीकरण से गंधरहित भी किया जा सकता है, जो उत्कृष्ट साबुन बनाने के काम आता है। नैफ्थलीन, फिनोल और बेंजीन के हाइड्रोजनीकरण से द्रव उत्पाद प्राप्त किए जाते हैं, जो महत्व के विलायक हैं। टर्पीन के उत्प्रेरकीय हाइड्रोजनीकरण से बहुत से महत्व के व्युत्पन्न, विशेषतः मेंथोल, कैंफर (कपूर) आदि प्राप्त होते हैं।

यूरोप में, जहाँ पेट्रोल की बड़ी कमी है, भूरे कोयले तथा बिटुमेनी कोयले के उच्च दबाव (७०० वायुमंडलीय तक) पर हाइड्रोजनीकरण से पेट्रोलियम प्राप्त हुआ है (देखें संश्लिष्ट पेट्रोलियम) अनकरे

हो सकता है। कुछ विद्युत् अपघटनी निर्माण में, जैसे नमक से दाहक सोडा के निर्माण में, उपोत्पाद के रूप मे बडी मात्रा में हाइड्रोजन प्राप्त होता है।

गुण — हाइड्रोजन वायु या ऑक्सीजन में जलता है। जलने का ताप ऊँचा होता है। ज्वाला रगहीन होती है। जलकर यह जल (H_2O) और अत्यल्प मात्रा में हाइड्रोजन पेरॉक्साइड (H_2O_2) बनाता है। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के मिश्रण में आग लगाने या विद्युत् स्फुलिंग से बड़े कड़ाके के साथ विस्फोट होता है और जल की बूँदें बनती हैं।

हाइड्रोजन अच्छा अपचायक है। लोहे के मोर्चों को लोहे में और ताँबे के आक्साइड को ताँबे में परिणत कर देता है। यह अन्य तत्वो के साथ संयुक्त हो यौगिक बनता है। क्लोरीन के साथ क्लोराइड, (HCl), नाइट्रोजन के साथ अमोनिया (NH_3) गधक के साथ हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S), फास्फरस के साथ फास्फीन (PH_3) ये सभी द्विअगी यौगिक हैं। इन्हे हाइड्राइड कहते हैं।

हाइड्रोजन एक विचित्र गुणवाला तत्व है। यह है तो अधातु पर अनेक यौगिको में धातुओ सा व्यवहार करता है। इसके परमाणु में केवल एक प्रोटॉन और एक इलेक्ट्रान होते हैं। सामान्य हाइड्रोजन में ०.०२ प्रतिशत एक दूसरा हाइड्रोजन होता है जिसको भारी हाइड्रोजन की सज्ञा दी गई है। यह सामान्य परमाणु हाइड्रोजन से दुगुना भारी होता है। इसे ड्यूटीरियम (D) कहते हैं। ऑक्सीजन के साथ मिलकर यह भारी जल (D_2O) बनाता है। ड्यूटीरियम हाइड्रोजन का समस्थानिक है। हाइड्रोजन के एक अन्य समस्थानिक का भी पता लगा है। इसे ट्राइटियम (Tritium) कहते है। सामान्य हाइड्रोजन से यह तिगुना भारी होता है।

परमाणवीय हाइड्रोजन — हाइड्रोजन के अणु को जब अत्यधिक ऊष्मा मे रखते हैं तब वे परमाणवीय हाइड्रोजन में वियोजित हो जाते हैं। ऐसे हाइड्रोजन का जीवनकाल दवाव पर निर्भर करता और बडा अल्प होता है। ऐसा पारमाएवीय हाइड्रोजन रसायनतः बड़ा सक्रिय होता है और सामान्य ताप पर भी अनेक तत्वो के साथ संयुक्त हो यौगिक बनाता है।

उपयोग — हाइड्रोजन के अनेक उपयोग हैं। हेबर विधि में नाइट्रोजन के साथ संयुक्त हो यह अमोनिया बनता है जो खाद के रूप में व्यवहार में आता है। तेल के साथ सयुक्त हो हाइड्रोजन वनस्पति (ठोस या अर्धठोस वसा) बनाता है। खाद्य के रूप में प्रयुक्त होने के लिये वनस्पति बहुत बडी मात्रा रूप में बनती है। अपचायक के रूप में यह अनेक धातुओ के निर्माण मे काम आता है। इसकी सहायता से कोयले से सश्लिष्ट पेट्रोलियम भी बनाया जाता है। (देखें; संश्लिष्ट पेट्रोलियम औरहा इड्रोजनीकरण) अनेक ईंधनो में हाइड्रोजन जलकर ऊष्मा उत्पन्न करता है। ऑक्सीहाइड्रोजन ज्वाला का ताप बहुत ऊँचा होता है। यह ज्वाला धातुओं के काटने, जोड़ने और पिघलाने मे काम आती है। विद्युत् चाप मे हाइड्रोजन के अणु के तोड़ने से परमाएवीय हाइड्रोजन ज्वाला प्राप्त होती है जिसका ताप ३३७०° सें० तक हो सकता है।

हल्का होने के कारण बैलून और वायुपोतो में हाइड्रोजन प्रयुक्त होता है तथा इसका स्थान अब हीलियम ले रहा है। हाइड्रोजन बम आजकल का बहुचर्चित विषय है।

हाइड्रोजन बम परमाणुबम का ही एक किस्म है। द्वितीय विश्वयुद्ध में सबसे अधिक शक्तिशाली विस्फोटक, जो प्रयुक्त हुआ था, उसका नाम ब्लॉकबस्टर' (blockbuster) था। इसके निर्माण में तब तक ज्ञात प्रबलतम विस्फोटक ट्राईनाइट्राटोलीन (TNT) का ११ टन प्रयुक्त हुआ था। इस विस्फोटक से २००० गुना अधिक शक्तिशाली प्रथम परमाणु बम था जिसका विस्फोट टी० एन० टी० के २२,००० टन के विस्फोट के बराबर था। अब तो प्रथम परमाणु बम से बहुत अधिक शक्तिशाली परमाणु बम बने हैं।

परमाणु बम में विस्फुटित होनेवाला पदार्थ यूरेनियम या प्लुटोनियम होता है। यूरेनियम या प्लुटोनियम के परमाणु विखडन (Fission) से ही शक्ति प्राप्त होती है। इसके लिये परमाणु के केंद्रक (nucleus) में न्यूट्रॉन (neutron) से प्रहार किया जाता है। इस प्रहार से ही बहुत बड़ी मात्रा में ऊर्जा प्राप्त होती है। इस प्रक्रम को भौतिक विज्ञानी नाभिकीय विखडन (nuclear fission) कहते हैं। परमाणु के नाभिक के अभ्यतर मे जो न्यूट्रान होते हैं उन्ही से न्यूट्रान मुक्त होते हैं। ये न्यूट्रॉन अन्य परमाणुओ पर प्रहार करते हैं और उनसे फिर विखडन होता है। ये फिर अन्य परमाणुओ का विखंडन करते हैं। इस प्रकार शृखला क्रियाएँ आरंभ होती हैं। परमाणु बम की अनियंत्रित शृखला क्रियाओ के फलस्वरूप भीषण प्रचंडता के साथ परमाणु का विस्फोट होता है।

यूरेनियम के कई समस्थानिक ज्ञात हैं। सामान्य यूरेनियम में ९९.३ प्रतिशत यू-२३८ (U-238) और ०.७ प्रतिशत यू-२३५ (U-235) रहते हैं। यू-२३८ का विखडन उतनी सरलता से नही होता जितनी सरलता से यू-२३५ का विखंडन होता है। यू-२३५ मे यू-२३८ की अपेक्षा तीन न्यूट्रान कम रहते हैं। न्यूट्रॉन की इस कमी के कारण ही यू २३५ का विखडन सरलता से होता है।

अन्य विखंडनीय पदार्थ जो परमाणु बम में काम आते है वे यू-२३३ और प्लुटोनियम—२३९ हैं। परमाणु विस्फोट के लिये विखडनीय पदार्थ की क्रातिक संहति (critical mass) आवश्यक होती है। शृखला क्रिया के चालू करने के लिये क्रातिक संहति न्यूनतम मात्रा है। यदि विखंडनीय पदार्थ की मात्रा क्रातिक संहति से कम है तो न्यूट्रान केवल घुरंघुर करता रहेगा। मात्रा के धीरे धीरे बढ़ाने से एक समय ऐसी अवस्था आएगी जब कम से कम एक उन्मुक्त न्यूट्रॉन एक नए परमाणु पर प्रहार कर उसका विखडन कर देगा। ऐसी स्थिति पहुँचने पर विखडन क्रिया स्वत. चलने लगती है। क्रातिक संहति की मात्रा गोपनीय है। जो राष्ट्र परमाणु बम बनाते है वे ही जानते हैं और दूसरो को बतलाते नही।

यदि यू-२३५ की क्रातिक सहति २० पाउंड है तो दस दस पाउंड दो जगह लेने से शृंखला क्रिया चालू नही होगी। २० पाउंड

है जिसमें तीनों नाइट्रोजन परमाणु एक सीधी रेखा में स्थित हैं। जैसा इस सूत्र में दिया है — H – N = N ≡ N [स० व०]

हाइनान (Hainan) चीन के दक्षिण में दीर्घवृत्तीय आकार का द्वीप है जिसकी लबाई लगभग ३०० किमी, चौडाई लगभग १५२ किमी और क्षेत्रफल लगभग ३५८४ वर्ग किमी है। इसका अधिक भाग पहाडी है पर दक्षिण छोडकर अन्य तटों पर सँकरे मैदान हैं। पहाडियाँ बडी बीहड हैं और एक स्थान पर तो ६,३०० फुट ऊँची हो गई हैं। यहाँ की जलवायु उष्ण है, ताप २०° सें० के लगभग वर्ष भर रहता है, सिवाय ऊँची पहाडियों पर जहाँ का ताप जाडे में १०° सें० उतर आता है। औसतन वर्षा १५२.५ सेमी से २०३ सेमी तक होती है। यहाँ के जंगलों में महोगनी (mahogany), देवदार, रोजवुड, आयरनवुड और मैदानों में धान, ईख, शाक सब्जियाँ, छोटे छोटे फल, सुपारी और नारियल उपजते हैं। पशुओं में घोडा, सूअर और बैल पाए जाते हैं। कुछ लोह खनिज भी पाए गए हैं। यहाँ मछली पकडना और लकडी का काम होता है। पहाडी क्षेत्र होने के कारण जनसख्या लगभग ३० लाख है जिसमें अधिकाश चीनी और शेष में आदिवासी और अन्य लाओ, फ्रासीसी-हिंदचीनी या मिश्रित लोग हैं। खेती और व्यापार चीनियों के हाथ में है। इसके प्रमुख नगर उत्तरी तट पर कियागचाऊ (Kiengchaw), और लिंबाऊ (Linbow), दक्षिणी तट पर हाइचाउ (Yaichow), और पूर्वी तट पर लोकवाइ है। हाइहो (Hoihow) यहाँ का प्रमुख बदरगाह है। [रा० स० ख०]

हाउड़ा (हावडा) यह पश्चिमी बंगाल (भारत) का एक जिला है जो २२° १३′ से २२° ४७′ उ० अ० एव ८७° ५१′ से ८८° २२′ पू० दे० रेखाओं के बीच फैला है। इसका क्षेत्रफल १४७२ वर्ग किमी है। जनसख्या २०,३८,४७७ (१९६१) है। उत्तर एव दक्षिण में हुगली तथा मिदनापुर जिले हैं। इसकी पूर्वी तथा पश्चिमी सीमाएँ क्रमशः हुगली एव रूपनारायन नदियाँ हैं। दामोदर नदी इस जिले के बीचोबीच बहती है। काना दामोदर तथा सरस्वती अन्य नदियाँ हैं। नदियों के बीच नीची दलदली भूमि मिलती है। राजापुर दलदल सबसे विस्तृत है। वर्षा सामान्यतः १४५ सेमी होती है। धान मुख्य फसल है पर गेहूँ, जौ, मकई तथा जूट भी उपजाए जाते हैं।

इस जिले का प्रमुख नगर हावडा है। कलकत्ता के सामने हुगली नदी के किनारे ११ किमी की लबाई में बसा है। इसके अंतर्गत सिबपुर, घुसुरी, सलखिया तथा रामकृष्णपुर उपनगर सम्मिलित हैं। जनसख्या ५,१२,५९८ (१९६१) है। यह पूर्वी एव दक्षिणी पूर्वी रेलों का जकशन तथा कलकत्ता का प्रमुख स्टेशन है। यह हावडा पुल द्वारा कलकत्ता से सबद्ध है। [ज० सिं०]

हॉकाइडो (Hokkaido) स्थिति . ४३° ३०′ उ० अ० तथा १४३° ०′ पू० दे०। यह द्वीप जापान के बडे द्वीपों में दूसरा स्थान रखता है। इस द्वीप का क्षेत्रफल ८७५०० किमी है और यह हॉनशू से त्सुगारु (Tsugaru) जलसयोजी द्वारा पृथक् हो गया है। यह उत्तर में सोया जलसयोजी द्वारा सैकलीन (Sakhalin) द्वीप से तथा नेमुरो सयोजी द्वारा कूरील द्वीपसमूहों से पृथक् हो गया है। सैकलीन का दक्षिणी अर्धभाग और कूरील द्वीप सोवियत रूस के अधिकार में हैं अत प्रतिरक्षा की दृष्टि से हॉकाइडो जापान के लिये महत्वपूर्ण है।

यह द्वीप जपान के मुख्य द्वीपों में सबसे कम विकसित है। धान और फलों की खेती, मछली पकडना, कोयला खनन तथा जगल से वन्य सामग्री एकत्र करना यहाँ के प्रमुख उद्योग हैं। पशुपालन और दुग्धव्यवसाय में भी इस द्वीप का जापान में प्रमुख स्थान है। सापोरो तथा हाकोडाटे यहाँ के प्रमुख नगर हैं। द्वीप के दक्षिणी सिरे पर स्थित हाकोडाटे हॉनशू द्वीप से संचार का केंद्र है। यहाँ की जनसख्या ४६ ७२, ५९९ (१९५४) है। [अ० ना० मे०]

हॉकिंस, कैप्टेन विलियम सन् १६०० में इग्लैंड की महारानी एलिजबेथ ने ईस्ट इंडिया कपनी को पूर्वीय देशों में व्यापार करने के लिये पद्रह वर्ष की अवधि के लिये एकाधिकार प्रदान किया। कपनी के आदेशानुसार पूर्वीय देशो की कुछ जलयात्राएँ हो जाने के बाद सन् १६०८ में फैक्ट्रियाँ खोलने की सुविधा प्राप्त करने के लिये कैप्टेन विलियम हॉकिंस को भारत भेजा गया। विलियम हॉकिंस सर जॉन हॉकिंस का भतीजा था। जब विलियम भारत पहुँचा उस समय यहाँ मुगल सम्राट् जहाँगीर शासन कर रहा था। जहाँगीर ने कैप्टेन विलियम का १६०९ में अपने दरबार में स्वागत किया और उसकी प्रार्थना पर अग्रेजो को सूरत में बस जाने की आज्ञा दे दी। सूरत के व्यापारियों ने अग्रेजो को दी गई सुविधा का विरोध किया। उधर पुर्तगाली अपने शत्रुतापूर्ण कारनामो में सलग्न थे। इसपर जहाँगीर ने अग्रेजो को दी हुई सुविधा रद्द कर दी। विलियम हॉकिंस सन् १६११ में आगरा से चला गया। [मि० च० पा०]

हॉकिंस, सर जॉन यह एक अग्रेज एडमिरल था। इसका जन्म प्लिमथ में सन् १५३२ में हुआ तथा इसकी मृत्यु पोर्टोरीको के पास समुद्र में १२ नवंबर, १५९५ को हुई। इसका पिता विलियम हॉकिंस था। बचपन से जॉन अपने परिवार के जहाजों पर ही पला था और उसे नाविक जीवन का काफी ज्ञान हो गया था। एलिजबेथ के समय मे समुद्रीय व्यापारमार्गों की खोजबीन तथा लूटपाट का बडा जोर था। इसमें जॉन हॉकिंस ने सक्रिय भाग लिया। यह अपने जहाज में गिनी तट पर पहुँचा, वहाँ पुर्तगालियों को लूटा तथा बहुत से हब्शियों को पकड लाया। इन हब्शियों को उसने स्पेन के अमरीकी उपनिवेशों में छुपाकर पहुँचा दिया। अमरीका में हब्शी दासों का व्यापार सर जॉन ने ही शुरू किया। सन् १५६२-१५६३ में उसने अपनी प्रथम जलयात्रा सफलतापूर्वक समाप्त की। अगले वर्ष उसने एक ऐसी ही यात्रा और की इससे उसकी काफी ख्याति हो गई और उसे कुछ पुरस्कार भी मिले। इसी बीच अंग्रेजों की स्पेन से काफी स्पर्धा बढ गई थी। इसलिये सन् १५६७ में सर जॉन हॉकिंस पुनः अपनी जलयात्रा के लिये चल पडा। इस बार फिर उसने बहुत से हब्शियों को और समुद्र में कुछ स्पेनियों को पकड लिया और मेक्सिको के बदरगाह वीराक्रूज में प्रविष्ट हो गया। दुर्बल स्पेन अधिकारियों ने उसके प्रवेश पर कोई विरोध नहीं किया। सर जॉन के दुर्भाग्य से इसी समय स्पेनियों की एक शक्तिशाली सेना वहाँ

के हाइड्रोजनीकरण से भी ऐसे ही उत्पाद प्राप्त हुए हैं। ईंधन तेल, डीजल तेल तथा मोटर और वायुयानों के पेट्रोल का उत्पादन इस प्रकार किया जा सकता है। ऐसी विधि एक समय अमरीका में प्रचलित थी पर ऐसे उत्पाद के मँहगे होने के कारण इनका उपयोग आज सीमित है। यदि प्रयोग किया जानेवाला पदार्थ प्रयोगात्मक ताप पर गैसीय हो तो हाइड्रोजनीकरण के लिये उस पदार्थ और हाइड्रोजन के मिश्रण को, जिसमें हाइड्रोजन की मात्रा अधिक रहे, एक नली या आसवन फ्लास्क में रखे उत्प्रेरक से होकर प्रवाहित करने से उत्पाद प्राप्त कर सकते हैं। असतृप्त द्रवों का हाइड्रोजनीकरण सुगमता से तथा सरल रीति से संपन्न होता है। द्रव तथा सूक्ष्मकणात्मक उत्प्रेरक को एक आसवन फ्लास्क में भली भाँति मिलाकर तैल ऊष्मक में गरम करते और बराबर हाइड्रोजन प्रवाहित करते रहते हैं। यद्यपि इस प्रयोग में हाइड्रोजन अधिक मात्रा में लगता है, क्योंकि कुछ हाइड्रोजन यहाँ नष्ट हो जाता है, फिर भी यह विधि सुविधाजनक है। यदि इसमें एक प्रकार का यंत्र प्रयोग में लावें, जिससे अवशोषित हाइड्रोजन की मात्रा मालूम होती रहे, तो अच्छा होगा तथा इससे रसायनिक क्रिया किस अवस्था में है इसका ज्ञान होता रहेगा। कुछ हाइड्रोजनीकरण दबाव के प्रभाव में शीघ्रता से पूर्ण हो जाता है। इसके लिये पात्र ऐसी धातु का बना होना चाहिए जो दबाव का सहन कर सके।

साधारणतः ताप के उठाने से हाइड्रोजनीकरण की गति बढ जाती है। पर इससे हाइड्रोजन का आंशिक दबाव कम हो जाता है, जिसके फलस्वरूप विलायक का वाष्प दबाव बढ़ जाता है। अतः हर प्रयोग के लिये एक अनुकूलतम ताप होना चाहिए। हाइड्रोजनीकरण की गति और दबाव की वृद्धि में कोई सीधा संबंध नहीं पाया गया है। निकेल उत्प्रेरक के साथ देखा गया है कि दबाव के प्रभाव से उत्पाद की प्रकृति भी कुछ बदल जाती है। हाइड्रोजनीकरण पर उत्प्रेरक की मात्रा का भी कुछ सीमा तक प्रभाव पड़ता है। उत्प्रेरक की मात्रा की वृद्धि से हाइड्रोजनीकरण की गति मे कुछ सीमा तक तीव्रता आ जाती है। कभी कभी देखा जाता है कि उत्प्रेरक के रहते हुए भी हाइड्रोजनीकरण रुक जाता है। ऐसी दशा में उत्प्रेरक को हवा अथवा ऑक्सीजन की उपस्थिति में प्रक्षुब्ध करते रहने से क्रिया फिर चालू हो जाती है। कुछ पदार्थ उत्प्रेरक विरोधी अथवा उत्प्रेरक विष होते हैं। गंधक, आर्सेनिक तथा इनके यौगिक और हाइड्रोजन सायनाइड उत्प्रेरक विष है। पारद और उसके यौगिक अल्प मात्रा में कोई विपरीत प्रभाव नही उत्पन्न करते पर बड़ी मात्रा मे विष होते हैं। अम्ल थोडी मात्रा मे क्रिया की गति को बढ़ाते हैं। आधुनिक अध्ययनो से पता चलता है कि बेंजीन का हाइड्रोजनीकरण प्लेटिनम कालिख की उपस्थिति मे पीएच पर निर्भर करता है, अम्लीय अवस्था मे अधिक तीव्र तथा क्षारीय दशा में प्राय. नही के बराबर होता है।

उत्प्रेरको के प्रभाव में इतनी भिन्नता है कि इनके संबंध में कोई निश्चित मत नही दिया जा सकता। साधारण हाइड्रोजनीकरण के लिये प्लेटिनम, धातुओ के ऑक्साइड, पैलेडियम, स्ट्रांशियम कार्बोनेट, सनियकृत कार्बनचूर्ण और नीकेल विशेष रूप से प्रयुक्त होते हैं। एल्कोहॉल, ऐसीटिक अम्ल, एथिल ऐसीटेट उत्कृष्ट तथा अनुकूल माने जाते हैं।

हाइड्रोजनीकरण बड़े महत्व का तकनीकी प्रक्रम आज बन गया है। पाश्चात्य देशो में तेलो से मारगरीन, भारत में तेलो से वनस्पति घी, कोयले से पेट्रोलियम, अनेक कार्बनिक विलायको, प्लास्टिक माध्यम, लंबी शृंखलावाले कार्बनिक यौगिकों — जिनका उपयोग पेट्रोल या साबुन बनाने में आज होता है — हाइड्रोजनीकरण से तैयार होते हैं। ह्वेल और मछली के तेलों के इस प्रकार हाइड्रोजनीकरण से मारगरीन और मूँगफली के तेल से कोटोजेम, नारियल के तेल से फोकोजेम और मूँगफली के तेल से डालडा आदि बनते हैं। हाइड्रोजनीकरण के लिये एक निश्चित ताप १००° सें० से २००° सें० और निश्चित दबाव १० से १५ वायुमंडलीय अच्छा समझा जाता है।

एथिलीन सदृश युग्मबंधवाले, ऐसीटिलीन सदृश त्रिकबंधवाले और कीटोनसमूहवाले यौगिक शीघ्रता से हाइड्रोजनीकृत हो जाते हैं। ऐसे यौगिकों में यदि एल्किल समूह जोडा जाय तो हाइड्रोजनीकरण की गति उनके भार के अनुसार धीमी होती जाती है। ऐरोमैटिक वलय वाले यौगिक उतनी सरलता से हाइड्रोजनीकृत नही होते। उच्च ताप पर हाइड्रोजनीकरण से वलय के टूट जाने की संभावना रहती है। ऐसा कहा जाता कि ट्रांस रूप की अपेक्षा सिस रूप का हाइड्रोजनीकरण अधिक तीव्रता से होता है, पर इस कथन की पुष्टि नहीं हुई है। [द० सिं०]

हाइड्रेजोइक अम्ल (HN_3) इसे ऐज़ोइमाइड (Azoimide) भी कहते हैं। यह हाइड्रोजन और नाइट्रोजन का यौगिक है तथा विस्फोटक होता है। इसके लवण ऐजाइड (Azide) भी विस्फोटक होते हैं पर अम्ल से कम। इसका एक महत्वपूर्ण लवण लेड ऐज़ाइड (Lead azide) है जो विस्फोटकप्रेरक (detonators) और समाघात-पिधानों (percussion cups) मे विस्फोटक के चालू करने में प्रयुक्त होता है। ग्रीस (Griess) द्वारा १८६६ ई० में, जब वे डायज़ो यौगिकों का अध्ययन कर रहे थे, इसका कार्बनिक व्युत्पन्न (Organic derivative) पहले पहल तैयार हुआ था। स्वयं अम्ल का निर्माण १८९० ई० में टी० कर्टियस (T. Curtius) द्वारा हुआ था। पीछे लगभग २००° सें० पर सोडामाइड पर नाइट्रस ऑक्साइड की क्रिया से यह प्राप्त हुआ। $NaNH_2 + N_2O \rightarrow NaN_3 + H_2O$। आज इसके तैयार करने की अनेक विधियाँ ज्ञात हैं जिनसे सावधानी से तैयार करने में अच्छी उपलब्धि हो सकती है।

यह अम्ल वर्णहीन द्रव है जो ३७° सें० पर उबलता है तथा आघात से बड़े जोरो से विस्फोट करता है। इसमे विशिष्ट गंध होती है। इसके वाष्प से सिर दर्द होता है और श्लेषमल झिल्ली आक्रांत होती है। इसके लवण क्लोराइड जैसे होते हैं। यह दुर्बल अम्लीय होता है।

इसकी संरचना के संबंध में अनेक वर्षों तक विवाद चलता रहा। कुछ लोग इसे चक्रीय सूत्र देने के पक्ष में थे और कुछ लोग विवृत शृंखलासूत्र के पक्ष में थे, पर आज विवृत शृंखलासूत्र ही सर्वमान्य

(४) यदि प्रतिपक्ष दल के तीन खिलाड़ियों के न होते हुए कोई आक्रामक दल का खिलाड़ी अनुचित लाभ उठाने के लिये गोल रेखा के समीप चला जाता है तो वह आफ साइड्स समझा जाता है।

(५) साइड लाइन से यदि गेंद सीमारेखा से बाहर चली जाती है तो उसके विरोधी को गेंद रोल (लुढ़कावे) करने का अवसर मिलता है। लेकिन रोलिंग करते समय तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(क) गेंद हाथ से छूटते ही ६" के भीतर जमीन पकड़ ले।

(ख) सात गजवाली रेखा के भीतर किसी भी खिलाड़ी को नहीं रहना चाहिए।

(ग) हाथ से बाल छूटने पर ही कोई खिलाड़ी अंदर आ सकता है।

यदि गोल रेखा से होता हुआ रक्षक दल से कोई भी गेंद कोड़ा स्थल से बाहर चला जाता है तो आक्रामक दल को कारनर लगाने का अवसर मिलता है। और यदि आक्रामक दल से बाहर चला जाता है तो रक्षक दल को फ्री हिट लगाने का अवसर मिलता है।

इस खेल में दो रेफरी होते हैं तथा दो रेखा निरीक्षक, साथ ही दो गोल निरीक्षक की भी व्यवस्था है।

इस खेल के लिये समय की व्यवस्था ३५-३५ मिनट के दो चक्रों की है। बीच में अधिक से अधिक ५ मिनट का अवकाश होना चाहिए। इसके अतिरिक्त दोनो दल के कप्तानों के आपसी समझौते से भी समय निर्धारित किया जाता है।

ओलंपिक खेलों की शृंखला में हाकी खेल भी सन् १९०८ में एक कड़ी की भाँति जोड़ा गया। १९२८ में पहली बार भारत ने इस खेल में भाग लिया तब से १९६० के पहले के ओलंपिक में भारत ने सर्वजेता का संमानित स्थान प्राप्त किया। इसका रिकार्ड निम्नलिखित है —

१९२८	भारत
१९३२	भारत
१९३६	भारत
१९४८	भारत
१९५२	भारत
१९५६	भारत
१९६०	पाकिस्तान तथा भारत द्वितीय रहा।
१९६४	भारत तथा पाकिस्तान द्वितीय।
१९६८	पाकिस्तान, भारत का तृतीय स्थान।

इसके अतिरिक्त एशियाई खेल समारोह में भी भारत का स्थान सर्वोपरि रहा। विश्वमेला में १९६६ में हैंपवर्ग में भारत ने सर्वजेता का स्थान ग्रहण किया है।

भारतवर्ष में भी हॉकी की अच्छी प्रतियोगिताएँ होती हैं जिनमें 'नेशनल हॉकी चैंपियनशिप' १९२८ में प्रारम हुआ। (स्वर्गीय श्री रामस्वामी के यादगार स्वरूप 'रामस्वामी कप')। इसमें देश की अच्छी अच्छी टीमें भाग लेती हैं लेकिन मुख्य रूप से सर्विसेज, रेलवेज, पंजाब पुलिस इत्यादि टीमों का स्थान सर्वोपरि है।

दूसरी प्रतियोगिता 'बेटन कप' (Beighton Cup) कलकत्ता की है जो १८९५ ई० में ही प्रारंभ की गई थी।

तीसरी प्रतियोगिता 'आगाखान कप', बंबई, के नाम से प्रसिद्ध है, जो १९३४ ई० में प्रारंभ की गई।

इसके अतिरिक्त महिलाओं के लिये भी 'वीमेंस नेशनल हॉकी चैंपियनशिप' (Women's National Hockey Championship) प्रतियोगिता होती है जिसमें प्रत्येक प्रदेश की महिला टीमें भाग लेती हैं। यह सन् १९३८ से प्रारंभ हुई।

नेहरू शील्ड प्रतियोगिता १९६२ से प्रारंभ हुई है जो दिल्ली में होती है। [मा० सि० गौ०]

हाजीपुर बिहार (भारत) के मुजफ्फरपुर जनपद का एक प्रखंड (Subdivision) है। स्थिति २५°२९' से २६°१' उ० अ० तथा ८५°४' से ८५°३९' पू० दे० है। यहाँ का धरातल समतल है और छोटी बड़ी कई नदियाँ बहती हैं और ताल भी हैं। उपमंडल की सबसे बड़ी नदी बया है। इसका मुख्यालय हाजीपुर नगर (जनसंख्या ३४०४४ (१९६१ ई०) गंगा और गंडक के संगम पर, पटना के ठीक सामने लगभग दो तीन मील उत्तर में स्थित है। पूर्वोत्तर रेलवे का यहाँ जंक्शन भी है। यहाँ के केले और लीची विख्यात हैं।

[ज० सि०]

हाथ औजार (हस्तोपकरण, Hand Tools) की श्रेणी में वे सब औजार तथा सामान आते हैं जिनकी सहायता से कारीगर अपने नैपुण्य तथा हस्तकौशल द्वारा अपनी दस्तकारी से संबंध रखनेवाले पदार्थों को वांछित रूप, आकार आदि देते हैं। आधुनिक युग में मशीन औजारों (Machine Tools) का भी एक प्रमुख स्थान है, लेकिन तात्विक दृष्टि से देखने पर वे भी हाथ औजारों की सीमा में ही आ जाते हैं। जब किसी प्रक्रिया को हाथों से, शारीरिक बल की सहायता से औजार द्वारा किया जाता है तब यह औजार हाथ औजार कहलाता है और जब वही प्रक्रिया यांत्रिक प्रयुक्ति द्वारा इंजन बल से संचालित होती है, उसे मशीनी औजार कहते हैं।

यांत्रिक इंजीनियरी के अंतर्गत विभिन्न दस्तकारियों से संबंध रखनेवाले हाथ औजारों का, विविध क्रियाओं के अनुसार, निम्न प्रकार से श्रेणी विभाजन किया जा सकता है : (१) फाड़कर काटनेवाला, (२) चीरनेवाला, (३) खुरचनेवाला, (४) चोट लगाकर तोड़ फोड़ करनेवाला, (५) पकड़नेवाला, (६) दबाने और घोपनेवाला, (७) कसकर खींचनेवाला और (८) नापने तथा निशानबंदी करनेवाला औजार। इसके अतिरिक्त गणना करनेवाले उपकरण, जैसे स्लाइड रूल, गणनायंत्र, प्लेनोमीटर आदि, भी औजार ही हैं पर इनका वर्णन इस निबंध के क्षेत्र के बाहर है।

फाड़कर काटनेवाले औजार — ऐसे काटनेवाले औजार चाकू, फन्नी और छेनी हैं। कोमल वस्तुओं, जैसे फल फूल, साग सब्जियों के काटने में चाकू का, लकड़ी काटने में फन्नी का और धातुओं के काटने में छेनी

था पहुँची और उसने जॉन पर आक्रमण कर दिया। सर जॉन अपने कुल का जहाज लेकर वहाँ से बच निकला और इंगलैंड वापस चला गया।

इसके कुछ वर्षों बाद तक वह फिर समुद्र पर नहीं गया। वह अंग्रेजी नौसेना का क्रमशः कोषाध्यक्ष तथा नियंत्रक बना। तत्पश्चात् वह आजीवन नौसेना का एक मुख्य प्रशासनिक अधिकारी बना रहा। सन् १५८८ में इसने स्पेन के प्रसिद्ध 'आरमाडा' के विरुद्ध रियर-एडमिरल के रूप मे युद्ध किया। 'आरमाडा' के परास्त होने पर वह 'नाइट' बना दिया गया। सर जॉन के अंतिम दिन असफलता की यातना में बीते। सन् १५९० में इसे पुर्तगाल के तट पर स्पेनी जहाजों का धन लूटने के लिये भेजा गया और १५९५ में वह पुनः अपने चचेरे भाई ड्रेक के साथ धनपूर्ण जहाजों को लूटने के लिये वेस्ट इंडीज की ओर जलयात्रा पर गया। ये दोनों ही यात्राएँ विफल सिद्ध हुईं। [मि० चं० पा०]

हॉकी (Hockey) इस खेल का नाम हॉकी होने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह पाश्चात्य खेल है, पर जहाँ अन्य खेलों के विजेता पाश्चात्य राष्ट्र रहे हैं वहाँ विश्व में हॉकी खेल में सर्वजेता भारत ही है।

इस खेल को खेलने के लिये दो दलों का होना आवश्यक है। प्रत्येक दल में ११, ११ खिलाड़ी रहते हैं तथा उनके स्थान के विभाजन निम्नलिखित प्रकार से होते हैं—५ अग्रिम पंक्ति (आक्रामक) ३ सहायक पंक्ति (रक्षात्मक, Half backs), २ रक्षक पंक्ति (Backs) तथा गोलरक्षक (Goal Keeper)। कप्तान को यह अधिकार है कि वह उनका स्थान अपने दल के हित में बढ़ा घटा या बदल सकता है।

इस खेल का क्रीडास्थल आयताकार होता है, जिसकी लंबाई १०० गज तथा चौड़ाई अधिक से अधिक ६० गज तथा कम से कम ५५ गज अवश्य होनी चाहिए। पूरे क्रीडास्थल को दो भागों मे बराबर बराबर विभक्त कर दिया जाता है। इसकी सीमारेखाएँ ३" (इंच) चौड़ी रेखा से बनाई जाती हैं। लंबाई की रेखा को बगल बगल की रेखा (Side lines) तथा चौड़ाई की रेखा को गोल रेखा (Goal lines) के नाम से पुकारा जाता है। क्रीडा स्थल के चारों कोने पर ४' फुट ऊँची झंडी लगा देनी चाहिए, साथ ही मध्य रेखा तथा २५ गजवाली रेखा की सीध में भी 'साइड लाइन्स'। पार्श्वरेखा से १ गज की दूरी पर झंडियाँ लगा देनी चाहिए।

मध्य में 'गोल' बनाया जाता है जो १२ फुट चौड़ा और ७ फुट ऊँचा होता है एक जाली भी गोल में बँधी होनी चाहिए। गोल के बाहर अधिक से अधिक ४८ सेमी ऊँचा 'गोलबोर्ड' लगा देना चाहिए।

गोल रेखा से १६ गज की दूरी पर क्रीडा क्षेत्र के अंदर की ओर ४ गज की, गोल क्षेत्र के समांतर ३" मोटी सफेद सीधी रेखा खींच देनी चाहिए और गोल के खंभों से दोनों तरफ १६ गज का चाप काट करके उस रेखा मे गोलाई से मिला देना चाहिए। इसको 'रिंग 'डी' एवं स्ट्राइकिंग सरकिल कहते हैं।

इस खेल की गेंद सफेद चमड़े की बनी होनी चाहिए। गेंद का वजन अधिक से अधिक ५$\frac{3}{4}$ औंस और कम से कम ५$\frac{1}{2}$ औंस होना चाहिए। गेंद की परिधि ९$\frac{1}{4}$" से अधिक तथा ८$\frac{13}{16}$" से कम नहीं होनी चाहिए।

इस खेल को खेलने की स्टिक (stick) का बाएँ हाथ के सामने का भाग समतल होता है तथा उसका किनारा गोला होना चाहिए। हाकी स्टिक का पूरा वजन २८ आउंस से अधिक तथा १२ आउंस से कम नहीं होना चाहिए तथा स्टिक की चौड़ाई एवं मोटाई उतनी ही होनी चाहिए जो दो इंच की परिधि से निकल सके।

सेंटर लाइन पर दोनों तरफ के फारवर्ड्स खड़े हो जाएँगे। गेंद क्रीडा स्थल के मध्य में रख दिया जाएगा तथा दो खेलाड़ी जिन्हें फारवर्ड सेंटर कहा जाता है गेंद के ऊपर तीन बार स्टिक मिलाएँगे उसके बाद खेल प्रारंभ समझा जाएगा। इस क्रिया को बुल्ली (bully) कहा जाता है। बुल्ली होते समय ५ गज तक कोई खिलाड़ी वहाँ नहीं रहता। गोल के बाद तथा मध्यांतर के बाद गेंद प्रारंभ की भाँति ही केंद्र में रखा जाता है और बुल्ली की जाती है। गोल सरकिल के अंदर पेनाल्टी बुल्ली को छोड़ किसी भी प्रकार की बुल्ली ५ गज के भीतर नहीं ली जाएगी। नियमभंग पर फ्री हिट या संदिग्ध अवस्था में रेफरी पुन बुल्ली करने की आज्ञा दे सकता है।

नियम — हाकी स्टिक का सामनेवाला समतल भाग ही खेलते समय गेंद मारने के लिये प्रयोग किया जाएगा। कोई भी खिलाड़ी स्टिक को अपने कंधे से अधिक ऊँची खेलते समय नहीं उठाएगा तथा गेंद को स्टिक से इस तरह नहीं लगाया जाएगा कि वह खतरनाक हो, साथ ही अंडरकट हो। बाल को उछालना (स्कुप करना) वहीं तक उचित है जहाँ तक स्कुप किया हुआ गेंद खतरनाक न हो साथ ही अंडरकट या गलत ढंग से स्कुप न किया गया हो। शरीर के किसी अंग से गेंद रोका नहीं जा सकता। केवल हाथ से गेंद रोका जा सकता है अपेक्षाकृत गेंद गिरते ही उसपर चोट स्टिक द्वारा लग जानी चाहिए। किसी भी प्रतिपक्ष दल के खिलाड़ी को गलत ढंग से उसके खेल में बाधा पहुँचाना नियम विरुद्ध है। गोलकीपर गोल सरकिल के अंदर हाथ से या किसी अंग से गेंद रोक सकता है, मार सकता है लेकिन बाल को दो सेकंड से अधिक अपने पास पकड़कर रख नहीं सकता। पेनाल्टी बुल्ली के समय गोलकीपर को भी यह अधिकार नहीं रह जाता है। पेनल्टी बुल्ली के समय गोलकीपर ग्लब्स (दस्ताना) को छोड़कर सभी पैड इत्यादि को उतार देगा।

नियम — (१) सरकिल के बाहर क्रीडा स्थल में कहीं भी गलती हो जाने पर प्रतिपक्ष दल को हिट लगाने का अवसर मिलता है।

(२) सरकिल के अंदर अपने ही दल के किसी खिलाड़ी से यदि नियमभंग होता है तो उस अपराध के अनुसार कारनर, पेनाल्टी कारनर एवं पेनाल्टी बुल्ली दी जाती है।

(३) कोई भी गोल सरकिल के अंदर से ही प्रतिपक्ष दल द्वारा ही मारे जाने पर होता है।

पतली चादरो में छेद करनेवाला सीधी गलीवाला बरमा 'छ' में दिखाया गया है।

चित्र ३

विविध आकृति के बरमें

चूड़ी काटने के औजार — (Threading Tools) — बाहरी चूडी काटने की चटाली चित्र २ (छ) में और भीतरी चूडी काटने की चटाली चित्र २ (ज) में दिखलाई गई है। डाइ और टैप द्वारा भी चूड़ियाँ बनाई जाती हैं। चित्र ४ क, ख, ग में हाथ संचालित टैप हैं। टैप हाथ से और मशीनों से भी चलाए जाते हैं। मशीनी टैपों के ऊपरी भाग में उन्हे पकड़ने के लिये बरमो के समान व्यवस्था रहती है। हाथ से चलाने के टैपो के विविध अंगों के आकार अनुभव के आधार पर विशेष अनुपातानुसार बनाए जाते हैं।

टैपो में गलियाँ बनाना — $\frac{1}{16}$" से $\frac{1}{2}$" व्यास तक के टैपों में अक्सर ३ गलियाँ, $\frac{9}{16}$" से $1\frac{1}{8}$" व्यास तक के टैपों में ४ गलियाँ और $1\frac{1}{8}$" से ३" व्यास तक के टैपो में ६ गलियाँ बनाई जाती हैं। अधिक सख्या में तथा गहरी गलियाँ बनाने से टैप कमजोर हो जाता है।

डाइयाँ — बाहरी चूडी काटने की डाइयों की आकृतियाँ चित्र ४ के 'ज' 'झ' 'ट' तथा 'ठ' अनुभागों में दिखाई गई हैं। 'ज' में दो आयताकार गुटको में बीच में आधा आधा कर, चूड़ी काटने के दाँते बनाए गए हैं। मुलायम धातु के पेचो में बारीक चूड़ियाँ काटने के लिये आकृति 'झ' की डाई का प्रयोग किया जाता है। 'ट' मे छह पहल के नट के आकार की डाई दिखाई गई है, जो पुरानी बनी चूड़ियो को साफ करने में काम आती है तथा 'ठ' डाई वैज्ञानिक उपकरणो मे बारीक पेंचो में चूड़ियाँ डालने के काम की है।

बसुला — यह बढ़ई का प्राचीन औजार है, जो लकडी को फाडकर काटता है (देखें चित्र ५ क) इसकी आकृति से ही इसके अंतर कोण, नोक कोण और निकास कोण का होना स्पष्ट हो जाता है।

रंदा — लकडी को थोड़ा छीलने के लिये रदे का उपयोग होता है। धातुओ को छीलकर समचौरस करने के लिये रदा मशीन काम

चित्र ४

चूडी काटने के टैप और डाइयाँ

आती है। खराद मशीन में काटते समय चटाली दाहिने से बाएँ चलती है। अत. उसके पार्श्व निकास कोण को बाएँ से दाहिनी ओर झुकाना पडता है। लेकिन रदे में चटाली की चाल बाएँ से दाहिनी तरफ होती है, अत उसके पार्श्व निकास कोण को खराद से विपरीत दिशा मे बनाना होता है (देखें चित्र ५)।
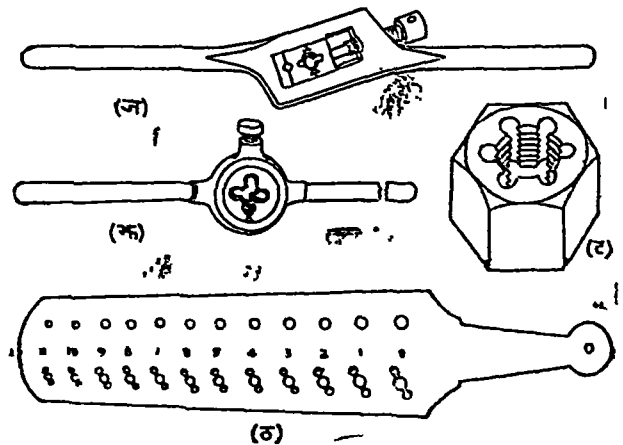
छेनी — हाथ के बल से कटाई करने के प्रसाधनो में छेनियाँ प्रमुख हैं। सीधी छेनियों को चौरासी (Firmer chisel) और गोल, अधगोल और V आकार की छेनियो को रुखानी (Gouge) कहते

का व्यवहार होता है। ये औजार कठोर, चिमड़े और दृढ इस्पात के बने होते हैं। काटने में धार का कोण कैसा रहना चाहिए यह काटी जानेवाली वस्तु की कठोरता पर निर्भर करता है। चाकू से काटने पर लगभग ५° का कोण, फन्नी से काटने पर कम से कम १२° का कोण और छेनी से काटने पर ३०° से ६५° का कोण रहना चाहिए। ऐलुमिनियम काटने के लिये ३०°, ताँबे के लिये ४५°, इस्पात के लिये ५५°-६५° तथा ढले इस्पात के लिये ६५° कोण रहना आवश्यक है। औजार की नोक को, काटे जानेवाले पदार्थ पर, कटाई की जगह उचित प्रकार से थामना भी महत्व का है (देखें चित्र १)।
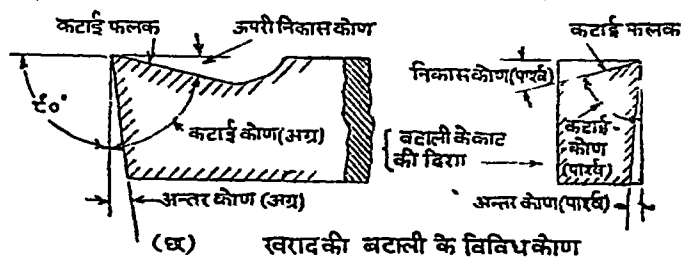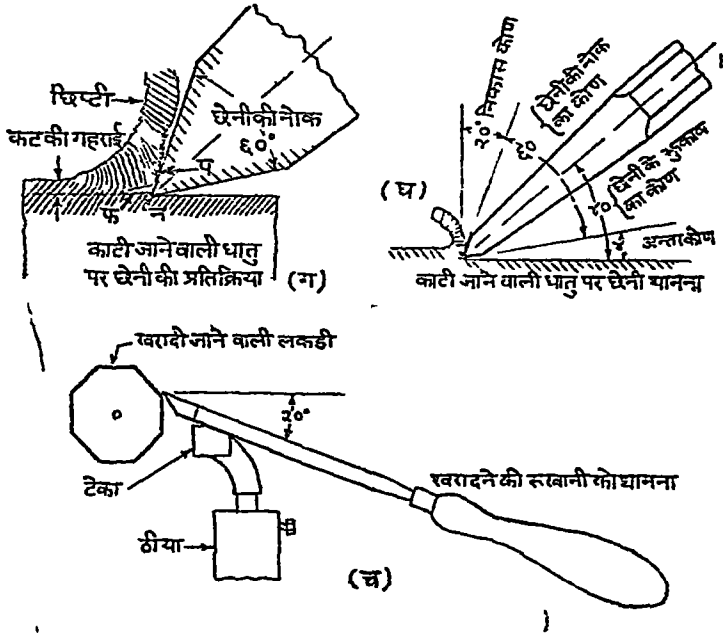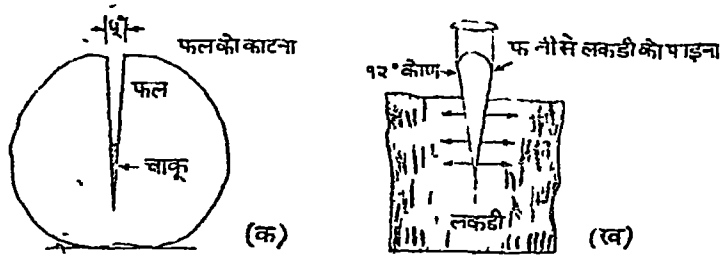
चित्र १

काटने की विभिन्न नोकें

'काटना' शब्द से हम साधारणतया यही समझते हैं कि किसी वस्तु को काटकर दो भाग या छोटे टुकड़े कर देना है पर किसी धातु को छेनी से काटने में हम काटने के बदले फाड़ने की क्रिया ही करते हैं। वस्तुत छेनी से काटने पर तीन क्रियाएँ साथ साथ चलती हैं। एक धातु को फाड़ना, दूसरा छिलन (छिप्टी) को दबाकर दूर करना और तीसरा फाडी हुई खुरदरी जगह को साफ कर चिकना बनाना। काटने में छेनी की मध्य रेखा का झुकाव ४०°, छीलन को तोड़कर अलग करने का निकास कोण (Rake angle) २०° और सतह को चिकना करने का अतर कोण (clearance angle) ४०° चित्र में दिखाया गया है। यही सिद्धात खराद, रदा, बरमा आदि औजारो से पदार्थों के काटनेवाले उपकरणो पर भी लागू होता है (देखें चित्र १)।

धातु के खरादने में बटाली (turning tools) का उपयोग होता है। बटाली की धार का कोण कितना रहना चाहिए यह काटी जानेवाली धातु की प्रकृति पर निर्भर करता है। बटाली की धार बहुत तेज रहने से कोई लाभ नही होता, क्योकि शीघ्र ही वह मोटी हो जाती है। विभिन्न धातुओ के काटने के लिये बटालियो का निकास कोण ०° से ४०° तक रह सकता है। बटालियो की नोक पर अतर कोण उतना ही बनाना चाहिए जितना बिना घर्षण की कटाई के लिये अत्यंत आवश्यक हो। यह ६° से १७ तक हो सकता है। बटालियों की नोकें विविध आकृति की बनाई जाती हैं {देखें चित्र २ (क) से

चित्र २

बटालियो की विभिन्न आकृतियाँ

(ज) तक }। खराद मशीन में काटी जानेवाली वस्तु गोल घूमती है और काटनेवाली बटाली उसकी अपेक्षा स्थिर रहती हुई सीधी रेखा में सरकाई जाती है।

बरमा (Drills)— बरमे से छेद किया जाता है। बरमे की मशीन में काटे जानेवाला पदार्थ स्थिर रहता है और छेदनेवाला औजार अपनी धुरी पर घूमकर और साथ ही बीच की तरफ सरक-कर बेलनाकार छेद बनाता है। बरमे कई प्रकार के होते हैं और उनकी नोकें भी विभिन्न प्रकार की होती हैं (देखें चित्र ३ क से झ तक)। इनमें कटाई के सिद्धात प्राय वे ही हैं जो ऊपर दिए हुए हैं। प्रत्येक बरमे में काटनेवाली धारो का कम से कम दो होना आवश्यक है, जो १८०° के अंतर पर हो। साधारण बरमा आकृति 'क' का होता है, लोहा छेदने का बरमा चिपटी आकृति 'ख' का और इंजनचालित बरमो की आकृति 'ज', 'घ' और 'च' किस्म की होती है। गहरे छेद के लिये बरमे की आकृति 'ज', किस्म की और सीधा चौरस छेद करनेवाला बरमा 'झ' आकृति का होता है।

(Bastord) रेती या दर्रा रेती तथा पालिश करने के लिये साफी (Smooth) रेती काम में आती है।

खुरचनी (Scraper) — धरातल को चौरस बनाने में कुछ त्रुटियाँ रह जाती हैं। इन त्रुटियों को खुरचनी से दूर किया जाता है। खुरचनी भिन्न भिन्न तलों के लिये भिन्न भिन्न आकार की होती है। ऐसी कुछ खुरचनियाँ चित्र ६–७ में दिखाई गई हैं।

रीमर (Reamer) — बरमा द्वारा छेद किया जाता है। बरमे में काटने के लिये नोक और धार होती है। बरमे द्वारा बनाए

चित्र ९

आरियाँ और मिलिंग कटर

छेद की कभी कभी सफाई करने की आवश्यकता पड़ती है। यह काम रीमर द्वारा किया जाता है। रीमर में नोक और धार नहीं होती। इनमें केवल धारियाँ होती हैं जो धातु को खुरचकर साफ और चिकना बनाती हैं। इन्हें धीरे धीरे दबाते हुए छेद में किसी हैंडिल की सहायता से सीधा रखकर घुमाना पड़ता है।

डुरी (Drift) — चौकोर तथा आयताकार छेद बनाने के लिये यदि अनुकूल यंत्र न हो तो पहले बरमे से गोल छेद कर छेनी और रेती की सहायता से उन्हें वांछित आकार में छाँटकर उनमें उसी आकार की सही बनी हुई एक गुल्ली ठोक देते हैं। किनारे से खुरची जाकर या छिलकर फालतू धातु हट जाती है और वह साँचा या छेद उसी गुल्ली की नाप का सही बन जाता है।

ब्रोचिंग (Broaching) — किसी छेद को वांछित आकार या

चित्र १०

सानचक्रियाँ और पेषण गिल्लियाँ

नाप का बनाने के लिये गुल्लियों के स्थान में अब ब्रोचिंग का व्यवहार होता है। यह प्रक्रिया दाँतयुक्त एक छड़ को किसी छेद में दबाकर तथा उसमें से किसी यंत्र की सहायता से खींचकर की जाती है। उस छड़ के दाँत अवांछित धातु को थोड़ा थोड़ा खुरचकर हटा देते हैं। भिन्न भिन्न धातुओं को काटने के लिये ब्रोच के दाँत भिन्न भिन्न आकार के होते हैं (देखें चित्र ८)।

हैं। इनकी नोकें और बनावट भिन्न भिन्न प्रकार की होती है जैसा

चित्र ५

बढ़ई और फिटरो की छेनियाँ और रुखानियाँ

(चित्र ५) में दिखलाया गया है। बढ़ई और फिटरो की छेनियाँ भिन्न भिन्न प्रकार की होती है।

काटनेवाला औजार — काटनेवाले औजारो में कैंची और

चित्र ६–७

रेतियाँ और खुरचनी

छेदक (Punch) महत्व के हैं, जो अपरूपक बल (Shearing force) से काम करते हैं। छेदक के ही परिष्कृत रूप आधुनिक प्रकार की विविध डाइयाँ हैं (देखें चित्र ६)। खुरचकर काटनेवाला औजार रेती है जिसे चलाने के समय कारीगर इसे रेती जानेवाली सतह पर, अपने हाथो से नीचे को दबाते जाते हैं और साथ ही साथ आगे को ढकेलते भी जाते हैं। दबाने से इसके दाँते रेते जानेवाले पदार्थ में हलके से चुभते हैं और ढकेलने से उक्त चुभी हुई मात्रा की गहराई के पदार्थ को खुरचकर हटा भी देते हैं।

रेतियो का निर्माण विशेषज्ञों का काम है। रेतियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। ऐसी एक रेती को 'क्रासकट' रेती कहते हैं। रेतियो के परिच्छेद विविध प्रकार के होते हैं। जैसे चित्र ६–७ में दिखाए गए हैं। रेतियो के दाँतो की मोटाई के अनुसार भी वे कई वर्गों में बाँटी जा सकती हैं। लकड़ी, सीसा आदि मुलायम धातुओं को रेतने के लिये

चित्र ८

ब्रोच

मोटे दानेवाली 'रैस्प' (Rasp) रेता, उससे बारीक रेती बस्टर्ड

कणों की कठोरता, बारीकी तथा उनके बंधक पदार्थ की बारीकी पर ध्यान देना पडता है।

दबाकर, खींचकर अथवा थोपकर आकृति प्रदान करनेवाले औजार — धातुओं में कुछ न कुछ रुद्धता, नम्यता और आघात-

चित्र १४

विविध हथौड़े और घन

वर्धनीयता अवश्य होती है। इन्हीं गुणों के आधार पर अनेक वस्तुएँ बनाई जाती हैं। इन वस्तुओं के बनाने में जो औजार काम आते हैं, उनमें पंच और डाई प्रमुख हैं।

पंच और डाई कई प्रकार के होते हैं। कुछ डाई में से खींचने (drawing), का काम लिया जाता है। कुछ डाई किनारा मोडनेवाली, कुछ कुतल (curbing) डाई, कुछ तार डालनेवाले डाई (wiring) तथा कुछ डाई फुलानेवाले (bulging) होते हैं। डाई वहाँ ही काम आते हैं जहाँ एक ही आकृति का सामान बहुत अधिक संख्या में बनाया जाता है। यदि एक आकृति की दो चार वस्तुएँ बनानी हो, तो डाई की आवश्यकता नहीं पडती। यह काम 'धातु कताई' (metal spinning) से संपन्न होता है।

धातुकताई — इस प्रक्रिया में चौरस चादर को उपयुक्त प्रसाधनो से युक्त खराद पर चढाकर, हाथ से दबाव डालने के लबे लबे औजारो द्वारा दबा और झुकाकर गोल फुला दिया जाता है। यह प्रक्रिया कुम्हार के चाक के प्रयोग से मिलती जुलती है। ऐसे औजार अनेक आकार और प्रकार के होते हैं, जैसा चित्र ११ मे दिखलाया गया है।

चमकाना (Barnishing) — धातुओं पर चमक चढ़ाने के अनेक उपाय हैं, सामान्यत सान या खराद से भी चमक चढाई जा
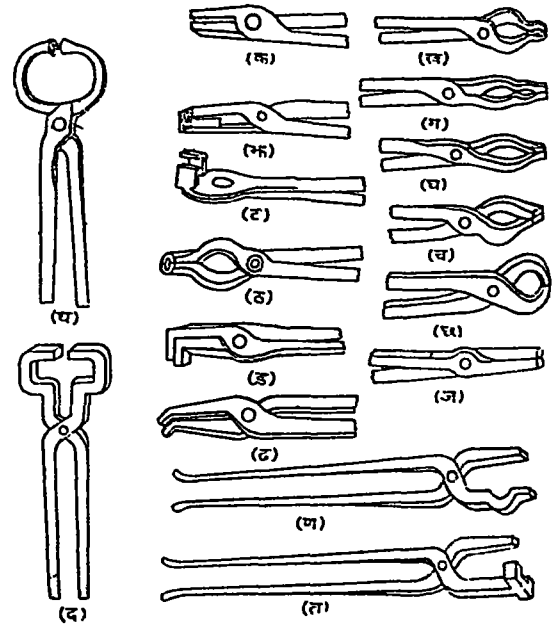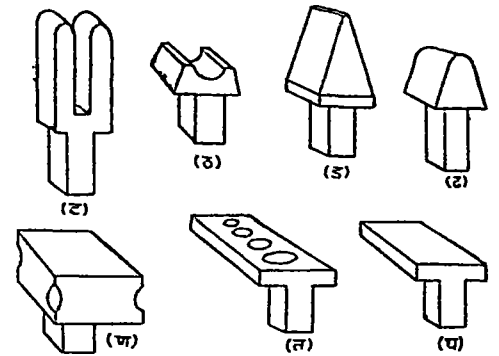
चित्र १५-१६

निहाई, सडसा और चिमटे

सकती है, पर टेढी मेढी और वेलबूटेवाले पदार्थों पर चमक चढ़ाने के लिये विशेष औजारों की जरूरत पडती है। ऐसे अनेक प्रकार के औजार बने हैं जो चित्र १२ मे दिए हुए हैं।

आरी (Saw) — आरी चीरनेवाली, खाँचा काटनेवाली, गोल छेद आदि वक्र आकृतियाँ काटनेवाली, कई प्रकार की होती है। इनके अतिरिक्त गोल चक्राकार तथा पट्टनुमा आरियाँ भी होती हैं जो यत्रो द्वारा चलाई जाती हैं। लकडी के अतिरिक्त लोहा, पीतल आदि धातुएँ भी आरियो से काटी जाती हैं, लेकिन गरम लोहा सदैव चक्राकार या पट्ट आरी से ही काटा जाता है। थोड़े
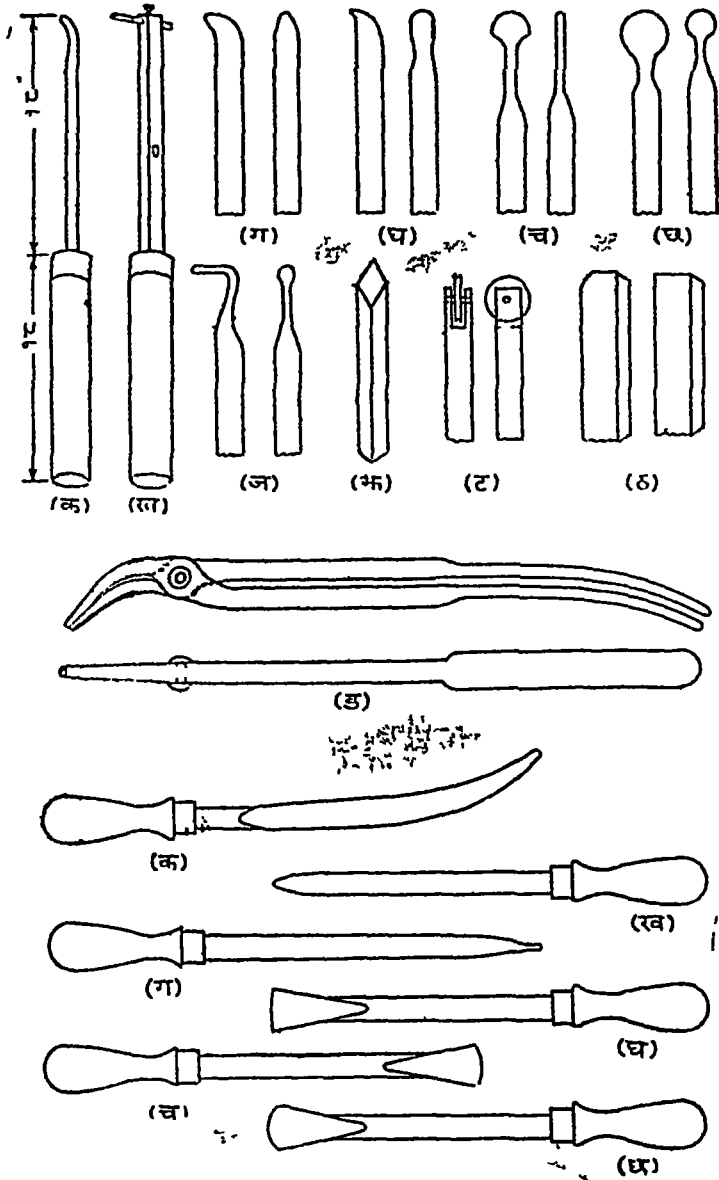
चित्र ११-१२
धातु कताई और चमकाने के औजार

तथा हलके काम के लिये एक फ्रेम में लगाकर हाथ से भी आरी चलाई जाती है, जिसकी आकृति चित्र ६ में दिखाई गई है। लोहा काटने की हाथ आरियों में बहुधा १८ दाँत, ताँबे और पीतल की नालियाँ काटने के लिये २४ दाँत और बारीक चीजें चीरने के लिये ३२ दाँत प्रति इंच बनाए जाते हैं।

मिलिंग कटर (Milling Cutter) — आधुनिक मिलिंग कटर गोल चक्राकार आरी का ही परिष्कृत रूप है, जो स्वयं घूमकर धीरे धीरे थोडी थोड़ी धातु को खुरचकर काटता है। विचित्र आकृतिवाली वस्तुओ को चीरने का काम, जो अन्य आरियो से नही किया जा सकता, उसे मिलिंग कटर से करते हैं। मिलिंग कटर आज अनेक प्रकार के बनाए गए हैं जिनके दाँतो की रचना भिन्न भिन्न प्रकार की होती है (देखें चित्र ६)।

चूडीकाट (Chaser) खराद से चूड़ियाँ काटने पर उनमें सफाई नही आती। खराद के ठीये (Cool holder) में रुखानी के स्थान पर चूडीकाट बाँध दिया जाता है। चूडीकाट में कघी के समान
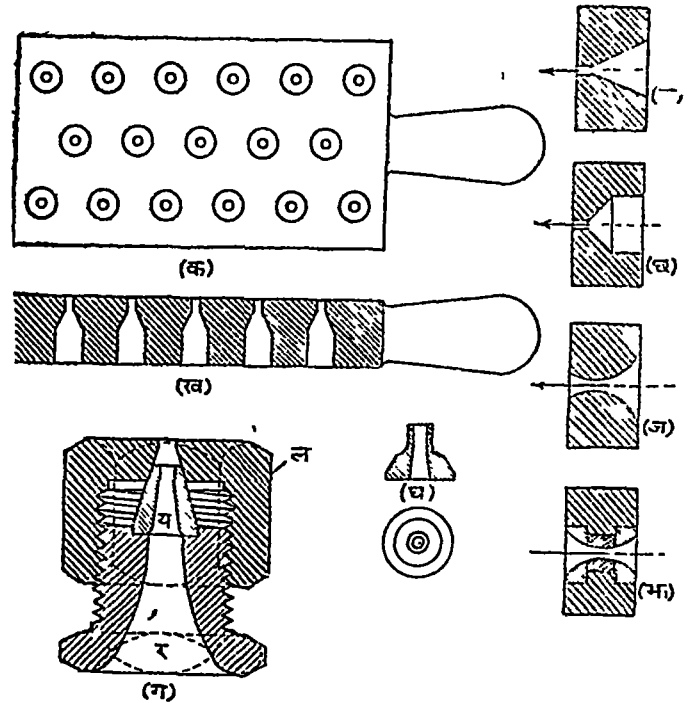
चित्र १३
तार खींचने की डाइयाँ

कुछ दाँत बने होते हैं। इन दाँतो को पूर्व बनी चूड़ियो मे फेरकर, खुरचकर सफाई और चिकनापन लाया जाता है।

अपघर्षक औजार (Grinding Tools)

सानचक्की (Grinding Wheel) — सानचक्की से औजारो पर धार ही नही चढाई जाती, बल्कि कलात्मक ढंग से तथा सूक्ष्म सीमाओ के भीतर, आधुनिक यंत्रो के पुर्जे एक मिलीमीटर के हजारवें भाग तक सही काटे, छीले और पालिश कर तैयार किए जाते हैं। उत्तम सानचक्कियाँ और पेषण सिल्लियाँ कार्बोरंडम (Carborundum) और ऐलडम (alundum) के चूर्ण से बनती हैं। ये पदार्थ क्रमश सिलिकन कार्बाइड और ऐलुमिनियम आक्साइड हैं। रेत की अपेक्षा ये लगभग दुगुने कठोर होते हैं। इनसे अधिक कठोर हीरा ही होता है। चूर्ण को बाँधने के लिये वानस्पतिक गोंद, वल्केनाइट, ऐस्फाल्ट, सेलूलायड, चपडा, संश्लिष्ट रेज़िन, या आद्यमृत्तिका मिलाकर साँचे में दबा और पकाकर विभिन्न आकृतियो की सानचक्कियाँ (देखें चित्र १०) बनाई जाती हैं। विविध प्रयोगो के लिये सानचक्कियों के चुनाव में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। अपघर्षक

रिंच और पाना (Wrench and Spanner) — बोल्ट आदि पर नट और चूड़ीदार छेदो में पेंच कसने के लिये रिंच और पाना का व्यवहार होता है। इनमें कुछ तो ऐसे होते हैं कि उनके मुँह उनकी डंडी की सीध में रहते हैं और दूसरो के मुँह डंडी की मध्य रेखा से १५° अथवा २२½° कोण पर तिरछे होते हैं।

शिकंजा (Clamp)— पदार्थों को पकड़कर स्थिर रखने के लिये शिकंजो का प्रयोग होता है। शिकंजे भी कई प्रकार के होते हैं और भिन्न भिन्न कार्यों में प्रयुक्त होते हैं।

नापने और निशान बनाने के औजार

कैलिपर (Calippers) और परकार (Tramuls) — वस्तुओ को नापने के लिये पैमाने (Scale) का प्रयोग होता है पर बेलनाकार पदार्थों तथा छेदो के व्यास नापने मे इनका प्रयोग नहीं हो सकता। इसके लिये कैलिपर और परकार (Tramuls) प्रयुक्त होते हैं। कैलिपर कई आकार और प्रकार के बने हैं (देखें चित्र १८)।

चित्र १८
कैलिपर, ट्रैमल और परकारें

साधारण कैलिपर ३ से १० इंच तक लंबे होते हैं पर २४ इंच तक के कैलिपर भी बने हैं। एक या डेढ़ फुट से अधिक बड़ी नापों के लिये परकार का प्रयोग होता है।
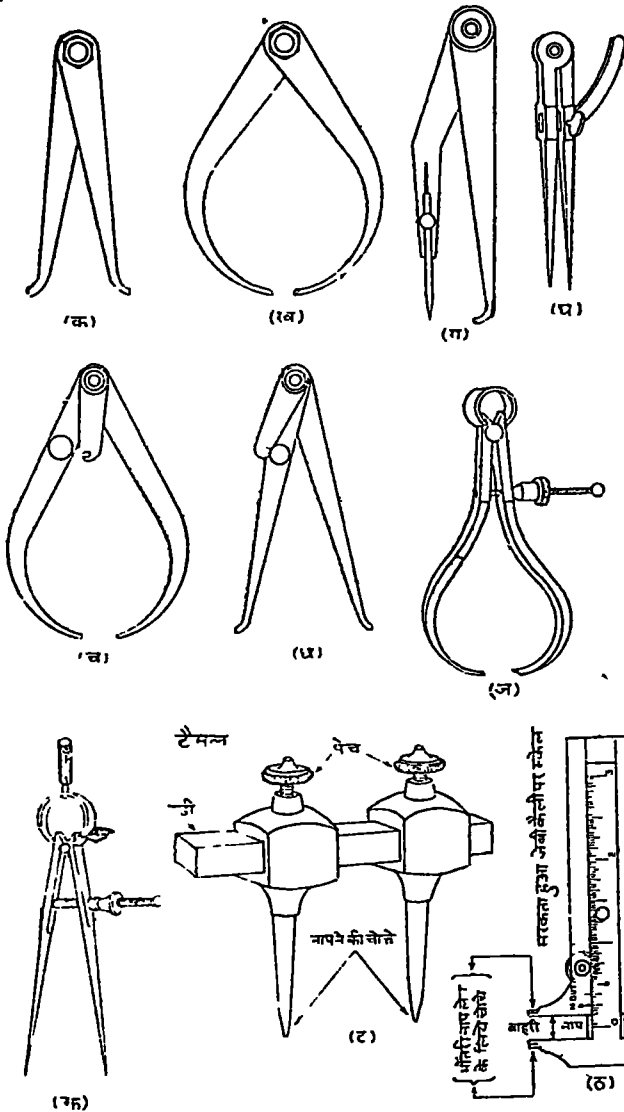
कोण, क्षैतिजता और उर्ध्वाधरता नापने के औजार — कोण नापने के लिये सामान्यत गोनिया का प्रयोग होता है। सरलतम गोनिये में दो भुजाएँ ठीक ९०° पर जुड़ी होती हैं। कुछ गोनियो में खड़ी भुजा में एक पाणसल भी लगा रहता है, जिससे आड़ा कटकर नापने से क्षैतिजता का ज्ञान होता है। गोनिया भिन्न
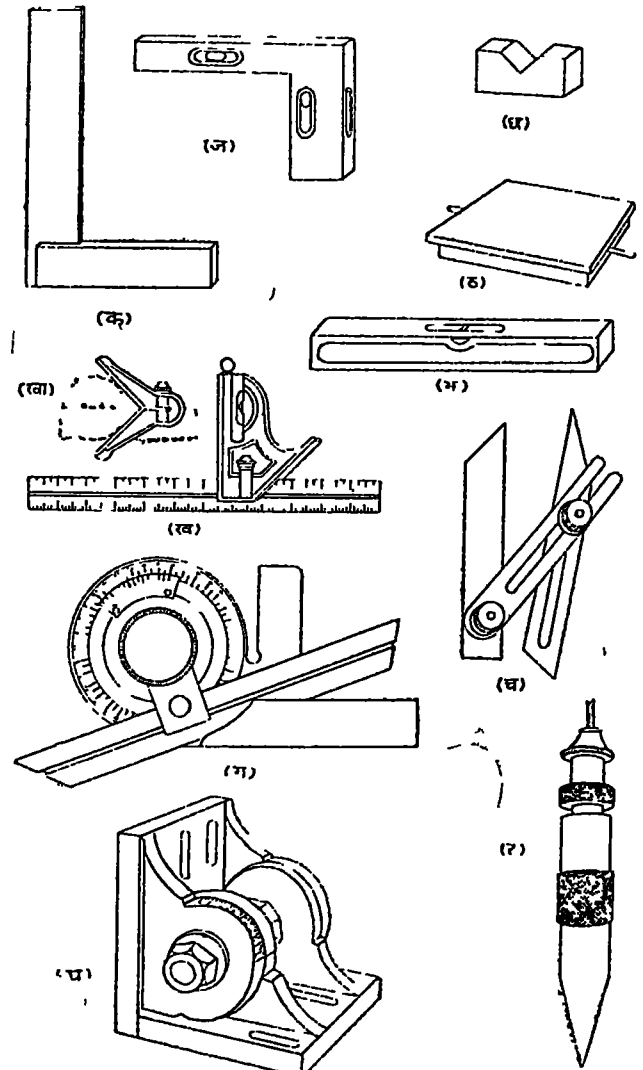
चित्र १९
गोनिया

भिन्न प्रकार के सरल से सरल और सूक्ष्म से सूक्ष्म होते हैं। कुछ गोनियो में मापनी लगी रहती है। एक प्रकार के गोनिये की दोनो भुजाओं में पाणसल लगे रहते हैं, जिनकी सहायता से समकोणता, क्षैतिजता और उर्ध्वाधिरता तीनों ही नापी जा सकती हैं। गोनिये से कोण नापने में एक सहायक उपकरण,

तंतुकर्षण (wire drawing) के औजार — तार बनने का गुण धातुओं की तन्यता पर निर्भर करता है। सब धातुओं के तार खींचे जा सकते हैं। एक ग्रेन सोने से ५०० फुट के लगभग लंबा तार खींचा जा सकता है। प्लैटिनम के ०.००००३ इंच तक व्यास के तार खींचे जा सके हैं। तार डाइयो में खींचे जाते हैं। इन्हें डाई प्लेट कहते हैं। डाई प्लेट में गावदुम आकार के छेद बने होते हैं। प्रत्येक छेद अपने पिछले छेद का ०.६ व्यास का होता है। एक छेद से दूसरे छेद में जाने पर तार की ऊपरी सतह की धातु की अतिरिक्त मात्रा रुकावट के कारण पीछे रह जाती है। छेद में कहीं भी तेज कोना या धार न होनी चाहिए। कुछ समय के प्रयोग के बाद डाइयों के छेद ढीले हो जाते हैं जिसे ठाँस कर सुधार लिया जाता है। ०.०६४" से कम व्यास के तार खींचने के लिये हीरे की डाइयाँ प्रयुक्त होती हैं। ०.०००४५" व्यास तक के तार बनाने के लिये डाइयाँ बनी हैं। हीरे की डाइयो में छेदो की यथार्थता की सीमा ०.०००१" समझी जाती है। हीरे की डाई बनाने के लिये कठोर पीतल की टिकिया में हीरे के बैठने लायक छेद बनाकर, उसके दोनो तरफ गुरजक बना दिए जाते हैं (देखें चित्र १३)। फिर बीच में हीरे को बैठाकर गुरजको में टाँका गलाकर भर दिया जाता है जिससे हीरा मजबूती से यथास्थान जम जाय, बाद मे हीरे के छेद को सही कर दिया जाता है।

हथौड़ा और घन — हथौड़े से वस्तुओं पर चोट पहुँचाई जाती है। लगनेवाली चोट की ताकत केवल हथौड़े के भार पर ही नहीं वल्कि प्रधानतया उसके वेग पर निर्भर करती है। सभी हथौड़े गढ़ के इस्पात के बनाए जाते हैं। ये ½ पाउंड से ३ पाउंड तक के होते हैं (देखें चित्र १४)। हथौड़े का प्रधान सिरा, जो चोट करता है, चपटे मुँह का तथा बेलनाकार होता है और दूसरे सिरे पर चोच (pein) बनी होती है। लोहार के हथौडे भी प्रायः इसी प्रकार के होते हैं। लोहार के सहायक १० से १२ पाउंड भार के भारी तथा कभी कभी १६ से २० पाउड भार तक के हथौड़े काम में लाते हैं, जिन्हे घन या स्लेज (sledge) कहते हैं (देखें चित्र १४)। इनके दाने ३½ फुट तक लबे होते हैं। भिन्न भिन्न कामो के लिये, जैसे वायलर की पपड़ी तोड़ने, पत्थर तोड़ने, कोयला तोडने, रिवट करने, कीलें ठोकने वायलर की मरम्मत करने आदि के हथौडे भिन्न भिन्न आकार और प्रकार के होते हैं, जैसा चित्र में दिखलाया गया है।

सँड़सा — गरम वस्तुओं को भली भाँति पकड़ने के लिये सँड़सा या सँड़सियाँ काम में आती हैं। ये भिन्न भिन्न आकार और प्रकार की होती हैं (देखें चित्र १५-१६)

साँचा बनाने के उपकरण — साँचा बनाने के लिये निम्नलिखित चार प्रकार के औजारों की आवश्यकता होती है :

१ मिट्टी भरने तथा कूटकर जमाने के फावड़े, वेलचे तथा छोटे बड़े दुरमुस।

२. हवा निकालने के लिये छेद बनाने की लोहे की सलाखें, जिनके एक सिरे पर हैंडिल लगा हो।

३. छोटी बड़ी नाना प्रकार की करनियाँ (trowels) भड़ी हुई मिट्टी को साफ करने तथा उसकी जगह नई नई थोपकर दीवारो को चिकनानेवाले (Smoothers) और जमानेवाले (sluters) औजार तथा फालतू मिट्टी छीलनेवाले औजार।

४. प्लवेगो और काजल आदि पोतनेवाले मुलायम वुरुश तथा धूल झाड़नेवाले औजार (देखें चित्र १७)।

बाँक (Vice) — वस्तुओं को दृढ़ता से पकड़कर रखने के लिये, ताकि उनपर वाछित प्रक्रियाएँ की जा सकें, वाँको का उपयोग होता
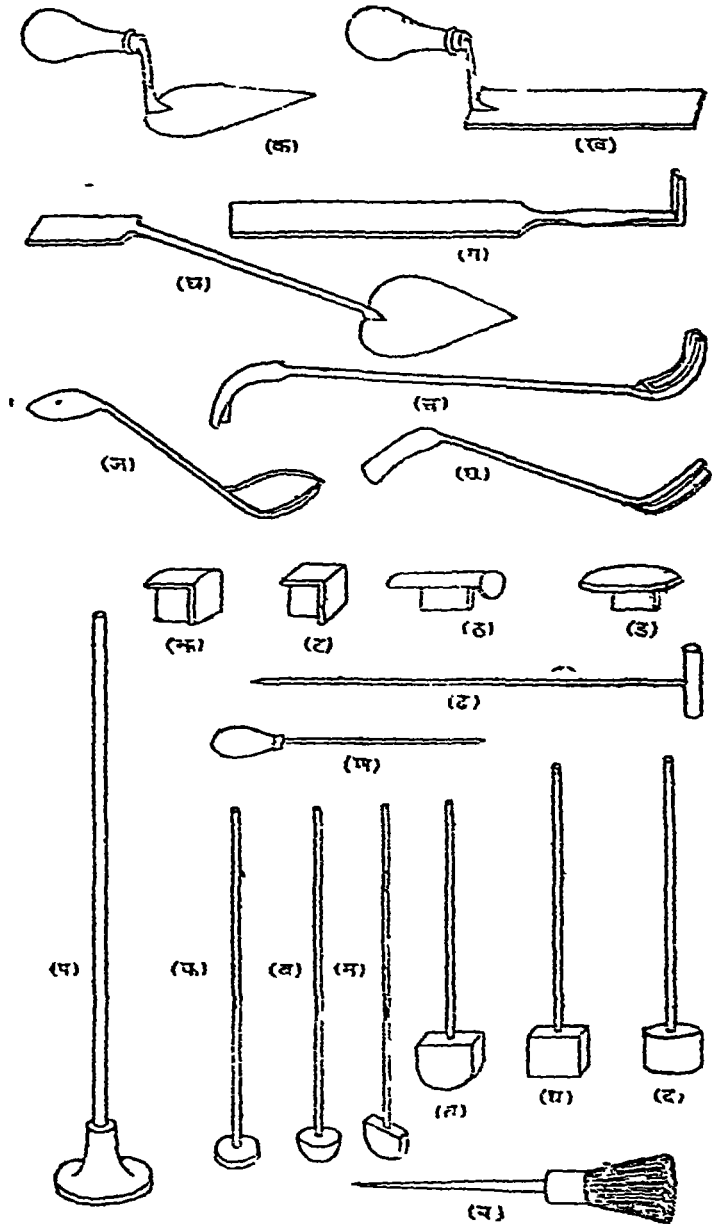
चित्र १७

साँचा बनाने के औजार

है। वाँक कई प्रकार के होते हैं। सही अन्वायोजी (fitting) कार्यों के लिये समातर जवडोवाले वाँकों का प्रयोग होता है जो सुविधा के अनुसार कई रूपों में बनाए जाते हैं। तारों को पकड़ने, ऐंठने तथा काटने के लिये प्लास या प्लायर बड़े उपयोगी हैं। कीलें भी इनसे निकाली जाती हैं।

कहते हैं। यह दोमुँहा गेज होता है। इसका एक मुँह ढीला (go) और दूसरा सख्त (not go) होता है। यदि ऊपर के मुँह में गोला घुस जाता और नीचे के मुँह में नहीं घुस पाता तो वह त्रुटिसहनीयता (Limit of Tolerance) के अनुसार समझा जाता है। अन्यथा यदि वह नीचे के मुँह में भी घुस जाता है तो वह रद्दी समझा जाता है। ऐसे गेज कई प्रकार के बने हैं।

गेज की यथार्थता अथवा प्रमाणिकता नापने के लिये स्लिपगेज बने हैं। आजकल जोहनसन के आविष्कृत स्लिप गेजो का ही प्रयोग होता है, इस स्लिप गेज में बहुत से गुटको (blocks) को परस्पर मिलाकर एक विशिष्ट नाप बनाकर, गज के मुँह में डालकर परीक्षा की जाती है। ब्लॉक इस्पात के १¼" लंबे और ⅜" चौड़े तथा विभिन्न मोटाइयो के सही सही गुटके बनाकर, एक कुलक (Set) का निर्माण किया जाता है। कारखानो में उपयोग के लिये ८१, ४९, ४१, ३५, २८ गुटको के सेट बनाए जाते हैं।

चूडी नापने के सीमा गेज (Screw thread Limit Gauge) — चूडियो के बेलनाकार भाग के ढीले तथा सख्त होने की सीमा नापने का गेज होता है जिसके ऊपर और नीचे के जबडो में लगी पिनो को पेंच द्वारा इच्छित सीमा की नाप में समायोजित कर छेद के मुँह पर सीसे की सील लगादी जाती है जिससे उसके समायोजित की हुई नाप में कोई परिवर्तन या छेडछाड न कर सके। [ओ० ना० शा०]

हाथरस (भारत) स्थिति: २७° ३६' उ० अ० तथा ७८° ४' पू० दे०। यह नगर उत्तर प्रदेश राज्य के अलीगढ़ जिले मे आगरा नगर से ४६ किमी उत्तर में स्थित है। यह प्रमुख व्यापारिक केंद्र है। १८ वी शताब्दी मे नगर जाट सरदार के अधिकार में था जिसके किले के भग्नावशेष अभी भी नगर के पूर्वी किनारे पर हैं। नगर की जनसख्या ६४,०४५ (१९६१) है। यहाँ लोहे के सामान कैंची, चाकू, घी आदि का व्यापार होता है। [अ० ना० मे०]

हाथी स्तनी वर्ग का एक वृहत्काय चतुष्पद प्राणी है। इसका शरीर ऊँचा, कान बडे बडे, आँखें छोटी और नाक और उर्ध्व ओष्ठ मिलकर लबी सूँड में परिवर्तित हो जाते हैं। इसकी औसत ऊँचाई ३ से ४ मीटर और भार ६ टन या इससे अधिक हो सकता है। हाथी हथिनी से प्राय ३० सेमी अधिक ऊँचा होता है। अफ्रीका में एक बौना हाथी भी पाया जाता है जिसकी औसत ऊँचाई प्राय १½ मीटर की होती है।

हाथी की सूँड लगभग २ मीटर लबी और प्राय: १३६ किलोग्राम भार की, चमडी और अतर्ग्रथित स्नायु और पेशियों की बनी होती है। यह अस्थिहीन, लचीली और असाधारण मजबूत होती है। इससे वह सूँघता, पानी पीता, भोजन प्राप्त करता और उसे मुँह में डालता तथा अपने जोडे और बच्चे को सहलाकर प्रेम प्रदर्शन आदि काम करता है। हाथी अपनी सूँड से भारी से भारी और छोटे से छोटे यहाँ तक की मूँगफली सदृश वस्तुओ को भी उठा सकता है। हाथी की नासिका छोटी और खोपडी बहुत बडी होती है।

किस्म — हाथी दो प्रकार का होता है, एक को अफ्रीकी हाथी और दूसरे को भारतीय हाथी कहते हैं। अफ्रीकी हाथी का वश लॉक्साडाटा (Loxadanta) और जाति अफ्रीकाना है। भारतीय हाथी का वश एलिफास (Eliphas) और जाति मैक्सिमस (Maximus) है। अफ्रीकी हाथी भारतीय हाथी से बड़ा होता है। अफ्रीकी हाथी के नर और मादा दोनो मे गजदत विकसित होते हैं। जबकि भारतीय हाथी के केवल नर में गजदत विकसित रहता है। अफ्रीकी हाथी का ललाट अधिक गोल और कान बडा होता है। सूँड के निचले छोर पर दो लट्टू होते हैं, जबकि भारतीय हाथी में केवल एक लट्टू (Knob) होता है। भारतीय हाथी के अग्रपाद में केवल पाँच और पश्चपाद मे चार नाखून होते हैं। जबकि अफ्रीका हाथी के अग्रपाद मे केवल चार और पश्चपाद में केवल तीन नाखुन होते हैं। अफ्रीकी हाथी की त्वचा अधिक रूक्ष होती है। किसी किसी भारतीय नर हाथी के गजदत नही होता। ऐसे हाथी को 'मखना' हाथी कहते हैं। मखना का शरीर असाधारण बडा होता है।

हाथी का वितरण और प्रजनन — एक समय हाथी एशिया, यूरोप और उत्तरी अमरीका के अनेक देशो में पाया जाता था। यहाँ इसके फॉसिल मिले हैं। पर अब यह केवल एशिया और अफ्रीका के कुछ स्थानों मे ही पाया जाता है। एशिया के भारत (मैसूर, असम) बर्मा, मलाया, सुमात्रा, बोर्नियो, इंडोनेशिया, थाईलैंड आदि देशों मे तथा अफ्रीका के इथियोपिया, केनिया और यूगाडा में यह पाया जाता है। प्रागैतिहासिक हाथी अधिक ऊंचा नही होता था और उन्हें सूंड भी न थी। हाथी के पूर्वज हाथी से बहुत मिलते जुलते मैमथ और मैस्टाडान के फॉसिल साइबेरिया और दक्षिण अमरीका तथा कुछ अन्य देशो मे पाए गए हैं। हाथी का मैथुन काल ग्रीष्म अथवा वर्षा का प्रारभ है। हथिनी २० से २२ मास तक गर्भ धारण करने के बाद सामान्यतः एक ही बच्चा जनती है। बीस वर्ष मे बच्चा युवा होता है। ४० वर्ष के बाद उसमें वृद्ध होने के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। हाथी की औसत आयु ६० वर्ष की होती है, यद्यपि कुछ हाथी ७० वर्ष तक जीते पाए गए हैं। जन्म के समय बच्चा १ मीटर ऊँचा और ९० किलोग्राम भार का होता है। तीन चार वर्षों तक हथिनी बच्चे को दूध पिलाती है और सिंह, बाघ, चीते आदि से बडी सतर्कता से उसकी रक्षा करती है।

पैर और त्वचा — हाथी के पैर स्तभ की भांति सीधे होते हैं। खडा रहने के लिये इसे बहुत कम पेशी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। जब तक बीमार न पडे या घायल न हो, तब तक अफ्रीकी हाथी कदाचित् ही लेटता है। भारतीय हाथी प्राय लेटते हुए पाए जाते है। हाथी की अँगुलियाँ त्वचा की गद्दी में धँसी रहती हैं। गद्दी के बीच मे चर्बी की एक गद्दी होती है, जो शरीर के भार पडने पर फैल जाती और पैर ऊपर उठाने पर सिकुड जाती है। हाथी की त्वचा एक इच मोटी पर पर्याप्त सवेदनशील होती है। त्वचा पर एक एक इच की दूरी पर बाल होते हैं। इसकी खाल खोल के सदृश और झुर्रीदार होती है। खाल का भार एक टन तक का हो सकता है।

रग — हाथी स्लेटी भूरे रंग का होता है। कुछ हाथी सफेद होते हैं। इन्हे 'एल्बिनो' कहते हैं। बर्मा आदि देशो मे ऐसे हाथी पवित्र माने जाते हैं और इनसे कोई काम नही लिया जाता।

फेसप्लेट, की सहायता ली जाती है। फेसप्लेट ढले लोहे का होता है, जिसका ऊपरी तल रंदा कर तथा बारीकी से सही स्क्रेप कर सम चौरस बना दिया जाता है। फिटरों (fitters) के लिये यह बड़ा उपयोगी उपकरण है। यह निशानबदी करने, सही नाप लेने तथा पुर्जों और प्रददो के विशिष्ट धरातलो को सही फेस कर सम चौरस करने के काम आता है।

सरफेस गेज — सरफेस गेज फेसप्लेट पर रखकर पुर्जों के विभिन्न तलो की ऊँचाई नापने तथा फेसप्लेट से ही समातर ऊँचाई प्रदर्शित करनेवाली रेखाएँ पुर्जों पर अकित करने के काम आता है। फेसप्लेट के समातर तलो की सिधाई की परीक्षा भी इसके द्वारा की जाती है। इसके द्वारा एक इच के १/१००० वें भाग की त्रुटि भी मालूम हो जाती है। इससे खराद आदि यत्रो पर बनाए जानेवाले पुर्जों की एककेंद्रीयता तथा खराद की सुसाधुता का पता लगाया जा सकता है।

निशानबंदी करनेवाले औजार — इनमें पेंसिल, एकटाग कैलिपर खतकस, परकार, गोनिया, बीवल गेज, सरफेस गेज और सेंटर पच मुख्य हैं। मानक नापो के अनेक गेज बने हैं और वे पचो की चूडियो और झिरियो की चौडाई नापने के काम में आते हैं। तारो और चादरो की मोटाई नापने के गोलाकार गेज बने हैं, जिनमे मानक मोटाइयो के खाँचे बने रहते हैं।

सूक्ष्ममापी उपकरण — उपर्युक्त उपकरणो द्वारा यथार्थ नाप लेने में प्रयोगकर्ता को अपने सूक्ष्म स्पर्शानुभव तथा दृष्टि से काम लेना होता है, जिसकी योग्यता सभी में एक सी नही हो सकती। इस व्यक्तिगत त्रुटि को हटाने के लिये सूक्ष्ममापी उपकरण बने हैं। ऐसे उपकरणो में हैं १. वर्नियर कैलिपर, २. मीटरी नाप के वर्नियर, ३. माइक्रोमीटर कैलिपर, ४. मीटरी नाप के माइक्रोमीटर, ५ अन्य प्रकार के माइक्रोमीटर, ६ मानक गेज, ७ सीमाप्रदर्शक गेज, ८ प्रामाणिक स्लिप गेज, ९. चूड़ी नापने के सीमा गेज, १० वटन गेज, ११ ज्यादंड तथा १२. वेलन गेज।

वर्नियर कैलिपर — ३ इंच लबे स्केल के जेबी वर्नियर कैलिपर में १ ११/१६ इंच विस्तार तक की चीजें इच के एक हजारहवें भाग तक यथार्थता से नापी जा सकती हैं।

मीटरी नाप का वर्नियर — इस वर्नियर में आधे मिलीमीटरो के निशान होते हैं। इस नाप से १/५० मिमी तक की सूक्ष्मता के नाप लिए जा सकते हैं। कुछ मीटरो में प्रधान स्केल के ४९ मिमी के फासले को सरकनेवाले वर्नियर स्केल पर ५० समान भागो में बाँट देते हैं, जिसके कारण वर्नियर पर एक छोटा मान प्रधान स्केल के एक छोटे भाग से १/५० = १/५० मिमी छोटा होता है। इस प्रणाली के कारण प्रधान स्केल पर मिलीमीटरो को आधे भाग में बाँटने की जरूरत नही पड़ती।

माइक्रोमीटर कैलिपर — माइक्रोमीटर मे १/१००० वाँ इच यथार्थता से नापा जा सकता है। इसमें नापने की सीमा एक इच के भीतर ही रखी जाती है। अतः आवश्यकतानुसार इसके फ्रेमों को छोटे बड़े कई नापो मे बनाया जाता है।

मीटरी नाप के माइक्रोमीटर — इनमें १/१०० वें मिमी की यथार्थता तक नाप की जा सकती है।

इनके अतिरिक्त छेदों के भीतरी व्यास और गहराई नापने के भी माइक्रोमीटर बने हैं।

जिन नापो को बारबार नापना पड़ता है, उनके लिये मानक गेज बने हैं। ऐसे मानक गेजों में बेलनाकार वस्तुओं के व्यास नापने के
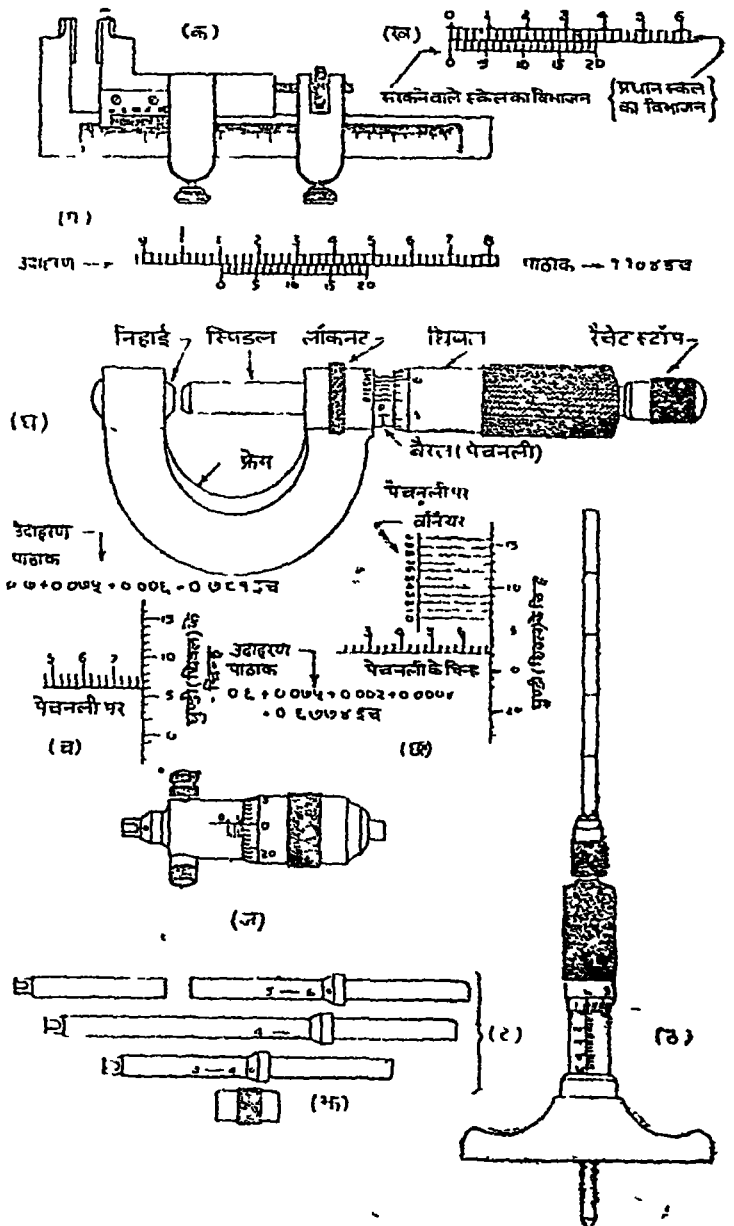
चित्र २०

वर्नियर और माइक्रोमीटर कैलिपर

लिये प्लग और रिंग गेज बने हैं। इसमें प्लग (डाट) भीतरी व्यास और रिंग (वलय) वाहरी व्यास नापता है। एक दूसरे प्रकार के मानक गेज को सीमाप्रदर्शक गेज (Limit gauge)

जगली हाथी दल बनाकर रहता है। दल में साधारणतया ३०–४० बच्चे, बूढे, जवान, नर और मादा रहते हैं। किसी किसी दल मे ३००–४०० तक रह सकते हैं। प्रस्थान करने पर ये एक कतार में श्रेणीवद्ध चलते हैं। बच्चे आगे आगे और शेष पीछे चलते हैं। आक्रमण के समय यह क्रम बदल जाता है और छोटी छोटी टुकडियाँ बनाकर वे विभिन्न दिशाओं में खिसक जाते हैं। आक्रमण की सूचना सूँड़ की गति से देते हैं। कुछ हाथी दल के नियमो का पालन नही करते। वे तब शैतान या आवारा (rogue) कह जाते हैं और उन्हे दल से निकाल दिया जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि हाथी कुशाग्रबुद्धि होता है। कुशाग्रता में प्राणियों में पहला स्थान मनुष्य का, दूसरा चिंपैंजी का, तीसरा ओरांग ऊटांग का और चौथा हाथी का आता है। ऐसा कहा जाता है कि हाथी की दृष्टि कमजोर होती है और वह ७५ मीटर से अधिक दूरी पर खड़े किसी मनुष्य को पहचान नहीं सकता। इसकी श्रवणशक्ति अच्छी तथा घ्राणशक्ति और भी अच्छी होती है।

एशिया में हाथी पकडने के निम्नलिखित चार तरीके हैं .

१. गड्ढे में गिराकर — इस रीति से पकडने के लिये हाथी के आने जाने के मार्ग में गड्ढे खोदते हैं और पेड पौधो की टहनियो से उन्हें ढँक देते हैं। टहनियों के ऊपर से आता हुआ हाथी गड्ढे में गिर जाता है और निकल नहीं पाता है।

२. शंकु अँगूठी द्वारा — शंकु अँगूठी लकडी का वृत्ताकार फदा होता है, जिसके जबडे में लोहे के काँटे लगे रहते हैं। फदा जमीन में गडा और पत्तियों से ढँका होता है। उसपर हाथी का पैर पडने से काँटे पैर में गहरे धँस जाते हैं और रुधिर बहने लगता है। यह फंदा लंबी रस्सी से लकडी के कुदे से बँधा होता है, जिससे हाथी जगल में तेजी से भाग नहीं सकता।

अब कानून द्वारा उपर्युक्त दोनों निर्दय रीतियों का निषेध हो गया है।

३ सरकफदा लगाकर — इस रीति से हाथी के बच्चे पकडे जाते हैं। एक मजबूत रस्सी में सरकफदा लगाकर, पैदल या पालतू हाथी पर सवार होकर पकडनेवाला हाथी के दल का पीछा करता है और अवसर पाकर किसी बच्चे के ऊपर फदा फेककर उसका पैर या शरीर का अन्य भाग फदे से जकड देता है। तब दल के अन्य हाथियों को घेरकर भगा दिया जाता है और बच्चे को पालतू हाथियो की सहायता से पकड ले जाते हैं।

४ खेदा द्वारा — हाथियों के जगल में लकड़ी के बडे और मोटे लट्ठे पास पास गाड़कर एक विस्तृत भूमि घेर दी जाती है, जिसमें प्रवेश के लिये इसी प्रकार निर्मित एक लंबा रास्ता तथा उसके अ त पर एक फाटक होता है। इसे खेदा कहते हैं। चारों तरफ से घेर तथा हुँकवा कर, जगली हाथियो के दल को इस रास्ते में प्रवेश करने तथा आगे बढ़ते जाने के लिये वाध्य कर देते हैं। जब यथेष्ट हाथी खेदा में आ जाते हैं, तो फाटक बद कर दिया जाता है और पहले से उपस्थित पालतू हाथियो की सहायता से साहसी महावत, एक एक कर, पकड़े हुए हाथियों के पैरों को मजबूत रस्से से पेड़ो से बाँध देते हैं। कुछ दिन बँधे रहने पर पकड़े हाथियों की शक्ति और साहस कम हो जाता है, तब पालतू हाथियो की सहायता से इनको वश मे ले आते हैं।

उपयोगिता — हजारो वर्षों से मनुष्य ने हाथी को पालतू बना लिया है और उससे अनेक उपयोगी काम ले रहे हैं। युद्धकाल में सैनिकों, रसद और अस्त्रशस्त्र आदि ढोने में यह काम आता है। आधुनिक काल में मोटरवाहनों के कारण ऐसी उपयोगिता बहुत कम हो गई है। सैनिक हाथी पर चढ़कर युद्ध करते थे, यद्यपि सेना में हाथी दल का रहना निरापद नही था। शांतिकाल में हाथी पर चढ़कर शेरो का शिकार किया जाता है। दलदल और कीचड में इसकी सवारी अच्छी होती है। मनोरजन के लिये भी हाथी पर चढा जाता है। लकडी के बडे बडे कुदों को जगलो से बाहर ले आने में इसका आज भी उपयोग होता है। पशु उद्यानों और सर्कसों में खेल तमाशे के लिये इसे रखा जाता है। हाथी का गजदंत बडा उपयोगी पदार्थ है। गजदत का उपयोग बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। एक समय इसके सिंहासन भी बनते थे। हाथी के दाँत के घर बनाने का भी उल्लेख मिलता है। इसका बिलियर्ड गेंद आज भी उपयोग में आता है। सजावट के अनेक सामान, चूड़ियाँ, कंघी, क्रूस, सुइयाँ, आलपीन, बुरुश, चाकू की मूठ, मूर्तियाँ और अनेक प्रकार के खिलौने हाथीदाँत के बनते हैं।

कृषि को हाथी बहुत क्षति पहुँचाता है। फसलो को खाकर ही नहीं वरन् रौंदकर नष्ट कर देता है। [भृ० प्र०]

हाद्रिअन (७६-१३८) रोमन सम्राट् हाद्रिअन का जन्म २४ जनवरी, सन् ७६ को हुआ। वह मूलत स्पेनी था और त्राजन से उसका दूर का सबध था। सन् ८५ मे पिता की मृत्यु के पश्चात् वह रोम के भावी सम्राट् त्राजन के संरक्षण में रहने लगा। बाद के पाँच वर्षों तक वह रोम में रहा। १५ वर्ष की उम्र में अपने जन्म-स्थान को वापस लौट आया और सैनिक के रूप में उसके जीवन का आरभ हुआ। सन् ९३ में त्राजन ने उसे रोम बुला लिया। सन् ९५ मे एक ट्रिब्यून के रूप में बुडापेस्ट में उसकी नियुक्ति हुई, जहाँ से चार साल बाद वह रोम वापस चला आया। सन् १०० में महारानी पोलटिना ने उसका विवाह त्राजन की भतीजी विबिया साबिना से करा दिया। सन् १०१ में वह अर्थसचिव, १०५ में लोकाधिकारी और १०६ में प्रीतर बनाया गया। अपनी सख्त बीमारी के कारण जब त्राजन पूर्व से लौट आया तब उसने हाद्रिअन को सीरिया का गवर्नर और वहाँ का सेनापति नियुक्त किया। सन् ११७ में त्राजन ने उसे गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया, तत्पश्चात् सेना और संसद् ने भी उसके उत्तराधिकार को मान्यता प्रदान कर दी। वह उस समय रोम साम्राज्य की गद्दी पर बैठा जब वह चारो ओर गभीर संकटों से घिरा हुआ था।

शासनारूढ होने के बाद हाद्रिअन महान् प्रशासक सिद्ध हुआ। उसने सिनेट से मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखनेवाली त्राजन की नीति को बरकरार रखा लेकिन उसी के साथ नौकरशाही को भी बढावा दिया। साम्राज्य की सुख समृद्धि में उसकी रुचि का पता इसी से चलता है कि उसने दो बार पूरे साम्राज्य का विस्तृत भ्रमण

दांत — हाथी के दांत दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के दांत बडे बडे बाहर निकले हुए होते हैं जिन्हें गजदत (Tusks) कहते हैं। दूसरे दांत मुख के अंदर रहते हैं, जो चबाने के काम आते हैं। गजदंत ऊपरी छेदन दंत (incisor) ही हैं। गजदत ३५ किग्रा भार तक या इससे अधिक का हो सकता है। १०० किलोग्राम भार के गजदत का औसत व्यास २०.३ सेमी और लंबाई ३.५ मीटर तक की हो सकती है। नर हाथी के गजदत बड़े होते हैं। भारतीय हथिनी के गजदत नही होते। हाथी के चर्वण-दत कुल २४ होते हैं। पर एक समय में केवल चार ही रहते हैं। पुराने दांत घिसते घिसते लुप्त हो जाते हैं, तब अन्य दांत निकलते है। अतिम दांत ४० वर्ष की अवस्था मे निकलता है। समस्त जीवनकाल में कुल २४ दांत निकलते हैं।
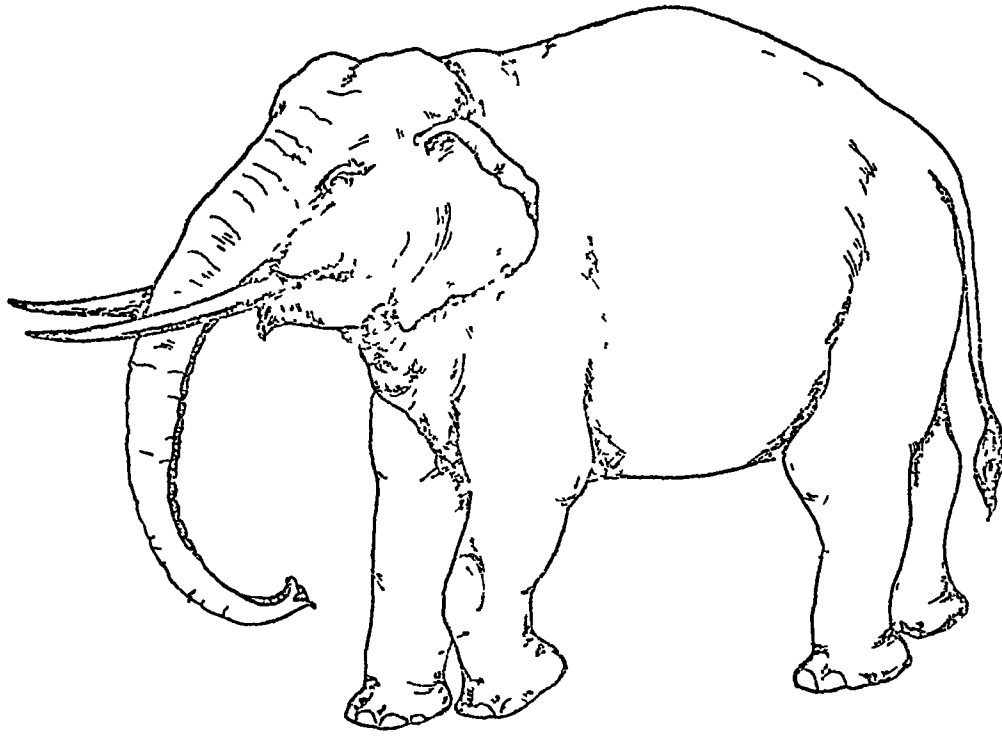
भारतीय हाथी

अफ्रीकी हाथी

आहार — हाथी पूर्णतया शाकाहारी होता है। घास, डालपात ईख, पीपल और बरगद के पत्ते और छाल, केले के थबे, बांस के पत्ते और अनाज के पौधे हाथी के प्रिय चारे हैं। ये डालियाँ और जड़ भी खाते हैं। एक दिन मे २५०–३०० किलोग्राम तक चारा खा जाता है। यदि हाथी को पूरा खाना मिले तो यह ५० टन तक का बोझ ढो सकता है।
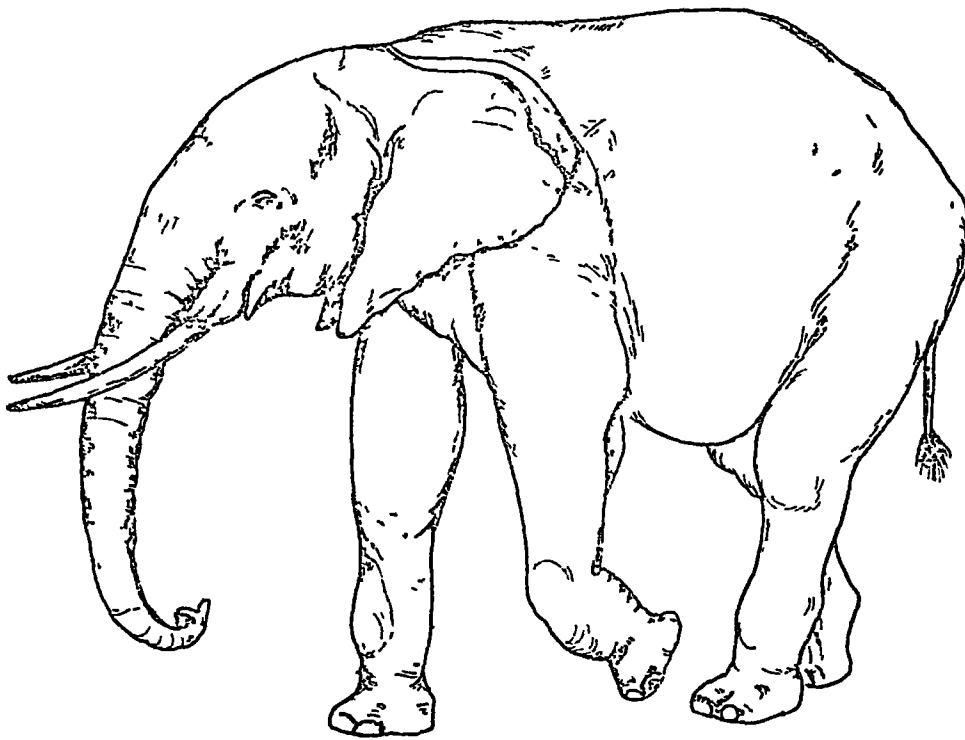
वासस्थान — पहाडो और लबे वृक्षो के जगलों में, विशेषत: जहाँ बांस बहुतायत से हो, रहना हाथी पसद करता है। बर्मा में १०,००० फुट की ऊँचाई तक के स्थानो मे विचरण करता हुआ हाथी देखा गया है। हाथी बडा तेज चल सकता है, पर छलांग नही मारता।

प्रकृति — हाथी स्नान करने में व ा नियमित होता है। अपने बच्चो को नियमित रूप से स्नान कराता है। यह अच्छा तैराक होता है। सारे शरीर को पानी मे डुबोकर, केवल सांस के लिये सूँड को बाहर निकाले रख सकता है। यह किसी निश्चित स्थान पर पानी पीता, और एक स्थान पर जाकर विश्राम करता है। धूप से बचने के लिये घने जगलो की छाया में सोता है। हाथी खडा खडा ही विश्राम करता है, अथवा करवट लेटता है। विश्राम के समय बिलकुल शात रहता है, केवल कान की फड़फड़ाहट या शरीर के डोलने से उसकी उपस्थिति जानी जाती है।

वर्धक हारमोन 'सोमैटो ट्रोफिन' का स्राव होता है। इससे अस्थि और मासपेशियो की वृद्धि होती है। इससे नाइट्रोजन, शर्करा एवं लाइपिन की उपापचय क्रियाओ पर उपचयी (anabolic) प्रभाव उत्पन्न होता है। पीयूषग्रंथि के अन्य हारमोन ऐडेनोकार्टिको ट्रौफिन (A C. T H) हारमोन, थाइरोट्रोफिन हारमोन (थायरायड ग्रंथि का उद्दीपन करनेवाला), प्रोलैक्टिन हारमोन (स्तनग्रंथि का वर्धन या दुग्ध उत्पादन करनेवाला), गोनाडोट्रोफिन या प्रजननपोषी हारमोन, जिनमे प्रोजेस्टेरोन (स्त्री अडाशय से उत्पन्न), एड्रोजेन (पुरुष वृषण से), फोल्लिकल उद्दीपक हारमोन (स्त्रीशरीर में बीजजनन, पुरुषशरीर शुक्रजनन) हैं।

पीयूषग्रंथि के मध्यपिंड से जिस हारमोन का स्राव होता है वह वर्णक कणिकाओ का विसरण कर चमडे का रग गहरा बनता है। पीयूषग्रंथि पश्चपिंडक से वासोप्रेसीन हारमोन और ऑक्सीटोसिन हारमोन का स्राव होता है। वासोप्रेसिनहिनी पीडक प्रभाव उत्पन्न करता है जिससे रक्तचाप में वृद्धि होती है। ऑक्सीटोसिन हारमोन के प्रभाव से शरीर की स्तनग्रंथि से दुग्ध निष्कासन क्रिया का प्रारभ होता है तथा प्रसूतिकार्य के पश्चात् शरीर सामान्य स्थिति में पुन आ जाता है।

शरीर के गरदन में स्थित थायरायड ग्रंथि, गलग्रंथि से थाइरौक्सि तथा ट्राइ आयोडो थाइरोनिन नामक हारमोन का स्राव होता है। इस हारमोन के प्रभाव से शरीर ऊतको एव ऑक्सीजन उपभोग तथा उपापचय गति में वृद्धि होती है। थाइरायड ग्रंथि के समीप स्थित पैराथाइरायड अथवा उपगलग्रंथि से पैराथोर्मोन का स्राव होता है। इस हारमोन से शरीर के कैल्सियम एव फास्फरॉस उपापचय पर विशेष प्रभाव देखा जाता है।

आमाशय के समीप स्थित अग्न्याशयी द्वीपको से इंसुलिन तथा ग्लुकागोन नामक हारमोन का स्राव होता है। इसुलिन से शरीर में शर्कराओं का सचय एव उपभोग का नियन्त्रण होता है। इससे रुधिर में शर्करा की मात्रा भी कम होती है।

ऐड्रेनल मेड्युला से ऐड्रेनलिन (एपिनेफिन) तथा नौर-ऐड्रेनलिन (नौर-एपिनेफिन) हारमोन का स्राव होता है। ऐड्रेनलिन, शरीर में सकटकालीन हारमोन होता है और सकट का सामना करने के लिये आवश्यक क्षमता एव शक्ति उत्पन्न करता है। यह हारमोन हृदय की गति को तीव्र करता है तथा रक्तचाप में वृद्धि करता है। यकृत तथा मासपेशियों में मध्वंशनक्रिया को प्रोत्साहित करता है जिससे शक्ति का उत्पादन होता है। नौर ऐड्रेनलिन हारमोन पीडक हारमोन का कार्य करता है तथा शरीर में रक्तचाप का नियन्त्रण करता है एव ऐड्रेनर्जिक तत्रिका छोरो पर रासायनिक मध्यस्थ का कार्य करता है।

ऐड्रेनल कौर्टैक्स से ऐल्डोस्टेरोन तथा अन्य स्टेरायड हारमोन का स्राव होता है। ऐल्डोस्टेरोन शरीर के चल एव विद्युत् अपघटनी उपापचय क्रियाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव उत्पन्न करता है। स्टेरायड हारमोन शर्करा, वसा, प्रोटीन आदि उपापचय क्रियाओं पर विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करता है। शरीर में सक्रमण, सूजन तथा सवेदनशीलता के प्रति अवरोधन उत्पन्न करते हैं।

पुरुषशरीर के वृषण से टेस्टेस्टेरोन हारमोन का स्राव होता है। यह हारमोन पुरुषशरीर के पुनर्जननसबधी अगो को परिपक्व बनाता है एव उनकी कार्यशीलता को बनाए रखता है। द्वितीयक लैंगिक विशेषताओ को उत्पन्न करता है तथा लैंगिक व्यवहार पर प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न करता है।

स्त्रीशरीर के अडाशय एव जरायु से ईस्ट्रैडियोल, ईस्ट्रोन आदि ईस्ट्रोजेन्स हारमोन, प्रोजेस्टेरोन आदि प्रोजेस्टोजेन्स हारमोन तथा रिलैक्सिन हारमोन का स्राव होता है। ईस्ट्रोजेन्स हारमोन स्त्रीशरीर के पुनर्जननचक्र को परिपक्व एवं कार्यशील बनाए रखते हैं तथा लैंगिक विशेषताओ को जन्म देते हैं। प्रोजेस्टोजेन हारमोन स्तनग्रथि का विकास एवं शरीर को गर्भाधान के उपयुक्त बनाने में सक्रिय योगदान देते हैं। गर्भाशय में गर्भ को सुरक्षित रखने में प्रोजेस्टोजेन हारमोन महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। रिलैक्सिन हारमोन के प्रभाव से प्रसूतिक्रिया सरलता से सपन्न होती है।

शरीर के जठरात्र श्लेष्मकला से सेक्रेटिन हारमोन — इसके प्रभाव से रंध्रिका (acenies) अग्न्याशय से द्रव का स्राव होता है, पैनक्रियोजाइमिन हारमोन — इसके प्रभाव से रंध्रिका अग्न्याशय से किण्व का स्राव होता है। कोलेसिस्टोकिनिन हारमोन — इसके प्रभाव से पित्ताशय का सकुचन एव रिक्त होने की क्रिया होती है, ऐंटेरोगैस्ट्रोन हारमोन — इसके प्रभाव से आमाशय में अम्लीय रस के स्राव तथा चलिष्णुता का अवरोधन होता है तथा गैस्ट्रिन हारमोन का स्राव होता है। ग्रैस्ट्रिन हारमोन के प्रभाव से आमाशय में अम्ल रस के स्राव का उद्दीपन होता है। उपर्युक्त हारमोन पाचनक्रिया पर विशेष प्रभाव उत्पन्न करते हैं। [अ० सि०]

हारूँरशीद सन् ७५० ई० में ओमय्यद राजवश इस्लाम इतिहास की महान् खूनी क्राति से समाप्त हो गया और अब्बासीद वंश का पाचवाँ खलीफा ७८६ ई० में राजसिंहासन पर बैठा। २३ वर्ष शासन करने के पश्चात् ८०८ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

हारूँ शासन के प्रथम १७ वर्ष का युग 'बरमकीदियों का युग' कहलाता है। हारूँ ने सिंहासनारूढ होने पर यहया को, जो ईरानी पुजारी वश के बरमक के पुत्र खालिद का पुत्र था, अपना प्रधान मत्री नियुक्त किया। इस प्रकार सरकार के सारे कामों का अधिकार यहया और उसके दो पुत्रो फजल और जफर के हाथो में आ गया। बरमकीदियों ने अपनी अतिशय उदारता से जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी, उतनी सपूर्ण इस्लाम जाति के इतिहास में किसी वंश ने नही प्राप्त की। यदि बहुत सी कहानियाँ उनके वाद के प्रपचों से निकाल दी जायँ, तो भी किसानों और श्रमिको के शोषण का दोष उनके सिर आता है, जिसके बिना उनकी सिद्धातहीन उदारता असंभव होती। सन् ८०३ ई० में हारूँ बरमकीदियों की शक्ति से चिढ़ने लगा। जफर का सिर कटवा लिया गया, और यहया तथा फजल को आजीवन कारावास दिया गया। कठोर राजाज्ञा के अनुसार कोई उस अपदस्थ शासक की प्रशंसा नहीं कर सकता था।

हारूँ बाइजेंटीन राज्य के विरुद्ध युद्धों में सदैव सफल रहा, किंतु स्वयं उसके राज्य में बडे भयानक विद्रोही थे। वह इस स्थिति

किया था। स्काटलैंड की घुसपैठ से इंग्लैंड की रक्षा करने के लिये उसने १२१-२२ में इंग्लैंड के उत्तर मे एक दीवाल का निर्माण करवाया जो हाद्रिअन दीवाल के रूप में प्रसिद्ध है और जिसके अवशेष अब भी वर्तमान हैं। उसने सीमांत प्रतिरक्षा को सुदृढ बनाया। अनेक शहर और कस्बे बसाए गए। सरकारी सहायता द्वारा सार्वजनिक निर्माण के कार्य संपन्न हुए। उसने किसानो के ऊपर से टैक्स हटा दिया और 'रोमन ला' को व्यस्थित रूप दिया।

हाद्रिअन प्रतिभासंपन्न, प्रखरबुद्धि और आकर्षक व्यक्तित्व का आदमी था। वह ग्रीक सभ्यता का प्रशंसक था और उसमें अद्भुत कृतत्व शक्ति थी। ऐसा प्रसिद्ध है कि वह एक ही समय लिख, पढ, बोल और डिक्टेट करा सकता था। उसने अपनी एक आत्मकथा भी लिखी थी, जो अब प्राप्त नही है। कहा जाता है, अपने शासन के अंतिम दिनो में वह बहुत निराश हो गया और उसने तीन बार आत्महत्या करने का प्रयत्न किया। १० जुलाई, १३८ को उसकी मृत्यु हो गई। रोम में टाइबर नदी के किनारे उसकी शानदार मजार अब भी विद्यमान है। [स० वि०]

हानोइ (Hanoi) स्थिति : २१° ०' उ० अ० तथा १०५°४५' पू० दे०। यह नगर उत्तरी वियतनाम की राजधानी है, जो हाइफॉंड बंदरगाह से १२८ किमी उत्तर मे लाल नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। यह रेलमार्ग द्वारा हाइफॉंड तथा दक्षिण पश्चिमी चीन मे कुमिंग से जुडा हुआ है। यह प्रमुख व्यापारिक केंद्र है। नगर की जलवायु उष्णकटिबंधी है। यहाँ फरवरी वर्ष का सबसे ठंढा तथा जून वर्ष का सबसे गरम महीना है। लाल नदी नगर के उत्तरी एवं पूर्वी भाग मे बहती है तथा नगर के अन्य भागो में अनेक झीलें हैं। नगर १६ किमी लंबी तथा ८०० मी चौडी झील से दो भागो में बँटा हुआ है। इस झील में दो द्वीप हैं, जिनमे से एक पर पगोडा तथा दूसरे पर महल बना है। यहाँ चौडी एवं स्वच्छ सड़कें तथा सुंदर इमारतें हैं जिनमे महल, प्रशासकीय भवन, विद्यालय, संग्रहालय तथा पैरिस के ढंग की दुकान एवं कैफे हैं। यहाँ का फूल बाजार प्रसिद्ध है। नगर का दूसरा भाग बडा घना बसा है और यहाँ अनेक संकीर्ण बाजार एवं सडकें हैं, जहाँ पीतल एवं ताँबे के बरतन, कपड़े तथा जवाहरात बिकते हैं। हानोइ में सूत कातने, सूती वस्त्र बुनने, शराब चुआने, साबुन बनाने, कागज बनाने तथा सीमेंट निर्माण के कारखाने हैं। यहाँ की जनसंख्या ४,००,००० (१९६०) है। [अ० ना० मे०]

हानोवर (Hannover) स्थिति · ५२°२३' उ० अ० तथा ९°४३' पू० दे०। यह पश्चिमी जर्मनी के बड़े नगरो मे से एक है और उत्तर सागर के ब्रीमेन बंदरगाह से ९६ किमी दूर लाइने तथा इमे (Ihme) नदियों एवं मिटेलैंड नहर के संगम पर स्थित है। यहाँ लोहे, रासायनिक पदार्थो तंबाकू, सिगरेट तथा यंत्र बनाने के कारखाने हैं। हानोवर शिक्षा का केंद्र भी है। तकनीकी तथा पशुचिकित्सा विद्यालय यहाँ की प्रमुख शिक्षण संस्थाएँ हैं। व्यापारिक केंद्र होने के नाते यह सड़क, रेलमार्ग एवं जलमार्ग का संगम स्थल है। यहाँ के नागरिक विशुद्ध जर्मन भाषा बोलने के लिये प्रसिद्ध हैं। यह नगर प्रसिद्ध खगोलज्ञ विलयम हर्शेल तथा प्रसिद्ध दार्शनिक लाइब्निट्स (Leibnitz) का जन्म स्थान है। द्वितीय विश्वयुद्ध में इस नगर पर अनेक बार बम गिराए गए जिसके कारण यहाँ के अनेक प्राचीन भवन एवं कई बड़े उद्योग नष्ट हो गए थे। यह लोअर सैक्सनि (lower Saxony) की राजधानी है तथा यहाँ की जनसंख्या ५,७४,७०० (१९६१) है। [अ० ना० मे०]

हापुड़ स्थिति : २८°४२' उ० अ० तथा ७७°४७' पू० दे०। यह नगर भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के मेरठ जिले में मेरठ नगर से २८ किमी दक्षिण में बुलंदशहर जानेवाली पक्की सड़क पर स्थित है। ऐसा कहा जाता है, इस नगर की स्थापना १० वी शताब्दी में हुई थी। १८ वी शताब्दी के अंत में सिंधिया ने अपने फ्रांसीसी जनरल पेरो (Perron) को जागीर के रूप में इस नगर को दे दिया था। नगर की चहारदीवारी तथा खाइँ नष्टभ्रष्ट हो गई है, पर पाँच प्रवेशद्वारो के नाम रह गए हैं। चीनी, अनाज, कपास, इमारती लकडी, बाँस और पीतल के बरतनो के व्यापार का यह प्रमुख केंद्र है। नगर की जनसंख्या ५५,२२८ (१९६१) है। [अ० ना० मे०]

हारमोन (Hormones) शरीर की अंत.स्रावी ग्रंथियाँ विभिन्न प्रकार के उद्दीपन में ऐसे पदार्थों का स्राव करती हैं जिनसे शरीर में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। ये स्राव रुधिरवाहिनियो द्वारा अंत-कोशिका ऊतक द्रव से बहकर लक्ष्य अंगो तक पहुँचते है। अत इन ग्रंथियो को वाहिनी ग्रंथि कहते हैं। सर्वप्रथम १९०५ ई० में स्टर्लिंग ने सेक्रेटिन स्राव के संबध में हारमोन शब्द का प्रयोग किया था। हार्मोन शब्द का अर्थ होता है उद्दीपन करनेवाला अथवा गति का प्रारंभ करनेवाला। शरीर में अम्लकृत भोजन जब आमाशय से आगे पहुँचता है तब ड्युओडिनल श्लेष्मकला की कोशिकाओ से सेक्रेटिन का स्राव होता है। रुधिर परिवहन द्वारा यह पदार्थ अग्न्याशय में पहुँचकर अग्न्याशयी वाहिनी से मुक्त होनेवाले अग्न्याशयी रस के स्राव का उद्दीपन करता है। इससे यह निश्चित हो गया कि तंत्रिकातंत्र के सहयोग बिना भी शरीर में रासायनिक साम्यावस्था संभव है। हारमोन के प्रभाव से शरीर में उद्दीपन एवं अवरोध दोनो ही होते हैं। हारमोन के प्रभाव से शरीर में आधारभूत उपापचयी रूपातरण का प्रारंभ नही किया जा सकता पर उपापचयी रूपातरण की गति मे परिवर्तन लाया जा सकता है। आधुनिक परिभाषा के अनुसार वाहिनी अथवा अंत स्रावी ग्रंथियो द्वारा उन्मुक्त स्राव को हारमोन कहते है। ये स्राव शरीर में विभिन्न क्रियाओ के बीच रासायनिक साम्यावस्था स्थापित करते हैं, अतः सीमित अर्थ मे रासायनिक संतुलन के स्थान मे योगदान करते हैं। वनस्पतिजगत् में ऐसे अनेक रासायनिक संतुलनकारी पदार्थ पाए जाते है। उन्हे हारमोन माना जाय या नही यह विवादास्पद है। इससे हारमोन की परिभाषा बहुत व्यापक हो जाती है। इसके अंतर्गत क्षतिग्रस्त ऊतकों से उत्पन्न व्रण हारमोन और वनस्पतिजगत् के पादप हारमोन (Plant hormone, Phyto hormone) भी आ जाते हैं। तंत्रिका छोरो से मुक्त होनेवाले हारमोनो को तंत्रिका या न्यूरो हारमोन कहते है।

हारमोन जीवन की विभिन्न क्रियाओ में एकीकरण एवं समन्वय स्थापित करते हैं। पिट्यूटरी या पीयूषग्रंथि के अग्रपिंडक से वृद्धि-

समस्याओं पर विचार करते रहते थे। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'ए कंपैरेटिव ग्रैमर ऑव गौडियन लैंग्वेजेज विथ स्पेशल रिफरेंस टु ईस्टर्न हिंदी' (१८८०) है। उन्होंने 'चंद'ज प्राकृत ग्रैमर, चंदकृत रासो के 'पृथ्वीराज रासो' (अनुवाद, १८८६), और 'रिपोर्ट ऑन दि ब्रिटिश कलेक्शन ऑव सेंट्रल एशियन ऐंटिक्विटीज', 'मैनस्क्रिप्ट रिमेंस ऑव बुद्धिस्ट लिट्रेचर फाउंड इन ईस्टर्न तुर्किस्तान' (१९१६) का संपादन भी किया। उनके लेख अधिकतर 'जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल और 'दि इंडियन ऐंटीक्वेरी' आदि में मिलते हैं। ए० एफ० स्टार्क की सहकारिता में उन्होंने 'ए हिस्टरी ऑव इंडिया' (१९०३) शीर्षक पुस्तक प्रकाशित की। बोवर (Bover) हस्तलिखित पोथी का संपादन भी हॉर्नली का महत्वपूर्ण कार्य है। पुरातत्व तथा प्राचीन अभिलेखों का उन्होंने विशेष रूप से अध्ययन किया। [ल० सा० वा०]

हार्मोनिक विश्लेषण (Harmonic Analysis) ध्वनि तरंगें (Sound waves), प्रत्यावर्ती धाराएँ (alternating currents), ज्वार भाटा (tides) और मशीनों की हलचल जैसी भौतिक घटनाओं में आवर्ती लक्षण देखने में आते हैं। उपयुक्त गतियों को स्वतंत्र चर के क्रमागत मानों के लिये मापा जा सकता है। यह चर प्राय समय होता है। इस प्रकार प्राप्त न्यास (data) अथवा उन्हें निरूपित करनेवाला वक्र स्वतंत्र चर का फलन, मान लें f (x) प्रस्तुत करेगा, और किसी भी बिंदु पर वक्र की कोटि y = f (x) होगी। सामान्यत f (x) का गणितीय व्यंजक अज्ञात होगा, किंतु f (x) को कई एक ज्या (sine) और कोज्या (cosine) के पदों के योग रूप में प्रकट किया जा सकता है। ऐसे योग को फूरिये श्रेणी (Fourier series) कहते हैं (देखें फूरिये श्रेणी)। हार्मोनिक विश्लेषण का ध्येय इन पदों के गुणांकों का निर्धारण करना है। कभी कभी ऐसे विश्लेषण को भी, जिसमें आवर्ती संघटक गोलीय हार्मोनिक (spherical harmonic), बेलनीय हार्मोनिक (cylindrical harmonic) आदि होते हैं, हार्मोनिक विश्लेषण की संज्ञा दी जाती है। यदि हम फूरिये श्रेणी के प्रसार तक सीमित रहें तो इस श्रेणी के उस पद को, जिसका आवर्तकाल f (x) के आवर्तकाल के बराबर है, मूल (fundamental) कहते हैं, और उन पदों को जिनके आवर्तकाल इससे लघुतर होते हैं, संवादी (hormonic) कहते हैं।

अनुप्रयोग — फूरिये विश्लेषण के गणितीय भौतिकी, इंजीनियरिंग आदि में अगणित अनुप्रयोग हैं। इन्हें व्यापक रूप से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है — एक वर्ग वस्तुतः उनका है जिनमें घटनाएँ वस्तुत आवर्ती है, जैसे ज्वारभाटीय तरंगें और दूसरा वर्ग ऋतु, सूर्यकलंक आदि घटनाओं का, जिनका मूल आवर्तकाल सामान्यतया स्पष्ट नहीं होता और जिनके संवादियों के आवर्तकाल मूल के यथेष्ट भाजक (aliquot parts) नहीं होते। सच तो यह है कि किसी भी परिमित अनावर्ती (non periodic) वक्र का विश्लेषण संवादी विधि से किया जा सकता है, बशर्ते x दिशा में मापनी को इस प्रकार बदल दिया जाय कि वक्र की लंबाई 2π मात्रक हो जाय। अब हम फूरिये विश्लेषण में सामान्यतया प्रयुक्त विधियों का संक्षेप में वर्णन करते हैं.

संख्यात्मक विधियाँ — इनका आरंभ f (x) के निरूपण

$$y = a_1 \sin x + a_2 \sin 2x + a_3 \sin 3x + \dots + b_0 + b_1 \cos x + b_2 \cos 2x + \dots \quad (1)$$

से होता है जिसकी वैधता, x = 0 और x = 2π के बीच, इन दशाओं में फूरियो ने १८२२ में स्थापित की थी: फलन एकमानी, परिमित और सतत या परिमित संख्यक असातत्यवाला हो। गुणांक ये हैं

$$\left.\begin{aligned} b_0 &= \frac{1}{2\pi}\int_0^{2\pi} y\,dx \\ b_k &= \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} y\cos kx\,dx \\ a_k &= \frac{1}{\pi}\int_0^{2\pi} y\sin kx\,dx \end{aligned}\right\} \quad (2)$$

जहाँ k = 1, 2, 3, ... । (१) को निम्न विकल्प रूप में भी लिखा जा सकता है

$$y = C_1 \sin(x + \phi_1) + C_2 \sin 2(x + \phi_2) + C_3 \sin 3(x + \phi_3) + \dots, \quad (3)$$

$$\text{जहाँ } C_k = \sqrt{(a_k^2 + b_k^2)},\ \phi_k = \tan^{-1}(b_k/a_k) \quad (4)$$

किसी आवर्ती घटना के संबंध में प्राप्त अभिलेख पर विचार करें। स्पष्ट है कि समीकरण (1) से f (x) का निरूपण किया जा सकता है और a_k, b_k निर्धारित किए जा सकते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये पहले फलन का आवर्तकाल ज्ञात करना आवश्यक है। इसे 2π रेडियन मान कई भागों, मान लें n, में विभक्त करना होगा। समीकरण (1) में प्रथम n मापी हुई कोटियों का प्रतिस्थापन कर n अनिर्धारित गुणांकों में n समीकरण प्राप्त हो जाएँगे। इनका रूप

$y_k = b_0 + b_1 \cos x_k + b_2 \cos 2x_k + \dots + a_1 \sin x_k + a_2 \sin 2x_k + \dots$, k = 0, 1, 2, ... (n−1) है और y_k वक्र की k वीं कोटि है। इनसे ये संबंध मिलते हैं:

$$\left.\begin{aligned} b_0 &= \frac{1}{n}(y_0 + y_1 + \dots + y_{n-1}), \\ b_k &= \frac{2}{n}(y_0 \cos k x_0 + y_1 \cos kx_1 + \dots + y_{n-1} \cos k x_{n-1}) \\ a_k &= \frac{2}{n}(y_0 \sin k x_0 + y_1 \sin kx_1 + \dots + y_{n-1} \sin kx_{n-1}), \end{aligned}\right\} \dots (5)$$

इन गुणांकों का उपयोग कर वक्रालेखन किया जा सकता है और हो सकता है, यह वक्र प्रयोगदत्त समीकरण से मेल न खाता हो। लेकिन कुछ स्थितियों में फलन काफी सन्निकटन थोड़े से ही पदों द्वारा निरूपित हो जायगा। यदि तरंगों में नुकीले बिंदु हों तो अच्छा सन्निकटन प्राप्त करने के लिये बहुत से पद लेना आवश्यक होगा।

योजनाबद्ध विधियाँ — समीकरणों (5) को हल करने की साधनविधियाँ योजनाबद्ध होती हैं। इनमें से एक रंगविधि है जिसमें 6 बिंदुओं की योजना है। इसका हम अब विवरण देते हैं।

मे नही था कि फिलाना (ट्रिपोली और ट्यूनिस) के अगलबीदियों और टैजियर्स के इदरीसियो को स्वतंत्र होने में बाधा पहुँचा सकता, और 'मुस्लिम एशिया' के भी विद्रोहियो ने उसके नाकों दम कर दिया था। उसके शासन के अंतिम दिनो में ट्रोसोग्सियाना (मावरुन्नहर) और पूर्वी फारस दोनों ने विद्रोह कर दिया, और हारूँ उनका दमन करने के प्रयत्न में मशहाद में मारा गया। उसकी मृत्यु के समय उसके कोष में ९० करोड 'दिरम' प्राप्त हुए। उसके पश्चात् उसके दोनो पुत्रो अमिन और मामुनरशीद में राज्यविभाजन को लेकर युद्ध हो गया। ऐसी शका हो सकती है कि हारूँ के चरित्र मे, मुस्लिम धर्म का कट्टर भक्त होने के बावजूद, हिंसक निर्दयता थी। किंतु इतना होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि उसके राज्य में न्याय और सपन्नता थी।

हारूँ और उसके पुत्र का एक बड़ा सौभाग्य यह था कि उनके राज्यो में मध्यकालीन इस्लाम युग मे असांप्रदायिक और धार्मिक विज्ञानो की सतत वृद्धि हुई। अलफखरी ने लिखा है कि "हारूँ का शासन सारे शासनो में सर्वोत्तम था—प्रतिष्ठा, शालीनता और दानशीलता संपूर्ण राज्य मे व्याप्त थी। जितने विद्वान्, कवि, न्यायवेत्ता, कुरान पाठक, काजी और लेखक इसके दरबार में एकत्र होते थे, उतने किसी अन्य खलीफा के दरबार में समान नहीं पाते थे।"

हार्डी, टॉमस (१८४०-१९२८) जन्म वेसेक्स प्रदेश में हुआ। यह प्रदेश प्राचीन काल में इग्लैंड के नक्शे पर था, किंतु अब नही है। उनका सभी साहित्य वेसेक्स से सबंधित है। उनके उपन्यास वेसेक्स के उपन्यास कहलाते हैं और उनकी कविता वेसेक्स की कविता।

हार्डी ने कवितालेखन से साहित्यसेवा आरंभ की, किंतु प्राथमिक रचनाएँ उन्होने नष्ठ कर दी। १८७० से १८९८ तक उन्होंने कथासाहित्य को समृद्ध किया। वे जीवन और ससार के परिचालन में कोई न्याय अथवा व्यवस्था न देखते थे उनके अनुसार एक अंधी शक्ति इस जगत् के कार्यकलापो का परिचालन करती थी। इस अंधी शक्ति को वे 'इम्मेनेंट विल' कहते थे — ऐसी चालकशक्ति जो जीवन और ससार में निहित है।

अपने कथासाहित्य मे हार्डी ने जगत् के व्यापारो पर अपना आक्रमण उत्तरोत्तर अधिक तीखा किया। पहले उपन्यासो में यह अपेक्षाकृत हल्का है। १८७१ में उनकी पहली उपलब्ध रचना प्रकाशित हुई, 'डेस्परेट रिमेडीज', १८७२ मे दूसरी, 'अंडर दि ग्रीनवुड ट्री' और १८७३ मे तीसरी 'ए पेयर ऑव ब्ल्यू आइज'। अगली रचना 'फार फ्राम दि मैडिंग क्राउड' अधिक प्रौढ़ कृति है और इसके प्रकाशन के बाद उनकी ख्याति बढ़ी। आत्मविश्वास प्राप्त कर हार्डी ने विश्व की गति पर अपना आघात अधिक तीव्र कर दिया। इस काल की रचनाओ मे सर्वश्रेष्ठ हैं 'दि वुडलैंडर्स', 'दि रिटर्न ऑव दि नेटिव', 'दि ट्रपेट मेजर' और 'दि मेयर ऑव कास्टरब्रिज'। इसके बाद दो उपन्यास और लिखे गए जिनमें हार्डी घोर निराशा में डूब गए हैं।

आलोचको के प्रहारो से घबराकर हार्डी ने उपन्यास लिखना छोड़कर कविता लिखना शुरू किया। बीस वर्ष तक उन्होने कविता लिखी और अपने लिये ख्याति के नए द्वार खोले। कविता में भी हार्डी अपने विचारदर्शन को व्यक्त करते रहे, किंतु कविताओ में व्यक्त आघातो से पाठक और आलोचक उस हद तक मर्माहत न हुए। हार्डी का कहना था कि 'यदि गैलिलियो ने कविता में लिखा होता कि पृथ्वी घूमती है, तो शायद उन्हें इतनी तकलीफ न सहनी पडती।' कविता को एक बार पुनः अपनाकर हार्डी अपने साहित्यिक जीवन के प्रथम प्रेम की ओर मुड़े थे।

इसी बीच इन्होने अपनी सबसे महत्वपूर्ण कृति 'दि डाइनास्ट्स' (The dynasts) लिखी। यह तीन भागो में प्रकाशित हुई। यह रचना नाटक के रूप में महाकाव्य है। इसे भौतिक रगमंच पर नही खेला जा सकता। इसका अभिनय कल्पना के मंच पर ही संभव है। कथावस्तु नैपोलियन के अभियान से सबंधित है। यह विश्वविजेता भी क्रूर नियति का शिकार था। जीवन की शक्ति कालचक्र को घुमाती रहती है और सदाचारी तथा दुराचारी सभी उसमें पिसते रहते हैं। इस रचना मे हार्डी का विचारदर्शन बहुत स्पष्टता से व्यक्त हुआ है।

हार्डी की अंग्रेजी साहित्य को महत्वपूर्ण देन है। उन्होने एक छोटे से क्षेत्र का विशेष अध्ययन किया और क्षेत्रीय साहित्य की सृष्टि की। हिंदी में इस प्रकार के साहित्य को आंचलिक साहित्य कह रहे हैं। उन्होंने मानव जीवन के सबध में अपने साहित्य में आधारभूत प्रश्न उठाए और जो मर्यादा पूर्वकाल में महाकाव्य और दु:खात नाटक को प्राप्त थी, वह उपन्यास को प्रदान की। वे अनेक पात्रो के स्रष्टा और अद्भुत कहानीकार थे। किंतु इनके पात्रो में सबसे अधिक सशक्त वेसेक्स है। इस पात्र ने काल का प्रवाह उदासीनताभरे नेत्रों से देखा है, जिनमें न्याय और उचित अनुचित की कोई अपेक्षा नही।

उनकी मृत्यु १६ जनवरी, १९२८ को हुई और अब उन्हें वह समान मिला, जो जीवनपर्यंत कभी न मिला था। [ह० दे० बा०]

हॉर्नली, आगस्टस फ्रेडेरिक रूडोल्फ भारतीय भाषाओ पर कार्य करनेवाले बीम्स, ग्रियर्सन आदि विदेशी विद्वानो एव भाषावैज्ञानिको के साथ साथ हॉर्नली का नाम भी उल्लेखनीय है। आधुनिक भारतीय भाषाओ के उद्भव और विकास का ज्ञान प्राप्त करने में उनकी रचनाओ ने भी यथेष्ट सहायता पहुँचाई है। उनका जन्म १९ अक्तूबर, १८४१ को हुआ था। उन्होने स्टटगार्ट में और बासेल तथा ट्यूबिनगेन विश्वविद्यालयो मे शिक्षा प्राप्त कर १८६५ में चर्च मिशनरी सोसायटी का कार्य करना प्रारंभ किया। धर्मप्रचार के साथ साथ उनकी रुचि शिक्षण कार्य की ओर भी थी। १८७० ई० में इन्होने बनारस (वाराणसी) के जयनारायण कॉलेज मे अध्यापकत्व किया। तत्पश्चात्, १८७७ में वे कलकत्ते के कैथीड्रल मिशन कॉलेज के प्रिंसिपल नियुक्त हुए और १८८१ मे इडियन एजुकेशनल सर्विस मे आ गए। १८८१ से १८९९ ई० तक वे कलकत्ता मदरसा के प्रिंसिपल रहे। इन्ही सब पदो पर कार्य करते हुए इन्होने अपना विद्याप्रेम प्रकट किया और ख्याति प्राप्त की। १८९७ ई० में सरकार की ओर से उन्हें सी० आई० ई० की उपाधि मिली। कार्यव्यस्त रहते हुए भी हॉर्नली भाषाविज्ञान और व्याकरण संबंधी

रहती हैं। धौंकनी चलाने से वायु पैदा होती है जो तीलियों को स्पर्श करती हुई बाहर निकलने का प्रयत्न करती है। जब हम चावी दबाते हैं तब उसका पिछला भाग सूराख से उठ जाता है और धौंकनी से आई हुई हवा तीली को छूती हुई सूराख से बाहर निकलती है और तीली कंपन करने लगती है जिससे स्वर पैदा होता है।

कप्लर हार्मोनियम की बनावट सादे हार्मोनियम की तरह होती है। इन दोनों में केवल यह अंतर है कि कप्लर हार्मोनियम में तारों की बनी हुई एक और कंघी होती है जो चावियों और पहली कंघी के बीच होती है। इस अतिरिक्त कंघी के तार चावियों के साथ लगे रहते हैं। जब हम किसी चावी को दबाते हैं तब उस चावीवाले सप्तक की चावी भी स्वयं दब जाती है जिससे दो स्वर एक साथ उत्पन्न होते हैं और ध्वनि की तीव्रता दोगुनी हो जाती है।

हाथ-पाँववाले हार्मोनियम की बनावट भी सादे हार्मोनियम की तरह होती है। केवल उसमें पाँव से चलनेवाली धौंकनी अलग से फिट कर दी जाती है। पैर से चलनेवाली धौंकनी बाजे से अलग भी की जा सकती है। परंतु पाँववाले हार्मोनियम में धौंकनी अलग नहीं की जा सकती। पाँववाले हार्मोनियम को लपेटकर बक्स में बंद कर सकते हैं।

स्केलचेंज हार्मोनियम में चावियाँ कंघी पर फिट नहीं की जातीं। वे एक दूसरी तख्ती के साथ लगी रहती हैं और उस तख्ती का संबंध एक बड़े फीते से होता है। उस फीते को इधर उधर घुमाने से चावियाँ भी अपने स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर फिट हो जाती हैं। इस तरह का बाजा उन लोगों के लिये लाभदायक होता है जिन्हें केवल एक स्वर से ही गाने का अभ्यास होता है।

अधिकांश बाजे तीन सप्तकवाले होते हैं और उनमें ३७ स्वर होते हैं। किसी किसी बाजे में ३९ या ४८ स्वर भी होते हैं।

संगीत में तीन प्रकार के स्वर माने गए हैं। शुद्ध, कोमल तथा तीव्र। हार्मोनियम में सफेद चावियाँ शुद्ध स्वर देती हैं और काली चावियों से कोमल तथा तीव्र स्वर निकलते हैं। १, ३, ५, ६, ८, १० और १२ नंबरवाली चावियाँ शुद्ध स्वर देती हैं और २, ४, ९, ११ नंबर की चावियाँ कोमल स्वर उत्पन्न करती हैं। तीव्र स्वर ७ नंबर की चावी से उत्पन्न होता है।

१ से १२ तक के स्वरों को मंद्र सप्तक, १३ से २४ तक के स्वरों को मध्य सप्तक और २५ से आगे के स्वरों को तार सप्तक कहते हैं। प्रत्येक सप्तक में सात शुद्ध, चार कोमल और १ तीव्र स्वर होते हैं। इस तरह प्रत्येक सप्तक में कुल १२ स्वर होते हैं।

कई हार्मोनियमों में तीलियों के दो या तीन सेट लगाए जाते हैं। ऐसे बाजों की आवाज तीलियों के एक सेटवाले बाजे से ऊँची होती है। तीन तीलियोंवाले सेट अधिकतर पाँववाले हार्मोनियम में लगाए जाते हैं।

कई बाजों में दो या दो से अधिक धौंकनियाँ होती हैं। इंगलिश हार्मोनियम की धौंकनी में कई परतें होती हैं। इससे वायु पैदा करने की शक्ति बढ़ जाती है। [के० एन० दु०]

हार्वी, विलियम (सन् १५७८-१६५७) अंग्रेज चिकित्सक तथा रक्तपरिसंचरण के खोजकर्ता, का जन्म फोक्स्टन (Folkestone) में हुआ था और इन्होंने कैंटरबरी में तथा काइयस कालेज, कैंब्रिज में शिक्षा पाई थी। चिकित्साशास्त्र का अध्ययन इन्होंने पैडुआ में फैब्रिशियस, हायरोनिमस तथा कैसीरियस के अधीन किया। सन् १६०२ में आपने कैंब्रिज और पैडुआ, दोनों विद्यालयों से एम० डी० की उपाधि प्राप्त की तथा रॉयल कालेज ऑव फिजीशियंस के सन् १६०७ में सदस्य और सन् १६१३, १६२५ और १६२९ में निरीक्षक (censor) मनोनीत हुए। सन् १६०९ में इनकी नियुक्ति सेंट बार्थोलोमिउ अस्पताल में चिकित्सक के पद पर हुई तथा सन् १६१५ में आप कालेज के शरीरशास्त्र के प्राध्यापक पद पर जीवनपर्यंत के लिये नियुक्त किए गए। आप ब्रिटेन के राजा जेम्स प्रथम तथा चार्ल्स प्रथम, के चिकित्सक भी नियुक्त हुए तथा गृहयुद्ध में ऑक्सफोर्ड के घेरे के समय मर्टन कालेज के छात्राभिरक्षक (वार्डेन) रहे। सन् सन् १६५४ में वृद्धावस्था के कारण इन्होंने रॉयल कालेज ऑव फिजीशियंस के सभापति पद से त्यागपत्र दे दिया और सन् १६५६ में प्राध्यापक पद से।

हार्वी से पूर्व रक्तपरिसंचरण के संबंध में मुख्यतः गैलेन द्वारा प्रचारित विचार मान्य थे। हार्वी ने ही इन विचारों की भूल दर्शायी। इन्होंने स्थापित किया कि हृदय एक पेशी है, अलिंद (auricles) निलयों (ventricles) के पूर्व संकुचित होते हैं, धमनियों में नाड़ी की तरंग उनके विस्तार के कारण उत्पन्न होती है। वस्तुतः हृदय एक पंप है और उसका कार्य धमनियों में रक्त को ढकेलना है। यह पूर्ण तथा नया विचार था। इन्होंने सिद्ध किया कि रक्तपरिसंचरण का एक चक्र होता है। सरल और स्पष्ट प्रयोगों से दिखाया कि शिराओं के वाल्व का कार्य रक्त के वापस जाने को रोकना है, संपूर्ण रक्त फेफड़ों में जाकर हृदय के बाएँ भाग में आता है और वहाँ से पूरा संचरणचक्र पूराकर, शिराओं द्वारा हृदय के दाहिने भाग में आता है। तर्क द्वारा वे इस तथ्य पर पहुँचे कि सूक्ष्मतम धमनियों को सूक्ष्मतम शिराओं से जोड़नेवाली केशिकाएँ होती हैं, किंतु सूक्ष्मदर्शी का प्रयोग न करने के कारण वे इसे प्रत्यक्ष न देख सके।

जननसंबंधी आपकी खोजें भी कम महत्व की न थीं। आपने सर्वप्रथम यह प्रतिपादित किया कि प्रायः सब प्राणी, मनुष्य तथा वे भी जिनके बच्चे जीवित उत्पन्न होते हैं, अंडों से पैदा होते हैं। थोड़े थोड़े समय के अंतर पर मुर्गी के अंडे के विकास के तथा चिकारा हरिण के जननसंबंधी अपने अध्ययन और निरीक्षण का आपने विस्तृत वर्णन किया है।

आपने उपर्युक्त विषयों पर लैटिन भाषा में कई पुस्तकें और लेख लिखे, जिनसे आपकी खोजों का ज्ञान और प्रचार हुआ।

[भ० दा० व०]

हॉवर्ड फ्लोरी, सर (Howard Florey, Sir, सन् १८९८-१९६८) अंग्रेज चिकित्साविज्ञानी का जन्म दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया के ऐडलेड (Adelaide) नगर में हुआ था। आपने ऐडलेड, ऑक्सफोर्ड तथा कैंब्रिज विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाई।

केवल विषम प्रसंवादियो पर विचार करें और उस बिंदु को मूलबिंदु चुने जहाँ वक्र x—अक्ष का प्रतिच्छेदन करता है। तब समीकरण सरल करने पर ये होंगे :

$$3\,b_1 = (y_2-y_4)\sin 30^\circ + (y_1-y_5)\sin 60^\circ,$$
$$3\,b_3 = -(y_2-y_4)\sin 90^\circ$$
$$3\,b_5 = (y_2-y_4)\sin 30^\circ - (y_1-y_5)\sin 60^\circ$$
$$3a_1 = (y_1+y_5)\sin 30^\circ + (y_2+y_4)\sin 60^\circ + y_3\sin 90^\circ$$
$$3a_3 = (y_1-y_3+y_5)\sin 90^\circ$$
$$3a_5 = (y_1+y_5)\sin 30^\circ - (y_2+y_4)\sin 60^\circ + y_3\sin 90^\circ,$$

देखने में आता है कि y_3 को छोड सभी गुणांक योग रूप में या अंतर रूप में विद्यमान हैं। शेष क्रिया को इस प्रकार सारणीबद्ध किया जा सकता है

मापी हुई कोटियाँ	योग	अंतर		पहली और पाँचवी	तीसरी	कोज्या पद पहली और पाँचवी	तीसरी
$y_0, \ldots$		d_0					
$y_1\,y_5 \ldots$	S_1	d_1	$\sin 30^\circ$	S_1		d_2	
$y_2, y_4 \cdot$	S_2	d_2	$\sin 60^\circ$	S_2		d_1	
$y_3, \cdot$	S_3		$\sin 90^\circ$	S_3	$S_1 - S_3$	d_0	$d_0 - d_2$
				S_0 S_e $a_1 = \frac{S_1+S_e}{3}$ $a_5 = \frac{S_0-S_e}{3}$	S $a_3 = \frac{S}{3}$	D_0 D_e $b_1 = \frac{D_0+De}{3}$ $b_5 = \frac{D_0-De}{3}$	D $b_3 = \frac{D}{3}$

इस योजना में y_0 बढ़ा दिया गया है और वक्र x – अक्ष का $x=0$ पर प्रतिच्छेदन नही करता। किंतु यदि $x=0$ होने पर $f(x)=0$, तो पूर्वगामी समीकरण से y_0 लुप्त हो जाता है।

इस दिशा में ऐसे ही प्रयासों के फलस्वरूप फिशर हिनेब द्वारा चुनी हुई कोटियोवाली जैसी विधियो का विकास हुआ। हिनेब विधि में रगे विधि की अपेक्षा परिकलन कम हो जाता है किंतु प्रत्येक गुणांकयुग्म के लिये समदूरस्थ कोटि समुच्चय को मापना होता है। परिकलन की अन्य विधियाँ भी हैं — उदाहरणतया स्टीवमेज, एस० पी० टामसन, आदि। ऐसे लेखापत्र भी बनाए गए हैं जिनमें बिना परिकलन किए ही ज्या और कोज्या गुणनखंड का हिसाब लग जाता है। इस तरह की लेखाचित्रीय विधियो के संबंध में सी० एस० शिलकटर, पेरी, हेरिसन और एशवर्थ के नाम उल्लेखनीय हैं।

यांत्रिक विधि — उपर्युक्त विधियो में श्रम काफी होता है, इसलिये श्रमनिवारक यांत्रिक विधियाँ भी निकाल ली गई हैं। मान लें, आरेखन 1 के वक्र $y=f(x)$ का विश्लेषण करना है, तो गुणांक a के समानुपाती राशि प्राप्त करने के लिये हमे कोटियों को sin x से गुणा करने पर प्राप्त वक्र के नीचेवाले क्षेत्रफल को ज्ञात करना होगा। इसी प्रकार अन्य गुणांक भी ज्ञात किए जा सकते हैं। इसी कारण मशीनो में यह व्यवस्था रहती है कि उनमें sin (kx) से गुणाकर समाकलन हो जाता है। ऐसी प्रथम मशीन का सुझाव लार्ड केल्विन ने किया था। तब से बहुत प्रगति हो चुकी है और मैसेचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑव टेक्नोलोजी ने एक ऐसे समाकलनलेखा (integraph) का आविष्कार किया है जो किन्ही भी दो वक्रो के गुणनफल का समाकलन दे देता है। इस दिशा में कुछ उल्लेखनीय यंत्रनिर्माता सेलन बड, वुडबरी, सोमरफेल्ड हैं।

समक्ष विश्लेषण — उपर्युक्त विधियों में प्रयोगदत्त न्यास को आधार माना गया है। समक्ष विश्लेषण (direct analysis) विधि मे, जिसे प्यूपीन ने सन् १८९४ में सुझाया था विश्लेषण विचाराधीन घटना की समुचित और उपयुक्त क्रिया द्वारा सीधे होता जाता है। निस्संदेह ऐसी व्यवस्था सदा संभव नही होती। एक आदर्श परिस्थिति, जहाँ ऐसा संभव है, विद्युद्धाराओ अथवा वोल्टता में उपस्थित होती है, यहाँ भी जब अधिक प्रसंवादी विश्लेषण अपेक्षित हो, हेनरिकी कोरेडी जैसा यांत्रिक विश्लेषण उपयोगी रहता है। [च० मो०]

हार्मोनियम हार्मोनियम एक ऐसा वाद्ययंत्र है जिसमें तीलियो के कंपन से स्वर पैदा होता है। सर्वप्रथम इसका आविष्कार कोपनहेगन निवासी प्रोफेसर क्रिश्चियन गोटलिएब क्रैटजेंस्टाइन ने १७७९ ई० में किया। १८१८ ई० में एँटन हैकेल नामक व्यक्ति ने वियेना मे, फिशरमोनिका नामक हार्मोनियम बनाया जो जर्मनी में आज तक प्रचलित है। सन् १८४० में डिवेन नामक व्यक्ति ने एक दूसरे प्रकार का हार्मोनियम बनाया जिसने धीरे धीरे आधुनिक हार्मोनियम का रूप ले लिया।

अन्य वाद्ययंत्रो की तरह, इस वाद्ययंत्र मे ट्यूनिंग (स्वर मिलाने) की आवश्यकता नही होती। एक बार का ट्यून किया हुआ बाजा कई वर्षों तक ठीक स्वरों को देता रहता है। आजकल कई प्रकार के हार्मोनियम प्रचलित हैं, जैसे — सादा हार्मोनियम, कप्लर हार्मोनियम, स्केलचेंज हार्मोनियम, पाँववाला हार्मोनियम तथा हाथपाँववाला हार्मोनियम।

सादा हार्मोनियम एक लकड़ी के संदूक जैसा होता है। उसमें पीछे की ओर एक धौंकनी होती है और आगे की ओर चार या पाँच गोल लट्टू लगे रहते हैं जिन्हे स्टॉप कहते हैं। हार्मोनियम बजाते समय स्टापो को बाहर खीच लेते हैं। उसके ऊपरी हिस्से पर सफेद और काली 'की' या चाबियाँ होती हैं। इन्ही को दबाने से स्वर निकलते हैं। चाबियों के नीचे पीतल की स्प्रिंग होती हैं जो चाबियों को स्थिर रखती हैं। इन्हे सुंदरियाँ कहते हैं। जब चाबियो को दबाकर छोड देते हैं तब इन कमानियों के दबाव से वे ऊपर अपनी पूर्व स्थितियो मे आ जाती हैं।

जिस तख्ती पर चाबियाँ होती हैं, उसे कघी कहते हैं। कघी के ऊपर बहुत से सुराख बने होते हैं जिनमें चाबियाँ फिट की जाती हैं। कघी के दूसरी ओर सुराखों के ऊपर तीलियाँ (रीडें) कसी

के साथ ही पढी और साहित्य तथा जीवन का क्या संबध है इसे इसी बड़े साहित्यिक ने बतलाया। इन्होने गालिब तथा सादी की सवानिह उमरियाँ लिखकर उर्दू में साहित्यिक जीवनचरित्र लिखने का ढंग चलाया। [र० ज०]

हावाई (Hawaii) यह प्रशात महासागरस्थित एक सागरीय राज्य (Oceanic state) है। २१ अगस्त, १९५९ ई० को सयुक्त राज्य, अमरीका के ५० वें राज्य के रूप में समिलित हुआ। यह सानफ्रासिसको से ३,३४४ किमी दक्षिण पश्चिम की ओर स्थित है। मुख्य द्वीपसमूह में हावाई, मॉई (Maui), ओई (Oahu) मोलोकई (Molokai), लनाई (Lanai), निहाउ (Niihau) तथा कहूलाव (Kahoolawe) निकटवर्ती छोटे द्वीप के साथ समिलित हैं। सपूर्ण द्वीपसमूह १८° ५५' से २८° २५' उ० तथा १५४° ४८' से १७८° २५' प० दे० तक लगभग २६,४० किमी में फैला हुआ है। इसका पूरा क्षेत्रफल १६,५७६ वर्ग किमी और जनसख्या ६३२,७२२ (१९६० ई०) है। जन सख्या का घनत्व ६० मनुष्य प्रति वर्ग किमी है। १९५० ई० से जनसख्या में २६ ६% वृद्धि हुई। यहाँ की राजधानी होनोलुलू की जनसख्या १९६० ई० में २,९४,१९४ थी। हीलो की जनसख्या २५,९६६ (१९६० ई०) है। हावाई द्वीपों का मुख्य समूह ज्वालामुखी के उद्गार से बना है और अधिकाशतः पहाडी है। समुद्रतल से ऊँचाई हावाई द्वीप की माउना की चोटी पर १३,७८४ फुट है। आंतरिक भाग अधिकाश जगली है और सुंदर घाटियो तथा छोटी छोटी नदियों से परिपूर्ण है। यहाँ पर कोई बड़ी नदी अथवा झील नही है। कुआई (Kauai) में प्रसिद्ध वैमी (Waimea) कैनियन है। हवाई में ज्वालामुखी तथा लावा उगलनेवाला पहाड है जो दर्शकों के लिये बडा चित्ताकर्षक है।

हावाई की जलवायु आर्द्र और सम है। व्यापारिक वायुओ के मार्ग में स्थित होने के कारण ये द्वीपसमूह अक्षाशों की ऊँचाई से भी अधिक ठढे और शीतोष्ण हैं। उत्तरी पूर्वी भाग में दक्षिणी पूर्वी भाग की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। समुद्री धाराएँ ठढक को प्रभावित करती हैं। औसत दैनिक तापातर होनोलुलू में १०°फ० है और अधिकतम तथा न्यूनतम ताप क्रमश ८८° फ० व ५६° फ० हैं।

शातोष्ण प्रदेशीय वनस्पति बहुतायत से पाई जाती है। यहाँ विविध प्रकार के पशु पक्षी और तटीय प्रदेशों में मछलियाँ अधिक मात्रा में पाई जाती हैं।

चीनी उद्योग में बहुत लोग लगे हैं, अन्ननास (Pineapple) उद्योग, फलों तथा रसो के व्यापार से १० करोड डालर की प्राप्ति होती है। दूसरे उद्योगो में पशु तथा मुर्गीपालन और कॉफी आदि का उत्पादन आता है। कृषि का औद्योगीकरण हुआ है और कृषि उत्पादन अमरीका के बाजारो में निर्यात किया जाने लगा है। १९५९ ई० मे हावाई द्वीपसमूह में ६,२४२ कृषि फार्म थे जो २४,६१,४५५ एकड भूमि में उत्पादन करते थे।

वायुयात्रा बहुत अधिक बढ गई है। जलयानों का गमनागमन हावाई और प्रशात सागर के अमरीकी स्थल के बीच होता है। हवाई बहुत से जलमार्गों का केंद्र है। १९६० ई० मे ४७२८ किमी लबी पक्की सडके थी। एक जलयान यात्रा व्यवस्था द्वारा इन द्वीपों के विभिन्न भागों में यातायात का क्रम चलता है। यहाँ पर १३ व्यापारिक वायुयान के अड्डे हैं। हावाई के निवासी प्राय ईसाई हैं। ६ और १६ वर्ष तक के बालकों के लिये स्कूली शिक्षा अनिवार्य है। १९०७ ई० में हावाई विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इस द्वीप की आदि सस्कृति आधुनिक सस्कृति के प्रभाव से लगभग नष्ट हो चुकी है। यह द्वीप सर्वप्रथम पोलीनेशियन जातियों द्वारा बसा जिनकी उत्पत्ति दक्षिणी पूर्वी एशिया में मानी जाती है। कैप्टेन जेम्स कुक ने १७७८ ई० में हावाई द्वीपों का भ्रमण किया और इसका नाम सैनविच (Sanwich) द्वीप रखा। [शा० ला० का०]

हास्यरस तथा उसका साहित्य (सस्कृत, हिंदी) जैसे जिह्वा के आस्वाद के छह रस प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार हृदय के आस्वाद के नौ रस प्रसिद्ध हैं। जिह्वा के आस्वाद को लौकिक आनद की कोटि में रखा जाता है क्योंकि उसका सीधा सबध लौकिक वस्तुओं से है। हृदय के आस्वाद को अलौकिक आनद की कोटि में माना जाता है क्योंकि उसका सीधा सबध वस्तुओं से नही किंतु भावानुभूतियों से है। भावानुभूति और भावानुभूति के आस्वाद में अंतर है।

भारतीय काव्याचार्यों ने रसो की सख्या प्राय नौ ही मानी है क्योकि उनके मत से नौ भाव ही ऐसे हैं जो मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से घनिष्ठतया सबधित होकर स्थायित्व की पूरी क्षमता रखते हैं और वे ही विकसित होकर वस्तुतः रस संज्ञा की प्राप्ति के अधिकारी कहे जा सकते हैं। यह मान्यता विवादास्पद भी रही है, परतु हास्य की रसरूपता को सभी ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है। मनोविज्ञान के विशेषज्ञों ने भी हास को मूल प्रवृत्ति के रूप में समुचित स्थान दिया है और इसके विश्लेषण में पर्याप्त मनन चिंतन किया है। इस मनन चिंतन को पौर्वात्य काव्याचार्यों की अपेक्षा पाश्चात्य काव्याचार्यो ने विस्तारपूर्वक अभिव्यक्ति दी है, परतु फिर भी यह नही कहा जा सकता कि उन्होंने इस तत्व का पूरी व्यापकता के साथ अध्ययन कर लिया है और या हास्यरस या हास की काव्यगत अभिव्यजना की ही कोई ऐसी परिभाषा दे दी है जो सभी सभी प्रकार के उदाहरणों को अपने में समेट सके। भारतीय आचार्यों ने एक प्रकार से सूत्ररूप में ही इसका प्रख्यापन किया है किंतु उनकी सक्षिप्त उक्तियो में पाश्चात्य समीक्षकों के प्रायः सभी निष्कर्षों और तत्वों का सरलता पूर्वक अतर्भाव देखा जा सकता है।

हास्यरस के लिये भरत मुनि का नाट्यशास्त्र कहता है —

विपरीतालङ्कारैर्विकृताचाराभिधान वेसैश्च
विकृतैरर्थविशेषैर्हसतीति रस. स्मृतो हास्यः ॥

भावप्रकाश में लिखा है —

प्रीतिर्विशेष. चित्तस्य विकासो हास उच्यते।

साहित्यदर्पणकार का कथन है—

वर्णादि वैकृताच्चेतो विकारो हास्य इष्यते

× ×

विकृताकारवाग्वेशचेष्टादेः कुहकाद् भवेत् ॥

सन् १९२५ में आप रॉकफेलर संस्थान के सदस्य होकर सयुक्त राज्य अमरीका गए। सन् १९३१ से १९३५ तक ये शेफील्ड तथा सन् १९३५ से १९६२ तक ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयो मे चिकित्सा-विज्ञान के प्रोफेसर रहे। सर ऐलेग्जैंडर फ्लेमिंग तथा अर्न्स्ट बोरिस चेन (Chain) के साथ आपको भी सन् १९४५ में पेनिसिलियम नोटेटम (penicillium notatum) नामक रोटी तथा पनीर में लगनेवाली फफूंद की खोज तथा पृथक्करण के लिये शरीरक्रिया-विज्ञान तथा कायचिकित्सा सबधी नोबेल पुरस्कार मिला था। आप चिकित्साविज्ञान के प्रतिष्ठित अनुसंधानी, वैज्ञानिक तथा शिक्षक थे। आपने श्लेष्मल झिल्ली की सूजन तथा उसके द्वारा श्लेष्म स्राव के उत्पादन, धमनी काठिन्य तथा थ्रॉम्बोसिस (Thrombosis) का विशेष अध्ययन किया था।

सन् १९४१ में रॉयल सोसायटी के सदस्य तथा सन् १९४४ मे नाइट की उपाधि पाने के अतिरिक्त आपको अनेक वैज्ञानिक सस्थाओ से पदक तथा अन्य समान भी मिले थे। [श० दा० व०]

हाल हालकृत गाहा सत्तसई (गाथा सप्तशती) भारतीय साहित्य की एक सुविख्यात काव्यरचना है। इसमें ७०० प्राकृत गाथाओ का सग्रह है। कर्ता का नाम हाल के अतिरिक्त सालाहरण तथा सातवाहन भी पाया जाता जाता है। सस्कृत के महाकवि बाण ने हर्षचरित् की उत्थानिका मे इस कृति का कोष या सुभाषित कोष और उसके कर्ता का सातवाहन के नाम से उल्लेख किया है। इससे अनुमान होता है कि मूलत. यह कृति चुने हुए प्राकृत पद्यो का एक सग्रह था। धीरे धीरे उसमे सात सौ गाथाओ का समावेश हो गया और वह सतसई के नाम से प्रख्यात हुई। तथापि उसके कर्ता का नाम वही बना रहा। आदि की तीसरी गाथा मे ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि इस रचना में हाल ने एक कोटि गाथाओं में से ७०० अलकारपूर्ण गाथाओ को चुनकर निबद्ध किया। सतसई की रचना का काल अनिश्चित है। हाँ, बाण के उल्लेख से इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि गाथाकोष के रूप में उसका सकलन ईसा की सातवी शती से पूर्व हो चुका था। सातवाहन का एक नामातर शालिवाहन भी है जो ई० सन् ७८ में प्रारंभ होनेवाले एक संवत् के साथ जुडा हुआ पाया जाता है। वायु, विष्णु, भागवत आदि पुराणो मे आध्रभृत्य नामक राजाओ की वंशावली पाई जाती है जिसमें सर्वप्रथम नरेश का नाम सातवाहन तथा १७वें राजा का नाम हाल मिलता है। इस राजवश का प्रभाव पश्चिम भारत में ईसा की प्रथम तीन-चार शतियों तक गुप्तराजवश से पूर्व था। उनकी राजधानी प्रतिष्ठानपुर (आधुनिक पैठन) थी। सातवाहन (हाल) कुतूहल कविकृत प्राकृत काव्य लीलावई के नायक हैं। जैन कवि उद्योतनसूरि ने अपनी कुवलयमाला कथा (शक ७००) मे सालाहरण कवि की प्रशसा पालित्तय (पादलिप्त) और छप्पएणय नामक कवियो के साथ साथ की है और यह भी कहा है कि तरगवती कथा के कर्ता पालित्त (पादलिप्त) से हाल अपनी काव्यगोष्ठियो मे शोभायमान होते थे। इससे ७०० शक से पूर्व हाल की ख्याति का पता चलता है।

हालकृत सत्तसई की अनेक टीकाओ में से पीतांबर और भुवनपालकृत दो टीकाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमे तीन सौ से ऊपर गाथाओ में कर्ताओ का भी उल्लेख पाया जाता है जिनमे पालित्तक, प्रवरसेन, सर्वसेन, पोट्टिस, कुमारिल आदि कवियों के नाम पाए जाते हैं।

सत्तसई के सुभाषित अपने लालित्य तथा मधुर कल्पना के लिये समस्त प्राचीन साहित्य में अनुपम माने गए हैं। उनमे पुरुष और नारियो की शृगारलीलाओ तथा जलाशय आदि पर नर नारियों के व्यवहारो और सामान्यतः लोकजीवन के सभी पक्षो की अतिसुंदर झलकें दिखाई देती हैं। हाल की इस रचना का भारतीय साहित्य पर गंभीर प्रभाव पड़ा है। अलकारशास्त्रो मे तो उसके अवतरण दृष्टात रूप से मिलते ही हैं। संस्कृत में आर्या सप्तशती तथा हिंदी मे तुलसी सतसई, बिहारी सतसई आदि रचनाएँ उसी के आदर्श पर हुई हैं (देखिए गाथा स० श०, डा० वेबर द्वारा संपादित, जर्मनी १८७० एव १८८१; नि०सा० प्रेस, बबई, १९११)।

हाली, ख्वाजः अल्ताफ हुसेन इनके पूर्वज दिल्ली के गुलाम वश के समय मे हिंदुस्तान आए और पानीपत में जागीर पाकर वही बस गए। ये अनसारी कहलाते थे। हाली का जन्म सन् १८३७ ई० में यहीं हुआ और आरभ मे उर्दू, फारसी तथा अरबी की शिक्षा इन्हें यही मिली। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये यह सन् १८५४ ई० में दिल्ली आए और दो वर्ष बाद संबंधियो के कहने से पानीपत लौट गए। कविता की ओर इनकी रुचि पहले ही से थी पर जब जहांगीराबाद के नवाब मुस्तफा खाँ 'शेफ्ता' का सत्संग इन्हे मिला तब कविता का प्रेम दृढ हो गया। शेफ्ता की मृत्यु पर यह लाहौर गए और सरकारी बुकडिपो में अंग्रेजी से उर्दू में अनुवादित पुस्तको के संशोधन निरीक्षण का कार्य करने लगे। इनके साहित्यिक जीवन का यह काल महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन्होने यहाँ बहुत सी अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ी तथा अंग्रेजी साहित्य के विचारो को सूक्ष्म दृष्टि से देखा और समझा। इनको लेकर इन्होंने समग्र उर्दू साहित्य तथा काव्य का सशोधन परिवर्तन करने का आदोलन चलाया। लाहौर मे चार वर्ष रहकर यह दिल्ली चले आए और एक स्कूल में अध्यापक हो गए। यही यह सर सैयद अहमद खाँ से मिले और उनके आदेश पर 'मद्दोजजरे इस्लाम' नामक लबी कविता लिखी, जिसे 'मुसद्दसे हाली' भी कहते हैं। सन् १८८७ ई० मे हैदराबाद सरकार से इन्हे एक सौ रुपए की मासिक वृत्ति मिलने लगी और यह नौकरी छोड़कर साहित्यसेवा मे लग गए। सन् १९०४ ई० में इन्हे शम्सुल् उलमा की पदवी साहित्यिक तथा शिक्षण सेवा के उपलक्ष में मिली। सन् १९१४ ई० मे इनकी मृत्यु हो गई।

उर्दू भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में हाली का व्यक्तित्व अनुपम है। गजल, मर्सिए आदि कहने के सिवा यह साहित्यमर्मज्ञ, गद्यलेखक, समालोचक आदि सब कुछ थे और प्रत्येक क्षेत्र में इन्होने कोई न कोई नया मार्ग निकाला, जो इनकी निजी विशेषता है। जिन कवियो ने उर्दू काव्य के प्रवाह को सरलता तथा सत्यता की ओर मोडा था उनमें हाली उत्कृष्ट कोटि के थे। उर्दू गद्यलेखन में भी इन्होने ऐसी शैली चलाई जो साहित्यिकता के साथ जातीय बुद्धि के परिष्करण तथा समाजसुधार में भी अत्यंत लाभप्रद सिद्ध हुई। उर्दू में वैज्ञानिक आलोचना की नींव इनकी रचना 'मुकद्दमः शेरो शाअरी'

वर्तमान काल के पूर्व उसमें विविधता इतनी नही जितनी आज दिखाई पड़ रही है।

हास्यरस की धारा के वैविध्य (अथवा भेदो) को विषय और व्यजना (अर्थात् अर्थ और वाक्) की दृष्टि से देखा जा सकता है। विषय को हम आकृति, प्रकृति, परिस्थिति, वेश, वाणी, व्यवहार और वस्तु में विभक्त कर सकते हैं। आकृति का बेतुकापन है मोटापा, कुरूपता, भद्दापन, अंगभग, बेजा नजाकत, तोंद, कूबड, नारियों का अत्यत कालापन, आदि। इनमें से अनेक विषयो पर हास्यरस की रचनाएँ हो चुकी हैं। ध्यान देने योग्य बात है कि एक समय का हास्यास्पद विषय सभी समयो का हास्यास्पद विषय हो जाए, ऐसा नही हुआ करता। आज अगभग, निर्मुच्छता आदि हास्य के विषय नही माने जाते अतएव अब इनपर रचनाएँ करना हास्य की सुरुचि का परिचायक न माना जाएगा। प्रकृति या स्वभाव का बेतुकापन है उजड्डपन, बेवकूफी, पाखड, झेंप, खुशामद, अमर्यादित फैशनपरस्ती, कजूसी, दिखावा पडितमन्यता, अतिहास्यपात्रता, अनधिकारपूर्ण अहमन्यता, आदि। आकृति के बेतुकेपन की अपेक्षा प्रकृति के बेतुकेपन को अपना लक्ष्य बनाकर रचनाएँ करना अधिक प्रशस्त है। रचनाकारों ने कजुसी आदि की वृत्तियों पर अच्छे व्यग किए हैं, परतु अभी इस दिशा में अनेक विषय अछूते ही छूट गए हैं। परिस्थिति का बेतुकापन है गगामदारी जोड़ा (उदाहरणार्थ 'कौवा के गले सोहारी', हूर के पहलू में लगूर', 'पतलून के नीचे धोती', 'गदहे सों वाचालता अरु धोबी सो मौन', आदि) समय की चूक (अवसर चूकी ग्वालिनी, गावै सारी रात) समाज की असमजसता में व्यक्ति की विवशता आदि। इसका अत्यत सुंदर उदाहरण है रामचरितमानस का केवट प्रसग जिसमें राम का मर्म समझ जाने की डींग हाँकनेवाले मूर्ख किंतु पडितमन्य केवट को राम कोई उत्तर नही दे पाते और एक प्रकार से चुपचाप आत्मसमर्पण कर देते हैं। यह परिस्थिति का व्यग था। वेश का बेतुकापन, हास्यपात्र नटो और विदूषकों का प्रिय विषय ही रहा है और प्रहसनों, रामलीलाओं, रासलीलाओं, 'गम्मत', तमाशों आदि में आसानी से दिया जा सकता है। धर्मध्वजियों (बगुलाभक्तों का) वेश, अधानुकरण करनेवाले फैशनपरस्तो का वेश, 'मर्दानी औरत' का वेश, ऐसे बेतुके वेश हैं जो रचना के विषय हो सकते हैं। वेश के बेतुकेपन की रचना भी आकृति के बेतुकेपन की रचना के समान प्राय छिछले दर्जे की होगी। वाणी का बेतुकापन है हकलाना, बात बात पर 'जो है सो' के सदृशतकियाकलाम लगाना, शब्दस्खलन करना ('जल भरो' की जगह 'भल जरो' कह देना), अमानवी ध्वनियाँ (मिमियाना, रेंकना, स्वरवैषम्य अथवा फटे बाँस की सी आवाज, बैठे गले की फुसफुसाहट आदि), शेखी के प्रलाप, गपबाजो (जो अभिव्यजना की विधा के रूप की न हो), पडिताऊ भाषा, गँवारू भाषा, अनेक भाषा के शब्दों की खिचड़ी, आदि। व्यवहार का बेतुकापन है असमंजस घटनाएँ, फूहड हरकतें, अतिरजना, चारित्रिक विकृति, सामाजिक उच्छृंखलताएँ, कुछ का कुछ समझ बैठना, कह बैठना या कर बैठना, कठपुतलीपन (यत्रवत् व्यवहार जिसमें विचार या विवेक का अभाव शून्यवत् रहता है) इत्यादि। हास्यरस की अभिव्यजना के लिये, चाहे वह परिहास की दृष्टि से (संतुष्टि की दृष्टि से) हो चाहे उपहास की दृष्टि से (संशुद्धि की दृष्टि से), व्यवहार का बेतुकापन ही प्रचुर सामग्री प्रदान कर सकता है। वस्तु की दृष्टि से मनुष्य ही क्यों, देव दानव (विष्णु, शकर, राम, कृष्ण, रावण, कुभकर्ण आदि) पशु पक्षी (कुत्ते, गधे, ऊँट, उल्लू, कौवा आदि), खटमल, मच्छर, झाड़ू, टोकनी, प्लेट, राशनिंग आदि अनेक विषयों पर सफलतापूर्वक कलमें चलाई गई हैं। परंतु इन वस्तुओ और विशेषत. इष्ट देवो एव प्रशासनिक व्यगो के साथ मजाक जहाँ तक प्रीतिभाव को लेकर होगा, वहीं तक हास्यरस की कोटि का अधिकारी कहा जाएगा। खीझभरी अन्य रचनाएँ रौद्र, वीभत्स या अन्य रसो की कोटि में पहुँच जा सकती हैं।

अभिव्यजना में प्रत्याशित का वैपरीत्य अनेक प्रकार से देखा और दिखाया जा सकता है। इसे बेतुकापन, विकृति, असमजसता आदि शब्दो से ठीक ठीक नही समझाया जा सकता। यह वह वाक् कौशल है जिसके लिये रचनाकार में भी पर्याप्त प्रतिभा अपेक्षित होती है और उस रचना के द्रष्टा, श्रोता या पाठक में भी। जिस सामाजिक (द्रष्टा, श्रोता या पाठक) में हास्य की इच्छा और आशा न होगी, स्वभाव में विनोदप्रियता और हास्योन्मुखता न होगी तथा बुद्धि के शब्दसंकेतों और वाक्यगत अगो को समझने की क्षमता न होगी, समझना चाहिए कि उसके लिये हास्यरस की रचनाएँ हैं ही नहीं। इसी प्रकार जिस कलाकार (कवि, लेखक या अभिनेता) में परिष्कारप्रियता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, और शब्द तोलने की कला नहीं है वह हास्यरस का सफल लेखक नही हो सकता। सफल लेखक अप्रत्याशित शब्दाडबर के सहारे, शब्द की अप्रत्याशित व्युत्पत्ति के सहारे (जैसे—को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के वीरविहारी), अप्रत्याशित विलक्षण उपमाओ आदि अलकारों के सहारे (जैसे—न साहेव ते सूधे वतलाएँ, गिरी थारी अइसी भन्नायँ, कर्बो छउकन जइसी खउख्यायँ, पटाका अइसी दगि दगि जायँ—रमई काका, मन गाडी गाड़ी रहै प्रीति क्लियर बिनु लैन, जब लगि तिरछे होत नहिं सिगल दोऊ नैन—सुकवि), विलक्षण तर्कोक्तियो के सहारे (जैसे हाथी के पदचिह्नों के लिये लालबुझक्कडी तर्क पाँव में चक्की बाँध के हिरना कूदा होय), वाग्वैदग्ध्य (विट्) की अनेक विधाओं के सहारे यथा, (१) अर्थ के फेर बदल के सहारे (जैसे—'भिक्षुक गो कितको गिरिजा ? सुतो माँगन को बलि द्वारे गयो री' सागर शैल सुतान के बीच यों आपस में परिहास भयो री, (२) प्रत्युतर मे नहले की जगह दहला लगाने की कला के सहारे (जैसे—गावत बाँदर बैठ्यो निकुज मे ताल समेत, तै आँखिन पेखे, गाँव में जाय कै मैं हू वछानि को वैलहिं वेद पढ़ावत देखे — काव्यकानन), सैटायर के सहारे (जैसे—रामचरितमानस के शिवबरात प्रसग में विष्णु की उक्ति कि बर अनुहारि बरात न भाई, हँसी करइहहु पर पुर जाई), कृष्णायन में उद्धव की उक्ति कि भवन जरैहैं मधुपुरी, श्याम बजैहैं बेनु ? भवानीप्रसाद मिश्र जी का गीतफरोश आदि), कटाक्ष (आइरनी) के सहारे (जैसे, करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहिं, रे गंधी मतिअंध तू अतर दिखावत काहि — विहारी, मुफ्त का चदन घस मेरे नदन — लोकोक्ति; मुनसी कसाई की कलम तलवार है — भडौवा सग्रह., विरूपरचनानुकरण (पैरोडी) के सहारे (जैसे, नेता ऐसा चाहिए जैसा रूप सुभाय, चदा सारा गहि रहै देय रसीद उड़ाय—चोंच, बीती

दशरूपककार की उक्ति है —

विकृताकृतिवाग्वेरात्मनस्यपरस्य वा
हासः स्यात् परिपोषोऽस्य हास्य स्त्रिप्रकृति स्मृत.॥

तात्पर्य यह है कि हास एक प्रीतिपरक भाव है और चित्तविकास का एक रूप है। उसका उद्रेक विकृत आकार, विकृत वेष, विकृत आचार, विकृत अभिधान, विकृत अलकार, विकृत अर्थविशेष, विकृत वाणी, विकृत चेष्टा आदि द्वारा होता है — इन विकृतियो से युक्त हास्यपात्रता चाहे अभिनेता की हो, चाहे वक्ता की हो, चाहे अन्य किसी की हो। विकृति का तात्पर्य है प्रत्याशित से विपरीत अथवा विलक्षण कोई ऐसा वैचित्र्य, कोई ऐसा बेतुकापन, जो हमें प्रीतिकर जान पड़े, क्लेशकर न जान पड़े। इन लक्षणों में पाश्चात्य समीक्षको के प्राय सभी लक्षण समाविष्ट हो जाते हैं, जहाँ तक उनका सबध हास्य विषयो से है। ऐसा हास जब विकसित होकर हमें कविकौशल द्वारा साधारणीकृत रूप में, अथवा आचार्य प० रामचद्र शुक्ल की शब्दावली के अनुसार, मुक्त दशा में प्राप्त होता है, वह हास्यरस कहलाता है।

हास के भाव का उद्रेक देश-काल-पात्र-सापेक्ष रहता है। घर पर कोई खुली देह बैठा हो तो दर्शक को हँसी न आवेगी परतु उत्सव मे भी वह इसी तरह पहुँच जाय तो उसका आचरण प्रत्याशित से विपरीत या विकृत माना जाने के कारण हँसी जगा देगा; उसका व्यवहार हास की जननी हो जायगा। युवा व्यक्ति शृंगार करे तो फबने की बात है किंतु जर्जर बुड्ढे का शृंगार हास का कारण होगा; कुर्सी से गिरनेवाले पहलवान पर हम निश्चित ही हँसने लगेंगे परंतु छत से गिरनेवाले बच्चे पर हमारी करुणापूर्ण सहानुभूति ही उमडेगी। यह पहले ही कहा गया है कि हास का आधार प्रीति पर होता है न कि द्वेष पर, अतएव यदि किसी की प्रकृति, प्रवृत्ति, स्वभाव, आचार आदि की विकृति पर कटाक्ष भी करना हो तो वह कटूक्ति के रूप में नही किंतु प्रियोक्ति के रूप में होगी, उसकी तह में जलन अथवा नीचा दिखाने की भावना न होकर विशुद्ध संशुद्धि की भावना होगी। संशुद्धि की भावनावाली यह प्रियोक्ति भी उपदेश की शब्दावली में नही किंतु रंजनता की शब्दावली में होगी।

हास्य के भेदो पर भी आचार्यों ने विचार किया है। उन्होने हास्य के दो भेद किए हैं। एक है आत्मस्थ और दूसरा है परस्थ। हास्यपात्र की दृष्टि से आत्मस्थ हास्य है स्वत. उस पात्र का हँसना और परस्थ हास्य है दूसरो को हँसाना। सामाजिको या सहृदय श्रोताओ, अथवा नाट्यदर्शको की दृष्टि से आत्मस्थ हास्य है अन्यों की हँसी के बिना स्वत. उनमें उद्भूत हास्य और परस्थ हास्य है दूसरों को हँसता हुआ देखकर उनमें उत्पन्न हास्य। दृष्टिकोणो का यह अतर समझ लेने पर इन दोनो शब्दों के अर्थों का विचार सरलतापूर्वक समाप्त किया जा सकता है। फिर, आचार्यों ने हास्य के छह भेद किए हैं। स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अवहसित और अतिहसित; जिन्हें भावभेद नही किंतु हसनक्रिया के ही भेद मानना पड़ेगा। सक्षेप में, आँखो की मुस्कराहट स्मित है। बत्तीसी दीख पड़ना हसित है, हो ही की सी ध्वनि निकल पड़ना विहसित है। अंग हिल उठना अवहसित है। पेट पकड़नेवाली हँसी अवहसित है और पूरे ठहाकेवाली झकझोरकारिणी पसलीतोड़ हँसी अतिहसित है। साहित्यदर्पणकार ने स्मित और हसित को श्रेष्ठो के योग्य कहा है। विहसित और उपहसित को मध्यम वर्गीय लोगो के योग्य और अपहसित तथा अतिहसित को नीच लोगो के योग्य कहा है। रगमंच में दर्शको के लिये भी हँसने की एक मर्यादा होनी चाहिए, उस दृष्टि से उत्तम, मध्यम, अधम की यह बात भले ही मान ली जा सकती है। नहीं तो झकझोर देनेवाली हँसी केवल नीचों की वस्तु समझ लेने से उच्च वर्गीय लोग स्वास्थ्य के एक महत्वपूर्ण तत्व से वचित रह जायंगे। डा० रामकुमार वर्मा ने उत्तम, मध्यम, अधम के प्रभाव की दृष्टि से हास्य के तीन भेद माने हैं और इन्हे आत्मस्थ, परस्थ से गुणित करके हसन क्रिया के बारह भेद लिखे हैं। स्मित, हसित आदि हसनक्रियाभेदो को हास्य का अनुभाव ही कहा जा सकता है। इन अनुभावो का वर्णन मात्र कर देना अलग बात है और अपनी रचना द्वारा सामाजिको मे ये अनुभाव उत्पन्न करा देना अलग बात है। हास्यरस की सफल रचना वह है जो हास्यरस के अनुभाव अनायास उत्पन्न करा दे। विदेशी विद्वानों के विचार से हास्य के पाँच प्रमुख भेद हैं जिनके नाम हैं ह्यूमर (शुद्ध हास्य), विट (वाग्वैदग्ध्य), सैटायर (व्यग), आइरनी (वक्रोक्ति) और फार्स (प्रसहन), ह्यूमर और फार्स हास्य के विषय से सबधित हैं जबकि विट, सैटायर और आइरनी का संबंध उक्ति के कौशल से है जिनमें पिछले दो का उद्देश्य केवल सतुष्टि ही न होकर सशुद्धि भी रहा करता है। पैरोडी (रचनापरिहास अथवा विरचनानुकरण) भी हास्य की एक विधा है जिसका उक्तिकौशल से सबंध है किंतु जिसका प्रधान उद्देश्य है संतुष्टि। आइरनी का अर्थ परिहास चित्य है। उपहास में, हमारे विचार से, आइरनी (वक्रोक्ति) का भी अंतर्भाव मान लिया जाना चाहिए अन्यथा वह हास्य की कोटि से बाहर की वस्तु हो जाएगी। विट अथवा वाग्वैदग्ध्य को एक विशिष्ट अलकार कहा जा सकता है।

भारतीय साहित्यपडितो ने जिस प्रकार शृंगार के साथ न्याय किया है उसका दशमाश भी हास्य के साथ नही किया, यद्यपि भरत मुनि ने इसकी उत्पत्ति शृंगार से मानी है अर्थात् इसे रति या प्रीति का परिमाण माना है और इसे शृगार के बाद ही नवरसो में महत्व का दर्जा दिया है। आनंद के साथ इसका सीधा सबंध है और न केवल रजनता की दृष्टि से किंतु उपयोगिता की दृष्टि से भी इसकी अपनी विशिष्टता है। यह तन मन के तनाव दूर करता है, स्वभाव की कर्कशता मिटाता है, आत्मनिरीक्षण और आत्मपरिष्कार के साथ ही मीठे ढग पर समाजसुधार का मार्ग प्रशस्त करता है, व्यक्ति और समाज की थकान दूर कर उनमें ताजगी भरता हुआ जनस्वास्थ्य और लोकस्वास्थ्य का उपकारक बनता है। यह निश्चित है कि संस्कृत साहित्य तथा हिंदी साहित्य में इस हास्यरस के महत्व के अनुपात से इसके उत्तम उदाहरणो की कमी ही है। फिर भी ऐतिहासिक सिंहावलोकन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य में हास्यरस का प्रवाह वैदिक काल से लेकर आज तक निरंतर चला आ रहा है, यद्यपि

तुलसीदास जी के रामचरितमानस का नारदमोह प्रसंग शिवविवाह प्रसग, परशुराम प्रसग आदि और सूरदास जी के सूरसागर का माखनचोरी प्रसग, उद्धव-गोपी-सवाद प्रसग आदि प्रलवत्ता हास्य के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। तुलसीदास जी का निम्न छद, जिसमें जराजर्जर तपस्वियो की शृगारलालसा पर मजेदार चुटकी ली गई है, अपनी छटा मे अपूर्व है —

विंध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे
गोतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनिवृ द सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चद्रमुखी, परसे पद मजुल कज तिहारे
कीन्ही भली रघुनायक जू जो कृपा करि कानन को पगु धारे ।।

बीरवल के चुटकुले, लाल बुझक्कड़ के लटके, घाघ और भड्डरी की सूक्तियाँ, गिरधर कविराय और गग के छद, वेनी कविराज के भड़ौवे तथा और भी कई रचनाएँ इस काल की प्रसिद्ध हैं। भारतजीवन प्रेस ने इस काल की फुटकर हास्य रचनाओं का कुछ सकलन अपने 'भडौवा संग्रह' में प्रकाशित किया था। इस काल में, विशेषत. दान के प्रसग को लेकर, कुछ मार्मिक रचनाएँ हुई हैं जिनकी रोचकता आज भी कम नहीं कही जा सकती। उदाहरण देखिए —

चींटे न चाटते मूसे न सूँघते, वास में माछी न आवत नेरे,
आनि धरे जब से घर में तबसे रहै हैजा परोसिन घेरे,
माटिहु मे कछु स्वाद मिलै, इन्हैं खात सो ढूढ़त हर्र बहेरे,
चौकि परो पितुलोक में बाप, सो आपके देखि सराध के पेरे ।।

एक सूम ने सकट मे तुलादान करना कवूल कर लिया था। उसके लिये अपना वजन घटाने की उसकी तरकीबें देखिए —

बारह मास लौं पथ्य कियो, षट मास लौं लंघन को कियो कैठो
तापै कहूँ वहू देत खवाय, तो कै करि द्वारत सोच में पैठो
माघी भनै नित मैल छुडावत, खाल खैंचै इमि जात है ऐंठो
मुछ मुडाय कै, मूड घोटाय कै, फस्द खोलाय, तुला चढ़ि वैठो ।।

वर्तमान काल में हास्य के विषयो और उनकी अभिव्यक्ति करने की शैलियों का बहुत विस्तार हुआ है। इस युग में पद्य के साथ ही गद्य की भी अनेक विधाओ का विकास हुआ है। प्रमुख हैं नाटक तथा एकाकी, उपन्यास तथा कहानियाँ, एव निबध। इन सभी विधाओ में हास्यरस के अनुकूल प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा गया और लिखा जा रहा है। प्रतिभाशाली लेखकों ने पद्य के साथ ही गद्य की विविध विधाओ में भी अपनी हास्यरसवर्धिनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इस युग के प्रारंभिक दिनो के सर्वाधिक यशस्वी साहित्यकार हैं भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र। इनके नाटकों मे विशुद्ध हास्यरस कम, वाग्वैदग्ध्य कुछ अधिक और उपहास पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अधेर नगरी' आदि उनकी कृतियाँ हैं। उनका 'चूरन का लटका' प्रसिद्ध है। उनके ही युग के लाला श्रीनिवास दास, श्री प्रतापनारायण मिश्र, श्री राधाकृष्णदास, श्री प्रेमघन, श्री वालकृष्ण भट्ट आदि ने भी हास्य की रचनाएँ की हैं। श्री प्रतापनारायण मिश्र ने 'कलिकौतुक रूपक' नामक सुंदर प्रसहन लिखा है। 'बुढापा' नामक उनकी कविता शुद्ध हास्य की उत्तम कृति है।

उस समय अंग्रेजी राज्य अपने गौरव पर था जिसकी प्रत्यक्ष आलोचना खतरे से खाली नहीं थी। अतएव साहित्यकारों ने, विशेषतः व्यग्य और उपहास का मार्ग ही पकड़ा था और स्यापा, हजो, वक्रोक्ति, व्यगोक्ति आदि के माध्यम से सुधारवादी सामाजिक चेतना जगाने का प्रयत्न किया था।

भारतेंदुकाल के बाद महावीरप्रसाद द्विवेदी काल आया जिसने हास्य के विषयों और उनकी अभिव्यजना प्रणालियो का कुछ और अधिक परिष्कार एवं विस्तार किया। नाटकों में केवल हास्य का उद्देश्य लेकर मुख्य कथा के साथ जो एक अतर्कथा या उपकथा (विशेषत पारसी थिएट्रिकल कंपनियो के प्रभाव से) चला करती थी वह द्विवेदीकाल में प्राय समाप्त हो गई और हास्य के उद्रेक के लिये विषय अनिवार्य न रह गया। काव्य में 'सरगौ नरक ठेकाना नाहिं' सदृश रचनाएँ सरस्वती आदि पत्रिकाओ में सामने आईं। उस युग के बाबू बालमुकुद गुप्त और प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी हास्यरस के अच्छे लेखक थे। प्रथम ने 'भाषा की अनस्थिरता' नामक अपनी लेखमाला 'आत्माराम' नाम से लिखी और दूसरे सज्जन ने 'निरकुशता-निदर्शन' नामक लेखमाला 'मनसाराम' नाम से। दोनो ने इन मालाओं में द्विवेदी जी से टक्कर ली है और उनकी इस नोकझोक की चर्चा साहित्यिकों के बीच बहुत दिनों तक रही। श्री बालमुकुंद गुप्त जी का शिवशंभु का चिट्ठा, श्री चद्रधर शर्मा गुलेरी का कछुवा धर्म, श्री मिश्रबधु और बदरीनाथ भट्ट जी के अनेक नाटक, श्री हरिशकर शर्मा के निबध, नाटक आदि, श्री जी० पी० श्रीवास्तव और उग्र जी के अनेक प्रहसन और अनेक कहानियाँ, अपने अपने समय में जनसाधारण में खूब समादृत हुईं। जी० पी० श्रीवास्तव ने उलटफेर, लबी दाढी आदि लिखकर हास्यरस के क्षेत्र में धूम मचा दी थी, यद्यपि उनका हास्य उथला उथला सा ही रहा है। निराला जी ने सुदर व्यगात्मक रचनाएँ लिखी हैं और उनके कुल्ली भाठ, चतुरी चमार, सुकुल की बीवी, बिल्लेसुर बकरिहा, कुकुरमुत्ता आदि पर्याप्त प्रसिद्ध है। पं० विश्वभरनाथ शर्मा कौशिक निश्चय ही विजयानद दुबे की चिट्ठियाँ आदि लिखकर इस क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रसिद्धिप्राप्त हैं। शिवपूजन सहाय और हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हास्यरस के साहित्य की अच्छी श्रीवृद्धि की है। अन्नपूर्णानंद वर्मा को हम हास्यरस का ही विशेष लेखक कह सकते हैं। उनके 'महाकवि चच्चा', 'मेरी हजामत,' 'मगन रहु चोला', मगल मोद', 'मन मयूर' सभी सुरुचिपूर्ण हैं।

वर्तमान काल में उपेंद्रनाथ अश्क ने 'पर्दा उठाओ, परदा गिराओ' आदि कई नई सूझवाले एकाकी लिखे हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा का एकाकी सग्रह 'रिमझिम' इस क्षेत्र में मील का पत्थर माना गया है। उन्होंने स्मित हास्य के अच्छे नमूने दिए हैं। देवराज दिनेश, उदयशकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, प्रभाकर माचवे, जयनाथ नलिन, वेढव बनारसी, कातानाथ चोंच,' भैया जी बनारसी, गोपालप्रसाद व्यास, काका हाथरसी, आदि अनेक सज्जनों ने अनेक विधाओ में रचनाएँ की हैं और हास्यरस के साहित्य को खूब समृद्ध किया है। इनमें से अनेक लेखको की अनेक कृतियों ने अच्छी प्रशसा पाई है। भगवतीचरण वर्मा का 'अपने खिलौने' हास्य-

हास्यरस तथा उसका साहित्य

दिमाकी जाग री, छप्पर पर बैठे कार्य कार्य करते हैं जिनने काग री-वेदन); विन्न वचनानुकरण के सहारे (जिसे भी विल्परचना तुकान्त के समान पैरोडी की एक विधा ही समझना चाहिए — जैसे प० नेहरू की भाषण परिपाटी की नकल, किसी अहिंदीभाषी की प्रांतीय अथवा जातीय विशेषताओं से युक्त भाषा की नकल, किसी के तकियाकलामों की नकल), तथा इसी प्रकार की अनेकानेक अभिव्यंजना शैलियों से हास्यरस का उद्रेक कराया करते हैं।

प्रभाव की दृष्टि से, हमारी समझ में, हास्यरस या तो विशेषत. परिहास की कोटि का होता है या उपहास की कोटि का। इन दोनो शब्दो को हमने परपरागत अर्थ में सीमाबद्ध नही किया है। जो सतुष्टि प्रधान काव्य है उसे हम परिहास की कोटि का मानते हैं और जो सद्बुद्धि प्रधान है उसे उपहास की कोटि का। अनेक रचनाओं में दोनों का मिश्रण भी हुआ करता है। परिहास और उपहास दोनो के लिये सामाजिको की सुरुचि का ध्यान रखना आवश्यक है। मासल शृंगारपरक हास, आजकल के शिष्ट समाज को रुचिकर नही हो सकता। देवता विषयक व्यंग सहधर्मियो को ही हँसाने के लिये हुआ करता है। उपहास के लिये सुरुचि का ध्यान अत्यत आवश्यक है। मजा इसमें ही है कि हास्यपात्र (चाहे वह व्यक्ति हो या समाज) अपनी त्रुटियाँ समझ ले परतु सकेत देनेवाले का अनुगृहीत भी हो जाय और उसे उपदेष्टा के रूप में न देखे। बिना व्यंग के हास को परिहास समझिए, चाहे वह वर्णनात्मक हो चाहे वार्तालाप की कोटि का, और अपने पर अथवा अन्य पर, विशेषत अन्य पर, व्यंग करके जो प्रभाव दिखाया जाता है वह उपहास है ही। विट, ह्यूमर, पैरोडी आदि के सहारे उत्पन्न वह हास जो विशुद्ध सतुष्टि की कोटि का है, परिहास ही कहा जायगा। अनुभाव की दृष्टि से हास्यरस को मृदुहास की कोटि का समझना चाहिए या अट्टहास की कोटि का। हसित, अपहसित आदि अन्य कोटियो का इन्हीं दोनों में अंतर्भाव मान लेना चाहिए। मृदुहास के दो भेद किए जा सकते है, एक है गुप्त हास जिसका आनद मन ही मन लिया जाता है और दूसरा है स्फुट हास जिसका मुस्कराहट आदि के रूप में अन्य जन भी दर्शन कर सकते हैं। अट्टहास के भी दो भेद किए जा सकते हैं—एक है मर्यादित हास जो हँसनेवाले की परिस्थिति से नियंत्रित रहता है और दूसरा है अमर्यादित हास जिसमें परिस्थिति सापेक्षता का भान नही रहता। हास्य के भेदो का यह विवेचन सभवत. अधिक वैज्ञानिक होगा।

नाटकों में प्रहसन की विधा और विदूषक की उपस्थिति ने हास्य का सृजन किया है किंतु वह बहुमुखी नही होने पाया। सुभाषित के कई श्लोक अवश्य अच्छे बन पड़े हैं जिनमें विषय और उक्ति दोनो दृष्टियो से हास्य की अच्छी अवतारणा की गई है। कुछ उदाहरण दे देना अप्रासंगिक न होगा।

देवताओं के सदंर्भ का मजाक देखिए। प्रश्न था कि शंकर जी ने जहर क्यो पिया ? कवि का उत्तर है कि अपनी गृहस्थी की दशा से ऊबकर।

> अत्तुं वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी
> तं च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजा सिंहोऽपिनागाननं।
> गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपालानलो
> निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपिहालाहलम् ॥

शकर जी का साँप गणेश जी के चूहे की तरफ झपट रहा है किंतु स्वतः उसपर कार्तिकेय जी का मोर दाँव लगाए हुए है। उधर गिरिजा का सिंह गणेश जी के गजमस्तक पर ललचाई निगाहें रख रहा है और स्वत गिरिजा जी भी गगा से सौतियाडाह रखती हुई भभक रही हैं। समर्थ होकर भी बेचारे शकर जी इस बेढगी गृहस्थी से कैसे पार पाते, इसलिये ऊबकर जहर पी लिया।

त्रिदेव खटिया पर नही सोते। जान पड़ता है खटमलो से वे भी भयभीत हो चुके हैं।

> विधिस्तु कमले शेते हरिः शेते महोदधौ
> हरो हिमालये शेते मन्ये मत्कुण शंकया ॥

दामाद अपनी ससुराल को कितनी सार वस्तु माना करता है परंतु फिर भी किस अकड़बाजी से अपनी पूजा करवाते रहने की अपेक्षा रखा करता है यह निम्न श्लोको में देखिए। दोनो ही श्लोक पर्याप्त काव्यगुणयुक्त हैं। जितना विश्लेषण कीजिए उतना ही मजा आता जायगा :

> असारे खलु संसारे, सारं श्वसुर मंदिरं
> हर हिमालये शेते, हरि शेते पयोनिधौ ॥

× ×

> सदा वक्र. सदा क्रूरः, सदा पूजामपेक्षते
> कन्याराशिस्थितो नित्यं, जामाता दशमो ग्रह ॥

परान्न प्रिय हो कि प्राण, इसपर कवि का निष्कर्ष सुनिए —

> परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे ! मा प्राणेषु दया कुरु
> परान्नं दुर्लभं लोके प्राणाः जन्मनि जन्मनि ॥

राजा भोज ने घोषणा की थी कि जो नया श्लोक रचकर लाएगा उसे एक लाख मुद्राएँ पुरस्कार में मिलेंगी परतु पुरस्कार किसी को मिलने ही नही पाता था क्योकि उसके मेधावी दरबारी पडित नया श्लोक सुनते ही दुहरा देते और इस प्रकार उसे पुराना घोषित कर देते थे। किंवदती के अनुसार कालिदास ने निम्न श्लोक सुनाकर बोली बद कर दी थी। श्लोक में कवि ने दावा किया है कि राजा निन्नानवे करोड रत्न देकर पिता को ऋणमुक्त करें और इसपर पडितो का साक्ष्य ले लें। यदि पंडितगण कहे कि यह दावा उन्हे विदित नही है तो फिर इस नए श्लोक की रचना के लिये एक लाख दिए ही जायँ। इसमे 'कैसा छकाया' का भाव बड़ी सुंदरता से सन्निहित है .

> स्वस्तिश्री भोजराज ! त्रिभुवनविजयी धार्मिक स्ते पिताऽभूत्
> पित्रा ते मे गृहीता नवनवति युता रत्नकोटिर्मदीया।
> तान्त्वं मे देहि शीघ्रं सकल बुधजनैर्ज्ञायते सत्यमेतत्
> नो वा जानंति केचिन्नवकृत मितिचेद्देहि लक्षं ततो मे ॥

हिंदी के वीरगाथाकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल प्राय. पद्यों के ही काल रहे हैं। इस लबे काल में हास्य की रचनाएँ यदा कदा होती ही रही हैं परंतु वे प्राय. फुटकर ढंग की ही रचनाएँ रही हैं।

एकांतवासी योगी (१८८६ ई०) ने खडी बोली की काव्योपयुक्तता सिद्ध कर दी। अत द्विवेदीयुगीन द्वितीय काव्यधारा में (१९००–१९२०) खडी बोली मे मुक्तक और प्रबंधकाव्यों की रचना हुई। रंग में भंग, जयद्रथवध, (१९१२), प्रियप्रवास (१९१२), रामचरितचितामणि, पथिक (१९१७), मिलन (१९२५) आदि प्रबधकाव्यों में प्राचीन, नवीन वीरों का चरित गायन हुआ। 'प्रियप्रवास' में भगवान् कृष्ण को जननायक रूप में चित्रित किया गया और पथिक में देशभक्ति की अनुपम झाँकी प्रस्तुत की गई। रीतिकालीन नायिकाभेद, उद्दाम शृंगार, उद्दीपनपरक प्रकृतिचित्रण और कवित्त, सवैयो के स्थान पर, आर्यसमाज और नवराष्ट्रजागरण के कारण मर्यादामय प्रेम, प्रकृति के आलबनगत चित्रण, नवीन गीतिका, हरगीतिका आदि छदो, संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रयोग, समाजसुधारात्मक तथा इतिवृत्तात्मक पद्यों की रचना, इस युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, बालमुकुंद गुप्त, सियारामशरण गुप्त, नाथूराम शर्मा 'शंकर', अयोध्यासिंह उपाध्याय, रूपनारायण पाडेय, लोचनप्रसाद पाडेय और श्रीधर पाठक के प्रयत्न से खडी बोली की काव्योपयुक्तता का निर्णय हो गया। प्रियप्रवास और भारतभारती इस युग की विशिष्ट कृतियाँ मानी जाती हैं। शैली की दृष्टि से यह युग अभिधावादी ही रहा, उद्गार और उद्बोधनात्मक काव्य में सूक्ष्म कला का विकास सभव न हो सका।

छायावाद तथा रहस्यवाद — छायावाद और रहस्यवाद (१९२०-३५) तृतीय काव्यधारा है। १९वी और २०वी शताब्दी में अंग्रेजी शिक्षा संस्थाओ के कारण अगरेजी के स्वच्छदतावादी काव्य का प्रभाव प्रत्यक्षत. और अप्रत्यक्षत बँगला के माध्यम से हिंदी काव्य पर पड़ा। अत' तृतीय धारा के छायावादी तथा रहस्यवादी काव्य मे द्विवेदीयुगीन स्थूल मर्यादावाद, प्रवचनात्मकता और विवरणात्मक प्रकृतिचित्रण के स्थान पर स्वच्छद प्रेम की पुकार, प्रेयसी का देवीकरण, अतरराष्ट्रीयता और विश्वमानववाद, प्रकृति और प्रेयसी के माध्यम से निजी आशानिराशाओ का वर्णन, प्रकृति पर चेतना का आरोप, सौंदर्य अनुसधान, अलौकिक से प्रेम के कारण द्विवेदीयुगीन स्थूल संघर्ष से पलायन, गीतात्मकता, लक्षण, विशेषणविपर्यय तथा भाषा का कोमलीकरण प्रत्यक्ष और प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। प्रसाद (आँसू, लहर, झरना, कामायनी), सुमित्रानदन पत (पल्लव, गुंजन), निराला (जुही की कली, गीतिका के गीत आदि) और महादेवी ने परोक्ष सत्ता को प्रेम का विषय बनाकर प्रकृति में उसके आभास, आत्मनिवेदन और संयोगवियोग की कलात्मक अभिव्यक्तियों द्वारा काव्य को अलकृत, लाक्षणिक, गीत्यात्मक और सूक्ष्म बनाया। द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता की गूँज इन कवियों में यत्र तत्र मिलती है, विशेषकर निराला के बादलराग, जागो फिर एक बार आदि कृतियों में। पुनर्जागरण का पौरुषपरक रूप निराला में (राम की शक्तिपूजा), और सास्कृतिक रूप उपनिषदो के ब्रह्मवादी दर्शन में मिलता। कामायनी तृतीय धारा की सर्वोत्कृष्ट कृति है जिसमें रहस्यमय सत्ता की प्राप्ति के आवरण मे पुरुष नारी, राजा प्रजा, प्रकृति पुरुष और मानवीय वृत्तियो में सामरस्य स्थापित करने का सदेश प्रस्तुत किया गया। तृतीय धारा में निराला ने मुक्त छंदो, पंत ने संस्कृत वर्णवृत्तो के स्थान पर हिंदी के छदों, महादेवी और प्रसाद ने गेय गीतो का प्रयोग किया। प्रकृति और प्रेम के भव्य, मार्मिक चित्रण इस युग की विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं। अगरेजी के शेली, कीट्स और बँगला के कवींद्र रवींद्र से प्रभावित होने पर हिंदी का छायावादी रहस्यवादी काव्य अपनी विशिष्टता की दृष्टि से मौलिक और मार्मिक है। कामायनी में चिंता, आशा, वासनादि मनोवृत्तियो, निराला के तुलसीदास और राम की शक्तिपूजा में मानसिक अतर्द्वंद्वो, महादेवी के गीतो में मीरा जैसी विरह वेदना और पंत के प्रकृतिचित्रण मे सौंदर्यविधान इतना आकर्षक हुआ है कि यह युग हिंदी काव्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। भाषा का शृंगार और साकेतिक शक्ति का विकास अपनी चरम सीमा पर इसी युग में पहुँचा।

हालावाद तथा मांसलवाद — छायावाद के उत्तरकाल (१९३० के पश्चात्) में छायावादी सूक्ष्म, लाक्षणिक रहस्यवादी अभिव्यक्ति के विरुद्ध हालावाद (बच्चन की मधुशाला, मधुबाला १९३३-३५) और मासलवाद (अचल की अपराजिता १९३०, मधूलिका आदि) का प्रवर्तन हुआ। बच्चन की हालावादी रचनाओं में फारसी उर्दू के सूफियाना काव्य की मस्ती, दीवानगी, मर्यादावाद का विरोध और भोगवादी दृष्टिकोण व्यजित हुआ है। मासलवाद में वासना की घोषणा ही प्रधान होती गई। नरेंद्र शर्मा (प्रवासी के गीत) में क्षयी रोमासवाद की निराशा और भगवतीचरण वर्मा में आत्मविज्ञप्ति अधिक मिलती है। हालावाद और मासलवाद एक ओर तो द्विवेदीयुगीन सयमवाद और परपरागत नैतिकतावाद के विरुद्ध था और दूसरी ओर इसमें छायावाद की अस्पष्ट, धूमिल, गहन प्रेमानुभूति के स्थान पर अभिधामय आत्मविज्ञापन अधिक था। उर्दू की 'तरजे अदायगी' की ये रचनाएँ युवकों में अधिक प्रिय हुईं।

प्रगतिवाद — खडी बोली की चतुर्थ धारा प्रगतिवाद (१९३६ के पश्चात्) है। छायावादयुग में ही रूसी राज्यक्राति के प्रभाववश साम्यवादी धारणाओ का प्रचार हो चुका था। १९३५ ३६ में प्रगतिशील लेखकसघ की स्थापना हुई। प्रगतिवादी कवि मार्क्सवाद से प्रभावित कवि थे। पत जी के युगात, युगवाणी, निराला की 'वह तोडती पत्थर,' 'बादलराग,' 'कुकरमुत्ता', 'अणिमा', 'नए पत्ते' आदि द्वारा इसका रूप स्पष्ट हुआ। यह आदोलन सामतवादी—पूँजीवादी तत्वो और साहित्यक्षेत्र में प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियो के विरुद्ध क्राति लेकर उपस्थित हुआ। जनता के दारिद्र्य, पूँजीपतियो के विरुद्ध आक्रोश, इतिहास, धर्म, सस्कृति, कला की भौतिकवादी व्याख्या, ब्रह्मवाद का विरोध तथा छायावादी अलकृत शैली के विरुद्ध अभिधावादी शैली का प्रयोग इस धारा की प्रमुख विशेषताएँ हैं। छायावाद मे शृंगार तथा प्रगतिवाद में करुण, वीर, रौद्र रसो को अधिक अभिव्यक्ति मिली। किंतु द्विवेदीयुग के सदृश इस युग में पुन. स्थूलता का आगमन हुआ, इसमें कला कम गर्जन तर्जन, उद्गार अधिक मिलते हैं। रागेय राघव (पिघलते पत्थर, आक्रमण), दिनकर (हुकार), केदारनाथ अग्रवाल, शिवमगलसिंह सुमन (जीवन के गान), नागार्जुन, भगवतीचरण वर्मा (भैंसागाड़ी) शमशेर, पत जी (ग्राम्या), गजानन मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, उदयशकर भट्ट, अंचल, नरेंद्र शर्मा आदि ने प्रगतिवादी काव्य की सृष्टि की।

रस के उपन्यासो में विशिष्ट स्थान रखता है। यशपाल का 'चक्कर क्लब' व्यग के लिये प्रसिद्ध है। कृष्णचद्र ने 'एक गधे की आत्मकथा' आदि लिखकर व्यग लेखको में यशस्विता प्राप्त की है। गंगाधर शुक्ल का 'सुबह होती है शाम होती है' अपनी निराली विधा रखता है।

राहुल साकृत्यायन, सेठ गोविंद दास, श्रीनारायण चतुर्वेदी, अमृतलाल नागर, डा० बरसानेलाल जी, वासुदेव गोस्वामी, बेधड़क जी, विप्र जी, भारतभूषण अग्रवाल, आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं जिन्होने किसी न किसी रूप में साहित्य के इस उपादेय अग की समृद्धि की है।

अन्य भाषाओ की कई विशिष्ट कृतियो के अनुवाद भी हिंदी में हो चुके हैं। केलकर के 'सुभाषित आणि विनोद' नामक गवेषणापूर्ण मराठी ग्रंथ के अनुवाद के अतिरिक्त मोलियेर के नाटको का, 'गुलिवर्स ट्रैवेल्स' का, 'डान क्विक्जोट' का, सरशार के 'फिसानए आज़ाद' का, रवींद्रनाथ टैगोर के नाट्यकौतुक का, परशुराम, अज़ीमबेग चगताई आदि की कहानियों का, अनुवाद हिंदी में उपलब्ध है।

[ब० प्र० मि०]

हिंद महासागर स्थिति : १५° ०' उ० अ० से ३५° ०' द० अ० तथा ४५° ०' से ११२° ०' पू० दे०। इसका विस्तार दक्षिण ध्रुवक्षेत्र से भारत तक और पूर्वी अफ्रीका से आस्ट्रेलिया और तस्मानिया तक है। इसका अधिकतर भाग भूमध्यरेखा के दक्षिण मे पडता है। अरब सागर और बगाल की खाड़ी दोनों इसी के भाग हैं। इस सागर में अनेक द्वीप हैं, जिनमें मैडागास्कर, श्रीलका, मौरिशस, सोकोटा, अंडेमन, निकोबार, मालद्वीप, लक्का द्वीप और मगुंई प्रमुख हैं। मिस्र की 'स्वेज नहर' इसे भूमध्य सागर से जोड़ती है। यह ७,४२,४०,००० वर्ग किमी में फैला है। क्षेत्रफल में प्रशात महासागर के आधे से कम है। इसके जल की मात्रा अटलैंटिक महासागर से कुछ कम है। इसकी औसत गहराई लगभग ३,६०० मी और सबसे अधिक गहराई ७,५०० मी है। हिंद महासागर के क्षेत्र में छह महीने तक मानसूनी हवाएँ उत्तर पूर्व से चलती हैं, जब कि बाकी समय में ये हवाएँ उत्तरी दिशा में दक्षिण पश्चिम की ओर चलती हैं। सन् १९५८ के सितबर में हिंद महासागर की छानबीन के लिये एक विशाल अतरराष्ट्रीय योजना (स्पेशल कमेटी ऑन ओशनोगाफिक रिसर्च) बनाई गई है। इस योजना मे १८ देशो ने इस सागर में मछलीक्षेत्रों, ताँबे, बेरियम के भडारो, वायु की गति, रेडियो विकिरण आदि के अध्ययन की योजना बनाई। इसमें मछलियो के अक्षय भडार का अनुमान है। इसकी तली मे रत्नो के भडार का भी अनुमान है। अनेक नदियो जैसे सिंध, ब्रह्मपुत्र, गंगा, इरावदी, सालवीन, शटल अल अरब जावगी आदि का पानी इसमे गिरता है।

छानबीन के कार्य में तीन प्रकार के देश भाग ले रहे हैं। प्रथम वे देश जो छानबीन के लिये अपने जहाज तथा वैज्ञानिक दोनो भेज रहे हैं। इनमे भारत, अमरीका, इंग्लैंड, जापान आदि हैं। दूसरे, वे देश जो समुद्र की ऊपरी सतह एवं मौसम की ही जाँच करेंगे तथा छानबीन मे काम करनेवाले जहाजो को सहायता देंगे। तीसरे वे देश, जिन्होने केवल अपने वैज्ञानिक भेजे हैं। इस प्रकार अब लगभग १८ के स्थान पर २५ देश हिंद महासागर की खोज में लगे हैं।

इस महासागर के पास के क्षेत्र ससार की सबसे घनी आबादी-वाले क्षेत्र हैं। भारत, लंका, इडोनिशिया, मलाया तथा अफ्रीकी तटो मे प्रोटीनयुक्त पदार्थ की बहुत कमी है। इसकी पूर्ति के लिये मछलियो की खोज करना आवश्यक हो गया।

हिंद महासागर की खोज से पता चला है कि महासागर के नीचे बहुत बड़ी बड़ी घाटियाँ हैं। एक घाटी तो ९६० किमी लबी तथा ४० किमी चौड़ी है। यह घाटी अडमान के समुद्र से सुमात्रा के उत्तरी सिरे से लेकर बर्मा के एक दक्षिण पश्चिमी टापू के बीच है। यह घाटी महासागर मे एक से तीन मील तक की गहराई मे है तथा इसके इर्द गिर्द कई ऊँची ऊँची चोटियाँ है। सबसे ऊँची चोटी घाटी से ३,६०० मी ऊँची है। छानबीन करनेवालो ने ध्वनि संकेतो की सहायता से इस सागर का एक मानचित्र तैयार किया है। इन ध्वनियो से पता चलता है कि कई बडी बडी पहाड़ियाँ हैं तथा बहुत नीची जमीनवाले मैदान भी हैं। इसी सिलसिले के बीच बगाल की खाडी के तल में मटमैली नदियो से बनी अनेक बडी बडी धाराओ की भी खोज की गई है। इनमे सबसे बडी जलधारा लगभग ६ किमी लंबी तथा ९० मी चौड़ी है।

महासागर के मौसम संबंधी ज्ञान तथा आँकड़े इकट्ठे करने के लिये बंबई में एक अंतरराष्ट्रीय ऋतुकेंद्र की स्थापना की गई है जो यत्रो की सहायता से मौसम के बारे मे एवं समुद्री तूफानो के बारे में सूचना देता है।

समुद्री भूगर्भीय ज्ञान प्राप्त करने के लिये समुद्र की तलहटी में सूराख किए गए हैं। पानी के भीतर चट्टानो के आसपास तथा नीचे कैमरो से चित्र लिए गए। इससे मिट्टी की जमावट, उसकी उत्पादकता, जलवायु, और चुबकीय परिवर्तनो के बारे मे जानकारी ज्ञात की गई। समुद्रवैज्ञानिको ने पता लगाया है कि दक्षिण पूर्व एशिया के समीप की गहराई में फैरो मैंगनीज के क्रिस्टल करोड़ो टनो के लगभग मौजूद हैं। इसी प्रकार और भा कई प्रकार के धातु खनिजो का पता लगा है।

हिंदी (खडी बोली) की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ कविता — खडी बोली का आधुनिक साहित्य भारतेंदुयुग (१८५७–१९०० ई०) मे आविर्भूत हुआ। मध्यकालीन भक्ति और शृंगार की भाषा ब्रजभाषा ही रही किंतु जनजागरण, समाजसुधार सबधी काव्य खड़ो बोली में ही लिखा गया। १८वी शताब्दी से ही प्रचलित सधुक्कडी खडी बोली में रचित सीतल और भगवतरसिक, सहचरीशरण आदि संतो की वाणी और १९वी शताब्दी के रिसालगिरि, तुकनगिरि, रूपकिशोर आदि लावनीकारो की लावनी परपरा में भी इस युग में लावनी, गजल और उद्बोधनात्मक कविताएँ लिखी गईं, फिर भी खड़ी बोली का यह प्रयोगयुग था और भारतेंदु को यह शिकायत थी कि खडी बोली में कविता जमती नही।

द्विवेदीयुगीन काव्यधारा — भारतेंदुयुग के अत में (१८८६–८७) यह काव्यभाषा खड़ी हो या बज, इस विवाद में श्रीधर पाठक के

के उपन्यासकारों में सबसे सफल रहे 'चित्रलेखा' के लेखक भगवतीचरण वर्मा, जिनके 'टेढे मेढे रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' बहुत प्रसिद्ध हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क की 'गिरती दीवारें' का भी इस समाज की बुराइयों के चित्रणवाली रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। अमृतलाल नागर की 'बूंद और समुद्र' इसी यथार्थवादी शैली में आगे बढकर आंचलिकता मिलानेवाला एक श्रेष्ठ उपन्यास है। सियारामशरण गुप्त की 'नारी' की अपनी अलग विशेषता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैनेंद्रकुमार से शुरू हुए। 'परख', 'सुनीता', 'कल्याणी' आदि से भी अधिक आप के 'त्यागपत्र' ने हिंदी में बडा महत्वपूर्ण योगदान दिया। जैनेंद्र जी दार्शनिक शब्दावली मे अधिक उलझ गए। मनोविश्लेषण में स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने 'शेखर: एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने अपने अजनबी' में उत्तरोत्तर गहराई और सूक्ष्मता उपन्यासकला में दिखाई। इस शैली में लिखनेवाले बहुत कम मिलते हैं। सामाजिक विकृतियों पर इलाचंद्र जोशी के 'सन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'जहाज का पंछी' आदि मे अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस शैली के उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोडा' और नरेश मेहता का 'वह पथ-बंधु था' उत्तम उपलब्धियाँ हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक बहुत मनोरंजक कथाप्रयोग है जिसमें प्राचीन काल के भारत को मूर्त किया गया है। वृंदावनलाल वर्मा के 'महारानी लक्ष्मी बाई', 'मृगनयनी' आदि में ऐतिहासिकता तो बहुत है, रोचकता भी है, परंतु काव्यमयता द्विवेदी जी जैसी नहीं है। राहुल सांकृत्यायन (१८९५-१९६३), रांगेय राघव (१९२२-१९६२) आदि ने भी कुछ स्मरणीय ऐतिहासिक उपन्यास दिए हैं।

यथार्थवादी शैली सामाजिक यथार्थवाद की ओर मुडी और 'दिव्या' और 'झूठा सच' के लेखक भूतपूर्व क्रांतिकारी यशपाल, और 'बलचनमा' के लेखक नागार्जुन इस धारा के उत्तम प्रतिनिधि हैं। कहीं कहीं इनकी रचनाओं में प्रचार का आग्रह बढ़ गया है। हिंदी की नवीनतम विधा आंचलिक उपन्यासों की है, जो शुरू होती है फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आंचल' से और उसमें अब कई लेखक हाथ आजमा रहे हैं, जैसे राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, शैलेश मटियानी, राजेंद्र अवस्थी, मनहर चौहान, शिवानी इत्यादि।

[प्र० मा०]

हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास

हिंदी के मौलिक कथासाहित्य का आरंभ इंशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' से होता है। भारतीय वातावरण में निर्मित इस कथा में लौकिक परंपरा के स्पष्ट तत्व दिखाई देते हैं। खाँ साहब के पश्चात् प० बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान और एक सुजान' नामक उपन्यासों का निर्माण किया। इन उपन्यासों का विषय समाजसुधार है।

भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने राजनीतिज्ञ या समाजसुधारक के रूप में लिखा। बाबू देवकीनंदन सर्वप्रथम ऐसे उपन्यासलेखक थे जिन्होंने विशुद्ध उपन्यासलेखक के रूप में लिखा। उन्होंने कहानी कहने के लिये ही कहानी कही। वह अपने युग के घात प्रतिघात से प्रभावित थे। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में खत्री जी ने जो परंपरा स्थापित की वह एकदम नई थी। प्रेमचंद ने भारतेंदु द्वारा स्थापित परंपरा में एक नई कडी जोडी। इसके विपरीत बाबू देवकीनंदन खत्री ने एक नई परंपरा स्थापित की। घटनाओं के आधार पर उन्होंने कहानियों की एक ऐसी श्रृंखला जोडी जो कहीं टूटती नजर नहीं आती। खत्री जी की कहानी कहने की क्षमता को हम इंशाकृत 'रानी केतकी की कहानी' के साथ सरलतापूर्वक संबद्ध कर सकते हैं।

वास्तव में कथासाहित्य के इतिहास में खत्री जी की 'चंद्रकांता' का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है। यह हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। खत्री जी के उपन्यास साहित्य मे भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। मर्यादा आपके उपन्यासों का प्राण है।

उपन्यास साहित्य की विकासयात्रा में पं० किशोरीलाल गोस्वामी के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। यह उपन्यासों की दिशा मे घर करके बैठ गए। आधुनिक जीवन की विषमताओं के चित्र आपके जासूसी उपन्यासों में पाए जाते हैं। गोस्वामी जी के उपन्यास साहित्य में वासना का झीना परदा प्राय: सभी कहीं पड़ा हुआ है।

जासूसी उपन्यासलेखकों में बाबू गोपालराम गहमरी का नाम महत्वपूर्ण है। गहमरी जी ने अपने उपन्यासों का निर्माण स्वयं अनुभव की हुई घटनाओं के आधार पर किया है, इसलिये कथावस्तु पर प्रामाणिकता की छाप है। कथावस्तु हत्या या लाश के पाए जाने के विषयों से संबंधित है। जनजीवन से संपर्क होने के कारण उपन्यासों की भाषा में ग्रामीण प्रयोग प्राय: मिलते हैं।

हिंदी के आरंभिक उपन्यासलेखकों में बाबू हरिकृष्ण जौहर का तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास लेखकों में महत्वपूर्ण स्थान है। तिलस्मी उपन्यासों की दिशा में जौहर ने बाबू देवकीनंदन खत्री द्वारा स्थापित उपन्यासपरंपरा को विकसित करने में महत्वपूर्ण योग दिया है। आधुनिक जीवन की विषमताओं एवं सभ्य समाज के यथार्थ जीवन का प्रदर्शन करने के लिये ही बाबू हरिकृष्ण जौहर ने जासूसी उपन्यासों का निर्माण किया है। 'काला बाघ' और 'गवाह गायब' आपके इस दिशा में महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

हिंदी के आरंभिक उपन्यासों का निर्माण लोकसाहित्य की आधार-शिला पर हुआ। कौतूहल और जिज्ञासा के भाव ने इसे विकसित किया। आधुनिक जीवन की विषमताओं ने जासूसी उपन्यासों की कथा को जीवन के यथार्थ में प्रवेश कराया। असत्य पर सत्य की सदैव ही विजय होती है यह सिद्धांत भारतीय संस्कृति का केंद्रबिंदु है। हिंदी के आरंभिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति मूल रूप से पाई जाती है।

[गि० च० त्रि०]

हिंदी पत्रकारिता भारतवर्ष में आधुनिक ढंग की पत्रकारिता का जन्म अठारहवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में कलकत्ता, बंबई और मद्रास मे हुआ। १७८० ई० में प्रकाशित हिके (Hickey) का 'कलकत्ता गजट' कदाचित् इस ओर पहला प्रयत्न था। हिंदी के पहले पत्र 'उदंत मार्तंड' (१८२६) के प्रकाशित होने तक इन नगरों की ऐंग्लोइंडियन अंग्रेजी पत्रकारिता काफी विकसित हो गई थी।

प्रेमचंद का 'हंस' इस साहित्य का मुखपत्र था। प्रगतिवादियो ने छायावादियो के विरुद्ध जीवन के यथार्थ को वाणी दी। प्रकृति को रोमानी दृष्टि से न देखकर उसे जीवन की वास्तविकता के संदर्भ में रखकर देखा है। प्रगतिवादी काव्य मे व्यग्य का सर्वाधिक विकास हुआ है। प्रगतिवाद आज भी एक जीवत काव्यधारा है, उसने अब हुंकारात्मक रूप छोड़कर अधिक सूक्ष्म और कलामय रूप अपनाया है।

प्रयोगवाद — खड़ी बोली काव्य की पंचम धारा प्रयोगवाद कहलाती है (१६४३ ई० के पश्चात्)। स० ही० वा० अज्ञेय ने, जो प्रगतिवादी भी रह चुके थे, १६४३ मे प्रथम तारसप्तक में मुख्यत: प्रगतिवादी कवियो की नए ढग की प्रयोगात्मक रचनाएँ प्रकाशित की। १६५१ में द्वितीय सप्तक प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् इस धारा को 'नई कविता' नाम मिला। प्रयाग की 'नई कविता', हैदराबाद की 'कल्पना' और दिल्ली की 'कृति' नामक पत्रिकाओं के अतिरिक्त अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, नरेश मेहता, प्रभाकर माचवे, डा० देवराज, शमुनाथ सिंह, जगदीश गुप्त, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, शमशेर, बालकृष्ण राव, लक्ष्मीकात वर्मा आदि के काव्यसंग्रहो और स्फुट रचनाओं से प्रयोगवाद या नई कविता का रूप स्पष्ट हुआ। यह काव्य मुख्यत: छायावादी रोमानी दृष्टि और अलकृति तथा प्रगतिवादी मनगढ़ता के विरुद्ध 'रूपवादी' आदोलन है। छायावाद का प्रेरणास्रोत अंगरेजी का रोमाटिक काव्य और प्रयोगवाद का प्रेरणास्रोत यूरोप का प्रतीकवाद (फ्रास), अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद तथा आधुनिक चित्रकलावाद था। प्रगतिशील प्रयोगवादियो पर योरोपीय प्रभाव केवल शिल्प की दृष्टि से ही है किंतु प्रयोगवादी कथ्य के विरोधी प्रयोगवादियो पर उक्त प्रभाव अधिक घनीभूत है, इसमे व्यक्ति की अस्तित्व आशका, अनास्था, अवसाद, निराशा, अमनाश, सामाजिकता के विरुद्ध व्यक्तिवाद, महत्ता के स्थान पर 'लघुतावाद' अवचेतनस्थित कुंठा, आदि को प्रतीकात्मक और बिंबात्मक शैली में व्यक्त किया गया है। 'रस' के स्थान पर बुद्धिवाद, कथ्य को प्रतीको और बिंबो द्वारा यथावत् प्रस्तुत करने की चेष्टा, भाषा के नवीन प्रयोग, वार्तालापात्मक और वक्तव्यपरक शैली पर बल, गूढ और अब तक अछूते विषयो की अभिव्यक्ति इस धारा की विशेषताएँ हैं। प्राचीन आख्यानों का नवीन प्रश्नो को प्रस्तुत करने के लिये प्रयोग किया गया है। छंदो की दृष्टि से यह धारा पूर्ण स्वच्छद है। 'छंदगध' मात्र ही इस नए काव्य में अधिक है। शब्दलय के स्थान पर अर्थलय के प्रयोग पर अधिक बल दिया गया है, यद्यपि बहुत से कवि गद्यात्मकता के साथ साथ मुक्त छंदो का भी प्रयोग करते हैं। चित्रकला के प्रभाववाद, भविष्यवाद, यथातथ्यवाद तथा टी० एस० इलियट, एजरा पौंड, बॉदलेयर, मलार्मे, रिल्के, रिंबो आदि कवियों की कला से नई कविता अत्यधिक प्रभावित है। लोकजीवन से प्रभावित कविताएँ भी लिखी गई हैं। घोर व्यक्तिवाद, क्षण में अनुभूत अनुभूतियों की बिंबात्मक अभिव्यक्ति से जहाँ नवीनता की सृष्टि अधिक हुई है — विशेषकर नूतन अप्रस्तुत विधान के क्षेत्र में, वहीं भाषा की अव्यवस्थता, अभिव्यक्ति की अस्पष्टता, धूमिल संकेतात्मकता, भावदारिद्र्य, छदद्रोह और बौद्धिक आग्रह इस काव्य के दोष हैं।

नवगीतवाद — खड़ी बोली की षष्ठ धारा है नवगीतवाद। बच्चन, नीरज, वीरेंद्र मिश्र, शंभुनाथ सिंह, रंग, रमानाथ अवस्थी, ठाकुरप्रसाद सिंह, अचल, सुरेंद्र तिवारी, सोम, कमलेश, केदारनाथ सिंह, गिरधर गोपाल, रामावतार त्यागी, गिरजाकुमार माथुर, कैलास वाजपेयी, राही, सुमन और नेपाली आदि गीतकारो ने प्रेम, प्रकृति और समाज के विषय में नूतन अप्रस्तुत विधान द्वारा पदार्थछवियो और भावनाओ को वाणी दी है। अपेक्षाकृत सरल और स्पष्ट भाषा का प्रयोग, अहंसापेक्ष अनुभूतियो को अहनिरपेक्ष करने का चाव और कविसमेलनों में अधिकाधिक जनप्रियता पाने की इच्छा, इन कवियों की विशेषता है। नई कविता की परिपाटी पर 'नए गीत' भी आज के काव्य की उपलब्धि है।

इन नवीन धाराओं के अतिरिक्त परंपरागत शैली मे प्रबंधकाव्य भी लिखे जाते हैं। तक्षशिला (उदयशकर भट्ट), नूरजहाँ, (गुरुभक्त सिंह), उर्मिला (नवीन), सिद्धार्थ और वर्द्धमान (अनूप शर्मा), दैत्यवश (हरदयालुसिंह), छत्रसाल (लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी') पार्वती (रामानद तिवारी) आदि ऐसे ही काव्य हैं। इधर गाधी, प्रेमचंद, मीरा आदि पर भी प्रबंधकाव्य लिखे गए हैं। दिनकर की 'उर्वशी' पुरानी शैली में एक उल्लेखनीय उपलब्धि है जिसमें कामायनी और पार्वती के समान मानवमन के शाश्वत अतर्विरोध का आकर्षक वर्णन है। किंतु नवीनतावादियों की तुलना मे परंपरागत प्रबंधकाव्यों का संमान कम हो रहा है। [वि० उ०]

हिंदी के आधुनिक उपन्यास हिंदी उपन्यास का आरंभ श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' (१८४३ ई०) से माना जाता है। हिंदी के आरंभिक उपन्यास अधिकतर ऐयारी और तिलस्मी किस्म के थे। अनूदित उपन्यासों में पहला सामाजिक उपन्यास भारतेंदु हरिश्चद्र का 'पूर्णप्रकाश' और चद्रप्रभा नामक मराठी उपन्यास का अनुवाद था। आरभ में हिंदी में कई उपन्यास बँगला, मराठी आदि से अनुवादित किए गए।

हिंदी में सामाजिक उपन्यासो का आधुनिक अर्थ में सूत्रपात प्रेमचद (१८८०–१९३६) से हुआ। प्रेमचद पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में हिंदी की ओर मुड़े। आपके 'सेवासदन', 'रगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'निर्मला', 'गोदान' आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं, जिनमें ग्रामीण वातावरण का उत्तम चित्रण है। चरित्रचित्रण मे प्रेमचद गाधी जी के 'हृदयपरिवर्तन' के सिद्धात को मानते थे। बाद मे उनकी रुझान समाजवाद की ओर भी हुई, ऐसा जान पड़ता है। कुल मिलाकर उनके उपन्यास हिंदी में आधुनिक सामाजिक सुधारवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। जयशकर प्रसाद के 'ककाल' और 'तितली' उपन्यासो में भिन्न प्रकार के समाजो का चित्रण है, परंतु शैली अधिक काव्यात्मक है। प्रेमचद की ही शैली मे, उनके अनुकरण से विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि अनेक लेखको ने सामाजिक उपन्यास लिखे, जिनमें एक प्रकार का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अधिक था। परतु पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री आदि ने फरासीसी ढग का यथार्थवाद और प्रकृतवाद (नैचुरॉलिज़्म) अपनाया और समाज की बुराइयो का भंडाफोड़ किया। इस शैली

और उन्हें हम आज के शब्दों में 'विचारपत्र' ही कह सकते हैं। साप्ताहिक पत्रों में समाचारों और उनपर टिप्पणियों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। वास्तव में दैनिक समाचार के प्रति उस समय विशेष आग्रह नहीं था और कदाचित् इसीलिये उन दिनों साप्ताहिक और मासिक पत्र कहीं अधिक महत्वपूर्ण थे। उन्होंने जनजागरण में अत्यंत महत्वपूर्ण भाग लिया था।

उन्नीसवीं शताब्दी के इन २५ वर्षों का आदर्श भारतेंदु की पत्रकारिता थी। 'कविवचनसुधा' (१८६७), 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (१८७४), श्री हरिश्चंद्र चंद्रिका' (१८७४), बालाबोधिनी (स्त्री-जन की पत्रिका, १८७४) के रूप में भारतेंदु ने इस दिशा में पथप्रदर्शन किया था। उनकी टीकाटिप्पणियों से अधिकारी तक घबराते थे और 'कविवचनसुधा' के 'पंच' पर रुष्ट होकर काशी के मजिस्ट्रेट ने भारतेंदु के पत्रों को शिक्षा विभाग के लिये लेना भी बंद करा दिया था। इसमें संदेह नहीं कि पत्रकारिता के क्षेत्र में भी भारतेंदु पूर्णतया निर्भीक थे और उन्होंने नए नए पत्रों के लिये प्रोत्साहन दिया। 'हिंदी प्रदीप', 'भारतजीवन' आदि अनेक पत्रों का नामकरण भी उन्होंने ही किया था। उनके युग के सभी पत्रकार उन्हें अग्रणी मानते थे।

भारतेंदु के बाद — भारतेंदु के बाद इस क्षेत्र में जो पत्रकार आए उनमें प्रमुख थे पंडित रुद्रदत्त शर्मा, (भारतमित्र, १८७७), बालकृष्ण भट्ट (हिंदी प्रदीप, १८७७), दुर्गाप्रसाद मिश्र (उचित वक्ता, १८७८), पंडित सदानंद मिश्र (सारसुधानिधि, १८७८), पंडित वंशीधर (सज्जन-कीर्त्ति सुधाकर, १८७८), बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (आनंदकादंबिनी, १८८१), देवकीनंदन त्रिपाठी (प्रयाग समाचार, १८८२), राधाचरण गोस्वामी (भारतेंदु, १८८२), पंडित गौरीदत्त (देवनागरी प्रचारक, १८८२), राजा रामपाल सिंह (हिंदुस्तान, १८८३), प्रतापनारायण मिश्र (ब्राह्मण, १८८३), अंबिकादत्त व्यास, (पीयूषप्रवाह, १८८४), बाबू रामकृष्ण वर्मा (भारतजीवन, १८८४), पं० रामगुलाम अवस्थी (शुभचिंतक, १८८८), योगेशचंद्र वसु (हिंदी बंगवासी, १८९०), पं० कुंदनलाल (कवि व चित्रकार, १८९१), और बाबू देवकीनंदन खत्री एवं बाबू जगन्नाथदास (साहित्य सुधानिधि, १८९४)। १८९५ ई० में 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन प्रारंभ होता है। इस पत्रिका से गंभीर साहित्यसमीक्षा का आरंभ हुआ और इसलिये हम इसे एक निश्चित प्रकाशस्तंभ मान सकते हैं। १९०० ई० में 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' के अवतरण के साथ हिंदी पत्रकारिता के इस दूसरे युग पर पटाक्षेप हो जाता है।

इन २५ वर्षों में हमारी पत्रकारिता अनेक दिशाओं में विकसित हुई। प्रारंभिक पत्र शिक्षाप्रसार और धर्मप्रचार तक सीमित थे। भारतेंदु ने सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक दिशाएँ भी विकसित की। उन्होंने ही 'बालाबोधिनी' (१८७४) नाम से पहला स्त्री मासिक-पत्र चलाया। कुछ वर्ष बाद महिलाओं को स्वयं इस क्षेत्र में उतरते देखते हैं — 'भारतभगिनी' (हरदेवी, १८८८), 'सुगृहिणी' (हेमंतकुमारी, १८८९)। इन वर्षों में धर्म के क्षेत्र में आर्यसमाज और सनातन धर्म के प्रचारक विशेष सक्रिय थे। ब्रह्मसमाज और राधास्वामी मत से संबंधित कुछ पत्र और मिर्जापुर जैसे ईसाई केंद्रों से कुछ ईसाई धर्म संबंधी पत्र भी सामने आते हैं, परंतु युग की धार्मिक प्रतिक्रियाओं को हम आर्यसमाजी और सनातनी पत्रों में ही पाते हैं। आज ये पत्र कदाचित् उतने महत्वपूर्ण नहीं जान पड़ते, परंतु इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने हमारी गद्यशैली को पुष्ट किया और जनता में नए विचारों की ज्योति भरी। इन धार्मिक वादविवादों के फलस्वरूप समाज के विभिन्न वर्ग और संप्रदाय सुधार की ओर अग्रसर हुए और बहुत शीघ्र ही सांप्रदायिक पत्रों की बाढ़ आ गई। सैकड़ों की संख्या में विभिन्न जातीय और वर्गीय पत्र प्रकाशित हुए और उन्होंने असंख्य जनों को वाणी दी।

आज वही पत्र हमारी इतिहासचेतना में विशेष महत्वपूर्ण हैं जिन्होंने भाषा, शैली, साहित्य अथवा राजनीति के क्षेत्र में कोई अप्रतिम कार्य किया हो। साहित्यिक दृष्टि से 'हिंदी प्रदीप' (१८७७), ब्राह्मण (१८८३), क्षत्रियपत्रिका (१८८०), आनंदकादंबिनी (१८८१), भारतेंदु (१८८२), देवनागरी प्रचारक (१८८२), वैष्णव पत्रिका (पश्चात् पीयूषप्रवाह, १८८३), कवि व चित्रकार (१८९१), नागरी नीरद (१८८३), साहित्य सुधानिधि (१८९४), और राजनीतिक दृष्टि से भारतमित्र (१८७७), उचित वक्ता (१८७८), सार सुधानिधि (१८७८), हिंदुस्तान (दैनिक, १८८३), भारत जीवन (१८८४), भारतोदय (दैनिक, १८८५), शुभचिंतक (१८८७) और हिंदी बंगवासी (१८९०) विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन पत्रों में हमारे १९वीं शताब्दी के साहित्यरसिकों, हिंदी के कर्मठ उपासकों, शैलीकारों और चिंतकों की सर्वश्रेष्ठ निधि सुरक्षित है। यह क्षोभ का विषय है कि हम इस महत्वपूर्ण सामग्री का पत्रों की फाइलों से उद्धार नहीं कर सके। बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, सदानंद मिश्र, रुद्रदत्त शर्मा, अंबिकादत्त व्यास और बालमुकुंद गुप्त जैसे सजीव लेखकों की कलम से निकले हुए न जाने कितने निबंध, टिप्पणी, लेख, पंच, हास परिहास और स्केच आज हमें अलभ्य हो रहे हैं। आज भी हमारे पत्रकार उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। अपने समय में तो वे अग्रणी थे ही।

बीसवीं शताब्दी की पत्रकारिता हमारे लिये अपेक्षाकृत निकट है और उसमें बहुत कुछ पिछले युग की पत्रकारिता की ही विविधता और बहुरूपता मिलती है। १९ वीं शती के पत्रकारों को भाषा-शैली-क्षेत्र में अव्यवस्था का सामना करना पड़ा था। उन्हें एक ओर अंग्रेजी और दूसरी ओर उर्दू के पत्रों के सामने अपनी वस्तु रखनी थी। अभी हिंदी में रुचि रखनेवाली जनता बहुत छोटी थी। धीरे धीरे परिस्थिति बदली और हम हिंदी पत्रों को साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में नेतृत्व करते पाते हैं। इस शताब्दी से धर्म और समाजसुधार के आंदोलन कुछ पीछे पड़ गए और जातीय चेतना ने धीरे धीरे राष्ट्रीय चेतना का रूप ग्रहण कर लिया। फलत: अधिकांश पत्र साहित्य और राजनीति को ही लेकर चले। साहित्यिक पत्रों के क्षेत्र में पहले दो दशकों में आचार्य द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' (१९०३-१९१८) का नेतृत्व रहा। वस्तुत: इन बीस वर्षों में हिंदी के

इन अंतिम वर्षों में फारसी भाषा में भी पत्रकारिता का जन्म हो चुका था। १८ वीं शताब्दी के फारसी पत्र कदाचित् हस्तलिखित पत्र थे। १८०१ में हिंदुस्थान इंटेलिजेंस ओरिएंटल ऐंथॉलॉजी (Hindusthan Intelligence Oriental Anthology) नाम का जो संकलन प्रकाशित हुआ उसमें उत्तर भारत के कितने ही 'अखबारों' के उद्धरण थे। १८१० में मौलवी इकराम अली ने कलकत्ता से लीथो पत्र 'हिंदोस्तानी' प्रकाशित करना आरंभ किया। १८१६ में गंगाकिशोर भट्टाचार्य ने 'बगाल गजट' का प्रवर्तन किया। यह पहला बगला पत्र था। बाद में श्रीरामपुर के पादरियो ने प्रसिद्ध प्रचार-पत्र 'समाचारदर्पण' को (२७ मई, १८१८) जन्म दिया। इन प्रारंभिक पत्रो के बाद १८२३ मे हमें बँगला भाषा के समाचार-चंद्रिका और 'संवाद कौमुदी', फारसी उर्दू के 'जामे जहाँनुमा' और 'शमसुल अखबार' तथा गुजराती के 'मुंबई समाचार' के दर्शन होते हैं।

यह स्पष्ट है कि हिंदी पत्रकारिता बहुत बाद की चीज नही है। दिल्ली का 'उर्दू अखबार' (१८३३) और मराठी का 'दिग्दर्शन' (१८३७) हिंदी के पहले पत्र 'उदंत मार्तंड' (१८२६) के बाद ही आए। 'उदंत मार्तंड' के सपादक पंडित जुगलकिशोर थे। यह साप्ताहिक पत्र था। पत्र की भाषा पछाँही हिंदी रहती थी, जिसे पत्र के सपादको ने 'मध्यदेशीय भाषा' कहा है। प्रारंभिक विज्ञप्ति इस प्रकार थी — "यह 'उदंत मार्तंड' अब पहले पहल हिंदुस्तानियो के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रेजी ओ पारसी ओ बंगाल में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियो के जानने ओ पढ़नेवालो को ही होता है। इससे सत्य समाचार हिंदुस्तानी लोग देखकर आप पढ ओ समझ लेय ओ पराई अपेक्षा न करें ओ अपनी भाषा की उपज न छोड़ें, इसलिये दयावान करुणा और गुणनि के निधान सब के कल्यान के विषय गवरनर जेनेरेल बहादुर की आयस से ऐसे साहस में चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाट ठाटा ...'। यह पत्र १८२७ में बंद हो गया। उन दिनो सरकारी सहायता के बिना किसी भी पत्र का चलना असंभव था। कंपनी सरकार ने मिशनरियो के पत्र को डाक आदि की सुविधा दे रखी थी, परंतु चेष्टा करने पर भी 'उदत मार्तंड' को यह सुविधा प्राप्त नही हो सकी।

हिंदी पत्रकारिता का पहला चरण — १८२६ ई० से १८७३ ई० तक को हम हिंदी पत्रकारिता का पहला चरण कह सकते हैं। १८७३ ई० मे भारतेंदु ने 'हरिश्चंद्र मैगजीन' की स्थापना की। एक वर्ष बाद यह पत्र 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैसे भारतेंदु का 'कविवचन सुधा' पत्र १८६७ में ही सामने आ गया था और उसने पत्रकारिता के विकास में महत्वपूर्ण भाग लिया था; परंतु नई भाषाशैली का प्रवर्तन १८७३ में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' से ही हुआ। इस बीच के अधिकांश पत्र प्रयोग मात्र कहे जा सकते हैं और उनके पीछे पत्रकला का ज्ञान अथवा नए विचारो के प्रचार की भावना नही है। 'उदंत मार्तंड' के बाद प्रमुख पत्र हैं: बंगदूत (१८२९), प्रजामित्र (१८३४), बनारस अखबार (१८४५), मार्तंड पचभाषीय (१८४६), ज्ञानदीप (१८४६), मालवा अखबार (१८४९), जगद्दीप भास्कर (१८४९), सुधाकर (१८५०), साम्यदंड मार्तंड (१८५०), मजहरुलसरूर (१८५०), बुद्धिप्रकाश (१८५२), ग्वालियर गजेट (१८५३), समाचार सुधावर्षण (१८५४), दैनिक कलकत्ता, प्रजाहितैषी (१८५५), सर्वहितकारक (१८५५), सूरजप्रकाश (१८६१), जगलाभचिंतक (१८६१), सर्वोपकारक (१८६१), प्रजाहित (१८६१), लोकमित्र (१८६५), भारतखंडामृत (१८६४), तत्वबोधिनी पत्रिका (१८६५), ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका (१८६६), सोमप्रकाश (१८६६), सत्यदीपक (१८६६), वृत्तांतविलास (१८६७), ज्ञानदीपक (१८६७), कविवचनसुधा (१८६७), धर्मप्रकाश (१८६७), विद्याविलास (१८६७), वृत्तांतदर्पण (१८६७), विद्यादर्श (१८६९), ब्रह्मज्ञानप्रकाश (१८६९), पापमोचन (१८६९), जगदानंद (१८६९), जगतप्रकाश (१८६९), अलमोड़ा अखबार (१८७०), आगरा अखबार (१८७०), बुद्धिविलास (१८७०), हिंदू प्रकाश (१८७१), प्रयागदूत (१८७१), बुंदेलखंड अखबार (१८७१), प्रेमपत्र (१८७२), और बोधा समाचार (१८७२)। इन पत्रो में से कुछ मासिक थे, कुछ साप्ताहिक। दैनिक पत्र केवल एक था 'समाचार सुधावर्षण' जो द्विभाषीय (बंगला हिंदी) था और कलकत्ता से प्रकाशित होता था। यह दैनिक पत्र १८७१ तक चलता रहा। अधिकांश पत्र आगरा से प्रकाशित होते थे जो उन दिनो एक बड़ा शिक्षाकेंद्र था, और विद्यार्थी-समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति करते थे। शेष ब्रह्मसमाज, सनातन धर्म और मिशनरियो के प्रचार कार्य से संबधित थे। बहुत से पत्र द्विभाषीय (हिंदी उर्दू) थे और कुछ तो पंचभाषीय तक थे। इससे भी पत्रकारिता की अपरिपक्व दशा ही सूचित होती है। हिंदी-प्रदेश के प्रारभिक पत्रो में 'बनारस अखबार' (१८४५) काफी प्रभावशाली था और उसी की भाषानीति के विरोध मे १८५० मे तारामोहन मैत्र ने काशी से साप्ताहिक 'सुधाकर' और १८५५ में राजा लक्ष्मणसिंह ने आगरा से 'प्रजाहितैषी' का प्रकाशन आरभ किया था। राजा शिवप्रसाद का 'बनारस अखबार' उर्दू भाषाशैली को अपनाता था तो ये दोनो पत्र पडिताऊ तत्समप्रधान शैली की ओर झुकते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि १८६७ से पहले भाषाशैली के संबध में हिंदी पत्रकार किसी निश्चित शैली का अनुसरण नही कर सके थे। इस वर्ष कविवचनसुधा का प्रकाशन हुआ और एक तरह से हम उसे पहला महत्वपूर्ण पत्र कह सकते हैं। पहले यह मासिक था, फिर पाक्षिक हुआ और अंत में साप्ताहिक। भारतेंदु के बहुविध व्यक्तित्व का प्रकाशन इस पत्र के माध्यम से हुआ, परंतु सच तो यह है कि 'हरिश्चंद्र मैगजीन' के प्रकाशन (१८७३) तक वे भी भाषाशैली और विचारों के क्षेत्र में मार्ग ही खोजते दिखाई देते हैं।

भारतेंदु युग — हिंदी पत्रकारिता का दूसरा युग १८७३ से १९०० तक चलता है। इस युग के एक छोर पर भारतेंदु का 'हरिश्चंद्र मैगजीन' था और दूसरी ओर नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा अनुमोदन-प्राप्त 'सरस्वती'। इन २७ वर्षों में प्रकाशित पत्रो की संख्या ३००-३५० से ऊपर है और ये नागपुर तक फैले हुए हैं। अधिकांश पत्र मासिक या साप्ताहिक थे। मासिक पत्रो में निबंध, नवल कथा (उपन्यास), वार्ता आदि के रूप में कुछ अधिक स्थायी संपत्ति रहती थी, परंतु अधिकांश पत्र १०-१५ पृष्ठो से अधिक नही जाते थे

हैं — कर्मवीर (१९२४), सैनिक (१९२४), स्वदेश (१९२१), श्रीकृष्ण-सदेश (१९२५), हिंदूपच (१९२६), स्वतत्र भारत (१९२८), जागरण (१९२९), हिंदी मिलाप (१९२९), सचित्र दरबार (१९३०), स्वराज्य (१९३१), नवयुग (१९३२), हरिजन सेवक (१९३२), विश्वबधु (१९३३), नवशक्ति (१९३४), योगी (१९३४), हिंदू (१९३६), देशदूत (१९३८), राष्ट्रीयता (१९३८), सघर्ष (१९३८), चिनगारी (१९३८), नवज्योति (१९३८), संगम (१९४०), जनयुग (१९४२), रामराज्य (१९४२), ससार (१९४३), लोकवाणी (१९४२), सावधान (१९४२), हुंकार (१९४२), और सन्मार्ग (१९४३)। इनमें से अधिकांश साप्ताहिक हैं, परतु जनमन के निर्माण में उनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है। जहाँ तक पत्रकला का सबध है वहाँ तक हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि तीसरे और चौथे युग के पत्रो में धरती और आकाश का अतर है। आज पत्रसपादन वास्तव मे उच्च कोटि की कला है। राजनीतिक पत्रकारिता के क्षेत्र मे 'आज' (१९२१) और उसके सपादक स्वर्गीय बाबूराव विष्णु पराडकर का लगभग वही स्थान है जो साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को प्राप्त है। सच तो यह है कि 'आज' ने पत्रकला के क्षेत्र में एक महान् सस्था का काम किया है और उसने हिंदी को बीसियों पत्रसपादक और पत्रकार दिए हैं।

आधुनिक साहित्य के अनेक अगों की भाँति हमारी पत्रकारिता भी नई कोटि की है और उसमें भी मुख्यतः हमारे मध्यवित्त वर्ग की सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और राजनीतिक हलचलो का प्रतिबिंब भास्वर है। वास्तव मे पिछले १४० वर्षों का सच्चा इतिहास हमारी पत्रपत्रिकाओ से ही सकलित हो सकता है। बँगला के 'कलेर कथा' ग्रथ में पत्रों के अवतरणों के आधार पर बगाल के उन्नीसवी शताब्दी के मध्यवित्तीय जीवन के आकलन का प्रयत्न हुआ है। हिंदी में भी ऐसा प्रयत्न वाछनीय है। एक तरह से उन्नीसवीं शती में साहित्य कही जा सकनेवाली चीज बहुत कम है और जो है भी, वह पत्रों के पृष्ठों मे ही पहले पहल सामने आई है। भाषाशैली के निर्माण और जातीय शैली के विकास में पत्रों का योगदान अत्यत महत्वपूर्ण रहा है, परतु बीसवी शती के पहले दो दशकों के अंत तक मासिक पत्र और साप्ताहिक पत्र ही हमारी साहित्यिक प्रवृत्तियों को जन्म देते और विकसित करते रहे हैं। द्विवेदी युग के साहित्य को हम 'सरस्वती' और 'इदु' मे जिस प्रयोगात्मक रूप में देखते हैं, वही उस साहित्य का असली रूप है। १९२१ ई० के बाद साहित्य बहुत कुछ पत्रपत्रिकाओं से स्वतत्र होकर अपने पैरो पर खडा होने लगा, परतु फिर भी विशिष्ट साहित्यिक आदोलनो के लिये हमे मासिक पत्रो के पृष्ठ ही उलटने पडते हैं। राजनीतिक चेतना के लिये तो पत्र-पत्रिकाएँ हैं ही। वस्तुत पत्रपत्रिकाएँ जितनी बडी जनसख्या को छूती हैं, विशुद्ध साहित्य का उतनी बडी जनसख्या तक पहुँचना असभव है। [रा० र० भ०]

हिंदी भाषा और साहित्य 'हिंदी' शब्द विदेशियों का दिया हुआ है। फारसी में सस्कृत की स ध्वनि ह हो जाती है, अत सिंध से हिंद और सिंधी से हिंदी बना। शब्दार्थ की दृष्टि से हिंद (भारत) की किसी भाषा को हिंदी कहा जा सकता है। प्राचीनकाल में मुसलमानों ने इसका प्रयोग इस अर्थ में किया भी है पर वर्तमानकाल में सामान्यतया इसका व्यवहार उस विस्तृत भूखड की भाषा के लिये होता है जो पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल की तराई, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण पश्चिम में खडवा तक फैली हुई है। इसके मुख्य दो भेद हैं—पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी।

उर्दू और हिंदुस्तानी

हिंदी के आधुनिक साहित्य की रचना खडी बोली में हुई है। खडी बोली हिंदी मे अरबी फारसी के मेल से जो भाषा बनी वह उर्दू कहलाई। मुसलमानों ने 'उर्दू' का प्रयोग छावनी, शाही लश्कर और किले के अर्थ मे किया है। इन स्थानो में बोली जानेवाली व्यावहारिक भाषा 'उर्दू की जबान' हुई। पहले पहले बोलचाल के लिये दिल्ली के सामान्य मुसलमान जो भाषा व्यवहार में लाते थे वह हिंदी ही थी। चौदहवी सदी में मुहम्मद तुगलक जब अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरि ले गया तब वहाँ जानेवाले पछाँह के मुसलमान अपनी सामान्य बोलचाल की भाषा भी अपने साथ लेते गए। प्रायः पंद्रहवीं शताब्दी में बीजापुर, गोलकुडा आदि मुसलमानी राज्यो में साहित्य के स्तर पर इस भाषा की प्रतिष्ठा हुई। उस समय उत्तर-भारत के मुसलमानी राज्य में साहित्यिक भाषा फारसी थी। दक्षिण भारत में तेलुगू आदि द्रविड भाषाभाषियों के बीच उत्तर भारत की इस आर्य भाषा को फारसी लिपि में लिखा जाता था। इस दखिनी भाषा को उर्दू के विद्वान् उर्दू कहते हैं। शुरू में दखिनी बोलचाल की खड़ी बोली के बहुत निकट थी। इसमें हिंदी और सस्कृत के शब्दों का बहुल प्रयोग होता था। छद भी अधिकतर हिंदी के ही होते थे। पर सोलहवी सदी से सूफियो और बीजापुर, गोलकुडा आदि राज्यो के दरबारियों द्वारा दखिनी में अरबी फारसी का प्रचलन धीरे धीरे बढ़ने लगा। फिर भी अठारहवीं शताब्दी के आरभ तक इसका रूप प्रधानतया हिंदी या भारतीय ही रहा।

सन् १७०० के आस पास दखिनी के प्रसिद्ध कवि शम्स वलीउल्ला 'वली' दिल्ली आए। यहाँ आने पर शुरू में तो वली ने अपनी काव्य-भाषा दखिनी ही रखी, जो भारतीय वातावरण के निकट थी। पर बाद में उनकी रचनाओ पर अरबी फारसी का गहरा रंग चढने लगा। इसी समय दिल्ली केंद्र से उर्दू शायरी की परपरा प्रवर्तित हुई। आरभ की दखिनी में फारसी प्रभाव कम मिलता है। दिल्ली की परवर्ती उर्दू पर फारसी शब्दावली और विदेशी वातावरण का गहरा रग चढ़ता गया। हिंदी के शब्द ढूँढ ढूँढकर निकाल फेंके गए और उनकी जगह अरबी फारसी के शब्द बैठाए गए। मुगल साम्राज्य के पतनकाल में जब लखनऊ उर्दू का दूसरा केंद्र हुआ तो उसका हिंदी-पन और भी सतर्कता से दूर किया गया। अब वह अपने मूल हिंदी से बहुत भिन्न हो गई।

हिंदी और उर्दू के एक मिले जुले रूप को हिंदुस्तानी कहा गया है। भारत में अँगरेज शासको की कूटनीति के फलस्वरूप हिंदी और उर्दू एक दूसरे से दूर होती गईं। एक की संस्कृतनिष्ठता बढती गई और दूसरे का फारसीपन। लिपिभेद तो था ही। सांस्कृतिक वातावरण

मासिक पत्र एक महान् साहित्यिक शक्ति के रूप में सामने आए। शृंखलित उपन्यास कहानी के रूप में कई पत्र प्रकाशित हुए—जैसे उपन्यास १९०१, हिंदी नाविल १९०१, उपन्यास लहरी १९०२, उपन्याससागर १९०३, उपन्यास कुसुमांजलि १९०४, उपन्यास-बहार १९०७, उपन्यास प्रचार १९०१२। केवल कविता अथवा समस्यापूर्ति लेकर अनेक पत्र उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में निकलने लगे थे। वे चलते रहे। समालोचना के क्षेत्र में 'समालोचक' (१९०२) और ऐतिहासिक शोध से संबंधित 'इतिहास' (१९०५) का प्रकाशन भी महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। परंतु सरस्वती ने 'मिस्लेनी' (Miscellany) के रूप मे जो आदर्श रखा था, वह अधिक लोकप्रिय रहा और इस श्रेणी के पत्रों में उसके साथ कुछ थोड़े ही पत्रों का नाम लिया जा सकता है, जैसे 'भारतेंदु' (१९०५), नागरी हितैषिणी पत्रिका, बाँकीपुर (१९०५), नागरीप्रचारक (१९०६), मिथिलामिहिर (१९१०) और इंदु (१९०९)। 'सरस्वती' और 'इंदु' दोनों हमारी साहित्यचेतना के इतिहास के लिये महत्वपूर्ण हैं और एक तरह से हम उन्हे उस युग की साहित्यिक पत्रकारिता का शीर्षमणि कह सकते हैं। 'सरस्वती' के माध्यम से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'इंदु' के माध्यम से पंडित रूपनारायण पांडेय ने जिस संपादकीय सतर्कता, अध्यवसाय और ईमानदारी का आदर्श हमारे सामने रखा वह हमारी पत्रकारिता को एक नई दिशा देने में समर्थ हुआ।

परंतु राजनीतिक क्षेत्र में हमारी पत्रकारिता को नेतृत्व प्राप्त नहीं हो सका। पिछले युग की राजनीतिक पत्रकारिता का केंद्र कलकत्ता था। परंतु कलकत्ता हिंदी प्रदेश से दूर पड़ता था और स्वयं हिंदी प्रदेश को राजनीतिक दिशा में जागरूक नेतृत्व कुछ देर में मिला। हिंदी प्रदेश का पहला दैनिक राजा रामपालसिंह का द्विभाषीय 'हिंदुस्तान' (१८८३) है जो अंग्रेजी और हिंदी में कालाकांकर से प्रकाशित होता था। दो वर्ष बाद (१८८५ में), बाबू सीताराम ने 'भारतोदय' नाम से एक दैनिक पत्र कानपुर से निकालना शुरू किया। परंतु ये दोनो पत्र दीर्घजीवी नहीं हो सके और साप्ताहिक पत्रों को ही राजनीतिक विचारधारा का वाहन बनना पड़ा। वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी मे कलकत्ता के भारतमित्र, बंगवासी, सारसुधानिधि और उचित वक्ता ही हिंदी प्रदेश की राजनीतिक भावना का प्रतिनिधित्व करते थे। इनमे कदाचित् 'भारतमित्र' ही सबसे अधिक स्थायी और शक्तिशाली था। उन्नीसवी शताब्दी मे बंगाल और महाराष्ट्र लोक जाग्रति के केंद्र थे और उग्र राष्ट्रीय पत्रकारिता में भी ये ही प्रांत अग्रणी थे। हिंदी प्रदेश के पत्रकारों ने इन प्रांतों के नेतृत्व को स्वीकार कर लिया और बहुत दिनो तक उनका स्वतंत्र राजनीतिक व्यक्तित्व विकसित नहीं हो सका। फिर भी हम 'अभ्युदय' (१९०५), 'प्रताप' (१९१३), 'कर्मयोगी', 'हिंदी केसरी' (१९०४-१९०८) आदि के रूप में हिंदी राजनीतिक पत्रकारिता को कई डग आगे बढ़ाते पाते हैं। प्रथम महायुद्ध की उत्तेजना ने एक बार फिर कई दैनिक पत्रों को जन्म दिया। कलकत्ता से 'कलकत्ता समाचार', 'स्वतंत्र' और 'विश्वमित्र' प्रकाशित हुए, बंबई से 'वेंकटेश्वर समाचार' ने अपना दैनिक संस्करण प्रकाशित करना आरंभ किया और दिल्ली से 'विजय' निकला। १९२१ में काशी से 'आज' और कानपुर से 'वर्तमान' प्रकाशित हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि १९२१ मे हिंदी पत्रकारिता फिर एक बार करवटें लेती है और राजनीतिक क्षेत्र में अपना नया जीवन आरंभ करती है। हमारे साहित्यिक पत्रों के क्षेत्र में भी नई प्रवृत्तियों का आरंभ इसी समय से होता है। फलतः बीसवीं शती के पहले बीस वर्षों को हम हिंदी पत्रकारिता का तीसरा चरण कह सकते हैं।

आधुनिक युग — १९२१ के बाद हिंदी पत्रकारिता का समसामयिक युग आरंभ होता है। इस युग मे हम राष्ट्रीय और साहित्यिक चेतना को साथ साथ पल्लवित पाते हैं। इसी समय के लगभग हिंदी का प्रवेश विश्वविद्यालयों में हुआ और कुछ ऐसे कृती संपादक सामने आए जो अंग्रेजी की पत्रकारिता से पूर्णतः परिचित थे और जो हिंदी पत्रों को अंग्रेजी, मराठी और बँगला के पत्रों के समकक्ष लाना चाहते थे। फलत साहित्यिक पत्रकारिता में एक नए युग का आरंभ हुआ। राष्ट्रीय आंदोलनों ने हिंदी की राष्ट्रभाषा के लिये योग्यता पहली बार घोषित की और जैसे जैसे राष्ट्रीय आंदोलनो का बल बढ़ने लगा, हिंदी के पत्रकार और पत्र अधिक महत्व पाने लगे। १९२१ के बाद गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन मध्यवर्ग तक सीमित न रहकर ग्रामीणों और श्रमिकों तक पहुँच गया और उसके इस प्रसार में हिंदी पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण योग दिया। सच तो यह है कि हिंदी पत्रकार राष्ट्रीय आंदोलनों की अग्र पंक्ति में थे और उन्होंने विदेशी सत्ता से डटकर मोर्चा लिया। विदेशी सरकार ने अनेक बार नए नए कानून बनाकर समाचारपत्रों की स्वतंत्रता पर कुठाराघात किया परंतु जेल, जुर्माना और अनेकानेक मानसिक और आर्थिक कठिनाइयाँ झेलते हुए भी हमारे पत्रकारों ने स्वतंत्र विचार की दीपशिखा जलाए रखी।

१९२१ के बाद साहित्यक्षेत्र में जो पत्र आए उनमें प्रमुख हैं स्वार्थ (१९२२), माधुरी (१९२३), मर्यादा, चाँद (१९२३), मनोरमा (१९२४), समालोचक (१९२४), चित्रपट (१९२५), कल्याण (१९२६), सुधा (१९२७), विशालभारत (१९२८), त्यागभूमि (१९२८), हंस (१९३०), गंगा (१९३०), विश्वमित्र (१९३३), रूपाभ (१९३८), साहित्य संदेश (१९३८), कमला (१९३९), मधुकर (१९४०), जीवनसाहित्य (१९४०), विश्व-भारती (१९४२), संगम (१९४२), कुमार (१९४४), नया साहित्य (१९४५), पारिजात (१९४५), हिमालय (१९४६) आदि। वास्तव में आज हमारे मासिक साहित्य की प्रौढ़ता और विविधता में किसी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता। हिंदी की अनेकानेक प्रथम श्रेणी की रचनाएँ मासिकों द्वारा ही पहले प्रकाश मे आईं और अनेक श्रेष्ठ कवि और साहित्यकार पत्रकारिता से भी संबंधित रहे। आज हमारे मासिक पत्र जीवन और साहित्य के सभी अंगों की पूर्ति करते हैं और अब विशेषज्ञता की ओर भी ध्यान जाने लगा है। साहित्य की प्रवृत्तियों की जैसी विकासमान झलक पत्रों मे मिलती है, वैसी पुस्तकों में नहीं मिलती। वहाँ हमें साहित्य का सक्रिय, सप्राण, गतिशील रूप प्राप्त होता है।

राजनीतिक क्षेत्र में इस युग में जिन पत्रपत्रिकाओं की धूम रही वे

बौद्ध, शाक्त, जैन, योग और शैव मतों के मिश्रण से अपना नया पथ चलाया जिसमें सभी वर्गों और वर्णों के लिये धर्म का एक सामान्य मत प्रतिपादित किया गया था। लोकप्रचलित पुरानी हिंदी में लिखी इनकी अनेक धार्मिक रचनाएं उपलब्ध हैं। इसके बाद जैनियों की रचनाएं मिलती हैं। स्वयंभू का 'पउमचरिउ' अथवा रामायण आठवीं शताब्दी की रचना है। बौद्धों और नाथपंथियों की रचनाएं शुष्क और केवल धार्मिक हैं पर जैनियों की अनेक रचनाएं जीवन की सामान्य अनुभूतियों से भी संबद्ध हैं। इनमें से कई प्रबंधकाव्य हैं। इसी काल में अब्दुलरहमान का काव्य 'संदेश-रासक' भी लिखा गया जिसमें परवर्ती बोलचाल के निकट की भाषा मिलती है। इस प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी तक पुरानी हिंदी का रूप निर्मित और विकसित होता रहा।

वीरगाथा काल

ग्यारहवीं सदी के लगभग देशभाषा हिंदी का रूप अधिक स्फुट हो चला। उस समय पश्चिमी हिंदी प्रदेश में अनेक छोटे छोटे राजपूत राज्य स्थापित हो गए थे। ये परस्पर अथवा विदेशी आक्रमणकारियों से प्राय: युद्धरत रहा करते थे। इन्हीं राजाओं के संरक्षण में रहनेवाले चारणों और भाटों का राजप्रशस्तिमूलक काव्य वीरगाथा के नाम से अभिहित किया गया। इन वीरगाथाओं को रासो कहा जाता है। इनमें आश्रयदाता राजाओं के शौर्य और पराक्रम का ओजस्वी वर्णन करने के साथ ही उनके प्रेमप्रसंगों का भी उल्लेख है। रासो ग्रंथों में संघर्ष का कारण प्राय: प्रेम दिखाया गया है। इन रचनाओं में इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। रासो वीरगीत (बीसलदेवरासो और आल्हा आदि) और प्रबंधकाव्य (पृथ्वीराजरासो, खुमानरासो आदि) — इन दो रूपों में लिखे गए। इन रासो ग्रंथों में से अनेक की उपलब्ध प्रतियाँ चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से संदिग्ध हों पर इन वीरगाथाओं की मौखिक परंपरा असंदिग्ध है। इनमें शौर्य और प्रेम की ओजस्वी और सरस अभिव्यक्ति हुई है।

इसी कालावधि में मैथिल कोकिल विद्यापति हुए जिनकी पदावली में मानवीय सौंदर्य और प्रेम की अनुपम व्यंजना मिलती है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका इनके दो अन्य प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। अमीर खुसरो का भी यही समय है। इन्होंने ठेठ खड़ी बोली में अनेक पहेलियाँ, मुकरियाँ और दो सखुन रचे हैं। इनके गीतों, दोहों की भाषा ब्रजभाषा है।

भक्तिकाल (सन् १४००-१६०० ई०)

तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, शास्त्रज्ञानसंपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्ति-आंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्षविधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की। भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आल-वार भक्तों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार-प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्यपरंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिये संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों — कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय वल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित् के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अत सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिये भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान् के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिये गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों की व्यापक प्रतिष्ठा हुई।

यद्यपि भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी जो हिंदू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो। इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिये भी अधिक मान्य मत वही हो सकता था जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो। महाराष्ट्र के संत नामदेव ने १४ वीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया जिसमें भगवान् के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहीत थे। कबीर के संतमत के ये पूर्वपुरुष हैं। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिंदुओं की लोकगाथाओं का आधार लेकर ईश्वर के प्रेममय रूप का प्रचार किया।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिंदी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएं साथ साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए—ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ—रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

भक्तिकाव्य की इन विभिन्न प्रणालियों की अपनी अलग अलग विशेषताएं हैं पर कुछ आधारभूत बातों का सन्निवेश सब में है। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्तिभाव के स्तर पर मनुष्यमात्र की समानता सबको मान्य है। प्रेम और करुणा से युक्त अवतार की कल्पना तो सगुण भक्तों का आधार ही है पर

की दृष्टि से भी दोनो का पार्थक्य बढ़ता गया। ऐसी स्थिति में अंगरेजो ने एक ऐसी मिश्रित भाषा को हिंदुस्तानी नाम दिया जिसमें अरबी, फारसी या संस्कृत के कठिन शब्द न प्रयुक्त हों तथा जो साधारण जनता के लिये सहजबोध्य हो। आगे चलकर देश के राजनयिको ने भी इस तरह की भाषा को मान्यता देने की कोशिश की और कहा कि इसे फारसी और नागरी दोनो लिपियो मे लिखा जा सकता है। पर यह कृत्रिम प्रयास अततोगत्वा विफल हुआ। इस तरह की भाषा का ज्यादा झुकाव उर्दू की ओर ही था।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी

जैसा ऊपर कहा गया है, अपने सीमित भाषाशास्त्रीय अर्थ में हिंदी के दो उपरूप माने जाते हैं — पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी।

पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत पाँच बोलियाँ हैं — खड़ी बोली, बांगरू, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली। खड़ी बोली अपने मूल रूप में मेरठ, बिजनौर के आसपास बोली जाती है। इसी के आधार पर आधुनिक हिंदी और उर्दू का रूप खड़ा हुआ। बांगरू को जाटू या हरियानवी भी कहते हैं। यह पंजाब के दक्षिण पूर्व में बोली जाती है। कुछ विद्वानो के अनुसार बांगरू खड़ी बोली का ही एक रूप है जिसमें पंजाबी और राजस्थानी का मिश्रण है। ब्रजभाषा मथुरा के आसपास ब्रजमंडल में बोली जाती है। हिंदी साहित्य के मध्ययुग में ब्रजभाषा में उच्च कोटि का काव्य निर्मित हुआ। इसीलिये इसे बोली न कहकर आदरपूर्वक भाषा कहा गया। मध्यकाल में यह बोली संपूर्ण हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा के रूप मे मान्य हो गई थी। पर साहित्यिक ब्रजभाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ अन्य प्रातो के शब्दों और प्रयोगो का भी ग्रहण है। कन्नौजी गगा के मध्य दोआब की बोली है। इसके एक ओर ब्रजमडल है और दूसरी ओर अवधी का क्षेत्र। यह ब्रजभाषा से इतनी मिलती जुलती है कि इसमें रचा गया जो थोडा बहुत साहित्य है वह ब्रजभाषा का ही माना जाता है। बुंदेली बुंदेलखड की उपभाषा है। बुंदेलखड में ब्रजभाषा के अच्छे कवि हुए हैं जिनकी काव्यभाषा पर बुंदेली का प्रभाव है।

पूर्वी हिंदी की तीन शाखाएँ हैं — अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। अवधी अर्धमागधी प्राकृत की परंपरा में है। यह अवध मे बोली जाती है। इसके दो भेद हैं — पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी। अवधी को बैसवाड़ी भी कहते हैं। तुलसी के रामचरितमानस में अधिकाशतः पश्चिमी अवधी मिलती है और जायसी के पदमावत में पूर्वी अवधी। बघेली बघेलखंड में प्रचलित है। यह अवधी का ही एक दक्षिणी रूप है। छत्तीसगढ़ी पलामू (बिहार) की सीमा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक और पश्चिम मे बघेलखंड की सीमा से उड़ीसा की सीमा तक फैले हुए भूभाग की बोली है। इसमें प्राचीन साहित्य नही मिलता। वर्तमान काल में कुछ लोकसाहित्य रचा गया है।

हिंदी प्रदेश की तीन उपभाषाएँ और हैं — बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी हिंदी।

बिहारी की तीन शाखाएँ हैं — भोजपुरी, मगही और मैथिली। बिहार के एक कस्बे भोजपुर के नाम पर भोजपुरी बोली का नामकरण हुआ। पर भोजपुरी का प्रसार बिहार से अधिक उत्तर प्रदेश में है। बिहार के शाहाबाद, चंपारन और सारन जिले से लेकर गोरखपुर तथा बनारस कमिश्नरी तक का क्षेत्र भोजपुरी का है। भोजपुरी पूर्वी हिंदी के अधिक निकट है। हिंदी प्रदेश की बोलियो में भोजपुरी बोलनेवालो की संख्या सबसे अधिक है। इसमें प्राचीन साहित्य तो नही मिलता पर ग्रामगीतो के अतिरिक्त वर्तमान काल मे कुछ साहित्य रचने का प्रयत्न भी हो रहा है। मगही के केंद्र पटना और गया हैं। इसके लिये कैथी लिपि का व्यवहार होता है। इसमें कोई साहित्य नही मिलता। मैथिली गंगा के उत्तर में दरभंगा के आसपास प्रचलित है। इसकी साहित्यिक परपरा पुरानी है। विद्यापति के पद प्रसिद्ध ही हैं। मध्ययुग में लिखे मैथिली नाटक भी मिलते हैं। आधुनिक काल में भी मैथिली का साहित्य निर्मित हो रहा है।

राजस्थानी का प्रसार पजाब के दक्षिण में है। यह पूरे राजपूताने और मध्य प्रदेश के मालवा में बोली जाती है। राजस्थानी का सबंध एक ओर ब्रजभाषा से है और दूसरी ओर गुजराती से। पुरानी राजस्थानी को डिंगल कहते हैं जिसमें चारणो का लिखा हिंदी का आरंभिक साहित्य उपलब्ध है। राजस्थानी मे गद्य साहित्य की भी पुरानी परपरा है। राजस्थानी की चार मुख्य बोलियाँ या विभाषाएँ हैं — मेवाती, मालवी, जयपुरी और मारवाडी। मारवाड़ी का प्रचलन सबसे अधिक है। राजस्थानी के अंतर्गत कुछ विद्वान् भीली को भी लेते हैं।

पहाड़ी उपभाषा राजस्थानी से मिलती जुलती है। इसका प्रसार हिंदी प्रदेश के उत्तर हिमालय के दक्षिणी भाग में नेपाल से शिमला तक है। इसकी तीन शाखाएँ हैं — पूर्वी, मध्यवर्ती और पश्चिमी। पूर्वी पहाड़ी नेपाल की प्रधान भाषा है जिसे नेपाली और परबतिया भी कहा जाता है। मध्यवर्ती पहाड़ी कुमायूँ और गढ़वाल में प्रचलित है। इसके दो भेद हैं — कुमाउँनी और गढ़वाली। ये पहाड़ी उपभाषाएँ नागरी लिपि में लिखी जाती हैं। इनमें पुराना साहित्य नही मिलता। आधुनिक काल में कुछ साहित्य लिखा जा रहा है। कुछ विद्वान् पहाड़ी को राजस्थानी के अतर्गत ही मानते हैं।

हिंदी साहित्य

हिंदी साहित्य का आरंभ आठवी शताब्दी से माना जाता है। यह वह समय है जब सम्राट् हर्ष की मृत्यु के बाद देश मे अनेक छोटे छोटे शासनकेंद्र स्थापित हो गए थे जो परस्पर संघर्षरत रहा करते थे। विदेशी मुसलमानों से भी इनकी टक्कर होती रहती थी। धार्मिक क्षेत्र अस्तव्यस्त थे। इन दिनो उत्तर भारत के अनेक भागो में बौद्ध धर्म का प्रचार था। बौद्ध धर्म का विकास कई रूपों में हुआ जिनमे से एक वज्रयान कहलाया। वज्रयानी तात्रिक थे और सिद्ध कहलाते थे। इन्होने जनता के बीच उस समय की लोकभाषा में अपने मत का प्रचार किया। हिंदी का प्राचीनतम साहित्य इन्हीं वज्रयानी सिद्धों द्वारा तत्कालीन लोकभाषा पुरानी हिंदी में लिखा गया। इसके बाद नाथपंथी साधुओं का समय आता है। इन्होने

जिक और वैयक्तिक कर्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करनेवाला है। तुलसी की 'विनयपत्रिका' में आराध्य के प्रति, जो कवि के आदर्शों का सजीव प्रतिरूप है, उनका निरंतर और निश्छल समर्पण-भाव, काव्यात्मक आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट दृष्टांत है। काव्याभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर उनका समान अधिकार है। अपने समय में प्रचलित सभी काव्यशैलियों का उन्होने सफल प्रयोग किया। प्रबंध और मुक्तक की साहित्यिक शैलियों के अतिरिक्त लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा दोनो के व्यवहार में वे समान रूप से समर्थ हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामकाव्य के अन्य रचयिताओं में अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि उल्लेख्य हैं।

आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसकी धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियो और भावो के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिंदी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

रीतिकाल (सन् १७००–१८०० ई०)

१७०० ई० के आस पास हिंदी कविता में एक नया मोड आया। इसे विशेषत: तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृत-साहित्य से उत्तेजना मिली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के कतिपय ग्रंथों ने उसे शास्त्रीय अनुशासन की ओर प्रवृत्त किया। हिंदी मे रीति या काव्यरीति शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिये हुआ था। इसलिये काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजनप्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षणग्रंथो को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को रीतिकाव्य कहा गया। इस काव्य की शृंगारी प्रवृत्तियो की पुरानी परंपरा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और हिंदी के आदिकाव्य तथा कृष्ण-काव्य की शृंगारी प्रवृत्तियो में मिलते हैं।

रीतिकाव्य रचना का आरंभ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचंद्रिका हैं। कविप्रिया में अलंकार और रसिकप्रिया में रस का सोदाहरण निरूपण है। लक्षण दोहो में और उदाहरण कवित्त-सवैए मे हैं। लक्षण-लक्ष्य ग्रंथो की यही परंपरा रीतिकाव्य मे विकसित हुई। रामचंद्रिका केशव का प्रबंधकाव्य है जिसमे भक्ति की तन्मयता के स्थान पर एक सजग कलाकार की प्रखर कलाचेतना प्रस्फुटित हुई है। केशव के कई दशक बाद चिंतामणि से लेकर अठारहवी सदी तक हिंदी में रीतिकाव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ जिसमे नर-नारी जीवन के रमणीय पक्षो और तत्संबंधी सरस संवेदनाओ की अत्यंत कलात्मक अभिव्यक्ति व्यापक रूप मे हुई।

रीतिकाल के कवि राजाओ और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनंद का मुख्य साधन वहाँ उक्तिवैचित्र्य समझा जाता था। ऐसे वातावरण मे लिखा गया साहित्य अधिकतर शृंगारमूलक और कलावैचित्र्य से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए जिन्होंने प्रेम की गहराइयो का स्पर्श किया है। भाव और काव्यगुण दोनो ही दृष्टियो से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करनेवाला काव्यसाहित्य महत्वपूर्ण है।

इस समय वीरकाव्य भी लिखा गया। मुगल शासक औरंगजेब की कट्टर सांप्रदायिकता और आक्रामक राजनीति की टकराहट से इस काल मे जो विक्षोभ की स्थितियाँ आईं उन्होंने कुछ कवियों को वीर-काव्य के सृजन की भी प्रेरणा दी। ऐसे कवियो में भूषण प्रमुख हैं जिन्होने रीतिशैली को अपनाते हुए भी वीरो के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया। इस समय नीति, वैराग्य और भक्ति से संबंधित काव्य भी लिखा गया। अनेक प्रबंधकाव्य भी निर्मित हुए। इधर के शोधकार्य में इस समय की शृंगारेतर रचनाएँ और प्रबंधकाव्य प्रचुर परिमाण में मिल रहे हैं। इसलिये रीतिकालीन काव्य को नितांत एकांगी और एकरूप समझना उचित नही है। इस समय के काव्य में पूर्ववर्ती कालो की सभी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। यह प्रधान धारा शृंगार-काव्य की है जो इस समय की काव्यसंपत्ति का वास्तविक निदर्शक मानी जाती रही है। शृंगारी काव्य तीन वर्गो मे विभाजित किया जाता है। पहला वर्ग रीतिबद्ध कवियो का है जिसके प्रतिनिधि केशव, चिंतामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम और पद्माकर आदि हैं। इन कवियो ने दोहो में रस, अलंकार और नायिका के लक्षण देकर कवित्त सवैए में प्रेम और सौंदर्य की कलापूर्ण मार्मिक व्यंजना की है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित शास्त्रीय चर्चा का अनुसरण मात्र इनमे अधिक है। पर कुछ ने थोडी मौलिकता भी दिखाई है, जैसे भिखारीदास का हिंदी छंदो का निरूपण। दूसरा वर्ग रीतिसिद्ध कवियो का है। इन कवियो ने लक्षण नही निरूपित किए, केवल उनके आधार पर काव्यरचना की। बिहारी इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जिन्होने दोहो में अपनी 'सतसई' प्रस्तुत की। विभिन्न मुद्राओंवाले अत्यंत व्यंजक सौंदर्यचित्रो और प्रेम की भावदशाओ का अनुपम अंकन इनके काव्य में मिलता है। तीसरे वर्ग में घनानंद, बोधा, द्विजदेव, ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवि आते हैं जिन्होंने स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनकी रचनाओ में प्रेम की तीव्रता और गहनता की अत्यंत प्रभावशाली व्यंजना हुई है।

रीतिकाव्य मुख्यत. मांसल शृंगार का काव्य है। इसमें नर-नारी-जीवन के रमणीय पक्षो का सुंदर उद्घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर प्रबंधकाव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों में शृंगार-काव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे धीरे रीति की जकड बढती गई और हिंदी काव्य का भावक्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते आते इन दोनो कमियो की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

आधुनिक युग का आरंभ

उन्नीसवीं शताब्दी — यह आधुनिक युग का आरंभ काल है जब भारतीयो का यूरोपीय संस्कृति से संपर्क हुआ। भारत में अपनी जड़ें जमाने के क्रम में अंगरेजी शासन ने भारतीय जीवन को विभिन्न स्तरो पर प्रभावित और आदोलित किया। नई परिस्थितियों के धक्के से स्थितिशील जीवनविधि का ढाँचा टूटने लगा। एक नए युग की चेतना का आरंभ हुआ। संघर्ष और सामंजस्य के नए आयाम सामने आए।

नए युग के साहित्यसृजन की सर्वोच्च संभावनाएँ खडी बोली गद्य में निहित थी, इसलिये इसे गद्य-युग भी कहा गया है। हिंदी

निर्गुणोपासक कबीर भी अपने राम को प्रिय, पिता और स्वामी आदि के रूप में स्मरण करते हैं। ज्ञान की तुलना मे सभी भक्तो ने भक्तिभाव को गौरव दिया है। सभी भक्त कवियों ने लोकभाषा का माध्यम स्वीकार किया है।

ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का समिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडबर, रुढियो और अंधविश्वासो पर उन्होने तीव्र कशाघात किया। मनुष्य की समता का उद्‌घोष कर उन्होने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा कबीर आदि संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया था। सूफी संतो ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा लोकमानस को भावना के स्तर पर प्रभावित करने का प्रयत्न किया। ज्ञानमार्गी संत कवियों की वाणी मुक्तकबद्ध है, प्रेममार्गी कवियो की प्रेमभावना लोकप्रचलित आख्यानों का आधार लेकर प्रबंधकाव्य के रूप मे रूपायित हुई है। सूफी ईश्वर को अनंत प्रेम और सौंदर्य का भाडार मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर को जीव प्रेम के मार्ग से ही उपलब्ध कर सकता है। साधना के मार्ग में आनेवाली बाधाओ को वह गुरु या पीर की सहायता से साहसपूर्वक पार करके अपने परमप्रिय का साक्षात्कार करता है। सूफियों ने चाहे अपने मत के प्रचार के लिये अपने कथाकाव्य की रचना की हो पर साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य इसलिये है कि उसमें प्रेम और उससे प्रेरित अन्य संवेगो की व्यंजना सहजबोध्य लौकिक भूमि पर हुई है। उनके द्वारा व्यंजित प्रेम ईश्वरोन्मुख है पर सामान्यत: यह प्रेम लौकिक भूमि पर ही संक्रमण करता है। परमप्रिय के सौंदर्य, प्रेमक्रीड़ा और प्रेमी के विरहोद्वेग आदि का वर्णन उन्होंने इतनी तन्मयता से किया है और उनके काव्य का मानवीय आधार इतना पुष्ट है कि आध्यात्मिक प्रतीकों और रूपको के बावजूद उनकी रचनाएं प्रेमसमर्पित कथाकाव्य की श्रेष्ठ कृतियाँ बन गई हैं। उनके काव्य का पूरा वातावरण लोकजीवन का और गार्हस्थिक है। प्रेमाख्यानको की शैली फारसी के मसनवी काव्य जैसी है।

इस धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं जिनका 'पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओ मे 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें सूफी सप्रदायसंमत बातें हैं। इस धारा के अन्य कवि हैं कुतुबन, मंझन, उसमान, शेख नबी, और नूरमुहम्मद आदि।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में विचार की प्रधानता है तो सूफियो की रचनाओं में प्रेम का एकांतिक रूप व्यक्त हुआ है। सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूरकर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की। कृष्णभक्तिशाखा के कवियों ने आनंदस्वरूप लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया। इन कवियो में सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास श्रेष्ठतम हैं जिन्होने कृष्ण के मधुर व्यक्तित्व का अनेक मार्मिक रूपो में साक्षात्कार किया। ये प्रेम और सौंदर्य के निसर्गसिद्ध गायक हैं। कृष्ण के बालरूप की जैसी विमोहक, सजीव और बहुविध कल्पना इन्होने की है वह अपना सानी नही रखता। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छद प्रेमप्रसगों द्वारा सूर ने मानवीय राग का बड़ा ही निश्छल और सहज रूप उद्‌घाटित किया है। यह प्रेम अपने सहज परिवेश में सहयोगी भाववृत्तियो से संपृक्त होकर विशेष अर्थवान् हो गया है। कृष्ण के प्रति उनका सबंध मुख्यत सख्यभाव का है। आराध्य के प्रति उनका सहज समर्पण भावना की गहरी से गहरी भूमिकाओं को स्पर्श करनेवाला है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ के पुत्र विट्ठलनाथ ने कृष्णलीलागान के लिये अष्टछाप के नाम से आठ कवियो का निर्वाचन किया था। सूरदास इस मडल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। अन्य विशिष्ट कवि नंददास और परमानंददास हैं। नंददास की कलाचेतना अपेक्षाकृत विशेष मुखर है।

मध्ययुग मे कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार हुआ और वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त अन्य भी कई संप्रदाय स्थापित हुए, जिन्होने कृष्णकाव्य को प्रभावित किया। हितहरिवश (राधावल्लभी सप्र०), हरिदास (टट्टी संप्र०), गदाधर भट्ट और सूरदास मदनमोहन (गौड़ीय संप्र०) आदि अनेक कवियो ने विभिन्न मतो के अनुसार कृष्णप्रेम की मार्मिक कल्पनाएँ की। मीरा की भक्ति दांपत्यभाव की थी जो अपने स्वतःस्फूर्त कोमल और करुण प्रेमसगीत से आदोलित करती हैं। नरोत्तमदास, रसखान, सेनापति आदि इस धारा के अन्य अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए जिन्होंने हिंदी काव्य को समृद्ध किया। यह सारा कृष्णकाव्य मुक्तक या कथाश्रित मुक्तक है। संगीतात्मकता इसका एक विशिष्ट गुण है।

कृष्णकाव्य ने भगवान् के मधुर रूप का उद्‌घाटन किया पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नही थी, जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना रामकाव्य में हुई। कृष्णभक्तिकाव्य में जीवन के माधुर्य पक्ष का स्फूर्तिप्रद संगीत था, रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध अधिक मुखरित हुआ। एक ने स्वच्छद रागतत्व को महत्व दिया तो दूसरे ने मर्यादित लोकचेतना पर विशेष बल दिया। एक ने भगवान् की लोकरंजनकारी सौंदर्यप्रतिमा का संगठन किया तो दूसरे ने उसके शक्ति, शील और सौंदर्यमय लोकमंगलकारी रूप को प्रकाशित किया। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास के काव्य मे प्रकट हुआ जो विद्याविद् ग्रियर्सन की दृष्टि मे बुद्धदेव के बाद के सबसे बड़े जननायक थे। पर काव्य की दृष्टि से तुलसी का महत्व भगवान् के एक ऐसे रूप की परिकल्पना मे है जो मानवीय सामर्थ्य और औदात्य की उच्चतम भूमि पर अधिष्ठित है। तुलसी के काव्य की एक बड़ी विशेषता उनकी बहुमुखी समन्वयभावना है जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रो में सक्रिय है। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन की विस्तीर्णता के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का उद्‌घाटन करता है। उसमें भगवान् राम के लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सामा-

में प्रस्तुत किए गए। वर्णन की सजीव शैलियों का विकास हुआ। इस समय के सर्वप्रमुख कथाकार प्रेमचंद हैं। वृंदावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास भी उल्लेख्य हैं। हिंदी नाटक इस समय जयशंकर प्रसाद के साथ सृजन के नवीन स्तर पर आरोहण करता है। उनके रोमांटिक ऐतिहासिक नाटक अपनी जीवंत चारित्र्यसृष्टि, नाटकीय संघर्षों की योजना और संवेदनीयता के कारण विशेष महत्व के अधिकारी हुए। कई अन्य नाटककार भी सक्रिय दिखाई पड़े। हिंदी आलोचना के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल ने सूर, तुलसी और जायसी की सूक्ष्म भावस्थितियों और कलात्मक विशेषताओं का मार्मिक उद्घाटन किया और साहित्य के सामाजिक मूल्यों पर बल दिया। अन्य आलोचक हैं श्री नंददुलारे वाजपेयी, डा० नगेंद्र तथा डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

काव्य के क्षेत्र में यह छायावाद के विकास का युग है। पूर्ववर्ती काव्य वस्तुनिष्ठ था, छायावादी काव्य भावनिष्ठ है। इसमें व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का प्राधान्य है। स्थूल वर्णन विवरण के स्थान पर छायावादी काव्य में व्यक्ति की स्वच्छंद भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई। स्थूल तथ्य और वस्तु की अपेक्षा बिंबविधायक कल्पना छायावादियों को अधिक प्रिय है। उनकी सौंदर्यचेतना विशेष विकसित है। प्रकृतिसौंदर्य ने उन्हें विशेष आकृष्ट किया। वैयक्तिक संवेगों की प्रमुखता के कारण छायावादी काव्य मूलतः प्रगीतात्मक है। इस समय खड़ी बोली काव्यभाषा की अभिव्यक्तिक्षमता का अपूर्व विकास हुआ। जयशंकर प्रसाद, माखनलाल, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी, नवीन और दिनकर छायावाद के उत्कृष्ट कवि हैं।

सन् १९४० के बाद छायावाद की संवेगनिष्ठ, सौंदर्यमूलक और कल्पनाप्रिय व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के विरोध में प्रगतिवाद का संघबद्ध आंदोलन चला जिसकी दृष्टि समाजबद्ध, यथार्थवादी और उपयोगितावादी है। सामाजिक वैषम्य और वर्गसंघर्ष का भाव इसमें विशेष मुखर हुआ। इसने साहित्य को सामाजिक क्रांति के अस्त्र के रूप में ग्रहण किया। अपनी उपयोगितावादी दृष्टि की सीमाओं के कारण प्रगतिवादी साहित्य, विशेषतः कविता में कलात्मक उत्कर्ष की संभावनाएँ अधिक नहीं थीं, फिर भी उसने साहित्य के सामाजिक पक्ष पर बल देकर एक नई चेतना जाग्रत की।

प्रगतिवादी आंदोलन के आरंभ के कुछ ही बाद नए मनोविज्ञान या मनोविश्लेषणशास्त्र से प्रभावित एक और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय हुई थी जिसे सन् १९४३ के बाद प्रयोगवाद नाम दिया गया। इसी का संशोधित रूप वर्तमानकालीन नई कविता और नई कहानियाँ हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्वितीय महायुद्ध और उसके उत्तरकालीन साहित्य में जीवन की विभीषिका, कुरूपता और असंगतियों के प्रति असंतोष तथा क्षोभ ने कुछ आगे पीछे दो प्रकार की प्रवृत्तियों को जन्म दिया। एक का नाम प्रगतिवाद है, जो मार्क्स के भौतिकवादी जीवनदर्शन से प्रेरणा लेकर चला, दूसरा प्रयोगवाद है, जिसने परंपरागत आदर्शों और संस्थाओं के प्रति अपने असंतोष की तीव्र प्रतिक्रियाओं को साहित्य के नवीन रूपगत प्रयोगों के माध्यम से व्यक्त किया। इसपर नए मनोविज्ञान का गहरा प्रभाव पड़ा।

प्रगतिवाद से प्रभावित कथाकारों में यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर और नागार्जुन आदि विशिष्ट हैं। आलोचकों में रामविलास शर्मा प्रमुख हैं। कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

नए मनोविज्ञान से प्रभावित प्रयोगों के लिये सचेष्ट कथाकारों में अज्ञेय प्रमुख हैं। मनोविज्ञान से गंभीर रूप में प्रभावित इलाचंद्र जोशी और जैनेंद्र हैं। इन लेखकों ने व्यक्तिमन के अवचेतन का उद्घाटन कर नया नैतिक बोध जगाने का प्रयत्न किया। जैनेंद्र और अज्ञेय ने कथा के परंपरागत ढाँचे को तोड़कर शैलीशिल्प संबंधी नए प्रयोग किए। परवर्ती लेखकों और कवियों में वैयक्तिक प्रतिक्रियाएँ अधिक प्रखर हुईं। समकालीन परिवेश से वे पूर्णतः संसक्त हैं। उन्होंने समाज और साहित्य की मान्यताओं पर गहरा प्रश्नचिह्न लगा दिया है। व्यक्तिजीवन की लाचारी, कुंठा, आक्रोश आदि व्यक्त करने के साथ ही वे वैयक्तिक स्तर पर नए जीवनमूल्यों के अन्वेषण में लगे हुए हैं। उनकी रचनाओं में एक ओर सार्वभौम संत्रास और विभीषिका की छटपटाहट है तो दूसरी ओर व्यक्ति के अस्तित्व की अनिवार्यता और जीवन की संभावनाओं को रेखांकित करने का उपक्रम भी। हमारा समकालीन साहित्य आत्यंतिक व्यक्तिवाद से ग्रस्त है, और यह उसकी सीमा है। पर उसका सबसे बड़ा बल उसकी जीवनमयता है जिसमें भविष्य की सशक्त संभावनाएँ निहित हैं।

[वि० पा० सिं०]

हिंदी में शैव काव्य संस्कृत स्तोत्रों में वैदिक शतरुद्रिय, उत्पलदेव की 'स्तोत्रावली', जगद्धर भट्ट की 'स्तुतिकुसुमांजलि', 'पुष्पदंत' का 'शिवमहिम्नस्तोत्र', रावणकृत 'शिवतांडवस्तोत्र' एवं शंकराचार्य कृत 'शिवानंदलहरी' प्रमुख शैव रचनाएँ हैं। प्रबंधकाव्यों में कालिदासकृत 'कुमारसंभव' भारविकृत 'किरातार्जुनीयम्' मंखकरचित 'श्रीकंठचरितम्' एवं रत्नाकर प्रणीत 'हरविजय' उल्लेख्य हैं।

हिंदी में भी शैवकाव्य की ये स्तोत्रात्मक एवं प्रबंधात्मक पद्धतियाँ चलीं पर इसके अतिरिक्त शिव के स्वरूपैश्वर्य का स्वतंत्र वर्णन, हास्य के आलंबन, शृंगार के उपमान एवं क्रांति और विनाश के प्रतीक के रूप में भी उनका चित्रण पर्याप्त रूप में हुआ है। मिथिला, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान में शैव साधना एवं शैव भाव का विशेष महत्व रहा है। फलतः इन प्रदेशों में शैव काव्य का अखंड सृजन होता रहा।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में अपभ्रंश और लोकभाषा दोनों में शैव काव्य का प्रचुर प्रणयन हुआ। जैन कवि पुष्पदंत ने अपने 'णायकुमारचरिउ' में शिव द्वारा मदनदहन तथा ब्रह्मा के शिरश्छेद की कथा का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त 'प्राकृतपैंगलम्' में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ शिव के विराट् स्वरूप का स्वतंत्र रूप से विलक्षण वर्णन उपलब्ध होता है।

सिद्ध कवि गुंडरीपा और सरहपा आदि ने भी शैव मत से प्रभावित होकर अनेक पद रचे। नाथपंथ शैवों का ही एक संप्रदाय

का प्राचीन गद्य राजस्थानी, मैथिली और ब्रजभाषा में मिलता है पर वह साहित्य का व्यापक माध्यम बनने में अशक्त था। खड़ीबोली की परंपरा प्राचीन है। अमीर खुसरो से लेकर मध्यकालीन भूषण तक के काव्य में इसके उदाहरण बिखरे पड़े हैं। खड़ी बोली गद्य के भी पुराने नमूने मिले हैं। इस तरह का बहुत सा गद्य फारसी और गुरुमुखी लिपि में लिखा गया है। दक्षिण की मुसलिम रियासतों में 'दकिनी' के नाम से इसका विकास हुआ। अठारहवीं सदी में लिखा गया रामप्रसाद निरंजनी और दौलतराम का गद्य उपलब्ध है। पर नई युगचेतना के संवाहक रूप में हिंदी के खड़ी बोली गद्य का व्यापक प्रसार उन्नीसवीं सदी से ही हुआ। कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में, नवागत अंगरेज अफसरों के उपयोग के लिये, लल्लू जी लाल तथा सदल मिश्र ने गद्य की पुस्तकें लिखकर हिंदी के खड़ी बोली गद्य की पूर्वपरंपरा के विकास मे कुछ सहायता दी। सदासुखलाल और इंशाअल्ला खाँ की गद्य रचनाएँ इसी समय लिखी गईं। आगे चलकर प्रेस, पत्रपत्रिकाओं, ईसाई धर्मप्रचारकों तथा नवीन शिक्षा संस्थाओं से हिंदी गद्य के विकास में सहायता मिली। बंगाल, पंजाब, गुजरात आदि विभिन्न प्रांतों के निवासियों ने भी इसकी उन्नति और प्रसार में योग दिया। हिंदी का पहला समाचारपत्र 'उदंत मार्तंड' १८२६ ई० में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह हिंदी गद्य के निर्माण और प्रसार में अपने अपने ढंग से सहायक हुए। आर्यसमाज और अन्य सांस्कृतिक आंदोलनों ने भी आधुनिक गद्य को आगे बढ़ाया।

गद्यसाहित्य की विकासमान परंपरा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से अग्रसर हुई। इसके प्रवर्तक आधुनिक युग के प्रवर्तक और पथप्रदर्शक भारतेंदु हरिश्चंद्र थे जिन्होंने साहित्य का समकालीन जीवन से घनिष्ठ संबंध स्थापित किया। यह संक्रांति और नवजागरण का युग था। अंगरेजों की कूटनीतिक चालों और आर्थिक शोषण से जनता संत्रस्त और क्षुब्ध थी। समाज का एक वर्ग पाश्चात्य संस्कारों से आक्रांत हो रहा था तो दूसरा वर्ग रूढ़ियों में जकड़ा हुआ था। इसी समय नई शिक्षा का आरंभ हुआ और सामाजिक सुधार के आंदोलन चले। नवीन ज्ञान विज्ञान के प्रभाव से नवशिक्षितों में जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ जो अतीत की अपेक्षा वर्तमान और भविष्य की ओर विशेष उन्मुख था। सामाजिक विकास में उत्पन्न आस्था और जाग्रत समुदायचेतना ने भारतीयों मे जीवन के प्रति नया उत्साह उत्पन्न किया। भारतेंदु के समकालीन साहित्य मे, विशेषत गद्यसाहित्य में तत्कालीन वैचारिक और भौतिक परिवेश की विभिन्न अवस्थाओं की स्पष्ट और जीवंत अभिव्यक्ति हुई। इस युग की नवीन रचनाएँ देशभक्ति और समाजसुधार की भावना से परिपूर्ण हैं। अनेक नई परिस्थितियों की टकराहट से राजनीतिक और सामाजिक व्यंग की प्रवृत्ति भी उदबुद्ध हुई। इस समय के गद्य में बोलचाल की सजीवता है। लेखकों के व्यक्तित्व से संपृक्त होने के कारण उसमें पर्याप्त रोचकता आ गई है। सबसे अधिक निबंध लिखे गए जो व्यक्तिप्रधान और विचारप्रधान तथा वर्णनात्मक भी थे। अनेक शैलियों में कथासाहित्य भी लिखा गया, अधिकतर शिक्षाप्रधान। पर यथार्थवादी दृष्टि और नए शिल्प की विशिष्टता श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' में ही है। देवकीनंदन का तिलस्मी उपन्यास 'चंद्रकांता' इसी समय प्रकाशित हुआ। पर्याप्त परिमाण मे नाटकों और सामाजिक प्रहसनों की रचना हुई। भारतेंदु, प्रतापनारायण, श्रीनिवासदास, आदि प्रमुख नाटककार हैं। साथ ही भक्ति और शृंगार की बहुत सी सरस कविताएँ भी निर्मित हुईं। पर जिन कविताओं में सामाजिक भावों की अभिव्यक्ति हुई वे ही नए युग की सृजनशीलता का आरंभिक आभास देती हैं। खड़ी बोली के छिटफुट प्रयोगों को छोड़ शेष कविताएँ ब्रजभाषा मे लिखी गईं। वास्तव मे नया युग इस समय के गद्य मे ही अधिक प्रतिफलित हो सका।

बीसवीं शताब्दी (सन् १९००–२० ई०)

इस कालावधि की सबसे महत्वपूर्ण घटनाएँ दो हैं — एक तो सामान्य काव्यभाषा के रूप में खड़ी बोली की स्वीकृति और दूसरे हिंदी गद्य का नियमन और परिमार्जन। इस कार्य में सर्वाधिक सशक्त योग 'सरस्वती' संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी का था। द्विवेदी जी और उनके सहकर्मियों ने हिंदी गद्य की अभिव्यक्तिक्षमता को विकसित किया। निबंध के क्षेत्र मे द्विवेदी जी के अतिरिक्त बालमुकुंद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पूर्णसिंह, पद्मसिंह शर्मा जैसे एक से एक सावधान, सशक्त और जीवंत गद्यशैलीकार सामने आए। उपन्यास अनेक लिखे गए पर उसकी यथार्थवादी परंपरा का उल्लेखनीय विकास न हो सका। यथार्थपरक आधुनिक कहानियाँ इसी काल में जन्मी और विकासमान हुईं। गुलेरी, कौशिक आदि के अतिरिक्त प्रेमचंद और प्रसाद की भी आरंभिक कहानियाँ इसी समय प्रकाश में आईं। नाटक का क्षेत्र अवश्य सूना सा रहा। इस समय के सबसे प्रभावशाली समीक्षक द्विवेदी जी थे जिनकी संशोधनवादी और मर्यादानिष्ठ आलोचना ने अपने समकालीन साहित्य को पर्याप्त प्रभावित किया। मिश्रबंधु, कृष्णविहारी मिश्र, और पद्मसिंह शर्मा इस समय के अन्य समीक्षक हैं पर कुल मिलाकर इस समय की समीक्षा बाह्यपक्षप्रधान ही रही।

सुधारवादी आदर्शों से प्रेरित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने 'प्रियप्रवास' में राधा का लोकसेविका रूप प्रस्तुत किया और खड़ीबोली के विभिन्न रूपों के प्रयोग मे निपुणता भी प्रदर्शित की। मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' में राष्ट्रीयता और समाजसुधार का स्वर ऊँचा किया और 'साकेत' में उर्मिला की प्रतिष्ठा की। इस समय के अन्य कवि द्विवेदी जी, श्रीधर पाठक, बालमुकुंद गुप्त, नाथूराम शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल आदि हैं। ब्रजभाषा काव्यपरंपरा के प्रतिनिधि रत्नाकर और सत्यनारायण कविरत्न हैं। इस समय खड़ी बोली काव्यभाषा के परिमार्जन और सामयिक परिवेश के अनुरूप रचना का कार्य संपन्न हुआ। नए काव्य का अधिकांश विचारपरक और वर्णनात्मक है।

सन् १९२०–४० के दो दशकों में आधुनिक साहित्य के अंतर्गत वैचारिक और कलात्मक प्रवृत्तियों का अनेकरूप उत्कर्ष दिखाई पड़ा। सर्वाधिक लोकप्रियता उपन्यास और कहानी को मिली। कथासाहित्य में घटनावैचित्र्य की जगह जीते जागते स्मरणीय चरित्रों की सृष्टि हुई। निम्न और मध्यवर्गीय समाज के यथार्थपरक चित्र व्यापक रूप

था अतः गोरख की वानियों में सर्वत्र ही शिव शक्ति के सामरस्य एव असत्य कलायुक्त शिव को सहस्रार में ही देखने का सदेश दिया गया है।

चौदहवी शताब्दी में मिथिला के महाकवि विद्यापति ने शताधिक शैव गीतो का सृजन किया जो नचारी के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके गीतो में शिव के नटराज, अर्धनारीश्वर एव हरिहर के एकात्म रूप का चित्रण है तथा शिव के प्रति व्यक्त एक भक्त के निश्छल हृदय की सहज भावनाओ का उद्रेक भी है।

भक्तिकाल मे मिथिला के कृष्णदास, गोविंद ठाकुर तथा हरिदास आदि ने स्वतत्र रूप से शिवमहिमा एवं उनके ऐश्वर्यप्रतिपादक पदों का निर्माण किया। मिथिलेतर प्रदेशों के तानसेन, नरहरि एवं सेनापति ने भी शिव के प्रति भक्तिभाव से पूर्ण अनेक कवित्त रचे।

सूफी कवि जायसी ने शैव मत से प्रभावित होकर पद्मावत में अनेक शैव तत्वो का प्रतिपादन किया। उन्होने शिवशक्ति या रसायनवाद के सभी उपकरणो को मुक्त भाव से स्वीकार किया एव रतनसेन को शिवानुग्रह से ही सिद्धि दिलाई। इसी भाँति कबीर आदि ज्ञानमार्गी सतो पर शैव मत एवं नाथपथियो का प्रभाव है। उन्होंने निरजन या शून्य को शिवरूप में ही ग्रहण किया।

महाकवि तुलसीदास ने 'विनयपत्रिका' में शिव के प्रति भक्तिभाव से पूर्ण अनेक पदो की रचना की एवं 'पार्वतीमंगल' जैसे स्वतत्र ग्रथ में शिवविवाह की कथा को प्रथम वार लोकभाषा मे प्रबधात्मक रूप प्रदान किया। उनके 'रामचरितमानस' के आरंभ में ही शिवकथा कही गई है। मध्य में भी प्रसिद्ध शिवस्तुति है और शिव-उमा-संवाद के रूप मे प्रस्तुत कर तुलसी ने रामकथा को शैव परिवेश प्रदान कर दिया है।

सूरदास ने भी सुरसागर मे अंतर्कथा के रूप में शिवजीवन के अनेक प्रसगो को गीतिप्रबंध का रूप देकर प्रस्तुत किया है।

रीतिकालीन कवियो में प्राय सबने शिव संबधी काव्यप्रणयन किया जिनमे केशवदास, देव, पद्माकर, भिखारीदास और भूषण प्रमुख हैं। केशव और भिखारी आदि ने अपने लक्षणग्रंथों के उदाहरण के लिये शिव का जहाँ अनेक स्थलो पर वर्णन किया है वहाँ मिथिला के अग्निप्रसाद सिंह, आनद, उमानाथ, कुजनदास, चदनराम, जयरामदास, महीनाथ ठाकुर, लाल झा एवं हिमकर ने स्वतत्र रूप से शिवसबंधी पद रचे। इनके अतिरिक्त इस काल में प्रणीत शैव काव्यग्रथो में दीनदयाल गिरि का 'विश्वनाथ नवरत्न', दलेलसिंह का 'शिवसागर' (दो खडो में दोहा चौपाई छदो में रचित प्रबधकाव्य) तथा बनारसी कवि की 'शिवपच्चीसी' आदि महत्वपूर्ण हैं।

प्रबंध काव्यो में पं० गौरीनाथ शर्मा का दोहा, चौपाई छद में रचित 'शिवपुराण' महाकाव्य अत्यत उत्कृष्ट है।

जयशकरप्रसादकृत 'कामायनी' में शैवो के प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्रचुर प्रभाव है तथा इसमे शिव के नटराज रूप के अतिरिक्त उनके सृष्टिरक्षक, सृष्टिसंहारक, सृष्टि की मूल शक्ति एवं महायोगी रूप का भी भव्य और उदात्त वर्णन है। इसमें श्रद्धा के सहयोग से इच्छा, क्रिया और ज्ञान का सामरस्य कर आनंदरत शिवानंद प्राप्त करने का दिव्य सदेश मानव को दिया गया है।

गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' कृत 'तारकवध' एक विशाल शैव महाकाव्य है। राजस्थान के कवि रामानंद तिवारी का 'पार्वती' महाकाव्य शैव काव्यों में एक उत्कृष्ट उपलब्धि है। इसकी कथा पर यद्यपि कुमारसभव का प्रभाव है तथापि इसमें शिवसमाज, शिवदर्शन, शिवसंस्कृति आदि का विस्तृत वर्णन कर मानव को शिव-समाज-निर्माण का सदेश दिया गया है।

युगीन भावनाओ एव राष्ट्रीय परिवेश के आवरण में शिव को ताडव, क्रांति और विध्वस का प्रतीक मानकर काव्य रचनेवालो में कविवर आरसी, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' नाथूराम 'शकर', रामकुमार वर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर' एवं सुमित्रानदन पत प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त अनूप शर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आदि अनेक ऐसे उत्कृष्ट कवि हैं जिन्होने अपनी कविताओं में शिव के प्रति भक्तिभाव व्यंजित कर शैव काव्य के भंडार को भरने में योगदान दिया है। [के० ना० ला०]

हिंदी साहित्य संमेलन राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रलिपि नागरी का प्रचार और प्रसार करनेवाली सुप्रसिद्ध सार्वजनिक सस्था। मुख्य कार्यालय इलाहाबाद में है। इसकी स्थापना संवत् १९६७ विक्रमी (सन् १९१० ई०) मे हुई थी। अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी की तात्कालिक समस्याओ पर विचार करने के लिये देश भर के हिंदी के साहित्यकारो और प्रेमियो के प्रथम समेलन की अध्यक्षता महामना पं० मदनमोहन मालवीय ने की थी। इस अधिवेशन मे यह निश्चय हुआ कि इस प्रकार का हिंदी के साहित्यकारो का समेलन प्रतिवर्ष किया जाय, जिससे हिंदी की उन्नति के प्रयत्नो के साथ साथ उसकी कठिनाइयो को दूर करने का भी उपाय किया जाय। समेलन ने इस दिशा मे अनेक उपयोगी कार्य किए। उसने अपने वार्षिक अधिवेशनो में जनता और शासन से हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के संबध में विविध प्रस्ताव पारित किए और हिंदी के मार्ग में आनेवाली बाधाओ को दूर करने के भी उपाय किए। उसने हिंदी की अनेक परीक्षाएँ चलाईं, जिनसे देश के भिन्न भिन्न अंचलो मे हिंदी का प्रचार और प्रसार हुआ।

हिंदी साहित्य समेलन के इन वार्षिक अधिवेशनो की अध्यक्षता भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध साहित्यिकों, प्रमुख राजनीतिज्ञो एवं विचारको ने की। महात्मा गाधी इसके दो वार सभापति हुए। महात्मा गाधी के प्रयत्नो से अहिंदीभाषी प्रदेशो मे इस संस्था के द्वारा हिंदी का व्यापक प्रचार हुआ। श्री पुरुषोत्तमदास टडन संमेलन के प्रथम प्रधान मंत्री थे। उन्ही के प्रयत्नो से इस सस्था की इतनी उन्नति हुई।

हिंदी साहित्य समेलन की शाखाएँ देश के निम्नलिखित राज्यो में हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, पंजाब, मध्यप्रदेश, विदर्भ, बंबई, तथा बंगाल। अहिंदीभाषी प्रदेशो में कार्य करने के लिये इसकी एक शाखा वर्धा में भी है, जिसका नाम 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' है। इसके कार्यालय महाराष्ट्र, बंबई, गुजरात, हैदराबाद, उत्कल, बगाल तथा असम में हैं। इन दोनो संस्थाओं द्वारा हिंदी की जो विविध

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि आदि जातियाँ गणनीय थी। हिंदू नामक न तो कोई पंथ था और न कोई मत ही।

निष्कर्षत: 'हिंदु' या 'हिंदू' बृहत्तर भारत देश की सज्ञा थी। फलत: इस देश के निवासी भी 'हिंदू' कहलाने लगे।

[भा० प्र० त्रि०]

हिंदूकुश स्थिति ३६° ०' उ० दे० तथा ७१° ०' पू० दे०। यह मध्य एशिया की विस्तृत पर्वतमाला है, जो पामीर क्षेत्र से लेकर काबुल के पश्चिम में कोह–इ–बाबा तक ८०० किमी लंबाई में फैली हुई है। यह पर्वतमाला हिमालय का ही प्रसार है, केवल बीच का भाग सिंधु नद द्वारा पृथक् हुआ है। प्राचीन भूगोलविद् इस पर्वतश्रेणी को भारतीय कॉकेशस (Indian Caucasus) कहते थे। इस पर्वतमाला का ३२० किमी लंबा भाग अफगानिस्तान की दक्षिणी सीमा बनाता है। इस पर्वतमाला का सर्वोच्च शिखर तिरिचमीर है जिसकी ऊँचाई ७७१२ मी है। इसमे अनेक दर्रे हैं जो ३७९२ मी से लेकर ५३०८ मी की ऊँचाई तक में हैं। इन दर्रों में बरोगहिल (Baroghil) के दर्रे सुगम हैं। हिंदूकुश आब-इ-पजा से धीरे धीरे पीछे हटने लगता है और दक्षिण पश्चिम की ओर मुड जाता है तथा इसकी ऊँचाई बढने लगती है और प्रमुख शिखरो की ऊँचाई ७२०० मी से अधिक तक पहुँच जाती है। इस दक्षिण-पश्चिम की मोड में ६४ किमी से ८० किमी तक शिखरो में अनेक दर्रे हैं। इनमे ४५०० मी० की ऊँचाई पर स्थित दुराह समूह के दर्रे महत्वपूर्ण हैं, जो चित्राल एव ऑक्सस (Oxus) नदियो को जोडनेवाली महत्वपूर्ण कडियाँ है। खावक दर्रा वर्ष भर चालू रहता है और बदख्शान से होता हुआ सीधे काबुल तक चला गया है। यह दर्रा महत्वपूर्ण काफिनापथ है। हिंदूकुश के उत्पत्ति स्थान से चार प्रमुख नदियाँ ऑक्सस, यारकद दरिया, कुनार और गिलगिट निकलती हैं। हिंदूकुश पर्वतमाला की चार प्रमुख शाखाएँ हैं। इन सब शाखाओं से नदियाँ निकलकर मध्य एशिया के सभी प्रदेशो में बहती हैं।

हिंदूकुश की जलवायु शुष्क है और ४५०० मी से अधिक ऊँचे शिखर सदा हिमाच्छादित रहते हैं। जाडे मे यहाँ कडाके की सर्दी पडती है। ग्रीष्म काल में पहाड की निचली ढलानो पर अत्यधिक गरमी पडती है। इस पर्वत की मुख्य वनस्पति घास है। ऑक्सस अर्थात् आमू दरिया तथा अन्य छोटी नदियो को यहाँ के हिम के पिघलने से पर्याप्त जल मिलता है। यह पर्वत उत्तर मे सोवियत संघ और दक्षिण एव दक्षिण पूर्व में अफगानिस्तान, पाकिस्तान एवं कश्मीर के बीच मे रोध का कार्य करता है। [अ० ना० मे०]

हिंदू महासभा स्वराज्य के लिये मुसलिम सहयोग की आवश्यकता समझकर कांग्रेस ने जब मुसलमानो के तुष्टीकरण की नीति अपनाई तो कितने ही हिंदू देशभक्तो को बडी निराशा हुई। फलस्वरूप सन् १९१० मे पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व मे प्रयाग मे हिंदू महासभा की स्थापना की गई।

सन् १९१६ में लोकमान्य तिलक की अध्यक्षता में लखनऊ में कांग्रेस अधिवेशन हुआ। यद्यपि तिलक जी भी मुस्लिमपोषकनीति से क्षुब्ध थे, फिर भी लखनऊ कांग्रेस ने ब्रिटिश अधिकारियो के प्रभाव में पडकर एकता और राष्ट्रहित की दोहाई देकर मुस्लिम लीग से समझौता किया जिसके कारण सभी प्रांतो में मुसलमानो को विशेष अधिकार और सरक्षण प्राप्त हुए। अंग्रेजो ने भी अपनी कूटनीति के अनुसार चेम्सफोर्ड योजना बनाकर मुसलमानो के विशेषाधिकार पर मोहर लगा दी।

हिंदू महासभा ने सन् १९१७ में हरिद्वार में महाराजा नंदी कासिम बाजार की अध्यक्षता में अपना अधिवेशन करके कांग्रेस लीग समझौते तथा चेम्सफोर्ड योजना का तीव्र विरोध किया किंतु हिंदू बडी सख्या में कांग्रेस के साथ थे अतः सभा के विरोध का कोई परिणाम न निकला।

अंग्रेजो ने स्वाधीनता आदोलन का दमन करने के लिये रौलट ऐक्ट बनाकर क्रांतिकारियो को कुचलने के लिये पुलिस और फौजी अदालतो को व्यापक अधिकार दिए। कांग्रेस की तरह हिंदू महासभा ने भी इसके विरुद्ध आदोलन चलाया, पर मुसलमान आदोलन से दूर थे। उसी समय गांधी जी ने तुर्की के खलीफा को अंग्रेजों द्वारा हटाए जाने के विरुद्ध तुर्की के खिलाफत आदोलन के समर्थन में भारत में भी खिलाफत आदोलन चलाया। हजारो हिंदू इस आदोलन में जेल गए परंतु खिलाफत का प्रश्न समाप्त होते ही मुसलमानो ने पुन: कोहाट, मुलतान और मालाबार आदि में मार काट कर सांप्रदायिकता की आग भडकाई।

हिंदू महासभा भी राष्ट्रीय एकता समर्थक है किंतु उसका मत यह रहा है कि देश की बहुसंख्यक जनता हिंदू है, अतः उसका हित ही वस्तुत: राष्ट्र का हित है। सभा इसे सांप्रदायिकता नही समझती। मुसलमान इस देश में न रहे या दबे रहें, यह उसका लक्ष्य नही।

हिंदू महासभा का काशी अधिवेशन — सन् १९२३ के अगस्त मास में हिंदू महासभा का अधिवेशन काशी में हुआ, जिसमें सनातनी, आर्यसमाजी, सिक्ख, जैन, बौद्ध आदि सभी सप्रदाय के लोग बडी संख्या मे एकत्र हुए। हिंदू महासभा के इस अधिवेशन ने हिंदुओं को सात्वना एव साहस प्रदान किया और वे पूज्य मालवीय जी, स्वामी श्रद्धानद, लाला लाजपत राय के नेतृत्व में हिंदू महासभा द्वारा दिखाए गए मार्ग पर चलने का प्रयत्न करने लगे। अधिवेशन में सपूर्ण देश में बलपूर्वक मुसलमान बनाए गए हिंदुओं को शुद्ध करने का निश्चय किया गया। तदनुसार संपूर्ण देश में शुद्धि का आदोलन चल पडा जिसमें पूज्य स्वामी श्रद्धानद प्राणपण से जुट गए। फलस्वरूप शीघ्र हा ५०–६० हजार मलकाना राजपूत पुन: शुद्ध होकर हिंदू बन गए। इसपर एक धर्मांध मुसलमान अब्दुल रशीद ने पूज्य स्वामी श्रद्धानद जी की हत्या कर दी।

सन् १९२६ का साधारण निर्वाचन — सन् १९२५ में कलकत्ता नगरी में ला० लाजपत राय जी की अध्यक्षता में हिंदू महासभा का अधिवेशन हुआ जिसमें प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता डा० जयकर भी संमिलित हुए।

संधि करके पोलैंड का पूर्वी भाग उसे दे दिया और पोलैंड के पश्चिमी भाग पर उसकी सेनाओं ने अधिकार कर लिया। ब्रिटेन ने पोलैंड की रक्षा के लिये अपनी सेनाएँ भेजी। इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ। फ्रांस की पराजय के पश्चात् हिटलर ने मुसोलिनी से संधि करके रूम सागर पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का विचार किया। इसके पश्चात् जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया। जब अमरीका द्वितीय विश्वयुद्ध में सम्मिलित हो गया तो हिटलर की सामरिक स्थिति बिगड़ने लगी। हिटलर के सैनिक अधिकारी उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे। जब रूसियों ने बर्लिन पर आक्रमण किया तो हिटलर ने ३० अप्रैल, १९४५, को आत्महत्या कर ली। प्रथम विश्वयुद्ध के विजेता राष्ट्रों की संकुचित नीति कारण ही स्वाभिमानी जर्मन राष्ट्र को हिटलर के नेतृत्व में आक्रामक नीति अपनानी पड़ी। [ओ० प्र०]

हिडिंब, हिडिंबा वनवास काल में जब पांडवों का घर जला दिया गया तो वे भागकर दूसरे जंगल में गए, जहाँ पीली आँखोंवाला हिडिंब राक्षस अपनी बहन हिडिंबा के साथ रहता था। इस राक्षसी का भीम से प्रेम हो गया जो हिडिंब को बहुत बुरा लगा। युद्ध में भीम ने इसे मार डाला और वहीं जंगल में कुंती की आज्ञा से दोनों का ब्याह हुआ। इन्हें घटोत्कच नामक पुत्र हुआ। [रा० द्वि०]

हिडेकी यूकावा (Hideki Yukawa, सन् १९०७–) जापान के सर्वश्रेष्ठ भौतिकीविद् हैं। कियोटो विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री प्राप्त कर लेने के बाद सन् १९२९ से सन् १९३२ तक आपने मौलिक कणों के बारे में अनुसंधान किया। तदुपरांत कियोटो और ओसाका विश्वविद्यालय में आपने अध्यापन का कार्य किया तथा सन् १९३९ में डी० एस सी० की डिग्री प्राप्त की। तब से आप कियोटो विश्वविद्यालय में सैद्धांतिक (Theoretical) भौतिकी के प्रोफेसर के पद पर कार्य कर रहे हैं।

अनुसंधान कार्य — सन् १९३५ तक परमाणुनाभिक की यह रचना स्थापित हो चुकी थी कि नाभिक में प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन सँकरी सी जगह में ठँसे रहते हैं।

धन जाति के ये प्रोटॉन कण एक दूसरे के अति निकट होने के कारण इनमें परस्पर जबर्दस्त हटाव बल होता है, अतः इन्हें तो तुरंत बिखर जाना चाहिए। किंतु ऐसा होता नहीं है। इस प्रश्न का समाधान युकावा ने निरे सैद्धांतिक आधार पर सन् १९३५ में प्राप्त किया। गणित की सहायता से नाभिक के अंदर आपने एक ऐसे बल क्षेत्र की कल्पना की जो न गुरुत्वाकर्षण की है और न विद्युच्चुंबकीय। यही बल नाभिक के प्रोटॉनों को परस्पर बाँधे रखता है। इस कल्पना के फलस्वरूप युकावा ने बतलाया कि नाभिक में ऐसे कण अवश्य विद्यमान होने चाहिए जिनकी संहति इलेक्ट्रॉन की लगभग २०० गुनी हो तथा विद्युत् आवेश ठीक इलेक्ट्रॉन के बराबर ही धन या ऋण जाति का हो। इन कणों को उसने 'मेसॉन' नाम दिया। अगले पाँच वर्षों के अंदर ही प्रयोग द्वारा वैज्ञानिकों ने मेसॉन कण प्राप्त भी किए। इस प्रकार युकावा की भविष्यवाणी सही उतरी। 'मेसॉन' की खोज के उपलक्ष में ही युकावा को सन् १९४९ में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मिला। [भ० प्र० श्री०]

हितहरिवंश (१५०२–५२ ई०) राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक गोस्वामी हितहरिवंश का पैतृक घर उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के देवबन (वर्तमान देवबंद) नामक नगर में था। देवबंद में ही इनका प्रारंभिक जीवन व्यतीत हुआ। सोलह वर्ष की उम्र में रुक्मिणी देवी के साथ इनका विवाह हुआ, जिससे इनके एक पुत्री और तीन पुत्र उत्पन्न हुए। तीस वर्ष की उम्र होने पर हरिवंश जी के मन में किसी आभ्यंतर प्रेरणा से ब्रजयात्रा करने की बलवती इच्छा पैदा हुई। बच्चों के छोटे होने के कारण इनकी पत्नी इस यात्रा में साथ न जा सकी।

गृहस्थाश्रम में रहते हुए हरिवंश जी ने अनुभव कर लिया था कि संसार का तिरस्कार कर वैराग्य धारण करना ही ईश्वरप्राप्ति का एकमात्र साधन नहीं है, गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी ईश्वराराधन हो सकता है और दांपत्य प्रेम को उन्नयन की स्थिति तक पहुँचाकर भवबंधन कट सकते हैं। ब्रजयात्रा करने के लिये जब वे जा रहे थे तब मार्ग में चिरथावल गाँव में एक धर्मपरायण ब्राह्मण आत्मदेव ने अपनी दो युवती कन्याओं का विवाह हरिवंश जी से करने का आग्रह किया। इस आग्रह का प्रेरक एक दिव्य स्वप्न था जो हरिवंश जी तथा आत्मदेव को उसी रात में हुआ था। फलतः दिव्य प्रेरणा मानकर हरिवंश जी ने यह विवाह स्वीकार कर लिया और वृंदावन की ओर चल पड़े। वृंदावन पहुँचने पर मदनटेर नामक स्थान पर उन्होंने डेरा डाला। उनकी मधुर वाणी और दिव्य वपु पर मुग्ध हो दर्शकमंडली एकत्र होने लगी और तुरंत वृंदावन में उनके शुभागमन का समाचार सर्वत्र फैल गया। वृंदावन में स्थायी रूप से बस जाने पर उन्होंने मानसरोवर, वंशीवट, सेवाकुंज और रासमंडल नामक चार सिद्ध केलिस्थलों का प्राकट्य किया।

राधावल्लभीय उपासनापद्धति को प्रचलित करने के लिये हरिवंश जी ने सेवाकुंज में अपने उपास्यदेव का विग्रह संवत् १५९१ वि० (सन् १५३४ ई०) में स्थापित किया। इस संप्रदाय की उपासनापद्धति अन्य वैष्णव भक्ति संप्रदायों से भिन्न तथा अनेक रूपों में नूतन है। माधुर्योपासना को नया रूप देने में सबसे अधिक योग इन्हीं का माना जाता है। हरिवंश के मतानुसार प्रेम या 'हिततत्व' ही समस्त चराचर में व्याप्त है। यह प्रेम या हित ही जीवात्मा को आराध्य के प्रति उन्मुख करता है। राधाकृष्ण की भक्ति से तत्सुखीभाव की स्थापना कर उसे सांसारिक स्वार्थ या आत्मसुख कामना से हरिवंश जी ने सर्वथा पृथक् कर दिया है। इस संप्रदाय की उपासना रसोपासना कही जाती है जिसमें इष्ट देवी राधा की ही प्रधानता है।

हितहरिवंश जी लिखित चार ग्रंथ प्राप्त हैं—राधासुधानिधि और यमुनाष्टक संस्कृत के ग्रंथ हैं। 'हित चौरासी' तथा 'स्फुट वाणी' इनकी सुप्रसिद्ध हिंदी रचनाएँ हैं। ब्रजभाषा में लालित्य और पेशलता की छटा इनकी हिंदी रचना में सर्वत्र ओतप्रोत है।

हितहरिवंश का निधन विक्रम सं० १६०९ (सन् १५५२ ई०) में वृंदावन में हुआ। अपने निधन से पूर्व इन्होंने ब्रज में माधुर्यभक्ति

संपूर्ण बिहार प्रात मे तीन दिनो तक हिंदू महासभा के अधिवेशन आयोजित हुए जिसमे वीर सावरकर का भाषण पढ़ा गया तथा प्रस्ताव पारित हुए।

पाकिस्तान की स्थापना — हिंदू महासभा के घोर विरोध के पश्चात् भी अंग्रेजो ने कांग्रेस को राजी करके मुसलमानो को पाकिस्तान दे दिया और हमारी परम पुनीत भारत भूमि, जो इतने अधिक आक्रमणों का सामना करने के बाद भी कभी खंडित नही हुई थी, खंडित हो गई। यद्यपि पाकिस्तान की स्थापना हो जाने से मुसलमानो की मुहमाँगी मुराद पूरी हो गई और भारत में भी उन्हें बराबरी का हिस्सा प्राप्त हो गया है, फिर भी कितने ही मुसलिम नेता तथा कर्मचारी छिपे रूप से पाकिस्तान का समर्थन करते तथा भारत-विरोधी गतिविधियो मे सहायक होते रहते हैं। फलस्वरूप कश्मीर, असम, राजस्थान आदि में अशाति तथा विदेशी आक्रमण की आशंका बनी रहती है।

देश की परिस्थितियो को देखते हुए हिंदू महासभा इसपर बल देती है कि देश की जनता को, प्रत्येक देशवासी को अनुभव करना चाहिए कि जब तक संसार के सभी छोटे मोटे राष्ट्र अपने स्वार्थ और हितो को लेकर दूसरो पर आक्रमण करने की घात में लगे हैं, उस समय तक भारत की उन्नति और विकास के लिये प्रखर हिंदू राष्ट्रवादी भावना का प्रसार तथा राष्ट्र को आधुनिकतम अस्त्रशस्त्रो से सुसज्जित होना नितात आवश्यक है। (वि० ना० अ०)

हिटलर, अडोल्फ (१८८९–१९४५) हिटलर का जन्म आस्ट्रिया मे २० अप्रैल, १८८९ को हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा लिंज नामक स्थान पर हुई। पिता की मृत्यु के पश्चात् १७ वर्ष की अवस्था में वे वियना गए। कला विद्यालय में प्रविष्ट होने में असफल होकर वे पोस्ट-कार्डों पर चित्र बनाकर अपना निर्वाह करने लगे। इसी समय से वे साम्यवादियो और यहूदियो से घृणा करने लगे। जब प्रथम विश्वयुद्ध प्रारभ हुआ तो वे सेना में भर्ती हो गए और फ्रास मे कई लड़ाइयो में उन्होने भाग लिया। १९१८ ई० में युद्ध में घायल होने के कारण वे अस्पताल मे रहे। जर्मनी की पराजय का उनको बहुत दुःख हुआ।

१८१९ ई० में उन्होने नाजी दल की स्थापना की। इसका उद्देश्य साम्यवादियो और यहूदियो से सब अधिकार छीनना था। इसके सदस्यो में देशप्रेम कूट कूटकर भरा था। इस दल ने यहूदियो को प्रथम विश्वयुद्ध की हार के लिये दोषी ठहराया। आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण जब नाजी दल के नेता हिटलर ने अपने ओजस्वी भाषणों मे उसे ठीक करने का आश्वासन दिया तो अनेक जर्मन इस दल के सदस्य हो गए। हिटलर ने भूमिसुधार, वर्साई संधि को समाप्त करने, और एक विशाल जर्मन साम्राज्य की स्थापना का लक्ष्य जनता के सामने रखा जिससे जर्मन लोग सुख से रह सकें। इस प्रकार १९२२ ई० में हिटलर एक प्रभावशाली व्यक्ति हो गए। उन्होने स्वस्तिक को अपने दल का चिह्न बनाया। समाचारपत्रों के द्वारा हिटलर ने अपने दल के सिद्धातों का प्रचार जनता में किया। भूरे रंग की पोशाक पहने सैनिको की टुकड़ी तैयार की गई। १९२३ ई० मे हिटलर ने जर्मन सरकार को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया। इसमें वे असफल रहे और जेलखाने में डाल दिए गए। वहीं उन्होने 'मेरा संघर्ष' नामक अपनी आत्मकथा लिखी। इसमें नाजी दल के सिद्धातो का विवेचन किया। उन्होने लिखा कि आर्य जाति सभी जातियो से श्रेष्ठ है और जर्मन आर्य हैं। उन्हें विश्व का नेतृत्व करना चाहिए। यहूदी सदा से संस्कृति में रोड़ा अटकाते आए हैं। जर्मन लोगो को साम्राज्यविस्तार का पूर्ण अधिकार है। फ्रास और रूस से लड़कर उन्हे जीवित रहने के लिये भूमि प्राप्त करनी चाहिए।

१९३०–३२ में जर्मनी मे बेरोजगारी बहुत बढ गई। संसद् मे नाजी दल के सदस्यो की संख्या २३० हो गई। १९३२ के चुनाव में हिटलर को राष्ट्रपति के चुनाव मे सफलता नही मिली। जर्मनी की आर्थिक दशा बिगड़ती गई और विजयी देशो ने उसे सैनिक शक्ति बढाने की अनुमति न दी। १९३३ में चासलर बनते ही हिटलर ने जर्मन संसद् को भग कर दिया, साम्यवादी दल को गैरकानूनी घोषित कर दिया और राष्ट्र को स्वावलंबी बनने के लिये ललकारा। हिटलर ने डा० जोज़ेफ गोयबल्स को अपना प्रचारमत्री नियुक्त किया। नाजी दल के विरोधी व्यक्तियो को जेलखानो में डाल दिया गया। कार्यकारिणी और कानून बनाने की सारी शक्तियाँ हिटलर ने अपने हाथो में ले लीं। १९३४ में उन्होंने अपने को सर्वोच्च न्यायाधीश घोषित कर दिया। उसी वर्ष हिंडनबर्ग की मृत्यु के पश्चात् वे राष्ट्रपति भी बन बैठे। नाजी दल का आतंक जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे छा गया। १९३३ से १९३८ तक लाखो यहूदियो की हत्या कर दी गई। नवयुवको मे राष्ट्रपति के आदेशो का पूर्ण रूप से पालन करने की भावना भर दी गई और जर्मन जाति का भाग्य सुधारने के लिये सारी शक्ति हिटलर ने अपने हाथ में ले ली।

हिटलर ने १९३३ में राष्ट्रसंघ को छोड़ दिया और भावी युद्ध को ध्यान में रखकर जर्मनी की सैन्य शक्ति बढ़ाना प्रारंभ कर दिया। प्राय सारी जर्मन जाति को सैनिक प्रशिक्षण दिया गया।

१९३४ मे जर्मनी और पोलैंड के बीच एक दूसरे पर आक्रमण न करने की संधि हुई। उसी वर्ष आस्ट्रिया के नाजी दल ने वहाँ के चासलर डॉलफस का वध कर दिया। जर्मनी की इस आक्रामक नीति से डरकर रूस, फ्रास, चेकोस्लोवाकिया, इटली आदि देशो ने अपनी सुरक्षा के लिये पारस्परिक संधियाँ की।

उधर हिटलर ने ब्रिटेन के साथ संधि करके अपनी जलसेना ब्रिटेन की जलसेना का ३५ प्रतिशत रखने का वचन दिया। इसका उद्देश्य भावी युद्ध में ब्रिटेन को तटस्थ रखना था किंतु १९३५ में ब्रिटेन, फ्रास और इटली ने हिटलर की शस्त्रीकरण नीति की निंदा की। अगले वर्ष हिटलर ने वर्साई की संधि को भंग करके अपनी सेनाएँ फ्रास के पूर्व में राइन नदी के प्रदेश पर अधिकार करने के लिये भेज दी। १९३७ में जर्मनी ने इटली से संधि की और उसी वर्ष आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया। हिटलर ने फिर चेकोस्लोवाकिया के उन प्रदेशो को लेने की इच्छा की जिनके अधिकतर निवासी जर्मन थे। ब्रिटेन, फ्रास और इटली ने हिटलर को संतुष्ट करने के लिये म्यूनिक के समझौते से चेकोस्लोवाकिया को इन प्रदेशो को हिटलर को देने के लिये विवश किया। १९३९ में हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया के शेष भाग पर भी अधिकार कर लिया। फिर हिटलर ने रूस से

तक को उलट और तोड सकता है। क्रोधित होने पर उसकी गुर्राहट और डकार एक मील की दूरी से सुनाई पड़ सकती है। कुछ वृद्ध हिप्पोपॉटेमस भी हाथियों की भांति चिडचिडे और आवारा (rogue) बन जाते हैं और तब खतरनाक होते हैं तथा व्यक्तियों पर आक्रमण कर सकते हैं।

अफ्रीकावासी हिप्पोपॉटेमस का मांस और चर्बी खाते हैं। इसकी खाल से मूँठ, चाबुक तथा अन्य सामान बनते हैं। दाँत दृढ तथा सघन होता है और पीला नही पडता। एक समय उससे कृत्रिम दाँत बनता था। अफ्रीकावासी इस पशु का शिकार करते हैं। जमीन पर ही इसका शिकार आसान है, जल मे निरापद नही है। इसकी खाल गोली से अभेद्य होती है। मस्तिष्क पर निशाना मारने से ही यह मरता है।

मादा हिप्पोपॉटेमस को रस्सी से बाँधकर बर्छी से मारकर जल से बाहर निकालते हैं। उसके पीछे बच्चे उसके साथ साथ बाहर आते हैं और उन्हे पकडकर बदी और पालतू बनाकर चिडियाघरो में रखते हैं। बदी अवस्था मे भी यह प्रजनन और सतानवृद्धि करता है। हिप्पोपॉटेमस आठ मास में लगभग १०० पाउड भार के बच्चे का जन्म देता है। बच्चा जब तक तैरना नहीं सीखता तब तक मादा अपनी गर्दन पर उसे लिए फिरती है। छह साल में बच्चा वयस्क होता है और लगभग ३० वर्ष तक जीता है।

हिप्पोपॉटेमस दो प्रकार का होता है। एक वृहत्काय हिप्पोपॉटेमस (Hippopotamus amphibius) जिसका औसत भार लगभग ८०० पाउड और दूसरा बौना हिप्पोपॉटेमस (Hppopotamus bibericusis) का भार ४०० से ६०० पाउड होता है। यह ६ फुट लबा और २½ फुट ऊँचा होता है।

बौना हिप्पोपॉटेमस प्राय लुप्त हो रहा है। यह अब बहुत कम देखा जाता है जबकि एक समय यह अनेक देशो भारत, बर्मा, उत्तरी अफ्रीका, सिसिली, माल्टा, क्रीट आदि में बहुतायत से पाया जाता था। वृहत्काय हिप्पोपॉटेमस अब अफ्रीका के कुछ सीमित स्थानो में ही पाया जाता है जबकि एक समय यह अनेक देशो में यूरोप तथा एशिया में, पाया जाता था जैसा उसके पाए जानेवाले जीवाश्मो से ज्ञात होता है। [भृ० प्र०]

हिम वायुमडल की मुक्त हवा मे बहते, उठते या गिरते समय जो पानी जमकर ठोस हो जाता है उसे हिम कहते हैं। हिम प्राय षट्कोणीय सुदर क्रिस्टलो के रूप में होता है। कभी कभी बदली के बिना भी हिमपात होता है। इसका कारण हिम का स्वत: बन जाना है या हवा में जलबिंदुधारी साधारण मेघ बनने के लिये पर्याप्त जलवाष्प एकत्र होने के पहले ही ऊर्ध्वपातन केंद्रक के अस्तित्व में हिम का बन जाना है। अधिकाश हिम का रग सफेद होता है। सफेद होने का कारण क्रिस्टलो के छोटे छोटे सतहो से प्रकाश का परावर्तन है। कुछ क्षेत्रों के हिम, जैसे ग्रीनलैंड और उत्तरध्रुवीय क्षेत्र के, लाल और हरे रंग के भी पाए गए हैं। इनका यह रग हिम में बहुत छोटे छोटे जीवित पदार्थो के रहने के कारण होता है। धूल के कणो के कारण हिम काला भी होता है।

हिम के प्रकार — मुक्त वायु में बहते समय बनने के कारण हिम क्रिस्टल कई प्रकार के होते हैं और बहुत ही सुंदर होते हैं। क्रिस्टलों में त्रिकोण सममिति होती है। क्रिस्टल संरचना के द्वारा का प्रकार भी जाना जा सकता है। पृथ्वी की सतह के एक तिहाई भाग पर ही हिमपात होता है। शेष दो तिहाई भाग पर कभी हिमपात नही होता। भारत के हिमालय के क्षेत्र मे ही कश्मीर, कुमाऊँ, दार्जिलिंग, आदि क्षेत्रों में हिमपात होता है।

धरती पर पहुँचनेवाले हिमकण कुछ मिमी व्यास से लेकर कई सेमी० तक के हो सकते हैं। ये हिमकण षट्कोणाकार होते हैं। छोटे छोटे कणों को ३०० मी की ऊँचाई से गिरने में घटों समय लग सकता है। अत जान पडता है, ये धरती के निकट ही बनते हैं क्योंकि हिमकणों के बनने लायक परिस्थिति कुछ ही समय तक रहती है। साधारण आकार के हिमकण आठ दस मिनटो मे धरती पर आ पहुँचते हैं। ये समवत. कुछ ही मील की ऊँचाई पर बनते हैं। कभी कभी पक्षाभ मेघ में हिम बन जाते हैं।

कुछ सुंदरतम हिम क्रिस्टल ताराकार होते हैं। डिजाइन और आर्ट वर्क में इन्ही हिम क्रिस्टलों को चित्रित किया जाता है। सिचाई के बादलो में जो हिम बनते हैं वे बहुत ही नाजुक, जटिल और आदर्श होते हैं। सूक्ष्मदर्शी से देखने पर कई प्रकार के बरवनावाले हिम क्रिस्टल दिखाई पडते हैं।

धरती पर पहुँचने पर हिमकणो में परिवर्तन होता है। धरती पर पहुँचने के पूर्व इनका घनत्व ०.१० से अधिक नहीं होता, सामान्यत यह ०.०५ होता है। धरती पर गिरने के बाद उनके कोरों का वाष्पीकरण हो जाता है। वाष्पीकरण द्वारा उडा हुआ जब अक्सर आस पास के क्रिस्टलो पर जम जाता है।

हिम क्रिस्टलों की प्रतिकृति —१९४० ई० में विंसेंट जे० शेफर ने हिम क्रिस्टलों को साँचे में ढालने की तरकीब निकाली। सिंथेटिक रेज़िन पॉलीविनाइल फार्मल का २% विलयन इथिलीन डाइक्लोराइड में विलीन किया गया और पानी के हिमांक से निम्न ताप पर हिमीकरण किया गया। इसकी पतली परत काँच के प्लेट या काले कार्डबोर्ड के टुकडे पर फैलाई गई। काँच के प्लेट या कार्ड बोर्ड पर जब हिम क्रिस्टल गिरते हैं तब उसके दोनो सतहो पर विलयन का आवरण चढ जाता है। कुछ ही मिनटों में एथिलीन डाइक्लोराइड वाष्पीकृत हो जाता है और क्रिस्टल एक पतले, चिमडे, सुघट्य खोल मे आवृत रह जाते हैं। इस खोल की भीतरी सतह क्रिस्टल के दोनो सतहो की ठीक ठीक छाप लिए रहता है। जब मणिभ का ऊर्ध्वपातन होता है या वह गल जाता है तब पानी ठोस सुघट्य पटल से निकल जाता है और खोल फॉसिल जैसा होता है। इसमे हिम क्रिस्टल के सभी वर्तन और प्रकाश-प्रकीर्णन-गुण ज्यो के त्यो रहते हैं।

तेज हवा से ये मीलो बह जाते हैं। हिम का उपयोग जलवितरण स्रोत के रूप में किया जाय, इसके लिये प्रयत्न कई स्थानो पर चल रहे हैं।

पहाड़ों पर गिरे हिम बड़े महत्व के हैं। उनके गलने से जो पानी बनता है वह नदियो का स्रोत होता है जिससे विद्युत् उत्पन्न किया जा सकता है और सिंचाई हो सकती है। पहाडी प्रदेशों में हिमपात से

का पुनरुत्थान कर एक नूतन पद्धति को प्रतिष्ठित कर दिया था। इनकी शिष्यपरंपरा में भक्त कवि हरिराम व्यास, सेवक जी, ध्रुवदास जी आदि बहुत प्रसिद्ध हिंदी कवि हैं। [वि० स्ना०]

हिपॉक्रटीज़ (Hippocrates, ४६० से ३५७ ई० पू०), यूनानी चिकित्सक थे, जो यूरोपीय तथा पश्चिम एशिया के देशों में चिकित्साशास्त्र के जनक के नाम से प्रसिद्ध हैं। सभवत इनका जन्म लघु एशिया के निकटवर्ती द्वीप, कोस (Cos), में हुआ था और ये ऐस्क्लिपिग्रोस (Asclepios) नामक चिकित्सक के वशज थे।

दैवबाधा और मत्रोपचार से बधनमुक्त कर, यूनानी चिकित्सा को वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय इन्ही को दिया जाता है। हिपॉक्रटीज के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथो के सग्रह में लगभग ७० ग्र थ हैं, जिनमे से सभवतः कुछ ही इनके लिखे हो, क्योंकि इस सग्रह के आद्यतम और अतिम ग्रंथो की लिखावट मे शताब्दियो का अंतर जान पड़ता है। रोगो का वर्णन, चतुर्दोषों को व्याधियो का कारण बताना, महामारियो से संबधित सिद्धात, सूक्तियो में निबद्ध रोगसंबधी बातें तथा शल्यचिकित्सा योग्य अवस्थाओ का वर्णन, आदि उपर्युक्त संग्रह की प्रमुख विशिष्टताएँ हैं। इन ग्रंथो मे शरीररचना तथा शरीर-क्रिया-विज्ञान की केवल प्रारभिक बातें हैं। जिन रोगो का वर्णन किया है उनमे मलेरिया, न्यूमोनिया, कनपेड (मम्प्स) तथा यक्ष्मा भी हैं। शल्यचिकित्सा के क्षेत्र में उपयुक्त यत्रो का वर्णन, अस्थि-भग और विस्थापन तथा बवासीर का उपचार, खोपडी का छेदन इत्यादि भी वर्णित हैं।

हिपॉक्रटीज ने चिकित्सा के क्षेत्र में अवतीर्ण होनेवाले नए चिकित्सको के लिये एक शपथ का निर्देश किया था, जो प्रसिद्ध हो गई है। इस शपथ की विषयवस्तु से इस महान् चिकित्सक के चारित्रिक तथा उच्च नैतिक विचारो का परिचय प्राप्त होता है। [भ० दा० व०]

हिपार्कस (Hipparchus, संभवत १६० से १२५ वर्ष ई० पू०), यूनानी खगोलज्ञ, का जन्म लघु एशिया के बिथिनिया (Bithynia) प्रदेश के नाइसीया (Nicaea) में हुआ था। यूनानी खगोलविज्ञान की दृढ नींव डालने का श्रेय इन्ही को प्राप्त है।

इन्होने सूर्य की गति (अर्थात् वर्ष का निर्धारण), उसकी असंगतियाँ तथा आनति, पृथ्वी की कक्षा के पात तथा भूम्युच्च और चद्रमा की कक्षा की कुछ विशेषताओ का पता लगाया था। कहा जाता है, इन्होने गोलीय त्रिकोणमिति का आविष्कार किया तथा गोलो के समतल पर प्रक्षेप बनाए। इनकी तैयार की हुई योजना के अनुसार ग्रहो की गतियाँ वृत्तीय हैं और दृश्य गतियो से इस योजना का मेल बैठाने के लिये, इन्होने पूर्ववर्ती रेखागणितज्ञ तथा खगोलज्ञ, ऐपॉलोनियस (तृतीय शताब्दी ई० पू०) का अनुगमन कर अधिचक्रो तथा उत्केंद्रो का आश्रय लिया। हिपार्कस अन्य खगोलीय गणनाओ के अतिरिक्त, चद्रग्रहणो की गणना करने मे भी समर्थ थे।

खगोलविज्ञान को इनकी मुख्य देन विषुव अयनो का आविष्कार तथा तत्संबंधी गणनाएँ थी। इन्होने १,०८० तारों की एक सारणी भी तैयार की थी, जिसमें भोगाशो तथा शरो द्वारा तारो के स्थान भी निश्चित किए थे। [भ० दा० व०]

हिप्पोपॉटेमस (Hippopotamus) एक बृहत्‌काय स्तनी प्राणी है। हिप्पोपॉटेमस का अर्थ है दरियाई घोडा पर घोडा जाति से इसका कोई सबध नही है बल्कि सुअर जाति के प्राणियो के साथ इसकी निकटता है। हिप्पोपॉटेमस अफ्रीका की नदियो, झीलो और दलदलों मे पाया जाता है। एक समय यह संसार के अनेक भागो मे जैसे, यूरोप, भारत, वर्मा, मिस्र, अलजीरिया आदि देशो मे फैला हुआ था जैसा उनके जीवाश्मो से पता लगता है। स्थल के स्तनी प्राणियो में हाथी के बाद यही सबसे भारी दूसरा प्राणी है, यद्यपि गैंडा इससे बडा होता है, तथापि भार में कम होता है।

हिप्पोपॉटेमस की औसत लबाई ३.६ मी, कधे के पास की ऊँचाई १.५ मी और पेट का अधिकतम घेरा शरीर की लबाई के प्राय बराबर ही होता है। इसका थूथन (muzzle) बहुत ही चौड़ा और गोलाकार होता है। मुख बहुत बडा होता है। कृंतक (incisor) मूलयुक्त नही होते उसमें बराबर वृद्धि होती रहती है। रदनक (Canine) बहुत बडे और मुडे हुए और लगातार बढनेवाले होते हैं। आमाशय जटिल होता है और अधनाल (Caecum) अनुपस्थित होता है। आँखें सिर के सबसे ऊँचे भाग में कान की सतह से थोडा नीचे स्थित होती हैं। कान बहुत छोटे छोटे और लचीले होते हैं। टाँगें छोटी और पैर चौड़े होते हैं जिनमे प्रत्येक में चार खुरदार असम अगुलियाँ होती हैं। त्वचा बालरहित और किसी किसी भाग में दो इंच तक मोटी होती है। इनका रंग गहरा भूरा से लेकर नीला भूरा होता है। नर की अपेक्षा मादा कुछ छोटी और प्रायः हल्के रग की होती है।

हिप्पोपॉटेमस झुंडों में रहनेवाला प्राणी है और २० से ४० के गिरोह में नदियो मे या नदी के किनारो पर रहता है जहाँ उसे अनुकूल भोजन उपलब्ध हो सके। इसका मुख्य भोजन घास तथा जल-पोधे हैं जिनका यह बहुत अधिक मात्रा मे भोजन करता है। इसके आमाशय में ५ से ६ बुशेल तक भोजन अँट सकता है। यह दिन में जल में किसी छाये के नीचे सोता, जलाशय में क्रीड़ा करता अथवा नरकट की शय्या पर विश्राम करता है। रात्रि में ही भोजन की तलाश मे नदी के बाहर निकलता है। यदि स्थान शात है तो दिन में भी बाहर निकल सकता है। यह कुशल तैराक तथा गोताखोर होता है। कम पानी में तेज चल भी सकता है। जमीन पर भारी भरकम स्थूल शरीर होते हुए मनुष्य से भी तेज दौड सकता है। जल के अदर ५ से १० मिनट तक डुबकी लगाए रह सकता है। जल की सतह पर नाक से जल का फव्वारा छोडता है। खेतो को चरकर और रौंदकर अपार क्षति पहुँचाता है। किसान आग जलाकर इसे भगाते हैं। हिप्पोपॉटेमस नदी के मुहाने पर नदी से निकलकर समद्र में भी कभी कभी चला जाता है।

हिप्पोपॉटेमस सरल प्रकृति का आरामप्रिय और मनुष्य की छाया से दूर रहनेवाला प्राणी है, पर अपने बच्चे की सुरक्षा के लिये अथवा घायल होने पर कभी कभी भीषण और विकराल क्रूरता का प्रदर्शन कर सकता है। भीषण प्रहार से वह देशी नावो

रचना हिमाटोप की वृद्धि से या दरी और गिरिपाद हिमानियो के विस्तार से होती है। ग्रीनलैंड और अटार्कटिक की हिमचादरें इसका सुंदर उदाहरण हैं। विक्टर अभियान (सन् १९४९-५२) के परिणामस्वरूप ग्रीनलड हिमचादर के विषय में निम्नलिखित ज्ञान प्राप्त हुआ है: क्षेत्रफल १७,२६,४०० वर्ग किमी०, समुद्रतल से औसत ऊँचाई २१३५ मी०, हिम की औसत मोटाई १५१५ मी, आयतन, २६×१०⁶ घन किमी। दक्षिण ध्रुवीय हिमचादर ग्रीनलैंड हिमचादर की अपेक्षा कई गुना अधिक बडी है। विशालकाय हिमस्तरो को महाद्वीपी हिमानियो के नाम से भी सबोधित किया जाता है।

हिमचादरो के विस्तृत क्षेत्र में कही कहीं एकलित शिलाओ की चोटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन शिलाद्वीपों को हिमस्थाएँ (नूनाटाक, Nunatok) कहते हैं। ग्रीनलैंड आदि ध्रुवीय प्रदेशो में हिमनदी विना पिघले ही समुद्र तक पहुँच जाती है और वहाँ कई बडे और छोटे खडों में विभाजित हो जाती है। ये हिमखड पानी में तैरते रहते हैं। इनका १/१० भाग जल के ऊपर तथा ९/१० भाग जल के नीचे रहता है। इन्हे प्लावीहिम (Iceberg) कहते हैं। गर्म भागो में पहुँचकर हिमखड पिघल जाते हैं और इनमें का पदार्थ पत्थर आदि समुद्र में जमा हो जाता है। परिणामस्वरूप उस स्थान पर समुद्र की तली ऊँची हो जाती है। न्यूफाउंडलैंड तट की रचना इसी प्रकार हुई है।

हिमनद निक्षेप — हिमनदी के पिघलने पर जो निक्षेप बनते हैं उन्हे हिमोढ कहते हैं। ये निक्षेप दो प्रकार के होते हैं। पहली श्रेणी में वे निक्षेप आते हैं जो वर्फ के पिघलने के स्थान पर ही हिमानी द्वारा लाए गए पदार्थों के जमा होने से बनते हैं। इनमें स्तरीकरण का अभाव रहता है। इन निक्षेपो में छोटे बडे सभी प्रकार के पदार्थ एक साथ सकलित रहते हैं। तदनुसार मिट्टी से लेकर बड़े बड़े विशाल शिलाखड यहाँ देखने को मिलते हैं। हिमोढ में यदि मिट्टी की मात्रा अधिक होती है तो उसे गोलाश्म मृत्तिका (Till or Boulder clay) कहते हैं। गोलाश्म मृत्तिका में विद्यमान बडे बड़े पत्थरो पर पडी धारियो के आधार पर हिमनद के प्रवाह की दिशा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। हिमोढ के जमा होने से हिमानीय प्रदेश में छोटे छोटे टीले बन जाते हैं। ड्रमलिन (Drumlin) हिमोढ से बनी नीची पहाड़ियाँ हैं जिनका आधार दीर्घवृत्ताकार होता है। इनका लबा अक्ष हिमनद के प्रवाह की दिशा के समातर होता है। इसके प्रवणढाल हिम के प्रवाह की दिशा को इगित करते हैं। ड्रमलिन साधारणत १५ मी से ६० मी० तक ऊंचा होता है।

दूसरी श्रेणी के निक्षेप पर्तदार होते हैं। वर्फ के पिघलने से जो पानी प्राप्त होता है उसी पानी के साथ हिमानी द्वारा लाया गया शैल पदार्थ बहता है। जल की प्रवाहगति पर निर्भर यह पदार्थ आकार के अनुसार जमा हो जाता है। पहले बडे बडे पत्थर फिर छोटे पत्थर तत्पश्चात् बालू कण और अंत में मिट्टी। यदि एक विशाल हिमनद किसी लगभग सपाट सतह पर दीर्घ काल तक स्थिर रहता है तो मलवे से लदा पानी बहुत सी जलधाराओ के रूप में प्रवाहित होता है और मलवा एक रूप से सतह पर जमा हो जाता है, इसे (out wash plain) हिमानी अपक्षेप कहते हैं। कैम भी एक प्रकार की हिमनद पदार्थों से बनी पर्तदार पहाडियाँ हैं जो साधारणत १५ मी० से ४५ मी तक ऊँची होती हैं। ये हिमक्षेत्रों में एकलित पहाडियों के रूप में या छोटे छोटे समुदायो मे दिखाई देती हैं। साधारणत: ये घाटियो की तलहटी में, पर कभी कभी पहाडियों की ढालों या उनकी चोटियो पर भी दृष्टिगोचर होती हैं।

हिमनदयुग पृथ्वी के प्रारंभ से अब तक के काल को भूवैज्ञानिक आधार पर कई युगो मे विभाजित किया गया है। इनमें प्लाइस्टोसीन या अत्यत नूतनयुग को हिमनदयुग या हिमयुग के नाम से भी सबोधित करते हैं। इस युग में पृथ्वी का बहुत बडा भाग हिम से ढका था। पिछले सहस्रो वर्षों में अधिकाश हिम पिघल गया और बहुत सी हिमचादरें लुप्त हो गई हैं। ध्रुव प्रदेशो के अतिरिक्त केवल कुछ ही भागो में हिमस्तर दिखाई देता है। भूवैज्ञानिकों ने ज्ञात किया है कि प्लाइस्टोसीनयुग में शीतोष्ण कटिबध व उष्ण कटिबध के बहुत से भाग हिमाच्छादित थे। इन्हे इन भागों में हिमनदों की उपस्थिति के प्रमाण मिले हैं। इन स्थानों पर गोलाश्म मृत्तिका (प्रस्तरयुक्त चिकनी मिट्टी) तथा हिमानियो का मलवा दिखाई देता है। साथ ही हिमानीय प्रदेशो के अमिट चिह्न जैसे हिमानी के मार्ग की चट्टानो का चिकना होना, उनपर बहुत सी खरोचो के निशान पडे रहना, शिलाओ पर धारियाँ होना आदि विद्यमान हैं। हिमानीय प्रदेशों की घाटियाँ अंग्रेजी के अक्षर 'यू' के आकार की होती हैं तथा इनमें हिम भेडपीठ शैल (Roches mountonnees) तथा हिमजगह्वर (Cirgua) रचनाएँ देखने को मिलती हैं। अनियत गोलाश्म अर्थात् अनाथ शिलाखड की उपस्थिति भी हिमानीय प्रदेशों की पहचान है। ये वे शिलाखड हैं जिनका उस क्षेत्र की शिलाओं से कोई सबध नही है, ये तो हिमनद के साथ एक लबी यात्रा करते हुए आते हैं और हिम पिघलने पर अर्थात् हिमनद के लोप होने पर वही रह जाते हैं।

हिमनदयुग का विस्तार — उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर भूविज्ञानियो ने यह तथ्य स्थापित किया है कि प्लाइस्टोसीनयुग में यूरोप, अमरीका, अटार्कटिका और हिमालय का लगभग २०५ लाख वर्ग किमी० क्षेत्र हिमचादरो से ढका था। उत्तरी अमरीका में मुख्यत तीन हिमकेंद्रो लैब्रोडोर, कीवाटिन और कोरडिलेरियन से चारों दिशाओं मे हिम का प्रवाह हुआ जिसने लगभग १०२ लाख वर्ग किमी० क्षेत्र को ढक लिया। यहाँ हिम की मोटाई लगभग दो मील थी। उत्तरी यूरोप में हिम का प्रवाह स्कैंडिनेविया प्रदेश से दक्षिण पश्चिम दिशा में हुआ। जिससे इंग्लैंड, जर्मनी और रूस के बहुत से भाग वर्फ से ढक गए, इसी प्रकार भारत के भी अधिकाश भाग इस युग में हिम से आच्छादित थे।

प्लाइस्टोसीन हिमनदयुग के जो प्रमाण हमारे देश में मिले हैं उनमें हिमालयक्षेत्र से प्राप्त प्रमाण पुष्ट और प्रभावशाली हैं। हिमालय के विस्तृत क्षेत्र में हिमानियो का मलवा मिलता है, नदियो की घाटियो में हिमोढयुक्त मलवे की पर्तें दिखाई देती हैं तथा स्थान स्थान पर, जैसे पुटवार में, अनियत गोलाश्म भी मिले हैं। प्रायद्वीपीय

मिट्टी में गड़ेला पाती है जिससे उसमें फसलें उगाई जा सकती हैं। पर हिम का पानी उतना भ्रविक नहीं है जितना वर्षा का पानी होता है।

हिमनद (हिमानी, Glacier) बड़े बड़े हिमखंडों को जो अपने ही भार के कारण नीचे की ओर खिसकते रहते हैं, हिमनद या हिमानी कहते हैं। नदी और हिमनद में इतना अंतर है कि नदी में जल ढाल की ओर बहता है और हिमनद में हिम नीचे की ओर खिसकता है। नदी की तुलना में हिमनद की प्रवाहगति बड़ी मंद होती है। यहाँ तक लोगों की धारणा थी कि हिमनद अपने स्थान पर स्थिर रहता है। हिमनद के बीच का भाग पार्श्वभागों (किनारों) की अपेक्षा तथा ऊपर का भाग तली की अपेक्षा अधिक गति से आगे बढ़ता है। हिमनद साधारणतः एक दिन रात में चार पाँच इंच आगे बढ़ता है। पर भिन्न भिन्न हिमनदों की गति भिन्न होती है। अलास्का और ग्रीनलैंड के हिमनद २४ घंटे में १२ मी से भी अधिक गति से आगे बढ़ते हैं। हिमप्रवाह की गति हिम की मात्रा और उसके विस्तार मार्ग की ढाल एवं ताप पर निर्भर करती है। बड़े हिमनद छोटे हिमनदों की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बहते हैं। हिमनदों का मार्ग जितना अधिक ढालू होगा उतनी ही अधिक उसकी गति होगी। हिमनद का प्रवाह ताप के घटने बढ़ने पर भी निर्भर करता है। ताप अधिक होने पर हिम शीघ्र पिघलता है और हिमनद वेग से आगे बढ़ता है। यही कारण है कि ग्रीष्म ऋतु में हिमनदों की प्रवाहगति बढ़ जाती है।

हिमनद पृथ्वी के उन्हीं भागों में पाए जाते हैं जहाँ हिम पिघलने की मात्रा की अपेक्षा हिमपात अधिक होता है। साधारणतः हिमनद रचना के लिये हिम का सौ दो सौ फुट मोटी तहों का जमा होना आवश्यक होता है। इतनी मोटाई पर दबाव के कारण बर्फ हिम में परिवर्तित हो जाता है।

हिमस्तरों में हिम के भिन्न भिन्न स्तर देखे जा सकते हैं। प्रत्येक स्तर एक वर्ष के हिमपात का द्योतक है। दबाव के कारण नीचे का स्तर अपने ऊपरवाले स्तर की अपेक्षा अधिक सघन होता है। इस प्रकार बर्फ अधिकाधिक घना होता जाता है और पहले दानेदार हिम 'नेवे' की तथा बाद में ठोस हिम की रचना होती है।

प्रतिबल (stresses) के प्रभाव में बर्फ में दरारें पड़ जाती है। ये दरारें दो सौ फुट तक गहरी हो सकती हैं। इससे अधिक गहराई पर यदि कोई दरार होती भी है तो वह दबाव के कारण भर जाती है। साधारणतः ये दरारें तब उत्पन्न होती हैं जब हिम किसी पहाड़ी या ढालवें मार्ग पर होकर आगे बढ़ता है।

स्थान की वह रेखा जिसके ऊपर निरंतर बर्फ जमी रहती है हिमरेखा कहलाती है। हिमरेखा के ऊपर का भाग हिमक्षेत्र कहलाता है। हिमरेखा की ऊँचाई विभिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न होती है। भूमध्यरेखा पर यह ऊँचाई ४,५० मी से ५४६० मी तक हो सकती है जब कि ध्रुव प्रदेशों में हिमरेखा सागरतल के निकट रहती है। आल्प्स में हिमरेखा की ऊँचाई २७५ मी०, ग्रीनलैंड में ६०६ मी०, पाइरेनीज में १६०५ मी०, किलिमंजारो में ३०६२ मी० तथा हिमालय में ४५५० मी० से ५१५० मी० है।

रूप, आकार और स्थिति के आधार पर हिमनदों को निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं : १ — घाटी हिमानियाँ, २ — प्रपाती हिमानियाँ, ३ — गिरिपाद हिमानियाँ, ४ – हिमटोप, ५ — हिमचादर।

घाटी हिमानियाँ — पर्वतों की घाटियों में बहती हैं। इन्हें हिम हिमक्षेत्रों से प्राप्त होता है। आल्प्स में हिमानियाँ बहुतायत से देखने को मिलती हैं तथा यहीं पर सबसे पहले इनका विस्तृत अध्ययन किया गया था। इसी कारण इन्हें अल्पाइन हिमानियाँ भी कहा जाता है। घाटी हिमानियों की प्रवाहगति साधारणतः कम होती है क्योंकि इनकी मोटाई कम होती है, छोटी छोटी घाटी हिमानियाँ ६० मी से ९० मी तक मोटी होती हैं और बड़ी लगभग ३०० मी० मोटी। हिमानियों की मोटाई हिम के अंदर भूकंपी लहरें उत्पन्न करके नापी जाती हैं। आल्प्स में दो हजार से अधिक घाटी हिमानियाँ हैं। ये साधारणतः ३ किमी से ६ किमी लंबी हैं पर यहाँ की सबसे बड़ी हिमानी अलेट्श लगभग १४ किमी० लंबी है। हिमालय में भी बहुत सी विशालकाय घाटी हिमानियाँ देखने को मिलती हैं। यह अधिक ऊँचाई पर स्थित हैं और ८ से ४८ किमी तक लंबी हैं। अलास्का में १२० किमी लंबी घाटी हिमानियाँ भी विद्यमान हैं।

एक विशेष प्रकार की पर्वतीय हिमानी जो पर्वतों की ढालों पर गहरे गर्तों में स्थित है प्रलापी हिमानी (सर्क हिमानी) कहलाती है। यह साधारणतः छोटी होती है। कभी कभी यह पर्वत के अग्रढाल पर बहती है। हिमानी प्रदेशों में बहुत से हिमज गह्वर (सर्क) आज भी झीलों के रूप में देखने को मिलते हैं। यह तीन ओर से प्रवण शिलाओं से घिरे रहते हैं और एक ओर को खुले रहते हैं। पीरपंजाल क्षेत्र में ३८०० मी की ऊँचाई पर ऐसे बहुत से हिमज गह्वर विद्यमान हैं। रॉकी पर्वत में भी बहुत सी प्रपाती हिमानियाँ देखने को मिलती हैं। किन्हीं किन्हीं भागों में प्रपाती हिमानी और घाटी हिमानियों के बीच संक्रमण (transition) की सभी अवस्थाएँ देखने को मिलती हैं।

पर्वतों के नीचे समतल भूमि पर कई हिमानियों के मिलने से एक विशाल हिमनद की रचना होती है, इसे ही गिरिपाद हिमनद कहते हैं। यह पर्वत की तलहटी में बर्फ की झील सी दिखाई देती है। अलास्का की मालास्पिना हिमानी इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। सेंट एलियास पर्वत की तलहटी में यह हिमानी लगभग ३८४० वर्ग किमी० क्षेत्र में फैली है और बहुत धीमी गति से आगे की ओर बढ़ रही है। इस हिमानी की सीमाएँ (किनारे) शिलाओं के मलबे तथा वनवृक्षों से ढँके हैं। किन्हीं किन्हीं उच्च अक्षांशीय स्थित द्वीपों में मैदान और पठार हिम से आच्छादित रहते हैं। इन्हें हिमटोप कहा जाता है। इनका क्षेत्रफल अधिक नहीं होता। वास्तव में यह हिमचादरों, जिनका वर्णन नीचे किया गया है, का छोटा रूप है। स्कैंडिनेविया, आइसलैंड और स्पिट्सबर्गेन में बहुत से हिमटोप देखने को मिलते हैं।

हिमचादरें लाखों वर्ग मील क्षेत्र को ढँके रहती हैं। इनकी

प्राप्त की। १९२७ में वे जेम्सूनी के काली कुर्ती दल के उपनेता और १९२९ में नेता निर्वाचित हुए। १९३९ में वे हिटलर द्वारा नियुक्त शासक दल के उपनेता बने। जरमनी और जरमन अधिकृत प्रदेशों में नाजीविरोधी तत्वों का उन्होंने अत्यंत नृशंसतापूर्वक दमन किया। १९४४ के अंत तक उनकी शक्ति और प्रभुत्व का इतना अधिक विस्तार हो गया कि जरमनी में हिटलर के बाद उन्हीं की गणना की जाने लगी। १९४५ में हिटलर के पतन और मृत्यु के पश्चात् उन्होंने सांघातिक विष की टिकिया खाकर आत्महत्या कर ली।

[म० स्व० प०]

हिम हॉकी साधारण हॉकी सदृश एक खेल है जो बर्फ से ढँकी हुई भूमि पर खेला जाता है। इसका सबसे अधिक प्रचलन कैनाडा में हुआ, जहाँ भूमि दीर्घकाल तक बर्फ से ढँकी रहती है।

इस खेल के प्रत्येक पक्ष में छह खिलाड़ी होते हैं। ये बर्फ पर फिसलनेवाली स्केट (लोहे की खड़ाऊँ) पहिनकर खेलते हैं। गेंद के स्थान पर कठोर गोल, चकती का जिसे पक (puck) कहते हैं, प्रयोग होता है। यह चकती २.५ सेमी मोटी तथा ८ सेमी व्यास की होती है। जिस क्षेत्र में यह खेल खेला जाता है उसे रिंक (rink) कहते हैं। यह लगभग ६० मी लंबा और २६ मी चौड़ा होना चाहिए। रिंक के दोनों सिरों से दस फुट पर, हिम की चौड़ाई के आर पार खींची रेखा के मध्य में गोल रहता है। यह १.२ मी ऊँचा तथा क्षेत्र के मध्य के संमुख लगभग २ मी चौड़ा खुला होता है। गोलकीपर को छोड़ अन्य सब खिलाड़ियों के हाथ में ऐसी स्टिक होती है जिसका फल हत्थे से ४५ अंश के कोण पर मुड़ा होता है, इसकी एड़ी से हत्थे के सिरे तक की लंबाई १३५ सेमी तथा एड़ी से फल के सिरे तक ३८ सेमी होती है। हत्थे ५ सेमी × २ सेमी चौकोर होते हैं, किंतु फल चौड़ाई में बढ़कर ५ सेमी हो जाता है। गोलकीपर की स्टिक के हत्थे तथा फल दोनों की चौड़ाई १० सेमी होती है। खेल के क्षेत्र को हिम के आर पार, गोल से १५ मी की दूरी पर रेखाएँ खींचकर, तीन परिक्षेत्रों में बाँट देते हैं। बचाव करनेवाले दल के गोल के पास का परिक्षेत्र बचाव का, मध्य का परिक्षेत्र निष्पक्ष तथा सबसे दूरवाला आक्रमण परिक्षेत्र कहलाता है। प्रत्येक पक्ष के खिलाड़ियों में गोलकीपर, दायाँ रक्षक, वाम रक्षक, मध्य का तथा दाएँ और बाएँ पार्श्विक होते हैं। सामान्यतः पिछले तीन आगे बढ़कर खेलते हैं। खेल के ६० मिनटों का समय २० मिनटों की तीन पालियों में बाँटा जाता है। यदि खेल बराबर का रहा तो समय कुछ बढ़ा दिया जाता है। रेफरी, अर्थात् मध्यस्थ, जब पक को क्षेत्र के केंद्र में आमने सामने खड़े मध्य के खिलाड़ियों के बीच में डाल देता है तो खेल आरंभ हो जाता है।

[भ० दा० व०]

हिमाचल प्रदेश भारतीय गणतंत्र का केंद्रशासित राज्य है, जो भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित है। इस राज्य का, १ नवंबर, १९६६ के पूर्व, क्षेत्रफल २७,८६६ वर्ग किमी एवं जनसंख्या १३,५१,१४४ (१९६१) थी, पर पंजाब राज्य के पुनर्गठन के कारण १ नवंबर, १९६६ ई० को हरियाणा राज्य बना और पंजाब के तीन पहाड़ी जिले, शिमला, काँगड़ा एवं लाहुल और स्पिटी, हिमाचल प्रदेश में संमिलित कर दिए गए जिसके कारण अब यहाँ का क्षेत्रफल लगभग ५३,१३८ वर्ग किमी एवं जनसंख्या २५,४६,७६८ हो गई है। इस राज्य के उत्तर में जमू और काश्मीर राज्य, पश्चिम एवं पश्चिम दक्षिण में पंजाब, दक्षिण एवं दक्षिण पूर्व में उत्तर प्रदेश राज्य तथा पूर्व में तिब्बत हैं। चिनाब, व्यास, रावी, सतलज एवं यमुना नदियाँ इस राज्य से होकर बहती हैं। पंजाब के पुनर्गठन का सबसे अधिक लाभ हिमाचल प्रदेश राज्य को ही प्राप्त हुआ है। राज्य का भूभाग बढ़ जाने के साथ साथ इसकी खनिज एवं अन्य संपत्ति में भी पर्याप्त वृद्धि हो गई है। इस राज्य में अब नौ जिले हैं : चंबा, मंडी, बिलासपुर, महासू, सिरमौर, किन्नौर, लाहुलस्पिटी, शिमला एवं काँगड़ा हैं। राज्य की राजधानी शिमला है।

यह राज्य पर्वतीय प्रदेश में है। इसमें हिमालय तथा शिवालिक की पहाड़ियाँ फैली हुई हैं। यहाँ यातायात के साधन कम हैं, अधिकतर कुली तथा टट्टू का उपयोग किया जाता है। यहाँ की जलवायु शीतल तथा स्वास्थ्यवर्धक है। जाड़े में यहाँ कड़ाके की सर्दी पड़ती है और कभी कभी हिमपात भी होता है। ग्रीष्म काल में यहाँ ठंडा रहता है और यहाँ का मौसम बड़ा सुहावना रहता है। वर्षा अधिकतर ग्रीष्म काल में मानसूनी हवाओं से होती है।

यहाँ के पर्वतों पर सघन वन हैं। इन वनों में चीड़, देवदार तथा सनोवर के वृक्ष मिलते हैं और इनकी लकड़ी राज्य के लिये प्रमुख आय की स्रोत है। पहाड़ी ढालों पर चाय, फलों एवं मेवों के बगीचे हैं। आलू यहाँ का प्रमुख कृषि उत्पाद है। यहाँ से भारत की २० प्रतिशत आलू की माँग पूरी की जाती है। गेहूँ, मक्का, जौ, चना, तंबाकू आदि यहाँ की मुख्य उपज हैं। नमक आय का दूसरा प्रमुख साधन है। जंगलों से इमारती लकड़ी, जलावन लकड़ी, लकड़ी का कोयला, गंधाबिरोजा आदि प्राप्त होते हैं। यहाँ के लोगों का मुख्य उद्यम लकड़ी काटना, खेती करना, मक्खन, घी आदि बनाना, भेड़ों के ऊन से कंबल, शाल, पट्टू, आदि तैयार करना है। नाहन में एक लोहे का कारखाना भी है। यहाँ के मुख्य नगर शिमला, चंबा, मंडी, बिलासपुर आदि हैं। जोगेंद्रनगर के पास उन्ह जलविद्युत् प्रणाली का शक्तिगृह है, जहाँ से इस राज्य के नगरों में विद्युत् पहुँचाई जाती है।

इतिहास—१५ अप्रैल, १९४८ को ३० पहाड़ी राज्यों को मिलाकर यह प्रदेश बना और चीफ कमीश्नर इसका प्रशासक नियुक्त किया गया। १९५१ में यह सी वर्ग का राज्य बना जिसकी विधानसभा में ३६ सदस्य थे और तीन मंत्री थे। सन् १९५४ में बिलासपुर राज्य इसमें संमिलित हो गया और विधानसभा की सदस्य संख्या ४१ हो गई। १९५६ ई० में राज्यपुनर्गठन आयोग की ने संस्तुति की कि हिमाचल प्रदेश पंजाब में संमिलित कर दिया जाय पर इस प्रदेश ने अपना पृथक् अस्तित्व बनाए रखा। इस तरह पृथक् रहने का मूल्य हिमाचल प्रदेश को चुकाना पड़ा और १ नवंबर १९५६ ई० को यह प्रदेश केंद्रीय शासन के अ[illegible] चला गया। यहाँ की विधानसभा भंग हो गई और शासन चलाने के लिये प्रशासक नियुक्त कर दिया गया। १९६३ ई० को पुन: लोकप्रिय शासन की स्थापना प्रदेश में हुई। केंद्र यद्यपि राज्य विस्तार में पंजाब एवं हरियाणा से पर्याप्त बड़ा है पर केंद्र ने इसे पूरे राज्य का दर्जा देने से इनकार कर दिया है जिसके कारण यहाँ बड़ा असंतोष है। १ नवंबर, १९६६ को पंजाब

भारत में भी हिमनदयुग के प्रमाण मिले हैं, पर यह प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष हैं। नीलगिरि पर्वत, अन्नामलाई और श्विराई पर्वत शिखरों में शीत जलवायु की वनस्पतियाँ एवं जीवाश्म मिले हैं। पारसनाथ की पहाड़ियों तथा अरावली पर्वत में वनस्पतियों के अवशेष मिले हैं जो अब हिमालय पर्वत में उगती हैं। यह परोक्ष प्रमाण इस बात के द्योतक हैं कि उस समय इन भागों की जलवायु आज की जलवायु से भिन्न थी।

हिमनदयुग का वर्गीकरण — विस्तृत अध्ययन कर भूवैज्ञानिकों ने ज्ञात किया है कि हिमानियाँ कई बार आगे की ओर अग्रसर हुई हैं और कई बार पीछे की ओर हटी हैं। उन्होंने यूरोप में प्लाइस्टोसीन युग में चार हिमकालों (हिमयुगों) तथा चार अंतर्हिमकालों की स्थापना की है। हिमकालों के स्पष्ट प्रमाण क्रमशः आल्प्स में गुंज, मिंडल, रिस और वुर्म नदियों की घाटियों में मिले हैं अत इन चारों हिमकालों को गुंज हिमकाल, मिंडल हिमकाल और वुर्म हिमकाल की संज्ञा दी गई है। इनमें गुंज हिमकाल सबसे पहला है, उसके बाद मिंडल हिमकाल, फिर रिस हिमकाल और सबसे अंत में वुर्म हिमकाल का आगमन हुआ। इन हिमकालों के बीच का समय, जब हिम का संकुचन हुआ, अंतर्हिमकाल कहलाता है। सर्वप्रथम आदिमानव की उत्पत्ति गुंज और मिंडल हिमकालों के बीच आँकी गई है। विश्व के अन्य भागों, जैसे अमरीका आदि में भी, इन चारों हिमकालों की स्थापना की पुष्टि हुई है। भारत में भी यूरोप के समकक्ष चारों हिमकालों के चिह्न मिले हैं। शिमला क्षेत्र में फैली पीजोरस्तर की चट्टानें गुंज हिमयुग के समकालीन हैं। ऊपरी कग्लामरिट — प्रस्तर शिलाएँ मिंडल हिमकाल के समकक्ष हैं। नर्मदा की जलोढक रिस हिमकाल के समकालीन आँकी गई हैं तथा पुटवार की लोयस एवं रेत वर्मयुग के निक्षेपों के समकक्ष हैं। डीटेरा एवं पीहरसन नामक भूवैज्ञानिकों ने तो काश्मीर घाटी में पाँच हिमकालों की कल्पना की है।

नीचे की सारणी में प्लाइस्टोसीन हिमयुग की तुलनात्मक सारणी प्रस्तुत की गई है

भारत	आल्प्स	जर्मनी	उत्तरी अमरीका	वर्ष पूर्व (मिलान-कोविच के अनुसार)
पुटवार लोयस और रेत	वुर्म हिमकाल	वाइशेल हिमकाल	विस्कौंसिन हिमकाल	२००० १४४०००
नर्मदा की जलोढ	अंतर्हिम काल रिस हिमकाल	जालेहिमकाल	इलिनायिन हिमकाल	१८३००० ३०६०००
ऊपरी प्रस्तर कग्लामरिट	अंतर्हिम काल मिंडेल हिमकाल	एलस्टर हिमकाल	कंसान हिमकाल	४२६००० ४७८००० ५४३०००
पीजोर स्तर	अंतर्हिम काल गुंजहिमकाल		नेब्रास्कन हिमकाल	५९२०००

अन्य हिमनद युग — यद्यपि प्लाइस्टोसीन युग को ही हिमनद-युग के नाम से संबोधित किया जाता है, तथापि भौमिक इतिहास के अन्य युगों में भी ऐसे प्रमाण मिले हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि पृथ्वी के वृहद् भाग इससे पूर्व भी कई बार हिमचादरों से ढँके थे। अब से लगभग ३५ करोड़ वर्ष पूर्व कार्बनीयुग में अफ्रीका, भारत, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अमरीका के वृहद् भाग हिमाच्छादित थे। अनुमानत कार्बनीयुग में हिम का विस्तार प्लाइस्टोसीन युग की अपेक्षा कहीं अधिक था। कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका और भारत में कैंब्रियनपूर्वकल्प की शिलाओं में गोलाश्म मृत्तिका तथा हिमानियों की विद्यमानता के अन्य चिह्न भी मिले हैं। किन्हीं किन्हीं क्षेत्रों में मध्यजीवकल्प तथा नवजीवकल्प से भी हिमस्तर के प्रमाण उपलब्ध हैं।

हिमावरण का कारण — हिमानियों की रचना के लिये आवश्यक है *न्यून ताप तथा पर्याप्त* हिमपात। हिमक्षेत्रों में हिमपात की मात्रा अधिक होती है और ग्रीष्म ऋतु का ताप उस हिम को पिघलाने में असमर्थ रहता है, अतः प्रति वर्ष हिम एकत्र होता रहता है। इस प्रकार निरंतर हिम के जमा होने से हिमानियों की रचना होती है। उपयुक्त वातावरण मिलने पर हिमानियों का आकार बढ़ता जाता है और यह वृहद् रूप धारण कर लेती हैं और पृथ्वी का एक बड़ा भाग बर्फ से ढँक जाता है।

जलवायु परिवर्तन, जल-थल-मंडलों की स्थिति से परिवर्तन, सूर्य की गर्मी का प्रभाव कम होना, ध्रुवों का अपने स्थान से पलायन, वायुमंडल मे कार्बन डाईऑक्साइड की बहुलता हिमावरण के कारण माने गए हैं। जलवायु संबंधी परिवर्तन ही हिमावरण का मूल कारण है। यह पृथ्वी की निम्नलिखित गतियों पर निर्भर है — घूर्णाक्ष का अयन (Precession of the axis of rotation), पृथ्वी के अक्ष की परिभ्रमणदिशा का कक्षा पर विचरण (Variation of inclination to the plane of orbit), भूकक्षा का अयन (Precession of the Earth's orbit) तथा कक्षा की उत्केंद्रता में परिवर्तन (Change in the eccentricity of the orbit)। इनका पृथक् पृथक् रूप में जलवायु पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, परंतु यदि सब एक साथ एक ही दिशा में प्रभावकारी होते हैं तो जलवायु में मूल परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ जब कक्षा की उत्केंद्रता अधिक तथा अक्ष का झुकाव कम हो और पृथ्वी अपने कक्षामार्ग मे सबसे अधिक दूरी पर हो तब उत्तरी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु में बहुत कम ताप उपलब्ध होगा। शरद ऋतु लंबी होगी तथा शीत अधिक होगा। इसके विपरीत कक्षा की लघु उत्केंद्रता तथा अक्ष का विपरीत दिशा में विचरण मृदुल जलवायु का प्रेरक है। खगोलात्मक आधार पर ग्रीष्म और शीत जलवायु का आवागमन लगभग एक लाख वर्षों के अंतराल पर होता है। प्लाइस्टोसीन युग मे ज्ञात हिमकालों से मोटे तौर पर इसकी पुष्टि होती है।

[म० ना० मे०]

हिमलर, हेनरिख (१९००–१९४५) जरमन पुलिस दल (गेस्टापो) के अध्यक्ष। प्रारंभ में म्युनिक विश्वविद्यालय में कृषि की शिक्षा
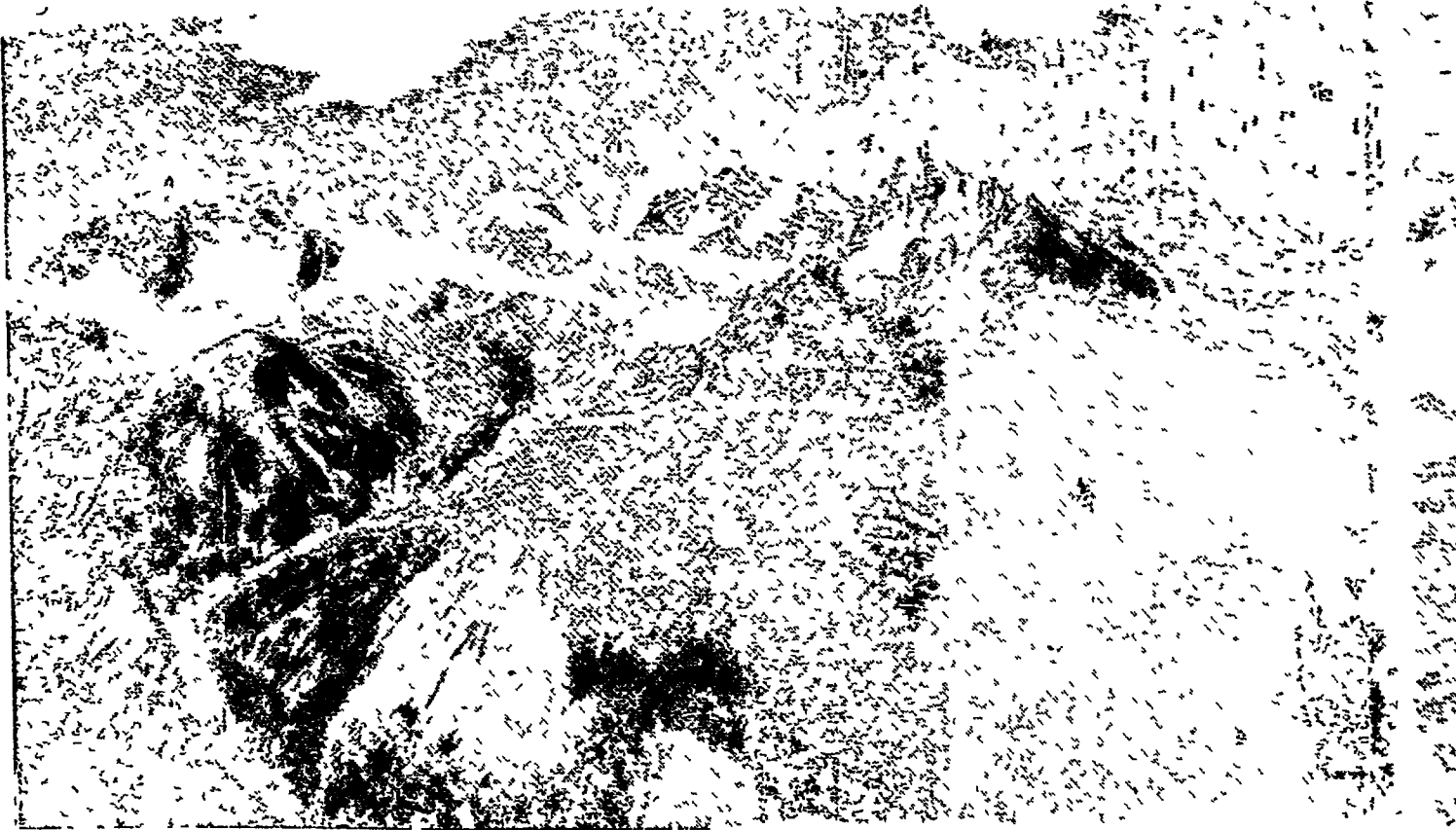
विभाजित किया गया है . उत्तरी काश्मीर हिमालय, दक्षिणी काश्मीर हिमालय, पजाब हिमालय और कुमायूँ हिमालय।

काश्मीर हिमालय — हिमालय का सबसे चौडा भाग काश्मीर में है। यह पश्चिम से पूर्व की ओर ७०० किमी लबा तथा उत्तर से दक्षिण की ओर ५०० किमी चौडा है। इसके पर्वतीय क्षेत्र का क्षेत्रफल ३,५०,००० वर्ग किमी है। यहाँ की ऊँचाई, जगलों, मिट्टियो, जलवायु एव अभिगम्यता में बडा वैषम्य है। काश्मीर क्षेत्र में सपूर्ण हिमालय की अपेक्षा अधिक हिम और हिमनद हैं। इसके भी प्रमाण हैं कि भूतकाल मे पहलगाम से लेकर काश्मीर की घाटी तक में हिमनदो ने बडे भूभाग को घेर रखा था। वृहद् हिमालय की श्रेणी को उत्तरी काश्मीर और दक्षिणी काश्मीर के मध्य विभाजनरेखा मान सकते हैं।

दक्षिणी काश्मीर हिमालय — जमू पहाडियाँ काश्मीर शिवालिक का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये पहाडियाँ झेलम नदी से लेकर रावी तक फैली हुई हैं। ये पहाडियाँ बहुत कटी हुई हैं और अभिनत घाटियाँ प्राय कटक (ridge) बनाती हैं। इन पहाडियो के दक्षिण में शुष्क पथरीली धरातल की झालर (fringe) है जिसे कडी कहते हैं। इस कडी में धरातल पर सिंचाई के लिये जल नही है। जमू पहाडियों के पीछे पुछ पहाडियाँ हैं जो प्रारभिक बलुआ पत्थर एव शेल की बनी हैं। इनकी अधिकतम ऊँचाई ३,००० मी है। इन पहाडियो का झुकाव शैल के नतिलव (Strike) के अनुरूप है। जमू पहाडियो के उत्तर में लघु हिमालय की प्ररूपी श्रेणियाँ हैं। इस पट्टी की औसत ऊँचाई ३,००० मी एवं औसत चौडाई १०० किमी है। इस पट्टी की विशेषता इसका ऊबड खाबडपन तथा स्पष्ट उभार है। इस पट्टी के निम्नतल, ४०० मी मे मुज्पफराबाद के समीप जेहलम महाखड्ड है। श्रीनगर से ५० किमी दक्षिण पश्चिम में पीर पजाल का ४,७४३ मी ऊँचा शिखर है। काश्मीर के इस खड की अधिकाश रेटिक्क श्रेणियाँ अनुदैर्घ्य प्ररूप की हैं और ये या तो वृहत् हिमालय से द्विशाखित होती हैं या उससे तिरछी फैली हैं तथा कई अनुप्रस्थ श्रेणियाँ हैं। पीर पजाल पहले प्रकार का उदाहरण है। यह वृहत् हिमालयश्रेणी से नगा पर्वत के १०० किमी दक्षिण पश्चिम से निकलकर पूर्व की ओर ४०० किमी में फैला हुआ है। क्षेपभ्रंश (thurst faulting) के कारण पीर पजाल की व्युत्पत्ति हुई है। इस श्रेणी में पीर पंजाल (३,४९४ मी) तथा बनिहाल (२,८३२ मी) नामक दो प्रसिद्ध दर्रे हैं। बनिहाल दर्रा भारत के मैदानी भाग से काश्मीर की घाटी में जाने का प्रमुख मार्ग है। यह श्रेणी चनाब, जेहलम तथा किशनगगा से भंग हो गई है। पीर पजाल की औसत ऊँचाई ४,००० मीटर है पर इसके कुछ शिखर, विशेषतः लाहुल में, वर्ष भर हिमाच्छादित रहते हैं।

उत्तरी काश्मीर हिमालय — सिंध नद काश्मीर को विकर्णत पार करता है और यहाँ इसकी कुल लबाई ६५० किमी है। यह तिब्बत में २५० किमी लबे वृहत् वक्र मे बहने के उपरात दमचोक के दक्षिण पूर्व मे काश्मीर में प्रवेश करता है। दमचोक से शकार्दु तक असममित घाटी में बहने का कारण यह है कि नदी का दाहिना किनारा ग्रैनाइट शैल का एवं बाया किनारा तृतीय काल के चूनापत्थर एवं शेल का है। इस नदी में बाएँ किनारे पर जास्कार, द्रास एव अस्तोर नदियाँ तथा दाहिने किनारे पर श्योक एव शिगर नदियाँ मिलती हैं।

सिंध नदी के उत्तर में कराकोरम पर्वत स्थित है। इसे संस्कृत साहित्य में कृष्णगिरि कहा गया है। यह ऊंचे शिखरो एव बहुत से हिमनदो का क्षेत्र है। कराकोरम के अनेक हिमनदो की धाराएँ तीव्र गति से बहनेवाली तथा मध्यस्थ हिमोढ़ (medial moraines) है। सायचेन (Siachen) हिमनद इस प्रकार का है और नुब्रा नदी को जल प्रदान करता है। रिमो (Rimo) हिमनद अपने प्रकार का है और इसके द्वारा एक ही साथ उत्तर में बहनेवाली यारकद नदी तथा दक्षिण में बहनेवाली श्योक नदी का जलभरण होना है। यहाँ की सर्वोच्च आबाद घाटी ब्रल्दु (Braldu) हिमालय का द्वितीय सर्वोच्च शिखर के$_2$ (८६११ मीटर) पश्चिमी कराकोरम में है। इसके अतिरिक्त हिडेन पीक (८,०६८ मी) ब्राड पीक (८,०४७ मी) तथा गशरब्रुम द्वितीय (८०३५ मी) अन्य शिखर हैं। संसार के आठ हजार मीटर से ऊँचे १४ शिखरों में से चार कराकोरम मे हैं। रकपोशी (Rakposhi, ७,७८८ मी) तथा हरमोश (७,३९७ मी) यहाँ के अन्य प्रसिद्ध शिखर हैं। कराकोरम की घाटियाँ ग्रीष्म में बडी गरम रहती हैं पर यहाँ की रातें, विशेषकर शीतकाल में, अत्यधिक ठंडी रहती हैं।

लद्दाख पठार काश्मीर हिमालय के उत्तर पूर्वी भाग में है। तथा इसकी औसत ऊँचाई ५,३०० मीटर है। यह भारत का सर्वोच्च पठार है। ५,३०० से लेकर ५,८०० मी की ऊँचाई तक तीन समप्राय भूमि (pene plain) के अवशेष इस पठार में हैं। यह भारत के अगम्य, उच्च एव शुष्क भागो में से एक है। यहाँ का संपूर्ण भूभाग सोपाननुमा है। चागचेन्मो (Chang chenmo) श्रेणी लद्दाख को दो स्पष्ट भागो में विभाजित करती है। चाग चेन्मो श्रेणी के उत्तर में चाग चेन्मो नदी असममित तथा चौरस तलवाली घाटी में पश्चिम की ओर बहती है। यहाँ अनेक गरम स्रोत हैं। ऊँची ढालों पर पर्वतीय झीलें हैं। सुदूर उत्तर मे आतर अपवाह बेसिन है, जो मध्यजीवी (Mesozoic) कल्प के चूनापत्थर और शेल के कटने से बनी है। इस बेसिन में अनेक लवणजलीय झीलें हैं जिनका अपवाह अभिकेंद्री है। यह पठार पर्वत एव मैदानो में विभाजित है। दक्षिण से उत्तर की ओर लिंग्जिताग (Lingzitang) मैदान, लोकजुंग (Lokzhung) पर्वत आँक्साइ (Aksai) श्रेणी तथा सोडा (Soda) मैदान हैं। यहाँ के मैदानों में भूतकालीन हिमनदक्रिया के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। ये मैदान पूर्णत शुष्क एव वनस्पतिरहित हैं। यहाँ खानाबदोश भी चरागाह की खोज में घूमने का साहस नही करते है।

पजाब हिमालय — हिमालय का वह भाग जो पजाब और हिमाचल प्रदेश में पडता है पंजाब हिमालय कहलाता है। इसमें हिमालय के तीनों खड, बृहत् हिमालय, लघु हिमालय तथा वाह्य हिमालय, स्पष्टत. विद्यमान हैं। सिंध और जेहलम के अतिरिक्त पंजाब के मैदान को उपजाऊ बनानेवाली सभी नदियाँ हिमालय के इसी भाग से निकली हैं।

काश्मीर की पीर पंजाल श्रेणी रावी के नदीशीर्ष से कुछ उत्तर

के पुनर्गठन के कारण इस राज्य में कुछ नए क्षेत्रों के सम्मिलित हो जाने से नेतृत्व संबंधी गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है और इन नए क्षेत्रों के विकास के लिये तेजी से कार्य करना आवश्यक हो गया है। [प्र० ना० मे०]

हिमालय पर्वतमाला भारत के उत्तर में भारत और तिब्बत के मध्य में सिंध एवं ब्रह्मपुत्र नदियों से घिरी हुई विश्व की सबसे विशाल पर्वतमाला है। यह उत्तर में तिब्बत और भारत एवं दक्षिण में भारत, सिक्किम, भूटान के मध्य प्राकृतिक रोध का कार्य करता है तथा भारत को उत्तर में शेष एशिया से पृथक् करता है। बरमा के उत्तरी सिरे पर यह पर्वतप्रणाली दक्षिण पश्चिम की ओर दोहरा मोड लेती है और पटकोई श्रेणी एवं पहाड़ी के रूप में आराकान योमा तक चली जाती है। इस पर्वतमाला की लंबाई २,५०० किमी, चौड़ाई १०० से लेकर ४०० मी तथा क्षेत्रफल लगभग ५,००,००० वर्ग किमी है। इस पर्वतमाला के कुछ शिखर विश्व के सर्वोच्च शिखर हैं। सिंध नद के उत्तर पश्चिम में इस पर्वतमाला का जो क्षेत्र हिंदूकुश की ओर पामीर से दक्षिण में फैला हुआ है ट्रैंस हिमालय कहलाता है। हिमालय पर्वतमाला पश्चिम से पूर्व की ओर धनुषाकार फैली हुई है और इसका उत्तलभाग भारत के उत्तरी मैदान की ओर है। हिमालय एक पर्वतमाला नही है, वरन् इसमे कई पर्वतश्रेणियाँ है।

प्राचीन भूगोलविद् भी इस पर्वतमाला से परिचित थे। वे इस पर्वतमाला को इमस (Imaus) या हिमस (Himaus) तथा हीमोड के नाम से जानते थे। इमस या हिमस नाम इस पर्वतमाला के पश्चिमी भाग और हीमोड नाम पूर्वी भाग के लिये प्रयुक्त होता था। सिकंदर के साथ आए यूनानियों ने इसे भारतीय कॉकेशस (Indian Caucasus) नाम से पुकारा था।

उच्च उभाड, हिमाच्छादित शिखर, गहरी कटी हुई स्थलाकृति, पूर्ववर्ती अपवाह, जटिल भूवैज्ञानिक संरचना तथा उपोष्ण अक्षांश में समृद्ध शीतोष्ण वनस्पति हिमालय की विशेषताएँ हैं। पश्चिम से पूर्व की ओर फैली इन पर्वतश्रेणियों को दो भागों में विभक्त किया गया है . (१) पश्चिमी हिमालय तथा (२) पूर्वी हिमालय। काली नदी पूर्व में पश्चिमी हिमालय की सीमा बनाती है जबकि सिंगालिला की ऊँची अनुप्रस्थ श्रेणी पूर्वी हिमालय की पश्चिमी सीमा बनाती है। उत्तर से दक्षिण की ओर हिमालय पर्वतमाला को तीन भागों में विभक्त किया गया है: (१) उत्तर में वृहत् हिमालय या हिमाद्रि (२) मध्य मे लघु हिमालय तथा (३) दक्षिण मे शिवालिक या बाह्य हिमालय।

(१) वृहत्‌हिमालय या हिमाद्रि — ये उत्तर में हिमालय की उच्च और प्रधान श्रेणियाँ हैं। वृहत् हिमालय नया नाम है। प्राचीन नाम हिमाद्रि था। इन श्रेणियों को पूर्व और पश्चिम दो भागों में बाँट सकते हैं। पश्चिमी भाग कराकोरम है। समुद्रतल से इस भाग की औसत ऊँचाई ८,००० मी से अधिक है। इस भाग का सर्वोच्च शिखर गॉडविन ऑस्टिन या के$_2$ (८,६११ मी) है। पूर्वी भाग में माउंट एवरेस्ट (८.८४८ मी) तथा कांचनजुंगा (८,५९८ मी) आदि स्थित हैं। यह पर्वतीय चाप पश्चिम और पूर्व में एकाएक समाप्त होकर अधःशायी शैलों की अक्षसंधि (Syntaxial) मोड़ की समानरूपता को प्रकट करता है। ये श्रेणियाँ असममित हैं जिनमें दक्षिण की ओर अत्यल्प पर्वतस्कंध (Spurs) हैं। इसकी उत्तरी ढाल धीरे धीरे ढालवाँ होती है और कुछ महत्वपूर्ण नदी घाटियों में चली जाती है। ये घाटियाँ बहुत दूर तक समांतर चली गई हैं। हिमाद्रि के क्रोड में ग्रेनाइट है तथा इसके पार्श्व मे रूपातरित तलछट हैं। इसकी दक्षिणी ढाल से सतलज एवं सिंध नदी तथा इसके पूरब से ब्रह्मपुत्र एवं सानपो नदी निकलती है।

(२) लघु हिमालय — यह वृहत् हिमालय के दक्षिण मे स्थित हिमालय की मध्यश्रेणी है। इसकी अधिकतम ऊँचाई लगभग ५,००० मी और चौड़ाई ७५ किमी है। काश्मीर की घाटी और नेपाल मे काठमांडू की घाटी वृहत् एवं लघु हिमालय के मध्य मे स्थित हैं। काश्मीर की घाटी समुद्रतल से १,७०० मीटर ऊँची, १५० किमी लंबी तथा ८० किमी चौड़ी है। यह श्रेणी अत्यधिक संपीडित एवं परिवर्तित शैलों की बनी है। इनका निर्माणकाल ऐल्गॉङ्किन (Algonkin) काल से लेकर आदिनूतन (Eocene) तक है। यहाँ के कुछ शिखर वर्ष भर हिमाच्छादित रहते हैं। इस श्रेणी का प्राचीन नाम हिमाचल है।

(३) बाह्य हिमालय — यह पर्वतमाला हिमालय का बाह्यतम गिरिपाद है। इसे शिवालिक पर्वत भी कहते हैं। यह लघु हिमालय एवं गंगा के मैदान के मध्य में स्थित है। इसकी औसत ऊँचाई ६०० मी से लेकर १,५०० मी तक है। इस श्रेणी को हिमालय से निकलकर मैदान में बहनेवाली अनेक नदियों ने कई भागों में बाँट दिया है। यह श्रेणी उत्तर पश्चिम में शिवालिक, उत्तर प्रदेश के उत्तर पूर्वी भाग में डुंडवा और बिहार में चुरिया आदि के नाम से प्रसिद्ध है। शिवालिक पहाड़ियाँ तृतीय काल के नवीनतम शैल हैं। इस पर्वतप्रणाली का नाम देहरादून के समीप की शिवालिक पहाड़ियों के नाम पर पड़ा है। यह पर्वतमाला सुदूर उत्तर में उठते हुए हिमालय की नदी के निक्षेप से बनी है। बाद में पृथ्वी की हलचल के कारण यह दृढीभूत, वलित एवं भ्रंशित हुई। मध्यनूतन (Miocene) से लेकर निम्न अत्यंत नूतन (lower pleistocene) तक के हिमालय के उत्थान के चिह्न इसपर मिलते हैं। कगारभ्रंश (fault scarps), अपनत शीर्ष (anticlinal crest) तथा अभिनत पहाड़ियाँ (Synclinal hills) शिवालिक की विशेषताएँ हैं। शिवालिक पहाड़ों के शिखरों पर कगार हैं तथा ढाल के उतार पर चौरस संरचनात्मक घाटियाँ हैं जिन्हें दून (dunes) कहते हैं। शिवालिक के आतरिक भाग मे समातर कटको और संरचनात्मक घाटियों की श्रेणियाँ हैं। शिवालिक पहाड़ियों में स्तनी वर्ग के समृद्ध जीवाश्म पाए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं: डिनोथेरियम, मैस्टोडोन, इलेफस, स्टेगोडोन, हिप्पोपोटमस, इक्वेथेरियम, सिवथेरियम, पल-हयेना, जिराफ, हिप्परिऑन तथा एप।

पश्चिमी हिमालय

पश्चिमी हिमालय को पश्चिम से पूर्व की ओर चार क्षेत्रों में

गई है। यह संरचनात्मकतः, अवनत घाटी है। भूस्खलन एवं हिम से ध्वस्त शैल सिक्किम में संचार को कठिन बना देते हैं। सिक्किम हिमालय की पश्चिमी सीमा सिंगालिला (Singalila) श्रेणी बनाती है। फलुत तक सिंगालिला के चौरस शिखर के कारण काचनजुंगा तथा वैसी ही दो अन्य चोटियों कब्रु (७,३१६ मी) और जनो (७,७१० मी) तक जाने का मार्ग सुगम है। डोंक्या (Dongkya) श्रेणी सिक्किम की पूर्वी सीमा बनाती है। यह श्रेणी बहुत दांतेदार है, केवल नातु ला (Natu La) और जेलेप ला (Jelep La) दर्रे पर्याप्त चिकने हैं और इनसे होकर सिक्किम से चुंबी घाटी को जानेवाले व्यापारिक मार्ग गए हैं।

दार्जिलिंग हिमालय — दार्जिलिंग हिमालय में मुख्यत उत्तरी एवं दक्षिणी दो श्रेणियाँ हैं। सिंगालिला श्रेणी पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले को नेपाल से पृथक् करती है। तराई के मैदानों से लेकर सेंचल शिखर (Senchal, २,६१५ मी) तक दार्जिलिंग श्रेणी एकाएक उठ गई है। दार्जिलिंग जिले में दार्जिलिंग श्रेणी के तीन उच्चतम शिखर हैं : संदकफू (Sandakphu, ३,६३० मी), सबरगम (३,५४३ मी) और फलुत (३,५९६ मी) दार्जिलिंग हिमालय का जल निकास पश्चिम से पूर्व की ओर मेची बालासन, महान रंगित और तिस्ता से होता है। तिस्ता सबसे बड़ी नदी है। पहाड़ियों के मध्य में तिस्ता की घाटी की आकृति आयत के रूप में है और इसकी अधिकतम लंबाई उत्तर से दक्षिण की ओर है। कोमल स्लेट और शिष्ट के काटने से तिस्ता की घाटी बनी है। तिस्ता, अपने और महान रंगित के संगम के दक्षिण में, अनुप्रस्थ अपनत के अक्ष के साथ साथ बहती है।

भूटान हिमालय — भूटान हिमालय का क्षेत्रफल २२,५०० वर्ग किमी है। इसके अंतर्गत गहरी घाटियाँ एवं उच्च श्रेणियाँ संमिलित हैं। थोड़ी थोड़ी दूर पर स्थलाकृतिक लक्षण तीव्रता से परिवर्तित हो जाते हैं अतः इनका जलवायु पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। भूटान की एक दिन की यात्रा में ही साइबीरिया की कड़ाके की ठंढ, सहारा की भीषण गरमी और भूमध्यसागरीय इटली के सुहावने मौसम सदृश मौसमों का अनुभव हो जाता है। भूटान में तोरसा नदी के पूर्व में शिवालिक श्रेणी पुन प्रकट होती है और भूटान राज्य की संपूर्ण लंबाई में यह श्रेणी फैली हुई है। भूटान हिमालय में दक्षिण की ओर जानेवाली श्रेणियाँ हैं। इनमें से मसंग क्युंग्दु (Masang Kyungdu) श्रेणी का शिखर चोमो ल्हारी (Chomo Lhari) ७,३१४ मी ऊँचा है। थिंफू (Thimphu) श्रेणी लिंगशी (Lingshi) शिखर (५,६२३ मी) से आगे बढ़ती है। लिंगशी श्रेणी में लिंगशी ला और युले ला दर्रे चुंबा घाटी में जाने के मार्ग हैं। थिंफू श्रेणी से पूर्व मे पुनखा घाटी है जिसका तल अत्यंत असम है।

असम हिमालय — हिमालय का सर्वाधिक पूर्वीय भाग असम के नेफा (Nepha) क्षेत्र में है। हिमालय के तीनो खंड, बृहत् हिमालय, लघु हिमालय एवं बाह्य हिमालय, असम हिमालय में हैं। असम हिमालय का क्षेत्रफल ६७,५०० वर्ग किमी है। ब्रह्मपुत्र घाटी के ऊपर जंगलों से भरी शिवालिक पहाड़ियाँ एकाएक ८०० मीटर ऊँची उठ जाती हैं। लघु हिमालय की अधिकांश श्रेणियाँ शीतोष्ण जंगलों से ढँकी हुई हैं। यहाँ बृहत् हिमालय (हिमाद्रि) का झुकाव उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम की ओर है और इसके अनेक शिखर ५,००० मी से अधिक ऊँचे हैं।

दिहांग नदी दिबांग एवं लुहित नदियों से मिलने के पश्चात् ब्रह्मपुत्र कहलाती है। दिहांग मानसरोवर से लगभग १०० किमी दक्षिण पूर्व में तछोग खबब छोरटेन (Tachhog khabab Chhorten) के समीप के चेमयुंगदुंग (Chemayoungdung) हिमनद के प्रोथ (Snout) से निकलती है। यह पूर्व की ओर तिब्बत में उथली घाटी में १,२५० किमी बहने के बाद दक्षिण की ओर तीव्रता से मुड़ जाती है और इस मोड़ तक यह सांपो (Tsangpo) कहलाती है।

पूर्वी हिमालय में पश्चिम हिमालय की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। दार्जिलिंग में लगभग २५४ सेमी वर्षा होती है। तराई के क्षेत्र में घास, ऊँची झाड़ियों एवं छोटे पेड़वाले जंगल हैं। असम हिमालय के जंगल उपोष्ण कटिबंधी से लेकर मानसूनी जलवायुवाले हैं। बांज, चेस्टनट, रोडोडेनड्रान, मैग्नोलिया तथा देवदार के वृक्ष मिलते हैं।

हिमालय की उत्पत्ति — हिमालय पर्वतमाला विश्व की नूतन पर्वतमालाओं में से एक है। इसका निर्माण बृहत् टेथिस सागर के तल के उठने से, आज से पाँच से छह करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था। हिमालय को अपनी पूर्ण ऊँचाई प्राप्त करने में ६० से ७० लाख वर्ष लगे। यह ऐल्पीयप्रणाली का वलित पर्वत है। भूविज्ञानियों का मत है कि प्राचीन काल में स्थल भाग के दो भूखंड थे। उत्तरी भूखंड से उत्तरी महाद्वीप, यूरेशिया आदि तथा दक्षिणी भूखंड से गोंडवाना, दक्षिणी भारत, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि बने। उत्तरी एवं दक्षिणी भूखंडों के मध्य में टेथिस (Tethys) नामक समुद्र था जिसका अवशेष अब का भूमध्यसागर है। टेथिस सागर में उत्तर (upper) कार्बनी कल्प से उपर्युक्त दोनों भूखंडों से कीचड़, मिट्टी आदि का जमाव होता रहा। इस जमाव का उत्थान पर्वतन गतिकाल (Period of orogenic) से आरंभ हुआ। यह उत्थान मध्य आदिनूतन (Eocene) से लेकर तृतीय महाकल्प के अंत तक तीन आंतरायिक प्रावस्थाओं में हुआ। पहली प्रावस्था पश्च नुमुलाइटिक (Post Numulitic) से लेकर आदिनूतन के अंत तक रही। दूसरी अवस्था लगभग मध्यनूतन (Miocene) मे हुई। तीसरी प्रावस्था, जो सबसे महत्वपूर्ण प्रावस्था है, पश्च अतिनूतन (post pliocene) कल्प से प्रारंभ हुई और अत्यंतनूतन कल्प के मध्य तक समाप्त नहीं हुई थी। इस प्रावस्था में हिमालय की वर्तमान शृंखला को बनाने के लिये श्रेणी के अक्षीय भाग के साथ बाह्य शिवालिक के गिरिपादों का उत्थान हुआ। टेथिस सागर का उपर्युक्त निक्षेप ६,००० मी से अधिक मोटा है और इसमें उत्तर कार्बनी, परमियन (Permian), ट्राइऐस (Trias), जुरैसिक (Jurassic), क्रिटेशस (Cretaceous) और आदिनूतन (Eocene) कल्प के निक्षेप हैं जिनमें लाक्षणिक जीवाश्मों की सुरक्षित सिलसिला है।

में हिमाचल प्रदेश में प्रवेश करती है और पूर्व की ओर १२० किमी तक चली गई है तथा उत्तर में चिनाब और दक्षिण में व्यास एवं रावी की जलविभाजक बनती है। यहाँ पीर पंजाल का उच्चतम शिखर ५,००० मी ऊँचा है और सदा हिमाच्छादित रहता है। रावी के दक्षिण मे व्यास की घाटी की ओर चापाकार हिमाच्छादित धवलाधर (Dhaoladhar) श्रेणी है और इसका उत्तल भाग कांगड़ा की घाटी की ओर है। धवलाधर का सर्वोच्च शिखर ५,००० मीटर से कुछ अधिक ऊँचा है। कांगड़ा घाटी व्यास नदी के जरा दक्षिण से धवलाधर श्रेणी के पाद से लेकर हमीरपुर पठार के उत्तरी छोर तक चली गई है। हिमालय के इस भाग का महत्व संभावित खनिज तेल संपदा के कारण बढ़ गया है। व्यास के ऊपर का भाग कुलु घाटी कहलाता है और यह रोहतांग दर्रे (Rohtang pass) द्वारा लाहुल एवं स्पिटी घाटी से संबंधित है। कुलु के दो उच्च शिखर देओ तिब्बा (Deo Tibba, ६,००१ मी) तथा इंद्रासन (६,२२० मी) हैं।

कुमायूँ हिमालय — हिमालय का यह भाग उत्तर प्रदेश राज्य में है। इस भाग मे गंगा एवं यमुना नदियों के स्रोत हैं। कुमायूँ हिमालय का क्षेत्रफल लगभग ३८,००० वर्ग किमी है और हिमालय के तीनों खंड, बृहत् हिमालय, लघु हिमालय तथा बाह्य हिमालय, इस क्षेत्र में हैं।

कुमायूँ हिमालय मे बृहत् हिमालय का क्षेत्रफल लगभग ६,६०० वर्ग किमी है। गंगोत्री हिमाल गंगोत्री एवं केदारनाथ हिमनदों का और नंदादेवी हिमाल माइलम एवं पिंडारी हिमनदों का भरण करते हैं। गंगोत्री हिमनद ३० किमी लंबा है और इसके चार सहायकों में से प्रत्येक ८ किमी लंबा है। बद्रीनाथ के ठीक ऊपर नीलकंठ है। कुमायूँ हिमालय का सर्वोच्च शिखर नंदादेवी (७,८१७ मीटर) है। नंदादेवी के पूर्वी एवं पश्चिमी शिखरों को ३ किमी लंबे एवं ७,५०० मी ऊँचे भयावह क्रकची कटक जोड़ते हैं। दूनागिरि (७,०६६ मी) उत्तरी भुजा के दक्षिणी सिरे पर तथा त्रिशूल (७,१२० मी) दक्षिणी भुजा पर है। यहाँ अन्य शिखर नंदकोट (६,८६१ मी), नंदाकना (६,३०९ मी) तथा नंदाघुंती (६,०६३ मी) हैं। सुदूर पश्चिम में जास्कार श्रेणी पर कामेट हिमाल है जिसका कामेट शिखर ७,७५६ मी ऊँचा है। विष्णुगंगा के पश्चिम में गंगोत्री हिमालय के ऊपर शिखरों का दूसरा समूह है जिसमें निम्नलिखित शिखर संमिलित हैं : सटोपंथ (७,०८४ मी), बद्रीनाथ (७,१३८ मी), केदारनाथ (६,९४० मी), गंगोत्री (६,६१४ मी) तथा श्रीकंठ (६,७२८ मी)।

कुमायूँ हिमालय के लघु हिमालय के खंड में मुख्यत: दो रेखीय श्रेणियाँ हैं : मसूरी और नागटिब्बा। मसूरी श्रेणी मसूरी नगर से लैंसडौन तक १२० किमी लंबाई में फैली हुई है। इस श्रेणी की २,००० मी से २,६०० मी की ऊँचाई तक की चोटियों पर अनेक पहाड़ी नगर हैं। देहरादून से यह दक्षिणी खड़ी ढाल सहित समतल शीर्षवाली श्रेणी दिखाई पड़ती है। मसूरी हिमालय के पहाड़ी नगरों की रानी कहलाता है। नैनीताल के समीप अनेक ताल हैं जिनमें से नैनीताल एवं भीमताल उल्लेखनीय हैं। नैनीताल से ३० किमी उत्तर में दूसरा पहाड़ी नगर रानीखेत है।

कुमायूँ हिमालय अर्थात् शिवालिक श्रेणियाँ, गंगा एवं यमुना नदियों के मध्य में ७४ किमी तक फैला हुआ है और जंगलों से अच्छादित इसकी ढालें और समतल चोटियाँ ९०० मी से लेकर, १,००० मी तक ऊँची हैं। शीर्ष सामान्यत: कठोर संगुटिकाश्म का बना हुआ है और ढालें कोमल चूनापत्थर के बनी हैं। हरद्वार से ऋषिकेश तक शिवालिक माला मे गहरी ढालों एवं कगारों के अनुक्रम हैं। शिवालिकमाला के पीछे संरचनात्मक गर्त समांतर चले गए हैं और ये पश्चिम में पूर्व की अपेक्षा अधिक विकसित हैं। पश्चिम में देहरादून प्ररूपी संरचनात्मक गर्त है जो ७५ किमी लंबा और १५-२० किमी चौड़ा है।

मध्य हिमालय

मध्य हिमालय का क्षेत्रफल १,१६,८०० वर्ग किमी है और संपूर्ण नेपाल इसमे स्थित है। पश्चिम में कर्नाली नदी, मध्य में गंडक और पूर्व मे कोसी नदी द्वारा यहाँ के जल का निकास होता है। नेपाल की मध्य घाटी, जहाँ नेपाल की राजधानी काठमांडू स्थित है, नेपाल को दो भागों मे विभक्त करती है। नेपाल की घाटी रूपांतरित अवसारी शैल की अपनत (anticlinal) पहाड़ियों के कटने से बनी है। उत्तर में अभिनत (Synclinal) पहाड़ियाँ इसे घेरे हुए हैं और दक्षिणी भाग उच्चावाच प्रतिलोमन (inverce of relief) प्रदर्शित करता है। संसार के आठ हजार मीटर ऊँचाईवाले शिखरों में से अधिकांश यहीं हैं। यहाँ पश्चिम से पूर्व की ओर मिलनेवाले शिखर ये हैं धौलागिरी (८,१७२ मी), अन्नपूर्णा (८,०७८ मी), मनासल (८,१५६ मी), गोसाईंथान (८,०१३ मीटर), चो ओयू (Cho oyu, ८,१५३ मी), माउंट एवरेस्ट (८,८४८ मी), मकालू (८,४८१ मी), एवं कांचनजुंगा (८,५९८ मी)। विश्व का सर्वोच शिखर माउंट एवरेस्ट एकनत (uniclinal) संरचना है जो १,०७० मी मोटी है तथा रूपांतरित चूनापत्थर एवं अन्य अवसादों से बनी है। उपर्युक्त सभी शिखर सदा हिमाच्छादित रहते हैं और अनेक हिमनदों का भरण करते हैं।

पूर्वी हिमालय

पूर्वी हिमालय के पश्चिमी भाग के अंतर्गत सिक्किम हिमालय, दार्जिलिंग हिमालय आते हैं तथा पूर्वी हिमालय के शेष भाग को असम हिमालय घेरे हुए है।

सिक्किम हिमालय — बृहत् हिमालयमाला सिक्किम में प्रवेश करते ही अपनी दिशा बदलकर पूर्ववर्ती हो जाती है और इस दिशा मे ४२० किमी तक, कंगटो (Kangto, ७,०९० मी) तक चली जाती है। और अंत मे इसकी दिशा उत्तर पूर्व की ओर हो जाती है तथा ३०० किमी दूर नमचा बरवा (७,७५६ मी) मे समाप्त हो जाती है। सिक्किम में हिमालय की दक्षिणी सीमा पर शिवालिक श्रेणी का केवल संकीर्ण फ्रिंज (fringe) है। जहाँ कहीं भी प्रमुख हिमालय क्षेत्र दक्षिण की ओर बढ़ा है, वहाँ शिवालिक श्रेणी तिरोहित हो गई है।

सिक्किम हिमालय के अंतर्गत बृहत् नदी घाटी है, जो तिस्ता नदी और उसकी अनेक सहायक नदियों द्वारा चौड़ी एवं गहरी की

मिलते हैं। शिवालिक में मध्यनूतन तथा अतिनूतनकल्प के स्तनधारियों से सबधित स्तनधारियों के ८४ स्पेशीज के जीवाश्म मिलते हैं। लगूर लगभग ४००० मी की ऊँचाई तक मिलते हैं। हिमालय के जगलों मे लोमडी एव भेडिये नही मिलते। पर ये दोनों जतु एवं वनबिलाव, हिमप्रदेशी चीता, जगली गदहा, कस्तूरीमृग, बारहसिंहा और भेड तिब्बत की ओर के हिमालय में मिलते हैं। जगली क्षेत्रों में जगली कुत्ता एव जगली सूपर मिलते हैं लेकिन गवल नीची भूमि पर पाए जाते हैं। पूर्वी हिमालय में चीटीखोर के दो स्पेशीज मिलते हैं। अधिक ऊँचाई पर याक मिलते हैं जो बालो की मोटी तहों से ढँके रहते हैं।

महाश्येन, गिद्ध और अन्य शिकारी पक्षी हिमालय में ऊँचाई पर मिलते हैं। भारत की ओर के मैदानो से लगे जगलो में मोर मिलते हैं। यहाँ तीतर और चकोर भी मिलते हैं जो ऊँचाई पर हिम में रहने के लिये अनुकूलित हो गए हैं।

भारत की ओर के हिमालय में अजगर मिलते हैं। नाग लगभग २,००० मी की ऊँचाई तक मिलते हैं। छिपकलियाँ तथा मेंढक असाधारण ऊँचाई तक मिलते हैं। फ्रिनोसीफेलस (Phrenocephalus) छिपकली एव मेढक तिब्बत में भी पाए गए हैं। हिमालय के जल में कैटफिश या कार्प कुल की मछलियाँ मिलती हैं। कैटफिश की कुछ जातियाँ तथा कार्प की अनेक जातियाँ तिब्बत के जल में मिलती हैं। तीव्र पर्वतीय जलप्रवाह में रहनेवाली मछलियो में शैलो को पकडने के लिये, चूषक (Suckers) रहते हैं। हिमालय क्षेत्र मे सैलमॉन कुल की मछलियाँ नही मिलती हैं। यहाँ तितलियों के कई कुल मिलते हैं जिनमें से प्रमुख ये हैं: पैपिलिग्रानिडी (Papilionidae), निंफैलिडी (Nymphalidae), मार्फिडी (Morphidae) तथा डनेडी (Danaidae)।

हिमालय का महत्व — भारत के उत्तरी मैदान के निर्माण, आर्थिक जीवन एव जलवायु पर हिमालय का बहुत प्रभाव पडा है। यदि उत्तर में हिमालय न होता तो सिंध एव गगा का विशाल उपजाऊ मैदान आज मरुभूमि होता। हिमालय ही भारत की अधिकाश वर्षा का कारण है। गरमी के दिनो में हिमालय दक्षिण पश्चिमी मानसूनी हवाओं को भारत में ही रोक लेता है जिससे उत्तरी भारत के मैदान एव हिमालय की भारतीय ढालो पर घोर वर्षा होती है। इस वर्षा के कारण अनेक नदियाँ हिमालय से निकलकर मैदान में बहती हैं, जिनसे बहुत सी मिट्टी बहकर सिंध गगा के मैदान में एकत्र होती है जिससे भूमि उर्वरा हो जाती है। हिमालय के स्थायी हिमाच्छादित भागो में गरमी के मौसम मे बर्फ पिघलती है जिसके कारण गगा के मैदान की हिमालय से निकलनेवाली नदियों में ग्रीष्म में भी जल रहता है।

शीतकाल से ध्रुवीय ठढी हवाओ के कारण मध्य एशिया का अधिकाश जम जाता है और वहाँ ठढी हवाओं की आँधियाँ चलती हैं, पर हिमालय की ऊँची श्रेणियाँ इन हवाओ को भारत में आने से रोकती हैं और भारत शीतकाल में जमने से बच जाता है।

हिमालय की २,५०० किमी लबाई उत्तर में भारत की सीमा बनाती है और भारत को उत्तरी एशिया से पृथक् करती है। इससे देश की सुरक्षा होती है। हिमालय में उत्तर पश्चिम में खैबर, बोलन, गोमल आदि दर्रे हैं जो भारत एव मध्य एशिया के बीच प्राचीन व्यापारिक मार्ग हैं। हिमालय की तराई में घने वनो की पट्टियाँ हैं जिनसे उपयोगी लकडी, जडीबूटी आदि प्राप्त होती हैं। हिमालय की घाटियों में स्थित पहाड़ी नगर ग्रीष्म ऋतु में भारत के मैदानी प्रदेशो के लिये प्रमुख आकर्षण के स्थान हैं। काश्मीर तो विश्व भर के पर्यटको के आकर्षण का केंद्र है। इससे भारत को पर्याप्त विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। श्रीनगर, शिमला, अल्मोडा, मसूरी, नैनीताल, दार्जिलिंग, शिलौंग आदि प्रसिद्ध पर्वतीय नगर हैं जहाँ लोग ग्रीष्म ऋतु में मैदानी गरमी से बचने के लिये जाकर रहते हैं।

[प्र० ना० मे०]

हिरण्याक्ष कश्यप और दिति का पुत्र और हिरण्यकशिपु का भाई। इसकी पत्नी का नाम उपदानवी तथा पुत्रो के नाम शबर, शकुनि, कालनाम, महानाम, उलूक तथा भूतसतापन था (मत्स्य पृ० ६ १४)। इसने देवताओं को त्रस्त कर रसातल में प्रवेश किया। वही वराह रूपधारी विष्णु द्वारा मार डाला गया। मत्स्यपुराण के अनुसार उसकी मृत्यु शाकद्वीप के सुमन पर्वत पर हुई। [च० भा० पां०]

हिरॉडोटस यूनानी इतिहासकार का जन्म एशिया माइनर में केरिया (Caria) के हालीकारनासस (Halicarnassus) में ईसा से लगभग ४८४ वर्ष पूर्व हुआ था। उसने बडे विस्तृत भूखड का भ्रमण किया और इटली के थुरी ब्रूटियम में लगभग ४२४ ई० पू० उसकी मृत्यु हुई।

हेरोडोटस ने यूनान और फारस के युद्ध (४६० ई० पू०–४७६ ई० पू०) से सबधित 'हिस्टोरिया' (Historiae) के लिये हालीकारनासस को ४५७ ई० पू० में छोडा और तत्कालीन ज्ञात ससार के बहुत से देशों का भ्रमण किया। उसने फोनिशिया (Phoenicia), मिस्र, लिबिया, अरब, मेसोपोटामिया, एशिया माइनर, सीथिया (scythia) थ्रेस और यूनान की यात्रा की। तत्पश्चात् वह थुरी में निवास करने लगा और वहीं पर इतिहास लिखने का काम किया। यह इतिहास ६ खडों में है और आइओनिक (Ionic) भाषा में लिखा हुआ है। इसमें फारस, लीडिया (Lydia) और मिस्र का पूर्वकालीन इतिहास है और विशेषकर यूनान और फारस के सघर्ष का उल्लेख है। यह इतिहास ४७६ ई० पू० तक का है। इसमे हमें माराथान (Marathon), थर्मोपाइली (Thermopylae) और सालामीज (Salamis) के बारे में बहुत सा ज्ञान प्राप्त होता है। इन ग्रथो मे भावाभिव्यक्ति इतनी उत्कृष्ट है कि प्राचीन काल से ही हिरोडोटस को फादर आव हिस्ट्री या 'इतिहास का जनक' कहा जाता है। उसकी पुस्तकों में इतिहास तथा भूगोल के विस्तृत वर्णन और रहन सहन तथा रीति रिवाज एव ख्यातिप्राप्त महान् व्यक्तियो का चित्रण किया गया है। इस क्रम में एक बहुत बड़े इतिहासकार एडवर्ड गिब्बन (१७३७–१७६४ ई०) ने कहा है, 'हिरोडोटस कभी कभी बच्चों के लिये तो कभी कभी दार्शनिकों के लिये लिखता है'। अल्फ्रेड डी० गाडले का ४ खडो में 'हिरॉडोटस'

भूविज्ञान — मध्य एशिया के वृहत पठार के साथ साथ भूपर्पटी के तीव्र आमोटन (Crumpling) से हिमालय का निर्माण हुआ है। हिमालय के पर्वतीय चाप के बाहर साल्टश्रेणी के अतिरिक्त भारतीय प्रायद्वीप में और कहीं भी इस आमोटन का प्रभाव परिलक्षित नही हुआ है। भारतीय प्रायद्वीप में पुराजीवी (Palaeozoic) महाकल्प के पहले का कोई भी वलन नहीं है। हिमालय में भूविज्ञानी अनुक्रम (कैब्रियन से आदिनूतन तक) लगभग पूर्णतः समुद्री हैं। श्रेणी में प्राय: अतराल भी हैं, पर इस लंबी अवधि में संपूर्ण उत्तरी भाग टेथिस सागर के अंदर रहा। भारतीय प्रायद्वीप में जुरैसिक और क्रिटेशसकल्प के पूर्व के समुद्री जीवाश्म कहीं नहीं प्राप्त हुए हैं। हिमालय की वलित समुद्री तहो के मध्य में तथा सिंध और गगा के मैदान के क्षैतिज स्तरों के मध्य में जलोढ एवं हवा द्वारा लाए गए नूतन निक्षेपो की मोटी तह है। यह स्पष्ट है कि हिमालय के संमुख वृहत गर्त है पर इसका कोई प्रमाण नहीं है कि यह गर्त समुद्र के अदर रहा।

भूविज्ञानी दृष्टि से हिमालय को तीन क्षेत्रों में विभक्त कर सकते हैं : (१) उत्तरी क्षेत्र (तिब्बती क्षेत्र), (२) हिमालयी क्षेत्र तथा (३) दक्षिणी क्षेत्र।

(१) उत्तरी क्षेत्र — उत्तर पश्चिम को छोड़कर इस क्षेत्र में पुराजीवी एव मध्यजीवीकल्प के जीवाश्मवाले स्तर अत्यधिक विकसित हैं। दक्षिणी पार्श्व मे इस प्रकार के शैल नही हैं।

(२) हिमालयी क्षेत्र — इस क्षेत्र के अंतर्गत वृहत् एवं लघु हिमालय का अधिकाश समिलित है। यह क्षेत्र रूपातरित एवं क्रिस्टलीय शैलो से निर्मित है तथा यहाँ के जीवाश्महीन स्तर पुराजीवीकल्प के हैं।

(३) दक्षिणी क्षेत्र — इस क्षेत्र के स्तर तृतीय कल्प के, विशेषत: उच्च तृतीय कल्प के हैं। इस क्षेत्र के प्राचीनतम स्तर स्पिटी घाटी में हैं तथा ये आद्यमहाकल्प के नाइस के बने हैं। ये स्तर जीवाश्मवाले स्तर हैं और कैंब्रियनप्रणाली के हैं। स्पिटी क्षेत्र के निम्न पुराजीवीकल्प के स्तरो में कोई अव्यवस्था नहीं है लेकिन मध्य हिमालय के अन्य भागो में परमियनकाल के प्राचीन स्तरो के संगुटिकाश्म विषमतः विन्यस्त हैं। यह सगुटिकाश्म महत्वपूर्ण आधाररेखा (datum line) बनाता है। परमियन से लेकर लिएस (Lias) तक मध्य हिमालय में अंतराल के कोई चिह्न नही हैं। स्पिटी शेल अनुगामी हैं, यद्यपि इनमें मध्य एवं उच्च जुरेसिक के जीवाश्म मिलते हैं, तथापि इनके आधार पर कोई अतराल सिद्ध नहीं होता है। स्पिटी शेल क्रिटेशस स्तरो का समविन्यस्ततः अनुवर्ती है और ये दोनो बिना किसी अतराल के आदिनूतनकल्प की नुमुलिटी स्तरों (Nummulitic beds) का अनुगमन करते हैं। तृतीय कल्प का प्रारभ भीषण आग्नेय सक्रियता द्वारा चिह्नित है जिसमें अंतर्वेधन (Intrusion) एवं बहिर्वेधन (Extrusion) हुआ। दूसरा अगामी निक्षेप चूनापत्थर है जो प्राय अधिक झुका हुआ और नुमुलिटी स्तरो पर विषमतः विन्यस्त है तथा उप हिमालय के निम्नशिवालिक से मिलता जुलता है पर पर इसमें कोई भी जीवाश्म नही मिला है। संपूर्ण पर हुद (Hundes) के नवीन तृतीयक काल के स्तर विषमविनस्यत उपरिशायित हैं और ये स्तर वलित एवं क्षैतिज हैं।

हिमालय की पट्टी के उत्तरी भाग में, कम से कम स्पिटी क्षेत्र में, उत्तरी आद्यकल्प के तथा किसी भी विस्तार के वलन नही हैं। वलन, हुद के तृतीय काल के स्तरों के बनने के पूर्व ही, पूर्ण हो गया था। अत इस भाग की शृखलाओं का उत्थान मध्यनूतन (Miocene) कल्प में आरंभ हुआ था, जबकि शिवालिक सदृश चूनापत्थर का विक्षोभ यह प्रकट करता है कि वलन अतिनूतन (Pliocene) कल्प तक चलता रहा। हिमालय के दक्षिणी पार्श्व में शृंखलाओं के निर्माण का इतिहास अधिक स्पष्ट है। उपहिमालय तृतीयकाल के स्तरों का बना हुआ है जबकि निम्नहिमालय तृतीयपूर्वकाल के स्तरो का बना है और इन स्तरो में कोई जीवाश्म नहीं मिला है। इस शृखला की सपूर्ण लबाई मे जहाँ कहीं भी शिवालिक का तृतीयपूर्वकाल के शैलो से सगम हुआ है वहाँ उत्क्रमित भ्रंश (Reversed fault) दिखाई पडता है। इस भ्रंश का शीर्ष अदर शृखला के केंद्र की ओर है। प्राचीन शैल, जो मुख्य हिमालय का निर्माण करते हैं, आगे की ओर उपहिमालय के नवीन स्तरों के ऊपर ढकेल दिए गए हैं। लगभग प्रत्येक जगह भ्रंश शिवालिक स्तरो की उत्तरी सीमा बनाता है। वास्तव में भ्रंश मुख्यत. शिवालिक स्तरों के निक्षेप के कारण उत्पन्न हुए हैं और जैसे ही ये बने हिमालय आगे की ओर इनपर ढकेल दिया गया जिससे ये वलित एव उल्टे हो गए। शिवालिक नदीय (Fluviatile) एवं वेगप्रवाही (Torrential) निक्षेप हैं और उन्ही निक्षेपों के समान हैं जो सिंध गगा के मैदान में गिरिपादो पर बने हैं। उत्क्रमित भ्रंश लगभग समातर भ्रंशो की माला है। हिमालय दक्षिण की ओर अनेक अवस्थाओं में बना है। शृंखला के पाद पर उत्क्रमित भ्रंश बना और इसपर पर्वत अपने आधार के स्तरो पर आगे की ओर ढकेल दिए गए और इस प्रक्रिया में उनमें आमोटन एवं वलन हुए तथा मुख्य शृखला के संमुख उपहिमालय बना। यह प्रक्रिया अनेक बार दोहराई गई। इस क्षेत्र में होनेवाले आजकल के भूकंप भ्रंशरेखा पर खोजे जा सकते हैं और ये इस बात के प्रतीक हैं कि पर्पटीय सतुलन अभी तक नही हुआ है।

जलवायु — २१३९ मी की ऊँचाई पर जाडे मे औसत ताप ५° सें० और ग्रीष्म का औसत ताप १८° से० रहता है पर घाटियों में मई एव जून के महीनो में दिन का ताप ३२° सें० से लेकर ३८° सें० रहता है। जाड़े में ३००० मीटर की ऊँचाई पर ताप ०° सें० रहता है। ४००० मीटर की ऊँचाई पर ताप मई के अंत से लेकर अक्टूबर के मध्य तक हिमांक से ऊपर रहता है। ५,००० मी की ऊँचाई पर ताप कभी भी हिमाक से ऊपर नही जाता चाहे कितनी ही गरमी क्यों न पड़े। तिब्बत का ताप हिमालय के ताप की अपेक्षा अधिक परिवर्तनशील है। तिब्बत में ४००० मी की ऊँचाई पर सर्वाधिक गरम महीनो में भी ताप लगभग १५° सें० रहता है। पश्चिम की अपेक्षा पूर्वी हिमालय में अधिक वर्षा होती है।

वन्यजंतु — भारत की ओर के हिमालय मे लंगूर, हाथी, गैंडा, बाघ, तेंदुआ, गंधमार्जार, नेवला, भालू, मोल आदि

बनना, बहरापन, हँसने या चिल्लाने का दौरा आदि है। रोग के लक्षण एकाएक प्रकट या लुप्त हो सकते हैं पर कभी कभी लगातार सप्ताहों अथवा महीनों तक दौरे बने रह सकते हैं। युद्धकाल में ऐसे रोगी भी पाए गए जो कुछ समय के लिये अथवा जीवनपर्यंत अपने को भूल गए हैं।

हिस्टीरिया का उपचार संवेदनात्मक व्यवहार, पारिवारिक समायोजन, शामक ओषधियों का सेवन, सांत्वना, बहलाने, तथा पुनःशिक्षण से किया जाता है। समय समय पर पक्षाघातित अंगों के उपचार हेतु शामक ओषधियों तथा विद्युत् उद्दीपनों की भी सहायता ली जाती है। रोग का पुनरावर्तन प्राय होता रहता है।

[नि० न० गु०]

हीर राँझा पंजाब की प्रेमकथाओं में सबसे प्रसिद्ध और पुरातन किस्सा। हीर (नायिका) झंग (लाहौर से पश्चिम) के सरदार, चूचक स्याल की लड़की थी। राँझा (नायक) तख्त हजारे का रहनेवाला था। अपनी भाभियों के दुर्व्यवहार से तंग आकर वह झंग में आ गया। वहाँ चिनाब के किनारे उसकी मुलाकात हीर से हुई। शीघ्र ही दोनों में प्रेम हो गया। राँझा चूचक की भैंसें चराने पर नौकर हो गया। हीर और राँझा का प्रेम बढ़ने लगा। बात खुल गई तो माँ बाप ने हीर को कहीं अन्यत्र ब्याह दिया। राँझा जोगी का वेश बनाकर वहाँ पहुँचा और हीर को निकाल लाया, किंतु विरोधियों ने उन्हें रास्ते में आ घेरा। इस किस्से के प्रथम कवि, दामोदर, के अनुसार एक मध्यस्थ के निर्णय से हीर राँझा को सौंप दी गई और वे दोनों मक्के की यात्रा पर चले गए। वारिस-शाह और उसके बाद के कवियों के किस्से दुखांत हैं। हीर ने माँ बाप के दिए विष से और राँझा ने हीर के वियोग में प्राण दे दिए।

लोकविश्वास के अनुसार यह घटना सच्ची बताई जाती है। हीर की समाधि झंग में स्थित है। दामोदर कवि अकबर के राज्यकाल में हुआ है। वह अपने को हीर के पिता चूचक का मित्र बताता है और कहता है कि यह सब मेरी आँखों देखी घटना है। दामोदर (१५७२ ई०) के बाद पंजाबी साहित्य में लगभग ३० किस्से 'हीर' या 'हीर राँझा' नाम से उपलब्ध हैं जिनमें गुरदास (१६०७), अहमद गूजर (१६६२), गुरु गोविंदसिंह (१७००), मियाँ चिराग अवान (१७१०), मुकबल (१७५५), वारिसशाह (१७७५), हामिदशाह (१८०५), हाशिम, अहमदयार, पीर मुहम्मद बख्श, फजलशाह, मौलाशाह, मौलाबख्श, भगवानसिंह, किशनसिंह आरिफ (१८८९), संत हजारासिंह (१८९४), और गोकुलचंद शर्मा के किस्से सर्वविदित हैं, किंतु जो प्रसिद्धि वारिसशाह की कृति को प्राप्त हुई वह किसी अन्य कवि को नहीं मिल पाई। नाटकीय भाषा, अलंकारों और अन्योक्तियों की नवीनता, अनुभूति की विस्तृति, आचार व्यवहार की आदर्शवादिता, इश्क मजाजी से इश्क हकीकी की व्याख्या, वर्णन और भाव का ओज इत्यादि इनके किस्से की अनेक विशेषताएँ हैं। इसमें बैंत छंद का प्रयोग अत्यंत सफलतापूर्वक हुआ है। ग्रामीण जीवन के चित्रण, दृश्यवर्णन, कल्पना और साहित्यिकता की दृष्टि से

१९२०-२४ ई० मे लंदन मे प्रकाशित हुआ। यूनानी भाषा के साथ साथ अंग्रेजी अनुवाद अत्यंत सुंदर है। [शा० ला० का०]

हिरोशिमा स्थिति ३४° २३′ उ० अ० एवं १३२° २८′ पू० दे०। जापान के हांशू द्वीप के दक्षिणी तट पर स्थित यह नगर हिरोशिमा प्रिफेक्चर की राजधानी, एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र एवं बंदरगाह है। यह ओसाका के १८० मील पश्चिम में आंतरिक समुद्रतट पर हिरोशिमा खाडी पर सघन जनसंख्यावाले क्षेत्र के मध्य में स्थित है। इस नगर के समीप में ही इत्सुकू या इताकू शिमा का पवित्र स्थान है। इताकू शिमा का अर्थ प्रकाश द्वीप है जो बेंटेन नामक देवी को समर्पित है। इस द्वीप के कारण हिरोशिमा संपूर्ण जापान में विख्यात है। यह हांशू के अन्य भागों से नदी, रेल एवं नहरों से मिला हुआ है। सिल्क, सूती वस्त्र, यंत्र, जलयान, मोटर, रबर, फल एवं मत्स्य उद्योग उल्लेखनीय हैं। हिरोशिमा द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व एक महत्वपूर्ण औद्योगिक, रेलमार्ग केंद्र, बंदरगाह एवं सैनिक केंद्र था। ६ अगस्त, १९४५ को संयुक्त राज्य की सेनाओं ने इस नगर पर पहला परमाणु बम गिराया जिससे दो तिहाई भवन नष्ट हो गए एवं लगभग ८० हजार लोगों की मृत्यु हुई। इसके तीन दिन बाद नागासाकी पर बम गिराया गया और शीघ्र ही १४ अगस्त, १९४५ को जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया। मृतकों की संख्या के बराबर ही घायल, पंगु, रुग्ण एवं बीमारों की संख्या थी।

बम गिरने के स्थान पर एक अंतरराष्ट्रीय शांति चैत्य बनाया गया है। मिसेन (Misen) ५४० मी सर्वोच्च बिंदु है। यहाँ से नगर का दृश्य बहुत ही मनोहर लगता है। बहुत से मंदिर, चैत्य तथा पगोडा यहाँ हैं। हिरोशिमा में विश्वविद्यालय एवं संग्रहालय हैं।

इस नगर की जनसंख्या ४,३१,२८५ (१९६०) है।

[रा० प्र० सिं०]

हिशाम इब्न अल कालबी इराक में कूफाह का एक परिवार अल कालबी, जो ८वीं और ९वीं शताब्दियों मे उन्नति पर था। हिशाम के पिता अबुल नजर मुहम्मद इतिहास तथा भाषाविज्ञान के अध्ययन मे लीन रहते थे। उनकी मृत्यु २०४ से २०६ हिजरी (८१९-८२१ ई०) के बीच में हुई।

अबुल मुनजिर हिशाम ने अपने पिता की इतिहास अध्ययन की परंपरा को जारी रखा। रूढ़िवादी आलोचकों ने दोनों विद्वानों की प्राय निंदा की है और उनपर जालसाजी का भी आरोप लगाया है किंतु आधुनिक अनुसंधान से इस बात की पुष्टि हो गई है कि उनके बहुत से मत सत्य हैं। उन्होंने ये मत प्राय: वैज्ञानिक पद्धति से निश्चित किए थे। [मु० या०]

हिसार हरियाणा राज्य (भारत) का एक जिला और नगर है। जिले की जनसंख्या १५,४०,५०८ (१९६१) तथा क्षेत्रफल १३,९३४ ३५ वर्ग किमी० है। बीकानेर के महान् मरुस्थल के उत्तरपूर्वी सीमा पर यह जिला स्थित है। इसमें अधिकांशत. ठिगने वृक्ष और झाड़ियों से युक्त बलुए मैदान हैं जो दक्षिण में चलकर विशृंखलित एवं असम हो गए हैं। दक्षिण के उठे हुए चट्टानी पहाड संकृत सागर के द्वीप जैसे लगते हैं। अनिश्चित रूप से जल आपूर्ति करनेवाली घाघर एकमात्र नदी है। यमुना नहर जिला से होकर जाती है। जलवायु शुष्क है। कपास पर आधारित उद्योग होते हैं। भिवानी, हिसार, हांसी तथा सिरसा मुख्य व्यापारिक केंद्र हैं। अच्छी नस्ल के साँडों के लिये हिसार विख्यात है।

मुस्लिम विजय के पूर्व हिसार का अर्ध बलुआ भाग चौहान राजपूतों का प्रधान स्थान था। १८वीं शताब्दी के अंत में भट्टी और भटियाला लोगों ने इसे अधिकृत किया था। १८०३ ई० में अंशत यह ब्रिटिश अधिकार में आ गया किंतु १८१० ई० तक इनका शासन लागू न हो सका। १८५७ ई० के प्रथम स्वतंत्रता युद्ध. जिसे अंग्रेज सैनिक विद्रोह कहते हैं, के बाद निरापद रूप से, हिसार ब्रिटिश अधिकार मे आ गया।

जिला मुख्यालय हिसार नगर में है। नगर की जनसंख्या ६०,२२२ (१९६१) तथा क्षेत्रफल १७·५३ वर्ग किमी है। दिल्ली से १५५ किमी उत्तर पश्चिम पश्चिमी यमुना नहर पर स्थित हिसार राजकीय पशु फार्म के लिये विशेष विख्यात है। सम्राट् फिरोजशाह ने १३५६ ई० में इसकी स्थापना की थी। १७८३ ई० के दुर्भिक्ष में हिसार प्राय: पूर्णत: जनहीन हो गया था, किंतु आयरलैंड के साहसी जार्ज थामस ने एक दुर्ग बनवाकर इसे पुन: बसाया।

[शा० ला० का०]

हिस्टीरिया (Hysteria) की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है। बहुधा ऐसा कहा जाता है, हिस्टीरिया अवचेतन अभिप्रेरणा का परिणाम है। अवचेतन अंतर्द्वंद्व से चिंता उत्पन्न होती है और यह चिंता विभिन्न शारीरिक, शरीरक्रिया संबंधी एवं मनोवैज्ञानिक लक्षणों मे परिवर्तित हो जाती है। रोगलक्षण में पाए सांकेतिक अभिव्यक्ति पाई जाती है। तनाव से छुटकारा पाने का हिस्टीरिया एक साधन भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, अपनी विकलांग सास की अनिश्चित काल की सेवा से तंग किसी महिला के दाहिने हाथ में पक्षाघात संभव है।

अधिक विकसित एवं शिक्षित राष्ट्रों में हिस्टीरिया कम पाया जाता है। हिस्टीरिया भावात्मक रूप से अपरिपक्व एवं संवेदनशील, प्रारंभिक बाल्यकाल से किसी भी आयु के, पुरुषों या महिलाओं में पाया जाता है। दुर्लालित एवं आवश्यकता से अधिक संरक्षित बच्चे इसके अच्छे शिकार होते हैं। किसी दु:खद घटना अथवा तनाव के कारण दौरे पड सकते हैं।

रोग के लक्षण बड़े विस्तृत हैं। एक या एक से अधिक अंगों के पक्षाघात के साथ बहुधा पूर्ण संवेदनक्षीणता, जिसमें सुई अथवा चाकू से चुभाने की भी अनुभूति न हो, हो सकती है। अन्य लक्षणों में शरीर में अस्पष्ट ऐंठन (हिस्टीरिकल फिट) या शरीर के किसी अंग मे ऐंठन, थरथराहट, बोलने की शक्ति का नष्ट होना, निगलते तथा श्वास लेते समय दम घुटना, गले या आमाशय में 'गोला'

सन् १९५३ में सर्वाधिक हुआ जब २२०७ कैरट का मूल्य ५,९१,६१० रु० प्राप्त हुआ। देश की आतरिक खपत पर दृष्टि रखते हुए यह अत्यंत आवश्यक है कि हीरों का उत्पादन बढाया जाय। अतः गत कुछ वर्षों से भारत सरकार ने भी इसमें विशेष रुचि ली है। पन्ना के सभी हीरकमय क्षेत्रो में भूभौतिकीय विधियों से सर्वेक्षण तथा अन्वेषण कार्य द्रुत गति पर हैं। कुछ रूसीविशेषज्ञो ने हाल ही में हीरो के खननक्षेत्रों का निरीक्षण किया था। इन विशेषज्ञो के अनुसार यदि सारी खानें पूर्णरूपेण यन्त्रो द्वारा सचालित की जायँ तो प्रति दिन का उत्पादन १८९५ कैरेट तक पहुँच सकता है। सन् १९५७ में हीरो का उत्पादन ७९० कैरठ था जिसका मूल्य १,६८,००० रु० प्राप्त हुआ।

विश्व के प्रसिद्ध हीरे — 'कोहनूर' जब इग्लैंड ले जाया गया तब उसका भार १८६ कैरट, आवदार रत्न के रूप में कटाई के पश्चात् १०६ कै०। 'ओरलोफ'–१९४ कै०, 'रीजेंट' अथवा 'पिट'-१ ७ कै०, फ्लोरेंटाइन अथवा ग्रैंड ड्यूक ऑव टस्कैनी' — १३३ कैरट, 'दक्षिण का सितारा' (जो ब्राजील में मिला) — २४५ कै० काटने से पूर्व तथा १२५ कै० काटने के पश्चात्, नारगी-पीला तिफैनी १२५ कैरट।

अपने रग तथा दुलभता के लिये प्रसिद्ध हीरे — हरा ड्रेसडन — ४० कैरठ तथा गहरा नीला 'होप' (यह भारत मे मिला है) — ४४ कैरट।

दक्षिण अफ्रीका में कुछ बहुत वड़े हीरे प्राप्त हुए हैं जिनमें उल्लेखनीय जागर्स फौंटेन खदान से प्राप्त एक्सेलसियर ९६९ कैरट, जुबिली ६३४ कैरट, तथा इपीरियल — ४५७ कैरट आदि हैं।

विश्व का विशालतम हीरा 'कुलिननन' अथवा 'स्टार ऑव अफ्रीका' जिसका भार जब वह मिला ३०२५ कैरट (१½ पाउड से भी ऊपर) था, सन् १९०५ में 'प्रीमियर' खदान से प्राप्त हुआ। इसे ट्रासवाल विधानसभा ने इगलैंड के सप्तम एडवर्ड को भेंट किया था। बाद में इसे १०५ टुकडो में काट दिया जिनमें से भी दो क्रमश ५१६ और ३०९ कैरट के वर्तमान कटे हीरो मे विशालतम हैं।

[वी० एस० दु०]

हीराकुड भारत के उडीसा राज्य के सवलपुर जिले मे इव और महानदी के सगम पर स्थित यह कस्बा है। इस स्थान की प्रसिद्धि का कारण यहाँ बन रहा हीराकुड बाँध है। यहाँ स्वर्णधूल एवं हीरा भी प्राप्त होता है। महानदी मध्य प्रदेश के पठार से निकलकर पूर्व की ओर बहती हुई बगाल की खाडी में गिरती है। इस नदी पर सबलपुर नगर से १४ किमी पश्चिम की ओर ४७७७ मी लबे, १६० मी ऊँचे हीराकुड बाँध का निर्माण कार्यचल रहा है। यह बाँध विश्व का सबसे लबा बाँध है। इसके अतिरिक्त सबलपुर और कटक के बीच दो बाँध बनाने की योजना है। हीराकुंड जलाशय का क्षेत्रफल १,७७,६०० एकड है और इससे १,७८५ एकड जमीन की सिंचाई होगी तथा १२३ हजार किलोवाट बिजली बनेगी। इस योजना से उडीसा के लोह उद्योग के उन्नत होने की पूर्ण संभावना है। राजगगपुर मे एक सीमेंट का कारखाना स्थापित किया गया है जिसको विद्युत् शक्ति हीराकुड बाँध से दी जाती है। [अ० ना० मे]

हीलियम अक्रिय गैसो का एक प्रमुख सदस्य है। इसका सकेत ही (He), परमाणुभार ४, परमाणुसंख्या २, घनत्व ०.१७८५ क्रांतिक ताप—२६७.९०० और क्रांतिक दबाव २.२६ वायुमडल, क्वथनाक -२६८.९० सें० और गलनाक –२७२° सें० है। इसके दो स्थायी समस्थानिक He^3, परमाण्विक द्रव्यमान ३.०१७० और He^4 परमाण्विक द्रव्यमान ४.००३९ और दो अस्थायी समस्थानिक He^5 परमाण्विक द्रव्यमान ५.०१३७ और रेडियोएक्टिव He^6, परमाण्विक द्रव्यमान ६.०२०८ पाए गए हैं।

१८६८ ई० मे सूर्य के सर्वग्रास ग्रहण के अवसर पर सूर्य के वर्णमडल के स्पेक्ट्रम में एक पीली रेखा देखी गई थी जो सोडियम की पीली रेखा से भिन्न थी। जानसेन ने इस रेखा का नाम D_3 रखा और सर जे० नार्मन लॉकयर इस परिणाम पर पहुँचे कि यह रेखा किसी ऐसे तत्व की है जो पृथ्वी पर नही पाया जाता। उन्होने ही हीलियस (Helios, ग्रीक अक्षर, शब्दार्थ सूर्य) के नाम पर इसका नाम हीलियम रखा। १८९४ ई० मे सर विलियम रामजेम ने क्लीवाइट नामक खनिज से निकली गैस की परीक्षा से सिद्ध किया कि यह गैस पृथ्वी पर भी पाई जाती है। क्लीवाइट को तनु सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ गरम करने और पीछे क्लीवाइट को निर्वात में गरम करने से इस गैस को प्राप्त किया था। ऐसी गैस में २० प्रतिशत नाइट्रोजन था। नाइट्रोजन के निकाल लेने पर गैस के स्पेक्ट्रम परीक्षण से स्पेक्ट्रम में D_3 रेखा मिली। पीछे पता लगा कि कुछ उल्कालोह में भी यह गैस विद्यमान थी। रामजे और टैवर्स ने इस गैस की बड़े परिश्रम और बडी सूक्ष्मता से परीक्षा कर देखा कि यह गैस वायुमडल में भी रहता है। रामजे और फ्रेडेरिक सॉडी ने रेडियोऐक्टिव पदार्थों के स्वतःविघटन से प्राप्त उत्पाद में भी इस गैस को पाया। वायुमडल में बडी अल्प मात्रा (१८,६०० में एक भाग), कुछ अन्य खनिजो, जैसे वोगेराइट और मोनेजाइट से निकली गैसों में यह पाया गया। मोनेजाइट के प्रति एक ग्राम में १ घन सेमी गैस पाई जाती है। पेट्रोलियम कूपो से निकली प्राकृतिक गैस में इसकी मात्रा १ प्रतिशत से लेकर ८ प्रतिशत तक पाई गई है।

उत्पादन — प्राकृतिक गैस के धोने से कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य अम्लीय गैसें निकल जाती हैं। धोने में मोनोइथेनोलेमिन और ग्लाइकोल मिला हुआ जल प्रयुक्त होता है। धोने के बाद गैस को सुखाकर उसे OF से ३००° ताप तक ठढा करते हैं। उस ताप पर प्रति वर्ग इंच ६०० पाउड से अधिक दबाव डालते हैं। इससे हीलियम और कुछ नाइट्रोजन को छोडकर अन्य सब गैसें तरलीभूत हो जाती हैं। अब हीलियम (५० प्रतिशत) और नाइट्रोजन (५०%) का मिश्रण बच जाता है। इसे और ठढा कर प्रति वर्ग इच २५०० पाउंड दबाव से दबाते है जिससे अधिकाश नाइट्रोजन तरलीभूत हो जाता है और हीलियम की मात्रा ९८.२% तक पहुँच जाती है। यदि इससे अधिक शुद्ध हीलियम प्राप्त करना हो तो सक्रियकृत

प्रकार के जेसपरमय (Jasper bearing) पिंड एवं प्रस्तर वटियाँ हैं। हीरो के मूल स्रोत के संबंध में अभी भी मतभेद है। पन्ना से १६ किमी की दूरी पर मझगवाँ में एक विशिष्ट हीरकमय संपिंडित पहाडी पाई गई है जो ज्वालामुखी उद्भव की है तथा बहुत कुछ अंशो में किंबरली प्रदेश (अफ्रीका) के शैलों के समान हैं जिससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि कुछ हीरे अवश्य ही मझगवाँ के संपिंडित शैलो से प्राप्त हुए होंगे।

(ख) हीरकमय एलूवियम तथा बजरी — भौतिक दृष्टि से अत्यंत कठोर एवं रासायनिक सुदृढता के कारण, सामान्यत हीरे पर ऋतुक्षारण (Weathering) का प्रभाव नही होता। पूर्व-अर्वाचीन (Pre-Recent) तथा अर्वाचीन युगो में विध्यन क्रम की कुछ शिलाएँ अपरदन (erosion) तथा विखंडन द्वारा एलूवियम तथा बजरी में परिवर्तित हो गईं किंतु हीरे प्रभावहीन ही रहे। इस प्रकार हीरकमय स्तरो ने अपरदन और विखंडन द्वारा प्रभावित हो बालू और बजरी को जन्म दिया।

(ग) हीरकमय ज्वालाश्मचय (Diamondiferous Agglomerate) —पन्ना के समीप मझगवाँ में हीरों का एक प्राथमिक निक्षेप पाया जाता है। इसमें सरपेंटीन की अधिकता है जिसमे श्वेत कैल्साइट का इस प्रकार प्रवेश हुआ है कि एक जाल सा बन गया है। लौह अयस्क के कण भी इसमें अधिकता से पाए जाते हैं। इस शैल के दृश्यांश का आकार नासपाती जैसा ही है जिसकी अधिकाधिक लंबाई तथा चौडाई क्रमश ४८० मी तथा ३०० मी है। इसके चारो ओर बालू पत्थर (Sandstone) की शिलाएँ हैं। भूविज्ञानी श्री के० पी० सिनोर के निरीक्षण से ऐसा ज्ञात होता है कि यह पातालीय तथा संभवत. ज्वालामुखीय ग्रीवा प्रदर्शित करती है।

सन् १९५० ई० में दक्षिण अफ्रीका की ऐंग्लो अमरीकन कार्पोरेशन के खनन इंजीनियर श्री ए० थॉमडन हेरीसन तथा प्रधान भूविज्ञानी डा० ए० ई० वाटर्स ने इस क्षेत्र के हीरों के उत्पादन के संबध में कुछ विशिष्ट आँकड़े प्रस्तुत किए। उनके अनुसार सामान्यत. हीरो की मात्रा की दर एक कैरट प्रति १००० घन फुट हुई। सन् १९५४-५५ में भारतीय भूविज्ञान सर्वेक्षण तथा भारतीय खान ब्यूरो द्वारा भी इस क्षेत्र का विस्तृत सर्वेक्षण किया गया जिससे यह ज्ञात हुआ कि प्रति १०० टन शैल से प्राय: १२.५ कैरट हीरे प्राप्त होते हैं जिनका औसत मूल्य १७५० रुपए के लगभग होता है।

[२] दक्षिणी क्षेत्र

कर्नूल क्रम के अंतर्गत बानगनापल्ली स्तरसमूह हीरकमय है। यह क्षेत्र कडप्पा, अनंतपुर, कर्नूल, कृष्णा, गुंटूर एवं गोदावरी जिलो में फैला हुआ है। इन स्थानो में शिलाओं के अपरदन और विखंडन से प्राप्त बजरी एवं जलोढक हीरकमय होती है और इसीलिये वर्षा के पश्चात् कभी कभी अनायास ही हीरे पृथ्वी के ऊपर ही मिल जाते हैं।

कृष्णा जिले में हीरे, गोलापिल्ली बालू पत्थर के साहचर्य में मिलते हैं। इस क्षेत्र के मुख्य उत्पादन केंद्र परतियाल तथा गोलपिल्ली हैं जहाँ हीरकमय जलोढक तथा बजरी में हीरो की खानें निहित हैं।

[३] पूर्वी क्षेत्र

इस क्षेत्र के मुख्य उत्पादन केंद्र महानदी की घाटी स्थित संबलपुर व चाँदा जिलो में हैं। अन्य क्षेत्रो की भाँति इस क्षेत्र मे भी नदी की जलोढक तथा बजरी हीरकमय हैं। विध्यन एवं कर्नूल क्रमो के स्तरो में तो अभी तक हीरे देखने को नही मिले हैं। जहाँ तक खनन का प्रश्न है, नदी की बालू ही सीमा है।

हीरों का खनन — आज भी हीरो का खनन प्राचीन विधियो से ही होता है क्योंकि परिस्थितिवश यह आर्थिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से सर्वोत्तम है। खनन में मानवी शक्ति की ही प्रधानता है तथा फावडे, कुदाली, सावल, घन और छेनी आदि का ही प्रयोग किया जाता है। खानें अधिकतर खुली हुई गड्ढे की तरह हैं, यद्यपि कही कही सुरंगो के अंदर भी खुदाई की जाती है। यह सब उस क्षेत्र की परिस्थितियो तथा कुछ आर्थिक एवं व्यावहारिक पहलुओं पर निर्भर करता है कि खनन का क्या रूप हो। कुछ समय से मझगवाँ की खानो को आधुनिक यंत्रो से सुसज्जित करने की योजनाएँ चल रही हैं जो उत्पादनवृद्धि में सहायक होंगी।

हीरे निकालने की विधियाँ — मध्यभारतीय क्षेत्र में जहाँ शैल-स्तरो में हीरे मिलते हैं, खुदाई द्वारा हीरे निकाले जाते हैं। यहाँ पर शिलाएँ इतनी कठोर होती हैं कि कुछ गहरे गड्ढे करने के पश्चात् आगे और शिलाओं को तोड़ना अत्यंत कठिन हो जाता है अत इन्हे पहिले ईंधन द्वारा तपाते हैं। पर्याप्त तप्त हो जाने पर तीव्रता से पानी डाल दिया जाता है जिससे अति शीघ्रता से तापपरिवर्तन होना है फलत शिलाएँ टूट जाती हैं। तत्पश्चात् शिलाओं के इन खंडो को घन द्वारा तोड़कर चूरा कर देते हैं। इस चूरे को सुखाकर इसमें से हीरे बीन बीनकर निकाल लिए जाते हैं।

हीरकमय जलोढक तथा बजरी के खनन की विधि अत्यंत साधारण है। साधारण यंत्रों से खोदकर तथा पानी से धोकर हीरे निकाले जाते हैं। यही विधि हीरों के दक्षिणी एवं पूर्वी क्षेत्रों में प्रयोग की जाती है। कही कही पर ये स्तर साधारण मिट्टी से आच्छादित रहते हैं। ऐसे स्थानों पर पहले ऊपर की परतें हटाई जाती हैं। इसके लिये अधिकतर सीढी जैसी वेदी (Terrace) बना ली जाती है फिर नीचे खुदाई की जाती हैं। रामखिरिया की खानें इसी प्रकार की हैं।

मझगवाँ क्षेत्र मे सारे कार्य अब धीरे धीरे आधुनिक यन्त्रो से होने लगे हैं। पत्थर और मिट्टी की खुदाई, ढुलाई, चूरा करने तथा धोने आदि सभी में ये यंत्र प्रयोग किए जाते हैं। हीरे चुनने का कार्य भी यंत्रो द्वारा ही संचालित होता है।

भारत में हीरों का उद्योग और उसका भविष्य — यद्यपि प्राचीनतम काल से ही भारत हीरों का उत्पादक रहा, तथापि १९२७ ई० तक उत्पादन नितांत अल्प था। इसके पश्चात् उत्पादन में वृद्धि के लक्षण दृष्टिगोचर हुए। सन् १९४१ के उपरांत कुछ विशेष वृद्धि होती दिखाई दी। मात्रा की दृष्टि से सर्वाधिक उत्पादन सन् १९५० में हुआ जबकि प्राप्त हीरो का भार २७६९ कैरट था जिनका मूल्य ४,१७,८५७ रु० हुआ था। मूल्य को ध्यान में रखते हुए उत्पादन

को उसने अपने दरबार मे शरण दी तथा दिल्ली पर अधिकार करने की योजना बनाई। हुमायूँ ने प्रारभ में शाति से समस्या का समाधान करना चाहा, किंतु इसमें विफल होकर उसने गुजरात पर आक्रमण किया। नवबर, १५३४, में बहादुरशाह चित्तोड के दुर्ग का घेरा डाले हुए था। हुमायूँ के अभियान की सूचना पाकर वह शीघ्रता से चित्तोड़ से सधि कर गुजरात की तरफ बढा। मदसौर नामक स्थान पर दोनों सेनाएँ एक दूसरे को घेरे पडी रही। अपने विश्वसनीय उमराओ से विश्वासघात के भय से बहादुरशाह मंदसौर से भाग गया। हुमायूँ ने उसका पीछा किया। बहादुरशाह ने द्यू में शरण ली। बिना किसी विशेष संघर्ष के पूरा गुजरात हुमायूँ के अधिकार में आ गया। अपने भाई अस्करी को गुजरात का गवर्नर नियुक्त करके बादशाह स्वय मालवा चला गया। इसी बीच अस्करी की मूर्खताओ तथा बहादुरशाह की जनप्रियता के कारण गुजरात में मुगलो के विरुद्ध मुक्ति आदोलन प्रारभ हुआ और कुछ ही दिनों में अस्करी को वहाँ से भागना पडा। हुमायूँ को फरवरी, १५३७ ई० मे आगरा वापस आना पडा।

इस बीच शेरखाँ ने बगाल तथा बिहार में अपनी शक्ति बढा ली थी। १५३७ में हुमायूँ शेरखाँ के विरुद्ध आगरे से रवाना हुआ। मार्ग में चुनार के दुर्ग पर अधिकार करने में उसे काफी समय लगा (जनवरी से जून, १५३८ ई०)। मनेर में हुमायूँ तथा शेरखाँ के बीच सधि की शर्तें निश्चित सी हो गई थी, किंतु इसी बीच बंगाल के पराजित शासक के पहुँचने तथा बगाल विजय की आशा दिलाने पर वह बगाल की तरफ अग्रसर हुआ। शेरखाँ ने खुलकर मुगलों से युद्ध नही किया तथा बगाल की राजधानी गौड पर हुमायूँ का अधिकार हो गया। दुर्भाग्यवश हुमायूँ कई महीने गौड में पडा रहा। उसने शासन मे भी विशेष रुचि नही ली। इस बीच उसका भाई हिंदाल बगाल से भागकर आगरा पहुँच गया। कामरान भी आगरा पहुँच गया। १५३९ ई० के प्रारभ में हुमायूँ गौड़ से रवाना हुआ। चौसा के मैदान में अफगानों तथा मुगलो के बीच २६ जून को भीषण सघर्ष हुआ। मुगल पराजित हुए तथा हुमायूँ को निजाम नामक भिश्ती के मशक की सहायता से नदी पार करनी पडी। आगरे लौटकर हुमायूँ ने अपने भाइयो को सगठित करना चाहा किंतु उसे सफलता न मिली। इस बीच शेरखाँ ने पूर्वी भागो पर अधिकार कर लिया था तथा आगरा की ओर बढ रहा था। हुमायूँ ने पुन अपना भाग्य आजमाना चाहा, किंतु कन्नौज की लडाई में (१७ मई, १५४०) पुन पराजित हुआ। यहाँ से भागकर वह आगरा होते हुए लाहौर पहुँचा। यहाँ भी उसके भाइयों ने उसका विरोध किया और विवश होकर उसे सिंध तथा राजपूताना के भागों में जाना पडा। पंजाब पर शेरशाह ने अधिकार कर लिया।

२१ अगस्त, १५४१ को सिंध में हुमायूँ ने हमीदा बानो से विवाह किया। मई, १५४२ में वह जोधपुर गया। यहाँ के शासक मालदेव ने लगभग एक वर्ष पूर्व उसे आमत्रित किया था। इस बीच परिस्थिति बदल चुकी थी। उसे सदेह हुआ कि सहायता के स्थान पर कहीं मालदेव उसे बंदी न बना लें क्योंकि शेरशाह का दूत जोधपुर मे पहुँच चुका था। हुमायूँ को अमरकोट में शरण मिली। यहीं १५ अक्टूबर, १५४२ ई० को अकबर का जन्म हुआ। भारत मे कोई आशा न देखकर हुमायूँ ईरान की तरफ रवाना हुआ।

ईरान निवास के समय वहाँ के शिया शासक शाह तहमास्प से हुमायूँ का मतभेद हो गया किंतु बाद में शाह ने उसे एक सेना दी। हुमायूँ ने कंधार तथा काबुल पर अधिकार किया। १५४५ से १५५३ का समय भाइयों के सघर्ष की करुण कहानी है। चार बार काबुल पर कामरान ने अधिकार किया और चार बार हुमायूँ ने पुन वापस लिया। अत में हिंदाल मारा गया, अस्करी निष्कासित हुआ तथा कामरान अधा बना दिया गया।

इसी समय शेरशाह के पुत्र इस्लामशाह की मृत्यु से सूर साम्राज्य विघटित हो गया। नवंबर, १५५४ मे हुमायूँ ने पजाब पर आक्रमण किया तथा माछीवाडा और सरहिंद के युद्धों मे अफगानों को पराजित कर दिल्ली तथा आगरे पर अधिकार किया। इन विजयों में बैरमखाँ का प्रमुख हाथ था। २६ जनवरी, १५५६ ई० को अपने पुस्तकालय की सीढ़ी से गिर जाने के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई।

हुमायूँ अच्छे डील डौल का, गेहुएँ रग का आकर्षक व्यक्ति था। वह कई भाषाओं का विद्वान था। वह फारसी मे कविताएँ लिखता था तथा गणित, ज्योतिष और नक्षत्रशास्त्र में उसकी विशेष रुचि थी। उसका धार्मिक दृष्टिकोण उदार था तथा उसके ऊपर सूफी प्रभाव था। उसने शिया स्त्री से विवाह किया तथा अनेक शिया अमीरो को प्रमुख स्थान दिया। हिंदुओ के प्रति भी वह उदार था। उसने मुगल चित्रकला को जन्म दिया। मुगल सास्कृतिक परपरा में उसका विशेष योगदान था। उसका वास्तविक राजत्व काल ग्यारह वर्षो से अधिक नहीं था (१५३०-४० तथा १५५५-५६)। उसका अधिक समय आंतरिक तथा बाह्य संघर्षों मे बीता। मुगल शासनीय सगठन में उसका योगदान शून्य है। उसकी असफलता के लिये उसके चारित्रिक दोष — आलस्य, कठिन परिस्थितियों में तत्काल निर्णय न कर पाना, अधविश्वास, विलासिता तथा परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं। उसने साहित्य, वास्तुकला, चित्रकला, सास्कृतिक तथा धार्मिक सहिष्णुता के आधार पर साम्राज्य के निर्माण की कल्पना की जिसे उसके योग्य पुत्र अकबर महान् ने साकार किया। [ह० श० श्री०]

हुविष्क कुषाण शासको मे हुविष्क का राज्यकाल बड़ा महत्वपूर्ण है। इसकी पुष्टि तत्कालीन कुषाण लेखो तथा सिक्कों (मुद्राओं) से होती है। लेखो के आधार पर इसने कनिष्क सवत् २८-६० तक राज्य किया। यह लेख प्रायः मथुरा के कफली टीले तथा अन्य निकट स्थानो से खोदाई में मिले। अफगानिस्तान मे वरधक नामक स्थान से इसी शासक का स० ५२ का एक लेख मिला। विद्वानों का मत है कि यह सम्राट् कनिष्क का कनिष्ठ पुत्र था और अपने भाई वासिष्क (२४-२८) के बाद सिंहासन पर बैठा। आरा के स० ४१ के लेख में एक अन्य कुषाण सम्राट् महाराज राजातिराज देवपुत्र कैसर कनिष्क का उल्लेख है जिसके पिता का नाम वाजेष्क था। ल्यूडर्स तथा कुछ अन्य विद्वानो के विचार में कनिष्क प्रथम की मृत्यु के बाद कुषाण साम्राज्य का विभाजन हो गया था। उत्तरी पश्चिमी भाग पर वाजिष्क तथा आरा के कनिष्क द्वितीय ने राज्य किया, और उसके बाद हुविष्क

नारियल के कोयले को द्रव नाइट्रोजन के ऊष्मक में रखकर उसके द्वारा हीलियम को पारित करते हैं जिससे केवल लेशमात्र अपद्रव्यवाला हीलियम प्राप्त होता है।

गुण — वर्णरहित, गंधहीन और स्वादहीन गैस है। ताप-ध्वनि और विद्युत का सुचालक है। जल में अल्प विलेय है। अन्य विलायकों में अधिक घुलता है। इसका तरलन हुआ है। द्रव हीलियम दो रूपों में पाया गया है। इसका घनत्व ० १२२ है। इसका ठोसीकरण भी हुआ है। तरल द्रव के १४० वायुमंडल दवाव पर २७२° से० पर कीसम ने १६२६ ई० में ठोस हीलियम प्राप्त किया था। इसकी गैस में केवल एक परमाणु रहता है। इसकी विशिष्ट ऊष्माओं का अनुपात ४ : १६६७ है। किसी भी तत्व के साथ वह कोई यौगिक नही बनता। इसकी सयोजकता शून्य है। आवर्तसारणी में इसका स्थान प्रथम समूह के प्रबल विद्युत् धनीय तत्वो और सप्तम समूह के प्रबल विद्युत् ऋणीय तत्वो के बीच है।

उपयोग — वायुपोतो में हाइड्रोजन के स्थान मे अब हीलियम का प्रयोग होता है यद्यपि हाइड्रोजन की तुलना में इसकी उत्थापक क्षमता ९२ ६ प्रतिशत ही है पर हाइड्रोजन के ज्वलनशील होने और वायु के साथ विस्फोटक मिश्रण बनने के कारण इसका ही अब उपयोग हो रहा है। मौसम का पता लगाने के लिये बैलूनों में भी हीलियम का आज उपयोग हो रहा है। हल्की धातुओं के जोडने और अन्य धातुकर्मसंबधी उपचारो में निष्क्रिय वायुमडल के लिये हीलियम काम में आ रहा है। ओषधियो मे भी विशेषत: दमे और अन्य श्वसन रोगों में आक्सीजन के साथ मिलाकर कृत्रिम श्वसन में हीलियम का उपयोग बढ रहा है। [स० व०]

हुगली पश्चिमी बंगाल का एक जिला है जो २२° ३६' से २३° १४' उ० अ० तथा ८७° ३०' से ८८° ३०' पू० दे० रेखाओ के बीच फैला है। इसके उत्तर में बर्दवान, दक्षिण में हावडा तथा पश्चिम में मिदनापुर एवं बाँकुडा जिले हैं। पूरब में हुगली नदी इसकी सीमा निर्धारित करती है। इस जिले का क्षेत्रफल ३११३ वर्ग किमी एवं जनसख्या २२,३१,४१८ (१६६१) है। हुगली, दामोदर तथा रूपनारायण इस जिले की प्रमुख नदियाँ हैं। नदियो के बीच विस्तृत जलमग्न क्षेत्र मिलते हैं। डानकुनी, शांति तथा दलकी उल्लेखनीय दलदली क्षेत्र हैं। इस जिल मे प्रधानत: धान की खेती होती है। यह जिला उद्योग के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है। हुगली, चदरनगर तथा सिरामपुर मुख्य नगर हैं।

हुगली नगर २२° ५५' उ० एवं ८८° २४' पू० दे० पर बसा है। हुगली चिनसुरा की कुल जनसख्या ८३,१०४ (१६६१) है।

[ज० सिं०]

हुगली नदी गगा नदी की एक शाखा है जो पश्चिमी बगाल में बहती है। यह मुर्शिदाबाद जिले में गंगा से अलग होकर डायमंड हारबर के पास बगाल की खाडी मे गिरती है। कलकत्ता, हावड़ा तथा कलकत्ता के अनेक औद्योगिक उपनगर इसके किनारे बसे हैं। इस नदी में ज्वार भाटा आता है जिसके सहारे समुद्री जहाज कलकत्ता तक पहुँच जाते हैं। यही कारण है कि इसके द्वारा काफी व्यापार होता है। जूट तथा सूती कपडे के कारखाने इसके किनारे अधिक हैं। समुद्र में गिरने से कुछ पहले इसमें दामोदर तथा रूपनारायण नदियाँ मिलती हैं। [ज० सिं०]

हुबली स्थिति : १५° २०' उ० अ० तथा ७५° ९' पू० दे०। यह नगर भारत गणराज्य के मैसूर राज्य में धारवाड़ जिले में है। यह धारवाड नगर से २४ किमी दक्षिण पूर्व मे स्थित है और दक्षिणी रेलवे का जंक्शन है। यह कपास, अनाज, नमक, ताँबे के बरतन, साबुन एव खाद के व्यापार का प्रमुख केंद्र है। नगर मे सूत कातने, कपास ओटने और गाँठ बाँधने के कारखाने हैं। यहाँ रेलवे का वर्कशाप तथा वस्त्र बुनने की मिल है। यहाँ सेना की छावनी है। नगर की जनसख्या १,७१,३२६ (१६६१) है। [अ० ना० मे०]

हुमायूँ (१५०८-१५५६) प्रथम मुगल सम्राट्, जहीरुद्दीन मुहम्मद वाबर के ज्येष्ठ पुत्र नसीरुद्दीन मुहम्मद हुमायूँ मिर्जा का जन्म वाबर की शिया पत्नी माहम बेगम के गर्भ से, काबुल के दुर्ग में हुआ था। उसे सैनिक शिक्षा के अतिरिक्त, अरबी फारसी तथा तुर्की भाषा की समुचित शिक्षा दी गई थी। १५२३ से १५२६ तक वह बदख्शाँ का शासक रहा। वाबर के भारतीय अभियान में वह अपने पिता के साथ था तथा पानीपत के प्रथम युद्ध में मुगल सेना के दाहिने चक्र का सेनापति था। उसके पश्चात् उसने आगरे पर अधिकार किया। खानवा के युद्ध में वह मुगल सेना के दाहिने चक्र का नेता था। अप्रैल, १५२७ में वह बदख्शाँ लौट गया तथा दो वर्ष पश्चात् पुन भारत वापस आया। १५३० ई० की ग्रीष्म ऋतु में अल्पविरामी ज्वर से उसकी अवस्था अत्यंत शोचनीय हो गई। अपने पुत्र की जान बचाने के लिये वाबर ने हुमायूँ के स्थान पर अपना जीवन देने की भगवान् से प्रार्थना की। संयोगवश हुमायूँ स्वस्थ हो गया और वाबर की अवस्था बिगड़ती गई। २६ दिसबर को वाबर की मृत्यु हुई और उसके चार दिन बाद हुमायूँ गद्दी पर बैठा।

हुमायूँ को अपने पिता से रिक्त राजकोश, असंगठित साम्राज्य तथा अविश्वसनीय सेना प्राप्त हुई। सबसे कठिन समस्या उसके भाइयों की थी। हुमायूँ के तीन भाई कामरान, अस्करी तथा हिंदाल थे। इनमें कामरान सबसे उग्र था। तैमूरी परपरा के आधार पर हुमायूँ ने साम्राज्य का विभाजन कर दिया। इस तरह कामरान को काबुल तथा कधार, अस्करी को सभल तथा हिंदाल को अलवर प्राप्त हुआ। कामरान के पंजाब में प्रवेश करने के पश्चात् उसे संतुष्ट करने के लिये उसे पंजाब तथा हिसार फिरोजा भी दे दिए गए। इस तरह मुगल साम्राज्य को गृहयुद्ध से बचा लिया गया। हुमायूँ के वाह्य शत्रुओ मे अफगान तथा गुजरात के शासक प्रमुख थे।

प्रारंभिक घटनाओं में अफगानों की दादरा के युद्ध में पराजय (जुलाई-अगस्त, १५३१) तथा दीनपनाह नामक नगर (दिल्ली में) की स्थापना थी। गुजरात का शासक बहादुरशाह योग्य, जनप्रिय, शक्तिशाली तथा महत्वाकांक्षी था। उसने मालवा, रायसीन तथा निकट के कई स्थानों पर अधिकार कर लिया। मुगलों के शत्रुओ

इसमे नारी के द्विधा रूप — रमणी तथा जननी — का सांकेतिक पद्धति मे मनोहर चित्रण किया गया है। वस्तुत नारी का मातृरूप ही शांतिनिकेतन है। 'हृदयेश' जी की अंतर्वृत्ति बाह्य एव आभ्यंतर प्रकृति की रमणीयता को एकरूपता प्रदान करने में अधिक रमी है। इनके कथासाहित्य में शृंगार तथा शांतरस की अभिव्यक्ति हुई है। एतदर्थ भावाभिव्यंजन के लिये इन्होंने संस्कृत की तत्समता और उपसर्गयुक्त मधुर पदावली का प्रयोग उत्तमता से किया है। इनकी कहानियाँ भावप्रधान हैं अतः कथावस्तु गौण है। उपन्यास में भी इन्होने इसी शैली का सहारा लिया है।

इनकी कृतियाँ ये हैं—नंदननिकुंज, वनमाला, गल्पसंग्रह (कहानी संग्रह)। मनोरमा, मंगलप्रभात (उपन्यास)। [रा० च० पां०]

हेकेल, एर्न्स्ट हाइनरिख (Haeckel, Ernst Heinrich, सन् १८३४–१९१९), जर्मन प्राणिविज्ञानी तथा दार्शनिक, का जन्म प्रशिया के पॉट्सडैम नगर में हुआ था। इन्होने बर्लिन, वर्ट्सबुर्ग (Wurzburg) तथा विएना में फिर्खो (Virchone), कलिकर (Kolliker) तथा जोहैनीज मुलर (Johannes Muller) के अधीन अध्ययन कर चिकित्साशास्त्र के स्नातक की उपाधि सन् १८५७ में प्राप्त की।

कुछ समय तक चिकित्सक का काम करने के पश्चात् आप जेना विश्वविद्यालय में प्राणिविज्ञान के प्रवक्ता तथा सन् १८६५ में प्रोफेसर नियुक्त हुए।

डार्विन के सिद्धांत से बहुत प्रभावित होकर आपने 'सामान्य आकारिकी' पर महत्वपूर्ण ग्रंथ सन् १८६६ में, दो वर्ष बाद 'सृजन का प्रकृतिविज्ञान' तथा सन् १८७४ में 'मानवोद्भवविज्ञान' शीर्षक ग्रंथ लिखे। प्राणियो के विकास में पुनरावर्ती क्रमों का इन्होने प्रतिपादन किया तथा जंतुओ के आपसी सबंधों का दिग्दर्शन कराने के लिये एक आनुवंशिक सारणी तैयार की। रेडियोलेरिया, गहन सागरीय मेड्यूसाओ तथा सेराटोसाओं और साइफॉनोफोराओ पर अत्युत्तम प्रबंध लिखने के अतिरिक्त हेकेल ने व्यवस्थित जातिवृत्त नामक एक बड़ा ग्रंथ भी लिखा। इनके कुछ अन्य वैज्ञानिक ग्रंथ बड़े लोकप्रिय हुए।

विकास सिद्धांत के दार्शनिक पहलू का भी आपने गंभीर अध्ययन किया तथा धर्म के स्थान पर एक वैज्ञानिक अद्वैतवाद का प्रचार किया। हेकेल के अद्वैतवाद में प्रकृति का कोई उद्देश्य या अभिकल्पना, नैतिक व्यवस्था, मानवीय स्वतंत्रता अथवा वैयक्तिक ईश्वर को कोई स्थान नही है। हेकेल ने अपने समय के बुद्धिजीवियो में स्वतंत्र विचार करने की एक लहर उत्पन्न कर दी तथा प्रायोगिक जीवविज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

[भ० दा० व०]

हेग स्थिति ५२° ४' उ० अ० एव ४° १९' पू० दे० नीदरलैंड्स के पश्चिमी भाग में एम्सटर्डम के ३० मील दक्षिण पश्चिम में स्थित दक्षिणी हालैंड नामक प्रदेश की राजधानी है। यो तो एम्सटर्डम को राष्ट्रीय राजधानी होने का गौरव प्राप्त है फिर भी हेग ही नीदरलैंड्स की वास्तविक राजधानी है क्योकि संसद एवं राष्ट्राध्यक्ष का आवास यही है। यह यूरोप के सुंदर एव आकर्षक नगरो में से एक है। १२४८ ई० में काउंट विलियम ने यहाँ आखेट के लिये एक किले का निर्माण कराया। इस किले के चारो ओर नगर का विकास हुआ है। किले के समीपवर्ती क्षेत्र को 'बिनेनहाफ' कहते हैं। यह नगर सुंदर भवनो एव उद्यानो के लिये विख्यात है। रिडर जाल या 'हाल ऑव नाइट्स' में प्रति वर्ष तीसरे मंगलवार को संसद का उद्घाटन करने महारानी पधारती हैं। यहाँ बहुत से संग्रहालय हैं जिनमें चित्रो एव पाडुलिपियो का मीरमानो वेस्ट्रीनलेनम (Meermanno Westreenlanum) संग्रहालय महत्वपूर्ण हैं। ग्रोटेकेर्क एव गोथिक गिरजाघर, ललितकला अकादमी, रायल पुस्तकालय एव प्रासाद तथा पीस पैलेस दर्शनीय स्थल हैं। पीस पैलेस में हेग का स्थायी न्यायालय या अंतरराष्ट्रीय न्यायालय है। आधुनिक भवनों में शेल एव के० एल० एम० भवन उल्लेखनीय हैं। शिक्षण संस्थाओं मे अंतरराष्ट्रीय विद्यालय, अमरीकी विद्यालय, रायल संगीत संरक्षिका (Conservatory) अंतरराष्ट्रीय विधि अकादमी एव समाजविज्ञान संस्थान हैं। वेस्टब्रुक (६१७ एकड) और ज्यूडरपार्क (२१० एकड) महत्व के हैं।

हेग, एम्सटर्डम, राटर्डम, यूट्रेक्ट एव पेरिस से रेलमार्गों द्वारा जुड़ा हुआ है। एम्सटर्डम के पास में हवाईअड्डा है। यहाँ विद्युत् यंत्र, स्टोव, रसायन, मुद्रण यंत्र एव रबर तथा विलासिता की वस्तुओं का निर्माण होता है। समीप में स्थित शेवेनिगम एक विख्यात समुद्री स्थल है। विलियम तृतीय नामक इंग्लैंड का राजा यहीं पैदा हुआ था।

हेग का क्षेत्रफल ६४ वर्गकिमी एव जनसंख्या ६०६,७२८ (१९५७) थी। [रा० प्र० सि०]

हेगेलीय दर्शन (Hegelian Philosophy) सुप्रसिद्ध दार्शनिक जार्ज विलहेम फ्रेड्रिक हेगेल (१७७०-१८३१) कई वर्ष तक बर्लिन विश्वविद्यालय मे प्राध्यापक रहे और उनका देहावसान भी उसी नगर में हुआ। उनके लिखे हुए आठ ग्रंथ हैं, जिनमें प्रपंचशास्त्र (Phenomelogie des Geistes), न्याय के सिद्धांत (Wissenschaft der Logic) एव दार्शनिक सिद्धांतों का विश्वकोश (Encyclopedie der phiosophischen Wissenschaften), ये तीन ग्रंथ विशेषतया उल्लेखनीय हैं। हेगेल के दार्शनिक विचार जर्मन देश के ही कांट, फिक्टे और शैलिंग नामक दार्शनिकों के विचारों से विशेष रूप से प्रभावित कहे जा सकते हैं, हालाँकि हेगेल के और उनके विचारो में महत्वपूर्ण अंतर भी है।

हेगेल का दर्शन निरपेक्ष प्रत्ययवाद या चिद्वाद (Absolute Idealism) अथवा वस्तुगत चैतन्यवाद (Objective Idealism) कहलाता है; क्योंकि उनके मत में आत्मा अनात्मा, द्रष्टा दृश्य, एव प्रकृति पुरुष सभी पदार्थ एक ही निरपेक्ष ज्ञानस्वरूप परम तत्व या सत् की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। उनके अनुसार विश्व न तो अचेतन प्रकृति या पुद्गलो का परिणाम है और न किसी परिच्छिन्न व्यक्ति के मन का ही खेल। जड-चेतन-गुण-दोष-मय समस्त संसार मे एक ही असीम, अनादि एव अनंत चेतन तत्व, जिसे हम परब्रह्म कह

का दोनो भागो पर अधिकार हो गया। यह सुझाव हुविष्क के राज्यकाल (२८–६०) में एक अन्य कुषाण सम्राट् अरा के कनिष्क की गुत्थी सुलझाने के लिये दिया गया था। विभाजन का कहीं भी संकेत नहीं मिलता है। वासिष्क के लेख क्रमश: २४ तथा २८ वर्ष के मथुरा तथा साँची में मिले। अत उसका उत्तरी पश्चिमी भाग पर राज्य करने का लेखो से संकेत नहीं मिलता। हुविष्क ३२ वर्ष अथवा इससे भी कुछ अधिक काल तक संपूर्ण कुषाण साम्राज्य का शासक रहा और उसके बाद संवत् ६७ से ९८ तक वासुदेव ने राज्य किया।

हुविष्क के राज्यकाल के सं० २८ मे वकन (बदकशाँ) से एक मध्य एशियाई सरदार मथुरा आया और उसने केवल ब्राह्मणो ही के लिये ५५० पुराणो की धनराशि दो विभिन्न श्रेणियों के पास जमा कर दी। इसमें इस समय की सुदृढ आर्थिक व्यवस्था का पता चलता है। हुविष्क ने एक पुण्यशाला का भी निर्माण किया, जिसका इस लेख मे विवरण है, तथा अपने पूर्वजो की मूर्तियाँ भी स्थापित की। इस सम्राट् की विभिन्न प्रकार की स्वर्णमुद्राओ से प्रतीत होता है कि इसका राज्यकाल सपन्न युग था। पूर्व में इसका राज्य पटना तथा गया तक विस्तृत था, जैसा पाटलिपुत्र की खोदाई में मिले मिट्टी के बोधगया मंदिर के एक प्रतीक से पता चलता है। कल्हण की राजतरंगिणी में हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क का उल्लेख है। हुष्क द्वारा बसाए गए हुष्कपुर की समानता वर्तमान वरामुला से की जाती है।

स० ग्रं० — स्टेन केनो . कॉर्पस इस्क्रिप्शनम् इडिकेरम, भाग २; शास्त्री, के० ए० नीलकठ . कांप्रीहिस्ट्री ऑव इंडिया, भाग २, पुरी, बी० एन० . इडिया अडर दि कुषाण्स, बबई, १९६५। [बै० पु०]

हूनान प्रांत दक्षिणी मध्य चीन में तुंगतिंग झील के दक्षिण में स्थित एक प्रांत है। इसके उत्तर में हूपे, पश्चिम में सचवान और क्विचाऊ, दक्षिण में क्वांगसी और क्वांगतुंग तथा पूर्व में कियांगसी प्रात हैं। हूनान का क्षेत्रफल २०२२४० वर्ग किमी एवं जनसख्या ३४,२९६,०२९ (१९६०) है। इस प्रांत का दक्षिणी एवं पश्चिमी भाग पठारी है। उत्तरी पूर्वी भाग तुंगतिंग बेसिन का एक निचला भाग है जो कॉप मिट्टी का बना हुआ है। तुंगतिंग झील में सियांग, यूआन और त्जू (Tzu) नदियाँ गिरती हैं। पठारी भाग मुख्यत लाल बालू पत्थर द्वारा निर्मित है तथा कहीं कहीं चूनापत्थर एवं ग्रेनाइट भी विद्यमान हैं। हेंगशान, नानलिंग एव वूलिंग मुख्य पर्वतश्रेणियाँ हैं। यहाँ की जलवायु महाद्वीपीय है। गर्मी की ऋतु में अधिक गरमी तथा जाड़े मे ठढक पड़ती है। धान सबसे महत्वपूर्ण फसल है। गरमी में तुंगतिंग झील के समीपवर्ती क्षेत्र से इसकी दो फसलें ली जाती हैं। गेहूँ, सोयाबीन, चाय, रेमी, कपास, तंबाकू एवं जो अन्य उल्लेखनीय फसलें हैं। दक्षिणी पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र से चीड, ओक, तुंग, सीडार एवं कपूर की लकड़ियो को यूआन और त्जू नदियों मे से बहाकर लुगदी तथा कागज के कारखानो को पहुँचाते हैं। हूनान मे पर्याप्त खनिज सपदा है। ऐंटीमनी एवं पारे के उत्पादन में चीन मे इसका प्रथम स्थान है। सोना, सीस, जस्ता, टंगस्टन, कोयला, टिन, मालिब्डेनम और गंधक अन्य महत्वपूर्ण खनिज हैं। चांगसा इस प्रात की राजधानी है। धातुशोधन का कार्य प्रमुख स्थान रखता है। कृत्रिम रेशमी वस्त्र, कागज, पॉर्सिलेन और कढ़ाई अन्य उल्लेखनीय उद्योग हैं। हेंगयांग, चांगतेह, योयाग मुख्य व्यापारिक केंद्र हैं। गमनागमन का मुख्य साधन हांकाऊ कैंटन रेलमार्ग है। सियांग तथा यूआन की निचली घाटियो में जनसख्या का घनत्व अधिक है। यहाँ के निवासी चीनी हैं तथा मंदारिन भाषा बोलते हैं। पहाड़ियो में मिआयो और याओ नामक जनजातियाँ निवास करती हैं। यह तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से ही चीन के अंतर्गत है। द्वितीय विश्वयुद्धकाल में जापानियो ने कुछ क्षेत्रो पर अधिकार कर लिया था। १९४९ ई० से यह साम्यवादी शासन के अधीन है। [रा० प्र० सिं०]

हूपे मध्य चीन में तुंगतिंग झील के उत्तर में स्थित एक प्रांत है। इसके उत्तर में होनान, पश्चिम में शेंसी और सचवान, दक्षिण में हूनान और कियांगसी और पूर्व में आन्हवी (Anhwei) प्रात हैं। हूपे का क्षेत्रफल १८४३२० वर्ग किमी एवं जनसंख्या ३,०७,९०,००० (१९६०) है। हूपे प्रात का अधिकाश भाग कांप मिट्टी द्वारा निर्मित मैदान है। इसमें यांगटीसी और हान नदियाँ बहती हैं। इनके मुहाने के निकट स्थित हांगकांग, हायांग और वूचांग नगर मिलकर वूहान नामक विशाल नगर का निर्माण करते हैं। ये नगर सड़क एवं नदी मार्ग के गमनागमन के केंद्र तथा मध्य चीन के प्रमुख व्यापारिक एवं औद्योगिक क्षेत्र हैं। समीप में स्थित ह्वांगशीह मध्य चीन का सबसे बड़ा लौह एवं इस्पात का कारखाना है। हूपे की जलवायु महाद्वीपीय है जहाँ जाड़े में ठढक तथा गर्मी की ऋतु गरम एव नम होती है। धान एव कपास गरमी की मुख्य फसलें हैं। इनके अतिरिक्त, चाय, सोयाबीन, और मक्का की खेती भी उल्लेखनीय है। जाड़े की फसलो में गेहूँ, जौ, रेमी, रेपसीड, सोयाबीन महत्वपूर्ण हैं। झीलों एव नदियो से सिंचाई होती है। विशाल किंगक्यांग जलाशय द्वारा सिंचित क्षेत्र मे विस्तार हुआ है। कृषि उपज को सियांगफाऊ एव शासी से होकर होनान एव हूनान प्रातो को भेजा जाता है। इस प्रात में लौह खनिज, जिप्सम, कोयला एव नमक भी पाया जाता है। यांगटीसी नदी एवं उत्तर से दक्षिण पेकिंग हांकाऊ कैंटन रेलमार्ग के कारण हूपे की आर्थिक समृद्धि हुई है। जनसख्या चीनी है और मदारिन बोली बोलती है। १९६० ई० के आसपास हूपे प्रात का निर्माण हुआ। द्वितीय विश्वयुद्धकाल में जापान ने कुछ भाग पर, विशेषकर हांकाऊ क्षेत्र पर, अधिकार कर लिया था। १९४९ ई० से यह साम्यवादी शासन के अंतर्गत है। वूचांग इस प्रात की राजधानी है। [रा० प्र० सिं०]

'हृदयेश', चंडीप्रसाद (१८९८–१९३६ ई०) का जन्म पीलीभीत के एक संपन्न परिवार में हुआ था। लखनऊ विश्वविद्यालय से इन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। संस्कृत साहित्य के अध्ययन में इनकी विशेष रुचि थी। सन् १९१९ ई० मे ये हिंदी कहानी-क्षेत्र में आए। अलकृत शैली की कहानी लिखनेवालो में इन्हे अधिक ख्याति मिली। इनकी अधिकाश कहानियाँ काव्याख्यायिका की श्रेणी में आती हैं। 'शातिनिकेतन' शीर्षक इनकी कहानी बहुचर्चित है।

नहीं होता, और न वह ब्रह्म ही कभी प्रापंचिक पदार्थों से पृथक् होता है परंतु संसार में कभी ब्रह्म की सम्भाव्यताओं (Potentialities) का अंत नहीं होता, और इस दृष्टि से हम उसे संसारातीत भी कह सकते हैं। हेगेल ने इसी ब्रह्म या निरपेक्ष प्रत्यय में समस्त भूत, वर्तमान एवं भावी भेदों का समन्वय करने का प्रयत्न किया है।

'हेगेल का ब्रह्म व्यक्ति है अथवा नहीं ?' यह प्रश्न विवादग्रस्त है। हैल्डेन आदि पंडित उसे व्यक्ति मानते हैं; परंतु प्रो० मैकटैगार्ट आदि विद्वानों की संमति में वह व्यक्ति नहीं कहा जा सकता।

हेगेल, निस्संदेह, एक कट्टर सत्कार्यवादी विचारक थे। उनके अनुसार कार्य अपने कारण में अपनी अभिव्यक्ति से पूर्व भी मौजूद रहता है। वस्तुत वे कारण एवं कार्य तथा गुणी और गुण को एक दूसरे से अभिन्न और अन्योन्याश्रित मानते थे। जिस प्रकार कारणों के अभाव में कार्य नहीं हो सकता अथवा गुण बिना गुणी के नहीं रह सकता, उसी प्रकार, हेगेल के मत में, कार्य के अभाव में भी कोई घटना या वस्तु कारण नहीं कहला सकती, ठीक वैसे ही जैसे बिना गुण के गुणी नहीं।

हेगेल का निरपेक्ष प्रत्यय या ब्रह्म, जिसे वे कभी कभी ईश्वर (God) भी कहते हैं, कांट की 'पारमार्थिक या अपने आपमें की वस्तुओं' (Things in-themselves) के सदृश अज्ञेय नहीं। वह हमारे चिंतन का विषय बन सकता है, क्योंकि हम और हमारी चिंतनशक्ति, बुद्धिपरिच्छिन्न होने पर भी, उसी के अनुरूप हैं। दूसरे शब्दों में, चूंकि हमारे सीमित विचार के नियम वही हैं जो सार्वभौम ईश्वर या उसके विचाररूप विश्व के, अत वह (ईश्वर) हमें बुद्धि द्वारा अवगत हो सकता है। हेगेल के इस विचाररूप प्रयत्न से निस्संदेह ही उस चौड़ी खाई को पाटने का श्लाघनीय कार्य किया जो कांट ने पारमार्थिक और व्यावहारिक वस्तुओं के बीच में, उन्हें क्रमशः अज्ञेय एवं ज्ञेय बताकर, खोद डाली थी।

समीक्षा — हेगेलीय दर्शन, एक अत्यंत महत्वपूर्ण, उत्कृष्ट एवं उत्कट बौद्धिक प्रयास होने पर भी, आपत्तियों से मुक्त नहीं। उसके विरुद्ध, संक्षेप में निम्नांकित बातें प्रस्तुत की जा सकती हैं —

(१) हेगेलीय दर्शन की सत्यता स्वीकार कर लेने पर हमारी निजी सुदृढ स्वातंत्र्य भावना को इतना भारी धक्का लगता है कि वह जड़सहित हिल जाती है। जब प्राकृतिक एवं मानसिक सारी ही सृष्टि की गति वस्तुतः परब्रह्म की ही गति या क्रिया है, तो फिर हमारे वैयक्तिक स्वतंत्र प्रयत्न के लिये स्थान अथवा अवसर कहाँ ? हेगेल मानवीय स्वतंत्रता को मानते हुए उसे ईश्वरीय स्वतंत्रता द्वारा सीमित स्वीकार करते हैं। परंतु उनकी यह मान्यता मानव को अस्वतंत्र मानने के समान ही प्रतीत होती है। जिस क्षेत्र, जिस अर्थ, जिस मात्रा और जिस समय में हम स्वतंत्र कहे जा सकते हैं, उसी क्षेत्र, उसी अर्थ, उसी मात्रा एवं उसी समय में हमारी स्वतंत्रता सीमित या परतंत्र नहीं कही जा सकती। उसे सीमित करने का स्पष्ट अर्थ है उसे छीन लेना।

(२) हेगेल निरुपाधि ब्रह्म को एक ओर तो पूर्ण एवं काल से अपरिच्छिन्न स्वीकार करते हैं और दूसरी ओर, विश्व के रूप में उसका कालगत विकास भी मानते हैं। परंतु इन दोनों मान्यताओं में विरोध मालूम होता है। हेगेल इन दो प्रकार की बातों को एक दूसरी के साथ ठीक ठीक संबंधित नहीं कर सके।

(३) हेगेल सार्वभौम चित् या निरुपाधि ब्रह्म को बुद्धि द्वारा ज्ञेय मानते हैं। परंतु, यथार्थत, जो कुछ बुद्धि से ज्ञात होता है, या हो सकता है, वह सार्वभौम या निरुपाधि नहीं हो सकता। हेगेल ने बुद्धि में ब्रह्मज्ञान की क्षमता मानकर बुद्धि को अनुचित महत्व प्रदान कर दिया है। बौद्धिक विचार स्वभाव से ही द्वैत या भेद में भ्रमण करके जीवित रहनेवाले होते हैं। अतः सार्वभौम चित् या निरुपाधि ब्रह्म, जो एक या परिपूर्ण सत् है, बौद्धिक विचार का विषय नहीं बन सकता। ब्रैडले महोदय की यह धारणा कि ब्रह्म को हम अपरोक्षानुभूति द्वारा ही अनुभव कर सकते हैं, बुद्धि द्वारा जान नहीं सकते, हेगेल के विचार की अपेक्षा कहीं अधिक समीचीन प्रतीत होती है। केनोपनिषद् ने 'मतं यस्य न वेद स' इन शब्दों द्वारा ब्रह्म के बौद्धिक ज्ञान का खंडन किया है, तथा माण्डूक्योपनिषद् ने 'एकात्मप्रत्ययसार' इस कथन से ब्रह्म की अपरोक्षानुभूति ही संभव बतलाई है। और ऐसी ही बात आधुनिक युग के प्रख्यात दार्शनिक हेनरी बर्गसाँ ने भी स्वीकार की है। [रा० सिं० नौ०]

हेजैज (Hejaz) सऊदी अरब गणतंत्र के उत्तरी पश्चिमी भाग में अकाबा खाड़ी और लाल सागर के किनारे स्थित एक क्षेत्र है। हेजैज और नेज्द क्षेत्र मिलकर सऊदी अरब का निर्माण करते हैं। इसका क्षेत्रफल ३,८४,००० वर्ग किमी है। यह क्षेत्र लगभग १२८० किमी लंबा तथा १६० से ३२० किमी तक चौड़ा है। इसका दक्षिणी भाग पर्वतीय एवं पठारी है जो एक पतली एवं लंबी तटीय मेखला तथा भीतरी मरुस्थलों के बीच में स्थित है। यहाँ कई मरूद्यान तथा कुछ नदी धाराएँ हैं जिन्हें वादी (wadi) कहते हैं। खजूर, गेहूँ, ज्वार, बाजरा मुख्य कृषि उपज हैं। मधु, एवं फलों की प्राप्ति भी होती है। ऊँट, घोड़े, भेड़ और खच्चर पाले जाते हैं जिनसे खाल और ऊन की प्राप्ति होती है। खनिज तेल थोड़ी मात्रा में निकाला जाता है। सोना होने का अनुमान है लेकिन अभी इसकी खुदाई प्रारंभ नहीं हुई है।

निर्यात नगण्य है। तेलस्रोतों एवं तीर्थयात्रियों से पर्याप्त मुद्रा की प्राप्ति हो जाती है। हेजैज तीर्थयात्रा के लिये एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जहाँ प्रति वर्ष हजारों मुसलमान यात्री विभिन्न देशों से जिद्दा नामक प्रसिद्ध बंदरगाह से होकर प्रवेश करते हैं। *मक्का एवं मदीना* की पवित्र नगरियाँ यहीं हैं। ताइफ अन्य महत्वपूर्ण नगर है। जिद्दा के अतिरिक्त येन्बो, एल वज्ह, रेबिग, लिथ और कुनाफिदा अन्य छोटे बंदरगाह हैं।

इस क्षेत्र में नाममात्र की सड़कें हैं। केवल जिद्दा से मक्का एवं मदीना को जोड़नेवाली सड़क है जो डामर की बनी हुई है। जिद्दा में एक हवाई अड्डा भी है। १२५८ ई० में बगदाद के खलीफा की पराजय के बाद इसपर मिस्र का अधिकार हो गया। हेजैज फिर तुर्कों एवं वहाबियों के अधिकार में रहा। १९१६ ई० में मक्का के शरीफ हुसेन इब्न अली ने तुर्कों को हराकर स्वतंत्र हेजैज की घोषणा की। १९२४ ई० में हुसेन इब्न अली को पराजित करके इब्न सऊद

सकते हैं, ओतप्रोत है। उससे पृथक् किसी भी पदार्थ की सत्ता नहीं। वह निरपेक्ष चिद् या परब्रह्म ही अपने आपकी अपनी ही स्वाभाविक क्रिया से विविध वस्तुओं या नैसर्गिक घटनाओं के रूप में संतत प्रकट करता रहता है। उसे अपने से पृथक् किसी अन्य साधन या सामग्री की आवश्यकता नहीं। हेगेल के अनुसार पुद्गलात्मक विश्व और हमारे मन, परस्पर भिन्न होने पर भी, एक ही निरपेक्ष सक्रिय परब्रह्म की अभिव्यक्तियाँ होने के नाते एक दूसरे से घनिष्ठतापूर्वक सबंधित एवं अवियोज्य हैं। हेगेल के विचार में ससार का सारा ही विकासात्मक क्रियाकलाप सक्रिय ब्रह्म का ही क्रियाकलाप है। क्या जड क्या चेतन, सभी पदार्थ और प्राणी उसी एक निरपेक्ष चिद्रूप सत् के सीमित या परिच्छिन्न व्यक्त रूप हैं। जड़ीभूत प्रकृति, प्राणयुक्त वनस्पतिजगत्, चेतन पशुपक्षी तथा स्वचेतन मनुष्यों के रूप में वही एक परब्रह्म अपने आपको क्रमश: अभिव्यक्त करता है, और उसकी अबतक की अभिव्यक्तियों में आत्मसंविचियुक्त मानव ही सर्वोच्च अभिव्यक्ति है, जिसके दार्शनिक, धार्मिक तथा कलात्मक उत्तरोत्तर उत्कर्ष के द्वारा ब्रह्म के ही निजी प्रयोजन की पूर्ति होती है। दूसरे शब्दों में, ब्रह्म अपने आपको विश्व के विविध पदार्थों के रूप में प्रकट करके ही अपना विकास करता है।

इस प्रकार, हेगेल का निरपेक्ष ब्रह्म एक सक्रिय मूर्त सार्वभौम (Concrete universal) या गत्यात्मक (Dynamic) एवं ठोस सार्वभौम तत्व है, अमूर्त सार्वभौम (Abstract universal) नहीं। वह शकराचार्य के ब्रह्म के सदृश न तो शांत या कूटस्थ (Static) है, और न भेदशून्य। हेगेल ने शैलिंग के भेदशून्य (Differenceless) ब्रह्म को एक ऐसी अधकारपूर्ण रात्रि के समान बताकर, जिसमें विविध रंगों की सभी गौएँ काली दिखाई पड़ती हैं, सभी भेदशून्य ब्रह्मवादियों की कटाक्षपूर्ण आलोचना की है। शैलिंग चराचरात्मक समस्त विश्व की आविर्भूति ब्रह्म से स्वीकार करते हुए भी उसे सब प्रकार के भेदों से रहित तथा प्रपच के परे मानते थे। परंतु भेदशून्य अगत्यात्मक तत्व से भेदपूर्ण तथा गत्यात्मक सृष्टि के उदय या विकास को स्वीकार करना हेगेल को युक्तियुक्त नहीं प्रतीत हुआ। उन्होंने ब्रह्म को विश्वातीत नहीं माना। हेगेल का ब्रह्म किसी हद तक श्रीरामानुजाचार्य के ईश्वर से मिलता जुलता है। वे, श्रीरामानुजाचार्य की तरह, ब्रह्म के सजातीय विजातीय भेद तो नहीं मानते, परंतु उसमें स्वगतभेद अवश्य स्वीकार करते हैं। उन्होंने उसे भेदात्मक अभेद (Identity-in difference) या अनेकतागत एकता (unity-in-diversity) के रूप में स्वीकार किया है, शुद्ध अभेद या कोरी एकता के रूप में नहीं। इसी प्रकार, श्रीरामानुजाचार्य का सिद्धांत भी विशिष्टाद्वैत है, शुद्धाद्वैत या अद्वैत नहीं। हेगेल छांदोग्योपनिषद् के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (३·१४·१), ऋग्वेद के 'पुरुष एवेदं सर्वम्' तथा श्रीमद्भगवद्गीता के 'सर्वत· पाणिपाद' (१३·१३) आदि सिद्धांत के अनुमोदक तो अवश्यमेव कहे जा सकते हैं; परंतु माडूक्योपनिषद् के 'अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य· प्रपंचोपशमः ..' (१२) सिद्धांत के माननेवाले नहीं।

हेगेल ने क्रियात्मक एवं गतिशील विश्व के विभिन्न रूपों में होनेवाली ब्रह्म की आत्माभिव्यक्ति को एक विशेष यौक्तिक या बौद्धिक नियम के अनुसार घटित होनेवाली माना है। उनका कहना था कि सत्य यौक्तिक है और यौक्तिक सत्य है। दूसरे शब्दों में, उनके अनुसार बौद्धिक विचार का नियम और संसार के विकास का नियम एक ही है, और उन्होंने यह नियम विरोध या विरोध का नियम (Law of Contradiction) बतलाया है। इसके अनुसार जडात्मक जगत् एवं वैयक्तिक मन (mind) दोनों ही के रूप में निरपेक्ष ब्रह्म के विकास का हेतु उस तत्व का आतरिक विरोध (opposition) या व्याघात (Contradiction) ही है। हेगेल के अनुसार दो विरोधी या परस्पर व्याघातक विचारों या पदार्थों का समन्वय एक तीसरे विचार या पदार्थ में हुआ करता है। उदाहरणार्थ, हमारे मन में सर्वप्रथम 'सत्' (being) का विचार उदय होता है, या यों कहिए कि संसार के समस्त पदार्थों की आदि अवस्था 'सत्' ही है। परंतु 'केवल सत्' या 'सन्मात्र' वस्तुत असत् सदृश है। अत सत् के अतस्थल में ही असत् या अभाव (non being) संनिहित है। और सत् असत् की यह विप्रतिपत्ति ही सत् के भावी विकास का मूल हेतु बन जाती है। चूँकि विप्रतिपत्ति या विरोध यौक्तिक विचार को सह्य नहीं, अत: वह स्वभाव से ही उसके निराकरण की ओर अग्रसर हो जाता है तथा सत् और असत् नामक विरोधी प्रत्ययों के समन्वय का निष्पादन 'भव' (becoming) नामक प्रत्यय में कर देता है। हेगेल प्रारंभिक प्रत्यय को पक्ष या विधान (Thesis), उसके विरोधी प्रत्यय को प्रतिपक्ष या प्रतिविधान (Antithesis) तथा उनके मिलानेवाले प्रत्यय को समन्वय या समाधान (Synthesis) कहते हैं और उनकी यह पक्ष से समन्वयोन्मुखी पूरी प्रक्रिया विरोध-समन्वय न्याय या द्वंद्व-समन्वय विधि (Dialetical method) अथवा त्रिकवाद (Dialecticism) नाम से जानी जाती है। उपर्युक्त उदाहरण में 'सत्' पक्ष, 'असत्' प्रतिपक्ष तथा 'भव' समन्वय है। इस प्रकार हेगेल के विरोध-समन्वय-न्याय में पक्ष, प्रतिपक्ष, एवं समन्वय तीनों ही का समाहार होता है। इसे कुछ और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिये हम अपने बाह्य ज्ञान को लें और देखें कि उसमें यह नियम किस प्रकार लागू होता है। हेगेल के कथनानुसार, किसी को भी बाह्य ज्ञान तभी होता है जब पहले ज्ञेय पदार्थ का विषय द्वारा ज्ञाता या विषयी का विरोध होता है (अर्थात् वह विषय उस तथाकथित विषयी को उसके बाहर निकालता है) और तत्पश्चात् वह विषयी उस विषय से विशिष्ट होकर अपने आपमें समाविष्ट होता है। यहाँ 'विषयी' पक्ष तथा 'विषय' प्रतिपक्ष है, और उनका समन्वय विषयी द्वारा प्राप्त विषय संबंधी ज्ञान में होता है।

वस्तुत हेगेल के मत में विचार एवं विश्व के सारे ही विकास की प्रगति, अनिवार्य रूप से, इसी विरोध समन्वय न्याय के अनुसार होती है। उन्होंने अनुभव या संसार के प्राय: सभी क्षेत्रों की व्याख्या में इस न्याय की प्रयुक्तता को प्रदर्शित करने का दुःसाध्य किंतु प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। उनका कथन है कि विश्व में जो कुछ भी होता है वह सब इस नियम के अनुसार होता है, और इसके परिणामस्वरूप उत्तरोत्तर नवीन भेदप्रभेद या पदार्थों का आविर्भाव होता रहता है। कोई भी भेद कभी भी निरपेक्ष प्रत्यय या परब्रह्म के बाहर

२ क्योंकि उसमें धुआँ है (हेतु)।

३ जहाँ जहाँ धूम होता है वहाँ वहाँ आग रहती है, जैसे रसोई में (उदाहरण)।

४. इस पर्वत में जो धूम है वह आग के साथ व्याप्त है (उपनय)।

५. अत: पर्वत में धूम है। (निगमन)।

इसी अनुमान को तीन अवयवोंवाले वाक्य में इस तरह कहा जाएगा

१ जहाँ जहाँ धुआँ है वहाँ आग होती है।

२. पर्वत में धुआँ है।

३ अत पर्वत में आग है।

इस तीन अवयवोंवाले वाक्य में हेतु के लिये कोई अलग वाक्यावयव नहीं आता, हेतु का प्रयोग केवल पद के रूप में होता है।

हेतु के लिये पाँच बातो का होना आवश्यक माना गया है — १. इसे पक्ष में वर्तमान रहना चाहिए, २ इसे उन स्थानों पर होना चाहिए जहाँ साध्य वर्तमान रहता है, ३. इसे वहाँ नही रहना चाहिए जहाँ साध्य नही रहता, ४. इसे अबाधित होना चाहिए अर्थात् इसे पक्ष के विरुद्ध नही होना चाहिए, और ५ इसे इसके विरोधी तत्वो से रहित होना चाहिए।

हेतु तीन प्रकार के होते हैं १ अन्वयव्यतिरेकी वह हेतु है जो साध्य के साथ रहता है और साध्य के अभाव में नही रहता — जैसे धूम और आग। २. केवलान्वयी हेतु सर्वदा साध्य के साथ रहता है—उनका अभाव संभव नही है—जैसे ज्ञेय और प्रमेय। ३. केवलव्यतिरेकी हेतु अपने अभाव के साथ ही साध्य से संबद्ध होता है — जैसे—गंध और पृथ्वी से इतर द्रव्य।

दूषित अनुमानो में हेतु वास्तव में हेतु नही होता अत. उसको हेत्वाभास कहते हैं। [रा० च० पा०]

हेनरी स्टील ऑलकॉट, कर्नल थियोसाफिस्ट प्रचारक और 'थियोसॉफिकल सोसाइटी' के संस्थापक सदस्य। २ अगस्त, १८३२ को अमरीका के न्यूजर्सी राज्य के ऑरेंज नामक स्थान में जन्म हुआ। पहले न्यूयार्क में फिर कोलंबिया विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। आरंभ से ही अध्यात्म में उनकी रुचि हो गई और वे 'न्यूयार्क सन' के संवाददाता के रूप मे 'एडी' परिवार की चमत्कारिक घटनाओं की जाँच करने के लिये नियुक्त हुए। तत्पश्चात् वह बहुत समय तक 'न्यूयार्क ग्राफिक' में अध्यात्मवाद और आत्मा संबंधी विभिन्न घटनाओं पर लेख लिखते रहे। इसी समय पहली बार १८७४ में मैडम ब्लैवैट्स्की से उनकी भेंट हुई। उन दोनो ने डब्ल्यू० क्यू० जज के साथ १७ नवंबर, १८७५ को थियोसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना की। आलकॉट आजीवन सोसाइटी के अध्यक्ष रहे। १८७० में आलकॉट मैडम ब्लैवैट्स्की तथा अन्य साथियो के साथ भारत आए और यहाँ थियोसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना से लेकर उसके संगठन और प्रशासन में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे।

१८८० में मैडम ब्लैवैट्स्की के साथ उन्होंने सीलोन की यात्रा की और वहाँ उन्होंने ब्लैवैट्स्की सहित अपने को बुद्ध की शिक्षाओं तथा पंचशील का अनुयायी घोषित किया। सीलोन में उन्होंने बौद्ध शिक्षासंस्थाओं को संगठित करने में बहुत परिश्रम किया; व्याख्यान दिए, धन एकत्र किया। कोलंबो में बुद्धिस्ट थियोसॉफिकल सोसाइटी संगठित की, जो आज भी एक बड़ी शिक्षासंस्था के रूप में कार्य कर रही है।

कर्नल आलकॉट मेस्मेरिज्म द्वारा चिकित्सा में सिद्धहस्त थे, उसका प्रयोग उन्होंने बहुत दिनों तक भारत और सीलोन में किया। उनकी लिखित कुछ पुस्तकें ये हैं : 'ओल्ड डायरी लीव्ज' जिसमें उनके संस्करण संगृहीत हैं। 'द बुद्धिस्ट कैटेशिज्म' (बौद्ध प्रश्नोत्तरी) उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। 'पीपुल फ्राम द अदर वर्ल्ड' में आध्यात्मिक घटनाओं का विवेचन है। [सो० वा०]

हेनरी प्रथम (१०६८–११३५) नॉर्मन वंश का इंग्लैंड का राजा था तथा विजयी विलियम का कनिष्ठ पुत्र था। ११०० ई० में उसने शासन ग्रहण किया क्योंकि उसका बड़ा भाई रॉबर्ट पवित्र स्थलो में मोर्चा लेने के कारण अनुपस्थित था। उसने रॉबर्ट को ११०६ ई० मे टिंचेब्रे (Tinchebrai) मे हराकर नॉरमंडी को अपने शासन में ले लिया तथा कैंटरबरी के आर्कबिशप ऐंसेल्म (Anselm) से अभिषेक के प्रश्न पर झगडा किया जिसमे उसे लज्जित होना पड़ा। उसके प्रशासकीय तथा वैधानिक सुधार उसे 'न्याय के शेर' की उपाधि दिलाने में सहायक हुए। स्कॉटलैंड के शासक की लड़की मैटिल्डा से विवाह किया तथा इस विवाह से एकमात्र पुत्र जल में डुबो दिया गया (११०० ई०)। हेनरी बुद्धिमान् तथा शक्तिशाली राजा सिद्ध हुआ।

स० ग्रं० — के० नॉरगेट : इंग्लैंड अंडर द ऐंजेविन किंग्स; एच० डब्ल्यू० सी० डेविस : इंग्लैंड अंडर द नॉर्मन्स ऐंड ऐंजेविंस।

हेनरी द्वितीय (११३३–११८९) हेनरी प्रथम की पुत्री मैटिल्डा तथा काउंट ऑव ऐंजू ज्यॉफ्री प्लैटेजेनेट का पुत्र था। उसका राजतिलक ११५४ ई० में हुआ था। इसका उद्देश्य सामंतो तथा चर्च की शक्ति को क्षीण करना तथा राजशक्ति की वृद्धि करना था। इसके शासन मे केंद्रीय सरकार की शक्तियों की वृद्धि, राजा की अदालत एवं स्वायत्त शासन का विकास तथा जूरी प्रथा की स्थापना आदि विशेष घटनाएँ हुईं। ११६४ के क्लैरेंडन विधान ने राज्य तथा चर्च के संबंधों को नियमबद्ध किया। कैंटरबरी के आर्कबिशप बेकेट (Becket) से हेनरी के चर्चनीति पर संघर्ष और बाद में बेकेट के वध ने कुछ समय के लिये राज्य की चर्चविरोधी नीति को धक्का पहुँचाया। आयरलैंड को अंशत विजित किया गया। हेनरी अद्भुत योग्यता, शक्ति तथा संगठनक्षमता रखनेवाला व्यक्ति था।

स० ग्रं० — के० नोरगेट : 'इंग्लैंड अंडर द ऐंजेविन किंग्स्।'

हेनरी तृतीय (१२०७–७२) — राजा जॉन का ज्येष्ठ पुत्र और इंग्लैंड का शासक था। १२१६ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके दीर्घ शासन मे साइमन डी मॉटफोर्ट के नेतृत्व में सामंतो का असंतोष फैला और १२५८ ई० के 'प्राविजन्स ऑव ऑक्सफोर्ड' द्वारा राजा की शक्तियों पर नियंत्रण लागू किया गया। राजा तथा मॉटफोर्ट की अध्यक्षता में लोकप्रिय दल के बीच गृहयुद्ध छिड़ा जिसका अंत राजा की पराजय में हुआ। मॉटफोर्ट ने नगरों तथा बरोज

ने इस क्षेत्र को मिलाकर सऊदी अरब की स्थापना की। हेजेज की जनसख्या लगभग २०,००,००० है। [रा० प्र० सिं०]

हेटी स्थिति : १७° ३०' — १६° ५८' उ० अ० एव ६८° २०' — ७४° ३०' प० दे०। वेस्टइडीज के हिस्पैनियोला नामक द्वीप के पश्चिमी एक तृतीयाश भाग में विस्तृत गणतंत्र है। इसके उत्तर मे अटलांटिक महासागर, पश्चिम में विंडवर्ड पैसेज, दक्षिण मे कैरेबीयन सागर और पूर्व में डोमिनिकन गणतंत्र स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल २७,७५० वर्ग किमी एवं जनसख्या लगभग ४० लाख है। घनत्व प्रति वर्ग किमी १४४ व्यक्ति है जो मध्य अमरीकी देशों मे सबसे अधिक है। लगभग ९०% निवासी निग्रो हैं। शेष मे विदेशी और अन्य लोग हैं। मुख्य नगर एव राजधानी पोर्टो प्रिंस है। केप हाइटीन दूसरा महत्वपूर्ण नगर है। यहाँ की राजकाज की भाषा फ्रांसीसी है। रोमन कैथोलिक राजधर्म है।

तटरेखाएँ कटी फटी हैं। इस देश के ⅔ भाग मे पर्वतश्रेणियाँ फैली हुई हैं। इनकी सर्वाधिक ऊँचाई २,४२४ मी है। कई छोटी छोटी नदियाँ इस भूभाग में बहती हैं जिनमें आर्ती बोनाइत एवं एल इस्तरे महत्वपूर्ण हैं। इताग सामत्रे और इताग डि मिरागोआने उल्लेखनीय झीलें हैं। यहाँ की जलवायु उष्णकटिबंधीय, है तथा तापमान २१° से ३५° से के बीच रहता है। निचले मैदानो में पर्वतीय ढालों पर वर्षा अधिक, औसत ४५ इंच, होती है। वनो से चीड, महोगनी, सीडार, रोजवुड, एव कुछ अन्य लकड़ियों की प्राप्ति होती है।

केवल तृतीयाश भूभाग ही कृषि योग्य है। अधिकाश लोग कृषि पर ही आधारित हैं। काफी, सीसल, केला, कपास, चावल, ईख, गन्ना, कोकोआ एव तवाकू मुख्य कृषि उपज हैं। खनिज सोना, चाँदी, ताँबा और लोहा पाया जाता है। लेकिन बाक्साइट, ताँबा, लिगनाइट और मैंगनीज ही निकाले जाते हैं। सूती वस्त्र, साबुन, सीमेंट, दवा, चीनी, वार्निश, एव रग तथा प्लास्टिक की वस्तुओं का निर्माण होता है। पर्यटन उद्योग भी विकसित है। प्रति व्यक्ति आय लैटिन अमरीकी देशों की तुलना मे कम है। भूमिसुधार, सिंचाई, जलविद्युत् तथा स्वास्थ्य सेवाओं में कुछ प्रगति हुई है।

यातायात — हेटी न्यूयार्क, फ्लोरिडा, पनामा तथा यूरोप एव सुदूर पूर्व के देशों से स्टीमर सेवाओं द्वारा संबद्ध है। कुछ सडको की लबाई ३००० किमी है। रेलमार्ग पोर्टो प्रिंस से वेरहीज तक गया है। कृषि उपज को समीपवर्ती बाजार में स्त्रियों के सर पर लादकर या बरो (Burro) द्वारा पहुँचाया जाता है। यहाँ से संयुक्त राज्य अमरीका, जमैका, डोमिनिकन गणतत्र एवं पोर्टोरीको को वायुसेवाएँ हैं। निर्यात की मुख्य वस्तुओं में काफी, सीसल, चीनी, बाक्साइट एवं ताँबा है। हस्तशिल्प की वस्तुएँ एवं सुगंधित तेल कम महत्व के नही हैं। सूती वस्त्र, भोज्य पदार्थ, यत्र, मोटर गाड़ियाँ एवं खनिज तेल मुख्य आयात हैं।

शिक्षा — प्रारंभिक शिक्षा फ्रांसीसी भाषा में अनिवार्य एव निःशुल्क है। विधि, चिकित्साविज्ञान एव दंतविज्ञान संकायो में निःशुल्क उच्च शिक्षा दी जाती है। इनके अतिरिक्त कृषि, तकनीकी, मानवविज्ञान, प्रसूतिविद्या एव ओषधि निर्माण के राष्ट्रीय विद्यालय हैं। ये सभी हेटी विश्वविद्यालय के अंग हैं। ८०% से अधिक जनसख्या निरक्षर है।

सेंट लुइस डी बंधुओ का ग्रंथागार, बिब्लियोथेक नेशनेल, राष्ट्रीय एव फिशर संग्रहालय तथा राष्ट्रीय ग्रंथागार दर्शनीय हैं। [रा० प्र० सिं०]

हेडिन, स्वेन एंडर्स यह स्वेडन का अन्वेषण यात्री था जिसका जन्म १९ फरवरी, १८६५ ई० को स्टाकहोम में हुआ और मृत्यु १९५२ ई० में हुई। उपसाला विश्वविद्यालय में उसकी शिक्षा हुई और तदनतर वर्लिन तथा हाल (Halle) मे शिक्षा ग्रहण की। १८८५-८६ ई० मे वह फारस और मेसोपोटामिया गया और १८९० ई० मे फारस के शाह से सबधित ऑस्कर राजा के दूतावास मे नियुक्त हुआ। उसी वर्ष उसने खुरासान और तुर्किस्तान की यात्राएँ कीं और १८९१ में काशगर पहुँच गया। उसकी तिब्बत की यात्राओ ने उसे एशिया के आधुनिक यात्रियों में प्रथम स्थान प्राप्त कराया। १८९३ और १८९७ ई० के बीच उसने एशिया महाद्वीप के आरपार यात्रा की। ओरेनवर्ग से चलकर यूराल पार किया और पामीर तथा तिब्बत के पठार से होते हुए पेकिंग पहुँचा। दो अन्य यात्राओं में इन मार्गों के ज्ञान में विशेष जानकारी की तथा सतलज, सिंधु और ब्रह्मपुत्र के उद्गम स्थानो की खोज की। सन् १९०२ में वह स्वेडेन का नोबुल वना दिया गया और सन् १९०९ में भारत सरकार ने के० सी० आई० ई० की उपाधि दी। सन् १९०७ में उसने चीनी स्वेडेन यात्रा का चीन को मार्गदर्शन किया और इसके परिणामो के प्रकाशित करने के लिये कई वर्ष परिश्रम किया। स्वेन हेडन ने कई पुस्तकें लिखीं जिनमे से ये उल्लेखनीय हैं — 'फारस, मेसोपोटामिया और काकेशस की यात्रा' (१८८७), 'एशिया से होकर' (१८९८), 'मध्य एशिया की यात्रा का वैज्ञानिक परिणाम' (१९०४-१९०७) ८ खडो में, 'हिमालय के पार' (१९०९-१९१२) ३ खडो में, 'स्थलीय यात्रा से भारत' (१९१०) दो खडो में, 'दक्षिणी तिब्बत' (१९१७ १९२२) १२ खडों में, 'चीनी-स्वेडेन यात्रा के वैज्ञानिक परिणाम' (१९३७-१९४२) ३० खडो में। [शा० ला० का०]

हेतु तर्कशास्त्र का पारिभाषिक शब्द। धुएँ को देखकर आग का अनुमान होता है। इस अनुमान मे धुएँ को हेतु कहते हैं। धूम और अग्नि में अविनाभाव संबध होना चाहिए। साध्य (अग्नि) का पक्ष में (पर्वत, गाँव आदि जहाँ धूम दिखाई पडता हो) अस्तित्व तभी ज्ञात हो सकता है जब हेतु या लिंग ऐसा हो जो सर्वदा साध्य के साथ वर्तमान देखा गया हो। अनुमान की मानसिक प्रक्रिया को जब दूसरे के लिये शब्दों में व्यक्त करते हैं तो हम न्यायशास्त्र के अनुसार पाँच अवयवो के वाक्यो का तथा बौद्ध एवं पाश्चात्य तर्कशास्त्र के अनुसार तीन अवयवों के वाक्यो का प्रयोग करते हैं। पाँच अवयवोंवाले वाक्य मे दूसरा अवयव हेतु कहलाता है—जैसे :

१. पर्वत में आग है (प्रतिज्ञा)।

हुगया तथा आयरलैंड को दबाया। हेनरी की छह पत्नियाँ क्रमशः कैथरीन, ऐनबुलीन, जेनसेमूर, ऐन ऑव क्लीव्ज, कैथरीन हॉवर्ड तथा कैथरीन पार थी। हेनरी साहसी, स्वेच्छाचारी तथा निर्दय था।

सं० ग्रं० — ए० ऐफ० पोलार्ड हेनरी VII, एच० ए० एल० फिश पोलिटिकल हिस्टरी ऑव इंग्लैंड १४८५ १५४७, ए० डी० इन्स. इंग्लैंड अडर दि ट्यूडर्स।

हेनरी चतुर्थ (फ्रांस) (१५५३ – १६१०) बूरवान के ऐंथनी तथा जीन डी एलब्रेट का तृतीय पुत्र हेनरी चतुर्थ फ्रास और नेवार का राजा था। वह ह्यूगनॉट दल का नेता बना तथा फ्रास के धार्मिक युद्धों मे प्रमुख स्थान (१५६४ ई०) प्राप्त किया। १५७२ ई० मे मार्ग्रेट से विवाह किया। हेनरी तृतीय की मृत्यु पर १५८९ ई० में फ्रास का राजा हुआ। इसने युद्ध को जारी रखा तथा १५९० में ईव्री (Ivery) की विजय प्राप्त की किंतु पेरिस को लेने में असफल रहा। ईडिक्ट ऑव नैंट्स (१५९८) ने धार्मिक प्रश्नो का निपटारा ह्यूगेनॉट्स को सुविधाएँ देकर किया। हेनरी ने सामंतो का दमन कर राजकीय शक्ति को पुन स्थापित किया। अपने मत्री सली की सहायता से उसने आर्थिक व्यवस्था का सगठन किया। कृषि का विकास किया, सडकें और नहरें बनवाई, व्यापार और जलशक्ति को प्रोत्साहन दिया तथा भारत और उत्तरी अमरीका में उपनिवेश स्थापित किए। उसकी वैदेशिक नीति ब्रिटिश मैत्री पर आधारित थी। हेनरी का १६१० ई० में एक धर्माध के द्वारा वध हुआ।

सं० ग्रं० — पी० एफ० विलर्ट हेनरी ऑव नेवार, एच० डी० सिविक हेनरी ऑव नेवार।

हेनरी चतुर्थ (रोमन सम्राट्) (१०५०–११०६) हेनरी तृतीय का पुत्र हेनरी चतुर्थ बृहत् रोमन साम्राज्य का जर्मन सम्राट् था। (१०६५) ई० में अपनी माँ के सरक्षण में गद्दी पर बैठा। १०७५ में सैक्सन विद्रोहों का दमन किया। उसके शासन की प्रमुख घटना पोप ग्रेगरी सप्तम से अभिषेक के प्रश्न पर संघर्ष था। हेनरी पोप के द्वारा बहिष्कृत किया गया किंतु १०७७ ई० मे उसने क्षमा माँग ली। १०८० ई० में फिर बहिष्कृत किया गया। १०८४ ई० मे हेनरी ने रोम मे प्रवेश किया। पोप को निष्कासित किया तथा क्लेमेट तृतीय के नाम से एक नया पोप स्थापित किया, जिसने हेनरी का सम्राट् के रूप मे राजतिलक किया। १०९० ई० मे वह फिर इटली गया और वहाँ पराजित हुआ। १०९३ से अपनी मृत्यु तक हेनरी जर्मनी के विद्रोही राजाओ से सघर्ष करता रहा। उसका पुत्र भी बागी हो गया। हेनरी बदी बना और विवशता में उसे राज्य त्यागना पडा। वह लीज की ओर भागा और एक दूसरे संग्राम की तैयारी के बीच उसकी मृत्यु हो गई।

हेनरी पंचम (१०८१–११२५) हेनरी चतुर्थ का द्वितीय पुत्र हेनरी पचम जर्मन सम्राट् था। १०९९ ई० में वह जर्मनी का सम्राट् निर्वाचित हुआ था। ११०४ ई० में उसने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और उसे अपदस्थ कर उत्तराधिकारी हुआ। इंग्लैंड के हेनरी प्रथम की पुत्री मैटिल्डा से उसने विवाह किया। ११११ ई० मे सम्राट् के रूप मे उसका राजतिलक हुआ। यद्यपि उसे पोप की सहायता से राज्य मिला था फिर भी वह अभिषेक के प्रश्न पर पोप से सघर्ष करता रहा जब तक ११२२ ई० में समझौता नहीं हो गया। जर्मनी में उसकी केंद्रीकरण की नीति के कारण सैक्सनी और राइनलैंड में विद्रोह हुए। कुछ सफलताओं के उपरात वह १११५ ई० में हारा। १११६ ई० में वह फिर इटली गया और राजमुकुट ग्रहण किया। १११८ ई० में वह बहिष्कृत किया गया। जर्मनी वापस लौटने पर उसने शाति स्थापित की। ११२४ ई० में फ्रास के लुई षष्ठ के विरुद्ध एक सैनिक टुकडी भेजी। ११२५ ई० में हेनरी यूट्रेक्ट में नि.संतान मर गया।

हेनरी षष्ठ (११६५-११९७) फ्रेडरिक बारबरोसा का पुत्र हेनरी षष्ठ ११९० ई० में जर्मनी का राजा हुआ। ११९१ मे रोम में उसे सम्राट् की उपाधि मिली। सिसली की राजकुमारी कास्टेंस से विवाह किया। उसका सूक्ष्म शासन इटली के सतत युद्धो से पूर्ण है। जर्मनी में उसने शाति स्थापित की। हेनरी का प्रमुख उद्देश्य साम्राज्यवादी व्यवस्था को वंशानुगत कर देना था किंतु राजाओ एव पोप के विरोध के कारण उसकी महत्वाकाक्षा असफल रही। ११९७ ई० में मेसिना मे उसकी मृत्यु हो गई।

हेमचंद जोशी हिंदी के प्रमुख भाषाशास्त्री तथा इतिहासज्ञ का जन्म नैनीताल में २१ जून, सन् १८९४ ई० को हुआ। शिक्षा दीक्षा अलमोड़ा, प्रयाग तथा वाराणसी में हुई। काशी हिंदू विश्वविद्यालय से इतिहास में एम० ए० किया। बरलिन विश्वविद्यालय में भी आपने उच्च अध्ययन किया और पेरिस विश्वविद्यालय से ऋग्वेदकाल में आर्थिक राजनीतिक स्थिति पर शोधप्रबंध प्रस्तुत कर डी. लिट्. की उपाधि ली। फ्रास तथा जर्मनी मे आप अनेक वर्ष रहे तथा वहाँ भाषा एव साहित्य का गहन अध्ययन किया। स्वाधीनता आदोलन में भी आपने प्रारभ में भाग लिया था। गाधी की अपेक्षा तिलक का आपपर अधिक प्रभाव था। आप प्राय सभी प्रमुख भारतीय भाषाएँ जानते थे। ग्रीक, लैटिन, इतालवी आदि भाषाओं के भी आप अच्छे ज्ञाता थे। सन् १९२२ में आपकी 'स्वाधीनता के सिद्धांत' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। सन् '४० में भारत का इतिहास और '४४ में विक्रमादित्य नामक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। पिशेल के प्राकृत भाषा के व्याकरण का अनुवाद आपकी उल्लेख्य कृति है। आपने संस्मरण, यात्रा विवरण तथा प्रमुख पत्र पत्रिकाओ में सैकडों महत्वपूर्ण निबंध लिखे हैं। मासिक विश्वमित्र, विश्ववाणी तथा धर्मयुग का सपादन कर आपने हिंदी पत्रकारिता को नवीन दिशा प्रदान की। हिंदी भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में आपकी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी।

[ल० श० व्या०]

हेमचंद दासगुप्त भूविज्ञानी थे। इनका जन्म सन् १८७८ में दीनाजपुर जिले में हुआ था। जिला स्कूल से प्रारभिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरात १८९५ में आपने कलकत्ता प्रेसीडेंसी कालेज में प्रवेश किया। यहाँ सन् १९०० मे आपने एम० ए० (आनर्स) की डिग्री प्राप्त की। तीन वर्ष पश्चात् आपकी नियुक्ति इसी विद्यालय में डिमोंस्ट्रेटर के पद पर हुई। धीरे धीरे उन्नति करते हुए आप इसी विद्यालय में भूविज्ञान के प्रोफेसर हो गए।

(Boroughs) के प्रतिनिधियों को एक नई संसद् बुलाकर 'हाउस ऑव कॉमंस' की स्थापना की। हेनरी के कुशासन में इंग्लैंड को अत्यधिक करों के कारण कष्ट था।

सं० ग्रं० — के० नौरगेट : माइनौरिटी ऑव हेनरी III; एच० डब्ल्यू० सी० डेविस : 'इंग्लैंड अंडर द नॉरमन्स एँड एँजेविंस।

हेनरी चतुर्थ (१३६७-१४१३) एडवर्ड तृतीय के चौथे पुत्र जॉन ऑव गॉण्ट का पुत्र तथा लंकास्टर वंश का प्रथम व्यक्ति हेनरी चतुर्थ इंग्लैंड का राजा था। वह १३९९ ई० में गद्दी पर बैठा। उसने वेल्स तथा नौर्थंबरलैंड के विद्रोहों को दबाया। पार्लियामेंट के पक्ष के ही कारण उसने गद्दी प्राप्त की थी अतएव उसने पूरे शासन में वैधानिक व्यवस्था का ही निर्वाह किया। पादरियों का समर्थन प्राप्त करने के लिये इसने विक्लिफ के अनुयायियों का दमन किया और कुछ को जीवित जला दिया। स्कॉटलैंड के राजा जेम्स (तत्पश्चात् जेम्स प्रथम) को बंदी किया तथा इंग्लैंड के कारागार में १८ वर्षों तक रखा। हेनरी संगीतप्रेमी तथा कट्टरपंथी था।

सं० ग्रं० — जे० एच० वाइली : हिस्टरी ऑव इंग्लैंड अंडर हेनरी फोर्थ; जे० एच० फ्लेमिंग : 'इंग्लैंड अंडर द लैंकेस्ट्रियन्स;' कैंब्रिज मेडीवल हिस्टरी, वॉल्यूम VII।

हेनरी पंचम (१३८७-१४२२) इंग्लैंड का राजा तथा हेनरी चतुर्थ का ज्येष्ठ पुत्र था। १४१३ ई० में गद्दी पर बैठा। उसके दो उद्देश्य थे — प्रथम, लोलार्डस का दमन करके चर्च के अधिकार को पुष्ट करना तथा द्वितीय, विदेशी विजयों द्वारा यश प्राप्त करना। उसने फ्रांस से शतवर्षीय युद्ध फिर से छेड़ा तथा १४१५ ई० में एँजिनकोर्ट की गौरवशाली विजय प्राप्त कर नॉरमंडी ले लिया। १४२० की ट्रायज (Troyes) की संधि ने युद्ध में अंग्रेजी सफलता का उच्चतम बिंदु प्रदर्शित कर दिया। फ्रांस में हेनरी का तृतीय मोर्चा उसकी आकस्मिक मृत्यु के कारण अधूरा ही रह गया।

सं० ग्रं० — सी० एल० किंग्सफर्ड : हेनरी; आर० बी० मावत : हेनरी; जे० एच० वाइली एँड डब्ल्यू० एफ़ वाफ़ 'द रेन ऑव हेनरी।

हेनरी षष्ठ (१४२१-१४७१) हेनरी पंचम का एकमात्र पुत्र तथा इंग्लैंड का राजा था। अपने राज्याभिषेक पर १४२२ ई० में वह केवल नौ महीने का था। उसके चाचा ड्यूक ऑव बेडफर्ड ने संरक्षक के रूप में काम किया। शतवर्षीय युद्ध जोन ऑव आर्क के आविर्भाव तक सफलतापूर्वक चलता रहा। १४५३ ई० तक कैले को छोड़कर फ्रांस में ब्रिटेन के सारे प्रदेश अंग्रेजों के हाथ से निकल गए थे। हेनरी ने एँजू की मार्गरेट से १४४५ ई० में विवाह किया। १४५३ ई० में वह अशक्त हो गया। उसके उपरांत हाउस ऑव लैंकेस्टर तथा यॉर्क के बीच गुलाबों का गृहयुद्ध इंग्लैंड की गद्दी के लिये छिड़ा। १४६१ ई० की यॉर्क विजयों के उपरांत हेनरी १४७० ई० तक कारागार में रहा। वह कुछ समय के लिये गद्दी पर आया परंतु १४७१ ई० में उसका वध कर दिया गया। हेनरी पवित्र, विद्वान् किंतु दुर्बल शासक था। उसने १४४० ई० में ईटन की तथा १४४१ ई० में किंग्स कॉलेज, कब्रिज की स्थापना की।

सं० ग्रं० — जे० गायर्डनर : हाउसेज ऑव लैंकेस्टर एँड यॉर्क; एफ़. ए. गैस्क्वेट : द रिलिजस लाइफ़ ऑव हेनरी।

हेनरी सप्तम (१४५७-१५०९) इंग्लैंड का शासक तथा ट्यूडर वंश का संस्थापक हेनरी सप्तम रिचमंड के अर्ल एडमंड ट्यूडर मार्गरेट ब्यूफ़र्ट का पुत्र था। १४८५ ई० में इसने बॉसवर्थ के युद्ध में रिचर्ड तृतीय को परास्त किया। अगली जनवरी में इंग्लैंड का शासक हुआ तथा उसने एडवर्ड चतुर्थ की ज्येष्ठ पुत्री एलिजाबेथ ऑव यॉर्क से विवाह कर दोनों घरानों को एक कर दिया। उसने लैंबर्ट सिमनल और पर्किन वारबेक के राजगद्दी के लिये किए गए विद्रोहों का दमन किया। हेनरी ने सामंतों का दमन कर तथा जनस्वीकृति एवं संसद् की सहायता से एक सुदृढ़ राजतंत्र की स्थापना की। गृहशासन में स्थायित्व लाने के लिये उसने सुचारु शासन, राष्ट्रीय आर्थिक आत्मनिर्भरता, के कदम उठाए। राज्य की आर्थिक स्वाधीनता के लिये उसने धन पैदा करने के नए साधन निकाले। उसकी वैदेशिक नीति शांतिप्रियता की थी। १४९२ ई० का फ्रांस से अल्पकालीन संघर्ष अकेला उदाहरण है। उसने व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहन देने के लिये संधियाँ कीं। हेनरी की राजवंशीय वैवाहिक नीति की अभिव्यक्ति उसकी ज्येष्ठ पुत्री मार्गरेट का स्कॉटलैंड के जेम्स चतुर्थ से तथा उसके ज्येष्ठ पुत्र आर्थर का एरागॉन की कैथरीन से विवाह में मिलती है। हेनरी ने नए ज्ञान का संरक्षण किया और उसके शासन में इंग्लैंड में नूतन जाग्रति विकसित हुई।

सं० ग्रं० — जी० टैंपरले : 'हेनरी vii; ए० एफ़० पोलार्ड : रेन ऑव हेनरी vii; सी० एच० विलियम्स : हेनरी vii; आर० डी० इन्स : इंग्लैंड अंडर द ट्यूडर्स,।

हेनरी अष्टम (१४९१—१५४७) हेनरी सप्तम और एलिज़बेथ ऑव यॉर्क का द्वितीय पुत्र हेनरी अष्टम इंग्लैंड का राजा था। अपने ज्येष्ठ भ्राता आर्थर की मृत्यु हो जाने के कारण वह १५०९ ई० में गद्दी पर बैठा। उसने अपने भाई की विधवा स्त्री कैथरीन से विवाह किया। पावन संघ (Holy league) का सदस्य होने के कारण १५१२ ई० में फ्रांस पर आक्रमण किया। १५ वर्षों तक कार्डिनल वूल्जे उसका प्रमुख मंत्री रहा जिसकी वैदेशिक नीति संतुलन पर आधारित होकर इंगलैंड के सम्मान को महाद्वीप में बढ़ाने में सहायक हुई। प्रारंभ में उसने सुधार आंदोलन के प्रश्न पर पोप का समर्थन किया और पोप से 'धर्म के संरक्षक' की उपाधि प्राप्त की। बाद में कैथरीन के परित्याग के प्रश्न पर पोप की अस्वीकृति देख हेनरी ने रोम से संबंधविच्छेद कर लिया। पोप के विरुद्ध उठाए गए प्रमुख कदमों में रेस्ट्रेंट ऑव अपील्स १५३३, ऐक्ट ऑव सुप्रीमेसी १५३४, मठों तथा गिरजाघरों का दमन १५३६, छह धाराओं का विधान, १५३९ इत्यादि हैं। रोमन चर्च के कुछ सिद्धांतों को यथावत् रखा गया। १५२९ ई. में वूल्जे के पतन के उपरांत टॉमस क्रैन्मर तथा टॉमस क्रॉमवेल राज्य के प्रमुख सलाहकार हुए। हेनरी ने एक मातहत संसद् की सहायता से अपने को निरंकुश बना लिया तथा अवैधानिक साधनों द्वारा धन इकट्ठा किया। १५४२ ई० में सॉल्वे मॉस (Solway Moss) पर स्कॉट्स को

की एक पीढी सात ही दिन में पूरी हो जाती है। हेरिक (Herrick) ने अनुमान लगाया है कि गोभी की एफिड में ३१ मार्च से १५ अगस्त तक बारह पीढ़ियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, इतने दिनो में एक मादा ५,६४,०८,७२,५७,५०,६२,५४,५५२ एफिड उत्पन्न कर सकेगी, इनकी तौल लगभग ८,२७,६२,७२,५०,५४३ सेर होगी अर्थात् एक वर्ष में २०,६६,०६,८१,२६७ मन एफिड उत्पन्न हो जाएगी किंतु सच तो यह है कि कोई भी कीट अपनी अधिक से अधिक जननशक्ति को नही पहुँच पाता है, क्योकि अनेक विपरीत परिस्थितियाँ होती हैं, अनेक शत्रु होते हैं जो इनको खा जाते हैं, जिनके कारण इनकी सख्या इतनी अधिक नही बढने पाती। इसलिये इतनी अधिक जननशक्ति होते हुए भी इनकी संख्या बहुत नही बढ़ती।

जीवन — अधिकतर हेमिप्टेरागण पौधों के किसी भाग का रस चूसकर अपना निर्वाह करते हैं, केवल थोडे से ही ऐसे हेमिप्टेरा हैं जो अन्य कीटो का देहद्रव या स्तनधारियो और पक्षियो का रक्त चूसते हैं। एफीडाइडी (Aphididae), काकसाइडी और सिलाइडी (Psyllidae) वंशो की कुछ ऐसी जातियाँ हैं जो पिटिका (gall) बनाती हैं। देहद्रव चूसनेवाले अधिकाश अन्य कीटो का ही शिकार करते हैं। ऐसी प्रकृति रिडुवाइडी (Reduvidae) वश के कीटो और जलमत्कुणो में पाई जाती है, कुछ बडे जलमत्कुण छोटी छोटी मछलियो और बेंगचियो (tadpole) पर भी आक्रमण करते हैं। रक्त चूसनेवाले मत्कुण कशेरुकदडियों (Vertebrates) का रक्त चूसते हैं। रिडुवाइडी वश के ट्रायटोमा (Triatoma) की जातियाँ, जो अयनवृत्त मे पाई जाती हैं, बुरी तरह से रक्त चूसती हैं। ट्रायटोमा मेजिस्टा (Triatoma megista) प्राणनाशक 'चागास' (Chagas) रोग मनुष्यो में फैलाता है। खटमल ससार के समस्त देशो में उन मनुष्यो के साथ पाया जाता है जो गदे रहते हैं। ऐसा विश्वास है कि यह अनेक प्राणनाशक रोगो का सचारण करता है जैसे प्लेग, कालाआजार, कोढ़ आदि। रिडुवाइडी वंश की कुछ जातियाँ पक्षियों का भी रस चूसती हैं।

पौधों का रस चूसनेवाले कीडे अपने सुई के समान मुखभागों को बडी सरलता से पौधों में घुसा देते हैं, इनकी लार में एन्जाइम (enzyme) होते हैं जो इनका इस कार्य में सहायता करते हैं। इनमें से कुछ कीटो की लार में ऐसे एन्‌जाइम होते हैं जो पौधो की कोशिकाभित्ति (cell wall) को घुला देते हैं और ऊतको को द्रव बना देते हैं। किन्ही किन्ही मत्कुणो की लार का एन्जाइम स्टार्च को शर्करा बना देता है। बहुत से हेमोप्टेरा के भोजन में शर्करा अधिक होती है जिसको ये बूँद बूँद कर अपनी गुदा से निःस्रवण करते हैं। यह नि स्राव मधु-ओस (honey-dew) कहलाता है। मधु ओस चीटियाँ बहुत पसद करती हैं अतः वे इनकी खोज में घूमती फिरती हैं। कोई कोई चीटियाँ मधु-ओस का नि स्राव करनेवाली (एफिड) को अपने घोसलो में मधु ओस प्राप्त करने के लिये ले जाती हैं और देखभाल तथा रक्षा करती हैं।

जलवासी मत्कुणो, की जल मे रहने के कारण तैरने और श्वसन के लिये, देहरचना मे परिवर्तन आ गए हैं। वे कीट जो जलतल पर रहते हैं उनकी देह नीचे की ओर से मखमल की तरह मुलायम बालो से ढँकी रहती है जिस कारण ये कीट भीगने से बचे रहते हैं। वास्तविक जलवासियों की शृंगिकाएँ गुप्त रहती हैं क्योंकि जल में डूबे हुए कीटों को तैरने में बाधा डालते हैं। इनकी टाँगें पतवार की तरह हो जाती हैं। श्वसन के लिये भी बहुत से परिवर्तन आ जाते हैं, श्वसन इद्रियाँ इनके पुच्छ की ओर पाई जाती हैं, ये बार बार जलतल पर आते हैं, और इन इद्रियो द्वारा श्वसन करते हैं। किन्ही किन्ही कीटों में वायु को अपने पास रखने का भी प्रबंध होता है, जिस कारण उनको इतनी शीघ्रता से जलतल पर नही आना पडता है और इस वायु को श्वसन करने के काम में लेते रहते हैं।

बहुत से मत्कुणो में ध्वनि उत्पन्न करनेवाली इद्रियाँ होती हैं। ढालाकार मत्कुणो की पश्च टाँगो पर बहुत छोटी छोटी गुल्लिकाएँ होती हैं। जब ये कीट अपनी ये टाँगे अपने उदर पर, जो खुरखुरा होता है, रगडते हैं तो ध्वनि उत्पन्न होती है। कोरिक्साइडी (Corixidae) वश के कीटों के गुल्फाग्रिका (Pretarsus) पर दंत होते हैं। जब ये दत दूसरी ओर वाली टाँग की उर्विका (फीमर, Femur) पर की खूटियो पर रगडे जाते हैं तो ध्वनि उत्पन्न होती है। सिकाडा में पश्चवक्ष के नीचे की ओर एक जोडी झिल्लियाँ होती हैं, इन झिल्लियों में विशिष्ट प्रकार की पेशियों द्वारा कंपन होता है और इस प्रकार ध्वनि होती है। किसी किसी सिकाडा में में ये झिल्लियाँ उदर के अग्रभाग में दोनों ओर पाई जाती हैं और ढकनों द्वारा सुरक्षित रहती हैं। हिमालय को घाटियो के जंगलों में पाए जानेवाले सिकाडा की ध्वनि लगभग बहरा करनेवाली और थकानेवाली होती है।

हानि और लाभ — मत्कुणगण पौधो को अत्यधिक हानि पहुँचाते हैं अत इनका मनुष्य के हित से अत्यधिक संबध रहता है। अत्यधिक हानि पहुँचानेवाली जातियो में ईख का पायरेला (Pyrilla) हैं जो पौधो का रस चूस ईख की वृद्धि रोक देता है। धान का मत्कुण (Leptocorisa) बढ़ते हुए धान के दानो का रस चूस लेते हैं और इस प्रकार अंत में केवल धान की भूसी ही रह जाती है। कपास का मत्कुण (Dysdercus) कपास की ढोडियो को छेदकर हानि पहुँचाते हैं। सेब की ऊनी एफिड (Eriosoma) काश्मीर के सेवो को बहुत हानि पहुँचाता है। सतरे की श्वेत मक्खी (Dialeurodes citri) और आइसेरिया परचेसी (Icerya purchasis), जो भारत में लगभग ३० वर्ष पूर्व आस्ट्रेलिया से आई थी, मध्य भारत में संतरे और मोसमी को बहुत हानि पहुँचाती हैं। असम मे चाय मुरचा (Tea blight), जो हिलियोपिल्टिस (Heliopeltis) द्वारा होता है, चाय को बहुत हानि पहुँचाता है। सच तो यह है कि काक्साइडी और एफीडाइडी दोनो ही वशों के कीट बहुत हानिकारक हैं। कुछ श्वेत मक्खियाँ, ट्रयूका (एफिड) और कुछ अन्य मत्कुण पौधो में वायरस प्रवेश कर भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न कर हानियाँ पहुँचाते हैं।

यदि मनुष्य के लाभ की दृष्टि से देखा जाए तो लाख का कीट (Lacifer lacca) बहुत ही महत्व रखता है।

बहुत सी सस्थाओं से आपका निकट संबंध था। भारतीय विज्ञान काग्रेस के विकास में आपने महत्वपूर्ण योग दिया। आप उसकी कार्यकारिणी के सदस्य थे तथा सन् १९२८ ई० में उसके भूविज्ञान विभाग के अध्यक्ष चुने गए। 'जियालोजिकल माइनिंग ऐंड मेटालरजिकल सोसाइटी ऑव इडिया' के आप संस्थापकों में से थे तथा आपने उसके सेक्रेटरी के रूप मे भी कार्य किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय की विभिन्न सस्थाओं के भी आप सदस्य थे। इनके अतिरिक्त आप 'वगीय साहित्य परिषद्', 'एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल' तथा 'इडियन एसोसिएशन फार कल्टिवेशन ऑव साइंस' के भी प्रमुख कार्यकर्ताओं मे से थे। जमशेदपुर में ताता स्टील कंपनी स्थापित करने में आपका प्रमुख हाथ था। आप ही की संमति से यह कंपनी जमशेदपुर में स्थापित हुई। आपका जीवन बहुत सादा था। आपका देहावसान १ जनवरी, सन् १९३३ को हुआ। [म० ना० मे०]

हेमिपटेरा (Hemiptera. हेमि (hemi) आधा, टेरॉन (pteron) एक पक्ष के अंतर्गत खटमल, जूँ, चिल्लर, शल्क कीट (जैसे लाख का कीडा), सिकाडा (Cicada) और वनस्पति खटमल जिसे गाँवों में लाही कहते हैं। इन्हें मत्कुणगण भी कहा जाता है। मत्कुण का अर्थ होता है खटमल। इस प्रकार के कीटों को हेमिप्टेरा नाम सबसे पहिले लीनियस (Linnaeus) ने १७३५ ई० में दिया था। इस नाम का आधार यह था कि इस गण की बहुत सी जातियों मे अग्रपक्ष का अर्ध भाग झिल्लीमय और शेष अर्ध भाग कडा होता है। किंतु यह विशिष्टता इस गण के सब कीटो में नही पाई जाती। सबसे महत्वपूर्ण लक्षण जो इस गण की सभी जातियो में मिलता है और जिसकी ओर सबसे पहले फेब्रीसियस (Fabricius) का ध्यान सन् १७७५ में गया था, इन कीटो के मुख भाग हैं। मुख भाग में चोच के आकार का शुड होता है, यह सुई के समान नुकीला और चूसनेवाला होता है। इससे कीट छेद बना सकता है अधिकाश कीट पौधों के रस इसी से चूसते हैं। इससे ये पौधो को अत्यधिक हानि पहुचाते है। हानियाँ दो प्रकार से हो सकती हैं—एक तो रस के चूसने से और दूसरी वाइरस (virus) के प्रविष्ट कराने से। इन कीटो का रूपातरण अपूर्ण होता है। इनमें से अधिकांश कीट छोटे अथवा मध्य श्रेणी के होते हैं किंतु कोई कोई बहुत बडे भी हो सकते हैं, जैसे जलवासी हेमिप्टेरा और सिकाडा। साधारणतया इन कीटो का रग हरा या पीला होता है किंतु सिकाडा लालटेन मक्खी और कपास के हेमिप्टेरे के रंग प्राय भिन्न होते हैं।

शरीररचना — शिर की आकृति विभिन्न प्रकार की होती है। शृगिकाएँ प्राय. चार या पाँच खंडवाली होती हैं, किंतु सिलाइडी (Psyllidae) वंश के कुछ कीटो में दस खडवाली और काकसाइडी वश के कुछ नरो मे पचीस खडवाली भी होती हैं। मुखभाग छेद करके भोजन चूसने के लिये बने होते हैं। चिबुकास्थि (mandible) जभिका (maxilla) सुई के आकार की होती हैं, सब आपस में सटे रहते हैं और मिलकर शुड बनाते हैं। प्रत्येक जंभिका में दो खाँचे होते हैं और दोनों जभिका आपस में इस प्रकार सटी रहती हैं कि दोनो ओर के खाँचो से मिलकर दो महीन नलियाँ बन जाती हैं। इस प्रकार बनी हुई नलियों में से ऊपरवाली चूषण-नली कहलाती है और इसके द्वारा भोजन चूसा जाता है। नीचेवाली नली से होकर पौधे के भीतर प्रवेश करने के लिये लार निकलती है इसलिये इसको लारनली कहते हैं। लेबियम मे कई खड होते हैं। यह म्यान के आकार का होता है, इसमें ऊपर की ओर एक खाँच होती है जिसमे अन्य मुखभाग, जिस समय चूसने का कार्य नही करते, सुरक्षित रहते हैं। लेबियम भोजन चूसने में कोई भाग नही लेता। जभिका तथा लेबियम की स्पर्शिनियो का अभाव रहता है। वक्ष के अग्रखड का ऊपरी भाग बहुत बडा तथा ढाल के आकार का होता है। टाँगो के गुल्फ (tarsus) दो या तीन खड वाले होते हैं। पक्षो में विभिन्नताएँ पाई जाती हैं और शिराओं (veins) की सख्या बहुत कम रहती है। यह गण पक्षों की रचना के आधार पर दो उपगणो में विभाजित किया गया है। एक उपगण हेटरॉप्टेरा (Heteroptera) के अग्रपक्ष हेमइलायटरा (hemelytra) कहलाते हैं। इनका निकटस्थ भाग चिमड़ा होता है और इलायटरा से मिलता जुलता है, केवल अर्ध भाग ही इलायटरा की तरह होता है, इसी कारण इस उपगण को हेमइलायटरा या अर्ध इलायटरा कहते हैं। पक्षो का दूरस्थ भाग झिल्लीमय होता है। पश्चपक्ष सदा झिल्लीमय होते हैं और जब कीट उडता नही रहता उस समय अग्रपक्षो के नीचे तह रहते हैं। अग्रपक्षो का कडा निकटस्थ भाग दो भागो मे विभाजित रहता है। अगला भाग जो चौडा होता है, कोरियम (Corium) कहलाता है, तथा पिछला भाग जो सँकरा होता है क्लेवस (Clavus) कहलाता है। कभी कभी कोरियम भी दो भागो में विभाजित हो जाता है। दूसरा उपगण होमोपटेरा (Homoptera) है क्योंकि इसके समस्त अग्रपक्ष की रचना एक सी होती है। अग्रपक्ष पश्चपक्षो की तुलना में प्राय. अधिक दृढ होते हैं। इस उपगण की बहुत सी जातियाँ पक्षहीन भी होती हैं, किन्हीं किन्ही जातियो के केवल नर ही पक्षहीन होते हैं, या नरों में केवल एक ही जोडी पक्ष होते है। अंडरोपण इंद्रियाँ प्रायः ही पाई जाती हैं।

परिवर्धन — अधिकाश हेमिपटेरा गण के अर्भक (nymph) की आकृति प्रौढ जैसी ही होती है केवल इसके पक्ष नही होते और आकार में छोटा होता है। यह अपने प्रौढ के समान ही भोजन करता है। निर्मोकों मोल्ट्स (moults) की सख्या भिन्न भिन्न जातियो मे भिन्न भिन्न हो सकती है। सिकाडा का जीवनचक्र बहुत लबा होता है, किसी किसी सिकाडा की अर्भक अवस्था तेरह से सत्रह वर्ष तक की होती है, इसका अर्भक बिल में रहता है इसलिये इनमें बिल मे रहनेवाले कीटो की विशेषताएँ पाई जाती हैं। काकसाइडी (Coccidae) वश के नरो में तथा एल्यूरिडाइडी (Aleurididae) वश के दोनो लिंगियो में प्यूपा की दशा का आभास आ जाता है, अर्थात् इनमें निंफ के जीवन में प्रौढ बनने से पूर्व एक ऐसा समय आता है जब वे कुछ भी खाते नही हैं। यह प्यूपा की प्रारंभिक दशा है। ये कीट इस प्रकार अपूर्व रूपातरण से पूर्ण रूपातरण की ओर अग्रसर होते हैं। अधिकाश हिटरॉप्टेरा मे एक वर्ष में एक ही पीढी होती है, किंतु होमोप्टेरा में जनन अति शीघ्रता से होता हैं। इतनी शीघ्रता से जनन का होना बहुत महत्व रखता है और इनको बहुत हानिकारक बना देता है। ग्रीष्मकाल में बहुत से एफिड

हेल, जॉर्ज एलरी (Hale, George Ellery, सन् १८६८–१९३८) अमरीकन ज्योतिर्विद् थे। इन्होंने यर्किज (Yerkes) और माउंट विल्सन वेधशालाओं का संगठन तथा निर्देशन किया। ये शिकागो विश्वविद्यालय में खगोल भौतिकी के प्रोफेसर भी थे। आपने स्पेक्ट्रमी सूर्यचित्री नामक यंत्र का आविष्कार किया तथा इसकी सहायता से सूर्य के परिमंडल स्तरों के फोटो लेकर उनका विश्लेषण किया।

सौर तथा तारास्पेक्ट्रम विज्ञान को आपकी देन चिरस्थायी है। आपने सूर्य के धब्बों में चुंबकीय क्षेत्रों का भी पता लगाया।

[भ० दा० व०]

हेल्म हॉल्ट्ज, हेर्मान लुडविख फर्डिनेंड फॉन (सन् १८२१–१८९४), जर्मन शरीर क्रिया वैज्ञानिक तथा भौतिक विज्ञानी, का जन्म पॉट्सडैम नामक स्थान में हुआ था। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् आपने सेना में सर्जन के पद से जीवन आरंभ किया, पर सन् १८४५ में कनिग्सबर्ग में, सन् १८८५५ में बॉन तथा १८५८ में हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालयों में शरीर क्रिया विज्ञान के प्रोफेसर नियुक्त हुए। सन् १८७१ में आपने बर्लिन विश्वविद्यालय मे भौतिकी के प्रोफेसर तथा शार्लेटनबर्ग में भौतिकीय प्राविधि संस्थान के निदेशक के पद सँभाले। यहाँ आप जीवन पर्यंत रहे।

हेल्म हॉल्ट्ज ने शरीर क्रिया विज्ञान से लेकर यांत्रिकी तक के विविध क्षेत्रों मे अनुसंधान किए। सन् १८४७ में इस विषय पर लिखे आपके लेख के कारण आप 'ऊर्जा की अविनाशिता' नामक प्राकृतिक नियम के संस्थापक माने जाते हैं। सन् १८५१ में इन्होंने 'नेत्रांतर्दर्शी' (Opthalmoscope) का आविष्कार किया। शरीर क्रिया वैज्ञानिक प्रकाशिकी के क्षेत्र में आपकी अन्य देन भी अत्यंत महत्व की हैं, जैसे चक्षुओं के प्रकाशिक नियतांक नापने के लिये आपने विशेष यंत्र बनाए तथा वर्णदर्शन (Colour vision) संबंधी सिद्धांत प्रतिपादित किया। 'स्वर संवेदन' (Sensations of Tone) पर आपने जो पुस्तक लिखी, वह शरीर क्रियात्मक ध्वनिकी (Physiological acoustics) की आधारशिला हो गई। हेल्म होल्ट्ज ने विद्युत् दोलन तथा तरल गतिकी के क्षेत्र में श्रेष्ठ अनुसंधान किए तथा द्रव पदार्थ की श्यानता नापने की एक सुंदर रीति निकाली।

हेल्म हॉल्ट्ज अनुभववादी थे। नैसर्गिक (innate) भावनाओं में उनका विश्वास नहीं था। उनकी धारणा थी कि सब ज्ञान अनुभव पर आधारित होता है जिसका एक अंश एक पीढ़ी से दूसरी को वंशगत प्राप्त हो जाता है।

[भ० दा० व०]

हेवलॉक, सर हेनरी यह एक अंग्रेज सैनिक था। इसका जन्म ५ अप्रैल, सन् १७९५ को हुआ था और मृत्यु २४ नवंबर, सन् १८५७ को हुई। अपने चार भाइयों में यह दूसरा था। यह धनाढ्य पोत निर्माणकर्ता का पुत्र था। 'चार्टर हाउस स्कूल' में शिक्षा प्राप्त करके यह सन् १८१३ में 'मिडिल टेंपल' में प्रविष्ट हुआ। वकालत में उसकी कोई विशेष रुचि नहीं हुई इसलिये उसने सेना में पदार्पण किया। सन् १८२३ में वह भारत आ गया। लगभग छह वर्ष बाद उसने जोशुआ मार्शमन की पुत्री से विवाह कर लिया। सन् १८३८ में वह सेना में कप्तान बन गया। प्रथम अफगान युद्ध में गजनी तथा काबुल पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधिकार में करते समय वह सर विलोबी कॉटन का अंगरक्षक था। इसने सिख तथा मराठा युद्धों में अपनी वीरता दिखाई और अंत में भारतस्थित सेनाओं का 'एडजुटेंट जेनरल' बन गया। फारस के युद्ध में सेना की एक टुकड़ी का नेतृत्व करने के लिये सर आउटरम ने हेनरी को सन् १८५७ में आमंत्रित किया। हैवलॉक वहाँ से लौटा ही था कि भारत में विद्रोह छिड़ गया। १८५७ के इस विद्रोह में सर हेनरी ने बड़ी वीरता दिखाई और वह उसके नायकों में से एक बन गया। उसने विभिन्न स्थानों पर विद्रोही दलों को हराया। इलाहाबाद, लखनऊ तथा कानपुर में विद्रोहियों को दबाने के संबंध में सहायता देने के लिये सर हैवलाक ने सराहनीय कार्य किया। इन कार्यों के लिये उसे अनेक संमान प्राप्त हुए। उसे 'के० सी० बी०' की उपाधि दी गई तथा वह सेना में मेजर जेनरल बना दिया गया। उसे 'बैरोनेट' भी बनाया गया, परंतु उस समय तक पेचिश की बीमारी से उसकी मृत्यु हो चुकी थी।

[मि० च० पां०]

हेस्टिंग्स, फ्रांसिस रॉडन सर जॉन रॉडन का पुत्र फ्रांसिस रॉडन हेस्टिंग्स ९ दिसंबर, १७५४ ई० को आयरलैंड के उच्च सामंत परिवार में उत्पन्न हुआ। वह दक्ष सेनानी तथा कुशल व्यवस्थापक था। उसकी शिक्षा हैरो तथा ऑक्सफर्ड में संपन्न हुई। सत्रह वर्ष की अवस्था में उसने सेना मे प्रवेश किया। आंग्ल-अमरीकी युद्ध (१७७५–८२) में उसने भाग लिया। पिता की मृत्यु पर उसने अर्ल ऑव मोयरा का पद ग्रहण किया (१७९३); तथा १८०४ में उसने विवाह किया।

लार्ड मिंटो के बाद १८१३ में हेस्टिंग्स भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य के उत्तरी सीमांत पर गुरखों की अग्रगामी नीति के कारण ईस्ट इंडिया कंपनी के संबंध नेपाल से विकृत हो चुके थे। तज्जनित युद्ध में नेपाल को, पराजित हो, अंग्रेजों से सगौली की संधि करनी पड़ी। इस सफलता के फलस्वरूप हेस्टिंग्स मारक्विस ऑव हेस्टिंग्स की पदवी से विभूषित हुआ।

हेस्टिंग्स ने पिंडारियों के संरक्षक सिंधिया को कूटनीति द्वारा उनसे विलग कर दोनों को अशक्त बना दिया। फिर उसने पिंडारियों का मूलोच्छेदन कर दिया। पठानों को दबाने में भी वह पूर्ण सफल हुआ। तदनंतर अंतिम आंग्ल मराठा युद्ध में, पेशवा बाजीराव को पराजित कर, हेस्टिंग्स ने मराठा साम्राज्य को ध्वस्त कर दिया। अंत में सिंधिया, होलकर तथा बरार के राजा को शक्तिहीन बना भारत मे अंगरेजों की सार्वभौम सत्ता स्थापित कर दी। सौभाग्य से उसे ब्रिटिश भारत के योग्यतम अधिकारियों — एल्फिंस्टन, मनरो, मेटकाफ, मैल्कम, तथा ऑक्टरलोनी — का सहयोग प्राप्त था। युद्धों के बावजूद उसने खजाने में प्राय दो करोड़ रुपयों की बचत की। भारतीयों में शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। प्रेस की स्वतंत्रता का अनुमोदन किया। भारत मे उसके अंतिम दिन डबल्यू० पामर ऐंड कंपनी नामक व्यापारी संस्था से संबंधित आलोचना के कारण कटु प्रमाणित हुए। अंत १८२१ में उसने त्यागपत्र दे दिया किंतु अपनी अवधि समाप्त कर १ जनवरी, १८२३ में उसने भारत छोड़ा। इंग्लैंड

इन कीटों से लाख बनती है और लाख से चपड़ा बनाया जाता है (देखें 'लाख और चपड़ा')।

भौगोलिक वितरण — मत्कुणगण का वितरण बड़ा विस्तृत है, पर ये संसार के ठंढे भागों में नहीं पहुँच सके हैं। इस गण की अधिकांश जातियाँ भारत में पाई जाती हैं।

भूवैज्ञानिक वितरण — मत्कुणगण लोअर पर्मिएनयुग (Lower Permian) की कानसस (Kansas) और जर्मनी की चट्टानों में पाए गए हैं। जर्मन फासिल यूगरान (Eugeron) के मुखभाग मत्कुणगणीय हैं, केवल एक ही अंतर है कि लेवियम दो होते हैं जिनका आपस में समेकन नहीं हुआ है। पक्षों का शिराविन्यास (Venation) लगभग काक्रोच की तरह का है। इन लक्षणों के कारण इसको एक लुप्त हुआ पृथक् गण माना जाता है और इसका नाम प्रामत्कुणगण (Protohemiptera) रखा गया है। कानसस की चट्टानों में वास्तविक मत्कुणगण भी पाए गए हैं। वास्तविक मत्कुणगण सबसे प्रथम इप्सविच् के अपर ट्रायस (Upper trias of Ipswich) में मिले हैं। जुरेसिक (Jurassic) समय के पश्चात् मत्कुणगण के अस्तित्वाशेष अधिकता से पाए जाते हैं। जुरेसिक समय में दोनों उपगण मिलते हैं।

वर्गीकरण — मत्कुणगण पक्षों की रचना के आधार पर दो उपगणों में विभाजित किए गए हैं — होमाप्टेरा (Homaptera) में समस्त अग्रपक्ष एक सा होता है, किंतु हिटराप्टेरा (Heteroptera) में समस्त अग्रपक्ष एक सा नहीं होता है अर्थात् इसका निकटस्थ भाग कड़ा और दूरस्थ भाग झिल्लीमय होता है।

सं० ग्रं० — ए० डी० इम्स : ए जेनरल टेक्स्ट बुक ऑव इंटामालोजी रिवाइज्ड बाई ओ० डब्ल्यू० रिचर्ड्स ऐंड आर० जी० डेविस (१९५७); टी० वी० आर० ऐयर : ए हैंडबुक ऑव इकोनामिक इंटामालोजी फार साउथ इंडिया (१९४०); ए० डी० इम्स ऐंड एन० सी० चटर्जी : इंडियन फारेस्ट मेमॉइर ३ (१९१५); डब्ल्यू० एल० डिसटैंड : फौना ऑव ब्रिटिश इंडिया (१९०२-१४); एच० एम० लेफराम . इंडियन इंसेक्ट्स लाइफ (१९०९)।

[रा० र०]

हेमू, राजा विक्रमाजीत यह जन्म से मेवात स्थित रिवाड़ी का हिंदू बनिया था। अपने वैयक्तिक गुणों तथा कार्यकुशलता के कारण यह सूर सम्राट् आदिलशाह के दरबार का प्रधान मंत्री बन गया था। यह राज्य कार्यों का संचालन बड़े योग्यता पूर्वक करता था। आदिलशाह स्वयं अयोग्य था और अपने कार्यों का भार वह हेमू पर डाले रहता था।

जिस समय हुमायूँ की मृत्यु हुई उस समय आदिलशाह मिर्जापुर के पास चुनार में रह रहा था। हुमायूँ की मृत्यु का समाचार सुनकर हेमू अपने स्वामी की ओर से युद्ध करने के लिये दिल्ली की ओर चल पड़ा। वह ग्वालियर होता हुआ आगे बढ़ा और उसने आगरा तथा दिल्ली पर अपना अधिकार जमा लिया। तरदीबेग खाँ दिल्ली की सुरक्षा के लिये नियुक्त किया गया था। हेमू ने बेग को हरा दिया और वह दिल्ली छोड़कर भाग गया।

इस विजय से हेमू के पास काफी धन, लगभग १५०० हाथी तथा एक विशाल सेना एकत्र हो गई थी। उसने अफगान सेना की कुछ टुकड़ियों को प्रचुर धन देकर अपनी ओर कर लिया। तत्पश्चात् उसने प्राचीन काल के अनेक प्रसिद्ध हिंदू राजाओं की उपाधि धारण की और अपने को राजा विक्रमादित्य अथवा विक्रमाजीत कहने लगा। इसके बाद वह अकबर तथा बैरम खाँ से लड़ने के लिये पानीपत के ऐतिहासिक युद्धक्षेत्र में जा डटा। ५ नवंबर, १५५६ को युद्ध प्रारंभ हुआ। इतिहास में यह युद्ध पानीपत के दूसरे युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। हेमू की सेना संख्या में अधिक थी तथा उसका तोपखाना भी अच्छा था किंतु एक तीर उसकी आँख में लग जाने से वह बेहोश हो गया। इसपर उसकी सेना तितर बितर हो गई। हेमू को पकड़कर अकबर के समुख लाया गया और बैरम खाँ के आदेश से मार डाला गया।

[मि० चं० पा०]

हेरोद (ई० पूर्व० ७३ से ४ तक) जुदेआ का बादशाह हेरोद ऐंटीपेटर का पुत्र था। ई० पूर्व ४७ में रोम की सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप जूलियस सीजर ने ऐंटीपेटर को जुदेआ का प्रशासक नियुक्त किया था। उस समय ऐंटीपेटर ने हेरोद को गवर्नर बना दिया। लेकिन ई० पूर्व ४३ में ऐंटीपेटर की हत्या और देश पर पार्थियनों के कब्जा कर लेने के कारण वह रोम भाग आया। रोम में उसने मार्क ऐंटोनी का समर्थन प्राप्त किया। ऐंटोनी ने ई० पूर्व ४० में हेरोद को यहूदियों का शासक बनाने की स्वीकृति सीनेट से लेकर उसे कुस्तुंतुनियाँ भेज दिया। यहाँ आकर उसने ई० पूर्व ३७ में रोमन सेनाओं की सहायता से जेरुसलम पर अधिकार कर लिया और वहाँ का शासक बन गया। बाद में उसने राजकुमारी मेरी आयूबी से अपनी दूसरी शादी कर अपनी स्थिति को और सुदृढ़ कर लिया।

अपने शासनकाल के पहले चरण (ई० पूर्व ३७ से २५) में हेरोद ने प्रतिस्पर्धियों को दबाकर अपनी गद्दी को सुरक्षित बनाया। रोम के एक प्रतिनिधि शासक के रूप में वह रोम का विश्वासपात्र बना रहा। लेकिन रोम में ऐंटोनी और आक्टेवियस की प्रतिद्वंद्विता के कारण उसकी स्थिति डावाँडोल बनी रहती थी। ई० पूर्व ३१ के युद्ध में आक्टेवियस ने उसे क्षमा करके उसको अपना समर्थन प्रदान किया।

उसके शासनकाल का दूसरा भाग (ई० पू० २५ से १३ तक) महान् निर्माण का काल है। उसने उस समय अनेक भव्य भवनों का निर्माण करवाया। सोमारिया नगर का पुनर्निर्माण और जेरुसलम का जीर्णोद्धार करवाया, थिएटर, ओपेरा और खेलकूद के केंद्र बनवाए। जेरुसलम के महान् मंदिर में पुनरुद्धार का काम शुरू किया। वह सफल शासक था, फिर भी शासन की कठोरता और दमन नीति के कारण वह जनता की शुभेच्छा नहीं प्राप्त कर सका। बाद में घरेलू झगड़ों के कारण उसके शासन को बहुत हानि पहुँची। ई० पूर्व ४ में जेरुसलम में उसकी मृत्यु हो गई।

[स० वि०]

बोर' के नाम से जानते हैं। इनका दृश्य हैंनिंग से बहुत ही आकर्षक दिखलाई देता है। बोर एवं धारा की तेजी तथा उथले पानी के कारण यह खाटी जलयानों के आवागमन के लिये उपयुक्त नहीं है।
[रा० प्र० सिं०]

हैंपशिर दक्षिणी इंगलैंड में एक काउंटी है जो पश्चिम में डार्सेटशिर और विल्टशिर, उत्तर में बर्कशिर, पूर्व में सरे और ससेक्स तथा दक्षिण में इंगलिश चैनेल द्वारा घिरी हुई है। इस काउंटी का क्षेत्रफल ३८४५ वर्ग किमी तथा जनसंख्या १३,३६,०८४ (१९६१) है। हैंपशिर का धरातल असमान है। उत्तर से दक्षिण खड़िया मिट्टी की पहाड़ियाँ फैली हुई हैं। इन्हें उत्तरी एवं दक्षिणी पहाड़ियाँ कहते हैं। इनकी औसत ऊँचाई १५० मी है तथा ये कहीं कहीं ३०० मी तक ऊँची हैं। कृषि यहाँ का प्रधान उद्योग है। भेड़, सूअर यहाँ पाले जाते हैं। दुग्ध एवं साग सब्जी उल्लेखनीय उपज हैं। हैंपशिर नस्ल की भेड़ों के लिये यह काउंटी विख्यात रही है। लेकिन इनका स्थान अब क्यून नस्ल की भेड़ों ने ले लिया है। इचेन, वी, टेस्ट तथा एवन नदियाँ हैंपशिर में बहती हैं। बादवाली दोनो नदियाँ स्ट्राउट एवं सालमन मछलियों के लिये विख्यात हैं। इस काउंटी में इंगलैंड के दो प्रसिद्ध बंदरगाह — साउथैंपटन एवं पोर्टस्माउथ हैं। ये व्यापारिक एवं औद्योगिक केंद्र हैं। यहाँ की राजधानी विंचेस्टर है। इस्टले में रेल का कारखाना, बोर्नमाउथ एवं क्राइस्टचर्च पर्यटनकेंद्र (resort) एवं गास पोर्ट, बेसिंगस्टोक तथा एल्डरशाट सैनिक केंद्र हैं। प्रागैतिहासिक काल के आवासों के बहुत से प्रमाण हैं। ऐंग्लो-सैक्सन साम्राज्य का अंग होने के कारण यहाँ बहुत सी प्राचीन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सामग्रियाँ हैं। कई स्थानों पर पाषाण, कांस्य एवं लौहयुग के औजार एवं लंब स्तूप मिले हैं।

यहाँ की विभूतियों में जेन आस्टिन, विलियम कावेट, चार्ल्स डिकेंस, जॉन केवल, चार्ल्स किंग्स्ले, जार्ज मेरेडिथ, मैरी मिटफर्ड, फ्लोरेंस नाइटिंगेल, आइजक वाट्स, गिलबर्ट ह्वाइट एवं शारलात एम० यंग उल्लेखनीय हैं। जेन आस्टिन एवं गिलबर्ट ह्वाइट के आवासगृह अब संग्रहालय हैं। ११ सदस्य यहाँ से संसद में जाते हैं।

२ — मैसाचुसेट्स (संयुक्त राज्य अमरीका) में भी इस नाम की एक काउंटी है। क्षेत्रफल १३७५ वर्ग किमी है। यह मुख्यत. कृषि एवं वनों का क्षेत्र है। कनेक्टीकट एवं वेस्टफील्ड नदियाँ इसमें बहती हैं। नार्थैंपटन हैंपशिर की राजधानी है। [रा० प्र० सिं०]

हैज़लिट, विलियम (१७७८–१८३०) का परिवार हालैंड से आकर आयरलैंड में बस गया था। बाल्यावस्था में ही हैज़लिट अपने पिता के साथ कुछ दिनों के लिये अमरीका गए और वहाँ से लौटने पर उनका परिवार सन् १७८७ में वेम् नामक स्थान पर निवास करने लगा। हैज़लिट के बाल्यकाल और युवावस्था के वर्ष यहीं बीते। १५ साल की आयु में वे धार्मिक शिक्षा के लिये हाकनी की एक पाठशाला में भेजे गए किंतु वहाँ उनका मन न लगा और शीघ्र ही वे अपने बड़े भाई के साथ चित्रकारी सीखने लगे। चित्रकारी में उनकी अभिरुचि आजीवन बनी रही और उनके अंकित किए हुए कई चित्रों ने यथेष्ट ख्याति प्राप्त की। सन् १७९६ में वे बर्क के लेखों से प्रभावित हुए तथा सन् १७९८ में उनकी भेंट कोलरिज से हुई। इन दोनों घटनाओं से उनकी सुषुप्त प्रतिभा जाग्रत हो गई तथा धीरे धीरे साहित्यिक जगत् में उनकी पैठ होने लगी।

१३ वर्ष की अवस्था में ही हैज़लिट ने लेखन कार्य प्रारंभ किया किंतु बहुत समय तक उनकी रचनाएँ वैशिष्ट्यहीन थीं। सन् १७९८ में कोलरिज से साक्षात्कार के उपरांत उनकी अभिरुचि परिष्कृत हुई किंतु तब भी अनेक वर्षों तक वे स्फुट विषयों, जैसे दर्शन, अर्थशास्त्र इत्यादि पर पुस्तिकाएँ और निबंध लिखते रहे। सन् १८१५ और १८२२ के बीच के सात वर्षों में हैज़लिट की सर्वाधिक सफल साहित्यरचना हुई। निबंध और वक्तृताओं के क्षेत्र में उनकी कृतियों ने विशेष यश प्राप्त किया। 'राउंड टेबुल' और 'टेबुल टाक' में संगृहीत उनके लेख तथा प्राचीन कवियों और नाटककारों पर उनके प्रसिद्ध भाषण इसी कालावधि में रचे गए। सरा वाकर नामक निम्न श्रेणी की स्त्री के प्रति आकर्षित हो जाने के कारण उनकी दूसरी पत्नी ने उनका परित्याग कर दिया। सन् १८२२ के आस पास कुछ समय तक इन उलझनों के कारण उनका मन विक्षुब्ध था और लाइबर एमारिस के प्रकाशन से उसकी अत्यधिक बदनामी हुई। धीरे धीरे चित्त शांत होने पर हैज़लिट ने कई और ग्रंथ लिखे— करेक्टरिस्टिक्स, दी जर्नी थ्रू फ्रांस ऐंड इटली, स्केचेज ऑव दि प्रिंसिपल पिक्चर गैलरीज इन इंग्लैंड, दि प्लेन स्पीकर, दि स्पिरिट ऑव दी एज इत्यादि। अपने जीवन के अंतिम दो वर्ष लेखक ने नेपोलियन का जीवनचरित् लिखने में व्यतीत किए।

हैज़लिट स्वभाव से असहिष्णु और अप्रसन्न मन के व्यक्ति थे और उनका जीवन द्वंद्व तथा क्षोभ में बीता। उनके असफल पारिवारिक जीवन ने उनके स्वभाव को और भी तीक्ष्ण बना दिया था। उनकी राजनीतिक चेतना अत्यंत तीव्र एवं उदार थी। फ्रांस की राज्यक्रांति से जिस स्वातंत्र्य प्रेम की सृष्टि हुई उसका प्रभाव हैज़लिट के मन पर निरंतर बना रहा।

हैज़लिट मुख्यतः पत्रकार थे अतएव उनकी रचनाओं में प्रचुर वैविध्य है। लैंब की भाँति उनकी रचनाओं का क्षेत्र सीमित नहीं है वरन् उसमें प्रकृति, मानव, दर्शन, अर्थशास्त्र सभी का समावेश हुआ है। उनकी साहित्यिक समीक्षा उच्च कोटि की है। कोलरिज की भाँति उन्होंने नवीन सिद्धांतों की स्थापना नहीं की और न प्राचीन शास्त्रीय समीक्षकों की भाँति स्वीकृत प्रतिमानों द्वारा साहित्यिक मूल्यों के आँकने का प्रयास ही किया। उन्होंने अपने संवेदनशील मन पर पड़नेवाले प्रभाव को आधार बनाकर साहित्यिक कृतियों का मूल्यांकन किया है अतः उनकी आलोचनाओं को हम 'परख' की संज्ञा दे सकते हैं। हैज़लिट की गद्य शैली लैंब की गद्य शैली की अपेक्षा अधिक नवीन और सुस्पष्ट है। अपनी तीव्र अनुभूति, परिष्कृत अभिरुचि, उदार मनोवृत्ति तथा विशद ज्ञान के कारण आज भी उनकी गणना अंग्रेजी के मूर्धन्य निबंधलेखकों और समीक्षकों में होती है। [रा० प्र० द्वि०]

हैदराबाद १. जिला— यह जिला भारत के आंध्र प्रदेश की राजधानी है। इससे पूर्व यह निज़ामराज्य की राजधानी था। इसके उत्तर में मेदक, पूर्व में नलगोंडा, दक्षिण तथा पश्चिम में महबूबनगर

पहुँचने पर वह माल्टा का गवर्नर नियुक्त हुआ। वहीं घोड़े से गिर कर आहत होने के कारण २८ नवंबर, १८२६ को उसकी मृत्यु हो गई।

सं० ग्रं० — जे० एफ० रॉस : द मारक्विस ऑव हेस्टिंग्स; मारशोनस ऑव ब्यूठ (एडिटर) : दि प्राइवेट जर्नल ऑव द मारक्विस ऑव हेस्टिंग्स; एच० टी० प्रिंसेप : ऐडमिनिस्ट्रेशन ऑव द मारक्विस ऑव हेस्टिंग्स। [रा० ना०]

हेस्टिंग्ज़, वारेन (१७३२-१८१८) वारेन हेस्टिंग्ज सन् १७५० में ईस्ट इंडिया कंपनी में लेखक नियुक्त होकर कलकत्ता पहुँचा। सिराजुद्दौला से कलकत्ता वापस लेने तथा संधि करने में उसने क्लाइव को सहायता दी। मीरजाफर के शासनकाल में वह मुर्शिदाबाद में सहायक रेजीडेंट रहा। तत्पश्चात् वह पटना की फैक्ट्री में प्रधान नियुक्त हुआ। १७६२ में वह कलकत्ता कौंसिल का सदस्य बना। उसी वर्ष उसने मीरकासिम के साथ व्यापारिक समझौता किया और मुंगेर की संधि करने में वैंसिटर्ट को सहायता दी। बंगाल की लूट में उसका हाथ न था। १७६३ में वह इस्तीफा देकर इंग्लैंड चला गया।

१७६९ में वारेन हेस्टिंग्ज मद्रास कौंसिल का सदस्य नियुक्त हुआ। १७७२ में वह बंगाल का गवर्नर बना। दो वर्ष में उसने वहाँ के शासन के लिये अनेक कार्य किए, यथा द्वैध शासन का अंत करना; कलकत्ते को राजधानी बनाना; पुलिस व्यवस्था को संगठित करना; डाकुओं, लुटेरों तथा आक्रमणकारी संन्यासियों को दबाना; राजस्व बढ़ाना; व्यापार की वृद्धि करना; नमक तथा अफीम के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करना; सीमांत राज्यों के साथ व्यापारिक संबंध कायम करना; जिले को शासन की इकाई बनाना; प्रत्येक जिले में एक अंग्रेज कलेक्टर नियुक्त करना और मालगुजारी, न्याय और शासन उसके जिम्मे करना, माल के मामलों के लिये कलेक्टरों के ऊपर कमिश्नर तथा उनके ऊपर कलकत्ते में राजस्व बोर्ड रखना; न्याय के लिये कलेक्टरों के ऊपर सदर दीवानी और सदर निज़ामत अदालतें खोलना, देशी कानूनों का संग्रह करवाना; कर्मचारियों के भ्रष्टाचार को बंद करना तथा उनके व्यापार करने, भूमि रखने, घूस या इनाम लेने पर रोक लगाना। सम्राट् शाहआलम की पेंशन बंद करके, कड़ा और इलाहाबाद का अवध के नवाब के हाथ बेचकर, बंगाल के नवाब की पेंशन आधी करके तथा रुहेलों के विरुद्ध अवध को सहायता देकर वारेन हेस्टिंग्ज ने कंपनी की आय बढ़ाई। इन कार्यों के लिये उसकी कटु आलोचना हुई।

१७७४ में वारेन हेस्टिंग्ज बंगाल का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। ग्यारह वर्ष तक वह उस पद पर रहा। रेग्युलेटिंग ऐक्ट की त्रुटियों के कारण उसे अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। कौंसिल के तीन सदस्य विरोधी हो गए। दो वर्ष तक वह निर्णायक मत का प्रयोग न कर सका। १७८० में उसे फ्रैंसिस से द्वंद्वयुद्ध करना पड़ा। इंग्लैंड वापस जाकर फ्रैंसिस ने उसके विरुद्ध घोर प्रचार किया। प्रेसिडेंसियों ने बंगाल के आधिपत्य की अवहेलना की। उनके कार्यों के कारण प्रथम आंग्ल मराठा तथा द्वितीय आंग्ल मैसूर युद्ध हुए। सर्वोच्च न्यायालय तथा कंपनी के न्यायालयों में झगड़े होने लगे, जिन्हें वारेन हेस्टिंग्ज ने सर एलिजह इंपे को सदर दीवानी अदालत का प्रधान बनाकर मिटाया।

वैदेशिक मामलों में वारेन हेस्टिंग्ज ने कूटनीति का परिचय दिया। फ्रांस के साथ युद्ध छिड़ जाने पर उसने चंद्रनगर, पांडीचेरी और माही पर अधिकार कर लिया। आंग्ल मराठा युद्ध में उसने भोंसले को तटस्थ रखा, गायकवाड़ को मित्र बनाया, निज़ाम को मराठों से अलग किया तथा ग्वालियर पर अधिकार कर सिंधिया को संधि करने के लिये बाध्य किया और उसकी सहायता से सालबाई की संधि की जिससे मराठों से मित्रता हो गई और मैसूर मराठा गठबंधन टूट गया। मैसूर युद्ध में वारेन हेस्टिंग्ज ने हैदर अली को कहीं से सहायता न पहुँचने दी। फिर भी अंग्रेजों की बड़ी हानि हुई। अंत में हैदर अली की मृत्यु के पश्चात् मंगलोर की संधि द्वारा उसने टीपू से मित्रता कर ली, जिससे खोए हुए प्रदेश तथा कैदी वापस मिले। वारेन हेस्टिंग्ज ने अवध को संधियों से जकड़कर अंतराल राज्य बनाया। उसने भूटान आसाम के साथ मैत्रीभाव बढ़ाया, कूच-विहार को आश्रित बनाया तथा तिब्बत से संपर्क स्थापित करने के लिये बोगल और टर्नर को भेजा। ऐसी स्थिति में बाह्य आक्रमणों तथा आंतरिक विद्रोहों से बंगाल को कोई भय न रहा। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ जम गई।

अपना कार्य बनाने के लिये वारेन हेस्टिंग्ज ने उचित और अनुचित का विचार न किया। युद्धों के समय धनाभाव के कारण उसने राजा चेतसिंह को गद्दी से हटा दिया, बनारस पर अधिकार कर लिया और उसके उत्तराधिकारी से चालीस लाख रुपए प्रतिवर्ष लिए; फैजाबाद की बेगमों से जागीरें तथा खजाना छीनने के लिये आसफ-उद्दौला को सैनिक सहायता दी; तथा विरोधी नंदकुमार पर जालसाजी का मुकादमा चलवाकर उसे फाँसी दिला दी। इन अनुचित कार्यों के लिये उसकी बहुत निंदा हुई।

सांस्कृतिक क्षेत्र में हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते में मुस्लिम मदरसा खोला। सर विलियम जोन्स से बंगाल में एशियाटिक सोसायटी कायम कराई तथा कई अंग्रेज विद्वानों को भारतीय कानून की पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिये प्रोत्साहित किया।

१७८५ में वारेन हेस्टिंग्ज इंग्लैंड वापस गया। वहाँ उसके विरुद्ध, भारत में उसके अनुचित कार्यों को लेकर, सात वर्ष तक पार्लियामेंट में मुकदमा चला, जिससे वह निर्धन हो गया। अंत में उसे सभी अभियोगों से मुक्ति मिल गई। कंपनी ने उसे ४००० पौंड वार्षिक पेंशन तथा ५०,००० पौंड कर्ज दिया। १८१८ में उसका देहांत हो गया। [ही० ला० गु०]

हैंगकाऊ खाड़ी चीन के चेकियांग प्रांत में हैंगकाऊ नगर के पूर्व में १६० किमी लंबी एवं ११२ किमी चौड़ी खाड़ी है। यह पूर्वी चीन सागर का प्रवेश द्वार (inlet) है जो तिएनताग नदी के ज्वार मुहाने (Estuary) का निर्माण करता है। इस खाड़ी के किनारे समुद्री दीवारों से सुरक्षित हैपेन, हैनिंग, सियाओशान, त्जेकी और सिनहाई हैं। इससे कुछ दूरी पर चुसान द्वीप स्थित है। हैंगकाऊ की खाड़ी दर्शनीय ज्वारभाटों के लिये प्रसिद्ध है। इन्हें 'हैंगकाऊ

हुई बातें सत्य हैं। नाट्य अभिनय के उपरांत वह अपनी माता की भर्त्सना करता है तथा क्लाडियस के धोखे मे परदे के पीछे छिपे हुए पोलोनियस को मार डालता है। अब क्लाडियस हैमलेट की हत्या के लिये व्यवस्था करता है और इस अभिप्राय से उसे इंग्लैंड भेजता है। रास्ते में समुद्री डाकू उसे बंदी बनाते हैं और वह डेनमार्क लौट आता है। ओफीलिया की मृत्यु होती है तथा पोलोनियस का पुत्र एवं ओफीलिया का भाई लेयरटीज हैमलेट को द्वंद्व युद्ध के लिये चुनौती देता है। लेयरटीज को क्लाडियस का समर्थन प्राप्त है। वह विष से बुझी हुई तलवार लेकर हैमलेट से लड़ता है। दोनो घायल होते हैं और मरते हैं। अपनी मृत्यु के पूर्व हैमलेट क्लाडियस को मार डालता है और गरट्रूड भी अनजाने में विष मिली हुई मदिरा पीकर मर जाती है।

इस नाटक में अनेक महत्वपूर्ण नैतिक और मनोवैज्ञानिक प्रश्नो का समावेश हुआ है तथा समीक्षको ने इसमें निबद्ध समस्याओं पर गभीर विचार प्रकट किए हैं। [रा० प्र० द्वि०]

हैमिल्टन, विलियम रोवन (१८०५-१८६५ ई०) आइरिश गणितज्ञ। इन्होने पचघातीय समीकरण, वेगालेख्य, दोलित (Fluctuating) फलनो और अवकल समीकरणो के संख्यात्मक हल पर शोधपत्र लिखे। हैमिल्टन का प्रधान अन्वेषण है—चतुर्वर्णक, जो इनके बीजगणित के अध्ययन की चरमसीमा के परिचायक हैं। इन्होंने इसपर एक पुस्तक 'एलिमेंट्स ऑव क्वाटेरनियोस', (Elements of quaternions) भी लिखना आरभ किया था परतु इसके पूर्ण होने से पूर्व ही २ सितंबर, १८६५ ई० को इनका देहात हो गया।

हैरो इग्लैंड में लदन के १८ किमी उत्तर पश्चिम में मिडिलसेक्स काउंटी में एक आवासीय क्षेत्र है जिसका क्षेत्रफल ५१ वर्ग किमी एव जनसख्या २,०८,९६ (१९६१) है। यहाँ फोटोग्राफी, मुद्रण एव चश्मा काँच से सबधित उद्योग धधे हैं। यह नगर हैरो नामक पब्लिक विद्यालय के लिये प्रसिद्ध है। इस विद्यालय की स्थापना १५७१ ई० में हुई थी। इसके स्नातको में अनेक सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हुए हैं जिनमें भारत के प्रथम प्रधान मत्री स्व० प० जवाहरलाल नेहरू भी एक थे। [रा० प्र० सि०]

हैलमाहेरा द्वीप (Halmahera) स्थिति . २° १४' उ० से ०° ५६' द० अ० एवं १२७° २१' पू० से १२८° ५३' पू० दे०। हिंदेशिया में मलक्का द्वीपसमूह का सबसे बड़ा द्वीप है। क्षेत्रफल १७५८७ वर्ग किमी हैं। हैलमाहेरा द्वीप सेलेबीज के २४० किमी पूर्व मे मलक्का जलमार्ग के उस पार है। इसमें ४ प्रायद्वीप हैं। सबसे बड़ा प्रायद्वीप १६० किमी लंबा एव ६४ किमी चौड़ा है। ये द्वीप ३ बड़ी एव गहरी खाड़ियों द्वारा एक दूसरे से अलग हैं। इस द्वीप का अधिकाश भाग जगलो एवं पहाड़ियो से ढका हुआ है। कई सक्रिय ज्वालामुखी पर्वत यहाँ हैं। तटीय मैदान बहुत ही सँकरा है। हैलमाहेरा की मुख्य उपज जायफर (Nutmeg), आयरनवुड (Iron wood) रेजिन, साबू, धान, तंबाकू एवं नारियल हैं।

द्वितीय विश्वयुद्धकाल में हैलमाहेरा जापानी हवाई अड्डा था। १९४४ ई० में बमवर्षा द्वारा बुरी तरह नष्ट हो गया था। यह ब्रिटेन एवं हालैंड के अधिकार में रह चुका है। डचो ने १९४९ ई० में इसे हिंदेशिया को सौंप दिया। इसे जिलोला द्वीप भी कहते हैं। [रा० प्र० सि०]

होमियोपैथी एक चिकित्सा पद्धति है जिसके प्रवर्तक फ्रीडरिख सैमुएल हानेमान थे। इनका जन्म एक दरिद्र परिवार में १० अप्रैल, १७५५ ई० को जर्मनी के माइसेन नगर में हुआ था। इनके पिता मिट्टी के बर्तनों पर चित्रकारी का व्यवसाय करते थे। इनका बाल्यकाल आर्थिक कठिनाइयो में बीता। इन्होने यूनानी, हिब्रू, अरबी, लैटिन, इतालवी, स्पेनी, फारसी तथा जर्मन भाषाओ के साथ ही रसायन और चिकित्साविज्ञान का भी गहन अध्ययन किया। २४ वर्ष की उम्र में एम० डी० परीक्षा उत्तीर्णकर कुछ समय ड्रेज्डेन अस्पताल में प्रधान शल्य चिकित्सक रहने के बाद लाइपसिग के निकटस्थ एक गाँव मे निजी तौर पर चिकित्साकार्य प्रारभ किया। १० वर्षों तक ख्याति और धनार्जन करने के बाद रोगियों पर एलोपैथी दवाओ के कुप्रभाव को देखकर इन्होने चिकित्सा करना छोड दिया और रसायन का अध्ययन तथा विज्ञान की पुस्तकों का अनुवाद करना प्रारंभ किया। १७९० ई० मे डब्ल्यू० क्यूलेन (Wc Cullen) की औषधविवरणी (Materia Medica) का जर्मन भाषा में अनुवाद करते समय इनके मस्तिष्क में होमियोपैथी पद्धति का सूत्रपात हुआ। स्काच लेखक की सिनकोना (Cinchona) के ज्वरहारी गुणों की व्याख्या से असतुष्ट होकर इन्होने अपने ऊपर सिनकोना के कई प्रयोग किए। इससे उनके शरीर में एक प्रकार की मलेरिया के लक्षण उत्पन्न हो गए। जब जब उन्होंने दवा की खुराक ली, बीमारी का दौरा पड़ा। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि रोग उन्ही दवाओं से शीघ्रतम प्रभावशाली और निरापद रूप से ठीक होते हैं जिनमें उस रोग के लक्षणों को उत्पन्न करने की क्षमता होती है। चिकित्सा के समरूपता के सिद्धातानुसार औषधियाँ उन रोगों से मिलते जुलते रोग दूर कर सकती हैं, जिन्हें वे उत्पन्न कर सकती हैं। औषधि की रोगहर शक्ति जिससे उत्पन्न हो सकने वाले लक्षणो पर निर्भर है जिन्हें रोग के लक्षणो के समान किंतु उनसे प्रबल होना चाहिए। अत रोग अत्यत निश्चयपूर्वक, जड से, अविलब और सदा के लिये नष्ट और समाप्त उसी औषधि से हो सकता है जो मानव शरीर में, रोग के लक्षणो से प्रबल और लक्षणो से अत्यत मिलते जुलते सभी लक्षण उत्पन्न कर सके।

इनके द्वारा प्रवर्तित होमियोपैथी का मूल सिद्धांत है सिमिलिया सिमिलिबस क्यूरेंटर (Similia Similibus Curanter) अर्थात् रोग उन्हीं औषधियों से निरापद रूप से, शीघ्रातिशीघ्र और अत्यंत प्रभावशाली रूप से निरोग होते हैं, जो रोगी के रोगलक्षणो से मिलते जुलते लक्षण उत्पन्न करने मे सक्षम हैं।

होमियोपैथी दवाएँ टिंचर (tincture), चपेषण (trituration) तथा गोलियों के रूप में होती है और कुछ ईथर या ग्लिसरीन में घुली होती हैं, जैसे सर्पविष। टिंचर मुख्यतया पशु तथा वनस्पति जगत् से व्युत्पन्न हैं। इन्हें विशिष्ट रस, मातृ टिंचर या मैंथिक्स

पश्चिम में मैसूर राज्य का गुलवर्गा जिला है। इसकी जनसंख्या २०,६२,६६५ (१६६१ ई०) है। इसका क्षेत्रफल ·४७८० वर्ग किमी है।

२. नगर — स्थिति १७° २०' उ० अ० तथा ७८° ३०' पू० दे०। यह नगर समुद्रतल से ५१६ मी की ऊँचाई पर कृष्णा की सहायक नदी मूसी के दाहिने तट पर स्थित है। नगर की जनसख्या १२,५१,११६ (१६६१ ई०) है। यह बबई, मद्रास कलकत्ता से मध्य रेलवे से तथा दिल्ली, मद्रास, बंगलोर और बंबई से वायुमार्गों द्वारा संबद्ध है। यह नगर कुतबशाही के पाँचवें शासक मुहम्मद कुली द्वारा १५८६ ई० में बसाया गया था। प्रसिद्ध गोलकुडा का किला यहाँ से लगभग ८ किमी की दूरी पर है। यहाँ पर मसजिदो की संख्या मदिरो से अधिक है। नगर मे निजाम की अनेक अनूठी इमारतें भी हैं। मक्का मसजिद, उच्च न्यायालय, सिटी कालेज, उस्मानियाँ अस्पताल तथा स्टेट पुस्तकालय आदि उल्लेखनीय इमारतें हैं। उस्मानियाँ विश्वविद्यालय का भवन भी दर्शनीय है। इस विश्वविद्यालय की प्रमुख विशेषता यह है कि यहाँ पर अध्ययन तथा अध्यापन का माध्यम एक समय उर्दू थी। अंग्रेजी दूसरी भाषा के रूप में तब पढाई जाती थी। यहाँ की निजामियाँ वेधशाला भी उल्लेखनीय है।

हैदराबाद भारत के बड़े नगरो में एक है। यह व्यापार का प्रमुख केंद्र है। यहाँ मुख्यत' कपास तथा कपड़े का उद्योग होता है। नगर के मध्य भाग मे ५५ मी ऊँची 'चार मीनार' नामक इमारत स्थित हैं। पूरा नगर पत्थर की दीवाल से घिरा हुआ है जिसमें ११ मुख्य द्वार हैं।

३. हैदराबाद नाम का एक नगर पाकिस्तान के दक्षिणी भाग में भी है। यह सिंधक्षेत्र का प्रमुख नगर है। यह नगर रेगिस्तानी भूभाग में सिंध नदी के उत्तरी पूर्वी किनारे पर स्थित है। सिंध नदी से सिंचाई हो सकनेवाले भाग में गेहूँ की उपज होती हैं। पुराने बाग तथा सिंध के मीरो के मकबरे दर्शनीय स्थल हैं। नगर की जनसंख्या ४,३४,५३७ (१६६५ ई०) है।

हैन्स, एंडरसैग (१६०२-१६५६), जरमन रसायनज्ञ, इनका जन्म जर्मनी मे हुआ। इन्होने बाल्यकाल में प्रारभिक शिक्षा पाने के बाद म्यूनिख विश्वविद्यालय मे अध्ययन प्रारभ किया और सन् १६२८ ई० में रसायनविज्ञान की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर उपाधि प्राप्त की। उस समय इनकी आयु केवल २५ वर्ष की थी। उसी वर्ष इन्होंने 'बायर कपनी' को अपनी सेवाएँ अर्पित की और अनुसधान की दिशा में दिन प्रति दिन प्रगति करते चले गए। इनकी विशेष रुचि मैलेरिया नाशक पदार्थों का अनुसंधान करने में थी और इसी हेतु आये एमाइनो क्विनोलीन्स वर्ग के विषमज्वरनाशक द्रव्य की शोध करने में प्राणपण से लग गए तथा १६३४ ई० में इन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। आपने क्लोरोक्विन नामक औषधि का अविष्कार किया। जिससे ऊष्णकटिबधी प्रदेशो में होनेवाले घातक मैलेरिया से पीड़ित करोड़ो मनुष्य को रोग से मुक्ति मिली और उनकी जीवनरक्षा हुई।

इसके अतिरिक्त इन्होंने रोमीघामाघक तथा एन्यूरीन नामक विटामिन बी१ की खोज और इनको तैयार करने में भी महत्वपूर्ण कार्य किया। इनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान क्लोरोक्विन है।
[शि० ना० ख०]

हैमबूर्ग जर्मनी का एक बड़ा बदरगाह है। एक समय यह हैमबूर्ग राज्य की राजधानी था। अब यह जर्मनी के फेडेरल रिपब्लिक के अधीन है। यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ है। राई, जौ, गेहूँ तथा आलू की अच्छी फसलें होती हैं। हैमबूर्ग के अतिरिक्त बरगेडोर्फ (Berge dorf) और कुक्सहैवन अन्य बड़े नगर हैं। हैमबूर्ग नगर समुद्र से १२० किमी अंदर एल्बे नदी की उत्तरी शाखा पर बर्लिन से २८५ किमी उत्तर पश्चिम में सपाट भूमि पर स्थित है। इस नगर में नहरो का जाल बिछा हुआ है। इसके बीच से ऐलस्टर (Alster) नदी भी बहती है जो इसे दो भागो में विभक्त करती है। छोटे भाग को बिनेन ऐलस्टर (Binnen alster) कहते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में बबारी से इसे बहुत क्षति पहुँची थी। पर युद्ध के बाद नगर का पुनः निर्माण हो गया है। द्वितीय युद्ध के पहले यह कॉफी का बहुत बड़ा केंद्र था और यहाँ मुद्रा का भी विनिमय होता था। आजकल यहाँ से चीनी, कॉफी, ऊनी और सूती सामान, लोहे के सामान, तंबाकू, कागज और मशीनों के तैयार माल बाहर भेजे जाते हैं और बाहर से कच्चे ऊन, कच्चे चमड़े, तंबाकू, लोहे, अनाज और कॉफी के कच्चे माल मगाए जाते हैं। जहाज निर्माण का अच्छा व्यवसाय होता है, जहाजों की मरम्मत भी होती है। यह बंदरगाह वर्ष भर खुला रहता है। यहाँ का विश्वविद्यालय सुप्रसिद्ध है। इसमें अनेक आधुनिक विषयों की पढ़ाई होती है। [र० स० ख०]

हैमलेट शेक्सपियर का एक दुखात नाटक है, जिसका अभिनय सर्वप्रथम सन् १६०३ ई० तथा प्रकाशन सन् १६०४ ई० के लगभग हुआ था।

डेनमार्क का राजा क्लाडियस अपने भाई की हत्या करके सिंहासनारूढ़ हुआ। मृत राजा की पत्नी गरट्रूड, जिसकी सहायता से हत्या सपन्न हुई थी, अब क्लाडियस की पत्नी तथा डेनमार्क की महारानी बन गई। इस प्रकार अपने पिता की मृत्यु के बाद मृत राजा का पुत्र हैमलेट उत्तराधिकार से वचित रह जाता है। हैमलेट जब विटेनबर्ग से, जहाँ वह विद्यार्थी था, वापस लौटता है तब उसके पिता की प्रेतात्मा उसे क्लाडियस और गरट्रूट के अपराध से अवगत कराती है तथा क्लाडियस के प्रति प्रतिहिंसा के लिये प्रेरित करती है। हैमलेट स्वभाव से विषादग्रस्त तथा दीर्घसूत्री है, अतः वह प्रतिहिंसा का कार्य टालता जाता है। अपनी प्रतिहिंसा की भावना छिपाने के लिये हैमलेट एक विक्षिप्त व्यक्ति के समान व्यवहार करता है जिससे लोगो के मन मे यह धारणा होती है कि वह लार्ड चेंबरलेन पोलोनियस की पुत्री ओफीलिया के प्रेम में पागल हो गया है। ओफीलिया को उसने प्यार किया था किंतु बाद मे उसके प्रति हैमलेट का व्यवहार अनिश्चित एवं व्यंगपूर्ण हो गया। अपने पिता की प्रेतात्मा द्वारा बताए हुए जघन्य तथ्यों की पुष्टि हैमलेट एक ऐसे नाट्य अभिनय के माध्यम से करता है जिसमें उसके पिता के वध की कथा दुहराई गई है। क्लाडियस की तीव्र प्रतिक्रिया से हैमलेट के मन में यह निश्चित हो जाता है कि प्रेतात्मा द्वारा बताई

देशी राज्यों की भाँति इंदौर भी स्वतंत्र भारत का अभिन्न अंग बन गया और महाराज होलकर को निजी कोष प्राप्त हुआ।

[ही० ला० गु०]

होशियारपुर स्थिति : ३१° ३२' उ० अ०, ७५° ५७' पू० दे०। पंजाब राज्य (भारत) का एक जिला, तहसील तथा नगर है। जिले की जनसंख्या १२,३३,४९३ (सन् १९६१) तथा क्षेत्रफल ५७२४ वर्ग किमी है। जिले का पश्चिमी भाग मैदानी व पूर्वी भाग पहाड़ी है। व्यास नदी उत्तरी सीमा तथा सतलज नदी पूरब दक्षिण तथा दक्षिण सीमा से बहती है। व्यास के किनारे चावल तथा अन्य क्षेत्रों में मुख्यत गेहूँ, गन्ना, तबाकू आदि उत्पन्न किए जाते हैं।

होशियारपुर का समीपवर्ती क्षेत्र जालंधर के कटोच राज्य का भाग था। कालांतर में कटोच राज्य विघटित हो गया और वर्तमान जिला दातारपुर और जस्वाँ राजाओं में बँट गया। १७५६ ई० तक की शांति के पश्चात् उन्नत सिक्खों के आतंक से १८१८ ई० में पूरा राज्य लाहौर में मिल गया। १८४५-४६ के प्रथम सिक्ख युद्ध के पश्चात् यह ब्रिटिश सरकार के अधीन आ गया था।

जिला मुख्यालय होशियारपुर नगर में है। लोकप्रचलन के अनुसार १४ वीं शताब्दी के प्रारंभ में इसकी स्थापना हुई थी। १८०९ ई० में महाराज रणजीत सिंह ने इसे अधिकृत किया था। कपास पर आधारित वस्तुएँ, लकड़ी के सामान, जूते, ताँबे के बरतन, लाख रंजित सामान आदि यहाँ बनते हैं। पंजाब विश्वविद्यालय से संबद्ध ३ महाविद्यालय यहाँ हैं। नगर की जनसंख्या ५०,७३९ (१९६१) थी। क्षेत्रफल १०.१२ वर्ग किमी है।

[शां० ला० का०]

हौवा प्रचलित व्युत्पत्ति के अनुसार हौवा का अर्थ है 'सभी मनुष्यों की माता'। ईश्वर ने हौवा की सृष्टि करके आदम को उसे पत्नी स्वरूप प्रदान किया था। वह अपने पति के अधीन रहते हुए भी आदम की भाँति पूर्ण मानव है। बाइबिल में प्रतीकात्मक ढंग से शैतान द्वारा हौवा का प्रलोभन चित्रित किया गया है। उसके अनुसार शैतान साँप का रूप धारण कर ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन करने के लिये हौवा को प्रेरित करता है और बाद में हौवा अपने पति को भी वैसा ही करने के लिये फुसलाती है (दे० आदम, आदि पाप)। संत पाल अपने पत्रों में शिक्षा देते हैं कि ईसा रहस्यात्मक रूप से द्वितीय आदम हैं जो प्रथम आदम का उद्धार करते हैं। इस शिक्षा के आधार पर ईसा की माता मरियम को द्वितीय हौवा माना गया है, वह ईसा के अधीन रहकर और उनके मुक्ति कार्य में सहायक बनकर प्रथम हौवा का उद्धार करती हैं।

सं० ग्रं० — एनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी ऑव दि बाइबिल, न्यूयार्क, १९६३

[का० बु०]

ह्यू कापे (लगभग ९३८-९९६ ई०) ह्यू कापे फ्रांस का बादशाह और ह्यू महान् का ज्येष्ठ पुत्र था। उसे कापेटियन राजवंश की स्थापना करने का श्रेय प्राप्त है।

जुलाई, ९८७ में ह्यू कापे राजगद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठते ही राज्य में उसकी अच्छी धाक जम गई। लेकिन अपने राज्य के बड़े-बड़े सामंतों का समर्थन प्राप्त करने के लिये उसे शाही जमीन की भारी भेंट अदा करनी पड़ी। वास्तव में फ्रांस के बादशाह के रूप में ह्यू कापे उतना शक्तिशाली नहीं था जितना कि वह फ्रांस के ड्यूक के रूप में था। लारेन का चार्ल्स उसकी सत्ता के सम्मुख झुकने के लिये तैयार नहीं हुआ और उसने अपने सहयोगियों के साथ उस पर आक्रमण कर दिया। इस संघर्ष के पहले दौर में ह्यू कापे की स्थिति बहुत ही खतरनाक थी लेकिन किसी प्रकार उसकी रक्षा हुई और चार्ल्स को धोखे से पकड़कर उसके हवाले कर दिया गया। चार्ल्स को बंदी बनाए जाने बाद के संघर्ष समाप्त हो गया।

सन् ९८७ में ह्यू कापे ने रीम्स के आर्कबिशप के रिक्त स्थान पर अरनल्फ की नियुक्ति की लेकिन उसके विश्वासघाती सिद्ध होने पर उसने उसके स्थान पर गरबर्ट की नियुक्ति कर दी। इस कारण पोप से उसका संघर्ष छिड़ गया। पोप ने ह्यू कापे और गरबर्ट दोनों को धर्मबहिष्कृत कर दिया। ह्यू कापे भी अडिग बना रहा और उसकी मृत्यु (२४ अक्तूबर, ९९६) तक यह संघर्ष चलता रहा।

[उ० वि०]

ह्यूगेनो व्युत्पत्ति की दृष्टि से ह्यूगेनो (Huguenot) संभवतः एक जर्मन शब्द आइडगेनोस्सेन (Eidgenossen) से संबंधित है, जेनेवा में १६वीं शताब्दी में आइडगेनोस्सेन का एक विकृत रूप अर्थात् एगुनो (Eiguenots) प्रचलित था जो ह्यूगेनो से मिलता जुलता है। सन् १५६० ई० के बाद फ्रांस के प्रोटेस्टेंट धर्मावलंबियों के लिये ह्यूगेनो शब्द ही सामान्यतः प्रयुक्त होने लगा था।

धार्मिक दृष्टि से कैलविन ने फ्रांस के प्रोटेस्टेंटों पर गहरा प्रभाव डाला है किंतु ह्यूगेनो एक राजनीतिक दल भी था जो कास्पार डे कोलिग्नी के नेतृत्व में समस्त फ्रांस में फैलकर पर्यंत प्रभावशाली बन गया। २४ अगस्त, १५७२, को बहुत से अन्य ह्यूगेनो नेताओं के साथ दे कोलिग्नी की हत्या कर दी गई (यह घटना मेसेकर ऑव सेंट बरथोलोम्यू के नाम से विख्यात है) किंतु इससे प्रोटेस्टैंट आंदोलन समाप्त नहीं हुआ और संघर्ष चलता रहा।

सन् १५९८ ई० में नैंट (Nantes) की राजाज्ञा के फलस्वरूप ह्यूगेनो लोगों को धार्मिक स्वतंत्रता मिली। उस समय फ्रांस में १२% प्रोटेस्टैंट थे। राजा लुइ चौदहवें ने सन् १६८५ ई० में नैंट की राजाज्ञा रद्द करके ह्यूगनो लोगों को नागरिक अधिकारों से वंचित कर दिया। वे बड़ी संख्या में हॉलैंड आदि प्रोटेस्टैंट देशों में प्रवासी बन गए। जो फ्रांस में रह गए उनपर बहुत अत्याचार हुआ जिससे वे प्राय देहातों में छिप गए। सन् १७८७ ई० में ही उनको फिर नागरिक अधिकार दिए गए। आजकल फ्रांस में दो प्रतिशत लोग प्रोटेस्टैंट हैं जिनमें से ५/८ कैलविनिस्ट और ३/८ लूथरन हैं।

[का० बु०]

ह्यूम, एलेन ओक्टेवियन (१८२९-१९१२) इनका जन्म २२ अगस्त, १८२९ को इंगलैंड में हुआ था। इन्होंने भारत में भिन्न-भिन्न पदों पर काम किया और १८८२ में अवकाश ग्रहण किया। इसी समय ब्रिटिश सरकार के असंतोषजनक कार्यों के फलस्वरूप भारत में अद्भुत जागृति उत्पन्न हो गई और वे अपने को संघटित

टिंचर कहते हैं और इनका प्रतीक ग्रीक अक्षर थीटा (θ) है। मैट्रिक्स टिंचर तथा सपेषण से विभिन्न सामर्थ्यों (potencies) को तैयार करने की विधियाँ समान हैं।

टिंचर से विभिन्न तनुताओं (dilutions) या भिन्न भिन्न सामर्थ्य की ओषधियाँ तैयार की जाती हैं। तनुता के मापक्रम में हम ज्यों ज्यों ऊपर चढ़ते हैं, त्यों त्यों अपरिष्कृत पदार्थ से दूर हटते जाते हैं। यही कारण है कि होमियोपैथी विधि से निर्मित ओषधियाँ विषहीन एवं अहानिकारक होती हैं। इन ओषधियो में आश्चर्यजनक प्रभावशाली औषधीय गुण होता है। ये रोगनाशन में प्रबल और शरीर गठन के प्रति निष्क्रिय होती हैं।

गंधक, पारा, संखिया, जस्ता, टिन, बेराइटा, सोना, चाँदी, लोहा, चूना, ताँबा तथा टेल्यूरियम इत्यादि तत्वों तथा अन्य बहुत से पदार्थों से ओषधियाँ बनाई गई हैं। तत्वो के यौगिको से भी ओषधियाँ बनी हैं। होमियोपैथी औषधविवरणी में २६० से २७० तक ओषधियो का वर्णन किया गया है। इनमे से अधिकांश का स्वास्थ्य नर, नारी या बच्चों पर परीक्षण कर रोगोत्पादक गुण निश्चित किए गए हैं। शेष दवाओ को विवरणी में अनुभवसिद्ध होने के नाते स्थान दिया गया है।

इस चिकित्सा पद्धति का महत्वपूर्ण पक्ष ओषधि सामर्थ्य है। प्रारंभ में हानेमान उच्च सामर्थ्य (२००,१००००) की ओषधि प्रयुक्त करते थे, किंतु अनुभव से इन्होंने निम्नसामर्थ्यं (१X,३X, ६X, १२X या ६, १२, ३०) की ओषधि का प्रयोग प्रभावकारी पाया। आज भी दो विचारधारा के चिकित्सक हैं। एक तो उच्च सामर्थ्य की ओषधियो का प्रयोग करते हैं और दूसरे निम्न सामर्थ्य की ओषधियो का। अब होमियोपैथिक ओषधियो के इंजेक्शन भी बन गए हैं और इनका व्यवहार भी बढ़ रहा है।

हानेमान ने अनुभव के आधार पर एक बार में केवल एक ओषधि का विधान निश्चित किया था, किंतु अब इस मत मे भी पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। आधुनिक चिकित्सकों में से कुछ तो हानेमान के बताए मार्ग पर चल रहे हैं और कुछ लोगो ने अपना स्वतंत्र मार्ग निश्चित किया है और एक बार में दो, तीन ओषधियो का प्रयोग करते हैं।

होमियोपैथी पद्धति में चिकित्सक का मुख्य कार्य रोगी द्वारा बताए गए जीवन इतिहास एवं रोगलक्षणो को सुनकर इसी प्रकार के लक्षणो को उत्पन्न करनेवाली ओषधि का चुनाव करना है। रोग लक्षण एवं औषधि लक्षण मे जितनी ही अधिक समानता होगी रोगी के स्वस्थ होने की संभावना भी उतनी ही अधिक रहती है। चिकित्सक का अनुभव उसका सबसे बड़ा सहायक होता है। पुराने और कठिन रोग की चिकित्सा के लिये रोगी और चिकित्सक दोनो के लिये धैर्य की आवश्यकता होती है। कुछ होमियोपैथी चिकित्सा पद्धति के समर्थकों का मत है कि रोग का कारण शरीर मे शोरा-विष की वृद्धि है।

होमियोपैथिक चिकित्सकों की धारणा है कि प्रत्येक जीवित प्राणी में इंद्रियो के क्रियाशील आदर्श (functional norm) को बनाए रखने की प्रवृत्ति होती है और जब यह क्रियाशील आदर्श विकृत होता है, तब प्राणी में इस आदर्श को प्राप्त करने के लिये अनेक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। प्राणी को ओषधि द्वारा केवल उसके प्रयास में सहायता मिलती है। औषधि अल्प मात्रा में देनी चाहिए, क्योंकि बीमारी में रोगी अतिसंवेगी होता है। औषधि की अल्प मात्रा न्यूनतम प्रभावकारी होती है जिससे केवल एक ही प्रभाव प्रकट होता है। रुग्णावस्था मे ऊतकों की रूपांतरित संग्राहकता के कारण यह एकावस्था (monophasic) प्रभाव स्वास्थ्य के पुनः स्थापन में विनियमित हो जाता है। [हे० कु० ह०]

होल्कर वंश के लोग होलगाँव के निवासी होने से होल्कर कहलाए। सर्वप्रथम मल्हारराव होल्कर ने इस वंश की कीर्ति बढ़ाई। मालवा-विजय में पेशवा बाजीराव की सहायता करने पर उन्हें मालवा की सूबेदारी मिली। उत्तर के सभी अभियानों में उन्होंने में पेशवा को विशेष सहयोग दिया। वे मराठा संघ के सबल स्तंभ थे। उन्होंने इंदौर राज्य की स्थापना की। उनके सहयोग से मराठा साम्राज्य पंजाब में अटक तक फैला। सदाशिवराव भाऊ के अनुचित व्यवहार के कारण उन्होंने पानीपत के युद्ध में उसे पूरा सहयोग न दिया पर उसके विनाशकारी परिणामो से मराठा साम्राज्य की रक्षा की।

मल्हारराव के देहांत के पश्चात् उसकी विधवा पुत्रवधू अहल्या बाई ने तीस वर्ष तक बड़ी योग्यता से शासन चलया। सुव्यवस्थित शासन, राजनीतिक सूझबूझ, सहिष्णु धार्मिकता, प्रजा के हित-चिंतन, दान पुण्य तथा तीर्थस्थानों में भवननिर्माण के लिये वे विख्यात हैं। उन्होने महेश्वर को नवीन भवनों से अलंकृत किया। सन् १७९५ में उनके देहांत के पश्चात् तुकोजी होल्कर ने तीन वर्ष तक शासन किया। तदुपरांत उत्तराधिकार के लिये संघर्ष होने पर, अमीरखाँ तथा पिंडारियों की सहायता से यशवंतराव होल्कर इंदौर के शासक बने। पूना पर प्रभाव स्थापित करने की महत्वाकांक्षा के कारण उनके और दौलतराव सिंधिया के बीच प्रतिद्वंद्विता उत्पन्न हो गई, जिसके भयकर परिणाम हुए। मालवा की सुरक्षा जाती रही। मराठा संघ निर्बल तथा असगठित हो गया। अंत में होल्कर ने सिंधिया और पेशवा को हराकर पूना पर अधिकार कर लिया। भयभीत होकर बाजीराव द्वितीय ने १८०२ में बेसीन में अंग्रेजों से अपमानजनक संधि कर ली जो द्वितीय आंग्ल मराठा युद्ध का कारण बनी। प्रारंभ में होल्कर ने अग्रेजों को हराया और परेशान किया पर अंत मे परास्त होकर राजपुरघाट में संधि कर ली, जिससे उन्हे विशेष हानि न हुई। १८११ में यशवतराव की मृत्यु हो गई।

अंतिम आंग्ल-मराठा-युद्ध में परास्त होकर मल्हारराव द्वितीय को १८१८ में मंदसौर की अपमानजनक संधि स्वीकार करनी पड़ी। इस संधि से इंदौर राज्य सदा के लिये पंगु बन गया। गदर में तुकोजी द्वितीय अंग्रेजो के प्रति वफादार रहे। उन्होने तथा उनके उत्तराधिकारियों ने अग्रेजो की डाक, तार, सड़क, रेल, व्यापार-कर आदि योजनाओ को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दिया। १९०२ से अंग्रेजो के सिक्के होल्कर राज्य मे चलने लगे। १९४८ मे अन्य

मात्र है। इस प्रकार ह्यूम के विचार में 'कारणता' के समान ही द्रव्य में विश्वास का हेतु आत्मगत अभ्यास है, जिसे भ्रमवश विषयगत बनाया जाता है।

भौतिक द्रव्य की भाँति ही ह्यूम मानसिक द्रव्य को भी नहीं मानते। उनके अनुसार आत्मा या मन अनुभवों के एकीकरण के अलावा और कुछ नही है। मन एक रंगमंच मात्र ही है जहाँ भाव, विचार, अनुभव इत्यादि मानसिक अवस्थाएँ नृत्य करती दिखाई देती हैं; परतु वह मन भी स्वत अनुभव से परे रहता है। इन मानसिक विचारों का 'आश्रय' मन या आत्मा है. इसकी पुष्टि अनुभव से कतई नहीं होती।

धर्म के सबंध में ह्यूम की धारणा है कि इसकी उत्पत्ति मनुष्य की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि से नही बल्कि भौतिक परिवेश से होती है। इसका आधार सवेदना है, भावना नही। मानवस्वभाव धर्म का उत्प्रेरक अवश्य है, पर वह स्वभाव बुद्धि पर आधारित नहीं है, अनुभव से पोषित है। इस स्वभाव का संचालन मानसिक चिंतन से नही होता, भय और शारीरिक सुख से नियंत्रित होता है। यह्र आशा और उत्सुकता ही है जो अदृश्य शक्ति में आस्था उत्पन्न करती है और उससे भविष्य में मगल होने की कामना को जन्म देती है।

धर्म की धारणा के समान ही ह्यूम ने अनुभवागोचर ईश्वर का भी खडन किया। प्राकृत वस्तुओ को देखकर उनके कारण की जिज्ञासा स्वाभाविक है। परतु ससार को कार्य मानकर उसका कारण ईश्वर को मान लेना अनुभव के परे है। वास्तव में कार्य-कारण-भाव तथा उसके द्वारा ईश्वर में आस्था का बोध स्वाभाविक नही है। निश्चय ही जो अनुभव से परे है उसे न हम जान सकते हैं और न सिद्ध ही कर सकते हैं। यह सही है कि ह्यूम ने ईश्वर के अस्तित्व में अविश्वास नही किया, परतु वे अत तक कहते रहे कि उसका ज्ञान संभव नही है। इस प्रकार ह्यूम ने दर्शन के क्षेत्र में अपने को समीचीन संशयवादी सिद्ध किया। [ज० न० म०]

ह्यूमस किसी एक भूमि में बारबार फसल के उगाने और उसमें खाद न देने से कुछ समय के बाद भूमि अनुत्पादक और ऊसर हो जाती है। भूमि की उर्वरता के नाश होने का प्रमुख कारण भूमि से उस पदार्थ का निकल जाना है जिसका नाम 'ह्यूमस (Humus) दिया गया है। ह्यूमस कार्बनिक या अखनिज पदार्थ है जिसकी उपस्थिति से ही भूमि उर्वर होती है। वस्तुत; ह्यूमस वानस्पतिक और जातव पदार्थों के विघटन से बनता है। सामान्य हरी खाद, गोबर, कंपोस्ट इत्यादि खादों और पेड़ पौधों, जंतुओं और सुक्ष्म जीवाणुओं से यह बनता है। ह्यूमस के अभाव में मिट्टी मृत और निष्क्रिय हो जाती है और उसमें कोई पेड़ पौधे नही उगते।

ह्यूमस में पेड़ पौधों के आहार ऐसे रूप में रहते हैं कि उनसे पेड पौधे अपना आहार जल्द ग्रहण कर लेते हैं। उसके अभाव में पेड़ पौधे अच्छे फलते फूलते नही हैं। मिट्टी के खनिज अंश में भी कुछ ह्यूमस रह सकता है पर वह सदा ही ऐसे रूप में नहीं रहता कि पौधे उससे लाभ उठा सकें ह्यूमस से मिट्टी की भौतिक दशा अच्छी रहती है ताकि वायु और जल उसमें सरलता से प्रवेश कर जाते हैं। इससे मिट्टी भुरभुरी रहती है। एक ओर जहाँ ऐसी मिट्टी नमी का अवशोषण कर उसको रोक रखती है वहाँ दूसरी ओर आवश्यकता से अधिक जल को निकाल देने में भी समर्थ होती है। ह्यूमस से मिट्टी में बैक्टीरिया और अन्य सूक्ष्म जीवाणुओ के बढ़ने और सक्रिय होने की अनुकूल स्थिति उत्पन्न हो जाती है और इस प्रकार पौधों के पोषक तत्व की प्राप्ति में सहायता मिलती है। वस्तुतः पौधों के आहार प्रस्तुत करने का ह्यूमस एक प्रभावकारी माध्यम होता है। बलुआर मिट्टी में इसके रहने से पानी रोक रखने की क्षमता वढ जाती है जिससे बलुआर मिट्टी का सुधार हो जाता है और मटियार मिट्टी में इसके रहने से उसका कडापन कम होकर उसे भुरभुरी होने में इससे सहायता मिलती है।

ह्यूमस की प्राप्ति के दो स्रोत हैं, एक प्राकृतिक और दूसरा कृत्रिम। प्राकृतिक स्रोत में वायु और वर्षा के जल से कुछ ह्यूमस मिट्टी को प्राप्त हो सकती है। कृत्रिम स्रोत है मिट्टी में हरी खाद, गोबर खाद, कपोस्ट आदि डालना। खनिज उर्वरको से ह्यूमस नहीं प्राप्त होता। अत. केवल कृत्रिम उर्वरक डालकर खेतों को उपजाऊ नही बनाया जा सकता। उर्वरको के साथ साथ ऐसी खाद भी कुछ अवश्य रहनी चाहिए जिससे मिट्टी में ह्यूमस आ जाय। ह्यूमसवाली मिट्टी कालेथ्या भूरे रंग की, भुरभुरी एव सछिद्र होती है और उसमें जल अवशोषण की क्षमता अधिक रहती है। [फू० स० व०]

ह्यूरन झील संयुक्त राज्य अमरीका की बडी झीलो में इसका सुपीरियर झील के बाद दूसरा स्थान है। मिचिगन और एरी झीलो के बीच स्थित यह ४०० किमी० लंबी एवं २४८ किमी चौडी है। इसका क्षेत्रफल ५८,८८० वर्ग किमी है। इस झील का ३४,००८ वर्ग किमी भाग कनाडा में पडता है। ह्यूरन झील का सबसे गहरा भाग २२७ मी० है। सुपीरियर एवं मिचिगन झीलो से पानी ह्यूरन झील में आता है तथा सेंट क्लेयर नदी, सेंट क्लेयर झील एव डिट्रायट नदी में से होकर इसका पानी ईरी झील में चला जाता है। ह्यूरन झील में अप्रैल से लेकर दिसंबर तक जलयान चला करते हैं। ईरी, सुपीरियर एवं मिचिगन झीलो के बदरगाहों से व्यापार होता है। व्यापार की मुख्य वस्तुएँ लोहखनिज, अनाज, चूनापत्थर एवं कोयला हैं। राकपोर्ट एवं रोजर्स सिटी पश्चिमी तट पर मुख्य बंदरगाह हैं जहाँ बडे बड़े जलयान चले आते हैं। इसका पानी बहुत स्वच्छ है और अनेक प्रकार की मछलियाँ इस पानी में पाई जाती हैं। झील के उत्तरी भाग मे कुछ छोटे छोटे द्वीप भी हैं। [रा० प्र० सिं०]

ह्यूस्टन (Houston) स्थिति ; २९° ४५' उ० अ० एव ९५° २१' प० दे०। संयुक्त राज्य अमरीका के टेक्सास राज्य का सबसे बडा नगर, सर्वप्रमुख औद्योगिक केंद्र एवं बदरगाह है। यह रसायन एवं तेलशोधन उद्योग के लिये विख्यात है। यहाँ जलयान, इस्पात, कृत्रिम रबर, कागज, इस्पात की पाइप, वस्त्र, सीमेंट, रेलगाडियाँ तथा वस्त्रनिर्माण एवं मास को डिब्बों में बंद करनेवाले यंत्रों का निर्माण होता है। यह देश के दक्षिणी भाग का थोक व्यापार का केंद्र तथा कपास और पशु की मंडी है। यहाँ से पेट्रोलियम, कपास,

करने लगे। इस कार्य में ह्यूम साहब से भारतीयो को बड़ी प्रेरणा मिली। १८८४ के अंतिम भाग में सुरेंद्रनाथ बनर्जी तथा व्योमेशचंद्र बनर्जी और ह्यूम साहब के प्रयत्न से इंडियन नेशनल यूनियन का संघटन किया गया।

२७ दिसंबर, १८८५ को भारत के भिन्न भिन्न भागों से भारतीय नेता बबई पहुँचे और दूसरे दिन समेलन आरंभ हुआ। इस समेलन का सारा प्रबंध ह्यूम साहब ने किया था। इस प्रथम समेलन के सभापति व्योमेशचंद्र बनर्जी बनाए गए थे जो बडे योग्य तथा प्रतिष्ठित बगाली क्रिश्चियन वकील थे। यह संमेलन 'इंडियन नेशनल काग्रेस' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ह्यूम भारतवासियो के सच्चे मित्र थे। उन्होंने काग्रेस के सिद्धातो का प्रचार अपने लेखो और व्याख्यानों द्वारा किया। इनका प्रभाव इग्लैंड की जनता पर संतोषजनक पडा। वायसराय लार्ड डफरिन के शासनकाल में ही ब्रिटिश सरकार काग्रेस को शंका की दृष्टि से देखने लगी। ह्यूम साहब को भी भारत छोड़ने की राजाज्ञा मिली।

ह्यूम के मित्रों में दादा भाई नौरोजी, सर सुरेंद्रनाथ बनर्जी, सर फीरोज शाह मेहता, श्री गोपाल कृष्ण गोखले, श्री व्योमेशचंद्र बनर्जी, श्री बालगंगाधर तिलक आदि थे। इनके द्वारा शासन तथा समाज में अनेक सुधार हुए।

उन्होने अपने विश्राम के दिनो में भारतवासियों को अधिक से अधिक अधिकार अंग्रेजी सरकार से दिलाने की कोशिश की। इस सबध मे उनको कई बार इग्लैंड भी जाना पडा।

इंग्लैंड में ह्यूम साहब ने अंग्रेजों को यह बताया कि भारतवासी अब इस योग्य हैं कि वे अपने देश का प्रबंध स्वयं कर सकते हैं। उनको अंग्रेजो की भाँति सब प्रकार के अधिकार प्राप्त होने चाहिए और सरकारी नौकरियों में भी समानता होना आवश्यक है। जब तक ऐसा न होगा, वे चैन से न बैठेंगे।

इंग्लैंड की सरकार ने ह्यूम साहब के सुझावों को स्वीकार किया। भारतवासियों को बडे से बडे सरकारी पद मिलने लगे। काग्रेस को सरकार अच्छी दृष्टि से देखने लगी और उसके सुझावों का समान करने लगी। ह्यूम साहब तथा व्योमेशचंद्र बनर्जी के हर सुझाव को अंग्रेजी सरकार मानती थी और प्रत्येक सरकारी कार्य में उनसे सलाह लेती थी।

ह्यूम अपने को भारतीय ही समझते थे। भारतीय भोजन उनको अधिक पसंद था। गीता तथा बाइबिल को प्रतिदिन पढ़ा करते थे।

उनके भाषणों में भारतीय विचार होते थे तथा भारतीय जनता कैसे सुखी बनाई जा सकती है और अंग्रेजी सरकार को भारतीय जनता के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इन्ही सब बातों को वह अपने लेखो तथा भाषणों में कहा करते थे।

वे कहते थे कि भारत में एकता तथा संघटन की बड़ी आवश्यकता है। जिस समय भी भारतवासी इन दोनों गुणो को अपना लेंगे उसी समय अंग्रेज भारत छोडकर चले जाएँगे।

ह्यूम लोकमान्य बालगंगाधर तिलक को सच्चा देशभक्त तथा भारत माता का सुपुत्र समझते थे। उनका विश्वास था कि वे भारत को अपने प्रयास द्वारा स्वतंत्रता अवश्य दिला सकेंगे। [मि० च०]

ह्यूम, डेविड (१७११–१७७६) विश्वविख्यात दार्शनिक, ह्यूम स्काटलैंड (एडिनबरा) के निवासी थे। आपके मुख्य ग्रंथ हैं — 'मानव प्रज्ञा की एक परीक्षा' (An Enquiry Concerning Human Understanding) और 'नैतिक सिद्धातो की एक परीक्षा' (An Enquiry Concerning the Principles of Morals)

ह्यूम का दर्शन अनुभव की पृष्ठभूमि में परमोत्कृष्ट है। आपके अनुसार यह अनुभव (impression) और एकमात्र अनुभव ही है जो वास्तविक है। अनुभव के अतिरिक्त कोई भी ज्ञान सर्वोपरि नही है। बुद्धि से किसी भी ज्ञान का आविर्भाव नही होता। बुद्धि के सहारे मनुष्य अनुभव से प्राप्त विषयों का मिश्रण (सश्लेषण) एवं विच्छेदन (विश्लेषण) करता है। इस बुद्धि से नए ज्ञान की वृद्धि नही होती।

प्रत्यक्षानुभूत वस्तुओं में संबंध होते हैं, जो तीन प्रकार के हैं — सादृश्य संनिकर्ष (साहचर्य या सामीप्य) तथा कारणता। समानता के आधार पर एक वस्तु से दूसरी का स्मरण होना, निकटता के कारण घोडा से घुडसवार की याद आना और सूर्य को प्रकाश का कारण समझना, इन विभिन्न संबंधो के उदाहरण हैं।

उपर्युक्त तीन संबंधों में कारणता संबंध ने दार्शनिकों का ध्यान अधिक आकृष्ट किया। 'कारणता' के सबंध में ह्यूम का विचार है कि 'कारणता' का आरोप करना व्यर्थ है। कारण और कार्य का संबंध वास्तविक नहीं है। वाह्य जगत् में हम दो घटनाओं को साथ घटते देखते हैं। ऐसा सदैव होने की अनुभूति के आधार पर हम एक को कार्य और दूसरे को कारण समझ लेते हैं। सूर्य के चमकने से प्रकाश की सदैव प्राप्ति है, अवश्य; परंतु इससे एक को कारण और दूसरे को कार्य कैसे कहा जा सकता है? वास्तव में दोनों के मध्य किसी भी 'कारण संबंध' का अनुभव नही होता। इसीलिये ह्यूम के मतानुसार कार्य पूर्णतया कारण से भिन्न है और उन्हें एक को दूसरे में सन्निहित समझना मूर्खता है। 'प्रकृति समरूपता' और 'कारणता' का उद्भव मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि से होता है। दूसरे शब्दों में यों कहे कि इनका भावपक्ष ही प्रधान है, विषयपक्ष नही।

'कारणता' के सदृश ही द्रव्य (Substance) में आस्था रखना भ्रमपूर्ण है। किसी भी वस्तु मे विभिन्न गुणों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। 'ये गुण किसी 'आश्रय' (Support) में हैं,' ऐसा समझना उचित नहीं। इस प्रकार के 'आश्रय' का ज्ञान अनुभव के परे है। किसी वस्तु से एक एक कर यदि अन्यान्य गुणो को हटाया जाय तो अंत में शून्यता ही शेष रहती है। अत: द्रव्य का अस्तित्व दंतकथा

अनुवादों का बडा महत्व है। पश्चिमी देशों के बौद्ध तीर्थों की यात्रा का उसका विवरण एशिया के इतिहास की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।
[ज० यू०]

ह्वाइटहेड, एल्फ्रेड नार्थ (१८६१–१९४७) ह्वाइटहेड का जन्म १८६१ में इग्लैंड मे हुआ था। ट्रीनिटी कालेज (कैंब्रिज) में १९११–१९१४ में फेलो रहे और यूनिवर्सिटी कालेज, लदन में १९१४–२४ में व्यावहारिक तथा मिकेनिक्स पढाने का कार्य किया। इपीरियल कालेज ऑव साइस और टेकनालाजी, लदन में व्यावहारिक गणित के अध्यापक पद पर भी कार्य किया। १९२४ में वे हार्वर्ड विश्वविद्यालय मे दर्शन के अध्यापक नियुक्त हुए। इसी पद पर उन्होंने १९३८ में अवकाश ग्रहण किया।

ह्वाइटहेड की सर्वाधिक प्रसिद्ध दार्शनिक रचनाओं में 'प्रिंसिपिया मैथेमेटिका' तीन भाग (बर्टेंड रसेल के साथ), 'ऐन इक्वायरी कसर्निंग दि प्रिंसिपल्स ऑव नेचुरल नालेज' (१९१९), 'कासेप्ट ऑव नेचर' (१९२०), साइंस एड दी माडर्न वर्ल्ड' (१९२६), 'रिलीजन इन दी मेकिंग' (१९२६), 'सिंवालिज्म' (१९२८), 'प्रोसेस ऐंड रियलिटी' (१९२९), 'एडवेंचर्स ऑव आइडियाज' (१९३३), 'दि प्रिंसिपल्स ऑव रिलेटिविटी' (१९२२), और 'मोड्स ऑव थाट' (१९३८) हैं।

ह्वाइटहेड दर्शन के क्षेत्र में काम करने के पूर्व वैज्ञानिक के रूप मे प्रसिद्ध हो गए थे। वे गणितीय तर्कशास्त्र के प्रवर्तकों में से एक थे। तिरसठ वर्ष की उम्र मे उन्होने गणित का अध्यापन कार्य छोडकर दर्शन का अध्यापकपद स्वीकार कर लिया था। अभी तक दर्शन के क्षेत्र मे अतिम सत्ता का निर्धारण मनस् या पुद्गल के रूप में किया जाता था। उन्होने इस विभाजन पद्धति पर विचार करने का विरोध किया। गतिशील भौतिकी से प्रभावित होकर उन्होने अपनी दार्शनिक पद्धति की स्थापना की। उनके मतानुसार सत् एक ही है और जो कुछ प्रतीत होता है या हमारे प्रत्यक्षीकरण में आता है वह यथार्थ है। व्यक्ति के अनुभव में आनेवाली सत्ता के परे किसी वस्तु का अस्तित्व नही है। ससार में न स्थिर प्रत्यय है और न द्रव्य; केवल घटनाओं का एक सघट है। सब घटनाएँ दिक्कालीय इकाइयाँ हैं। दिक् और काल की अलग अलग अवधारणा भ्रामक है।

ह्वाइटहेड की दार्शनिक पद्धति 'जैवीय' (आर्गेनिक) कहलाती है। सब घटनाएँ एक दूसरी को प्रभावित करती हैं और स्वय भी प्रभावित होती हैं। यह ससार जैवीयरूप से एक है। आधारभूत तत्व गति या प्रक्रिया ही है। वह सर्जनात्मक है। सृजन का मूर्तरूप ईश्वर है। सृजन सर्वप्रथम ईश्वर रूप में ही व्यक्त होता है। हमारे अनुभव में आनेवाले तथ्य अनुभूतिकण कहे जा सकते हैं। उनके परे हमारा अनुभव नही पहुँच सकता है। वास्तविक सत्ताओं (एक्चुअल एटिटी) के सघट से वस्तुओं का निर्माण होता है। वास्तविक सत्ता का उदाहरण नही दिया जा सकता है। एक सवेदना बहुत कुछ वास्तविक सत्ता है। वास्तविक सत्ताएँ लाइब्नीज के चिद्बिंदुओं जैसे ही हैं किंतु वे गवाक्षहीन नहीं हैं। इनका जीवन क्षण भर का होता है। इनकी रचना शून्य से सभव नही है। ससार की सब वास्तविक सत्ताएँ मिलकर एक वास्तविक सत्ता की रचना करता हैं। सृजन मे नवीनता का कारण यह है कि एक वास्तविक सत्ता अधिक घनिष्टता से सबधित है और दूसरी दूर और अप्रत्यक्ष रूप से सबधित है। ससार की रचना मे सृजन और वास्तविक सत्ताओं के अतिरिक्त सभावित आकारों (पासिबिल फार्म) की भी आवश्यकता है। इन आकारो की दिक्कालीय सत्ता नही होती। वे शाश्वत होते हैं।

ह्वाइटहेड का दर्शन प्रकृतिवादी है किंतु पूर्व प्रकृतिवाद की तरह भौतिकवादी नहीं। यद्यपि वे भौतिकता और आध्यात्मिकता के विभाजन का विरोध करते हैं, तथापि उनका सिद्धांत अध्यात्मवाद की ओर अधिक झुकता है।
[हृ० ना० मि०]

बिनोला, गंधक, अनाज, रसायनक, लकड़ी, चावल एवं निर्मित वस्तुओं का निर्यात तथा कहवा, जूट, अखबारी कागज, केला, चीनी, एवं लकड़ी का आयात होता है। ह्यूस्टन सड़कों एवं छह रेलमार्गों का केंद्र है।

ह्यूस्टन नगर की जनसंख्या ६,३८,२१९ एवं उपनगरों सहित ११,३९,६७८ (१९६०) थी। [रा० प्र० सिं०]

ह्विग पार्टी इंग्लैंड की एक राजनीतिक पार्टी जिसका यह नाम चार्ल्स द्वितीय (१६६०-१६८५) के राज्यकाल में पड़ा। इस राजा के समय में कैथलिक धर्म को माननेवालों को राज्य की सेवाओं और पार्लमेंट की सदस्यता से वंचित कर दिया गया था पर राजा का छोटा भाई कैथलिकधर्मी जेम्स उसका उत्तराधिकारी था। उसको उत्तराधिकार से वंचित करने के लिये शैफ्ट्सबरी के अर्ल के नेतृत्व में कंट्रीपार्टी ने देश में प्रबल आंदोलन किया। शैफ्ट्सबरी ने पार्लमेंट में तीन बार इस संबंध का बिल प्रस्तुत किया पर राजा और उसके समर्थकों के विरोध के कारण उसको सफलता न मिली। १६७९ में जब राजा ने पार्लमेंट की बैठक स्थगित कर दी तो शीघ्र अधिवेशन बुलाने के लिये शैफ्ट्सबरी और उसके साथियों ने स्थान स्थान से उसके पास पिटीशन भिजवाए। राजा के समर्थकों ने इनका पिटीशनर (प्रार्थी) नाम रख दिया किंतु शीघ्र ही इनका ह्विग नाम पड़ गया। ह्विग शब्द की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में मतभेद है, पर अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि स्काटलैंड के ह्विगमोर शब्द का यह रूपांतर है। धर्मरक्षा के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हठी स्काचों को ह्विगमोर कहा जाता था। उन्होंने १६४८ में देश की राजधानी एडिनबरा पर आक्रमण किया था। राजा के समर्थकों की दृष्टि में पिटीशनरों का कार्य राजा पर आक्रमण के समान था। उन्होंने इन्हें ह्विग नाम से पुकारना आरंभ किया और शीघ्र ही यह नाम स्थायी हो गया। चार्ल्स के समय में ह्विग पार्टी अपने उद्देश्य की पूर्ति में असफल रही किंतु १६८५ में जेम्स द्वितीय के राजपद ग्रहण करने के बाद उसकी कैथलिकधर्मी नीति और स्वेच्छाचारिता का पार्टी ने समुचित विरोध किया। उसके निष्कासन और नियंत्रित राजतंत्र की स्थापना में इस पार्टी का प्रमुख हाथ था। राजपद का दैवी सिद्धांत और वंशानुगत अधिकार इस पार्टी को स्वीकार न था। कैथलिकों के अतिरिक्त अन्य प्रोटेस्टेंट संप्रदायों के प्रति यह पार्टी सहिष्णुता की नीति का समर्थक थी। राज्य के नियंत्रण से मुक्त धर्मव्यवस्था की स्वतंत्र सत्ता भी पार्टी को मान्य न थी। विलियम (१६८७-१७०१) और ऐन (१७०१-१७१४) के समय यह पार्टी फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की समर्थक रही।

कैबिनेट (मंत्रिमंडल) की व्यवस्था को आरंभ करने का श्रेय भी इस पार्टी को है। १६९५ से १६९८ तक ह्विग जले थे और १७०८ से १७१० तक पार्टी के नाम से ह्विगों ने शासन का संचालन किया। १७१४ में हनोवर वंश के जॉर्ज प्रथम के इंग्लैंड के राजा होने से १७६० में वंश के तीसरे राजा जॉर्ज तृतीय के राज्यारोहण तक शासनसूत्र पार्टी के हाथ में रहा। पार्टी ने उचित अनुचित सभी उपायों से अपना प्राधान्य बनाए रखा। कैबिनेटव्यवस्था के रूप में मंत्रीय उत्तरदायित्व के सिद्धांत को शासन में स्थायी बनाया। विदेशों में इंग्लैंड के प्रभाव के विस्तार और उपनिवेशों की स्थापना की नीति पार्टी ने अपनाई। पार्टी फ्रांस के विरुद्ध युद्धरत रही। पार्टी के ४६ वर्ष के शासन में व्यापार, कृषि और उद्योगधंधों की वृद्धि के कारण देश की आर्थिक समृद्धि हुई। जार्ज तृतीय के शासन के आरंभ में ही पार्टी के हाथ से शासनसूत्र निकल गया। १८३० तक टोरी पार्टी का अधिक बोलबाला रहा। १८३० के चुनाव में ह्विग पार्टी ने बहुमत से कामन्स सभा में प्रवेश किया। १८३२ के प्रथम रिफार्म ऐक्ट और बाद के सुधारवादी कानूनों को स्वीकृत कराने का श्रेय ह्विग पार्टी को है। इस पार्टी ने अब लिबरल नाम ग्रहण कर लिया और अभी तक पार्टी का यही नाम है। इंग्लैंड की राजनीति में बहुत समय तक ह्विग पार्टी का प्रमुख स्थान रहा। [त्रि० प०]

ह्वेनसांग (ह्वान चुआंग, मृत्यु ६६४ ई०) बौद्ध भिक्षु के प्रसिद्ध विद्वान्, अनुवादक, विश्वयात्री तथा चीन के बौद्ध नेता। बाल्यकाल से ही बौद्ध धर्म के अध्ययन की ओर उसकी रुचि हो गई थी। वयस्क होने के पूर्व ही उसने संघ में प्रवेश किया और फिर होनान, शेंसी होपेह आदि राज्यों के विविध स्थानों की यात्रा की। उस समय के विख्यात बौद्ध विद्वानों के अनेक व्याख्यान उसने सुने और संस्कृत भाषा का भी अध्ययन किया। शीघ्र ही उसने अनुभव किया कि धर्मग्रंथों में वर्णित सिद्धांतों तथा उनके व्याख्याता विद्वानों के विचारों में बड़ा अंतर और परस्पर विरोध भी है। इसलिये अपनी शंकाओं के समाधान के लिये उसने भारत की यात्रा करने का निश्चय किया। सन् ६२९ (या ६२७) ई० में मध्य एशिया के स्थलमार्ग से वह कश्मीर पहुँचा। दो वर्ष वहाँ अध्ययन करने के उपरांत वह नालंदा (बिहार) पहुँचा। वहाँ पाँच वर्षों तक उसने आचार्य शीलभद्र तथा अन्य विद्वानों के पास बैठकर शिक्षा पाई। फिर उसने पूरब, पश्चिम तथा दक्षिण भारत के भी अनेक बौद्ध केंद्रों का पर्यटन किया और बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया।

पर्यटन के बाद वह पुन. नालंदा लौट आया और बौद्ध धर्म पर संस्कृत में दो ग्रंथों की रचना की। उसकी ख्याति सुनकर कामरूप के राजा ने और कन्नौज के हर्षवर्धन ने भी उसे आमंत्रित किया। उसने एक बड़े शास्त्रार्थ संमेलन का आयोजन किया। महायान संप्रदायवालों ने उसे महायानदेव की उपाधि से तथा हीनयानियों ने मोक्षदेव की उपाधि से विभूषित किया। ६४५ ई० में वह स्वदेश लौट गया और अपने साथ बुद्ध की सात मूर्तियाँ तथा ६५७ ग्रंथ भारत से लेता गया।

चीन के सम्राट् तथा जनता ने उसकी विद्वत्ता तथा सेवाओं का संमान किया। उसने चीन के विभिन्न भागों से विविध विषयों के अनेक विद्वानों को इकट्ठा किया, जिन्होंने अनुवाद कार्य में उसकी सहायता की। सन् ६४५ से ६३४ ई० तक उन्नीस वर्षों में ७५ ग्रंथों का अनुवाद चीनी भाषा में किया गया, जिनमें 'महाप्रज्ञ परिमिता सूत्र' तथा 'योगाचार भूमिशास्त्र' मुख्य थे। चीनी त्रिपिटक में उसके

परिशिष्ट

अंतरिक्ष यात्रा और चंद्रविजय

प्रोजेक्ट मर्करी (पृथ्वी परिक्रमा हेतु उड़ान)

अपोलो ११ (चन्द्रविजय हेतु प्रस्थान)

एल्ड्रिन चन्द्रतल पर
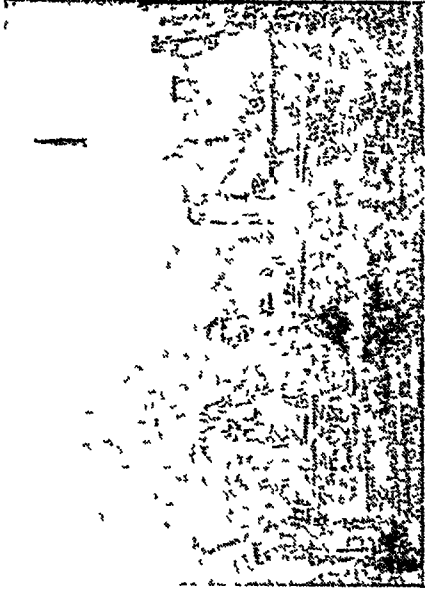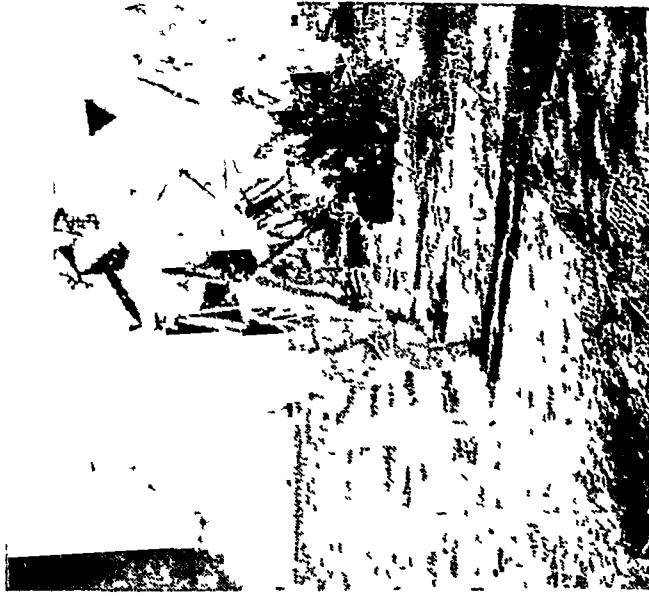
अंतरिक्ष यात्रा और चंद्रविजय (देखें पृष्ठ ४०७)
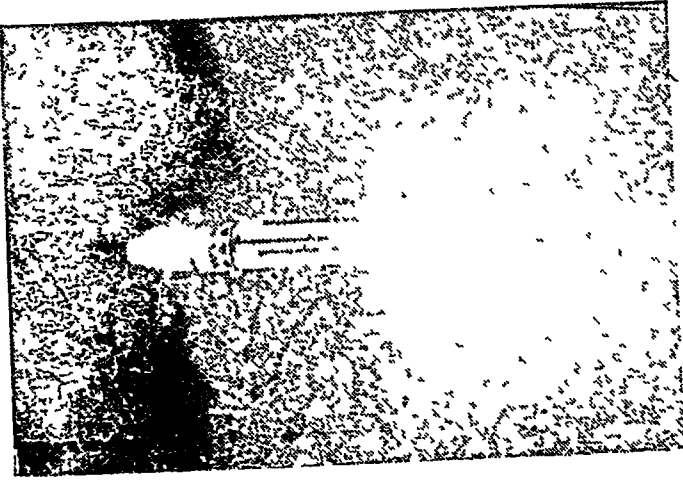
सेटर्न ५
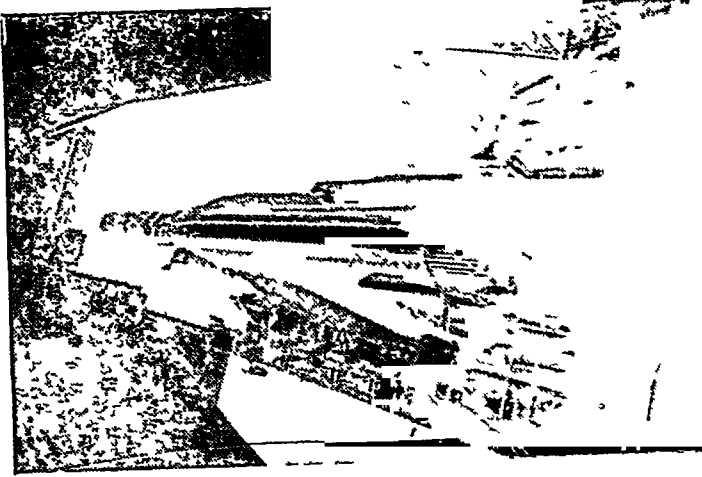
मेरिनर ४
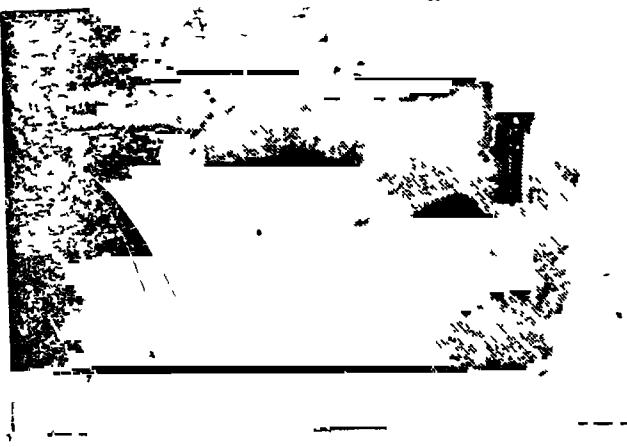
जेमिनी ३

मौसमसूचक उपग्रह

टेलस्टर संचार उपग्रह

रेंजर ६
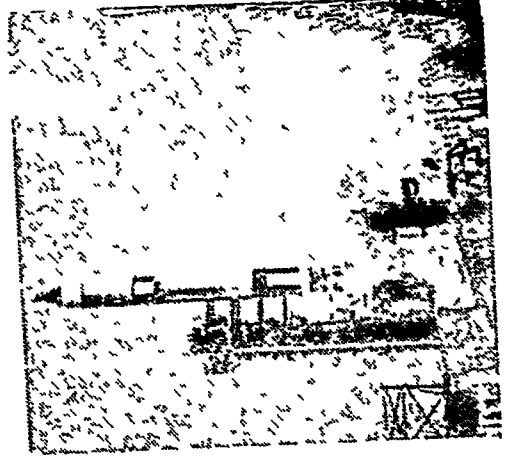
केपकेनेडी से प्रक्षेपित विभिन्न उपग्रह
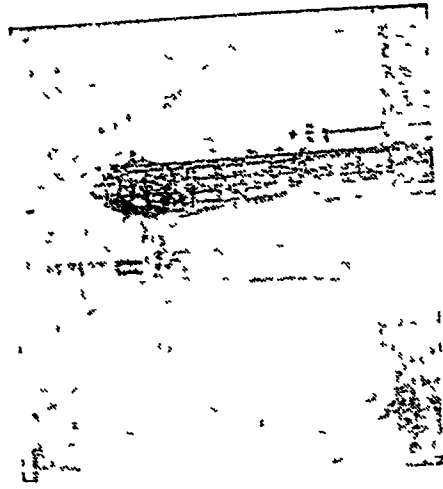
अभिज्ञान-शाकुंतलम्-एक मुग्धकारी दृश्य

(देखें पृष्ठ ४१२)

चंद्रमा से प्रस्थान

पृथ्वी की ओर यात्रा
(चद्र कक्ष से बाहर आने के लिये अपोलो रॉकेट का विस्फोट)

था। बाद में दूसरा प्रयोग आतिशबाजी, पटाखे और बान तक सीमित हो गया।

अंतरिक्ष यात्रा खतरे से खाली नहीं होगी। अंतरिक्ष में पदार्थ का घनत्व बहुत कम है, किंतु थोड़ा भी घर्षण पैदा होने से यान की गति धीमी पड़ सकती है। भीषण गति से चलनेवाली एक छोटी उल्का भी बहुत मजबूत धातुनिर्मित अंतरिक्ष यान में आर पार छेद कर सकती है। यान की किसी भी दीवार में छिद्र होते ही उसमें संचित आक्सीजन पलक झँपते ही उड़ जायगी और यान के यात्री दम घुटने से बेमौत मर जाएँगे। वायुमंडल के बाद सूर्य के प्रचंड ताप का सामना करना होगा। जब तक वह अंतरिक्ष में दिखाई देगा, तब तक उसका न अस्त होगा और न उदय। यह इसलिये भी आवश्यक है कि उपग्रह अपनी सोलर बैटरियों के लिये सूर्य से ही ऊर्जा प्राप्त करते हैं। बैटरियों पर सूर्य का प्रकाश लगातार पड़ना चाहिए। उपग्रह का संतुलन ठीक रहना चाहिए, अत इसके लिये गोलाकार आकृति ठीक होगी। उपग्रह का भार उसको ले जानेवाले राकेट की सामर्थ्य के अनुसार होना चाहिए। उदाहरणार्थ स्पुतनिक—२ में उपग्रह स्वयं तृतीय मंच राकेट का एक भाग था और उपग्रह राकेट से अलग नहीं हुआ। उपग्रह का ढाँचा हल्के किंतु मजबूत पदार्थ Al या Mg या किसी मिश्र धातु का होना चाहिए। किंतु यदि उपग्रह की सहायता से आयनमंडल की जानकारी करनी है तो ढाँचा एक प्लास्टिक का बनाया जायगा जो फौलाद की तरह मजबूत होगा किंतु वह न तो विद्युत् का सुचालक होगा और न ही चुंबक से प्रभावित। यान का ईंधन ऐसा होना चाहिए जो कम से कम मात्रा में अधिक क्षमता दे तथा कम स्थान घेरने के साथ भार में अधिक वृद्धि न करे। इसके लिये अणु शक्ति या सोलर एनर्जी का प्रयोग उचित होगा। राकेट ऐसी शक्ति उत्पन्न करने में सहायक है। राकेट विमानों में ईंधन और उसके जलाने के लिये आक्सीकारक दोनों ही विमान में ले जाए जाते हैं और आसपास के वातावरण से हवा को अंदर लेने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

वैज्ञानिक विधि से राकेटों का अध्ययन सबसे पहले अमरीकी भौतिक शास्त्री डा० राबर्ट गोडार्ड ने १९०८ में प्रारंभ किया था। १९१९ में उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा कि राकेट की उड़ान के लिये हवा की उपस्थिति आवश्यक नहीं है, वह वायुमंडल के बाहर अंतरिक्ष में उड़ सकता है और चंद्रमा तक पहुँचाया जा सकता है।

राकेट के मुख्य हिस्से वायुफ्रेम, दहनकक्ष, निकास नोज़िल, प्रणोदक भंडार, मार्गयोग तथा संदेशक प्रबंध हैं।

अंतरिक्ष में भेजे जानेवाले राकेटों का आकार सिगार की तरह होता है। एक राकेट २५००० मील प्रति घंटा का आवश्यक वेग नहीं प्राप्त कर सकता अत बहुमंचीय राकेट काम में लाए जाते हैं।

प्रथम स्टेज और राकेट सबसे बड़ा और भारी होता है और अंतिम राकेट सबसे छोटा और हल्का। सबसे पहले प्रथम स्टेज राकेट काम में लाया जाता है और जब इसका काम समाप्त हो जाता है तो वह जलकर अलग हो जाता है। इसके बाद दूसरा राकेट त्वरण की वृद्धि करता है, यह भी जलने के बाद अलग हो जाता है और तीसरा राकेट काम करने लगता है। प्रथम स्टेज राकेट का ईंधन व्यय तृतीय स्टेज राकेट से लगभग ६० गुना और प्रणोद लगभग १०० गुना होता है और इतना ही अधिक उसका भार होता है। तृतीय स्टेज राकेट में जितना भार ले जाना होता है उसी के हिसाब से प्रथम स्टेज राकेट को बनाया जाता है। पायलट की जगह या कक्षा में भेजे जानेवाले उपग्रह की जगह सबसे ऊपर के भाग में होती है। स्पुतनिक को अंतरिक्ष में भेजने के लिये त्रिमंचीय राकेट प्रयोग में लाए गए थे। ऐसे राकेट या विमान जिनमें कोई मनुष्य न हो और उड़ान के बीच में भी जिनके मार्ग में परिवर्तन किया जा सके, नियंत्रित मिसाइल कहलाते हैं। लंबी मारवाले राकेटों में सैटर्न का नाम उल्लेखनीय है। यह संसार का सबसे बड़ा राकेट है। जुपिटर, थोर, रेडस्टोन, वैनगार्ड और ऐटलस अन्य प्रसिद्ध अमरीकी राकेट हैं। राकेटों का उपयोग युद्ध अस्त्रों की भाँति, सूक्ष्म उल्काओं, विकिरण आदि के अध्ययन में तथा अंतरिक्षयात्रा के लिये किया जाता है।

अंतरिक्ष में यान किसी कारणवश यदि संकट में पड़ जाय तो उसके भीतर के लोग चंद मिनटों में मर जाएँगे और यान त्रिशंकु की तरह एक प्रस्तरखंड जैसा लटकता रह जायगा। यदि संयोगवश वह किसी नक्षत्र या अन्य आकाशीय पिंड की परिधि में नहीं आता तो लाखों वर्ष तक इसी दशा में पड़ा रह सकता है। मानव शरीर पर न कोई रासायनिक प्रक्रिया होगी, न वह नष्ट होगा। विभिन्न गुरुत्वाकर्षणों से भी कठिनाई उत्पन्न होगी, मुख, आँख और हृदय की गति पर इसका प्रभाव पड़ेगा। इसके अतिरिक्त स्नायविक तथा मानसिक अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है। आज का मेधावी कल का महामूर्ख बन सकता है। अंतरिक्ष में काफी समय तक रहने से प्रजनन शक्ति नष्ट हो सकती है।

अंतरिक्ष यान को २५००० मील प्रति घंटा की चाल से चलने पर, चंद्रमा तक पहुँचने में कुल ९ घंटे लगेंगे। आइन्सटीन के सापेक्षवाद के सिद्धांत के अनुसार अंतरिक्ष में काल प्रवाह वही नहीं होगा जो पृथ्वी पर है, वापस आने पर हमारा यात्री हो सकता है अपने को अपने उन समवयस्कों से अधिक युवा या कम उम्र का अनुभव करे जिन्हें पृथ्वी पर छोड़कर वह अंतरिक्ष यात्रा के लिये गया था। अंतरिक्ष अनिवार्यत तीन आयामोंवाला नहीं है। यूक्लिड की रेखागणित के आगे चतुर्थ आयाम की भी कल्पना कर ली गई है।

अंतरिक्ष में मानवचालित उड़ान — चंद्रयात्रा का अभियान

मानवचालित उड़ान के लिये संयुक्त राज्य अमरीका की नेशनल ऐरोनॉटिक ऐंड स्पेस एजेंसी (NASA) ने चार योजनाएँ बनाई हैं—(१) मर्करी, (२) जेमिनी, (३) अपोलो और (४) X-१५।

मर्करी योजना के तीन उद्देश्य हैं—

(क) मनुष्य की अंतरिक्ष यात्रा संबंधी क्षमता का अध्ययन,

(ख) पृथ्वी की परिक्रमा के लिये मानवचालित यान को कक्षा में भेजना,

(ग) चालक को सुरक्षित पृथ्वी पर वापस लाना। नासा ने १९६० में चाँद पर उतरने के दस वर्षीय कार्यक्रम की घोषणा की थी।

हिंदी विश्वकोश

परिशिष्ट

अंतरिक्षयात्रा और चंद्रविजय मानव प्रारंभ से ही अंतरिक्ष के प्रति जिज्ञासु रहा है। अतरिक्षयात्रा अब केवल अध्ययन का ही विषय नही रह गई। अमरीका तथा रूस के कृत्रिम उपग्रहो के छोडने की घोषणा से सशय और कल्पना वास्तविकता के धरातल पर आने लगी। कल तक जिनका अस्तित्व वैज्ञानिक गल्पकारो की कल्पना में था, वह आज साकार हो रहा है। आकाशमंडल में भूमडल से इतर पिंडो के अस्तित्व और भ्रमण की चर्चा सर्वत्र व्याप्त है। चंद्रमा के स्थायी रूप से पृथ्वी से विमुख अर्धांश के, तथा रेडिएशन जैसी सौर रश्मियो के अध्ययन मे सचल वेधशाला के रूप में इसका प्रयोग किया जा सकेगा। ग्रहों पर उपनिवेश भी बसाए जा सकेंगे।

ग्रह के चारो ओर चलनेवाले आकाशीय पिंडों को उपग्रह कहते हैं। चंद्रमा पृथ्वी का उपग्रह है। अपने ग्रहो की परिक्रमा करने में उपग्रह एक निश्चित कक्षा में निश्चित वेग से घूमते हैं जिससे प्रत्येक स्थान पर अपकेंद्रबल, गुरुत्वीयबल के बराबर और उसके विपरीत हो जाता है।

यदि किसी उपग्रह का द्रव्यमान m है जो M द्रव्यमान के एक ग्रह के चारों ओर v वेग से घूम रहा है और उसकी वृत्ताकार त्रिज्या r है तो

अपकेंद्रबल = आकर्षण

या $\frac{m\,v^2}{R} = \frac{G.\,Mm}{R^2}$ जिसमें G गुरुत्वाक है,

या $v^2 = \frac{G\,M}{R}$

या $v^2\,R = G\,M$ जो एक नियताक के बराबर होगा।

पृथ्वी से चंद्रमा ३,८०,००० किमी दूर है अत: उसका वेग एक किमी प्रति सेकंड के लगभग है जो पृथ्वी के पास के उपग्रह के वेग का केवल $\frac{1}{8}$ है। अत चद्रमा एक महीने मे पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करता है जब कि पृथ्वी के पास का उपग्रह एक दिन में १५ परिक्रमा कर लेता है।

यदि किसी कृत्रिम उपग्रह को पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिये अंतरिक्ष में भेजना है तो उसके लिये कम से कम ८ किमी या ५ मील प्रति से० का वेग आवश्यक है। इस वेग को प्रथम अंतरिक्ष वेग (first cosmic velocity) कहते हैं। यदि वेग ११.२ किमी प्रति सेकंड हो जाय तो यह द्वितीय अंतरिक्ष वेग या पलायन वेग (Escape velocity) कहलाता है। उपग्रह इस वेग द्वारा पृथ्वी के आकर्षणक्षेत्र से बाहर हो जायगा तथा सौर मंडल में अन्यत्र चला जाएगा।

पलायन वेग वह कम से कम वेग है जिससे किसी वस्तु को पृथ्वी से ऊपर की ओर फेंकने पर वह वस्तु पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण सीमा से बाहर निकल जाय और फिर लौटकर पृथ्वी पर वापस न आ सके।

इसे निम्न सूत्र से ज्ञात करते हैं—

$$v = \sqrt{\frac{2GM}{R}}$$

जहाँ v = वस्तु का पलायन वेग

G = गुरुत्वाकर्षणीय नियताक = ६.६६ × $१०^{-८}$ स० ग० स० मात्रक

M = पृथ्वी का द्रव्यमान = ६ × $१०^{२७}$ ग्राम

R = पृथ्वी की त्रिज्या = ६.४ × $१०^{८}$ सेमी

इन मानो को समीकरण में प्रतिष्ठापित करने पर—

v = १.१ × $१०^{६}$ सेमी / से०

= ११ किमी प्रति से० या ७ मील प्रति० से०

= ३६००० फुट/से० या २५००० मील प्रति घंटा लगभग।

तीव्रगामी जेट विमानो और राकेटो का आविष्कार होने से कृत्रिम उपग्रहो को अंतरिक्ष में भेजने तथा अन्य ग्रहों पर अंतरिक्ष यानो में जाने में सुविधा हो गई। ४ अक्टूबर, १९५७ को रूस द्वारा छोडा गया कृत्रिम उपग्रह एक स्वचालित राकेट था जो बहुस्टेजी राकेट से पूर्वनिर्धारित कक्षा में छोड़ा गया था। स्पुतनिक के साथ ही उसको ले जानेवाला राकेट भी पृथ्वी की परिक्रमा उसके लगभग १००० किमी की दूरी पर तथा लगभग उसी ऊँचाई पर करता रहा और अंत में घने वायुमंडल में प्रविष्ट होने से जलकर राख हो गया।

एस० सी० क्लार्क (ग्रहविज्ञानवेत्ता), एफ० ए० आर० एस० ने 'शून्य की छानबीन' (The Exploration of Space) नामक पुस्तक में लिखा है कि राकेट की रचना चीनियो ने लगभग एक हजार वर्ष पूर्व की थी और उसका पहला प्रयोग १२३२ में मंगलो के विरुद्ध काइजेंग के आक्रमण मे किया था जब मंगलो ने कैफंग नगर को घेरा था तो चीनियों ने आत्मरक्षार्थ अग्नि डंडियों का उपयाग किया

दूसरे ग्रहों पर किसी भी तरह के प्रतिष्ठान स्थापित करनेवाले देश समुचित समय की सूचना के बाद, दूसरे देशो को उनका निरीक्षण करने देंगे।

१९६३ की आंशिक आणविक परीक्षण निषेध संधि के बाद की इस दूसरी निर्णायक संधि की शर्तों के अनुसार अंतरिक्ष में आणविक शस्त्रास्त्र और सामूहिक विनाश के दूसरे साधनों से सुसज्जित उपग्रहों, अंतरिक्षयानों आदि के छोड़ने पर प्रतिबंध है, यह संधि इस बात की भी व्यवस्था करती है कि त्रुटिवश किसी दूसरे देश के सीमा-क्षेत्र में उतर जानेवाले अंतरिक्षयात्री उनके देश को सौंप दिए जाएँगे।

जेमिनी योजना — इस योजना मे दो अंतरिक्षयात्री एक यान में जाकर दो अंतरिक्षयानो को अंतरिक्ष में मिलाने का यांत्रिक विकास तथा एक सप्ताह तक उड़ान करके अनेक वैज्ञानिक अनुसंधान करेंगे। इसमे मानवरहित एगिना बी राकेट, एटलस बूस्टर की सहायता से छोड़ने की योजना है। निर्धारित समय पर पृथ्वी से छोड़ा गया जेमिनी यान एगिना बी से जाकर मिल जायगा।

अपोलो योजना, चाँद पर मानव चरण और वहाँ जय ध्वजोत्तोलन—

चाँद पृथ्वी से २ करोड ३० लाख मील दूर एक वर्तुलाकार गोला है, जिसका व्यास २१६० मील है। इसका वजन पृथ्वी से ८१ गुना कम है तथा गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का १/६ है। वहाँ पृथ्वी की तरह वातावरण, पानी और प्राणवायु नहीं है। वहाँ N_2, S, P एव CO_2 है। चद्रमा रात को अति शीतल और दिन को अति उष्ण रहता है।

१६ जुलाई, १९६९ को चद्रमा की यात्रा का स्वप्न साकार करने के लिये अमरीका के केप केनडी चद्रकेंद्र से नील आर्मस्ट्राग, एडविन एल्ड्रिन और माइकल कालिंस ने ८ लाख किमी की साहसिक खतरनाक यात्रा का श्रीगणेश किया।

१०९ मीटर या ३६३ फुट ऊँचे सैटर्न-५ प्रक्षेपक के सबसे ऊपरी हिस्से पर लगे यान अपोलो ११ में ये तीनो साहसी यात्री बैठे थे। यान में उड़ान की दिशा, गति, स्थिति तथा विभिन्न केंद्रों से दूरियाँ ज्ञात करने के यंत्र लगे थे। प्रक्षेपण के २ घटे ४४ मिनट बाद रात्रि ९ बजकर ४६ मिनट पर तीनो यात्रियो ने पृथ्वी की कक्षा को छोडकर अपने गतव्य स्थल की ओर प्रयाण किया। लगातार ७३ घटे की यात्रा के पश्चात् चाँद पर पहुँचना था। सैटर्न प्रक्षेपक के तीसरे खड के विलग होने के कुछ देर (३१ मिनट) बाद 'कमान कक्ष' से चंद्रकक्ष के उलटकर जुडने की प्रक्रिया पूर्ण हुई। किंतु उसके आगे रूस का मानवरहित यान ल्यूना — १५ उड़ रहा था, १७ जुलाई को ल्यूना — १५ चद्रमा के पास पहुँच गया।

२१ जुलाई की रात्रि १ बजकर ४७ मिनट पर आर्मस्ट्राग की आवाज चद्रमा से आई 'The Eagle has landed' (गरुड चंद्र पर उतर गया है)। आकाश की समस्त अजेय दुर्गम ऊँचाइयों को लाँघकर इंसान के कदम चाँद पर पहुँच गए। इस साहसपूर्ण सफलता से पूरे विश्व का सिर ऊँचा उठ गया, और मानव गौरव तथा गर्व का अनुभव करने लगा। पहरेदार कालिंस १११ किमी की ऊँचाई पर उड़ान भर रहा था। भोजन और आराम के बाद दोनों ने चद्र मिट्टी के नमूने एकत्र करना प्रारभ किया। एल्ड्रिन ने सूचना पृथ्वी पर भेजी कि पत्थर पाउडर भरे हैं तथा चट्टानें फिसलने वाली हैं।

योजनानुसार नील आर्मस्ट्राग ने उस पट्ट का अनावरण किया जिसमें लिखा है — यहाँ पृथ्वी के इसान ने जुलाई, १९६९ में पहली बार अपने कदम रखे, हम यहाँ समस्त मानवता की शांति के लिये आए। यात्रियों ने राष्ट्रसंघ का झंडा (जिसमें भारतीय तिरगा भी था) फहराया — राष्ट्रपति निक्सन ने टेलीफोन पर चद्रयात्रियों से बात कर कहा 'दुनियाँ के इतिहास में, इस अभूतपूर्व अनमोल घड़ी में सब एक हो गए हैं, सबको आपकी विजय पर गर्व है'।

एल्ड्रिन एक घटे ५४ मिनट तक चद्रतल पर रहा। २ घटे ५५ मिनट तक चद्र सतह पर विचरण करके आर्मस्ट्रांग 'गरुड' यान में वापस लौटा।

मकड़ा चद्र कक्ष २२ फुट ऊँचा है तथा उसकी परिधि ३१ फुट है। वह अपोलो ९ तथा १० में प्रयोग किया जा चुका है। इन दोनो यात्राओ में कमान कक्ष से अलग होकर कुछ समय बाद यह चद्रकक्ष सफलता के साथ पुन जुड गया था। करोडों रुपए की लागत से बने इसमें दो हिस्से हैं — ऊपरी और निचला। ऊपरी हिस्सा यात्रियों के बैठने के लिये है, निचले हिस्से में ४ पैर हैं, वे धीरे से चाँद पर कक्ष को उतार देंगे। नीचे एक स्वचालित टेलीविजन यंत्र लगा रहता है। चद्रयात्रियो के वस्त्र ८२-८२ किग्रा के होते हैं किंतु चंद्रमा पर उन्हे १४ किग्रा के बराबर ही अनुभव होगा।

चाँद से वापसी — २१ जुलाई, ६९ की रात्रि ११ बजकर २३ मिनट पर गरुड़ (ईगल) के दोनों यात्रियों ने चाँद से रवाना होने का निश्चय किया। चाँद के चक्कर लगा रहे 'कोलबिया' यानी कमान-कक्ष से मिलना ३ घटे बाद हुआ। भोर में ३ बजकर ५ मिनट पर ईगल ने कोलबिया को पकडा। २२ जुलाई को ११ बजकर २३ मिनट पर यान उस काल्पनिक रेखा को पार कर गया जहाँ पृथ्वी और चाँद की गुरुत्वाकर्षण शक्ति बराबर है। यान की गति ४३८२ किमी से ४०,००० किमी प्रति घटे हो गई। यात्रियो के पास अनमोल मिट्टी के नमूने थे। पृथ्वी के वातावरण मे प्रवेश तथा प्रशात महासागर में सफल अवतरण के लिये यान को ३६,१९४ फुट से० का वेग चाहिए था किंतु मौसम की खराबी के कारण निर्धारित स्थान से ४०० किमी दूर तीनों यात्री २४ जुलाई को रात १० बजकर २० मिनट पर उतर गए।

अपोलो ११ का कमानकक्ष उल्टा गिरा, किंतु थोडी देर बाद सीधा कर दिया गया। यात्री जलपोत हार्नेट तथा हेलीकोप्टरों की सहायता से आगे बढे। अमरीकी राष्ट्रपति ने उनका स्वागत किया परतु यात्रियों ने विशेष कक्ष से स्वागत का उत्तर दिया जहाँ उन्हें तीन सप्ताह के लिये पृथ्वी के बाह्य संपर्क से दूर वैज्ञानिक जाँच के लिये रखना था।

२६ अक्तूबर को दोपहर २ बजकर ४५ मिनट पर चद्रविजेताओ का स्वागत भारत (बबई) में किया गया।

अंतरिक्षयात्री अपने साथ आक्सीजन तथा खाने पीने की वस्तुएँ यथेष्ट मात्रा में ले जाते हैं जो लौटने तक के लिये पर्याप्त हों। कटी सर्दी तथा तेज गर्मी से सुरक्षा का ध्यान रहता है। पृथ्वी के चतुर्दिक् तीव्र विकिरणों से बचाव के लिये यात्री एक विशेष पोशाक तथा कनटोप पहनते हैं। यात्री को विशेष रूप से बाँधकर रखा जाता है ताकि ऊपर जाते समय नीचे की ओर तीव्र त्वरण और ऊपर से उतरते समय अवत्वरण का अनुभव उसे न हो। पायलट को एक शंक्वाकार कैप्सूल (व्यास, पेंदी पर ७ फुट, ऊँचाई १० फुट) के भीतर चित लेटाकर एक कोच से बाँध दिया जाता है। अंतरिक्ष में वह भारहीनता तथा पूर्ण निष्क्रियता का अनुभव करता है अत उसका भोजन लेई की तरह पतला करके एक दबनेवाली धातु के ट्यूब में भर दिया जाता है, यात्री टूथपेस्ट की नली की तरह ट्यूब को मुँह से लगाकर पीछे से दबाता है जिससे खाना उसके पेट में चला जाता है। अंतरिक्ष से वापस आते समय अंतरिक्ष यान की गति कई हजार मील प्रति घंटे होने के कारण यान की धातु गर्म होकर पिघल सकती है। इससे रक्षा के लिये मर्करी कैप्सूल पर एक विशेष आवरण होता है जिसका कुछ भाग जल जाता है और नीचे की धातु सुरक्षित रहती है। यान के पृथ्वी के पास पहुँचने पर हवाई छतरी खुल जाती है और पश्च राकेट छोड़े जाते हैं जिससे यान की चाल धीमी पड जाती है और वह पानी की सतह पर उतारा जा सकता है

अंतरिक्षयात्रा की सफल उड़ान — रूसी और अमरीकी वैज्ञानिकों ने अब तक कई बार अंतरिक्ष यानों में पृथ्वी की परिक्रमा की है और सकुशल पृथ्वी पर लौटकर आ गए हैं।

सबसे पहले ४ अक्टूबर, १९५७ को सोवियत रूस ने अपना पहला कृत्रिम उपग्रह स्पुतनिक-१ छोड़ा। इसका भार १८४ पौंड (८३.६ किग्रा) तथा व्यास ५८ सेमी था और इसमें कोई मानव नहीं था। यह पृथ्वी से ९५० किमी की दूरी पर लगभग ८ किमी या ५ मील प्रति सेकंड के वेग से परिक्रमा करने लगा जिससे पूरी एक परिक्रमा में इसे ९६.२ मिनट लगे। इसके द्वारा भेजे गए रेडियो संकेत पृथ्वी के विभिन्न स्थानों पर सुने गए। ५८ दिन तक यह घूमता रहा। तत्पश्चात् बैटरी कमजोर होने के कारण वेग घटना शुरू हो गया और ४ जनवरी, १९५८ को वह जलकर भस्म हो गया। रूसी भाषा के 'साथी' का समकक्ष शब्द स्पुतनिक की चर्चा सर्वत्र होने लगी और स्पुतनिक युग का आरंभ हुआ। एक महीने बाद नवंबर, १९५७ में एक जीवित कुतिया लाइका को बैठाकर स्पुतनिक-२ छोड़ा गया। लगभग एक सप्ताह तक कुतिया की शारीरिक क्रियाओं की रेडियो द्वारा सूचना प्राप्त होती रही, उसके पश्चात् कुतिया मर गई।

अमरीका ने अपना पहला उपग्रह एक्सप्लोरर-१, ३१ जनवरी, १९५८ को छोड़ा। इसके बाद ७ अक्टूबर, १९५९ को रूसी अंतरिक्ष यान लूनिक-३ चंद्रमा के पीछे से गुजरा और उसने चंद्रमा के पीछे के भाग के फोटो लेकर पृथ्वी पर भेज दिए। कुछ अंतरिक्ष यान पृथ्वी से लाखों मील दूर सूर्य की परिक्रमा करने के लिये भी प्रेषित किए गए हैं।

१२ अप्रैल, १९६१ को रूसी उड़ाके मेजर यूरी गागारि[illegible] अंतरिक्षयान वोस्तोक-१ में पहली अंतरिक्षयात्रा की। इस प्रकार प्रथम मानव को अंतरिक्ष में भेजने तथा सकुशल वापस बुलाने में सोवियत रूस सफल हो गया। इस वर्ष ५ मई, १९६१ को अमरीकी अंतरिक्ष यात्री एलन बी० शेपर्ड ने उपकक्षा में १५ मिनट परिक्रमा की और वह सकुशल अंतरिक्ष में उतर गया।

मर्करी योजना के अंतर्गत ग्लेन ने अपनी अंतरिक्षयात्रा से सिद्ध कर दिया कि (क) ट्यूब में भरा हुआ खाना पायलट बिना किसी कठिनाई के खा सकता है, (ख) पायलट अपने हाथ से यान का नियंत्रण कर सकता है और (ग) भारहीनता की दशा में वह अच्छी तरह कार्य कर सकता है।

१४ जून, १९६३ को रूस के कर्नल बाइकोवस्की ने पाँच दिन तक लंबी अंतरिक्षयात्रा की और रूस की कुमारी तरस्कोवा ने तीन दिन तक पृथ्वी की परिक्रमा की।

१२ अक्टूबर, १९६४ को रूसी यान वोस्खोद में एक साथ तीन व्यक्तियों ने २४ घंटे तक पृथ्वी की परिक्रमा की। ये सभी यात्री उड़ानों के बाद सकुशल पृथ्वी पर वापस आ गए। इनमें से कुछ यात्री अपने यान से बाहर निकलकर थोड़ी देर तक अंतरिक्ष में तैरते रहे, और फिर यान में आकर बैठ गए।

१९६७ के आरंभ में सोवियत रूस का लूना - १३ चंद्रमा पर बगैर झटका के उतरा। उससे प्राप्त सूचनाओं के आधार पर चंद्रमा की सतह कठोर है और मानव उसपर उतर सकता है।

२० अप्रैल, १९६७ को ६५ घंटे की यात्रा के बाद अमरीकी सर्वेयर-३, चंद्रमा पर बिना झटका के उतरा।

अमरीका के अपोलो - ११ की उड़ान के पहले रूसी ल्यूना-१५ की उड़ान के संदर्भ में सोवियत संघ ने सोयुज - ४, सोयुज - ५ को जोड़ा।

चंद्रयान और इसे छोड़नेवाले राकेट में ५६ लाख पुर्जे थे, अनगिन कंप्यूटर उड़ान की हर क्षण निगरानी कर रहे थे, पाँच हजार से अधिक लोगों ने पुर्जों की जाँच पड़ताल की थी, २४०० करोड़ डालर की लागत तथा लाखों घंटों का हजारों मस्तिष्कों का चिंतन और परिश्रम — मनुष्य के ज्ञान, साधन, शक्ति और कर्म का अपूर्व संयोजन था।

अंतरिक्ष संधि — २७ जनवरी, ६७ को संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत संघ और ब्रिटेन ने बाह्य अंतरिक्ष में आणविक शस्त्रास्त्र को निषिद्ध घोषित करनेवाले समझौते पर हस्ताक्षर किए। दिसंबर, १९६६ में संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा द्वारा अनुमोदित संधि की शर्तों के अनुसार 'बाह्य अंतरिक्ष' पर किसी भी देश की प्रभुसत्ता नहीं है और सभी देशों को अंतरिक्ष अनुसंधान की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। इस संधि पर हस्ताक्षर करनेवाले सभी देश बाह्य अंतरिक्ष का केवल शांतिमय उपयोग के लिये प्रयोग कर सकते हैं और चाँद तथा दूसरे ग्रहों पर किसी भी तरह के सैनिक केंद्रों की स्थापना निषिद्ध है। चाँद तथा

जानकारियों से चद्रमा की उत्पत्ति, उसकी उम्र, पहाड़ियो तथा गह्वरो के विषय में कोई जानकारी नही मिलती, सिवाय इसके कि वहाँ किसी प्रकार के जीवन का अस्तित्व न था और न है। अधिकांश वैज्ञानिक इस बात पर सहमत थे कि चद्रमा पर जल होने का कोई सकेत नही मिलता और न कभी वहाँ जल था। चद्रमा के अदरूनी हिस्से की बनावट के बारे मे कोई जानकारी प्राप्त नही है। इस प्रकार चद्रमा अब भी एक रहस्य ही बना हुआ है। [कि० ना० सि०]

अन्नादुरै, कांजीवरम् नटराजन् तमिलनाडु के लोकप्रिय नेता, अपने प्रदेश के प्रथम गैरकाग्रेसी मुख्य मत्री एव द्रविड मुन्नेत्र कडगम दल के सस्थापक थे। इनका जन्म १५ सितबर, १९०९ को काजीवरम् के एक मध्यवर्गीय परिवार मे हुआ था। मद्रास विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने अपना जीवन एक शिक्षक के रूप में प्रारभ किया, पर शीघ्र ही ये पत्रकारिता के क्षेत्र मे आ गए। तमिल जागरण मे इनके निबधो ने महत्वपूर्ण योगदान किया। श्री अन्नादुरै ने 'जस्टिस' नामक तमिल पत्र के सहायक सपादक एव बाद में 'विडुथलाई' नामक पत्र के सपादक के पद पर कार्य किया। इन्होंने सन् १९४२ में तमिल साप्ताहिक 'द्रविड़नाडु', सन् १९५७ में अग्रेजी साप्ताहिक 'होमलैंड' तथा एक वष पश्चात् 'होमरूल' नामक पत्रिका निकाली की। ये हिंदी के प्रबल विरोधी तथा तमिल भाषा और साहित्य के पुनरुत्थानकर्ता थे।

श्री अन्नादुरै प्रारभ में द्रविड कडगम के सदस्य थे, पर अपने राजनीतिक गुरु से असतुष्ठ होने के कारण इन्होने सन् १९४९ मे अपने सहयोगियो के साथ द्रविड कडगम से सबध विच्छेद कर लिया और द्रविड मुन्नेत्र कडगम की स्थापना की। सन् १९५७ में विधानसभा का सदस्य निर्वाचित होने के पश्चात् अन्नादुरै सक्रिय राजनीति में आए। इन्होने द्रविडो के लिये पृथक् 'द्रविडस्तान' का नारा दिया और प्रदेश से काग्रेस शासन को समाप्त करने का व्रत लिया। द्रविडमुन्नेत्र कडगम ने इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये अनेक आदोलन किए। दस वर्ष पश्चात् राज्य की बागडोर अन्नादुरै के हाथों में आ गई। यद्यपि इनकी असामयिक मृत्यु ने इन्हें मुख्य मंत्री के रूप में दो वर्ष से भी कम अवधि तक प्रदेशवासियो की सेवा करने का ही अवसर दिया, तथापि यह अल्पावधि भी अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण रही है।

ये प्रतिभासपन्न राजनेता, कुशल प्रशासक एव सिद्धहस्त समाजशिल्पी थे। जनतात्रिक मूल्यो की प्रतिष्ठापना और पददलितों के उत्थान के लिये ये जीवन पर्यंत संघर्षरत रहे। इनके सबल नेतृत्व मे कडगम ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। ये जीवन पर्यंत दल के महासचिव बने रहे। दल पर अपने असाधारण प्रभाव के कारण ही ये दल की पृथकतावादी नीतियो को राष्ट्रीय अखडता के हित में रचनात्मक मोड देने में सफल रहे। सन् १९६२ में चीनी आक्रमण के समय श्री अन्नादुरै ने कडगम के सदस्यों को राष्ट्रीय सुरक्षा में हर सभव योगदान करने के लिये प्रोत्साहित किया। ये दल के प्रतिवादियों को शनै. शनै सहिष्णुता के मार्ग पर ला रहे थे। प्रारभ मे कडगम में उत्तर भारतीयों एव ब्राह्मणो का प्रवेश निषिद्ध था, पर अन्ना की प्रेरणा से द्रविड मुन्नेत्र कडगम के सिद्धातो में विश्वास रखनेवालों के लिये दल की सदस्यता का द्वार खुल गया। सविधान की होली खेलने की योजना बनानेवालो के नेता ने तमिलनाडु का मुख्यमंत्रित्व ग्रहण करते समय सविधान में पूर्ण निष्ठा व्यक्त की। कडगम के सत्तारूढ होने पर केंद्र से विरोध के सबध मे अनेक आशकाएँ व्यक्त की गई थी, पर श्री अन्नादुरै ने किसी प्रकार का सवैधानिक सकट नहीं उत्पन्न होने दिया। उनका हिंदीविरोध अवश्य विख्यात था, लेकिन जिस प्रकार उनके दृष्टिकोण में क्रमिक परिवर्तन आ रहा था और क्षेत्रीयता के सकुचित मोह का स्थान राष्ट्रीयता की भावना लेती जा रही थी, उससे यह अनुमान हो चला था कि भविष्य में उनका हिंदीद्रोह भी समाप्त हो जायगा और तमिलनाडु के विद्यालयो में त्रिभाषा सिद्धात के अनुसार हिंदी की पढाई प्रारभ हो जायगी।

श्री अन्नादुरै राजकाज मे क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग के पक्षपाती थे। इन्होंने अपने प्रदेश में तमिल के प्रयोग को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। मद्रास राज्य का नामकरण तमिलनाडु करने का श्रेय भी इन्ही को है।

तमिलनाडु का मुख्यमन्त्रित्व ग्रहण करने से पूर्व राज्यसभा के सदस्य के रूप में भी इन्होने ख्याति प्राप्त की थी। सन् १९६७ के महानिर्वाचन में तमिलनाडु में द्रविड़ मुन्नेत्र कडगम की अभूतपूर्व सफलता ने अन्ना को अपने दल को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठापित करने की प्रेरणा प्रदान की थी। यदि असमय ही ये कालकवलित न हो गए होते तो सभवतः भविष्य में द्रविड़ मुन्नेत्र कडगम का स्थान भारत मुन्नेत्र कडगम ने ले लिया होता।

कैंसर के असाध्य रोग से पीडित अन्नादुरै की इहलीला ३ फरवरी, १९६९ को समाप्त हो गई। [ला० व० पा०]

अभिज्ञान शाकुंतलम् महाकवि कालिदास का एक विश्वविख्यात नाटक जिसका अनुवाद प्राय सभी विदेशी भाषाओं में हो चुका है। शकुतला राजा दुष्यत की स्त्री थी जो भारत के सुप्रसिद्ध राजा भरत की माता और मेनका अप्सरा की कन्या थी। महाभारत में लिखा है कि शकुतला का जन्म विश्वामित्र के वीर्य से मेनका अप्सरा के गर्भ से हुआ था जो इसे वन में छोडकर चली गई थी। वन में शकुतों (पक्षियों) आदि ने हिंसक पशुओ से इसकी रक्षा की थी, इसीसे इसका नाम शकुतला पडा। वन मे से इसे कण्व ऋषि उठा लाए थे और अपने आश्रम मे रखकर कन्या के समान पालते थे। एक बार राजा दुष्यत अपने साथ कुछ सैनिकों को लेकर शिकार खेलने निकले और घूमते फिरते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि उस समय वहाँ उपस्थित नही थे, इससे युवती शकुतला ने ही राजा दुष्यत का आतिथ्यसत्कार किया। उसी अवसर पर दोनो में प्रेम और फिर गधर्व विवाह हो गया। कुछ दिनों बाद राजा दुष्यत वहाँ से अपने राज्य को चले गए। कण्व मुनि जब लौटकर आए, तब यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि शकुतला का विवाह दुष्यंत से हो गया। शकुतला उस समय गर्भवती हो चुकी थी। समय पाकर उसके गर्भ से बहुत ही बलवान् और तेजस्वी पुत्र

अपोलो-१२, प्रक्षेपण — १४ नवंबर :

चांद पर — १६ नवबर को चद्रमा के पश्चिम गोलार्ध मे तूफानो के महासागर में कोनराड तथा बीन वहाँ उतरे जहाँ ३१ महीना पहले १६ अप्रैल, ६७ को सर्वेयर-३ नामक अमानव अमरीकी चद्रयान उतरा था। वह ६ मीटर गहरे एक गढे के भीतर पडा हुआ था।

धरती पर — २४ नवंबर (प्रशात महासागर) को अपोलो १२ के अतरिक्ष यात्री चार्ल्स कोनाराड, रिचार्ड गोर्डन, एलन बीन घोपर्ड लौटे।

इस बार चद्रयात्रियो ने कमान और सेवाकक्ष का नाम याकी विलयर (१८वी शताब्दी के मध्य तेज भागनेवाले व्यापारिक जलपोत) तथा चद्रकक्ष का नाम इटरपिड (अमरीकी नौसैनिक जलपोत, जिसके सहारे आजादी की लडाई अमरीका ने लडी) रखा। १७ नवंबर को तीनो यात्रियो द्वारा चद्रमा की कक्षा मे प्रवेश तथा १६ नवबर को कोनराड तथा बीन का चद्रमा पर अवतरण।

अपोलो-१२ की यात्रा के लक्ष्यो मे दो महत्वपूर्ण हैं — चद्रमा के मौसम का अध्ययन करने के लिये ५ यत्रो को चद्रतल पर स्थापित करना तथा चद्रतल की मिट्टी और पत्थर इकट्ठे करना।

अपोलो-११ के चद्रयात्री २२ किग्रा० मिट्टी ले आए थे। अपोलो १२ के चद्र यात्री ५० किग्रा से अधिक वजन के पत्थर, रेत और धूल का खजाना ले आए हैं। परीक्षण से पता चला है कि चद्रमा और पृथ्वी समवयस्क हैं। अब कवियो को अपने उपमान और वैज्ञानिको को अपने विचार चंद्रमा के विषय में बदलने पड रहे हैं।

चंद्रमा के मुख का काला कलक पश्चिमी खगोल शास्त्रियों द्वारा सागर (मैर) कहलाता है। वह समतल मैदान है जो पर्वतमालाओ से घिरा है। चंद्रमा की रेतीली भूमि से प्राप्त धूलिकण पिसे हुए कोयले की भाँति तथा राख की तरह धूसर हैं। धूलि तथा शिलाखडो में काँच की उपस्थिति पाई गई है। ब्रोक्शिया नामक शैलविशेष का परीक्षण अभी हो रहा है। पता चला है, पृथ्वी की ही तरह चद्रमा की आयु तीन और चार अरब वर्ष के बीच है। ३०० से ५०० मील लबी दरारें वहाँ हैं। चद्रमा के मैदान ऊँची ऊँची पर्वतमालाओ से घिरे हैं। इम्ब्रियम नामक मैदान के तीन ओर पर्वत है। इनके नाम पाश्चात्य वैज्ञानिको ने यूरोपीय पर्वतमालाओ के आधार पर कपेथियम, ऐपेनिनाइम, काकेशस, आल्प्स, जुरा रखे हैं। चद्रमा पर अनेक गर्तों का पता लगा है जिनमें क्लेनियस (व्यास १४६ मील तथा गहराई लगभग १५,००० फुट) सबसे बडी है। चांद पर घाटियाँ भी हैं जो डेढ़ सो मील तक लबी तथा ५ मील तक चौड़ी हैं। कुछ सीधी हैं तथा कुछ घुमावदार।

अपोलो-११ द्वारा चद्रमा से लाए गए पत्थरो के टुकड़ो और धूल के रासायनिक परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि चद्रमा पर किसी भी समय जीव का अस्तित्व नही था। अभी भी चाँद के शात सागर से लाए नमूनो का परीक्षण जारी है।

अपोलो-१२ के यात्री तूफान सागर में उतरे थे, वे लगभग १ मन शैलखड आदि अपने साथ लाए हैं। उनका भी परीक्षण चल रहा है। चद्रमा पर जल तथा वायु का अस्तित्व नही है। जहाँ एक ओर चाँद पर स्वर्ण, रजत तथा प्लेटिनम का नितात अभाव है वहाँ दूसरी ओर चद्रतल की धूलि एवं शैलखडो मे टाइटैनियम, जर्कोनियम तथा इट्रियम की अधिकता है।

चाँद पर कुछ पट्टियाँ और धारियाँ हैं जिन्हे किरण (प्रकाशीय नही) कहते हैं, इनकी उत्पत्ति गर्तों से हुई है।

चांद के शात सागर में किरणो की दो धारियाँ हैं — पहली किरणपक्ति दक्षिण पूर्व में २०० मील दूर थियोसोफिलस गर्त से तथा दूसरी १०० मील दक्षिण पश्चिम में अलफैगनस गर्त से उत्पन्न हुई है।

अमरीका ने १९७२ तक चंद्रमा पर अनुसंधान के लिये और ८ समानव अपोलो मिशन का कार्यक्रम बनाया है। उसने अतरिक्ष में ओ० ए० ओ०-२ नामक एक ज्योतिषीय प्रयोगशाला स्थापित की है। अभी अनेक ग्रह, उपग्रह, सितारे तथा नक्षत्र ऐसे हैं जहाँ पहुँचने में मानव को कई प्रकाश वर्ष (१ वर्ष में प्रकाश द्वारा चली गई दूरी-१,८६,००० मील प्रति सेकड की दर से) लगेंगे। वह कुछ दूरस्थ ग्रहो पर अपने जीवनकाल में पहुँच पाएगा भी, सदेहास्पद है, लौटने की तो बात ही क्या।

अपोलो-१३ का प्रक्षेपण १२ मार्च, ७० के स्थान पर अब १२ अप्रैल, ७० को होने की संभावना है, यह चद्रमा के एक पठारी भाग फ्रामीरी में उतरेगा।

अपोलो-१४ जुलाई ७० के स्थान पर अब अक्टूबर में उड़ान भरेगा।

चाँद के अतिरिक्त मगल और शुक्र पर भी पहुँचने की योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं।

५ जनवरी, ७० से ९ जनवरी, ७० तक ह्यूस्टन (टेक्सास) में हुए चाद्र विज्ञान समेलन में वैज्ञानिको ने कहा है कि चद्रधूलि पृथ्वी से एक अरब वर्ष अधिक प्राचीन है। इसका यह अर्थ नहीं कि चद्रमा अधिक प्राचीन है क्योकि १ अरब वर्षो का पृथ्वी का इतिहास महाप्रलय के कारण वैज्ञानिको को उपलब्ध नही है। पृथ्वी की अवस्था उन्होंने ४ अरब ५५ करोड़ वर्ष आँकी है। कैलीफोर्निया इस्टिट्यूट ऑव टेक्नालाजी के वैज्ञानिको का कहना है कि चद्रमा के पृथ्वी का टुकडा होने का सिद्धात गलत है। उनका मत है कि ३ अरब ६५ करोड़ वर्ष पूर्व चद्रमा पिघला हुआ था। नमूने के ९० दिन के अध्ययन के ये कुछ परिणाम हैं। अब तक अपोलो-११ द्वारा लाए गए नमूनो के १/३ अश का अध्ययन किया गया है। वहाँ की मिट्टी और शिलाखड आठ देशो के १४२ वैज्ञानिक दलो के पास अध्ययनार्थ भेजे गए हैं। समेलन में पढे गए निबधो मे बताया गया कि चद्रमा पर न तो जीव है, न जल है और सभवत. वे वहाँ कभी थे ही नही। इग्लैंड के कैंब्रिज विश्वविद्यालय के डा० एस० ओ० एग्रेल ने कहा — चद्रयात्री आर्मस्ट्राग तथा एल्ड्रिन चद्रतल के शात सागर के एक छोटे से क्षेत्र से ही शिलाखड लाए थे परतु उनमे अन्य क्षेत्रो के तत्व भी विद्यमान हैं, जो उल्काओ के आघात के कारण उडकर शात सागर की सतह पर पहुँच गए होगे।

समेलन मे लगभग १००० वैज्ञानिको ने भाग लिया। नोबेल पुरस्कार विजेता डाक्टर हेराल्ड हूरे ने कहा — अपोलो द्वारा प्राप्त

रफी के राजभक्त पिता अत्यंत रुष्ट हुए, पर रफी अहमद डिगे नहीं। वे प्राय. घर से दूर रहते थे। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन करने और नारे लगाने के अभियोग में उन्हें दस मास का कठोर कारावास का दंड दिया गया।

रफी अहमद का विवाह सन् १९१८ में हुआ था। लगभग एक वर्ष पश्चात् उन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। दुर्भाग्यवश बच्चा सात वर्ष की आयु में ही चल बसा। रफी अहमद और उनकी पत्नी के जीवन मे यह नियति का क्रूरतम आघात था।

कारावास से मुक्ति के पश्चात् रफी अहमद भारतीय राजनीति के एक प्रमुख केंद्र मोतीलाल नेहरू के प्रासादतुल्य आवास आनंदभवन चले गए। उनकी प्रतिभा, राजनीतिक कुशलता और विश्वसनीय व्यक्तित्व से प्रभावित होकर पं० मोतीलाल नेहरू ने शीघ्र ही उन्हें अपना सचिव नियुक्त कर दिया। मोतीलाल और जवाहरलाल की भाँति किदवई का भी गाधी जी के रचनात्मक कार्यक्रमो में विश्वास नही था। वे मोतीलाल नेहरू द्वारा सगठित स्वराज्य पार्टी के सक्रिय सदस्य हो गए। किदवई का नेहरूद्वय और विशेषकर जवाहरलाल में अटूट विश्वास था। उनकी संपूर्ण राजनीति जवाहरलाल जी के प्रति इस मोह से प्रभावित रही। वे नेहरू के पूरक थे। नेहरू जो योजना बनाते थे और रफी अहमद उसे कार्यान्वित करते थे। वे अच्छे वक्ता नही थे, लेकिन संगठन की उनमें अपूर्व क्षमता थी, जिससे उनकी राजनीति सदैव चमत्कारपूर्ण और रहस्यमयी बनी रही। सन् १९२६ में वे स्वराज्य पार्टी के टिकट पर, लखनऊ फैजाबाद क्षेत्र से केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य निर्वाचित हुए और स्वराज्य पार्टी के मुख्य सचेतक नियुक्त किए गए। रफी अहमद गांधी-इरविन-समझौते से असंतुष्ट थे। प्रतिक्रिया-स्वरूप स्वराज्य प्राप्ति हेतु क्रांति का मार्ग ग्रहण करने के लिये उद्यत थे। इस सबध में सन् १९३१ के भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के कराँची अधिवेशन के अवसर पर उन्होने मानवेंद्रनाथ राय से परामर्श किया। उनके परामर्शानुसार किदवई ने जवाहरलाल जी के साथ इलाहाबाद और समीपवर्ती जिलो के किसानों के मध्य कार्य करना प्रारभ किया और उनके जागरण और जमींदारो द्वारा किए जा रहे उनके दोहन और शोषण की समाप्ति के लिये सतत प्रयत्नशील रहे। किदवई शीघ्र ही सपूर्ण देश को इस सघर्ष में संमिलित करने में सफल हुए।

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के लाहौर अधिवेशन के निर्णयानुसार रफी अहमद ने केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। वे उत्तर प्रदेश काग्रेस के महामत्री और बाद में अध्यक्ष निर्वाचित हुए। सन् १९३७ के महानिर्वाचन में वे उत्तर प्रदेश काग्रेस के चुनाव सचालक थे। वे स्वय दो स्थानों से प्रत्याशी रहे, पर दोनो क्षेत्रों से पराजित हुए। मुसलिम लीग के प्रभाव के कारण उत्तर प्रदेश में मुसलमानों के लिये सुरक्षित स्थानों में से एक पर भी काग्रस प्रत्याशी विजयी न हो सका। रफी अहमद बाद में एक उपनिर्वाचन मे विजयी हुए। वे उत्तर प्रदेश की अतरिम सरकार में राजस्व मत्री नियुक्त किए गए। उत्तर प्रदेश दखीलकारी (टेनेंसी) विधेयक उनके मन्त्रित्वकाल की क्रांतिकारी देन थी। द्वितीय महायुद्ध के समय काग्रेस के निर्णयानुसार सभी अंतरिम मन्त्रिमडलो ने त्यागपत्र दे दिए।

रफी अहमद का व्यक्तित्व अत्यत रहस्यमय और निर्भीक था। उत्तर प्रदेश मन्त्रिमडल में वरिष्ठ पद पर रहकर उन्होने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के अध्यक्ष पद के लिये उच्च कमान के आधिकारिक प्रत्याशी पट्टाभि सीतारमैया के विरुद्ध सुभाषचद्र बोस को खुला समर्थन दिया और उनके पक्ष में प्रचार किया। श्री बोस विजयी हुए। सन् १९४९ में उन्होंने अध्यक्ष पद के लिये सरदार वल्लभ भाई पटेल के प्रत्याशी पुरुषोत्तमदास टडन के विरुद्ध डा० सीतारमैया का समर्थन किया। श्री टडन पराजित हुए।

सन् १९४६ में रफी अहमद किदवई पुन उत्तर प्रदेश के राजस्व-मत्री नियुक्त हुए। उन्होने काग्रेस के चुनाव घोषणापत्र के अनुसार जमींदारी उन्मूलन का प्रस्ताव विधान सभा द्वारा सिद्धात रूप मे स्वीकृत कराया। देशविभाजन के समय वे उत्तर प्रदेश के गृहमत्री थे। श्री किदवई किसी भी राष्ट्रीय मुसलमान से अधिक धर्मनिरपेक्षता के पक्षपाती थे। उनके हृदय मे मानवमात्र के लिये समान स्थान था, पर दुर्भाग्यवश उनके विरुद्ध सांप्रदायिकता को प्रश्रय देने की तीव्र चर्चा प्रारभ हो गई। इस प्रकरण को समाप्त करने के लिये जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें केंद्र मे बुला लिया। वे केंद्रीय मन्त्रिमडल के संचार एव नागरिक उड्डयन मत्री नियुक्त किए गए। यद्यपि साप्रदायिकता की आग में उनके निरपराध चचेरे भाई को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी और यह श्री किदवई के लिये अत्यत दु खद रहा, तथापि वे अपनी मान्यताओ से लेशमात्र भी विचलित नही हुए।

जवाहरलाल जी की समाजवाद में आस्था थी और सरदार पटेल दक्षिणपथी विचारधारा के पोषक थे। काग्रेस सगठन पर सरदार का अधिकार था। यद्यपि सरदार पटेल ने नेहरू जी को प्रधान मन्त्री स्वीकार कर लिया था, तथापि किदवई को इस कटु सत्य का स्पष्ट भान था कि सरदार पटेल की उपस्थिति में नेहरू जी शासन के नाममात्र के अध्यक्ष रहेंगे। वे नेहरू जी का मार्ग निष्कटक बनाना चाहते थे, जिससे काग्रेस की सत्ता उनके हाथ में हो और इस प्रयास में विफल होने की स्थिति में उनकी योजना थी, कि जवाहरलाल जी अपने समर्थको के साथ काग्रेस के विकल्प रूप में एक नया सगठन स्थापित करें। रफी अहमद ने अपने योजनानुसार दोनो छोरो पर चार वर्षों तक सघर्ष किया पर वे अपने प्रयास में विफल रहे। डाक्टर सीतारमैया अध्यक्ष रूप में प्रभावहीन सिद्ध हुए और आचार्य कृपलानी सरदार पटेल के प्रत्याशी टंडन द्वारा पराजित हुए। उत्तर प्रदेश मे रफीसमूह के विधायकों पर अनुशासनहीनता के आरोप लगाकर उसके नेताओ को काग्रेस से निष्कासित कर दिया गया। रफीसमूह विरोध पक्ष मे आ गया। मई, १९५१ में काग्रेस महासमिति की आहूत बैठक मे टडन जी से समझौता न होने पर आचार्य कृपलानी ने काग्रेस से त्यागपत्र दे दिया, पर रफी की अनिश्चय की स्थिति बनी रही। यदि वे नेहरू जी का मोह त्यागकर काग्रेस से पृथक् हो गए होते तो या तो राजनीति मे समाप्त हो जाते या देश के सर्वोच्च नेता होते और शीघ्र ही शासन

उत्पन्न हुआ, जिसका नाम भरत रखा गया। कहते हैं, इस देश का 'भारत' नाम इसी के कारण पड़ा। कुछ दिनों बाद शकुंतला अपने पुत्र को लेकर दुष्यंत के दरबार में पहुँची। परंतु शकुंतला को बीच में दुर्वासा ऋषि का शाप मिल चुका था। राजा ने इसे बिलकुल नहीं पहचाना, और स्पष्ट कह दिया कि न तो मैं तुम्हे जानता हूँ और न तुम्हे अपने यहाँ आश्रय दे सकता हूँ। परंतु इसी अवसर पर एक आकाशवाणी हुई, जिससे राजा को विदित हुआ कि यह मेरी ही पत्नी है और यह पुत्र भी मेरा ही है। उन्हे कण्व मुनि के आश्रम की सब बातें स्मरण हो आईं और उन्होंने शकुंतला को अपनी प्रधान रानी बनाकर अपने यहाँ रख लिया। महाकवि कालिदास के लिखे हुए प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में राजा दुष्यंत और शकुंतला के प्रेम, विवाह, प्रत्याख्यान और ग्रहण आदि का वर्णन है। पौराणिक कथा में आकाशवाणी द्वारा बोध होता है पर नाटक में कवि ने मुद्रिका द्वारा इसका बोध कराया। कालिदास का यह नाटक विश्वविख्यात है। [वि० त्रि०]

'उग्र', पांडेय बेचन शर्मा का जन्म मिर्जापुर जनपद के अंतर्गत चुनार नामक कस्बे में पौष शुक्ल ८, सं० १९५७ वि० को हुआ था। इनके पिता का नाम वैद्यनाथ पांडेय था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। ये अत्यंत अभावग्रस्त परिवार में उत्पन्न हुए थे अत. पाठशालीय शिक्षा भी इन्हे व्यवस्थित रूप से नही मिल सकी। अभाव के कारण इन्हें बचपन में रामलीला मंडली मे काम करना पड़ा था। ये अभिनय कला में बड़े कुशल थे। बाद में काशी के सेंट्रल हिंदू स्कूल से आठवीं कक्षा तक शिक्षा पाई, फिर पढाई का क्रम टूट गया। साहित्य के प्रति इनका प्रगाढ़ प्रेम लाला भगवानदीन के सामीप्य मे आने पर हुआ। इन्होंने साहित्य के विभिन्न अंगों का गंभीर अध्ययन किया। प्रतिभा इनमे ईश्वरप्रदत्त थी। ये बचपन से ही काव्यरचना करने लगे थे। अपनी किशोर वय मे ही इन्होंने प्रियप्रवास की शैली मे 'ध्रुवचरित्' नामक प्रबंधकाव्य की रचना कर डाली थी।

मौलिक साहित्य की सर्जना में ये आजीवन लगे रहे। इन्होंने काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि क्षेत्रों में समान अधिकार के साथ श्रेष्ठ कृतियाँ प्रस्तुत कीं। कहानी, उपन्यास आदि को इन्होंने अपनी विशिष्ट शैली प्रदान की। पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी उग्र जी ने सच्चे पत्रकार का आदर्श प्रस्तुत किया। वे असत्य से कभी नहीं डरे, उन्होंने सत्य का सदैव स्वागत किया, भले ही इसके लिये उन्हे कष्ट झेलने पड़े। पहले काशी के दैनिक 'आज' मे 'ऊटपटाँग' शीर्षक से व्यंग्यात्मक लेख लिखा करते थे और अपना नाम रखा था 'अष्टावक्र'। फिर 'भूत' नामक हास्य-व्यंग्य-प्रधान पत्र निकाला। गोरखपुर से प्रकाशित होनेवाले 'स्वदेश' पत्र के 'दशहरा' अंक का संपादन इन्होंने ही किया था। तदनंतर कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाले 'मतवाला' पत्र मे काम किया। 'मतवाला' ने ही इन्हे पूर्ण रूप से साहित्यिक बना दिया। फरवरी, सन् १९३८ ई० में इन्होंने काशी से 'उग्र' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। इसके कुल सात अंक ही प्रकाशित हुए, फिर यह बंद हो गया। इंदौर से निकलनेवाली 'वीणा' नामक मासिक पत्रिका में इन्होंने सहायक संपादक का काम भी कुछ दिनों तक किया था। वहाँ से हटने पर 'विक्रम' नामक मासिक पत्र इन्होंने पं० सूर्यनारायण व्यास के सहयोग से निकाला। पाँच अंक प्रकाशित होने के बाद ये उससे भी अलग हो गए। इसी प्रकार इन्होंने 'संग्राम', 'हिंदी पंच' आदि कई अन्य पत्रों का संपादन किया, किंतु अपने उग्र स्वभाव के कारण कहीं भी अधिक दिनों तक ये टिक न सके। इसमें संदेह नहीं, उग्र जी सफल पत्रकार थे। ये सामाजिक विषमताओं से आजीवन संघर्ष करते रहे। ये विशुद्ध साहित्यजीवी थे और साहित्य के लिये ही जीते रहे। सन् १९६७ में दिल्ली में इनका देहावसान हो गया।

इनके रचित ग्रंथ इस प्रकार हैं —

नाटक—महात्मा ईसा, चुंबन, गंगा का बेटा, आवास, अन्नदाता माधव महाराज महान्।

उपन्यास—चंद हसीनों के खतूत, दिल्ली का दलाल, बुधुआ की बेटी, शराबी, घंटा, सरकार तुम्हारी आँखों में, कढ़ी में कोयला, जीजीजी, फागुन के दिन चार, जुहू।

कहानी—कुल ६७ कहानियाँ।

काव्य—ध्रुवचरित, बहुत सी स्फुट कविताएँ।

आलोचना—तुलसीदास आदि अनेक आलोचनात्मक निबंध।

संपादित—गालिब : उग्र।

उग्र जी की मित्रमंडली में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद, शिवपूजन सहाय, विनोदशंकर व्यास आदि प्रसिद्ध साहित्यकार थे। दो महाकवि उग्र जी के विशेष प्रिय थे . गोस्वामी तुलसीदास तथा उर्दू के प्रसिद्ध शायर असदुल्ला खाँ गालिब। इनकी रचनाओं के उद्धरण उग्र जी ने अपने लेखों मे बहुश. दिए हैं। [ला० त्रि० प्र०]

किदवई, रफी अहमद भारतीय राजनीति के जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। उनका जन्म बाराबंकी जिले के मसौली ग्राम के एक जमींदार परिवार में हुआ था। उनके पिता इम्तियाज अली एक उच्चपदस्थ सरकारी अधिकारी थे। जब रफी मात्र आठ वर्ष के थे, उनकी माँ का देहावसान हो गया और उनके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। रफी और उनके अन्य तीन सहोदरों को इम्तियाज अली ने अपने भाई विलायत अली के यहाँ स्थानांतरित कर दिया। विलायत अली बाराबंकी के ख्यातिलब्ध वकील और प्रमुख राष्ट्रीय मुसलमान नेता थे। उन्हीं के संरक्षण में रफी अहमद के व्यक्तित्व का विकास हुआ। रफी के विद्यार्थी जीवन में कोई विशिष्टता नहीं थी; वे सामान्य स्तर के छात्र थे। उनकी स्मरणशक्ति अवश्य बड़ी तीव्र थी। उन्होंने गवर्नमेंट हाई स्कूल (बाराबंकी) से सन् १९१३ ई० में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की और एम० ए० ओ० कालेज, अलीगढ़, से सन् १९१९ मे कला में स्नातक उपाधि प्राप्त की। दो वर्ष पश्चात् जब उनकी कानून की परीक्षा प्रारंभ होनेवाली थी, उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान पर सरकार द्वारा नियंत्रित एम० ए० ओ० कालेज का अन्य कतिपय सहपाठियों के साथ बहिष्कार कर दिया और असहयोग आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। उनके चाचा विलायत अली खाँ सन् १९१८ में ही दिवंगत हो गए थे। परीक्षा का बहिष्कार कर असहयोग आंदोलन मे भाग लेने पर

इंदिरा गांधी
(देखें पृष्ठ ४१६)

जॉन फ़िट्ज़ेराल्ड केनेडी

(देखें पृष्ठ ४१५)

'मेनरो सिद्धांत' की धारणा के अनुसार इन्होंने क्यूबा में सोवियत आक्रामक प्रक्षेपास्त्र संग्रहों के चोरी चोरी हो रहे निर्माण को रोकने तथा उन्हें वहाँ से हटा दिए जाने के लिये तत्काल कार्रवाई की। इस सिलसिले में अमरीका ने जो युद्ध दृष्टिकोण अपनाया उसके परिणामस्वरूप आक्रामक प्रक्षेपास्त्रों के प्रश्न पर सोवियत संघ के साथ युद्ध का संकट टला।

श्री केनेडी अपने प्रशासन के सभी निर्णयों के लिये पूर्ण रूप से उत्तरदायी रहे।

२२ नवम्बर, सन् १९६३ ई० को अमरीका के दक्षिण शहर डलास में २५ मील प्रति घंटा की रफ्तार से चलती हुई उनकी कार पर कहीं से कुछ खूनी गोलियाँ छूटीं और राष्ट्रपति केनेडी का आहत शरीर एक ओर लुढ़क पड़ा। १० मिनट के पश्चात् अमरीका के सबसे युवा एवं उत्साही, उदार एवं शांतिप्रेमी राष्ट्रपति जान फिट्ज़ेराल्ड केनेडी का निधन हो गया। [रा०]

गांधी, इंदिरा भारत गणराज्य के प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की पुत्री तथा पंडित मोतीलाल नेहरू की पौत्री इंदिरा जी भारत की तृतीय प्रधान मंत्री हैं। इनका जन्म सन् १९१७ ईसवी में हुआ और शिक्षा शांतिनिकेतन, कैंब्रिज तथा स्विट्ज़रलैंड में हुई। अल्पवय से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में भाग लेना आरंभ कर दिया था, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के संपर्क में आईं तथा स्वातंत्र्य आंदोलन में जेल भी गईं। यद्यपि सन् १९६४ के पूर्व देश के शासनतंत्र में इन्होंने कोई पद ग्रहण नहीं किया तो भी कांग्रेस अध्यक्षा (१९५७ ई०) के रूप में भारतीय जनता के जीवन से तादात्म्य स्थापित करने का इन्हें पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ था। पिता के साथ कई बार विदेश यात्राएँ कर चुकने के कारण यह प्रमुख विदेशी राजनयिकों के संपर्क में भी आ चुकी थीं। पंडित नेहरू की मृत्यु के बाद सर्वप्रथम यह सूचना और प्रसारण मंत्री (१९६० ई०) के रूप में श्रीलालबहादुर शास्त्री के केंद्रीय मन्त्रिमंडल में शामिल हुईं और उनके निधन पर जनवरी, १९६६ ई० से प्रधान मंत्री पद पर आसीन हैं। यह विश्व के सबसे बड़े गणराज्य की प्रथम महिला प्रधान मंत्री हैं। अपने शासन काल में समूचे देश का दौरा करने के साथ ही आपने फ्रांस, अमरीका, इंग्लैंड, रूस तथा अन्य देशों का भी दौरा किया और सर्वत्र अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त की।

इन्हें भी देश की विभिन्न बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ा और निरंतर करना पड़ रहा है। खाद्यान्न की समस्या, नागालैंड तथा चंडीगढ़ की समस्या आदि का समाधान इन्होंने सफलतापूर्वक किया। इनके समय में पंजाब और हरियाणा की दो अलग सरकारें बनीं और असम राज्य के अंतर्गत मेघालय राज्य की स्थापना हुई।

समाजवादी शासन की दिशा में देश निरंतर अग्रसर है जिसका प्रथम चरण है भारतीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण। इनके कार्यकाल में एक कटु प्रसंग भी उपस्थित हुआ—महान संस्था कांग्रेस में दो दल हो गए। राष्ट्रपति के चुनाव में मतदान की स्वतंत्रता के प्रश्न को लेकर कांग्रेस दो भागों में विभक्त हो गई और इंदिरा जी की नीतियों की समर्थक कांग्रेस को, जिसे वे वास्तविक कांग्रेस मानती हैं, सत्ताधारी कांग्रेस तथा दूसरे को संगठन कांग्रेस नाम दिया जाने लगा।

इंदिरा जी शांतिनिकेतन की कुलपति, काशी नागरीप्रचारिणी सभा की संरक्षक तथा केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी की अध्यक्षा भी हैं। इनके प्रयत्नों से देश में नई समाजवादी जाग्रति और कांग्रेस में नवचेतना का संचार हुआ है। [रा० पा०]

जर्मन भाषा एवं साहित्य जर्मन भाषा—भारोपीय परिवार के जर्मेनिक वर्ग की भाषा, सामान्यतः उच्च जर्मन का वह रूप है जो जर्मनी में सरकारी, शिक्षा, प्रेस आदि का माध्यम है। यह आस्ट्रिया में भी बोली जाती है। इसका उच्चारण १८९८ ई० के एक कमीशन द्वारा निश्चित है। लिपि फ्रेंच और अंग्रेजी से मिलती जुलती है। वर्तमान जर्मन के शब्दादि में आघात होने पर काकल्यस्पर्श है। तान (टोन) अंग्रेजी जैसी है। उच्चारण अधिक सशक्त एवं शब्दक्रम अधिक निश्चित है। दार्शनिक एवं वैज्ञानिक शब्दावली से परिपूर्ण है। शब्दराशि अनेक स्रोतों से ली गई है।

उच्च जर्मन—केंद्र, उत्तर एवं दक्षिण में बोली जानेवाली—अपनी पश्चिमी शाखा (लो जर्मन-फ्रिजियन, अंग्रेजी) से लगभग छठी शताब्दी में अलग होने लगी थी। भाषा की दृष्टि से 'प्राचीन हाई जर्मन' (७५०–१०५०), 'मध्य हाई जर्मन' (१३५० ई० तक), 'आधुनिक हाई जर्मन' (१२०० ई० के आसपास से अब तक) तीन विकास चरण हैं। उच्च जर्मन की प्रमुख बोलियों में सिलिश, श्विज्टुर्ग, आधुनिक अशन स्विस या उच्च अलेमैनिक, फ्रकोनियन (पूर्वी और दक्षिणी), टिपुअरियन तथा साइलेसियन आदि हैं।

जर्मन साहित्य—जर्मन साहित्य, विशेषतः साहित्य, संसार के प्रौढ़तम साहित्यों में से एक है। जर्मन साहित्य सामान्यतः छह छह सौ वर्षों के व्यवधान (६००, १२००, १८०० ई०) में विभक्त माना जाता है। प्राचीन काल में मौखिक एवं लिखित दो धाराएँ थीं। ईसाई मिशनरियों ने जर्मनों को रुने (Rune) वर्णमाला दी। प्रारंभ में (९०० ई०) ईसामसीह पर आधारित साहित्य (अनुवाद एवं चंपू) रचा गया।

प्रारंभ में वीरकाव्य (एपिक) मिलते हैं। एकाप्य का 'हासहिल्डे ब्राडलिड', (पिता पुत्र के बीच मरणांतक युद्धकथा) जर्मन बैलेड साहित्य की उल्लेख्य कृति है। ओल्ड टेस्टामेंट के अनेक अनुवाद हुए।

दरबारी वीरकाव्य — हिंदी के तथाकथित 'वीरगाथाकाल' की भाँति वाकरटु, घुमक्कड, पेशेवर, भट्टमंडलों (गायक) की वीर बैलेडें बनीं। यद्यपि इनसे शिल्प, भाषा एवं नैतिक मूल्यों में ह्रास हुआ तथापि साथ ही विषयवैविध्य भी हुआ। फ्रांस एवं इस्लाम के अभ्युदय तथा प्रभाव से अनेक 'एपिक' बने। होहेस्टाफेन सम्राटों के अनेक कवियों में से वुलफ्राम ने 'पार्जीवाल' महान् काव्यकृति रची। अज्ञातनामा चारणकृत 'निबेलुंगेनलीड' वैसे ही वीरलोककाव्य है जैसे हिंदी में 'आल्हा' है।

प्रणयकाव्य—वीरों एवं उनकी नायिकाओं के पारस्परिक प्रणय और युद्ध विषयक विशिष्ठ साहित्यधारा 'मिनेसांगर' के प्रमुख कवियों में से वाल्थर, फॉनडेर फोगलवाइड को सर्वश्रेष्ठ प्रणयगीतकार (जैसे विद्यापति) कहा गया है।

की बागडोर उनके हाथ में आ जाती। जुलाई में बंगलोर अधिवेशन से निराश होकर उन्होंने कांग्रेस की प्रारंभिक सदस्यता और केंद्रीय मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया और किसान मजदूर प्रजा पार्टी की सदस्यता स्वीकार कर ली। टंडन जी द्वारा दबाव डालने पर जवाहरलाल जी ने १० अगस्त को केंद्रीय मन्त्रिमंडल से उनका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया और स्वयं कांग्रेस कार्यसमिति से त्यागपत्र दे दिया। कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में टंडन जी का अध्यक्ष पद से त्यागपत्र स्वीकृति होने और जवाहरलाल जी के कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित होने के पश्चात् रफी अहमद पुन. कांग्रेस में लौट आए।

सन् १९५२ में बहराइच संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से विजयी होने के पश्चात् वे भारत के खाद्य और कृषि मंत्री नियुक्त हुए। संचार और नागरिक उड्डयन मंत्री के रूप में कई क्रांतिकारी कार्यों के लिये उन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी। सभी को शंका थी कि सदा से अशुभ खाद्य मंत्रालय उनके राजनीतिक भविष्य के लिये अशुभ सिद्ध होगा। पर किदवई ने चमत्कार कर दिया। खाद्य-समस्या का विश्लेषण कर कृत्रिम अभाव की स्थिति को समाप्त करने के लिये मनोवैज्ञानिक उपचार के लिये आवश्यक पग उठाए और खाद्यान्न व्यापार को नियन्त्रणमुक्त कर दिया। प्रकृति ने भी किदवई का साथ दिया। यह उनकी राजनीतिक प्रतिष्ठा का चरमोत्कर्ष था। शीघ्र ही उपप्रधान मंत्री के रिक्त स्थान पर उनकी नियुक्ति की संभावना थी। लेकिन सन् १९३६ से ही उच्च रक्तचाप और हृद्रोग से पीड़ित रफी अहमद के स्वास्थ्य ने उनका साथ नही दिया। स्वास्थ्य की निरतर उपेक्षा करनेवाले रफी अहमद मृत्यु की उपेक्षा न कर सके। २४ अक्टूबर, १९५४ को हृदयगति रुक जाने से उनका देहावसान हो गया। [ला० ब० पा०]

केनेडी, जॉन फिट्ज़ेराल्ड अमरीका के ३५ वें राष्ट्रपति। जन्म २९ मई, सन् १९१७ ई० को बोस्टन के ब्रुकलिन उपनगर में हुआ था। पिता का नाम श्री जोसेफ केनेडी एवं माता का नाम श्रीमती रोज फिट्ज़ेराल्ड केनेडी था। इनके पूर्वज आयरलैंड से आए थे। न्यू इंग्लैंड (पूर्वोत्तर अमरीका) के राजनीतिक जीवन में इस परिवार का प्रमुख स्थान था। बोस्टन में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् श्री केनेडी ने लदन स्कूल ऑव इकानामिक्स मे विद्याध्ययन किया जहाँ उनके प्रोफेसर लेबर पार्टी के विचारक हेराल्ड लास्की भी थे। इन्होने हारवर्ड और मैसाचुसेट्स विश्वविद्यालयो में अपना अध्ययन पूर्ण किया।

विद्यार्थी जीवन में पीठ पर लगी फुटबाल की चोट के कारण इन्हें स्थल सेना में प्रवेश न मिल सका। सैनिक सेवा के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ होने के कारण इन्होंने इस चोट की विशेष चिकित्सा कराई, आवश्यक व्यायाम किया और इसके बाद नौसेना में कमीशनप्राप्त अधिकारी के रूप में भर्ती कर लिए गए। इन्हें कार्यालय में बैठकर कार्य करने का आदेश मिला; किंतु यह उन्हें रुचिकर न लगा, अत: इन्होने गश्त लगानेवाली टारपीडो नौका पर ड्यूटी लगाने का अनुरोध किया। अंततोगत्वा इन्हें प्रशांत महासागर क्षेत्र में भेज दिया गया। २ अगस्त, १९४३ ई० को गश्त करनेवाली टारपीडो नौका पी० टी० १०९, जिसके ये लेफ्टिनेंट थे, को एक जापानी विध्वंसक ने दो टुकड़ों में खंडित कर दिया। दुर्घटना में उनकी पीठ पर चोट लगी परंतु इसके बावजूद ये समुद्र में कूद गए और अपने कई साथियों के प्राणों की रक्षा की। डूबती हुई टारपीडो नौका से बुरी तरह घायल एक साथी को एक जीवनपेटी की सहायता से बचाकर एक द्वीप पर ले गए। शत्रु अधिकृति उस क्षेत्र में एक सप्ताह का कष्टमय जीवन व्यतीत करने के पश्चात् अपनी टुकड़ी को सुरक्षित क्षेत्र में ले आए। इस प्रकार इन्होंने अपने अदम्य साहस का परिचय दिया जिसके फलस्वरूप इन्हें नौसेना एवं मैरिन कोर का पदक देकर संमानित किया गया।

सन् १९४५ ई० में नौसेना की सेवा से अवकाश ग्रहण करने पर इन्होंने पत्रसंपादक के रूप में कार्य आरंभ किया और सन् १९४६ ई० में राजनीति की ओर उन्मुख हुए। सन् १९४८ में बोस्टन क्षेत्र से प्रतिनिधि सभा के सदस्य निर्वाचित हुए और सन् १९५६ ई० में अमरीका के उपराष्ट्रपति पद के लिये डेमोक्रेटिक दल के उम्मीदवार के रूप में चुनाव में असफल रहे। सन् १९६० ई० में ये डेमोक्रेटिक पार्टी की ओर से राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार हुए और ८ नवंबर, सन् १९६० ई० में लगभग ४३ वर्ष की आयु में प्रथम रोमन कैथलिक राष्ट्रपति बने।

२० जनवरी, सन् १९६१ को शपथ ग्रहण के अवसर पर अपने उद्घाटन भाषण में इन्होंने अपने देशवासियो और संपूर्ण विश्व के लोगो से अनुरोध किया कि वे मानव के सामान्य शत्रुओं—अत्याचार, दरिद्रता, रोग एवं युद्ध के विरुद्ध सहयोग प्रदान करें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये इन्होंने एक नई पीढ़ी और एक नवीन प्रशासन की शक्ति और त्याग को प्रयुक्त करने की प्रतिज्ञा की।

राष्ट्रपति की हैसियत से अपनी कार्यावधि के प्रथम सौ दिनों के अंदर, जो किसी नए प्रशासन के लिये परपरागत रूप में कठिन अवधि होती है, इन्होंने कांग्रेस के समक्ष शिक्षा के हेतु संघीय सहायता के लिये एक कार्यक्रम और अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन देने के लिये अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत किए। अपने प्रशासन के अतर्गत विद्वानो और अन्य बुद्धिजीवियों को विभिन्न पदो पर नियुक्त किया। ह्वाइट हाउस में इन्होंने अगणित कलाकारों को आमंत्रित कर सांस्कृतिक क्षेत्र को राजकीय मान्यता प्रदान की।

देश के आतरिक पक्ष में, इन्होंने करो में कटौती, औद्योगिक ढाँचे के परिवर्तनों से प्रभावित होकर आर्थिक दृष्टि से क्षतिग्रस्त होनेवाले क्षेत्रो के लिये सहायता, एक विस्तृत आवास-व्यवस्था-कार्यक्रम, वृद्धजनों के लिये चिकित्सा व्यवस्था, नागरिक अधिकार कानूनों के दृढ़ीकरण जैसे कार्यों और उपायों पर बल दिया।

अंतरराष्ट्रीय मामलों में श्री केनेडी ने बर्लिन में तनाव कम करने के लिये अपने देश के प्रयास को जारी रखा। स्वतंत्र एवं तटस्थ लाओस के निर्माण पर बल दिया। प्रभावकारी आणविक परीक्षा प्रतिबंध सधि के लिये आह्वान किया, सर्वव्यापक निःशस्त्रीकरण संधि संपन्न करने के किये प्रयन्न किया तथा एशिया के विकासोन्मुख राष्ट्रों को सहायता का वचन दिया।

अक्टूबर, सन् १९६२ ई० में अमरीकी राष्ट्र संघटन (आर्गनाइजेशन ऑव अमरीकन स्टेट्स) के सर्वसंमतिपूर्ण समर्थन से तथा

मान्यताएँ उसके साहित्य मे व्यक्त हुई। इसी से बाद में नाजी धारा प्रभावित हुई।

'आर्नोहोल्स' के नेतृत्व में प्रकृतिवादी साहित्य (यथातथ्य प्राकृतिक निरूपण) की भी एक धारा पाई जाती है।

बीसवीं शताब्दी

रसवादी परपरा—बर्लिन के प्रकृतिवादी साहित्य के समानातर वियना की कलात्मक रसवादिता की धारा भी आई। इसमें सौदर्य के नवीन आयामो की खोज हुई। उपन्यासजगत् में अत्यधिक उपलब्धि हुई। 'टामस मान' जर्मन मध्यवर्ग का महान् व्याख्याता (उपन्यासकार एव गद्य-महाकाव्य-प्रणेता) था। उसने डरजौबवर्ग (जादु का पहाड़ १९२४ ई०) मे पतनोन्मुख यूरोपीय समाज का चित्रण किया। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, ऐतिहासिक मिथ एव प्रतीकात्मकता के माध्यम से उसने परवर्ती साहित्यिकों को बहुत प्रभावित किया। हरमन हेस ने वैयक्तिक अनुभूतियो के सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किए। इस काल के सभी साहित्यिकों में रहस्यवाद और प्रतीकात्मकता है तथा प्राकृतिक साहित्य का विरोध पाया जाता है।

वर्तमान युग—वर्तमान युग के सूत्र पहले से ही पाए जाने लगे थे। 'टामस मान' स्वयं वर्तमान का प्रेरक था। प्रभाववादी धारा (इंप्रेशनिस्ट—लगभग १९१० ई०), जिसमें वर्तमान की ध्वसात्मक आलोचना या आंतरिक अनुभूतियो की प्रत्यक्ष अनुभूति पाई जाती है तथा जिसमें जार्जहिम, हेनरिख वर्ग आदि प्रमुख साहित्यिक हैं, वस्तुत आधुनिक साहित्यिक चेतना की एक मजिल है।

अभिव्यंजनावाद—महासमर के बाद अभिव्यंजनावाद की धारा वेगवती हुई। इनकी दृष्टि अतश्चेतना के सत्योद्घाटन में ही है। नाटक के क्षेत्र में नई टेकनीक, कथावस्तु एव उद्देश्य की नवीनता के कारण रंगमच की आवश्यकता बढ़ी। जार्जकेसर, अर्नेस्ट टालर के नाटक, वेर्फेल के लिरिक प्रसिद्ध हैं। वेर्फेल के १९१४ के बाद के लिरिको में व्यापक वेदात — मृत्यु, मोक्षजगत् में ब्रह्म सत्ता का अस्तित्व — मिलता है। 'वाल्टर वान मोलो' ने ऐतिहासिक नाटक लिखे। अर्नेस्ट तथा थ्योडर ने महाकाव्य लिखे। फ्रायड तथा आइस्टीन के सिद्धातो का प्रभाव इस काल के साहित्य में पडा तथा आलोचना के नए मानदड आए। स्प्लेंजर आदिको की मानवता की नवीन व्याख्या अत्यत प्रभावकारी हुई।

१९३९ ई० के युद्ध के दौरान जर्मन साहित्य में भी उथल पुथल मची तथा 'थामस मान' जैसे लेखक देशनिष्कासित कर दिए गए। नात्सीवाद (नाजी) के समर्थक साहित्यकारो में पाल अर्नेस्ट, हांस ग्रिम, हरमान स्तेह, विल वेस्पर आदि प्रमुख थे। युद्धोत्तर साहित्य मे भी अस्थिरता रही, धार्मिक दृष्टिकोण से वर्तमान समस्याओ को देखा गया। काव्य एवं उपन्यासो में युद्धविभीषका चित्रित हुई। 'गर्डगेसर' तथा हेनरिच बाल ने युद्धोत्तर परिस्थितियो का लोमहर्षक चित्रण प्रस्तुत किया।

समग्र रूप में हम पाते हैं कि जर्मन साहित्य में सार्वभौम दृष्टिकोण का अभाव है और संभवत. इसी से यह यूरोपीय सांस्कृतिक धारा से किंचित् पृथक् पडता है। संकीर्ण और एकागी दृष्टिकोण की प्रबलता, अत्यधिक तात्विकता, बाहर से अधिक ग्रहण करने की पारपरिक प्रवृत्ति आदि कारणों से अग्रजी, फ्रेंच जैसे साहित्यों की तुलना में जर्मन साहित्य विदेशों में अपेक्षित प्रसिद्धि न पा सका। फिर भी काल्पनिकता, अतीद्रियबोध, रोमास तथा लोकतात्विक भूमिका के कारण यह इतर साहित्यो से पृथक् एव महत्वपूर्ण है।

संदर्भ — बी० ओ० मोर्गन : क्रिटिकल बिब्लियोग्राफी ऑव जर्मन लिटरेचर, १४८१–१९३५, जे० कोनर बिबलोग्रफिशेस हाडबुख डेस ड्वायटश्येज मिफ्टुम्स, भगवतशरण उपाध्याय . विश्व-साहित्य की रूपरेखा।

[भ० दी० मि०]

ठाकुर, रवींद्रनाथ का जन्म कलकत्ता नगर में ७ मई. सन् १८६१ ई० को हुआ था। इनके पिता का नाम महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर था। प्रारभिक पाठशाला मे इनका नाम लिखाया गया किंतु वहाँ इनका मन नही लगा। यज्ञोपवीत सस्कार हो जाने के बाद ये बचपन में ही अपने परिवार के साथ हिमालय की यात्रा पर गए थे, जहाँ उनकी प्रतिभा को विकास का पूरा अवकाश मिला था। इनका पालन पोषण बचपन में नौकरो के ही जिम्मे रहा। पढ़ाने के लिये घर पर शिक्षक आते थे। अखाड़े में एक पहलवान इन्हें कुश्ती कला भी सिखाता था। सोलह वर्ष की वय में इन्होंने अपना नाम छिपाकर छद्मनाम से 'भानुसिंह की पदावली' नामक एक काव्यसग्रह लिख डाला था और यह लिख दिया था कि ब्रह्मसमाज के पुस्तकालय में प्राचीन कवि भानुसिंह की यह पदावली मुझे हाथ लगी। बहुतों ने इसे सच भी मान लिया था। इसके बाद ये शिक्षाप्राप्ति के लिये इंग्लैंड भेजे गए। वहाँ जो कटु मधुर अनुभव इन्होंने प्राप्त किए उसका विशद उल्लेख इन्होंने अपने 'स्मृतिग्रंथ' में किया है। ये बराबर काव्यरचना में दत्तचित्त रहे। इंग्लैंड में इनका परिचय अंग्रेजो के विख्यात महाकवि डब्ल्यू० बी० यीट्स से हो गया। उन्ही की प्रेरणा से इन्होंने अपने कई बंगला काव्यसग्रहो से १०३ गीतों का अनुवाद 'गीतांजलि' नाम से अग्रेजी में किया और उसी पर इन्हें सन् १९१३ में विश्व का सबसे बडा पुरस्कार 'नोबेल प्राइज' मिला। फिर तो इनकी ख्याति देश विदेश में सर्वत्र फैल गई और भारत में भी लोग इन्हें महाकवि समझने लगे। इसके पश्चात् इन्होंने कलकत्ते से दूर बोलपुर में 'शातिनिकेतन' नामक आश्रम की स्थापना की और प्राचीन भारतीय आश्रमों की भाँति वहाँ शिक्षण की व्यवस्था की। वहाँ विविध विषयों के उच्च विद्वान् सादगी के वातावरण में शिक्षादान करने लगे। रवीद्र काव्य में विश्वप्रेम को राष्ट्रीयता से उच्च स्थान देने के अभिलाषी रहे हैं। ब्रह्मसमाज में दीक्षित होने के कारण जाति पाँति में उनका विश्वास नही था और न मदिरो के प्रति उन्हें आस्था थी। वे मानवता को सर्वोपरि मानते थे।

रवींद्रनाथ कवि, नाटककार, निबधकार, उपन्यासकार, अभिनेता, सगीतज्ञ और कुशल चित्रकार भी थे। उनकी प्रतिभा का ही परिणाम है कि उनके नाम से सगीत के क्षेत्र में 'रवींद्र सगीत' की धूम मच गई।

रवींद्र की साहित्यिक कृतियो का अनुवाद विश्व की सभी प्रमुख भाषाओ में हो गया है। एक समय था, जब अनेक भारतीय भाषाओं के कवि रवींद्र के काव्य का अनुकरण करने में अपनी प्रतिष्ठा समझते थे। रवींद्र ने अकेले जितना विपुल साहित्य दिया, इस काल में

अवनति का द्वितीय दौर (१२२०-१४५० ई०) — परवर्ती जर्मन साहित्य अधिकांशत पल्लवग्राही रहा। इसी काल में कवि बनाने के 'स्कूल' खुले, जिन्हें इन्ही कवियो के नाम पर उनकी पेचीली एवं अलकृत शैली के कारण 'माइस्तेर्सिगेर' कहा गया। गद्य का विकास फ्रासीसी लेखको के प्रभाव से हुआ। पद्रहवी शताब्दी से मुद्रण के कारण गद्य, कथासाहित्य बहुत लिखा गया। महान् सुधारक मार्टिन लूथर महान् साहित्यकार न था किंतु बाइबिल के उसके अद्भुत अनुवाद को तत्कालीन जनता ने 'रामचरितमानस' की तरह स्वीकारा तथा परवर्ती लेखक इससे प्रेरित एवं प्रभावित हुए।

पुनर्जागरण : लूथरकाल (१७वी शती) — रेनेसाँ के कारण अनेक साहित्यिक एवं भाषावैज्ञानिक सस्थाएँ जन्मी, आलोचनासाहित्य का अग्रेजी, विशेषत शेक्सपियर पद्धतिवाले, रगमच के प्रवेश से (१६२० ई०) काव्य प्रधानत धार्मिक एवं रहस्यवादी रहा। कवियो में ओपित्स, साइमन डाख तथा पाल फ्लेमिंग प्रमुख हैं।

सत्रहवी शताब्दी के अंत तक नवसंगीतसर्जना हुई। लाइबनित्स जैसे दार्शनिको के प्रभाव से साहित्य में तार्किकता एव बुद्धिवाद आया ग्रीमेल्सहाउसेन का यथार्थवादी युद्धउपन्यास 'सिपलीसिसिमस' कृति है। अतिशयोक्ति एव वैचित्र्यप्रधान नाटक तथा व्यग्य साहित्य का भी प्रणयन हुआ किंतु वस्तुत. धार्मिक सघर्षों के कारण कोई विशेष साहित्यिक प्रगति न हुई।

१८वीं शती

प्रसिद्ध नाटककार गाटशेड के प्रतिनिधित्व में मर्यादावादी एवं बुद्धिवादी जर्मन साहित्य प्रारभ हुआ। कापस्टाक ने उन्मादक रसप्रवाही काव्य लिखा। लेसिंग ने नाटक (१७७९ ई०), आलोचना एवं सौदर्यशास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण निर्णायक योगदान किया। इसके आलोचना के मानदंडो एवं कृतित्व ने शताब्दियो तक जर्मन साहित्य को प्रभावित किया है।

आधुनिक यग

१८वी शताब्दी के तीसरे चरण से जर्मन साहित्य का युग आरंभ होता है। उपर्युक्त बुद्धिवाद के विरुद्ध 'स्तूर्म उण्ड्राग' (तूफान और आग्रह) नामक तर्कशून्य, भावुक, साहित्यिक आंदोलन चल पडा। इसका प्रेरक ग्राटफ्रीटहर्डर था। नवयुवक गेटे तथा शिलर प्रचारक थे। सामाजिकता, राष्ट्रीयता, अतींद्रिय सत्ता पर विश्वास और तर्कशून्यभावुकता इसकी विशेषताएँ हैं।

इसके बाद क्लासिकल काल (१७८६ ई० से) के देदीप्यमान नक्षत्र जोहानवोलगैंग गेटे ने विश्वविख्यात नाटक 'फास्ट' लिखा। इसमें गेटे ने 'शाकुंतलम्' का प्रभाव स्वीकारा है। 'विलहेम मेइस्तर' प्रसिद्ध उपन्यास है। गेटे के ही टक्करवाले शिलर (साहित्यकार और इतिहासकार) ने 'रूसो' से प्रभावित प्रसिद्ध नाटक 'डी राउबर' (डाकू) लिखा। दार्शनिक काट उसी समय हुए। इस काल का साहित्य आदर्शोन्मुखी, जनप्रिय एवं शाश्वत मूल्योंवाला है।

१९वीं शताब्दी

रोमांटिक काल—इस शताब्दी में रोमांटिक एवं यथार्थवादी दो परस्पर विरोधी चेतनाएँ विकसी, परिणामतः क्लासिकल कालीन आदर्शों, मान्यताओ का विरोध हुआ तथा ऊहात्मक, स्वप्निल, आभासगर्भित विगत अतीत अथवा सुदूर भविष्य का सुखद धूमिल वातावरणप्रधान साहित्य लिखा जाने लगा। इसका सूत्रपात 'आर्थेनाउम' (१७९८) पत्रिका के प्रकाशन से प्रारभ होता है। अतींद्रिय तत्वो की स्वीकृति, बिबात्मक एव प्रतीकात्मक (विशेषत: परियो के कथानको द्वारा), प्रणयगीतात्मक रूमानी साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ थी। गोटलिबफिख्ते, शेलिंग, श्लेगल बधुद्वय आदि प्रमुख रूमानी साहित्यकार हैं। हाफमान गायक, गीतकार, और इन सबसे बढकर कथाकार था। उसके पात्र भीषण तथा अपार्थिव होते थे। इसका प्रभाव परवर्ती जर्मन साहित्य पर बहुत पडा।

परवर्ती शताब्दियो तक प्रभावित करनेवाली सर्वाधिक उपलब्धि शेक्सपियर के नाटकों का छंदविहीन काव्य मे अनुवाद है। जर्मनी के राजनीतिक संघर्षों (जेना युद्ध १८०६ ई० मुक्ति युद्ध १८१३ ई०) में नैपोलियन विरोधी राष्ट्रभावनापरक साहित्य रचा गया। नाटको में देशप्रेम, बलिदान एवं प्रतीकात्मकता है।

अतीतोन्मुखता के परिणामस्वरूप लोकसाहित्य का संग्रह प्रारंभ हुआ, साथ ही जर्मन कानून परंपराओं भाषा, साहित्य एवं संगीत को नवीन वैज्ञानिक संदर्भों में देखा गया। प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक 'ग्रिम' ने भाषाकोश लिखा। अन्य भाषाविश्लेषक 'बाप' भी उसी समय हुए। ग्रिम बंधुओं का कहानीसंग्रह 'किंडर उंड हाउस मार्खेन' (घरेलू कहानियाँ) शीघ्र ही जर्मन बच्चों का उपास्य बन गया।

मार्क्सवाद के आते आते वर्ग-संघर्ष-विरोधी साहित्य का प्रणयन प्रारभ हुआ। ऐसे साहित्यकार (हाइनृख हाइने, कार्ल गुत्सको, हाइनृख लाउबे, थ्योडोर गुंट आदि) 'तरुण जर्मन' कहलाए। सरकार ने इनकी कृतियाँ जप्त करके अनेक को देशनिकाला दे दिया। हाइने अंतिम रोमांटिक कवि था किंतु उसमें थैलीशाहो का खुला विद्रोह मिलता है। उस समय ऐतिहासिक एवं समस्याप्रधान नाटक बने। भाव एव भाषा दोनों ही दृष्टियों से आचलिकता आने लगी। राजनीतिक कविताओ के लिये जार्ज हर्वे, फर्डीनेंड फ्राली-ग्राथ (वाल्टह्विट का पहला अनुवादक) आदि प्रसिद्ध हैं। फ्रीड्रिख हेबेल ने दु खात नाटकों से विदेशियो को भी प्रभावित किया।

यथार्थवादी उपन्यासधारा में मेधावी स्विस लेखक ग्राटफ्रीड केलर हुआ। ओटो लुडविग का कथासाहित्य कल्पनाप्रधान है। सामाजिक उपन्यास वस्तुतः इसी काल में उच्चता पा सके। थ्योडर स्टोर्म ने मनोवैज्ञानिक कहानियाँ तथा प्रगीत लिखे। स्विस लिरिककारों में महान् 'कोनराड फर्डीनेंड मेयर' ने अत्यंत ललित, भावप्रधान, सुगठित प्राजल भाषा में प्रगीत लिखे। साहित्य की समस्त यथार्थवादी विधियों ने विदेशी साहित्य से प्रेरणाएँ ग्रहण की।

वागनर और नीत्से — इन दोनो के प्रभाव से निराशावादी, प्रतिक्रियाप्रधान साहित्य रचा गया। नीत्से की 'महामानव' संबंधी

रवींद्रनाथ ठाकुर (देखें पृष्ठ ४१८)
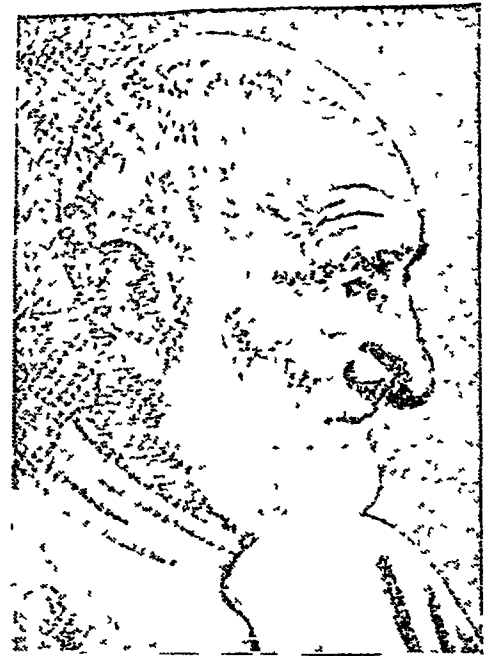
बादशाह खाँन (देखें पृष्ठ ४२२)

सत्यनारायण शास्त्री (देखें पृष्ठ ४३८)
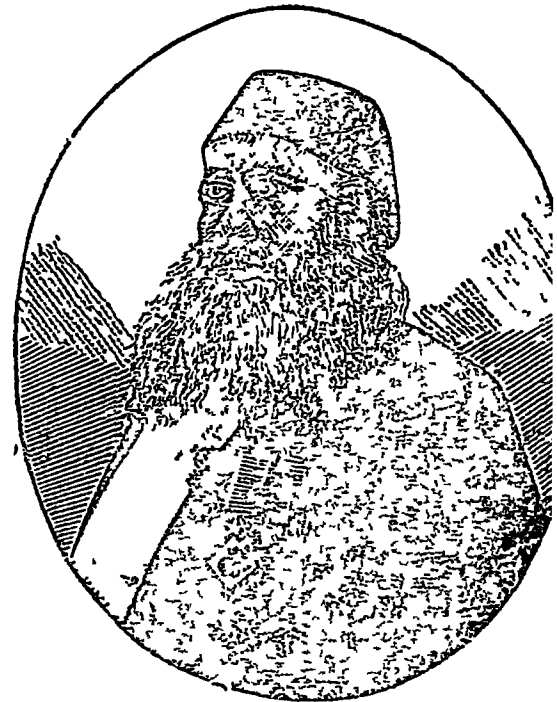
सर सैयद अहमद खाँ (देखें पृष्ठ २०८)

४५ वर्ष पुराने नेतृत्व का अंत हो गया, उनकी राजनीतिक मृत्यु हो गई। सन् १९६२ में उनके दल को विधानसभा में मात्र तीन स्थान प्राप्त हुए। यद्यपि १९६६ में हुए पंजाब विभाजन की पूर्वपीठिका तैयार करने का संपूर्ण श्रेय मास्टर तारासिंह को ही है, तथापि पंजाबी सूबा बना मास्टर तारा सिंह के यश शरीर के शव पर। विजय की वरमाला संत जी के गले में पड़ी। पर उस वयोवृद्ध सिक्ख-नेता ने आत्मसमर्पण करना सीखा नहीं था। वे अंत तक मैदान में डटे रहे। वे जीवनपर्यंत विवाद के केंद्र बने रहे, लेकिन जड़ कभी नहीं हुए।

२२ नवंबर, सन् १९६७ को ८३ वर्ष की वय में देश के राजनीतिक जीवन का यह इंद्रधनुषी व्यक्तित्व समाप्त हो गया। [ला० ब० पा०]

ध्यानचंद, मेजर जन्म २९ अगस्त, सन् १९०५ ई० को इलाहाबाद में हुआ था। जाति के राजपूत हैं। हॉकी के विश्वविख्यात खिलाड़ी हैं। १९२२ ई० में दिल्ली में प्रथम ब्राह्मण रेजीमेंट में भर्ती हुए। सन् १९२७ ई० में लांस नायक बना दिए गए। सन् १९३२ ई० में लॉस ऐंजल्स जाने पर नायक नियुक्त हुए। सन् १९३७ ई० में जब भारतीय हाकी दल के कप्तान थे तो उन्हें जमादार बना दिया गया। जब द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हुआ तो सन् १९४३ ई० में 'लेफ्टिनेंट' नियुक्त हुए और भारत के स्वतंत्र होने पर सन् १९४८ ई० में कप्तान बना दिए गए।

जब ये ब्राह्मण रेजीमेंट में थे उस समय मेजर बले तिवारी से, जो हाकी के शौकीन थे, हाकी का प्रथम पाठ सीखा। सन् १९२२ ई० से सन् १९२६ ई० तक सेना की ही प्रतियोगिताओं में हाकी खेला करते थे। दिल्ली में हुई वार्षिक प्रतियोगिता में जब इन्हें सराहा गया तो इनका हौसला बढ़ा। १३ मई, सन् १९२६ ई० को न्यूजीलैंड में पहला मैच खेला था। न्यूजीलैंड में २१ मैच खेले जिनमें ३ टेस्ट मैच भी थे। इन २१ मैचों में से १८ जीते, २ मैच अनिर्णीत रहे और एक में हारे। पूरे मैचों में इन्होंने १९२ गोल बनाए। उनपर कुल २४ गोल ही हुए।

ओलंपिक प्रतियोगिता में (अमस्तरदम में) १७ मई, सन् १९२८ ई० को आस्ट्रिया को ६–०, १८ मई को बेल्जियम को ९–०, २० मई को डेनमार्क को ५–०, २२ मई को स्विटजरलैंड को ६–० तथा २६ मई को हालैंड को ३–० से हराकर विश्व भर में हॉकी के चैंपियन घोषित किए गए और २९ मई को उन्हें पदक प्रदान किया गया।

२७ मई, सन् १९३२ ई० को श्रीलंका में दो मैच खेले। एक मैच में २१–० तथा दूसरे में १०–० से विजयी रहे। ४ अगस्त, १९३२ ई० को ओलंपिक खेलों में जापान को ११–१ तथा ११ अगस्त को अमरीका को २४–१, से हराकर पुन विश्वविजयी हुए।

सन् १९३५ ई० में भारतीय हाकी दल के न्यूजीलैंड के दौरे पर इनके दल ने ४९ मैच खेले। जिसमें ४८ मैच जीते और एक वर्षा होने के कारण स्थगित हो गया। १७ जुलाई, १९३६ ई० को जर्मन एकादश से पहला मैच खेला और १–४ से हार गए।

५ अगस्त, १९३६ ई० को हंगरी के विरुद्ध खेले और ४–० से जीते। ७ अगस्त को ७–० से अमरीका को हराया और १० अगस्त को जापान को ९–० से परास्त किया। १२ अगस्त को फ्रांस को १०–० से हराया। १५ अगस्त को फाइनल में जर्मनी को ८-१ से परास्त किया और पुन विश्वविजयी हुए।

अप्रैल, १९४९ ई० को प्रथम कोटि की हाकी से संन्यास ले लिया। [रा०]

परामनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है, जिसका संबंध मनुष्य की उन अधिसामान्य शक्तियों से है, जिनकी व्याख्या अब तक के प्रचलित सामान्य मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से नहीं हो पाती। इन तथाकथित प्राकृतेतर तथा विलक्षण प्रतीत होनेवाली अधिसामान्य घटनाओं या प्रक्रियाओं की व्याख्या में ज्ञात भौतिक प्रत्ययों से भी सहायता नहीं मिलती। परचित्तज्ञान, विचारसंक्रमण, दूरानुभति, पूर्वाभास, अतींद्रियज्ञान, मनोजनित गति या 'साइकोकाइनेसिस' आदि कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जो एक भिन्न कोटि की मानवीय शक्ति तथा अनुभूति की ओर संकेत करती हैं। इन घटनाओं की वैज्ञानिक स्तर पर घोर उपेक्षा की गई है और इन्हें बहुधा जादू टोने से जोड़कर, गुह्यविद्या का नाम देकर विज्ञान से अलग समझा गया है। किंतु ये विलक्षण प्रतीत होनेवाली घटनाएँ घटित होती हैं। वैज्ञानिक उनकी उपेक्षा कर सकते हैं, पर घटनाओं को घटित होने से नहीं रोक सकते। घटनाएँ वैज्ञानिक ढाँचे में बैठती नहीं दीखतीं — वे आधुनिक विज्ञान की प्रकृति की एकरूपता या नियमितता की धारणा को भंग करने की चुनौती देती प्रतीत होती हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आज भी परामनोविज्ञान को वैज्ञानिक संदेह तथा उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। किंतु वास्तव में परामनोविज्ञान न जादू टोना है, न वह गुह्यविद्या, प्रेतविद्या या तंत्रमंत्र जैसा कोई विषय। इन तथाकथित प्राकृतेतर, पराभौतिक एवं परामानसकीय, विलक्षण प्रतीत होनेवाली अधिसामान्य घटनाओं या प्रक्रियाओं का विधिवत् तथा क्रमबद्ध अध्ययन ही परामनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य है। इन्हें प्रयोगात्मक पद्धति की परिधि में बाँधने का प्रयत्न, इसकी मुख्य समस्या है। परामानसिकीय अनुसंधान या 'साइकिकल रिसर्च' इन्हीं पराभौतिक विलक्षण घटनाओं के अध्ययन का अपेक्षाकृत पुराना नाम है जिसके अंतर्गत विविध प्रकार की उपात घटनाएँ भी संमिलित हैं जो और भी विलक्षण प्रतीत होती हैं तथा वैज्ञानिक धरातल से और अधिक दूर हैं — उदाहरणार्थ प्रेतात्माओं, या मृतात्माओं से संपर्क, पाल्टरजीस्ट या ध्वनिप्रेत, स्वचालित लेखन या भाषण आदि। परामनोविज्ञान अपेक्षाकृत सीमित है — यह परामानसिकीय अनुसंधान का प्रयोगात्मक पक्ष है — इसका वैज्ञानिक अनुशासन और कड़ा है।

मानव का अदृश्य जगत् से इंद्रियेतर संपर्क में विश्वास बहुत पुराना है। लोककथाएँ, प्राचीन साहित्य, दर्शन तथा धर्मग्रंथ पराभौतिक घटनाओं तथा अद्भुत मानवीय शक्तियों के उदाहरणों से भरे पड़े हैं। परामनोविद्या का इतिहास बहुत पुराना है — विशेष रूप से भारत में। किंतु वैज्ञानिक स्तर पर इन तथाकथित पराभौतिक विलक्षण घटनाओं का अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी की देन है। इससे पूर्व इन तथाकथित रहस्यमय क्रियाव्यापारों को समझने की

संभवतः कोई भी उतना न दे सका। उनकी बहुमुखी प्रतिभा और महान् व्यक्तित्व के कारण संपूर्ण विश्व ने भारतवर्ष का परिचय पाने के लिये गांधी और रवींद्रनाथ को ही पर्याप्त माना। वह गुरुदेव नाम से प्रसिद्ध थे और महात्मा गांधी उनका बडा आदर करते थे। यहाँ तक कि जब अस्सी वर्षों की आयु में शांतिनिकेतन के लिये धनसंग्रहार्थ गुरुदेव स्वयं अपनी अभिनयमंडली लेकर भारतभ्रमण के लिये निकले तब महात्मा जी ने उन्हें आश्वासन दिया कि शांतिनिकेतन के लिये वह निधि एकत्र कर देंगे।

स्वतंत्र भारत का राष्ट्रगान 'जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता' गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की ही कृति है।

शांतिनिकेतन में ही सन् १९४१ ई० में रवींद्रनाथ का निधन हुआ। [ला० त्रि० प्र०]

तारासिंह, मास्टर कट्टर सिक्ख नेता थे। इनका जन्म रावलपिंडी के समीपवर्ती ग्राम के एक खत्री परिवार में सन् १८८३ में हुआ था। वे बाल्यावस्था से ही कुशाग्रबुद्धि एवं विद्रोही प्रकृति के थे। १७ वर्ष की वय में सिक्ख धर्म की दीक्षा ले ली और अपना पैतृक गृह त्यागकर गुरुद्वारे को ही आवास बना लिया। तारासिंह ने स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण कर अध्यापक के रूप में अपना जीवन प्रारंभ किया। एक खालसा विद्यालय के अवैतनिक हेडमास्टर हो गए पर मात्र दस रुपए मासिक में अपना निर्वाह करते थे। यह तारासिंह का अपूर्व त्याग था। यद्यपि बाद में धार्मिक आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण उन्होंने अध्यापन कार्य सदा के लिये छोड दिया, तथापि हेडमास्टर तारासिंह, मास्टर तारासिंह के ही नाम से विख्यात हुए।

मास्टर तारासिंह ने प्रथम महायुद्ध के समय राजनीति में प्रवेश किया। उन्होंने सरकार की सहायता से सिक्खपंथ को वृहत् हिंदू समाज से पृथक् करने के सरदार उज्वलसिंह मजीठिया के प्रयास में हर संभव योग दिया। सरकार को प्रसन्न करने के लिये सेना में अधिकाधिक सिक्खों को भर्ती होने के लिये प्रेरित किया। सिक्खों को इस राजभक्ति का पुरस्कार मिला। सब रेलवे स्टेशनों का नाम गुरुमुखी में लिखा जाना स्वीकार किया गया और सिक्खों को भी मुसलमानों की भाँति इंडिया ऐक्ट १९१९ में पृथक् सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। महायुद्ध के बाद मास्टर जी ने सिक्ख राजनीति को कांग्रेस के साथ संबद्ध किया और सिक्ख गुरुद्वारों और धार्मिक स्थलों का प्रबंध हिंदू मठाधीशों और हिंदू पुजारियों के हाथ से छीनकर उनपर अधिकार कर लिया। इससे अकाली दल की शक्ति में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। मास्टर तारासिंह शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के प्रथम महामंत्री चुने गए। ग्रंथियों की नियुक्ति उनके हाथ में आ गई। इनकी सहायता से अकालियों का आतंकपूर्ण प्रभाव संपूर्ण पंजाब में छा गया। मास्टर तारासिंह बाद में कई बार शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष चुने गए।

मास्टर तारासिंह ने सन् १९२१ के सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया, पर सन् १९२८ की भारतीय सुधारों संबंधी नेहरू कमेटी की रिपोर्ट का इस आधार पर विरोध किया कि उसमें पंजाब विधानसभा में सिक्खों को ३० प्रतिशत प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। अकाली दल ने कांग्रेस से अपना संबंध विच्छेद कर लिया। १९३० में पूर्ण स्वराज्य का संग्राम प्रारंभ होने पर मास्टर तारासिंह तटस्थ रहे और द्वितीय महायुद्ध में अंग्रेजों की सहायता की। सन् १९४६ के महानिर्वाचन में मास्टर तारासिंह द्वारा संगठित 'पंथिक' दल अखंड पंजाब की विधानसभा में सिक्खों को निर्धारित ३३ स्थानों में से २० स्थानों पर विजयी हुआ। मास्टर जी ने सिखिस्तान की स्थापना के अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये श्री जिन्ना से समझौता किया। पंजाब में लीग का मंत्रिमंडल बनाने तथा पाकिस्तान के निर्माण का आधार ढूँढने में उनकी सहायता की। लेकिन राजनीति के चतुर खिलाडी जिन्ना से भी उन्हें निराशा ही हाथ लगी। भारत विभाजन की घोषणा के बाद अवसर से लाभ उठाने की मास्टर तारासिंह की योजना के अंतर्गत ही देश में दंगों की शुरुआत अमृतसर से हुई, पर मास्टर जी का यह प्रयास भी विफल रहा। लेकिन उन्होंने हार न मानी, सतत संघर्ष उनके जीवन का मूलमंत्र था। मास्टर जी ने संविधानपरिषद् में सिक्खों के सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व को कायम रखने, भाषासूची में गुरुमुखी लिपि में पंजाबी को स्थान देने तथा सिक्खों को हरिजनों की भाँति विशेष सुविधाएँ देने पर बल दिया और सरदार पटेल से आश्वासन प्राप्त करने में सफल हुए। इस प्रकार संविधानपरिषद् द्वारा भी सिक्ख संप्रदाय के पृथक् अस्तित्व पर मुहर लगवा दी तथा सिक्खों को विशेष सुविधाओं की व्यवस्था कराकर निर्धन तथा दलित हिंदुओं के धर्मपरिवर्तन द्वारा सिक्ख संप्रदाय के त्वरित प्रसार का मार्ग उन्मुक्त कर दिया। तारासिंह इसे सिक्ख राज्य की स्थापना का आधार मानते थे। सन् १९५२ के महानिर्वाचन में कांग्रेस से चुनाव समझौते के समय वे कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा पृथक् पंजाबी भाषी प्रदेश के निर्माण तथा पंजाबी विश्वविद्यालय की स्थापना का निर्णय कराने में सफल हुए।

मास्टर तारासिंह ने विभिन्न आंदोलनों के सिलसिले में अनेक बार जेलयात्राएँ कीं, पर दिल्ली में आयोजित एक विशाल प्रदर्शन का नेतृत्व करने से पूर्व सरदार प्रतापसिंह द्वारा बंदी बनाया जाना उनके नेतृत्व के ह्रास का कारण बना। उन्होंने अपने स्थान पर प्रदर्शन का नेतृत्व करने के लिये अपने अन्यतम सहयोगी संत फतेहसिंह को मनोनीत किया। संत ने बाद में मास्टर जी की अनुपस्थिति में ही पंजाबी प्रदेश के लिये आमरण अनशन प्रारंभ कर दिया, जिसे समाप्त करने के लिये मास्टर तारासिंह ने कारावास से मुक्ति के पश्चात् संत फतेहसिंह को विवश किया और प्रतिक्रियास्वरूप सिक्ख समुदाय के कोपभाजन बने। अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिये उन्होंने स्वयं आमरण अनशन प्रारंभ कर दिया, जिसे उन्होंने केंद्रीय सरकार के आश्वासन पर ही त्यागा। सरकार ने वार्तार्थ मास्टर जी के स्थान पर संत को आमंत्रित किया। घटनाक्रमों ने अब तक मास्टर जी के नेतृत्व को प्रभावहीन और संत को विख्यात बना दिया था। वे हर मोड पर उलझते गए और संत जी की लोकप्रियता उसी अनुपात में बढती गई। सरदार प्रतापसिंह के राजनीतिक कौशल ने सिक्ख राजनीतिक शक्ति के अक्षय स्रोत शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी से भी मास्टर को निष्कासित करने में संत को सफल बनाया। मास्टर जी संत जी से पराजित हुए। उनके

निश्चित रूप से यह किसी अतींद्रिय प्रत्यक्ष की शक्ति की ओर संकेत करता है, यदि प्रयोग की दशाओं का नियन्त्रण इस बात का संदेह न उत्पन्न होने दे कि प्रयोज्य को कोई ऐंद्रिक संकेत मिल गया होगा।

राइन ने इन जेनर कार्डों की सहायता से संभावना की सांख्यिकी को आधार मानकर अनेक प्रयोगात्मक दशाओं में अतींद्रिय प्रत्यक्ष, दूरानुभूति, परभावानुभूति तथा पूर्वाभास आदि पर अनेक अध्ययन किए।

आलोचकों ने संभावित त्रुटियों की ओर भी ध्यान दिलाया है जो निम्नलिखित हैं —

१. सांख्यिकीय त्रुटि, २ निरीक्षण या रेकार्डिंग की त्रुटि, ३ मानसिक झुकाव, आदत तथा समान प्रवृत्ति, ४ किसी भी स्तर के सावेदनिक या ऐंद्रिक संकेत।

अधिक नियंत्रित प्रयोगात्मक दशाओं में तथा उपयुक्त प्रयोगात्मक प्रारूपों की सहायता से इन त्रुटियों को कम या समाप्त किया जा सकता है। अन्य अनेक अध्ययनों में दूरानुभूति तथा अतींद्रिय प्रत्यक्ष के प्रमाण मिले। जी० एन० एम० टिरेल ने एक प्रतिभासपन्न प्रयोज्य के साथ परिमाणात्मक अनुसंधान किया। कैरिंगटन ने दूरानुभूति तथा पूर्वाभास के लिये 'जेनर' चिह्नों के स्थान पर स्वतंत्र चिह्नों का प्रयोग किया। डाक्टर एस० जी० सोल ने अधिक नियंत्रित दशाओं में अतींद्रिय प्रक्रियाओं का अध्ययन किया तथा जेनर से भिन्न चिह्नोंवाले कार्डों का उपयोग किया।

अन्य अंग्रेज मनोवैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों में कैंब्रिज वि० वि० के सी० डी० ब्राड, एच० एच० प्राइस तथा आर० एच० थूले अमरीका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डाक्टर गार्डनर मरफी तथा श्मीडलर, उडरफ, सी० वी० नाश, करलिस ओसिस, दार्शनिक डुकाश, मनोचिकित्सक मीरलू, स्टीवेंसन तथा उलमैन के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारत में भी राइन शैली के प्रयोग कई विश्वविद्यालयों में दुहराए गए, विशेष रूप से लखनऊ वि० वि० में प्रो० कालीप्रसाद के निर्देशन में। काशी हिंदू वि० वि० में प्रो० भी० ला० आत्रेय के समय में परामनोविज्ञान पर कुछ शोधकार्य हुए तथा जयपुर वि० वि० में परामनोविज्ञान का एक संस्थान स्थापित किया गया।

परामनोविज्ञान का विषयक्षेत्र बड़ी ही महत्वपूर्ण शोधसामग्री प्रस्तुत करता है जिसका व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक दोनों ही दृष्टियों से बहुत महत्व है। [रा० स० ना० श्री०]

बादशाह खान बादशाह खान के परदादा ओबेदुल्ला खान सत्यवादी होने के साथ ही साथ लड़ाकू स्वभाव के भी थे। पठानी कबीलियों के लिये और भारतीय आजादी के लिये वे बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ लड़े थे। आजादी की लड़ाई के लिये ही उन्हें प्राणदंड दिया गया था। जैसे बलशाली थे वैसे ही समझदार और चतुर भी। बादशाह खान के दादा सैफुल्ला खान भी लड़ाकू स्वभाव के थे। उन्होंने सारी जिंदगी अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी। जहाँ भी पठानों के ऊपर अंग्रेज हमला करते रहे, वहाँ सैफुल्ला खान मदद में जाते रहे।

ऐसा जान पड़ता है, आजादी की लड़ाई का सबक बादशाह खान ने अपने दादा से ही सीखा था। बादशाह खान के पिता बैराम खान का स्वभाव कुछ भिन्न था। वे शांत थे और ईश्वरभक्ति में लीन रहा करते थे। वे विशेषतया धर्मनिष्ठ मनुष्य थे। बैराम खान ने अपने लड़के को शिक्षित बनाने के लिये मिशन स्कूल में भरती कराया था, यद्यपि पठानों ने उनका बड़ा विरोध किया। मिशन स्कूल में विग्रम साहब का प्रभाव खान साहब पर बहुत पड़ा। मिशनरी स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् वे अलीगढ़ गए किंतु वहाँ रहने की कठिनाई के कारण गाँव में ही रहना पसंद किया। गर्मी की छुट्टियों में खाली रहने पर समाजसेवा का कार्य करना इनका मुख्य काम था। शिक्षा समाप्त होने के बाद यह देशसेवा में लग गए।

पेशावर में १९१९ ई० में फौजी कानून (मार्शल ला) का आदेश लागू था। बादशाह खान को सरकार झूठी बगावत में फँसाकर जेल भेजना चाहती थी। बादशाह खान ने उस समय शांति का प्रस्ताव पास किया, इसपर भी वे गिरफ्तार किए गए। बादशाह खान के कहने पर तार तोड़ा गया, इस प्रकार के गवाह अंग्रेजी सरकार तैयार करना चाह रही थी किंतु कोई ऐसा व्यक्ति तैयार नहीं हुआ जो सरकार की तरफ से गवाही दे। फिर भी झूठे आरोप में बादशाह खान को छह मास की सजा दी गई। उन्हीं दिनों कुछ लोगों ने अफवाह फैलाई कि बादशाह खान को गोली मार दी गई है। यह अफवाह सुनकर उनके पिता अधीर हो उठे पर कुछ दिनों पश्चात् उसी जेल में वे भी पहुँचे और अपने पुत्र को देखकर प्रसन्न हुए।

खुदाई खिदमतगार का सामाजिक कार्य राजनीतिक कार्य में परिवर्तित हो गया एवं सत्याग्रह के रोग का इलाज खान साहब को जेल में भरकर किया गया। गुजरात के जेल में आने के पश्चात् उनका पंजाब के अन्य राजबंदियों से परिचय हुआ। उस समय उन्होंने ग्रंथ साहब के बारे में दो ग्रंथ पढ़े। फिर गीता का अध्ययन किया। उनकी संगति से अन्य कैदी भी प्रभावित हुए और गीता, कुरान, तथा ग्रंथ साहब आदि सभी ग्रंथों का अध्ययन सबने किया। बादशाह खान को गीता का पूरा अर्थ सन् १९३० ई० में पं० जगतराम से प्राप्त हुआ।

पख्तून जिर्गा या तरुण अफगान नामक नया समाज उन्होंने खड़ा किया। "पख्तून जिर्गा" मासिक में अधिकतर वे ही लोग लिखते थे, जो देश के लोगों के मन में देशभक्ति उत्पन्न कर सकें। खान साहब का कहना है तथा प्रत्येक खुदाई खिदमतगार की यही प्रतिज्ञा होती है कि "हम खुदा के बंदे, दौलत या मौत की हमें कदर नहीं है। हम और हमारे नेता सदा आगे बढ़ते चलते है। मौत को गले लगाने के लिये हम तैयार हैं"। पुन. सरहदी गांधी आज भी यही पैगाम जनता को दे रहे हैं। हिंदू तथा मुसलमानों के आपसी मेल मिलाप को जरूरी समझकर उन्होंने गुजरात के जेलखाने में गीता तथा कुरान के दर्जे लगाए, जहाँ योग्य संस्कृतज्ञ और मौलवी संबंधित दर्जे को चलाते थे। सन् १९३० ई० के इरविन गांधी समझौते के कारण खान साहब भी छोड़े गए लेकिन खान साहब ने सामाजिक कार्यों की फिक्र जारी रखी। गांधी जी इंग्लैंड से लौटे ही थे कि सरकार ने कांग्रेस पर फिर पाबंदी लगा दी अत बाध्य होकर व्यक्तिगत अवज्ञा का आंदोलन प्रारंभ हुआ। सीमा प्रांत में भी सरकार की ज्यादतियों के विरुद्ध माल-

दिशा में कोई संगठित वैज्ञानिक प्रयत्न नहीं हुआ। आधुनिक परामनोविज्ञान का प्रारंभ सन् १८८२ से ही मानना चाहिए जिस वर्ष लदन में परामानसिकीय अनुसंधान के लिये 'सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च' (एस० पी० आर०) की स्थापना हुई। यद्यपि इससे पहले भी कैंब्रिज में 'घोस्ट सोसाइटी', तथा ऑक्सफर्ड मे 'फैंटमेटोलाजिकल सोसाइटी' जैसे सस्थान रह चुके थे, तथापि एक सगठित वैज्ञानिक प्रयत्न का आरंभ 'एस० पी० आर०' की स्थापना से ही हुआ जिसकी पहली बैठक १७ जुलाई, १८८२ ई० में प्रसिद्ध दार्शनिक हेनरी सिजविक, की अध्यक्षता में हुई। इसके सस्थापकों में हेनरी सिजविक, उनकी पत्नी ई० एम० सिजविक, आर्थर तथा गेराल्ड बाल्फोर, लार्ड रेले, एफ० डब्ल्यू० एच० मायर्स तथा भौतिक शास्त्री सर विलियम बैरेट थे।

सस्थान का उद्देश्य इन तथाकथित रहस्यमय प्रतीत होनेवाली घटनाओं को वैज्ञानिक ढग से समझना, विचारसक्रमण, दूरज्ञान, पूर्वाभास, प्रेतछाया, संमोहन आदि के दावों की वैज्ञानिक तथा निष्पक्ष जाँच करना था। संस्था की 'प्रोसीडिंग्स' तथा शोधपत्रिकाएँ, जिनकी सख्या अब सौ से भी अधिक पहुँच चुकी है, अनेक प्रयोगात्मक अध्ययनो से भरी हुई हैं। सस्थान से सर ओलिवर लाज, हेनरी वर्गसाँ, गिल्बर्ट मरे, विलियम मैक्डूगल, प्रोफेसर सी० डी० ब्राड, प्रो० एच० एच० प्राइस, तथा प्रो० एफ० सी० एस० शिलर जैसे विख्यात मनोवैज्ञानिक संबंधित हैं। बाद में इसी प्रकार के कुछ अन्य अनुसंधानकेंद्र दूसरे देशों में भी खुले। 'अमरीकन सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च' की स्थापना सन् १८८४ ई० मे हुई और उसके सस्थापक सदस्य विलियम जेम्स इस सस्था से जीवनपर्यंत सबंधित रहे। अमरीका में इस दिशा में कदम उठानेवाले लोगो में रिचार्ड हाउसन, एस० न्युकोब, स्टेनले हॉल, मार्टन प्रिंस, तथा डब्ल्यू० एफ० प्रिंस प्रमुख हैं। बास्टन, पेरिस, हालैंड, डेनमार्क, नार्वे, पोलैंड आदि मे भी परामानसिकीय अनुसधानकेंद्र स्थापित हुए हैं। ग्रोनिजन विश्वविद्यालय, हालैंड, हारवर्ड वि० वि०, ड्यूक वि० वि० तथा नार्थ कैरोलिना वि० वि० मे भी इस दिशा में प्राथमिक एवं महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं। एक अंतरराष्ट्रीय सस्थान 'इंटरनेशनल कांग्रेस ऑव साइकिकल रिसर्च' की भी स्थापना हुई है। इसके वार्षिक अधिवेशनो में परामनोविज्ञान में रुचि रखनेवाले मनोवैज्ञानिक भाग लेते हैं। आधुनिक परामनोवैज्ञानिकों में जे० बी० राइन, प्रैट, गार्डनर मर्फी, जी० एन० एम० टिरेल कैरिंगटन, एस० जी० सोल, के० एम० गोल्डने के नाम उल्लेखनीय हैं।

कुछ परामानसिकीय क्रियाव्यापार

परभावानुभूति (टेलीपैथी)—एफ० डब्ल्यू० एच० मायर्स का दिया हुआ शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'दूरानुभूति'। 'ज्ञानवाहन के ज्ञात माध्यमो से स्वतत्र एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में किसी प्रकार का भाव या विचारसक्रमण' टेलीपैथी कहलाता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक 'दूसरे व्यक्ति की मानसिक क्रियाओ के बारे मे अतींद्रिय ज्ञान' को ही दूरानुभूति की सज्ञा देते हैं।

अतींद्रिय प्रत्यक्ष (क्लेयरवाएस)—शाब्दिक अर्थ है 'स्पष्ट दृष्टि'। इसका प्रयोग 'द्रष्टा से दूर या परोक्ष में घटित होनेवाली घटनाओ या दृश्यो को देखने की शक्ति' के लिये किया जाता है, जब द्रष्टा और दृश्य के बीच कोई भौतिक या ऐंद्रिक संबध नहीं स्थापित हो पाता। वस्तुओ या वस्तुनिष्ठ घटनाओ का अतींद्रिय प्रत्यक्ष' क्लेयरवाएस तथा मानसिक घटनाओ का अतींद्रिय प्रत्यक्ष टेलीपैथी कहलाता है।

पूर्वाभास या पूर्वज्ञान—किसी भी प्रकार के तार्किक अनुमान के अभाव में भी भविष्य में घटित होनेवाली घटना की पहले से ही जानकारी प्राप्त कर लेना या उसका सकेत पा जाना पूर्वाभास कहलाता है।

मनोजनित गति (टेलीकाइनेसिस या साइकोकाइनेसिस)—बिना भौतिक सपर्क या किसी ज्ञात माध्यम के प्रभाव के निकट या दूर की किसी वस्तु मे गति उत्पन्न करना मनोजनित गति कहलाता है। 'पाल्टरजीस्ट' या ध्वनिप्रेतप्रभाव, किसी प्रकार के भौतिक या अन्य तथाकथित प्रेतात्मा के प्रभाव से तीव्र ध्वनि होना, घर के बर्तनो या सामानों का हिलना डुलना या टूटना, के प्रभाव भी मनोजनित गति के अदर आते हैं।

अनेक प्रयोगात्मक अध्ययनो से उपर्युक्त क्रियाव्यापारो की पुष्टि भी हो चुकी है। कुछ अन्य घटनाएँ भी हैं जिनपर उपयुक्त प्रयोगात्मक अध्ययन अभी नही हो पाए हैं, किंतु वर्णनात्मक स्तर पर उनके प्रमाण मिले हैं, जैसे स्वचालित लेखन या भाषण, किसी अनजान एवं अनुपस्थित व्यक्ति का कोई सामान देखकर उसके बारे मे बतलाना, प्रेतावास आदि।

परामानसिकी के प्रयोगात्मक अध्ययन—प्रसिद्ध अमरीकन परामनोवैज्ञानिक जे० बी० राइन ने इन अजनबी एवं अनियमित प्रतीत होती घटनाओं को प्रयोगात्मक पद्धति की परिधि में बाँधने का प्रयत्न किया और उन्हे काफी सीमा तक सफलता भी प्राप्त हुई। उन्होने १९३४ में ड्यूक वि० वि० में परामनोविज्ञान की प्रयोगशाला की स्थापना की तथा अतींद्रिय ज्ञान (ई० एस० पी०) पर अनेक प्रयोगात्मक अध्ययन किए। 'ई० एस० पी०' शब्द १९३० के लगभग प्रो० राइन के कारण ही सामान्य प्रचलन में आया। इसका अर्थ है 'सावेदनिक या ऐंद्रिक ज्ञान के अभाव मे भी किसी वाह्य घटना या प्रभाव का आभास, बोध या उसके प्रति प्रतिक्रिया।' यह शब्द सभी प्रकार के अतींद्रिय ज्ञान के लिये प्रयुक्त किया जाता है। (आधुनिक मनोवैज्ञानिक आजकल ई० एस० पी० के स्थान पर 'साई' का प्रयोग करने लगे हैं क्योंकि अतींद्रिय ज्ञान अपने अर्थ में ही किसी विशिष्ट सिद्धांतबद्धता की ओर सकेत करता है।)

प्रो० राइन ने 'जेनर कार्ड्स' का उपयोग किया जिनमें पाँच ताशो का एक सेट होता है। इन ताशो में अलग अलग सकेत बने हैं, जैसे गुणा, गोला, तारक, टेढी रेखाएँ तथा चतुर्भुज। प्रयोगकर्ता उसी कमरे में या दूसरे कमरे मे 'जेनर' ताश की गड्डी फेंट लेता है और उसे उल्टा रखता है। प्रयोज्य कार्ड के चिह्न का अनुमान लगाता है। परिणाम निकालने में सामान्य संभावना साख्यिकी का उपयोग किया जाता है जिसके अनुसार अनुमानो की सफलता की संभावना यहाँ १/५ है, अर्थात् पचीस अनुमानो मे पाँच। तर्क यह है कि यदि प्रयोज्य सभावित प्रत्याशा से अधिक सही अनुमान लगा लेता है तो

ऐसे फ्रांसीसी साम्राज्यविरोधी परिवार में तथा भयंकर साम्राज्यवादी शोषण से पीडित देश, वियतनाम में, जहाँ देश का नक्शा लेकर चलनेवालों को देशद्रोह की सजा दी जाती थी, जन्म हुआ था।

हो-चि मिन्ह ने फ्रांस, अमेरिका इंग्लैंड तीनो देशों की यात्रा में सर्वत्र साम्राज्यवादी शोषण को अपनी आँखों से देखा था। १९१७ की रूसी क्रांति ने 'हो' को अपनी ओर आकर्षित किया और सभी समस्याओं का हल 'हो' को इसी अक्टूबर क्रांति मे दिखाई पडा। 'हो' ने तब मार्क्सवाद और लेनिनवाद का गहरा अध्ययन किया और फ्रांसीसी कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य बन गए। इसी कम्यूनिस्ट पार्टी की मदद और समर्थन से हो चि मिन्ह ने एक क्रांतिकारी पत्रिका 'ली पारिया' निकालना प्रारंभ किया। 'ली पारिया' फ्रांसीसी साम्राज्यवाद के विरुद्ध उसके सभी उपनिवेशो में शोषित जनता को क्रांति के लिये प्रोत्साहित करती थी। १९२३ में पार्टी की तरफ से सोवियत यूनियन, जहाँ अंतरराष्ट्रीय कम्यूनिस्ट पार्टी का पाँचवाँ सम्मेलन आयोजित था, भेजे गए। वहीं पर १९२५ में स्टालिन से मिले। 'हो' को 'कम्यूनिस्ट अंतरराष्ट्रीय' की ओर से चीन मे क्रांतिकारियों के सगठन तथा हिंदचीन में राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष के लिये भेजा गया था। सन् १९३० में 'कम्यूनिस्ट अंतरराष्ट्रीय' की राय से हिंदचीन के सभी कम्यूनिस्टों को एक साथ मिलाकर 'हिंदचीन' की कम्यूनिस्ट पार्टी तथा १९३३ में 'वियत मिन्ह' नामक सयुक्त मोरचा बनाया। 'हो' १९४५ तक हिंद चीन के कम्यूनिस्ट आंदोलन तथा गुरिल्ला युद्ध के सक्रिय नेता रहे। 'लबे अभियान' और जापान विरोधी युद्ध में भी उपस्थित थे। इस सघर्ष में इन्हें अनेक यातनाएँ सहनी पडी। च्यांग काई शेक की सेना ने इन्हें पकडकर बडी ही अमानवीय दशाओं में एक वर्ष तक कैद रखा जिससे इनकी आँखें अंधी होते होते बचीं। २ सितबर, १९४५ को 'हो' ने वियतनाम (शातिप्रदेश) जनवादी गणराज्य की स्थापना की। फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों ने अंग्रेज साम्राज्यवादियों की मदद से हिंदचीन के पुराने सम्राट् 'बाओदाई' की ओट लेकर फिर से साम्राज्य वापस लेना चाहा। भयकर लडाइयों का दौर प्रारंभ हुआ और आठ वर्षो की खूनी लडाई के पश्चात् फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों को दिएन बियेन फू के पास १९५४ में भयकर मात खानी पडी। तत्पश्चात् जिनेवा समेलन बुलाना स्वीकार किया गया। इसी वर्ष हो-चि मिन्ह वियतनामी जनवादी गणराज्य के राष्ट्रपति नियुक्त हुए। फ्रांसीसियों के हटते ही अमेरिकनों ने दक्षिणी वियतनाम में 'बाओदाई' का तख्ता 'डियेम' नामक प्रधान मत्री के माध्यम से पलटवा कर 'वियतकांग' देशभक्तों के विरुद्ध युद्ध छेड दिया। युद्ध बढता गया। दुनियाँ के सबसे शक्तिशाली अमेरिकी साम्राज्यवाद ने द्वितीय विश्वयुद्ध में यूरोप पर जितने बम गिराए थे, उसके दुगुने बम तथा जहरीली गैसों का प्रयोग किया। तीन करोड की वियतनामी जनता ने अमेरिकी साम्राज्यवादियों के हौसले पस्त कर दिए। मरने के एक दिन पूर्व ३ सितबर, १९६९ ई० को हो-चि मिन्ह ने अपनी जनता से साम्राज्यवादियों को 'टोनकिन' की खाडी मे डुबा देने की बात कही थी।

हो चि मिन्ह का विश्वसाम्राज्यवादियों की जडें उखाडने में महत्वपूर्ण हिस्सा रहा। उनका कथन था वियतनामी मुक्तिसग्राम विश्व-मुक्ति-सग्राम का ही एक हिस्सा है और मेरी जिंदगी विश्व-क्रांति के लिये समर्पित है। [के० ना० त्रि०]

मेगस्थनीज यूनानी सामंत सिल्यूकस ने, जो मध्य एशिया में बहुत सबल सेनापति हो गया था, भारत में फिर राज्यविस्तार की इच्छा से ३०५ ई० पू० भारत पर आक्रमण किया था किंतु उसे सधि करने पर विवश होना पडा था।

सधि के अनुसार मेगस्थनीज नाम का राजदूत चंद्रगुप्त के दरबार में आया था। वह कई वर्षों तक चंद्रगुप्त के दरबार में रहा। उसने जो कुछ भारत में देखा, उसका वर्णन उसने 'इंडिका' नामक पुस्तक में किया है। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र का बहुत ही सुंदर और विस्तृत वर्णन किया है। वह लिखता है कि भारत का सबसे बडा नगर पाटलिपुत्र है। यह नगर गगा और सोन के संगम पर बसा है। इसकी लंबाई साढ़े नौ मील और चौडाई पौने दो मील है। नगर के चारो ओर एक दीवार है जिसमें अनेक फाटक और दुर्ग बने हैं। नगर के अधिकाश मकान लकडी के बने हैं।

मेगस्थनीज ने लिखा है कि सेना के छोटे बडे सैनिकों को राजकोष से नकद वेतन दिया जाता था। सेना के काम और प्रबध में राजा स्वयं दिलचस्पी लेता था। रणक्षेत्रों में वे शिविरों में रहते थे और सेवा और सहायता के लिये राज्य से उन्हें नौकर भी दिए जाते थे।

पाटलिपुत्र पर उसका विस्तृत लेख मिलता है। पाटलिपुत्र को वह समानातर चतुर्भुज नगर कहता है। इस नगर में चारों ओर लकडी की प्राचीर है जिसके भीतर तीर छोडने के स्थान बने हैं। वह कहता है कि इस राजप्रासाद की सुंदरता के आगे ईरानी राजप्रासाद सूसा और इकबतना फीके लगते हैं। उद्यान में देशी तथा विदेशी दोनो प्रकार के वृक्ष लगाए गए हैं। राजा का जीवन बड़ा ही ऐश्वर्यमय है।

मेगस्थनीज ने चंद्रगुप्त के राजप्रासाद का बडा ही सजीव वर्णन किया है। सम्राट् का भवन पाटलिपुत्र के मध्य में स्थित था। भवन चारो ओर सुंदर एवं रमणीक उपवनों तथा उद्यानो से घिरा था।

प्रासाद के इन उद्यानों में लगाने के लिये दूर दूर से वृक्ष मँगाए जाते थे। भवन में मोर पाले जाते थे। भवन के सरोवर में बडी-बडी मछलियाँ पाली जाती थीं। सम्राट् प्रायः अपने भवन में ही रहता था और युद्ध, न्याय तथा आखेट के समय ही बाहर निकलता था। दरबार में अच्छी सजावट होती थी और सोने चाँदी के बर्तनों से आँखो में चकाचौंध पैदा हो जाती थी। राजा राजप्रासाद से सोने की पालकी या हाथी पर बाहर निकलता था। सम्राट् की वर्षगांठ बडे समारोह के साथ मनाई जाती थी। राज्य में शाति और अच्छी व्यवस्था रहती थी। अपराध कम होते थे। प्राय. लोगों के घरों में ताले नहीं बंद होते थे। [शि० प्र०]

रघुवंश (महाकाव्य) समालोचकों ने कालिदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य 'रघुवंश' को माना है। आदि से अंत तक इसमें निपुण कवि का विलक्षण कौशल व्यक्त होता है। दिलीप और सुदक्षिणा के तपोमय जीवन से प्रारंभ इस काव्य में क्रमश रघुवंशी राजाओं की वदान्यता, वीरता, त्याग और तप की एक के बाद एक कहानी उद्घाटित होती

गुजारी आंदोलन शुरु कर दिया गया और सरकार ने खान बंधुओं को आंदोलन का सूत्रधार बनाकर सारे घर को कैद कर सजा दी।

१९३४ ई० में जेल से छूटकर खान बंधु वर्धा में रहने लगे थे। अब्दुल गफ्फार खान को गांधी जी के निकटत्व ने अधिक प्रभावित किया और इस बीच उन्होंने सारे देश का दौरा किया। कांग्रेस के निश्चय के अनुसार १९३९ में प्रांतीय कौंसिलों पर अधिकार प्राप्त हुआ तो सीमा प्रांत में भी कांग्रेस मंत्रिमंडल डा० खान के नेतृत्व में बना लेकिन गफ्फार खान साहब उससे अलग रहकर जनता की सेवा करते रहे। १९४२ के अगस्त में क्रांति के सिलसिले में रिहा हुए। खान अब्दुल गफ्फार खान फिर गिरफ्तार हुए और १९४७ में छूटे लेकिन देश का बटवारा उनको गवारा न था इसलिये पाकिस्तान से इनकी विचारधारा नहीं मिली अत. पाकिस्तान की सरकार में इनका प्रांत शामिल है लेकिन सरहदी गांधी पाकिस्तान से स्वतंत्र 'पख्तूनिस्तान' की बात करते हैं, अतः इन दिनों जब कि वह भारत का दौरा कर रहे हैं, वह कहते हैं—"भारत ने उन्हें भेड़ियों के सामने डाल दिया है तथा भारत से जो आकांक्षा थी, एक भी पूरी न हुई। भारत को इस बात पर बार बार विचार करना चाहिए।" [शि० प्र०]

भावे, आचार्य विनोबा एक महान् समाजसेवी हैं। इनका जन्म कोलाबा जिले के गगोदा नामक ग्राम में ११ सितंबर, सन् १८९५ में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गगोदा ग्राम तथा बडोदा कालेज बडोदा में संपन्न हुई। दस वर्ष की अल्प वय में ही देशसेवा की भावना से इन्होंने अविवाहित जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की और इस व्रत का निर्वाह किया। उन्नीस वर्ष की वय में इन्होंने कालेज जीवन त्याग दिया और संस्कृत अध्ययनार्थ काशी चले आए। उसी समय से परिजनों के मोहबंधन से मुक्त इस महात्मा का जीवन देशसेवा एव दलितोद्धार में समर्पित है। काशी हिंदू विश्वविद्यालय में महात्मा गांधी की ऐतिहासिक वक्तृता से ये अत्यंत प्रभावित हुए। इन्होंने महात्मा गांधी से संपर्क स्थापित किया और सन् १९१५ मे साबरमती आश्रम के सदस्य हो गए। इन्होंने आश्रम के संपूर्ण क्रियाकलाप में मनोयोगपूर्वक सक्रिय भाग लिया। इनकी निष्ठा और कर्तव्यपरायणता से प्रभावित होकर गांधी जी ने वर्धा में स्थापित नवीन आश्रम के संचालन का संपूर्ण उत्तरदायित्व इन्हे सौंप दिया। इन्होंने जिस तत्परता एवं कुशलता से आश्रम की व्यवस्था की वह प्रशंसनीय रही। इन्होंने वर्धा के निकट धाम नदी के तट पर पौनार नामक स्थान पर एक नए आश्रम की स्थापना की। ये लंबी अवधि तक महिला आश्रम (वर्धा) के संचालक रहे। द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका में भारत को घसीटने की ब्रिटिश सरकार की तत्कालीन नीति के विरुद्ध प्रारंभ व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन मे भाग लेने के लिये सन् १९४० में विनोबा भावे को गांधी जी ने अपना प्रथम प्रतिनिधि नामांकित किया। स्वातंत्र्य आंदोलन के सिलसिले में इन्होंने जेलयात्राएँ भी की।

अहिंसा पर आधारित शोषणमुक्त समाज की संरचना हेतु ये सतत प्रयत्नशील हैं। सर्वोदय इनकी समग्र साधना का मूलमंत्र है। भूदान यज्ञ और संपत्तिदान आंदोलन के ये प्रणेता हैं। इस यज्ञ की सफलता के लिये विदेह विनोबा ने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पदयात्राएँ की हैं। पुनीत संकल्प के साथ १ सितंबर, १९५१ से प्रारंभ यह पदयात्रा १९ वर्षों से अविराम गति से चल रही है। सफलता ने सर्वत्र संत की साधना को सहयोग प्रदान किया है। सर्वोदय इनका साध्य और हृदयपरिवर्तन साधन है। अनेक भूस्वामियों का हृदयपरिवर्तन कर ये उनकी अतिरिक्त भूमि भूमिहीन किसान श्रमिकों मे वितरित करने में सफल हुए हैं। भूदान अब ग्रामदान और ग्रामराज्य की स्थिति में पहुँच चुका है जो गांधी जी के रामराज्य की ओर उन्मुख है।

विनोबा भावे ने सन् १९६० में भिंड और मोरेना जिलों के डाकुओं से आतंकित क्षेत्र की यात्रा की। शांति और अहिंसा का यह देवदूत महात्मा बुद्ध की भाँति दस्युओं का हृदयपरिवर्तन करने में सफल हुआ। उन्नीस दुर्दांत डाकुओं ने आत्मसमर्पण कर दिया।

आचार्य भावे सर्वतोभावेन महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी हैं। ये एक कुशल वक्ता, महान् विचारक एवं सत्य के अनन्य साधक हैं। ये जीवन के अवसानकाल में भी महात्मा गांधी के स्वप्नों के भारत के निर्माण मे सतत प्रयत्नशील हैं। इन्हें अंग्रेजी, अरबी, फारसी तथा भारत की संपूर्ण राजभाषाओं का सम्यक् ज्ञान है। इन्होंने सभी धर्मों का गहन अध्ययन किया है। मराठी तथा हिंदी में सत्य, अहिंसा, नैतिक सामाजिक मूल्यों, सर्वोदय एवं ग्रामराज्य से संबंधित अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों का प्रणयन किया है जो समाज और सर्वोदय दर्शन की अमूल्य निधि हैं। भगवद्गीता का मराठी अनुवाद 'गीताई' इनकी अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। [ला० व० पां०]

मिन्ह, हो-चि साम्यवादी विश्व में मार्क्स, ऐंजिल्स, लेनिन, स्टालिन के समानांतर उसी पंक्ति में स्थान ग्रहण करनेवाले हो चि मिन्ह, वियतनाम के राष्ट्रपति हिंदचीन के लेनिन और एशिया के महानतम रहस्यमय व्यक्ति माने जाते रहे हैं। इनका जन्म मध्य वियतनाम के 'न्गे' प्रांत के 'किमलिएन' ग्राम मे एक किसान परिवार में १९ मई, सन् १८९० ई० को हुआ था। उनके जीवन की प्रत्येक दृष्टि साम्यवादियों के लिये सर्वहारा क्रांति तथा राष्ट्रवादियों के लिये विश्व की प्रबलतम साम्राज्यवादी शक्तियों—फ्रांस और अमेरिका—के विरुद्ध संघर्ष की लंबी किंतु शिक्षाप्रद कहानी रही है। इन सभी संग्रामों का प्रेरणास्रोत हो चि मिन्ह के इच्छापत्र के अनुसार मार्क्सवाद, लेनिनवाद और सर्वहारा का अंतरराष्ट्रीयतावाद ही रहा है। यदि लेनिन ने रूस में 'वर्गसंघर्ष' का उदाहरण प्रस्तुत किया तो हो चि मिन्ह ने 'राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष' का उदाहरण वियतनाम के माध्यम से प्रस्तुत किया। उन्होंने स्पष्ट कहा, जिस प्रकार पूँजीवाद का अंतरराष्ट्रीय रूप साम्राज्यवाद है उसी प्रकार वर्गसंघर्ष का अंतरराष्ट्रीय रूप मुक्तिसंघर्ष है।

हो चि मिन्ह जन्म के समय 'न्यूगुयेन सिंह कुंग' के नाम से जाने जाते थे, किंतु १० वर्ष की अवस्था मे इन्हे 'न्यूगुयेन कांट थान्ह' के नाम से पुकारा जाने लगा। इनके पिता न्यूगुयेन मिन्ह सोस को भी राष्ट्रीयता के कारण गरीबी की जिंदगी बितानी पड़ी। उनका देहांत सन् १९३० ई० मे हुआ। इनकी बहन 'थान्ह' को कई वर्षों तक जेल की सजा तथा अंत मे देशनिकाले का दंड दिया गया।

से भयभीत होकर दोस्तमुहम्मद खाँ काबुलनरेश बहुत भयभीत हुआ और रूस तथा ईरान से दोस्ती कर ली। इस बात को ध्यान में रखकर अंग्रेजों ने स्वयं रणजीतसिंह तथा शाहशुजा के साथ एक त्रिगुटसंधि कराई। महाराजा रणजीतसिंह अस्वस्थ हो रहे थे। १८३८ में लकवा का आक्रमण हुआ, यद्यपि उपचार किया गया और अंग्रेज डाक्टरों ने भी इलाज किया, लेकिन २७ जून, १८३९ ई० को उसका प्राणांत हो गया। यह उदारहृदय भी था। काशी-विश्वनाथ मंदिर पर जो स्वर्णपत्र आज दिखाई देता है वह उनकी धार्मिकता तथा उदारता का परिचायक है। उसने दान के लिये ४७ लाख रुपए की संपत्ति अलग कर रखी थी। जगन्नाथमंदिर पर भी वह कोहेनूर हीरा चढ़ाना चाहता था लेकिन उस हीरे को तो विदेश में जाकर छिन्न भिन्न होना था। महाराजा के बाद सिक्खों के आपसी वैमनस्य, राष्ट्रद्रोह तथा अंग्रेजी कूटनीतिज्ञता का जवाब न देने की असमर्थता से सिक्ख राज्य मिट गया। [गि० प्र०]

रसेल, बर्ट्रेंड, लार्ड अंग्रेज दार्शनिक, गणितज्ञ और समाजशास्त्री थे। इनका जन्म ट्रेलेक, वेल्स के प्राचीनतम एवं प्रतिष्ठित रसेल-घराने में १८ मई, सन् १८७२ में हुआ था। तीन वर्ष की अबोधावस्था में ही ये अनाथ हो गए। इनके सर से माता पिता का साया उठ गया। इनके पितामह ने इनका लालन पालन किया। इनकी शिक्षा दीक्षा घर पर ही हुई। इनके अग्रज की मृत्यु के पश्चात् ३५ वर्ष की वय में इन्हें लार्ड की उपाधि प्राप्त हुई। इनका चार बार विवाह हुआ। प्रथम विवाह २२ वर्ष की वय में और अंतिम ८० वर्ष की वय में। प्रारंभ से ही इनकी रुचि गणित और दर्शन की ओर थी, बाद में समाजशास्त्र इनका तीसरा विषय हो गया। इन्होंने ११ वर्ष की अल्प वय में गणित के एक सिद्धांत का अनुसंधान किया था जो इनके जीवन की एक महान् घटना थी। गणित के क्षेत्र में इनकी देन शास्त्रीय थी, जिससे वह बहुत लोकप्रिय नहीं हो सकी, लेकिन महानता निर्विवाद है। ए० एन० ह्वाइटहेड के सहयोग से रचित 'प्रिंसिपिया मैथेमेटिका' अपने ढंग का अपूर्व ग्रंथ है। इन्होंने 'नाभिकी भौतिकी' और 'सापेक्षता' पर भी लिखा है।

बर्ट्रेंड रसेल 'रायल ह्यूमन सोसाइटी' के सदस्य रहे। प्रथम विश्वयुद्ध के समय अपनी शांतिवादी नीतियों के कारण इन्हें जेलयात्रा करनी पड़ी। महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् इन्होंने लेबर पार्टी की सदस्यता ग्रहण कर ली। इन्होंने चीन और रूस की यात्राएँ कीं और रूस यात्रा के पश्चात् 'बोल्शेविज्म' पर एक ग्रंथ की रचना की। ये पेकिंग, शिकागो, हॉरवर्ड और न्यूयार्क के विश्वविद्यालयों में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक रहे। ये ब्रिटेन की 'इंडिया लीग' के अध्यक्ष चुने गए थे। अतः भारत के स्वतंत्रतासंग्राम से भी इनका निकट का संबंध था। अपनी इच्छा के विपरीत ये सदैव किसी न किसी विवाद या आदोलन से संबंधित रहे। वृद्धावस्था में भी ये परमाणु परीक्षण-विरोधी आंदोलनों के सूत्रधार थे। 'विवाह और नैतिकता' नाम की इनकी पुस्तक लंबी अवधि तक विवाद का विषय बनी रही। द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका के फलस्वरूप गणित और दर्शन के अतिरिक्त समाजशास्त्र, राजनीति, शिक्षा एवं नैतिकता संबंधी समस्याओं ने भी इनकी चिंतनधारा को प्रभावित किया। ये विश्वसंघीय सरकार के कट्टर समर्थक थे। इन्होंने पाप की परंपरावादी गलत धारा का खंडन कर आधुनिक युग में पाप के प्रति यथार्थवादी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया।

बर्ट्रेंड रसेल बीसवीं शती के प्रख्यात दार्शनिक, महान् गणितज्ञ और शांति के अग्रदूत थे। विश्व की चिंतनधारा को इतना अधिक प्रभावित करनेवाले ऐसे महापुरुष कभी कदाचित् ही उत्पन्न होते हैं। इन्हें मानवता से प्रेम था, ये जीवनपर्यंत इस युग के पाखंडों और बुराइयों के विरुद्ध संघर्षरत रहे। युद्ध, परमाणविक परीक्षण एवं वर्णभेद का विरोध इनका लक्ष्य था। दक्षिण वियतनाम में अमरीकी सैनिकों की बर्बरता और नरसंहार की जाँच के लिये संयुक्त-राष्ट्रसंघ से अंतरराष्ट्रीय युद्धापराध आयोग के गठन की सबल शब्दों में माँग कर इस महामानव ने विश्वमानवता को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया।

सन् १९५० में इन्हें साहित्य का 'नोबेल' पुरस्कार प्रदान किया गया। इन्होंने ४० ग्रंथों का प्रणयन किया था। 'इंट्रोडक्शन टु मैथेमेटिकल फिलॉसॉफी', 'आउटलाइन ऑव फिलॉसॉफी' तथा 'मैरेज ऐंड मोरैलिटी' इनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

३ फरवरी, १९७० को ९६ वर्ष की वय में इनका देहांत हो गया। [ला० ब० पां०]

राजगोपालाचारी, चक्रवर्ती महान् कूटनीतिज्ञ, कुशल राजनेता, स्वतंत्र पार्टी के संस्थापक एवं भारत के भूतपूर्व एकमात्र भारतीय गवर्नर जनरल हैं। इनका जन्म मद्रास के सलेम जिलांतर्गत प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में सन् १८७९ में हुआ था। ये अत्यंत कुशाग्रबुद्धि छात्र थे। इन्होंने प्रारंभिक शिक्षा बंगलोर में प्राप्तकर प्रेसीडेंसी कालेज, मद्रास, से बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की तथा लॉ-कालेज मद्रास से कानून की स्नातक उपाधि प्राप्त की। अध्ययन समाप्त कर इन्होंने सन् १९०० में सलेम में वकालत प्रारंभ की। शीघ्र ही इनकी गणना उच्च कोटि के वकीलों में होने लगी। महात्मा गांधी के आह्वान पर राजगोपालाचारी ने सन् १९१९ में सत्याग्रह आंदोलन तथा सन् १९२० में असहयोग आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। गांधी जी के बंदीकाल में इन्होंने उनके पत्र 'यंग इंडिया' का संपादन किया। ये सन् १९२१ से सन् १९२२ तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के महासचिव तथा सन् १९२२ से सन् १९४२ तक और पुनः सन् १९४६ से सन् १९४७ तक इसकी कार्यसमिति के सदस्य रहे। 'अखिल भारतीय बुनकर संघ' के स्थापनाकाल से सन् १९३५ तक ये उसकी कार्यकारिणी के सदस्य थे। इसके अतिरिक्त ये 'अखिल भारतीय मद्यनिषेध परिषद्' के सचिव तथा 'दक्षिण भारत हिंदीप्रचार सभा' के उपाध्यक्ष रहे।

सन् १९३६ के महानिर्वाचन के पश्चात् मद्रास राज्य की अंतरिम कांग्रेस सरकार के जुलाई, सन् १९३७ में 'प्रधान मंत्री' नियुक्त हुए। इन्होंने बड़ी ही कुशलतापूर्वक शासनसूत्र का संचालन किया। कांग्रेस के निर्णयानुसार इन्होंने अन्य कांग्रेसी मंत्रियों के साथ नवबर,

है और काव्य की समाप्ति कामुक अग्निवर्ण की विलासिता और उसके अवसान से होती है। दिलीप और सुदक्षिणा का तपःपूत आचरण, वरतंतु के शिष्य कौत्स और रघु का संवाद, इंदुमती-स्वयंवर, अजविलाप, राम और सीता की विमानयात्रा, निर्वासित सीता की तेजस्विता, सप्रमवर्णन, अयोध्या नगरी की शून्यता आदि का चित्र एक के बाद एक उभरता जाता है और पाठक विमुग्ध बना हुआ मनोयोग से उनको देखता जाता है। अनेक कथानकों का एकत्रीकरण होने पर भी इस महाकाव्य में कवि ने उनका एक दूसरे से इस प्रकार समन्वय कर दिया है जिससे उनमें स्वाभाविक प्रवाह का संचार हो गया है। 'रघुवंश' के अनेक नृपतियों की इस ज्योतित नक्षत्रमाला में कवि ने आदिकवि वाल्मीकि के महिमाशाली राम को तेजस्विता और गरिमा प्रदान की है। वर्णनों की सजीवता, आगत प्रसंगों की स्वाभाविकता, शैली का माधुर्य तथा भाव और भाषा की दृष्टि से 'रघुवंश' संस्कृतमहाकाव्यों में अनुपम है।

रघुवंश महाकाव्य की शैली क्लिष्ट अथवा कृत्रिम नहीं, सरल और प्रसादगुणमयी है। अलंकारों का सुरुचिपूर्ण प्रयोग स्वाभाविक एवं सहज सुंदर है। चुने हुए कुछ शब्दों में वर्ण्य विषय की सुंदर झाँकी दिखाने के साथ कवि ने 'रघुवंश' के तेरहवें सर्ग में इष्ट वस्तु के सौंदर्य की पराकाष्ठा दिखलाने की अद्भुत युक्ति का आश्रय लिया है। गंगा और यमुना के संगम की, उनके मिश्रित जल के प्रवाह की छटा का वर्णन करते समय एक के बाद एक उपमाओं की शृंखला उपस्थित करते हुए अंत में कवि ने शिव के शरीर के साथ उसकी शोभा की उपमा दी है और इस प्रकार सौंदर्य को सीमा से निकालकर अनंत के हाथों सौंप दिया —

हे निर्दोष अंगोवाली सीते, यमुना की तरंगों से मिले हुए गंगा के इस प्रवाह को जरा देखो तो सही, जो कहीं कृष्ण सर्पों से अलंकृत और कहीं भस्मांगराग से मंडित भगवान् शिव के शरीर के समान सुंदर प्रतीत हो रहा हो।

कालिदास मुख्यतः कोमल और रमणीय भावों के अभिव्यंजक कवि हैं। इसीलिये प्रकृति का कोमल, मनोरम और मधुर पक्ष उनकी इस कृति में भी अंकित हुआ है। [वि० ना० त्रि०]

रणजीतसिंह का जन्म सन् १७८० ई० में हुआ था। महानसिंह के मरने पर रणजीतसिंह बारह वर्ष की अवस्था में मिस्ल सुकरे चकिया का नेता हुआ। सन् १७९८ ई० में जमान शाह के पंजाब से लौट जाने पर उसने लाहौर पर अधिकार कर लिया। धीरे धीरे सतलज से सिंधु तक, जितनी मिस्लें राज कर रही थीं, सबको उसने अपने वश में कर लिया। सतलज और यमुना के बीच फुलकियाँ मिस्ल के शासक राज्य कर रहे थे। सन् १८०६ ई० में रणजीतसिंह ने इनको भी अपने वश में करना चाहा, परंतु सफल न हुआ।

रणजीतसिंह में सैनिक नेतृत्व के गुण थे। वह दूरदर्शी था। वह साँवले रंग का नाटे कद का मनुष्य था। उसकी एक आँख शीतला के प्रकोप से चली गई थी। परंतु यह होते हुए भी वह तेजस्वी था। इसलिये जब तक वह जीवित था, सभी मिस्लें दबी थीं।

उस समय अंग्रेजों का राज्य यमुना तक पहुँच गया था और फुलकियाँ मिस्ल के राजा अंग्रेजी राज्य के प्रभुत्व को मानने लगे थे। अंग्रेजों ने रणजीतसिंह को इस कार्य से मना किया। रणजीतसिंह ने अंग्रेजों से लड़ना उचित न समझा और संधि कर ली कि सतलज के आगे हम अपना राज्य न बढ़ाएँगे। रणजीतसिंह ने फ्रांसीसी सैनिकों को बुलाकर, उनकी सैनिक कमान में अपनी सेना को विलायती ढंग पर तैयार किया।

अब उसने पंजाब के दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तरी भागों पर आक्रमण करना प्रारंभ किया, और दस वर्ष में मुल्तान, पेशावर और कश्मीर तक अपने राज्य को बढ़ा लिया।

रणजीतसिंह स्वयं कुरूप ही था परंतु सुंदर स्त्रियाँ और सुंदर पुरुष उसे समान रूप से आकृष्ट करते थे और वह ऐसे लोगों से घिरा रहना पसंद करता था।

रणजीतसिंह ने पेशावर को अपने अधिकार में अवश्य कर लिया था, किंतु उस सूबे पर पूर्ण अधिकार करने के लिये उसे कई वर्षों तक कड़ा संघर्ष करना पड़ा था। वह पूरे पंजाब का स्वामी बन चुका; और उसे अंग्रेजों के हस्तक्षेप का सामना नहीं करना पड़ा। परंतु जिस समय अंग्रेजों ने नैपोलियन की सेनाओं के विरुद्ध सिक्खों से सहायता माँगी थी, उन्हें प्राप्त न हुई।

रणजीतसिंह ने सन् १८०८ ई० में अपनी महत्वाकांक्षिणी सास सदाकौर के नाम पेशावर का राज्य परिवर्तित कर दिया था। क्योंकि यह अंग्रेजों की एजेंट महिला थी। रणजीतसिंह ने अपनी कुचक्रप्रिय सास से झगड़ा करके उसे कैद कर लिया था और ह्वदनी के गढ़ को अपने अधिकार में कर लिया था। ब्रिटिश सेना की एक टुकड़ी ने बंदी विधवा सदाकौर को छुड़ाया और अधिकार को वापस दिलाया। ब्रिटिश सेना के साथ रणजीतसिंह किसी प्रकार का झगड़ा नहीं चाहते थे।

अंग्रेजों की तरफ से संधि की शर्तों को भंग करने का आरोप लगाया जा सकता था। इसलिये चुपचाप मौन रहकर उसने तैयारियाँ प्रारंभ की थी फिर भी १८०९ ई० में लार्ड मिंटो से संधि कर ली। यद्यपि इस संधि से महाराज को सिक्खों में बहुत अपमानित होना पड़ा था। उपर्युक्त संधि के कारण पंजाब के अफगानी राज्य तथा अफगानिस्तान को कुछ हद तक आतंकित कर सके थे। १८०२, १८०६ तथा १८१० ई० में मुलतान पर चढ़ाई की और अधिकार कर लिया एवं शाह शुजा से संधि करके अपने यहाँ रखा और उससे एक गिलास पानी के लिये 'कोहेनूर हीरा' प्राप्त किया। १८११ ई० में काबुल के शाह महमूद के आक्रमण की बात सुनकर, और यह जानकार कि महमूद का इरादा काश्मीर के शासक पर आक्रमण का है, उसने काश्मीर पर आक्रमण कर दिया ताकि महमूद को वापस जाना संभव हो जाय और उसकी मित्रता भी इसे मिल जाय। काश्मीर के बाद इसने पेशावर पर १८२२ में चढ़ाई कर दी, यारमुहम्मद खाँ अफगानियों का नेतृत्व करता हुआ बहुत बहादुरी से लड़ा लेकिन अंत में पराजित हुआ। इस युद्ध में सिक्खों का भी बड़ा नुकसान हुआ। १८३८ में पेशावर पर रणजीतसिंह का अधिकार

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन (देखें पृष्ठ ४२८)
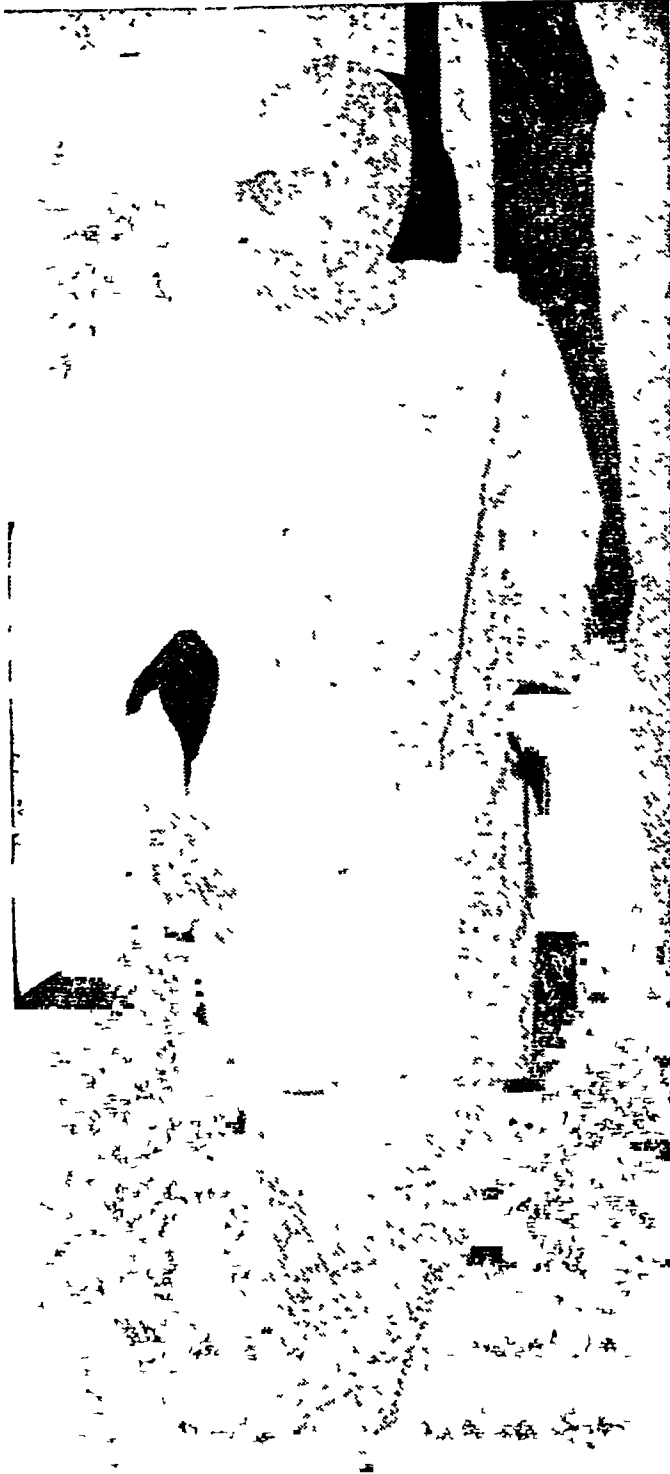
चक्रवर्ती राजगोपालाचारी (देखें पृष्ठ ४२६)

था। ये भारत सरकार एव राज्य सरकारो की अनेक समितियों के सदस्य रहे।

इनकी कृतियों में प्राच्य और पाश्चात्य दोनों विचारधाराओं का समन्वय हुआ है। इनकी उपलब्धियाँ बहुमुखी थी। ये ज्ञान के अत्यधिक विखडन एव विशेषीकरण की प्रवृत्ति को समाज की सर्वांगीण प्रगति के लिये अहितकर मानते थे। इनकी चिंतन-धारा पर भारतीय सस्कृति के आधारभूत मूल्यों का गहन प्रभाव था। इन्होंने लगभग ५० ग्रथो का प्रणयन किया। इनके कतिपय महत्वपूर्ण ग्रथ निम्नलिखित हैं — 'द सोशल स्ट्रक्चर ऑव वैल्यूज', 'द सोशल फक्शन ऑव आर्ट', 'द डायनामिक्स ऑव मॉरल्स', 'द फिलासॉफी ऑव पर्सनालिटी', 'सोशल इकोलॉजी', 'द सिंबालिक लाइफ ऑव मैन', 'द डेस्टिनी ऑव सिविलिजेशन', 'द फिलॉसॉफी ऑव सोशल साइसेज', 'द वननेस ऑव मैनकाइड', 'द होराइजन ऑव मैरेज', 'द फ्लावरिंग ऑव इडियन आर्ट' तथा 'कॉस्मिक आर्ट ऑव इडिया'। इन्होने गीता पर एक भाष्य लिखा था।

सन् १९६८ में ७९ वर्ष की वय मे इस भारतीय समाजशास्त्री की इहलीला समाप्त हो गई। [ला० ब० पां०]

राधाकृष्णन्, डॉ० सर सर्वपल्ली आधुनिक युग के तत्वदर्शी चिंतक; प्राच्य जगत् की दार्शनिक परपरा के योग्यतम व्याख्याता तथा विश्वविख्यात भारतीय दार्शनिक हैं। इनका जन्म ५ सितबर, सन् १८८८ को आध्र प्रदेश के चित्तूर जिले के तिरुतनी नामक ग्राम मे एक मध्यम श्रेणी के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा तिरुपति तथा वेलोर की ईसाई मिशनरियों में हुई। इन्होने सन् १९०९ में मद्रास विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। कुशाग्र बुद्धि एवं अध्यवसाय के फलस्वरूप इन्होंने सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। शैशव काल हिंदुओं के तीर्थस्थलों, तिरुतनी और तिरुपति में माता पिता के सान्निध्य मे व्यतीत कर राधाकृष्णन् धार्मिक विचारों से अनुप्राणित हुए। मिशनरियो द्वारा हिंदू धर्म की अग्राह्य आलोचना ने इनमें हिंदू दर्शन को निकट से परखने की जिज्ञासा उत्पन्न की जिसने कालातर में उन्हें विश्व का महानतम दार्शनिक बना दिया।

छात्रजीवन समाप्त करने के पश्चात् डा० राधाकृष्णन् सन् १९०९ में मद्रास के प्रेसीडेंसी कालेज में दर्शन के अध्यापक नियुक्त हुए और शीघ्र ही भारतीय विश्वविद्यालयों में पर्याप्त ख्याति अर्जित कर ली। अपनी अप्रतिम प्रतिभा और अध्यापनकुशलता के फलस्वरूप ये सन् १९१८ में ३० वर्ष की अल्प वय में ही मैसूर विश्वविद्यालय में दर्शन-विभाग के आचार्यपद पर नियुक्त हुए और तीन वर्ष पश्चात् कलकत्ता विश्वविद्यालय में इन्हे दर्शन की 'चेयर' प्रदान की गई। यह इनके शिक्षकजीवन की महान् गौरवास्पद सफलता थी। भारत-विख्यात कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित पद तथा अतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त आध्यात्मिक पत्रों में प्रकाशित इनके महत्वपूर्ण दार्शनिक निबधों ने इन्हें दर्शन के क्षेत्र में अतरराष्ट्रीय ख्याति प्रदान की। सन् १९२६ में इन्होंने हारवर्ड विश्वविद्यालय में आयोजित दर्शन कांग्रेस में भारत का प्रतिनिधित्व किया। वहाँ इन्होंने भारतीय अध्यात्म-दर्शन की बडी ही पांडित्यपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की और आधुनिक सभ्यता का विशद विश्लेषण किया। उनकी बौद्धिक प्रखरता और आध्यात्मिक ज्ञान की प्रशसा हुई। इस व्याख्यानमाला से इनकी विश्वव्यापी ख्याति का महाद्वार खुल गया। इसके पश्चात् अन्यान्य देशो में इनकी व्याख्यानमालाएँ आयोजित की गई और सर्वत्र महान् दार्शनिक और अध्यात्मवादी के रूप मे इन्हे समान प्रदान किया गया।

डा० राधाकृष्णन् कई विश्वविख्यात सस्थाओं के प्रतिष्ठित पदों पर आसीन रहे हैं। सन् १९३६ में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्राच्य आचार एव धर्म के 'स्पाल्डिंग प्रोफेसर' नियुक्त हुए। ये, आक्सफोर्ड में ऑल सोल्स कालेज के सदस्य तथा बगाल की 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी' के 'आनरेरी' सदस्य रहे हैं। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों ने इन्हे समानित उपाधियाँ प्रदान की हैं। सन् १९३० में वाराणसी मे आयोजित ऑल एशिया एजुकेशनल कांफ्रेस के ये सभापति थे। सन् १९३१ में ये आध्र विश्वविद्यालय के उपकुलपति नियुक्त हुए। बाद मे डा० राधाकृष्णन् काशी हिंदू विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति रहे। सन् १९४६ से सन् १९५० तक इन्होंने यूनेस्को में भारतीय प्रतिनिधि-मडल का नेतृत्व किया तथा सन् १९४८ में ये यूनेस्को के अधिशासी-मडल के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। डा० राधाकृष्णन् सन् १९५० में कलकत्ता में आयोजित भारतीय दर्शन कांग्रेस के रजत जयती-अधिवेशन के सभापति रहे। सन् १९४८ में भारत सरकार द्वारा नियुक्त 'विश्वविद्यालय आयोग' के ये अध्यक्ष थे। इस आयोग ने विश्वविद्यालय शिक्षासबधी अपने विशद प्रतिवेदन मे शिक्षा का नवीन स्वरूप निर्मित करने के लिये व्यापक सुझाव प्रस्तुत किए। ये भारतीय सविधान सभा के भी सदस्य रहे। सन् १९४९ में ये सोवियत सघ में भारत के राजदूत नियुक्त हुए। अपने चार वर्षों के कार्यकाल में इन्होने भारत-रूस-मैत्री को सुदृढ किया, जो भारत की विदेश-नीति की महान् उपलब्धि है।

राधाकृष्णन् सन् १९५२ में भारतीय गणतत्र के प्रथम उपराष्ट्र-पति निर्वाचित हुए और इस समाननीय पद की गरिमा का दस वर्षों तक कुशलतापूवक निर्वाह किया। इस अवधि में इन्होंने अनेक देशो की सद्भावना यात्राएँ की तथा भारत राष्ट्र के उपराष्ट्रपति और अध्यात्म तथा नैसर्गिक तत्वो के व्याख्याता के रूप में ख्याति के शिखर पर पहुँच गए। सन् १९५४ मे तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेंद्र प्रसाद ने इन्हें राष्ट्र की सर्वोच्च समानित उपाधि 'भारतरत्न' से विभूषित किया। राज्यसभा के अध्यक्ष के रूप में इन्होंने जिस न्यायपरता, राजनीतिक कुशलता एवं प्रशासनिक क्षमता का परिचय दिया वह अनुकरणीय है। सन् १९६२ में ये भारतीय गणराज्य के द्वितीय राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। भौतिक प्रगति के इस युग में दार्शनिक द्वारा शासन-सूत्र-सचालन की कणाद, कपिल और कौटिल्य की परंपरा के ये प्रतीक बन गए। दार्शनिक के नृपति बनने का प्लेटो का स्वप्न साकार हुआ। अपने पाँच वर्षों के कार्यकाल में इन्होंने अपने विशद अनुभव, विलक्षण प्रतिभा तथा प्रशासनिक

सन् १९३९ में प्रधान मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। जुलाई, सन् १९४० में अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की पूना मे आयोजित बैठक में इन्होने अविलब अतरिम केंद्रीय सरकार के गठन की स्वीकृति प्राप्त होने की स्थिति मे ब्रिटिश सरकार की द्वितीय महायुद्ध की रणनीति मे सहयोग प्रदान करने पर बल दिया और तदनुरूप प्रस्ताव स्वीकृत कराने में सफल हुए। ४ दिसबर, सन् १९४० को ये भारत अधिनियम के अतर्गत बदी बना लिए गए और इन्हे एक वर्ष का कारावास दड दिया गया। इन्होने विभिन्न राष्ट्रीय आदोलनो के अवसर पर पाँच बार जेलयात्राएँ की। काग्रेस के वर्धा अधिवेशन के पश्चात् आनंदभवन, इलाहाबाद मे आयोजित कार्यसमिति की बैठक में इन्होने समिति के मुसलिम लीग तथा ब्रिटिश सरकार के प्रति अन्य सदस्यो की नीति से सहमत न होने के कारण कार्यसमिति की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। इनकी उस समय की नीतियो के कारण इनकी कटु आलोचनाएँ हुई और कार्यसमिति से त्यागपत्र देने के लिये विवश किया गया। ये अपनी नीतियो पर अटल रहे और सहज भाव से त्यागपत्र दे दिया। सन् १९४१ से सन् १९४६ तक ये देश के राजनीतिक इतिहास में सर्वाधिक अपमानित व्यक्ति रहे। इस धीर गभीर राजनीतिज्ञ ने कभी संयम नही खोया। जिन नीतियो को इनकी बुद्धि उचित मानती थी उनका अन्यो के विरोध या निंदा के भयवश परित्याग नही किया। यह इनके स्वभाव की विशिष्टता है।

सितबर, सन् १९४४ में गाधी जिन्ना वार्ता के समय राजगोपालाचारी गाधी जी के कूटनीतिक सहायक रहे। जुलाई, सन् १९४६ में ये पुनः काग्रेस कार्यसमिति के सदस्य बनाए गए। ये सितबर, १९४६ से १५ अगस्त १९४७ तक केंद्रीय मत्रिमडल के सदस्य रहे तथा भिन्न-भिन्न अवधि तक उद्योग तथा आपूर्ति, शिक्षा और वित्त विभाग का कार्यभार वहन किया। स्वतत्रताप्राप्ति के पश्चात् अगस्त, सन् १९४७ मे ये पश्चिम बगाल के राज्यपाल नियुक्त हुए और २० जून, सन् १९४८ तक इस पद पर आसीन रहे। नवबर, सन् १९४७ में तत्कालीन वॉयसराय लार्ड माउटबेटन के अवकाशकाल मे यह भारत के कार्यकारी वॉयसराय रहे। २१ जून, सन् १९४८ को लार्ड माउंटबेटन के पदमुक्त होने पर परिपक्व बुद्धि, सूक्ष्म दृष्टि एव विस्तृत अनुभवयुक्त इस महान् राजनीतिज्ञ ने भारतराष्ट्र के गवनर जनरल का पद ग्रहण किया। इन्होंने २६ जनवरी, सन् १९५० को भारत के पूर्ण गणतत्र घोषित होने तक गवर्नर जनरल के पद की गरिमा का बड़ी ही कुशलतापूर्वक निर्वाह किया।

गवर्नर जनरल का पद समाप्त होने के पश्चात् मई, सन् १९५० से दिसंबर, सन् १९५० तक राजा जी केंद्रीय मत्रिमंडल में निर्विभागीय मत्री रहे तथा जनवरी, सन् १९५१ से नवबर, सन् १९५१ तक केंद्रीय गृहमत्री पद का कार्यसचालन किया। प्रथम महानिर्वाचन के पश्चात् ये मद्रास के मुख्य मत्री निर्वाचित हुए और इन्होने सन् १९५४ तक सफलतापूर्वक शासनसूत्र संभाला। शासन से पृथक् होने के पश्चात् इन्होने स्वतत्र पार्टी की स्थापना की जिसे इनके कूटनीतिक चमत्कार ने शीघ्र ही संसद् में द्वितीय स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया।

राजा जी सन् १९५५ में प्रथम बार भारत के सर्वोच्च अलंकरण 'भारतरत्न' से विभूषित होनेवाली विभूतियो में हैं। चमत्कारपूर्ण बुद्धि, दभहीन स्वभाव एव विश्लेषण की सूक्ष्म प्रतिभा इनके व्यक्तित्व की विशिष्टताएँ हैं। कूटनीति इनके संघर्षशील जीवन का प्रमुख आयुध है। ९० वर्ष की वय में भी इनकी क्रियाशीलता विलक्षण है। इनका महनीय व्यक्तित्व राष्ट्र का गौरव है।

राजगोपालाचारी ने तमिल तथा अंग्रेजी में अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथो का प्रणयन किया है। तमिल भाषा मे इन्होने सुकरात, मॉर्कस ऑरेलियस, भगवद्गीता, महाभारत तथा उपनिषदो पर ग्रथो तथा लघु कथाओं की रचना की है। अंग्रेजी मे 'महाभारत', 'रामायण', 'भगवद्गीता' 'उपनिषद् ऐंड हिंदुइज्म', डॉक्ट्रिन ऐंड वे ऑव लाइफ' आदि ग्रथ प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त इन्होने एक आहिविशन मैनुअल तथा कई पुस्तिकाएँ लिखी है। [ला० व० पा०]

राधाकमल मुखर्जी, डॉ० भारत मे आधुनिक समाजशास्त्र के प्रतिष्ठापक विद्वान् थे। ये क्षेत्रीय समाजशास्त्र, संस्कृति एव सभ्यता के समाजशास्त्र, कला समाजशास्त्र तथा मूल्यो के समाजशास्त्र के अध्ययन के विश्व के कुछ गण्यमान प्रणेताओं में से थे। इनका जन्म पश्चिमी बगाल के मुर्शिदाबाद जिले के बहरामपुर नामक ग्राम मे एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार मे ७ दिसबर, सन् १८८९ को हुआ था। इन्होने प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ता से शिक्षा प्राप्त की तथा सन् १९२० मे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इन्हे पी-एच० डी० की उपाधि से विभूषित किया। ये सन् १९१५ से १९१७ तक लाहौर मे एक कालेज के प्रधानाचार्य तथा सन् १९१९ से १९२१ तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में अध्यापक रहे। सन् १९२१ में इनकी नियुक्ति लखनऊ विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र के प्राध्यापक एव अध्यक्ष पद पर हुई। इन्होने सन् १९५२ मे इस पद से अवकाश ग्रहण किया। ये सन् १९५५ से १९५७ तक लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा जीवन के अत तक इस विश्वविद्यालय के 'जे० के० इस्टीट्यूट ऑव सोशियालॉजी ऐंड ह्यूमन रिलेशस' के सचालक रहे।

यूरोप तथा अमरीका के लगभग सभी प्रमुख विश्वविद्यालयो मे डॉ० मुखर्जी की व्याख्यानमालाएँ आयोजित की गई। ये काशीविद्यापीठ के 'एमेरिटस प्रोफेसर' थे। सन् १९५५ में लदन के विख्यात प्रकाशनसस्थान मैकमिलन ने इनके सम्मान में एक अभिनदनग्रथ प्रकाशित किया जिसमें विश्व के आधुनिक युग के अनेक शीर्षस्थ समाजशास्त्रियो, दार्शनिको, मनोवैज्ञानिको, अर्थशास्त्रियो एवं कलामर्मज्ञो ने विशेष लेख लिखकर डॉ० मुखर्जी का अभिनदन किया। अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, एवं सौदर्यशास्त्र मे इनकी गहरी पैठ थी। ये महान् कलापारखी थे। भारतीय कला के प्रति इन्हे विशेष अनुराग था। ये कई वर्ष लखनऊ के प्रख्यात भातखडे सगीत महाविद्यालय की प्रबधसमिति के अध्यक्ष रहे। ये उत्तर प्रदेश ललित कला अकादमी के भी अध्यक्ष थे। इन्होने 'विश्व-आहार-सगठन' तथा 'अंतरराष्ट्रीय श्रमसगठन' में भारत का प्रतिनिधित्व किया

१५ अगस्त, सन् १९४७ को उन्हें उत्तर प्रदेश का राज्यपाल नियुक्त किया गया पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। प्रदेश की राजनीति में ही रहना अधिक उपयुक्त समझा। वे बगाल के स्वास्थ्य-मंत्री नियुक्त हुए। सन् १९४८ में डा० प्रफुल्लचद्र घोष के त्यागपत्र देने पर प्रदेश के मुख्य मंत्री निर्वाचित हुए और जीवन पर्यंत इस पद पर बने रहे। विभाजन से त्रस्त तथा शरणार्थी समस्या से ग्रस्त समस्याप्रधान प्रदेश के शासन के सफल सचालन में उन्होंने अपूर्व राजनीतिक कुशलता एव दूरदर्शिता का परिचय दिया। उनके जीवन-काल में वामपथी अपने गढ बगाल में सदैव विफलमनोरथ रहे। बगाल के औद्योगिक विकास के लिये वे सतत प्रयत्नशील रहे। दामोदर घाटी निगम और इस्पात नगरी दुर्गापुर बगाल को डाक्टर राय की महती देन हैं।

३५ वर्ष की यौवनावस्था मे ही स्वेच्छया ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाली माँ अघोरकामिनी राय के सुपुत्र डाक्टर विधानचद्र राय आजीवन अविवाहित रहे। उनमें कार्य करने की अद्भुत क्षमता, उत्साह और शक्ति थी। वे निष्काम कर्मयोगी थे। उनकी महत्वाकाक्षी और समत्व प्रवृत्ति के कारण उनमें ८० वर्ष की वय में भी युवको का सा साहस और उत्साह बना रहा। रोगी की नाडी की भाँति ही उन्हें देश की नाडी का भी ज्ञान था। राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी बहुमुखी सेवाएँ थी। देश के औद्योगिक विकास, चिकित्साशास्त्र मे महत्वपूर्ण अनुसधान कार्य तथा शिक्षा की उन्नति में उनका प्रमुख कृतित्व था। सघर्षमय जीवन को उनकी राजनीति और चिकित्सा के क्षेत्र में महान् उपलब्धियो एव देश को प्रदत्त महती सेवाओं के लिये उन्हें सन् १९६१ में राष्ट्र के सर्वोत्तम अलकरण 'भारतरत्न' से विभूषित किया गया। डाक्टर राय बगाल प्रदेश काग्रेस के प्राण और कागेस कार्यसमिति के प्रभावशाली सदस्य रहे। राजर्षि टडन और प० जवाहरलाल नेहरू के मध्य तथा बाद में नेहरू जी और श्री रफी अहमद किदवई के मध्य समझौता कराने में आपका प्रमुख हाथ रहा।

भगवान् बुद्ध की भाँति डाक्टर विधानचद्र राय का स्वर्गवास उनके जन्म दिवस १ जुलाई को सन् १९६२ में हुआ।

[ला० व० पां०]

लक्ष्मण सिंह, राजा भारतेंदु हरिश्चद्र युग से पूर्व की हिंदी गद्य-शैली के प्रमुख विधायक थे। इनका जन्म आगरा के वजीरपुरा नामक स्थान में ९ अक्तूबर, १८२६ ई० को हुआ था और मृत्यु १४ जुलाई, १८९६ ई० को हुई। १३ वर्ष की अवस्था तक आप घर पर ही सस्कृत और उर्दू की शिक्षा ग्रहण करते रहे, और सन् १८३९ में अग्रेजी पढने के लिये आगरा कालेज में प्रविष्ट हुए। कालेज की शिक्षा समाप्त करते ही पश्चिमोत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेंट गवर्नर के कार्यालय में अनुवादक के पद पर नियुक्त हुए। आपने बडी योग्यतापूर्वक कार्य किया और १८५५ में इटावा के तहसीलदार नियुक्त हुए। सन् १८५७ के विद्रोह मे आपने अग्रेजों की भरपूर सहायता की और अग्रेजो ने उन्हें पुरस्कारस्वरूप डिप्टीकलक्टरी का पद प्रदान किया। १८७० ई० में राजभक्ति के परिणामस्वरूप लक्ष्मण सिंह जी को 'राजा' की उपाधि से संमानित किया। अंग्रेज सरकार की सेवा में रहते हुए भी लक्ष्मण सिंह का साहित्यानुराग जीवित रहा। सन् १८६१ में इन्होंने आगरा से 'प्रजाहितैषी' नामक पत्र निकाला। सन् १८६३ में महाकवि कालिदास की अमर कृति अभिज्ञान शाकुंतलम् का हिंदी अनुवाद 'शकुतला नाटक' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें हिंदी की खडी बोली का जो नमूना आपने प्रस्तुत किया उसे देखकर लोग चकित रह गए। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने अपनी 'गुटका' मे इस रचना को स्थान दिया। उस समय के प्रसिद्ध हिंदीप्रेमी फ्रेडरिक पिन्काट उनकी भाषा और शैली से बहुत प्रभावित हुए और १८७५ में इसे इग्लैंड में प्रकाशित कराया। इस कृति से लक्ष्मण सिंह जी को पर्याप्त ख्याति मिली और इसे इडियन सिविल सर्विस की परीक्षा में पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकार किया गया। इससे लेखक को धन और समान दोनों मिले। इस समान से राजा साहब को अधिक प्रोत्साहन मिला और उन्होने १८७७ में कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य का हिंदी अनुवाद किया और इसकी भूमिका में अपनी भाषासबंधी नीति को स्पष्ट करते हुए कहा —

'हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी न्यारी हैं। हिंदी इस देश के हिंदू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमानो और फारसी पढ़े हुए हिंदुओं की बोलचाल है। हिंदी में सस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी फारसी के परंतु कुछ आवश्यक नही है कि अरबी फारसी के शब्दों के बिना हिंदी न बोली जाय और न हम उस भाषा को हिंदी कहते हैं, जिसमे अरबी फारसी के शब्द भरे हो।

सन् १८८१ ई० में आपका 'मेघदूत' के पूर्वार्ध और १८८३ ई० में उत्तरार्ध का पद्यानुवाद प्रकाशित हुआ जिसमें — चौपाई, दोहा, सोरठा, शिखरिणी, सवैया, छप्पय, कुडलिया और घनाक्षरी छदो का प्रयोग किया गया है। इस पुस्तक में अवधी और ब्रजभाषा, दोनों के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यह अपने ढग का अनूठा प्रयोग है।

आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के 'फेलो' और 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' के सदस्य रहे। सन् १८८८ ई० मे सरकार की सेवा से मुक्त होने पर आप आगरा की चुगी के वाइस चेयरमैन हुए और आजीवन इस पद पर बने रहे।

अनुवादक के रूप में राजा लक्ष्मण सिंह को सर्वाधिक सफलता मिली। आप शब्द प्रतिशब्द के अनुवाद को उचित मानते थे, यहाँ तक कि विभक्तिप्रयोग और पदविन्यास भी संस्कृत की पद्धति पर ही रहते थे। राजा साहब के अनुवादों की सफलता का रहस्य भाषा की सरलता और भावव्यजना की स्पष्टता है। उनकी टकसाली भाषा का प्रभाव उस समय के सभी लोगों पर पडा और तत्कालीन सभी विद्वान् उनके अनुवाद से प्रभावित हुए। [रा० मि०]

वर्मा, रामचद्र (१८९०-१९६९ ई०) इनका जन्म काशी के एक समानित खत्री परिवार में हुआ। वर्मा जी की पाठशालीय शिक्षा साधारण ही थी किंतु अपने विद्याप्रेम के कारण इन्होंने विद्वानों के ससर्ग तथा स्वाध्याय द्वारा हिंदी के अतिरिक्त उर्दू, फारसी, मराठी, बँगला, गुजराती, अग्रेजी आदि कई भाषाओं का अच्छा

कुशलता से राष्ट्रपति पद की प्रतिष्ठा की श्रीवृद्धि की। ये अपनी अलौकिक वाणी, आध्यात्मिक उपदेशों एवं परिपक्व राजनीतिक सलाहों द्वारा सदैव जनता एवं सरकार का मार्गदर्शन करते रहे।

राष्ट्रपति पद से अवकाश प्राप्त कर डा० राधाकृष्णन् दर्शन के अनुशीलन एवं सर्जन में रत हैं। प्राच्य एवं पाश्चात्य जगत् के आध्यात्मिक मूल्यों में समन्वय का सूत्रपात करनेवाला यह मनीषी अर्ध शताब्दी से अधिक अवधि से भारतीय जीवनदर्शन एव आध्यात्मिक उपलब्धियों की महत्ता निर्दशित करता चला आ रहा है। इस भौतिकवादी युग में ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक की वह आध्यात्मिक परंपरा, जिससे जीवन का दिव्य संदेश संपुटित है, आज के दिग्भ्रांत मनुष्य के संमुख रखकर डा० राधाकृष्णन् उसको आशा का संदेश सुनाते हुए एक ऐसे आत्मिक धर्म के उदय की घोषणा करते हैं जो मानवता को पूर्णता की ओर अग्रसर करने का मार्ग प्रशस्त करेगा।

डा० राधाकृष्णन् ने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया है जो दर्शन-शास्त्र की अमूल्य निधि हैं। इनके कतिपय प्रमुख ग्रंथ 'वेदांत के आचरण', 'मनोविज्ञान के तत्व', 'हिंदुओं का जीवनदर्शन', 'ठाकुर का दर्शन', 'धर्म और समाज' तथा 'भारतीय दर्शन' हैं।

[ला० व० पा०]

राय, डाक्टर विधानचंद्र : बंगाल के मुख्य मंत्री एवं ख्यातिप्राप्त चिकित्सक थे। इनका जन्म १ जुलाई, सन् १८८२ को पटना के एक प्रवासी बंगाली परिवार में हुआ था। मातापिता के ब्रह्मसमाजी होने से डाक्टर राय पर ब्रह्मसमाज का बाल्यावस्था से ही अमिट प्रभाव पड़ा था। उनके पिता प्रकाशचंद्र राय डिप्टी मजिस्ट्रेट थे, पर अपनी दानशीलता एवं धार्मिक वृत्ति के कारण कभी अर्थसंचय न कर सके। अतः विधानचंद्र राय का प्रारंभिक जीवन अभावों के मध्य ही बीता। बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर वे सन् १९०१ में कलकत्ता चले गए। वहाँ से उन्होंने एम० डी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्हें अपने अध्ययन का व्ययभार स्वयं वहन करना पड़ता था। योग्यता-छात्रवृत्ति के अतिरिक्त अस्पताल में नर्स का कार्य करके वे अपना निर्वाह करते थे। अर्थाभाव के कारण डाक्टर विधानचंद्र राय ने कलकत्ता के अपने पाँच वर्ष के अध्ययनकाल में पाँच रुपए मूल्य की मात्र एक पुस्तक खरीदी थी। मेधावी इतने थे कि एल० एम० पी० के बाद एम० डी० परीक्षा दो वर्षों की अल्पावधि में उत्तीर्ण कर कीर्तिमान स्थापित किया। फिर उच्च अध्ययन के निमित्त इंग्लैंड गए। विद्रोही बंगाल का निवासी होने के कारण प्रवेश के लिये उनका आवेदनपत्र अनेक बार अस्वीकृत हुआ। बड़ी कठिनाई से वे प्रवेश पा सके। दो वर्षों में ही उन्होंने एम० आर० सी० पी० तथा एफ० आर० सी० एस० परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर ली। कष्टमय एवं साधनामय विद्यार्थीजीवन की नींव पर ही उनके महान् व्यक्तित्व का निर्माण हुआ।

स्वदेश लौटने के पश्चात् डाक्टर राय ने सियालदह में अपना निजी चिकित्सालय खोला और सरकारी नौकरी भी कर ली। लेकिन अपने इस सीमित जीवनक्रम से वे संतुष्ट नहीं थे। सन् १९२३ में वे सर सुरेंद्रनाथ बनर्जी जैसे दिग्गज राजनीतिज्ञ और तत्कालीन मंत्री के विरुद्ध बंगाल-विधान परिषद् के चुनाव में खड़े हुए और स्वराज्य पार्टी की सहायता से उन्हें पराजित करने में सफल हुए। यहीं से इनका राजनीति में प्रवेश हुआ। डाक्टर राय देशबंधु चित्तरंजन दास के प्रमुख सहायक बने और अल्पावधि में ही उन्होंने बंगाल की राजनीति में प्रमुख स्थान बना लिया। सन् १९२८ में श्री मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन की स्वागतसमिति के वे महामंत्री थे। डा० राय राजनीति में उग्र राष्ट्रवादी नहीं वरन् मध्यममार्गी थे। लेकिन सुभाषचंद्र बोस और यतींद्रमोहन सेनगुप्त की राजनीतिक प्रतिस्पर्धा में वे सुभाष बाबू के साथ थे। वे विधानसभाओं के माध्यम से राष्ट्रीय हितों के लिये संघर्ष करने में विश्वास करते थे। इसीलिये उन्होंने 'गवर्नमेंट ऑव इंडिया ऐक्ट' के बनने के बाद स्वराज्य पार्टी को पुन: सक्रिय करने का प्रयास किया। सन् १९३४ में डाक्टर अंसारी की अध्यक्षता में गठित पार्लमेंटरी बोर्ड के डा० राय प्रथम महामंत्री बनाए गए। महानिर्वाचन में कांग्रेस देश के सात प्रदेशों में शासनारूढ हुई। यह उनके महामंत्रित्व की महान् सफलता थी।

विश्व के डाक्टरों में डाक्टर राय का प्रमुख स्थान था। प्रारंभ में देश में उन्होंने अखिल भारतीय ख्याति पं० मोतीलाल नेहरू, महात्मा गांधी प्रभृति नेताओं के चिकित्सक के रूप में ही अर्जित की। वे रोगी का चेहरा देखकर ही रोग का निदान और उपचार बता देते थे। अपनी मौलिक योग्यता के कारण वे सन् १९०९ में 'रॉयल सोसायटी ऑव मेडिसिन', सन् १९२५ में 'रॉयल सोसायटी ऑव ट्रापिकल मेडिसिन' तथा १९४० में 'अमरीकन सोसायटी ऑव चेस्ट फिजीशियन' के फेलो चुने गए। डा० राय ने सन् १९२३ में 'यादवपुर राजयक्ष्मा अस्पताल' की स्थापना की तथा 'चित्तरंजन सेवासदन' की स्थापना में भी उनका प्रमुख हाथ था। कारमाइकेल मेडिकल कालेज को वर्तमान विकसित स्वरूप प्रदान करने का श्रेय डा० राय को ही है। वे इस कालेज के अध्यक्ष एवं जीवन पर्यंत 'प्रोफेसर ऑव मेडिसिन' रहे। कलकत्ता एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालयों ने डा० राय को डी० एस-सी० की संमानित उपाधि प्रदान की थी। वे सन् १९३९ से ४५ तक 'ऑल इंडिया मेडिकल काउंसिल' के अध्यक्ष रहे। इसके अतिरिक्त वे 'कलकत्ता मेडिकल क्लब', 'इंडियन मेडिकल असोसिएशन,' 'जादवपुर टेक्निकल कालेज', 'राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्', भारत सरकार के 'हायर इंस्टीट्यूट ऑव टेक्नालाजी', 'ऑल इंडिया बोर्ड ऑव बायोफिजिक्स' तथा यादवपुर विश्वविद्यालय के अध्यक्ष एवं अन्यान्य राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं के सदस्य रहे। चिकित्सक के रूप में उन्होंने पर्याप्त यश एवं धन अर्जित किया और लोकहित के कार्यों में उदारतापूर्वक मुक्तहस्त दान दिया। बंगाल के अकाल के समय आपके द्वारा की गई जनता की सेवाएँ अविस्मरणीय हैं।

डाक्टर विधानचंद्र राय वर्षों तक कलकत्ता कारपोरेशन के सदस्य रहे तथा अपनी कार्यकुशलता के कारण दो बार मेयर चुने गए। उन्होंने कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य के रूप में सविनय अवज्ञा आंदोलन में सन् १९३० और १९३२ में जेलयात्रा की। वे सन् १९४२ से सन् १९४४ तक कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे तथा विश्वविद्यालयों की समस्याओं के समाधान में सदैव सक्रिय योग देते रहे।

या कृतियों की वस्तुपरक आलोचनाएँ प्रस्तुत कीं। वे भाषा को साध्य न मानकर साधन मानते थे। वाजपेयी जी ने अनेक आलोचनात्मक ग्रंथों की रचना की है जिनमें प्रमुख हैं — जयशंकर प्रसाद, आधुनिक साहित्य, हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी, नया साहित्य नए प्रश्न, साहित्य एक अनुशीलन, प्रेमचंद . एक साहित्यिक विवेचन, प्रकीर्णिका, महाकवि सूरदास, महाकवि निराला। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक ग्रंथों का संपादन किया है। इन संपादित ग्रंथों की भूमिका मात्र से उनकी सूक्ष्म एवं तार्किक दृष्टि का सहज ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है। समग्रत छायावाद युग आचार्य वाजपेयी के समग्र व्यक्तित्व की संश्लिष्टि है, उसमें उनकी क्रांतदर्शी प्रज्ञा तथा अतलभेदिनी अंतर्दृष्टि विद्यमान है। [रा० कु० सि०]

विश्वकोश का अर्थ है विश्व के समस्त ज्ञान का भांडार। अत. विश्वकोश वह कृति है जिसमें ज्ञान की सभी शाखाओं का सन्निवेश होता है। इसमें वर्णानुक्रमिक रूप में व्यवस्थित अन्यान्य विषयों पर संक्षिप्त किंतु तथ्यपूर्ण निबंधों का संकलन रहता है। यह संसार के समस्त सिद्धांतों की पाठ्यसामग्री है। विश्वकोश अंग्रेजी शब्द 'इनसाइक्लोपीडिया' का समानार्थी है, जो ग्रीक शब्द इनसाइक्लियॉस (एन=ए सर्किल तथा पीडिया=एजुकेशन) से निर्मित हुआ है। इसका अर्थ शिक्षा की परिधि अर्थात् निर्देश का सामान्य पाठ्यविषय है।

विश्वकोश का उद्देश्य संपूर्ण विश्व में विकीर्ण कला एवं विज्ञान के समस्त ज्ञान को संकलित कर उसे व्यवस्थित रूप में सामान्य जन के उपयोगार्थ उपस्थित करना तथा भविष्य के लिये सुरक्षित रखना है। इसमें समाविष्ट भूतकाल की ज्ञानविज्ञान की उपलब्धियाँ मानव सभ्यता के विकास के लिये साधन प्रस्तुत करती हैं। यह ज्ञानराशि मनुष्य तथा समाज के कार्यव्यापार की संचित पूँजी होती है। आधुनिक शिक्षा के विश्वपर्यवसायी स्वरूप ने शिक्षार्थियों एवं ज्ञानार्थियों के लिये संदर्भग्रंथों का व्यवहार अनिवार्य बना दिया है। विश्वकोश में संपूर्ण संदर्भों का सार निहित होता है इसलिये आधुनिक युग में इसकी उपयोगिता असीमित हो गई है। इसकी सर्वाधिक उपादेयता की प्रथम अनिवार्यता इसकी बोधगम्यता है। इसमें संकलित जटिलतम विषय से संबंधित निबंध भी इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि वह सामान्य पाठक की क्षमता एवं उसके बौद्धिक स्तर के उपयुक्त तथा बिना किसी प्रकार की सहायता के बोधगम्य हो जाता है। उत्तम विश्वकोश ज्ञान के मानवीयकरण का माध्यम है।

प्राचीन अथवा मध्ययुगीन निबंधकारों द्वारा विश्वकोश (इनसाइक्लोपीडिया) शब्द उनकी कृतियों के नामकरण में प्रयुक्त नहीं होता था पर उनका स्वरूप विश्वकोशीय ही था। इनकी विशिष्टता यह थी कि ये लेखकविशेष की कृति थे। अत ये वस्तुपरक कम, व्यक्तिपरक अधिक थे तथा लेखक के ज्ञान, क्षमता एवं अभिरुचि द्वारा सीमित होते थे। विषयों के प्रस्तुतीकरण और व्याख्या पर उनके व्यक्तिगत दृष्टिकोणों की स्पष्ट छाप रहती थी। ये संदर्भग्रंथ नहीं वरन् अन्यान्य विषयों के अध्ययन हेतु प्रयुक्त निर्देशक निबंधग्रंथ थे।

विश्व की सबसे पुरातन विश्वकोशीय रचना अफ्रीकावासी मार्सियनस मिनस फेलिक्स कॉपेला की 'सटीराय सटीरिक' है। उसने पाँचवीं शती के आरंभकाल में गद्य तथा पद्य में इसका प्रणयन किया। यह कृति मध्ययुग में शिक्षा का आदर्शागार समझी जाती थी। मध्ययुग तक ऐसी अन्यान्य कृतियों का सर्जन हुआ, पर वे प्रायः एकांगी थीं और उनका क्षेत्र सीमित था। उनमें त्रुटियों एवं विसंगतियों का बाहुल्य रहता था। इस युग की सर्वश्रेष्ठ कृति व्यूविग्रस के विसेंट का ग्रंथ 'विब्लियोथेका मंडी' या 'स्पेकुलम मेजस' था। यह तेरहवीं शती के मध्यकालीन ज्ञान का महान् संग्रह था। उसने इस ग्रंथ में मध्ययुग की अनेक कृतियों को सुरक्षित किया। यह कृति अनेक विलुप्त आकर (क्लेसिकल) रचनाओं तथा अन्यान्य ग्रंथों की मूल्यवान पाठ्यसामग्रियों का सार प्रदान करती है। प्राचीन ग्रीस में स्प्यूसिपस तथा अरस्तू ने महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की थी। स्प्यूसिपस ने पशुओं तथा वनस्पतियों का विश्वकोशीय वर्गीकरण किया तथा अरस्तू ने अपने शिष्यों के उपयोग के लिये अपनी पीढ़ी के उपलब्ध ज्ञान एवं विचारों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने के लिये अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। इस युग में प्रणीत विश्वकोशीय ग्रंथों में प्राचीन रोमवासी प्लिनी की कृति 'नैचुरल हिस्ट्री' हमारी विश्वकोश की आधुनिक अवधारणा के अधिक निकट है। यह मध्ययुग का उच्च आधिकारिक ग्रंथ है। यह ३७ खंडों एवं २४९३ अध्यायों में विभक्त है जिसमें ग्रीकों के विश्वकोश के सभी विषयों का सन्निवेश है। प्लिनी के अनुसार इसमें १०० लेखकों के २००० ग्रंथों से संगृहीत २०,००० तथ्यों का समावेश है। सन् १५३६ से पूर्व इसके ४३ संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। इस युग की एक प्रसिद्ध कृति फ्रांसीसी भाषा में १९ खंडों में प्रणीत (सन् १३६०) बार्थोलोमिव द ग्लैंविल का ग्रंथ 'डी प्रॉप्रिएटेटिबस रेरम' था। सन् १४९५ में इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ तथा सन् १५०० तक इसके १५ संस्करण निकल चुके थे।

जॉकियस फार्टिअस रिंजल बर्जियस (१५४१) एवं हंगरी के काउंट पॉल्स स्कैलिसस द लिका (१५५९) की कृतियाँ सर्वप्रथम विश्वकोश (इनसाइक्लोपीडिया) के नाम से अभिहित हुईं। जोहान हेनरिच आस्टेड ने अपना विश्वकोश इनसाइक्लोपीडिया सेप्टेम टॉमिस डिस्टिंक्टा' सन् १६३० में प्रकाशित किया जो इस नाम को संपूर्णत चरितार्थ करता था। इसमें प्रमुख विज्ञानों एवं विभिन्न कलाओं से संबंधित अन्यान्य विषयों का समावेश है। फ्रांस के शाही इतिहासकार जीन डी मैग्नन का विश्वकोश 'लॉ साइंस युनिवर्स' के नाम से १० खंडों में प्रकाशित हुआ था। यह ईश्वर की प्रकृति से आरंभ होकर मनुष्य के पतन के इतिहास तक समाप्त होता है। लुइस मोरेरी ने १६७४ में एक विश्वकोश की रचना की जिसमें इतिहास, वंशानुसंक्रमण तथा जीवनचरित् संबंधी निबंधों का समावेश था। सन् १७५९ तक इसके २० संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। इटीन चाविन की सन् १७१३ में प्रकाशित महान् कृति 'कार्टेजिनयन' दर्शन का शब्दकोश है। फ्रेंच एकेडेमी द्वारा फ्रेंच भाषा का महान् शब्दकोश सन् १६९४ में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् कला और विज्ञान के शब्दकोशों की एक श्रृंखला बन गई। विंसेंजो मेरिया कोरोनेली ने

अध्ययन कर लिया था। इनकी शिशिक्षु वृत्ति जीवन के अंतिम काल तक पूर्णतया जागरूक रही। विभिन्न भाषाओं के ग्रंथों के आदर्श अनुवाद इन्होंने प्रस्तुत किए हैं। अंग्रेजी के 'हिंदू पालिटी' ग्रंथ का अनुवाद इन्होंने 'हिंदू राजतंत्र' नाम से किया है। मराठी भाषा की ज्ञानेश्वरी, छत्रसाल आदि पुस्तकों के सफल अनुवाद द्रष्टव्य हैं।

वर्मा जी की स्थायी देन भाषा के क्षेत्र में है। अपने जीवन का अधिकांश इन्होंने शब्दार्थनिर्णय और भाषापरिष्कार में बिताया। इनका आरंभिक जीवन पत्रकारिता का रहा। सन् १९०७ ई० में ये 'हिंदी केसरी' के संपादक हुए। यह पत्र नागपुर से प्रकाशित होता था। तदनंतर बाँकीपुर से निकलनेवाले 'बिहार बंधु' का इन्होंने योग्यतापूर्वक संपादन किया। बाद में नागरीप्रचारिणी-पत्रिका के संपादकमंडल में रहे। नागरीप्रचारिणी सभा, काशी से संपादित होनेवाले 'हिंदी शब्दसागर' में ये सहायक संपादक नियुक्त हुए। सन् १९१० ई० से १९२९ ई० तक इन्होंने उसमें कार्य किया। बाद में इन्हें 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' के संपादन का भार दिया गया। इसके अनंतर ये स्वतंत्र रूप में भाषा और कोश के क्षेत्र में कार्यरत रहे। इन्होंने आजीवन इस बात का प्रयास किया कि लोग शुद्ध हिंदी लिखने और बोलने पर ध्यान दें। शब्दों के अर्थविनिर्णय के क्षेत्र में भी इन्होंने गहरी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। इस कार्य के लिये ये बराबर चिंतन और मनन किया करते थे। इनकी अनूठी हिंदीसेवा के कारण भारत सरकार ने इन्हें 'पद्मश्री' की सम्मानित उपाधि से अलंकृत किया था। इसमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं कि ये आजीवन हिंदी-सेवा में जिए। शब्दार्थनिर्णय के प्रति गहरी रुचि रखने के कारण इन्होंने अपने भवन का नाम ही 'शब्दलोक' रख लिया था। अंतिम काल में इन्होंने हिंदी का एक बृहत् कोश 'मानक हिंदी कोश' के नाम से तैयार किया जो पाँच खंडों में हिंदी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित हुआ है।

इनके कतिपय प्रसिद्ध ग्रंथों के नाम हैं, अच्छी हिंदी, उर्दू-हिंदी-कोश, हिंदी प्रयोग, प्रामाणिक हिंदी कोश, शिक्षा और देशी भाषाएँ, हिंदी कोशरचना, आदि।

सन् १९६९ में इनका काशीवास हो गया। इनकी सादगी और स्वभाव की सरलता प्रत्येक मिलनेवाले साहित्यिक पर अपना प्रभाव डाले बिना न रहती थी। वर्मा जी हिंदी में जिए और हिंदी के लिये जिए। [ला० त्रि० प्र०]

वाजपेयी, अंबिकाप्रसाद जन्म : कानपुर, ३० दिसंबर, १८८०, निधन : लखनऊ, २१ मार्च, १९६८ संपादकाचार्य पं० अंबिकाप्रसाद वाजपेयी हिंदी पत्रकारिताजगत् के प्रेरणास्रोत ही नहीं, जनक थे। सेवा, त्याग, देशनिष्ठा एवं प्रखर नैतिक आग्रह से ही पत्रकारिता की ओर उन्मुख होकर आद्योपांत संघर्षरत रहे। उन्होंने पत्रकारिता को पेशा नहीं, साधना समझा था। वह तपस्वी वृत्ति के कर्मठ पत्रकार थे।

वाजपेयी जी के पत्रकारजीवन का प्रादुर्भाव सन् १९०५ ई० में हिंदी बंगवासी से आरंभ होता है। सन् १९११ ई० में स्व० बालमुकुंद गुप्त के बाद साप्ताहिक 'भारतमित्र' के संपादक हुए। उन्होंने 'भारतमित्र' को प्रथम हिंदी दैनिक पत्र का स्वरूप भी प्रदान किया। सन् १९१९ में इसका संपादन छोड़कर उन्होंने इंडियन नैशनल पब्लिशर्स लिमिटेड नामक संस्था बनाकर कलकत्ते से 'स्वतंत्र' दैनिक निकाला पर उसे सन् १९३० में अंगरेजी सरकार के कोपभाजन से बंद करना पड़ा। हिंदी साहित्य संमेलन के सन् १९३९ के काशी अधिवेशन के अध्यक्ष रहे। संमेलन ने उन्हें साहित्यवाचस्पति की उपाधि से विभूषित किया था।

वाजपेयी जी का राजनीतिक जीवन भी आकर्षक था। स्वाधीनता संग्राम के सिलसिले में उन्होंने देशबंधु चित्तरंजन दास और मौलाना अबुल कलाम आजाद के साथ जेलयात्रा भी की। कुछ समय तक उन्होंने मौलाना फजलुल हक के साथ कृषक प्रजा पार्टी में भी काम किया था। स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद सन् १९५२ से सन् १९५८ तक वह उत्तर प्रदेश विधानपरिषद् के सदस्य रहे।

उनके प्रमुख ग्रंथों में हिंदीकौमुदी, हिंदुओं की राजकल्पना, भारतीय शासनपद्धति, संध्या और तर्पण, हिंदुस्तानी मुहावरे (संग्रह), शिक्षा (अनुवाद), पर्शियन इनफ्लुएंस आन हिंदी (अंग्रेजी), और हिंदी पत्रकारिता का इतिहास उल्लेखनीय हैं। हिंदी समाचार-पत्रों के संबंध में उनकी अंतिम पुस्तक उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित होनेवाली है।

पं० अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने इस शताब्दी के उत्तरार्ध तक अपने विविध मौलिक प्रयासों से हिंदी पत्रकारिता को आधुनिक विश्व के साथ चलने योग्य बना दिया। हिंदी के प्रति इनकी सेवाएँ अनूठी हैं। [कृ० ना० त्रि०]

वाजपेयी, नंददुलारे का जन्म उन्नाव जिले के मगरायल नामक ग्राम में सन् १९०६ ई० में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा हजारीबाग में संपन्न हुई। उन्होंने विश्वविद्यालयी परीक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। वाजपेयी जी पत्रकार, संपादक, समीक्षक और अंत में प्रशासक भी रहे। वे कुछ समय तक 'भारत' के संपादक रहे। उन्होंने काशी नागरीप्रचारिणी सभा में 'सूरसागर' का तथा बाद में गीता प्रेस, गोरखपुर में रामचरितमानस का संपादन किया। वाजपेयी जी कुछ समय तक काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदीविभाग में अध्यापक तथा कई वर्षों तक सागर विश्वविद्यालय के हिंदीविभाग के अध्यक्ष रहे। मृत्यु के समय वे विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के उपकुलपति थे। २१ अगस्त, १९६७ को उज्जैन में हिंदी के वरिष्ठ आलोचक आचार्य वाजपेयी जी का अचानक निधन हो गया जिससे हिंदी संसार की दुर्भाग्यपूर्ण क्षति हुई है।

शुक्लोत्तर समीक्षा को नया संबल देनेवाले स्वच्छंदतावादी समीक्षक आचार्य वाजपेयी का आगमन छायावाद के उन्नायक के रूप में हुआ था। उन्होंने छायावाद द्वारा हिंदीकाव्य में आए नवोन्मेष का, नवीन सौंदर्य का स्वागत एवं सहृदय मूल्यांकन किया। अपने गुरु आचार्य शुक्ल से बहुत दूर तक प्रभावित होते हुए भी उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र की आधारभूत मान्यताओं के माध्यम से युग की संवेदनाओं को ग्रहण करते हुए, कवियों, लेखकों

की योजना निर्मित हुई। तमिल में भी एक विश्वकोश के प्रणयन का कार्य प्रारंभ हुआ।

हिंदी विश्वकोश—राष्ट्रभाषा हिंदी में एक मौलिक एवं प्रामाणिक विश्वकोश के प्रणयन की योजना हिंदी साहित्य के सर्जन में संलग्न नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ने तत्कालीन सभापति महामान्य पं० गोविंद वल्लभ पंत की प्रेरणा से निर्मित की जो आर्थिक सहायता हेतु भारत सरकार के विचारार्थ सन् १९५४ में प्रस्तुत की गई। पूर्व निर्धारित योजनानुसार विश्वकोश २२ लाख रुपए के व्यय से लगभग दस वर्ष की अवधि में एक हजार पृष्ठों के ३० खंडों में प्रकाश्य था। किंतु भारत सरकार ने एतदर्थ नियुक्त विशेषज्ञ समिति के सुझाव के अनुसार ५०० पृष्ठों के १० खंडों में ही विश्वकोश को प्रकाशित करने की स्वीकृति दी तथा इस कार्य के संपादन हेतु सहायतार्थ ६॥ लाख रुपए प्रदान करना स्वीकार किया। सभा को केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय के इस निर्णय को स्वीकार करना पड़ा कि विश्वकोश भारत सरकार का प्रकाशन होगा।

योजना की स्वीकृति के पश्चात् नागरीप्रचारिणी सभा ने जनवरी, १९५७ में विश्वकोश के निर्माण का कार्यारंभ किया। केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय के निर्देशानुसार 'विशेषज्ञ समिति' की संस्तुति के अनुसार देश के विश्रुत विद्वानों, विख्यात विचारकों तथा शिक्षा क्षेत्र के अनुभवी प्रशासकों का एक पचीस सदस्यीय परामर्शमंडल गठित किया गया। सन् १९५८ में समस्त उपलब्ध विश्वकोशों एवं संदर्भग्रंथों की सहायता से ७०,००० शब्दों की सूची तैयार की गई। इन शब्दों की सम्यक् परीक्षा कर उनमें से विचारार्थ ३०,००० शब्दों का चयन किया गया। मार्च, सन् १९५९ में प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के भूतपूर्व प्रोफेसर डॉ० धीरेंद्र वर्मा प्रधान संपादक नियुक्त हुए। विश्वकोश का प्रथम खंड लगभग डेढ़ वर्षों की अल्पावधि में ही सन् १९६० में प्रकाशित हुआ। इस खंड के प्रकाशन के समय तक विश्वकोश विभाग का पूर्णरूपेण संगठन कर लिया गया। विश्वकोश के प्रधान संपादक डॉ० धीरेंद्र वर्मा ने नवंबर, सन् १९६१ के प्रारंभ में त्यागपत्र दे दिया। कुछ समय पश्चात् डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी ने प्रधान संपादक का पद ग्रहण किया और खंड १० के प्रकाशन तक कार्यभार सँभाला। विश्वकोश के प्रकाशनकाल में इसके तीन मंत्री एवं संयोजक बदले। खंड १ के प्रकाशन के समय डॉ० राजवली पांडेय संयोजक एवं मंत्री थे। खंड २ और ३ डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा के संयोजकत्व में तथा खंड ८ तक पं० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' के संयोजकत्व में प्रकाशित हुए। अंतिम ३ खंडों के संयोजक एवं मंत्री श्री सुधाकर पांडेय थे। विश्वकोश के प्रणयन में आरंभ से अंत तक उनका प्रमुख योगदान रहा और डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी के अंतिम दो वर्षों के विदेश प्रवासकाल में उन्होंने प्रधान संपादक का भी संपूर्ण उत्तरदायित्व वहन किया।

प्रारंभ में परामर्शमंडल के अध्यक्ष पं० गोविंदवल्लभ पंत थे। उनके पश्चात् खंड १० तक का प्रकाशन महामहिम डॉ० संपूर्णानंद जी की अध्यक्षता में तथा अंतिम दो का प्रकाशन पं० कमलापति त्रिपाठी की अध्यक्षता में हुआ।

विश्वकोश का द्वादश खंड हमारे संमुख है। अन्य ११ खंडों से संबंधित प्रमुख तथ्य निम्नलिखित तालिका में स्पष्ट हैं। इस तालिका से प्रकट है कि विश्वकोश का प्रथम संस्करण १२ वर्षों की अल्पावधि में १२ खंडों तथा ६००६ पृष्ठों में प्रकाशित हुआ। इसमें ५०७ रंगीन तथा सादे चित्रफलक दिए गए हैं। सभी खंडों को विविध चित्रों, मानचित्रों और कलाकृतियों से सुसज्जित करने और उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें देश विदेश के ख्यातिप्राप्त सहस्राधिक विशिष्ट विद्वानों की रचनाओं का संकलन किया गया है। नौ खंडों के प्रकाशन के पश्चात् भी प्रमुख विषयों से संबंधित लगभग २००० निबंध 'मोहान' के बाद वर्णक्रम से प्रकाशनार्थ शेष रह गए थे। अतः केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा नियुक्त 'पुनरीक्षण समिति' की संस्तुति पर दो अतिरिक्त खंडों के प्रकाशन की स्वीकृति प्राप्त हुई। बारहों खंडों के प्रकाशन का संपूर्ण व्ययभार केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय ने वहन किया। प्रथम संस्करण पर व्यय कुल धनराशि १५,६५,४८१ रुपए थी। बारहवें खंड के अंत में परिशिष्ट में ५६

खंड	अध्यक्ष, परामर्शमंडल	संयोजक एवं मंत्री	प्रधान संपादक	संपादक, विज्ञान	संपादक, मानवतादि	प्रकाशनवर्ष	पृष्ठ	फलक	निबंध	लेखक
१	पं० गोविंदवल्लभ पंत	डॉ० राजवली पांडेय	डॉ० धीरेंद्रवर्मा	डॉ० गोरखप्रसाद	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	१९६०	५०४	३९	१०१४	१९८
२.	डॉ० संपूर्णानंद	डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा	,,	डॉ० फूलदेवसहाय वर्मा	,,	१९६२	५०८	६६	८३३	२४६
३.	,,	,,	डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी	,,	,,	१९६३	५०४	६३	८२८	१९१
४.	,,	पं० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'	,,	,,	मुकुंदीलाल श्रीवास्तव	१९६४	५०४	३९	७४६	२१८
५	,,	,,	,,	,,	,,	१९६५	५०४	२६	७६७	२०१
६	,,	,,	,,	,,	,,	१९६६	५०८	५२	६११	२०८
७.	,,	,,	,,	,,	,,	१९६६	५०४	३५	५९३	२०५
८.	,,	,,	,,	,,	,,	१९६७	५०४	४०	६५७	२३०
९	,,	पं० सुधाकर पांडेय	,,	,,	,,	१९६७	५०८	३२	६५१	२५१
१०	,,	,,	,,	,,	,,	१९६८	४९६	४१	६१२	२१६
११.	पं० कमलापति त्रिपाठी	,,	,,	,,	,,	१९६९	५०६	३६	५१६	२१८

सन् १७०१ में इटैलियन भाषा मे एक वर्णानुक्रमिक विश्वकोश 'बिब्लियोटेका युनिवर्सेल सैक्रोप्रोफाना' का प्रकाशन प्रारंभ किया। ४५ खडो में प्रकाश्य इस विश्वकोश के ७ ही खड प्रकाशित हो सके।

अंग्रेजी भाषा में प्रथम विश्वकोश 'ऐन युनिवर्सल इग्लिश डिक्शनरी ऑव आर्ट्स ऐंड साइंस' की रचना जॉन हैरिस ने सन् १७०४ में की। सन् १७१० में इसका द्वितीय खड प्रकाशित हुआ। इसका प्रमुख भाग गणित एव ज्योतिष से संबधित था। हैंबर्ग में जोहानम के रेक्टर जोहान हुब्नर के नाम पर दो शब्दकोश क्रमश. सन् १७०४ और १७१० में प्रकाशित हुए। बाद में इनके अनेक संस्करण निकले। इफ्रेम चैंबर्स ने सन् १७२८ मे अपनी साइक्लोपीडिया दो खंडो में प्रकाशित की। उसने प्रत्येक विषय से संबधित विकीर्ण तथ्यो को समायोजित करने का प्रयास किया। हर निबध में चैंबर्स ने संबधित विषय का संदर्भ दिया है। सन् १७४८-४९ मे इसका इटैलियन अनुवाद प्रकाशित हुआ। चैंबर्स द्वारा सकलित एव व्यवस्थित ७ नए खडो की सामग्री का सपादन कर डॉ० जॉनहिल ने पूरक ग्रथ सन् १७५३ मे प्रकाशित किया। इसका सशोधित एवं परिवर्धित संस्करण (१७७८-८८) अब्राहम रीज द्वारा प्रकाशित हुआ। लाइपजिग के एक पुस्तकविक्रेता जोहान हेनरिच जेड्लर ने एक वृहद् एवं सर्वाधिक व्यापक विश्वकोश 'जेड्लर्स युनिवर्सल लेक्सिकन' प्रकाशित किया। इसमे सात सुयोग्य संपादको की सेवाएँ प्राप्त की गई थी और एक विषय के सभी निबध एक ही व्यक्ति द्वारा संपादित किए गए थे। सन् १७५० तक इसके ६४ खड प्रकाशित हुए तथा सन् १७५१ से ५४ के मध्य ४ पूरक खंड निकले।

'फ्रेंच इंसाइक्लोपीडिया' अठारहवी शती की महत्तम साहित्यिक उपलब्धि है। इसकी रचना 'चैंबर्स साइक्लोपीडिया' के फ्रेंच अनुवाद के रूप में अंग्रेज विद्वान् जॉन मिल्स द्वारा उसके फ्रास आवासकाल मे प्रारभ हुई, जिसे उसने मॉटफी सेलस की सहायता से सन् १७४५ में समाप्त किया। पर वह इसे प्रकाशित न कर सका और इंग्लैंड वापस चला गया। इसके संपादन हेतु एक एक कर कई विद्वानो की सेवाएँ प्राप्त की गई और अनेक संघर्षों के पश्चात् यह विश्वकोश प्रकाशित हो सका। यह मात्र संदर्भ ग्रथ नही था, यह निर्देश भी प्रदान करता था। यह आस्था और अनास्था का विचित्र संगम था। इसने उस युग के सर्वाधिक शक्तिसपन्न चर्च और शासन पर प्रहार किया। संभवतः अन्य कोई ऐसा विश्वकोश नहीं है, जिसे इतना राजनीतिक महत्व प्राप्त हुआ हो और जिसने किसी देश के इतिहास और साहित्य पर क्रातिकारी प्रभाव डाला हो। पर इन विशिष्टताओ के होते हुए भी यह विश्वकोश उच्च कोटि की कृति नही है। इसमें स्थल स्थल पर त्रुटियाँ एवं विसंगतियाँ थी। यह लगभग समान अनुपात में उच्च और निम्न कोटि के निबधों का मिश्रण था। इस विश्वकोश की कटु आलोचनाएँ हुई।

इसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका स्कॉटलैंड की एक संस्था द्वारा एडिनबर्ग से सन् १७७१ में तीन खडों में प्रकाशित हुई। तब से इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रत्येक नवीन संस्करण में विशद संशोधन परिवर्धन किए गए। इसका चतुर्दश संस्करण सन् १९२९ मे २३ खंडो में प्रकाशित हुआ। सन् १९३३ में प्रकाशको ने वार्षिक प्रकाशन और निरंतर परिवर्धन की नीति निर्धारित की और घोषणा की कि भविष्य के प्रकाशनो को नवीन संस्करण की सज्ञा नही दी जायगी। इसकी गणना विश्व के महान् विश्वकोशो में है तथा इसका संदर्भ ग्रथ के रूप मे अन्यान्य देशो मे उपयोग किया जाता है।

अमरीका में अनेक विश्वकोश प्रकाशित हुए, पर वहाँ भी प्रमुख ख्याति इसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका को ही प्राप्त है। जॉर्ज रिप्ले एवं चार्ल्स एडर्सन डाना ने 'न्यू अमरीकन साइक्लोपीडिया' (१८५८-६३) १६ खडो मे प्रकाशित की। इसका दूसरा सस्करण १८७३ से १८७६ के मध्य निकला। एल्विन जे० जोसन का विश्वकोश जोसस न्यू युनिवर्सल साइक्लोपीडिया (१८७५-७७) ४ खडो मे प्रकाशित हुआ, जिसका नया संस्करण ८ खंडो में १८९३-९५ मे प्रकाशित हुआ। फ्रासिस लीबर ने 'इसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना' का प्रकाशन १८२९ मे प्रारभ किया। प्रथम सस्करण के १३ खड सन् १८३३ तक प्रकाशित हुए। सन् १८३५ मे १४ खड प्रकाशित किए गए। सन् १८५८ में यह पुन प्रकाशित की गई। सन् १९०३ ०४ में एक नवीन कृति 'इसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना' के नाम से १६ खडो में प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् इस विश्वकोश के अनेक संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण निकले। सन् १९१८ में यह ३० खंडो में प्रकाशित हुआ और तब से इसमें निरंतर संशोधन परिवर्धन होता आ रहा है। प्रत्येक शताब्दी के इतिहास का पृथक् वर्णन तथा साहित्य और संगीत की प्रमुख कृतियो पर पृथक् निबध इस विश्वकोश की विशिष्टताएँ हैं।

ऐसे विश्वकोशो के भी प्रणयन की प्रवृत्ति बढ रही है जो किसी विषय विशेष से सबद्ध होते हैं। इनमें एक ही विषय से संबधित तथ्यों पर स्वतंत्र निबंध होते हैं। यह संकलन संबद्ध विषय का सम्यक् ज्ञान कराने में सक्षम होता है। इंसाइक्लोपीडिया ऑव सोशल साइसेज इसी प्रकार का अत्यंत महत्वपूर्ण विश्वकोश है।

भारतीय वाङ्मय में संदर्भ ग्रंथो का कभी अभाव नही रहा, पर नगेंद्रनाथ वसु द्वारा संपादित बँगला विश्वकोश ही भारतीय भाषाओ से प्रणीत प्रथम आधुनिक विश्वकोश है। यह सन् १९११ में २२ खडो में प्रकाशित हुआ। नगेंद्रनाथ वसु ने ही अनेक हिंदी विद्वानो के सहयोग से हिंदी विश्वकोश की रचना की जो सन् १९१६ से १९३२ के मध्य २५ खंडों में प्रकाशित हुआ। श्रीधर व्यकटेश केतकर ने मराठी विश्वकोश की रचना की जो महाराष्ट्रीय ज्ञानकोशमंडल द्वारा २३ खंडो में प्रकाशित हुआ। डॉ० केतकर के निर्देशन में ही इसका गुजराती रूपांतर प्रकाशित हुआ।

स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात् कला एवं विज्ञान की वर्धनशील ज्ञानराशि से भारतीय जनता को लाभान्वित करने के लिये आधुनिक विश्वकोशो के प्रणयन की योजनाएँ बनाई गई। सन् १९४७ में ही एक हजार पृष्ठो के १२ खंडो में प्रकाश्य तेलुगु भाषा के विश्वकोश

मनु, याज्ञवल्क्य, नारद आदि स्मृतियों का आदिष्ट कथन, तंत्रों एवं गुह्य साधनाओं की अनिन्द्यनीया रूपसी कामिनियाँ, उत्सव-विशेष की शोभायात्रा में आगे आगे अपना प्रदर्शन करती हुई नर्तकियाँ किसी न किसी रूप में प्राचीन भारतीय समाज में सदैव अपना सम्मानित स्थान प्राप्त करती रही हैं। 'नारी प्रकाशो सर्वगम्या' कहकर वेश्याओं की ही स्तुति की गई है। 'पद्मपुराण' के अनुसार मंदिरों में नृत्य के लिये बालिकाएँ क्रय की जाती थीं। ये नर्तकियाँ वेश्याओं से भिन्न नहीं थीं। ऐसी मान्यता थी कि मंदिरों में नृत्य हेतु बालिकाएँ भेंटस्वरूप प्रदान करनेवाला स्वर्ग प्राप्त करता था। 'भविष्यपुराण' के अनुसार सूर्यलोकप्राप्ति का सर्वोत्तम साधन सूर्यमंदिर में वेश्याओं का समूह भेंट करना माना जाता था। दशकुमारचरित, कालिदास की रचनाएँ, समयमातृका, दामोदर गुप्त का 'कुट्टनीमत' आदि ग्रंथों में वारांगनाओं का अतिरंजित वर्णन मिलता है। कौटिल्य अर्थशास्त्र ने इन्हें राजतंत्र का *अविच्छिन्न अंग माना है तथा एक सहस्र पण वार्षिक शुल्क पर* प्रधान गणिका की नियुक्ति का आदेश दिया है। महानिर्वाणतंत्र में तो तीर्थस्थानों में भी देवचक्र के समारंभ में पवित्रस्वरूपा वेश्याओं को सिद्धि के लिये आवश्यक माना है। वे राजवेश्या, नागरी, गुप्तवेश्या, ब्रह्मवेश्या तथा देववेश्या के रूप में पंचवेश्या हैं। स्पष्ट है कि समाज का कोई अंग एवं इतिहास का कोई काल इनसे विहीन नहीं था। इनके विकास का इतिहास समाजविकास का इतिहास है। त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की सिद्धि में ये सदैव उपस्थित रही हैं। वैदिक काल की अप्सराएँ और गणिकाएँ मध्ययुग में देवदासियाँ और नगरवधुएँ तथा मुसलिम काल में वारांगनाएँ और वेश्याएँ बन गईं। प्रारंभ में ये धर्म से संबद्ध थीं और चौसठों कलाओं में निपुण मानी जाती थीं। मध्ययुग में सामंतवाद की प्रगति के साथ इनका पृथक् वर्ग बनता गया और कलाप्रियता के साथ कामवासना संबद्ध हो गई, पर यौनसंबंध सीमित और संयत था। कालांतर में नृत्यकला, संगीतकला एवं सीमित यौनसंबंध द्वारा जीविकोपार्जन में असमर्थ वेश्याओं को बाध्य होकर अपनी जीविका हेतु लज्जा तथा संकोच को त्याग कर अश्लीलता के उस स्तर पर उतरना पड़ा जहाँ पशुता प्रबल है।

वेश्यावृत्ति समाज के लिये एक अभिशाप है। अनेक वेश्यागामी अपना ऐश्वर्य, यौवन, पारिवारिक सुख और मानसिक शांति गँवा बैठते हैं। परिवार की संपत्ति शनैः शनैः वेश्या को समर्पित हो जाती है और परिवार के सदस्यों की क्षुधापूर्ति भी नहीं हो पाती। अभावों के मध्य उनका जीवन दुर्वह हो जाता है। ऐसे पुरुषों की पत्नियों को जीवन में तिल तिल कर जलना ही लिखा होता है। अनेक पत्नियाँ अपनी कामपिपासा शांत करने के लिये पर-पुरुष-गमन हेतु विवश होती हैं। शिशुओं के व्यक्तित्व का स्वस्थ विकास नहीं हो पाता। समाज की प्राथमिक इकाई परिवार के विघटन का दुष्प्रभाव सामाजिक संगठन पर पड़ता है। वेश्यागमन द्वारा रतिजरोगग्रस्त अनेक स्वैराचारियों का जीवन नरकतुल्य हो जाता है। रोगाणुओं के संक्रमण से, जनस्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

आधुनिक युग में स्त्रियों को वेश्यावृत्ति की ओर प्रेरित करनेवाले प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं —

आर्थिक कारण — अनेक स्त्रियाँ अपनी एवं आश्रितों की क्षुधा की ज्वाला शांत करने के लिये विवश हो इस वृत्ति को अपनाती हैं। जीविकोपार्जन के अन्य साधनों के अभाव तथा अन्य कार्यों के अत्यंत श्रमसाध्य एवं अल्पवैतनिक होने के कारण वेश्यावृत्ति की ओर आकर्षित होती हैं। धनीवर्ग द्वारा प्रस्तुत विलासिता, आत्मनिरति तथा छिछोरेपन के अन्यान्य उदाहरण भी प्रोत्साहन के कारण बनते हैं। कानपुर के एक अध्ययन के अनुसार लगभग ६५ प्रतिशत वेश्याएँ आर्थिक कारणवश इस वृत्ति को अपनाती हैं।

सामाजिक कारण—समाज ने अपनी मान्यताओं, रूढ़ियों और त्रुटिपूर्ण नीतियों द्वारा इस समस्या को और जटिल बना दिया है। विवाह संस्कार के कठोर नियम, दहेजप्रथा, विधवाविवाह पर प्रतिबंध, सामान्य चारित्रिक भूल के लिये सामाजिक बहिष्कार, अनमेल विवाह, तलाकप्रथा का अभाव आदि अनेक कारण इस घृणित वृत्ति को अपनाने में सहायक होते हैं। इस वृत्ति को त्यागने के पश्चात् अन्य कोई विकल्प नहीं होता। ऐसी स्त्रियों के लिये समाज के द्वार सर्वदा के लिये बंद हो जाते हैं। वेश्याओं की कन्याएँ समाज द्वारा सर्वथा त्याज्य होने के कारण अपनी माँ की ही वृत्ति अपनाने के लिये बाध्य होती हैं। समाज में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की अपेक्षा अधिक होने तथा शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से बाधाग्रस्त होने के कारण अनेक पुरुषों के लिये विवाहसंबंध स्थापित करना संभव नहीं हो पाता। इनकी कामतृप्ति का एकमात्र स्थल वेश्यालय होता है। वेश्याएँ तथा स्त्रीव्यापार में संलग्न अनेक व्यक्ति भोली भाली बालिकाओं की विषम आर्थिक स्थिति का लाभ उठाकर तथा सुखमय भविष्य का प्रलोभन देकर उन्हें इस व्यवसाय में प्रविष्ट कराते हैं। चरित्रहीन माता, पिता अथवा साथियों का संपर्क, अश्लील साहित्य, वासनात्मक मनोविनोद और चलचित्रों में कामोत्तेजक प्रसंगों का बाहुल्य आदि वेश्यावृत्ति के पोषक प्रमाणित होते हैं।

मनोवैज्ञानिक कारण — वेश्यावृत्ति का एक प्रमुख आधार मनोवैज्ञानिक है। कतिपय स्त्रीपुरुषों में कामज प्रवृत्ति इतनी प्रबल होती है कि इसकी तृप्ति मात्र वैवाहिक संबंध द्वारा संभव नहीं होती। उनकी कामवासना की स्वतंत्र प्रवृत्ति उन्मुक्त यौनसंबंध द्वारा पुष्ट होती है। विवाहित पुरुषों के वेश्यागमन तथा विवाहित स्त्रियों के विवाहेतर संबंध में यही प्रवृत्ति क्रियाशील रहती है।

वेश्यावृत्ति समाज में व्याप्त एक आवश्यक बुराई है। इसे समाप्त करने के सभी प्रयास अब तक निष्फल गए हैं। समाजसुधारकों ने इस वृत्ति को सदैव हेय दृष्टि से देखा है, लेकिन वे इसे इस भय से सहन करते आए हैं कि इसके मूलोच्छेद से अनैतिकता में और अधिक वृद्धि होगी। सोवियत संघ और ब्रिटेन की सरकारें वेश्यावृत्ति को समाप्त करने में विफल रहीं। उन्मूलन के दुष्परिणामों को दृष्टिगत कर उन्हें अपनी नीति परिवर्तित करनी पड़ी। राजकीय नियंत्रण वेश्याओं की नियमित स्वास्थ्यपरीक्षा आदि कतिपय व्यवस्थाएँ कर संतोष करना पड़ा। लगभग ऐसे ही नियम अन्य यूरोपीय देशों में भी हैं।

भारतवर्ष में वैवाहिक संबंध के बाहर यौनसंबंध अच्छा नहीं

निबंध दिए गए हैं जो किन्ही कारणो से निर्धारित स्थान पर नही दिए जा सके थे। परिशिष्ट के पश्चात् बारहो खडो के निबंधो की सूची दी गई है।

विश्वकोश का संग्रथन हिंदी वर्णमाला के अक्षरक्रम से हुआ है। विदेशी व्यक्तियो एवं कृतियो के नाम यथासंभव उनकी भाषा के उच्चारण के अनुरूप लिखे गए हैं तथा जहाँ कहीं भ्रम की आशका रही है वहाँ उन्हें कोष्ठक में रोमन में भी दे दिया गया है। उच्चारण के लिये वेब्स्टर शब्दकोश को प्रमाण माना गया है। इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका इस विश्वकोश के समुख आदर्श रही है। उसके विषय संचय की प्रक्रिया, वर्णक्रमीय सगठन एव व्यवस्था की विधि को अपनाया गया है पर सामग्री का सकलन स्वतंत्र रूप से किया गया है। इसमें इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका द्वारा प्राच्य देशो के कतिपय उपेक्षित आवश्यक विषयो को स्थान दिया दिया है तथा उसकी त्रुटियो और भ्रातियो का यथासभव निराकरण करने का प्रयास किया गया है।

बारह खंडो की परिमिति के कारण कतिपय विषयो का समावेश नही हो पाया है। विश्वकोश का प्रकाशन आश्चर्यजनक त्वरित गति से हुआ। अत कतिपय त्रुटियो का रह जाना स्वाभाविक था। राष्ट्रभाषा हिंदी के इस शालीन प्रयास का सर्वत्र स्वागत हुआ एव इसकी प्रशसा की गई। यह बीसवी शती की भारत की महान् साहित्यिक उपलब्धि है। इसके माध्यम से कला और विज्ञान की आधुनिकतम उपलब्धियो से भारतीय भाषाओ का भाडार भरने के लिये प्रचुर सामग्री उपलब्ध होगी तथा यह भारत की अन्य भाषाओ में विश्वकोश निर्माण का आधार प्रस्तुत करेगा। [ला० व० पा०]

वेश्यावृत्ति अर्थलाभ के लिये स्थापित संकर यौनसंबंध, जिसमें उस भावनात्मक तत्व का अभाव होता है जो अधिकाश यौनसबधो का एक प्रमुख अंग है। विधान एवं परंपरा के अनुसार वेश्यावृत्ति उपस्त्री सहवास, परस्त्रीगमन एव अन्य अनियमित वासनापूर्ण सबंधों से भिन्न होती है। सस्कृत कोशो में यह वृत्ति अपनानेवाली स्त्रियों के लिये विभिन्न संज्ञाएँ दी गई हैं। वेश्या, रूपाजीवा, पण्यस्त्री, गणिका, वारवधू, लोकागना, नर्तकी आदि की गुण एवं व्यवसायपरक अभिधा है — वेशं (बाजार) आजीवो यस्याः सा वेश्या (जिसकी आजीविका में बाजार हेतु हो), गणयति इति गणिका (रुपया गिननेवाली), रूपं आजीवो यस्याः सा रूपाजीवा (सौंदर्य ही जिसकी आजीविका का कारण हो); पण्यस्त्री — पण्यै. क्रीता स्त्री (जिसे रुपया देकर आत्मतुष्टि के लिये क्रय कर लिया गया हो)।

वेश्यावृत्ति सभी सभ्य देशो मे आदिकाल से विद्यमान रही है। यह सदैव सामाजिक यथार्थ के रूप में स्वीकार की गई है और विधि एव परंपरा द्वारा इसका नियमन होता रहा है। सामंतवादी समाज में यह अभिजातवर्ग की कलात्मक अभिरुचि एवं पार्थिव गौरवप्रदर्शन का माध्यम थी। आधुनिक यात्रिक समाज में यह हमारी विवशता, मानसिक विक्षेप, भोगैषणा एवं निरंतर बढ़ती हुई आंतरिक कुठा के क्षणिक उपचार का द्योतक है। वस्तुत. यह विघटनशील समाज के सहज अंग के रूप में विद्यमान रही है। सामाजिक स्थिति में आरोह अवरोह आता रहा है, किंतु इसका अस्तित्व अक्षुण्ण, अप्रभावित रहा है। प्राच्य जगत् के प्राचीन देशो में वेश्यावृत्ति धार्मिक अनुष्ठानो के साथ सबद्ध रही है। इसे हेय न समझकर प्रोत्साहित भी किया जाता रहा। मिस्र, असीरिया, वेबीलोनिया, पर्शिया आदि देशो में देवियो की पूजा एवं धार्मिक अनुष्ठानो में अत्यधिक अमर्यादित वासनात्मक कृत्यो की प्रमुखता रहती थी तथा देवस्थान व्यभिचार के केंद्र बन गए थे। यहूदी अवश्य इस प्रथा के अपवाद थे। उनमें मोजेज के अन्यान्य अध्यादेशों का उद्देश्य स्पष्टतया धर्म एव प्रजातीय रक्त की शुद्धता और रतिरोगो से जनस्वास्थ्य को सुरक्षित रखना था। वेश्यावृत्ति प्रवासी स्त्रियो तक ही सीमित थी। यह यहूदी स्त्रियो के लिये निषिद्ध थी। पर धर्माध्यक्षो की कन्याओ के अतिरिक्त अन्य स्त्रियो द्वारा नियमभंग करने पर किसी प्रकार के दड का विधान नही था। यद्यपि देवस्थानो और यरूसलम में ऐसी स्त्रियो का प्रवेश वर्जित था, तथापि पार्श्व पथ उनसे सदैव आकीर्ण रहते थे। बाद के अभ्युदयकाल मे स्वेच्छाचारिता मे और वृद्धि हुई।

प्राचीन यूनान — एथेंस नगर में वेश्यावृत्ति के संबंध में निर्धारित नियम जनस्वास्थ्य एवं शिष्टाचार को दृष्टिगत कर अभिकल्पित थे। वेश्यालयो पर राज्य का अधिकार था जो क्षेत्रविशेष मे सीमित थे। वेश्याओ का परिधान विशिष्ट होता था तथा सार्वजनिक स्थलो में उनका प्रवेश निषिद्ध था। वे किसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान में भाग नहीं ले सकती थी। पर्शिया युद्ध के पश्चात् और अधिक बाध्यकारी कानून प्रभावशील हुए लेकिन अत्यधिक गुणसपन्ना एवं प्रतिभाशालिनी गणिकाओ के संमुख वे टिक नही सके। समय की गति के साथ विनियमों को क्रियाशील तथा प्रभावकारी बनाए रखना प्रशासन के लिये दुष्कर होता गया। अन्य नगरों में वेश्यावृत्ति चरम सीमा पर थी। वासनापूर्ति के लिये विख्यात कॉरिंथ नगर में देवी के मदिर में सहस्रो वेश्याएँ सेविका रूप में रहती थी और देवीपूजा यौनाचार पर आवरण बन गई थी।

रोमवासियो के दृष्टिकोण में यहूदियो के जातीय गौरव एवं मिस्रवासियो के सार्वजनिक शिष्टाचार का सम्यक् समावेश था। समाज में स्त्रियो की प्रतिष्ठा थी। वेश्याओ के लिये पजीकरण आवश्यक था। उन्हे राजकीय कर देना पड़ता था तथा भिन्न परिधान धारण करना पड़ता था। वेश्यालयो पर राजकीय नियत्रण था और वेश्यागमन को निंद्य माना जाता था। एक बार वेश्यावृत्ति अपनाने के पश्चात् इस व्यवसाय को सदा के लिये त्याग देने अथवा विवाहित हो जाने पर भी किसी स्त्री का पजीयन समाप्त नही हो सकता था। ईसाई धर्म की स्थापना एवं प्रसार के पश्चात् इस समस्या के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाया गया। ईसाइयो ने वेश्याओ के पुनरुद्धार और समाज मे पुन प्रतिष्ठा हेतु प्रयास किया। सम्राट् जस्टिनियम की महिषी थियोडोरा ने, जो स्वयं वेश्या का जीवन व्यतीत कर चुकी थी, पतिता स्त्रियो के लिये एक सुधारगृह की स्थापना की। वेश्यालयो का संचालन दंडनीय था।

प्राचीन भारत — वेदों के दीर्घतमा ऋषि, पुराणो की अप्सराएँ, आर्ष काव्यो, रामायण एवं महाभारत की शताधिक उपकथाएँ

भगवान शङ्कर

(देखें परिशिष्ट पृष्ठ ४३७)

यद्यपि उन्होंने शैव मत को स्वीकार कर लिया था। मालव जन ने विक्रमादित्य के नेतृत्व मे मालवा से शको का राज्य समाप्त कर दिया और इस विजय के स्मारक रूप मे विक्रम सवत् का प्रचलन किया जो आज भी हिंदुओ के धार्मिक कार्यो मे व्यवहृत है। शको के अन्य राज्यो को शकारि विक्रमादित्य गुप्तवश के चद्रगुप्त द्वितीय ने समाप्त करके एकच्छत्र राज्य स्थापित किया। शको को भी अन्य विदेशी जातियो की भाँति भारतीय समाज ने आत्मसात् कर लिया। शको की प्रारंभिक विजयो का स्मारक शक सवत् आज तक प्रचलित है। [रा०]

शक्ति ईश्वर की वह कल्पित माया है जो उसकी आज्ञा से सब काम करनेवाली और सृष्टिरचना करनेवाली मानी जाती है। यह अनतरूपा और अनतसामर्थ्यसपन्ना कही गई है। यही शक्ति जगत्-रूप में व्यक्त होती है और प्रलयकाल में समग्र चराचर जगत् को अपने में विलीन करके अव्यक्तरूपेण स्थित रहती है। यह जगत् वस्तुत उसकी व्यवस्था का ही नाम है। गीता में वर्णित योगमाया यही शक्ति है जो व्यक्त और अव्यक्त रूप में है। कृष्ण 'योगमाया-मुपाश्रित.' होकर ही अपनी लीला करते हैं। राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति है। शिव शक्तिहीन होकर कुछ नही कर सकते। शक्तियुक्त शिव ही सब कुछ करने मे, न करने में, अन्यथा करने मे समर्थ होते है। इस तरह भारतीय दर्शनो में किसी न किसी नाम रूप से इसकी चर्चा है। पुराणो में विभिन्न देवताओ की विभिन्न शक्तियो की कल्पना की गई है। इन शक्तियो को बहुधा देवी के रूप में और मूर्तिमती माना गया है। जैसे, विष्णु की कीर्ति, काति, तुष्टि, पुष्टि आदि, रुद्र की गुणोदरी, गोमुखी, दीर्घजिह्वा, ज्वालामुखी आदि। मार्कंडेयपुराण के अनुसार समस्त देवताओ की तेजोराशि देवी शक्ति के रूप में कही गई है जिसकी शक्ति वैष्णवी, माहेश्वरी, ब्रह्माणी, कौमारी, नारसिही, इद्राणी, वाराही आदि हैं। उन उन देवो के स्वरूप और गुणादि से युक्त इनका वर्णन प्राप्त होता है।

तत्र के अनुसार किसी पीठ की अधिष्ठात्री देवी शक्ति के रूप मे कही गई है, जिसकी उपासना की जाती है। इसके उपासक शाक्त कहे जाते हैं। यह शक्ति भी सृष्टि की रचना करनेवाली और पूर्ण सामर्थ्यसपन्न कही गई है। बौद्ध, जैन आदि सप्रदायों के तत्र-ग्रथों मे शक्ति की कल्पना की गई है, इन्हे बौद्धधामर्या भी कहा गया है। तात्रिको की परिभाषा में युवती, रूपवती, सौभाग्यवती विभिन्न जाति की स्त्रियो को भी इस नाम से कहा गया है और विधिपूर्वक इनका पूजन सिद्धिप्रद माना गया है।

प्रभु, मत्र और उत्साह नाम से राजाओ की तीन शक्तियाँ कही गई हैं। कोश और दड आदि से सबधित शक्ति प्रभुशक्ति, सधि-विग्रह आदि से सबधित मत्रशक्ति और विजय प्राप्त करने सबधी शक्ति को उत्साहशक्ति कहा गया। राज्यशासन की सुदृढता के निमित्त इनका होना आवश्यक कहा गया है।

शब्द के अतर्निहित अर्थ को व्यक्त करने का व्यापार शब्दशक्ति नाम से अभिहित है। ये व्यापार तीन कहे गए हैं — अभिधा, लक्षणा और व्यजना। आचार्यो ने इसे शक्ति और वृत्ति नाम से कहा है। घट के निर्माण में मिट्टी, चक्र, दड, कुलाल आदि कारण हैं और चक्र का घूमना शक्ति या व्यापार है जिससे घडा बनता है, इसी तरह अर्थबोध कराने मे शब्द कारण है और अभिधा, लक्षणा आदि व्यापार शक्तियाँ हैं। मम्मट ने व्यापार शब्द का प्रयोग किया है तो विश्वनाथ ने शक्ति का। 'शक्ति' में ईश्वरेच्छा के रूप मे शब्द के निश्चित अर्थ के सकेत को माना गया है। यह प्राचीन तर्कशास्त्रियो का मत है। बाद मे 'इच्छा मात्र' को 'शक्ति' माना गया, अर्थात् मनुष्य की इच्छा से भी शब्दो के अर्थसकेत की परपरा को माना। 'तर्कदीपिका' में शक्ति को शब्द अर्थ के उस सबध के रूप मे स्वीकार किया गया है जो मानस में अर्थ को व्यक्त करता है। [वि० त्रि०]

शशांक बगाल का हिंदू राजा जिसने सातवीं शताब्दी के अतिम चरण में बगाल पर शासन किया। मालवा के राजा देवगुप्त से दुरभिसधि करके हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री के पति कन्नौज के मौखरी राजा ग्रहवर्मन को मारा। तदनतर राज्यवर्धन को धोखे से मारकर अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न किया। पर जब राज्यवर्धन के कनिष्ठ भ्राता ने उसका पीछा किया तो वह बगाल भाग गया।

अतिम गुप्त सम्राटो की दुर्बलता के कारण जो स्वतत्र राज्य हुए उनमे गौड या उत्तरी बगाल भी था। जब महासेन गुप्त सम्राट् हुआ तो उसकी दुर्बलता से लाभ उठाकर शशाक ने गौड में स्वतत्र राज्य स्थापित किया। उस समय शशाक महासेन गुप्त का सेनापति था। उसने कर्णसुवर्ण को अपनी राजधानी बनाई। आजकल कर्णसुवर्ण के अवशेष मुर्शिदाबाद जिले के गंगामाटी नामक स्थान में पाए गए हैं। शशाक बगाल का पहला महान् राजा था। शशाक के जीवन के विषय मे निश्चित रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि वह महासेन गुप्त का सेनापति नरेंद्रगुप्त था—महासामंत और शशाक उसकी उपाधियाँ हैं। उसने समस्त बगाल और बिहार को जीत लिया तथा समस्त उत्तरी भारत पर विजय करने की योजना बनाई।

शशाक हिंदू धर्म को मानता था और बौद्ध धर्म का कट्टर शत्रु था। इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि शशाक के बाद बगाल और बिहार में पाल वशीय राजाओ ने प्रजा की सम्मति से नया राज्य स्थापित किया और बौद्ध धर्म को एक बार फिर आश्रय मिला। 'शशाक' पर प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता स्व० राखालदास वंद्योपाध्याय ने एक बडा ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है। [रा०]

शास्त्री, सत्यनारायण आधुनिक आयुर्वेदजगत् के प्रख्यात पडित और चिकित्साशास्त्री। आयुर्वेद की धवल परपरा को सजीव बनाए रखने के लिये आपने जीवन भर कार्य किया। जन्म सन् १८८७ ई० (सवत् १९४४ की माघ कृष्ण गणेश चतुर्थी) को ननिहाल, काशी के अगस्तकुड मुहल्ले, मे हुआ था। ८ वर्ष की अवस्था में ही इन्होने भाषा, गणित आदि विषयो का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। महामहोपाध्याय प० गगाधर शास्त्री तथा महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री से आपने साहित्य, न्याय, विविध दर्शनों तथा अन्य विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया था। आपने ज्योतिर्विद् जयमगल ज्योतिषी

समझा जाता है। वेश्यावृत्ति भी इसके अंतर्गत है। लेकिन दो वयस्कों के यौनसबंध को, यदि वह जनशिष्टाचार के विपरीत न हो, कानून व्यक्तिगत मानता है, जो दडनीय नही है। 'भारतीय दड-विधान' १८६० से 'वेश्यावृत्ति उन्मूलन विधेयक' १९५६ तक सभी कानून सामान्यतया वेश्यालयों के कार्यव्यापार को संयत एव नियत्रित रखने तक ही प्रभावी रहे हैं। वेश्यावृत्ति का उन्मूलन सरल नहीं है, पर ऐसे सभी सभव प्रयास किए जाने चाहिए जिससे इस व्यवसाय को प्रोत्साहन न मिले, समाज की नैतिकता का ह्रास न हो और जनस्वास्थ्य पर रतिज रोगो का दुष्प्रभाव न पडे। कानून स्त्रीव्यापार में सलग्न अपराधियो को कठोरतम दड देने में सक्षम हो। यह समस्या समाज की है। समाज समय की गति को पहचाने और अपनी उन मान्यताओ और रूढियो का परित्याग करे, जो वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन प्रदान करती हैं। समाज के अपेक्षित योगदान के अभाव में इस समस्या का समाधान संभव नही है।

सं० ग्रं० — मनुस्मृति, वात्स्यायन कामसूत्र; कौटिल्य अर्थ-शास्त्र, दामोदर गुप्त : कुट्टनीमतं; महानिर्वाण तंत्र; कालिदास : मेघदूत; दशकुमारचरित; जोहान जैकब मेयर : सेक्सुअल लाइफ इन एशेंट इंडिया; विद्याधर अग्निहोत्री : फालेन वीमेन; हैवलाक एलिस : स्टडीज़ इन दि साइकालाजी ऑव सेक्स; जी० एम० हाल . प्रॉस्टीच्यूट — ए सर्वे ऐंड ए चैलेंज; लीग ऑव नेशस — रिपोर्ट आन दि ट्रैफिक इन वीमेन ऐंड चिल्ड्रेन, भाग १ एवं २; फ्लेक्सनर : प्रास्टिच्यूशन इन यूरोप; सैंजर : हिस्ट्री ऑव प्रास्टीच्यूशन; रिपोर्ट्‌स ऑव दी इटरनेशनल कान्फ्रेंस ऑन ट्रैफिक इन वीमेन ऐंड चिल्ड्रेन (जेनेवा, १९२१); रिपोर्ट आव एक्सपर्ट्‌स ऑन ट्रैफिक इन वीमेन ऐंड चिल्ड्रेन (जेनेवा १९२७)।

[ला० ब० पा०]

शंकर या शिव हिंदुओ के एक प्रसिद्ध देव जो सृष्टि का संहार करनेवाले और पौराणिक त्रिमूर्ति के अतिम देव कहे गए हैं। वैदिक काल मे यही रुद्र के रूप में पूजे जाते थे; पर पौराणिक काल मे ये शंकर, महादेव और शिव आदि नामो से प्रसिद्ध हुए। पुराणानुसार इनका रूप इस प्रकार है—सिर पर गंगा, माथे पर चद्रमा तथा तीसरा नेत्र, गले में साँप तथा नरमुंडो की माला, सारे शरीर मे भस्म, व्याघ्रचर्म ओढे हुए और बाएँ अग मे अपनी स्त्री पार्वती को लिए हुए। इनके पुत्र गणेश तथा कार्तिकेय, गण भूत और प्रेत, प्रधान अस्त्र त्रिशूल और वाहन बैल है, जो नंदी कहलाता है। इनके धनुष का नाम पिनाक है जिसे धारण करने के कारण यह पिनाकी भी कहे जाते हैं। इनके पास पाशुपत नामक एक प्रसिद्ध अस्त्र था, जो इन्होंने अर्जुन को उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर दे दिया था। पुराणों में इनके सबध मे बहुत सी कथाएँ हैं। यह कामदेव का दहन करनेवाले माने जाते हैं। समुद्रमथन के समय जो विष निकला था, वह इन्होंने पान किया था। वह विष इन्होंने अपने गले मे ही रखा और नीचे अपने पेट मे नही उतारा इसलिये इनका गला नीला हो गया और यह नीलकंठ कहलाने लगे। परशुराम ने अस्त्रविद्या की शिक्षा इन्ही से पाई थी। संगीत, नृत्य तथा अभिनय के भी यह प्रधान आचार्य और परम तपस्वी तथा योगी माने जाते हैं। इनके नाम से एक पुराण भी है जो शिवपुराण कहलाता है। इनके उपासक "शैव" कहलाते हैं। इनका निवासस्थान कैलास माना जाता है।

[वि० त्रि०]

शंकराचार्य अद्वैत मत के प्रवर्तक प्रसिद्ध शैव आचार्य जिनका जन्म सन् ७८८ ई० में केरल देश में कालपी अथवा कापल नामक ग्राम में हुआ था; और जो ३२ वर्ष की अल्प आयु में सन् ८२० ई० में केदारनाथ के समीप स्वर्गवासी हुए थे। इनके पिता का नाम शिवगुरु और माता का नाम सुभद्रा था। बहुत दिन तक सपत्नीक शिव की आराधना करने के अनतर शिवगुरु ने पुत्ररत्न पाया था, अतः उसका नाम शकर रखा। जब ये तीन ही वर्ष के थे तब इनके पिता का देहात हो गया। ये बडे ही मेधावी तथा प्रतिभाशाली थे। छह वर्ष की अवस्था में ही ये प्रकांड पडित हो गए थे और आठ वर्ष की अवस्था मे इन्होने सन्यास ग्रहण किया था। इनके संन्यास ग्रहण करने के समय की कथा बडी विचित्र है। कहते हैं, माता एकमात्र पुत्र को सन्यासी बनने की आज्ञा नही देती थी। एक दिन जब शंकर अपनी माता के साथ किसी आत्मीय के यहाँ से लौट रहे थे, तब नदी पार करने के लिये वे उसमें घुसे। गले भर पानी मे पहुँचकर इन्होने माता को सन्यास ग्रहण करने की आज्ञा न देने पर डूब मरने की धमकी दी। इससे भयभीत होकर माता ने तुरंत इन्हे सन्यासी होने की आज्ञा प्रदान की और इन्होने गोविंद स्वामी से संन्यास ग्रहण किया। इन्होंने ब्रह्मसूत्रो की बड़ी ही विशद और रोचक व्याख्या की है। पहले ये कुछ दिनो तक काशी मे रहे, और तब इन्होने विजिलबिंदु के तालवन में मडन मिश्र को सपत्नीक शास्त्रार्थ में परास्त किया। इन्होने समस्त भारतवर्ष मे भ्रमण करके बौद्ध धर्म को मिथ्या प्रमाणित किया तथा वैदिक धर्म को पुनरुज्जीवित किया। उपनिषदो और वेदातसूत्रो पर लिखी हुई इनकी टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध है। इन्होने भारतवर्ष मे चार मठो की स्थापना की थी जो अभी तक बहुत प्रसिद्ध और पवित्र माने जाते हैं और जिनके प्रबधक तथा गद्दी के अधिकारी शंकराचार्य कहे जाते हैं। वे चारो स्थान निम्नलिखित हैं —

(१) बदरिकाश्रम, (२) करवीर पीठ, (३) द्वारिका पीठ और (४) शारदा पीठ। इन्होने अनेक विधर्मियो को भी अपने धर्म मे दीक्षित किया था। ये शकर के अवतार माने जाते हैं। [वि० त्रि०]

शक प्राचीन काल में मध्य एशिया की एक निराश्रय जनजाति, जो यूहेची जनजाति के दबाव के कारण भारत की ओर अग्रसर हुई। भारत के पश्चिमोत्तर भाग कपिशा और गाधार में यवनो के कारण ठहर न सके और बोलन घाटी पार कर भारत में प्रविष्ट हुए। तत्पश्चात् उन्होने पुष्कलावती एवं तक्षशिला पर अधिकार कर लिया और वहाँ से यवन हट गए। ७२ ई० पू० शकों का प्रतापी नेता मोअस उत्तर पश्चिमात के प्रदेशो का शासक था। उसने महाराजाधिराज महाराज की उपाधि धारण की जो उसकी मुद्राओं पर अकित है। उसी ने अपने अधीन क्षत्रपो की नियुक्ति की जो तक्षशिला, मथुरा, महाराष्ट्र और उज्जैन मे शासन करते थे। कालातर मे ये स्वतत्र हो गए। शक विदेशी समझे जाते थे

सैनिक सगठन सुव्यवस्थित तथा अनुशासन कठोर था। दस पदातिकों पर एक नायक, पांच नायकों पर एक हवलदार, दो या तीन हवलदारों पर एक जुमलादार और दस जुमलादारों पर एक-हजारी होता था। पदाति सेना में सातहजारी और उनके ऊपर सेनापति या सर ए नौवत होता था। अश्वारोहियो में 'बारगीर' को राज्य की ओर से घोडे मिलते थे जबकि 'सिलाहदार' को अपने घोड़े लाने पडते थे। एक हवलदार के अधीन पचीस अश्वारोही, एक जुमलादार के नीचे पाँच हवलदार और एक हजारी के अधीन दस जुमलादार होते थे। पाँच हजारी पूरे रिसाले के सेनापति के अधीन होते थे। प्रत्येक दुर्ग मे एक हवलदार, एक सबनिस (वेतनवितरक) तथा एक सर-ए नौवत रहता था। मराठा सेना मे सिद्दी सवल, सिद्दी हलाल, दौलतखाँ, नूरखाँ आदि मुसलमान अधिकारी भी नियुक्त थे। कोलाबा मे नौसेना की व्यवस्था की गई थी। वेतन नकद दिया जाता था।

शिवाजी के विरोधियों ने भी उनकी प्रशसा की है। हिंदू धर्म एवं सस्कृति के स्तभ एव सरक्षक होते हुए भी अन्य धर्मावलबियो के प्रति उनकी नीति सहिष्णुतापूर्ण एव उदार थी। किलोशी के मुसलमान बावा याकूत का भरण पोषण शिवाजी द्वारा ही किया जाता था। लूट के माल में मिले 'कुरानशरीफ' को किसी मौलवी के सुपुर्द कर दिया जाता था। राज्य की ओर से केवल मदिरो को ही नही बल्कि मस्जिदो को भी दान दिया जाता था। युद्ध में पकडे गए बच्चो एव स्त्रियों पर किसी भी प्रकार का अनाचार वर्जित था। शिवाजी बडी सूझबूझवाले, प्रजाहितैषी, चतुर, प्रतिभावान्, सहृदय व्यक्ति एवं दक्ष सैनिक थे। वे विद्वानो के आश्रयदाता भी थे। अप्रैल, १६८० में उनका स्वर्गवास हुआ।

स० ग्र० — [अंग्रेजी में] जे० सरकार शिवाजी ऐंड हिज टाइम्ज, जी० एस० सरदेसाई · द मेन करेंट्स ऑव मराठा हिस्टरी, एस० एन० सेन : द ऐड्मिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑव द मराठाज, के० ए० एन० शास्त्री हिस्टरी ऑव इडिया, पार्ट टू), सर वुल्जमी हग ऐंड सर रिचर्ड बर्टन कैंब्रिज हिस्टरी ऑव इडिया (वॉल्यूम फोर), एम० जी० रानाडे राईज ऑव द मराठा पावर।

[हिंदी मे]—डा० ईश्वरीप्रसाद : भारत का इतिहास (भाग २), गो० स० सरदेसाई शालोपयोगी भारतवर्ष (खड १), जयचद्र विद्यालकार इतिहासप्रवेश। [ज० सिं०]

शेषनाग (१) भगवान् की सर्पवत् आकृतिविशेष। इनका आख्यान विभिन्न पुराणो में मिलता है। कालिकापुराण में कहा गया है कि प्रलयकाल आने पर जब सारी सृष्टि नष्ट हो जाती है तब भगवान् विष्णु अपनी प्रिया लक्ष्मी के साथ इनके ऊपर शयन करते हैं और उनके ऊपर ये अपनी फणाओ की छाया किए रहते हैं। इनका पूर्व फण कमल को ढके रहता है, उत्तर का फण भगवान् के शिरोभाग का और दक्षिण फण चरणो का आच्छादन किए रहता है। प्रतीची का फण भगवान् विष्णु के लिये व्यजन का कार्य करता है। इनके ईशान कोण क फण शख, चक्र, नद, खड्ग, गरुड़ और युग तणीर धारण करते हैं तथा आग्नेय कोण के फण गदा, पद्म आदि धारण करते हैं। सारी सृष्टि के विनाश क पश्चात् भी ये बचे रहते हैं, इसीलिये इनका नाम 'शेष' है। सर्पाकार होने से इनके नाम से 'नाग' विशेषण जुडा हुआ है।

पुराणो में इन्हें सहस्रशीर्ष या सौ फणवाला कहा गया है। इनके एक फण पर सारी वसुधरा अवस्थित कही गई है। ये सारी पृथ्वी को धूलि के कण की भाँति एक फण पर सरलतापूर्वक लिए रहते हैं। पृथ्वी का भार अत्याचारियो के कारण जब बहुत प्रवधित हो जाता है तब इन्हे अवतार भी धारण करना पडता है। लक्ष्मण और बलराम इनके अवतार कहे गए हैं। इनका कही अत नही है इसीलिये इन्हे 'अनत' भी कहा गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने लक्ष्मण की वदना करते हुए उन्हें शेषावतार कहा है·

> बदौं लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
> रघुपति कीरति विमल पताका। दड समान भयउ जस जाका॥
> सेष सहस्रसीस जगकारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
>
> —बालकाड, १७।३,४

रात्रि के समय आकाश मे जो वक्राकृति आकाशगगा दिखाई पडती है और जो क्रमश दिशा परिवर्तन करती रहती है, वह निखिल ब्रह्माडो को अपने मे समेटे हुए है। उसकी अनेक शाखाएँ दिखाई पडती हैं। वह सर्पाकृति होती है। इसी को शेषनाग कहा गया है। पुराणो तथा काव्यो में शेष का वर्ण श्वेत कहा गया है। आकाश-गगा श्वेत होती ही है। यह 'ॐ' की आकृति मे विश्व ब्रह्माड को घेरती है। 'ॐ' को ब्रह्म कहा गया है। वही शेषनाग है।

(२) व्याकरणशास्त्र के महाभाष्यकार पतंजलि शेषावतार कहे जाते हैं।

(३) 'परमार्थसार' नामक सस्कृत ग्रथ के रचयिता।

[ला० त्रि० प्र०]

संतसाहित्य 'सत' शब्द सस्कृत 'सत्' के प्रथमा का बहुवचनात रूप है, जिसका अर्थ होता है सज्जन और धार्मिक व्यक्ति। हिंदी में साधु पुरुषों के लिये यह शब्द व्यवहार मे आया। कबीर, सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास आदि पुराने कवियो ने इस शब्द का व्यवहार साधु और परोपकारी पुरुष के अर्थ में बहुशः किया है और उसके लक्षण भी दिए हैं। यह आवश्यक नही कि सत उसे ही कहा जाय जो निर्गुण ब्रह्म का उपासक हो। इसके अतर्गत लोकमंगलविधायी सभी सत्पुरुष आ जाते हैं, किंतु आधुनिक कतिपय साहित्यकारों ने निर्गुणिए भक्तो को ही 'संत' की अभिधा दे दी और अब यह शब्द उसी अर्थ में चल पडा है। अत 'सतसाहित्य' का अर्थ हुआ, वह साहित्य जो निर्गुणिए भक्तो द्वारा रचा जाय।

लोकोपकारी सत के लिये यह आवश्यक नही कि वह शास्त्रज्ञ तथा भाषाविद् हो। उसका लोकहितकर कार्य ही उसके सतत्व का मानदड होता है। हिंदी साहित्यकारों में जो 'निर्गुणिए सत' हुए उनमें अधिकाश अपढ किंवा अल्पशिक्षित ही थे। शास्त्रीय ज्ञान का आधार न होने के कारण ऐसे लोग अपने अनुभव की ही बातें कहने को बाध्य थे। अत इनके सीमित अनुभव में बहुत सी ऐसी बातें हो सकती हैं, जो शास्त्रो के प्रतिकूल ठहरें। अल्पशिक्षित होने के कारण

से ज्योतिष का, योगिराज शिवदयाल शास्त्री से योग, वेदाग एवं तंत्र तथा कविराज धर्मदास से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी।

१९२५ ई० में ये काशी हिंदू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद महाविद्यालय के प्राध्यापक नियुक्त हुए और १९३८ ई० में इसके प्रिंसिपल हो गए। वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय मे आयुर्वेद विभाग खुलने पर वहाँ संमानित विभागाध्यक्ष और बाद मे प्राचार्य नियुक्त हुए।

सन् १९५० ई० में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेंद्रप्रसाद ने आपको अपना निजी चिकित्सक नियुक्त किया और उनकी मृत्यु तक उनके निजी चिकित्सक रहे। इस रूप में भी आपने आयुर्वेद-जगत् का गौरववर्धन किया।

ये अखिल भारतीय सरयूपारीण पंडित परिषद् और काशी-शास्त्रार्थ-महासभा के अध्यक्ष, काशी विद्वत्परिषद् और विद्वत्प्रतिनिधि-सभा के संरक्षक भी थे। ये वाराणसेय शास्त्रार्थ महाविद्यालय के स्थायी अध्यक्ष और अर्जुन दर्शनानद आयुर्वेद महाविद्यालय, वाराणसी के सस्थापक भी थे। १९३८ ई० में ये हिंदू विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में भारतीय चिकित्सा परिषद् के सदस्य चुने गए थे।

काशी की परंपरा के अनुसार प्रारभ से ही शास्त्री जी गरीब तथा असहाय विद्यार्थियो को सहायता देकर घर पर ही उन्हे विद्यादान देते रहे।

सन् १९५५ ई० में 'पद्मभूषण' के अलंकरण से आपको विभूषित किया गया। आपको यह उपाधि भारत सरकार द्वारा संस्कृत और आयुर्वेद के प्रति की गई सेवाओ के लिये प्रदान की गई। किंतु १९६७ ई० मे हिंदी आदोलन के समय जब नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ने हिंदीसेवी विद्वानो से सरकारी अलंकरण के त्याग का अनुरोध किया तब आपने भी अलकरण का त्याग कर दिया। नाडीज्ञान तथा रोगनिदान के आप अन्यतम आचार्य थे। रोगी की नाडी देखकर रोग और उसके स्वरूप का सटीक निदान तत्काल कर देना आपकी सबसे बडी विशेषता रही।

२३ सितंबर, १९६९, मंगलवार को ८२ वर्ष की आयु में अगस्त-कुडा स्थित निवासस्थान पर शास्त्री जी का देहात हो गया। मृत्यु के कुछ देर पूर्व उन्होने कहा—'अब त्रयोदशी हो गई, अच्छा मुहूर्त आ गया है।' आपने पद्मासन लगाकर बैठने की कोशिश की किंतु वह संभव न हो पाने के कारण आपने प्राणायाम किया और कुछ श्लोको का उच्चारण करते हुए प्राण त्याग दिए। [रा०]

शिवाजी भोंसले ईसा की सत्रहवी शताब्दी में दक्षिण भारत में स्वतत्र मराठा राज्य के सस्थापक। शिवनेर दुर्ग मे अप्रैल, १६२७ ई०, अथवा (जेधेशाची शकावली के अनुसार) फरवरी, १६३० ई० में जन्म लिया। पूना जिले में चालीस हजार हून की वार्षिक आयवाली पैतृक जागीर थी। वही माता जीजाबाई और गुरु दादाजी कोडदेव के सरक्षण में बाल्यावस्था बीती। पिता, शाहजी भोसले, पहले निजामशाही और बाद में आदिलशाही राज्य के उच्च पदाधिकारी थे। शिवाजा ने १६४५ में 'हिंदवी स्वराज्य' की स्थापना का व्रत लिया और आगामी वर्ष में तोरण दुर्ग पर अधिकार कर लिया। १६४७ मे कोडदेवजी परलोक सिधारे। अगले वर्ष शाहजी जिंजी दुर्ग में बंदी बनाए गए। मुगल साम्राट् शाहजहाँ का पाँच हजारी मसबदार बनना स्वीकार कर शिवाजी ने अपने पिता को मुक्त करा लिया। १६५६ मे जावली तथा अन्य दुर्ग जीतकर इन्होने अपने राज्य को दुगुना कर लिया। १६५९ में बीजापुरी सेनापति अफजलखाँ को मारकर उसकी सेना को खदेड दिया। १६६३ में पूना में ठहरे हुए मुगल सेनापति शायस्ता खाँ पर रात में एकाएक आक्रमण कर उसे क्षति पहुँचाई। अगले वर्ष सूरत शहर को लूटा। उसी वर्ष शाहजी का देहात हुआ।

मुगल साम्राट् औरगजेब ने शिवाजी के दमनार्थ १६६५ में राजा जयसिंह को दक्षिण भेजा। शत्रु के सैन्यबल के विरुद्ध सफल होने की सभावना न देखकर शिवाजी ने पुरंदर नामक स्थान पर सधि कर ली। उक्त सधि के अनुसार चार लाख हून की वार्षिक आयवाले तेईस दुर्ग मुगलो को दे दिए गए और दक्षिण में मुगल सेना के सहायतार्थ पाँच हजार मराठा अश्वारोही सैनिक भेजने का वचन भी दिया गया। वचनबद्ध होने के कारण शिवाजी ने बीजापुर के विरुद्ध मुगलो को सहायता दी।

राजा जयसिंह की प्रेरणा से १६६६ में शिवाजी आगरा में औरगजेब के दरबार में उपस्थित हुए। वहाँ यथोचित सम्मान के अभाव पर क्षोभ प्रकट करने के कारण उन्हे तीन मास कड़ी देखरेख में बिताने पडे। तदुपगत पूर्वनिश्चित योजनानुसार रात मे वे आगरा से निकल भागे और मथुरा, इलाहाबाद, बनारस, गया आदि शहरो से होते हुए राजगढ़ पहुँच गए। आगामी तीन वर्ष शिवाजी ने शासन-सगठन में बिताए और राजा जसवत सिंह एवं शाहजादा शाहआलम की मध्यस्थता से मुगलों से मैत्री सबध बनाए रखा। तत्पश्चात् एक एक करके उन किलो को हस्तगत करना प्रारभ किया जो पुरंदर की सधि के अनुसार मुगलो को दिए गए थे। १६७० में सूरत शहर को दुबारा लूटा। १६७४ मे शिवाजी ने रायगढ़ में छत्रपति की उपाधि धारण की। जब दक्षिण से मुगल सैनिक उत्तर पश्चिम सीमात प्रदेश की ओर भेज दिए गए तो सुअवसर पाकर १६७७ मे शिवाजी ने कर्णाटक तथा मैसूर पठार के अभियानो में इतने दुर्ग लिए कि उनकी वार्षिक आय में लगभग बीस लाख हून की वृद्धि हो गई।

राज्यविस्तार के साथ साथ शिवाजी ने शासनव्यवस्था पर भी समुचित ध्यान दिया। असैनिक झगडो का निपटारा पचायतो द्वारा किया जाता था। राजस्व के रूप मे भूमि की उपज का २/५ लिया जाता था। लगान वसूली के लिये राज्य के कर्मचारी नियुक्त थे। मुगलई प्रदेशो से चौथ एवं सरदेशमुखी उगाहने का विधान था। परामर्शदात्री अष्टप्रधान परिषद् मे पेशवा का स्थान सर्वोपरि था। आयव्यय का निरीक्षण अमात्य के सुपुर्द था। राज्य की प्रमुख घटनाओं को लिपिबद्ध करना मंत्री का काम था। गृहमंत्री का कार्य सचिव करता था। परराष्ट्रमंत्री सुमत कहलाता था। धार्मिक विषय पडितराव के अधीन थे। न्याय विभाग का कार्य न्यायाधीश की देखरेख मे होता था।

१७३२ वि०)। नानकपंथ के नवें गुरु श्री गोविंद सिंह ने अपने सप्रदाय को सेना के रूप में परिणत कर दिया था। इसी संतपरपरा में आगे चलकर राधास्वामी सप्रदाय (१९ वीं शती) अस्तित्व में आया। यह सतपरपरा राजा राममोहन राय (ब्रह्मसमाज, १८३५-६०), स्वामी दयानद (स० १८८१-१९४१ वि०—आर्यसमाज), स्वामी रामतीर्थ (स० १९३०-६३), तक चली आई है। महात्मा गाधी को इस परपरा की अतिम कडी कहा जा सकता है।

साहित्य—जैसा पहले कहा जा चुका है, इन सप्रदायो और पथों के वहुसख्यक आदि गुरु अशिक्षित ही थे। अत वे मौखिक रूप मे अपने विचारों और भावों को प्रकट किया करते थे। शिष्य-मडल उन्हे याद कर लिया करता था। आगे चलकर उन्ही उपदेशात्मक कथनो को शिष्यो द्वारा लिपिबद्ध कर लिया गया और वही उनका धर्मग्रथ हो गया। इन कथनों एवं वचनों के संग्रह में कहीं कही उत्तम और सामान्य काव्य की वानगी भी मिल जाती है। अत: इन पथकार सतो में कतिपय ऐसे संत भी हैं जो मुख्यत सत होते हुए भी गौणत कवि भी हैं। इसमें कइयो ने अपनी शास्त्रीय शिक्षा के अभाव को वहुश्रुतता द्वारा दूर करने का प्रयास अवश्य किया है, वह भी दर्शन के क्षेत्र में, साहित्य के क्षेत्र में नहीं। इनमें वहुतों का साहित्य के स्वरूप से परिचय तक नहीं था किंतु उनकी अनुभूति की तीव्रता किसी भी भावुक के चित्त को आकृष्ट कर सकती है। ऐसे सतों मे कबीर का स्थान प्रमुख है। हिंदू तथा मुस्लिम दोनो की धार्मिक परपराओ एवं रूढ़िगत कतिपय मान्यताओं पर, विना दूरदर्शितापूर्वक विचार किए, उन्होंने जो व्यंग्यात्मक प्रहार किए और अपने को सभी ऋषियों मुनियों से आचारवान् एव सच्चरित्र घोषित किया, इसके प्रभाव से समाज का निम्न वर्ग अप्रभावित न रह सका एव आधुनिक विदेशी सभ्यता में दीक्षित एव भारतीय सभ्यता तथा सस्कृति से पराङ्मुख कतिपय जनों को उसमें सच्ची मानवता का सदेश सुनने को मिला। रवींद्रनाथ ठाकुर ने ब्रह्मसमाजी विचारों से मेल खाने के कारण कबीर की वानियों का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया और उससे आजीवन प्रभावित भी रहे। कबीर की रचना मुख्यत साखियों और पदों में हुई है। इनमें उनकी स्वानुभूतियाँ तीव्र रूप में सामने आई हैं। संतपरपरा में हिंदी के पहले संतसाहित्यस्रष्टा जयदेव हैं। ये गीतगोविंदकार जयदेव से भिन्न हैं। सधना, त्रिलोचन, नामदेव, सेन नाई, रैदास, पीपा, धन्ना, नानकदेव, अमरदास, धर्मदास, दादूदयाल, वषना जी, वावरी साहिवा, गरीवदास, सुंदरदास, दरियादास, दरिया साहव, सहजो वाई आदि इस परंपरा के प्रमुख सत हैं।

संतवाणी की विशेषता यही है कि वह सर्वत्र मानवतावाद का समर्थन करती है। [ला० त्रि० प्र०]

संयुक्त समाजवादी दल (संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी)

मई १९६४ ई० में प्रजा समाजवादी दल (प्रजा सोशलिस्ट पार्टी) तथा समाजवादी दल (सोशलिस्ट पार्टी) के रामगढ और गया अधिवेशनों में विलयन का निश्चय किया गया और ६ जून, १९६४ ई० को दिल्ली में दोनो दलों की संयुक्त वैठक में विलयन की पुष्टि की गई। इस प्रकार सयुक्त समाजवादी दल दोनो के एकीकरण से वना।

इस दल का स्थापनाधिवेशन २९ जनवरी, १९६५ ई० को वाराणसी में हुआ। इस अधिवेशन के पूर्व २६ जनवरी को ससोपा की राष्ट्रीय समिति की वैठक सारनाथ (वाराणसी) में हुई। इस वैठक की अध्यक्षता दल के अध्यक्ष श्री एस० एम० जोशी ने की। दिल्ली में हुई समिति की वैठक की कार्रवाई पढी जाने पर उसे गलत बताया गया और यह आरोप किया गया कि प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर कार्रवाई तोड मरोडकर लिखी गई। वैठक की समाप्ति तक कोई निर्णय नहीं हो सका। दूसरे दिन की वैठक में प्रतिनिधित्व का प्रश्न हल हो गया और सशोधित कार्रवाई की पुष्टि हुई। किंतु वहुमत के तीव्र विरोध के कारण स्थापनाधिवेशन मे डा० राममनोहर लोहिया को आमंत्रित करने का सर्वाधिक विवादग्रस्त और वहुचर्चित प्रस्ताव पास न हो सका।

स्थापना अधिवेशन मे अध्यक्ष श्री० एस० एम० जोशी ने ध्वज फहराते हुए देश में मौलिक क्रांति करने के लिये पार्टी के सदस्यों का आह्वान किया। इस अधिवेशन में लगभग २१ सौ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। अधिवेशन के प्रथम दिन लोहियासमर्थक प्रतिनिधियों को एक बिल्ला वाँटा गया। बिल्ले पर पार्टी के झडे के ऊपर छपा था—"लोहिया छोडेंगे नहीं पार्टी तोडेंगे नहीं"।

अधिवेशन के तीसरे दिन समेलन की कारवाई होने के पूर्व ससोपा की राष्ट्रीय समिति की वैठक हुई। इस वैठक में श्री हरिविष्णु कामत ने प्रसोपा पक्ष के १२ सदस्यों के हस्ताक्षर से समेलन से अलग हो जाने की घोषणा की। उस दिन समेलन प्रारभ होते ही श्री जोशी ने प्रतिनिधियो को सूचना दी कि राष्ट्रीय समिति की वैठक मे १२ सदस्यों ने हट जाने की सूचना दी है।

प्रसोपा प्रतिनिधियों के पडाल छोडने के वाद अध्यक्ष श्री एस० एम० जोशी ने कहा कि इसे प्रसोपा का अलग होना नहीं कहा जायगा क्योंकि मैं भी प्रसोपा का हूँ। समेलन मे एक प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ जिसे अध्यक्ष पद से श्री जोशी ने उपस्थित किया था। प्रस्ताव मे कहा गया कि—"प्रसोपा तथा सोपा का एकीकरण अस्थायी नहीं था वल्कि स्थायी था। रामगढ तथा गया समेलनों में निर्णय द्वारा दोनो दल एक हो गए। सयुक्त-सोशलिस्ट पार्टी दोनों के एकीकरण से वनी है। अव न कोई सोशलिस्ट पार्टी है, न प्रजा सोशलिस्ट पार्टी। प्रसोपा या सोपा के नाम पर कोई व्यक्ति या समूह कार्य नहीं कर सकता। उनका कार्य उनका व्यक्तिगत होगा। सोशलिस्ट पार्टी ने जून, १९६४ ई० की वैठक में अपना चुनावचिह्न झोपडी माना है और चुनाव आयोग ने भी इसे मान्यता दी है। यह समेलन स्पष्ट शब्दों में पुन घोषित करना चाहता है कि सोपा और प्रसोपा एकीकरण से ससोपा वनी।"

किंतु १९६७ ई० के महानिर्वाचन के पूर्व चुनाव आयोग ने प्रसोपा को चुनावचिह्न झोपडी और ससोपा को वरगद प्रदान किया।

स्थापना अधिवेशन में अध्यक्ष श्री जोशी ने निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए—(१) धनी और गरीवों के वीच उत्तरोत्तर वढता जा रहा अतर यदि समाप्त नहीं किया जा सकता तो कम किया जाय

इन संतों ने विषय को ही महत्व दिया है, भाषा को नहीं। इनकी भाषा प्रायः अनगढ़ और पँचरंगी हो गई है। काव्य में भावों की प्रधानता को यदि महत्व दिया जाय तो सच्ची और खरी अनुभूतियों की सहज एवं साधारणीकृत अभिव्यक्ति के कारण इन संतों में कइयों की बहुतेरी रचनाएँ उत्तम कोटि के काव्य में स्थान पाने की अधिकारिणी मानी जा सकती हैं। परंपरापोषित प्रत्येक बात का आँख मूँदकर ये समर्थन नहीं करते। इनके चिंतन का आधार सर्वमानववाद है। ये मानव मानव में किसी प्रकार का अंतर नहीं मानते। इनका कहना है कि कोई भी व्यक्ति अपने कुलविशेष के कारण किसी प्रकार का वैशिष्ट्य लिए हुए उत्पन्न नहीं होता। इनकी दृष्टि में वैशिष्ट्य दो बातों को लेकर मानना चाहिए: अभिमानत्यागपूर्वक परोपकार या लोकसेवा तथा ईश्वरभक्ति। इस प्रकार स्वतंत्र चिंतन के क्षेत्र में इन संतों ने एक प्रकार की वैचारिक क्रांति को जन्म दिया।

इतिहास—निर्गुणिए संतों की वाणी मानवकल्याण की दृष्टि से जिस प्रकार के धार्मिक विचारों एवं अनुभूतियों का प्रकाशन करती है वैसे विचारों एवं अनुभूतियों को पुरानी हिंदी में बहुत पहले से स्थान मिलने लगा था। विक्रम की नवीं शताब्दी में बौद्ध सिद्धों ने जो रचनाएँ प्रस्तुत कीं उनमें वज्रयान तथा सहजयान संबंधी साप्रदायिक विचारों एवं साधनाओं के उपन्यसन के साथ साथ अन्य संप्रदाय के विचारों का प्रत्याख्यान बराबर मिलता है। उसके अनंतर नाथपंथी योगियों तथा जैन मुनियों की जो बानियाँ मिलती हैं, उनमें भी यही भावना काम करती दिखाई पड़ती है। बौद्धों में परमात्मा या ईश्वर को स्थान प्राप्त न था, नाथपंथियों ने अपने वचनों में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा की। इन सभी रचनाओं में नीति को प्रमुख स्थान प्राप्त है। ये जगह जगह लोक को उपदेश देते हुए दिखाई पड़ते हैं। पुरानी हिंदी के बाद जब हिंदी का विकास हुआ तब उसपर भी पूर्ववर्ती साहित्य का प्रभाव अनिवार्यतः पड़ा। इसीलिये हिंदी के आदिकाल में दोहों में जो रचनाएँ मिलती हैं उनमें से अधिकांश उपदेशपरक एवं नीतिपरक हैं। उन दोहों में कतिपय ऐसे भी हैं जिनमें काव्य की आत्मा झलकती सी दिखाई पड़ जाती है। किंतु इतने से ही उसे काव्य नहीं कहा जा सकता।

पंद्रहवीं शती विक्रमी के उत्तरार्ध से संतपरंपरा का उद्भव मानना चाहिए। इन संतों की बानियों में विचारस्वातंत्र्य का स्वर प्रमुख रहा। वैष्णव धर्म के प्रधान आचार्य रामानुज, निंबार्क तथा मध्व विक्रम की बारहवीं एवं तेरहवीं शती में हुए। इनके माध्यम से भक्ति की एक वेगवती धारा का उद्भव हुआ। इन आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी पर जो भाष्य प्रस्तुत किए, भक्ति के विकास में उनका प्रमुख योग है। गोरखनाथ के चमत्कारप्रधान योगमार्ग के प्रचार से भक्ति के मार्ग में कुछ बाधा अवश्य उपस्थित हुई थी, जिसकी ओर गोस्वामी तुलसीदास ने संकेत भी किया है .

"गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग।"

तथापि वह उत्तरोत्तर विकसित होती गई। उसी के परिणाम-स्वरूप उत्कल में संत जयदेव, महाराष्ट्र में वारकरी संप्रदाय के प्रसिद्ध संत नामदेव तथा ज्ञानदेव, पश्चिम में संत सधना तथा वेनी और कश्मीर में संत लालदेव का उद्भव हुआ। इन संतों के बाद प्रसिद्ध संत रामानंद का प्रादुर्भाव हुआ, जिनकी शिक्षाओं का जनसमाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। यह इतिहाससिद्ध सत्य है कि जब किसी विकसित विचारधारा का प्रवाह अवरुद्ध करके एक दूसरी विचारधारा का समर्थन एवं प्रचार किया जाता है तब उसके सिद्धांतों के युक्तियुक्त खंडन के साथ उसकी कतिपय लोकप्रिय एवं लोकोपयोगी विशेषताओं को आत्मीय भी बना लिया जाता है। जगद्गुरु शंकर, राघवानंद, रामानुज, रामानंद आदि सबकी दृष्टि यही रही है। श्रीसंप्रदाय पर नाथपंथ का प्रभाव पड चुका था, वह उदारतावादी हो गया था। व्यापक लोकदर्शन के फलस्वरूप स्वामी रामानंद की दृष्टि और भी उदार हो गई थी। इसीलिये उनके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शिष्यों में जुलाहे, रैदास, नाई, डोम आदि सभी का समावेश देखा जाता है। इस काल में जो सत्याभिनिवेशी भक्त या साधु हुए उन्होंने सत् के ग्रहणपूर्वक असत् पर निर्मम प्रहार भी किए। प्राचीन काल के धर्म की जो प्रतीकप्रधान पद्धति चली आ रही थी, सामान्य जनता को, उसका बोध न होने के कारण, कबीर जैसे संतों के व्यंग्यप्रधान प्रत्यक्षपरक वाग्बाण आकर्षक प्रतीत हुए। इन संतों में बहुतों ने अपने सत्कर्तव्य की इतिश्री अपने नाम से एक नया 'पंथ' निकालने में समझी। उनकी सामूहिक मानवतावादी दृष्टि संकीर्णता के घेरे में जा पड़ी। इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक नाना पंथ एक के बाद एक अस्तित्व में आते गए। सिक्खों के आदि गुरु नानकदेव ने (सं० १५२६-९५) नानकपंथ, दादू दयाल ने (१६१० १६६०) दादूपंथ, कबीरदास ने कबीरपंथ, बाबरी ने बावरीपंथ, हरिदास (१७ वीं शती उत्तरार्ध) ने निरंजनी संप्रदाय और मलूकदास ने मलूकपंथ को जन्म दिया। आगे चलकर बाबालाली संप्रदाय, धामी संप्रदाय, साध संप्रदाय, धरनीश्वरी संप्रदाय, दरियादासी संप्रदाय, दरियापंथ, शिवनारायणी संप्रदाय, गरीबपंथ, रामसनेही संप्रदाय आदि नाना प्रकार के पंथों एवं संप्रदायों के निर्माण का श्रेय उन संतों को है जिन्होंने सत्यदर्शन एवं लोकोपकार का व्रत ले रखा था और बाद में संकीर्णता को गले लगाया। जो संत निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश देते हुए राम, कृष्ण आदि को साधारण मनुष्य के रूप में देखने के आग्रही थे वे स्वयं ही अपने आपको राम, कृष्ण की भाँति पुजाने लगे। संप्रदाय-पोषकों ने अपने आदि गुरु को ईश्वर या परमात्मा सिद्ध करने के लिये नाना प्रकार की कल्पित आख्यायिकाएँ गढ डालीं। यही कारण है कि उन सभी निर्गुणिए संतों के वृत्त अपने पंथ या संप्रदाय की पिटारी में ही बंद होकर रह गए। इधर साहित्य में जब से शोधकार्य ने बल पाया है तब से साहित्यग्रंथों के कतिपय पृष्ठों में उनकी चर्चा हो जाती है, जनसामान्य से उनका कोई संपर्क नहीं रह गया है। इन संप्रदायों में दो एक संप्रदाय ऐसे भी देख पड़े, जिन्होंने अपने जीवन में भक्ति को गौण किंतु कर्म को प्रधानता दी। सत्नामी संप्रदायवालों ने मुगल सम्राट् औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह का झंडा ऊपर लहराया था (सं०

विश्व की प्राचीन प्रागैतिहासिक संस्कृतियों का जो अध्ययन हुआ है, उसमें कदाचित् आर्यजाति से संबद्ध अनुशीलन का विशिष्ट स्थान है। इस वैशिष्ट्य का कारण यही ऋग्वेदसंहिता है। आर्य जाति की आद्यतम निवासभूमि, उनकी संस्कृति, सभ्यता, सामाजिक जीवन आदि के विषय में जो अनुशीलन हुए हैं, ऋक्संहिता उन सबका सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रामाणिक स्रोत रहा है। पश्चिम के विद्वानों ने संस्कृत भाषा और ऋक्संहिता से परिचय पाने के कारण ही तुलनात्मक भाषाविज्ञान के अध्ययन को सही दिशा दी तथा आर्यभाषाओं के भाषाशास्त्रीय विवेचन में प्रौढ़ि एवं शास्त्रीयता का विकास हुआ। भारत के वैदिक ऋषियों और विद्वानों ने अपने वैदिक वाङ्मय को मौखिक और श्रुतिपरंपरा द्वारा प्राचीनतम रूप मे अत्यंत सावधानी के साथ सुरक्षित और अविकृत बनाए रखा। किसी प्रकार के ध्वनिपरक, मात्रापरक, यहाँ तक कि स्वर (ऐक्सेंट) परक परिवर्तन से पूर्णत बचाते रहने का निःस्वार्थ भाव से वैदिक वेदपाठी सहस्राब्दियों तक अथक प्रयास करते रहे। 'वेद' शब्द से मंत्रभाग (संहिताभाग) और 'ब्राह्मण' का बोध माना जाता था। 'ब्राह्मण' भाग के तीन अंश — (१) ब्राह्मण, (२) आरण्यक और (३) उपनिषद् कहे गए हैं। लिपिकला के विकास से पूर्व मौखिक परंपरा द्वारा वेदपाठियों ने इनका संरक्षण किया। बहुत सा वैदिक वाङ्मय धीरे धीरे लुप्त हो गया है। पर आज भी जितना उपलब्ध है उसका महत्व असीम है। भारतीय दृष्टि से वेद को अपौरुषेय माना गया है। कहा जाता है, मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने मंत्रों का साक्षात्कार किया। आधुनिक जगत् इसे स्वीकार नहीं करता। फिर भी यह माना जाता है कि वेदव्यास ने वैदिक मंत्रों का संकलन करते हुए संहिताओं के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित किया। अत. संपूर्ण भारतीय संस्कृति वेदव्यास की युग युग तक ऋणी बनी रहेगी।

संस्कृत भाषा—ऋक्संहिता की भाषा को संस्कृत का आद्यतम उपलब्ध रूप कहा जा सकता है। यह भी माना जाता है कि उक्त संहिता के प्रथम और दशम मंडल की भाषा अपेक्षाकृत परकालवर्ती है तथा शेष मंडलों की भाषा प्राचीनतर है। कुछ विद्वान् प्राचीन वैदिक भाषा को परवर्ती पाणिनीय (लौकिक) संस्कृत से भिन्न मानते हैं। पर यह पक्ष भ्रमपूर्ण है। वैदिक भाषा अभ्रांत रूप से संस्कृत भाषा का आद्य उपलब्ध रूप है। पाणिनि ने जिस संस्कृत भाषा का व्याकरण लिखा है उसके दो अंश हैं — (१) वैदिक भाषा (जिसे अष्टाध्यायी में 'छंदस्' कहा गया है) और (२) भाषा (जिसे लोकभाषा या लौकिक भाषा के रूप में रखा गया है)। 'व्याकरण महाभाष्य' नाम से प्रसिद्ध आचार्य पतंजलि के शब्दानुशासन में भी वैदिक भाषा और लौकिक भाषा के शब्दों का आरंभ में उल्लेख हुआ है। 'संस्कृत नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः' के द्वारा जिसे देवभाषा या संस्कृत कहा गया है उसे संभवतः यास्क, पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि के समय तक छंदोभाषा (वैदिक भाषा) और लोकभाषा के दो नामों, स्तरों और रूपों द्वारा व्यक्त किया गया था। बहुत से विद्वानों का मत है कि भाषा के लिये 'संस्कृत' का प्रयोग सर्वप्रथम वाल्मीकिरामायण के सुंदरकांड (३० सर्ग) में हनुमान् द्वारा विशेषणरूप से (संस्कृता वाक्) किया गया है। भारतीय परंपरा की किंवदंती के अनुसार संस्कृत भाषा पहले अव्याकृत थी, उसके प्रकृति, प्रत्ययादि का विश्लिष्ट विवेचन नहीं हुआ था। देवों द्वारा प्रार्थना करने पर देवराज इंद्र ने प्रकृति, प्रत्यय आदि के विश्लेषण विवेचन का उपायात्मक विधान प्रस्तुत किया। इसी 'संस्कार' विधान के कारण भारत की प्राचीनतम आर्यभाषा का नाम 'संस्कृत' पड़ा। ऋक्संहिताकालीन साधुभाषा तथा 'ब्राह्मण', 'आरण्यक' और 'दशोपनिषद्' की साहित्यिक वैदिक भाषा के अनंतर उसी का विकसित स्वरूप 'लौकिक संस्कृत' या 'पाणिनीय संस्कृत' हुआ। इसे ही 'संस्कृत' या संस्कृत भाषा (साहित्यिक संस्कृत भी) कहा गया। पर आज के कुछ भाषाविद् संस्कृत को संस्कार द्वारा बनाई गई कृत्रिम भाषा मानते हैं। ऐसा मानते हैं कि इस संस्कृत का मूलाधार पूर्वतर काल की उदीच्य, मध्यदेशीय या आर्यावर्तीय विभाषाएँ थीं। 'विभाषा' या 'उदीचाम्' शब्द से पाणिनिसूत्रों में इनका उल्लेख उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त भी 'प्राच्य' आदि बोलियाँ थीं। परंतु 'पाणिनि' ने भाषा का एक सार्वदेशिक और सर्वभारतीय परिष्कृत रूप स्थिर कर दिया। धीरे धीरे पाणिनिसंमत भाषा का प्रयोगरूप और विकास प्राय स्थायी हो गया। पतंजलि के समय तक 'आर्यावर्त' (आर्यनिवास) के शिष्ट जनों में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। [प्रागादर्शात्प्रत्यक्कालकवनाद्दक्षिणेन हिमवंतमुत्तरेण पारियात्रमेतस्मिन्नार्यावर्ते आर्यनिवासे .. (महाभाष्य, ६।३।१०९)] पर शीघ्र ही वह समग्र भारत के द्विजातिवर्ग और विद्वत्समाज की सांस्कृतिक और आकर भाषा हो गई।

संस्कृत भाषा के विकासस्तरों की दृष्टि से अनेक विद्वानों ने अनेक रूप से इसका ऐतिहासिक कालविभाजन किया है। सामान्य सुविधा की दृष्टि से अधिक मान्य निम्नांकित कालविभाजन दिया जा रहा है — (१) (आदिकाल) वेदसंहिताओं और वाङ्मय का काल — ई० पू० ४५०० से ८०० ई० पू० तक। (२) (मध्यकाल) ई० पू० ८०० से ८०० ई० तक जिसमें शास्त्रों, दर्शनसूत्रों, वेदांग ग्रंथों, काव्यों तथा कुछ प्रमुख साहित्यशास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण हुआ, (३) (परवर्तीकाल) ८०० ई० से लेकर १६०० ई० या अब तक का आधुनिक काल—जिस युग में काव्य, नाटक, साहित्यशास्त्र, तंत्रशास्त्र, शिल्पशास्त्र आदि के ग्रंथों की रचना के साथ साथ मूल ग्रंथों की व्याख्यात्मक कृतियों की महत्वपूर्ण सर्जना हुई। भाष्य, टीका, विवरण, व्याख्यान आदि के रूप में जिन सहस्रों ग्रंथों का निर्माण हुआ उनमें अनेक भाष्य और टीकाओं की प्रतिष्ठा, मान्यता, और प्रसिद्धि मूलग्रंथों से भी कहीं कहीं अधिक हुई। इस प्रकार कहा जा सकता है। कि आधुनिक विद्वानों के अनुसार भी संस्कृत भाषा का अखंड प्रवाह पाँच सहस्र वर्षों से बहता चला आ रहा है। भारत में यह आर्यभाषा का सर्वाधिक महत्वशाली, व्यापक और संपन्न स्वरूप है। इसके माध्यम से भारत की उत्कृष्टतम मनीषा, प्रतिभा, अमूल्य चिंतन मनन, विवेक, रचनात्मक सर्जना और वैचारिक प्रज्ञा का अभिव्यंजन हुआ है। आज भी सभी क्षेत्रों में इस भाषा के द्वारा ग्रंथनिर्माण की क्षीण धारा अविच्छिन्न रूप से बह रही है। आज भी यह भाषा, अत्यंत सीमित क्षेत्र में ही सही, बोली जाती है। इसमें व्याख्यान होते हैं, शास्त्रार्थ होते हैं और भारत के विभिन्न प्रादेशिक भाषाभाषी पंडितजन इसका परस्पर वार्तालाप में प्रयोग करते हैं। हिंदुओं के सांस्कारिक कार्यों में आज भी यह प्रयुक्त होती

और जितनी भी तेजी से हो संपत्ति बढाई जाय। इसके लिये किफायत का सहारा लेकर बचत में वृद्धि करनी होगी। विद्यमान परिस्थितियों में केवल अमीरों से ही बचत की आशा की जा सकती है बशर्ते अधिकतम और न्यूनतम आय का अनुपात १ : १० रखने का कडाई से पालन किया जाय और व्यय की अधिकतम सीमा पर नियत्रण करके धनिको को किफायत के लिये बाध्य किया जा सकता है। जब तक प्रत्येक व्यक्ति को एक सौ रुपया नही मिलता तब तक किसी की अधिकतम आय एक हजार रुपए से ऊपर न होने दी जाय। (२) स्कूली शिक्षा पाने की अवस्था के सभी लडको और लड़कियो के स्कूल जाति, धर्म या धन का भेद किए बिना एक ही प्रकार के हो। (३) सभी छात्रो को कम से कम तीन भाषाएँ पढाई जायँ। मातृभाषा, दक्षिण की द्रविड परिवार की चार भाषाओं में से कोई एक भाषा उत्तर मे पढाई जाय और अग्रेजी भाषा सभी जगह। (४) भारत सरकार की किसी भी अखिल भारतीय सेवा में जाने से पूर्व दक्षिण की द्रविड परिवार की किसी एक भाषा का ज्ञान अनिवार्य हो। (५) समाज के पिछड़े वर्गों को अपने भाग्यनिर्माण और नई समाजव्यवस्था की रचना के लिये ठोस अधिकार प्राप्त हो। उनके लिये नौकरियो में स्थान सुरक्षित रहे और संरक्षण में पिछडा वर्ग कमीशन द्वारा सुझाया गया अनुपात न्यूनतम हो। अन्याय के प्रतिरोध और माँगो की पूर्ति के लिये पिछडे वर्गों के दलो और संघटनो द्वारा प्रारभ आदोलनो मे सक्रिय सहयोग और सहायता दी जाय। कृषि और उद्योग की वस्तुओ के मूल्यो के बीच उचित संबध हो या गल्ले के उत्पादन के लिये विशेष प्रोत्साहन दिया जाय। (७) ट्रेड यूनियनो, सहकारी सस्थाओ, पचायत राजसस्थाओ और युवक सघटनो मे काम किया जाय। (८) कक्षाओ, कैंपो, अध्ययन मंडलो के आयोजन और पुस्तिकाओं तथा साहित्य के प्रकाशन द्वारा जीवन के समाजवादी मूल्यो पर विशेष जोर देते हुए कार्यकर्ताओ को समाजवाद के सिद्धात और व्यवहार की ट्रेनिंग तथा शिक्षा दी जाय।

ससोपा ने सर्वप्रथम १९६७ ई० के चतुर्थ महानिर्वाचन में भाग लिया। इस निर्वाचन में लोकसभा के कुल ५२० सीटो में से ५११ के लिये चुनाव हुआ। इस दल ने ११२ सीटो पर अपने उम्मीदवार खड़े किए जिसमें से २३ उम्मीदवार विजयी घोषित हुए।

विभिन्न राज्यों की विधानसभाओ मे कुल ३४८७ सीटो में से इस दल ने ८१३ सीटो पर अपने उम्मीदवार खड़े किए जिनमें से १८० उम्मीदवार विजयी घोषित हुए। १९६७ ई० के महानिर्वाचन के बाद बिहार और उत्तर प्रदेश मे बनी संयुक्त विधायक दल की सरकारो मे इसके क्रमश ५ और ३ नेताओ ने मत्रीपद ग्रहण किया। केरल, पश्चिम बगाल और मध्य प्रदेश की संयुक्त विधायक दल की सरकारो में भी इस दल के नेताओ ने भाग लिया।

श्री जोशी के बाद बिहार के श्री कपूंरी ठाकुर इस दल के दूसरे अध्यक्ष हुए। [रा०]

संवत् समयगणना का मापदड—भारतीय समाज मे अनेक प्रचलित सवत् हैं। मुख्य रूप से दो सवत् चल रहे हैं, प्रथम विक्रम संवत् तथा दूसरा शक संवत्। विक्रम सवत् ई० पू० ५८ वर्ष प्रारंभ हुआ। यह संवत् मालव गण के सामूहिक प्रयत्नो द्वारा गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रम के नेतृत्व में उस समय विदेशी माने जानेवाले शक लोगो की पराजय के स्मारक रूप में प्रचलित हुआ। जान पडता है, भारतीय जनता के देशप्रेम और विदेशियो के प्रति उनकी भावना सदा जागृत रखने के लिये जनता ने सदा से इसका प्रयोग किया है क्योकि भारतीय सम्राटो ने अपने ही संवत् का प्रयोग किया है। इतना निश्चित है कि यह सवत् मालव गण द्वारा जनता की भावना के अनुरूप प्रचलित हुआ और तभी से जनता द्वारा ग्राह्य एवं प्रयुक्त है। इस सवत् के प्रारभिक काल में यह कृत, तदनतर मालव और अंत में विक्रम सवत् रह गया। यही अतिम नाम इस सवत् के साथ जुडा हुआ है। शक सवत् के विषय मे बुद्धुओ का मत है कि इसे उज्जयिनी के क्षत्रप चष्टन ने प्रचलित किया। शक राज्यो को चद्रगुप्त विक्रमादित्य ने समाप्त कर दिया पर उनका स्मारक शक संवत् अभी तक भारतवर्ष में चल रहा है। शक सवत् ७८ ई० में प्रारभ हुआ। [रा०]

संस्कृत भाषा और साहित्य विश्व की समस्त प्राचीन भाषाओ और उनके साहित्य (वाङ्मय) में सस्कृत का अपना विशिष्ट महत्व है। यह महत्व अनेक कारणो और दृष्टियो से है। भारत के सास्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन एवं विकास के सोपानो की संपूर्ण व्याख्या—सस्कृत वाङ्मय के माध्यम से आज उपलब्ध है। सहस्राब्दियो से इस भाषा और इसके वाङ्मय को — भारत में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त रही है। भारत की यह सास्कृतिक भाषा रही है। सहस्राब्दियो तक समग्र भारत को सास्कृतिक और भावात्मक एकता मे आबद्ध रखने का इस भाषा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसी कारण भारतीय मनीषा ने इस भाषा को अमरभाषा या देववाणी के नाम से संमानित किया है। ऋग्वेदकाल से लेकर आज तक इस भाषा के माध्यम से सभी प्रकार के वाङ्मय का निर्माण होता आ रहा है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी के छोर तक किसी न किसी रूप में संस्कृत का अध्ययन अध्यापन अब तक होता चल रहा है। भारतीय सस्कृति और विचारधारा का माध्यम होकर भी यह भाषा — अनेक दृष्टियो से — धर्मनिरपेक्ष (सेक्यूलर) रही है। धार्मिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और मानविकी (ह्यूमैनिटी) आदि प्रायः समस्त प्रकार के वाङ्मय की रचना इस भाषा में हुई।

ऋग्वेदसहिता के कतिपय मडलो की भाषा सस्कृतवाणी का सर्वप्राचीन उपलब्ध स्वरूप है। ऋग्वेदसहिता इस भाषा का पुरातनतम ग्रंथ है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ऋग्वेदसहिता केवल सस्कृतभाषा का प्राचीनतम ग्रंथ नही है — अपितु वह आर्य जाति की संपूर्ण ग्रथराशि में भी प्राचीनतम ग्रंथ है। दूसरे शब्दो में, समस्त विश्ववाङ्मय का वह (ऋक्सहिता) सबसे पुरातन उपलब्ध ग्रंथ है। दस मडलो के इस ग्रंथ का द्वितीय से सप्तम मडल तक का अंश प्राचीनतम और प्रथम तथा दशम मडल अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। ऋग्वेदकाल से लेकर आज तक उस भाषा की अखड और अविच्छिन्न परपरा चली आ रही है। ऋक्सहिता केवल भारतीय वाङ्मय की ही अमूल्य निधि नही है — वह समग्र आर्यजाति की, समस्त विश्ववाङ्मय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विरासत है।

सबसे अधिक महत्व का है। ग्रीक, लातिन प्रत्नगाथिक आदि भाषाओं के साथ संस्कृत का पारिवारिक और निकट संबंध है। पर भारत-ईरानी-वर्ग की भाषाओं के साथ (जिनमें अवेस्ता, पहलवी, फारसी, ईरानी, पश्तो आदि बहुत सी प्राचीन नवीन भाषाएँ हैं) संस्कृत की सर्वाधिक निकटता है। भारत की सभी आद्य, मध्यकालीन एवं आधुनिक आर्यभाषाओं के विकास में मूलतः ऋग्वेद—एवं तदुत्तरकालीन संस्कृत का आधारिक एवं औपादानिक योगदान रहा है। आधुनिक भाषावैज्ञानिक मानते हैं कि ऋग्वेदकाल से ही जनसामान्य में बोलचाल की तथाभूत प्राकृत भाषाएँ अवश्य प्रचलित रही होंगी। उन्हीं से पालि, प्राकृत अपभ्रंश तथा तदुत्तरकालीन आर्यभाषाओं का विकास हुआ। परंतु इस विकास में संस्कृत भाषा का सर्वाधिक और सर्वविध योगदान रहा है। यहीं पर यह भी याद रखना चाहिए कि संस्कृत भाषा ने भारत के विभिन्न प्रदेशों, और अंचलों की आर्येतर भाषाओं को भी काफी प्रभावित किया तथा स्वयं उनसे प्रभावित हुई, उन भाषाओं और उनके भाषणकर्ताओं की संस्कृति और साहित्य को तो प्रभावित किया ही, उनकी भाषाओं शब्दकोश उनकी ध्वनिमाला और लिपिकला को भी अपने योगदान से लाभान्वित किया। भारत की दो प्राचीन लिपियाँ—(१) ब्राह्मी (बाएँ से लिखी जानेवाली) और (२) खरोष्ट्री (दाएँ से लेख्य) थीं। इनमें ब्राह्मी को संस्कृत ने मुख्यत अपनाया।

भाषा की दृष्टि से संस्कृत की ध्वनिमाला पर्याप्त संपन्न है। स्वरों की दृष्टि से यद्यपि ग्रीक, लातिन आदि का विशिष्ट स्थान है, तथापि अपने क्षेत्र के विचार से संस्कृत की स्वरमाला पर्याप्त और भाषानुरूप है। व्यंजनमाला अत्यंत संपन्न है। सहस्रों वर्षों तक भारतीय आर्यों के आद्यश्रुतिसाहित्य का अध्ययनाध्यापन गुरु शिष्यों द्वारा मौखिक परंपरा के रूप में प्रवर्तमान रहा क्योंकि कदाचित् उस युग में (जैसा आधुनिक इतिहासज्ञ लिपिशास्त्री मानते हैं), लिपिकला का उद्भव और विकास नहीं हो पाया था। संभवत पाणिनि के कुछ पूर्व या कुछ बाद से लिपि का भारत में प्रयोग चल पड़ा और मुख्यत. 'ब्राह्मी' को संस्कृत भाषा का वाहन बनाया गया। इसी ब्राह्मी ने आर्य और आर्येतर अधिकांश लिपियों की वर्णमाला और वर्णक्रम को भी प्रभावित किया। आदि मध्यकालीन नाना भारतीय द्रविड भाषाओं तथा तमिल, तेलगु आदि की वर्णमाला पर भी संस्कृत भाषा और ब्राह्मी लिपि का पर्याप्त प्रभाव है। ध्वनिमाला और ध्वनिक्रम की दृष्टि से पाणिनिकाल से प्रचलित संस्कृत वर्णमाला आज भी कदाचित् विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय वर्णमाला है। संस्कृत भाषा के साथ साथ समस्त विश्व में प्रत्यक्ष या रोमन अकारांतक के रूप में आज समस्त संसार में इसका प्रचार हो गया है।

संस्कृत साहित्य—यहाँ साहित्य शब्द का प्रयोग 'वाङ्मय' के लिये है। ऊपर वेद संहिताओं का उल्लेख हुआ है। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनकी अनेक शाखाएँ थीं जिनमें बहुत सी लुप्त हो चुकी हैं और कुछ सुरक्षित बच गई हैं जिनके संहिताग्रंथ हमें आज उपलब्ध हैं। इन्हीं की शाखाओं से संबद्ध ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् नामक ग्रंथों का विशाल वाङ्मय प्राप्त है। वेदांगों में सर्वप्रमुख कल्पसूत्र हैं जिनके अवांतर वर्गों के रूप में श्रौत सूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र (शुल्वसूत्र भी है) का भी व्यापक साहित्य बचा हुआ है। इन्हीं की व्याख्या के रूप में समयानुसार धर्मसंहिताओं और स्मृतिग्रंथों का जो प्रचुर वाङ्मय बना, मनुस्मृति का उनमें प्रमुख स्थान है। वेदांगों में शिक्षा—प्रातिशाख्य, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छंद शास्त्र से संबद्ध ग्रंथों का वैदिकोत्तर काल से निर्माण होता रहा है। अब तक इन सबका विशाल साहित्य उपलब्ध है। आज ज्योतिष की तीन शाखाएँ—गणित, सिद्धांत और फलित विकसित हो चुकी हैं और भारतीय गणितज्ञों की विश्व को बहुत सी मौलिक देन है। पाणिनि और उनसे पूर्वकालीन तथा परवर्ती वैयाकरणों द्वारा जाने कितने व्याकरणों की रचना हुई जिनमें पाणिनि का व्याकरण-संप्रदाय २५०० वर्षों से प्रतिष्ठित माना गया और आज विश्व भर में उसकी महिमा मान्य हो चुकी है। यास्क का निरुक्त पाणिनि से पूर्वकाल का ग्रंथ है और उससे भी पहले निरुक्तिविद्या के अनेक आचार्य प्रसिद्ध हो चुके थे। शिक्षा-प्रातिशाख्य ग्रंथों में कदाचित् ध्वनिविज्ञान, शास्त्र आदि का जितना प्राचीन और वैज्ञानिक विवेचन भारत की संस्कृत भाषा में हुआ है—वह अतुलनीय और आश्चर्यकारी है। उपवेद के रूप में चिकित्सा-विज्ञान के रूप में आयुर्वेद विद्या का वैदिककाल से ही पचार था और उसके संहिताग्रंथ (चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, भेडसंहिता आदि) प्राचीन भारतीय मनीषा के वैज्ञानिक अध्ययन की विस्मयकारी निधि हैं। इस विद्या के भी विशाल वाङ्मय का कालांतर में निर्माण हुआ। इसी प्रकार धनुर्वेद और राजनीति, गांधर्ववेद आदि को उपवेद कहा गया है तथा इनके विषय को लेकर ग्रंथ के रूप में अथवा प्रसंगांतर्गत संदर्भों में पर्याप्त विचार मिलता है।

वेद, वेदांग, उपवेद आदि के अतिरिक्त संस्कृत वाङ्मय में दर्शनशास्त्र का वाङ्मय भी अत्यंत विशाल है। पूर्वमीमांसा, उत्तर मीमांसा, सांख्य, योग, वैशेषिक और न्याय—इन छह प्रमुख आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त पचासों से अधिक आस्तिक-नास्तिक दर्शनों के नाम तथा उनके वाङ्मय उपलब्ध हैं जिनमें आत्मा, परमात्मा, जीवन, जगत्पदार्थमीमांसा, तत्वमीमांसा आदि के संदर्भ में अत्यंत प्रौढ विचार हुआ है। आस्तिक षड्दर्शनों के प्रवर्तक आचार्यों के रूप में व्यास, जैमिनि, कपिल, पतंजलि, कणाद, गौतम आदि के नाम संस्कृत साहित्य में अमर हैं। अन्य आस्तिक दर्शनों में शैव, वैष्णव, तांत्रिक आदि सैकड़ों दर्शन आते हैं। आस्तिकेतर दर्शनों में बौद्धदर्शनों, जैनदर्शनों आदि के संस्कृत ग्रंथ बडे ही प्रौढ और मौलिक हैं। इनमें गंभीर विवेचन हुआ है तथा उनकी विपुल ग्रंथराशि आज भी उपलब्ध है। चार्वाक, लोकायतिक, गार्हपत्य आदि नास्तिक दर्शनों का उल्लेख भी मिलता है। वेदप्रामाण्य को माननेवाले आस्तिक और तदितर नास्तिक दर्शन के आचार्यों और मनीषियों ने अत्यंत प्रचुर मात्रा में दार्शनिक वाङ्मय का निर्माण किया है। दर्शन सूत्र के टीकाकार के रूप में परमादृत शंकराचार्य का नाम संस्कृत साहित्य में अमर है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र. वात्स्यायन का कामसूत्र, भरत का नाट्य शास्त्र आदि संस्कृत के कुछ ऐसे अमूल्य ग्रंथरत्न हैं—जिनका समस्त संसार के प्राचीन वाङ्मय में स्थान है। श्रीमद्भगवद्गीता का संसार

है। इसी कारण ग्रीक और लैटिन आदि प्राचीन मृत भाषाओ (डेड लैंग्वेजेज) से सस्कृत की स्थिति भिन्न है। यह मृतभाषा नही, अमरभाषा है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की दृष्टि से संस्कृत भाषा आर्य-भाषा परिवार के अतर्गत रखी गई है। आर्यजाति भारत मे बाहर से आई या यहाँ इसका निवास था — इत्यादि विचार अनावश्यक होने से यहाँ नही किया जा रहा है। पर आधुनिक भाषाविज्ञान के पंडितो की मान्यता के अनुसार भारत यूरोपीय भाषाभाषियो की जो नाना प्राचीन भाषाएँ, (वैदिक संस्कृत, अवस्ता अर्थात् प्राचीनतम पारसी ग्रीक, प्राचीन गॉथिक तथा प्राचीनतम जर्मन, लैटिन, प्राचीनतम आइरिश तथा नाना केल्ट बोलियाँ, प्राचीनतम स्लाव एव बाल्टिक भाषाएँ, अरमीनियन, हित्ती, बुखारी आदि) थी, वे वस्तुत: एक मूलभाषा की (जिसे मूल आर्यभाषा, आद्य आर्यभाषा, इडोजर्मनिक भाषा, आद्य भारत-योरोपीय भाषा, फादरलैंग्वेज आदि) देशकालानुसारी विभिन्न शाखाएँ थी। उन सबकी उद्गमभाषा या मूलभाषा को आद्यआर्यभाषा कहते है। कुछ विद्वानो के मत में — वीरा— मूलनिवासस्थान के वासी सुसंगठित आर्यो को ही 'वीरोस' (wiros) या वीरास् (वीरा:) कहते थे।

वीरोस् (वीरो) शब्द द्वारा जिन पूर्वोक्त प्राचीन आर्यभाषा-समूह भाषियो का द्योतन होता है उन विविध प्राचीन भाषा-भाषियो को विरास् (संवीरा) कहा गया है। अर्थात् समस्त भाषाएँ पारिवारिक दृष्टि से आर्यपरिवार की भाषाएँ हैं। सस्कृत का इनमे अन्यतम स्थान है। उक्त परिवार की 'केंतुम्' और 'शतम्' (दोनो ही शतवाचक शब्द) दो प्रमुख शाखाएँ हैं। प्रथम के अतर्गत ग्रीक, लातिन आदि आती हैं। संस्कृत का स्थान 'शतम्' के अंतर्गत भारत-ईरानी शाखा में माना गया है। आर्यपरिवार में कौन प्राचीन, प्राचीनतर और प्राचीनतम हैं यह पूर्णतः निश्चित नहीं है। फिर भी आधुनिक अधिकाश भाषाविद् ग्रीक, लातिन आदि को आद्य आर्य भाषा की ज्येष्ठ सतति और सस्कृत को उनकी छोटी बहिन मानते हैं। इतना ही नही भारत ईरानी-शाखा की प्राचीनतम अवस्ता को भी सस्कृत से प्राचीन मानते हैं। परतु अनेक भारतीय विद्वान् समझते हैं कि 'जिंद-अवस्ता' की अवस्ता का स्वरूप ऋक्भाषा की अपेक्षा नव्य है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि मथरूप मे स्मृतिरूप से अवशिष्ट वाङ्मय मे ऋक्सहिता प्राचीनतम है और इसी कारण वह भाषा भी अपनी उपलब्धि में प्राचीनतम है। उसकी वैदिक सहिताओ की बडी विशेषता यह है कि हजारो वर्षो तक जब लिपि-कला का भी प्रादुर्भाव नही था, वैदिक सहिताएँ मौखिक और श्रुतिपरपरा द्वारा गुरुशिष्यो के समाज मे अखड रूप से प्रवहमान थी। उच्चारण की शुद्धता को इतना सुरक्षित रखा गया कि ध्वनि और मात्राएँ ही नही, सहस्रो वर्षों पूर्व से आज तक वैदिक मत्रो मे कही पाठभेद नही हुआ। उदात्त अनुदात्तादि स्वरो का उच्चारण शुद्ध रूप मे पूर्णत अविकृत रहा। आधुनिक भाषावैज्ञानिक यह मानते हैं कि स्वरो की दृष्टि से ग्रीक, लातिन आदि के 'केंतुम्' वर्ग की भाषाएँ अधिक सपन्न भी हैं और मूल या आद्य आर्यभाषा के अधिक समीप भी। उनमे उक्त भाषा की स्वरसपत्ति अधिक सुरक्षित है। संस्कृत में व्यजनसंपत्ति अधिक सुरक्षित है। भाषा के संघटनात्मक अथवा रूपात्मक विचार की दृष्टि से सस्कृत भाषा को विभक्ति-प्रधान अथवा 'शिलष्टभाषा' (एग्लुटिनेटिव लैंग्वेज) कहा जाता है।

प्रामाणिकता के विचार से इस भाषा का सर्वप्राचीन उपलब्ध व्याकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी है। कम से कम ६०० ई० पू० का यह ग्रथ आज भी समस्त विश्व में अतुलनीय व्याकरण है। विश्व के और मुख्यतः अमरीका के भाषाशास्त्री सघटनात्मक भाषा विज्ञान की दृष्टि से अष्टाध्यायी को आज भी विश्व का सर्वोत्तम ग्रथ मानते हैं। 'ब्लूमफील्ड' ने अपने 'लैंग्वेज' तथा अन्य कृतियों मे इस तथ्य की पुष्ट स्थापना की है। पाणिनि के पूर्व सस्कृत भाषा निश्चय ही शिष्ट एव वैदिक जनो की व्यवहारभाषा थी। असंस्कृत जनो में भी बहुत सी बोलियाँ उस समय प्रचलित रही होगी। पर यह मत आधुनिक भाषाविज्ञो को मान्य नही है। वे कहते हैं कि सस्कृत कभी भी व्यवहारभाषा नही थी। जनता की भाषाओ को तत्कालीन प्राकृत कहा जा सकता है। देवभाषा तत्वतः कृत्रिम या सस्कार द्वारा निर्मित ब्राह्मणपडितो की भाषा थी, लोकभाषा नही। परतु यह मत सर्वमान्य नही है। पाणिनि से लेकर पतजलि तक सभी ने सस्कृत को लोक की भाषा कहा है, लौकिक भाषा बताया है। अन्य सैकडो प्रमाण सिद्ध करते हैं कि 'सस्कृत' वैदिक और वैदिकोत्तर पूर्वपाणिनिकाल में लोकभाषा और व्यवहारभाषा (स्पोकेन लैंग्वेज) थी। यह अवश्य रहा होगा कि देश, काल और समाज के सदर्भ में उसकी अपनी सीमा रही होगी। बाद में चलकर वह पठित समाज की साहित्यिक, और सास्कृतिक भाषा बन गई। तदनतर यह समस्त भारत में सभी पडितो की, चाहे वे आर्य रहे हो या आर्येतर जाति के — सभी की, सर्वमान्य सास्कृतिक भाषा हो गई और आसेतुहिमाचल इसका प्रसार, समादर और प्रचार रहा एव आज भी बना हुआ है। लगभग सत्रहवी शताब्दी के पूर्वार्ध से योरप और पश्चिमी देशो के मिशनरी एव अन्य विद्याप्रेमियो को सस्कृत का परिचय प्राप्त हुआ। धीरे धीरे पश्चिम मे ही नही, समस्त विश्व में सस्कृत का प्रचार हुआ। जर्मन, अग्रेज, फ्रासीसी, अमरीकी तथा योरप के अनेक छोटे बडे देश के निवासी विद्वानो ने विशेष रूप से सस्कृत के अध्ययन अनुशीलन को आधुनिक विद्वानो में प्रज्ञाप्रिय बनाया। आधुनिक विद्वानो और अनुशीलको के मत से विश्व की पुराभाषाओ में सस्कृत सर्वाधिक व्यवस्थित, वैज्ञानिक और सपन्न भाषा है। वह आज केवल भारतीय भाषा ही नही, एक रूप से विश्वभाषा भी है। यह कहा जा सकता है कि भूमडल के प्रत्न भाषा साहित्यो मे कदाचित् सस्कृत का वाङ्मय सर्वाधिक विशाल, व्यापक, चतुर्मुखी और सपन्न है। ससार के प्रायः सभी विकसित और ससार के प्रायः सभी विकासमान देशो में सस्कृत भाषा और साहित्य का आज अध्ययन अध्यापन हो रहा है।

बताया जा चुका है कि इस भाषा का परिचय होने से ही आर्य जाति, उसकी सस्कृति, जीवन और तथाकथित मूल आद्य आर्य-भाषा से सबद्ध विषयो के अध्ययन का पश्चिमी विद्वानो को ठोस आधार प्राप्त हुआ। प्राचीन ग्रीक, लातिन, अवस्ता और ऋक्सस्कृत आदि के आधार पर मूल आद्य आर्यभाषा की ध्वनि, व्याकरण और स्वरूप की परिकल्पना की जा सकी जिसमें ऋक्सस्कृत का अवदान

संस्कृति इन सबधों का आधार है। सामाजिक सरचना अर्जित, प्रयुक्त, रूपातरित एव संचारित भौतिक और अभौतिक साधनो पर आधारित होती है और सस्कृति इन साधनो के उपादानो पर बल देती है।

सस्कृति प्रकृतिप्रदत्त नही होती। यह सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अर्जित होती है। अत सस्कृति उन सस्कारों से सबद्ध होती है, जो हमारी वंशपरपरा तथा सामाजिक विरासत के सरक्षण के साधन हैं। इनके माध्यम से सामाजिक व्यवहार की विशिष्टताओ का एक पीढी से दूसरी पीढी में निगमन होता है। निगमन के इस नैरंतर्य मे ही सस्कृति का अस्तित्व निहित होता है और इसकी सचयी प्रवृत्ति इसके विकास को गति प्रदान करती है, जिससे नवीन आदर्श जन्म लेते हैं। इन आदर्शों द्वारा वाह्य क्रियाओ और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणों का समानयन होता है तथा सामाजिक सरचना और वैयक्तिक जीवनपद्धति का व्यवस्थापन होता रहता है।

संस्कृति के दो पक्ष होते हैं—(१) आधिभौतिक सस्कृति, (२) भौतिक सस्कृति। सामान्य अर्थ में आधिभौतिक सस्कृति को सस्कृति और भौतिक सस्कृति को सभ्यता के नाम से अभिहित किया जाता है। सस्कृति के ये दोनो पक्ष एक दूसरे से भिन्न होते हैं। संस्कृति आभ्यतर है, इसमें परपरागत चिंतन, कलात्मक अनुभूति, विस्तृत ज्ञान एव धार्मिक आस्था का समावेश होता है। सभ्यता वाह्य वस्तु है, जिसमे मनुष्य की भौतिक प्रगति में सहायक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ समिलित होती हैं। सस्कृति हमारे सामाजिक जीवनप्रवाह की उद्गमस्थली है और सभ्यता इस प्रवाह में सहायक उपकरण। सस्कृति साध्य है और सभ्यता साधन। सस्कृति सभ्यता की उपयोगिता के मूल्याकन के लिये प्रतिमान उपस्थित करती है।

इन भिन्नताओ के होते हुए भी सस्कृति और सभ्यता एक दूसरे से अत सबद्ध हैं और एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। सास्कृतिक मूल्यो का स्पष्ट प्रभाव सभ्यता की प्रगति की दिशा और स्वरूप पर पडता है। इन मूल्यों के अनुरूप जो सभ्यता निर्मित होती है, वही समाज द्वारा गृहीत होती है। सभ्यता की नवीन उपलब्धियाँ भी व्यवहारो, हमारी मान्यताओ या दूसरे शब्दों में हमारी सस्कृति को प्रभावित करती रहती हैं। समन्वयन की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है।

सपर्क में आनेवाली भिन्न सस्कृतियाँ भी एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। भिन्न सस्कृतियो का सपर्क उनमे सहयोग अथवा असहयोग की प्रक्रिया की उद्भावना करता है। पर दोनो प्रक्रियाओं का लक्ष्य विषमता को समाप्त कर समतास्थापन ही होता है। सहयोग की स्थिति में व्यवस्थापन तथा आत्मसात्करण समतास्थापन के साधन होते हैं और असहयोग की स्थिति में प्रतिस्पर्धा, विरोध एव सघर्ष की शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं और अतत सबल सस्कृति निर्बल सस्कृति को समाप्त कर समता स्थापित करती है।

सस्कृति के भौतिक तथा आधिभौतिक पक्षो का विकास समानातर नही होता। सभ्यता के विकास की गति सस्कृति के विकास की गति से तीव्र होती है। फलस्वरूप सभ्यता विकासक्रम में सस्कृति से आगे निकल जाती है। सभ्यता और सस्कृति के विकास का यह असतुलन सामाजिक विघटन को जन्म देता है। अतः इस प्रकार प्रादुर्भूत सास्कृतिक विलबना द्वारा समाज मे उत्पन्न असतुलन और अव्यवस्था के निराकरण हेतु आधिभौतिक सस्कृति में प्रयत्नपूर्वक सुधार आवश्यक हो जाता है। विश्लेषण, परीक्षण एव मूल्याकन द्वारा सभ्यता और सस्कृति का नियमन मानव के भौतिक और आध्यात्मिक अभ्युत्थान मे अनुपम सहयोग प्रदान करता है।

सस्कृति यद्यपि किसी देश या कालविशेष की उपज नही होती, यह एक शाश्वत प्रक्रिया है, तथापि किसी क्षेत्रविशेष मे किसी काल में इसका जो स्वरूप प्रकट होता है उसे एक विशिष्ट नाम से अभिहित किया जाता है। यह अभिधा काल, दर्शन, क्षेत्र, समुदाय अथवा सत्ता से सबद्ध होती है। मध्ययुगीन सस्कृति, भौतिक सस्कृति, पाश्चात्य सस्कृति, हिंदू सस्कृति तथा मुगल सस्कृति आदि की सज्ञाएँ इसी आधार पर प्रदान की गई हैं। विशिष्ट अभिधान सस्कृति के विशिष्ट स्वरूपबोध के साथ इस तथ्य को उद्भासित करता है कि सस्कृति को विशेषण प्रदान करनेवाले कारक द्वारा सस्कृति का सहज स्वरूप अनिवार्यत प्रभावित हुआ है।

स० ग्रं० — रागेय राघव, डॉ० गोविंद शर्मा . सस्कृति एव समाज-शास्त्र, डॉ० देवराज सस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ० राजवली पाडेय : प्राचीन भारतीय सभ्यता और सस्कृति, पराशर · भारतीय समाज और संस्कृति का इतिहास, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी सभ्यता और सस्कृति (निबंध), लक्ष्मण शास्त्री · वैदिक सस्कृति का इतिहास, डॉ० मगलदेव शास्त्री, भारतीय सस्कृति का विकास, प्रो० राधाकमल मुखर्जी . भारतीय संस्कृति और कला, डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन · धर्म और समाज; डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी इंडियन सिविलिजेशन, ह्वाइट, लेस्ली ए० : दी साइंस ऑव कल्चर, एडवर्ड बी० टेलर ओरिजिन ऑव कल्चर; रेडक्लिफ, ए० आर०, ब्राउन : मेथड इन सोशल एंथ्रापॉलोजी, पार्सस, टॉलकाट : दी सोशल सिस्टम, डब्ल्यू० रेमड मैन ऐंड कल्चर; इटरनैशनल इसाइक्लोपीडिया ऑव सोशल साइसेज। [ला० ब० पा०]

सगर अयोध्या के एक प्रसिद्ध सूर्यवशी राजा जो बडे धर्मात्मा तथा प्रजारजक थे। इनका विवाह विदर्भ राजकन्या केशिनी से हुआ था। इनकी दूसरी स्त्री का नाम सुमति था। इन स्त्रियों सहित सगर ने हिमालय पर कठोर तपस्या की। इससे सतुष्ट होकर महर्षि भृगु ने इन्हें वर दिया कि तुम्हारी पहली स्त्री से तुम्हारा वश चलानेवाला पुत्र होगा और दूसरी स्त्री से ६० हजार पुत्र होंगे। सगर की पहली स्त्री से असमजस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बडा उद्धत था। उसे सगर ने अपने राज्य से निकाल दिया। इसके पुत्र का नाम अशुमान था। सगर की दूसरी स्त्री से ६० हजार पुत्र हुए। एक बार सगर ने अश्वमेध यज्ञ करना चाहा। अश्वमेध का घोडा इंद्र ने चुरा लिया और उसे पाताल में जा छिपाया। सगर के पुत्र उसे ढूँढते ढूँढते पाताल पहुँचे। वहाँ महर्षि कपिल के समीप अश्व को बँधा पाकर उन्होंने उनका अपमान किया। मुनि ने क्रुद्ध होकर उन्हे शाप देकर भस्म कर डाला। सगर ने अपने पुत्रो के न आने पर अशुमान को उन्हे ढूँढने के लिये भेजा।

सद्विचार में सहकार करो। शुद्ध विचार करने, सोचने समझने, व्यक्तिगत जीवन में उसका अमल करने और दूसरो को समझाने में ही हमारे लक्ष्य की पूर्ति होनी चाहिए। सामनेवाले के सम्यक् चिंतन में मदद देना ही सत्याग्रह का सही स्वरूप है।' इसे ही विनोबा सत्याग्रह की सौम्यतर और सौम्यतम प्रक्रिया कहते हैं। सत्याग्रह प्रेम की प्रक्रिया है। उसे क्रम क्रम, अधिकाधिक निखरते जाना चाहिए।

सत्याग्रह कुछ नया नही है, कौटुंबिक जीवन का राजनीतिक जीवन में प्रसार मात्र है। गांधी जी की देन यह है कि उन्होने सत्याग्रह के विचार का राजनीतिक जीवन में सामूहिक प्रयोग किया। कहा जाता है, लोकतंत्र में, जहाँ सारा काम 'लोक' की राय से, लोकप्रतिनिधियो के माध्यम से चल रहा है, सत्याग्रह के लिये कोई स्थान नहीं है। विनोबा कहते हैं---वास्तव में सामूहिक सत्याग्रह की आवश्यकता तो उस 'तंत्र' मे नही होगी, जिसमें निर्णय बहुमत से नही, सर्वसमति से होगा। परंतु उस दशा में भी व्यक्तिगत सत्याग्रह पड़ोसी के सम्यक् चिंतन में सहकार के लिये तो हो ही सकता है। परतु लोकतंत्र में जब विचारस्वातंत्र्य और विचारप्रचार के लिये पूरा अवसर है, तो सत्याग्रह को किसी प्रकार के 'दबाव, घेराव अथवा बंद,' का रूप नही ग्रहण करना चाहिए। ऐसा हुआ तो सत्याग्रह की सौम्यता नष्ट हो जायगी। सत्याग्रही अपने धर्म से च्युत हो जायगा।

आज दुनिया के विभिन्न कोनों में सत्याग्रह एवं अहिंसक प्रतिकार के प्रयोग निरंतर चल रहे हैं। द्वितीय महायुद्ध में हजारो युद्धविरोधी 'पैसेफिस्ट' सेना में भरती होने के बजाय जेलो में गए हैं। बर्ट्रेड रसेल जैसे दार्शनिक युद्धविरोधी सत्याग्रहों के कारण जेल के सीखचों के पीछे बंद हुए थे। अणुअस्त्रों के कारखाने आल्डर मास्टन से लंदन तक, प्रतिवर्ष ६० मील की पदयात्रा कर हजारों शांतिवादी अणुशस्त्रों के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हैं। नीग्रो नेता मार्टिन लूथर किंग के बलिदान की कहानी सत्याग्रह संग्राम की अमर गाथा बन गई है। इटली के डैनिलो डोलची के सत्याग्रह की कहानी किसको रोमांचित नहीं कर जाती। ये सारे प्रयास भले ही सत्याग्रह की कसौटी पर खरे न उतरते हो, परतु ये शांति और अहिंसा की दिशा में एक कदम अवश्य हैं।

सत्याग्रह का रूप अंतरराष्ट्रीय संघर्ष में कैसा होगा, इसके विषय मे आचार्य विनोबा कहते हैं—मान लीजिए, आक्रमणकारी हमारे गाँव में घुस जाता है, तो मैं कहूँगा कि तुम प्रेम से आओ---उनसे मिलने हम जाएँगे, डरेंगे नही। परंतु वे कोई गलत काम कराना चाहते हैं तो हम उनसे कहेंगे, हम यह बात मान नही सकते हैं---चाहे तुम हमे समाप्त कर दो। सत्याग्रह के इस रूप का प्रयोग अभी अंतरराष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिये नही हुआ है। परतु यदि अणुयुग की विभीषिका से मानव संस्कृति की रक्षा के लिये, हिंसा की शक्ति को अपदस्थ करके अहिंसा की शक्ति को प्रतिष्ठित होना है, तो सत्याग्रह के इस मार्ग के अतिरिक्त प्रतिकार का दूसरा मार्ग नही है। इस अणुयुग मे शस्त्र का प्रतिकार शस्त्र से नही हो सकता। [व० श्री०]

समाज मानवीय अंतःक्रियाओं के प्रक्रम की एक प्रणाली है। मानवीय क्रियाएँ चेतन और अचेतन दोनो स्थितियों में साभिप्राय होती हैं। व्यक्ति का व्यवहार कुछ निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति के प्रयास की अभिव्यक्ति है। उसकी कुछ नैसर्गिक तथा अर्जित आवश्यकताएँ होती हैं — काम, क्षुधा, सुरक्षा आदि। इनकी पूर्ति के अभाव में व्यक्ति में कुंठा और मानसिक तनाव व्याप्त हो जाता है। वह इनकी पूर्ति स्वयं करने में सक्षम नही होता अत इन आवश्यकताओं की सम्यक् संतुष्टि के लिये अपने दीर्घ विकासक्रम में मनुष्य ने एक समष्टिगत व्यवस्था को विकसित किया है। इस व्यवस्था को ही हम समाज के नाम से संबोधित करते हैं। यह व्यक्तियो का ऐसा संकलन है जिसमें वे निश्चित संबंध और विशिष्ट व्यवहार द्वारा एक दूसरे से बँधे होते हैं। व्यक्तियो की यह संगठित व्यवस्था विभिन्न कार्यों के लिये विभिन्न मानदंडो को विकसित करती है, जिनके कुछ व्यवहार अनुमत और कुछ निषिद्ध होते हैं।

समाज में विभिन्न कर्ताओं का समावेश होता है, जिनमें अंतःक्रिया होती है। इस अंतःक्रिया का भौतिक और पर्यावरणात्मक आधार होता है। प्रत्येक कर्ता अधिकतम संतुष्टि की ओर उन्मुख होता है। सार्वभौमिक आवश्यकताओं की पूर्ति समाज के अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिये अनिवार्य है। तादात्म्यजनित आवश्यकताएँ संरचनात्मक तत्वों के सहअस्तित्व के क्षेत्र का नियमन करती हैं। क्रिया के उन्मेष की प्रणाली तथा स्थितिजन्य तत्व, जिनकी ओर क्रिया उन्मुख है, समाज की संरचना का निर्धारण करते हैं। संयोजक तत्व अंतःक्रिया की प्रक्रिया को संतुलित करते हैं तथा वियोजक तत्व सामाजिक संतुलन में व्यवधान उपस्थित करते हैं। वियोजक तत्वों के नियंत्रण हेतु संस्थाकरण द्वारा कर्ताओं के संबंधों तथा क्रियाओं का समायोजन होता है जिससे पारस्परिक सहयोग की वृद्धि होती है और अंतर्विरोधों का शमन होता है। सामाजिक प्रणाली में व्यक्ति को कार्य और पद, दंड और पुरस्कार, योग्यता तथा गुणो से संबंधित सामान्य नियमो और स्वीकृत मानदंडों के आधार पर प्रदान किए जाते हैं। इन अवधारणाओं की विसंगति की स्थिति में व्यक्ति समाज की मान्यताओं और विधाओं के अनुसार अपना व्यवस्थापन नही कर पाता और उसका सामाजिक व्यवहार विफल हो जाता है, ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर उसके लक्ष्य की सिद्धि नही हो पाती, क्योंकि उसे समाज के अन्य सदस्यो का सहयोग नहीं प्राप्त होता। सामाजिक दंड के इसी भय से सामान्यतया व्यक्ति समाज में प्रचलित मान्य परंपराओं की उपेक्षा नही कर पाता, वह उनसे समायोजन का हर संभव प्रयास करता है।

चूँकि समाज व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधो की एक व्यवस्था है इसलिये इसका कोई मूर्त स्वरूप नही होता, इसकी अवधारणा अनुभूतिमूलक है। पर इसके सदस्यों में एक दूसरे की सत्ता और अस्तित्व की प्रतीति होती है। ज्ञान और प्रतीति के अभाव में सामाजिक संबंधो का विकास संभव नही है। पारस्परिक सहयोग एवं संबंध का आधार समान स्वार्थ होता है। समान स्वार्थ की सिद्धि समान आचरण द्वारा संभव होती है। इस प्रकार का सामूहिक आचरण समाज द्वारा निर्धारित और निर्देशित होता है। वर्तमान सामाजिक मान्यताओं की समान लक्ष्यो से संगति के संबंध में सहमति

अंशुमान ने पाताल में पहुँचकर मुनि को प्रसन्न किया और वहाँ से घोड़ा लेकर अयोध्या पहुँचा। अश्वमेध यज्ञ समाप्त करके सगर ने तीस सहस्र वर्ष राज्य किया। राजा भगीरथ उन्हीं के वंश के थे जो गंगा को पृथिवी पर लाए थे। इसी कारण गंगा का एक नाम भागीरथी है। [वि० त्रि०]

सत्याग्रह उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के अधिकारों की रक्षा के लिये कानून भंग शुरू करने तक संसार 'निःशस्त्र प्रतिकार' अथवा निष्क्रिय प्रतिरोध (पैसिव रेजिस्टेन्स) की युद्धनीति से ही परिचित था। यदि प्रतिपक्षी की शक्ति हममें अधिक है तो सशस्त्र विरोध का कोई अर्थ नहीं रह जाता। सबल प्रतिपक्षी से बचने के लिये 'निःशस्त्र प्रतिकार' की युद्धनीति का अवलंबन किया जाता था। इंग्लैंड में स्त्रियों ने मताधिकार प्राप्त करने के लिये इसी 'निष्क्रिय प्रतिरोध' का मार्ग अपनाया था। इस प्रकार प्रतिकार में प्रतिपक्षी पर शस्त्र से आक्रमण करने की बात छोड़कर, उसे दूसरे हर प्रकार से तंग करना, छल कपट से उसे हानि पहुँचाना, अथवा उसके शत्रु से संधि करके उसे नीचा दिखाना आदि उचित समझा जाता था।

गांधी जी को इस प्रकार की दुर्नीति पसंद नहीं थी। दक्षिण अफ्रीका में उनके आंदोलन की कार्यपद्धति बिल्कुल भिन्न थी। उनका सारा दर्शन ही भिन्न था अतः अपनी युद्धनीति के लिये उनको नए शब्द की आवश्यकता महसूस हुई। सही शब्द प्राप्त करने के लिये उन्होंने एक प्रतियोगिता की जिसमें स्वर्गीय मगनलाल गांधी ने एक शब्द सुझाया 'सदाग्रह' जिसमें थोड़ा परिवर्तन करके गांधी जी ने 'सत्याग्रह' शब्द स्वीकार किया। अमरीका के दार्शनिक थोरो ने जिस सिविल डिसओबिडियेन्स (सविनय अवज्ञा) की टेकनिक का वर्णन किया है, 'सत्याग्रह' शब्द उस प्रक्रिया से मिलता जुलता था।

'सत्याग्रह' का मूल अर्थ है सत्य के प्रति आग्रह (सत्य + आग्रह) सत्य को पकड़े रहना। अन्याय का सर्वथा विरोध करते हुए अन्यायी के प्रति वैरभाव न रखना, सत्याग्रह का मूल लक्षण है। हमें सत्य का पालन करते हुए निर्भयतापूर्वक मृत्यु का वरण करना चाहिए और मरते मरते भी जिसके विरुद्ध सत्याग्रह कर रहे हैं, उसके प्रति वैरभाव या क्रोध नहीं करना चाहिए।'

'सत्याग्रह' में अपने विरोधी के प्रति हिंसा के लिये कोई स्थान नहीं है। धैर्य एवं सहानुभूति से विरोधी को उसकी गलती से मुक्त करना चाहिए, क्योंकि जो एक को सत्य प्रतीत होता है, वही दूसरे को गलत दिखाई दे सकता है। धैर्य का तात्पर्य कष्टसहन से है। इसलिये इस सिद्धांत का अर्थ हो गया, 'विरोधी को कष्ट अथवा पीड़ा देकर नहीं, बल्कि स्वयं कष्ट उठाकर सत्य का रक्षण।'

महात्मा गांधी ने कहा था कि सत्याग्रह में एक पद 'प्रेम' अध्याहृत है। सत्याग्रह मध्यमपदलोपी समास है। सत्याग्रह यानी सत्य के लिये प्रेम द्वारा आग्रह (सत्य+प्रेम+आग्रह =सत्याग्रह)।

गांधी जी ने लार्ड हंटर के सामने सत्याग्रह की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार की थी—'यह ऐसा आंदोलन है जो पूरी तरह सच्चाई पर कायम है और हिंसा के उपायों के एवज में चलाया जा रहा।' अहिंसा सत्याग्रह दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है, क्योंकि सत्य तक पहुँचने और उनपर टिके रहने का एकमात्र उपाय अहिंसा ही है। और गांधी जी के ही शब्दों में 'अहिंसा किसी को चोट न पहुँचाने की नकारात्मक (निगेटिव) वृत्तिमात्र नहीं है, बल्कि वह सक्रिय प्रेम की विधायक वृत्ति है।'

सत्याग्रह में स्वयं कष्ट उठाने की बात है। सत्य का पालन करते हुए मृत्यु के वरण की बात है। सत्य और अहिंसा के पुजारी के शस्त्रागार में 'उपवास' सबसे शक्तिशाली शस्त्र है। जिसे किसी रूप में हिंसा का आश्रय नहीं लेना है, उसके लिये उपवास अनिवार्य है। 'मृत्यु पर्यंत कष्ट सहन और इसलिये मृत्यु पर्यंत उपवास भी, सत्याग्रही का अंतिम अस्त्र है।' परंतु अगर उपवास दूसरों को मजबूर करने के लिये आत्मपीडन का रूप ग्रहण करे तो वह त्याज्य है: आचार्य विनोबा जिसे सौम्य, सौम्यतर, सौम्यतम सत्याग्रह कहते हैं, उस भूमिका में उपवास का स्थान अंतिम है।

'सत्याग्रह' एक प्रतिकारपद्धति ही नहीं है, एक विशिष्ट जीवन-पद्धति भी है जिसके मूल में अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय, निर्भयता, ब्रह्मचर्य, सर्वधर्म समभाव आदि एकादश व्रत हैं। जिसका व्यक्तिगत जीवन इन व्रतों के कारण शुद्ध नहीं है, वह सच्चा सत्याग्रही नहीं हो सकता। इसीलिये विनोबा इन व्रतों को 'सत्याग्रह निष्ठा' कहते हैं।

'सत्याग्रह' और 'निःशस्त्र प्रतिकार' में उतना ही अंतर है, जितना उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव में। निःशस्त्र प्रतिकार की कल्पना एक निर्बल के अस्त्र के रूप में की गई है और उसमें अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये हिंसा का उपयोग वर्जित नहीं है, जबकि सत्याग्रह की कल्पना परम शूर के अस्त्र के रूप में की गई है और इसमें किसी भी रूप में हिंसा के प्रयोग के लिये स्थान नहीं है। इस प्रकार सत्याग्रह निष्क्रिय स्थिति नहीं है। वह प्रबल सक्रियता की स्थिति है। सत्याग्रह अहिंसक प्रतिकार है, परंतु वह निष्क्रिय नहीं है।

अन्यायी और अन्याय के प्रति प्रतिकार का प्रश्न सनातन है। अपनी सभ्यता के विकासक्रम में मनुष्य ने प्रतिकार के लिये प्रमुखतः चार पद्धतियों का अवलंबन किया है—(१) पहली पद्धति है बुराई के बदले अधिक बुराई। इस पद्धति से दंडनीति का जन्म हुआ और जब इससे समाज और राष्ट्र की समस्याओं के निराकरण का प्रयास हुआ तो युद्ध की संस्था का विकास हुआ। (२) दूसरी पद्धति है, बुराई के बदले समान बुराई अर्थात् अपराध का उचित दंड दिया जाय, अधिक नहीं। यह अमर्यादित प्रतिकार को सीमित करने का प्रयास है। (३) तीसरी पद्धति है, बुराई के बदले भलाई। यह बुद्ध, ईसा, गांधी आदि संतों का मार्ग है। इसमें हिंसा के बदले अहिंसा का तत्व अंतर्निहित है। (४) चौथी पद्धति है बुराई की उपेक्षा। आचार्य विनोबा कहते हैं—'बुराई का प्रतिकार मत करो बल्कि विरोधी की समुचित चिंतन में सहायता करो। उसकि

प्रकार ज्ञान पर आधारित समाजसेवा व्यक्ति को समूहों अथवा समुदाय की सहज योग्यताओं तथा सर्जनात्मक शक्तियों को उन्मुक्त एवं विकसित कर स्वनिर्धारित लक्ष्य की दिशा में क्रियाशील बनाती है, जिसमें वे अपनी संवेगात्मक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूँढने में स्वयं सक्रिय रूप से प्रवृत्त होते हैं। सेवार्थी अपनी दुर्बलताओं—कुंठा, नैराश्य, हीनता, असहायता एवं असपृक्तता की भावग्रंथियों और मानसिक तनाव, द्वंद्व तथा विद्वेषजनित आक्रमणात्मक मनोवृत्तियों का परित्याग कर कार्यकर्ता के साथ किस सीमा तक सहयोग करता है, यह कार्यकर्ता और सेवार्थी के मध्य स्थापित संबंध पर निर्भर करता है। यदि सेवार्थी समूह या समुदाय है तो लक्ष्यप्राप्ति में उसके सदस्यों के मध्य वर्तमान संबंध का विशेष महत्व होता है। समाजसेवा में संबंध ही संपूर्ण सहायता का आधार है और यह व्यावसायिक संबंध सदैव साभिप्राय होता है।

समाजसेवा के तीन प्रकार होते हैं —

(१) वैयक्तिक समाजसेवा — इस प्रक्रिया के माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सहायता वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में उत्पन्न उसकी कतिपय समस्याओं के समाधान के लिये करता है जिससे वह समाज द्वारा स्वीकार्य संतोषपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके।

(२) सामूहिक समाजसेवा — एक विधि है जिसके माध्यम से किसी सामाजिक समूह के सदस्यों की सहायता एक कार्यकर्ता द्वारा की जाती है, जो समूह के कार्यक्रमों और उसके सदस्यों की अंतःक्रियाओं को निर्देशित करता है। जिससे वे व्यक्ति की प्रगति एवं समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान कर सकें।

(३) सामुदायिक संगठन — वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक संगठनकर्ता की सहायता से एक समुदाय के सदस्य को समुदाय और लक्ष्यों से अवगत होकर, उपलब्ध साधनों द्वारा उनकी पूर्ति आवश्यकताओं के निमित्त सामूहिक एवं संगठित प्रयास करते हैं।

इस प्रकार समस्त सेवा की तीनों विधियों का लक्ष्य व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति है। उनकी सहायता इस प्रकार की जाती है कि वे अपनी आवश्यकताओं, व्यक्तिगत क्षमता तथा प्राप्य साधनों से भली भाँति अवगत होकर प्रगति कर सकें तथा स्वस्थ समाज-व्यवस्था के निर्माण में सहायक हों।

सं० ग्रं०—राजाराम शास्त्री समाजसेवा का स्वरूप, वाडिया हिस्ट्री ऐंड फिलॉसफी ऑव सोशल वर्क इन इंडिया, फ्रीडलैंडर . कासेप्ट्स ऐंड मेथड्स ऑव सोशल वर्क, क्लार्क प्रिंसिपुल्स ऑव सोशल वर्क, स्ट्रप . सोशल वर्क, फ्रिंक फील्ड ऑव सोशल वर्क, विल्सों फिलॉसफी ऑव सोशल वर्क, ब्रूनो . ट्रेंड्स वर्क, ऐन इन्साइक्लोपीडिया ऑव सोशल वर्क, भारतीय संस्करण; कोराकैसियस : न्यू डाइरेक्शंस इन सोशल वर्क, मिरियम वान वाटर्स फिलासाफिकल ट्रेंड्स इन मॉडर्न सोशल वर्क, आर्लीन जॉनसन डेवेलपमेंट ऑव बेसिक मेथड्स ऑव सोशल वर्क, प्रैक्टिस ऐंड एजुकेशन, सोशल वर्क जर्नल, जुलाई, १९५०, हेलेन विटनर : सोशल वर्क, ए० ए० एस० डब्ल्यू०—सोशल वर्क ईयर बुक, १९५२, राजाराम शास्त्री . सोशल वर्क ट्रेडीशन इन इंडिया। [ला० व० पा०]

समुद्रगुप्त (३२८–३७८ ई०) गुप्तवंशीय महाराजाधिराज चंद्रगुप्त प्रथम की पट्टमहिषी लिच्छिवि कुमारी श्रीकुमारी देवी का पुत्र। चंद्रगुप्त ने अपने अनेक पुत्रों में से इसे ही अपना उत्तराधिकारी चुना और अपने जीवनकाल में ही समुद्रगुप्त को शासनभार सौंप दिया था। प्रजाजनों को इससे विशेष हर्ष हुआ था किंतु समुद्रगुप्त के अन्य भाई इससे रुष्ट हो गए थे और उन्होंने आरंभ में गृहयुद्ध छेड़ दिया था। भाइयों का नेता 'काच' था। काच के नाम के कुछ सोने के सिक्के भी मिले हैं। गृहकलह को शांत करने में समुद्रगुप्त को एक वर्ष का समय लगा। इसके पश्चात् उसने दिग्विजययात्रा की। इसका वर्णन प्रयाग में अशोक मौर्य के स्तंभ पर विशद रूप में खुदा हुआ है। पहले इसने आर्यावर्त के तीन राजाओं — अहिच्छत्र का राजा अच्युत, पद्मावती का भारशिववंशी राजा नागसेन और राजा कोटकुलज — को विजित कर अपने अधीन किया और बड़े समारोह के साथ पुष्पपुर में प्रवेश किया। इसके बाद उसने दक्षिण की यात्रा की और क्रम से कोशल, महाकांतार, कौराल पिष्टपुर का महेंद्रगिरि (मद्रास प्रांत का वर्तमान पीठापुरम्), कोट्टूर, ऐरंडपल्ल, कांची, अवमुक्त, वेंगी, पाल्लक, देवराष्ट्र और कौस्थलपुर (वर्तमान कुट्टलूर), बारह राज्यों पर विजय प्राप्त की।

जिस समय समुद्रगुप्त दक्षिण विजययात्रा पर था उस समय उत्तर के अनेक राजाओं ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर विद्रोह कर दिया। लौटने पर समुद्रगुप्त ने उत्तर के जिन राजाओं का समूल उच्छेद कर दिया उनके नाम हैं : रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चंद्रवर्मा, गणपति नाग, नागसेन, अच्युत नंदी और बलवर्मा। इनकी विजय के पश्चात् समुद्रगुप्त ने पुनः पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) में प्रवेश किया। इस बार इन सभी राजाओं के राज्यों को उसने अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। आटविक राजाओं को इसने अपना परिचारक और अनुवर्ती बना लिया था। इसके पश्चात् इसकी महती शक्ति के संमुख किसी ने सिर उठाने का साहस नहीं किया। सीमाप्रांत के सभी नृपतियों तथा यौधेय, मालव आदि गणराज्यों ने भी स्वेच्छा से इसकी अधीनता स्वीकार कर ली। समतट (दक्षिणपूर्वी बंगाल), कामरूप, नेपाल, देवाक (आसाम का नागा प्रदेश) और कर्तृपुर (कुमायूँ और गढ़वाल के पर्वतप्रदेश) इसकी अधीनता स्वीकार कर इसे कर देने लगे। मालव, अर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक और खर्परिक नामक गणराज्यों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। दक्षिण और पश्चिम के अनेक राजाओं ने इसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था और वे बराबर उपहार भेजकर इसे संतुष्ट रखने की चेष्टा करते रहते थे, इनमें देवपुत्र शाहि शाहानुशाहि, शक, मुरुंड और सैंहलक (सिंहल के राजा) प्रमुख हैं। ये नृपति आत्मनिवेदन, कन्योपायन, दान और गरुडध्वजांकित आज्ञापत्रों के ग्रहण द्वारा समुद्रगुप्त की कृपा चाहते रहते थे। समुद्रगुप्त का साम्राज्य पश्चिम में गांधार से लेकर पूर्व में आसाम तक तथा उत्तर में हिमालय के कीर्तिपुर जनपद से लेकर दक्षिण में सिंहल तक फैला हुआ था। प्रयाग की प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के सांधिविग्रहिक महादंडनायक हरिषेण ने लिखा है, 'पृथ्वी भर में कोई उसका प्रतिरथ नहीं था। सारी धरित्री को उसने अपने बाहुबल से बाँध रखा था।'

अनिवार्य होती है। यह सहमति पारस्परिक विमर्श तथा सामाजिक प्रतीकों के आत्मीकरण पर आधारित होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सदस्य को यह विश्वास रहता है कि वह जिन सामाजिक विधाओं को उचित मानता और उनका पालन करता है, उनका पालन दूसरे भी करते हैं। इस प्रकार की सहमति, विश्वास एवं तदनुरूप आचरण सामाजिक व्यवस्था को स्थिर रखते हैं। व्यक्तियों द्वारा सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्थापित विभिन्न संस्थाएँ इस प्रकार कार्य करती हैं, जिससे एक समवेत इकाई के रूप में समाज का सगठन अप्रभावित रहता है। असहमति की स्थिति अंतर्वैयक्तिक एवं अंतःसस्थात्मक संघर्षों को जन्म देती है जो समाज के विघटन के कारण बनते हैं। यह असहमति उस स्थिति में पैदा होती है जब व्यक्ति सामूहिकता के साथ आत्मीकरण में असफल रहता है। आत्मीकरण और नियमों को स्वीकार करने में विफलता कुलागत अधिकारों एवं सीमित सदस्यों के प्रभुत्व के प्रति मूलभूत अभिवृत्तियों से सबद्ध की जा सकती है। इसके अतिरिक्त ध्येय निश्चित हो जाने के पश्चात् अवसर का अभाव इस विफलता का कारण बनता है।

सामाजिक सगठन का स्वरूप कभी शाश्वत नहीं बना रहता। समाज व्यक्तियों का समुच्चय है और विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये विभिन्न समूहों में विभक्त है। अतः मानव मन और समूह मन की गतिशीलता उसे निरंतर प्रभावित करती रहती है। परिणामस्वरूप समाज परिवर्तनशील होता है। उसकी यह गतिशीलता ही उसके विकास का मूल है। सामाजिक विकास परिवर्तन की एक चिरंतन प्रक्रिया है जो सदस्यों की आकांक्षाओं और पुनर्निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में उन्मुख रहती है। सक्रमण की निरंतरता में सदस्यों का उपक्रम, उनकी सहमति और नूतनता से अनुकूलन की प्रवृत्ति क्रियाशील रहती है।

सं० ग्रं०—मैक आइवर एवं पेज : सोसाइटी; डेविस : ह्यूमन सोसाइटी; एंडर्सन : सोसाइटी, एस० कोनिग; मैन ऐंड सोसायटी; कार्डिनर : इंडिविजुअल ऐंड दी सोसाइटी, स्वीडेलम क्राफर्ड. मैन इन सोसाइटी; मेरिल : सोसाइटी ऐंड कल्चर; शापिरो : मैन, कल्चर ऐंड सोसाइटी; फाउंडेशंस ऑव माडर्न सोशियालाजी सिरीज; ह्वाट इज सोशियालाजी; विलफ्रेडो पैरेटो : माइंड, सेल्फ ऐंड सोसाइटी; मर्टन · सोशल थियरी ऐंड सोशल स्ट्रक्चर, मैक्सवेबर : थियरी ऑव एकोनामिक ऐंड सोशल आर्गेनाइजेशन।

[ला० ब० पा०]

समाजसेवा वैयक्तिक आधार पर, समूह अथवा समुदाय में व्यक्तियों की सहायता करने की एक प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति अपनी सहायता स्वयं कर सके। इसके माध्यम से सेवार्थी वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में उत्पन्न अपनी कतिपय समस्याओं को स्वय सुलझाने में सक्षम होता है। अत हम समाजसेवा को एक समर्थकारी प्रक्रिया कह सकते हैं। यह अन्य सभी व्यवसायों से सर्वथा भिन्न होती है, क्योंकि समाजसेवा उन सभी सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों का निरूपण कर उसके परिप्रेक्ष्य में क्रियान्वित होती है, जो व्यक्ति एवं उसके पर्यावरण—परिवार, समुदाय तथा समाज को प्रभावित करते हैं। सामाजिक कार्यकर्ता पर्यावरण की सामाजिक, आर्थिक एवं सास्कृतिक शक्तियों के साथ व्यक्तिगत जैविकीय, भावात्मक तथा मनोवैज्ञानिक तत्वों की गतिशील अंतःक्रिया को दृष्टिगत कर ही सेवार्थी को सेवा प्रदान करता है। वह सेवार्थी के जीवन के प्रत्येक पहलू तथा उसके पर्यावरण में क्रियाशील, प्रत्येक सामाजिक स्थिति से अवगत रहता है क्योंकि सेवा प्रदान करने को योजना बनाते समय वह इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

समाजसेवा का उद्देश्य व्यक्तियों, समूहों और समुदायों का अधिकतम हितसाधन होता है। अत सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी को उसकी समस्याओं का समाधान करने में सक्षम बनाने के साथ उसके पर्यावरण में अपेक्षित सुधार लाने का प्रयास करता है और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त सेवार्थी की क्षमता तथा पर्यावरण की रचनात्मक शक्तियों का प्रयोग करता है। समाजसेवा सेवार्थी तथा उसके पर्यावरण के हितों में सामजस्य स्थापित करने का प्रयास करती है।

समाजसेवा का वर्तमान स्वरूप निम्नलिखित जनतान्त्रिक मूल्यों के आधार पर निर्मित हुआ है :

(१) व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता, समग्रता एवं गरिमा में विश्वास—समाजसेवा सेवार्थी को परिवर्तन और प्रगति की क्षमता मे विश्वास करती है।

(२) स्वनिर्णय का अधिकार—सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी को अपनी आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति की योजना के निर्धारण की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करता है। निस्सदेह कार्यकर्ता सेवार्थी को स्पष्ट अंतर्दृष्टि प्राप्त करने में सहायता करता है जिससे वह वास्तविकता को स्वीकार कर लक्ष्यप्राप्ति की दिशा में उन्मुख हो।

(३) अवसर की समानता में विश्वास — समाजसेवा सबको समान रूप से उपलब्ध रहती है और सभी प्रकार के पक्षपातों और पूर्वाग्रहों से मुक्त कार्यकर्तासमूह अथवा समुदाय के सभी सदस्यों को उनकी क्षमता और आवश्यकता के अनुरूप सहायता प्रदान करता है।

(४) व्यक्तिगत अधिकारों एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों में अंतःसबद्धता व्यक्ति के स्वनिर्णय एव समान अवसरप्राप्ति के अधिकार, उसके परिवार, समूह एव समाज के प्रति उसके उत्तरदायित्व से सबद्ध होते है। अत सामाजिक कार्यकर्ता व्यक्ति की अभिवृत्तियों एवं समूह तथा समुदाय के सदस्यों की अंतःक्रियाओं, व्यवहारों तथा उनके लक्ष्यों के निर्धारण को इस प्रकार निदेशित करता है कि उनके हित के साथ उनके वृहद् समाज का भी हितसाधन हो।

समाजसेवा इस प्रयोजन के निमित्त स्थापित विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से वहाँ नियुक्त प्रशिक्षित सामजिक कार्यकर्ताओं द्वारा प्रदान की जाती है। कार्यकर्ताओं का ज्ञान, अनुभव, व्यक्तिगत कुशलता एव सेवा करने की उनकी मनोवृत्ति सेवा के स्तर की निर्धारक होती है। कार्यकर्ता में व्यक्तित्वविकास की संपूर्ण प्रक्रिया एव मानव-व्यवहार तथा समूहव्यवहार की गतिशीलता तथा उनके निर्धारक तत्वों का सम्यक् ज्ञान समाजसेवा की प्रथम अनिवार्यता है। इस

इस पुस्तक के नाम का आधार बाईबिल की एक कहानी है। अंगूर के एक बाग के मालिक ने अपने बाग मे काम करने के लिये कुछ मजदूर रखे। मजदूरी तय हुई एक पेनी रोज। दोपहर को और तीसरे पहर शाम को जो बेकार मजदूर मालिक के पास आए, उन्हे भी उसने काम पर लगा दिया। काम समाप्त होने पर सबको एक पेनी मजदूरी दी, जितनी सुबहवाले को, उतनी ही शामवाले को। इसपर कुछ मजदूरो ने शिकायत की, तो मालिक ने कहा, "मैंने तुम्हारे प्रति कोई अन्याय तो किया नही। क्या तुमने एक पेनी रोज पर काम मजूर नही किया था। तब अपनी मजदूरी ले लो और घर जाओ। मैं अंतवाले को भी उतनी ही मजदूरी दूंगा, जितनी पहलेवाले को।"

"सुबहवाले को जितना, शामवाले को भी उतना ही—प्रथम व्यक्ति को जितना, अंतिम व्यक्ति को भी उतना ही, इसमे समानता और अद्वैत का वह तत्व समाया है, जिसपर सर्वोदय का विशाल प्रासाद खडा है" (दादाधर्माधिकारी—'सर्वोदय दर्शन')

रस्किन की इस पुस्तक का गाधी जी ने गुजराती में अनुवाद किया 'सर्वोदय' के नाम से। सर्वोदय अर्थात् सबका उदय, सबका विकास। सर्वोदय भारत का पुराना आदर्श है। हमारे ऋषियो ने गाया है—'सर्वेपि सुखिन सतु'। सर्वोदय शब्द भी नया नही है। जैन मुनि समतभद्र कहते हैं—सर्वापदामतकर निरत सर्वोदयं तीर्थमिद तवैव'। 'सर्वं खल्विद ब्रह्म', 'वसुधैव कुटुबक', अथवा 'सोऽहम्' और 'तत्वमसि' के हमारे पुरातन आदर्शों मे 'सर्वोदय' के सिद्धात अ तर्निहित हैं।

'सर्वोदय' का आदर्श है अद्वैत और उसकी नीति है समवय। मानवकृत विषमता का वह अंत करना चाहता है और प्राकृतिक विषमता को घटाना चाहता है। जीवमात्र के लिये समादर और प्रत्येक व्यक्ति के प्रति सहानुभूति ही सर्वोदय का मार्ग है। जीवमात्र के लिये सहानुभूति का यह अमृत जब जीवन में प्रवाहित होता है, तब सर्वोदय की लता मे सुरभिपूर्ण सुमन खिलते हैं। डार्विन ने कहा—'प्रकृति का नियम है, बडो मछली छोटी मछली को खाकर जीवित रहती है।' हक्सले ने कहा—'जीओ और जीने दो।' सर्वोदय कहता है—'तुम दूसरो को जिलाने के लिये जीओ।' दूसरो को अपना बनाने के लिये प्रेम का विस्तार करना होगा, अहिंसा का विकास करना होगा और शोषण को समाप्त कर आज के सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन करना होगा।'

'सर्वोदय' ऐसे वर्गविहीन, जातिविहीन और शोषणमुक्त समाज की स्थापना करना चाहता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वांगीण विकास का साधन और अवसर मिले। विनोबा कहते हैं—'जब हम सर्वोदय का विचार करते हैं, तब ऊँच नीच भाववाली वर्णव्यवस्था दीवार की तरह समाने खडी हो जाती है। उसे तोड़े बिना सर्वोदय स्थापित नही होगा। सर्वोदय को सफल बनाने के लिये जातिभेद मिटाना होगा और आर्थिक विषमता दूर करनी होगी। इनको मिटाने से ही सर्वोदय समाज बनेगा।'

'सर्वोदय ऐसी समाजरचना चाहता है जिसमें वर्ण, वर्ग, धर्म, जाति, भाषा आदि के आधार पर किसी समुदाय का न तो सहार हो, न बहिष्कार हो। सर्वोदय की समाजरचना ऐसी होगी, जो सर्व के निर्माण और सर्व की शक्ति से सर्व के हित में चले, जिसमें कम या अधिक शारीरिक सामर्थ्य के लोगों को समाज का सरक्षण समान रूप से प्राप्त हो और सभी तुल्य पारिश्रमिक (इक्वीटेबल वेजेज) के हकदार माने जायँ। विज्ञान और लोकतत्र के इस युग में सर्व की क्राति का ही मूल्य है और वही सारे विकास का मापदड है। सर्व की क्राति में पूंजी और बुद्धि मे परस्पर सघर्ष की गुंजाइश नहीं है। वे समान स्तर पर परस्पर पूरक शक्तियाँ हैं। स्वभावत सर्वोदय की समाजरचना मे अतिम व्यक्ति समाज की चिंता का सबसे पहले अधिकारी है।

सर्वोदय समाज की रचना व्यक्तिगत जीवन की शुद्धि पर ही हो सकती है। जो व्रत नियम व्यक्तिगत जीवन में 'मुक्ति' के साधन हैं वे ही जब सामाजिक जीवन में भी व्यवहृत होंगे, तब सर्वोदय समाज बनेगा। विनोबा कहते हैं—'सर्वोदय की दृष्टि से जो समाजरचना होगी, उसका आरभ अपने जीवन से करना होगा। निजी जीवन में असत्य, हिंसा, परिग्रह आदि हुआ तो सर्वोदय नही होगा, क्योंकि सर्वोदय समाज की विषमता को अहिंसा से ही मिटाना चाहता है। साम्यवादी का ध्येय भी विषमता मिटाना है, परंतु इस अच्छे साध्य के लिये वह चाहे जैसा साधन इस्तेमाल कर सकता है, परंतु सर्वोदय के लिये साधनशुद्धि भी आवश्यक है।'

गाधी जी भी कहते हैं—'समाजवाद का प्रारभ पहले समाजवादी से होता है। अगर एक भी ऐसा समाजवादी हो, तो उसपर शून्य बढाए जा सकते हैं। हर शून्य से उसकी कीमत दसगुना बढ जाएगी, लेकिन अगर पहला अक शून्य हो, तो उसके आगे कितने ही शून्य बढाए जायँ, उसकी कीमत फिर भी शून्य ही रहेगी।'

इसीलिये गाधी जी सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, शारीरश्रम, निर्भयता, सर्वधर्मसमन्वय, अस्पृश्यता और स्वदेशी आदि व्रतों के पालन पर इतना जोर देते थे।

(१) पारिश्रमिक की समानता—जितना वेतन नाई को उतना ही वेतन वकील को। 'अनटू दिस लास्ट' का यह तत्व सर्वोदय में पूर्णतः गृहीत है। साम्यवाद भी पारिश्रमिक में समानता चाहता है। यह तत्व दोनों में समान है।

(२) प्रतियोगिता का अभाव — प्रतियोगिता सघर्ष को जन्म देती है। साम्यवादी के लिये सघर्ष तो परम तत्व ही है। परतु सर्वोदय सघर्ष को नही, सहकार को मानता है। सघर्ष में हिंसा है। सर्वोदय का सारा भवन ही अहिंसा की नीव पर खडा है।

(३) साधनशुद्धि — साम्यवाद साध्य की प्राप्ति के लिये साधनशुद्धि को आवश्यक नही मानता। सर्वोदय में साधनशुद्धि प्रमुख है। साध्य भी शुद्ध और साधन भी शुद्ध।

(४) आनुवंशिक संस्कारों से लाभ उठाने के लिये ट्रस्टीशिप की योजना — विनोबा कहते हैं—"सपत्ति की विषमता कृत्रिम व्यवस्था के कारण पैदा हुई है, ऐसा मानकर उसे छोड भी दें, तो मनुष्य की शारीरिक और बौद्धिक शक्ति की विषमता पूरी तरह दूर नही हो सकती। शिक्षण और नियमन से यह विषमता कुछ अश तक कम की जा सकती। किंतु आदर्श की स्थिति में इस

इसने अनेक नष्टप्राय जनपदो का पुनरुद्धार भी किया था, जिससे इसकी कीर्ति सर्वत्र फैल गई थी। सारे भारतवर्ष मे अबाध शासन स्थापित कर लेने के पश्चात् इसने अनेक अश्वमेध यज्ञ किए और ब्राह्मणो, दीनो, अनाथो को अपार दान दिया। शिलालेखो में इसे 'चिरोत्सन्न अश्वमेधाहर्त्ता' और 'अनेकाश्वमेधयाजी' कहा गया है। हरिषेण ने इसका चरित्रवर्णन करते हुए लिखा है —

'उसका मन सत्सगसुख का व्यसनी था। उसके जीवन मे सरस्वती और लक्ष्मी का अविरोध था। वह वैदिक धर्म का अनुगामी था। उसके काव्य से कवियो के बुद्धिवैभव का विकास होता था। ऐसा कोई भी सद्गुण नही है जो उसमे न रहा हो। सैकड़ो देशो पर विजय प्राप्त करने की उसकी क्षमता अपूर्व थी। स्वभुजबल ही उसका सर्वोत्तम सखा था। परशु, बाण, शकु, शक्ति आदि अस्त्रो के घाव उसके शरीर की शोभा बढाते थे। उसकी नीति थी साधुता का उदय हो तथा असाधुता का नाश हो। उसका हृदय इतना मृदुल था कि प्रणतिमात्र से पिघल जाता था। उसने लाखो गायो का दान किया था। अपनी कुशाग्र बुद्धि और सगीत कला के ज्ञान तथा प्रयोग से उसने ऐसे उत्कृष्ट काव्य का सर्जन किया था कि लोग 'कविराज' कहकर उसका समान करते थे।'

समुद्रगुप्त के सात प्रकार के सिक्के मिल चुके हैं, जिनसे उसकी शूरता, युद्धकुशलता तथा संगीतज्ञता का पूर्ण आभास मिलता है। इसने सिंहल के राजा मेघवर्ण को बोधगया मे बौद्धविहार बनाने की अनुमति देकर अपनी महती उदारता का परिचय दिया था। यह भारतवर्ष का प्रथम आसेतुहिमाचल का सम्राट् था। इसकी अनेक रानियो में पट्टमहिषी दत्त देवी थी, जिनसे सम्राट् चद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने जन्म दिया था। [ला० त्रि० प्र०]

सरयू इस पुण्यसलिला नदी का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद मे मिलता है। उसके मडल ४।३०।१८ से विदित होता है कि इसके तट पर 'अर्ण' और 'चित्ररथ' नामक दो नृपतियो की राजधानियाँ थी। वे दोनो ही प्रजापालक एव न्यायप्रिय राजा थे। अतः ऋषियो ने उनके प्रति मगलकामना प्रकट की है। ऋग्वेद के मं० ५।५३।६ तथा मं० १०।६४।६ में कहा है कि इसके शात एवं पुनीत तट पर बैठकर ऋषि लोग तत्वचिंतन एव यज्ञादि धर्मानुष्ठान किया करते थे। महाभारत में भी अनेक स्थलो पर पुण्यसरित् सरयू का उल्लेख है। वाल्मीकि ने रामायण में सरयू को अनेक स्थलो पर वर्णन का विषय बनाया है। इसके रम्य तट पर स्थित अयोध्यापुरी सूर्यवंशी नृपतियों की राजधानी रही है। महाराज दशरथ तथा राम के राजत्वकाल में इसका गौरव विशेष परिवर्धित हो गया था। महाराज सगर, रघु तथा राम ने इसके तट पर अनेक अश्वमेध यज्ञ किए थे। श्रीराम के अनुज कुमार लक्ष्मण ने सरयू में ही अनंतरूप में शरीरत्याग किया था। यह अतिशय दुःखद समाचार सुनकर श्रीराम ने भी इस नदी के ही माध्यम से साकेतधाम अपनाया था। इन प्राचीन ग्रथो के उल्लेख से पता चलता है कि यह अत्यत प्राचीन नदी है।

हरिवशपुराण में भी इसकी पुण्यगाथा गाई गई है। कालिका पुराण में कहा गया है कि सुवर्णमय मानसगिरि पर जब अरुधती के साथ ऋषिवर्य वशिष्ठ का विवाह हुआ तब संकल्प एवं पूजन का जल तथा शातिसलिल पहले पर्वत की कदरा मे प्रविष्ट हुआ। तत्पश्चात् वह सात भागों में विभक्त होकर गिरिकंदरा, गिरिशिखर और सरोवर मे होता हुआ सात सरिताओ के आकार में प्रवाहित हुआ। जो जल हसावतार के पास की कदरा में जा गिरा उससे सर्वकल्मषहारिणी मगलमयी सरयू का उद्भव हुआ। वहाँ कहा गया है कि यह नदी दक्षिण सिंधुगामिनी और चिरस्थायिनी है। जो फल किसी व्यक्ति को गगास्नान से मिलता है वही फल इसमे मज्जन से प्राप्त होता है। इसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाली कहा गया है।

सरयू हिमाचल से निकलकर नेपाल से आगे बढती है। वहाँ प्रारभ मे इसका नाम 'कौरियाला' है। पर्वत की अधित्यका में आने पर अनेक नदियाँ इसमे आ मिली हैं। भूपृष्ठ पर पहुँचकर यह दो भागो में विभक्त हो गई है। पश्चिमवाहिनी का नाम 'कौरियाला' तथा पूर्ववाहिनी का नाम गिरवा नदी है। ये दोनो ही शाखाएँ और नीचे उतरकर एक दूसरी से मिल गई हैं। खीरी जिले में 'मुहेली' नामक एक नदी इसमें आ मिली है। खीरी और भडौच से आगे कटाईघाट तथा ब्रह्मघाट के पास क्रमश. चौका और दहावाड़ नामक दो नदियाँ इसमें आ मिली हैं। इसके पश्चात् इसका नाम 'घर्घरा' या 'घाघरा' पड़ गया है। उत्तर में गोडा, दक्षिण मे बाराबंकी तथा फैजाबाद और पश्चिम में अयोध्या को छोड़ती हुई यह नदी दक्षिण और पूर्व की ओर बढ़ गई है। फिर यह उत्तर मे बस्ती तथा गोरखपुर और दक्षिण में आजमगढ को छोडती है। पहले गोरखपुर जिले में 'कुआनो' नदी इसमें मिली है, आगे चलकर राप्ती और मुचोरा नदियाँ आ मिली हैं। यह नदी अपना मार्ग कभी उत्तर और कभी दक्षिण की ओर बदलती रहती है, जिसके चिह्न बराबर मिलते हैं। सन् १६०० ई० में विशाल बाढ आई थी जिससे गोंडा जिले का 'खुराशा' नगर धारा में बह गया था।

सस्कृत मे इसका नाम 'सरयु' भी मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में इसकी महिमा का बहुशः आख्यान किया है। भगवान् राम लकाविजय से लौटते समय अपने यूथपति वीरो से इसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं

> जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि।
> उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ॥
> जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा।
> मम समीप नर पावहिं बासा ॥—उत्तरकाड, ४।४

[ला० त्रि० प्र०]

सर्वोदय अंग्रेज लेखक रस्किन की एक पुस्तक है—'अनटू दिस लास्ट'—इस अतवाले को भी। इस पुस्तक मे मुख्यत. तीन बातें बताई गई हैं—

(१) व्यक्ति का श्रेय समष्टि के श्रेय में निहित है।

(२) वकील का काम हो या नाई का, दोनो का मुल्य समान ही है, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यवसाय द्वारा आजीविका चलाने का समान अधिकार है।

(३) मजदूर, किसान और कारीगर का जीवन ही सच्चा और सर्वोत्कृष्ट जीवन है।

विषमता के सर्वथा अभाव की कल्पना नही की जा सकती। इसलिये शरीर, बुद्धि और संपत्ति इन तीनो मे से जो जिसे प्राप्त हो, उसे यही समझना चाहिए कि वह सबके हित के लिये ही मिली है। यही ट्रस्टीशिप का भाव है। अपनी शक्ति और सपत्ति का ट्रस्टी के नाते ही मनुष्यमात्र के हित के लिये प्रयोग करना चाहिए। ट्रस्टीशिप में अपरिग्रह की भावना निहित है। साम्यवाद में आनुवंशिकता के लिये कोई स्थान नही है। उसकी नीति तो आभिजात्य के संहार की रही है।

(५) विकेंद्रीकरण — सर्वोदय सत्ता और सपत्ति का विकेंद्रीकरण चाहता है जिससे शोषण और दमन से बचा जा सके। केंद्रीकृत औद्योगीकरण के इस युग में तो यह और भी आवश्यक हो गया है। विकेंद्रीकरण की यही प्रक्रिया जब सत्ता के विषय में लागू की जाती है, तब इसकी निष्पत्ति होती है शासनमुक्त समाज में। साम्यवादी की कल्पना में भी राजसत्ता तेज गर्मी मे रखे हुए घी की तरह अंत में पिघल जानेवाली है। परतु उसके पहले उसे जमे हुए घी की तरह ही नही, बल्कि ट्राट्स्की के सिर पर मारे हुए हथौड़े की तरह, ठोस और मजबूत होना चाहिए। (ग्राम-स्वराज्य)। परंतु गाधी जी ने आदि, मध्य और अंत तीनो स्थितियो मे विकेंद्रीकरण और शासनमुक्तता की बात कही है। यही सर्वोदय का मार्ग है।

इस समय संसार में उत्पादन के साधनो के स्वामित्व की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं—निजी स्वामित्व (प्राइवेट ओनरशिप) और सरकार स्वामित्व (स्टेट ओनरशिप)। निजी स्वामित्व पूँजीवाद है, सरकार स्वामित्व साम्यवाद। पूँजीवाद में शोषण है, साम्यवाद में दमन। भारत की परपरा, उसकी प्रतिभा और उसकी परिस्थिति, तीनो की माँग है कि वह राजनीतिक और आर्थिक सगठन की कोई तीसरी ही पद्धति विकसित करे, जिससे पूँजीवाद के 'निजी अभिक्रम' और साम्यवाद के 'सामूहिक हित' का लाभ तो मिल जाय, किंतु उनके दोषो से बचा जा सके। गाधी जी की 'ट्रस्टीशिप' और 'ग्राम-स्वराज्य' की कल्पना और विनोबा की इस कल्पना पर आधारित 'ग्रामदान—ग्राम स्वराज्य' की विस्तृत योजना मे, दोनो के दोषो का परिहार और गुणो का उपयोग किया गया है। यहाँ स्वामित्व न निजी है, न सरकार का, बल्कि गाँव का है, जो स्वायत्त है। इस तरह सर्वोदय की यह क्राति एक नई व्यवस्था ससार के सामने प्रस्तुत कर रही है'। [वं० श्री०]

सिंह, ठाकुर गदाधर का जन्म सन् १८६९ ई० मे एक मध्यमवर्गीय राजपूत परिवार में हुआ था। आरंभ में इन्होने एक सफल सैनिक का जीवन व्यतीत किया। बाद में यात्रावृत्तातलेखन की ओर प्रवृत्त हुए। १९०० मे इन्होने एक सैनिक अधिकारी के रूप में चीन की यात्रा की। उसी समय चीन में 'बाक्सर विद्रोह' हुआ था। ब्रिटिश सरकार ने 'बाक्सर विद्रोह' का दमन करने के लिये राजपूत सेना की एक टुकडी चीन भेजी थी, ठाकुर साहब उसके एक विशिष्ट सदस्य थे। सम्राट एडवर्ड के तिलकोत्सव के समारोह में आपको इंग्लैंड जाने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ जाकर ठाकुर साहब ने जो कुछ देखा, उसे अपनी लेखनी द्वारा व्यक्त किया। ठाकुर साहब से पहले शायद ही किसी ने यात्रासंस्मरण लिखे हों। सन् १९१८ ई० मे उचास वर्ष की अल्पायु में इनका स्वर्गवास हो गया।

ठाकुर गदाधर सिंह की यात्रासंस्मरण की दो कृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं, १. 'चीन में तेरह मास' और २ 'हमारी एडवर्ड-तिलक-यात्रा।'

'चीन में तेरह मास' नामक ग्रंथ ३१९ पृष्ठो में है और काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय में इसकी एक प्रति सुरक्षित है। लेखक ने इस पुस्तक मे अपनी चीनयात्रा का मनोहर वृत्तात एव अपने सैनिक जीवन की साहसपूर्ण कहानी जिस रोचक ढग से लिखी है वह अत्यत मनमोहक तथा सुरुचिपूर्ण सामग्री कही जा सकती है। पुस्तक मे जहाँ चीन के साधारण जीवन की कहानी है वहाँ उनके सैनिक जीवन का साहसपूर्ण ब्योरा भी है। उससे उस समय की चीनी जनता की मनोदशा, रहन सहन और आचार व्यवहार पर पूरा प्रकाश पडता है।

'एडवर्ड-तिलक-यात्रा' नामक कृति में लेखक ने इग्लैंडयात्रा का रोचक वर्णन किया है। इस पुस्तक मे यात्राविवरण के साथ साथ उनके संस्मरण भी हैं।

बीसवीं शताब्दी के आरभिक दशक मे ठाकुर गदाधर सिंह हिंदी-गद्य के विशिष्ट लेखको मे माने जाते हैं। यह द्रष्टव्य है कि उस समय तक हिंदी गद्य का कोई स्वरूप निश्चित नही हो पाया था। भाषा के परिष्कार और उसकी व्यजनाशक्ति को बढाने का प्रयास किया जा रहा था। गदाधर सिंह की कृतियो ने हिंदी गद्य के निर्माणयुग में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी भाषा का स्वरूप सरल, सहज, स्वाभाविक था। इनकी हास्य व्यग्यपूर्ण शैली पाठको के मन को मोह लेती थी। यही कारण है कि गदाधर सिंह उस समय में यात्रा संस्मरण लिखकर ही प्रसिद्ध हो गए। [रा० मि०]

सिकंदर मकदूनिया (मेसीडन) प्रारभ में यद्यपि एक पिछडा राज्य था किंतु सिकदर के कारण वह इतिहास में अमर हो गया। ३५९ ई० पू० मे फिलिप यहाँ का राजा हुआ। फिलिप की मृत्यु के बाद उसका बेटा सिकदर ३३६ ई० पू० में मकदूनिया का राजा हुआ। उस समय उसकी अवस्था २० वर्ष की थी। वह उत्साह से भरा युवक था। उसकी शिक्षा दीक्षा प्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू द्वारा हुई थी।

सिकदर महान् विजेता बनना चाहता था। भाग्य से उसको पिता की सुसगठित सेना और राज्य प्राप्त हुए थे। अपने पिता के समय मे एथेन्स और थीब्स के विरुद्ध युद्ध मे वह अश्वारोही दल का नायक रह चुका था। गद्दी पर बैठते ही उसने राज्य में विद्रोही शक्ति को कुचल डाला।

३३४ ई० पू० मे सिकदर लगभग साढे तीन हजार कुशल सैनिको को लेकर विश्वविजय के लिये निकल पड़ा। ११ वर्षों में उसने अद्भुत सफलता प्राप्त की और साम्राज्य की सीमाओ को चारो ओर दूर दूर तक फैलाया। एशिया माइनर जीतकर भूमध्यसागर के तटवर्ती देशो को रौंदता हुआ फिनियो की शत्रुता का बदला लेता

वध मारा गया। हर्षवर्धन ६०६ में गद्दी पर बैठा। हर्षवर्धन ने बहन राज्यश्री का विंध्याटवी से उद्धार किया, थानेश्वर और कन्नौज राज्यों का एकीकरण किया। देवगुप्त से मालवा छीन लिया। शशांक को गौड़ भगा दिया। दक्षिण पर अभियान किया पर आग्र पुलकेशिन द्वितीय द्वारा रोक दिया गया। उसने साम्राज्य को सुंदर शासन दिया। धर्मों के विषय में उदार नीति बरती। विदेशी यात्रियों का समान किया। चीनी यात्री युवेन सग ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। प्रति पाँचवें वर्ष वह सर्वस्व दान करता था। इसके लिये बहुत बड़ा धार्मिक समारोह करता था। कन्नौज और प्रयाग के समारोहों में युवेन सग उपस्थित था। हर्ष साहित्य और कला का पोषक था। कादंबरीकार बाणभट्ट उसका अनन्य मित्र था। हर्ष स्वयं पंडित था। वह वीणा बजाता था। उसकी लिखी तीन नाटिकाएँ नागानंद, रत्नावली और प्रियदर्शिका संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं। हर्षवर्धन का हस्ताक्षर मिला है जिससे उसका कलाप्रेम प्रगट होता है। [रा०]

हुसेन, डाक्टर जाकिर भारत के तृतीय राष्ट्रपति। आपका जन्म ८ फरवरी, १८९७ को हैदराबाद में एक अफ़ग़ान परिवार में हुआ था। आपके पूर्वज अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के एक क़स्बे क़ायमगंज में आ बसे थे। बाद में आपके पिता वकील फ़िदाहुसेन सपरिवार हैदराबाद चले गए। जब जाकिरहुसेन मात्र नौ वर्ष के थे, इनके पिता का संरक्षण इनसे सदा के लिये छिन गया। इनका परिवार क़ायमगंज लौट आया। इनकी प्रारंभिक शिक्षा इटावा के इसलामिया हाई स्कूल में हुई। इन्होंने अलीगढ़ के एम० ए० ओ० कालिज से अर्थशास्त्र की स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त कर बर्लिन विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में ही डाक्टरेट किया। अध्ययनकाल में आपकी गणना सदैव सुयोग्य एवं शिष्ट छात्रों में की जाती थी। अपनी साधारण वेशभूषा, सरल स्वभाव एवं सात्विक आचरण के कारण ये विद्यार्थी जीवन में 'मुर्शिद' (आध्यात्मिक नेता) के नाम से विख्यात थे।

सन् १९२० में जब जाकिरहुसेन एम० ए० ओ० कालेज में एम० ए० के छात्र थे, महात्मा गांधी अली बंधुओं के साथ अलीगढ़ आए। उन्होंने कालेज के छात्रों एवं अध्यापकों के समक्ष देशभक्ति की भावनाओं से ओतप्रोत ओजस्वी भाषण किया। गांधी जी ने अंग्रेज सरकार द्वारा संचालित अथवा नियंत्रित शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार कर राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने के लिये छात्रों एवं अध्यापकों का आह्वान किया। गांधी जी के भाषण का जाकिरहुसेन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। इन्होंने कालेज त्याग दिया और कतिपय छात्रों एवं अध्यापकों के सहयोग से एक राष्ट्रीय शिक्षणसंस्थान की स्थापना की जो बाद में 'जामिया मिल्लिया इस्लामिया' के नाम से विख्यात हुआ। इन्होंने इस संस्था का पोषण प्रायः ४० वर्षों तक किया।

डाक्टर हुसेन ने अपना जीवन एक शिक्षक के रूप में आरंभ किया। दो वर्ष पश्चात् ये उच्च अध्ययन हेतु बर्लिन चले गए। वहाँ से अर्थशास्त्र में पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर लौटने के पश्चात् ये जामिया मिल्लिया के वाइस चांसलर बनाए गए। २९ वर्ष की अल्पायु में इतने गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित होना इनके व्यक्तित्व की महनीयता का द्योतक है। उसमानिया विश्वविद्यालय के ६०० रुपए मासिक के आमंत्रण को अस्वीकार कर पावन कर्तव्य की भावना से प्रेरित होकर इन्होंने जामिया मिल्लिया में केवल ७५ रुपए मासिक वेतन पर अध्यापन किया। विषम आर्थिक स्थितियों में भी ये निराश नहीं हुए। ये संस्था की अस्तित्वरक्षा के लिये सतत संघर्ष करते रहे। जामिया-मिल्लिया इनके त्यागमय जीवन की महान् पूँजी और इनकी २२ वर्षों की मौन साधना और घोर तपस्या का ज्वलंत उदाहरण है। ये देश की अनेक शिक्षणसमितियों से संबद्ध रहे। डा० हुसेन महात्मा गांधी द्वारा विकसित की गई बुनियादी शिक्षा अभियान के सूत्रधार थे। इन्होंने शिक्षा के सुधार और मूल्यांकन से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की। ये हिंदुस्तानी तालीमी संघ, सेवाग्राम, विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग आदि अनेक शिक्षण समितियों के सदस्य तथा सभापति रहे। सन् १९३७ में जब प्रांतों को कुछ सीमा तक स्वायत्तता मिली और गांधी जी ने जनप्रिय प्रांतीय सरकारों से बुनियादी शिक्षा के प्रसार पर बल देने का अनुरोध किया तब गांधी जी के आमंत्रण पर डा० जाकिरहुसेन ने बुनियादी शिक्षासंबंधी राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षता स्वीकार की। विभाजन के पश्चात् तत्कालीन शिक्षामंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद के अनुरोध पर इन्होंने अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर का कार्य संभाला। उस समय यह विश्वविद्यालय पृथक्तावादी मुसलमानों के षड्यंत्र का केंद्र था। ऐसी स्थिति में इन्होंने विश्वविद्यालय प्रशासन का गंभीर उत्तरदायित्व ग्रहण किया और आठ वर्षों तक कुशलतापूर्वक उसका निर्वाह किया। इन्होंने कई बार यूनेस्को में भारत का प्रतिनिधित्व भी किया।

डाक्टर जाकिर हुसेन सन् १९५२ में राज्यसभा के सदस्य मनोनीत किए गए। विद्वत्ता एवं राष्ट्रीय सेवाओं के लिये इन्हें सन् १९५४ में 'पद्मविभूषण' की उपाधि दी गई। सन् १९५७ में ये बिहार के राज्यपाल नियुक्त हुए। सन् १९६२ में भारत के उपराष्ट्रपति निर्वाचित हुए। राज्यसभा के अध्यक्ष पद पर इन्होंने जिस निष्पक्षता और योग्यता का परिचय दिया वह इनके उत्तराधिकारियों के लिये अनुकरणीय थी। भारत के सर्वोच्च आदर्शों के ताने बाने में बुने इनके बहुमुखी व्यक्तित्व तथा इनके द्वारा संपन्न शालीन सेवाओं के लिये इन्हें सन् १९६३ में भारत का सर्वोच्च अलंकरण 'भारतरत्न' प्रदान किया गया।

सन् १९६७ में डा० हुसेन भारत के तृतीय राष्ट्रपति निर्वाचित हुए और मृत्युपर्यंत इस पद पर बने रहे। अपने कार्यकाल की अल्प अवधि में इन्होंने अपने पद की गरिमा बढ़ाई। ३ मई, सन् १९६९ को सहसा हृदय की गति बंद हो जाने से इनका असामयिक निधन हो गया।

डाक्टर जाकिरहुसेन सफल लेखक भी थे। इनकी कृतियों में जहाँ एक ओर ज्ञान विज्ञान की गुरु गंभीर धारा प्रवाहित होती है वहीं दूसरी ओर 'अबू की बकरी' जैसी लोकप्रिय बालोपयोगी रचनाओं की प्रचुरता है। इन्होंने प्लेटो द्वारा रचित

के लिये है जो लोग इस नश्वर शरीर को ही सब कुछ मानते हैं। आत्मा अमर है फिर इस शरीर से क्या डरना ? हमारे शरीर में जो निवास करता है क्या उसका कोई कुछ बिगाड सकता है ? आत्मा ऐसे शरीर को बार बार धारण करती है अत: इस क्षणिक शरीर की रक्षा के लिये भागना उचित नही है। क्या मैंने कोई अपराध किया है ? जिन लोगो ने इसे अपराध बताया है उनकी बुद्धि पर अज्ञान का प्रकोप है। मैंने उस समय कहा था—विश्व कभी भी एक ही सिद्धात की परिधि में नही बाँधा जा सकता। मानव मस्तिष्क की अपनी सीमाएँ हैं। विश्व को जानने और समझने के लिये अपने अंतस् के तम को हटा देना चाहिए। मनुष्य यह नश्वर काया-मात्र नही, वह सजग और चेतन आत्मा में निवास करता है। इस-लिये हमें आत्मानुसंधान की ओर ही मुख्य रूप से प्रवृत्त होना चाहिए। यह आवश्यक है कि हम अपने जीवन में सत्य, न्याय और ईमानदारी का अवलंबन करें। हमे यह बात मानकर ही आगे बढना है कि शरीर नश्वर है। अच्छा है, नश्वर शरीर अपनी सीमा समाप्त कर चुका। टहलते टहलते थक चुका हूँ। अब संसार रूपी रात्रि में लेटकर आराम कर रहा हूँ। सोने के बाद मेरे ऊपर चादर उढा देना।" [शि० प्र०]

स्कंदगुप्त (४५५–४६७ ई०) गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त प्रथम महेंद्रादित्य का पुत्र था। अपने पिता के शासनकाल मे ही इसने प्रबल पुष्यमित्रों को पराजित करके अपनी अद्भुत प्रतिभा और वीरता का परिचय दे दिया था। यह कुमारगुप्त की पट्टमहिषी महादेवी अनंत देवी का पुत्र नहीं था। यह उनकी दूसरी रानी से था। पुष्यमित्रो का विद्रोह इतना प्रबल था कि गुप्त शासन के पाए हिल गए थे, किंतु इसने अपने निस्सीम धैर्य और अप्रतिम वीरता से शत्रुओ का सामूहिक संहार करके फिर से शांति स्थापित की। यद्यपि कुमारगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र पुरुगुप्त था, तथापि इसके शौर्यगुण के कारण राजलक्ष्मी ने स्वयं इसका वरण किया था।

इसके राज्यकाल में हूणो ने कबोज जनपद को विजित कर गाधार में प्रवेश किया। हूण बडे ही भीषण योद्धा थे, जिन्होंने पश्चिम में रोमन साम्राज्य को तहस नहस कर डाला था। हूणराज एटिला का नाम सुनकर यूरोपीय लोग काँप उठते थे। कंबोज, कंधार आदि जनपद गुप्तसाम्राज्य के अंग थे। शिलालेखो में कहा गया है कि गाधार में स्कदगुप्त का हूणों के साथ इतना भयंकर संग्राम हुआ कि संपूर्ण पृथ्वी काँप उठी। इस महासंग्राम में विजयश्री ने स्कंदगुप्त का वरण किया। इसका शुभ्र यश कन्याकुमारी अतरीप तक छा गया। बौद्ध ग्रंथ 'चंद्रगर्भपरिपृच्छा' में वर्णित है कि हूणो की सैन्यसख्या तीन लाख थी और गुप्त सैन्यसख्या दो लाख थी, किंतु विजयी हुआ गुप्त सैन्य। इस महान् विजय के कारण गुप्तवंश में स्कंद-गुप्त 'एकवीर' की उपाधि से विभूषित हुआ। इसने अपने बाहुबल से हूण सेना को गाधार के पीछे ढकेल दिया।

स्कदगुप्त के समय में गुप्तसाम्राज्य अखंड रहा। इसके समय की कुछ स्वर्णमुद्राएँ मिली हैं, जिनमें स्वर्ण की मात्रा पहले के सिक्को की अपेक्षा कम है। इससे प्रतीत होता है कि हूणयुद्ध के कारण राजकोश पर गंभीर प्रभाव पडा था। इसने प्रजाजनो की सुख सुविधा पर भी पूरा पूरा ध्यान दिया। सौराष्ट्र की सुदर्शन झील की दशा इसके शासनकाल के आरंभ मे खराब हो गई थी और उससे निकली नहरो में पानी नही रह गया था। स्कंदगुप्त ने सौराष्ट्र के तत्कालीन शासक पर्णदत्त को आदेश देकर झील का पुनरुद्धार कराया। बाँध दृढता से बाँधे गए, जिससे प्रजाजनो को अपार सुख मिला। पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने इसी समय उस झील के तट पर विशाल विष्णुमदिर का निर्माण कराया था।

इसने राज्य की आभ्यंतर अशांति को दूर किया और हूण जैसे प्रबल शत्रु का मानमर्दन करके 'आसमुद्रक्षितीश' पद की गौरवरक्षा करते हुए साम्राज्य मे चतुर्दिक् शांति स्थापित की। स्कंदगुप्त की कोई संतान नही थी। अतः इसकी मृत्यु के पश्चात् पुरुगुप्त सम्राट् बना। [ला० श्रि० प्र०]

स्वयंवर हिंदू समाज का एक विशिष्ट सामाजिक संस्थान। इस बात के प्रमाण हैं कि वैदिक काल में यह प्रथा समाज के चारों वर्णों में प्रचलित थी और यह विवाह का प्रारूप था। रामायण और महाभारतकाल मे भी यह प्रथा राजन्यवर्ग में प्रचलित थी। पर इसका रूप कुछ संकुचित हो गया था। राजन्य कन्या पति का वरण स्वयंवर में करती थी परतु यह समाज द्वारा मान्यता प्रदान करने के हेतु थी। कन्या को पति के वरण मे स्वतन्त्रता न थी। पिता की शर्तों के अनुसार पूर्ण योग्यताप्राप्त व्यक्ति ही चुना जा सकता था। पूर्व-मध्यकाल में भी इस प्रथा के प्रचलित रहने के प्रमाण मिले हैं, जैसा संयोगिता के स्वयंवर से स्पष्ट है। आर्यों के आदर्श ज्यो ज्यो विस्मृत होते गए, इस प्रथा में कमी होती गई और आज तो स्वयंवरा को उपहास का विषय ही माना जाता है। आर्यो ने स्त्रियो को संपत्ति का अधिकार मान्य किया था और उन्हे पूर्ण स्वतंत्रता दी थी। इसी पृष्ठभूमि में स्वयंवर प्रथा की प्रतिष्ठापना हुई पर धीरे धीरे यह संकुचित और फिर विलुप्त हो गई। [रा०]

हर्षवर्धन अंतिम हिंदू सम्राट्, जिसने पंजाब छोड़कर समस्त उत्तरी भारत पर राज्य किया। शशांक की मृत्यु के उपरात वह बंगाल को भी जीतने में समर्थ हुआ। हर्षवर्धन के शासनकाल का इतिहास मगध से प्राप्त दो ताम्रपत्र, राजतरंगिणी, चीनी यात्री युवेन संग के विवरण, और हर्ष एवं बाणभट्टरचित संस्कृत काव्य ग्रंथों में प्राप्त है। शासनकाल ६०६ से ६४७ ई०। वंश—थानेश्वर का पुष्य-भूति वंश।

६०५ ई० मे प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के पश्चात् राजवर्धन राजा हुआ पर मालव नरेश देवगुप्त और गौड़ नरेश शशांक की दुरभिसंधि-

सुकरात

(देखें पृष्ठ १२४)

गोयस जूलियस सीज़र

(देखें पृष्ठ ११०)

पुस्तक 'रिपब्लिक' का उर्दू में अनुवाद किया। शिक्षा से संबंधित अनेक ग्रंथों एवं कहानियों के अतिरिक्त इन्होंने अर्थशास्त्र पर भी एक ग्रंथ की रचना की। 'एलिमेंट्स ऑव एकानामिक्स' तथा अर्थशास्त्र की अनेक महत्वपूर्ण कृतियों का उर्दू में अनुवाद किया। सुंदर हस्तलिपि में अपनी प्रगाढ़ रुचि का उपयोग इन्होंने गालिब की कविताओं के अत्यंत मनोहर प्रकाशन में किया। ये उर्दू के शीर्षस्थ संस्मरणलेखक भी थे। इन्होंने कार्ल मार्क्स के दर्शन का अनुशीलन भी किया था।

[ला० व० पा०]

विषयसूची

(हिंदी विश्वकोश के संपूर्ण बारह खंडों की)

विषयसूची

खंड १

३

खंड ४

निबंध पृष्ठ संख्या

निबंध	पृष्ठ संख्या

निबंध	पृष्ठ संख्या

निबंध — पृष्ठ संख्या

खंड ८

निबंध	पृष्ठ संख्या	निबंध	पृष्ठ संख्या	निबंध	पृष्ठ संख्या

खंड ९

खंड ११

खंड १२

परिशिष्ट